



त्रिपुरारहस्यम्

माहात्म्यखण्डम्

विमला-हिन्दीव्याख्योपेतम्



आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

[illegible]
48/72

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२६४

त्रिपुरारहस्यम्

(माहात्म्यखण्डम्)

'विमला'-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार
आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र
साहित्याचार्य, व्या० शा०
एम० ए० (द्वितय), पी-एच्० डी०, डिप्-इन-एड०



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

त्रिपुरा रहस्यम् (माहात्मखण्ड)-जगदीशचन्द्र मिश्र

ISBN : 978-93-81443-98-8

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

संस्करण : 2013
₹ 650

वितरक :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

आमुख

तन्त्रशास्त्र भारत का राष्ट्रीय गौरव है। 'त्रिपुररहस्य' तन्त्र-साहित्य के गर्वोन्नत भाल की दीप्ति से संक्रान्त एक प्रखर ललाटबिन्दु है। सर्वव्यापी चैतन्य तत्त्व की अभिनव छटा है, महाशक्ति के कल्पनालोक का एक अद्भुत स्वरूप है। उसके बहिर्मुखी विश्वमय रूप का विस्तार है। इस भौतिक धरातल पर निःस्पृह और निर्विकल्प रहकर अपने ज्ञानचक्षु से विश्वमयी हलचल में ही उस शाश्वत और आदिसिद्ध शक्ति का हम अपने आप में दर्शन कर सकते हैं। पर इसके लिए सर्वप्रथम हमें अन्तर्निहित आत्मशक्ति को पहचानना होगा, उसे जगाना होगा। क्योंकि मनुष्य का चित्त सदैव ऐन्द्रिक अनुभवों को संग्रहीत कर लेता है। ये सारे अनुभव तो बाह्य जगत् के ही होते हैं। क्योंकि इन्द्रियाँ केवल उन्हें ही जानने में समर्थ होती हैं, जो बाहर हैं। अपने भीतर जो है वहाँ तक इन्द्रियों की कोई पहुँच नहीं है। इन अनुभवों की सूक्ष्म तरंगें ही किसी प्रकार के विचारों की जन्मदात्री हैं। अतः कोई विचार विज्ञान की खोज में तो सहयोगी हो सकता है किन्तु परम सत्य या आत्मशक्ति के अनुसन्धान में नहीं। स्वयं के आन्तरिक केन्द्र पर जो हमारी प्रसुप्त चेतना है, उसे जगाकर ही हम उसे पा सकते हैं। इसे ही जगाने की प्रक्रिया इस त्रिपुररहस्य का अमर सन्देश है।

शब्द, ध्वनि और सङ्कल्प के द्वारा या अपनी भावनाओं के द्वारा संसार की हर वस्तु पर जिस क्रिया से नियन्त्रण प्राप्त किया जा सके, उसी क्रिया की अधिष्ठात्री विद्या को तन्त्र कहा जाता है। त्रिपुररहस्य के भण्डासुर का आख्यान इसी तान्त्रिक अनुष्ठान का प्रतिफल प्रमाणित करता है। 'त्रिपुररहस्य' तन्त्र-साहित्य का एक विशाल सागर है और इनकी विभिन्न विद्याओं की प्रतीक शक्तियाँ उस सागर की अनगिनत तरंगें हैं। इसमें पूजा-पद्धति भी है और यौगिक प्रक्रियाएँ भी; जप और पाठ भी हैं और उग्र तप भी है। मातृका, शब्द, ध्वनि, स्वर, वर्ण, बिन्दु एवं नादादि से नियमबद्ध मन्त्र भी हैं और मन्त्रविहीन आभिचारिक क्रियाएँ भी हैं। इसमें विभिन्न रहस्यों से भरी अनेक यन्त्रावलियाँ भी हैं और विस्मयावह अनेक सिद्ध शक्तियाँ भी हैं। इसमें एक ओर तपोबल का चमत्कार है, तो दूसरी ओर आत्मनिष्ठ धारणा और प्रायोगिक क्रियाएँ भी बतलायी गई हैं। यह ग्रन्थ एक आत्मकेन्द्रित शक्ति का प्रतीक है।

इस त्रिपुररहस्य को 'हारितायन संहिता' भी कहा जाता है। क्योंकि परशुराम के शिष्य सुमेधा का ही दूसरा नाम हारितायन भी है। ग्रन्थारम्भ में परशुराम का उल्लेख हुआ है। मलय पर्वत के तपोवन में परशुराम निवास कर रहे हैं। वहाँ एक दिन जब वे शान्त मुद्रा में आत्मचिन्तन में लीन थे, उस समय उनके प्रिय शिष्य सुमेधा बड़े प्रणत भाव से उनके पास उपस्थित हुए। परशुराम का संकेत पाकर शिष्य सुमेधा ने शाश्वतिक श्रेय को लक्ष्य बनाकर उनसे कुछ प्रश्न किया—

प्रपच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
राम दीनदयासिन्धो भक्तानुग्रहविग्रह॥ (त्रि.मा. १।२३)

× × ×

परं श्रेयोवहं पुण्यं सर्वोत्तमतमं भवेत्।
यस्मादभ्यधिकं नैव किञ्चिच्छ्रेयः सुसाधनम्॥ (वहीं, श्लोक २५)

सुमेधा का यह प्रश्न सुनकर परशुरामजी कुछ क्षण चुप लगा गये। गुरु दत्तात्रेय द्वारा पूर्व कथित कथा का स्मरण किया और फिर कहना प्रारम्भ किया। गुरु-शिष्य के बीच प्रश्नोत्तरात्मक जो बातें हुईं,

वही तथ्य 'त्रिपुरारहस्य-माहात्म्यखण्ड' नामक ग्रन्थ में संकलित हुआ। सुमेधा ने ही इसे ग्रन्थ का रूप दिया, अतः यह 'हारितायन संहिता' के नाम से ख्यात हुआ।

दूसरे अध्याय में वर्णित कथा के अनुसार इस 'त्रिपुरारहस्य' के प्रथम प्रवक्ता देवाधिदेव महादेव ही है। महादेव ने विष्णु से और विष्णु ने ब्रह्मा से यह कथा कही। मर्त्यलोक में महाविष्णु के स्वरूप गुरुदत्तात्रेय ने अपने शिष्य परशुराम से कहा और परशुराम ने अपने शिष्य ऋषि सुमेधा से कहा। सुमेधा ने अपने गुरु के आदर्श से इस प्रश्नोत्तर रूपी कथा को ग्रन्थ का रूप देने के लिए 'हालास्य' नगर की ओर प्रस्थान किया। यहाँ उन्होंने अम्बा मीनाक्षी के चरणों की सेवा में अपने आपको समर्पित कर दिया।

निबध्य ग्रन्थरूपेण सच्छिष्येषु नियोजय।
एवमाज्ञा मम गुरोः तत्सत्यं स्यान्न चान्यथा।। (त्रि. मा. श्लोक ९४)

× × ×

जगाम हालास्यपुरे यत्र श्रीमीनलोचना।
परम्बा राजते साक्षात्सुन्दरेश्वरवल्लभा।। (वहीं, श्लोक ९६)

सुमेधा ने वहाँ ही उस ग्रन्थ-रचना का उपक्रम किया। ब्रह्मा से यह वृत्तान्त सुनकर उत्सुकतावश देवर्षि नारद सुमेधा से मिलने हालास्य नगर पहुँचे। नारद की अभ्यर्थना कर सुमेधा ने उनसे कहा—हे देवर्षे! गुरु ने मुझे इस सन्दर्भ में जो कुछ कहा, उन्हें यहाँ आते-आते अपनी मन्द बुद्धि के कारण भूल गया। बड़ी आत्मपीड़ा के साथ उन्होंने नारद से यह कहा। दयालु नारद मुनि ने यह सुनकर वहाँ ही ब्रह्माजी का ध्यान किया। ध्यानाकृष्ट ब्रह्माजी उसी क्षण वहाँ उपस्थित हुए। नारद ने ब्रह्मा से सुमेधा के पूर्वजन्म का वृत्तान्त जानना चाहा। नारद का अभिप्राय समझ कर ब्रह्माजी ने कहना शुरू किया। हे नारद! पहले सुमन्तु नाम का एक ब्राह्मण सरस्वती नदी के किनारे रहता था। उसके पुत्र का नाम अलर्क था।

पुराऽयं ब्राह्मणः कश्चिदलर्क इति विश्रुतः।
सुमन्तुतनयः प्रत्यग्वाहिनी या सरस्वती।। (२।५९)

अलर्क का पिता एक निष्ठावान् ब्राह्मण था। वह भगवती दुर्गा का परम भक्त था। सतत उपासना-निरत वह ब्राह्मण किसी वस्तु की आवश्यकता अनुभव करने पर अपनी पत्नी को 'अयि' कहकर बुलाता था। पाँच साल का छोटा बच्चा पिता का अनुकरण करते हुए अपनी माँ को 'अयि' कहकर बुलाता था। किन्तु स्पष्ट उच्चारण के अभाव में 'अयि' की जगह 'ऐ ऐ' कहकर बुलाता था। यह 'ऐ' बिन्दु रहित भगवती के बीजमन्त्र 'ऐं' का ही विकृत रूप था। एक बार यह बालक बीमार हुआ। अपनी माँ को 'ऐ ऐ' कहकर बुलाते समय ही उसने अपने प्राण त्याग दिये।

बालभावात् आह्वयति ऐ ऐ इति मुहुर्मुहुः।। (त्रि. मा. २।६३)

परमकारुणिका कुमारी ललिताम्बा उसका इस तरह अज्ञानतापूर्वक भी जप करने से परम प्रसन्न हुई। जप की महिमा और भगवती की कृपा से वह सर्वज्ञानसम्पन्न हो गया। किन्तु विकृत मन्त्रोच्चार के दोष से उसने अधिकृत सारे ज्ञान की धारणा शक्ति ही खो दी। किन्तु परमकारुणिका बालाम्बा ने उसकी दयनीय स्थिति पर तरस खाकर उससे कहा—जा, तेरी विस्मृत धारणाशक्ति तुम्हें फिर स्मृत होगी और तुम्हीं त्रिपुरारहस्य ग्रन्थ का निर्माण करोगे। भगवती के वरदान के प्रभाव से सुमेधा ने छत्तीस दिनों में प्रतिदिन चार अध्याय लिखने के क्रम से सम्पूर्ण त्रिपुरारहस्य ग्रन्थ का निर्माण कर डाला।

षट्त्रिंशद्दिवसैरेतत्कर्त्तव्यं भवता भवेत्। (त्रि. मा. २।८२)

× × ×

अध्यायानां चतुष्कं स्यात् प्रत्यहं कुर्वतस्तव। (वहीं, श्लोक ८३)

सम्पूर्ण 'त्रिपुरारहस्य' तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम अस्सी अध्यायों में माहात्म्य खण्ड है। द्वितीय बाईस अध्यायों में ज्ञानखण्ड और तृतीय बयालीस अध्यायों का चर्याखण्ड है। ग्रन्थ के अन्तः साक्ष्य के आधार पर 'त्रिपुरारहस्य' के ग्रन्थ रूप में निर्माण का इतना ही इतिवृत्त उपलब्ध है।

प्रस्तुत 'त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड' का प्रारम्भ 'ॐ नमः' से लेकर 'त्रिपुरैव ह्रीं' पर जाकर समाप्त हो गया है। भगवती का बीजमन्त्र 'ॐ ह्रीं' अर्थात् शिव-शक्ति प्रणवों के बीच तदात्मक ही इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है। माहात्म्य खण्ड में कुल ६,६८७ श्लोक हैं, जिनका पूर्ण योग पूर्णांक नवनाथ का द्योतक है। शिव-शक्ति के बीजमन्त्र में सम्पुटित यह माहात्म्यखण्ड इस तथ्य का हमें संकेत देता है कि इस ग्रन्थ में माया और मायी के आध्यात्मिक प्रयोग के अतिरिक्त शिव-शक्ति का यह रूपक इस बात का भी द्योतक है कि शक्तियुक्त शिव ही सृष्टि का सामर्थ्य रखते हैं, अन्यथा शक्तिनिरपेक्ष होकर तो वह तनिक स्पन्दित भी नहीं हो सकता है। इस महाशक्ति की महिमा-वर्णन प्रसङ्ग में देवी भागवत का यह मन्त्र भी द्रष्टव्य है—

ऐश्वर्यवचनः शश्वच्छक्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥ (दे.भा. ९।२।१०)

माहात्म्य, ज्ञान और चर्या नामक तीन खण्डों में सानुवाद माहात्म्य खण्ड आपके सामने प्रस्तुत है और ज्ञानखण्ड की हिन्दी व्याख्या मैंने पहले ही लिखी है जो चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित है। परमपूज्य विद्वत्कुलभूषण मान्य श्री नारायणदत्त शास्त्री ने अपने उपोद्घात में इस सन्दर्भ में कुछ विशेष सूचना दी है। तदनुसार काशीराजकीय पाठशालाध्यक्ष पूज्यपाद गोपीनाथ कविराज महोदय ने ज्ञानखण्ड को 'प्रिंसेज ऑफ वेल्स सरस्वती भवन सीरीज' नामक पुस्तकमाला में परिष्कृत कर प्रकाशित किया है। जहाँ तक चर्याखण्ड की बात है, इसके लिए मैंने अपने स्तर से पाने का काफी प्रयास किया है, चौखम्बा सुरभारती के प्रकाशक महोदय भी इस दिशा में पर्याप्त प्रयत्नशील हैं, उन्हें भी अब तक इसकी टेर नहीं मिली है। आज तक यह चर्याखण्ड चर्चा का ही विषय बना है। लगता है यह खण्ड श्रीविद्योपासक किसी साधक के घर में उनकी कुल-परम्परा से प्राप्त चालीस या बयालीस अध्याय तक सुरक्षित है।

'त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड' का संक्षिप्त रूप ब्रह्माण्डपुराण के उत्तर खण्ड में 'श्रीललितोपाख्यानम्' के रूप में उपलब्ध होता है। इसी तरह लक्ष्मीतन्त्र में भी त्रिपुरामाहात्म्य संक्षिप्त रूप से निरूपित है। त्रिपुरा की मुख कथा सर्वत्र समान रूप से ही वर्णित है। वर्णन में थोड़ा-बहुत प्रक्रियागत भेद अवश्य परिलक्षित हैं। इतना ही नहीं, श्रीविद्या के अङ्ग-प्रत्यङ्ग उपाङ्ग विद्या के निरूपण में थोड़ा-बहुत अन्तर भी दीख पड़ता है। ये अन्तर तो सम्प्रदायगत भेद के कारण ही है। गुरु-परम्परा से प्राप्त सम्प्रदायजन्य भेद में ही ये भेद सुलभता से प्राप्त होते हैं। श्रीविद्या की उपासना के प्रकार तो बहुत सारे ग्रन्थों में बहुधा विभिन्न रूपों में उपलब्ध होते हैं। उन सम्प्रदायगत भेदों का वर्णन यहाँ उचित नहीं है, किन्तु यहाँ भी श्रीविद्योपासना का भेद-प्रभेद सम्प्रदायमूलक ही प्रतीत होता है। इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, मनु आदि के द्वारा उपासिता श्रीविद्या अनेक तरह की उपलब्ध होती है। पर इनके बावजूद कामराजोपासिता श्रीविद्या ही इन साम्प्रदायिकों में विशेष रूप से प्रचलित है। कामराजोपासिता श्रीविद्या ही सर्वप्रधानतया सर्वत्र जागरूक स्थिति में है। श्रीलोपामुद्रा-उपासिता लोपामुद्रा विद्या अपराख्यादि विद्या भी उन साम्प्रदायिकों में प्रबल रूप से सर्वत्र जगी है। त्रिपुरोपनिषद् में सविशेष इसके निरूपण से इस विद्या का वैदिकत्व ही सिद्ध होता है। इस पर यदि विचार किया जाय तो इस विद्या का स्पष्ट रूप में वैदिकत्व प्रमाणित हो जाता है। त्रिपुरोपनिषद् के व्याख्याता मान्य श्रीभास्करराय सूरि ने एक श्लोक का उद्धरण प्रस्तुत किया है—

श्रीशाखाय कल्पसूत्रविधिभिः कर्माणि ये कुर्वते
येषां सकल एव मन्त्रनिचयः कौषीतकं ब्राह्मणम्।
तैरारण्यकमन्त्रमध्यविततिर्या पठ्यते बह्वृचैः
ऋग्भिः षोडशभिर्महोपनिषदं व्याचक्ष्महे तां वयम्॥ (त्रिपुरोपनिषद्भाष्ये)

मानव की सम्पूर्ण आकांक्षाओं को पूर्ण करने की क्षमता होने के कारण इसकी गणना तन्त्रशास्त्र की मुख्य विद्याओं में है। इन मुख्य विद्याओं में कामोपासिता श्रीविद्या की ओर ही इसका संकेत है। इसे दूरद्रष्टा ऋषि सुमेधा ने उत्पत्ति, स्थिति और लयकारी महाशक्ति के स्वरूप का प्रायोगिक रूप प्रदर्शित किया है। त्रिपुरारहस्य उसे प्रमाणित करता है। इसके योग बहुत थोड़े परिश्रम से शीघ्र ही आश्चर्यजनक मनोवांछित फल देते हैं। इसके विधिवत् प्रयोग से असम्भव को भी सम्भव में बदलते दिखलाया गया है। भण्डासुर का रूप-परिवर्तन अभिनव सृष्टि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। त्रिपुरा का साधक अपनी इच्छा से साधारण व्यक्ति से राजा तक के भाग्यों में उलटफेर कर सकते हैं। शत्रुनिग्रह एवं विजय-प्राप्ति के लिए तो श्रीविद्या के प्रयोगों की तुलना नहीं है।

यह श्रीविद्या इतनी प्रशस्त है कि सांख्यायन आरण्यक के अन्तर्गत 'त्र्यय्यान्तरगतत्व' का विवेचन भी तो इसी श्रीविद्या की ओर संकेत करता है। श्रीविद्या की उपासना का भेद-प्रतिपादक श्रीपरशुराम के कल्पसूत्र को प्रामाणिक सम्प्रदायविद् त्रिपुरोपनिषद् का ही बृहत्तर रूप मानते हैं। इन सारे प्रमाणों से श्रीविद्या की महिमा और श्रीविद्योपासना का वेदमूलकत्व सिद्ध करता है। यही कारण है कि जगद्गुरु, वेदमार्गप्रवर्तक श्रीशङ्कराचार्य ने बद्धपरिकर होकर पाखण्डियों एवं नास्तिकों के मत का खण्डन करते हुए सौन्दर्यलहरी स्तोत्र के व्याज से श्रीविद्या की महिमा का ही स्तवन किया है। इस तथ्य का प्रमाण त्रिंशती स्तोत्र का भाष्य तथा प्रपञ्चसाराख्य तन्त्र का निर्माण ही है। सूत्र रूप से त्रिपुरोपनिषद् वेद में ही निर्दिष्ट है, जिसका उल्लेख इस माहात्म्य खण्ड में लगातार मिलता है। श्रीविद्या विषय, दक्षिणामूर्तिसंहिता, ज्ञानार्णव, तन्त्रराज प्रभृति ग्रन्थों में श्रीविद्या का रहस्य उपयुक्त एवं प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। श्रीशङ्कराचार्यपीठाधिष्ठित श्रीमद् विद्यारण्य स्वामी ने अपने विद्यार्णव नामक ग्रन्थ में तथा अतीतकालीन अनेक तन्त्र-साधकों ने अपने-अपने ग्रन्थों में पुष्ट प्रमाण के साथ तथा मान्य श्रीभास्करराय सूरि ने अपने सौभाग्यभास्कर, सेतुबन्ध, वरिवस्यारहस्यादि में श्रीविद्या की आराधना के सन्दर्भ में बहुत कुछ लिखा है। इसी तरह प्राचीनों में श्रीगौड़पादाचार्य के श्रीविद्यासूत्राणि, महर्षि अगम्त्य के शक्तिसूत्राणि, दुर्वासा की त्रिपुरामहिमादिस्तोत्र इस विद्या का वैदिकत्व एवं वैदिकोपासकत्व प्रमाणित करते हैं। आकाशभैरवकल्प एवं श्रीपरात्रिंशिका ने भी प्रकारान्तर से इसी श्रीविद्योपासना की महिमा को स्वीकार किया है।

इसी तरह प्रमाणपुरःसर त्रिपुरारहस्य का नामोल्लेख अन्य प्राचीन ग्रन्थों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है, किन्तु मुनि संवर्त से सम्बद्ध कथा इस दिशा की ओर संकेत तो अवश्य ही करती है। शाङ्करभाष्य में विशेषानुग्रह सूत्र की व्याख्या क्रम में जप एवं उपासनादि से भी श्रीविद्या के विशेषानुग्रह का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इसके पूर्वसूत्र 'अपि च स्मर्यते' की व्याख्या में श्रीशङ्कराचार्य ने कहा है—

संवर्तप्रभृतीनां चर्यादियोगादनपेक्षताश्चर्मकर्माणामपि महायोगित्वं स्मर्यत इतिहासे।'

इस ग्रन्थ में इस कथा के उल्लेख से भी यह प्रमाणित हो जाता है कि शङ्कराचार्य ने महर्षि संवर्त का उल्लेख कर त्रिपुरारहस्य के स्वरूप को इसी रूप में प्रकारान्तर से स्वीकार किया है। ऊपर लिखित तथ्यों और उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि यह त्रिपुरारहस्य शङ्कराचार्य से पूर्व था एवं ऋग्वेदमूलक है। इसका अन्तःसाक्ष्य भी प्रमाण है। त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड का ५३वाँ अध्याय द्रष्टव्य है—

श्रीसूक्तं षोडशर्चं तदादिवेदसमुद्भवम्।
पुरा श्रिया सुदृष्टं तद्वेदाऽब्धेः सम्यगुद्धृतम्॥ (त्रि.र. ५३।४०)

इस माहात्म्य खण्ड की रचनाशैली भी विचित्र है। अन्य पुराणों की तरह इसकी रचना-शैली शिथिल नहीं है। प्रगाढ़ बन्ध है। लम्बे सामासिक पद के साथ प्रवाह काव्यमय है। यथा—

कौसुम्भरत्नवसनसमाच्छन्ननितम्बिनी ।
ऊर्ध्वाङ्गधारणामात्रनिमित्तप्राप्तमध्यमा ॥ (त्रि.र. ५१।५७)

इस ग्रन्थ के सभी स्तोत्र प्रगाढ़बन्धमय है। स्तोत्र की पदावली सर्वत्र श्लिष्ट है तो स्तोत्र-साहित्य की त्वचा जैसे लगती है। स्तोत्रों में अभिव्यक्ति का उत्स प्रकृति के सम्पूर्ण ऐश्वर्य साधना एवं समर्पण की निःशेष अनुभूतियों के भीतर है; यही कारण है कि इन स्तोत्रों में जो नवीनता और विविधता का आकर्षण है वह चराचरात्मक इस जगत् के विराट् क्षेत्र में व्यापक महाशक्ति की अनुभूति से प्राप्त समर्पण में ही है—

'मुखसौन्दर्यसरसीनीलाम्बुजनिभेक्षणा।
कन्दर्पकोटिजननमन्त्राकूतसमीक्षणा॥ (त्रि.मा. ५१।४४)

ये शक्ति-स्तुतियाँ सम्पूर्ण माहात्म्य खण्ड के स्तोत्रों में अमूर्त्त भावनाओं को मूर्त्त और मूर्त्त को मार्मिक बनाने का उपक्रम बन गई हैं। महाशक्ति और मानव की समर्पित साधना में तीव्र रागात्मक सम्बन्ध एवं साहचर्य उन स्तोत्रों की सार्थकता है। इनकी उपमाएँ अलङ्कारशास्त्र के मेरुदण्ड पर टिकी हैं, शास्त्रों के मनन-चिन्तन से प्रसूत हुई हैं। ये मर्मस्पृक् तो बिलकुल ही नहीं है, पर अनेक जगह उनकी भोंडी पुनरावृत्ति अवश्य है। कहीं-कहीं भगवती के शारीरिक सौन्दर्य का ऐसा मानवीकृत चित्रण है कि उसे पढ़कर मन झल्ला उठता है। अधरों को चोट पहुँचाते श्रमबिन्दु पलकों से ढुलक कर कुचकलशों को सींचते त्रिवलियों में समा जाते हैं, जो नारी-सौन्दर्य की पर-प्रकृष्टता है। पौराणिक दृष्टि से इसका परिशीलन हमें इस निर्णय तक पहुँचाता है कि तन्त्रशास्त्र की सकाम साधना और सौन्दर्य की परिकल्पना से इस माहात्म्य खण्ड पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मुझे लगता है कि इस शृंगार-भक्ति की ललित सृष्टि का यही आधार है। अप्रस्तुत विधान का सुमेधा के पास अक्षय भण्डार है। कल्पना के तो ये उत्कृष्ट कलाकार हैं ही। यों इनकी कल्पनाएँ उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, अपह्नुति जैसे अत्यधिक चमत्कारोत्पादक अलङ्कारों का रूप लेकर सम्पूर्ण कथा के अवकाश को घेर लेती है। साथ ही यत्र-तत्र उपमा, रूपक और श्लेष का समावेश भी बेजोड़ है।

तन्त्रशास्त्र के बारे में आज बहुत-सी भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं। खाशकर नारी और कुमारी के सन्दर्भ में, रतिक्रिया में रत इनके औपनिबन्धिक क्रियाओं के सम्बन्ध में। किन्तु इनके वास्तविक मर्म को समझने के लिए मूल आद्याशक्ति नारी को भारतीय दर्शन के तान्त्रिक परिप्रेक्ष्य में समझना होगा। संसार के सृजन हेतु जब ब्रह्मा ने एक से अनेक होने का सङ्कल्प लिया तो पुरुष और प्रकृति का जन्म हुआ। यही प्रकृति संसार की गति ऊर्जा के रूप में नारी कहलायी। त्रिपुरारहस्य अध्याय पचपन के अनुसार—

'न क्वचिल्लोकवितते नारीनरसमाश्रयम्।
ऋते सम्भवते वल्ली तरुहीना यथा भुवि'॥ (श्लोक ५६)

यही कारण है कि इस रूप की प्रशंसा करती पराम्बा ने स्वयं कहा—

योषिद्रूपं सुन्दरञ्च तस्माल्लोके जनैः सदा।
प्रेक्ष्यते योषितां रूपं सुखसाधनभावतः॥ (वहीं श्लोक ४४)

यही नारी का आकर्षण कामशक्ति है जिसे तन्त्रशास्त्र में आदिशक्ति कहा गया है। यह परम्परागत पुरुषार्थचतुष्टय में एक है। तन्त्रशास्त्र के अनुसार नारी इसी आदिशक्ति का साकार प्रतिरूप है। यही कारण है—षट्चक्रभेदन और तन्त्रसाधना में स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य है। क्योंकि यह साधना स्थूल शरीर द्वारा न होकर सूक्ष्म शरीर द्वारा ही सम्भव है। नारी जितना पुरुष के संसर्ग में आती है वह उतनी ही चुम्बकीय शक्ति का क्षरण करती जाती है। इसी चुम्बकीय शक्ति को आद्याशक्ति कहा गया है। अतः तान्त्रिक दृष्टि से नारी यहाँ भोग नहीं योग का साधन है। इसी नारी की चुम्बकीय शक्ति को आत्मशक्ति में परिवर्तित किया जाता है। यह शक्ति दो केन्द्रों में विलीन होती है। प्रथमतः मूलाधार केन्द्र में जहाँ से यह ऊर्जा जननेन्द्रिय के मार्ग से नीचे की ओर प्रवाहित होकर प्रकृति में विलीन हो जाती है और यही ऊर्जा भौंहों के मध्य स्थित आज्ञाचक्र से ऊपर की ओर प्रवाहित होती है तथा सहस्रार स्थित ब्रह्म में विलीन हो जाती

है। सम्भवतः उसी रहस्य की ओर त्रिपुरारहस्य की महायुद्ध से पूर्व महाकाली का रत्यातुर हो जाना और महाकाल को नीचे दबोच कर विपरीत रतिक्रिया करना संकेतित करता है—

समेत्य त्रिपुरां देवीं कामुकीं मैथुनेच्छया।
देवि मे दिश भर्त्तारमनुरूपं सुखावहम्॥
नो चेत् कामपराधीना दैत्यान् हन्तुं न पारये। (४४।४९)

× × ×

अत्यन्तं कामुकी तेन महाकालेन क्रीडितुम्।
समारेभे ततः सोऽपि पपौ भूयः सुरां बहु॥ (श्लोक ५४)

× × ×

कृत्वाऽधस्तं महाकालं मदव्याकुलितं द्रुतम्।
विपरीतरतिश्चक्रेऽवितृप्ता कामचारतः॥ (श्लोक ५६)

इसी तरह कुमारी कन्या का तान्त्रिक प्रयोग इसकी शक्ति की सहायता से दैहिक सुख प्राप्त करने के लिए नहीं, अपितु भैरवी रूप में प्रतिष्ठित कर ब्रह्म से सायुज्य प्राप्त करने हेतु है। नारी के इस कुमारी रूप की महत्ता उसी आद्याशक्ति में प्रस्फुटित है। भगवती के इस कुमारी रूप में उसकी अनन्त शक्ति छिपी है। इस शक्ति का सहारा लेकर मनुष्य कुछ भी प्राप्त कर सकता है। त्रिपुरारहस्य की आठ वर्षीया बालाम्बा का जौहर इसी शक्ति का प्रख्यापक है—

बाला कुमारिका नित्यं युद्धगोष्ठी समुत्सुका। (६२।७२)

× × ×

उदयन्तं भास्करमिव हिमसंहतिवर्षवत्॥ (वहीं श्लोक ३१)

× × ×

ज्ञात्वा विचारयन्नूनमेषा बालाऽष्टहायना।
निःसीमबलवीर्याढ्या युध्यत्यतिविचित्रितम्॥ (६३।६१)

इन विवृतियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड अपने आप में अनेक रहस्यों एवं अनेक तान्त्रिक प्रयोगों को छिपाये हैं।

तन्त्रशास्त्र में तन्त्रराज श्रीयन्त्र की महिमा अपरिमेय है। इनका स्वरूप और इनकी विवृति का विश्लेषण भी त्रिपुरारहस्य में हुआ है। सृष्टिरचना में नर-नारी दोनों समानधर्मी हैं। तान्त्रिक भाषा में ये दोनों अष्टकमलयुक्त एवं पूर्ण हैं। जबकि पुरुष केवल सप्तकमलमय है, जो अपूर्ण है। श्रीयन्त्र की रचना में रक्तवर्णी अष्टकमल विद्यमान है जो नारी की या शक्ति की सृजनता का प्रतीक है। इसी श्रीयन्त्र में अष्टकमल के पश्चात् षोडशदलीय कमलसृष्टि की आद्याशक्ति के सृष्टि रूप में प्रस्फुटन का प्रतीक है। चन्द्रमा सोलह कलाओं से पूर्णता को प्राप्त करता है। १५ कलाएँ, अमृतकला सीनीवाली तथा २७ नक्षत्रमय चन्द्रमण्डल भी केन्द्र में २८वीं चन्द्रशक्ति से परिपूर्ण होता है। इसी के अनुरूप षोडशी देवी का मन्त्र १६ अक्षरों का है तथा श्रीयन्त्र में १६ कमलदल होते हैं। इस तरह इस श्रीयन्त्र का विवरण त्रिपुरारहस्य में जगह-जगह प्रस्फुट हुआ है। त्रिपुरारहस्य की अपनी शैली है, स्पष्ट शृङ्गारिक शैली में इसे शक्तिसेना के वर्णन क्रम में किया गया है। फिर भी सुमेधा का विरागी चित्त त्रिपुरारहस्य के शृंगार की निबिड़ अनुभूति के लिए समुचित नहीं है। कामना एवं लालसा के लास्य का विरस परिणाम जान लेने पर फिर उस पर उत्कट आसक्ति सम्भव नहीं है। ऐसे ब्रह्मज्ञानी की चित्तवृत्ति स्त्री-सौन्दर्य के वर्णन में रम ही नहीं सकती है। यही कारण है कि इनका शृंगार-वर्णन बड़ा ही स्थूल एवं उथला लगता है। यह वर्णन महाशक्ति, काली या महाकाल का हो अथवा काम की स्तुति हो। व्याख्या लिखते समय कभी-कभी मेरा मन झनझना उठता था और

इसका अनुवाद भी कुछ इसी तरह अनपेक्षित ढंग से हुआ है और यही यथार्थ एवं कल्पना का संयोग, ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय का मिश्रभाव त्रिपुरारहस्य की केन्द्रीय विषयवस्तु है। महाशक्ति का भावबोध और ऋषि सुमेधा की ऊर्जस्वित कल्पना का सौन्दर्य और माधुर्य, शिवत्व का राग-विराग ग्रन्थ के अनेक स्तरों को रञ्जित करता है। यही कारण है ग्रन्थकर्त्ता की सूक्ष्म एवं तीव्र अनुभूति से साक्षात्कृत सत्य कहीं भी अपनी सत्ता नहीं खोया है। इस रस-रागहीन महाशक्ति की महिमा का बोध ग्रन्थकार का हठयोग याद कराता है। आसुरी प्रवृत्तियों के बीच दैवी शक्तिसाधना जीवन को सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध कराना ही इस ग्रन्थ के क्षितिज का काव्यात्मक स्वरूप है। इतना तो स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ की भाषा भी अपने ढंग की है। लुट्लकार का सर्वत्र प्रयोग, अडागम का अभाव तथा यत्र-तत्र आर्षप्रयोग इसका वेदमूलकत्व ही तो प्रमाणित करता है।

त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड का रचनाकाल अनिश्चित है। इस दिशा में अब तक कोई ठोस प्रयास नही किया गया है। इस ग्रन्थ में नाथ-सम्प्रदाय एवं नवनाथों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यथा—

त्रिपुराम्बापादसेवामन्तरा नैव लभ्यते।
साऽपि श्रीगुरुनाथस्य कृपाद्वारैव नान्यथा॥ (त्रि.मा. ४।६६)

× × ×

तेन स्युर्नवनाथा वै चर्यानाथसमुद्भवाः।
कालस्याऽवच्छेदकास्ते तुरीयपदसंश्रयाः॥ (वहीं, ५८।२६)

× × ×

इति मे नवनाथास्तु ओघानामधिनायकाः। (वहीं, श्लोक २८)

इन अन्तः साक्ष्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि ऋषि सुमेधा नाथसम्प्रदायी थे और नाथ-सम्प्रदाय का मूल बौद्धों की वज्रयान शाखा है। इनके सिद्धों की संख्या ८४ थीं। इनमें गोरक्षपा (गोरखनाथ) को भी गिन लिया गया है। पर इतिहास इसका साक्षी है, उन्होंने सिद्धों से अपना मार्ग अलग कर लिया था। योगियों की इस हिन्दू शाखा ने वज्रयानियों के अश्लील और बीभत्स विधानों से अपने को अलग रखा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– यद्यपि शिव-शक्ति की भावना के कारण कुछ शृङ्गारमयी वाणी भी नाथपन्थ के ग्रन्थ—'शक्तिसङ्गमतन्त्र' में मिलती है, फिर भी गोरक्ष ने पतञ्जलि के उच्च लक्ष्य, ईश्वर-प्राप्ति एवं जगदम्बा के सान्निध्य को लेकर हठयोग का प्रदर्शन किया है। वज्रयानी सिद्धों की लीलाभूमि भारत का पूर्वी भाग था और नाथपन्थियों का प्रचार देश के पश्चिमी भाग में हुआ। विन्ध्य-वर्णन एवं हालास्य नगर का त्रिपुरारहस्य में उल्लेख ही इसका प्रमाण है। राहुल सांकृत्यायन ने मीननाथ या मीनपा को पालवंशी राजा देवपाल के समय में अर्थात् विक्रम संवत् ९०० के आस-पास ही माना है। इन्होंने गोरखनाथ का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी माना है। ब्रह्मानन्द ने मीनपा और मत्स्येन्द्रनाथ को अलग-अलग माना है (सरस्वती भवन स्टडीज, वाराणसी)। इन साक्ष्यों के आधार पर गोरखनाथ का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी गले के नीचे नहीं उतरती। महाराष्ट्र के सन्त ज्ञानदेव ने, जो अलाउद्दीन के समय (सं. १३५८) में थे, अपने को गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा में कहा है। इस परम्परा के अनुसार नौ नाथ इस तरह गिनाये गये हैं—आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, गौरीनाथ, निवृत्तिनाथ और ज्ञानेश्वर। महाराष्ट्र परम्परा के अनुसार गोरखनाथ का समय महाराज पृथ्वीराज के पीछे आता है। नाथ-परम्परा के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु सिद्ध जलन्धर आदिगुरु के नाम से जाने जाते हैं। इस आदिनाथ के नाम का उल्लेख त्रिपुरारहस्य में कई बार हुआ है। अब भी लोग नौ नाथ और चौरासी सिद्धों का नामोल्लेख करते हैं। 'गोरक्षसिद्धान्त-संग्रह' के अनुसार नौ नाथों के नाम इस प्रकार हैं—

नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चर्पट, जलन्धर और मलयार्जुन।

त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड के अनुसार नौ नाथों के नाम कुछ भिन्न हैं। ये निम्नलिखित हैं—प्रकाश, विमर्श, आनन्द, ज्ञान, सत्य, पूर्ण, स्वभाव, प्रतिभ और सुभग। यथा—

प्रकाशोऽथ विमर्शाख्योऽथानन्दो ज्ञानसंज्ञकः।
सत्यः पूर्णः स्वभावाख्यः प्रतिभः सुभगाभिधः॥ (त्रि.र. ५८।२८)

नाथ-सम्प्रदाय में नारी का प्रवेश था, नारी साधना का एक अङ्ग थी। इस सम्प्रदाय में जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत-से लोग आये जो शास्त्रज्ञान-सम्पन्न नहीं थे, जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था—

"The system of mystic culture introduced by Gorakh Nath does not seem to have spread widely through the educated classes." —Saraswati Bhavan Studies.

पर त्रिपुरारहस्य को इसका अपवाद तो नहीं ही कहा जा सकता है। इसके अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यह शक्तिग्रन्थ होते हुए भी विशेष रूप से नाथ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध है। इस सम्प्रदाय का प्रखर अस्तित्व विक्रम की तेरहवीं शती में सिद्ध होता है। अतः हमारी दृष्टि में इस त्रिपुरारहस्य का रचनाकाल विक्रम की तेरहवीं से पन्द्रहवीं शती के बीच सिद्ध होता है।

अनुवाद करते समय ग्रन्थ में जहाँ कहीं भी साम्प्रदायिक एवं नाथों के तकनीक शब्दों का प्रयोग हुआ है या आर्ष प्रयोग सामने आया है उसे भाषान्तर किये बिना ही उन शब्दों को उन्हीं के रूपों में रख देने का प्रयास मैंने किया है, भले ही इससे अनुवाद का मूल स्वरूप जहाँ कहीं भोंडा हुआ है, पर जान-बूझ कर ही, अनजाने नहीं। ऐसे व्याख्या-सापेक्ष शब्दों को उसी रूप में छोड़ देना ही मुझे श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। इस दोष के लिए मैं विद्वज्जनों से शतशः क्षमाप्रार्थी हूँ। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के अध्यक्ष सबन्धु एवं सपरिवार नवनीतदास गुप्त को मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ, जो ऐसे दुर्लभ ग्रन्थों को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने के लिए बद्धपरिकर हैं। त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य और ज्ञान खण्ड का हिन्दी रूपान्तर यथामति मैंने किया है। अगर इसका अन्तिम चर्या खण्ड भी उपलब्ध हो जाय तो उसका भी हिन्दी रूपान्तर कर मुझे बड़ा आत्मसन्तोष होगा।

त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड के अनुवाद कार्य को शीघ्र समाप्त करने की दिशा में मैंने अपने कई सुयोग्य पुत्रों का सहारा लिया है। उनमें चि. उमेश कुमार ने इसे लिखने का कार्य सम्भाला है। मैं अपनी अस्वस्थावस्था में भी मूल श्लोक का अनुवाद बोलता जाता था और वे बगल में बैठकर उसे लिपिबद्ध करते जाते थे। ये आद्यन्त शुद्ध विज्ञान के ओजस्वी छात्र रहे हैं। फिर भी पिता के प्रति श्रद्धेय भाव से इन्होंने सहयोग किया। पाण्डुलिपि तैयार हो जाने के बाद जब उसे मैंने देखा तो उसमें कुछ सामान्य पर स्वाभाविक त्रुटियाँ दीख पड़ीं। तब मैंने तृतीय पुत्र चि. अमरेश कुमार की ओर देखा। ये भारतीय स्टेट बैंक रामदीरी शाखा के प्रबन्धक हैं। यद्यपि इन्हें बैंककार्य से क्षणभर का अवकाश नहीं था, फिर भी अपनी साहित्यिक अभिरुचि या पितृकर्म के गौरव से इस संशोधन कार्य को अपने हाथों में लिया। फिर मैंने भी इसे देखा है। फिर भी यदि कुछ त्रुटि रह गई हो तो मैं सुधी समीक्षकों से क्षमाप्रार्थी हूँ।

विद्वच्चरणचञ्चरीकः
जगदीशचन्द्रः

श्रीसरस्वती सदन
प्रोफेसर्स कॉलनी
पो.आ.टी.एस.
बेगूसराय
माघी पूर्णिमा
१९९८ ई.

॥श्रीः॥

त्रिपुरारहस्यम्

(माहात्म्यखण्डम्)

अथ प्रथमोऽध्यायः

ॐ नमः कारणानन्दहृद्वीजाकाशगात्रिणे । यल्लीलालेशलसिता लोकालोकाण्डरेणवः ॥ १ ॥
यदक्षरं परं ब्रह्म जगन्मालामणिप्रभम् । सर्वं सर्वात्मकं सर्वसारं सर्वपदाश्रयम् ॥ २ ॥
यदेवाऽशेषसंसारदलबीजशिवात्मकम् । शिवरूपं शक्तिरूपं ब्रह्मरूपस्वरूपकम् ॥ ३ ॥
त्रिपुरां परमेशानीं महाप्रलयसाक्षिणीम् । दग्धकामोज्जीवनाय सुधासारां नमाम्यहम् ॥ ४ ॥
अस्ति दक्षिणदिग्भागे मलयाद्रिर्महोच्छ्रयः । शृङ्गसङ्गतसंक्रान्तसप्तसप्तिमहापथः ॥ ५ ॥
अनेकशृङ्गलीलात्तमहापुरुषवैभवः । स्वाङ्गव्याप्तिपराक्षिप्तमहामेरुमहीत्वकः ॥ ६ ॥
नानावृक्षाङ्कुरप्रान्तविश्रान्तघनमण्डलः । मृदुप्रवालविलसच्छविक्षिप्तारुणप्रभः ॥ ७ ॥

*** विमला ***

सर्वशक्तिविधात्रीन्न सर्वविघ्नविघातिनीम्।
सर्वस्फूर्त्तिप्रदात्रीश्च त्रिपुरां प्रणमाम्यहम्॥

शाश्वत आनन्दानुभूति के जो निमित्त हैं, जिनका हृदय ही इस ब्रह्माण्ड का बीज है और आकाश शरीर है, जिनके रहस्यपूर्ण कर्म के एक अत्यन्त लघु अंश से इन सारे दृश्य-अदृश्य ब्रह्माण्ड के कण-कण प्रादुर्भूत हैं, उस विराट् परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ॥ १॥ जो अविनाशी परब्रह्म हैं, संसार रूपी माला के जो चमकते मध्य मणि हैं, जो सब कुछ हैं, सबकी आत्मा हैं, जो सर्वोत्कृष्ट हैं, सबकी रक्षा के आधारस्तम्भ हैं उन्हें मेरा प्रणाम है॥ २॥ जो समस्त संसार के मूलभूत कल्याणकारी अंकुर और बीज रूप हैं, शिवरूप हैं, शक्तिरूप हैं, परब्रह्म के रूप में है; ऐसे स्वरूप वाले परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जो महाप्रलय की प्रत्यक्ष साक्षिणी हैं, भस्मीभूत काम को जीवित करने के लिए सर्वोत्कृष्ट अमृतस्वरूपा हैं, ऐसी परमेश्वरी त्रिपुरा को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४॥ दक्षिण दिशा में अत्यन्त ऊँची चोटी वाला मलय नाम का एक विशाल पर्वत है, उसकी उन्नत चोटियों से गुजरने वाले सतहत्तर राजपथ हैं॥ ५॥ इसकी अनेक चोटियाँ श्रीमन्तों के लिए विलासपूर्ण वैभवों से भरी पड़ी हैं। अपने अङ्गों की व्यापकता के कारण लगता है कि यह धरती को अपनी ओर खींचकर उसका आवरण बन गया हो॥ ६॥ अनेक तरह के पेड़ों की कोंपलों और अँखुओं की नोक पर मेघमण्डल विश्राम करते नजर आते हैं। उन कोमल कोपलों और अँखुओं पर प्रभातकालीन सूर्य की सिन्दूरी आभा अलग ही कहर ढहाती है॥ ७॥ भौंरियों के गुंजार देवकन्याओं के मधुर संगीत के प्रतिस्पर्द्धी बने हैं। हर तरह की

अमरीमृदुगीतात्तभृङ्गीरवसमश्रुतिः । श्रीगःधगन्धसंरम्भजितनाक्यङ्गसौरभः ॥ ८ ॥
एलालतापरिमलविलसद्वालमारुतः । अनेकपद्मिनीफुल्लपद्मसंस्थितहंसकः ॥ ९ ॥
प्रावृड्जलदसंस्पर्धिगन्धसिन्धुरमण्डलः । भिन्नसिन्धुरदानोद्यद्वासनाभरितान्तरः ॥ १० ॥
सिंहव्याघ्रवराहौघशोभालसदधित्यकः । विस्तीर्णवनखण्डान्तराश्रमोद्यदुपत्यकः ॥ ११ ॥
तापसान्तेवासिवेदघोषघुङ्घुमितान्तरः । हुतगव्यघृतामोदपरिबृंहितमारुतः ॥ १२ ॥
वायुकम्पितशाखाग्रबद्धचीरपताककः । क्वचित्तु तरुमूलेषु सुखासनसमाश्रयाः ॥ १३ ॥
तपस्विनो ध्यानपराश्चित्रार्पितनरा इव । क्वचिद्ब्रह्मपरं जप्यं जपन्तो बह्मवादिनः ॥ १४ ॥
क्वचिदग्नीन्हूयमाना नित्यनैमित्तिकक्रमैः । क्वचिदध्यापयामासुर्वेदान् विप्रार्भकान्बुधाः ॥ १५ ॥
क्वचित्सभायां शास्त्रेषु मीमांसन्ते परस्परम् । क्वचित्प्रवचनं चक्रुः पुराणानां कथाविदः ॥ १६ ॥
एवंविधेऽद्रिप्रवरे सर्वर्त्तुगुणभूषिते । प्रत्यग्भागे विविक्तायां भुवि कासाररोधसि ॥ १७ ॥
तृणपर्णचयोदञ्चत्कुटीमध्यमहीतले । विष्टरे सुखमासीनः कार्ष्णसाराङ्गसम्भवे ॥ १८ ॥
कर्पूरगौरसर्वाङ्गः स्वच्छवस्त्रोपवीतकः । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कालशोभित्रिपुण्ड्रकः ॥ १९ ॥
कृतनित्यक्रियः शान्तो जामदग्न्यः शुभेक्षणः । यः साक्षाद्देवदेवस्य विष्णोरंशसमुद्भवः ॥ २० ॥
रामः सर्वजनारामः साक्षात्पशुपतेः प्रियः । विष्णोर्दत्तात्रेयमूर्त्तेः सेवालब्धात्मवैभवः ॥ २१ ॥

सुगन्धों को आन्दोलित करने वाली श्रीखण्डचन्दन की सुगन्ध देवताओं के अङ्ग-सौरभ को भी मात दे रही है॥८॥ मन्द मलयानिल सुवासित इलायचीलता के साथ विलास कर रहा है। विकसित कमलों पर बैठे हंस पार्श्ववर्त्ती कमलों के साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं॥९॥ मदस्रावी मदोन्मत्त वनैले हाथियों का झुण्ड आकाश में वर्षा ऋतु के लरजते, गरजते, मँडराते बादलों को अपना प्रतिस्पर्द्धी मानकर उन्हें चीर डालने को समुद्यत हैं॥१०॥ सिंह, बाघ और सूअरों के समूह से मलयाचल की अधित्यका अर्थात् पर्वतशिखर की समतल भूमि भरी है। इस पहाड़ की उपत्यका अर्थात् नीचे की घाटी में फैले जंगल-समूह के भीतर अनेक आश्रम हैं॥११॥ आश्रम के भीतर शिष्यों के साथ तापसगणों के वेदपाठ की सस्वर ध्वनि सुनायी पड़ती है। हवनकुण्ड में गाय के घी की आहुति देने से निकलने वाली सुगन्ध से सुवासित हवा बह रही है॥१२॥ पेड़ों की डालों की फुनगी में तपस्वियों के पहनने के वस्त्रखण्ड लटक रहे हैं। हवा की झोंकों में वे वस्त्रखण्ड पताके की तरह लहरा रहे हैं। कहीं पेड़ों की छाया में सुखासन में तापस बैठे हैं॥१३॥ मानवाकृति के चित्र की तरह निश्चल बैठे कहीं तपस्वी ध्यानस्थ हैं, तो कहीं जप करते हुए ब्रह्मवादी तपस्वी परब्रह्म के जप में लगे हैं॥१४॥ कोई नित्य-नैमित्तिक क्रम में अग्निकुण्ड में आहुति डाल रहे हैं, तो कहीं विद्वान् तपस्वी ब्राह्मणवटुओं को वेद पढा रहे हैं॥१५॥ कहीं सभा में परस्पर लोग शास्त्रार्थ कर रहे थे। कहीं पुराणों की कथा के जानकार व्यक्ति प्रवचन कर रहे थे॥१६॥ सभी ऋतुओं के गुण से विभूषित ऐसे श्रेष्ठ पर्वत के पीछे की ओर अर्थात् पश्चिम दिशा में धरती पर एक पवित्र तालाब था॥१७॥ कहीं धरती पर ऊपर की ओर मुड़ी हुई घास-फूँस की एक कुटिया के बीच काले हिरण के चमड़े के आसन पर सुखपूर्वक एक ऋषि बैठे थे॥१८॥ कपूर की तरह गौरवर्ण, श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुए, सम्पूर्ण शरीर में भस्म लपेटे, माथे में त्रिपुण्ड लगाये कालस्वरूप शिवजी के रूप में शोभा पा रहे थे॥१९॥ साक्षात् देवाधिदेव भगवान् विष्णु के अंश से समुद्भूत शुभ दृष्टि वाले जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुरामजी नित्य क्रिया से निवृत्त होकर शान्त भाव से बैठे थे॥२०॥ परशुरामजी सबकी प्रसन्नता के मूर्त्तरूप थे, साक्षात् शिव के परम प्रिय थे तथा भगवान् विष्णु की ही दत्तात्रेय मूर्ति की सेवा से समस्त आत्म-वैभव प्राप्त करने वाले थे॥२१॥ इनकी इन्द्रियाँ प्रतुष्ट

तं कदाचिन्मुनिवरं प्रसन्नेन्द्रियमानसम् । प्रियशिष्यः सुमेधाह्वः सदा सेवनतत्परः ॥ २२ ॥
पप्रच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः । राम दीनदयासिन्धो भक्तानुग्रहविग्रह ॥ २३ ॥
पुरैकदा मया पृष्टो भवान् भूरिविभावनः । किं दीनमानुषादीनां संसारक्लेशभागिनाम् ॥ २४ ॥
परं श्रेयोवहं पुण्यं सर्वोत्तमतमं भवेत् । यस्मादभ्यधिकं नैव किञ्चिच्छ्रेयः सुसाधनम् ॥ २५ ॥
एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र श्रोतव्यं यदि मे भवेत् । अपि गोप्यं वदन्तीह गुरवो दीनवत्सलाः ॥ २६ ॥
एवं मयापि सम्पृष्टो भवानीषत्स्मिताननः । वदामि कालक्रमतः प्रोक्तवानिति भार्गव ॥ २७ ॥
तस्याद्य षोडशसमा व्यतीयुस्त्रुटिलेशवत् । स एवार्थो मम स्वान्ते परिवर्त्तत्यहर्निशम् ॥ २८ ॥
वद मे तत्सुकृपया मय्यनन्यशरण्यके । इति तद्वचनं श्रुत्वा भार्गवः परिचिन्तयन् ॥ २९ ॥
सस्मार तत्पुरा प्रोक्तं दत्तात्रेयेण विष्णुना । त्रिपुराया रहस्यं यत्साक्षाच्छिवमुखाच्छ्रुतम् ॥ ३० ॥
विशुद्धहृदि संन्यस्तं तत्कालेन शिवाज्ञया । मयि संक्राम्य सर्वस्वं भक्तिज्ञानोपबृंहितम् ॥ ३१ ॥
माहात्म्यवैराग्ययुतमितिहासैर्विचित्रितम् । न देयमेतत्कस्मैचित्तन्त्रसर्वस्वमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
नास्तिकाय शठायापि नाम्ना भागैकलेशतः । भक्तानामपि चान्येषां वक्तव्यं न पुरस्त्वया ॥ ३३ ॥
कारणात्परमेशस्य वाक्यार्थस्यापि गौरवात् । एकस्तव महाभक्तः सुमेधा हारितायनः ॥ ३४ ॥
शिष्यस्तस्मै सुभक्ताय वद कालेन भार्गव । स चैतत्समुपाकर्ण्य ग्रन्थतोऽनुविधास्यति ॥ ३५ ॥
संहितां पावनीं धन्यां तन्त्रसारसमन्वयाम् । ग्रन्थरूपां विधायाथ शिष्यानध्यापयिष्यति ॥ ३६ ॥

थीं, मन पवित्र था। इनका एक प्रिय शिष्य था। उसका नाम सुमेधा था। वह इनकी सेवा में सदैव तत्पर था॥ २२॥ एक दिन भक्ति और श्रद्धा के साथ दोनों हाथ जोड़कर उसने इनसे पूछा — हे राम! आप तो दीन और दु:खियों के लिए दया के सागर हैं, अपने भक्तों के लिए कृपा की मूर्ति हैं॥ २३॥ आप अत्यन्त विवेकी और विचारशील पुरुष हैं। आपसे पहले कभी एक बार मैंने पूछा था — संसारिक काम-काजजन्य पीड़ा पाने वाले मानवादि प्राणियों के लिए इससे मुक्ति का परम कल्याण का मार्ग क्या है? सर्वोत्कृष्ट पुण्य-पथ क्या होता है, श्रेय साधन के लिए जिससे अधिक और कुछ भी न हो?॥ २४-२५॥ हे विप्रेन्द्र! यदि मैं यह सुनने योग्य हूँ तो कृपया ये सब मुझे बतायें। क्योंकि संसार में दीनवत्सल गुरु तो अपने शिष्यों को गोपनीय वस्तु भी बतला देते हैं॥ २६॥ हे भार्गव! मन्दस्मित प्रसन्नमुख देखकर ही मैंने आपसे यही प्रश्न कभी पहले भी पूछा था। उस समय भी आपने यह कहकर टाल दिया था कि कालक्रम से उचित अवसर आने पर इसका रहस्य मैं तुम्हें बतला दूँगा॥ २७॥ उसे आज सोलह साल बीत चुके हैं। यह अवधि मानो पलभर में ही समाप्त हो गई है। वही प्रश्न मेरे हृदय में आज भी दिन-रात चक्कर काट रहा है॥ २८॥ इसलिए मुझ अनन्य शरणागत पर कृपा कर यह रहस्य बतला दें। उसकी यह बात सुनकर परशुरामजी सोचने लगे॥ २९॥ भगवती त्रिपुरा का यह रहस्य भगवान् शिव के मुख से विष्णु के अवतार दत्तात्रेय ने सुना था और दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर परशुरामजी को सुनाया था। उसे ही परशुराम ने स्मरण किया॥ ३०॥ उस समय भगवान् शिव की आज्ञा से भक्ति और ज्ञान को बढ़ाने वाला मेरा सर्वस्व मेरे हृदय में डालकर मुझसे कहा गया॥ ३१॥ यह ऐश्वर्य वैराग्ययुक्त एवं ऐतिहासिक अनोखापन लिये हैं। यह प्रधान तन्त्र सर्वस्व है। यह जिस किसी को नहीं देना चाहिए॥ ३२॥ जो नास्तिक है, शठ है या अन्य देवी-देवताओं के भक्त हैं, उनके आगे इनके नाम का छोटा अंश भी नहीं बोलना चाहिए॥ ३३॥ परमात्मा के किसी प्रयोजन से या वाक्यार्थ के गौरव से तुम्हारा एक परम शिष्य सुमेधा है जिसे हारितायन भी कहा जाता है॥ ३४॥ हे भार्गव! उसी परमभक्त अपने शिष्य सुमेधा को सुअवसर देखकर यथासमय तुम यह रहस्य बतला देना, ताकि इसे वह ग्रन्थ रूप में प्रतिपादित कर सके॥ ३५॥ तन्त्रसार का यह संग्रह नियमित क्रम में पाप-प्रक्षालन

इति स्मृत्वा गुरुवचः शिष्यं दृष्ट्वा कृताञ्जलिम्। नियत्या भगवच्छक्तेरनुल्लङ्घ्य स्थितिं चिरम्।।
चिन्तयित्वा सुनिश्चित्य तं प्राह पुरतः स्थितम्। वत्स कालं प्रतीक्षस्व सर्वं कालेन जायते।। ३८।।
श्वः पुष्ये शुभवेलायामुत्तरोपक्रमं भवेत्। एवं स्थिते समभवत्सन्ध्यामृदुकरो रविः।। ३९।।
अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तौ जप्यं जेपतुः परम्। ध्यायन् हृदि स्वात्मशक्तिं रात्रौ सुष्वपतुः सुखम्।।
अथ प्रातः समुत्थाय कृताह्निकविधिं गुरुम्। दण्डवत्प्रणिपत्याथ बद्धाञ्जलिपुटो नतः।। ४१।।
उपतस्थे समुचिते काले परमशोभने। अथ तं राम आहूय वत्सेति मधुरस्वरम्।। ४२।।
पुष्पाञ्जलिं प्रयोज्याग्रस्थितहैमासने शुभे। या बाला त्रिपुरा प्रोक्ता ललिता श्रीकुमारिका।। ४३।।
तस्या वपुर्वाङ्मयं यत्तच्छिष्याय प्रदत्तवान्। साङ्गं पीठं समभ्यर्च्य नानाविभवहेतुभिः।। ४४।।
प्रजप्तदिव्यकलशतोयैः संस्नाप्य मार्गतः। पाशत्रयमपि छित्वा चाधिवास्य निशां ततः।। ४५।।
ग्राहयामास तद्रूपमाधारत्रयशोभितम्। द्वादशाद्यं तुर्यमध्यमवसानचतुर्दशम्।। ४६।।
त्रिधास्थितं च तद्रूपं तथा चर्याक्रमं शुभम्। आचारक्रममुद्रादि रहस्यमखिलं क्रमात्।। ४७।।
मूर्धहृन्मूलदेशेषु प्रसादविनियोजनम्। स्वात्माग्नावाहुतिं तत्त्वत्रयाणां क्रमशोऽब्रवीत्।। ४८।।
इति प्रोच्य समादिश्य तत्साधनविधौ ततः। वत्सैतद्ब्रह्म परमं साधयस्वाविलम्बितम्।। ४९।।
ततः पूर्णपदं तुभ्यं ददाम्यचिरकालतः। इति सम्प्राप्तसर्वस्वरहस्यो हारितायनः।। ५०।।

हेतु धन्य होगा। क्रमबद्ध ग्रन्थ रूप में इसका निर्माण कर इसे शिष्यों को पढायेगा।। ३६।। गुरु के पूर्वोक्त वचन को याद कर तथा सामने अञ्जलिबद्ध शिष्य सुमेधा को देखकर भवितव्यता, भगवान् का अनुल्लंघनीय सामर्थ्य और लम्बे समय तक इस ठहराव पर विचार किया।।३७।। कुछ सोचकर परशुरामजी ने दृढ निश्चय किया और सामने खड़े सुमेधा से कहा—बेटे! समय की प्रतीक्षा करो, सब कुछ समय से ही होता है।।३८।। कल पुष्य नक्षत्र की शुभ वेला है, इसकी उच्चतर स्थिति के साथ जब शाम ढलती है तो स्वभावतः सूर्य की किरणें कोमल हो जाती हैं।। ३९।। इसके बाद आने वाली शाम में हम दोनों उस परम जप्य मन्त्र का जप करेंगे। रात में अपने हृदय में अपनी आत्मशक्ति का ध्यान करते हुए सुखपूर्वक सो जायेंगे।। ४०।। तदनन्तर प्रभात काल में उठकर नित्यकर्म से निवृत्त होकर डण्डे की तरह धरती पर गिरकर गुरु को प्रणाम कर पुनः दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर झुककर प्रणाम किया।। ४१।। परम शोभासम्पन्न समुचित काल आने पर परशुरामजी ने बड़ी मीठी आवाज में 'हे वत्स!' कहकर सुमेधा को बुलाया।। ४२।। बाला, त्रिपुरा, ललिता तथा श्रीकुमारिका नाम से जाने जानी वाली देवी पुष्पाञ्जलि के कार्यारम्भ के शुभ अवसर पर स्वर्णनिर्मित सिंहासन पर समासीन थीं।। ४३।। अनेक विभवों को देने वाली उस त्रिपुरा के शब्दमय शरीर की साङ्ग, सपीठ पूजा करने के बाद गुरु ने शिष्य को मन्त्र प्रदान किया।। ४४।। जप करते हुए उस शिष्य को गुरु ने दिव्य कलश-जल से स्नापित किया, फिर उसे तीनों बन्धन से मुक्त कर दिया। फिर यज्ञारम्भ के पूर्व देवताओं का आवाहन-पूजन करते रात व्यतीत की।। ४५।। तीनों आधार (योगशास्त्र के अनुसार मूलाधार) से सुभोभित त्रिपुरा के उस रूप को सुमेधा ने ग्रहण कर लिया। इस आधार का प्रथमांश बारह, चतुर्थांश मध्यभाग तथा अवसान चौदह थे।। ४६।। तीन भाग में स्थित उस रूप को तथा शुभचर्याक्रम अर्थात् नियमित अनुष्ठान की तत्परता, आचारक्रम, मुद्रा आदि सारे रहस्यों को आत्मसात् कर लिया।। ४७।। मस्तक, हृदय और पाद देश में अनुग्रह का विनियोजन, अपनीं आत्मारूपी आग में तीनों तत्त्वों की आहुति डालने को कहा।। ४८।। इतना कहकर उसके साधन की विधि बतला दी। फिर गुरु ने कहा—हे वत्स! शीघ्रता से इस परब्रह्म को तुम साध लो।। ४९।। इसके बाद तुरन्त ही मैं तुम्हें पूर्ण पद प्रदान करता हूँ। इस तरह हारितायन

त्रिः परिक्रम्य नत्वा तं श्रीशैलं प्राविशद्द्रुतम्। तत्र श्रीभ्रामरी देवी नित्यसन्निहिता स्थिता ॥
तस्याः सम्मुखतः स्वच्छां वातातपसहां कुटीम्। निर्माय तत्र कालेन साधनं समुपाक्रमत् ॥ ५२ ॥
एवं साधयतस्तस्य फलाहारस्य योगिनः । भक्तिश्रद्धानिर्भरस्य नियतेन्द्रियचेतसः ॥ ५३ ॥
प्रसन्नचित्तस्य सदा ध्यानतत्परचेतसः । विश्वस्तगुरुवाक्यस्य नवपञ्चत्रिमासकाः ॥ ५४ ॥
ययुः क्षणमिवात्यर्थं संसिद्धं तस्य साधनम् । प्रसन्नदेहकरणः सुस्वरः शुभलोचनः ॥ ५५ ॥
लघुगात्राशनो दृष्टः पुष्टाष्टावयवः शुभः । अथ स्वप्ने तस्य रात्रौ बाला श्रीपरमेश्वरी ॥ ५६ ॥
सर्वावयवशोभाढ्या तरुणारुणसच्छविः । अक्षमालापुस्तकाभीवरशोभिचतुर्भुजा ॥ ५७ ॥
त्रिनेत्रचन्द्रशकलविलसन्मुकुटोज्ज्वला । कोटिमन्मथलावण्या कुमारी दशवार्षिकी ॥ ५८ ॥
प्रादुरासीज्जगन्माता लीलास्वीकृतविग्रहा । तां दृष्ट्वा स्वप्नसमये प्रसन्नो हारितायनः ॥ ५९ ॥
दण्डवत्प्रणिपत्याथ हर्षगद्गदसुस्वरः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा संस्तोतुमुपचक्रमे ॥ ६० ॥
जय श्रीत्रिपुरे मातर्जय बालाम्बिके परे । जय भक्तप्रिये नित्यं जय कारुण्यविग्रहे ॥ ६१ ॥
लोके त्रित्रिक्रमोल्लासिवस्तुपूर्वस्थितिर्यतः । त्रिपुरेति ततः प्रोक्ता ब्रह्मादीनां पराश्रया ॥ ६२ ॥
महिम्नस्ते लेशं हरिहरभवाद्या अपि परं न वक्तुं ज्ञातुं वा प्रभव इह देवादिगुरवः।
तथा भूता देवी क इह भुवनेषु स्तुतिपथं समीहेदारोढुं तव चरणसेवाविरहितः ॥ ६३ ॥

ने अपने गुरु से इस सर्वस्व का रहस्य ठीक ढंग से प्राप्त कर लिया ॥ ५० ॥ अपने गुरु की तीन परिक्रमा के बाद उन्हें प्रणाम कर श्रीशैल में शीघ्र ही प्रवेश किया। वहाँ भ्रामरी देवी का नित्य सान्निध्य उसे प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ उनके सामने ही धूप एवं हवा सहने योग्य एक पवित्र कुटिया का निर्माण किया। उस कुटिया में समय के साथ अपनी साधना शुरू की ॥ ५२ ॥ अत्यधिक भक्ति और श्रद्धा के साथ अपने मन और इन्द्रियों को नियन्त्रित कर वह फलाहारी योगी गुरु के द्वारा निर्दिष्ट ढंग से साधना में तत्पर हुआ ॥ ५३ ॥ गुरु के वाक्य में पूर्ण विश्वस्त, सदैव ध्यान में तत्परचित्त प्रसन्न मन उस योगी ने तीन सौ उनसठ महीने तक साधना की ॥ ५४ ॥ लगा कि क्षणभर में ही उसके साधन से उसे अत्यधिक सिद्धि मिल गई हो, उसकी सारी दैहिक क्रियाएँ पवित्र हो गईं। उसकी आवाज अत्यन्त मधुर हो गयी, आँखें कल्याणकारिणी बन गईं ॥ ५५ ॥ अल्पाहार के कारण देखने में उसकी काया कृश थी किन्तु उसकी देह के आठों अंग शुभ एवं सुपुष्ट थे। उसी रात स्वप्न में श्रीपरमेश्वरी बालाजी ने उसे दर्शन दिये ॥ ५६ ॥ श्रीभगवती के सारे अङ्ग शोभासम्पन्न थे। उनके शरीर की सुन्दर कान्ति प्रभातकालीन सूर्य की कोमल किरणों की तरह रक्ताभ थी। उनके चारों हाथ में रुद्राक्ष, पुस्तक, अभयदान और वरदान सुशोभित थे ॥ ५७ ॥ माथे पर उज्ज्वल मुकुट था, अर्द्धचन्द्र सुशोभित था, तीन आँखें थीं। उनकी देह से करोड़ों कामदेव का सौन्दर्य टपक रहा था। वह दस साल की कुमारी कन्या के रूप में थी ॥ ५८ ॥ लोकलीला के लिए शरीर धारण करने वाली जगन्माता प्रादुर्भूत हुई। उन्हें स्वप्न में देखकर हारितायन निहाल हो गया ॥ ५९ ॥ खुशी के मारे हरितायन का गला भर आया। फिर साष्टाङ्ग प्रणाम कर अञ्जलिपुट बाँध कर बड़े मधुर स्वर से प्रार्थना करने लगा ॥ ६० ॥ हे श्रीत्रिपुरे! तुम्हारी जय हो, ब्रह्मविद्या स्वरूपा हो। बालाम्बिके! ओ माँ! तुम्हारी जय हो, तुम्हें भक्त प्रिय हैं, तुम शाश्वत हो, करुणा की मूर्ति हो, तुम्हारी जय हो ॥ ६१ ॥ तीन डग में तीनों लोक को अधिकृत कर तुम उल्लसित हो, किसी वस्तु या पदार्थ की तुम पूर्व स्थिति होने के कारण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हो, ब्रह्मादि देव तो पराश्रित हैं ॥ ६२ ॥ तुम्हारी महिमा के सामने ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि देव भी अत्यन्त लघु हैं। तुम्हारे पराक्रम के सम्बन्ध में देवादि गुरु बृहस्पति भी न कुछ जान सकते हैं और न कुछ बोल ही सकते हैं। तुम्हारी चरणसेवा

पदाम्भोजभक्तिस्तव भवति चिन्तामणिगणो न तच्चित्रं देवि प्रभवति समीहाधिकफलम्।
अतस्त्वत्पादाब्जप्रणिहितसमस्तेन्द्रियवतां फलं न प्राप्यं किं वद परशिवे सुन्दरि परे॥ ६४॥
त्वमेवादौ सृष्टेः सहजसुखपीयूषजलधिर्नितान्तं विश्रान्ता वपुषि विमले निश्चलतरे।
न खं वायुस्तेजः सलिलमपि भूमिर्घटपटौ न च ज्ञानाज्ञाने वचनविषयो वा स्थितमभूत्॥ ६५॥
त्वमेवैका सेयं निरवधिमहाशक्तिभरिता स्थिता संविद्रूपा सकलजगतामादिसमये।
जगन्मालाजालाङ्कुरगणसुबीजैकवपुषा परानन्दाकारा परमशिवजीवस्थितिकरी॥ ६६॥
ततः संविद्रूपा तव सकलमेतद्विलसितं विभातं सद्रूपं तदितरवपुश्चापि सहसा।
यथाम्भोधौ भङ्गा घटकलशकुण्डा इव मृदि प्रभा भानोर्यद्वत्कनकशकलं भूषणगणाः॥ ६७॥
अतस्त्वद्रूपान्नो पृथगिह भवेत्किञ्चिदपि वा सदा सर्वात्मत्वाद्विलससि महाकाशवपुषा।
तथाभूतायास्ते परिमितकराङ्घ्र्यादिवपुषा विलासो भक्तेषु प्रभवति कृपा यन्त्रणवशात्॥ ६८॥
तवाप्येतद्रूपं शिवगुरुपदाम्भोजविलसत् सुभक्तिप्रोन्मीलद्विमलनयनानां विधिवशात्।
कदाचित्केषाञ्चिद्भवति पुरतो भाग्यवशतः परं यत्तद्रूपं कथमिह भवेदम्ब सुलभम्॥ ६९॥
नमस्ते बालाम्ब त्रिपुरहरसौभाग्यनिलये नमस्ते भक्तेहासमधिकफलोत्पादचतुरे।

से रहित इस संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है जो तुम्हारी तरह पराक्रमशालिनी भगवती की स्तुति कर सकता है?॥ ६३॥ तुम्हारे चरणकमलों की भक्ति ही वह चिन्तामणि है जो विचारते ही अभिलषित वस्तु प्रदान करती है। हे देवि! इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि तुम्हारी भक्ति भक्तों की अभिलषित वस्तु से अधिक फल देने वाली है। अतः जिसने अपनी सारी इन्द्रियाँ तुम्हारे चरणकमलों में समर्पित कर दी है उसे हे परशिवे! हे सुन्दरि! कौन-सा फल प्राप्त नहीं हो सकता? तुम्हीं बताओ॥ ६४॥ हे माँ! तुम्हीं सृष्टि के आदिकाल में निर्मल एवं अपरिवर्तनीय शरीर में सहज सुख रूपी अमृतसागर में सब कुछ अपने शरीर में समेटकर विश्राम करती हो। न तुम आकाश हो, न वायु, न तुम तेज हो, न जल, न भूमि हो, न घट या पट अर्थात् तुम्हारी देह पाँचभौतिक तत्त्वों से भिन्न है। तुम न ज्ञान हो न अज्ञान, तुम वर्णनातीत रूप में सर्वत्र अवस्थित हो॥ ६५॥ तुम्हीं वह अकेली हो जो असीम महाशक्ति से परिपूर्ण हो। सम्पूर्ण संसार के आदि काल में चेतना रूप से सबमें मौजूद हो। संसार रूपी जंजीर के मायास्वरूप फन्दा भी तुम्हीं हो। सुन्दर उपादान कारण रूपी शरीर से संसार-रूपी अँखुओं का समूह भी तुम्हीं तो हो। तुम्हारी आकृति भी परम आनन्दस्वरूपा है। परम कल्याणस्वरूप जीवों के रूप में अवस्थिति बनाये रखने वाली भी तो तुम्हीं हो॥ ६६॥ इसके बाद यह सारा संसार तुम्हारे चेतना-स्वरूप में ही सुशोभित है। अचानक इससे भिन्न तुम्हारा सुन्दर शरीर भी यथावसर प्रदीप्त हो उठता है। जैसे अलग-अलग रूप में मौजूद घड़े, कलशे और मटके सागर में टूट कर मिट्टी के मूलरूप में आ जाते हैं, सूर्य की प्रभा मूल सूर्य में ही सन्निहित होती है; सोने के अनेक तरह के आभूषण टूटने पर सोने के रूप में ही आ जाते हैं॥ ६७॥ उसी तरह तुम्हारे स्वरूप से भिन्न इस संसार में कुछ भी नहीं है। महाआकाश रूपी शरीर से हमेशा सबकी आत्मा के रूप में तुम्हीं सुशोभित हो। ऐसे होने के लिए तुम्हारे परिमित हाथ-पैर और शरीर आदि से बँटकर कृपापूर्ण नियन्त्रण के वश सर्वत्र सुशोभित हैं॥ ६८॥ भगवान् शिवगुरु के चरणकमलों में चमके हुए तुम्हारा यह रूप भी सुन्दर भक्ति से अर्द्धनिमीलित पवित्र आँखों के सामने भाग्यवश ही कभी किसी को दीख पड़ता है। किन्तु हे अम्बे! तुम्हारा वह परम दिव्य स्वरूप इस संसार में किसी को कैसे दीख सकता है?॥ ६९॥ हे बालाम्बे! तुम्हीं महादेव के सौभाग्य का आवासस्थल हो, तुम्हें मेरा प्रणाम है। हे जगदम्बे! तुम भक्तों को उनकी अभिलाषा से अधिक फल देने में चतुर हो, अतः तुम्हें मेरा प्रणाम है। दीन-दुःखियों के दुःख

नमस्ते दैन्याद्रिप्रविदलनवज्रायितकृपे नमस्ते मोहाम्भोनिधिकवलनागस्त्यचरणे ॥ ७० ॥
इति स्तुत्वा महादेवीं प्रेमविह्वलितान्तरः । दण्डवत्पतितो भूमौ तस्याश्चरणसन्निधौ ॥ ७१ ॥
आनन्दाश्रुकलारुद्धनेत्रः पुलकिताङ्गकः । भक्तिनिर्भरितस्वान्तो नाशक्नोत्किमपीहितुम् ॥ ७२ ॥
यदा स वक्तुं द्रष्टुं वा किञ्चित्कर्तुमनीश्वरः । प्रेमवारिधिनिर्मग्नस्तदा सा त्रिपुराम्बिका ॥ ७३ ॥
प्राह गम्भीरामृतौघवर्षिण्या सुस्मितानना । वाचा वत्सेत्युपामन्त्र्य मूर्ध्नि हस्ताम्बुजं न्यधात् ॥
स तु पूर्वं दर्शनेन मग्न आनन्दसागरे । पुनस्तस्याः करस्पर्शाद्ब्रह्मानन्दमयोऽभवत् ॥ ७५ ॥
उवाच सा जगन्माता सुमेधोत्तिष्ठ मा चिरम् । गच्छ शीघ्रं गुरोः पार्श्वे सिद्धोऽसीप्सितलाभतः ॥
इत्युक्त्वान्तर्हिता सद्यो मनोरथमनुष्यवत् । सोऽपि प्रबुद्धस्तत्काले किमेतदिति चिन्तयन् ॥ ७७ ॥
नातिस्वस्थमनाः स्वप्ने भूयो भूयो विचिन्तयन् । तां मूर्तिं सुन्दरीं वाचं पीयूषरससोदरीम् ॥ ७८ ॥
वेलां कल्पात्मिकां ज्ञात्वा स्नानायाऽगात्सरिद्वरे । तदेव चिन्तयानः स विस्मृताह्निकसत्क्रियः ॥
स्मयन्नुवाच स्वात्मानमेतत्किम्मे समीक्षितम् । सत्यं वा यदि वाऽसत्यं न वेद्म्येतस्य कारणम् ॥
विश्वस्य गुरुसान्निध्यं गत्वा किं प्रब्रवीम्यहम् । स्वप्नस्य भ्रान्तिरूपत्वादविश्वास्यो मनीषिणाम् ॥
न गच्छामि कथं देव्या वचनाच्छ्रद्धयाखलः । अहो विषममाभाति कालस्य गतिरुल्बणा ॥ ८२ ॥
तथापि नैव गच्छामि तत्परा क्षन्तुमर्हति । इति निश्चित्य नित्यार्थे प्रवृत्ते तु सुमेधसि ॥ ८३ ॥

रूपी पहाड़ को चूर-चूर कर बिखेर देने के लिए तुम्हारी कृपा वज्र बन कर गिरती है, तुम्हें मेरा नमस्कार है। मोह रूपी समुद्र को चुल्लू में भरकर पी जाने वाले तुम्हीं मुनि अगस्त्य हो, तुम्हें मेरा प्रणाम है॥ ७०॥ भीतर से प्रेमविह्वल होकर महादेवी की स्तुति कर उनके चरणों के पास दण्डवत् होकर धरती पर गिर गये॥ ७१॥ आनन्द के अश्रुकण से उसकी आँखें बन्द हो गईं, उसके शरीर के सारे अवयव रोमाञ्चित हो उठें। भक्ति से उसका मन भरा था। वह अपनी कोई अभिलाषा व्यक्त नहीं कर पा रहा था॥ ७२॥ जब वह कुछ भी कहने, करने या देखने में असमर्थ हो गया, प्रेमसागर में डूब गया तब वही त्रिपुराम्बिका ने॥ ७३॥ मुस्कराती हुई गम्भीर एवं सरस सुधामयी वाणी में कहा—'हे वत्स!' और अपना करकमल उसके माथे पर रख दिया॥ ७४॥ वह तो पहले ही दर्शन से आनन्दसागर में डूब चुका था, अब जगदम्बा के करस्पर्श से ब्रह्मानन्दमय हो गया॥ ७५॥ उस जगन्माता ने कहा—सुमेधा! उठो, अब देर मत करो, शीघ्र ही अपने गुरु के पास जाओ; अपनी अभिलषित वस्तु की प्राप्ति से अब तुम अलौकिक शक्ति सम्पन्न हो चुके हो॥ ७६॥ यह कहकर भगवती उसी क्षण अदृश्य हो गई; ठीक मनुष्य के मन में उठने और तिरोहित होने वाले मनोरथ की तरह। सुमेधा भी उसी क्षण प्रबुद्ध होकर सोचने लगा, यह सब क्या हो गया?॥ ७७॥ सुमेधा का मन अपनी स्वाभाविक स्थिति में नहीं था, वह इसे स्वप्न-दृश्य मान रहा था। वह बार-बार उस अमृतमयी वाणी, अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक मूर्ति के बारे में ही सोचने लगा॥ ७८॥ समय को कल्पात्मक जानकर स्नान करने वह गंगानदी की ओर गया। उसे ही सोचते हुए वह नित्य क्रिया को भी भूल गया॥ ७९॥ आश्चर्यचकित होते हुए उसने अपने आपसे ही पूछा—मैंने यह सब क्या देखा या विचारा है? यह सत्य है या असत्य, इसका कारण मैं नहीं जानता॥ ८०॥ विश्वस्त भाव से गुरु के पास जाकर उनसे मैं क्या कहूँगा? स्वप्न तो भ्रान्ति स्वरूप ही है, विद्वान् व्यक्ति उस पर विश्वास नहीं करते॥ ८१॥ पूर्णरूप से श्रद्धा-समन्वित देवी की आज्ञा से गुरु के पास क्यों न जाऊँ? आश्चर्य है, काल की दुर्लङ्घ्य गति अतिरहस्यमय प्रतीत होती है॥ ८२॥ फिर भी गुरु के पास मैं नहीं जाऊँगा। वह पराशक्ति मुझे क्षमा करें। मन में ऐसा निर्णय कर नित्यकर्म में प्रवृत्त होने वाले सुमेधा ने सुना॥ ८३॥ बिना देह की चित्ताकर्षक मीठी आवाज—वत्स! सुनो, मेरी बातों में अविश्वास

आहाऽशरीरवाण्येनं शृणु वत्सेति वल्गुना। वचसां त्वमविश्वासं त्यज सत्यं न तन्मृषा॥ ८४॥
इति श्रुत्वाऽथ वचनमाकाशे निर्जनालये। प्रसन्नचित्तः साष्टाङ्गं ननाम भुवि सादरः॥ ८५॥
अथ शीघ्रं रामशयं गत्वा तत्पादपङ्कजम्। मूर्ध्ना संस्पृश्य तद्वृत्तं यथावत्स न्यवेदयत्॥ ८६॥
तच्छ्रुत्वा भार्गवो रामः प्राह शिष्यं सुविस्मितः। धन्यस्त्वं वत्स ते स्वप्ने दृष्टा सा त्रिपुरा परा॥
नान्यस्त्वत्तो धन्यतरः प्रसन्ना यस्य सा परा। मयापि सर्वमेतत्ते वृत्तं समवलोकितम्॥ ८८॥
योगदृष्ट्याथ ते सर्वं सम्यक् सम्पद्यतेऽधुना। इत्युक्त्वा सुशुभे काले साङ्गोपाङ्गां सविस्तराम्॥
श्रीविद्यां क्रममार्गेण दीक्षयामास योगिराट्। प्राप्तदीक्षस्य तस्याथो दत्तात्रेयाच्छ्रुतं पुरा॥ ९०॥
इतिहासं तन्त्रसारं पुण्यं भागवतोत्तमम्। साक्षाच्छिवोक्तं त्रिपुरारहस्यमुपदिष्टवान्॥ ९१॥
वत्सैतत्परमं गोप्यं रक्षणीयं प्रयत्नतः। न्यस्तं मयि श्रीगुरुणा तदाज्ञावशतस्त्वयि॥ ९२॥
संक्रामितमभक्तेषु नास्तिकेषु न वक्ष्यसि। आराध्य त्रिपुरेशानीं तत्प्रसादमवाप्य च॥ ९३॥
निबध्य ग्रन्थरूपेण सच्छिष्येषु नियोजय। एवमाज्ञा मम गुरोः तत्सत्यं स्यान्न चाऽन्यथा॥ ९४॥
इत्युक्त्वा प्रणतं शिष्यमाशीर्भिरनुयोजयत्। अथ नत्वा गुरुं रामं परिक्रम्य प्रदक्षिणम्॥ ९५॥
जगाम हालास्यपुरे यत्र श्रीमीनलोचना। परामबा राजते साक्षात्सुन्दरेश्वरवल्लभा॥ ९६॥
सुवर्णपद्मिनीतीरे वेगवत्यविदूरतः। तपः परममातिष्ठदुद्दिश्य श्रीपराम्बिकाम्॥ ९७॥
ध्याननिष्ठो महाभागो नियमैरन्वितो यमैः। काले काले पूजयन्तां नियतेन्द्रियमानसः॥ ९८॥
तां ध्यायन् ललितां नित्यं भक्तिभावसमृद्धिमान्। पूजयामास परमामेवं तस्य सुमेधसः॥ ९९॥

मत करो; वह सत्य है, उसे मिथ्या मत मानो॥ ८४॥ जनशून्य आकाश से आती इन बातों को सुनकर सुमेधा ने धरती पर प्रसन्नचित्त होकर सादर साष्टांग प्रणाम किया॥ ८५॥ इसके बाद शीघ्र ही परशुराम के पास जाकर उनके चरणकमलों में माथा टेक कर ये सारी वारदात जस के तस सुना दी॥ ८६॥ यह सुनकर परशुराम ने विस्मित होते हुए शिष्य सुमेधा से कहा—बेटे! धन्य हो, तुम्हें उस भगवती त्रिपुरा ने स्वप्न में दर्शन दिये॥ ८७॥ तुमसे अधिक धन्य कोई और दूसरा इस दुनिया में नहीं है, क्योंकि तुम पर वह भगवती प्रसन्न है। मैंने भी इन सारे वृतान्तो को ठीक ढंग से देखा है॥ ८८॥ इस समय योग की दृष्टि से यह सब पूर्णरूपेण घटित हुआ है। यह कहकर सुन्दर काल उपस्थित होने पर सुन्दर ढंग से उस योगीराज ने विस्तार के साथ साङ्गोपाङ्ग श्रीविद्या की दीक्षा दी। उसने (सुमेधा ने) शुरू से दीक्षा प्राप्त की है, यह सूचना पहले दत्तात्रेय से मुझे मिली है॥ ८९-९०॥ परमपावन सर्वोत्कृष्ट भागवत यह तन्त्रशास्त्र का इतिहास साक्षात् शिव के द्वारा कथित इस त्रिपुरारहस्य का उपदेश परशुराम ने शिष्य को दिया॥ ९१॥ बेटे! यह परम गोपनीय रहस्य है। इसकी रक्षा तुम प्रयासपूर्वक करना। श्रीगुरु की आज्ञा से ही मैंने तुम्हें इसका उपदेश किया है॥ ९२॥ आराध्या भगवती त्रिपुरा की कृपा प्राप्त कर अभक्तों के बीच इसका वितरण मत करना और नास्तिकों के सामने इसकी चर्चा भी मत करना॥ ९३॥ इसे ग्रन्थ रूप में निबन्धित कर सदाचारी शिष्यों तक पहुँचा देना। मेरे गुरु की यही आज्ञा है। अतः यह सर्वथा सत्य है, यह अन्यथा नहीं होगी॥ ९४॥ यह कहकर अपने प्रणत शिष्य को आशीर्वाद दिया। शिष्य सुमेधा ने अपने गुरु परशुराम को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा कर, जहाँ साक्षात् परमेश्वर के सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति वल्लभा परामबा श्रीमीनाक्षी विराजती है, उस हालास्यपुर के लिए प्रस्थान किया॥ ९५-९६॥ पार्श्ववर्त्ती अत्यन्त वेगवती सुवर्णपद्मिनी नदी के किनारे भगवती श्री पराम्बिका को लक्ष्य कर सुमेधा परम तप के लिए बैठ गया॥ ९७॥ यम-नियम युक्त धर्मात्मा सुमेधा ध्याननिष्ठ हो गया। उस परामबा की पूजा करते हुए इन्द्रिय और मन से संयत हुआ॥ ९८॥ भक्तिभाव

अतिक्रान्ताः समाः पञ्च ललितां ध्यायतोऽन्वहम् । अथैकदा ध्याननिष्ठो दृष्टाऽन्तःपुरुषं शिवम् ॥
कर्पूरगौरं जटिलं भस्मोद्धूलितविग्रहम् । करेण वादयन् वीणां पुरतः समवस्थितम् ॥ १०१ ॥
किमेतदिति साश्चर्यमुन्मील्य नयने तदा । पुरः स्थितं नारदं तमन्वीक्ष्योत्थाय विस्मितः ॥ १०२ ॥
विष्टरं प्रतिपाद्याथ प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । उवाच मधुरं वाक्यं विनीतो हृष्टमानसः ॥ १०३ ॥
देवर्षे स्वागतं तेऽस्तु क्षन्तव्या मदपाकृतिः । मया ध्यानस्थितेनेह पुरस्त्वं नावलोकितः ॥ १०४ ॥
सतां समागमो लोके भूर्यभ्युदयकारणम् । कृतार्थोऽहं भवद्भिर्यदनुग्रहविलोकितः ॥ १०५ ॥
ईप्सितं मे सुसम्पन्नं भवद्दर्शनमात्रतः । तथापि मे मुनिश्रेष्ठ प्रष्टव्यमवशिष्यते ॥ १०६ ॥
पृच्छामि किञ्चित्त्वां ब्रह्मन्महान् सन्देह आस्थितः । त्वं बहिः संस्थितोऽपीह कथं मेऽन्तः समीक्षितः ॥
एतस्य कारणं ब्रूहि यदि श्रोतव्यमस्ति मे । साधवः समभावेन संस्थिता दीनवत्सलाः ॥ १०८ ॥
इति पृष्टस्तदा तेन लोकानुग्रहतत्परः । नारदः प्रहसन् वाक्यमुवाचाऽखिलदर्शनः ॥ १०९ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां
नारदाभिगमनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



से भरपूर प्रतिदिन उस ललिता का ध्यान करते हुए सुमेधा ने उस परम दिव्य देवी की पूजा की ॥ ९९ ॥ प्रतिदिन भगवती ललिता का ध्यान करते हुए पाँच साल बीत गये। एक बार अपने हृदय में भगवान् शिव को देखकर वह ध्यान में मग्न हो गया ॥ १०० ॥ कपूर की तरह उज्ज्वल गौरवर्ण, जटाधारी, भस्मलेपित सर्वाङ्ग शरीर हाथ से वीणा बजाते हुए सामने उपस्थित थे ॥ १०१ ॥ तब उसने आश्चर्यचकित होकर 'यह क्या ?' कहते हुए जब आँखें खोलीं तो सामने स्थित नारदजी को देखकर चकित भाव से उठकर खड़ा हुआ ॥ १०२ ॥ आसन बिछाकर चरणों में शीश नवाकर, अञ्जलि बाँध कर, प्रसन्न मन से विनीत होकर मधुर वचन बोले ॥ १०३ ॥ हे देवर्षे! तुम्हारा स्वागत हो, मेरे निराकरण के लिए मुझे क्षमा करें। ध्यानस्थ होने के कारण ही सामने उपस्थित रहने पर भी मैं आपको नहीं देख सका ॥ १०४ ॥ संसार में सज्जनों का समागम प्रचुर अभ्युदय का कारण होता है। अनुग्रहपूर्वक आपने मुझे जो देखा तो मैं कृतार्थ हो गया ॥ १०५ ॥ आपके दर्शन मात्र से ही मेरा अभीप्सित मुझे मिल गया। फिर भी हे मुनिश्रेष्ठ! मेरा कुछ प्रष्टव्य बचा है ॥ १०६ ॥ हे ब्रह्मन्! आपसे मैं फिर भी कुछ पूछना चाहता हूँ, मेरे मन में एक बहुत बड़ा सन्देह हो रहा है। आप बाहर रहते हुए भी मेरे मन के भीतर कैसे झाँक लिये हैं ॥ १०७ ॥ यदि मेरे सुनने योग्य हो तो इसका कारण बतला दें। साधु पुरुष तो समभाव से संस्थित रहते हैं और दीनवत्सल होते हैं ॥ १०८ ॥ ऐसा पूछने पर लोकहित में संलग्न नारद ने हँसते हुए समग्र दर्शन भरी बातें उनसे कहीं ॥ १०९ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
नारादाभिगमन नामक पहला अध्याय समाप्त हुआ।



अथ द्वितीयोऽध्यायः

हारितायन वत्सैतत्त्वया प्रोक्तं महाऽद्भुतम्। अन्तः समीक्षित इति विदुषेवाऽतिबालवत्॥ १॥
नूनं मयाः पर्यटता दृष्टा भुवनपङ्क्तयः। विद्वांसो मन्दमतयः स्त्रियः शूद्राश्च पामराः॥ २॥
बहुधा तैरहं पृष्टो नैवमद्यावधि क्वचित्। नाम्ना सुमेधा विद्वांस्त्वं प्रश्नार्थं वद मे स्फुटम्॥ ३॥
अन्तः समीक्षित इति यत्त्वयोक्तं वचः शुभम्। किमन्तस्तत्र किं बाह्यं कस्मात्कस्य किमात्मकम्॥
अन्तः शरीर इति तु नात्र वक्तुं क्षमं भवेत्। दृष्टोऽहं देशसंस्थानो महाकाशेन संवृतः॥ ५॥
असंख्यातप्रमाणन्तत् सप्तवैतस्तिकं त्विदम्। शरीरं तव तत्रापि द्रष्टा त्वं कुत्र संस्थितः॥ ६॥
बाह्यादन्तस्त्वया दृष्टोऽथवान्तःसंस्थितेन वा। बाह्येन्द्रियैरान्तरं त्वमौदरं न समीक्षसे॥ ७॥
यद्यान्तरेण सन्दृष्टस्त्वयाहं तत्र मे शृणु। आत्मा पर्यनुयोज्यः स्यात्तव तत्र त्वया सखे॥ ८॥
त्वं बहिर्दृष्ट इत्येतदत्रापि शृणु मद्वचः। कस्य बाह्यं केन दृष्टं कथं किं तत्र कारणम्॥ ९॥
इन्द्रियं देहतुल्यत्वाज्जडं स्वस्मिन् हि संस्थितम्। बहिर्गतं कथं तेन दृष्टं स्यादिति तद्वद॥ १०॥
सर्वं बहिर्गतं तत्र संस्थितं नेक्षितं कुतः। दृष्टश्चेदिन्द्रियेणाहं किं जातं तव तद्वद॥ ११॥
आगतोऽहमब्जयोनेः सदनात्त्वां समीक्षितुम्। तत्राभूत्तव या वार्त्ता तां वदामि सखे शृणु॥ १२॥

*** विमला ***

वत्स हारितायन! अतिबालभाव से विद्वानों की तरह तुमने यह "मन के भीतर झाँक कर देखने वाला" बड़ा ही विचित्र प्रश्न किया है॥ १॥ निश्चय ही घूमते हुए मैंने लोकसमूहों को देखा है; विद्वानों को देखा, मूर्खों को देखा, स्त्रियों को देखा, शूद्रों को देखा और नीच लोगों को भी देखा है॥ २॥ पर अनेक स्थानों और दिशाओं में घूमते हुए मुझसे आज तक किसी ने कहीं ऐसा प्रश्न नहीं पूछा। ओ सुमेधा नाम वाले विद्वान्! अपने प्रश्न का मतलब साफ-साफ कहो॥ ३॥ 'भीतर झाँककर देखने वाली' शुभ बातें जो तुमने की हैं, इसमें भीतर क्या है और बाहर क्या है? किससे, किसका और किस स्वरूप का?॥ ४॥ भीतरी देह तो तुम कह ही नहीं सकते, क्योंकि देहसमूहों को मैंने महाआकाश से ढके देखा है॥ ५॥ वे तो अनगिनत हैं पर यह देह तो मात्र सात बित्ते की ही हैं, फिर भी तुम कहाँ थे, जहाँ से तुमने अपने शरीर को देखा है?॥ ६॥ बाहर से तुमने भीतर देखा है या भीतर से बाहर देखा है? बाहरी इन्द्रियों से छिपे पेट के भीतर तो तुम देख नहीं सकते॥ ७॥ यदि आन्तरिक ढंग से तुमने मुझे देखा है तो सुनो, हे मित्र! इस परिस्थिति में तुम्हारी आत्मा सर्वतोभावेन तुम्हारा सेवक है॥ ८॥ अगर तुमने बाहर से देखा है तो इस पर भी मेरी बातें सुनो। किसका बाहर? किसने देखा? क्यों देखा? देखने का क्या कारण है?॥ ९॥ इन्द्रियाँ देहतुल्य जड़ होने के कारण अपने आप में स्थिर हैं। बहिर्गत होकर उसने किसी वस्तु को देखा कैसे? पहले तो यह बतलाओ॥ १०॥ सारी इन्द्रियाँ तो बहिर्गत ही हैं, फिर बाहर रहकर भी उसने देखी क्यों नहीं? इन्द्रियों के द्वारा यदि मैं देखा ही गया तो इससे क्या हुआ? तुम्हीं बतलाओ॥ ११॥ मैं ब्रह्मलोक से तुम्हें देखने आया हूँ। हे मित्र! वहाँ तुम्हारे सम्बन्ध में जो बातें हुईं वह मैं कहता हूँ, तुम सुनो॥ १२॥ ब्रह्मलोक में सभा लगी थी।

सभायां ब्रह्मणः स्थाने मार्कण्डेयो महानृषिः । पितामहं समासीनं देवाद्यैः समुपस्थितम् ॥ १३ ॥
नत्वा पप्रच्छ सर्वेषां शृण्वतां विनयान्वितः । भगवन् त्वं समस्तज्ञः सर्वलोकपितामहः ॥ १४ ॥
नाज्ञातं तव किञ्चित्स्यात्सर्वकर्त्ता भवान् यतः । अहं त्वत्कृपया देव चिरजीवितमाप्तवान् ॥ १५ ॥
साक्षाच्छिवाराधनतो जितं मृत्युपदं मया । सर्वशास्त्राणि दृष्टानि सेतिहासागमानि च ॥ १६ ॥
पुराणान्यपि सर्वाणि विद्याश्चाखिलगोचराः । किं तत्र सारं श्रोतव्यं यदि मे स्यात्सुनिश्चितम् ॥
भवान् वदतु तन्मेऽत्र सन्देहो मे महानयम् । अत्र पृष्टा मया देवा ऋषयः सिद्धयोगिनः ॥ १८ ॥
वदन्ति स्वस्वाभिमतं भक्तिश्रद्धावशेन ते । सर्वानभिज्ञास्ते यस्मात्प्रोचुः स्वस्वोचितं वचः ॥
त्वं लोककर्त्ता सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वदर्शनः । वद तन्मे दयासिन्धो यथापृष्टो मया प्रभो ॥ २० ॥
मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । क्षणं ध्यात्वा सुमनसा ननाम भुवि दण्डवत् ॥ २१ ॥
संस्मारितः पराशक्तेः प्रभावं तेन हर्षतः । पुलकाङ्करुहो नेत्रे पूर्णानन्दाश्रुनिर्भरः ॥ २२ ॥
कृताञ्जलिः प्रणम्याथो त्रिपुरां सर्वकारणम् । वक्तुं समुपचक्राम सम्बोध्य मुनिपुङ्गवम् ॥ २३ ॥
शृणु मद्वचनं ब्रह्मन् सत्यं ते कथयाम्यहम् । सभासद्भिः समेतस्त्वं श्रद्धस्वाऽत्र मयोदिते ॥ २४ ॥
अश्रद्दधाना ये केचित्तेषां नात्र भवेत्स्थितिः । या सर्वजगतां हेतुर्यया सर्वमिदं ततम् ॥ २५ ॥
यस्यामत्येति सर्वं सा त्रिपुरा सर्वतोऽधिका । यया विरहितं सर्वं वन्ध्यात्मजसमं भवेत् ॥ २६ ॥

सभी देवगण उपस्थित थे, ब्रह्मदेव अपने आसन पर समासीन थे। उसी समय वहाँ महामुनि मार्कण्डेयजी पधारे ॥ १३ ॥ अत्यन्त विनम्रभाव से सर्वप्रथम ब्रह्माजी को उन्होंने प्रणाम कर सबों से सुनने का आग्रह किया। पुनः सकल श्रुति-स्मृतिसारभूत रहस्य को लक्ष्य कर सर्वलोकपितामह ब्रह्मदेव से उन्होंने पूछा—हे भगवन्! आप तो सर्वज्ञ हैं॥ १४॥ आपसे कुछ भी तो छिपा नहीं है। क्योंकि आप तो सब के कर्त्ता हैं। आपकी ही कृपा से मैंने दीर्घ जीवन प्राप्त किया है॥ १५॥ साक्षात् शिव की आराधना से मैंने मौत पर विजय पा ली है। इतिहास एवं आगमों के साथ सभी शास्त्रों को मैंने देख लिया है॥ १६॥ समस्त पुराणों को भी देखा है। इन्द्रियग्राह्य सकल विद्याओं को भी मैंने देख लिया है, किन्तु सुनिश्चित रूप से इसका सार क्या है? यह यदि मेरे जानने योग्य हो तो कृपया आप मुझे बतला दें। क्योंकि इस विषय में मुझे बड़ा ही सन्देह हो रहा है। इसके बारे में मैंने देवता, ऋषियों और सिद्धयोगियों से पूछा है॥ १७-१८॥ भक्ति और श्रद्धावश उन्होंने अपना-अपना अभिमत कहा है। यद्यपि अपने-अपने ढंग से सबों ने उचित ही कहा है, फिर भी वे सभी इस रहस्य के सम्बन्ध में अनभिज्ञ हैं॥ १९॥ आप तो सृष्टिकर्त्ता हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वात्मा हैं, सर्वदर्शन हैं। हे प्रभो! आप दया के सागर हैं, कृपया आप से मैंने जैसा पूछा है उसी तरह आप मुझे बतला देने का कष्ट करें॥ २०॥ लोकपितामह ब्रह्माजी ने मार्कण्डेय मुनि की बातें सुनकर सुस्थिर मन से एक क्षण महादेवी त्रिपुरा का ध्यान कर धरती पर दण्डवत् होकर उन्हें प्रणाम किया॥ २१ ॥ वे उस परम शक्ति के स्मरण मात्र से प्रसन्न हो गये। इस प्रसन्नता के प्रभाव से उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुलकित हो गये, रोंगटे खड़े हो गये, आनन्द के आँसू से आँखें भर आईं॥ २२॥ पहले अञ्जलिबद्ध होकर महादेवी त्रिपुरा को प्रणाम कर ब्रह्माजी ने मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी को सम्बोधित कर महादेवी त्रिपुरा को ही सब कारण बतलाना प्रारम्भ किया॥ २३॥ हे ब्रह्मन्! मेरी बातें सुनो, मैं तुमसे सत्य बतलाता हूँ। मैं जो कुछ कहता हूँ उस पर सभासदों के साथ तुम विश्वास करो॥ २४॥ श्रद्धाविहीन व्यक्ति को मेरे इस कथन में आस्था नहीं होगी। जो सारी दुनिया की उत्पत्ति का कारण है तथा जिनसे यह सब समुत्पन्न हैं॥ २५॥ सबसे परे, सबसे अधिक केवल वह भगवती त्रिपुरा हैं, जिनके बिना बन्ध्यापुत्र की तरह सब कुछ झूठ एवं निरर्थक हैं॥ २६॥ जिनकी

यस्याः प्रसादलेशेन सर्वं स्वात्मनि संस्थितम्। प्रत्यणुक्षणभागेषु या पूर्णा त्रिपुरा हि सा॥ २७॥
या विचित्रतनुप्राणकरणानि प्रतिक्षणम्। भुवनानि प्रभिन्नानि स्वात्मनाच्छादयत्यजा॥ २८॥
यस्याः पर्यन्तमध्यादिभागं नाहं हरिर्हरः। जानीमो वयमेतस्याश्चरणाम्बुजरेणवः॥ २९॥
सृष्टिः स्थितिः संहृतिश्च तिरोधानमनुग्रहः। क्रियते सर्वदाऽस्मासु स्थितया परया यया॥ ३०॥
सा सर्वदेवी सर्वेशी सर्वकारणकारणम्। त्रिपुरा सुन्दरी प्रोक्ता स्वतन्त्रा चिद्विलासिनी॥ ३१॥
अनेकरूपा सा शक्तिर्जाता भक्तकृपावशात्। सर्वश्रेष्ठा सर्वमाता त्रिपुरा वाक्समाश्रया॥ ३२॥
तन्मूर्त्तिः सर्वतोत्कृष्टा तत्सिद्धान्तः परो मतः। सैव सर्वेश्वरी सर्वपूज्या शृणु मुनीश्वर॥ ३३॥
तद्रहस्यं महापुण्यं शिववक्त्रैकगोचरम्। आदिनाथाच्छक्तिमुखात्सदाशिवतुरीयकात्॥ ३४॥
रुद्राद्विष्णोर्मया लब्धं नान्यो जानाति कश्चन। मर्त्ये लोके महाविष्णोरंशो दत्तगुरुः स्मृतः॥ ३५॥
तेन श्रीकण्ठमुखतः श्रुतं स्वांशे समाक्षिपत्। भार्गवः सोऽपि गुर्वाज्ञावशेन प्रोक्तवान् ततः॥
सुमेधसे स्वशिष्याय स सम्प्रति महीतले। चिकीर्षुर्ग्रन्थरूपेण हालास्यं समुपस्थितः॥ ३७॥
त्रिपुराध्याननिरतः श्रीगुरोराज्ञया बुधः। इत्युक्तं देवदेवेन ब्रह्मणा ब्राह्मणं प्रति॥ ३८॥
तत्त्वां द्रष्टुमिह प्राप्तः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते। इति सर्वं मया प्रोक्तं यथा वृत्तं समागमे॥ ३९॥
उत्तरं वद मत्प्रश्ने यज्ज्ञातं हारितायन। इति नारदवाक्यं स श्रुत्वा सञ्चिन्त्य सर्वतः॥ ४०॥
नोत्तरं ज्ञातवान्वक्तुं लज्जितो मुनिरब्रवीत्। महर्षेऽत्र न जानामि किञ्चिदप्युत्तरं तव॥ ४१॥

लेश मात्र कृपा से अपनी आत्मा में ही संचित छोटे-छोटे कण में भी जो पूर्ण है वह भगवती त्रिपुरा हैं॥ २७॥ जो स्वयं अजन्मा रहकर भी संसार से भिन्न रहते हुए भी हर पल चौदहों भुवनों को विचित्र देह, प्राण एवं करणों से आच्छादित करती रहती हैं॥ २८॥ जिनके आदि, मध्य और अन्तभाग मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं जानते हैं। हम तो केवल उनके चरणकमल के धूलिकण मात्र हैं॥ २९॥ सृष्टि, स्थिति और विनष्टि का तिरोधान या अनुग्रह जो स्वयं करती है तथा हम त्रिदेवों की स्थिति से जो सदैव भिन्न हैं॥ ३०॥ वह सबकी देवी हैं, सबकी ईश्वरी हैं, सभी कारणों की कारण हैं, वह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं, ब्रह्मविलासिनी हैं, परम सुन्दरी हैं। वह त्रिपुरा नाम से ख्यात हैं॥ ३१॥ भक्तों पर कृपा कर वह महाशक्ति अनेक रूप धारण करती हैं। वह सबसे बड़ी ताकत हैं। वह सबकी माता हैं। वाणी ही उनका निवासस्थान है॥ ३२॥ उनकी मूर्त्ति सब ओर से उत्कृष्ट हैं। उनका सिद्धान्त श्रेष्ठ एवं विश्वसित हैं। वही सर्वेश्वरी हैं, वही सर्वपूज्या हैं। मुनीश्वर! आप इसे सुनें॥ ३३॥ वह त्रिपुरा का रहस्य महापुण्यप्रद है। केवल शिवमुख से ही ग्राह्य है। यह रहस्य आदिनाथ से शक्ति ने सुना, शक्तिमुख से सदाशिव तुरीयक ने, उनसे रुद्र और रुद्र से विष्णु और भगवान् विष्णु से मैंने जाना। मेरे अतिरिक्त और कोई इस रहस्य को नहीं जानता है। मर्त्यलोक में महाविष्णु के अंश से प्रादुर्भूत गुरु दत्तात्रेय इसे जानते हैं॥ ३४-३५॥ गुरु दत्तात्रेय ने श्रीशिवमुख से सुने उस रहस्य को अपने ही अंश से समुद्भूत परशुरामजी को बतलाया। फिर उन्हीं की आज्ञा से परशुरामजी ने अपने शिष्य सुमेधा से कहा॥ ३६॥ परशुराम ने हालास्य नगर में उपस्थित इस रहस्य को ग्रन्थ रूप में निबन्धित करने के इच्छुक धरती पर मौजूद अपने शिष्य सुमेधा को बतलाया॥ ३७॥ ब्रह्मा के मुख से इस तरह सुनकर त्रिपुरा के ध्यान में तत्पर उस बुद्धिमान् ने गुरु की आज्ञा से यह रहस्य उन्हें बतलाया॥ ३८॥ इस तरह जैसा मैंने जाना उसी तरह समझा दिया। मैं सच-सच तुम्हें बतलाता हूँ कि तुमसे मिलने के लिए मैं आया हूँ॥ ३९॥ ओ हारितायन! तुम जो कुछ जानते हो मेरे प्रश्न का उत्तर दो। नारद की यह बात सुनकर हर तरह से सोचकर हारितायन ने कहा॥ ४०॥ मैं कुछ भी उत्तर नहीं जानता, कुछ

भवान्सर्वं वदतु मे यदत्रानन्तरं शिवम् । भवतोक्तं यथा तद्वद् गुरुणाहं प्रचोदितः ॥ ४२॥
ग्रन्थतः कुरु वत्सेति त्रिपुराया रहस्यकम् । श्रुतं गुरुमुखात्सर्वं ध्याननिष्ठेन तन्मया ॥ ४३॥
विस्मृतं मन्दबुद्धित्वाद्दयां कुरु मयि प्रभो । इत्युक्त्वा तस्य चरणौ प्रणिपत्यान्वयाचत ॥ ४४॥
नारदोऽथ चिरं तत्र ध्यात्वा सर्वमचेष्टत । अथ ध्यानाहुतो ब्रह्मा नारदेन महर्षिणा ॥ ४५॥
आजगाम क्षणात्तत्र कृपया भाविगौरवात् । प्राप्तं तत्र विधातारं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४६॥
नवविद्रुमसङ्काशं चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् । कमण्डलुश्चाक्षमालामभयं वरमेव च ॥ ४७॥
दधानं श्वेतवसनं स्वच्छयज्ञोपवीतकम् । तेजोराशिं समीक्ष्याथो नारदः सहसोत्थितः ॥ ४८॥
सुमेधसाऽप्यनुगतो दण्डवत्प्रणनाम तम् । सम्पूज्यार्घ्यासनाद्यैस्तं कृताञ्जलिरवस्थितः ॥ ४९॥
दृष्ट्वाऽऽह नारदं ब्रह्मा वत्स किं ते स्मृतोऽस्म्यहम् । किं कर्त्तव्यं मया तेऽद्य वद यत्प्रार्थितं त्वया ॥
इति श्रुत्वाऽथ वचनं नारदः प्रत्युवाच तम् । भगवन् त्वत्प्रसादेन परिपूर्णमनोरथः ॥ ५१॥
भवतोक्तं पुरा वाक्यं मार्कण्डेयाय धीमते । त्रिपुराया रहस्यस्य माहात्म्यमतिचित्रितम् ॥ ५२॥
तत एनं सुमेधाख्यं तद्रहस्यकविं मुनिम् । पश्यामीत्यागतोऽत्राहं दृष्टोऽयं हारितायनः ॥ ५३॥
भवद्वाक्यं सत्यमस्तु कविर्भूयादयं मुनिः । परं भवन्तं पृच्छामि किञ्चिन्मे मनसि स्थितम् ॥ ५४॥
त्रिपुरा परमेशानी साक्षात्परशिवात्मिका । तत्केन पुण्यपाकेन प्राप्तमेतेन सेवनम् ॥ ५५॥
तद्रहस्याचार्य एषः सर्वोपासकपूज्यताम् । कथं प्राप्तोऽत्र नैवास्ति साधारणफलादिदम् ॥ ५६॥

भी बोलने में लज्जा होती है। हे महर्षे! इस विषय में आपके प्रश्न का मैं कुछ भी उत्तर नहीं जानता ॥ ४१ ॥ भगवान् शिव का वह गुप्त रहस्य खोलकर मुझे समझायें। आपने जैसा कहा है उसी तरह मैं गुरु से प्रेरित हूँ॥ ४२॥ हे वत्स! त्रिपुरा के इस रहस्य को तुम ग्रन्थ रूप में प्रतिपादित करो। उनके ध्यान में मग्न मैंने गुरुमुख से सब कुछ सुन लिया है॥ ४३॥ फिर भी मन्दबुद्धि होने के कारण मैं सब कुछ भूल गया। हे प्रभु! मुझ पर दया करें। ऐसा कहकर उनके चरणों पर गिर कर उसने याचना की॥ ४४॥ इसके बाद नारद ने वहीं बहुत काल तक ध्यानरत होकर सब कुछ जानने की चेष्टा की। महर्षि नारद ने ध्यानावस्था में ही ब्रह्माजी को बुलाया॥ ४५॥ महर्षि नारद के ध्यान करने पर भविष्य की गुरुता को ध्यान में रख कर क्षणभर में ही प्रज्वलित अग्निशिखा की तरह प्रदीप्त ब्रह्माजी वहाँ उपस्थित हो गये॥ ४६॥ नये मूँगे की तरह उनके शरीर का वर्ण रक्ताभ था। उनके चार मुख तथा चार हाथ थे। चारों हाथों में क्रमशः कमण्डलु, अक्षमाला, अभयदान एवं वरदान थे॥ ४७॥ श्वेत वस्त्र एवं स्वच्छ यज्ञोपवीत धारण किये थे। उस तेजोराशि को सामने खड़ा देखकर नारदजी सहसा उठ खड़े हुए॥ ४८॥ उनके पीछे सुमेधाजी भी उठ खड़े हुए। फिर दण्डवत् होकर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनकी पूजा कर अर्घ्य एवं आसनादि दिये। फिर दोनों हाथ जोड़कर वहाँ खड़े हो गये॥ ४९॥ फिर ब्रह्माजी ने नारद की ओर देखकर कहा—वत्स! तुमने मुझे क्यों याद किया है? तुम्हारे लिए मुझे क्या करना है? तुम अपनी अभिलषित वस्तु बतलाओ॥ ५०॥ ब्रह्माजी की ये बातें सुनकर नारदजी ने उनसे कहा—भगवन्! आपकी कृपा से मेरे सभी मनोरथ पूरे हो चुके हैं॥ ५१॥ भगवती त्रिपुरा के रहस्य का माहात्म्य आपने पहले ही बुद्धिमान् महर्षि मार्कण्डेयजी को बतलाया था॥ ५२॥ आपकी आज्ञा से सुमेधा नाम के उस रहस्य के कवि मुनि को देखने आया हूँ। यहाँ आकर उस हारितायन को मैंने देखा है॥ ५३॥ आपकी बात सत्य हो, यह सुमेधा मुनि कवि बन जायें। फिर भी मेरे मन में जो कुछ है, वह आपसे पूछता हूँ॥ ५४॥ स्वयं त्रिपुरा तो साक्षात् परशिवात्मिका हैं, परमेश्वरी हैं; उनकी सेवा का अवसर इस महामुनि को किस पुण्य के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है॥ ५५॥ भगवती त्रिपुरा के रहस्य के ये आचार्य हैं। सारे

एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः । गोप्यमप्येतदिच्छामि श्रोतुं तत्कृपया वद ॥ ५७ ॥
एतच्छ्रुत्वा नारदोक्तं ध्यात्वा किञ्चिदुवाच ह । शृणु नारद यत्सृष्टमस्य पुण्यं पुरा कृतम् ॥ ५८ ॥
पुराऽयं ब्राह्मणः कश्चिदलर्क इति विश्रुतः । सुमन्तुतनयः प्रत्यग्वाहिनी या सरस्वती ॥ ५९ ॥
तस्यास्तीरे सुरुचिरे निवासे निवसन्द्विजः । चारुरूपा तस्य भार्या सती भर्तृपरायणा ॥ ६० ॥
अयं तस्य सुतो बालः पञ्चवर्षः प्रियः पितुः । सुमन्तुरन्वहं दुर्गापूजोपासनतत्परः ॥ ६१ ॥
महाभक्तो दृढमतिः सदा दुर्गापरायणः । अयीत्येवं स्वभार्यामाह्वयत्यनुवासरम् ॥ ६२ ॥
अलर्क एष तत् श्रुत्वा समभ्यस्य च मातरम् । बालभावादाह्वयति ऐऐ इति मुहुर्मुहुः ॥ ६३ ॥
अथ रोगेणाभिभूतो बालो मातृप्रियः सदा । ऐऐ इति वदन्ध्यायन्मातरं प्राप पञ्चताम् ॥ ६४ ॥
त्रैपुरे मन्त्रराजे तदाद्यं बीजमबिन्दुकम् । प्रोक्तं वाग्भवमित्येतत् वाग्यस्माद्भवति द्रुतम् ॥ ६५ ॥
निरन्तरं तदावृत्त्या गतः कालोऽस्य भूयसा । अन्ते तदेव प्रवदन्देहन्यासमवाप्तवान् ॥ ६६ ॥
तत्पुण्यस्य प्रभावेन श्रीबाला त्रिपुरा परा । महायोगिभिरप्येषा प्रार्थ्यते दर्शनेच्छया ॥ ६७ ॥
सा प्रसन्नाऽचिरेणास्य प्रत्यक्षाभवदम्बिका । अनुग्रहं कृतवती स्तोत्रेणानेन संस्तुता ॥ ६८ ॥
विचित्रार्थपदाढ्येन छन्दोबद्धात्मना तदा । न शक्तिरस्य पद्यानामासीद्विवेचितुं तदा ॥ ६९ ॥
तद्बीजजपमाहात्म्याद्देवतादर्शनेन च । अनुपस्थितमेवास्य स्तोत्रमत्यन्तविस्मृतम् ॥ ७० ॥

उपासकों के बीच ये पूज्यतम हैं। यह किसी साधारण पुण्य का फल तो है ही नहीं? आखिर यह अवसर इन्हें प्राप्त कैसे हुआ?॥ ५६॥ हे देव! यही मेरा संशय है। मेरे सारे संशयों को तो आप ही दूर कर सकते हैं? अगर यह रहस्य गोपनीय है, फिर भी मैं इसे सुनना चाहता हूँ। मुझ पर कृपा कर यह रहस्य मुझे बतला दें॥ ५७॥ नारदजी का यह प्रश्न सुनकर ब्रह्माजी कुछ क्षण तक ध्यानस्थ हो गये। फिर कुछ कहना शुरू किया। सुनो नारद! इसके पुराकृत पुण्य है जिसके फलस्वरूप इन्हें ऐसा करने का मौका मिला है॥ ५८॥ भीतर की ओर बहने वाली सरस्वती नदी के किनारे बहुत पहले अलर्क नाम का ब्राह्मण रहता था। इसके पिता का नाम सुमन्तु था॥ ५९॥ वह उस सरस्वती नदी के किनारे सुरुचिपूर्ण आवास में अति सुन्दर, सती और पतिपरायणा पत्नी के साथ रहता था॥ ६०॥ उसका पाँच साल का बच्चा अपने पिता का बहुत प्यारा था। प्रतिदिन सुमन्तु भगवती दुर्गा की पूजा एवं उपासना में तत्पर रहता था॥ ६१॥ दुर्गादेवी का वह परम भक्त था। उसकी बुद्धि दृढ़ थी। सदा ही वह दुर्गा के चरणों में आसक्त था। अपनी पत्नी को वह हर दिन 'अयि-अयि' कहकर बुलाता था॥ ६२॥ अलर्क के पिता उसकी माँ को 'अयि' कहकर बुलाते थे, यह सुनकर वह भी अपने बाल-स्वभाव के कारण माँ को 'अयि-अयि' की जगह 'ऐ-ऐ' कहकर बार-बार बुलाने लगा॥ ६३॥ वह बच्चा बड़ा ही मातृप्रिय था। एक बार वह जोर से बीमार हो गया। माँ का ध्यान करते हुए 'ऐ-ऐ' अस्फुट स्वर का उच्चारण करते-करते उसने प्राण छोड़ दिये॥ ६४॥ इस तरह बिन्दु रहित त्रिपुरा-मन्त्रराज के वाग्भव, आदिबीजाक्षर मन्त्र का लगातार उच्चारण करता रहा॥ ६५॥ लगातार इस शब्द की आवृत्ति करते-करते बहुत समय निकल गया। अन्त में उसी का उच्चारण करते हुए देहन्यास को प्राप्त किया॥ ६६॥ इस पुण्य के प्रभाव से श्रीबाला परा त्रिपुरा, जिनके दर्शन की इच्छा से महायोगी-समूह भी सदैव प्रार्थना करते रहते हैं॥ ६७॥ वह पराम्बिका शीघ्र ही प्रसन्न होकर इसके सामने प्रत्यक्ष हो गई। उसके स्तोत्र से संस्तुत होकर भगवती ने उस पर अनुग्रह किया॥ ६८॥ विचित्र अर्थ और पद से समृद्ध छन्दोबद्ध रचना इसने की। उस समय इसके पद्य का विवेचन करने की क्षमता किसी में नहीं थी॥ ६९॥ उस बीजमन्त्र के जप करने के माहात्म्य से तथा देवता-दर्शन से इसके अप्रस्तुत ही वे स्तोत्र अत्यन्त विस्मृत हो गये॥ ७०॥

अज्ञानेन यतो जप्तं पुरा बीजमबिन्दुकम् । अतः सर्वं विस्मरति धारणाविरहादयम् ॥ ७१ ॥
तथापि भाविकार्यस्य गौरवाद्वचनान्मम । सर्वं प्रतिस्फुरत्वेनमदृष्टश्चाऽश्रुतं तथा ॥ ७२ ॥
भूतं स्थितं भविष्यच्च गुर्वनुक्तमनीक्षितम् । छन्दोव्याकरणं चार्वर्थः काव्यरूपकलक्षणम् ॥ ७३ ॥
सर्वं भासतु तथ्येन कल्पान्तरगता अपि । लोकान्तरमानसाश्च व्यक्ताव्यक्ता अतीन्द्रियाः ॥ ७४ ॥
प्रतिभासन्तु चित्तेऽस्य न मृषोक्तं भवेत्क्वचित् । कर्त्ता स्यादेष त्रिपुरारहस्यस्य महामतिः ॥ ७५ ॥
पुरा स्थितमिदं सर्वमग्रन्थात्मतयाऽधुना । हारितायननिबद्धं ग्रन्थरूपं भविष्यति ॥ ७६ ॥
इतिहासमिदं श्रेष्ठं विचित्रार्थकथायुतम् । शृण्वतां पठतां भक्त्या तुष्टा स्यात्त्रिपुराम्बिका ॥
पठत्वशेषशास्त्राणि शृणोत्वखिलसत्कथाः । न यावदेतत्पठितं श्रुतं वा भुवि जायते ॥ ७८ ॥
तावत् केन श्रुतं नैव पठितं वा भविष्यति । किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वसारमिदं भवेत् ॥ ७९ ॥
एतत्सम्यग्विदित्वा तु नावशिष्यते किञ्चन । यावदेतन्न जानाति तावन्न स्यात्सुपूर्णता ॥ ८० ॥
सुमेधः शृणु मद्वाक्यं तव सर्वं स्फुरिष्यति । आरभ्य रामवचनात्त्रिपुरास्वप्नदर्शनम् ॥ ८१ ॥
कर्त्तव्यं क्रमशः सर्वं ज्ञातं तव भविष्यति । षट्त्रिंशद्दिवसैरेतत्कर्तव्यं भवता भवेत् ॥ ८२ ॥
अध्यायानां चतुष्कं स्यात्प्रत्यहं कुर्वतस्तव । सहस्राणां द्वादशकं खण्डं त्रितयमेव च ॥ ८३ ॥
आद्यो माहात्म्यखण्डः स्यात् ज्ञानखण्डस्तथापरः । चर्याखण्डस्तृतीयः स्यादेवमेतद्भविष्यति ॥
कृत्वैतदादौ देवर्षे कर्त्तव्यं परमाद्भुतम् । वत्स नारद भक्त्यैतच्छ्रोतव्यं वै त्वया भवेत् ॥ ८५ ॥

अज्ञानपूर्वक बिन्दु रहित बीजमन्त्र का इसने पहले जप किया था, इसीलिए उसे सँभालने की शक्ति के अभाव में सब कुछ भूल गया ॥ ७१ ॥ फिर भी भविष्य में होने वाले कार्य की गुरुता से तथा मेरे वचन के प्रभाव से सब कुछ इसे स्फुरित होगा, अनदेखे एवं अनसुने विषयों का वर्णन करेगा ॥ ७२ ॥ भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान का; गुरु द्वारा अनकहे तथा अनदेखे विषयों का, छन्द और व्याकरण के सुन्दर अर्थ का, काव्य और रूपक के लक्षण का इसे बोध होगा ॥ ७३ ॥ तथ्य के साथ कल्पान्तर में घटित घटना भी इसे दीख पड़ेगी। लोकान्तर के मन की बातें, व्यक्त एवं अव्यक्त तथा ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच से बाहर की बातें भी यह जानेगा ॥ ७४ ॥ इसके मन में जो स्फुरित होगा, वह कभी असत्य नहीं होगा। यह महामति इस त्रिपुरारहस्य का कर्त्ता होगा ॥ ७५ ॥ यह सब पहले से ही विद्यमान है। इस समय हारितायन इसे एक साथ जोड़कर ग्रन्थ का रूप देंगे ॥ ७६ ॥ विचित्र अर्थवाली कथा के साथ यह इतिहास परम श्रेष्ठ है। भक्तिपूर्वक जो इसका पाठ करेगा या सुनेगा उस पर भगवती त्रिपुरा प्रसन्न होगी ॥ ७७ ॥ इस धरती पर जन्म लेकर जो अखिल शास्त्रों का अध्ययन कर ले या सारी सत्कथाओं का श्रवण कर ले, फिर भी जब तक इस त्रिपुरारहस्य का पाठ न कर ले या श्रवण न कर ले, तब तक उसका श्रम सफल नहीं होगा। हे देवर्षे! अधिक कहने से क्या लाभ ? सकल ज्ञान का सार यह त्रिपुरारहस्य ही होगा ॥ ७८-७९ ॥ इसे ठीक से जान लेने के बाद कुछ भी जानने को शेष नहीं रह जाता है। जब तक इसकी जानकारी न हो जाय तब तक किसी के ज्ञान की पूर्णता नहीं होती ॥ ८० ॥ ओ सुमेधा! मेरी बातें सुनो, तुम्हें सब कुछ स्फुरित होगा। परशुराम के प्रथम दर्शन से लेकर स्वप्न में त्रिपुरा-दर्शन तक की सारी बातें क्रमशः तुम्हें स्फुरित होगीं ॥ ८१ ॥ तुम्हें क्या करना चाहिए ? इसका बोध तुम्हें स्वतः होगा। मात्र छत्तीस दिनों में ही इस ग्रन्थ का तुम निर्माण करोगे ॥ ८२ ॥ प्रतिदिन चार अध्याय की रचना तुम करोगे। इस तरह बारह खण्ड तीन स्तरों में विभक्त होकर छत्तीस दिनों में ग्रन्थ समाप्त हो जायेगा ॥ ८३ ॥ इस तरह तीन स्तर में पहला माहात्म्य खण्ड होगा, दूसरा ज्ञान खण्ड होगा तथा तीसरा चर्या खण्ड होगा। ऐसा ही होना है ॥ ८४ ॥ हे देवर्षे! प्रथम इस महाअद्भुत ग्रन्थ की रचना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

वक्ताऽयमाद्यः श्रोता त्वं नारदेत्थं भविष्यति। इत्थमुक्त्वा जगत्कर्त्ता ताभ्यां तत्र प्रपूजितः॥
तदैवान्तर्हितो ब्रह्मा नारदोऽपि सभाजितः। सुमेधसा ययौ वीणां रणयन्नीप्सितान्दिशम्॥ ८७॥
अथ क्षणं स्थितस्तूष्णीं विमना हारितायनः। सत्सङ्गविरहादीषत्कलुषीकृतमानसः॥ ८८॥
अथ वेगवतीं गत्वा स्नात्वा कृतविधिर्मुनिः। सुन्दरेशं सुमीनाक्षीमभ्यर्च्य गणपं गुरुम्॥ ८९॥
स्मृत्वा ग्रन्थस्य करणमुपचक्राम स द्विजः। ॐनमः कारणानन्देत्यारभ्य क्रमशः कृतम्॥ ९०॥
समाप्तिमकरोदन्ते सा भवेत् त्रिपुरैव ह्रीम्। शिवशक्तिप्रणवयोर्मध्ये ग्रन्थस्तु तन्मयः॥ ९१॥
एवंविधस्तेन कृतो ब्रह्मणोक्तं यथा पुरा।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥ २००॥



पुनः वत्स नारद भक्तिपूर्वक तुम्हें यह श्रोतव्य होगा॥ ८५॥ इसका वक्ता सुमेधा होंगे और श्रोता महर्षि नारद तुम बनोगे। इस तरह बोलकर उन दोनों से प्रपूजित सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी वहीं तिरोधान हो गये। नारदजी ने उन्हें प्रणाम कर वीणा बजाते हुए अभीप्सित दिशा की ओर प्रस्थान किया॥ ८६-८७॥ सुमेधाजी कुछ क्षण वहाँ अनमने ढंग से चुपचाप खड़े रहे। सत्संगति-विच्छेद के कारण उसका मन हलका विषाद से भर गया था॥ ८८॥ फिर मुनि ने वेगवती नदी में जाकर पहले विधिवत् स्नान किया। पुनः परमात्मा और भगवती मीनाक्षी की पूजा कर गणेश और गुरु की पूजा की॥ ८९॥ पहले ग्रन्थ के उपक्रम का स्मरण कर 'ॐ नमः कारणानन्द' से प्रारम्भ कर अन्त में 'त्रिपुरैव ह्रीं' लिखकर शिव-शक्ति प्रणव के बीच तन्मय ग्रन्थ का निर्माण सुमेधा ने किया। पहले ब्रह्माजी ने जैसा कहा उसी तरह सुमेधा ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया॥ ९०-९१॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



अथ तृतीयोऽध्यायः

आदिनाथो महेशानः सर्वकारणकारणम् । सर्वकर्त्ता विजयते सर्वात्मकतया स्थितः ॥ १ ॥
श्रीविष्णोरंशयोगीशो दत्तात्रेयो महामुनिः । गूढचर्यां चरन्लोके भक्तवत्सल एधते ॥ २ ॥
जमदग्न्यरणेर्जातः क्षत्रेन्धनमहानलः । रामोऽभ्युदेति भक्तान्तरज्ञानध्वान्तनाशकः ॥ ३ ॥
एवं ध्यात्वा गुरून् स्वर्णपद्मिनीरोधसि स्थितः । पितामहोक्तविधिना षट्त्रिंशद्दिवसैः कृतम् ॥
इतिहासं भागवतं तन्त्रसारमखण्डितम् । वैराग्यभक्तिमाहात्म्यक्रियाज्ञानसमन्वितम् ॥ ५ ॥
नानाख्यानकथाचित्रं त्रिपुराया रहस्यकम् । पठतां पापशयनं शृण्वतां क्लेशनाशनम् ॥ ६ ॥
विचारितं स्वात्मलाभजननं मोक्षसाधनम् । पूजितं त्रिपुराभक्तिकरं दृष्टं शुभोदयम् ॥ ७ ॥
विद्याप्रदं सुलिखितं सेवितं वाञ्छितार्थदम् । यत्र श्रीत्रिपुरादेव्याः कथाविभवकीर्तनम् ॥ ८ ॥
ज्ञानवैराग्यभक्त्याढ्यं नारदाद्यैः श्रुतश्च यत् । तत्र किं दुर्लभतरं चिन्तामणिरिव स्थितम् ॥ ९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राप्तो देवर्षिसत्तमः । वल्लकीं वादयन्रम्यामानन्दाप्लुतमानसः ॥ १० ॥
सुमेधा अपि तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय सुस्मितः । सम्पूज्यासनपाद्याद्यैः कृताञ्जलिरभाषत ॥ ११ ॥
देवर्षे त्वत्प्रसादेन ज्ञातं सम्यग्यथार्थतः । प्रगुणाञ्जनयोगेन प्रज्ञाचक्षुरिवाखिलम् ॥ १२ ॥

* विमला *

सब कारणों के कारणस्वरूप, सबका निर्माता, सबकी आत्मा के रूप में उपस्थित आदिनाथ भगवान् शिव की विजय हो ॥ १ ॥ इसं संसार में गूढ़ तपश्चर्या में लीन, भक्तवत्सल, भगवान् विष्णु के अंश से समुत्पन्न, महायोगी, महामुनि दत्तात्रेय का अभिवादन करता हूँ ॥ २ ॥ क्षत्रियरूपी इन्धन को जलाने के लिए जंमदग्निरूपी अरणि से उत्पन्न अग्निस्वरूप भक्तों के अन्तःस्थित अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाशक परशुराम की विजय हो ॥ ३ ॥ इस तरह गुरुजनों का ध्यान कर स्वर्णपद्मिनी तट पर अवस्थित ब्रह्माजी के द्वारा बतलायी गयी विधि से छत्तीस दिनों में ग्रन्थ की रचना कर डाली ॥ ४ ॥ वैराग्य, भक्ति, माहात्म्य के क्रिया-ज्ञान से समन्वित अखण्डित तन्त्रसार भगवती के दिव्य चरित्र का यह इतिहास भगवती त्रिपुरा के रहस्य से समन्वित अनेक आख्यानों एवं कथाचित्रों का जो पाठ करेगा उसका पाप शमित होगा एवं जो सुनेगा उसका क्लेश विनष्ट होगा ॥ ५-६ ॥ सुविचारित, अपनी आत्मा के लिए लाभदायक, मुक्ति के लिए साधन, पूजित, त्रिपुरा के चरणों में भक्तिप्रद पर्यवेक्षित, मङ्गलदायक यह कथा है ॥ ७ ॥ विद्याप्रद, सुलिखित, सेवित भगवती श्रीत्रिपुरा देवी का जहाँ इस कथा-विभव का गुणवर्णन होता है, वहाँ व्यक्ति को अभिलषित अर्थ की प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥ ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से भरपूर, नारदादि महर्षियों से सुने गये, चिन्तामणि की तरह वाँच्छितार्थदायक यह कथा-विभव जहाँ मौजूद हो वहाँ भला क्या दुर्लभतर पदार्थ हो ? ॥ ९ ॥ इसी बीच मीठी-मीठी वीणा बजाते हुए महर्षि नारद वहाँ पहुँचे। उनका मन आनन्दसागर में गोता खा रहा था ॥ १० ॥ ऋषि सुमेधा भी अचानक महर्षि नारद को सामने देख कर मुस्कराते हुए उठ खड़े हुए। आसन, पाद्य, अर्घादि से उनकी अच्छी तरह पूजा कर हाथ जोड़ते हुए उन्होंने कहा ॥ ११ ॥ हे देवर्षे! आपकी ही कृपा से प्रगुण अञ्जन योग से प्रज्ञाचक्षु की तरह सब कुछ मैंने यथार्थतः ठीक ढंग से समझ लिया ॥ १२ ॥ जिस तरह ब्रह्माजी ने कहा था उसी

पितामहोक्तं सम्पन्नं रचितं तद्रहस्यकम्। आज्ञापयाग्रे शिष्यं मां भवतः किं करोम्यहम्॥ १३॥
अद्य सर्वाणि शास्त्राणि छन्दांसि विविधानि च। सर्वे लोका दिशः कालाः सेन्द्रियाश्च निरिन्द्रियाः॥
ज्ञाताः करस्थितस्वच्छवैक्रान्तमणिखण्डवत्। नमस्ते ब्रह्मपुत्राय नारदाय महात्मने॥ १५॥
यत्कृपायोगतः सम्यक् ज्ञातं सर्वं परापरम्। इत्युक्त्वा पदयोस्तस्य दण्डवन्निपपात ह॥ १६॥
अथ तं नारदोत्थाप्य वक्षसाऽऽपीड्य तं मुनिम्। आसने सन्निवेश्याऽथो मधुरं वाक्यमब्रवीत्॥
हारितायन धन्योऽसि त्वत्समो नैव विद्यते। यस्यैवं त्रिपुरापादभक्त्या सम्पत्तिरुद्गता॥ १८॥
यत्त्वया त्रिपुरादेव्या रहस्यं रचितं शुभम्। तच्छुश्रूषुरहं प्राप्तस्त्वच्छयं ब्रह्मवाक्यतः॥ १९॥
श्रद्धावतो ममाग्रे तत्सर्वं वद सुविस्तृतम्। इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राञ्जलिर्हृष्टमानसः॥ २०॥
आनन्दाश्रुकलापूर्णविकसन्नेत्रपङ्कजः। त्रिपुरास्मृतिसञ्जातरोमाञ्चद्विगुणाङ्ककः॥ २१॥
अवदन्नारदं वाक्यं मधुनिष्यन्दसुन्दरम्। उपपन्नं तवैवेदं ब्रह्मपुत्र महामुने॥ २२॥
यच्छिष्यभूतान्मत्तस्त्वं शुश्रूषस्याखिलं विदन्। नैसर्गिकः स्वभावोऽयं सतां सुमहतां भवेत्॥
अमत्सरा अवरतोऽप्यल्पं शृण्वन्ति सज्जनाः। नैतच्चित्रं परादेव्याश्चारित्र्यममृतोपमम्॥ २४॥
न तु द्राक्षाफले भेदो लोष्ट्रस्थे मणिपात्रगे। समं स्वभावमधुरं न पात्राद्भिद्यते रसः॥ २५॥
तवाज्ञां शिरसा धृत्वा विधात्राज्ञामनुस्मरन्। वदाम्यतिविचित्रं तद्रहस्यं परमामृतम्॥ २६॥

तरह मैंने त्रिपुरारहस्य की रचना कर ली है। मैं तो आपका शिष्य हूँ, आगे मुझे क्या करना है? कृपया आज्ञा दें॥ १३॥ आज आपकी ही कृपा से अखिल शास्त्रों के विविध छन्दों, चौदहों लोकों, दसों दिशाओं, तीनों काल एवं इन्द्रियजन्य तथा निरिन्द्रिय ज्ञान का मैं ज्ञाता हूँ। आज अतिस्वच्छ वैक्रान्त मणिखण्ड की तरह सब कुछ मेरे हाथ में है। हे ब्रह्माजी के पुत्र महात्मा नारद! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ १४-१५॥ 'आपकी ही कृपा से आज मैंने पर-अपर का ज्ञान प्राप्त कर लिया है।' यह कहते हुए सुमेधा ने. नारद के चरणों में दण्डवत् गिर कर प्रणाम किया॥ १६॥ इसके बाद नारदमुनि ने सुमेधा को उठाकर छाती से लगा लिया और फिर उन्हें आसन पर बैठा कर मधुर वचनों में कहा॥ १७॥ हे हारितायन! तुम धन्य हो, तुम्हारे जैसा कोई दूसरा नहीं है। क्योंकि तुम्हें भगवती त्रिपुरा के चरणों की भक्तिरूपी सम्पत्ति की उपलब्धि हुई है॥ १८॥ तुमने जो त्रिपुरारहस्य की शुभ रचना की है, ब्रह्माजी के कथनानुसार उसे ही सुनने के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ॥ १९॥ मुझ श्रद्धालु के आगे सुन्दर ढंग से विस्तारपूर्वक वह सब बतलाओ। नारद मुनि की ये बातें सुनकर आनन्दित होकर सुमेधा ने विनम्रभाव से हाथ जोड़ लिये॥ २०॥ पूर्णचन्द्र की तरह उनके विकसित नयनकमल आनन्द के आँसू से भर आये। भगवती त्रिपुरा के स्मरण मात्र से उनकी देह दुगुनी रोमांचित हो उठी॥ २१॥ मुख से मधु टपकते जैसे सुन्दर वाक्य सुनकर सुमेधा ने नारद से कहा—हे महामुने! हे ब्रह्मपुत्र! आपने जो कुछ कहा वह आपके योग्य ही है॥ २२॥ सब कुछ जानते हुए भी मुझ जैसे तुच्छ शिष्य के मुख से आप सब कुछ सुनना चाहते हैं। यह तो महापुरुषों और सज्जनों के नैसर्गिक एवं स्वभावसम्पन्न गुण होते हैं॥ २३॥ ईर्ष्यारहित सत्पुरुष तो सुनी हुई पश्चवर्ती तुच्छ बातों को भी गौर से सुनते हैं और यह तो अमृतोपम महादेवी त्रिपुरा के चरित्र का बखान है। यह सुनने में यदि आपकी अभिरुचि है तो इसमें आश्चर्य क्या है?॥ २४॥ अंगूर चाहे मिट्टी के बरतन में रखा हो या मणिपात्र में—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, स्वभाव से मीठा रस पात्र के कारण अपने स्वाद में कोई भेद नहीं करता। वह तो हर पात्र में एक जैसा मीठा ही है॥ २५॥ विधि के विधान को ध्यान में रखकर आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर परम अमृत तुल्य उस विचित्र रहस्य का वर्णन करता हूँ॥ २६॥ ओ प्रशान्त बुद्धि वाले!

आवयोः संवादरूपं समाहितमतिः शृणु । आसीद्ब्रह्मसुतः श्रीमान्भृगुर्मुनिगणेडितः ।। २७ ।।
तत्पुत्रश्च्यवनः साक्षाद्ब्रह्मणा सदृशो भुवि । सुकन्या यस्य चारित्र्यात्पित्रा दत्ता महात्मने ।।
येन सोमग्रहो दत्तो जित्वाऽश्विभ्यां शतक्रतुम् । ऋचीकस्तस्य तनयो महात्मा च्यवनोपमः ।।
तस्मै दत्ता स्वतनया गाधिना पुत्रमिच्छता । सेवया तोषितः सोऽपि वरं पत्न्यै प्रदत्तवान् ।। ३० ।।
सा वव्रे भ्रातरं पुत्रं क्षत्रं ब्रह्मकुलोत्तरम् । अथ सर्वं क्षत्रवीर्यं ब्रह्मवीर्यं स वीर्यवान् ।। ३१ ।।
आक्षिप्य निर्ममे तत्र पायसद्वयमुत्तमम् । तत्पुंसवनयुग्मं स हुत्वाग्नेः सम्भृतं तदा ।। ३२ ।।
एकं पत्न्यै परन्तस्या मात्रे दत्तं महात्मना । अथ गाधिमहाराज्ञो महिषी विपरीततः ।। ३३ ।।
कन्याया अधिकं मत्वा बुभुजे लक्षिता तया । कन्यया वञ्चयित्वा तां तज्ज्ञात्वा मुनिरब्रवीत् ।।
किं कृतं हे वरारोहे हतङ्कार्यं तवाधुना । वञ्चिताऽसि जनन्या त्वं चरुव्यत्ययहेतुतः ।। ३५ ।।
भविता तनयो भद्रे कालान्तकसमो नृपः । भ्राता साक्षाद्ब्रह्ममयो दैवमत्र परायणम् ।। ३६ ।।
तच्छ्रुत्वा घोरसङ्काशं वचनं साऽन्वतप्यत । प्रार्थयामास भर्त्तारं नत्वा साध्वी पुनः पुनः ।। ३७ ।।
ब्रह्मन्ननुग्रहो मेऽस्तु क्षन्तव्या मदपाकृतिः । ब्राह्मणस्य सुशान्तस्य तव पाणिगृहीत्यहम् ।। ३८ ।।
न भूयादीदृशः पुत्रः प्रसादं कुरु सर्वथा । तच्छ्रुत्वाऽऽह महाभागः श्रूयतां मद्वचः शिवे ।। ३९ ।।
पायसं मन्त्रसम्भूतममोघं तत्कथं भवेत् । न तद्व्यर्थं भवेदद्य किन्तु मद्वचनं शृणु ।। ४० ।।
शान्तस्तव सुतो भूयात्तत्सुतस्तादृशो भवेत् । सर्वक्षत्रान्तकृत्साक्षाद्विष्णोरंशो महाबलः ।। ४१ ।।

अब हम दोनों का वार्तालाप आप सुने। ब्रह्माजी के पुत्र मुनिगणों से पूजित श्रीमान् भृगु नामक एक मुनि थे।। २७।। धरती पर साक्षात् ब्रह्माजी की तरह उनके एक पुत्र थे, जिनका नाम च्यवन था। उनके गुणों से प्रभावित पिता के द्वारा प्रदत्त सुकन्या नाम की उनकी भार्या थी।। २८।। च्यवन ऋषि की ही तरह उन्हें ऋचीक नामक एक महात्मा पुत्र हुआ, जिन्होंने इन्द्र को पराजित कर अश्विनीकुमारों को यज्ञ में भाग दिलाया।। २९ ।। ऋषि ऋचीक को पुत्र चाहने वाले महर्षि गाधि ने अपनी पुत्री से उनका विवाह कर दिया। पत्नी की सेवा से प्रसन्न ऋचीक ने उन्हें वर दिया।। ३० ।। उसने क्षत्रियोत्तम भाई तथा ब्राह्मणश्रेष्ठ पुत्र की याचना की। ऋचीक मुनि ने अपने तप के प्रभाव से सम्पूर्ण ब्रह्मवीर्य एवं क्षत्रवीर्य को खींचकर उससे दो पायस का निर्माण किया। फिर उन दोनों का गर्भाधान संस्कार कर उससे अग्निकुण्ड में हवन किया।। ३१-३२ ।। पुनः उस महात्मा ने एक अपनी पत्नी के लिए और दूसरा उनकी माता के लिए दिया। किन्तु गाधिराज की पत्नी ने ठीक इसके विपरीत किया।। ३३ ।। गाधिराज की पत्नी ने बेटी की खीर को अधिक समझ कर स्वयं खा लिया और अपनी खीर बेटी को खिला दिया। कन्या ने इसे देखा और मुनि ऋचीक को सब कुछ बतला दिया। यह जानकर मुनि ने पत्नी से कहा।। ३४।। हे वरारोहे! तुमने खीर की अदला-बदली कर कैसा अनर्थ किया? चरु बदलने के कारण तुम अपनी माँ से ही ठगी गई।। ३५ ।। हे भद्रे! अब तुम्हारा बेटा कालान्तक की तरह प्रतापी राजा होगा और तुम्हारा भाई साक्षात् ब्रह्ममय और शान्त होगा।। ३६ ।। यह सुनकर डरी-सहमी सन्तप्त होकर बार-बार वह साध्वी पति के चरणों में गिरकर उनसे प्रार्थना करने लगी।। ३७।। हे ब्रह्मन्! मुझ पर कृपा करें, मेरा अपराध क्षमा करें। आप जैसे सुशान्त तपस्वी की मैं पाणिगृहीती पत्नी हूँ।। ३८ ।। मुझ पर आप कृपा करें, मुझे ऐसा कालान्तकोपम पुत्र न हो। यह सुन कर उस महाभाग ने कहा—हे शिवे! तुम मेरी बातें सुनो।। ३९ ।। चरु तो मन्त्रसम्भूत होने के कारण अमोघ है, इसलिए यह तो होगा ही। यह कभी व्यर्थ नहीं होगा, फिर भी मेरी बात पर गौर करो।। ४० ।। फिर भी मेरे वचन के प्रभाव से तुम्हारा पुत्र शान्त प्रकृति का होगा। पर तुम्हारी माता का पुत्र कालान्तक अर्थात् सर्वसंहारक यमराज

ब्राह्मणो भविता सोऽपि क्षत्रवीर्येण सम्भृतः। इति श्रुत्वा भर्तृवचोऽप्रसन्ना साऽभवत्तदा॥ ४२॥
अथ कालेन सुषुवे जमदग्निं सुतं सती। स ब्राह्मणः सुशान्तात्मा ब्रह्मभूतः शुचिव्रतः॥ ४३॥
तस्य कालेन सञ्जातो रेणुकायां शुभेक्षणः। क्षत्रनीहारमिहिरो महाबलपराक्रमः॥ ४४॥
स कदाचित्पितृवधक्रोधात्सन्तोष्य शङ्करम्। प्राप्तवान्परशुं तस्मादमोघं चापमेव च॥ ४५॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रां करवाण्यहम्। इति तत्र प्रतिज्ञाय पितृघातसुमन्युना॥ ४६॥
आदाय परशुं दिव्यं क्षत्राणां कुलनाशनः। निःक्षत्रां पृथिवीं कृत्वा कश्यपायाऽखिलां भुवम्॥
दत्त्वा प्रत्यक्समुद्रात्तु भूमिं जित्वा महौजसा। सम्प्रार्थितो ऋषिवरैर्विरतः क्षत्रघातनात्॥ ४८॥
तप आतिष्ठदुग्रं सः प्रकृत्या चण्डकोपनः। क्रोधं शान्त्यनले हुत्वा तपसैवातिभूयसा॥ ४९॥
जिताः समस्तपुण्यानां लोकास्तेन महात्मना। अथ कालेन महता रामः सत्यपराक्रमः॥ ५०॥
रावणस्य वधार्थाय स्वांशेनाऽवततार ह। तेन मैथिलभूपालगृहविन्यस्तशाङ्करम्॥ ५१॥
धनुः समारोप्य तदा वीर्यशुल्कामुपावहत्। आरोप्यमाणं तद्भग्नं धनुः शैवं महोल्बणम्॥ ५२॥
तत्कर्म सर्वलोकानां श्लाघ्यमासीन्महाद्भुतम्। एतच्छ्रुत्वा जामदग्न्यो वैमानिकमुखात्तदा॥
असहन्क्षत्रियाणां तच्छ्लाघानां भार्गवस्तदा। गाढानलसुसम्पर्कजातोत्सेकपयो यथा॥ ५४॥
क्रोधारुणितनेत्रान्तरागाग्निज्वालया जगत्। दहन्निव क्रोधमूर्त्तिः प्रलयाग्निरिव ज्वलन्॥ ५५॥

की तरह भगवान् विष्णु के अंश से प्रादुर्भूत होगा॥ ४१॥ क्षत्रवीर्य से उत्पन्न होने के बावजूद भी वह ब्राह्मण ही होगा। पति की ये बातें सुनकर वह साध्वी दुःखी हो गई॥ ४२॥ कालान्तर में उस सती ने जमदग्नि नामक बेटे को जन्म दिया। वह ब्राह्मण बिलकुल शान्त आत्मा वाला, ब्रह्मभूत एवं शुचि व्रत था॥ ४३॥ कालक्रम से जमदग्नि को रेणुका नामक पत्नी से एक शुभ लक्षण पुत्र उत्पन्न हुआ। वह क्षत्रिय रूपी कुहरे या पाले को विनष्ट करने के लिए प्रतप्त सूर्य की तरह महाबली एवं पराक्रमी हुआ॥ ४४॥ पिता के वधजन्य क्रोध से उसने शिव की कठोर आराधना की। अपने तप से शिव को प्रसन्न कर उनसे दो अमोघ आयुध फरसा और धनुष प्राप्त किया॥ ४५॥ पितृवध के क्रोध से जलते उन्होंने वहाँ ही प्रतिज्ञा की—'मैं इस धरती को इक्कीस बार क्षत्रिय रहित कर दूँगा'॥ ४६॥ उस दिव्य फरसे को हाथ में लेकर उन्होंने क्षत्रिय कुल का विनाश किया। धरती को क्षत्रिय रहित बनाकर अखिल भुवन जीतकर महर्षि कश्यप को प्रदान किया॥ ४७॥ अपने तेज से आसागर धरती को जीतकर उन्होंने उसे दान कर दिया। फिर ऋषियों की प्रार्थना करने पर क्षत्रिय-वध से अपना मुँह मोड़ लिया॥ ४८॥ स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी उस मुनि ने उग्र तपस्या की। शान्ति रूपी आग में अपने क्रोध का हवन कर उन्होंने घोर तप किया॥ ४९॥ उस महात्मा ने अपने कठोर तप से समस्त पुण्यों और लोकों को जीत लिया। कालक्रम से सत्यपराक्रमी महान् राम ने रावण-वध के लिए भगवान् विष्णु के अंश से अवतार ग्रहण किया। उन्होंने मिथिलानरेश जनक के घर में रखे 'भगवान् शिव के धनुष को उठाने वाले के साथ सीता का विवाह होगा' स्वयं वर के इस शर्त को पूरा करने के लिए उसे चढ़ाने के लिए ज्यों ही उठाया महाशक्तिशाली शिव का वह धनुष स्वतः टूट गया॥ ५०-५१-५२॥ शिवधनुर्भङ्ग जैसे कर्म लोगों के बीच प्रशंसनीय एवं महाद्भुत या जमदग्निपुत्र ने आकाशचारी लोगों के मुख से जब राम की यह प्रशंसनीय कथा सुनी तब॥ ५३॥ परशुराम क्षत्रियों की इस प्रशंसा को बर्दाश्त नहीं करते हुए ठीक उसी तरह खौलने लगे जैसे प्रचण्ड आग के सम्पर्क होने पर दूध उबलने लगता है॥ ५४॥ क्रोध के मारे आँखों की कोरें लाल हो गईं, रोष रूपी आग की ज्वाला से संसार को मानो जलाते हुए क्रोध की प्रतिमूर्ति प्रलयाग्नि की तरह जलते हुए॥ ५५॥ अरे क्षत्रबन्धो! आज मैं तुम्हारा अहंकार

आः क्षत्रबन्धोरद्याहमपनेष्यामि वै मदम्। आरोप्य परशुं स्कन्धे वामेनादाय वैष्णवम्॥५६॥
चापं वदन्निति ततः प्रचचाल निजालयात्। देवर्षयोऽथ तं दृष्ट्वा भार्गवं मन्युना वृतम्॥५७॥
ऊचुरद्य पुनः क्षौणीं क्षत्रहीनां करिष्यति। क्रोधेन तस्य महता चकम्पे वसुधा भृशम्॥५८॥
हतप्रभो दिवानाथो धूलीधूसरितं नभः। वेलातिलङ्घिनो जाताः समुद्राः प्रलये यथा॥५९॥
एवं स निर्गतः स्थानान्मार्गे सेनासमावृतम्। राघवं राममासाद्य कृतवैवाहिकोत्सवम्॥६०॥
रे राम क्षत्रबन्धो त्वं वीर्योत्सिक्तोऽतिमन्दधीः। त्वया कृतमकर्तव्यमज्ञात्वा शूरमानिना॥६१॥
अद्य यावन्न श्रुतः किमहं क्षत्रकुलान्तकः। रामोऽस्तीति मदाद्यन्मामवज्ञाय कृतं ह्यघः॥६२॥
नाद्यापि परशोर्धारा कुण्ठिता क्षत्रघातिनः। यत्त्वयाद्य कृतं कर्म फलं तस्य भुजिष्यसि॥६३॥
अद्य मे परशोर्धारा पारणं प्रविधास्यति। बहुकालेन ते कण्ठच्छेदोष्णरुधिरेण वै॥६४॥
क्षमां खलेषु नो कुर्यादुपेक्षेवाऽऽमयागमे। कालेन तस्यैव भवेदहेः क्षीरमिवान्तकम्॥६५॥
कथं सहेत शान्तोऽपि गुरोरपमतिं कृताम्। समर्थे मादृशस्तत्र पादाक्रान्त इवानलः॥६६॥
मयि जीवति चापस्य गुरोः कैलासवासिनः। क्षत्रियापसदेनाभूद् बालेन परिभावनम्॥६७॥
आः कालस्य व्यत्ययता नात्र क्षान्तिर्गुणावहा। जामदग्न्ये वदत्येवं रामो राजीवलोचनः॥६८॥
पादयोः प्रणिपत्याऽथ सभाजनमकल्पयत्। सान्त्वपूर्वं क्षमस्वेति भूयो रामः कृताञ्जलिः॥६९॥
ब्रह्मण्यो नम्रभावेन क्षमापनमथाकरोत्। यदा न क्षमते सोऽपि भूयोऽधिक्षेपतत्परः॥७०॥

चूर-चूर कर दूँगा। अपने कन्धे पर फरसा रख कर बायें हाथ में वैष्णव धनुष लिये॥५६॥ अपने आश्रम से ऐसा कहते हुए बाहर निकले। क्रोध में घिरे प्रचण्ड रूप में उन्हें जाते देखकर देवताओं और ऋषियों ने कहा॥५७॥ आज यह फिर धरती को क्षत्रियविहीन कर देगा। परशुराम के भयंकर क्रोध को देखकर धरती काँपने लगी॥५८॥ सूर्य हतप्रभ हो गये, आकाश धूलि-धूसरित हो गया, समय की गति रुक-सी गई; जैसे प्रलय से पूर्व समुद्र की स्थिति होती है॥५९॥ इस तरह घर से निकले परशुराम की रास्ते में ही रघुवंशी राम से भेंट हो गयी। वे वैवाहिक उत्सव सम्पन्न कर सेना से घिरे आ रहे थे॥६०॥ अरे राम! ओ क्षत्रियबन्धु! अपने पराक्रम के नशे में तुम अति मन्दबुद्धि हो, अपने को व्यर्थ ही वीर मानकर तुम्हें जो नहीं करना चाहिए वह किया है॥६१॥ आज तक क्या तुमने सुना नहीं? क्षत्रिय कुल का मैं संहारक हूँ। राम हो न, इसीलिए मेरी अवहेलना कर तुमने ऐसा पाप किया है॥६२॥ आज भी क्षत्रियघातक मेरे फरसे की धार भोथरा नहीं हुई है। तुमने आज जो कर्म किया है उसका फल तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा॥६३॥ बहुत दिनों से मेरे फरसे की धार उपवास कर रही है। आज जब मैं तुम्हारी गर्दन काटूँगा, तब उससे निकलने वाले गर्म लहू से पारण करेगी॥६४॥ साँपिन का दूध जैसे विनाशक होता है, उसी तरह बीमारी से घिर जाने पर उसकी उपेक्षा यथावसर जैसे प्राणान्तक होती है, उसी तरह दुष्टों की क्षमा भी घातक होती है॥६५॥ तुमने मेरे गुरु का अपमान किया है; मेरे जैसे समर्थ व्यक्ति के शान्त रहने पर भी क्या इसे बर्दाश्त किया जा सकता है? जलती आग को कोई पैर से कुचलने का दुस्साहस कर सकता है क्या?॥६६॥ अरे क्षत्रियाधम! मेरे जीवित रहते हुए भी कैलाशवासी मेरे गुरु भगवान् शिव के धनुष का अपमान तुम्हारे जैसे बच्चे के हाथों से हुआ है॥६७॥ आः! यह तो काल का फेरा है, इसमें गुणशाली क्षमा के लिए गुंजाइश कहाँ? इस तरह क्रोधावेश में परशुराम को बोलते देख राजीवलोचन श्रीराम ने॥६८॥ उनके चरणों में विनम्र भाव से गिरकर प्रणाम किया। पुनः और अधिक विनतभाव से दोनों हाथ जोड़कर राम ने कहा—पहले आप शान्त हों और मुझे क्षमा करें॥६९॥ राम की अनेक बार प्रार्थना करने पर भी जब परशुराम उन्हें क्षमा

तदैव क्रोधताम्राक्षो वाक्यमेतदुवाच ह। राम त्वं ब्राह्मणोऽसीति युज्यते क्षान्तिरत्र मे॥ ७१॥
राघवाणां ब्राह्मणेषु शस्त्रधारा सुकुण्ठिता। अयं कण्ठः कुठारेण छिद्यतां मे यथासुखम्॥ ७२॥
सर्वथा ब्राह्मणा गावः पूज्या नो रघुजन्मनाम्। इति ब्रुवति काकुत्स्थे जामदग्न्यो ज्वलन्निव॥
तोयसम्पृक्ताज्यहोमाद्धव्यवाडिव सम्बभौ। अथाऽवदद्राघवं तं रामं रघुकुलोद्वहम्॥ ७४॥
क्षत्राधमाऽतिधृष्टोऽसि ज्ञातः किं ब्राह्मणस्त्वया। साक्षान्मृत्युं क्षत्रियाणां न जानासि कुतः खल॥
अथावदद्रघुवरो वेद्मि त्वां रेणुकासुतम्। नाहं नृपस्तथाभूतो ये हता ब्रह्मबन्धुना॥ ७६॥
न चाहं रेणुकातुल्यः स्थितोऽस्मि पुरतस्तव। ब्राह्मण्यं वा क्षत्रभावं सन्त्यजाऽन्यतरद् द्रुतम्॥
काकुत्स्थ एवं वदति रुषा धिग्धिगिति ब्रुवन्। स्वकरे संस्थितं चापं वैष्णवं प्रददौ द्रुतम्॥ ७८॥
तस्मै प्रोवाच संक्रुद्धः कत्थनं किं वृथा तव। माहेश्वरं जीर्णधनुर्भग्नं दैवेन तत्त्वया॥ ७९॥
इदं वैष्णवमारोप्य मत्समक्षं स्थिरीभव। ततो मया द्वन्द्वयुद्धे विमदस्त्वं भविष्यसि॥ ८०॥
एवमुक्तो रघुवरः श्रुत्वा वाक्यं धनुर्वरम्। आदाय लीलया मौर्वीमारोप्य निमिषार्धतः॥ ८१॥
निषङ्गत्सायकं तीक्ष्णं सन्धायाऽऽकर्णपूरितम्। प्रदर्श्य भार्गवायाथो रुषा प्रोवाच राघवः॥
राम शीघ्रं वदाऽमोघबाणः क्व विनिपात्यताम्। उपेक्षणीयस्त्वं यस्माद्ब्राह्मणो भार्गवोद्भवः॥
विश्वामित्रस्य सम्बन्धादाततांय्यपि मे गुरुः। प्रदर्श्य लक्ष्यं बाणस्य जीव नाऽऽशु यथा गतः॥
अमोघोऽयं महाबाणो जीवितान्तकरस्तव। श्रुत्वा राघवसम्प्रोक्तं दृष्ट्वाऽद्भुतपराक्रमम्॥

नहीं कर सके प्रत्युत उन्होंने और अधिक अपमानित ही करते रहे॥ ७०॥ तब राग की आँखें भी क्रोध से लाल हो गईं और उन्होंने कहा—हे परशुराम! आप ब्राह्मण हो, अतः आपके सम्बन्ध में मुझे शान्त रहना ही उचित है॥ ७१॥ रघुवंशियों के हथियार की धार ब्राह्मणों पर कुण्ठित ही रहती है। अतः यह रही मेरी गर्दन, इसे आराम से आप अपने फरसे से काट डालिए॥ ७२॥ क्योंकि हम रघुवंशियों के लिए ब्राह्मण और गायें सर्वथा पूजनीय हैं। श्रीराम को ऐसा बोलते सुनकर परशुराम फिर लहक उठे॥ ७३॥ पानी मिले घी के होम से जैसे हवनकुण्ड की आग भड़भड़ा उठती है, ठीक उसी तरह रघुकुलोत्पन्न राम से बड़बड़ाते हुए परशुराम ने कहा॥ ७४॥ अरे नीच क्षत्रिय! तुम्हें केवल मैं ब्राह्मण ही दीखता हूँ, क्षत्रिय कुल की साक्षात् मौत नहीं॥ ७५॥ तब श्रीराम ने कहा—अरे ओ रेणुकापुत्र परशुराम! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। मैं उन राजाओं की तरह नहीं हूँ जिनका वध तुमने किया है॥ ७६॥ मैं रेणुका नहीं हूँ (जिसका तुमने वध कर दिया), मैं तो तुम्हारे आगे ही खड़ा हूँ। ब्राह्मणत्व या क्षत्रियत्व दो में से किसी एक भाव को शीघ्र धारण करो॥ ७७॥ राम के ऐसा कहने पर अपने को धिक्कारते हुए परशुराम ने अपने हाथ में रखे वैष्णव चाप उनकी ओर शीघ्र बढ़ाकर कहा॥ ७८॥ क्रोधातुर परशुराम ने कहा—बकवास बन्द करो। भगवान् शिव का धनुष तो पुराना था। संयोग से ही उसे तुमने तोड़ दिया॥ ७९॥ इस वैष्णव धनुष को चढ़ाकर मेरे साथ शीघ्र द्वन्द्वयुद्ध करो। इस युद्ध में मैं तुम्हें पराजित कर तुम्हारा मद भंग कर दूँगा॥ ८०॥ परशुराम की ये बातें सुनकर राम ने उस श्रेष्ठ धनुष को शीघ्र अपने हाथों में थाम लिया और बड़ी आसानी से पलभर में उसे तान दिया॥ ८१॥ अपने तरकश से तीर खींचकर धनुष की प्रत्यंचा पर रखकर कान तक उसे खींचकर परशुराम को दिखाकर क्रुद्ध राघव ने उनसे पूछा॥ ८२॥ परशुरामजी! अब आप बतलाओ, इस बाण का लक्ष्य कौन होगा? यह बाण तो अमोघ है। भृगुवंशी ब्राह्मण होने के नाते आप तो इस बाण का लक्ष्य होंगे नहीं॥ ८३॥ आततायी होने के बावजूद मेरे गुरु विश्वामित्र से आप जुड़े हैं। अतः इस बाण के लक्ष्य से आपके प्राण अब तक सुरक्षित हैं॥ ८४॥ किन्तु यह बाण तो अव्यर्थ है, तुम्हारे जीवन का अन्त करने वाला

मत्वाऽतिमानुषं साक्षात्परमात्मानमव्ययम् । प्रणम्य दण्डवद् भूमौ स्तुत्वा प्रोवाच भार्गवः ॥
जानामि त्वां परात्मानं पुरुषं प्रकृतेः परम् । जगद्रक्षाविधानार्थं जातो नटनरोपमः ॥ ८७ ॥
आसादिता मया पुण्यलोका बहुतपोगणैः । तत् सर्वं शरलक्ष्यार्थं दत्त्वा जीवामि राघव ॥ ८८ ॥
तथाऽस्त्विति वदन् रामो निपात्य शरमुल्बणम् । ब्रह्मण्यो भार्गवं प्राह नमस्ते रामभार्गव ॥ ८९ ॥
क्षन्तव्यं मे दुरुक्तं यत् ब्राह्मणो मे सदा गुरुः । इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवो लज्जयाऽन्वितः ॥
नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य जगाम स यथागतम् ।
इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ २९३ ॥



है। राघव की यह बात सुनकर तथा उनके अद्भुत पराक्रम को देखकर ॥ ८५ ॥ उन्हें अतिमानव मानकर, साक्षात् अविनाशी परमात्मा समझकर धरती पर दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया। फिर उनकी स्तुति कर परशुराम ने उनसे कहा ॥ ८६ ॥ मैं आपको जानता हूँ। आप तो परमात्मा है। प्रकृति के परमपुरुष हैं। संसार की रक्षा के लिए ही नर रूप में साक्षात् नारायण हैं ॥ ८७ ॥ हे राम! मैंने बहुत सारे पुण्य लोकों को अपने कठोर तप से जीत लिया है। वे सभी आपके अमोघ बाण के लक्ष्य हों। मेरी रक्षा करें, यह देकर मैं जीवित रहना चाहता हूँ ॥ ८८ ॥ 'तथास्तु' कहकर राम ने बाण फेंक दिया। हे भार्गव! आप ब्राह्मण हैं, आपको मेरा प्रणाम ॥ ८९ ॥ ब्राह्मण तो सदैव मेरे गुरु हैं। आपसे मैंने जो कठोर बातें कहीं हैं, उनके लिए आप मुझे क्षमा करें। राम की बातें सुनकर परशुराम लज्जित हुए ॥ ९० ॥ तथा उन्हें प्रदक्षिणा कर जिस राह आये थे उसी रास्ते लौट गये।

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



अथ चतुर्थोऽध्यायः

अथ मार्गे जामदग्न्योऽत्यन्तनिर्वेदमाप्तवान्। परिभावित एवं स चिन्तयानो जगाम ह॥ १॥
नूनं मया कश्यपाय दत्वा क्षोणीं प्रतिश्रुतम्। नाऽतःपरं हेतिहस्तः क्रुध्यामि नृपजन्मसु॥ २॥
अहो मे चित्तसम्मोहः किं वदामीदृशोऽभवम्। क्रोधेनाऽत्यन्तरिपुणा पातितो मोहखातके॥ ३॥
क्रोध एव तपोमृत्युः क्रोधान्नश्यति वै तपः। क्रुद्धस्य दूरतो याति विचारः सत्त्वबुद्धिजः॥ ४॥
तस्य स्पर्शोऽपि न भवेद्विटं दृष्ट्वा सती यथा। कथं क्रुद्धे विचारः स्याच्छ्वित्रे सौन्दर्यवत्किल॥ ५॥
क्रुद्धो न कुर्यात्किं कर्म गर्ह्यं घोरं पिशाचवत्। नान्तरं लेशतोऽप्यस्ति पिशाचक्रुद्धयोर्भुवि॥ ६॥
उभयोरीक्षितं पुत्रप्रियादिपरिपीडनम्। क्रुद्धो न हन्यात्कं को वा क्रुद्धो हन्ति गुरूनपि॥ ७॥
क्रोध एव महान्शत्रुरीदृग्येन कृतस्त्वहम्। क्रोधान्मया पुरा क्षत्रस्तनन्धयगणा हताः॥ ८॥
आच्छिद्याच्छिद्य जननीहस्ताभ्यां पुक्कसो यथा। अहो मे निर्दयः स्वान्तं किं कृतं क्षत्रपोतकैः॥
हिंसिताः कोटिशो बालाः सदृशा अदृशा अपि। नूनं क्रोधो येन नैव जितस्तस्य कथं तपः॥ १०॥
प्रवृद्धशत्रोर्नृपते राज्यसौख्यं यथा तथा। केन मे निहतस्तातः के हता नृपराशयः॥ ११॥

✲ विमला ✲

उसके पश्चात् रास्ते में चलते हुए परशुराम अत्यन्त खिन्न हो गये। इस तरह अपने साथ किये गये अपमानजनक व्यवहार सोचते हुए वे जा रहे थे॥ १॥ असन्दिग्ध रूप से मैंने मुनि कश्यप को सम्पूर्ण पृथ्वी देने की प्रतिज्ञा कर क्षत्रियों पर क्रुद्ध होकर समरविजय के लिए हाथ में हथियार उठाया, इससे बड़ी गलती और क्या हो सकती है?॥ २॥ हाय! मेरा मति-विभ्रम, क्या बोलू? ऐसा हुआ। भयंकर दुश्मन मेरा क्रोध, जिसने मुझे मोह की खाई में ला पटका॥ ३॥ क्रोध ही तो तप की मौत है, क्रोध से ही तो तप का विनाश होता है। सात्त्विक बुद्धि से उत्पन्न विचार क्रोधी व्यक्ति से दूर हट जाता है॥ ४॥ क्रुद्ध व्यक्ति के स्पर्श से भी विचार उसी तरह दूर हट जाता है जैसे कामुक जार को देखकर सती दूर हट जाती है। क्रोधी में विचार कोढ़ी व्यक्ति में सौन्दर्य खोजने की बात जैसा ही है॥ ५॥ किसी भयंकर पिशाच की तरह क्रोधी व्यक्ति ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म है जिसे नहीं करता? इस धरती पर पिशाच एवं क्रोधी व्यक्ति में थोड़ा भी अन्तर नहीं है॥ ६॥ दोनों ही देखते ही पुत्र-पत्नी प्रभृति को भी चोट पहुँचाते हैं। क्रोधी व्यक्ति किसकी हत्या नहीं करता? वह तो गुरुजनों की भी हत्या सहजभाव से करता है॥ ७॥ क्रोध ही महान् शत्रु है, ऐसा कुकर्म क्रोध ने ही मुझसे कराया है। क्रोध के वशीभूत होकर ही मैंने क्षत्रियों के दूधमुँहे बच्चों की हत्या की है॥ ८॥ पतित वर्णसंकर जाति की स्त्री से उत्पन्न निषाद की सन्तान की तरह क्षत्राणियों के हाथ से छीन-छीन कर मैंने उनके शिशुओं की हत्या की है। अहो! मेरा हृदय कितना निष्ठुर था कि मैंने क्षत्रिय-शिशुओं क़ी ऐसी हत्या की है॥ ९॥ सुन्दर-असुन्दर करोड़ों क्षत्रिय-बच्चों की मैंने हत्या कर दी है। असन्दिग्ध रूप से वह क्रोध ही ऐसा है जिसे बिना जीते तप कैसा?॥ १०॥ बढ़ते हुए शत्रुओं के बीच किसी राजा का जैसे राजकीय माधुर्य का उपभोग होता है, उसी तरह किसने मेरे पिता की हत्या की और किसके द्वारा ये राजे मारे गये॥ ११॥ यह निष्करुण अतिनिन्दनीय दुष्कर्म क्रोधवश मैंने ही किया है। क्योंकि क्रोध का मूल तो

पुरुषादेनेव मया कृतं कर्म सुगर्हितम् । अभिमानः क्रोधमूलो यस्माद्धेतुवशादहम् ॥ १२ ॥
निगीर्णः क्रोधसर्पेण प्रबलाजगरात्मना । एवं चिन्तयता तेन मार्गे कश्चन पूरुषः ॥ १३ ॥
दृष्टस्तेजोराशिमयो ज्वलदग्निगिरिर्यथा । पुष्टसुन्दरसर्वाङ्गः फुल्लपङ्कजलोचनः ॥ १४ ॥
मलिनाङ्गो मुक्तकेश उन्मत्तचरितोऽपि यः । महापुरुषवद् दृष्टो महात्मा मुनिराट् कविः ॥ १५ ॥
दृष्ट्वैवं भार्गवो विप्रं त्यक्तलिङ्गाश्रमादिकम् । दिगम्बरं पङ्कदिग्धं गन्धसिन्धुरवस्थितम् ॥ १६ ॥
तं दृष्ट्वा जामदग्न्योऽथ परं संशयमागतः । कोऽयं विलक्षणाचारः सदसल्लिङ्गसंयुतः ॥ १७ ॥
किं महापुरुषो वाऽथाऽप्रमत्तो वाऽपि कश्चन । अत्र बुद्धिर्नान्तमेति यथा वेषान्तरे नटे ॥ १८ ॥
प्रमत्तश्चेत्कथमयं तेजोराशिपदं भवेत् । भूयः पश्याम्ययं मार्गं दूषयत्यपि नो सताम् ॥ १९ ॥
तस्मादयं कोऽपि महापुरुषो गूहिताकृतिः । परीक्षणीयः किञ्चिन्मे यत्नेनेत्यभिचिन्तयन् ॥ २० ॥
तमुवाच हसन् रामः कस्त्वं पुरुषसत्तम । महापुरुषवद् भासि स्थितिस्ते कीदृशी वद ॥ २१ ॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य पलायनपरोऽभवत् । क्षिपन्पाषाणखण्डांश्च हसन्नुच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥
विप्रलापं तथा कुर्वन्बहुधोन्मत्तचेष्टितः । एवंविधं भार्गवस्तं करे जग्राह सत्वरः ॥ २३ ॥
गृहीत्वा चिन्तयामास नायं मे विदितोऽभवत् । भूय एवं परीक्ष्याऽथ व्रजाम्यहमपीप्सितम् ॥
इति निश्चित्य भूयस्तमधिक्षेप्तुं प्रचक्रमे । अधिक्षिप्ताऽपि बहुधा परिभूतोऽपि न स्थितेः ॥ २५ ॥
प्रच्युतो मुखवैवर्ण्यमपीषन्नोपलक्षितम् । महापुरुष एवेति तदा निश्चित्य भार्गवः ॥ २६ ॥

अभिमान ही है। इसी से यह सारा अनर्थ हुआ है। १२॥ 'महाशक्तिशाली क्रोधरूपी अजगर साँप ने मेरे गुणों को डस लिया' कुछ इसी तरह मन में सोचते परशुरामजी को राह में किसी अजनबी पुरुष से मुलाकात हुई॥ १३॥ वह पुरुष प्रज्वलित आग के पहाड़ की तरह प्रकाशपुञ्ज था। वह सर्वाङ्ग सुन्दर एवं सुपुष्ट था। उसकी आँखें विकसित कमल की तरह सुन्दर थीं॥ १४॥ उसकी देह धूलि-धूसरित थी, बाल खुले थे। उसका व्यवहार पागलों की तरह था। वह मुनिश्रेष्ठ, ऋषि, महात्मा एवं महापुरुष की तरह देखने में लगता था॥ १५॥ उस ब्राह्मण में न किसी तरह की पहचान थी, न कोई उसका आश्रमादि ही था। बिलकुल नंग-धड़ंग, सारी देह में कीचड़ लपेटे मदोन्मत्त गज की तरह खड़ा था॥ १६॥ उसे देखकर परशुराम के मन में बड़ा ही संशय उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे—सत् और असत् लक्षण से युक्त विलक्षण आचार का कौन व्यक्ति है?॥ १७॥ क्या यह कोई महापुरुष है अथवा कोई जागरूक व्यक्ति? जैसे भेस बदले अभिनेता को पहचान पाना कठिन होता है उसी तरह उनके सम्बन्ध में मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं कर पा रही है॥ १८॥ अगर यह पागल है तो फिर इसमें इतना तेज कहाँ से हैं? फिर देखता हूँ—यह रास्ते को कलुषित कर रहा है तो इसे साधु कैसे मान लूँ॥ १९॥ इससे लगता है कि अपने स्वरूप को छिपाये यह निश्चय ही कोई महापुरुष है। यह सोचकर उसने उसकी परीक्षा लेने का प्रयास किया॥ २०॥ परशुरामजी ने हँसते हुए उससे पूछा—हे पुरुषसत्तम! आप कौन हैं? आप महापुरुष की तरह प्रतीत होते हैं, कृपया अपनी स्थिति से हमें अवगत करायें॥ २१॥ परशुरामजी की यह बात सुनकर वह जोर से ठठाकर हँस दिया और इन पर पत्थर के टुकड़े फेंकते हुए भागने लगा॥ २२॥ फिर अनाप-शनाप बकवास करते हुए पागलों की तरह चेष्टा करने लगा। उसे ऐसा करते देखकर परशुरामजी ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया॥ २३॥ उसे पकड़कर परशुराम पुनः सोचने लगे, इस तरह इसका कुछ भी पता नहीं चलेगा। इसकी असलियत की जानकारी के लिए हमें पुनः इसकी परीक्षा लेनी पड़ेगी॥ २४॥ यह निश्चय कर उन्होंने उस महापुरुष को गलियाना शुरू किया। फिर भी वह गाली सुनकर और अधिक अपमानित होकर भी अपनी स्थिति से टस से मस नहीं हुआ॥ २५॥

तत्पादयोर्निपतितः प्रार्थयामास तं मुनिम् । अथ सोऽपि प्रसन्नात्मा जामदग्न्येऽनुकम्पयन् ।।
बभाषे सस्मितं वाक्यं बहुसन्दर्भगुम्फितम् । कस्त्वमित्यहमापृष्टस्त्वया तच्छृणु भार्गव ।। २८ ।।
त्वमित्यवगते प्रश्नः पिष्टपेषणवद्वृथा । त्वया नावगतश्चेत्त्वमिति वाक्यान्निरर्थिका ।। २९ ।।
केनचिद्वपुषा ज्ञात इति चेत्तद्वदस्व मे । न ज्ञातस्ते चिदात्मा तदज्ञेयत्वात्तथाविधः ।। ३० ।।
अन्नश्चेदं त्वया दृष्टं साक्षादेव न संशयः । तस्मात्पर्यनुयोगस्ते संज्ञायां सुव्यवस्थितः ।। ३१ ।।
ज्ञातं कारणमप्येवं तस्मात्संज्ञैव न त्वया । ज्ञाता सा न स्वतःसिद्धा कल्पिता बहुधाऽपि सा ।।
न संस्थिता साप्येकत्र सङ्घातस्याऽऽश्रयत्वतः । तस्मादहं त्वया राम सम्यक्पृष्टो वदामि ते ।।
एवं तद्वचनं श्रुत्वा स्तब्धवाग्बुद्धिपौरुषः । लज्जितः प्राह योगीशं नत्वा प्रार्थनपूर्वकम् ।। ३४ ।।
महापुरुष न ज्ञातमुत्तरं तत्र तत्त्वया । ज्ञात्वाऽहं बोधनीयो वै शिष्यभूतमकल्मषम् ।। ३५ ।।
इत्युक्तस्तेन रामेण सोऽनुकम्पितमानसः । वक्तुं स्ववृत्तमारेभे गिरा मधुरया तदा ।। ३६ ।।
भार्गवाऽऽङ्गिरसं त्वं मां जानीह्यवरजं गुरोः । संवर्त इति विख्यातं त्रिलोक्यां प्रथितं गुणैः ।।
स्थितिं वक्ष्यामि मे राम शृणु संयतमानसः । पुरा मे गुरुणा भ्रात्रा विद्वेषस्समजायत ।। ३८ ।।
तेनाऽहं प्राप्तनिर्वेदः प्राप्त एतां स्थितिं किल । दत्तात्रेयेण गुरुणा सुसम्यगनुबोधितः ।। ३९ ।।
आत्मानमखिलं मत्वा तद्विलासमिमं तथा । अभयं मार्गमाश्रित्य शङ्कोन्मेषणवर्जितः ।। ४० ।।

गाली और अपमान से वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। चेहरे पर थोड़ा भी विकार परिलक्षित नहीं हुआ। यह देखखर तब परशुराम को लगा कि निश्चय ही यह कोई महापुरुष ही है।। २६ ।। तब उस मुनि के चरणों में गिरकर परशुराम ने उनसे प्रार्थना की। मुनि ने भी प्रसन्न होकर इन पर अनुकम्पा करते हुए कहा।। २७ ।। उस मुनि ने तब मुस्कुराते हुए अनेक सन्दर्भों में गूँथा हुआ वाक्य कहा—हे भार्गव! तुमने मुझसे पूछा—'तुम कौन हो?' सुनो।। २८ ।। 'तुम' यह तो जाना हुआ ही सवाल है, पिसे हुए को पीसने जैसी निरर्थक बातें हैं। यदि तुम 'त्वम्' को नहीं जानते तब भी यह प्रश्न बेकार ही है।। २९ ।। कोई यदि शरीर से ज्ञात होता हो तो बतलाओ। चिदात्मा तो अज्ञेय है ही, अतः उसे तुम जानते ही नहीं।। ३० ।। यह अन्न है, इसे तुमने साक्षात् देखा है, इसलिए इसमें तुम्हें संशय नहीं है। इसीलिए तुम्हारी यह पृच्छा संज्ञा अर्थात् नाम में ही सुव्यवस्थित है।। ३१ ।। इस तरह इसका कारण भी तुम्हें ज्ञात है, अतः संज्ञा ही तुम नहीं हो। वह संज्ञा तो ज्ञात है, पर वह स्वतः सिद्ध न होकर कल्पित है।। ३२ ।। वह भी कहीं एक जगह एक साथ विद्यमान नहीं है, प्रत्युत समुदाय का आश्रित है। इसलिए हे राम! तुमने अच्छा प्रश्न मुझसे पूछा है, मैं तुम्हें बतलाता हूँ।। ३३ ।। इस तरह उनकी बातें सुनकर परशुराम के वचन, बुद्धि और पौरुष स्तब्ध रह गये। लजाते हुए परशुराम ने प्रार्थनापूर्वक प्रणाम कर उस योगीश से कहा—।। ३४ ।। हे महापुरुष! आपने उत्तर में जो कुछ कहा, उसे मैंने ठीक-ठीक समझा नहीं। अतः मुझे आप अपना शिष्य समझकर खुले शब्दों में समझाने का कष्ट करें।। ३५ ।। परशुराम की प्रार्थना सुनकर दया से उनका दिल भर आया। तब उन्होंने बड़ी मीठी आवाज में अपना वृत्तान्त कहना शुरू किया।। ३६ ।। हे परशुराम! अपने विशिष्ट गुणों के कारण त्रिलोक में विख्यात मुनि अंगिरा के पुत्र संवर्त नाम से मुझे जानो।। ३७ ।। बची बात मेरी स्थिति की, वह भी बतलाता हूँ; मन को स्थिर कर सुनो। पहले की बात है—एक बार मेरा गुरु के भाई से झगड़ा हो गया था।। ३८ ।। उसी से मेरा मन काफी दुःखी हुआ, जिसके कारण मेरी यह दयनीय स्थिति हो गयी। पुनः मुझे गुरु दत्तात्रेय ने ठीक ढ़ंग से प्रबुद्ध किया।। ३९ ।। आत्मा को ही सर्वव्यापी मानकर तथा उसी का विलास सबको समझकर सन्देह की गुंजाइश रहित इस अभय मार्ग का आश्रय ग्रहण कर।। ४० ।।

सञ्चराम्यचलस्थानः सूत्रपाञ्चालिका यथा। इत्युक्ताकर्ण्य तद्वाक्यं प्राह प्राञ्जलिरास्थितः॥ ४१॥
रामः प्राह मुनिं वाक्यं सम्प्रार्थनगिरा तदा। महापुरुष मां दीनं संसारभयपीडितम्॥ ४२॥
अनुगृह्य शुभं मार्गमधिरोहय निर्भयम्। इत्युक्तः स पुनः प्राह दयार्द्रहृदयो मुनिः॥ ४३॥
शृणु वत्स मया प्रोक्तं सारं सर्वार्थसंग्रहम्। यस्मिन्मार्गे त्वमासीनः स भीमो बह्वनर्थदः॥ ४४॥
यथा कश्चित्क्वचिद्गच्छन्नभयं दैवमोहितः। मार्गे दस्युसमाकीर्णमाश्रितो याति निर्भयः॥ ४५॥
अज्ञानादथ तन्मार्गे क्लिश्यन्बिभ्यन्पदे पदे। क्षेमप्राप्त्याशया याति तथा संसृतिवर्त्मनि॥ ४६॥
अथ केनाऽपि मार्गज्ञपुङ्गवेन प्रबोधितः। सुमार्गमाश्रितो याति दुर्मार्गस्थान्हसन्यथा॥ ४७॥
तथाऽहं नाथसम्प्रोक्तसुमार्गस्थोऽतिनिर्वृतः। हसन्नन्यान्कुमार्गस्थाश्चिरं गच्छामि सर्वतः॥ ४८॥
तत्र संसृतिमार्गस्तु विपरीतो विषूचिकः। तत्राऽतिक्लेशभाजोऽपि न जानन्ति विमोहिताः॥
विश्रब्धाः क्लेशजालेषु सुखबुद्ध्याऽतिपामराः। ये तेषां दुर्लभो मार्गो योऽस्मद्विधनिषेवितः॥
तस्मात्स्वमार्गसंस्थानं ज्ञात्वा तत्र विरक्तधीः। गुरूपदिष्टमार्गेण स्वात्मशक्तिं महेश्वरीम्॥ ५१॥
त्रिपुरां सम्यगाराध्य तत्कृपालेशमाश्रितः। उपलभ्य स्वात्मभावं सर्वसाम्याश्रयात्मकम्॥ ५२॥
इतरत्तच्छक्तिमयमाभासैकरसस्थितिम्। ज्ञात्वा सर्वं स्वात्ममयं शक्तिचक्रात्मनः पराम्॥ ५३॥
जगद्गुरुसमापत्तिं प्राप्य निर्भयसंशयः। जामदग्न्य यथेच्छं त्वं चराऽहमिव निश्चलः॥ ५४॥
स्वात्मानं सर्वभावस्थं स्वात्मस्थं सर्वभावकम्। पिण्डाऽहम्भावमुन्मूल्य वेत्तृभावासनस्थितः॥

कठपुतली की तरह एक निश्चित स्थान में घूम रहा हूँ। मुनि की ये बातें सुन कर परशुराम हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गये॥ ४१॥ मुनि से प्रार्थना करते हुए परशुराम ने कहा—हे महापुरुष! संसार के भय से पीड़ित मुझ दीन पर कृपा करें॥ ४२॥ कृपा कर मुझे कल्याणकारी निर्भय मार्ग पर अधिरोहित करें। ऐसा परशुराम के कहने पर दयार्द्रहृदय मुनि ने फिर उनसे कहा—॥ ४३॥ सुनो वत्स! सर्वार्थ संग्रह का सार मैंने तुम्हें बतला दिया। पर जिस रास्ते पर तुम चल रहे हो वह अनेक तरह से अनर्थकर एवं भयंकर है॥ ४४॥ जैसे भाग्य से प्रेरित होकर कोई कहीं चोर-उचक्के और लुटेरों से भरे मार्ग पर निर्भय होकर चलते हुए॥ ४५॥ अपने अज्ञान के कारण उस रास्ते पर पग-पग पर दुःख झेलते, डरते-सहमते कल्याण की कामना से जाता है, उसी तरह संसार की राह पर॥ ४६॥ सन्मार्ग के जानकार किसी भी पुरुषश्रेष्ठ से प्रबोधित होकर सुमार्ग का आश्रय ग्रहण कर कुमार्गगामियों पर जैसे हँसते हुए चलता है॥ ४७॥ ठीक उसी तरह मैं नाथसम्प्रोक्त सुन्दर मार्ग का आश्रय ग्रहण कर अति प्रसन्न भाव से कुमार्गस्थ लोगों पर हँसते हुए सब जगह घूमता हूँ॥ ४८॥ इसी तरह सांसारिक मार्ग भी विपरीत दिशा का विषूचिक है। अत्यन्त दुःख भोगते हुए भी मोहवश लोग इसे ठीक से नहीं जानते हैं॥ ४९॥ अति अधम व्यक्ति ही इस सांसारिक जंजाल में सुखबुद्धि से भरोसा करते हैं। ऐसे लोगों के लिए हमारे जैसे लोग जिस मार्ग पर चलते हैं, वह दुर्लभ है॥ ५०॥ इसीलिए संसार-मार्ग में वैराग्य-बुद्धि कर गुरु के उपदेश से अपनी आत्मशक्ति को महेश्वरी के रूप में जानो॥ ५१॥ भगवती त्रिपुरा की सम्यक् आराधना कर, उसकी कृपा का आश्रय ग्रहण कर सबमें आत्मभाव की उपलब्धि कर सबमें अपनी आत्मा का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए॥ ५२॥ दूसरे व्यक्ति में भी उसी भगवती का एकमात्र आभास जानकर सबमें अपनी आत्मानुभूति से शक्तिचक्रात्मक उस पराशक्ति को जानना चाहिए॥ ५३॥ जगद्गुरु का संयोग प्राप्त कर निडर होकर असन्दिग्ध रूप से हे परशुराम! मेरे जैसे जहाँ चाहो वहाँ विचरण करो॥ ५४॥ अपनी आत्मा को ही सबमें और सबकी आत्मा को अपनी आत्मा में अवस्थित जानो। 'मैं एक पिण्ड हूँ' इस विचार को उखाड़ फेंको, अपने को सबका ज्ञाता मानो॥ ५५॥ अपनी देह को

वेद्यं स्वदेहं सम्बुध्य सदा वेत्त्रभिलक्षकः । यश्चरेत्तस्य नो कार्यं विद्यते संसृतेः पथि ॥ ५६ ॥
दोषं विभावयेदादौ भूयः संसृतिवर्त्मनि । तेन तत्राऽऽशु वैराग्यं ततः सन्मार्गलक्षणम् ॥ ५७ ॥
एतन्मयोक्तं संक्षेपात्सारं मर्त्यैः सदाभ्यसन् । अचिरेणैव संयाति शुभमार्गं परात्परम् ॥ ५८ ॥
एवमुक्तं तस्य वचो दुर्विभाव्यमतीन्द्रियम् । मत्वाऽथ भार्गवः प्राह भूयः कलुषितान्तरः ॥ ५९ ॥
महापुरुष यत्प्रोक्तं त्वया सारतरं वचः । तस्याऽतिगहनत्वाद्वै न सम्यग्विदितं मया ॥ ६० ॥
सारसंक्षेपवचनात्तन्मे सन्देह आततः । विस्तरेण सुकृपया यथा ज्ञातं मया भवेत् ॥ ६१ ॥
तथा मे वद सर्वज्ञ रक्ष मां शरणागतम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा संवर्त्तो ध्यानमास्थितः ॥ ६२ ॥
ज्ञात्वा तस्याऽखिलं भावि प्रोवाच मधुरं वचः । शृणु राम मयोक्तं त्वं नायं मार्गोऽतिगोचरः ॥
मलीमसधियां पुंसां न सुज्ञेयमिदं भवेत् । ऊर्द्ध्वमार्गस्थितेः सूक्ष्मभावात्कलुषितात्मनाम् ॥ ६४ ॥
नीतिसुज्ञेयमेतद्वै वक्तुं न सुलभं तथा । अतिलौकिकवृत्तित्वाद् दुर्लभश्चैतदुच्यते ॥ ६५ ॥
त्रिपुराम्बापादसेवामन्तरा नैव लभ्यते । सापि श्रीगुरुनाथस्य कृपाद्वारैव नान्यथा ॥ ६६ ॥
तत्कारणन्तु सत्सङ्गः सर्वं तन्मूलकं यतः । तस्माद्दत्तात्रेयगुरोः समीपं व्रज भार्गव ॥ ६७ ॥
तं समाराध्य सन्तोष्य वाञ्छितं प्राप्स्यसि द्रुतम् । विना गुरोराश्रयतः शुभं विन्देत वै कथम् ॥ ६८ ॥
मार्गच्युतस्य गहने रात्रौ सूर्यं विना पथा । विना सद्गुरुसेवाया न सुखं विन्दते क्वचित् ॥ ६९ ॥
अन्धस्याऽञ्जनकर्त्तेव विनाऽन्यत्र गुरोर्गतिः । साक्षात्सदाशिवो देवः शिष्यलोकानुकम्पितः ॥

जानने योग्य समझकर सदा वेतृभाव का अभिलक्षक बनकर सांसारिक पथ में जो विचरण करता है, उसे संसार का भय नहीं होता ॥ ५६ ॥ पहले संसार के मार्ग में दोष की दृष्टि अपनानी चाहिए। इससे उसमें संसार के प्रति विरक्ति शीघ्र होती है, फिर सन्मार्ग उसे स्वतः मिल जाता है ॥ ५७ ॥ संसार का सार संक्षेप में मैंने तुम्हें बतला दिया। इसका हमेशा अभ्यास करते रहने से शीघ्र ही परात्पर शुभ मार्ग की प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥ इस तरह उनकी बातें कठिनाई से समझ में आने योग्य एवं अतीन्द्रिय मान कर कलुषित हृदय वाले परशुराम ने उनसे फिर पूछा ॥ ५९ ॥ हे महापुरुष! आपने जो सारतर वचन कहा है, उसे अतिगहन होने के कारण मैं ठीक से समझ नहीं सका ॥ ६० ॥ सार-संक्षेप वचन से मेरा सन्देह दूर नहीं हुआ। मेरी समझ में ये बातें ठीक से आ सके, उसी तरह विस्तार से कृपया मुझे समझायें ॥ ६१ ॥ हे सर्वज्ञ! मेरी रक्षा करें, मैं आपका शरणागत हूँ। परशुराम की प्रार्थना सुनकर संवर्त मुनि ध्यानस्थ हो गये ॥ ६२ ॥ सम्पूर्ण होने वाली घटनाओं को ध्यान में जानकर उन्होंने मीठी आवाज में कहा—हे परशुराम! मैं जो कुछ कहता हूँ सुनो। यह मार्ग इन्द्रियग्राह्य नहीं है ॥ ६३ ॥ कलुषित हृदय वाले लोगों की समझ में आसानी से आने वाली ये बातें नहीं हैं। क्योंकि यह विचार ऊर्ध्वभाव स्थित है। कलुषितात्मा इसे सूक्ष्मभाव से ही जान सकते हैं ॥ ६४ ॥ यह सुज्ञेय नीति है, पर बोलने में उतनी आसान नहीं है। अति लौकिक वृत्ति होने के कारण कहने में अति दुर्लभ है ॥ ६५ ॥ माँ त्रिपुरा की चरण-सेवा के बिना इसकी प्राप्ति संभव नहीं है। वह भी श्री गुरुनाथ की कृपा से ही संभव है, अन्यथा नहीं ॥ ६६ ॥ उसका भी कारण है 'सत्सङ्ग', क्योंकि ये सब सत्सङ्गमूलक हैं। इसलिए हे परशुराम! तुम गुरु दत्तात्रेय के पास जाओ ॥ ६७ ॥ उनकी आराधना कर उन्हें सन्तुष्ट करो, तब तुम्हें शीघ्र ही वाँछित वस्तु की प्राप्ति होगी। गुरु की कृपा के बिना शुभ की प्राप्ति कैसे होगी? ॥ ६८ ॥ सघन रात में राह से भटके राही को सूर्य के बिना दूसरा कौन राह दिखलायेगा? उसी तरह सद्गुरु की सेवा के बिना कोई सुख नहीं पा सकता ॥ ६९ ॥ अंधे की आँखों में आँजन लगाने वाली की तरह बिना गुरु की दूसरी कोई गति नहीं है। अपने शिष्यों पर अनुकम्पा कर साक्षात् सदाशिव देव ही ॥ ७० ॥ मनुष्य

मनुष्यरूपमास्थाय सदा पर्यटति प्रभुः । विना श्रीगुरुपादाब्जसंश्रयं कः समीहितम् ॥ ७१ ॥
लभेत त्रिषु लोकेषु समृद्धोऽपि धनादिभिः । तस्मादितस्त्वं गच्छाऽऽशु तस्य पादान्तिकं गुरोः ॥
आराधय सुभक्त्या तमकैतवधिया ततः । प्रसन्नेऽथ गुरौ किं स्याद्दुर्लभं भुवनत्रये ॥ ७३ ॥
स आस्ते सम्प्रति गिरौ गन्धमादनसंज्ञिते । आश्रमे पुण्यभूयिष्ठे सिद्धयोगिसुसेविते ॥ ७४ ॥
व्रजाम्यहं शुभं तेऽस्तु यथाऽभिलषितं गतिम् । इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य जगामाऽऽकाशमार्गतः ॥
वातनुन्नाभ्रपटलमिव दूरं निमेषतः । प्रागुत्तरान्तरदिशं ययौ दृग्गोचरातिगः ॥ ७६ ॥
ततः संवर्तवाक्यस्य श्रुतिजातत्वरावृतः । गन्तुं मनो दधे तत्र यत्र दत्तगुरुः स्थितः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ३७७ ॥



रूप में धरती पर घूमते हैं। बिना गुरुचरण की कृपा से भला किसे मनोवाँछित फल मिला है ॥ ७१ ॥ तीनों लोकों में समृद्ध व्यक्ति भी धनादि की प्राप्ति इन्हीं की कृपा से करते हैं। इसी से यहाँ से तुम शीघ्र ही गुरुचरणों के पास जाओ ॥ ७२ ॥ प्रपंच रहित बुद्धि से एक बार उनकी आराधना करो। गुरु के प्रसन्न होने पर त्रिलोक में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती ॥ ७३ ॥ वे गुरु दत्तात्रेय इस समय गन्धमादन नामक पहाड़ पर सिद्ध योगियों से सुसेवित अत्यन्त पवित्र अपने आश्रम में विराजमान हैं ॥ ७४ ॥ तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें तुम्हारी अभिलषित वस्तु प्राप्त हो, मैं अब चलता हूँ। यह कहकर परशुराम के सामने ही वे आकाशमार्ग से चलते बने ॥ ७५ ॥ पलभर में पूर्वोत्तर दिशा की ओर वातप्रेरित आकाशपटल में बहुत दूर परशुराम की आँखों से ओझल हो गये ॥ ७६ ॥ उसके बाद कानों में संवर्त्तमुनि की बातों को सँजोते परशुरामजी ने भी दत्तात्रेय के आश्रम में जाने का मन बना लिया ॥ ७७ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



अथ पञ्चमोऽध्यायः

अथोत्तराशाऽभिमुखो जगाम भृगुवंशजः । दत्तात्रेयाऽश्रमं गन्तुं सत्वरो जातसम्भ्रमः ।। १ ।।
चिन्तयन् स्वात्मनि तदा मार्गे व्यवहृतेः स्थितिम् । नूनमद्याऽवधि मया मुख्यं चिन्त्यं न चिन्तितम् ।।
प्रवाहपतितो मर्त्य इव तद्वशतां गतः । यद्वदन्धानुगोऽन्धः स्यादविज्ञातगतिक्रमः ।। ३ ।।
अग्रगस्य फलं भुङ्क्ते तथेमे सर्वतो जनाः । अविदित्वैव पर्यन्तं कुर्वन्ति कृतकर्मणः ।। ४ ।।
विदन्ति तस्य च फलमन्यदेवाऽसमीहितम् । दृष्ट्वा क्वचित्फललवसम्भवं दैवतन्त्रजम् ।। ५ ।।
बुद्ध्वाऽन्यकर्मजं तच्च मोहिताः फलतर्षया । फललेशाभासलुब्धा आपदं प्राप्नुवन्ति हि ।। ६ ।।
यथा चामिषलोभेन झषो बडिशवेधितः । कस्य किं तत्सुखं जातं हतसंसारवर्त्मनि ।। ७ ।।
आकृमिश्वपचात्सर्वे सुखार्थं सततोद्यताः । यत्सुखं विट्कृमेर्जिह्वामैथुनोत्थन्तु यादृशम् ।। ८ ।।
तदेव तादृशं लोकत्रयराजस्य नेतरत् । सर्वं हि भौतिकोत्थस्य देहस्याऽर्थं समीहितम् ।। ९ ।।
स देहो मलमूत्रासृङ्मांसस्नाय्वस्थिसङ्कुलः । मुहुर्निन्द्यः सदा दुःखहेतुरत्यन्तकुत्सितः ।। १० ।।
एतत्सम्बन्धिनः सर्वे पुत्रमित्रकलत्रकाः । इमं नश्वरमत्यन्तबीभत्समतिदुःखदम् ।। ११ ।।
देहमात्मधिया दृष्ट्वा करोत्यपि विनिन्दितम् । को नाम गुणलेशोऽत्र वर्त्तते हतदेहके ।। १२ ।।
सर्वैः सुविदितं लोके जनैः पामरपण्डितैः । सदा स्रवद्द्वारयुतममेध्याऽशुचिगन्धिनम् ।। १३ ।।

*** विमला ***

अब परशुरामजी ने उत्तर दिशा की ओर मुँह कर शीघ्र ही गुरु दत्तात्रेय के आश्रम की ओर प्रस्थान किया ।। १ ।। रास्ते में चलते हुए उन्होंने लोकव्यवहार को लक्ष्य कर चिन्तन करना शुरू किया। आह! संसार के प्रवाह में गिर कर मैंने मुख्य चिन्त्य विषय का ही चिन्तन नहीं किया ।। २ ।। संसार के प्रवाह में पतित व्यक्ति उसी का वशवर्ती की तरह, उसके गतिक्रम को बिना जाने उसी तरह चलता है जैसे एक अन्धे का दूसरा अन्धा अनुसरण करता हो ।। ३ ।। ये सभी लोग बिना जाने-समझे किये गये कर्म को दुहराते रहते हैं तथा अग्रसर होने का भी फल भोगते हैं ।। ४ ।। और उसका फल दूसरा ही अनभिलषित जानते हैं। थोड़ा भी इसका संभाव्य फल देखकर इसे भाग्यकृत मानते हैं ।। ५ ।। और उसे अन्य कर्म से उत्पन्न फल समझकर फल पाने की इच्छा से मोहित थोड़े फल के आभास से भी मुग्ध विपत्ति में फँस जाते हैं ।। ६ ।। जैसे मांस के लोभ से मछलियाँ काँटे या अंकुश में फँस जाती हैं उसी तरह संसारचक्र में फँसे व्यक्ति को क्या सुख मिलता है? ।। ७ ।। कीड़े-मकोड़े से लेकर चाण्डाल तक सभी सुख पाने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। इन्हें जो सुख रसनास्वाद से तथा मैथुन से मिलता है, वैसा ही सुख तो इन्हें भी मिलता है ।। ८ ।। वही, वैसा ही तीनों लोकों का सुख है, कुछ दूसरा नहीं। सभी दैहिक सुख के लिए सतत कामना करते रहते हैं ।। ९ ।। और यह देह मल, मूत्र, मज्जा, मांस, स्नायु और हड्डियों का समूह है। यह अत्यन्त कुत्सित है, दुःख का कारण है, सतत निन्दनीय है ।। १० ।। पुत्र, मित्र और कलत्रादि देह के सम्बन्ध से ही सम्बन्धी होते हैं। यह अत्यन्त बीभत्स, नश्वर और अत्यन्त दुःखद है ।। ११ ।। वहाँ ही देह में आत्मबुद्धि से सभी घूमते हैं, निन्दित कर्म करते हैं। इस देह में गुण का लेश भी तो नहीं है ।। १२ ।। पण्डित हों या नीच, इस संसार में सभी को यह पता है कि यह देह

विण्मूत्रकफनिष्यन्दं लोमत्वगसृगाततम् । मत्वा प्रियतमं देहमत्युत्तमतमं जनः ॥ १४॥
सुगन्धिगन्धकुसुमैर्मण्डयत्यतिसुन्दरैः । अवेत्य मण्डितं देहं प्रमोदमुपयाति च ॥ १५॥
विस्मृत्य नित्यप्रवहन्मूत्रविट्श्लेष्मसङ्ङ्कम् । पुष्टं रसाधिक्यवशात्प्रतिक्षणं विकारिणम् ॥ १६॥
स एव देहो जरसा व्यापृतो रोगदूषितः । व्रणादिप्रवहन्मज्जा दुर्गन्धप्रसरोद्यतः ॥ १७॥
चैतन्यकलया हीनो जलक्लिन्नोऽत्यमङ्गलः । कृमिराशिमयश्चान्यैर्भक्षितो विड्मयोऽशुचिः ॥
एवम्भूतदशायुक्तं पश्यन्नप्यन्यदेहकम् । मत्वा स्वदेहमजरामरमत्यन्तमूढधीः ॥ १९॥
एवंविधेऽतिबीभत्से नारीदेहे नृदेहके । परस्परस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वाऽत्यन्तसुमोहिताः ॥ २०॥
विचारणीयं सौन्दर्यं किं तत्राऽस्ति सुसूक्ष्मकम् । मलासृगस्थिसङ्गतमृते तत्प्रतिपाद्यताम् ॥ २१॥
अहोऽतिमुग्धदृष्टीनां कुणपेऽत्यन्तगर्हिते । नश्वरे दुःखदे चाऽतिभयदे क्षणिकेऽशुचौ ॥ २२॥
सौन्दर्यं भाति येनेमे मोहिताः प्रार्थयन्ति यम् । यत्स्त्रीगात्रं चारुतरं कामिनां प्रीतिवर्धनम् ॥ २३॥
पुरुषाङ्गाद्विशेषः कस्तत्र स्यादप्यणोर्मितः । मांसपिण्डौ स्तनौ तौ च स्फोटदुर्मांससम्मितौ ॥
दुर्व्रणस्फोटसंयोगे तयोः सौन्दर्यमीक्षितम् । देहेऽत्यन्ताऽशुचिमये ये प्रीतिमभियान्त्यहो ॥ २५॥
धिगस्तु तान्कृमिप्रायानमेध्यरमणान्नरान् । अविचारस्य माहात्म्यं किं वदाम्यहमीदृशम् ॥ २६॥
पश्यन्नपि महादोषं गुणमेवाऽभिमन्यते । एवं कुदेहाऽभिमतेः कामक्रोधादयोऽप्यरम्(?) ॥

सदा चूने वाले द्वार युक्त, अमेध्य, अपवित्र एवं दुर्गन्ध युक्त है ॥ १३ ॥ जिस देह को लोग अति उत्तम और प्रियतम मानते हैं, उससे पाखाना, पेशाब और बलगम जैसी निकृष्ट वस्तु टपकती रहती है। वह रोयाँ, चमड़ी और लहू से भरी पड़ी है ॥ १४ ॥ चन्दन, चोपा और सुगन्धित फूलों से इसे सजाकर फूले नहीं समाते; सजी-धजी इस देह को देखकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं ॥ १५ ॥ प्रतिक्षण परिवर्तनशील, रसाधिक्य से सुपुष्ट, हमेशा पाखाना, पेशाब और कफ टपकाने वाली इस देह को भूलकर इससे प्रेम करते हैं ॥ १६ ॥ यह देह तो बुढौती से जकड़ने वाली है, रोग से आक्रान्त होती है, घाव से मवाद बहा कर बदबू फैलाती है ॥ १७ ॥ यह चेतन आत्मा की कला से भिन्न है। जल से गीली है। अति अमंगलकारिणी है। इसमें कीटाणु भरे हैं, दूसरे इसको खाते हैं। यह विष्ठामय है, अपवित्र है ॥ १८ ॥ दूसरे व्यक्ति की देह की ऐसी दयनीय दशा देखकर भी मूर्ख व्यक्ति अपनी देह को अजर और अमर मानते हैं ॥ १९ ॥ ऐसे बीभत्स नर-नारी की देह के प्रति एक-दूसरे के आकर्षण होते हैं और उसके सौन्दर्य से मोहित होते हैं ॥ २० ॥ सूक्ष्म रूप से यह विचारणीय प्रश्न है कि इस देह में आखिर सौन्दर्य क्या है ? मल, मज्जा और हड्डियों का समूह और मरणधर्मो ही तो यह है ॥ २१ ॥ अहो ! अत्यन्त मुग्ध दृष्टिवाले का क्या कहना ? जो इस मुर्दे की तरह बदबूदार, विनष्ट होने वाली, दुःख देने वाली, अत्यन्त डरावनी, क्षणिक और अपवित्र देह में ॥ २२ ॥ सौन्दर्य दिखलायी पड़ता है, जिससे ये मोहित होकर उसकी प्रार्थना करते हैं। कामियों की प्रीति को बढ़ाने वाली नारी-देह जो इसे अत्यन्त चारुतर प्रतीत होती है ॥ २३ ॥ पुरुष-शरीर से स्त्री-शरीर में क्या विशेषता है ? सिर्फ छाती पर फोड़े की तरह फूटकर निकलने वाले दो स्तन रूपी मांसपिण्ड ॥ २४ ॥ दो-दो फूटकर निकलने वाले दुष्ट फोड़े के संयोग की तरह इन स्तनों में जो सौन्दर्य देखते हैं, अत्यन्त अपवित्र इस नारी-देह में जो प्रीतिमान होते हैं उन पर क्या कहना है ? आश्चर्य है ॥ २५ ॥ कीड़ों से भरी इस गन्दी नारी की देह में जो पुरुष रमण करता है उसे धिक्कार है। ऐसे अविचारी पुरुष की महिमा पर क्या बोलूँ ? २६ ॥ ऐसे भयङ्कर दोषों को देखते हुए भी उन्हें गुण ही मानते हैं। इस तरह नारी की कुत्सित देह में प्रीति करते हैं, जिसके कारण ही तत्परता से काम, क्रोध प्रभृति उत्पन्न नहीं होते क्या ? ॥ २७ ॥ तत्परता के साथ इन्हीं काम-क्रोधादि से नियोजित

भवन्ति येन विहता भ्रमन्त्युल्कामुखा इव । न कुत्र चित्स्थितिं यान्ति भ्रमवायुस्थतूलवत् ॥ २८ ॥
प्रायो जना मन्दधियो जिह्वोपस्थपरायणाः । न विदन्त्यतिसान्निध्यस्थितं मृत्युं भयङ्करम् ॥ २९ ॥
ईहन्ते चाऽतिदीर्घार्थसिद्धिमप्यल्पजीविताः । स्वार्थसिद्ध्यै परान्हन्ति कामक्रोधहताऽशयाः ॥
कामक्रोधहता मर्त्याः सुखसिद्ध्यै सदोद्यताः । न क्वचित्सुखमायान्ति क्षणं किञ्चिदपि ध्रुवम् ॥
दुरन्ताऽशागाढवह्निज्वालाप्लुष्टात्मनां नृणाम् । कुतो वैराग्यपाटीरपङ्कलेपनजं सुखम् ॥ ३२ ॥
धन्यास्ततो हि तीर्य्यश्चः संशान्तमनसः सुखम् । क्षुधानिवृत्तिमात्रार्थास्तत्कालार्थकृतोद्यमाः ॥
असङ्ग्रहपरा नित्यं शयानाः स्वस्थमानसाः । अहो धिक्कामवशतां सदा सन्तापकारिणीम् ॥
दुष्पूरां सर्वथोपायैः चिरकालाऽर्थसाधनैः । लोके यावद्धनं धान्यं पशवः स्त्रिय एव च ॥ ३५ ॥
न तस्य तावत्प्राप्त्याऽपि क्षणं निश्चिन्तता भवेत् । अहो महादुःखिनस्ते येषां कामहतं मनः ॥
सर्वसम्पत्समृद्धानामपि साम्राज्यमृच्छताम् । धनमेव हि दुःखानां मूलं नित्यभयावहम् ॥ ३७ ॥
दुःखेन प्राप्यते लोकैः कायक्लेशादिभिश्चिरम् । तद्धनप्राप्तिमात्रेण मित्राण्यपि च शत्रवः ॥ ३८ ॥
आत्मभूतात्मजोऽप्यस्मै द्रुह्यति प्रेयसी प्रिया । मातुः पितुः प्रियान्मित्राच्छङ्कते करटो यथा ॥
मृत्युमस्य प्रार्थयन्ति पुत्रदारादयः प्रियाः । तस्माद्धनेनाऽत्ममृत्युसमेन किमु वै सुखम् ॥ ४० ॥
तथाप्यविद्वान्सततमीहते मुग्ध एव तत् । एवम्भूतधनेनेह कुटुम्बानान्तु रक्षणम् ॥ ४१ ॥
क्रियते बह्वनर्थाय महायासेन सर्वदा । कुटुम्बं पुत्रदारादि तद्वृथाऽभिनिवेशतः ॥ ४२ ॥

सब कुछ होते हैं। अगिया वेताल अर्थात् प्रेत की तरह इधर-उधर घूमते हैं। ऐसे लोग कहीं भी स्थिर नहीं होते। चक्रवात के बीच पड़ी रुई की तरह नाचते रहते हैं॥ २८॥ प्रायः मन्दबुद्धि वाले लोग जीभ और योनि में अनुरक्त होते हैं, अपने पास में मौजूद मृत्यु को नहीं देखते॥ २९॥ अल्पजीवी होकर लम्बी सम्पत्ति अर्जित करना चाहते हैं, अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों की हत्या करते हैं। काम और क्रोध से उनकी बुद्धि मारी जाती है॥ ३०॥ अपने सुख की सिद्धि के लिए हमेशा तैयार आदमी काम और क्रोध से मारा जाता है। पर क्षणभर के लिए भी कहीं निश्चित रूप से कुछ भी सुख नहीं पाता है॥ ३१॥ अन्तहीन आशा रूपी धधकती आग की ज्वाला में जिस आदमी की आत्मा झुलस गई हो उसे वैराग्य रूपी चन्दनपङ्क के लेप का सुख कहाँ ?॥ ३२॥ मनुष्य की अपेक्षा तो वे पशु-पक्षी धन्य हैं जो केवल अपनी भूख मिटाने के लिए शान्त मन से संग्रह करते हैं॥ ३३॥ वे संग्रह नहीं करते स्वस्थ मन से गाढ़ी नींद सोते हैं। सन्तापकारी काम के वशवर्ती मनुष्य को धिक्कार है॥ ३४॥ बहुत समय से धन संग्रह में प्रवृत्त लोगों की कामना किसी भी उपाय से पूरी होने वाली नहीं है। तृष्णा तो दुष्पूर है, क्योंकि जब तक संसार में धन-धान्य, पशु, पत्नी मौजूद हैं॥ ३५॥ क्योंकि वे इन्हें पाकर भी क्षणभर के लिए निश्चिन्त नहीं होते हैं। हाय! ऐसे प्राणी बड़े ही दुःखी होते हैं जिनका मन काम से आहत होता है॥ ३६॥ हर तरह की सम्पत्ति और समृद्धि मिल जाने पर भी वे साम्राज्य पाने की खोज करते हैं। धन ही दुःख का मूल कारण है। वह नित्य ही भयावह है॥ ३७॥ दुःख से ही सांसारिक मनुष्य बहुकालिक शारीरिक रोग प्राप्त करते हैं। उनके तो धनप्राप्ति के कारण ही मित्र भी शत्रु बन जाते हैं॥ ३८॥ ऐसे लोगों से आत्मास्वरूप पुत्र, प्रिया पत्नी सब द्रोह करते हैं। माता-पिता एवं प्रिय मित्र सभी हाथी की तरह सन्देह करते हैं॥ ३९॥ पुत्र, पत्नी एवं प्रियजन ऐसे लोगों की मौत चाहते हैं। तो फिर आत्ममृत्यु की तरह इस धन से कैसा सुख ?॥ ४०॥ तथापि भ्रम में पड़े मूर्खजन इसी धन को चाहते हैं। क्योंकि ऐसे ही धन से अपने कुटुम्ब या परिजनों का रक्षण मानते हैं॥ ४१॥ परिवार, पुत्र, पत्नी प्रभृति का तो बेकार बहाना करते हैं। दरअसल इस धन का उपयोग तो हमेशा

ममैते पुत्रदाराद्या इत्येवमभिमानयन् । अभिमानमृते किञ्चित्सम्बन्धोऽपि न लभ्यते ॥ ४३ ॥
तच्चाऽन्त्ये बहुशोकाय यथा कोशकृतः क्रिया । चिरं संयोगिनाञ्चाऽपि स्यादेवाऽन्ते वियोगता ॥
लोकेऽवश्यं युग्मभूताः शोचन्त्येकवियोगतः । एवं वियोगपर्यन्तं संयोगप्रीतिसंयुताः ॥ ४५ ॥
शोचन्त्यतितरामन्त्ये संयोगफलमीदृशम् । फलव्यत्यय एवाऽस्ति संयोगस्य तु सर्वथा ॥ ४६ ॥
अविचार्यैव पर्यन्तं दाराद्यैः संयुता नराः । निश्चित्य स्थिरसंयोगं मूढाः कौटुम्बिनो नराः ॥ ४७ ॥
सदा कुटुम्बैकरताः शोचन्त्यन्तेऽतिदुःखतः । एष एव महान्दोषो धनेष्विह जनेषु च ॥ ४८ ॥
अस्थैर्यं सर्वसुगुणघस्मरं दुर्निवारणम् । एतेनाऽस्तङ्गतास्सर्वे गुणा निःशेषिता अतः ॥ ४९ ॥
सङ्गो नैव विधेयः स्याज्जातु स्वक्षेममिच्छता । सर्वं भयेन संव्याप्तं मृत्युनाऽतिबलीयसा ॥ ५० ॥
धनं गृहं तथा दाराः स्वर्गाद्यमपि कर्मजम् । तस्मान्नेच्छेत किमपि मृत्युग्रस्तञ्च शोकदम् ॥ ५१ ॥
अभयं सर्वदेच्छेत न शोचति यतो जनः । व्रजामि तं महात्मानं दत्तात्रेयगुरुं मुनिम् ॥ ५२ ॥
शरणं क्षेममन्विच्छन्नात्मनस्सर्वतोऽभयम् । एवं मार्गे चिन्तयानः पर्वतेन्द्रमवैक्षत ॥ ५३ ॥
पुरोभागे रोचमानशृङ्गाक्रान्तविहायसम् । शृङ्गसङ्गतविश्रान्तबलाहककदम्बकम् ॥ ५४ ॥
अमरीगणसङ्गीतनादघुङ्घुमितान्तरम् । नृत्यदप्सरसां श्रेणीनूपुराऽरावझाङ्कृतम् ॥ ५५ ॥
दोललोलाव्यग्रसिद्धपुरन्ध्रीगणसुन्दरम् । मैरेयक्षीवयक्षस्त्रीसंक्रीडद्गुह्यकावृतम् ॥ ५६ ॥
कदम्बकुसुमोदञ्चत्सौरभाऽऽभरिताऽन्तरम् । सौगन्धिकसुगन्धाढ्यं मन्दगन्धवहस्थलम् ॥ ५७ ॥

काफी मेहनत से अनेक तरह के अनर्थों के लिए ही करते हैं॥ ४२ ॥ परिवार, पुत्र, पत्नी प्रभृति की तो अवधारणा मात्र है। अगर इस अहंकार को अलग हटा दिया जाय तो थोड़ा सम्बन्ध भी इनसे नहीं रह जाता है॥ ४३ ॥ वह खजाना अन्त में शोक देने वाला ही सिद्ध होता है, क्योंकि जिसे बहुत दिनों से संग्रह किया अन्त में उससे भी बिछोह हो जाता है॥ ४४ ॥ संसार में आज जो जोड़ी है, उनका वियोग होना अवश्यंभावी है। इस तरह वियोगपर्यन्त संयोग प्रीतिसंयुक्त होता है॥ ४५ ॥ 'संयोग का यही परिणाम होता है' ऐसा अन्त में बहुत ज्यादे सोचते हैं। संयोग का फल सर्वथा विपरीत ही होता है॥ ४६ ॥ बिना विचार किये ही पत्नी-पुत्रादि से संयुक्त व्यक्ति, इस संयोग को सदा के लिए स्थिर संयोग मानकर मूर्ख व्यक्ति अपने को पारिवारिक मानते हैं॥ ४७ ॥ हमेशा परिवार के नाम पर मरते हैं और अन्त में अतिदुःखी होकर सोचते हैं। धन और तथाकथित आत्मीय जन में यही महान् दोष है॥ ४८ ॥ यह स्थिर नहीं है, इसे टाला नहीं जा सकता है; यह सारे सुन्दर गुणों को निगलने वाला है। इससे सारे-के-सारे गुण एक-एक कर समाप्त हो जाते हैं, अतः ॥ ४९ ॥ अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को कभी भी साहचर्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि महाबली मौत का भय तो चारों ओर फैला है॥ ५० ॥ स्वर्ग से भी बढ़कर अपने कर्म से उत्पन्न जो कुछ भी धन, गृह एवं पत्नी प्रभृति हैं उनकी कामना बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं करते। क्योंकि ये मौत की पकड़ में है तथा परम शोक देने वाले हैं॥ ५१ ॥ हर तरह के शोक का निवारण करने वाले अभयपद को ही खोजना चाहिए। अतः उस महात्मा मुनि गुरु दत्तात्रेय के पास ही जाता हूँ॥ ५२ ॥ अपनी आत्मा की हर ओर निर्भयता तथा आत्म-कल्याण की शरण चाहते हुए रास्ते में परशुराम ने महेन्द्र पर्वत को देखा॥ ५३ ॥ उस पहाड़ के अगले हिस्से में आकाश को छूती चमकदार चोटियाँ भरी थीं। उन चोटियों के समूह पर बादलों के दल विश्राम कर रहे थे॥ ५४ ॥ चोटी का भीतरी भाग देवकन्याओं के गीत से अनुगुञ्जित था। अप्सराएँ नाच रही थीं, उनके पायलों की ध्वनि सुनायी दे रही थी॥ ५५ ॥ अतिसुन्दर एवं आकर्षक सिद्धाङ्गनाएँ झूले झूल रही थीं। यक्षपत्नियाँ अपने-अपने पतियों के साथ मद्यपान कर मदोन्मत्त होकर क्रीड़ारत थीं॥ ५६ ॥ चोटी का भीतरी भाग कदम्ब के फूलों की सुगन्ध से महमहा रहा था। नीलकमल की सुगन्ध

पद्मिनीपद्मसंराजद्धंसचक्राङ्गसारसम् । भृङ्गीनिकरझङ्कारपरिबृंहितकुञ्जकम् ॥ ५८ ॥
एवं शोभामवेक्षन्स प्राप्तवानन्तिकं गिरेः । गन्धमादनसञ्ज्ञस्य गीर्वाणाऽवसतेस्तदा ॥ ५९ ॥
अत्राऽस्ते स महोयोगी यः संवर्त्तेन वर्णितः । दीनान्जनानुद्दिधीर्षुर्भवपङ्काब्धिविप्लुतान् ॥ ६० ॥
इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टिगोचरिताऽभवत् । पर्णशाला तस्य मुनेर्यद्दर्शनपिपासितः ॥ ६१ ॥
ननु शाला तस्य भवेदाङ्गिरसगुरोर्मुनेः । नूनं ममाऽल्पभाग्यस्य दैवमद्य प्रफुल्लितम् ॥ ६२ ॥
अहो जनानां कालेन भाग्यमभ्युदितं भवेत् । अद्याऽहं सम्प्रपश्यामि तत्पादसरसीरुहम् ॥ ६३ ॥
संसारदावतापघ्नममृताम्भोधिवर्षणम् । स एवं चिन्तयन् रामः शालाद्वारमुपागतः ॥ ६४ ॥
दृष्टवान् द्वारदेशस्थं ब्राह्मणं ध्यानतत्परम् । तद्ध्यानभङ्गभीत्याऽथ संस्थितो दूरतः क्षणम् ॥
उन्मीलिताक्षमथ तमुपलक्ष्योपसंसृतः । वन्दित्वा तस्य चरणौ प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ ६६ ॥
भो ब्रह्मन्नाश्रमः कस्य भवत्ययमतिप्रियः । दर्शनादेव सर्वेषामतिविश्रान्तिदायकः ॥ ६७ ॥
अत्र दत्तात्रेयगुरोराश्रमः कुत्र विद्यते । कृपया ब्रूहि योगेन्द्र द्रुतं मे दीनवत्सल ॥ ६८ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणः शान्तमानसः । वाक्यं मधुरसासारमाह स स्मितपूर्वकम् ॥ ६९ ॥
अयमेवाऽश्रमस्तस्य योगिराजस्य सद्गुरोः । किमीहितं तव वद कस्त्वं कस्मादिहागतः ॥ ७० ॥
अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य रामः प्राह कृताञ्जलिः । भृगुवंशप्रसूतोऽहं जामदग्न्यो महामुने ॥ ७१ ॥
रामो नाम जनैः ख्यातः केनचिद्धेतुनाऽत्र तु । प्राप्तः संवर्त्तमुनिना नोदितोऽतिकृपावता ॥ ७२ ॥
एतत्क्षणं द्रष्टुमेव गुरोश्चरणमीहितम् । मनो मे त्वरते ब्रह्मन् तत्पादावभिवन्दितुम् ॥ ७३ ॥

से भरी मन्द-मन्द हवा बह रही थी ॥ ५७ ॥ कमलिनी और कमल से सरोवर सुशोभित था, उसमें हंस, हंसिनी और सारस क्रीड़ारत थे। भौंरों की झंकार से कुञ्ज अनुगूंजित था ॥ ५८ ॥ इस तरह की शोभा का अवलोकन करते हुए देवताओं के निवासस्थान गन्धमादन नाम के उस पहाड़ के पास परशुराम पहुँच गये ॥ ५९ ॥ दीनजनों के उद्धर्त्ता, संसार-सागर से पार कराने वाले संवर्त्त मुनि द्वारा वर्णित वह योगी यहाँ ही रहते थे ॥ ६० ॥ इस तरह सोचते हुए परशुराम की आँखें उस मुनि की पर्णशाला पर पड़ी जिसके दर्शन की उसे प्यास थी ॥ ६१ ॥ मुनि अङ्गिरा के पुत्र मेरे गुरु की यही शाला है। निश्चय ही मुझ पर आज भाग्य प्रसन्न है ॥ ६२ ॥ अहो! मनुष्यों के भाग्य का उदय तो काल-सापेक्ष होता है। पर आज मैं देखता हूँ कि आज ही मुझे गुरु-चरणकमलों के दर्शन होंगे ॥ ६३ ॥ संसार रूपी दावानल के प्रशमन हेतु ये चरण अमृतरूपी बादल की वर्षा हैं। ऐसा सोचते हुए परशुरामजी उस कुटिया के दरवाजे तक पहुँच गये ॥ ६४ ॥ उस कुटिया के दरवाजे पर एक ब्राह्मण को ध्यानमग्न देखा। उनका ध्यान भङ्ग न हो जाय इस डर से कुछ देर तक दूर ही खड़े रहे ॥ ६५ ॥ जब उन्होंने आँखें खोलीं तब उनके पास पहुँच गये। फिर उनके चरणों में प्रणाम कर उनसे कुछ पूछना शुरू किया ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मण! अतिप्रिय यह आश्रम किसका है? इसके दर्शन मात्र से यह सबके लिए विश्रान्तिदायक है ॥ ६७ ॥ हे योगेन्द्र! हे दीनवत्सल! मुझ पर कृपा कर आप बतलायें, यहाँ गुरु दत्तात्रेयजी का आश्रम कहाँ है? ॥ ६८ ॥ परशुराम की ये बातें सुनकर उस ब्राह्मण ने बड़े शान्त मन से मुस्कराते हुए मधुररस में घुले वचनों में जवाब दिया ॥ ६९ ॥ उस योगीराज परम गुरु का यही आश्रम है। तुम्हारा अभीप्सित क्या है? बोलो! तुम कहाँ से आये हो? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है? ॥ ७० ॥ उनकी ये बातें सुनकर परशुरामजी ने हाथ जोड़कर कहा—भृगुवंश में मेरा जन्म है और ऋषि जमदग्नि का मैं पुत्र हूँ ॥ ७१ ॥ लोग मुझे परशुराम के नाम से जानते हैं। मैं यहाँ विशेष प्रयोजन से आया हूँ। अतिकृपालु मुनि संवर्त्त ने मुझे यहाँ भेजा है ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं गुरुदेव के चरणकमलों के दर्शन इसी क्षण करना चाहता हूँ।

ततस्सर्वं सुविदितं भवेद्वै भवतो ननु । भ्रमन् मरुस्थलारण्ये दावसङ्घाततितर्षितः ॥ ७४ ॥
सुशीतजललाभाऽन्यद्यथा नो नन्दयेत्तु तम् । तथा मम गुरोः पाददर्शनाऽन्यन्न रोचते ॥ ७५ ॥
आख्यातु तं भवान्मह्यमाश्रितार्त्तिविनाशनम् । अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहस्य मधुरं वचः ॥ ७६ ॥
राम जानामि ते सर्वमत्राऽऽगमनकारणम् । गुरोर्महात्मनः सेवामहिमावशतः स्फुटम् ॥ ७७ ॥
गच्छाऽन्तराऽऽस्ते मुनिराट् सर्वलोकसुहृत्तमः । इत्युक्तस्तेन मुनिना शालाऽन्तः प्रविवेश ह ॥
तत्राऽऽसीनमासनाग्रेऽवधूतकुलनायकम् । उपासितं योगिमुख्यैरवदातगुणाशयैः ॥ ७९ ॥
दण्डवत्तत्पदाब्जाऽग्रे प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । आस्थितो नाऽतिदूरे स पश्यन् तत्स्थितिचेष्टितम् ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ४५० ॥



उनके चरणों की वन्दना के लिए मेरा मन तड़प रहा है ॥ ७३ ॥ इसके बाद तो आपको सब कुछ अच्छी तरह ज्ञात ही होगा। मरुस्थल रूपी जंगल में भटकते हुए उसकी आग में झुलसकर मैं अतिप्यासा हूँ ॥ ७४ ॥ जैसे सुशीतल जल ही उसकी प्यास को बुझा सकता है, उसी तरह गुरुचरण के दर्शन के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं सोहाता ॥ ७५ ॥ आप कृपया मुझ आश्रित का कष्ट दूर करने के लिए उनसे कहें। परशुराम की यह बात सुनकर हँसते हुए मधुर वचन वे बोले ॥ ७६ ॥ हे परशुराम! तुम्हारे यहाँ आने का कारण मैं जानता हूँ। गुरु की महिमा का महत्त्व मैं जानता हूँ ॥ ७७ ॥ भीतर जाओ, वहीं वे मुनिराज सबके उत्कृष्ट मित्र हैं। उनसे अनुमति प्राप्त होते ही परशुरामजी ने भीतर प्रवेश किया ॥ ७८ ॥ वहाँ सुन्दर गुणों से युक्त प्रमुख योगियों से उपासित अवधूत कुल के नायक अपने आसन पर विराजित थे ॥ ७९ ॥ डण्डे की तरह धरती पर गिरकर उन्होंने उन्हें पहले प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़ कर उनकी स्थिति-चेष्टा को देखते हुए समीप में खड़े हो गये ॥ ८० ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



अथ षष्ठोऽध्यायः

तं ददर्श महात्मानं तेजोराशिमनुत्तमम् । तमालकोमलदलनीलनालतनुच्छविम् ॥ १ ॥
फुल्लराजीवनयनं राकेन्दुप्रतिमाऽऽननम् । नवविद्रुमसामन्तदन्तच्छदविराजितम् ॥ २ ॥
मन्दस्मिताऽतिसौन्दर्यप्रभापूर्णदिगन्तरम् । प्रौढमुक्तापङ्क्तिशोभापरीभाविद्विजाऽऽवलिम् ॥
पूर्णगण्डाभोगराजन्नासावंशलसन्मुखम् । कम्बुग्रीवं दीर्घबाहुद्वयशोभाविराजितम् ॥ ४ ॥
नवप्रवाललालित्ययुतपाणितलाऽञ्चितम् । विशालपृथुलोरस्कं तनुत्रिवलिकोदरम् ॥ ५ ॥
करिनासोरुसुभङ्गं तूणीसोदरजाधिकम् । पङ्केरुहातिसुभङ्गपादपङ्केरुहान्वितम् ॥ ६ ॥
सौन्दर्यकन्दममलं तारुण्यश्रीनिषेवितम् । दर्शनादेव नारीणां कोटिमन्मथदीपनम् ॥ ७ ॥
एवम्भूतं समालोक्य स्त्रिया लक्ष्मीसमानया । कयाचिदतितारुण्यलावण्यलसदङ्ग्या ॥ ८ ॥
मदिरामदसंरक्तघूर्णनेत्राम्बुजा तया । आलिङ्गितपुरोभागन्यस्तमैरेयकुम्भकम् ॥ ९ ॥
यतिवेषधरं मिश्रलिङ्गिनं शङ्कितोऽभवत् । किमेतदद्भुतं वृत्तं मुनेरस्य महात्मनः ॥ १० ॥
विषसम्पृक्तमाध्वीकमिव पश्यामि चेष्टितम् । अहो महात्मनां लोके नातिरत्यन्तचित्रिता ॥ ११ ॥
क्वचिद्बाह्यसमीचीनां क्वचिदान्तरसौभगा । अचिन्त्यवृत्तयो लोके योगिनः खलु मादृशम् ॥ १२ ॥
न ह्यसारं स संवर्त्तो मह्यमादिशति क्वचित् । द्वारेऽप्येष महाशान्तः संश्रयेत्प्राकृतं कथम् ॥ १३ ॥

✻ विमला ✻

सामने सर्वोत्कृष्ट प्रभापुञ्ज की तरह अतिदिव्य उस महात्मा को देखा। तमाल के कोमल कोंपल की तरह या नीलकमल की नाल की तरह नीलाभ जिनके देह की कान्ति थी॥ १ ॥ विकसित कमल की तरह जिनकी आँखें थीं, पूर्णिमा के चन्द्र की तरह जिनकी मुखछवि थी, नये मूँगे की तरह रक्ताभ उनके ओठ थे॥ २॥ उनकी मन्द मुस्कराहट के सौन्दर्य की प्रभा से दिगन्तर प्रतिभासित थे। परिपक्व मोती की पंक्ति की तरह चमचमाती उनकी दन्तपक्तियाँ थीं॥ ३॥ दोनों कपोल भरे-पूरे एवं आकर्षक थे। गर्दन शंख की तरह थी। दोनों बाँहें शोभासम्पन्न एवं लम्बी थीं॥ ४॥ विशाल एवं चौड़ी छाती थी। पेट में नाभि के ऊपर तीन पतली रेखाएँ थीं। नये मूँगे की तरह रक्ताभ दोनों हाथ की तलहथियाँ थीं॥ ५॥ हाथी की सूड़ की तरह अति सुन्दर उनकी दोनों जाँघें थीं। कमल से भी अधिक कोमल एवं सुन्दर उनके दोनों चरणकमल थे॥ ६॥ उनकी पवित्र सुन्दरता और तारुण्य शोभासम्पन्न थी। इस सौन्दर्य के दर्शन भाव से नारियों के हृदय में कराड़ों मन्मथ एक साथ जग जाते थे॥ ७॥ लक्ष्मीस्वरूपा अत्यन्त युवती लावण्यमयी, सुडौल सर्वाङ्ग वाली किसी नारी के द्वारा, जिसकी सुन्दर आँखें मदिरा के नशे में आरक्त होकर नाच रही थीं, उन्हें समालिङ्गित तथा सामने मदिरा से भरे घड़े को देखकर॥ ८-९॥ इस स्थिति में उस संन्यासी वेषधारी मिश्रलिङ्गी को देखकर शङ्कित हो गये। सोचा—आह! इस महात्मा मुनि का कैसा अद्भुत चरित्र है॥ १०॥ इनकी चाल तो जहर मिली शराब की तरह देखता हूँ। आश्चर्य है, संसार में महात्माओं का चरित्र तो अत्यन्त ही विचित्र है॥ ११॥ मेरे जैसे योगियों की बातें सदैव समझ से परे होती है, कहीं बाहर से उपयुक्त है तो कहीं भीतर से समृद्धिपूर्ण॥ १२॥ महामुनि संवर्त किसी भी स्थिति में, किसी भी तुच्छ व्यक्ति के पास मुझे आने का आदेश कैसे देते? स्वभाव से शान्त

अत्राऽपि परितः सर्वे निषण्णाः सात्त्विकर्षभाः। तस्मान्नैतद्यथा दृश्यमन्यदेवाऽस्ति किञ्चन॥
यथा तथा वा भवतु गुरुर्मेऽयं सनातनः। मनःकल्पितमेवेह सदसद्भेदभेदनम्॥ १५॥
इति निश्चित्य मेधावी सुचित्तस्तत्र तस्थिवान्। तं समालोक्य स गुरुर्विनीतं भार्गवं ततः॥ १६॥
प्रोवाच मधुरं वाक्यं विचित्राऽर्थसमन्वितम्। स्वागतं भार्गव तव कच्चित्ते कुशलं स्थितम्॥ १७॥
आश्रमे तव गोविप्रतृणवीरुन्महीरुहाम्। कच्चिदभ्यागतश्चाऽग्निं काले शुश्रूषसि क्रमात्॥ १८॥
काले काले स्वाध्ययनात्कच्चित्ते ब्रह्म सन्धृतम्। अकाण्डेषूत्थितान्देहजाताऽरीञ्जयसि ह्यरम्॥
तपसा ते जिता लोका बहवः पुण्यसंश्रयाः। त्वया भार्गववंशो वै नीतोऽत्युच्चपदं परम्॥ २०॥
तपसा विद्यया शक्त्या ब्रह्मचर्येण तेजसा। वदाऽऽगमनकार्यं ते मादृशा न सदाश्रयाः॥ २१॥
लोकेऽक्षगोचरजयः पुरुषार्थैककारणम्। पुरुषार्थस्य सम्पत्तिः परो लाभ इह स्मृतः॥ २२॥
अलब्धपुरुषार्था ये तत्राऽर्थेनैव चोद्यताः। पुरुषास्तेन जीवन्ति जीवत्कुणपसंज्ञकाः॥ २३॥
इति बह्वर्थनिःश्वासाः स्वार्थघ्नाः काष्ठपूरुषाः। सूत्रपाञ्चालिकेवेह व्यर्थचेष्टापरा नराः॥ २४॥
अहं पुराऽतिवैराग्यान्नस्तसर्वक्रियोऽभवम्। द्वयं तत्राऽतिबलवदिन्द्रियेष्वात्मशत्रुषु॥ २५॥
रसनोपस्थयुगलं बहवस्तेन पातिताः। द्वयं येन जितं सम्यक्तेन सर्वं जितं भवेत्॥ २६॥
अहमित्थम्भूत आभ्यां जातो नूनं विनिन्दितः। न संश्रयन्ति मां सन्तो निषिद्धपथसेविनम्॥ २७॥
बुद्धिभ्रंशकरी चेयं सुरा सज्जनगर्हिता। तादृशी वारयोषाऽपि मयैतदुभयं श्रितम्॥ २८॥

यह यति दरवाजे पर कैसे बैठा है?॥ १३॥ यहाँ भी चारों ओर सात्त्विक मुनिगण घेर कर कैसे बैठे हैं? अतः जो कुछ बाहर से दिखलायी पड़ रहा है, वैसा कुछ नहीं है; यह कुछ और ही है॥ १४॥ स्थिति जो कुछ भी हो, ये मेरे सनातन गुरु हैं। अच्छे-बुरे का भेद तो मात्र एक मानसिक कल्पना ही है॥ १५॥ ऐसा निश्चय कर निश्चिन्त होकर मेधावी परशुराम वहाँ रुक गये। उसके बाद उन्हें इस तरह विनीत देखकर गुरु दत्तात्रेय॥ १६॥ मधुर साभिप्राय वचन बोले—हे परशुराम! तुम्हारा स्वागत है, तुम सकुशल तो हो? तुम्हारे आश्रम में गाय, ब्राह्मण और लहलहाते घास, पेड़-पौधे तो हैं? हवन काल में आये अभ्यागत की सुश्रूषा तो क्रम से करते हो?॥ १७-१८॥ समय-समय पर तुम्हारा स्वाध्याय तो चलता है? कभी ब्रह्म का ध्यान तो करते हो? अपनी ही देह से उत्पन्न आकस्मिक दुश्मनों को भी तो जीत लेते हो?॥ १९॥ तप से तुमने सब लोक जीत लिये, बहुत सारे पुण्य का तुम आवासस्थल हो। तुमने भृगुवंश को अत्युच्च पद पर पहुँचा दिया है॥ २०॥ मुझ जैसे व्यक्ति, जो सद्गुण का शरणस्थल नहीं है, उसके पास जाने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? बोलो! तुमने तो अपने तप से; विद्या, शक्ति, ब्रह्मचर्य और तेज से सब कुछ पा लिया है॥ २१॥ संसार में इन्द्रियों पर विजय पाना ही पुरुषार्थ का एक मात्र प्रयोजन है। इन्द्रिय-विजय से बड़ी पुरुषार्थ की कोई सम्पत्ति संसार में नहीं है॥ २२॥ जिसने पुरुषार्थ नहीं प्राप्त किया, केवल अर्थोपार्जन में ही लगा रहा, वह जीवित रहकर भी मुर्दा है॥ २३॥ ऐसे काठ के पुरुष अनेक आत्मघाती काम के लिए ही जीवित रहते हैं। ऐसे लोग कठपुतली की तरह बेकार ही नाचते रहते हैं॥ २४॥ पहले मैंने अतिवैराग्य से सारी क्रियाएँ एक ओर डाल दीं। वहाँ आत्मशत्रु इन्द्रियों में दो ही अति बलवान् हैं॥ २५॥ जीभ और योनि। ये दोनों इन्द्रियों ने बहुतों को पतन के गर्त में ढकेला है। जिसने इन दोनों को जीत लिया, उसने सब कुछ जीत लिया॥ २६॥ मैं इन दोनों के सेवन से निन्दित हूँ। निषिद्ध मार्ग पर चलने के कारण सन्तों ने मेरा आश्रम छोड़ दिया है॥ २७॥ सज्जनों से निन्दित यह शराब बुद्धि को नष्ट करने वाली है। उसी तरह यह वाराङ्गना भी है और इन दोनों के आगोश में मैं सिमट गया हूँ॥ २८॥ इसीलिए प्रायः मेरी संगति छोड़कर सन्तजन यहाँ

अतो मत्सङ्गतिं प्रायस्त्यक्त्वा सन्त इतो गताः। तस्मादेवंविधस्येह स्थाने त्वं कथमागतः॥ २९॥
वद भार्गव तथ्यं तद्येन शुध्येत मन्मनः। इति पृष्टो जामदग्न्यो रामः प्राह सुविस्मितः॥ ३०॥
संवर्त्तचरितं तच्च पूर्वदृष्टमनुस्मरन्। नूनं स्वरूपगुप्त्यै नो मुनिराहेदृशं वचः॥ ३१॥
उद्विग्नो मादृशां सङ्गात्कामिनां हतचेतसाम्। न प्राकृतं वदेन्मह्यं संवर्त्तोऽतिदयापरः॥ ३२॥
इति व्यवस्य नत्वा तमाहाऽत्यन्तशुभं वचः। भगवन्नार्हसि मयि शङ्कितुं शरणागते॥ ३३॥
अनन्यगतिरद्य त्वां दयापीयूषवारिधिम्। दीनः संसृतिकान्तारदुर्गभ्रमणकातरः॥ ३४॥
दुःखदावाग्निजटिलज्वालामालाऽऽकुलाऽऽशयः। वाञ्छामध्याह्नतरणिकिरणैः परितापितः॥
दैवात्संवर्त्त सन्मार्गं प्राप्याऽऽसादितवानहम्। प्रवच्छीतलपीयूषमकरन्दाऽऽलवालकम्॥
कल्पद्रुमवरं सेव्यं सेवकाऽलिकुलाऽऽवृतम्। त्वां महात्मानमनघं सोऽहं त्वदनुकम्पितः॥ ३७॥
भवामि न चिरादेव संवर्त्तोक्तिमहत्त्वतः।
नाहं विशङ्कनीयः स्यामनन्यशरणागतः। भवान्मया सुविदितो निश्चितश्चाऽपि मे गुरुः॥ ३८॥
सद्वाऽसद्वा स एवाऽस्तु पन्थास्ते सद्गुरोर्मम। गुरुः साक्षात्परः शिवस्सर्वेषामात्मदो मतः॥ ३९॥
अनात्मदैरसद्भिः किं को लाभस्तत्समागमात्। धनैः पुत्रैर्गृहैः स्त्रीभिर्ग्रामैरखिलभूधनैः॥ ४०॥
प्राप्तैरनात्मभूतैस्तैरप्राप्ताऽऽत्मफलस्य किम्। हृतात्मनः सुखं कस्माद्भवेदखिलवैभवैः॥ ४१॥
जात्यन्धस्येव दीपानां सहस्रैरिव नो फलम्। तस्मान्मयि कृपासिन्धो भगवन् दीनवत्सल॥ ४२॥

से दूर हट गये हैं। अतः मुझ जैसे अधम जन के आश्रम में तुम क्यों आये हो?॥ २९॥ हे परशुराम! तुम आगमन का कारण स्पष्ट करो ताकि मेरा मन शुद्ध हो। परशुराम से जब उन्होंने ऐसा पूछा तो अत्यन्त विस्मित होकर उन्होंने कहा॥ ३०॥ पहले संवर्त्त मुनि का जो चरित्र परशुराम ने देखा था, उसकी याद करते हुए उन्होंने निश्चय किया कि हमसे अपनी असलियत को छिपाने के लिए ही इन्होंने ऐसा कहा है॥ ३१॥ मुझ जैसे उद्विग्न, साहचर्य से कामी, घबड़ाये हुए व्यक्ति को दयालु संवर्तमुनि असंस्कृत बातें तो कह नहीं सकते॥ ३२॥ ऐसा विचार कर उन्हें प्रणाम कर अत्यन्त मंगल वचन उन्होंने कहा—हे भगवन्! आप मुझ शरणागत पर सन्देह न करें॥ ३३॥ आप दया रूपी अमृत के सागर हैं, मेरी तो आज आप ही अनन्य गति हैं। मैं अतिदीन हूँ, संसार रूपी विशाल बियावान दुर्ग में घूमते-घूमते मैं हतोत्साह हो गया हूँ॥ ३४॥ दुःख रूपी दावाग्नि की जटिल ज्वाला में मैं बुरी तरह झुलस गया हूँ, आकुल-व्याकुल हूँ, अभिलाषा रूपी दोपहर की किरणों के ताप से परितापित हूँ॥ ३५॥ भाग्य से ही मुनि संवर्त्त से मुझे इस मार्ग की प्राप्ति हुई है। पुष्परस से निर्मित मधु की खाई से जहाँ शीतल अमृत-कण की फुहार झड़ रही हैं॥ ३६॥ सेवक रूपी भौंरों के समूह से घिरे आप निष्कलुष महात्मा है, मेरे लिए सेवनीय श्रेष्ठ कल्पद्रुम हैं। मैं आपकी कृपा का आकांक्षी हूँ॥ ३७॥ मुनि संवर्त के महत्त्वपूर्ण कथनानुसार ही मैं यहाँ शीघ्र आया हूँ। मुझ पर आप सन्देह न करें। मैं आपका अनन्य शरणागत हूँ। आपको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। निश्चित रूप से आप ही मेरे गुरु हैं॥ ३८॥ अच्छे या बुरे आप जिस राह से चलते हैं वही राह मेरी राह है। सबके लिए ही आत्मज्ञान के दाता सद्गुरु होते हैं। आप तो हमारे लिए साक्षात् शिव की तरह है॥ ३९॥ धन, पुत्र, स्त्री, ग्राम या फिर सारी धरती के धन के आगमन से भला क्या लाभ? ये सभी अनात्म अर्थात् नश्वर शारीरिक सुख देने वाले हैं, अतः ये असत् हैं॥ ४०॥ ये भौतिक सुख-समृद्धि पा लेने पर भी आत्मफल नहीं पाने पर क्या लाभ हुआ? इस अखिल वैभव से भला हतात्मा को क्या लाभ हो सकता है?॥ ४१॥ हजारों दीप जला देने पर भी उससे जैसे अन्धे को कोई लाभ नहीं होता, उसी तरह आत्मज्ञानविहीन जन को सांसारिक वैभव से कोई लाभ नहीं होता।

कृपा कर्त्तुं समुचिता शुद्धोऽहं त्वत्पदाऽऽश्रितः। इत्येवं तस्य वचनं श्रुत्वा दीनदयापरः॥४३॥
प्रसन्नवदनः प्राह दत्तात्रेयो महामुनिः। साधु वत्स जामदग्न्य सम्यग्व्यवसितं त्वया॥४४॥
स्वाऽऽत्मनः पदवी श्रेष्ठा दुर्लभा परिमार्गिता। नैतदल्पफलं ज्ञेयं यदात्मपदमार्गणम्॥४५॥
आश्चर्योऽत्र नरो लोके स्वात्मलोकाऽनुचिन्तकः। एतावदत्र नृतनौ सारभूतं महाफलम्॥४६॥
शाश्वतप्रापकं सत्यं यदात्मपदमार्गणम्। नूनं जना गोचरेषु सन्धृताक्षाशयाः सदा॥४७॥
इन्द्रजालनिभेष्वद्धा समीहन्ते पदे पदे। अलभ्य तत्र विश्रान्तिं कालपाशेन पाशिताः॥४८॥
देहाद्देहान्तरं यान्ति चाऽसङ्ख्येयपरिक्रमैः। चक्राऽऽन्दोलनयन्त्रस्थजना इव मुधा सदा॥४९॥
ऊर्ध्वाऽधो मध्यगमनं यान्ति तत्तद्गतिक्रमात्। प्रसन्नोऽहं जामदग्न्य दृष्ट्वा निष्ठां तवाऽचलाम्॥
वद तेऽभीप्सितं किं तदागतो यन्निमित्ततः। श्रुत्वैवं तद्वचो रामः प्रसन्नेन्द्रियमानसः॥५१॥
प्रणिपत्य प्रश्रयतः समाह प्राप्तविष्टरः। कृताञ्जलिर्मधुरया गिरा सूनृतया तदा॥५२॥
महाराज गुरो स्वामिन् त्वयि तुष्टे महेश्वरे। किमलभ्यमिहास्त्यन्यदिह लोके परत्र च॥५३॥
रत्नेच्छस्येव सम्प्राप्तरोहणस्य महात्मनः। नूनं मया बहुतिथं संसृतेर्वर्त्म संश्रितम्॥५४॥
तत्र भ्रमन्न विश्रान्तिं लब्धवान् जातु लेशतः। ईहामन्युज्वलत्कीलिज्वालाजालसमाकुलः॥
दन्दह्यमानोऽनुदिनं दीर्घकालोऽतिवाहितः। अन्तःशीतलता लब्धा न मया कुत्रचित्क्वचित्॥
लोके सर्वे नरा नार्यो मृगा यादो विहङ्गमाः। आढ्यो रङ्को महीपालो मण्डलेशश्च चक्रपः॥५७॥

अतः हे भगवन्! हे कृपासिन्धो! हे दीनवत्सल! मुझ पर॥४२॥ कृपा करना ही आपके लिए समुचित होगा। मैं शुद्ध रूप से आपके चरणों का आश्रित हूँ। दीनदयालु दत्तात्रेय ने परशुराम की ऐसी बातें सुनकर॥४३॥ प्रसन्नवदन महामुनि दत्तात्रेय ने परशुराम से कहा—वत्स! साधु! तुमने जो कुछ कहा वह यथार्थतः संकल्पित है॥४४॥ आत्मा की उपलब्धि श्रेष्ठ है। इसे खोजना कठिन है। आत्मपद की खोज का फल कम नहीं जानना चाहिए॥४५॥ आश्चर्य है! इस दुनिया में रहकर भी तुम आत्मानुचिन्तक हो। इतना भर ही तो इस नरदेह का सारभूत महाफल है॥४६॥ आत्मपद की खोज ही सत्य है, शिव तक पहुँचाने वाला है। साधारण मनष्य तो इस संसार में विषयप्रवण ही हैं॥४७॥ संसार इन्द्रजाल की तरह है, उसमें सभी बन्धक पग-पग पर कुछ चाहते हैं, पर वहाँ कालपाश में बँधे लोगों के लिए विश्रान्ति तो नहीं ही मिलने वाली है॥४८॥ एक देह से दूसरी देह धारण करते हैं, यह परिक्रमा अनगिनत है। घूमते चक्के पर बैठे लोगों की तरह मनुष्य जन्म-जन्मान्तर में भटकते रहते हैं॥४९॥ ऊपर, नीचे और बीच में चक्के के गतिक्रम की तरह ये सांसारिक जीव भटकते रहते हैं। हे परशुराम! तुम्हारी इस अचल निष्ठा को देखकर मैं काफी खुश हूँ॥५०॥ बतलाओ, तुम्हारा अभिलषित क्या है? किस प्रयोजन से तुम यहाँ आये हो? गुरु दत्तात्रेय की यह बात सुनकर परशुराम के अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रसन्नता से झूम उठे॥५१॥ आसन पाकर विनम्रतापूर्वक उन्हें प्रणाम कर सत्य, सुखद और शिष्ट शब्दों में हाथ जोड़कर उनसे मधुर निवेदन किया॥५२॥ हे महाराज! हे गुरुदेव! हे स्वामिन्! आप तो मेरे लिए साक्षात् शिव की तरह है। आपके प्रसन्न हो जाने पर मेरे लिए लोक-परलोक में कोई वस्तु अलभ्य नहीं है॥५३॥ रत्न चाहने वाले की तरह मैंने भी पर्वत की ऊँचाई पर आप जैसे महात्मा को पा लिया। इससे पूर्व बहुत दिनों तक मैं संसार-चक्र में भटकता रहा॥५४॥ संसार की राह में भटकते हुए लेश भर भी मैंने विश्रान्ति नहीं पाई। वहाँ तो मैं कामना और क्रोध में जलते हुए आयुध की ज्वालाजाल में जलता रहा॥५५॥ दिन-रात लम्बी अवधि में इस ज्वाला में मैं जलता रहा। कहीं भी किसी भी स्थिति में आन्तरिक शीतलता का अनुभव मुझे नहीं हुआ॥५६॥ संसार में सभी नर-नारी, पशु-पक्षी,

गन्धर्वा गुह्यका यक्षाः सिद्धविद्याधराऽदयः। सर्पा नागा यातुधाना इन्द्रचन्द्रादयोऽपि च॥ ५८॥
दन्दह्यमाना एवैते सदा काममहाऽग्निना। तस्माद्यथाऽहमनिशं भवेयं सर्वशीतलः॥ ५९॥
दह्यमाने वने गङ्गामध्यस्थ इव सिन्धुरः। तथाऽहं भवतः सम्यग्बोधितः स्यामिति प्रभो॥ ६०॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य दत्तात्रेयो महामुनिः। अवदत्सुशुभां वाणीं हर्षयन्भार्गवं मुनिम्॥ ६१॥
राम संश्रृणु मद्वाक्यं यदुक्तं भवताऽनघ। अत्यन्तश्रेयसो मूलमेतत्ते वाञ्छितं शुभम्॥ ६२॥
नूनं त्वयि कृपा सम्यग्भगवत्या समाहिता। अनेकप्राग्जनुकृतं सुकर्म फलितं तव॥ ६३॥
न ह्यल्पकर्मभिर्जातु शुभमेवं प्रजायते। महाफलं व्यवसितमारात्ते हि फलोदयः॥ ६४॥
शृणु मद्वचनं राम सावधानेन चेतसा। आत्यन्तिकन्तु यत्क्षेमं तत्तेऽभीष्टतमं मतम्॥ ६५॥
तद्विना ज्ञानयोगेन न सिध्यति कदाचन। सर्वेषां प्राणिनामात्मा साक्षादेव परः शिवः॥ ६६॥
स्वमायावैभववशात्स्वात्मानमविदन्परम्। सङ्कोचे सर्वशक्तीनां स्वयं सङ्कुचितस्ततः॥ ६७॥
नैतावदिह सत्यं स्याद्भाति रिक्तमपि क्वचित्। तथा तथा भासनात्तु विना किञ्चिन्न विद्यते॥
भासनं भानमेवेह नाऽभानाद्भासनं पृथक्। भानशक्तिर्भासनं हि भानात्मा परमः शिवः॥ ६९॥
स एवाऽत्यच्छया शक्त्या स्वयमेकः सनातनः। भासते विविधाऽऽकारो विचित्रत्वेन सर्वतः॥
स एवाऽऽत्मा तु सर्वेषां लोकानां नित्यसत्प्रभः। अभात इव भातोऽपि सदा मोहेन मन्यते॥
तस्मात्तत्प्रत्यभिज्ञानान्मोहनाशे सति द्रुतम्। अन्तर्बहिः सर्वतश्च गङ्गाऽन्तर्द्वीपगो यथा॥ ७२॥
शीतलं भावमभ्येति नाऽन्यथा यत्नकोटिभिः। तज्ज्ञानं दुर्लभं लोके दुर्लक्ष्यं विषयाऽऽत्मभिः॥

जलजन्तु तथा धनी, गरीब, महीपाल, मण्डलेश और चक्रवर्त्ती सम्राट्॥ ५७॥ गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर प्रभृति देवयोनिसमुत्पन्न; सर्प, नाग, राक्षस, इन्द्र एवं चन्द्रादि भी॥ ५८॥ —ये सभी सर्वदा काम रूपी आग में जलते रहते हैं। इसीलिए मैं जिस तरह दिन-रात शीतलता का अनुभव कर सकूँ॥ ५९॥ मैं आपकी कृपा से जलते हुए जंगल में गङ्गा के बीच में बैठे हाथी की तरह सर्वतोभावेन शीतल होना चाहता हूँ॥ ६०॥ परशुराम की बातें सुनकर महामुनि दत्तात्रेय ने उन्हें प्रसन्न करते हुए अत्यन्त शुभद वाणी कही॥ ६१॥ हे परशुराम! तुमने निष्पाप कहा है तो मेरी बातें ध्यान से सुनो। ये तुम्हारे लिए वाँछित शुभ एवं अत्यन्त कल्याण का मूल है॥ ६२॥ निश्चय ही जन्म-जन्मान्तर का तुम्हारा सुकर्म फलित हुआ है। तुम पर भगवती की निश्चय कृपा हुई है॥ ६३॥ किसी स्वल्प सुकर्म का ऐसा शुभ फल प्राप्त नहीं होता है। तुम्हारे द्वारा अनुष्ठित शुभकर्मों का ही इस महाफल की प्राप्ति है॥ ६४॥ हे राम! मेरी बातें सावधान मन से सुनो। तुम्हारे लिए जो आत्यन्तिक क्षेम है तथा तुम्हारा जो अभीष्टतम मत है, वही कहता हूँ॥ ६५॥ वह कभी भी बिना ज्ञानयोग के सिद्ध नहीं होता। सभी प्राणियों की आत्मा ही परम शिव है॥ ६६॥ अपनी माया के वश होकर अपनी आत्मा को बिना जाने सर्वशक्ति के संकोच में स्वयं संकुचित हो जाते हैं॥ ६७॥ इस संसार में इतना ही सत्य नहीं है, कहीं रिक्त भी सुशोभित होते हैं, जहाँ कहीं इस दिव्य चमक के बिना और कुछ भी नहीं है॥ ६८॥ ज्योतिर्मय तत्त्व प्रत्यक्ष ज्ञानजन्य ही है, बिना बोध के ज्योतिर्मय तत्त्व भिन्न नहीं होते, भानशक्ति ही तो आसन है, भानात्मा ही परम शिव है॥ ६९॥ वही अति इच्छाशक्ति से स्वयं एक सनातन है। अनेक आकारों में वही तो विचित्र होने के कारण सब जगह दीख पड़ता है॥ ७०॥ शाश्वत सत्प्रभा से युक्त सभी लोगों की यही आत्मा तो है। दीखते हुए भी मोहवश अनदेखे लगते हैं॥ ७१॥ अतः उसे पहचानते ही शीघ्र ही मोह भङ्ग हो जाता है। अन्तर्दीपगत गंगा की तरह भीतर-बाहर सब ओर वही दीखता है॥ ७२॥ बिना शान्त स्थिति प्राप्त किये करोड़ों उपाय से यह प्राप्त नहीं हो सकता है। संसार में

विना पराशक्तिकृपां नैव लभ्यं कदाचन। अत आदौ सर्वजनैः सेव्या सा त्रिपुराऽम्बिका॥ ७४॥
सेवनं तु विना भक्त्या दुर्लभा जन्मकोटिभिः। साऽपि तस्याः सुमहिमाऽऽकर्णनेन विना तथा॥
तस्मात्प्रयत्नेन जनैः सदा सुश्रद्धया युतैः। श्रोतव्या कीर्त्तितव्या च त्रिपुरायाः परा कथा॥ ७६॥
शृण्वतोऽनुदिनं सैव दृढां भक्तिं प्रयच्छति। ययाऽऽसाद्य परां सेवां समाप्नोत्यभयं पदम्॥ ७७॥
नान्यः पन्थास्तस्य भवेत्पदस्य प्रापणे क्वचित्। अत आदौ परा श्रद्धा कर्त्तव्या महिमश्रुतौ॥ ७८॥
सैव कल्पतरुर्नॄणां वाञ्छितार्थप्रसाधने।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे षष्ठोऽध्यायः॥ ५१८॥



आत्मज्ञान दुर्लभ है। विषयासक्त लोगों के लिए तो वह दुर्लक्ष्य है॥ ७३॥ बिना पराशक्ति की कृपा से किसी भी स्थिति में इसकी उपलब्धि संभव नहीं है। इसके लिए सबसे पहले सबके लिए देवी त्रिपुरा की आराधना आवश्यक है॥ ७४॥ बिना भक्ति के करोड़ों जन्म से की गई उनकी पूजा से भी वह दुर्लभ है और बिना उनकी महिमा सुने उनकी भक्ति भी दुर्लभ है॥ ७५॥ अतः व्यक्ति को चाहिए कि सदा श्रद्धायुक्त होकर पूरी निष्ठा के साथ भगवती पराशक्ति त्रिपुरा की कथा सुने और सुनाये॥ ७६॥ उनकी कथा रोज सुनने से वह दृढ़ भक्ति प्रदान करती हैं, जिससे वह परा सेवा प्राप्त कर अभय पद प्राप्त करता है॥ ७७॥ इसके सिवा और कोई दूसरी राह उसे पाने की नहीं है। अतः सबसे पहले उनके प्रति श्रद्धा करनी चाहिए और उनकी महिमा सुननी चाहिए॥ ७८॥ मनुष्यों के लिए वाँछितार्थ प्रदान करने वाली वही कल्पतरु है।

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
छठा अध्याय समाप्त हुआ।



अथ सप्तमोऽध्यायः

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भार्गवः प्रीतमानसः। पुनराह शुभं वाक्यं मधुराऽक्षरसुस्वरम्॥ १॥
श्रीगुरो या त्वया प्रोक्ता त्रिपुरेति पराऽम्बिका। कीदृशी सा कथम्भूता किं स्वभावा किमाश्रिता॥
वद मे करुणासिन्धो सविस्तरतयाऽधुना। इति पर्यनुयुक्तस्तु प्रोवाच ललितं वचः॥ ३॥
त्रिपुरामहिमासिन्धुमग्नाऽन्तःकरणो मुनिः। ध्यात्वा प्रणम्य परमां ध्यानजाऽऽनन्दसम्प्लुतः॥
शृणु राम पराशक्तेर्महिमा केन वर्ण्यते। लोकेश्वरैर्विधात्राऽऽद्यैः सर्वज्ञैः सर्वशक्तिकैः॥ ५॥
अद्याऽपि सा न विज्ञाता केयं कुत्र स्थितेत्यपि। न सा वर्णयितुं शक्या ईदृशीति यथार्थतः॥ ६॥
वेदाः शास्त्राणि तन्त्राणि वक्तुं न प्रभवन्ति वै। प्रत्यक्षादिप्रमाणानि पराक्संस्थानि सर्वदा॥ ७॥
विश्रान्तानि मेयपदे नाऽऽक्रमन्ति तु तत्पदम्। वैश्वानरस्य ज्वालेव नान्तर्गच्छति कुत्रचित्॥ ८॥
सा शक्तिर्मातृसामस्त्यसङ्घट्टपदवीं श्रिता। न तर्केण युक्त्या वा ज्ञातुं योग्या कदाचन॥ ९॥
अस्मीत्यवगमादन्यत्रोपलभ्येत कुत्रचित्। सा लीलाऽऽत्ततनुः शास्त्रैर्वेदाद्यैश्च निरूप्यते॥ १०॥
प्रमाणानां प्रमात्री सा चिच्छक्तिरिति शब्द्यते। लीलाऽऽत्तवपुषोऽप्यस्या नान्तोऽस्ति महिमाऽम्बुधेः॥
शक्या गणयितुं सम्यक्पार्थिवाः परमाणवः। नान्तोऽस्ति महिमाराशेरस्याश्चित्रतनोः क्वचित्॥
तथापि सारतो लेशं त्रिपुरा चरितस्य ते। अभिधास्यामि तद्राम सावधानमनाः शृणु॥ १३॥

✽ विमला ✽

गुरु की ऐसी बातें सुनकर परशुरामजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़ी मीठी आवाज में शुभ वाक्य फिर कहा॥ १॥ हे गुरुदेव! आपने जो कहा, 'पराम्बिका त्रिपुरा' वह कैसी हैं? किस प्रकार की हैं? उनका स्वभाव कैसा है तथा कहाँ रहती हैं?॥ २॥ हे दयासागर! इस समय आप हमें कृपया इनके बारे में विस्तारपूर्वक बतलायें। ऐसी अनुपयुक्त बातें सुनकर गुरु ने मीठे शब्दों में कहा। ३॥ मुनि दत्तात्रेय की आत्मा त्रिपुरा की महिमा रूपी सागर में गोता खाने लगी। हर्षपुलकित गात्र वाले उस मुनि ने त्रिपुरा का ध्यान कर उन्हें प्रणाम किया॥ ४॥ हे राम! सुनो, उस पराशक्ति की महिमा का आज तक किसने वर्णन किया है? सर्वशक्तिसम्पन्न लोकेश्वर एवं विधाता प्रभृति भी इसकी अवर्णनीय महिमा का वर्णन नहीं कर पाते हैं॥ ५॥ 'यथार्थतः वह ऐसी है' इसका वर्णन करने में कोई आज तक समर्थ न हो सका। आज भी वह अविज्ञात है, वह कौन है और उसकी स्थिति क्या है? कोई नहीं जानता॥ ६॥ वेद, शास्त्र और तन्त्र इसके बारे में कुछ बोल नहीं सकते। प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से भी यह दूर है॥ ७॥ अनुमानगम्य वस्तु में वह विश्राम करती है, आग की ज्वाला की तरह वह कभी भीतर नहीं मुड़ती॥ ८॥ समस्त मातृवर्ग के स्वरूप में वे हैं। तर्क या युक्ति से उसे जानना असंभव है॥ ९॥ 'अस्मि' (मैं हूँ) इस अनुभव मात्र से वह जानने योग्य है। वह चित् शक्ति लीला के अधीन ही शरीर धारण करती है। शास्त्र, वेदाग्नि यही निरूपण करते हैं॥ १०॥ वह चित् शक्ति प्रमाणों की प्रमातृ हैं, अपनी लीला के लिए शरीर धारण करने वाली है। इसकी महिमा के सागर का कोई अन्त नहीं है॥ ११॥ कोई राजा परमाणुओं की गिनती कर सकता है, पर इस पराशक्ति के चित्र तनु का एवं उसकी महिमा के समूह का कोई अन्त नहीं है॥ १२॥ फिर भी हे राम! त्रिपुरा की महिमा का सार-संक्षेप में मैं

पुरा क्षीराम्बुधिप्रान्ते शयानः फलितल्पके। आदिनारायणः साक्षात्तस्याः सत्त्वतनुर्हरिः ॥ १४ ॥
श्रिया लालितपादाब्जयुगलाऽतिविराजितः । भिन्ननीलमणिस्तोमकान्तिकान्ताऽङ्गसुप्रभः ॥
प्रावृषेण्यपयोवाहमध्यप्रोद्यत्तडित्प्रभम् । पीताम्बरं यस्य कटितटे संराजते स्फुटम् ॥ १६ ॥
श्रीवत्सशोभिपृथुलपीनवक्षःस्थलाञ्चितः । वनमालातुलसिकागन्धाऽऽहूतमधुव्रतैः ॥ १७ ॥
अङ्गात्कान्तिच्छटेवेह निर्गता लक्ष्यते बहिः । पीनदीर्घचतुर्बाहुनालपद्मतलान्वितः ॥ १८ ॥
करसन्धृतशङ्खारिगदापद्मविराजितः । राकेन्दुप्रतिमानाऽऽस्यो बिम्बोष्ठश्चारुनासिकः ॥ १९ ॥
कर्णोल्लसत्सुमकरकुण्डलद्वयशोभितः । विकसत्पद्मयुगलपरिभाविशुभेक्षणः ॥ २० ॥
भृङ्गाऽऽवलिनिभस्निग्धदीर्घकेशालिमण्डितः । नूत्नरत्नावलिप्रोद्यच्चारुकोटीरमस्तकः ॥
प्रेमाऽवलोकनिष्यन्दैरभिषिञ्चद्रमां मुहुः । भक्तैः प्रह्लादमुख्यैस्तु सेव्यमानोऽन्वहं हरिः ॥ २२ ॥
आस्ते समस्तजगतीरक्षणदक्षिणः सदा। कदाचित्तत्र लोकानां स्रष्टा गच्छन् पितामहः ॥ २३ ॥
दण्डवत्प्रणिपत्याऽथो कृताञ्जलिपुटो विधिः। स्तुत्वा बहुविधैः स्तोत्रैः स्थितः सम्प्राप्तविष्टरः ॥
अथ देवाः शतमखमुखाः सम्मुखतो हरेः । आजग्मुर्विवदन्तो वै क्रुद्धाः संरक्तलोचनाः ॥ २५ ॥
प्रणिपत्य विधातारं हरिञ्च कमलापतिम्। उपविष्टाः क्रमात्तत्र सम्प्राप्ताऽऽज्ञा मधुद्विषः ॥ २६ ॥
तत्र पार्षदमुख्येन सुनन्देन प्रचोदितः । शतक्रतुरुपक्रामद्वक्तुं वृत्तं निजं कलेः ॥ २७ ॥
भगवन् कमलाकान्त पुराणपुरुषाऽव्यय । विवदामो वयं सर्वे यत्राऽर्थे तन्निशामय ॥ २८ ॥
अहं शतक्रतुर्देवराजस्त्रिभुवनेश्वरः । मयोक्तं देवसदसि प्रसङ्गात्सकलं जगत् ॥ २९ ॥

तुम्हें बतलाता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ एक बार क्षीरसागर में शेषनाग पर भगवान् विष्णु सोये थे, साक्षात् आदिनारायण के सत्त्व से शरीर धारण उन्होंने किया था ॥ १४ ॥ भगवती महालक्ष्मी उनके चरणकमलों को दबा रही थीं। नीलमणि-समूह की कान्ति के सदृश उनके शरीर की कान्ति थी तथा सुन्दर महालक्ष्मी के सम्पर्क से भी सुशोभित थे ॥ १५ ॥ वर्षा ऋतु में बादल के बीच चमकने वाली बिजली की छटा की तरह छवि वाले पीताम्बर कमर में कसे श्रीनारायण थे ॥ १६ ॥ श्रीवत्स से सुशोभित मांसल चौड़ी छाती पर वनमाला और तुलसी की सुगन्ध भौंरों को आहूत कर रही थी ॥ १७ ॥ देह से कान्ति की छटा बाहर निकल रही थी। मोटी और लम्बी चारों भुजाएँ कमलनाल की तरह सुशोभित थीं ॥ १८ ॥ चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये थे। पूनम के चाँद की तरह दिव्य मुखमण्डल था। लाल-लाल ओठ तथा सुदर्शन नाक थी ॥ १९ ॥ मकराकृत दो कुण्डल दोनों कानों में थें। विकसित प्रफुल्ल कमल की तरह दोनों आँखें सुशोभित थीं ॥ २० ॥ काले भौंरों के समूह की तरह घुँघराले काले बाल शिर पर थे। नये रत्नजटित शिर पर मुकुट था ॥ २१ ॥ लक्ष्मी अपनी स्नेहिल आँखों से उन्हें प्रेमवारि से सींच रही थी। प्रह्लाद-प्रमुख भक्तगणों से दिन-रात वे सेवित थे ॥ २२ ॥ समस्त संसार की रक्षा करने में सदैव समर्थ भगवान् विष्णु के पास एक बार पितामह ब्रह्माजी पहुँचे ॥ २३ ॥ दण्डवत् धरती पर गिरकर पहले उन्होंने प्रणाम किया, पुनः हाथ जोड़ कर अनेक स्तोत्रों से उन्होंने भगवान् विष्णु की स्तुति की। फिर उनसे प्राप्त आसन पर विराजित हुए ॥ २४ ॥ इसके बाद क्रोध से लाल आँखें किये, आपस में विवाद करते हुए देवराज सहित देवगण उनके सामने आये ॥ २५ ॥ देवगण कमलापति विष्णु एवं विधाता को प्रणाम कर भगवान् विष्णु की आज्ञा पाकर क्रमशः बैठ गये ॥ २६ ॥ वहाँ मौजूद पार्षद सुनन्द की अनुमति पाकर देवराज इन्द्र ने सर्वप्रथम अपने कलह का कारण बतलाना शुरू किया ॥ २७ ॥ हे भगवन् कमलाकान्त ! आप पुराणपुरुषोत्तम हैं, अविनाशी हैं। हम लोग जिस लिए विवाद कर रहे हैं, उसका कारण आप सुनें ॥ २८ ॥ मैं शतक्रतु हूँ, देवराज हूँ, त्रिभुवन का स्वामी

मयाऽधिष्ठितमेवाऽऽस्ते यज्ञानामप्यहं पतिः । पर्जन्योऽग्निस्तथा वायुः सर्वे मम वशंवदाः ॥
तस्मादहं सर्वतस्तु श्रेष्ठो नाऽन्यस्तु कश्चन । इति मद्वचनं श्रुत्वा प्राह वैश्वानरस्ततः ॥ ३२ ॥
माऽभिमानं वृथा कार्षीरिन्द्र त्वं मूढभावतः । किन्न पश्यसि मां सर्वलोकश्रेष्ठं सुरोत्तमम् ॥ ३३ ॥
अहं मुखं त्वत्पुरोगदेवानामस्मि वासव । यूयं भुञ्जथ मद्दत्तं हविस्सर्वमखे पुनः ॥ ३४ ॥
न स्यामहं यदि भुवि न यज्ञाः स्युः कदाचन । अहं रुद्रस्य नेत्रात्मा संहराम्यखिलं जगत् ॥ ३५ ॥
सेनानीर्मत्तनूजो वै तेन दैत्यजिगीषवः । तस्माद्वृथा मोहमिमं त्यक्त्वा देवगणैर्वृतः ॥ ३६ ॥
मां समाराधय क्षिप्रं नो चेत्त्वं न भविष्यसि । श्रुत्वैतत्सोम आहाऽथ मा मोहं प्रतिपद्यथ ॥ ३७ ॥
जीवन्त्यन्नेन वै लोकास्तत्रैव मदनुग्रहः । यद्यहं विमुखो भूयां तर्हि शस्यं विना जगत् ॥ ३८ ॥
अवसीदेत्क्षणेनैव मदङ्गजनिताऽमृतैः । वासवाग्निमुखा देवा जीवन्त्यनुदिनं ननु ॥ ३९ ॥
वृथाऽभिमानेन यूयं मा विनाशमुपैष्यथ । एतद्वाक्यं समाकर्ण्य जगत्प्राणश्चुकोप ह ॥ ४० ॥
सोम किं कत्थसे वृथा क्षणेनाऽहमिदं जगत् । सोमाऽग्निवासवयुतं सदेवाऽसुरमानुषम् ॥ ४१ ॥
कीर्त्तिशेषं करिष्यामि नन्वहं सर्वनाशनः । दह्यमानेऽपराधार्त्ते न सोमो न च वासवः ॥ ४२ ॥
न ब्रह्मविष्णुरुद्रा वा तदाऽऽसन्नितरे कुतः । तदात्मं मत्सखा ह्यग्निर्ब्रह्माण्डमखिलं मया ॥ ४३ ॥
प्रेधितो दहति क्षिप्रं ततोऽहं वेगवान्बली । शून्याऽऽत्मकं करोम्यग्निसद्वितीयस्तदा त्वहम् ॥ ४४ ॥
यदि मेऽनुग्रहो न स्यात्तत्र स्पन्देत किं वद । अहमेकः सर्वमहान्मत्तः स्पन्दति वै जगत् ॥ ४५ ॥

हूँ। देवसभा में प्रासङ्गिक रूप से जो कहता हूँ वह सारे संसार के लिए मान्य होता है॥ २९ ॥ मेरे द्वारा सभी परिरक्षित हैं। यज्ञों का भी मैं ही स्वामी हूँ। मेघ, आग और वायु सब मेरे ही वशवर्त्ती हैं॥ ३०-३१ ॥ इसलिए मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ और कोई दूसरा नहीं। इसके बाद मेरी यह बात सुनते ही अग्निदेव ने कहा॥ ३२॥ हे इन्द्र! मूर्ख की तरह निरर्थक अभिमान की बातें मत करो। क्या तुम मुझे नहीं देखते? मैं ही सब लोक में श्रेष्ठ हूँ। देवताओं के बीच उत्तम हूँ॥ ३३ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे आगे-पीछे चलने वाले इन देवताओं का मुख तो मैं ही हूँ। सभी यज्ञों में दी गई हवि तो मैं ही तुम सबको खिलाता हूँ॥ ३४॥ अगर मैं न होता तो संसार में कोई यज्ञ नहीं करता। मैं ही रुद्र की तीसरी आँख हूँ जिससे वे सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं॥ ३५ ॥ मेरा ही पुत्र सेनानी है जिसके बल पर तुम दैत्यों पर विजय पाते हो। इसलिए व्यर्थ का मोह छोड़कर देवताओं के साथ॥ ३६ ॥ शीघ्र ही मेरी आराधना करो, नहीं तो आप नहीं रहोगे। यह सुनते ही चन्द्रमा ने कहा—क्यों बेकार की बातें करते हो, मोह छोड़ दो ॥ ३७ ॥ मेरी कृपा से ही तो अन्न पैदा होता है जिसे खाकर संसार जीवित रहता है। यदि मैं विमुख हो जाऊँ तो अन्नविहीन संसार होगा॥ ३८॥ मेरे शरीर से चूने वाले अमृत से ही तो प्रतिदिन इन्द्र और इन्द्रादि देवता जीवित रहते हैं॥ ३९॥ 'कार्य के अभिमान से आप लोग क्यों मरना चाहते हैं।' पवनदेव ने क्रुद्ध होकर सोम से कहा॥ ४० ॥ सोमदेव बेकार का बकवास क्यों करते हो? अगर मैं चाहूँ तो पल में प्रलय मचा दूँ। इन्द्र, चन्द्र, अग्नि, देव और असुर सहित संसार को मटियामेंट कर दूँ॥ ४१ ॥ मैं सबको विनष्ट कर उन्हें यशोऽवशेष कर दूँगा। अपने अपराध रूपी आग में जलते हुए न सोम बचेंगे और न वासव॥ ४२॥ जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश विनष्ट हो जायेंगे तो फिर दूसरे देवता की बात ही क्या? केवल मैं और मेरे सखा अग्नि के सिवा क्षणभर में अखिल ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जायेगा॥ ४३ ॥ ये मेरे मित्र अग्निदेव हैं। ये भी बिना मेरी सहायता के कुछ भी नहीं कर सकते। यदि मैं चाहूँ तो इन्हें भी शून्यात्मक बना दूँ॥ ४४॥ यदि मेरी कृपा न हो तो कोई स्पन्दित नहीं हो सकता। मैं ही सबमें महान् हूँ। मेरे ही कारण संसार जीवित है॥ ४५ ॥ इस तरह सभा में स्वर्गवासियों के बीच कलह

इत्येवं कलहे प्राप्ते सभायां स्वर्गवासिनः । अग्निपक्षाऽऽश्रिताः केचित्सोमपक्षाऽनुगाः परे ॥
अन्ये मारुतपक्षास्स्युश्चान्ये मत्पदवृत्तयः । एवं परस्परं वादैर्जाते वादैकतत्परे ॥ ४७ ॥
क्रुद्धे दैवगणे स्वस्वशस्त्राऽऽदानपरे तदा । वाचस्पतिः सुराचार्यः प्राह सान्त्वनपूर्वकम् ॥ ४८ ॥
मा नाशमापद्यथ बुधा मद्वाक्यं शृणुताऽऽदरात् । अत्राऽन्तमभिजानाति जलशायी जनार्दनः ॥
तत्र गत्वा क्षीरनिधिप्रान्ते तं पुरुषोत्तमम् । नत्वा तन्मुखतो ज्ञात्वा शान्तिम्भजत सत्वरम् ॥
तद्वयं समनुप्राप्तास्तव पादाम्बुजं ततः । संशयं छिन्धि भगवन् त्वं गतिर्देवताऽऽपदि ॥ ५१ ॥
इति सम्प्रार्थितो विष्णुः शतक्रतुमुखैर्बुधैः । विचार्य देवकलहशान्त्युपायं चिरं तदा ॥ ५२ ॥
नैते मद्वाक्यविस्रब्धाः स्वस्वपक्षदृढाऽऽशयाः । नाऽत्र शान्तिर्मया शक्या विधातुमिति चिन्तयन् ॥
कपर्दिनं महादेवं दध्यौ हृदि जनार्दनः । ध्यानाऽऽहूतस्तदा शम्भुराविरासीत्सभाभुवि ॥
वृषाऽऽरूढोऽम्बिकापार्श्वः शुद्धस्फटिकसन्निभः । बालशीतकरप्रोद्यत्कपर्दमुकुटोज्ज्वलः ॥ ५५ ॥
मालतीमालिकाऽऽकारस्वर्धुनीशोभिमस्तकः । फालनेत्रोज्ज्वलत्कीलिज्वालाज्वलितदिक्तटः ॥
भस्मत्रिपुण्ड्रलसितफालदेशाऽतिसुन्दरः । कुण्डलीकृतनागेन्द्रमूर्धरत्नत्विषाऽरुणा । ५७ ॥
माणिक्यमुकुराऽऽभासा गण्डभूमिर्विराजते । प्रणयाऽवलोकसुधाधाराभिः प्लावयन्सतीम् ॥
वहन् रुद्राक्षहाराणामावलिं पृथुलोरसि । हरिणं परशुं बिभ्रद्वराऽभीतिं कराऽम्बुजैः ॥ ५९ ॥
व्याघ्रत्वक्पटसंराजत्कटीतटलसद्वपुः । इभचर्मोत्तरीयाऽऽढ्यभस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ ६० ॥
कर्पूराऽचलवद्राजद्वक्षोपरि विराजिते । नवरत्नप्रोद्यद्ग्रावमहासिंहासने स्थितः ॥ ६१ ॥

चल रहा था। कुछ अग्निदेव के पक्षधर थे तो कुछ सोम के अनुगामी थे॥ ४६ ॥ कुछ पवनदेव के पक्षधर थे तो कुछ मेरे पक्षधर। इस तरह देवगण एक दूसरे से झगड़ रहे थे॥ ४७॥ इस तरह कुछ देवताओं ने परस्पर युद्ध के लिए आयुध उठा लिये। उन्हें ऐसा करते देख देवगुरु बृहस्पति ने उन्हें आश्वस्त करते हुए उनसे कहा॥ ४८॥ बुद्धिमान् होते हुए भी आप लोग क्यों विनष्ट होना चाहते हो? मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। इस समस्या का समाधान जलशायी भगवान् जनार्दन ही जानते हैं॥ ४९ ॥ अतः आप सब क्षीरसागर जायें, वहाँ भगवान् विष्णु को प्रणाम कर उनके सामने अपनी समस्या रखकर शीघ्र ही शान्ति प्राप्त करें॥ ५० ॥ हे भगवन्! हम सब आपके चरणकमलों में इसीलिए उपस्थित हुए हैं। कृपया हमारा सन्देह दूर करें। हम सब आपद्ग्रस्त हैं॥ ५१ ॥ इन्द्रादि देवताओं की ऐसी प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु देवताओं के कलह-शान्ति के उपाय कुछ देर तक सोचते रहें॥ ५२ ॥ ये देवगण अपने पक्ष पर डटे हैं, मेरी बातों में ये विश्वास तो करेंगे नहीं। इन्हें शान्त करना मेरी शक्ति से बाहर है। ऐसा सोचते हुए॥ ५३ ॥ भगवान् विष्णु ने अपने हृदय में महादेव का ध्यान किया। ध्यान में बुलाये गये कपर्दी शिव तत्क्षण देवसभा में उपस्थित हुए॥ ५४॥ शुद्ध स्फटिक वर्ण वाली भगवती भवानी के संग बैल पर सवार जटाधर शिव माथे पर बालचन्द्र से सुशोभित थे॥ ५५ ॥ मालती माला की तरह गङ्गा शिर पर विराज रही थी। विशाल आँखें जल रही थीं, उससे भयंकर निकलती ज्वाला से दिशाएँ प्रोद्भासित थीं॥ ५६ ॥ ललाट पर भस्म और त्रिपुण्ड शोभ रहे थे। कुण्डली मारे नागराज गले में रत्नप्रभा बिखेरते शोभ रहे थे॥ ५७॥ लाल शीशे के प्रतिबिम्ब की तरह आरक्त उनका गाल से लेकर गर्दन तक था। प्रणयदृष्टि रूपी सुधा की धारा से मानो सती में स्नपित करते हुए॥ ५८॥ चौड़ी एवं मांसल छाती पर रुद्राक्ष की माला की लड़ी धारण किये हुए थे। हाथों में हरिण और फरसे थे। अभयदान के लिए दूसरे हाथ उठे थे॥ ५९ ॥ कमर में व्याघ्रचर्म लिपटा था। गजचर्म की चादर लपेटे थे। सम्पूर्ण शरीर में भस्म पोते थे॥ ६० ॥ कपूर की अति शुभ्र माला छाती पर शोभ रही थी और नवरत्नजटित

पद्माऽऽसनसुपद्माऽऽन्यप्रदपद्माऽतिशोभना । प्रेमपातैः पार्षदैश्च बाणाद्यैर्भक्तशेखरैः ॥ ६२ ॥
नन्दीभृङ्गीप्रभृतिभिर्गणैः संसेवितो भवः । तमोमूर्तिः पराशक्तेस्त्रिपुराया महेश्वरः ॥ ६३ ॥
देवाऽधिदेवो जगतीसंहाराऽऽचारतत्परः । निरीक्ष्य तं विष्णुमुखाः प्रोत्थिता विबुधेश्वराः ॥
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याऽथो सपर्यां समकल्पयन् । स भाजितो हरिमुखैर्भवो विष्णुं रमापतिम् ॥ ६५ ॥
अवरुह्य वृषश्रेष्ठात्परिष्वज्य ससम्भ्रमम् । स्वाऽऽसनेऽथ समाविष्टो जनार्दनमुखैर्बुधैः ॥ ६६ ॥
मुरारेरिङ्गितं ज्ञात्वा दृष्ट्वा देवानपीश्वरः । कलिना मन्युना ग्रस्तान् जगतां स्वस्तये ततः ॥
त्रिपुरां जगतां धात्रीं प्रार्थयामास शङ्करः । शङ्करस्य व्यवसितं ज्ञात्वा विधिहरी ततः ॥ ६८ ॥
नत्वा स्मृतिपरौ तस्या जातौ शुद्धाऽऽत्मना युतौ । कारणैः पुरुषैरेवं संस्मृता सा परात्परा । ६९ ॥
जगद्रक्षावितानाय प्रादुरासीत्पराम्बिका । महाशब्दः समभवद्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरः ॥ ७० ॥
तेन शब्देन महता ब्रह्माण्डान्तरमायता । लेशीकृतमहावज्रप्रपातौघमहास्वनः ॥ ७१ ॥
प्रजज्वालाऽतितरसा तथा प्रागुत्तरा हि दिक् । द्योतना कोटितडितां युगपत्तु यथा तथा ॥ ७२ ॥
तत्तेजसा च शब्देन बुधाः सेन्द्राग्निवायवः । अन्धीभूताश्च बधिरीकृताः सन्त्रासवेपिताः ॥ ७३ ॥
मूर्च्छिताः पतिता भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः । विसंज्ञाः स्रस्तवसना भ्रष्टकोटीरभूषणाः ॥ ७४ ॥
विक्षिप्तबाहुचरणाः समासाद्येतरेतरम् । सङ्घशः पतिताः केचित्केचिद्विरलतो बुधाः ॥ ७५ ॥
एवं भूते देवगणे विधिविष्णुमहेश्वराः । दृष्ट्वा महाप्रकाशैकस्तोमं व्याप्तदिगन्तरम् ॥ ७६ ॥
तत्तेजसो न मूर्धानं न मध्यं नाऽन्तमेव च । ललितं तैस्तदा सर्वलोकं व्याप्य व्यवस्थितम् ॥ ७७ ॥

सुन्दर सिंहासन पर वे बैठे थे॥ ६१ ॥ महादेव वृषभारूढ़ थे। भगवती पार्वती उनके साथ विराजित थीं। उनके साथ उनके उच्चकोटि के अनेक भक्त थे॥ ६२॥ नन्दी, भृङ्गी प्रभृति गणों से शिवजी सेवित थे। तमोगुण की मूर्ति थे। पराशक्ति त्रिपुरा के महेश्वर थे॥ ६३ ॥ संसार के संहार की प्रथा में तत्पर देवादिदेव महादेव को देखकर भगवान् विष्णु-प्रमुख सब देवता उठकर खड़े हो गये॥ ६४॥ सबों ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। फिर उनकी सपर्या की। बाद में रमापति भगवान् विष्णु ने उनका अभिवादन किया॥ ६५ ॥ सब देवताओं के साथ भगवान् विष्णु के सामने अपने बैल से भगवान् शिव उतर गये और सामने खड़े भगवान् विष्णु का ससम्भ्रम आलिङ्गन कर अपने निर्दिष्ट आसन पर विराजित हुए ॥ ६६ ॥ विष्णु भगवान् के संकेत को जानकर तथा देवताओं को देखकर, कलि के प्रभाव से उन्हें क्रुद्ध देखकर संसार के कल्याण हेतु ॥ ६७ ॥ भगवान् शंकर ने त्रिपुरा भगवती की प्रार्थना शुरू की। भगवान् शिव को ऐसा करते देख तब ब्रह्मा और विष्णु ने भी शुद्धात्मा से उन्हें प्रणाम कर स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया। कारण-पुरुषों के द्वारा ऐसी स्तुति से स्मृत होकर वह परात्परा॥ ६८-६९ ॥ जगत् की रक्षाविधान के लिए वह पराम्बिका प्रादुर्भूत हुई। प्रादुर्भाव से पहले वज्र-निर्घोष की तरह अत्यन्त कठोर महाध्वनि सुनायी पड़ी॥ ७० ॥ दूसरे ब्रह्माण्ड से आई उस भयङ्कर आवाज ने वज्रपात के महाशब्द को भी पराजित कर दिया॥ ७१ ॥ वज्रघोष के बाद शीघ्र ही पूर्वोत्तर दिशा एकदम प्रज्वलित हो गई। फिर लगा कि करोड़ों बिजलियाँ एक साथ कौंध गईं॥ ७२॥ उस तेज और आवाज से इन्द्र, अग्नि और वायु सहित सारे देवगण अन्धे और बहरे हो गये और भय से काँपने लगे॥ ७३ ॥ जड़ कटने पर जैसे पेड़ धराशायी हो जाते हैं उसी तरह वे सब बेहोश होकर गिर गये। उनके वस्त्र और आभूषण बिखर गये॥ ७४॥ हाथ-पैर फेंकते हुए वे एक-दूसरे से लिपट गये। कुछ देवता तो एक-दूसरे के साथ लिपटे गिरे और कुछ अकेले ही॥ ७५ ॥ इस तरह देवताओं के हो जाने पर उन्होंने देखा कि एक तेजःपुञ्ज से दिगन्तर व्याप्त हो उठा॥ ७६ ॥ उस तेज का न कोई आदि था, न मध्य और न अन्त, उसका कोई ओर-छोर

आ पातालादा द्युमूर्ध्नः प्रकाशैकघनं महत् । खद्योतीकृतमार्त्तण्डकोटिकोटिमहद्द्युति ॥ ७८ ॥
ज्ञात्वा पराशक्तिलीलाविभवं कारणेश्वराः । दण्डवत्पतिता भूमौ भक्त्या तां शरणं गताः ॥ ७९ ॥
भूयो भूयः प्रणेमुस्ते दृष्ट्वा तत्प्रभवाद्भुतम् । कृताञ्जलिपुटाः स्तोतुं प्रवृत्ता जगदम्बिकाम् ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ५९८ ॥



नहीं था। सारे लोक में फैलकर वह व्यवस्थित था॥ ७७॥ पाताल से लेकर आकाश तक वह तेज फैला था। उसके प्रकाश के सामने करोड़ों सूर्य के प्रकाश जुगनू की तरह टिमटिमाने लगे॥ ७८॥ कारणस्वरूप त्रिदेवों ने इसे पराशक्ति का लीला-विभव जानकर दण्डवत् धरती पर गिरकर प्रणाम करते हुए उनके शरणागत हो गये॥ ७९॥ उनके अद्भुत प्रभाव को देखकर देवताओं ने उन्हें बार-बार प्रणाम किया। अञ्जलिबद्ध होकर उस जगदम्बा की स्तुति करने लगे॥ ८०॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



अथाष्टमोऽध्यायः

स स्तवं कर्त्तुमुद्युक्तो ब्रह्मा लोकपितामहः । भक्तिसन्ततवागग्र्यैरानन्दभरिताऽन्तरः ॥ १ ॥

जय जय मातर्जगतां जय जय सर्वाधिके महेशानि।
जय जय भक्ताऽऽर्त्तिहरे जय जय सर्वाऽन्तरस्थचिद्रूपे ॥ २ ॥
जगतां जनिमुखरचना यद्भ्रूलीलाविलासतः कुर्मः।
विधिहरिरुद्रेशाऽऽद्या वयं महेशीं नमामि तां देवीम् ॥ ३ ॥
स्रष्टाऽस्म्यहं मुरारिः पालयिता चैष नाशको रुद्रः।
ईशस्तिरोधिमूलं सर्वं त्वच्छक्तिलेशतः सिद्धम् ॥ ४ ॥
सर्वाऽनुग्रहमूलं सदाशिवोऽप्येष तावकपादाब्जम्।
संश्रित्यैव प्रभवति तस्मात्त्वं सर्वसेवनीययाऽसि ॥ ५ ॥
वामाज्येष्ठारौद्रीरूपेणाऽस्मान् स्थिताऽसि संस्थाप्य।
यर्हि वयं तर्हि तथाभूता तुर्यं तथाऽम्बिकावपुषा ॥ ६ ॥
संहृत्य तावदाकाशं स्वस्थाने संस्थिताऽसि यदि जननि।
तर्हि वयं प्रथिताख्याः पञ्चमहाप्रेतसंज्ञया जगति ॥ ७ ॥
अखिलाऽऽपत्समयेष्वप्यस्माकं त्वं विचित्रतनुविभवा।
रक्षापरा यथा स्वे जनयित्री दारके जगन्मातः ॥ ८ ॥
लोकानां सकलानां त्वद्गुणजाता वयं त्रयस्त्वाद्याः।
अस्मभ्यमपि त्रिभ्यः पुरा स्थितेस्त्वं प्रकीर्त्तिता त्रिपुरा ॥ ९ ॥

※ विमला ※

सर्वप्रथम लोकपितामह ब्रह्मा ने स्तुति प्रारम्भ की। भक्ति से उनका कण्ठ गद्गद हो गया, आनन्द से मन भर आया ॥ १ ॥ हे संसार की माता! आपकी जय हो। आप सबसे अधिक एवं सर्वेश्वरी हैं। आप भक्तों के कष्ट को मिटाने वाली हैं, सबके भीतर चिद्रूप में आप अवस्थित हैं ॥ २ ॥ समस्त सृष्टि की संरचना जिनकी भौंहों के मोहक संचालन मात्र में हम करते हैं; ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवतागण हम उस पराशक्ति को प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥ सृष्टि का मैं स्रष्टा हूँ, विष्णु पालनकर्त्ता हैं और रुद्र संहर्त्ता हैं; ये सब विरोधिमूलक हैं। तुम्हारी शक्ति के एक कण से सिद्ध हैं ॥ ४ ॥ सारी कृपा का मूल कारण तुम्हीं हों, इसीलिए सदाशिव भी तुम्हारे ही चरणकमलों का सेवन करते हैं। अतः तुम सबके लिए सेवनीय हो ॥ ५ ॥ वामा, ज्येष्ठा और रौद्री रूप से तुम्हीं तो अपनी शक्ति हम तीनों देवता में स्थापित कर स्वयं स्थित हो। हम जैसे हैं उसी तरह हे अम्बे! तुम्हारे शरीर से ही हैं ॥ ६ ॥ हे माँ! यदि तुम्हारी ही शक्ति का संग्रह कर आकाश अपने स्थान पर अवस्थित हैं, तो हम भी प्रथित नामधारी हैं, पञ्चमहाप्रेत संज्ञा से संसार में ख्यात हैं ॥ ७ ॥ हे संसार की माता! हम पर जब कभी विपत्तियाँ आती हैं तो तुम्हीं जैसे माँ अपनी सन्तान की रक्षा करती हैं, इसी तरह हमारी रक्षा करती हो ॥ ८ ॥ सकल लोक तुम्हारे गुण से ही उत्पन्न हैं, हम त्रिदेव भी आदिदेव हैं। हमारे तीनों ब्रह्मा,

इति संस्तुत्य लोकानां स्रष्टा भक्त्यैकनिर्भरः। दण्डवत्पतितो भूमौ ध्यायन् हृदि पराऽम्बिकाम्॥
अथ पीताम्बरो भक्त्या गद्गदस्वरतो हरिः। अस्तौषीदतिचातुर्यप्रकरोक्तिप्रगुम्फनैः॥ ११॥
श्रीमातर्वयमिह ते गुणप्रभृतास्त्वच्छास्तिं सततमतीव जागरूकाः।
कुर्मस्तज्जननि पदाम्बुजैकभक्तिं वाञ्छामो भवतु तदेव सर्वदा नः॥ १२॥
देवेशि त्वयि सति सर्वभाववर्गस्तत्तद्रूपगुणप्रभेदभिन्नगात्रः।
नानाशक्तिविभवशोभितो विभानो नो चेद्देवि किमपि नैव भावितः स्यात्॥ १३॥
भूरापोऽनलचरखानि जङ्गमानि भूतानि स्थिरविभवानि चाऽपि माता।
दिक्कालौ सदसदपीह सर्वमेतत्त्वद्रूपं न भवति लेशतस्त्वदन्यत्॥ १४॥
लोकेषु प्रथितमहाप्रभावयुक्ता ब्रह्माद्या वयमिह लोकनाथनाथाः।
त्वत्पीठप्रपदनिकेतना हि जाताः सेवाऽतस्तव पदपद्मयोर्नमस्ते॥ १५॥
रूपं ते परममतीद्रियं श्रुतीनां मूर्धानोऽप्यतिचकिता वदन्ति नैव।
त्वन्मायाविभवपराकृताऽन्तरङ्गा ये ते त्वां कथमिह तादृशीं विदन्ति॥ १६॥
भूयस्त्वत्पदसरसीरुहैकसेवाऽन्यग्भूताऽखिलमलदोषसङ्घयुक्तः।
श्रीनाथाऽमृतवचसा सुशुद्धचित्तो वेत्ति त्वां परमशिवात्मरूपिणीं सः॥ १७॥
सर्वज्ञोऽप्यजनित वाङ्मयो हि वेदस्त्वद्रूपं वदति गुणप्रभेदभासम्।
तस्मात्त्वं परकृपया बिभर्षि चैतत्तेजोघात्मकवपुरेतदस्मदर्थम्॥ १८॥
रूपञ्चैतदपि महाप्रकाशमात्रं त्वत्सेवाविभवत एव लक्षितं नः।
देवेन्द्राद्यखिलसुरौघदोषं शान्त्यै मातस्ते भवतु समीहितत्वरूपम्॥ १९॥

विष्णु और महेश के आगे तुम उपस्थित हो, अतः तुम त्रिपुरा नाम से प्रख्यात हो॥ ९॥ इस तरह उस पराम्बिका का हृदय में ध्यान करते हुए स्तुति कर ब्रह्माजी ने भक्तिभाव से धरती पर डण्डे की तरह गिरकर प्रणाम किया॥ १०॥ इसके बाद पीताम्बर भगवान् विष्णु ने भक्तिभाव से गद्गद होकर चातुर्यपूर्ण समादृत वचनों में स्तुति की॥ ११॥ हे मातः! हम तुम्हारे गुण के प्रभाव से तुम्हारे शासन में हर हमेशा सतत जागरूक हैं। हम तुम्हारे चरणों की भक्ति मात्र चाहते हैं। हमें सदैव उसी की कामना हैं॥ १२॥ हे देवि! तुममें समाज के हर व्यक्ति का अस्तित्व सन्निहित है। वे अपने-अपने रूप-गुण के भेद से भिन्न शरीर वाले हैं। अनेक शक्ति और सम्पन्नता से सुशोभित एवं प्रकटीकृत हैं। अन्यथा हे देवि! कुछ भी प्रदर्शित नहीं होगा॥ १३॥ धरती, जल, वायु, चर-अचर प्राणी सब हे माँ! तुम्हारे कारण ही स्थिर विभववाला है। दिक्, काल, सद् और असद् भी इस संसार में तुम्हारा ही रूप है; उससे थोड़ा भी भिन्न नहीं है॥ १४॥ स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल लोक में विख्यात महाप्रभाव युक्त हम ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुम्हारे ही पादपीठ से समुत्पन्न हैं। अतः तुम्हारे चरणकमलों की सेवा ही हमारा धर्म है। हम तुम्हारे चरणों में प्रणाम करते हैं॥ १५॥ तुम्हारा रूप ज्ञानेन्द्रिय की पहुँच से बाहर है, वेदों का शीर्ष होने पर भी चौंकाने वाला नहीं है। तुम्हारी माया की शक्ति से पराजित हृदय वाले व्यक्ति तुम्हारे ऐसे रूप को भला कैसे जानेंगे॥ १६॥ एक मात्र तुम्हारे चरणकमल की सेवा से विमुख, सारे मलिन दोषों के समूह से भरे व्यक्ति भी श्रीनाथ की अमृतमयी वाणी सुनकर विशुद्ध चित्त बन जाते हैं। ऐसे लोग भी हे माँ! परम शिवात्मकरूपिणी तुम्हें जानने में समर्थ हो जाते हैं॥ १७॥ सर्वज्ञ होते हुए भी तुम अजन्मा हो, वाङ्मय वेद ही तुम्हारा स्वरूप है, गुणभेद के कारण अनेक रूपों में प्रतिभासित हो। अतः अतिकृपालुता के कारण तुमने हमारे लिए यह तेजोघात्मक शरीर धारण किया

एवं मुरारीः संस्तुत्य त्रिपुरां परमेश्वरीम् । भक्तिपीयूषवारिधिमग्नो नैक्षत किञ्चन ॥ २० ॥
अथ स्तोतुं पशुपतिः समारेभे कृताञ्जलिः । भक्तिनिर्भरसंराजत्सुकोमलवचोगणैः ॥ २१ ॥
नमामि परमेश्वरि त्वमिह सर्वदेवोत्तमैर्विधातृहरिशङ्करैः परमपूरुषैः पूजिता ।
अतस्त्वदधिकः कथं भवति कोऽपि देवाऽभिधस्त्वमेव सकलोत्तमा भवसि राजराजेश्वरी ॥
धिगस्तु मनुजाभिधान्नरपशून् विमूढान् हि तान् विहाय परमेश्वरीं परशिवां समस्तोत्तमाम् ।
मुधा हि विबुधाऽधिपान् परिचरन्ति ये कामिनो विहाय सुरशाखिनं मृतकरीरवृक्षाऽऽश्रयान् ॥
जगज्जननि तावके चरणपङ्कजे मे सदा स्थिरीभवतु मानसं विषयवासनानिर्गतम् ।
तदीयपरिसेवने सततमस्तु पाणिद्वयं वचो भवतु कीर्त्तने गुणगणाऽमृताब्धेः शिवे ॥
विधातृहरिशङ्करप्रियतमाः सतीः शारदारमागिरिसुताऽभिधास्तव कलाः सुमुख्या वयम् ।
मुखे हृदि निजाऽर्घके वपुषि धारयन्तः सदा जगद्विसृतिधारणप्रलयकर्मसु प्रोद्यताः ॥
त्वमेव विसृतिविधौ स्थितिरहीशपर्यङ्कके मयि प्रलयनं शिवे गुणविलापना चेशके ।
अनुग्रहकृतिः शिवे परतरे परब्रह्मणि स्थिता परशिवाऽऽत्मना सहजचित्प्रकाशाऽऽत्मिका ॥
भुवः कठिनता यथा रस इवाऽप्सु रूपं शुचेर्यथा च मरुतो गतिर्भवति शून्यता खे यथा ।
यथा भवति चोष्मता दिनकृतस्तथा त्वं शिवे शिवादिवसुधान्तके परशिवे च साराऽऽत्मिका ॥
बुधाधिपमुखामरास्तव महामहेश्याः परप्रभावपरिमोहिताः परिभवन्ति चाऽन्योन्यतः ।
समुद्धर तवार्भकान् जननि दानवारीन् शिवे विभावयत्कथाऽमृताऽप्लुतकटाक्षलेशैः सकृत् ॥

है ॥ १८ ॥ और तुम्हारा यह रूप भी महाप्रकाश मात्र है। तुम्हारी सेवा से प्राप्त शक्ति के कारण ही हम तुम्हें देख सकते हैं। हे मातः! देवेन्द्र प्रभृति देव-समुच्चय के दोषों को शमन करने हेतु अभीष्ट रूप धारण करें ॥ १९ ॥ इस तरह भगवान् विष्णु ने परमेश्वरी त्रिपुरा की स्तुति कर भक्तिरूपी अमृतसागर में गोता लगाकर कुछ भी देखना बन्द कर दिया ॥ २० ॥ इसके बाद भगवान् शिव ने सुन्दर कोमल वचनों से भक्तिनिर्भर मन से हाथ जोड़कर भगवती की स्तुति प्रारम्भ की ॥ २१ ॥ मैं परमेश्वरी को प्रणाम करता हूँ। तुम्हीं सभी देवताओं में उत्कृष्ट हो; ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे परम पुरुषों से तुम पूजित हो, अतः कोई देवता तुमसे अधिक श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? हे राजराजेश्वरी! सब देवताओं में तुम्हीं सर्वोत्कृष्ट हो ॥ २२ ॥ ऐसे मूर्ख नर-तनधारी नरपशुओं को धिक्कार है, जो सर्वोत्कृष्ट परशिवा परमेश्वरी को छोड़कर अन्य देवताओं की परिचर्या करते हैं। यह तो वैसा ही है जैसे कोई मूर्ख अभीष्ट फलदाता कल्पवृक्ष को छोड़कर कटीले पत्रविहीन करीर के वृक्ष का आश्रय लेता हो ॥ २३ ॥ हे जगज्जननि! विषयवासना से निकल कर मेरा मन आपके चरणकमलों में हमेशा स्थिर हो। तुम्हारे चरणों की सेवा में ही हमारे हाथ लगे रहें। हे शिवे! तुम्हारे गुण रूपी अमृतसागर के कीर्त्तन में हमारे वचन रमे रहें ॥ २४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की प्रियतमा क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी एवं पार्वती नाम की हैं। ये आपकी ही प्रमुख कला के अंश हैं। इन्हें हम क्रमशः अपने मुख में, हृदय में, अनमोल शरीर में धारण कर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनष्टि कर्म में लगे हैं ॥ २५ ॥ विधाता की संरचना, विष्णु के संरक्षण और मेरे संहार कर्म में तुम्हीं तो हो। तुम्हारे ही गुण की ये सारी विलापना है। हे परशिवे! तुम्हीं तो परब्रह्म में भी स्थित हो। अपनी परशिवात्मा से सहज भाव में चित्प्रकाशस्वरूपा तुम हो ॥ २६ ॥ कठोर धरती पर रस की तरह पवित्र पानी के रूप में जैसे तुम हो, शून्य आकाश में हवा में जैसे गति होती है, सूर्य से जैसे गर्मी झरती है, उसी तरह संसार के कल्याण के लिए सर्वत्र तुम व्याप्त हो ॥ २७ ॥ हे महामहेश्वरी! तुम्हारे ही प्रभाव से परिमोहित होकर देवराज इन्द्र सहित प्रमुख देवगण आपस में टकराकर

जगज्जननि सततं विषयदावसन्तापिताञ्जनान् करुणया दृशाऽमृतरसौघनिःष्यन्दया।
विभावय परात्परे सकलतापसंहारिणी त्वमेव जगदाश्रया सततमस्तु तुभ्यं नमः॥ २९॥
एवं संस्तुत्य सद्भक्त्या ब्रह्माद्या भक्तिनिर्भराः। दण्डवत्पतिता भूमौ ध्यायन्तस्त्रिपुराऽम्बिकाम्॥
अथ सा त्रिपुरेशानी प्रसन्ना संस्तवैः स्तुता। सुराणां तमपाकर्त्तुं मोहं सावयवा बभौ॥ ३१॥
तप्तकाञ्चनवर्णाऽङ्गी दिव्याऽऽभरणभूषिता। अष्टादशभुजा कन्यारूपिणी सुस्मिताऽऽनना॥
मञ्जीरनूपुराऽऽरावझणज्झणितदिक्तटा । तलपादप्रभाक्षिप्तनवविद्रुमपल्लवा॥ ३३॥
सुमन्दपेशलगतिसतीर्थीकृतहंसिका । कौसुम्भाऽम्बरसंराजत्कटीतटविराजिता॥ ३४॥
गम्भीराऽऽवर्त्तसदृशनाभिह्लदविराजिता । रक्तकौशेयोत्तरीयसंशोभितभुजाऽन्तरा॥ ३५॥
धनुः पाशन्तथा घण्टां डमरूं रत्नपात्रकम्। खेटकं जयमालाञ्च पङ्कजं पुस्तकन्तथा॥ ३६॥
चिन्मुद्रां चक्रशङ्खौ च खड्गं शूलं परश्वधम्। गदां सृणिं शरान् हस्तैर्बिभ्राणा पल्लवाऽरुणैः॥
हेमपद्मस्रजं कण्ठे रत्नकेयूरशोभिताम्। रत्नाऽङ्गुलीयसंराजदङ्गुलीकोरकोज्ज्वला॥ ३८॥
नवरत्नलसद्ग्रैवेयकशोभितकन्धरा । मणिमाङ्गल्यशोभाऽऽढ्या श्रीचन्दनसुरूपिता॥ ३९॥
चन्द्रसूर्यसमानाऽऽभताटङ्कयुगलोज्ज्वला । पक्वबिम्बफलच्छायादन्तच्छदविराजिता॥ ४०॥
नासाऽऽभरणमाणिक्याद्विगुणाऽरुणदृक्छदा। पद्मपत्रनिभत्र्यक्षलीलाऽऽहूतमृगीगणा॥ ४१॥
कस्तूरीतिलकाऽऽख्यातमुखपूर्णेन्दुलाञ्छना। मुखाम्बुजमिलिन्दौघसमानचिकुरावलिः॥ ४२॥

पराजित होना चाहते हैं। हे जननि! अपने इन मूर्ख बच्चों का उद्धार करो। दानव इनके दुश्मन हैं। अपने अमृतमयी कटाक्ष से इन्हें इनका अवलोकन करो॥ २८॥ हे जगज्जननि! सर्वदा विषय रूपी दानव से सन्तापित लोगों को अमृत रस टपकाने वाली अपनी सकरुण दृष्टि से अवलोकन करो। हे परात्परे! तुम तो सारे सन्तापों को विनष्ट करने वाली हो। तुम्हीं तो संसार का आधारस्तम्भ हो, तुम्हें सतत मेरा प्रणाम है॥ २९॥ इस तरह ब्रह्मा प्रभृति त्रिदेव ने भक्तिनिर्भर मन से भक्तिपूर्वक स्तुति कर धरती पर डण्डे की तरह गिरकर त्रिपुराम्बिका का ध्यान किया॥ ३०॥ इसके बाद इनके स्तोत्रों से स्तुत होकर देवि त्रिपुरा प्रसन्न हो गई। देवताओं के मोह को भङ्ग करने के लिए उन्होंने अपना विग्रह धारण किया॥ ३१॥ तपे सोने के रङ्ग वाली, दिव्य आभरणों से विभूषित, अठारह भुजाओं वाली, मुस्कराती चेहरे वाली कन्यारूप में प्रकट हुई॥ ३२॥ मंजीर और नूपुर के झंकार से दिशाएँ अनुगूंजित हो उठीं। नये मूँगे के लाल पल्लवों की तरह आरक्त चरणों की प्रभा से दिशाएँ प्रोद्भासित हो उठीं॥ ३३॥ अपने मन्द मनोहर गति से उन्होंने हंसिनी को सहगामिनी बना ली, कुसुम वर्ण के वस्त्र से कटितट सुशोभित थे॥ ३४॥ गम्भीर आवर्त्त की तरह उनका नाभिकुण्ड में विराजित लाल रेशमी ओढ़नी से उनकी भुजाएँ सुशोभित थीं॥ ३५॥ धनुष, पाश, घण्टा, डमरु, रत्नपात्र, खेटक, जयमाल, कमल तथा पुस्तक॥ ३६॥ चिन्मुद्रा, चक्र, शङ्ख, तलवार, शूल, फरसा, गदा तथा बाण अपने लाल हाथों में धारण किये थीं॥ ३७॥ कण्ठ में स्वर्णकमल की माला थी। बाँहों में रत्ननिर्मित बाजूबन्ध थे। रत्न की अंगूठी थी। अंगुली के हर पोर रत्नप्रभा से प्रोद्भासित थे॥ ३८॥ नये रत्नों के हार से कन्धे सुशोभित थे। मणि और माङ्गल्य की शोभासमूह से चन्दनचर्चित गात्र थे॥ ३९॥ दोनों कानों में चन्द्र-सूर्य की प्रभा के सदृश उज्ज्वल कर्णफूल थे। पके बिम्बफल की छाया के सदृश दन्तपक्तियाँ सुशोभित थीं॥ ४०॥ नाक में लाल आभूषणों की छटा से दूनी लाल आँखों की छटा थी। पद्मपत्र की शोभा के समान तीसरी आँखों की लीला हिरणियों को आहूत कर रही थी॥ ४१॥ पूर्णचन्द्र की तरह प्रभापूर्ण मुखमण्डल पर कस्तूरी का तिलक शोभ

मृदुदीर्घघनश्यामकेशाऽऽमोदसुमेदुरा । अनर्घ्यमणिकोटीरप्रभापूर्णद्युमण्डला ॥ ४३ ॥
फालशोभिनिशानाथकलिकोत्तंसमण्डिता । सदा कुमारिका देवी परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ४४ ॥
ईदृशी सा पराशक्तिस्त्रिपुरा लोकसुन्दरम् । लीलार्थं सन्धृतवती रूपं परमपावनम् ॥ ४५ ॥
ततो विधिहरीशानानाह गम्भीरया गिरा । वत्साः शृणुध्वं मद्वाक्यं कल्याणं करवाणि वः ॥ ४६ ॥
दवानां मोहनाशाय प्रादुर्भूताऽस्मि सम्प्रति । इत्युक्त्वाऽमृतवर्षिण्या दृष्ट्या देवान् सुमूर्च्छितान् ॥
मृतप्रायान् समालोक्य समाश्वस्तांस्तदाऽकरोत् । अथेन्द्रप्रवरा देवा निद्रामुक्ता इवोत्थिताः ॥
किमिदं किमिदञ्चेति प्रोचुरन्योन्यसङ्गताः । न विजानाति कोऽप्येनां परमाद्भुतरूपिणीम् ॥
अथाऽग्निं प्रेषयामासुरिन्द्राद्याः सुरसत्तमाः । त्वमग्ने सत्वरं गच्छ जानीह्येतं महत्तरम् ॥ ५० ॥
भूतं कस्मात्समुद्भूतं किं वीर्यं किं स्वरूपकम् । इत्याकर्ण्य हविर्भक्षो वाक्यमिन्द्रमुखोदितम् ॥
साटोपमुपसृत्याऽथ प्राह तां परमेश्वरीम् । तत्प्रभाऽऽक्षिप्ततेजस्कः कथञ्चित्सविधं गतः ॥ ५२ ॥
का त्वं कुमारि वद मे किंवीर्या त्वं कुतः स्थिता । जिज्ञासुरहमायातस्त्वां वरेण्यां महत्तराम् ॥ ५३ ॥
श्रुत्वा तद्वाक्यमथ सा जगाद परमं वचः । वद त्वं कतमः कस्मादागतस्ते च किं बलम् ॥ ५४ ॥
अनन्तरं ममाऽशेषवृत्तान्तः कथ्यते मया । इत्युक्तोऽग्निरुवाचैनां शृणु कल्याणि मद्वचः ॥ ५५ ॥
अहं हुताशनः साक्षान्मुखं विबुधसन्ततेः । जिज्ञासिता त्वमिन्द्राद्यैः प्रहितोऽहं तवाऽन्तिके ॥

रहा था। मुखकमल पर भौंरों के झुण्ड की तरह काले घुँघराले बाल थे ॥ ४२ ॥ लम्बे, कोमल, काले-कजरारे केश सुगन्ध से महमहा रहे थे। चोटी में गूँथी बहुमूल्य मणि की प्रभा से आकाशमण्डल दमदमा रहा था ॥ ४३ ॥ उनका सीमान्त चन्द्रकला से सुशोभित तथा मुकुटमणि से चमक रहा था। सदा कुमारी वह देवी साक्षात् परब्रह्मस्वरूपिणी थीं ॥ ४४ ॥ ऐसी वह पराशक्ति लोकसुन्दर त्रिपुरा थी। लीला के लिए ही उन्होंने यह परम पवित्र रूप धारण किया था ॥ ४५ ॥ इसके बाद गम्भीर वाणी में भगवती ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश से कहा—वत्स! तुम लोग मेरी बातों को ध्यान से सुनो। तुम्हारा कल्याण करूँगी ॥ ४६ ॥ देवताओं का मोह भङ्ग करने के लिए ही इस समय मैं प्रादुर्भूत हुई हूँ। इतना कहकर अमृत वर्षाने वाली आँखों से मूर्च्छित देवताओं की ओर देखा ॥ ४७ ॥ तब मरणासन्न देवताओं को देखकर उन्हें पुनर्जीवित किया। सोये हुए व्यक्ति को जैसे किसी ने झकझोर कर जगा दिया हो, उसी तरह इन्द्रादि प्रमुख देवगण उठकर बैठ गये ॥ ४८ ॥ भगवती त्रिपुरा को सामने खड़ा देखकर देवगण आपस में पूछने लगे—यह क्या है? इस परम अद्भुत स्वरूप वाली को कोई नहीं जानता है ॥ ४९ ॥ सब उत्कृष्ट देवताओं ने अग्नि को उनके सामने यह जानने के लिए भेजा कि यह महत्तर शक्ति क्या है? ॥ ५० ॥ यह कहाँ से उत्पन्न हुई है? इसका पराक्रम क्या है? स्वरूप कैसा है? इन्द्र का यह वचन सुनकर अग्निदेव ॥ ५१ ॥ भगवती त्रिपुरा की प्रभा ने अग्निदेव को तेजहीन कर दिया। फिर भी अहङ्कार के साथ उन्होंने किसी तरह उनके पास पहुँचकर उनसे पूछा ॥ ५२ ॥ हे कुमारि! तुम कौन हो? बतलाओ। तुम्हारा पराक्रम क्या है? तुम कहाँ रहती हो? हे अतिसम्माननीय एवं अभिलषित व्यक्ति वाली! मैं जिज्ञासु के रूप में तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ५३ ॥ अग्निदेव की यह बात सुनकर देवी त्रिपुरा ने स्वीकृति बोधक शब्दों में कहा—बतलाओ, तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? तुम्हारा बल क्या है? ॥ ५४ ॥ इसके बाद मेरे बारे में तुम सब कुछ जान लोगे। मैं तुम्हें सब कुछ बतला दूँगी। भगवती त्रिपुरा की इन बातों को सुनकर अग्नि ने कहा—हे कल्याणि! मेरी बातें सुनो ॥ ५५ ॥ देवसन्तति के साक्षात् मुखस्वरूप मैं अग्निदेव हूँ। इन्द्रादि देवताओं के द्वारा भेजा गया मैं तुम्हारे बारे में जानकारी हासिल करने के लिए

वीर्यं मे महदुत्कृष्टममोघमतिदारुणम् । यदिदं दृश्यते किञ्चिज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ५७ ॥
भस्मीकुर्यां क्षणेनैव नैवमन्योऽस्ति कश्चन । इत्याकर्ण्य शुचेर्वाक्यं प्रहस्य प्राह सा परा ॥ ५८ ॥
अग्ने तवेदृशं वीर्यं यदि तर्ह्याशु मेऽग्रतः । प्रदर्शयैतन्निहितं तृणं दह तवाऽग्रतः ॥ ५९ ॥
श्रुत्वाऽवहेलनं वाक्यं क्रुद्धो वैश्वानरस्तदा । प्राह चाऽतिस्तब्धधिया स्वात्मानं मानयन् गुरुम् ॥
नूनं त्वमबला बाला तस्मान्मुग्धप्रभाषिणी । सर्वभस्मीकरो योऽहं तृणदाहे नियोजितः ॥ ६१ ॥
करोमि तस्य सदृशं सतृणां त्वां दहेऽधुना । इत्युक्त्वा क्रोधताम्राऽक्षो महाज्वालापरीवृतः ॥
भक्षितुं तां तृणमपि पपात तरसा शुचिः । महाबलोद्योगयुतः सर्वप्राणेन सञ्जवात् ॥ ६३ ॥
प्रवृत्तोऽपि तृणं दग्धुं न शशाक धनञ्जयः । हिमाऽब्धिपतितोल्केव शान्ताऽर्चिः शीततां गतः ॥
वेपमानः सुशीतेन खद्योतसदृशप्रभः । करकेव समस्ताऽङ्गमारब्धं गलितुं यदा ॥ ६५ ॥
तदा समस्तप्राणेन पलायनपरोऽभवत् । लज्जितः कुण्ठितोऽर्चिष्मानन्तर्धानं गतस्ततः ॥ ६६ ॥
इन्द्राय चाऽवदद्वृत्तं न ज्ञातुमशकं हरे । तदग्रे संस्थितं भूतं महासत्त्वपराक्रमम् ॥ ६७ ॥
अथेन्द्र आह शुभ्रांशुं ज्ञातुं भूतं महोन्नतम् । त्वं गच्छ सोम सुजवाज्जानीह्येतं महत्तरम् ॥ ६८ ॥
भूतं कस्मात्समुद्भूतं किंवीर्यं किंस्वरूपकम् । इत्याकर्ण्याऽथ शुभ्रांशुर्वाक्यमाखण्डलोदितम् ॥
साटोपमुपसृत्याऽथ प्राह तां परमेश्वरीम् । तत्प्रभाहततेजस्कः कथञ्चित्सविधं गतः ॥ ७० ॥

तुम्हारे पास आया हूँ॥ ५६॥ जहाँ तक मेरे बल का सवाल है, वह अत्युत्कृष्ट है, अचूक या अव्यर्थ है, बड़ा सरल एवं अति निष्ठुर है। यह जो कुछ संसार में स्थावर या जंगम दीख रहे हैं उन्हें॥ ५७॥ क्षणभर में चाहूँ तो जलाकर राख कर दूँ। इस तरह शक्तिशाली हमारे सिवा दूसरा कोई नहीं है। अग्नि की यह बात सुनकर उस पराशक्ति ने हँस कर कहा॥ ५८॥ अग्निदेव! यदि तुम में ऐसी ताकत है तो तुम्हारे आगे जो यह घास-फूस है, उन्हें जलाकर दिखलाओ तो॥ ५९॥ देवी की अवज्ञा भरी बातें सुनकर क्रुद्ध होकर अग्निदेव ने अपनी लकवा-ग्रस्त बुद्धि से अपने को अति महत्त्वपूर्ण मानते हुए कहा—॥ ६०॥ निश्चय ही तुम अबला हो, बच्ची हो, इसीलिए बालोचित सरलता से मोहित करने वाली बातें करती हो; अन्यथा जो सब कुछ जलाकर खाक कर देने की क्षमता रखता हो उसे घास-फूस जलाने को कहती हो॥ ६१॥ जैसा तुमने कहा है वैसा ही करता हूँ। इस खरपात के साथ तुम्हें भी अभी जला देता हूँ। यह कहकर क्रोध से लाल-लाल आँखें किये ज्वाला उगलने लगा॥ ६२॥ अग्नि भी अत्यन्त वेग के साथ खरफूस के साथ उन्हें भी खा डालने के लिए उन पर झपट पड़ा। पर अतिशीघ्र ही अपनी सारी ताकत लगाकर महाबल एवं उद्योग से॥ ६३॥ प्रयास करने पर भी अग्निदेव घास को नहीं जला पाये, सागर से गिरे लूक से अग्नि की ज्वाला शान्त हो गई॥ ६४॥ अग्निदेव की ज्योति जुगनू की तरह भुकभुकाने लगी, ठण्ड से वे थर-थर काँपने लगे, ओले की तरह उसके अंग-प्रत्यंग गलने लगे॥ ६५॥ उसके बाद सारी शक्ति लगाकर अग्निदेव भागने लगे, लज्जित एवं कुण्ठित होकर यथाशीघ्र लापता हो गये॥ ६६॥ उन्होंने इन्द्र के पास जाकर सारी बातें बतलायीं। उनसे कहा—कोई भी महासत्त्व या पराक्रमी प्राणी उसके सामने उसे जानने में असमर्थ हो जाता है॥ ६७॥ इसके बाद इस महान् उन्नत प्राणी के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए सोम को नियुक्त किया। हे सोम! शीघ्र तुम इस विशिष्ट प्राणी के पास जाओ॥ ६८॥ इस प्राणी की उत्पत्ति कहाँ से हुई है? इसका पराक्रम क्या है? इसका स्वरूप कैसा है? इन्द्र की इन बातों को सुनकर चन्द्रमा ने॥ ६९॥ अहंकार के साथ उस परमेश्वरी के पास जाकर कहा—यद्यपि उनकी प्रभा या कान्ति से उनके पास जाते-जाते तेजहीन हो चुके थे॥ ७०॥

का त्वं कुमारि वद मे किंवीर्या त्वं कुतो ह्यसि। जिज्ञासुरहमायातस्त्वामद्भुततमां स्त्रियम्॥ ७१॥
श्रुत्वा शुभ्रांशुवाक्यं सा जगाद परमं वचः। वद त्वं कः कुतः प्राप्त इमं देशश्च किम्बलः॥ ७२॥
अनन्तरं मया स्वीयवृत्तं सङ्कथयामि ते। सोम एवं तया प्रोक्त आमन्त्र्यैनामुवाच ताम्॥ ७३॥
सोमराज इति ख्यातः सर्वलोकस्य पालकः। ओषधीनामहं स्वामी जीवयाम्यमृतांशुभिः॥ ७४॥
तृणवीरुद्गुल्मवृक्षान्मया जीवति वै जगत्। एतत्सोमवचः श्रुत्वा प्रहस्य प्राह सा परा॥ ७५॥
यदि सोमेदृशं वीर्यमाशु दर्शय मेऽग्रतः। तृणं मया दह्यमानं निहितश्चैतदग्रतः॥ ७६॥
संशामय स्वकिरणैरमृताढ्यैः सुशीतलैः। श्रुत्वैतत्फल्गुवचनं मत्वा स्वात्माऽवहेलनम्॥ ७७॥
क्रुद्धः प्राह मदोत्सिक्तः शशाङ्को बलगर्वितः। अबला त्वं बालभावादज्ञात्वा मत्पराक्रमम्॥
उक्तवत्यसि यद्वाक्यं तस्याऽपचितिमेव ते। दिशामि त्वां शीतकरैर्जडीभूतां करोम्यहम्॥ ७९॥
इत्युक्त्वाऽनेककिरणैः शीतनीहारवर्षणैः। ववर्ष चाऽतिवेगेन बलाहकगणा इव॥ ८०॥
तस्य नीहारधारास्ताः फालनेत्राऽर्चिर्भिर्हताः। कीर्तिशेषमनुप्राप्तस्तदाऽप्लुष्टकलेवरः॥ ८१॥
सोमोऽपि दन्दह्यमान ईषत्माणाऽवशेषितः। भीतः पलायितः शीघ्रं प्राहेन्द्रं नाऽशकं हरे॥ ८२॥
ज्ञातुं तत्तु महाभूतं महासत्त्वपराक्रमम्। अथ शक्रः प्राह वायुं तत्सत्त्वप्रतिवेदने॥ ८३॥
वायो त्वं सत्वरं गच्छ जानीह्येनं महत्तरम्। भूतं कस्मात्समुद्भूतं किंवीर्यं किंस्वरूपकम्॥ ८४॥

हे कुमारि! तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? तुम्हारा पराक्रम क्या है? ये सारी बातें बतलाओ। तुम एक अद्भुत औरत हो, तुम्हारे बारे में यह सब जानने के लिए ही मैं तुम्हारे पास आया हूँ॥ ७१॥ चन्द्रमा का यह प्रश्न सुनकर उसने परमोत्कृष्ट बातें कही। पहले तुम अपने बारे में बतलाओ कि तुम कौन हो? कहाँ से तुम यहाँ आये हो? तुम्हारा बल क्या है?॥ ७२॥ इसके बाद ही मैं क्या और कौन हूँ? यह अपनी बात तुम्हें बतलाऊँगी। उनकी ये बातें सुनकर चन्द्रमा ने उनसे कहा—॥ ७३॥ मुझे लोग 'सोमराज' के नाम से जानते हैं। मैं सब लोकों का पालक हूँ, औषधियों का स्वामी मैं ही हूँ। मैं अपनी अमृतकिरणों से लोगों को जीवनदान देता हूँ॥ ७४॥ घास, अँखुए, पेड़-पौधे सब के सब मुझसे ही संसार में जीवन पाते हैं। चन्द्र की बातें सुनकर त्रिपुरा ने हँसते हुए कहा॥ ७५॥ हे सोम! यदि तुममें ऐसी ताकत है तो देख सामने जलती घास को, मैंने इसे जलाया है, शीघ्र अपनी ताकत मेरे सामने दिखलाओ॥ ७६॥ अपनी ठण्डी और अमृत भरी किरणें बरसा कर इस आग को बुझा दो। इसे सुनकर इन्हें निरर्थक बकवास मानकर अपना अपमान समझा॥ ७७॥ अति क्रुद्ध चन्द्रमा ने अपने घमण्ड में चूर मतवाले की तरह कहा—हे देवि! तुम अबला हो, मेरी ताकत को बिना समझे बच्चे की तरह बात करती हो॥ ७८॥ तुमने जो कहा है उसके दोष का फल तो तुम्हें भुगतना ही है। अपनी ठण्डी किरणों से मैं तुम्हें चेतनाहीन बना देता हूँ॥ ७९॥ इतना कहकर अपनी अनेक किरणों से अतिवेग के साथ प्रलयकालीन मेघमण्डल की तरह ठण्डे पाले की वर्षा शुरू कर दी॥ ८०॥ उस ओले को भगवान् शिव की तीसरी आँख की ज्वाला ने मार डाला। झुलसी देह वाली वे भी मृतप्राय स्थिति में आ गये॥ ८१॥ थोड़ी जिन्दगी जिसमें शेष रह गई हो ऐसी स्थिति में झुलसी देह लेकर डरे-सहमे भागकर इन्द्र से 'पाहि माम्' जाकर कहा॥ ८२॥ तब उस महाप्राणी एवं विशिष्ट सत्त्व की शक्ति जानने के लिए इन्द्र ने वायुदेव को अनुप्रेरित किया॥ ८३॥ हे पवनदेव! अब आप शीघ्र जाओ और इस महत्तर प्राणी के सम्बन्ध में पता करो। किससे इसकी उत्पत्ति है? इसका बल क्या है? इसका स्वरूप क्या है?॥ ८४॥ इन्द्र के मुख से ये बातें सुनकर घमण्ड के साथ पवनदेव उस भगवती त्रिपुरा

इति श्रुत्वा वचो वायुः पुरन्दरमुखोदितम् । साऽभिमानं गतस्तत्र यत्र श्रीपरमेश्वरी ॥ ८५ ॥
उवाचाऽऽतिबलं मत्वा स्वात्मानं सावहेलनम् । का त्वं वदाऽबले कस्माद्देशात्प्राप्ताऽत्र किंबला ॥
पुरन्दरादिप्रहितस्त्वां जिज्ञासुरिहाऽऽगतः । वायुवाक्यमिति श्रुत्वा सा प्रोवाच शुभं वचः ॥ ८७ ॥
वद त्वं कः कुतः प्राप्तः किंबलः किंपरायणः । वदाम्यनन्तरं यस्ते कृतः प्रश्नस्तदुत्तरम् ॥ ८८ ॥
इति श्रुत्वा वचो देव्याः प्रोवाचाऽमन्त्र्य तां पराम् । अबले शृणु मे वृत्तं लोकोत्तरतमं शुभम् ॥
अहन्त्वतिबलो वायुर्जगत्प्राणो महागतिः । इन्द्रादिसन्निधेः प्राप्तो जगतामाश्रयः परः ॥ ९० ॥
मया संवेपिताः काले महान्तोऽपि च भूभृतः । ज्वालाणुका इव सदा प्रचरन्ति च सर्वतः ॥ ९१ ॥
समुद्राश्चाऽपि शुष्यन्ति मयि क्षुब्धे प्रभञ्जने । गतिं मम स्थगयितुं समर्थो नैव कश्चन ॥ ९२ ॥
इति श्रुत्वा मरुद्वाक्यं प्राह सा परमेश्वरी । ननु वायो समर्थस्त्वं वीर्यं पश्यामि तावकम् ॥ ९३ ॥
तृणश्चैतत्पुरो न्यस्तं समाहर्तुं तदर्हसि । कदर्थनावचश्चैतच्छ्रुत्वा मन्युपरीवृतः ॥ ९४ ॥
प्राहाऽधिक्षेपणं वाक्यं मारुतो बलगर्वितः । विनाशमबले कस्मात्प्रार्थयस्यतिमूढधीः ॥ ९५ ॥
महाबलं महावेगं कः सोढुं शक्नुयाद्बली । मूढा त्वमवलिप्ताऽसि शमयामि मदं तव ॥ ९६ ॥
आदौ तृणायितां त्वां वै नामशेषां करोम्यहम् । स्थिरीभव सहस्वाऽऽशु मम वेगं सुदुःसहम् ॥
इत्युक्त्वा तां परां देवीं मारुतो मन्युना वृतः । महाबलेन वेगेन यावद्गन्तुं मनो दधे ॥ ९८ ॥
तावत्पङ्गुमिवाऽऽत्मानं दृष्ट्वा हीनगतिं तदा । सर्वप्राणेन चोद्युक्तः पदान्न चलितुं क्षमः ॥ ९९ ॥

के पास गये ॥ ८५ ॥ उनकी अवहेलना कर अपने आपको अतिशक्तिशाली मानते हुए कहा—हे अबले! तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? तुम्हारी शक्ति क्या है? ॥ ८६ ॥ तुम्हारे सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए मुझे इन्द्रादि देवताओं ने तुम्हारे पास भेजा है। पवनदेव की ये बातें सुनकर भगवती ने उन्हें कल्याणमयी बातें कहीं ॥ ८७ ॥ बतला तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? तम्हारी ताकत क्या है? पराक्रम क्या है? इसके बाद ही मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूँगी ॥ ८८ ॥ देवी की बातें सुनकर उस पराशक्ति को ललकारते हुए वायु ने कहा—मेरा वृत्त तो लोकोत्तर है; शुभ है। सुनना ही चाहती हो तो सुनो ॥ ८९ ॥ मैं तो अत्यन्त बलवान् हूँ, संसार के प्राणभूत वायु हूँ, मैं महागतिशील हूँ। इन्द्रादि देव की सन्निधि पाकर संसार का आश्रयस्वरूप हूँ ॥ ९० ॥ मैं महाकाल एवं विशाल पर्वत को भी कँपाता हूँ। तीक्ष्ण ज्वाला की तरह सर्वत्र सदा मैं घूमता रहता हूँ ॥ ९१ ॥ मुझ प्रभञ्जन के क्रोधित हो जाने पर सागर भी सूख जाते हैं। मेरी गति को रोकने में कोई समर्थ नहीं हो सकता है ॥ ९२ ॥ उस परमेश्वरी ने पवनदेव की ये बातें सुनकर कहा—हे वायुदेव! आप तो ताकतवर हैं। मैं आपका पराक्रम भी देखती हूँ ॥ ९३ ॥ आपके आगे जो ये घास पड़ी हैं, इसे आप यहाँ से हटा दें। उनकी ये अपमानजनक बातें सुनकर पवनदेव को क्रोध चढ़ आया ॥ ९४ ॥ बलगर्वित पवनदेव ने उनकी यह अपमानजनक बातें सुनकर कहा—अरी मूर्ख औरत! अपने विनाश के लिए क्यों याचना कर रही है ॥ ९५ ॥ संसार में ऐसा कौन शक्तिशाली है, जो मेरे महाबल और महावेग को सह सकता है? मूर्खे! तुम उद्धत हो, तुम्हारा घमण्ड तोड़ देता हूँ ॥ ९६ ॥ पहले इस घासपात तुल्य तुम्हें ही विनष्ट कर देता हूँ। लो स्थिर हो जाओ, अब मेरे दु:सह वेग को बर्दाश्त करो ॥ ९७ ॥ यह कहकर क्रुद्ध पवनदेव ने पूरी ताकत और वेग के साथ उस महादेवी के पास जाने का मन बनाया ही था ॥ ९८ ॥ कि तब तक अपने को पंगु पाकर गतिहीन हो गया। पूरी ताकत लगा कर भी एक पग आगे नहीं बढ़ सका ॥ ९९ ॥ तब लज्जा और भय के साथ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इन्द्र के पास जाकर कहा—इसके बारे में जानना मेरे

तदा ह्रिया भयेनाऽपि पलायनपरोऽभवत् । पुरन्दरं प्राह वायुर्नैतज्ज्ञातुमलं मम ॥ १०० ॥
अमोघं तन्महाभूतं महासत्त्वपराक्रमम् । एवमग्नीन्दुवायूनां दृष्ट्वा तस्मात्पराभवम् ॥ १०१ ॥
पुरन्दरः शङ्कितोऽभूत् किं मे तदिति चिन्तयन् । चिन्तयित्वाऽपि बहुधा नाऽध्यगच्छत किञ्चन ॥
विमना इव संमूढो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ॥ १०२ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

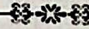


सामर्थ्य से बाहर है ॥ १०० ॥ उन अमोघ, महाभूतं, महासत्त्व, महान् पराक्रमी अग्नि, वायु और चन्द्र को उससे पराजित देखकर ॥ १०१ ॥ देवराज इन्द्र शङ्कित हुए, मुझे अब क्या करना चाहिए? यह सोच कर भी कुछ सोच नहीं सके। दुःखी की तरह, मूढ़ भाव से किसी निष्कर्ष को नहीं पा सके ॥ १०२ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



अथ नवमोऽध्यायः



चिन्तयित्वा चिरं शक्रस्तज्जये कृतनिश्चयः। बलदर्पसमुन्नम्रो वज्रमुद्यम्य सत्वरः॥ १॥
जगामाऽऽरुह्य जीमूतं यत्र सा संस्थिताऽम्बिका। तां दृष्ट्वा सुकुमाराङ्गीं पद्मकिञ्जल्कवर्चसम्॥
स्वसौन्दर्यजिताऽनेककोटिकन्दर्पसौभगाम्। दूरे स्थितस्तां पप्रच्छ तेजसा मुषितेक्षणः॥ ३॥
का त्वं पद्मपलाशाक्षि व्याप्याऽङ्गप्रभया जगत्। स्थिताऽसि कन्या कस्य त्वं कस्मादत्र समागता॥
रूपन्ते रुचिरं तद्वदङ्गविन्याससौष्ठवम्। वन्द्यो ममाऽमरपुरे सन्ति रम्भामुखाः स्त्रियः॥ ५॥
नेदृशी देवलोके वा भुवि वाऽपि रसातले। मया दृष्टा सुचार्वङ्गी भुजाऽष्टादशकोज्ज्वला॥ ६॥
वद शीघ्रं मया पृष्टा सत्यमत्र यथा स्थितिम्। तच्छ्रुत्वा शक्रवचनं परांबा प्राह तं प्रति॥ ७॥
कस्त्वं किमर्थं सम्प्राप्तः किं वीर्यस्त्वं किमुद्यमः। श्रुत्वा वृत्तं तव ततो वदामि मम संस्थितिम्॥
इति श्रुत्वा वचो देव्याः प्राह शक्रः सहस्रदृक्। श्रृणु मे वचनं सम्यगहं सुरपुरेश्वरः॥ ९॥
शतक्रतुस्त्रिभुवनश्रियो भोक्ता महाबलः। त्वां जिज्ञासुरिह प्राप्तो नान्योऽस्ति भुवने क्वचित्॥
बलेन यशसा लक्ष्म्या तुल्यो वीर्येण सम्पदा। सदा भुवनशास्ताऽहं देवा मम वशंवदाः॥ ११॥
वज्रं ममाऽयुधश्चैतदमोघं सर्वदुःसहम्। एतेन संहृतेनैव न जीवन् यास्यति क्वचित्॥ १२॥

✲ विमला ✲

बहुत देर तक सोच कर इन्द्र ने उस पर विजय पाने का निश्चय कर लिया। अपनी ताकत के अहंकार में मस्त शीघ्र ही झुककर अपना अमोघ वज्र उठाकर॥ १॥ जहाँ वह जगदम्बा खड़ी थी, वहाँ बादल पर सवार होकर चल दिया। कमल के फूल की आकृति वाली उस कोमलाङ्गी भगवती को देखकर॥ २॥ अपने सौन्दर्य से उन्होंने करोड़ों काम के सौन्दर्य को जीत लिया था। उनके सौन्दर्य की दीप्ति से इन्द्र की आँखें झिलमिला गईं, फिर भी दूर ही रुककर उनसे पूछा॥ ३॥ हे पद्म और पलाश की तरह सुन्दर आँखों वाली! अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य की प्रभा से सारी दुनिया को ज्योतिर्मय कर यहाँ खड़ी हो। तुम किसकी कन्या हो? कहाँ से यहाँ आई हो॥ ४॥ तुम्हारा रूप जितना मधुर है उतना ही तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग का समंजन आकर्षक है। देवलोक में रहने वाली रम्भा-प्रमुख स्त्रियों के लिए तुम पूजनीय हो॥ ५॥ देवलोक, धरती और पाताल में ऐसे रुचिकर अङ्ग-प्रत्यङ्ग वाली अठारह बाँहों से दमकती आज तक मैंने किसी औरत को नहीं देखा है॥ ६॥ मैंने जो पूछा है उसके सम्बन्ध में वास्तविक तथ्य क्या है? सच-सच शीघ्र बतला दो। इन्द्र की बात सुनकर उस परांबा ने कहा॥ ७॥ तुम कौन हो? क्यों यहाँ आये हो? तुम्हारी शक्ति क्या है? यहाँ आने का तुम्हारा प्रयोजन क्या है? तुम्हारी बातें सुनने के बाद ही मैं अपने बारे में तुम्हें बतलाऊँगी॥ ८॥ देवी की ये बातें सुनकर हजार आँखों वाले इन्द्र ने उनसे कहा—मेरी बातें ठीक से सुनो, मैं देवलोक का राजा हूँ॥ ९॥ मैं सैकड़ों यज्ञ करने वाला हूँ, तीनों लोक की लक्ष्मी का उपभोक्ता हूँ, महाबली हूँ; तुम्हें जानने के लिए यहाँ आया हूँ। संसार में मुझे कोई दूसरा काम नहीं है॥ १०॥ धन से, बल से, यश से, तुल्य वीर्य और सम्पदा से हमेशा मैं चौदहों भुवन का शास्ता हूँ। सारे-के-सारे देवता मेरे वशवर्ती हैं॥ ११॥ मेरा हथियार

बहवो दानवा दैत्या महाबलपराक्रमाः । सकृद्वज्रस्य संस्पर्शात्कृतान्तशरणं गताः ॥ १३ ॥
बलः पाकोऽथ नमुचिर्वृत्रस्त्वाष्ट्रोऽपि तारकः । समस्तलोकजेतारो गता वज्रात्पराभवम् ॥ १४ ॥
बहुनाऽत्र किमुक्तेन न मे तुल्यबलः क्वचित् । जानीहि मां महेन्द्राख्यं महाबलपराक्रमम् ॥ १५ ॥
इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा प्राह सा परमेश्वरी । नूनमिन्द्र मया ज्ञातस्त्वं कश्यपतनूद्भवः ॥ १६ ॥
इदं तृणं सुनिहितं तवाऽग्रे लघु बल्वजम् । यत्किञ्चित्तव वीर्यं वा वज्रस्याऽपि शतक्रतो ॥ १७ ॥
प्रदर्शयाऽस्मिन्नो चेत्त्वं वैश्वानरमुखा इव । पलायमानं पश्यामि त्वामपीन्द्र ह्रिया नतम् ॥ १८ ॥
निशम्यैतद्वचो देव्याः शक्रः प्रस्फुरिताऽधरः । उद्यम्य वज्रं संक्रुद्धस्तां प्रहर्त्तुं मनो दधे ॥ १९ ॥
उद्यते स्वायुधे शक्रे सहसा ज्वलिता दिशः । तस्मिन्निन्द्रे स्थिते चोद्यद्वज्रहस्तेऽतिकोपने ॥ २० ॥
स्मितमीषच्चकाराऽम्बाहसत्कोटीन्दुचन्द्रिकम् । स्मितमात्राच्छतधृतेरुद्यतः सायुधः करः ॥
संस्तम्भितस्तथा पादोवाङ्नेत्रादीन्द्रियाणि च । ईषन्न वेपितुं शक्तो हस्तादिकमपि स्वयम् ॥ २२ ॥
एवं संस्तब्धसर्वाङ्गो मघवा लिखिताऽऽकृतिः । वक्तुं कर्त्तुं प्रचलितुं नेष्ट ईषदपीश्वरः ॥ २३ ॥
एवं भूतं सहस्राक्षं दृष्ट्वा काष्ठनराकृतिम् । अन्वतप्यन्त विबुधा भयेन परिवेपिताः ॥ २४ ॥
दीना नष्टेश्वरा देवा हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः । अथेन्द्रस्तब्धमात्मानमपराधात्स्वयं विदन् ॥ २५ ॥
तत्कालाऽऽपद्रक्षणार्हं सस्माराऽऽङ्गिरसं गुरुम् । तदा संस्मृतमात्रस्तु हरिणाऽऽङ्गिरसो मुनिः ॥

वज्र है। यह अमोघ है। सब तरह के कष्टों को झेलने वाला है। मैं जिस पर इसका प्रहार कर दूँगा उसे झेलकर संसार में कोई जीवित नहीं बचेगा॥ १२॥ अनेकों महाबली, पराक्रमशाली दैत्यों और दानवों को अपने वज्र के हलके छू जाने पर मैंने उन्हें यमपुर भेज दिया है॥ १३॥ समस्त लोक को जीतने वाले बल, पाक, नमुचि, त्वाष्ट्र, तारकादि दानवों को इस वज्र से पराजित होना पड़ा॥ १४॥ अपनी बड़ाई अपने मुँह से अधिक क्या करूँ? मेरे समान बलशाली कोई नहीं है। मेरा नाम महेन्द्र है। मैं अत्यन्त शक्तिशाली एवं पराक्रमी हूँ॥ १५॥ इन्द्र की ये बातें सुनकर उस परमेश्वरी ने कहा—निश्चय ही मैं समझ गई कि आप ऋषि कश्यप के पुत्र इन्द्र हो॥ १६॥ देखो इन्द्र! तुम्हारे आगे यह छोटी-मोटी घास पड़ी है। हे शतक्रतो! तुम्हारी जो कुछ भी ताकत है तथा तुम्हारे वज्र की ताकत है॥ १७॥ उसका प्रदर्शन इस घास पर करो, अन्यथा हे इन्द्र! तुम्हें भी अग्निदेव की तरह लजाकर भागते देखना चाहूँगी॥ १८॥ देवी की ये बातें सुनकर इन्द्र के ओठ क्रोध से काँपने लगे। अतिक्रुद्ध होकर हाथ में वज्र उठाकर उन्हें मारने का मन में ठान लिया॥ १९॥ हाथ में वज्र उठाकर अत्यन्त क्रुद्ध इन्द्र ने भगवती त्रिपुरा पर जैसे ही प्रहार करना चाहा कि दसों दिशाएँ एक साथ जल उठीं॥ २०॥ यह देखकर भगवती ने थोड़ा मुस्करा दिया। उनके हँसते ही लगा करोड़ों चाँदनी एक साथ खिल उठीं। उनके मुस्कराने मात्र से ही वज्र के साथ इन्द्र के उठे हाथ॥ २१॥ पैर, वाणी, आँख, इन्द्रियाँ सब जकड़ गये। इन्द्र के हाथ या स्वयं थोड़ा भी हिल नहीं सके॥ २२॥ इस तरह इन्द्र का सारा अङ्ग-प्रत्यङ्ग जकड़ गया। वे चित्र की तरह स्थिर हो गये। वे थोड़ा भी न हिल सकते थे, न कुछ बोल सकते थे और न कुछ कह सकते थे॥ २३॥ काठ की तरह जड़ीभूत इन्द्र को देखकर देवगण अनुतापित होकर डर से थर-थर काँपने लगे॥ २४॥ स्वामीविहीन और दुःखी देवगण हाहाकार करने लगे। इधर इन्द्र अपने द्वारा किये गये अपराध को समझते हुए दंग रह गये॥ २५॥ अपने पर आई इस विपत्ति से राहत पाने के लिए अपने गुरु ऋषि अङ्गिरा के पुत्र का स्मरण किया। उनके स्मरण मात्र से ही देवगुरु बृहस्पति उसी क्षण वहाँ उपस्थित हो गये॥ २६॥ आगे-पीछे की घटनाओं के जानकार, जानी हुई या जानने योग्य बातों

देव्या कृतं मदशमं ज्ञात्वेन्द्रस्याऽभ्यगात्त्वरन्। योगिराजः सुमेधावी ज्ञातज्ञेयपराऽवरः॥ २७॥
क्षणेन तत्र सम्प्राप्तो यत्रेन्द्रस्तु जडीकृतः। दृष्ट्वा बुधगणाः सर्वे जीवमिन्द्रावनक्षमम्॥ २८॥
स्रोतोऽभिरुह्यमानानां नौप्राप्तिरिव सम्बभौ। गीष्पतेर्दर्शनादेवमाश्वस्तास्त्रिदशास्तदा॥ २९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र धिषणो दीर्घदर्शनः। विश्वेश्वरीं समालोक्य हर्षरोमाञ्चपीवरः॥ ३०॥
आनन्दाऽश्रुकलारुद्धनेत्रो मूर्ध्नि कृताऽञ्जलिः। साष्टाङ्गं प्रणिपत्याऽथो गद्गदस्वरसंयुतः॥ ३१॥
बद्धाञ्जलिः परामम्बामीडितुं समुपाक्रमत्। गूढाशाया मोदभरैर्वाक्पुष्पैः पूजयन्निव॥ ३२॥

जय जय शङ्करि जगदभयङ्करि विधिमुखकिङ्करि वेदनुते।
दुष्टभयङ्करि शिष्टशुभङ्करि सकलवशङ्करि पाहि सुरान्॥ ३३॥
जगतां जननस्थितिहरणादिषु विधिहरिशङ्करविबुधेशाः।
तव पदपङ्कजसेवाऽऽसादितकरुणालेशाः प्रभवन्ति॥ ३४॥
यदि तव करुणालेशविहीनो विबुधगणेशोऽप्यतिमूढः।
नेदं चित्रं त्वद्विमुखोऽपि हि न क्वचिदीशः परमेशः॥ ३५॥
विधिहरिमुख्या अपि तव लीलां न प्रभवः स्युर्वर्णयितुम्।
तत्र कथं मम शक्तिः स्तोत्रे तव महिमाऽब्धेर्वद मातः॥ ३६॥
वाचः प्राश्चस्तव निःश्वसितं विधिहरिमुख्या गुणजाताः।
लीलाजनितं सकलं तत्ते न विदन्त्यवरास्त्वामम्बाम्॥ ३७॥

के जानकार अत्यन्त बुद्धिमान् योगीराज बृहस्पति ने शीघ्र ही देवीकृत इन्द्र के अहंकार का जहाँ दमन किया गया था वहाँ पहुँचे॥ २७॥ क्षणभर में ही जहाँ इन्द्र जड़ीभूत थे वहाँ देवगुरु बृहस्पति पहुँच गये। इन्द्र की रक्षा में समर्थ बृहस्पति को देखकर सारे देवगण॥ २८॥ नदी की धारा का अवरोध आने पर जैसे किसी को नाव का सहारा मिल जाय उसी तरह बृहस्पति को वहाँ देखकर देवगण आश्वस्त हो गये॥ २९॥ इसी बीच दूरदर्शी देवगुरु बृहस्पति की आँखें भगवती त्रिपुरा पर गईं। खुशी के मारे उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग रोमाञ्चित हो उठें॥ ३०॥ खुशी के आँसू से आँखें भर आईं, दोनों हाथ जुड़कर माथे तक पहुँच गये। गला भर आया। उन्हें साष्टांग प्रणाम कर॥ ३१॥ हाथ जोड़कर उस परामबा की स्तुति का उपक्रम प्रारम्भ किया, गुप्त आशय वाले, प्रसन्नतापूर्ण वाक्यरूपी फूलों से पूजा करते हुए की तरह स्तुति प्रारम्भ कर दी॥ ३२॥ हे सुख-समृद्धि देने वाली शङ्करि! तुम्हारी जय हो। तुम संसार को अभयदान देने वाली हो, ब्रह्मा के मुँह की सेविका हो, वेद ही तुम्हारी देह है, दुष्टों को डराने वाली हो, शिष्टों को सुख-सम्पत्ति देने वाली हो, सबको वशवर्ती बनाने वाली हो, देवताओं की रक्षा करो॥ ३३॥ संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहृति के कारणभूत देवेश ब्रह्मा, विष्णु और महेश तुम्हारे ही चरणकमलों की सेवा से तुम्हारी दया के एक कण से ही सारी सृष्टि पर शासन करते हैं॥ ३४॥ यदि तुम्हारी करुणा के एक कण से भी वंचित देवराज भी है तो वे भी नासमझ हैं। इसमें क्या आश्चर्य है? तुम्हारी कृपा से वंचित न कोई ईश है और न कोई परमेश्वर है॥ ३५॥ तुम्हारी लीला का वर्णन ब्रह्मा, विष्णु और महेश कोई भी नहीं कर सकते। तो हे मातः! बतलाओ, मेरी क्या ताकत है कि तुम्हारी महिमासागर की स्तुति कर सकूँ?॥ ३६॥ तुम्हारी साँस से पहली वाणी फूटी; ब्रह्मा, विष्णु प्रमुख देवगण तुम्हारे गुण से ही समुद्भूत हैं। ये सारे-के-सारे तुम्हारी लीला से ही समुत्पन्न हैं। तुम संसार की माता हो, नीच प्रकृति के लोग तुम्हें नहीं जानते हैं॥ ३७॥ सारे चराचर की पहली देह तुम्हीं हो, सारे दृश्य-अदृश्य

सकलचराऽचरवपुराद्या त्वं स्वाऽऽश्रितलोकाऽलोकगणा।
नाऽन्यत्किञ्चित्तव शरणं स्वं विभवं श्रित्वा ननु भासि॥ ३८॥
तन्तुभिरोतः प्रोतो यद्वत्पट इह हेम्ना कटकाद्यम्।
अखिलश्चोतं प्रोतं तद्वत् कलया त्रिपुरे परमपरम्॥ ३९॥
वर्णाद्या अपि षड्विधमार्गाः कालाद्या अपि नवसङ्घाः।
स्थैर्याद्या अपि पञ्चकला ननु चिच्छक्तेस्त्वन्नास्त्यन्यत्॥ ४०॥
सर्वस्याऽदौ परचितिवपुषा विलससि चैका शिवरूपा।
द्रष्टा श्रोता वक्ता नान्यस्तत्त्वां स्तोतुं कः शक्तः॥ ४१॥
दिनमणिबिम्बात्किरणगणा इव तस्यास्त्वत्तः सकलमभूत्।
तस्मात्त्वत्तो नान्यत्किञ्चन दृश्याऽदृश्यं जगदखिलम्॥ ४२॥
देवेशि त्वद्दुर्घटशक्त्याऽऽच्छादितनेत्रास्त्वद्रूपम्।
जानीयुस्ते कथमिह विबुधाः पालय सर्वान् सुरसङ्घान्॥ ४३॥
एष महेन्द्रस्तव पदसविधे स्तब्धतनुस्त्वां न विजानन्।
ईषद्दृष्ट्या करुणारसया पाहि शतक्रतुममरेशम्॥ ४४॥

इति संस्तुत्य गीर्वाणगुरुः परमहेश्वरीम्। नत्वा भूयः प्रार्थनया प्रसादं योजयद्धरौ॥ ४५॥
अथ तस्याः कृपादृष्टिलेशपीयूषसम्प्लुतः। इन्द्रः पुरेव प्रकृतिङ्गतोऽहं स्तम्भवर्जितः॥ ४६॥
ज्ञात्वा विश्वेश्वरीं सम्यग्गुरोर्वाक्याद्यथाविधि। भक्त्या परमया युक्तो देवीं सर्वोत्तमोत्तमाम्॥
पराशक्तिं सर्वजगन्निदानं शुद्धचिन्मयीम्। भूयः प्रणम्य साष्टाङ्गं कृताञ्जलिपुटो हरिः॥ ४८॥

जगत् तुम पर ही आश्रित है। तुम्हारी शरण के अतिरिक्त और कोई आधार दीख नहीं पड़ता॥ ३८॥ धागे की बुनाई से वस्त्र और सोने से कटकादि का जो सम्बन्ध है उसी तरह यह समस्त सृष्टि तुम्हारी दूरा और निकट कला से ओतप्रोत है॥ ३९॥ वर्ण आदि छह तरह के मार्ग, काल आदि नौ सङ्घ, स्थैर्य आदि पाँच कला निश्चय ही तुम्हारी चित् शक्ति का विकाश है और कुछ नहीं॥ ४०॥ सबसे पहले एक मात्र शिवस्वरूपा अपने परिचित शरीर से मनोविनोद करती हो। तुम्हें देखने, सुनने और तुम्हारे बारे में बोलने वाला तुम्हारे सिवा और कौन है? अतः तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है?॥ ४१॥ सूर्यबिम्ब से जैसे किरणें झरती हैं, उसी तरह तुमसे ही यह सब समुद्भूत हैं। अतः दृश्य और अदृश्य ये समस्त जगत् तुमसे भिन्न कुछ नहीं है॥ ४२॥ हे देवेशि! तुम्हारी दुर्घट शक्ति से ढकी आँखवालों को तुम्हारा रूप कैसे देवों को दीख पड़ेगा? इसलिए हे मातः! देवसमूह की रक्षा करो॥ ४३॥ ये महेन्द्र तुम्हारे चरण के समीप ही तुम्हें नहीं जानने के कारण ही जड़ हो गये हैं। करुणापूर्ण अपने कृपाकटाक्ष से देखकर शतक्रतु देवराज इन्द्र की रक्षा करो॥ ४४॥ देवगुरु बृहस्पति ने उस परमेश्वरी की इस प्रकार स्तुति कर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम कर पुनः इन्द्रदेव को अपनी प्रार्थना से भगवती को प्रसन्न करने को कहा॥ ४५॥ उस भगवती की कृपादृष्टि के एक कण में डूबकर इन्द्र पहले ही प्रकृतिस्थ हो चुके थे। उनकी देह का जड़त्व छूट गया था॥ ४६॥ गुरु के कथन से ठीक ढंग से उस परमेश्वरी को जानकर परम भक्ति से युक्त होकर सर्वोत्कृष्ट उस देवी को॥ ४७॥ सम्पूर्ण जगत् के उस निदान कारण को, शुद्ध चिन्मयी को बारंबार प्रणाम कर साष्टांग अञ्जलिबद्ध होकर इन्द्र ने॥ ४८॥ भक्ति के कारण शुद्ध हृदय से कुछ कन्धे झुकाकर मधुर एवं कोमल वचनों से उस लोकजननी की प्रार्थना

भक्त्या गृहीतसुस्वान्तः किञ्चिद्ध्रीनतकन्धरः । अस्तौषील्लोकजननीं मधुकोमलवाग्गणैः ॥
शृण्वतां सर्वदेवानां सविधे बलशासनः । तस्याः कृपादृष्टिलेशाच्छिन्नो मायासु बन्धनः ॥५०॥
नमस्ते त्रिपुरे मातर्नमः परशिवाऽऽश्रये । नमः कारणसत्याऽऽख्यपराऽऽनन्दसुधाऽऽत्मिके ॥
त्वं हि कारणरूपाऽसि सदसद्वस्तुसन्ततेः । त्वत्तः सकलमुत्पन्नं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥५२॥
त्वयि प्रलीयमानश्च त्वं सत्यं सर्ववस्तुषु । मृत्तिकेव घटादीनां भूषणानाञ्च काञ्चनम् ॥५३॥
नाऽन्यत्त्वत्तो लेशतोऽपि जगदेतद्भवेत्क्वचित् । जलं विना शैत्यमिव प्रकाशोऽग्नेरिव क्वचित् ॥
द्युमणेः शक्तयो यद्वत्किरणाः संस्थितास्तथा । त्वत्तः सकलवस्तूनि विभान्ति परमेश्वरि ॥५५॥
विधौ हरौ शिवे तद्वदन्यस्मिन् देवताऽभिधे । यत्सारमस्ति तत्सर्वं तव शक्तेर्विजृम्भितम् ॥
नामाऽऽकृतिक्रियाहीना संविन्मात्रैकरूपिणी । अनुग्रहाय लोकानां रूपं नाम क्रियाऽपि ते ॥
तस्मादनन्यः सततं पुरुषार्थेच्छुरन्वहम् । त्वामेव भक्त्या सेवेत श्रितचिन्तामणिं शिवे ॥५८॥

त्वयि प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं त्वय्यप्रसन्ने किमिहाऽस्ति लभ्यम् ।
विहाय सेवां जगदीशशक्ते वृथैव चाऽन्यत्र रता विमूढाः ॥५९॥
मितेश्वरेणाऽपि हि सम्प्रबद्धा विना तदाराधनतो न मुक्ताः ।
महेशशक्त्या दृढसम्प्रबद्धास्तदप्रसादात्कथमस्तु मुक्तिः ॥६०॥
अनादिशक्त्या तव मायया वै बद्धा जनाश्चिरकालाद्विमूढाः ।
हित्वाऽऽत्मशक्तिं परदेवतां त्वां दैवाऽभिधान् भिन्नरूपान्नमन्ति ॥६१॥

की ॥४९॥ सब देवताओं के सामने उस बलशासन ने कहा—आप लोग सुने, उस जगदम्बा की कृपादृष्टि के एक कणमात्र से माया के सारे बन्धन कट गये ॥५०॥ हे माँ! तुम सबकी शरणस्थल हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम सबका मूल कारण हो, परमानन्द रूपी अमृत ही तुम्हारा स्वरूप है, तुम्हें मेरा प्रणाम है ॥५१॥ सद् और असद् वस्तुओं का सर्वत्र फैलाव के तुम्हीं तो कारण हो। तुमसे ही सबकी उत्पत्ति है, तुममें ही सब संस्थापित हैं ॥५२॥ अन्ततः तुममें ही सब विलीन हो जाते हैं। हर वस्तु का यथार्थ रूप तुम्हीं हो, ठीक उसी तरह जैसे घड़े आदि का कारण मिट्टी है तथा आभूषण का कारण सोना है ॥५३॥ जैसे जल के बिना ठण्डक, आग के बिना प्रकाश का अस्तित्व असम्भव है, उसी तरह तुमसे भिन्न संसार में एक कण भी नहीं है ॥५४॥ सूर्य की शक्ति में जैसे किरणें अवस्थित हैं, उसी तरह तुमसे ही हे परमेश्वरी! सारी वस्तुएँ विभासित हैं ॥५५॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश में तथा उन्हीं की तरह अन्य देवताओं में भी जो शक्ति है, वह तुम्हारी शक्ति का ही तो विस्तार है ॥५६॥ न तुम्हारा कुछ नाम है, न तुम्हारी आकृति और न कोई क्रिया ही है, तुम तो मात्र चेतनास्वरूप हो। संसार पर कृपा करने के लिए ही तुम नाम-रूप धारण कर अनेक क्रियाओं का सम्पादन करती हो ॥५७॥ हे शिवे! इसीलिए पुरुषार्थ चाहने वाले व्यक्ति दिन-रात हमेशा अनन्य भाव से भक्तिपूर्वक तुम्हारीं सेवा में ही लगे रहते हैं, ठीक उसी तरह जैसे सब कामनाओं को पूरा करने वाले चिन्तामणि में लोग चिपके रहते हैं ॥५८॥ तुम्हारे प्रसन्न हो जाने पर दुनिया में कुछ अलभ्य नहीं रह जाता है। तुम्हारे नाखुश होने पर किसी को कुछ नहीं मिलता। ऐंसी जगदीश्वरी की सेवा छोड़कर व्यर्थ ही मूर्खजन इधर-उधर भटकते-फिरते हैं ॥५९॥ मर्यादित परमात्मा भी तुमसे ही सम्बद्ध हैं। तुम्हारी आराधना के बिना उनकी भी मुक्ति नहीं है। महेश भी इसी शक्ति से दृढ़तापूर्वक बँधे हैं। उनके फैलाव से भला किसे मुक्ति है? ॥६०॥ तुम्हारी माया के बन्धन में जकड़े लोग तुम्हारी अनादि शक्ति के कारण बहुत दिनों

त्वमेव सर्वाऽऽद्यतया परात्परा त्वत्तो जाता देवताऽऽख्याः कथं स्युः।
यद्वद्धेम्नोऽन्यो न भूषागणः स्यादाख्याशेषास्तद्वदीशादिदेवाः॥ ६२॥
ईशाद्येष्वप्यन्ततस्त्वीश्वरत्वं सर्वेश्यास्तेऽनुग्रहस्यैव लेशः।
तद्वद्यामोहो जाह्नवीमतिसंस्थां हित्वा कुल्यान्वेषका दावदग्धाः॥ ६३॥
सत्त्वं मूढं मृतके देहकाऽऽख्ये सर्वेशत्वाऽऽद्यभिमानेन युक्तम्।
मातर्भूयस्त्वघकृत्यं दुरीहं त्वत्तोऽन्या का रक्षितुं मां समर्था॥ ६४॥
सा त्वं विश्वप्रसवित्री पराम्बा सर्वं मेऽघं क्षन्तुमेवाऽर्हसीति।
न प्रार्थ्या स्वे तोकके मातुरेषा क्षान्तिर्यस्मात्सहजा सुप्रसिद्धा॥ ६५॥
योऽहं तेऽग्रे स्तब्धकायोऽभवं वै नैतद्रोषादपि तेऽनुग्रहः स्यात्।
रोषे सर्वं भस्मशेषं समीयान्मातुस्तोके तर्जनैवाऽतिदुष्टे॥ ६६॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैः स्तुत्वा पीयूषसंप्लवैः। क्षमापयत्परां देवीं महेन्द्रो भक्तिनिर्भरः॥ ६७॥
शक्रमेवंविधं दृष्ट्वा पावकाद्या दिवौकसः। ज्ञात्वा तां लोकजननीमपराधमपि स्वकम्॥ ६८॥
भीताः प्राञ्जलयो नेमुर्दण्डवच्चरणाऽन्तिके। स्तुत्वा विविधसूक्तैस्तां क्षामयामासुरम्बिकाम्॥
तदा सा परमेशानी विधिमुख्यान् दिवस्पतीन्। प्रसन्ना प्राह कल्याणी कल्याणं परमं वचः॥ ७०॥
भो भो देवा विधीन्द्राद्याः शृणुध्वं वचनं मम। अप्रमादिभिरायत्तैः स्वस्वकार्येषु सन्ततम्॥ ७१॥
भवितव्यं भवद्भिर्मे शास्ति पालनतत्परैः। विधातृहरिरुद्राणां वशे शक्र सदा भव॥ ७२॥

से सूझ-बूझ रहित बने हैं, क्योंकि आत्मशक्तिस्वरूपा तुम्हारी जैसी महत्त्वपूर्ण भगवती को छोड़कर किसी अन्य नामधारी देवता को प्रणाम करते हैं॥ ६१॥ तुम्हीं आज तक सर्वाधिक शक्तिशाली परात्परा देवी हो, तुम्हीं से असंख्य देवता समुत्पन्न हैं। सोने से भिन्न जैसे कोई आभूषण नहीं होते, उसी तरह तुमसे भिन्न इतर नामधारी कोई देवता नहीं है॥ ६२॥ तुम्हारे एक कण अनुग्रह के कारण ही तो ईशादि देव में अन्ततः ईश्वरत्व है। यह तो ठीक उसी तरह की बात है जैसे आग में झुलसे, प्यास से तड़पते कोई व्यक्ति आगे बहती गङ्गा को छोड़कर किसी खाई को खोजता हो॥ ६३॥ मृत शरीर में जैसे कोई प्राण को टटोलता हो उसी तरह हे माता! मैंने अहंकारवश अपने आपको सबका स्वामी मानने जैसा तुम्हारे सामने घोर अपराध किया है। इस पाप से मुक्ति दिलाने के लिए तुम्हें छोड़कर कोई दूसरा समर्थ नहीं है॥ ६४॥ सारे संसार को उत्पन्न करने वाली तुम्हीं पराम्बा हो। तुम्हीं मेरे सारे पापों को माफ करने में समर्थ हो। तुम्हारी क्षमा तो सहज और सुप्रसिद्ध है, अपनी सन्तान की इस प्रार्थना को मत ठुकराओ॥ ६५॥ मैं जो भी कुछ हूँ, तुम्हारे आगे जड़ शरीरधारी बना हूँ, वह भी तुम्हारे क्रोध से नहीं अनुग्रह के कारण ही है। क्योंकि तुम्हारे क्रोध में सब कुछ जलकर राख हो जाता है। मेरे जैसे अति दुष्ट के लिए थोड़ा धमकाना ही पर्याप्त है॥ ६६॥ इस प्रकार अमृत टपकाने वाले ऐसे बहुविध वाक्यों से स्तुति कर कहा—हे सर्वोत्कृष्ट देवि! भक्तिनिर्भर इस महेन्द्र को क्षमा करो॥ ६७॥ इस तरह शक्र को देखकर देवताओं को अपने अपराध का भी बोध हुआ तथा उस महाशक्ति को जगज्जननी के रूप में भी पहचान लिया॥ ६८॥ डरकर उनके आगे भयभीत होकर हाथ जोड़ कर धरती पर गिरकर अनेक सूक्तों से उनकी स्तुति की तथा क्षमा-प्रार्थना की॥ ६९॥ तब वह परमेश्वरी ब्रह्मा-प्रमुख देवताओं से प्रसन्न होकर उस कल्याणी ने कल्याणमयी वाणी कही॥ ७०॥ हे ब्रह्मा, इन्द्र प्रभृति देवगण! मेरी बातें ध्यान से सुनो। अपने-अपने कार्यों में आलस्य रहित होकर लगो॥ ७१॥ मेरे शासनादेश के पालन

अन्ये देवास्तद्वशे च तिष्ठन्त्वग्निपुरोगमाः । मयि सन्ततसंन्यस्तभावा भवथ सात्त्विकाः ॥ ७३ ॥
विधातृमुख्या यूयश्च सृष्ट्यादिकरणोद्यताः । ध्यायन्तो मां सदा स्वाऽऽत्मसंविदेकस्वरूपिणीम् ॥
एवं तस्या वचः श्रुत्वा धातृमुख्याः सुरेश्वराः । नत्वा बद्धाञ्जलिपुटाः प्रार्थयामासुरम्बिकाम् ॥
मातरस्माकमनिशं तव पादाब्जदर्शनम् । त्वयि चाऽनन्यभक्तिश्च भूयादेतन्महेश्वरि ॥ ७६ ॥
एतावति समृद्धे तु सर्वं सम्पन्नमेव नः । प्राप्ते कल्पतरौ चाऽन्यन्न प्राप्यं शिष्यते क्वचित् ॥ ७७ ॥
भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यैः फल्गुभावनैः । तद्रिक्तानामपि प्राप्तैः किं चिन्तामणिकोटिभिः ॥
चिन्तामणिगणैर्देवि दीयते सभयं फलम् । त्वत्पादभक्तिलेशोऽपि प्रयच्छत्यभयं फलम् ॥ ७९ ॥
तस्मादभयमन्विच्छुः श्रयेत्त्वत्पादपङ्कजम् । सदा नो दिश सद्भक्तिं किमन्यद्याचितेन नः ॥ ८० ॥
इति ब्रह्मादिवाक्यं सा श्रुत्वा लीलाऽऽत्तविग्रहा । उक्त्वा तथाऽस्त्विति ततस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥
अन्तर्धिमागतायान्तु तस्यामिन्द्रादयः सुराः । विधिं हरिं शिवं नत्वा बध्वाऽञ्जलिमथो वचः ॥
प्राहुर्विनीतभावेन प्रश्रयाऽवनतेन च । विधे मुरारे शम्भो नः कृपयाऽर्हथ रक्षितुम् ॥ ८३ ॥
पराऽपराधान्महतः कथञ्चिद्गुरुणा वयम् । मोचिताश्चाऽथ वाञ्छामस्तद्रूपं वास्तवन्तु यत् ॥
तज्ज्ञातुं कृपयाऽस्मभ्यं वदन्तु श्राव्यमस्ति चेत् । त्वद्गतीनथ किं कुर्मो दिशन्त्वाज्ञामतः परम् ॥
इतीन्द्रादिवचः श्रुत्वा मुरारिः प्राह सस्मितः । शतक्रतो शृणु वचो मम संयतमानसः ॥ ८६ ॥

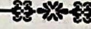
में आप सभी तत्पर हो जायें। ब्रह्मा, विष्णु और महेश के वशवर्त्ती इन्द्र सदा रहेंगे ॥ ७२ ॥ अन्य सारे देवता इन्द्र के वशवर्त्ती होंगे। अग्नि प्रभृति सारे देवता संन्यस्त भाव से सात्त्विक रूप में मेरे अधीन रहेंगे ॥ ७३ ॥ अपनी आत्मस्वरूपिणी चेतना के रूप में मेरा हमेशा ध्यान करते हुए विधाता प्रभृति सारे देवगण सृष्टि-संचालन में तत्पर रहेंगे ॥ ७४ ॥ उनकी ये बातें सुनकर विधाता-प्रमुख इन्द्रादि देवताओं ने बद्धाञ्जलिपूर्वक नमस्कार कर उनकी प्रार्थना की ॥ ७५ ॥ हे मातः ! दिन-रात हमें तुम्हारे चरणकमलों के दर्शन हों। हे महेश्वरि ! तुममें हमारी अनन्य भक्ति हो ॥ ७६ ॥ अगर यह समृद्धि हमें मिल जाती है तो हम सब सम्पन्न हैं। अगर किसी को कल्पतरु मिल जाय तो फिर उसे पाने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता है ॥ ७७ ॥ भक्तिरूपी लक्ष्मी से समृद्ध व्यक्ति को अन्य निरस भावनाओं से क्या मतलब ? भक्ति रहित व्यक्ति को करोड़ों चिन्तामणि की उपलब्धि से भला क्या लाभ ? ॥ ७८ ॥ हे देवि ! चिन्तामणि-समूहों की प्राप्ति से भी जो फल मिलता है वह डरावना है। लेकिन तुम्हारे चरणकमलों की लेश भर भक्ति से प्राप्त फल अभयकर होता है ॥ ७९ ॥ इसलिए अभय के अन्वेषक तुम्हारे ही चरणकमलों का सहारा लेते हैं। हमेशा हमें अपने चरणों की भक्ति दो माँ ! हमारी अन्य कोई याचना नहीं है ॥ ८० ॥ लीलाधीन शरीर धारण करने वाली वह भगवती ब्रह्मादि देवों की यह प्रार्थना सुनकर 'तथास्तु' कहकर वह देवी उसी क्षण तिरोहित हो गयी ॥ ८१ ॥ आँखों से उनके ओझल हो जाने पर इन्द्रादि देवगण ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर कहा ॥ ८२ ॥ देवताओं ने विनीत भाव से सम्मानपूर्वक झुककर कहा—ब्रह्मा-विष्णु-महेश ! तीनों देवता कृपापूर्वक हमारी रक्षा करें ॥ ८३ ॥ उस परात्परा भगवती के साथ हमने जो अपराध किया, उससे किसी तरह गुरु ने हमें मुक्ति दिला दी। अब हम उस भगवती के यथार्थ स्वरूप के बारे में जानना चाहते हैं ॥ ८४ ॥ यदि हम सबों के जानने योग्य हो तो कृपापूर्वक हमें बताने का कष्ट करें। इसके बाद हमें क्या करना है, इसका मार्ग निर्देश भी करे ॥ ८५ ॥ इन्द्रादि देव की बातें सुनकर मुस्कराते हुए सर्वप्रथम भगवान् विष्णु ने यह कहा—हे इन्द्र ! संयत होकर मेरी बातें सुनों ॥ ८६ ॥ यह परमा शक्ति है जो सर्वतोभावेन विचार ही है। वह

इयन्तु परमा शक्तिर्या समस्तविभावना। सा शक्तिः परमेशस्य विमर्शाऽऽख्या महत्तरा॥ ८७॥
महाकाशाऽऽत्मिका यस्यां जगदेतद्विराजते। सेयं द्रष्ट्रात्मना भूत्वा जगद्व्याप्य व्यवस्थिता॥
दृश्यते यज्जगदिदमिति तद्रूपमुच्यते। दृश्यन्तु द्विविधं प्रोक्तं कालदेशविभेदतः॥ ८९॥
कालः क्रियामयो रयो देशो मूर्तिमयः स्मृतः। वर्णः पदं तथा मन्त्र इति कालस्त्रिधा स्थितः॥
कला तत्त्वञ्च भुवनमिति देशोऽपि वै त्रिधा। षडध्वनाम्ना चैतत्तु प्रोक्तं षट्सङ्गरूपतः॥ ९१॥
स्वकारणात्मकं कार्यं तरोर्बीजात्मता यथा। तेन वर्णादयः कालः कलादिर्देश उच्यते॥ ९२॥
द्रष्टुस्तद्द्वयनिर्भानाद्द्रष्टात्मकमुदीरितम्। तस्मादखिलमेतद्वै द्रष्ट्रूपमुदीरितम्॥ ९३॥
तं द्रष्टारं स्वात्मरूपं चितिशक्तिस्वरूपिणम्। दृश्यदेहादितो भिन्नं मत्वा तां ज्ञातुमर्हसि॥ ९४॥
इदं संग्रहतः प्रोक्तमात्मशक्त्यवबोधनम्। न सकृच्छ्रवणाल्लभ्यं तद्रूपं पारमेश्वरम्॥ ९५॥
अनन्तजन्मस्वभ्यस्तमिथ्यामार्गनिषेविणाम्। तस्मादेतन्मया प्रोक्तं धृत्वाऽन्तःश्रद्धया सदा॥
तत्पादभक्त्या तस्यान्तमचिरेणाऽधिगच्छसि। शक्रपावकमुख्यैस्त्वं द्युलोकमनुपालय॥ ९७॥
स्वस्वकार्ये नियुङ्क्ष्वैतान् देवान्सततजाग्रतः। सदा हृदि महाशक्तिं भावयन्नुक्तमार्गतः॥ ९८॥
अधिगच्छाऽभयं मार्गमञ्जसा त्वं शतक्रतो। एवं मुरारिवचनं श्रुत्वा बलभिदादयः॥ ९९॥
प्रदक्षिणीकृत्य धातृमुखान्लोकेश्वरान् सुराः। प्रणम्याऽऽज्ञां समादाय जग्मुः स्वं स्वं निवेशनम्॥
ईशानो हरिधातृभ्यां भक्त्या सम्यक् सभाजितः। पश्यतोस्तत्क्षणेनैव गतोऽन्तर्द्धिं महेश्वरः॥
अथ नारायणं ब्रह्मा स्तुत्वा नत्वा यथाविधि। ययौ स्वभवनं राम सर्वलोकपितामहः॥ १०२॥

परमात्मा की विमर्श नामक महत्तरा शक्ति है॥ ८७॥ वह महाकाशस्वरूपा शून्य है, उसमें यह सारा संसार विराजित है। यही वह भगवती द्रष्टात्मक होकर संसार में फैल कर व्यवस्थित है॥ ८८॥ यह दृश्यमान जगत् उसी का रूप कहा जाता है। काल और देश के भेद से यह दृश्य दो प्रकार का कहा गया है॥ ८९॥ समय क्रियामय वेग है तथा देश मूर्तिमय स्थूल रूप है। वर्ण, पद और मन्त्र इन तीन रूपों में काल है॥ ९०॥ कला, तत्त्व और भुवन भेद से देश के भी तीन भेद होते हैं। छह सङ्ग रूप से षण्मार्ग नाम से जाना जाता है॥ ९१॥ वृक्ष जैसे बीजात्मक होता है उसी तरह स्वकारणात्मक ही इनके कार्य हैं। इसी से वर्णादि काल हैं और कालादि हैं, देश हैं॥ ९२॥ दोनों ही अदृश्य तत्त्वों को देखने के कारण ही इसे द्रष्टात्मक कहा जाता है। इसीलिए यह अखिल द्रष्टृ रूप से जाना जाता है॥ ९३॥ इन्हें देखने वाली उस चित्शक्ति को स्वात्मरूपिणी कहा गया है। देह आदि को इससे भिन्न मानकर ही उस भगवती को जाना जा सकता है॥ ९४॥ इस आत्मशक्ति का बोध संग्रह से ही बतलाया गया है। भगवती पराशक्ति का यह रूप मात्र कुछ सुनने से नहीं हो सकता है॥ ९५॥ जन्म-जन्मान्तर से गलत राह पर चलते रहने के अभ्यस्त प्राणी होते हैं। इसीलिए मैंने कहा—सर्वदा भीतर से श्रद्धावान् रहना चाहिए॥ ९६॥ उनके चरणों की भक्ति से शीघ्र ही उनके पास पहुँच जाओगे। इन्द्र और अग्निं प्रमुख देवगण स्वर्गलोक का यथाविध अनुपालन करो॥ ९७॥ हमेशा जागरूक भावना से पूर्वकथित मार्ग द्वारा अपने-अपने हृदय में उस महाशक्ति का ध्यान करते हुए अपने-अपने निर्धारित काम में लगे॥ ९८॥ हे इन्द्र! तुम सीधी तरह से उस अभय मार्ग पर चलो। इस तरह भगवान् विष्णु की बातें इन्द्रादि देवताओं ने सुनीं॥ ९९॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रभृति त्रिदेव की प्रदक्षिणा कर देवताओं ने उन्हें प्रणाम कर अपने-अपने स्थान पर चले गये॥ १००॥ ब्रह्मा और विष्णु से भक्तिपूर्वक सम्मानित होकर भगवान् शिव भी इनकी आँखों से ओझल हो गये॥ १०१॥ इसके बाद सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी भी भगवान् विष्णु को प्रणाम

एवं सा परमा शक्तिर्महाद्भुततरक्रिया। सर्वदेवोत्तमा सर्वसाक्षिणी विश्वमोहिनी॥ १०३॥
ननु श्रुतं भार्गवैतत्कुमार्याख्यानमद्भुतम्। यत्र सा परमा शक्तिः कुमारीवपुषा स्वयम्॥ १०४॥
इन्द्रादीनां मोहनाशमकरोत्परदेवता। इदमाख्यानमशुभनाशनं शृण्वतां सदा॥ १०५॥
श्रीपरापादसद्भक्तिवर्धनं पावनं महत्। श्रोतव्यमेतत्सततं त्रिपुराप्रीतिमिच्छता॥ १०६॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे नवमोऽध्यायः॥ ८०६॥



कर ब्रह्मलोक चले गये॥ १०२॥ ऐसी वह परमा शक्ति जिनकी बड़ी ही अद्भुत क्रियाएँ हैं, वे सब देवताओं में उत्तम हैं, सर्वसाक्षिणी एवं विश्वमोहिनी हैं॥ १०३॥ हे परशुराम! यह अद्भुत कुमारी आख्यान सुना, जिस कथा में वह परमा शक्ति कुमारी शरीर से स्वयं उपस्थित है॥ १०४॥ इन्द्रादि देवताओं के मोह को भङ्ग करने वाली यह कथा अशुभविनाशिका है, इसे हमेशा सुनना चाहिए॥ १०५॥ यह कथा उस पराशक्ति की भक्ति को बताने वाली है। भगवती त्रिपुरा का स्नेह पाने के लिए यह कथा हमेशा सुननी चाहिए॥ १०६॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
नवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



अथ दशमोऽध्यायः



जामदग्न्यस्तु संश्रुत्य कुमार्याख्यानमद्भुतम्। विस्मितः प्राह मधुरं वाक्यं तं प्रणतस्तदा॥ १॥
भगवन् महदाश्चर्यमाख्यानं भवतोदितम्। न कदाचिच्छ्रुतं पूर्वं त्रिपुरामहिमोन्नतम्॥ २॥
ब्रह्मविष्णुहरैर्यैवं पूजिता संस्तुता तथा। ततः सर्वाधिका सा वै त्रिमूर्त्तिर्जननी यतः॥ ३॥
अहो मयाऽद्य भवतः कथाऽमृतरसं मुखात्। निर्गतं श्रुतिरन्ध्रेण पीतं स्वान्तरुजाऽपहम्॥ ४॥
कृपयाऽनुगृहीतोऽहं श्रीमता गुरुमूर्त्तिना। धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं यन्मे तुष्टो गुरुर्भवान्॥ ५॥
नेदृशं श्रीकथासारममृतं पिबतो मम। क्षुत्तृट्परिश्रमो निद्रा जायते जातु सन्ततम्॥ ६॥
भगवन् त्वन्मुखेन्दूद्यच्छ्रीकथाऽमृतसेवनात्। न तृप्तोऽस्मि मनाक्कोऽपि प्रत्युत तृषितोऽस्म्यहम्॥
भूयः श्रीत्रिपुराम्बाया लीलाविभववर्णनम्। श्रोतुमिच्छामि तन्मह्यं कृपया निगद प्रभो॥ ८॥
एवं सम्प्रार्थितो भूयो दत्तात्रेयो महाशयः। सन्तुष्टो जामदग्न्यस्य ज्ञात्वा श्रद्धाऽतिरिक्ततताम्॥ ९॥
उवाच त्रिपुरादेव्या अवतारकथाः शुभाः। शृणु रामाऽभिधास्यामि त्रिपुरायाः कथाः शुभाः॥
सा च श्रीत्रिपुरा प्रोक्ता परमाकाशरूपिणी। अस्यां सर्वमिदं विश्वं प्रविभक्तं प्रकाशते॥ ११॥
सा चिदानन्दाऽद्वयाऽऽत्मरूपिणी परमेश्वरी। वागिन्द्रियमनोऽतीता साक्षिणी सकलाश्रया॥

❊ विमला ❊

परशुराम गुरु दत्तात्रेय से आश्चर्यजनक कुमारी-कथा सुनकर विस्मय-विमुग्ध हो गये। पुनः विनम्रभाव से मधुर वचनों में गुरु से कहा—॥ १॥ भगवन्! आपने तो बड़ी आश्चर्यजनक यह कहानी सुनायी है। इससे पहले मैंने कभी भी भगवती त्रिपुरा की इतनी ऊँची महिमा नहीं सुनी थी॥ २॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश के द्वारा इस तरह वह संस्तुत एवं पूजित थी। क्योंकि सबसे बढ़कर वह इस त्रिमूर्ति की जननी थीं॥ ३॥ आपके मुख से निकली, अन्तःरोगविनाशिनी, अमृतरसमयी भगवती की यह कथा मैंने अपने क़ानों से सुनी है। मैं धन्य हूँ॥ ४॥ आज मैं गुरु दत्तात्रेय की कृपा से अनुगृहीत हुआ। आप मुझ पर प्रसन्न हैं, इसलिए मैं धन्य और कृतकृत्य हूँ॥ ५॥ इस तरह भगवती की कृपा का सार रूपी अमृत पीते हुए मुझे न तो भूख लगती है, न प्यास, न थकान महसूस होती है और न नींद आती है; अगर आये भी तो जिन्ता नहीं॥ ६॥ हे भगवन्! आपके मुखचन्द्र से टपकते श्रीकथा रूपी अमृतबिन्दु के सेवन से मैं तृप्त नहीं हूँ, प्रत्युत मेरी प्यास और तेज हो गई है॥ ७॥ फिर मैं भगवती त्रिपुरा का लीलाविभव सुनना चाहता हूँ। अतः मुझ पर कृपा कर कुछ और सुनाने का कष्ट करें॥ ८॥ इस तरह महाशय दत्तात्रेय से परशुराम ने जब पुनः प्रार्थना की तब उन्होंने परशुराम को अत्यन्त श्रद्धालु जानकर परम प्रसन्न हुए॥ ९॥ हे परशुराम! भगवती त्रिपुरा के अवतार की शुभ कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ, तुम ध्यान से सुनो॥ १०॥ उस भगवती त्रिपुरा को परम आकाशरूपिणी कहा गया है। वह सूक्ष्म एवं वायविक रूप में समस्त विश्व में व्याप्त है। वह विभिन्न रूप में सर्वत्र व्याप्त है॥ ११॥ वह चिदानन्दात्मिका है, अध्यात्मरूपिणी है, परमेश्वरी है; वाक्, इन्द्रिय और मन से परे हैं। वह सबका आश्रय है, सबकी साक्षिणी है॥ १२॥ वह अपने भक्त पर कृपालु होने के कारण अनेक तरह की शारीरिक क्रिया

सा भक्तकृपया देवी नानाविधतनुक्रिया। तद्भेदगणने शेषः सहस्राऽऽस्योऽपि न प्रभुः॥ १३॥
तस्मात्प्रधानरूपाणि कानिचित्कथयामि ते। आद्या कुमारी तत्रोक्ता त्रिरूपाऽनन्तरा मता॥
गौरी रमा भारतीति ततः काली च चण्डिका। दुर्गा भगवती पश्चात्प्रोक्ता कात्यायनी परा॥ १५॥
ललिता श्रीमहाराज्ञी तत्र पूर्णतमा मता। एतासां क्रमतो लीलाः शृणु वक्ष्यामि भार्गव॥ १६॥
तत्र प्रोक्ता कुमारी सा या स्तुता विधिमुख्यकैः। भूयः सा त्रिपुरा देवी त्रिरूपा समजायत॥ १७॥
तत्तेऽभिधास्ये परममाख्यानं परमाद्भुतम्। पुरा सर्गाऽऽदिसमये त्रिपुरा चितिरूपिणी॥ १८॥
एकाऽऽसीन्नेतरत्तत्र तस्याः किञ्चिदपि स्थितम्। सा तथारूपिणी शक्तिः स्वस्वातन्त्र्यवशेन तु॥
सृष्ट्युन्मुखी यदा जाता तदेच्छा समजायत। इच्छाया ज्ञानमुत्पन्नं क्रिया च तदनन्तरम्॥ २०॥
ततस्त्रिमूर्त्तयो जातास्त्रितयाद्देवतेक्षितात्। इच्छामयः पशुपतिर्ज्ञानात्मा हरिरेव च॥ २१॥
ब्रह्मा क्रियात्मकस्तान् सा भावयामास शङ्करी। ते निसर्गमहावीर्याः सत्यसङ्कल्पशालिनः॥
तपः सुपरमं चक्रुर्यतचित्तेन्द्रियक्रियाः। तदा न रात्रं न दिवा न सूर्यो न च तारकाः॥ २३॥
न भूमिर्न जलं तेजो वायुर्वा न दिशाः क्वचित्। न निमेषो युगश्चापि स्थितं सर्वं नभोमयम्॥ २४॥
स्वयम्प्रभास्तु ते देवा नभोनिलयसंश्रयाः। महता तपसा युक्ताः समाधये सुनिश्चलाः॥ २५॥
अनेकयुगपर्याप्तकालेऽतीते पराम्बिका। पराऽऽकाशमयी तत्र विधातारमुवाच ह॥ २६॥
वत्सोत्तिष्ठ विधे किं ते तपसा कर्त्तुमिच्छसि। सृज लोकान् सभुवनानतस्त्वं जनितो मया॥ २७॥

करती हैं। इसके भेद की गणना करने में अपने हजारों मुख से शेषनाग भी समर्थ नहीं हो सकते हैं॥ १३॥ अतः इनके कुछ प्रधान रूपों का ही वर्णन मैं तुम्हारे सामने करता हूँ। इनमें पहला रूप कुमारी का है। उसके बाद त्रिपुरा हैं॥ १४॥ उसके बाद गौरी, रमा, भारती, काली, चण्डिका, दुर्गा, भगवती तथा कात्यायनी हैं॥ १५॥ अन्त में ललिता महाराज्ञी है जो पूर्णतमा हैं। इनकी लीला का वर्णन क्रमशः मैं करता हूँ, सुनो॥ १६॥ ब्रह्मा प्रभृति देवताओं ने जिनकी स्तुति की हैं वे कुमारी हैं। पुनः वह तीन रूपों में त्रिपुरा कहलाती हैं॥ १७॥ अतः तुम्हें परम अद्भुत, महत्तम त्रिपुरा की कथा सुनाता हूँ। पहले सृष्टिरचना के समय चितिरूपिणी त्रिपुरा॥ १८॥ अकेली वहाँ थीं, उसके सिवा वहाँ और कुछ था ही नहीं। उस रूप में वह महाशक्ति अपनी स्वतन्त्रता के कारण॥ १९॥ जब सृष्टिरचना की ओर उनका ध्यान गया तो सर्वप्रथम उनके मन में इच्छा उत्पन्न हुई, इच्छा से ज्ञान उत्पन्न हुआ, अन्त में क्रिया उत्पन्न हुई॥ २०॥ उसके बाद तीन मूर्त्तियों की उत्पत्ति हुई, इन तीन भागों से तीन देवता प्रकट हुए। उनकी इच्छा से पशुपति शिव और ज्ञान से भगवान् विष्णु तथा॥ २१॥ देवी ने अपनी क्रियात्मकता से ब्रह्मा अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश की रचना की। ये तीनों देवता स्वभाव से ही महाबली और सत्यसंकल्पशाली हुए॥ २२॥ वे तीनों देवता मन, इन्द्रिय और अपनी क्रिया को पूर्ण नियन्त्रित कर कठोर तप में लीन हो गये। उस समय न रात थी, न दिन, न तारे थे और न सूर्य॥ २३॥ न धरती थी, न जल, न तेज था, न पवन, न कहीं कोई दिशा थी, न समय था; सर्वत्र शून्य-ही-शून्य था॥ २४॥ अपनी-अपनी कान्ति से ही ये त्रिदेव शून्य को आधार बनाकर टिके थे। कठोर तप में लीन होकर समाधि में स्थिर थे॥ २५॥ अनेक युग बीत गये, समय का अन्तराल काफी लम्बा हो गया, तब वह शून्यस्वरूपा पराम्बा ने ब्रह्मा से कहा॥ २६॥ वत्स विधे! उठो, तुम्हें तप करने की चाह है क्या? तुम समग्र भुवनों के साथ सृष्टि की रचना करो। इसी काम के लिए मैंने तुम्हें उत्पन्न किया है॥ २७॥ पराशक्ति का आदेश मिलते ही ब्रह्मा ने सृष्टिरचना की ओर ध्यान दिया। मैं सृष्टि की रचना इस

इत्यादिष्टः पराशक्त्या जगत्स्रष्टुं मनो दधे। अहं कुत्र सृजामीति चिन्तयन् समपश्यत॥ २८॥
तदा दृष्टो महाकाशः सर्वशून्यमयोऽमलः। अनन्तविस्तरोऽनादिर्नाऽन्तं तस्योपलक्षितम्॥
अवकाशोऽस्ति मे सृष्टेरिति मत्वा पितामहः। व्यचलत्किञ्चिदङ्गेन स्पर्शं तत्रोपलब्धवान्॥
स्वाऽङ्गस्य चलनादेव स्पर्शाद्वायुर्व्यजृम्भत। वायोर्वेगादूष्मणस्तु प्रादुर्भावोऽभवत्तदा॥ ३१॥
ऊष्मणो रूपसंयुक्तमग्निं प्रेक्षितवान् विधिः। ततो वह्नेस्तु परितो शीतसंस्पर्शसंयुतम्॥ ३२॥
रसाढ्यं सलिलं स्यन्दि स्नेहसंयुक्तमेव च। तत्र गन्धस्तु सन्दृष्टोऽनन्तरं तन्मलेन तु॥ ३३॥
पृथिवी ददृशे तस्य कठिना धारणक्षमा। दृष्ट्वैतावज्जगत्स्रष्टा चाऽस्ति मत्सृष्टिधारिणी॥ ३४॥
अस्यां सृजामि भुवनं नानातनुविचित्रितम्। इति मत्वा तत्र सृष्टिं वितेने जगदीश्वरः॥ ३५॥
श्रुत्वैवं वचनं तस्य दत्तात्रेयस्य भार्गवः। प्राह संशयितस्वान्तो मधुराऽक्षरया गिरा॥ ३६॥
भगवन्नत्र मे चित्तमन्तं नैवाऽधिगच्छति। बहुशङ्काऽऽस्पदं वाक्यं श्रुत्वा तव विचित्रितम्॥ ३७॥
आकाशमुखभूतानि सिद्धवद्धातुरीक्षणात्। अकर्तृकाणि मे भान्ति कर्त्ता नाऽन्यो यतः स्थितः॥
कथं तेषां जगद्धात्रा विना संज्ञापकं तदा। शब्दः प्रवर्त्तितस्तस्मात्पूर्वं भूतसृतेः कथम्॥ ३९॥
पाञ्चभौतिकदेहस्य सम्बन्ध इति शंस मे। न मे संशयनीहारहरणेऽन्यत्प्रगल्भते॥ ४०॥
त्वद्वाक्यचण्डकिरणाद्भगवन् करुणानिधे। अपृष्टमपि शिष्याय प्रपन्नाय दयालवः॥ ४१॥
गुरवः प्राहुरत्यन्तशुद्धचित्ता भवादृशाः। इति पृष्टो भार्गवेण दत्तः प्रीतः कृपानिधिः॥ ४२॥

शून्य में कहाँ करूँ? यह सोचते हुए चारों ओर देखा॥ २८॥ तब परम पवित्र, सर्वशून्यमय महाकाश को उन्होंने देखा, दूर-दूर तक फैला जिसका न कोई आदि है और न कोई अन्त॥ २९॥ मेरी सृष्टि रचना के लिए यही उपयुक्त स्थान है, ऐसा मानकर ब्रह्मा ने कुछ चलती वस्तु से अपने अङ्ग के स्पर्श का अनुभव किया॥ ३०॥ उनके अङ्ग-संचालन से स्पर्श की उत्पत्ति हुई, स्पर्श से हवा की उत्पत्ति हुई। हवा के वेग से ऊष्मा का प्रादुर्भाव हुआ॥ ३१॥ विधि ने देखा कि उस ऊष्मा से स्वरूपवान् तेजस्वी अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद आग के चारों ओर शीतल स्पर्श की अनुभूति हुई॥ ३२॥ फिर रसपूर्ण स्नेहिल जल का प्रादुर्भाव हुआ। जल से गन्ध की उत्पत्ति हुई। गन्ध के मल से॥ ३३॥ पृथिवी दिखलायी पड़ी, जो कठोर तो थी ही, अपने ऊपर सबका भार वहन करने में सक्षम थी॥ ३४॥ इस धरती पर मैं सृष्टि की रचना करूँगा, रंग-बिरंगे अनेक शरीरों से भरे भुवनों की संरचना मैं करूँगा। ऐसा मानकर जगदीश्वर ने धरती पर सृष्टि-विधान किया॥ ३५॥ दत्तात्रेय की ऐसी बातें सुनकर परशुराम ने कहा—इन मीठी बातों से मेरा हृदय और अधिक सन्दिग्ध हो गया है॥ ३६॥ हे भगवन्! मेरा हृदय इसका कोई अन्त नहीं पा रहा है। आपकी विचित्र और बहुशंकास्पद बातें सुनकर मैं और सन्दिग्ध हो गया हूँ॥ ३७॥ आकाश, दिशाएँ, भूत, बद्धसिद्धादि तो मुझे अकर्तृक ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि इसका कोई दूसरा कर्त्ता दिखलायी नहीं पड़ता॥ ३८॥ इनका संज्ञापक बिना जगत्स्रष्टा के कैसे सम्भव है? शब्दसंचालन से पूर्व भूतसंचालन कैसे सम्भव है? ३९॥ पाञ्चभौतिक इस शरीर का इसके साथ सम्बन्ध भी मुझे संशय में डाल रहा है। मेरे इस सन्देह रूपी कुहासे को हटाने में आपके सिवा कोई दूसरा समर्थ नहीं है॥ ४०॥ हे भगवन्! ओ करुणानिधे! आपके वचन रूपी प्रखर किरणों से ही तो अन्धकार दूर होगा। मैंने जो कुछ आपसे पूछा ही नहीं, उसका भी उत्तर मुझ प्रपन्न शिष्य के लिए आप देने का कष्ट करें, आप तो दयालु हैं॥ ४१॥ अत्यन्त पवित्र मन से पूछे गये परशुराम के प्रश्न को सुनकर गुरु दत्तात्रेय काफी प्रसन्न हुए॥ ४२॥ अत्यन्त पवित्र एवं सत्य वाणी से परशुराम को गुरु

प्राह सूनृतया वाचा सम्बोध्य वदतां वरः। राम बुद्धिमतां श्रेष्ठ प्रश्नस्तेऽतिविशारदः॥ ४३॥
त्रिधा स्थितस्तन्मयाऽग्रे प्रोच्यतेऽवसरे स्फुटम्। न ज्ञातुं शक्यते सद्यस्त्वया तस्मात् स्थिरीभव॥
असाम्प्रतं तु शिष्याय वदन् स्यान्मुग्ध एव सः। विपरीतं प्रसिध्येत चाऽसाम्प्रतनिरूपणात्॥
असाम्प्रतस्य श्रवणाद्विनश्येत्कटकारवत्। इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं पुनराह भृगूद्वहः॥ ४६॥
स्वामिन् किमुक्तं भवता कटकारः कथंविधः। किं वृत्तं तस्य कस्माद्वै विनष्टस्तन्निवेदय॥ ४७॥
एवं पर्यनुयुक्तः सोऽवदद्विद्वच्छिरोमणिः। शृणु राम पुरा वृत्तं कटकारसमाश्रयम्॥ ४८॥
आसीत्कश्चित्कलिङ्गेषु कुवलाख्यो यदोः पुरे। कटकारोऽतिनिपुणः कटकर्मसुशिक्षितः॥ ४९॥
कृत्वा विचित्रचित्राणि कटानि कुवलाभिधः। राज्ञे निवेदयत्तेन राजा तुष्टः सुशिक्षया॥ ५०॥
तस्मै ददौ धनं भूरि तेनाऽऽढ्यः समजायत। धनेन तेन कटकृत् ब्राह्मणाऽऽराधनोद्यतः॥ ५१॥
श्रुत्वा क्वचित्पुराणेषु ब्राह्मणानां प्रशंसनम्। कदाचित्कुवलः पुण्यकथातत्परतः स्थितः॥ ५२॥
तत्राऽध्यात्मविचारस्तु प्रवृत्तस्तेन संश्रुतः। न तद्वेदाऽतिसूक्ष्मत्वात्पुनः पुनरपि श्रुतम्॥ ५३॥
तदाऽऽप्तवचनं विप्रमेकान्ते सङ्गतः क्वचित्। भगवन् यत्त्वया प्रोक्तमध्यात्मविषयं वचः॥
तदतीव गभीरार्थं मया भूयोऽपि संश्रुतम्। तत्र सारं समाकृष्य मम धारयितुं क्षमम्॥ ५५॥
वद ब्रह्मन्करुणया दृष्ट्या पश्य सकृत्तु माम्। प्रार्थितः कुवलेनैवं प्राह संक्षिप्य सारतः॥ ५६॥
शृणु ते कथयिष्यामि कुवलाऽध्यात्मसंग्रहम्। अक्षार्थाद्विमुखः शान्तो दृश्यं मत्वा दृगात्मकम्॥

ने कहा—हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ परशुराम! तुम्हारे प्रश्न बड़े ही प्रवीण हैं॥ ४३॥ मेरे सामने तीन रूपों में अवस्थित उनका रहस्य अवसर आने पर तुम्हें बतला दूँगा। अभी उसका अवसर नहीं है, अतः स्थिर हो जाओ॥ ४४॥ अनवसर पर कहने से वक्ता मुग्ध हो जाता है। ठीक समय से पूर्व बोलने पर उसका विपरीत फल होता है॥ ४५॥ अनवसर जो शिष्य सुनता है, उसकी मृत्यु कटकार की तरह होती है। गुरु की यह बात सुनकर पुनः परशुराम ने कहा—॥ ४६॥ हे स्वामी! आपने कटकार के बारे में क्या कहा? यह कटकार कौन है? कैसा है? किससे यह विनष्ट हुआ? इसकी क्या कथा है? कृपया मुझे बतलायें॥ ४७॥ इस तरह परशुराम के पूछने पर विद्वान्-शिरोमणि दत्तात्रेय ने कहा—हे परशुराम! पहले घटित कटकार की कथा सुनो॥ ४८॥ कलिङ्ग देश में यादवों की कुवलाख्य नाम की एक नगरी थी। चटाई बुनने में कुशल एक कारीगर रहता था॥ ४९॥ कुवला नामक उस कारीगर ने रंग-बिरंगे चित्रवाली एक सुन्दर चटाई बुनकर राजा को भेंट कर दी। उसकी कुशलता से राजा काफी सन्तुष्ट हुआ॥ ५०॥ राजा ने उसे पर्याप्त धन दिया, जिससे वह काफी धनी हो गया। उस धन से उसने ब्राह्मणों की आराधना शुरू की॥ ५१॥ किसी पुराण में उसने ब्राह्मणों की प्रशंसा सुनी। उसके बाद उस कुवल ने पौराणिक कथा सुनी॥ ५२॥ उस कथा में उसने अध्यात्म विषयक चर्चा सुनी। बार-बार अध्यात्म विषयक विचार सुनने के बावजूद उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया॥ ५३॥ एक बार एकान्त देखकर उसने उस विद्वान् ब्राह्मण से पूछा—हे भगवन्! आपने जो अध्यात्म विषयक बातें कहीं हैं॥ ५४॥ वह अत्यन्त गूढ़ होने के कारण बार-बार सुनकर भी समझ नहीं पा रहा हूँ। मेरी समझ में आने लायक उस कथन का सार संक्षेप में कृपया मुझे समझा दें॥ ५५॥ हे ब्राह्मणदेवता! मुझ पर थोड़ी कृपा करें। कुवल की ऐसी प्रार्थना सुनकर ब्राह्मण अध्यात्म विचार का संक्षिप्त सार सुनाने को उद्यत हुआ॥ ५६॥ हे कुवल! सुनो, मैं तुम्हें अध्यात्म संग्रह सुनाता हूँ। अक्षार्थ से विमुख, शान्त दृश्य को मानकर दृष्टवान् बनो॥ ५७॥ सबको समान जानकर फिर आगत को कभी नहीं छोड़ना चाहिए तथा अनागत की कभी

ज्ञात्वा सर्वं समं पश्चादागतं न त्यजन्सदा। अनागतमनिच्छन्वै सन्तुष्टो निर्भयः सदा॥ ५८॥
विचरेत्सङ्गरहित इति ते सुनिरूपितम्। एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य कुवलो मोहितोऽविदन्॥ ५९॥
समज्ञानेन विप्रेषु भक्तिशैथिल्यमाश्रितः। आढ्यः सदा सुखं प्राप्तान्कामान्सेवन्कथादिकम्॥
देवतासेवनञ्चाऽपि त्यक्त्वा पापभयं तथा। संस्थितो नास्तिकप्रायः प्राप्तवानधमां गतिम्॥
एतत्ते भार्गव प्रोक्तं वृत्तं कटकृतो मया। तस्मादकाले सम्प्रोक्तो दोषाय परिकल्पते॥ ६२॥
एवं भुवं समालोक्य जगतां प्रपितामहः। मनसैवाऽसृजत् सर्वान् सचराऽचरमानुषान्॥ ६३॥
मनुष्यान्यक्षगन्धर्वान्सिद्धविद्याधकिन्नरान्। रक्षांसि दानवान्दैत्यान्भूतप्रेतपिशाचकान्॥ ६४॥
देवान्पितॄन्सुराऽधीशान् पशूनश्वानजान्खगान्। भूचराञ्जलजातांश्च तृणवीरुद्द्रुमांस्तथा॥ ६५॥
भुवनान्यपि चित्राणि विधिरेवं ससर्ज वै। सृष्टं सृष्टं क्षणेनैव सर्वं तत्राऽवसीदति॥ ६६॥
दृष्ट्वाऽवसन्नां सृष्टिं स्वां पुनरेव मनो दधे। तपस्यासु तदाऽतीते बहुकाले पराम्बिका॥ ६७॥
प्राहाऽशरीरवचसा विधे किं तपसि स्थितः। मया सृष्टौ नियुक्तः सन्सृष्टिं त्यक्त्वा किमास्थितः॥
तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह विधाताऽकाशरूपिणीम्। मातर्मया सृज्यमानं क्षणादेवाऽवसीदति॥ ६९॥
तत्पालने नियुङ्क्ष्वैनं विष्णुं लोकेश्वरं शिवे। विमृश्य ब्रह्मवचनं सा पराऽऽकाशरूपिणी॥ ७०॥
आकाशवाण्या तं विष्णुं प्राह सा परमेश्वरी। उत्तिष्ठ विष्णो तपसो विरमाऽऽचक्ष्व मद्वचः॥
पालनार्थं मया सृष्टः स त्वमाज्ञावशेन मे। विधिसृष्टं पालयस्व स्वात्मशक्तिं समाश्रितः॥ ७२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य पराम्बाया हरिस्तदा। नमस्कृत्य तथेत्युक्त्वा जगत्पालनतत्परः॥ ७३॥

चाह नहीं करनी चाहिए। सन्तुष्ट और निडर होकर घूमो॥ ५८॥ सङ्गरहित होकर विचरण करो। इतना ही समझना है। इस तरह उनकी बातें सुनकर बिना समझे ही वह मोहित हो गया॥ ५९॥ अब ब्राह्मणों की तरह अपने को ज्ञानी समझकर उनके प्रति भक्ति की इसमें कमी हो गई। ब्राह्मण-देवता की सेवा छोड़कर विचरण करने लगा॥ ६०॥ देवता की पूजा-अर्चना भी छोड़कर पाप के भय से मुक्त होकर यथेच्छ घूमने लगा। नास्तिक बनकर अधम गति को प्राप्त किया॥ ६१॥ हे परशुराम! यह रही उस कटकार की कथा जो मैंने तुम्हें सुना दी है। अतः अनवसर में कही बातें दोषावह ही होती हैं॥ ६२॥ इस तरह संसार को देखकर संसार के प्रपितामह ब्रह्माजी ने मन से चर-अचर और मनुष्य की सृष्टि की॥ ६३॥ मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, राक्षस, दानव, दैत्य, भूत, प्रेत, पिशाचों॥ ६४॥ देवता, पितर, देवराज, पशु, घोड़े, बकरियाँ, पक्षी, थलचर, जलचर, पेड़-पौधे तथा घास-फूंसों॥ ६५॥ रंग-बिरंगे भुवनों की रचना विधि ने की। रचना क्रम में एक क्षण में ही उन्होंने इस सृष्टि की रचना कर डाली॥ ६६॥ सृष्टिकार्य सम्पन्न होते ही ब्रह्माजी पुनः तपस्या करने में लीन हो गये। तपस्या करने में पुनः उनका बहुत समय निकल गया॥ ६७॥ फिर एक दिन उस पराम्बा ने बिना शरीर के आकाशवाणी की—ओ ब्रह्मा! मैंने तुम्हें सृष्टिरचना में नियुक्त किया था, उसे छोड़कर तपस्या में क्यों लगे हो?॥ ६८॥ यह सुनकर ब्रह्मा ने उस आकाशरूपिणी त्रिपुरा से कहा—हे मातः! मैंने सृज्यमान सारी वस्तुओं की रचना तो क्षणमात्र में ही कर दी है॥ ६९॥ हे शिवे! इस सृष्टि के पालन के लिए लोकेश्वर विष्णु की आप नियुक्ति करें। उस पराम्बा ने विधि के कथन-विचार कर॥ ७०॥ उस परमेश्वरी ने आकाशवाणी में विष्णु से कहा—हे विष्णु! तप करना बन्द करो। उठो और मेरी बातें सुनो॥ ७१॥ सृष्टिपालन के लिए ही मैंने तुम्हारी रचना की है। मेरे आदेश से अपनी शक्ति का सहारा लेकर विधाता की सृष्टि का पालन करो॥ ७२॥ भगवती त्रिपुरा का आदेश सुनकर विष्णु ने उन्हें सभक्ति प्रणाम किया।

स्वात्मशक्तिं समाश्रित्य हरिर्योगेश्वरो जगत् । तत्र तत्र स्थितं सर्वमपालयदशेषतः ॥ ७४ ॥
एवं जगत्सृज्यमानं पाल्यमानञ्च विष्णुना । समवर्द्धत वर्षाऽम्बुस्रोतोभिर्ह्रदतोयवत् ॥ ७५ ॥
आपूरितं जगत्सृष्ट्या प्रत्यहं वर्धमानया । भूचरैर्भरिता भूमिः खेचरैर्भरितं नभः ॥ ७६ ॥
यादोभिर्जलमाक्रान्तं कृमिकीटैर्बिलं तथा । तरुगुल्मादिभिस्तद्वद्व्याप्ताऽद्रेर्दुर्गभूमिकाः ॥ ७७ ॥
श्वापदैर्मृगव्याघ्राद्यैः संव्याप्तानि वनानि च । मशकैर्मक्षिकाद्यैश्च व्याप्तं सर्वान्तरं तदा ॥ ७८ ॥
एवं जगति संव्याप्ते निरन्तरतया स्थिते । आक्रन्दस्समभूत्तत्र प्राणिनां पीडिताऽऽत्मनाम् ॥ ७९ ॥
विदीर्णमाणं ब्रह्माण्डमासीत्प्राणिभिराततम् । बीजपुष्ट्या दाडिमानां यथा पक्वफलं तथा ॥
एवं जाते निरुच्छ्वसे लोके संमृदिताऽऽकुले । दृष्ट्वा विधिश्चिन्तयानो हा कष्टमिति निःश्वसन् ॥
पुनरातिष्ठत तपो विधिर्लोकहितेप्सया । तपसा तस्य सन्तुष्टा पुनराह पराम्बिका ॥ ८२ ॥
आकाशवाण्या धातारं हर्षयन्ती महेश्वरी । विधे पुनः किं तपसि स्थितस्तद्वद मा चिरम् ॥ ८३ ॥
अभीष्टं यदहं तत्ते विधास्यामि न संशयः । इत्युक्तः प्राह लोकानां कर्त्ता धाता पराम्बिकाम् ॥
मातर्मया सृज्यमानं पाल्यमानं गदाभृता । व्याप्तं प्राणिभिरत्यन्तं पीडितं सकलं जगत् ॥ ८५ ॥
अनन्तरं विधेयं यत्तदाज्ञापय शङ्करि । एवमुक्ता जगद्धात्री प्राह रुद्रं महेश्वरम् ॥ ८६ ॥
रुद्राऽलं तपसा शीघ्रमुत्तिष्ठ मम शासनात् । विधिसृष्टं प्राणिगणं संहर्तुं त्वमिहाऽर्हसि ॥ ८७ ॥
इति श्रुत्वा जगन्मातुर्वचनं खाश्रितं तदा । नमस्कृत्वा पशुपतिस्तां परब्रह्मरूपिणीम् ॥ ८८ ॥
ओमित्याहाऽथ जगतस्संहारे कृतनिश्चयः । फालनेत्रोन्मेषणेन युगपद्भस्मसात्करोत् ॥ ८९ ॥

फिर उसे स्वीकार कर सृष्टिपालन में तत्पर हुए ॥ ७३ ॥ अपनी आत्मशक्ति का सहारा लेकर योगेश्वर भगवान् विष्णु सम्पूर्ण संसार में जो जहाँ था, उसके भरण-पोषण में संलग्न हो गये ॥ ७४ ॥ इस तरह विधि से संसृष्ट एवं विष्णुपालित संसार बढ़ने लगा। वर्षाजल के बहाव से जैसे गहरा सरोवर भरता है उसी तरह सृष्टि भरने लगी ॥ ७५ ॥ संसार की सृष्टि से प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या से धरती पट गई और आकाशचारियों से आकाश भर गया ॥ ७६ ॥ जल-जन्तुओं से जल भर गया, कीड़े-मकोड़े से उसी तरह बिल भर गये। पहाड़ों की उपत्यकाएँ उसी तरह पेड़-पौधों से भर गई ॥ ७७ ॥ हिरण, बाघ आदि जंगली जानवरों से जंगल भर गये। उसी तरह मच्छरों-मक्खियों से जंगल का अन्तराल पट गया ॥ ७८ ॥ इस तरह निरन्तर आदमी के भराव से संसार में पीड़ितात्मा प्राणियों का रोना-चिल्लाना प्रारम्भ हो गया ॥ ७९ ॥ जीवों के विस्तार से ब्रह्माण्ड ठीक उसी तरह फटने लगा जैसे सुपुष्ट दाने के दबाव से अनार के फल फटते हैं ॥ ८० ॥ इस तरह आदमियों की रेल-पेल में अकुलाये जीवों की रुकती साँसें देखकर विधाता सोचते हुए लम्बी साँसें खींचने लगे ॥ ८१ ॥ लोकहित की इच्छा से विधाता पुनः तपस्या में लीन हो गये। उनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर एक दिन त्रिपुरा ने उनसे कहा ॥ ८२ ॥ इनके तप से प्रसन्न होकर उस भगवती ने पूछा—हे विधे! तुम पुनः तप क्यों करने लगे? शीघ्र बतलाओ ॥ ८३ ॥ लोककर्त्ता विधाता को पराम्बा ने कहा—तुम्हारा जो भी अभीष्ट होगा उसे मैं पूरा करूँगी। इसमें सन्देह मत करो ॥ ८४ ॥ माँ! मैंने आपके आदेश से सृष्टि की रचना की है और विष्णु ने उनका पालन किया है। प्राणियों के अत्यन्त फैलाव से संसार पीड़ित हो गया है ॥ ८५ ॥ हे शङ्करि! इसके बाद आप जो उचित समझे करें। यह सुनकर जगद्धात्री ने महेश्वर रुद्र से कहा ॥ ८६ ॥ हे रुद्रदेव! क्यों व्यर्थ तपस्या करते हो? मेरे आदेश से तुम शीघ्र उठो और विधिसृष्ट प्राणियों का तुम संहार करो ॥ ८७ ॥ आकाशवाणी से जगन्माता का यह आदेश सुनकर पशुपति ने उस परब्रह्मस्वरूपिणी जगदम्बा को प्रणाम किया ॥ ८८ ॥ संसार का

तद्दृष्ट्वा कृत्यमाश्चर्यं विधाता जगतः क्षयम्। असन्तुष्टः प्राह रुद्रं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः॥
अलं महेश भवतः संहृतेरतिचित्रितात्। बहुकालेन सृष्टं मे त्वया भस्मीकृतं क्षणात्॥ ९१॥
तत्पुनस्तप आतिष्ठ लोकानां स्वस्तयेऽधुना। इति सम्प्रार्थितो धात्रा पुनस्तपसि संस्थितः॥
ततश्चिन्तासमाविष्टः सृष्टिर्मे स्यात्कथन्त्विति। ततः प्रजापतीन् ब्रह्मा स्वांऽशेनाऽसृजत प्रभुः॥
दक्षकश्यपमुख्यान्वै सृष्टास्तैः प्राणिनस्तदा। विविधास्तैः समग्रं वै जगद्व्याप्तं चराऽचरैः॥ ९४॥
तदा क्रमेण जगतां संहारार्थमचिन्तयत्। स्तुत्वा रुद्रं पशुपतिं प्रसाद्य प्रपितामहः॥ ९५॥
तस्यांऽशेनासृजन्मृत्युं संहारे तं न्ययोजयत्। मृत्यो ममाऽऽज्ञया चैतान्संहर क्रमशोऽखिलान्॥
मया त्वमेतदर्थं वै सृष्टः संहृतिहेतवे। तच्छ्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं मृत्युः प्राह प्रणम्य तम्॥ ९७॥
न संहर्त्तुमिहेच्छामि भगवन्क्षन्तुमर्हसि। शपिष्यन्ति जना मां वै न मा क्रौर्ये नियोजय॥ ९८॥
बहुधैवं प्रार्थितोऽपि न तद्ब्रह्माऽनुमन्यत। प्रतिषिद्धस्तत्र धात्रा तपः परममास्थितः॥ ९९॥
वर्षाणामयुतं तत्र पादाङ्गुष्ठसमाश्रयः। शीर्णपर्णाशनो दान्तस्तदा लोकसृडीश्वरः॥ १००॥
सुप्रसन्न उवाचैवं मृत्योऽहं तपसा तव। तुष्टः प्रतीच्छ यन्मत्तो वरं वाञ्छितमस्ति तत्॥ १०१॥
तच्छ्रुत्वा प्राह धातारं मृत्युर्नत्वा कृताञ्जलिः। भगवन्यदि मे तुष्टस्तदाऽऽज्ञापय मां विभो॥
नेच्छाम्यहं सुसंहर्त्तुमेतदेवाऽभिवाञ्छितम्। तदाकर्ण्य प्राह विधिर्मृत्यो नैतद्भविष्यति॥ १०३॥

संहार करने का निश्चय कर महारुद्र ने पहले ॐकार शब्द का उच्चारण किया। फिर अपनी तीसरी आँख खोलकर विधि के सारे विधान को क्षणभर में जला डाला॥ ८९॥ क्षणभर में सृष्टि को जलकर राख होते देख विधाता दंग रह गये। फिर असन्तुष्ट विधाता ने हाथ जोड़कर रुद्र को पहले प्रणाम किया और फिर कहा—॥ ९०॥ हे महेश! तुम्हारी अतिविचित्र विनाशलीला व्यर्थ है। बहुत दिनों में मैंने जिस सृष्टि की रचना की थी, उसे तुमने एक क्षण में जलाकर राख कर दी॥ ९१॥ इस समय लोककल्याण के लिए फिर तप करो, ऐसी प्रार्थना से प्रभावित ब्रह्माजी पुनः तपस्या में लीन हो गये॥ ९२॥ 'फिर मेरी सृष्टि की रचना कैसे होगी' इस चिन्ता में समाविष्ट विधि ने अपने अंश से सर्वप्रथम सर्वप्रभु प्रजापतियों की सृष्टि की॥ ९३॥ इसके बाद पुनः दक्ष-कश्यपादि प्रमुख जीवों की सृष्टि विधि ने की। चर और अचर अनेक जीव-जन्तुओं से सारी दुनिया भर गई॥ ९४॥ तब फिर क्रमशः संसार-संहार के लिए विधि ने चिन्ता की। उन्होंने पशुपति रुद्र की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर लिया॥ ९५॥ उस महारुद्र के अंश से उन्होंने मौत की रचना की और उन्हें संहार कार्य में नियुक्त कर दिया और उनसे कहा—इन सबों का संहार मेरे आदेश से क्रमशः करो॥ ९६॥ मैंने तुम्हारी सृष्टि केवल संहार कार्य के लिए ही की है। ब्रह्मा की यह बात सुनकर मृत्यु ने उन्हें प्रणाम कर यह प्रश्न पूछा॥ ९७॥ हे भगवन्! मैं इस सृष्टि का संहार करना नहीं चाहता हूँ, अतः आप मुझे क्षमा कर दें। सब मुझे शाप देंगे, ऐसे क्रूर कर्म के लिए मेरा नियोजन न करें॥ ९८॥ बार-बार उनकी ऐसी प्रार्थना करने पर भी ब्रह्माजी उसे मानने को तैयार नहीं हुए। अपनी प्रार्थना इस तरह निषिद्ध होते देख मृत्यु परम तप में लीन हुई॥ ९९॥ दस हजार वर्ष तक पैर के एक अंगूठे पर खड़ा होकर इसने तप किया। सूखी पत्तियाँ चबाकर अपने को हर दृष्टि से नियन्त्रित कर लोकस्रष्टा को प्रसन्न करने की चेष्टा की॥ १००॥ अन्ततः ब्रह्माजी ने मृत्यु के तप से प्रसन्न होकर कहा—हे मृत्यो! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। अब तुम जो चाहो, वांछित वर मुझसे माँग लो॥ १०१॥ यह सुनकर मृत्यु ने हाथ जोड़कर विनम्रभाव से ब्रह्माजी को प्रणाम कर कहा—हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे आदेश दें॥ १०२॥ हे विभो! मैं सृष्टि का संहार नहीं करना चाहता हूँ, यही मेरी अभिलाषा है। यह सुनकर ब्रह्मा ने मृत्यु से कहा—यह

नासीन्ममाऽनृता वाणी संहरेति पुरोदितम्। अन्यद्वरं प्रतीच्छाऽशु यत्ते मत्तोऽभिवाञ्छितम्॥
तच्छ्रुत्वाऽतिभयान्मृत्युः प्रारुदत्सहसा तदा। रुदतस्तन्नेत्रयुगादश्रुधाराऽभिजायत॥ १०५॥
तद्गृहीत्वाऽञ्जलौ धाता व्यसृजद्बहुधा भुवि। ततो रोगा बहुविधा जाता विविधमूर्त्तयः॥
तदा विधिरुवाचेदं मृत्यो मा क्लेशमावह। इमे रोगाः समुत्पन्नास्तव साहाय्यकारणात्॥ १०७॥
एते भवन्ति ते रोगाः पुरोगास्तेन ते जनाः। नाऽभिजानन्ति तस्मात्ते सिद्धं सर्वं समीहितम्॥
तथेति प्रतिजग्राह तुष्टो मृत्युर्विधेर्वचः। तदेवं जगतः सृष्टिस्थितिसंहारसंस्थितौ॥ १०९॥
ब्रह्मा हरिः पशुपतिः स्वे स्वे कर्मणि संस्थिताः। जगत्कृत्येन संश्रान्ता विषण्णा विगतप्रभाः॥
उपतस्थुर्महादेवीं जगत्कारणकारणम्। तदा प्रसन्ना परमा प्रादुर्भूता महेश्वरी॥ १११॥
त्रिवर्णा द्वादशभुजा दशवक्त्रा महाप्रभा। पञ्चविंशतिनेत्राढ्या ब्रह्माण्डं व्याप्य संस्थिता॥ ११२॥
कमण्डलुं स्वक्षमालां वरं त्राणं सुदर्शनम्। शङ्खं गदां पङ्कजातं मृगं शूलं परश्वधम्॥ ११३॥
कपालं धारयन्ती सा त्रिमूर्त्येकस्वरूपिणी। तां दृष्ट्वा विधिमुख्यास्ते दण्डवत्प्रणता भुवि॥
तत्पादभक्तिसञ्जातहर्षाऽश्रुभरितेक्षणाः। तद्दर्शनाऽऽनन्दितान्तःकरणास्तं समीडिरे॥ ११५॥
नमामस्त्वां देवीं श्रितजनसमीहाऽधिकफलप्रदानां लोकेशीमगणितमहावैभवयुताम्।
स्वलीलामात्रार्थप्रकटितविधात्रण्डविततिं परब्रह्माकारां परमशिवजीवाख्यधमनीम्॥ ११६॥

तो बिलकुल ही असम्भव है॥ १०३॥ यह तो मैंने तुमसे पहले ही कह दिया है और मेरी बातें झूठ होती ही नहीं हैं। अतः यह छोड़ कर अन्य जो कुछ माँगना चाहते हो मुझसे माँग लो॥ १०४॥ यह सुनकर भयविह्वल होकर मृत्यु जोर-जोर से रोने लगी। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली॥ १०५॥ आँसुओं की उस बहती धारा को विधि ने अपनी अंजलि में समेट लिया। उससे अनेक तरह के अनेक रूप में रोगों की सृष्टि की॥ १०६॥ तब विधाता ने मृत्यु से कहा—तुम दुःख मत करो। तुम्हारी सहायता के लिए ही इन रोगों की उत्पत्ति हुई है॥ १०७॥ ये रोग तुमसे आगे चलेंगे, लोग तुम्हें जान भी नहीं सकेंगे और तुम्हारा अभीप्सित कार्य भी सम्पन्न होता चलेगा॥ १०८॥ विधाता के इस कथन से सन्तुष्ट मृत्यु ने विधि के आदेश को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसी दिन से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहृति कार्य सुचारुरूपेण चलने लगा॥ १०९॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने-अपने कर्म में स्थिर हो गये। फिर संसारकृत्य से वे थके-माँदे, हताश और दीप्तिविहीन हो गये॥ ११०॥ तब वे संसार के कारणों के कारणस्वरूपा भगवती त्रिपुरा की शरण में गये। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवती इनके सामने प्रकट हुई॥ १११॥ अत्यन्त तेजोमयी तीन मूर्त्तिवाली भगवती जिनकी बारह भुजाएँ, दस मुख तथा पच्चीस आँखें थीं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को घेरकर प्रकट हुई॥ ११२॥ उनके हाथों में कमण्डलु, रुद्राक्ष की माला, वर, त्राण और सुदर्शन चक्र, शङ्ख, गदा, पद्म, मृग, शूल औरं फरसा॥ ११३॥ और कपाल धारण किये त्रिमूर्त्यात्मक एक ही स्वरूप वाली उस भगवती को देखकर ब्रह्मादि त्रिदेव ने धरती पर डण्डे की तरह गिरकर प्रणाम किया॥ ११४॥ उनके चरणों की भक्ति के कारण उनकी आँखें आँसू से भर आईं। उनके दर्शन से प्रसन्नचित्त ब्रह्मादिक देवगण उनकी स्तुति करने लगे॥ ११५॥ हे देवि! हम आपको प्रणाम करते हैं। आप शरण में आये लोगों को चाह से अधिक फल देने वाली हैं। अकूत महावैभव युक्त आप संसार की स्वामिनी हैं। विधाता की इस विस्तृत सृष्टि में अपनी लीला के कारण ही आप स्वरूप धारण करती हैं। जीवधारी नरकुल में परम शिवस्वरूपा परब्रह्मरूपिणी हैं॥ ११६॥ ओ देवि! तुम्हें छोड़कर तो लोग कल्याणकारी मार्ग से हटकर विनाशोन्मुख हो जाते हैं। प्रभा का सिद्ध कालाग्नि प्रमुख शिवपर्यन्त समूह में प्रमाताओं की स्थिति सम्पूर्ण चर-अचरों के विभेद भें भी उसी तरह हो जाती है।

विहाय त्वां देवीं क्षितिमुखशिवान्तात्मकगणे प्रमेये कालाग्निप्रमुखशिवपर्यन्तनिवहे।
प्रमातॄणां तद्वत्स्थिरचरविभेदेऽपि सकले त्वया रिक्ते जाते भवति मृगतृष्णाजलविधिः॥ ११७॥
महच्चित्रं देवि स्वयमिह जगद्भेदनिवहे स्थिता संव्याप्याऽपि प्रकटतरमूर्त्या ननु सदा।
नखानि श्रोत्रादीन्यपि वचनमुख्यान्यपि तथा प्रवर्त्तेते जातु त्वयि नहि मनोऽप्यन्तरतमः॥ ११८॥
नतानां भक्तानामतिकरुणयाऽनुग्रहपरा मनोवाङ्नेत्राणां सुलभगतिहेतोस्त्वमनघे।
यथा ध्याता तैस्तैः पदनलिनसेवापरजनैस्तथा रूपं धत्से जननि जगदुद्धारणपरे॥ ११९॥
निमेषोन्मेषाभ्यामगणितविधात्रण्डविलयोद्भवौ स्यातां यस्याः परतरमहाशक्तिवपुषः।
महामायाशक्तेः श्रितजनसमीहाफलविधौ कियच्चित्रं नानाविधतनुधृतिस्ते परशिवे॥ १२०॥
भवत्या ब्रह्माद्या वयमिह जगत्सृष्टिविलयस्थितौ संस्थां प्राप्ता जननि सततं तद्व्यवसिताः।
विषण्णाः स्मः कृत्ये विहतबलवीर्यादिविभवाः समुद्धर्तुंश्चाऽस्मान्प्रभवसि हि चैकैव परमा॥
इति संस्तुत्य धात्राद्या जगद्धात्रीं पराम्बिकाम्। कृतप्रणतयो भक्त्या स्ववृत्तं प्रोचुरादरात्॥
तच्छ्रुत्वा धातृमुख्यानां वाक्यं सा परमेश्वरी। प्राह प्रसन्ना वरदा प्रियं तेषां वितन्वती॥ १२३॥
ब्रह्मन्मुरारे शम्भो वो ज्ञातं वृत्तं मयाऽनघाः। भवन्तः स्थूलरूपेण मदंशेन विना स्थिताः॥ १२४॥
अतो न निर्वृता यूयं श्रान्ताश्च स्वेषु कर्मसु। हतप्रभा हतबला निर्वीर्या इव संस्थिताः॥ १२५॥
तच्छुभं वो विधास्यामि चिन्तां जहथ मा चिरम्। एवमुक्त्वा क्षणेनैव त्रिपुरा सा महेश्वरी॥

तुम्हारे बिना तो यह सकल जगत् मृगतृष्णा जल की तरह ही असम्भाव्य है॥ ११७॥ हे देवि! यह तो बड़ा ही आश्चर्यजनक है, तुम निराकार होकर भी संसार के भेदसमूह में व्याप्त होकर सर्वत्र सर्वदा मूर्त्तिमन्त हो। नख, कान आदि भी, वचन-मुख्यों को भी उसी तरह प्रतिष्ठापित करते हुए भी यह मन तुम्हारे साथ सम्बद्ध नहीं हो पाता है॥ ११८॥ हे अनघे! तुम अपने नतानन भक्तों पर अनुग्रह करने वाली हो, कृपालु हो। भक्तों के मन, वचन और आँखों की सुलभ गति के तुम कारण हो। तुम्हारे चरणों की सेवा में लीन जो भक्त तुम्हें जिस रूप में ध्यान करते हैं—हे माँ! उनके लिए तुम वही रूप धारण करती हो। तुम संसार के उद्धार में सदैव सक्षम हो॥ ११९॥ तुम्हारे अत्यन्त महाशक्ति स्वरूप के पलक झपकते ही अनगिनत ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति और विनष्टि हो जाती है। इस महामाया की शक्ति के आश्रितजनों की चाह का पूरा फल मिलता है। हे परशिवे! तुम संसार के उद्धार के लिए अगर अनेक रूप धारण करती हो तो भला इसमें क्या आश्चर्य है?॥ १२०॥ हे माँ! हम ब्रह्मा, विष्णु, महेश आपकी इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनष्टि कार्य में सतत संलग्न रहने के कारण ही इस स्थिति में पहुँच गये हैं। हम काफी थक गये हैं; हमारा बल, वीर्य और विभवादि पूरी तरह आहत हैं। अतः हे जननि! तुम्हीं एक मात्र ऐसी हो जो हमें इस संकट से उबार सकती हो॥ १२१॥ इस तरह जगन्माता पराम्बा की स्तुति कर ब्रह्मादि देवों ने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम कर सादर अपने साथ घटित घटनाओं को निवेदित किया॥ १२२॥ विधाता प्रमुख देवताओं के वाक्य सुनकर उस परमेश्वरी ने प्रसन्नता व्यक्त करती हुई उन पर अपनी प्रेमदृष्टि डाली और कहा॥ १२३॥ हे निष्पाप ब्रह्मा, विष्णु और महेश! आप सबकी स्थिति सें मैं अवगत हुई। आप सब स्थूल रूप से मेरे अंश के बिना ही ठहरे हैं॥ १२४॥ अतः आप लोग निश्चिन्त नहीं हैं, अपने-अपने कर्मों में थके हैं, हतप्रभ हैं, बलहीन हैं तथा निर्वीर्य की तरह टिके हैं॥ १२५॥ आप चिन्ता न करें, आपके लिए मैं शीघ्र ही कल्याण का विधान करूँगी। उस महेश्वरी त्रिपुरा ने ऐसा कहकर क्षणभर में ही॥ १२६॥ अपने अङ्ग से तीन प्रकार

स्वाङ्गात्त्रिधा स्थिता त्रीणि रूपाणि व्यसृजत्तदा। ब्रह्मविष्णुमहेशांशाद्रूपत्रयमभूत्तदा॥ १२७॥
वाणी रमा च रुद्राणी श्वेतरक्ताऽसितप्रभाः। हंसपद्ममृगेन्द्रस्थाः सौन्दर्यमणिरोहणाः॥ १२८॥
मत्तेभमन्दगमना मृदुशोणलसत्तलाः। नखचन्द्रांशुनिवहन्यक्कृतेन्दुगणप्रभाः॥ १२९॥
कमठाऽभप्रपदकाः पुष्टगुल्फविराजिताः। कन्दर्पतूणाभजङ्घनभोभूतावलग्नकाः॥ १३०॥
अनर्घ्यकौशेयगूढपृथुश्रोणीभराऽलसाः। स्मरकल्पलताबालनिम्ननाभिविराजिताः॥ १३१॥
मृदूदरत्रिवलिकास्तनुरोमालिशोभिताः। माणिक्यकलशाऽकारकुचद्वयभरानताः॥ १३२॥
मृदुदीर्घचतुर्बाहुकरकञ्जमृणालिकाः। कम्बुकन्धरविन्यासाः पक्वबिम्बफलाऽधराः॥ १३३॥
कुन्दकोरकपङ्क्त्याभदन्तपङ्क्तिसुशोभनाः। चाम्पेयकलिकाकारनासावंशविराजिताः॥
श्वासामोदपरीवाहभरिताशाकृशोदराः। मणिदर्पणसाधर्म्यव्रतगण्डद्वयोज्ज्वलाः॥ १३५॥
नीलोत्पलसुहृत्कान्तिनेत्रत्रयसुसौभगाः। अर्धशीतांशुदापादनिटिलाभोगभासुराः॥ १३६॥
जगत्तिमिरसन्दोहसंक्षेपाकारचूलिकाः। निसर्गचाम्पेयसुमसौरभास्पदबालिकाः॥ १३७॥
मणिप्रवेकपटलप्रत्युप्तमुकुटोज्ज्वलाः। अनर्घ्यरत्नपुरटक्लृप्तकुण्डलमण्डिताः॥ १३८॥
नासामणिप्रभाचोरासुरशिक्षकतारकाः। गलविन्यस्तमाणिक्यग्रैवेयकविभूषिताः॥ १३९॥
मुक्ताहारमृणालोत्थविकसन्मुखपङ्कजाः। केयूराङ्गदमाणिक्यवलयाङ्गुलिभूषणाः॥ १४०॥
गाङ्गेयपट्टिकाकाञ्चीदामनद्धांशुकावृताः। मञ्जीरहंसकक्वाणक्वणत्क्वणितनिर्भराः॥ १४१॥

के विद्यमान तीन रूपों की रचना की। तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अंश से तीन रूपों की उत्पत्ति हुई॥ १२७॥ वाणी, रमा और रुद्राणी श्वेत, रक्त और काले रंग वाली; हंस, पद्म और सिंह पर समासीन मणिसौन्दर्य से सुशोभित थीं॥ १२८॥ मदमत्त हथिनी की तरह मन्दगामिनी थीं। उनके तलवे अति कोमल और रक्ताभ थे। अनेक चन्द्रकिरणों की प्रभा को उनके नखचन्द्र की किरणें धिक्कार रही थीं॥ १२९॥ पैरों के अग्रभाग कछुए की पीठ की आभा से युक्त थे। उनके टखने सुपुष्ट थे। कामदेव के तरकस की तरह जाँघें थीं और पतली कमर थीं॥ १३०॥ बहुमूल्य रेशमी वस्त्र से ढके इनके सुपुष्ट नितम्ब के भार से इनकी गति अलसायी थीं। कामरूपी कल्पलता की कोंपल जैसे इनके नाभिकुण्ड थे॥ १३१॥ कोमल पेट पर त्रिवली सुशोभित थीं। हलकी रोमों की पंक्ति जो पेट पर ठीक नाभि के ऊपर विराजित थीं। मणिनिर्मित दो कलशों की तरह दो पृथुल स्तनों के भार से वे झुकी थीं॥ १३२॥ कोमल लम्बी चार बाँहें कमलनाल की तरह सुन्दर थीं। शङ्ख की तरह गर्दनें थीं। पके बिम्बफल की तरह लाल-लाल ओठ थे॥ १३३॥ सफेद मोतियों की पंक्ति की तरह सुन्दर दन्तपंक्तियाँ थीं। चम्पाकली की तरह सुन्दर नाके थीं॥ १३४॥ साँसों की सुगन्ध से दिशाएँ महक रही थीं। दोनों लाल-लाल गालें मणिदर्पण की तरह दमक रहे थे॥ १३५॥ नीलकमल के सौन्दर्य या कान्ति को हरण करने वाली अति सौभाग्यशाली तीन आँखें थीं। सिर से पैर तक अर्धचन्द्र का सौन्दर्य घेरकर चमक रहा था॥ १३६॥ समस्त संसार के अन्धकार का संक्षिप्त स्वरूप ही उनके केशजाल थे। स्वाभाविक रूप से चम्पा के वर्ण की तरह उनके शरीर की कान्ति थी। ऐसी श्रद्धास्पद वे बालिकाएँ थीं॥ १३७॥ उत्कृष्ट मणिजटित माथे पर मुकुट थे। कानों में अनमोल रत्नजटित सोने के कुण्डल लटक रहे थे॥ १३८॥ शुक्रतारे की चमक को भी मात देने वाली चमक इनके नाक की नथुनी में जड़ी अनमोल मणि की प्रभा दमक रही थी। गले में माणिक्य अर्थात् लाल हार थे॥ १३९॥ उनके विकसित मुखकमल मुक्ताहार की दीप्ति से दमक रहे थे। बाजूबन्ध, कंकण, छल्ले और अँगुलियों में अंगूठी शोभ रही थी॥ १४०॥ उनकी करधनी की पट्टी

एवंविधा वागधीशा शुद्धस्फटिकसन्निभा। त्रिनेत्रा चन्द्रचूडाला वीणापुस्तवराभयान्॥ १४२॥
धारयन्ती कराम्भोजैर्विद्यातततिनूज्ज्वला। विद्रुमाभा विशालाक्षी पद्मा पद्मचतुष्टयम्॥ १४३॥
दधाना पाणिजलजैरैश्वर्यनिवहेश्वरी। दलदिन्दीवराभासा चतुर्भिः पाणिपल्लवैः॥ १४४॥
आसादिताः खड्गखेटाशूलमुद्गरहेतिकाः। कोटीरकोटिसंक्लृप्तशीतांशुकलिकोज्ज्वला॥ १४५॥
एवंविधास्तदङ्गात्तु त्रिविधाः क्षणमात्रतः। प्रादुर्भूता महादेव्यो विस्फुलिङ्गा इवार्चिषः॥
ताः प्रणम्य परां देवीं सविधे संस्थितास्तदा। विधात्रादीनतः प्राह त्रिपुरा परमेश्वरी॥ १४७॥
भो ब्रह्मकेशवहराः भवदर्थं मया इमाः। स्वांशात्सृष्टा महादेव्यः प्रतीच्छध्वं क्रमेण ताः॥ १४८॥
इयं विद्रुमवर्णाभा धातर्जाता तवांऽशतः। तथा रौद्री मेचकाभा त्वदंशेनोद्गता हरे॥ १४९॥
विशदङ्गा भारतीयं रुद्र तेंऽशात्समुद्गता। तत्तदंशोद्भवा तस्य सोदरीति प्रसिध्यतु॥ १५०॥
विधातुः सोदरी विष्णोर्विष्णो रुद्रस्य तस्य तु। विधेरेवं विवाहेन विधिना द्रुतमस्तु वः॥ १५१॥
पत्नी तथाद्या भवतु विवाहो मङ्गलाय वः। एवं कृतविवाहानां शक्तिभिर्मम योगतः॥ १५२॥
त्यक्तश्रमा निर्वृताश्च समर्था विश्वकर्मसु। यूयं भवथ धात्राद्या जगतां स्वस्तयेऽधुना॥ १५३॥
इत्युक्त्वा सा महेशानी तत्रैवाऽन्तरधीयत। अन्तर्द्धिमागतायान्तु देव्यां ते जगदीश्वराः॥ १५४॥
स्वां स्वां शक्तिं समादाय स्वस्थानं प्रतिपेदिरे। अथ काले शुभे तत्र त्रयस्ते जगदीश्वराः॥ १५५॥

सोने की थीं, काञ्चीदाम कसे थे, ऊपर से श्वेत वस्त्र लिपटा था। पैरों के नूपुर से मधुर ध्वनि अनुगूंजित हो रही थी॥ १४१॥ ऐसी सरस्वती शुद्ध स्फटिक की तरह श्वेतवर्ण थी। तीन आँखें थीं। सिर की कलगी पर चन्द्रमा विराजित थे। हाथों में वीणा, पुस्तक, वर और अभयदान की मुद्रा थी॥ १४२॥ अपने करकमलों में विद्यासमूह को धारण किये थी, उनका कोमल शरीर श्वेत वर्ण का था। मूँगे की तरह आभावाली देह थी। आँखें विशाल, हाथों में कमलों वाली लक्ष्मी अवतीर्ण हुई॥ १४३॥ ऐश्वर्यशालिनी महेश्वरी अपने चारों हाथों में कमल लिये अपने चारों करकमलों से नीलकमल की शोभा को मात दे रही थी॥ १४४॥ करोड़ों इन्द्र और चन्द्र की शोभा को आत्मसात् करने वाली परमोज्ज्वला यह देवी अपने हाथों में तलवार, खेट, शूल, मुद्गर एवं अन्य हथियार धारण किये थीं॥ १४५॥ क्षण मात्र में ही उनके शरीर से ये तीन मूर्त्तियाँ जैसे आग से चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी तरह प्रकट हो गई॥ १४६॥ इन देवियों ने उस पराशक्ति को प्रणाम कर उनके पास ही ठहर गयीं। तब परमेश्वरी त्रिपुरा ने विधाता आदि से कहा॥ १४७॥ हे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश! आप सबके लिए मैंने अपने शरीर के अंश से ही इन महादेवियों की रचना की है। आप सब कुछ क्षण प्रतीक्षा करें॥ १४८॥ ये मूँगे की आभा वाली देवी ओ विधाता! तुम्हारे अंश से उत्पन्न हुई है तथा काले रंग वाली यह रौद्री हे हरे! तुम्हारे अंश से उत्पन्न हुई है॥ १४९॥ विराट अङ्ग वाली भारती हे रुद्र! तुम्हारे अंश से उत्पन्न हुई है। जिनके अंश से जो उत्पन्न हुई है, वह उनकी सोदरी होगी॥ १५०॥ विधाता के अंश से प्रादुर्भूत विधि की सोदरी, रुद्र के अंश से निकली रुद्र की तथा विष्णु के अंश से निकली विष्णु की सोदरी होगी॥ १५१॥ इस तरह ये तीनों देवियाँ आप तीनों की अलग-अलग पत्नियाँ होगीं। यह विवाह मांगलिक होगा। ऐसे विवाह से हमारे संयोग के कारण आप सब शक्तिसम्पन्न बन जायेंगे॥ १५२॥ संसार के कल्याण के लिए अब आप सबकी थकान मिट जायेगी। आप निर्वृत्त होंगे, विश्व निर्माण में फिर से समर्थ होंगे॥ १५३॥ इतना कहकर वह भगवती त्रिपुरा वहीं तिरोधान हो गयी। भगवती त्रिपुरा के तिरोहित होने के बाद ये त्रिदेव॥ १५४॥ अपनी-अपनी शक्ति को साथ लेकर अपने-अपने स्थान की ओर चल दिये। शुभकाल आने पर ये तीनों जगदीश्वर वहाँ उपस्थित हुए॥ १५५॥ मेरु पर्वत के अत्यन्त विशाल

वैवाहिकविधानेन बभूवुर्दारसंयुताः । मेरुपृष्ठे सुविपुले योजनायुतविस्तरे ॥ १५६ ॥
विवाहशाला रुचिरा निर्मिता विश्वशिल्पिना । चतुर्योजनमुन्नम्रा नियुतस्तम्भसंयुता ॥ १५७ ॥
वितानमाकाशनिभं तारकाकारचित्रितम् । परितो लम्बमानैस्तु रत्नगुच्छैः सुशोभितम् ॥ १५८ ॥
पताकाभिर्ध्वजैर्नीलमणिवैडूर्यनिर्मितैः । त्रिंशद्योजनमुन्नम्रैः समन्तादुपशोभितम् ॥ १५९ ॥
विद्रुमस्तम्भविन्यस्तपाञ्चालीगणमण्डिता । तत्र स्वर्णमयी भूमिः हीरकास्तरणानि च ॥ १६० ॥
मणिप्रवरसञ्जातवेदिकाभिः समुज्ज्वला । नवरत्नमयैर्दीपवृक्षैः सर्वत्र मण्डिता ॥ १६१ ॥
हरिन्मणिकृताऽत्यच्छतोरणौघपरीवृता । प्रतिस्तम्भसमाबद्धमणिरम्भातरूज्ज्वला ॥ १६२ ॥
मणिपाञ्चालिकाहस्तन्यस्तहीरकचामरा । यक्षकर्दमसंसिक्ता धूपामोदसुधुङ्धुमा ॥ १६३ ॥
दीपसन्ततिसञ्जातप्रभा सम्मूर्च्छनावशात् । मणिप्रवेकज्वलितधगद्धगितदिक्तटा ॥ १६४ ॥
शालायाः परितस्तत्र कल्पानोकहवाटिकाः । निसर्गस्यन्दिमधुरमकरन्दौघनिर्झराः ॥ १६५ ॥
तदामोदप्रसक्ताऽलिपङ्क्तिझङ्कारजृम्भिताः । माद्यच्छुकपिकारावभरितान्तरसुन्दराः ॥ १६६ ॥
फलसङ्घभराक्रान्तिभूलम्बिविटपायुताः । तस्यां सर्वं विवाहार्थं कल्पयामास शिल्पिराट् ॥
तत्राऽऽजग्मुर्देवगणाः स्वलङ्कृतविमानगाः । तेषां विमानविततिव्यापृता वनभूमयः ॥ १६८ ॥
ऋषयो मुनयः सिद्धा विद्याधरसकिन्नराः । नरा नागाः पूर्वदेवा यातुधानाः सहस्रशः ॥ १६९ ॥
तैरापूर्णा विशालाऽपि शाला शुभसमागमे । गायद्गन्धर्वमधुररागालापसुमूर्च्छनैः ॥ १७० ॥
मञ्जुलारावझङ्कारझङ्कृतैः सुमनोहरा । नृत्यद्रम्भादिविबुधवेश्यागणलयोत्तरैः ॥ १७१ ॥

अर्थात् चालीस हजार कोस तक फैले पृष्ठ कर वैवाहिक विधान से सपत्नीक हुए ॥ १५६ ॥ विश्वकर्मा ने वहाँ रुचिर विवाह-मण्डप का निर्माण किया। उस मण्डप की ऊँचाई सोलह कोस की थी तथा उसमें दस लाख खम्भे लगे थे ॥ १५७ ॥ उसका चन्दोवा आकाश के समान था। उसमें अनेक तारे जड़े थे। चारों ओर नीचे की ओर रत्न के गुच्छे लटक रहे थे ॥ १५८ ॥ नीलमणि और वैदूर्य मणि से ध्वजा एवं पताकाएँ बनी थीं। ये चारों ओर तीस योजन तक लटक कर मण्डप की शोभा बढ़ा रही थीं ॥ १५९ ॥ विद्रुम के खम्भे लगे थे। पाञ्चाली शैली में की गई रचना चमक रही थी। सोने की धरती तथा हीरे के कालीन बिछे थे ॥ १६० ॥ श्रेष्ठ मणियों से वेदिकाएँ सजी थीं, अभिनव दीपवृक्षों से सारा मण्डप जगमगा रहा था ॥ १६१ ॥ अत्यन्त पारदर्शी हरित मणिनिर्मित तोरणद्वार सजे थे। प्रत्येक खम्भे रत्ननिर्मित कदलीस्तम्भ से बँधे शोभ रहे थे ॥ १६२ ॥ मणिनिर्मित गुड़िये के हाथ में हीरे के चमर थे। कर्दम-संसक्त यक्ष के हाथों में जलते धूप की तरह सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी ॥ १६३ ॥ हवा के झोंके या किसी कारण-विशेष से यदि दीप-समूह प्रकाशहीन हो जायें तो उत्कृष्ट मणियों की प्रभा से दिशाएँ प्रोद्भासित हो उठती थीं ॥ १६४ ॥ वहाँ विवाहमण्डप के चारों ओर कल्पवृक्ष लगे थे, जिनसे स्वाभाविक रूप से मधुर मकरन्द के झरने बहते रहते थे ॥ १६५ ॥ प्रसन्नता में डूबे भौंरों के गुंजार अँगड़ाई ले रहे थे। शुक, पिक के मादक स्वर से शाला अनुगूंजित हो रही थी ॥ १६६ ॥ वहाँ के अन्य सुन्दर वृक्ष फल के भार से झुककर धरती छू रहे थे। उनके विवाहोपलक्ष्य में विश्वकर्मा ने इनकी रचना की थी ॥ १६७ ॥ इस विवाहोत्सव में भाग लेने के लिए देवगण यहाँ पहुँचे थे। उनके सुन्दर सजे विमानों से वनभूमि भर गई थी ॥ १६८ ॥ ऋषि, मुनि, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, नर, नाग, देव, दानवों की हजारों हजार की संख्या में उपस्थिति वहाँ थी ॥ १६९ ॥ इतनी विशाल शाला भी इनके शुभमागमन से भर गई। गन्धर्वों के गीत और आलाप से शाला अनुगूंजित्त हो उठी ॥ १७० ॥ मधुर आलाप के झङ्कार से मण्डप झंकृत

भरिता श्रवणानन्दैर्वाद्यैरुच्चावचैस्तथा । देवासुरमनुष्यादियोषितः समलङ्कृताः ॥ १७२ ॥
नूत्नरत्नोत्कीर्णहेमविविधाकल्पकोटिभिः । परार्ध्यरत्नविलसद्वसनैः परिपेशलाः ॥ १७३ ॥
एवंविधायां शालायां विवाहः समवर्त्तत । शुभे मुहूर्त्ते विलसत्सभामण्डपमध्यतः । १७४ ॥
नवरत्ना कल्पवेदी मध्ये ज्वलति पावके । नारायणानुजायास्तु शर्वाण्याः पाणिपल्लवम् ॥
जग्राह शङ्करो वेदविधिना मन्त्रमुच्चरन् । एवंविधान्नवरजारमापाणिसरोजनिम् ॥ १७६ ॥
समाददत्तदा तत्र साक्षान्नारायणः परः । अथ तस्याः पशुपतेः कनीयस्याः करग्रहम् ॥ १७७ ॥
पितामहः समकरोद्वाग्देव्याः पावकाग्रतः । तत्रोत्सवः समभवत्परमः शोभनोदयः ॥ १७८ ॥
सर्वे समुदितास्तत्र कल्याणोत्सवमण्डपे । एवं विवाहविधिना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १७९ ॥
त्रिपुरायाः कलाः प्राप्य वाणीलक्ष्मीशिवाभिधाः । जगतां जननीर्भक्तजनतापापहारिणीः ॥
जगत्सु मङ्गलकरीर्वाक्सम्पज्ज्ञानदायिनीः । विचित्रवस्त्राभरणस्वायुधादिसुशोभिताः ॥ १८१ ॥
परां निर्वृतिमायाता विश्राममभवंस्तदा । तच्छक्तिसंयुताः स्वे स्वे लोके गत्वा महेश्वराः ॥ १८२ ॥
जगत्सृष्ट्यादिकृत्येषु सन्नद्धा विधिमुख्यकाः । निरन्तरं महादेव्याः पादपद्मार्चने रताः ॥ १८३ ॥
एतत्ते भार्गवाख्यातं त्रिरूपाख्यानमुत्तमम् । यत्र सा त्रिपुरेशानी त्रिरूपा समजायत ॥ १८४ ॥
वाणी रमा शिवारूपा सर्वलोकप्रसादिनी । ब्रह्मविष्णुशिवान् यत्र भावयन्ती कलात्मभिः ॥
एतदाख्यानमायुष्यमभीष्टफलदायकम् । श्रोतव्यं त्रिपुराभक्तैः सर्वदा संयतात्मभिः ॥ १८६ ॥

था। देवताओं की रम्भा प्रभृति अप्सराओं के नाच-गान से मण्डप मुखर था ॥ १७१ ॥ वाद्ययन्त्रों की ऊँची-नीची आवाज से मण्डप गूंज रहा था। देवता, दानव और मानवों की पत्नियाँ सजी-धजी वहाँ उपस्थित थीं ॥ १७२ ॥ इनके वस्त्रों में कहीं नये रत्न जड़े थे तो कहीं सोने के तबक चढ़े थे। विविध प्रकार के रत्नों से जटित होने के कारण इनके पोशाक बड़े ही भव्य थे ॥ १७३ ॥ ऐसे मण्डप में विवाहोत्सव मनाया जा रहा था। शुभ मुहूर्त आने पर सभामण्डप के बीच से ॥ १७४ ॥ नवरत्न की वेदी बनी थी, उसके बीच में आग जल रही थी। नारायण की अनुजा शर्वाणी का पाणिपल्लव ॥ १७५ ॥ वेदविधि से मन्त्रोच्चार करते हुए शङ्कर ने भवानी का पाणिग्रहण किया। इसी तरह विधाता की छोटी बहन रमा का ॥ १७६ ॥ साक्षात् नारायण ने पाणिग्रहण किया। इसके बाद शिव की छोटी बहन का पाणिग्रहण ॥ १७७ ॥ अग्नि को साक्षी बनाकर पितामह ने सरस्वती को वरण किया। वहाँ परम शोभनोदय का समारोह सम्पन्न हुआ ॥ १७८ ॥ उस कल्याणोत्सव मण्डप में सभी परम प्रसन्न थे। इसं तरह ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने विधिपूर्वक विवाह किया ॥ १७९ ॥ भगवती त्रिपुरा की कला पाकर सरस्वती, लक्ष्मी और शिवा भक्तों के ताप को अपहरण करने वाली संसार की जननी ॥ १८० ॥ संसार को मंगल देने वाली, वाक्सम्पत्ति और ज्ञानदा, विचित्र वस्त्र-आभरण तथा अपने आयुधों से सुशोभित हुईं ॥ १८१ ॥ उन्हें परम शान्ति मिली, वे श्रमहीन हो गये, सारी थकान मिट गई। ये त्रिदेव अपनी-अपनी शक्ति के साथ अपने-अपने लोक जाकर ॥ १८२ ॥ विधि-प्रमुख तीनों देव सृष्टि-संचालन क्रम में लग गये। निरन्तर महादेवी के चरणकमलों में ध्यान लगा दिये ॥ १८३ ॥ हे परशुराम! भगवती त्रिपुरा के इन तीन रूपों का आख्यान अति उत्तम है। इस कथा में त्रिपुरा के तीन रूपों का आख्यान है ॥ १८४ ॥ वाणी, रमा और शिवा रूपा त्रिपुरा सब लोक को प्रसन्नता देने वाली है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अपनी कला से जो प्रसन्न रखती हैं ॥ १८५ ॥ यह कथा आयु एवं वांच्छित फलदायिनी है। संयत आत्मा से त्रिपुरा के भक्तों को यह कथा सुननी चाहिए ॥ १८६ ॥ वह परमा देवी यह कथा सुनने वाले भक्तों को शीघ्र और सहसा

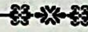
श्रोतॄणां परमादेवी भक्तानां सहसा द्रुतम्। सम्पाद्य वाञ्छितानर्थानैहिकान्सुखसाधनान्॥ १८७॥
अन्ते भक्तिक्रमेणैव कृत्वा शाम्भववेदनम्। प्रददाति परं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम्॥ १८८॥
श्रुतमेतज्जामदग्न्य कच्चिदव्यग्रचेतसा। परमाद्भुतमाहात्म्यं त्रिपुराया महाफलम्॥ १८९॥
अभक्तानां नास्तिकानां शठानां दुष्टचेतसाम्। न वाच्यं सम्मुखे जातु नोचेत्सा कुप्यतीश्वरी॥
त्वया सदा धारणीयं चिन्तनीयश्च सर्वदा। किं पुनः श्रोतुमिछा ते वद राम महामते॥ १९१॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तात्रेयपरशुरामसंवादे त्रिरूपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः॥ ९०७॥



सांसारिक सभी अभीप्सित पदार्थों की सम्पूर्त्ति कर॥ १८७॥ अन्त में भक्ति क्रम से शम्भु सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करती है और आवागमन रहित परम दिव्य स्थान भी प्रदान करती है॥ १८८॥ हे जामदग्न्य! शान्त चित्त से तुमने यह कथा सुन ली। त्रिपुरा का यह परम अद्भुत माहात्म्य महाफलदायी है॥ १८९॥ जो भक्त नहीं हैं, नास्तिक हैं, शठ हैं, दुष्टचित्त के हैं, उनके सामने यह कथा नहीं कहनी चाहिए। अन्यथा भगवती त्रिपुरा क्रुद्ध हो जाती हैं॥ १९०॥ तुम्हें इस कथा को हमेशा धारण और चिन्तन करना चाहिए। हे महामति परशुराम! अब तुम्हें क्या जानना है, बोलो॥ १९१॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में दत्तात्रेय-परशुराम संवाद का त्रिरूपाख्यान नामक दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९०७॥



अथैकादशोऽध्यायः

एवंविधं समाख्यानं त्रिरूपाया महत्तरम्। श्रुत्वा सविस्मयो रामः श्रीदत्तमुखपङ्कजात्॥ १॥
निर्गमन्नूतनामोदमकरन्दमनोहरम्। आनन्दामृतवाराशिमग्नस्वान्तो बभूव ह॥ २॥
आह भक्तिप्रेमभरपेशलं वाक्यमुत्तमम्। अहोऽत्यद्भुतमेतद्वै प्रोक्तमाख्याननायकम्॥ ३॥
नैवंविधं समाख्यानं श्रुतमासीद्दयानिधे। भवन्मुखाब्जनिर्गच्छत्कथामृतझरीभरम्॥ ४॥
पिबतः श्रोत्रपुटतस्तृषा शान्तिर्न विद्यते। यथा कामिजनस्याऽतिसुन्दरी भासगोचराम्॥ ५॥
जुषतोऽनुक्षणं तृष्णा वर्धते मे तथाऽभवत्। गुरो श्रीनाथ मे सम्यक् श्रुतमाख्यानमुत्तमम्॥ ६॥
त्रिरूपायाः शुभं पुण्यं गौर्य्यादीनामपि प्रभो। वदाऽऽख्यानं कथं भूतं कृपया करुणानिधे॥ ७॥
इति पर्यनुयुक्तोऽथ दत्तात्रेयो यतीश्वरः। प्राह गम्भीरया वाचा मधुराक्षरसुस्वरम्॥ ८॥
भार्गव श्रृणु गौर्यादिचरित्रं लोकपावनम्। एवं गौरीं रमां वाणीं प्राप्य रुद्रादयस्तदा॥ ९॥
निर्वृताः स्वेषु कृत्येषु विक्लमाः स्युरतीव ते। एवं सृष्टेषु लोकेषु कर्मवैचित्र्यहीनतः॥ १०॥
समाः समाचारपरा बभूवुर्मानवा भुवि। तेनाऽऽसीत्कोऽपि नैवाढ्यो न रिक्तो न सुखाधिकः॥
न क्लेशी न च पाल्यो वा पालको वाऽपि कश्चन। न सेव्यः सेवको वाऽपि न राजा न प्रजास्तथा॥
सर्वं समं समाक्षीद्वै योगीश्वरमनो यथा। एवंविधे जने जाते न यज्ञो न च दक्षिणा॥ १३॥

✻ विमला ✻

श्री परशुरामजी अपने गुरु दत्तात्रेय के मुखकमल से भगवती के इन तीनों रूपों का ऐसा महत्तर समाख्यान सुनकर विस्मित हो गये॥ १॥ सतत प्रवाहित मनोहर सुगन्धित पुष्परस के आनन्दरूपी अमृत-धारा में परशुराम का अन्तःकरण गोता खा रहा था॥ २॥ आह! भक्ति और प्रेम के भार से अतिकोमल एवं अत्युत्तम वाक्यों में आपने यह अद्भुत कथानक सुनाया है॥ ३॥ हे दयानिधे! इस तरह के समाख्यान मैंने इससे पूर्व कभी सुना ही नहीं है। आपके मुखकमल से निकली यह कथा मानो अमृत का झरना हो॥ ४॥ कर्णपुट से यह कथारूपी अमृतरस पीने के बावजूद मेरी प्यास नहीं बुझी है। जैसे कामी पुरुषों को सर्वत्र कामिनी की कान्ति ही दीखती है॥ ५॥ मेरे गुरु श्रीनाथ से मैंने उत्तम एवं सुन्दर आख्यान सुना, उससे सन्तुष्ट हुआ, फिर भी मेरी कुछ और सुनने के लिए तृष्णा प्रतिक्षण बढ ही रही है॥ ६॥ हे प्रभो! गौरी आदि तीनों रूपों का पुण्यप्रद एवं शुभ आख्यान कैसा है? हे दयासिन्धो! कृपया आप मुझे बतला दें॥ ७॥ सब कुछ सुनने के बाद यतीश्वर दत्तात्रेय ने मधुर, पर गम्भीर सुन्दर आवाज में कहना प्रारम्भ किया॥ ८॥ हे परशुराम! लोकपावन गौरी प्रभृति तीनों देवियों का चरित सुनो। इस तरह गौरी, रमा और सरस्वती को पाकर रुद्रादि देवता॥ ९॥ पूर्णता प्राप्त कर अपने कृत्यों में श्रमहीन हो गये। फिर उनके द्वारा संसृष्ट लोकों में कर्म की विभिन्नताएँ मिट गईं॥ १०॥ धरती पर सब लोग समान आचार करने लगे। फलतः न कोई धनी रहा न निर्धन, न कोई अधिक सुखी न दुःखी रहा॥ ११॥ न कोई पालित था न कोई पालक, न कोई सेवक था न सेव्य, न कोई राजा था न प्रजा॥ १२॥ योगीश्वर के मन की तरह सब कुछ समानस्तरीय हो गया। लोगों के ऐसे हो जाने

न दानं नापि पूजादि शान्तमासीन्निराकुलम्। एवम्भूते भुवि तदा देवाद्याः सेन्द्रनायकाः ॥ १४॥
न सुखं लेभिरे मर्त्यसेव्यभावविहीनतः। तदा गुरुं सभासीनं प्रणम्य विबुधैः सह॥ १५॥
पप्रच्छेन्द्रः सहस्राक्षो विनीतः पुरतः स्थितः। आङ्गिरस गुरो ब्रह्मन् भवान् नः कुलदैवतम्॥
बुधानां कृच्छ्रवाराशितरणे तरणिर्मतः। तदस्माकं महत्कृच्छ्रं सम्प्रति प्रेक्ष्यतां भवान्॥ १७॥
मर्त्या बुधानां पशव इति नः श्रुतिभिः श्रुतम्। कथं पितामहवचो मृषा स्यादिति चिन्त्यताम्॥
यद्यस्मत्तन्त्रमासीना न स्वतन्त्रा भवन्ति ते। मर्त्यास्तदा देवपाल्याः पशुत्वं तेषु जायते॥ १९॥
तन्नः सम्पद्यते येन तदाशु परिचिन्त्यताम्। भवान् नो विषमे त्राता त्वन्धस्याऽञ्जनकृद्यथा॥
इत्थं पुरन्दरवचो निशम्याऽऽङ्गिरसो गुरुः। क्षणं विमृश्य प्रोवाच सम्बोध्येन्द्रपुरोगमान्॥ २१॥
हे पुरन्दर मद्वाक्यं श्रोतव्यं भवताऽऽदरात्। देवानामिष्टसिध्यर्थं यद्ब्रवीमि हितं वचः॥ २२॥
गच्छ देवैर्वृतः शीघ्रं शरण्यं प्रपितामहम्। शरणं स भवच्छ्रेयो विधास्यत्यम्बुजासनः॥ २३॥
जगत्तन्त्रस्वतन्त्रोऽसौ सर्वज्ञः सर्वकृद्विभुः। एवमेव भवेत्क्षेमं भवतां भयनाशनम्॥ २४॥
नाऽन्योऽत्र विद्यते कश्चिदुपायो भवदीप्सिते। इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं प्रणम्य धिषणं तदा॥ २५॥
ओमिति द्रुतमेवेन्द्रः सदेवपितृगुह्यकः। जगाम ब्रह्मसदनं सत्यलोकं शचीपतिः॥ २६॥
तत्र गत्वा जगद्धातुः सभां बाह्यसमाश्रयाम्। शतयोजनविस्तीर्णां विंशद्योजनमायताम्॥ २७॥
त्रिंशदुच्छ्रायसंयुक्तां रत्नस्तम्भप्रदीपिताम्। स्तम्भप्रभामूर्च्छनेन हेमभूमिप्रभाधिकाम्॥ २८॥

से न कोई यज्ञ करता था, न कोई किसी को दक्षिणा देता था॥ १३॥ न कोई दान करता था, न पूजा; सभी शान्त एवं निराकुल थे। धरती पर ऐसा होने के कारण इन्द्रादि देवगण काफी दुःखी हुए॥ १४॥ मनुष्यों ने उनकी सेवा छोड़ दी, अतः वे सुख से वंचित हो गये। तब सभा में बैठे अपने गुरु के पास देवताओं के साथ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया॥ १५॥ सहस्राक्ष इन्द्र ने सामने बैठे अपने कुलगुरु आङ्गिरस से पूछा—हे ब्रह्मन्! आप हमारे कुलदेवता हैं॥ १६॥ देवताओं के कष्ट-सागर से पार करने में आप ही नौका हैं। इसलिए श्रीमान् हमारे इस महान् कष्ट को देखने की कृपा करें॥ १७॥ हमने श्रुतियों में सुना है कि मनुष्य देवताओं के याज्ञिक पशु होते हैं, यह ब्रह्मवाक्य कैसे असत्य है, यह आप के लिए विचारणीय है॥ १८॥ यदि वे मनुष्य हमारे नियन्त्रण में हैं तो वे स्वतन्त्र कैसे हो सकते हैं? देवपाल्यत्व होने के कारण ही उनमें पशुत्व है॥ १९॥ अतः हमारा कल्याण कैसे हो, यह आप के लिए चिन्त्य है। हमें विपत्ति से बचाने वाले आप ही है; अन्धे की आँख में आँजन की स्थिति में हम हैं॥ २०॥ इन्द्र की ये बातें सुनकर गुरु आङ्गिरस ने एक क्षण विचार किया और सामने आये इन्द्र से कहा॥ २१॥ हे पुरन्दर! देवताओं की अभीष्ट सिद्धि के लिए उनके हित की जो कुछ बातें मैं बोलता हूँ उसे आदरपूर्वक गौर से सुनो॥ २२॥ देवताओं को साथ लेकर शीघ्र ब्रह्मदेव के पास पहुँचो। उनकी शरण निश्चय ही तुम लोगों के लिए कल्याणकारिणी होगी॥ २३॥ संसार के नियन्ता वे स्वतन्त्र हैं, सब कुछ के जानकार हैं, सब कुछ करने वाले हैं, सबके स्वामी हैं; आपके भयनाश के लिए वही सक्षम हैं॥ २४॥ आपकी इच्छापूर्ति के लिए इससे भिन्न कोई दूसरा उपाय नहीं है। देवताओं ने गुरु की ये बातें सुनकर उन्हें तब प्रणाम कर॥ २५॥ गुरु के आदेश को सम्मानपूर्वक स्वीकार करते हुए देवता, पितर और अन्य देवयोनियों के साथ शचीपति इन्द्र ने सत्यलोक में ब्रह्मसदन के लिए प्रस्थान किया॥ २६॥ वहाँ जाकर इन्होंने ब्रह्माजी के सभाकक्ष को देखा जो सौ योजन लम्बा एवं बीस योजन चौड़ा था॥ २७॥ उस कक्ष की ऊँचाई तीस योजन थी। सारा कक्ष रत्न के खम्भे के कारण चमचमा रहा था। रत्नस्तम्भ

भूमिप्रभाशबलितचन्द्रकान्तोर्ध्वभूमिकाम् । कान्तित्रयसुसङ्क्रान्तमुक्ताजालविचित्रिताम् ॥
स्तम्भसंन्यस्तमाणिक्यमयपुत्तलिकाश्चिताम् । चन्द्रकान्तखण्डक्लृप्तप्रतिमानेत्रभासिताम् ॥ ३० ॥
इन्द्रनीलतारकिकापक्ष्मकेशप्रकाशिताम् । चन्दनाऽगरुकस्तूरीकाश्मीरपटवासकैः ॥ ३१ ॥
घुम्घ्युंमितगन्धाढ्यां मणिकाञ्चनचित्रितैः । तोरणैः कदलीस्तम्भैः पूगवृक्षैः समन्ततः ॥ ३२ ॥
मण्डितां माल्यजालैश्च मन्दमारुतशीतलाम् । मध्ये मणिप्रवेकाढ्यं मुक्ताच्छत्रविराजितम् ॥
सिंहासनं जगत्स्रष्टुः परितोऽपि सभासदाम् । नानाविधान्यासनानि संस्थितानि सहस्रशः ॥
तेषु सिद्धा महात्मानः कपिलाद्या महर्षयः । भृग्वाद्याः सनकाद्याश्च योगीन्द्रा. सुव्यवस्थिताः ॥
कोटिमन्मथलावण्यपरिपूर्णाङ्गसौभगाः । तारुण्यगर्विता रामा रमण्यश्चाऽमरग्रहाः ॥ ३६ ॥
ताभिः सुवीज्यमानास्ते कामिनीभिः समन्ततः । तासां वदनराकेन्दुमन्दस्मितमरीचिभिः ॥
सम्पृक्तास्तम्भसंक्रान्तप्रतिमानेत्रपङ्क्तयः । मुमुचुर्नीरपृषतानतिस्वच्छान्निरन्तरान् ॥ ३८ ॥
सभाशोभादर्शनोद्यदानन्दाश्रुकला इव । तत्र सिंहासने धाता नवविद्रुमसच्छविः ॥ ३९ ॥
प्रसन्नवेदवदनो ब्रह्मव्याख्यानतत्परः । एवंविधं विधातारं चाऽपश्यदमराऽधिपः ॥ ४० ॥
सत्यलोकान्तरे चाऽपि स्थित एवंविधो विधिः । रूपद्वितयमासीनो लोकरक्षणहेतवे ॥ ४१ ॥
अन्तःसभायां देवेन्द्रमुखानाममृतान्धसाम् । प्रवेशो नास्ति तत्प्रोक्तं जितषड्रिपुसंश्रयम् ॥ ४२ ॥
तत्र प्राप्ता न मुह्यन्ति नाधो यान्ति कदाचन । कामक्रोधादिभिर्नैव परिभूता भवन्ति च ॥ ४३ ॥

की प्रभा फर्श की सुनहली भूमि पर शोभा बढा रही थी ॥ २८ ॥ स्वर्णभूमि की चितकबरी प्रभा और ऊपर छत की चन्द्रकान्त मणि की प्रभा और दोनों मिलकर एक तीसरी प्रभा मुक्ता की झिलमिलाती प्रभा जैसे प्रतीत होती थी ॥२९ ॥ खम्भे में माणिक्य की गुडिया जड़ी थी। उनमें जड़े चन्द्रकान्त मणि के टुकड़ें गुड़िया की आँखों की तरह शोभ रहे थे ॥ ३० ॥ उनकी आँखों की पुतलियाँ पन्ने की थीं जिससे आँखों के बाल अर्थात् बरौनी चमक रही थीं। चन्दन, अगर, कस्तूरी एवं केसर से वस्त्र सुगन्धित थे ॥३१ ॥ रत्न एवं सुवर्ण जडित उस सभामण्डप के प्रवेशद्वार चक्कर काटते धूपगन्ध से सुवासित थे। उसके चारों ओर केले और सुपारी के वृक्ष लगे थे ॥ ३२ ॥ भाले से वह प्रवेशद्वार सजे थे। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा चल रही थी। उसके बीच में चमचमाते मणि और मुक्ता छत्र लगे थे ॥ ३३ ॥ सिंहासन पर ब्रह्माजी समासीन थे। उनके चारों ओर रंग-बिरंगे आसन पर हजारों सभासद विराजित थे ॥ ३४ ॥ उन सभासदों में सिद्ध, महात्मा, महर्षि कपिलादि, भृगु एवं सनकादि योगीराज व्यवस्थित ढंग से बैठे थे ॥ ३५ ॥ करोड़ों कामदेव के अङ्ग-सौन्दर्य से परिपूर्ण अभिरामा, तारुण्यगर्विता युवतियाँ हाथ में चँवर लिये खड़ी थीं ॥ ३६ ॥ ये युवतियाँ चारों ओर से घेरा बनाकर उन्हें चँवर डुला रही थीं। पूर्णिमा के चाँद की तरह उनके मुख थे। मन्द मुस्कानयुक्त उनके मुखकान्ति से ॥ ३७ ॥ सभाभवन में लगे खम्भों में चित्रित प्रतिमाओं की आँखों से निरन्तर पानी चूते नजर आ रहे थे ॥३८ ॥ लगता था जैसे उस सभा की शोभा देखने के लिए उद्यत उन प्रतिमाओं की आँखों से आनन्द के आँसू चू रहे हों। नये विद्रुम की सुन्दर छवि लिये विधाता सिंहासन पर बैठे थे ॥ ३९ ॥ इस तरह वेदमुख, प्रसन्नवदन ब्रह्मा को वेद की व्याख्या करते हुए देवराज इन्द्र ने देखा ॥ ४० ॥ इस प्रकार लोकरक्षा के निमित्त दूसरे रूप में सत्यलोक से अलग ब्रह्मदेव बैठे थे ॥ ४१ ॥ देवेन्द्र-प्रमुख देवताओं का इस सभा में प्रवेश नहीं है। क्योंकि इस सभा में केवल उन्हीं का प्रवेश होता है जिन्होंने काम-क्रोधादि छः रिपुओं को जीत लिया है ॥ ४२ ॥ यहाँ जो एक बार आ जाते हैं, वे फिर अधोलोक कभी नहीं जाते हैं। काम, क्रोध आदि छः रिपुओं से वे कभी पराभूत

कामक्रोधादियुक्तानां बाह्ये सदसि संस्थितिः। एतदर्थं द्विधा अत्र संस्थितः प्रपितामहः ॥ ४४॥
तत्राऽमराधिपो देवैः साकं दृष्ट्वा जगत्प्रभुम्। दूरादेवाऽमरेशानो दण्डवत् प्रणनाम तम्॥ ४५॥
प्रणेमुर्विबुधाः सर्वे बद्धाञ्जलिपुटास्तदा। तान् दृष्ट्वा जगतां धाता प्रोवाच प्रसभं तदा॥ ४६॥
भो पाकशासन बुधैर्माभैरुत्तिष्ठ ते हितम्। सेत्स्यति ब्रूहि किं तेऽत्र प्राप्तौ कारणमाशु मे॥ ४७॥
इति श्रुत्वा चतुर्वक्त्रवचनं विबुधेश्वरः। उत्थाय मूर्ध्नि विन्यस्तकरकञ्जपुटस्तदा॥ ४८॥
स्ववृत्तं वक्तुमारेभे विबुधैः सह वज्रभृत्। विधातर्नः स्ववृत्तेषु भवानेव परायणम्॥ ४९॥
भवदाज्ञां मूर्ध्नि धृत्वा त्रिलोकी शासने स्थितः। भवत्कृपालेशतोऽपि मयि त्रिभुवनेशिता॥५०॥
सुस्थिता जगतां नाथ देवेशत्वमपि ध्रुवम्। परन्तु लोकत्रितयनाथता मयि तादृशी॥ ५१॥
यादृशी चित्तविन्यस्ता विधातुर्वै विधातृता। बल्वजेऽपि तृणे यद्वन्मेघनादादिशब्दनम्॥ ५२॥
नाहं मर्त्यैर्मानितोऽद्य न मां मर्त्या भजन्ति च। नेष्टो न पूजितो नैव प्रणतो नापि संस्तुतः॥ ५३॥
मर्त्यास्तु पशवः प्रोक्ता धातर्नोऽह्यमृतान्धसाम्। तदद्यापि न सम्पन्नं भवतोक्तं हि यत्पुरा॥ ५४॥
मां मानयन्ति विबुधा भवद्वचनगौरवात्। श्रद्धामात्रनिमित्तेन ममेन्द्रत्वमिति स्थितम्॥ ५५॥
एवं प्रोक्तं ममाऽशेषवृत्तमग्रे यथोचितम्। आज्ञापयतु नो देवो यत्कर्त्तव्यमनन्तरम्॥ ५६॥
इति श्रुत्वा सहस्राक्षवचनं विश्वसृट् तदा। विमृश्य किञ्चिद्गम्भीरवचसा प्रत्यवोचत॥ ५७॥
मघवन्नत्र मे वाक्यं शृणु यत्ते ब्रवीम्यहम्। यत्त्वां मर्त्या न मन्यन्ते इत्युक्तं तत्र कारणम्॥ ५८॥
निबोध वदतो मत्तः स्वहितायेतराश्रयाः। स्वार्थरिक्तस्य चाऽहं वा हरिर्वा शङ्करोऽपि वा॥ ५९॥

नहीं होते हैं॥ ४३॥ काम-क्रोधादि से युक्त व्यक्ति के लिए सभाकक्ष से बाहर निवासस्थान बना है। इस तरह यहाँ ब्रह्माजी ने दो प्रकार की निवास-भूमि की परिकल्पना की है॥ ४४॥ वहाँ देवताओं के साथ देवेन्द्र ने जगत्प्रभु ब्रह्माजी को देखकर दूर से ही दण्डवत् होकर प्रणाम किया॥ ४५॥ हाथ जोड़कर धरती पर गिरते हुए देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया। उन्हें देखकर ब्रह्मा ने हठात् उनसे कहा—॥ ४६॥ हे इन्द्र! ओ देवगण! मत डरो, उठो तुम्हारा कल्याण हो। यहाँ आने का तुम सबका क्या कारण है? शीघ्र बोलो॥ ४७॥ ब्रह्माजी की ये बातें सुनकर इन्द्र ने अञ्जलिबद्ध होकर उठकर॥ ४८॥ अपना वृत्तान्त देवताओं के साथ कहना प्रारम्भ किया। हे विधाता! हमारा वृत्तान्त तो आप से ही आश्रित है॥ ४९॥ आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर ही तो हम तीनों लोक पर शासन करते हैं। हमारा स्वामित्व तो आपकी कृपा का ही एक कण मात्र है॥ ५०॥ हे संसार के स्वामी! मेरा देवराज पद भी सुस्थिर है। पर मेरा त्रिलोक का स्वामित्व पद वैसा ही है॥ ५१॥ जैसा किसी के चित्त में विधाता की इच्छा या मोटी घास का सम्बन्ध मेघगर्जन में है॥ ५२॥ आज मनुष्य न तो मेरी मान्यता देते हैं न मुझे भजते हैं। न इष्ट समझते हैं, न पूजते हैं। न प्रणाम करते हैं और न स्तुति ही॥ ५३॥ हे ब्रह्मदेव! मनुष्य तो हम देवताओं के पशु माने जाते हैं। आपने जो यह पहले मान्यता दी है, उसका पालन आज नहीं हो रहा है॥ ५४॥ आपके वचन-गौरव से मुझे वे देवता तो मानते हैं; मात्र श्रद्धा के कारण ही मेरा इन्द्रत्व स्थिर है॥ ५५॥ मेरी या हमारी सारी व्यथा-कथा यही है। ऐसी स्थिति में हमारा कर्त्तव्य क्या है? आप यथोचित मार्ग का निर्देश करें॥ ५६॥ तब इन्द्र की सारी बातें सुनकर ब्रह्माजी ने कुछ सोच-विचार कर गम्भीर वाणी में कहा—॥ ५७॥ हे इन्द्र! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। मनुष्य तुम्हें क्यों नहीं मानते—इसका कारण मैं बतलाता हूँ॥ ५८॥ मुझसे बातें करते समय आत्महित की बातें समझो। जो स्वार्थ रहित है उसे न मुझसे, न विष्णु से वा शंकर से भी कुछ लेना-देना नहीं है॥ ५९॥

किंयान् तस्य जगत्सर्वं सेश्वरं तृणतो लघु । आश्रयन्ति परं सर्वे स्वार्थं किञ्चित्समाश्रिताः ।। ६० ।।
मर्त्यानां भवतां किञ्चिन्न प्रयोजनमस्ति वै । तेनाऽप्रयोजका यूयं कथं मान्यत्वमर्हथ ।। ६१ ।।
तद्गम्यतां मदवरां लक्ष्मीं पद्मासनां शुभाम् । प्रसाद्य विष्णुरमणीं शुभं प्राप्स्यथ मा चिरम् ।। ६२ ।।
इति श्रुत्वा स्वात्मयोनिवचनं तद्दिवस्पतिः । प्रणम्य हिमवत्पार्श्वं ययौ लक्ष्मीकृपाऽऽप्तये ।। ६३ ।।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तात्रेयपरशुरामसंवादे माहात्म्यखण्डे रमोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ।। ९६९ ।।



स्वार्थ रहित लोगों के लिए सारी दुनिया कुछ नहीं है। ईश्वर भी घास-फूस के समान हैं। स्वार्थवश ही कोई किसी का आश्रय ग्रहण करता है।। ६०।। मनुष्यों को आपका कुछ भी प्रयोजन नहीं है। फिर भी सुख के साधक आपको मानकर वे आपको क्यों मान्यता देंगे।। ६१।। अतः आप सब पद्मासना, शुभदा, वरदा महालक्ष्मी के पास जायें। विष्णुपत्नी महालक्ष्मी को प्रसन्न कर आप शीघ्र मनोवाँछित प्राप्त कर लेंगे।। ६२।। ब्रह्मदेव की ये बातें सुनकर देवगण उन्हें प्रणाम कर लक्ष्मी की कृपा पाने के लिए प्रस्थान किये।। ६३।।

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में दत्तात्रेय-परशुराम संवाद का लक्ष्मी-उपाख्यान नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। ९६९।।



अथ द्वादशोऽध्यायः

अथ ते पुरुहूताद्यास्तुहिनाद्रितटे स्थिताः । स्वर्धुनीसविधे पद्मां तुष्टुवुर्हरिवल्लभाम् ॥ १ ॥
नमो लक्ष्म्यै महादेव्यै पद्मायै सततं नमः । नमो विष्णुविलासिन्यै पद्मस्थायै नमो नमः ॥ २ ॥
त्वं साक्षाद्धरिवक्षःस्था सुरज्येष्ठा वरोद्भवा । पद्माक्षी पद्मसंस्थाना पद्महस्ता परामयी ॥ ३ ॥
परमानन्ददाऽपाङ्गहृतसंश्रितदुर्गतिः । अरुणानन्दिनी लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्त्रिशक्तिका ॥ ४ ॥
साम्राज्या सर्वसुखदा निधिनाथा निधिप्रदा । निधीशपूज्या निगमस्तुता नित्यमहोन्नतिः ॥ ५ ॥
सम्पत्तिसम्मता सर्वसुभगा संस्तुतेश्वरी । रमा रक्षाकरी रम्या रमणी मण्डलोत्तमा ॥ ६ ॥
एवमिन्द्रमुखा देवा नामाऽष्टाविंशतिं पठन् । उपतस्थुर्हरेः कान्तां ब्रह्मशक्तिं समाहिताः ॥ ७ ॥
एवं तत्परचित्तास्ते यदा तां शरणं गताः । तदा लक्ष्मीः प्रादुरासीद्देवानां प्रीतये द्रुतम् ॥ ८ ॥
अनन्तकोटितडितां पुञ्जीभूतसमप्रभा । दलद्रक्तोत्पलाभाङ्गी तप्तहेमाम्बराऽन्विता ॥ ९ ॥
करपद्मलसच्छूतदलपद्मचतुष्टया । हेमकुम्भप्रभाक्षेपतुङ्गवक्षोजशोभिता ॥ १० ॥
पक्वविद्रुमन्यक्कारिमृदुदन्तच्छदाऽन्विता । मुखामोदसमाहूतभृङ्गीझङ्कारमध्यगा ॥ ११ ॥
इन्दीवरसुसौभाग्यवदान्याऽऽकर्णलोचना । कस्तूरीतिलकाऽऽख्यातमुखराकेन्दुलाञ्छना ॥ १२ ॥

*** विमला ***

इसके बाद इन्द्रादि देवताओं ने हिमालय तट में अवस्थित गंगा नदी के पास विष्णुवल्लभा पद्मा को प्रसन्न करने का प्रयास प्रारम्भ किया॥ १॥ महादेवी लक्ष्मी को हमारा नमस्कार है। पद्मा को मेरा सतत प्रणाम है। विष्णुविलासिनी कमलासना महालक्ष्मी को हमारा प्रणाम है॥ २॥ तुम साक्षात् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली हो, देवताओं में श्रेष्ठा हो, वर से उत्पन्न हो। तुम्हारी आँखें कमल के समान हैं, कमलस्था हो, कमल हाथ में है और परामयी हो॥ ३॥ परम आनन्दा हो, जिसे आँख खोलकर देखती हो उसकी दुर्गति नहीं होती है। प्रभातकालीन उषा की प्रतिमूर्त्ति हो, आनन्दस्वरूपा हो, लक्ष्मी हो, त्रिशक्तिका महालक्ष्मी हो॥ ४॥ विश्व की सम्प्रभुता हो, सब सुख देने वाली हो। तुम विश्व-कोषागार की स्वामिनी हो, निधि देने वाली हो, कुबेर की पूज्या हो, नित्य महोन्नति हो, वेदों द्वारा संस्तुत हो॥ ५॥ सर्वमान्य सम्पत्ति हो, सबका सौभाग्य हो, सबके द्वारां संस्तुत परमेश्वरी हो, रमा हो, सबकी रक्षा करने वाली हो, सुन्दर रमणी हो, उत्तम परिवेश वाली हो॥ ६॥ इस तरह इन्द्रमुख से देवताओं ने महालक्ष्मी के अट्ठाईस नामों का पाठ करते हुए ब्रह्मशक्तिसमाहिता विष्णुपत्नी के सामने उपस्थित हुए॥ ७॥ इस तरह नितान्त संलग्न चित्त से जब देवगण उनके शरणागत हुए तब देवताओं की प्रसन्नता के लिए शीघ्र ही महालक्ष्मी प्रादुर्भूत हुई॥ ८॥ अनगिनत इकट्ठी विद्युत्प्रभा की तरह उसकी देहप्रभा थी। रक्ताभ कमलदल के सदृश उनकी आकृति थी तथा तपे सोने के सदृश वस्त्र शरीर पर थे॥ ९॥ चारों करकमलों में चार कमल सुशोभित थे। कनकघट की कान्ति छीनने वाले छाती पर दो ऊँचे स्तन शोभ रहे थे॥ १०॥ उनके दोनों होंठ पके अनारदाने को भी अपनी आभा से अपमानित कर रहे थे। झंकारों के बीच घूमती भौरियों को प्रसन्नवदन की सुगन्ध समाहूत कर रही हैं॥ ११॥ नीलकमल की तरह सुन्दर कान तक खींची फाँकेदार आँखें थीं। सकलङ्क पूर्ण चन्द्र की तरह सुन्दर

अनर्घ्यरत्नप्रत्युप्तभूषणौघविभूषिता । एवंविधां रमां दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणताः सुराः ॥ १३ ॥
आनन्दाऽश्रुकलोपेताः स्तुवन्तो गद्गदस्वरैः । तान् विलोक्य तदा लक्ष्मीरुवाच स्मितपूर्वकम् ॥
मधुनिर्झरनिष्पन्दकन्दसुन्दरभाषिणी । भो भो शक्र सहस्राक्ष भो देवा असुरद्विषः ॥ १५ ॥
प्रसन्नाऽस्मि वरं यद्वो वाञ्छितं मत्सकाशतः । प्रतीच्छध्वं स्तुता साऽहं भवद्भिर्गुप्तनामभिः ॥ १६ ॥
त एवंविधमाकर्ण्य वचनं निर्जरास्तदा । प्रोचुर्विडौजाप्रमुखा बद्धाञ्जलिपुटाः परम् ॥ १७ ॥
मातस्त्वयि प्रसन्नायां दुष्प्रापं किमिहोच्यते । प्राप्तकल्पतरोः किं वा वाञ्छितं परिशिष्यते ॥ १८ ॥
अम्बाऽस्माकं यथा मर्त्याः सेवकाः सम्भवन्ति वै । तथा कुरु शुनासीरः स्याद्यथा त्रिजगत्पतिः ॥
सदा वशंवदाः सर्वे मानवाः सन्तु नः शिवे । यजन्त्वस्मान् समुद्दिश्य वितरैवं वरं शिवे ॥ २० ॥
इति बर्हिमुखोक्ता सा प्राह मञ्जुलया गिरा । देवाः शृणुध्वं मद्वाक्यमहं सम्पदधीश्वरी ॥ २१ ॥
अद्य प्रभृति ये मर्त्याः सुत्रामप्रमुखान् सुरान् । यजन्ति विधिवत्तेषां सम्पदः स्युर्हि वाञ्छिताः ॥
उदासीना ये सुरेषु तेषां सम्पत्तिराशयः । क्षयं गच्छन्तु तरसा ग्रीष्मे पल्वलतोयवत् ॥ २३ ॥
भवदुक्तैर्नामभिर्ये मां स्तुवन्ति सदा नराः । तेषां सदाऽहं सन्तुष्टा निवसामि समीपतः ॥ २४ ॥
य एतैर्नामभिर्देवा भृगुवारे निशोद्भवे । पूजयित्वा मत्समीपे पठन्त्यष्टोत्तरं शतम् ॥ २५ ॥
सुवासिनीं पूजयन्ति नामैकैकेन मानवाः । एकैकवासरे त्वेवं चणकाढ्यैर्निवेदनम् ॥ २६ ॥
अष्टाविंशतिवारैस्ते भजन्त्यचलसम्पदम् । प्रसन्ना सर्वदैवाऽहं तथा यूयं प्रसादकाः ॥ २७ ॥
गच्छन्तु स्वर्गवसतिं फलितं वोऽभिवाञ्छितम् । इत्युक्त्वा सा परा देवी जगामाऽऽकाशतां तदा ॥
ततः शतक्रतुमुखास्तां दिशं भक्तिभावतः । प्रणम्य कृतकृत्यत्वं मत्वा स्वभुवनं ययुः ॥ २९ ॥

मुख कस्तूरी का तिलक लगाये शोभ रहा था॥ १२॥ बहुमूल्य रत्नाभूषणों से सुसज्जित लक्ष्मी को देखकर दण्डवत् धरती पर गिरकर देवताओं ने प्रणाम किया॥ १३॥ इन्हें देखकर देवताओं की आँखों से खुशी के आँसू छलक आये। उन्हें भरे गले से स्तुति करते देख महालक्ष्मी ने मुस्कराते हुए कहा॥ १४॥ मुख से जैसे मधु झरता हो ऐसी आवाज में लक्ष्मी ने कहा—हे सहस्राक्ष इन्द्र! ओ दैत्यारि देवगण!॥ १५॥ आप देवों ने मेरी गुप्त नामावलि से जो स्तुति की है, उससे मैं काफी प्रसन्न हूँ, अपना मनोवाँछित जो चाहो माँग लो॥ १६॥ उनकी ये बातें सुनकर इन्द्रादि देवगण ने बद्धाञ्जलि होकर उनसे कहा॥ १७॥ हे माँ! आपके प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं होता। कल्पतरु के नीचे निवास होने पर फिर अभीप्सित छूट कैसे जाता?॥ १८॥ हे अम्बे! मानव हमारी सेवा जैसे करें वैसा ही करो। त्रिलोक में इन्द्र का स्वामित्व जैसे स्थिर हो वैसा ही करो॥ १९॥ हे शिवे! सभी मानव सदा हमारे वशवर्त्ती हों तथा हमारे निमित्त वे सदा यज्ञ करें, ऐसा ही वरदान दो॥ २०॥ देवताओं के ऐसा कहने पर बड़ी ही मीठी वाणी में महालक्ष्मी ने कहा—ओ देवगण! आप सब मेरी बातें सुनें–मैं सम्पत्ति की अधीश्वरी हूँ॥ २१॥ आज से लेकर जो मनुष्य इन्द्रादि प्रमुख देवनिमित्तक यज्ञ करेंगे उन्हें मनवाँछित सम्पत्ति मिलेगी॥ २२॥ देवताओं के प्रति जो उदासीन होंगे उनकी सारी सम्पत्ति विनष्ट हो जायेगी, ठीक उसी तरह जैसे ग्रीष्मकालीन पल्लवों पर पानी॥ २३॥ आपने जिन नामों से स्तुति की है, इस स्तुति का पाठ जो व्यक्ति नियमित करेगा उसके पास मैं सदैव निवास करूँगी॥ २४॥ जो व्यक्ति शुक्रवार की रात में देवता या विष्णु की पूजा कर मेरे पास इन नामों का एक सौ आठ बार पाठ करे॥ २५॥ तथा प्रतिदिन एक-एक नाम से जो व्यक्ति सुवासिनी की पूजा कर चना चढाते हैं॥ २६॥ लगातार अट्ठाईस दिन पूजने पर वे अचल सम्पत्ति के स्वामी बन जाते हैं। मैं सर्वदा उन पर प्रसन्न रहती हूँ, उसी तरह तुम सब भी मुझे प्रसन्न करने वाले हों॥ २७॥ तुम सब अब स्वर्ग जाओ, तुम्हारी कामनाएँ

अथ काले बहुतरे गते देवास्त्रिविष्टपे । समासीनाः सुधर्मायामाङ्गिरससमाश्रयाः ॥ ३० ॥
जीवे शृण्वति ते प्राहुरिन्द्रं सिंहासनस्थितम् । भो देवराज नो वाक्यं श्रूयतां हेतुसंयुतम् ॥ ३१ ॥
पुरा लक्ष्मीः प्रसन्ना नो वरं दत्तवती च यम् । तत्राऽद्य धरणीमध्ये न फलं दृश्यते क्वचित् ॥ ३२ ॥
क्वचिल्लक्षे सहस्रे वा दृश्यते तादृशो जनः । एको यथा वृतोऽस्माभिरन्ये शान्ताऽऽशयाः स्थिताः ॥
अद्याप्यस्मदभीष्टन्तु न सिद्धं सुरनायक । विचारयाऽग्रे यद्योग्यं शुभं नः स्याद्यथा हरे ॥ ३४॥
एवमुक्तः शतमखः विचार्य वचनं तदा । प्रणिपत्य गुरुं वाचस्पतिमूचे कृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥
गुरो विमृश्यतां चैतत्कुतो नः सिद्धिरद्य नो । हरिवल्लभया प्रोक्तं न मृषा भवितुं क्षमम् ॥ ३६ ॥
तत्कुतोऽस्मान् मानवा नो यजन्ति विधिपूर्वकम् । भवतः स्यादविदितं न हि लोकत्रये स्थितम् ॥
त्वं हि सर्वान्तरगतं वेत्सि सर्वाऽऽन्तरेशवत् । तन्नो ब्रूहि शिवं येन प्राप्स्यामो ह्यविलम्बितम् ॥
एवं शतक्रतुवचो निशम्याऽऽङ्गिरसो मुनिः । निमीलिताक्षः सुचिरं ध्यात्वोवाच सुरेश्वरम् ॥
शृणु मद्वचनं पाकशासनाऽतिशुभोदयम् । अभीष्टं भवतां कालात्सेत्स्यत्यत्र न संशयः ॥ ४० ॥
गच्छ देवगणैः साकं पुनः कमलवासिनीम् । सन्तोष्याऽभीष्टसिद्धिं त्वं भजिष्यसि शतक्रतो ॥
उपायो नास्ति चाऽत्राऽन्यो येनेष्टं सिंध्यति द्रुतम् । तत्त्वं गच्छ महादेवीं शरणं शरणेष्टदाम् ॥
इति श्रुत्वा गुरुवचो देवैः सह दिवस्पतिः । जगाम जाह्नवीतीरे हिमशैलतटोपरि ॥ ४३ ॥
तत्र गत्वा सुविमले स्वर्धुनीतोय आप्लुतः । अनिमेषगणैः साकं तपस्येव मनो दधे ॥ ४४ ॥
ध्यायन् हरिमनोज्ञाङ्गीपादपद्मयुगं मुहुः । आवर्त्तयन्नामगणमष्टाविंशतिसङ्ख्यकम् ॥ ४५ ॥

पूरी हुईं। यह कहकर वह देवी स्वयं आकाश की ओर चली गई॥ २८॥ उसके बाद इन्द्रादि देवगण भक्तिभाव से उस दिशा को प्रणाम कर अपने को कृतकृत्य मानते हुए देवलोक चले गये॥ २९॥ बहुत समय बीत जाने पर एक बार देवसभा में ऋषि आङ्गिरस देवताओं के साथ बैठे थे॥ ३०॥ सिंहासन पर बैठे इन्द्र को गुरु ने कहा—हे देवराज! मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो, क्योंकि मेरा कथन सकारण है॥ ३१॥ पहले लक्ष्मी ने तुम्हें जो प्रसन्न होकर वरदान दिया, उसका कोई फल धरती पर दिखलायी नहीं पड़ता॥ ३२॥ कहीं हजारों-लाखों में कोई एक व्यक्ति सहमत हो बाकी सब शान्ताशय ही बैठे हैं, कोई परिवर्त्तन नहीं॥ ३३॥ हे देवराज! आज भी हमारा अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ है। हे इन्द्र! विचार करो, हमारा कल्याण जिससे हो वैसा करो॥ ३४॥ गुरु के ऐसा कहने पर इन्द्र ने कुछ विचार कर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा॥ ३५॥ हे गुरुदेव! यह तो विचारणीय है। क्योंकि विष्णुप्रिया लक्ष्मी का वचन मिथ्या नहीं हो सकता है॥ ३६॥ तो फिर मनुष्य हमारे लिए यज्ञ क्यों नहीं करते? तीनों लोकों में ऐसी कौन-सी बात है जिसका पता आपको नहीं है॥ ३७॥ आप तो अन्तर्यामी परमात्मा की तरह सबकी भीतरी बातें जानते हैं। फिर हमारा कल्याण कैसे हो? आप शीघ्र बतलायें॥ ३८॥ इन्द्र की ऐसी बातें सुनकर महामुनि बृहस्पति ने बहुत देर तक ध्यान करने के बाद इन्द्र से कहा॥ ३९॥ हे इन्द्र! अतिकल्याणकारी मेरी बातें ध्यान से सुनो। आपका अभीष्ट कुछ समय के बाद सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं॥ ४०॥ आप देवगणों के साथ फिर लक्ष्मी के पास जाओ, उन्हें सन्तुष्ट कर हे इन्द्र! अपना अभीष्ट प्राप्त करो॥ ४१॥ दूसरा कोई उपाय नहीं है जिससे शीघ्र तुम्हारे अभीष्ट की सिद्धि हो। इसलिए सबको शरण देने वाली महालक्ष्मी की शरण में जाओ॥ ४२॥ गुरु की ये बातें सुनकर देवराज ने देवताओं के साथ हिमालय की तराई में गंगातट पर पुनः महालक्ष्मी की उपासना के लिए प्रस्थान किया॥ ४३॥ वहाँ जाकर गंगाजल से बनी पवित्र भूमि पर स्थिर होकर देवताओं के साथ इन्द्र ने तप करने का निश्चय किया॥ ४४॥ विष्णुपत्नी महालक्ष्मी के चरणकमलों का ध्यान करते हुए उनके

अवष्टभ्य भुवं पादाऽङ्गुष्ठाऽग्रेणेन्द्रमुख्यकाः। ऊर्ध्र्वबाहा निरालम्बा मारुताऽऽहारतत्पराः ॥
एकाग्रचित्ता ह्यचलकायचक्षुर्मनोवचः। शिलोत्कीर्णसुपाश्चालीसङ्घवत्संस्थितास्तदा ॥ ४७ ॥
एवं त्रिसप्तदशके मासेऽतीते भृगूद्वह। उग्रेण तपसा तुष्टा प्रत्यक्षीभवदञ्जसा ॥ ४८ ॥
तत्राऽऽगत्य सुरानिन्द्रप्रमुखान् तान् निशाम्य तु। काष्ठकुडयसमान् ध्यानतत्परान् प्राह सा रमा ॥
भो भो देवाः सुरेशान प्रसन्नाऽस्मि वरप्रदा। विरमन्तु भवन्तोऽस्मादत्युग्रतपसो बुधाः ॥ ५० ॥
ब्रुवन्तु वो वाञ्छितं यत्प्रददाम्यविशङ्कितम्। इति श्रुत्वा वचो देव्या मधुरस्वरसुन्दरम् ॥ ५१ ॥
उन्मीलितदृशो देवा दृष्ट्वा देवीं हरिप्रियाम्। पूर्वदृष्टां स्मितागाङ्गीं दण्डवत्पतिता भुवि ॥ ५२ ॥
हर्षरुद्धकलाऽव्यक्तवाचा स्तोतुं प्रचक्रमुः। शरणागतदीनार्त्तिगिरिदारणवज्रिणि ॥ ५३ ॥
रक्षाऽस्मान् प्रणतान् लक्ष्मि नारायणि नमोऽस्तु ते। यत्कृपालेशमासाद्य नराः पङ्ग्वन्धका अपि ॥
स्पर्धन्ति विधिमुख्यैः सा नारायणि नमोऽस्तु ते। पुराणपुरुषो विष्णुर्यां विना सोऽपि पालने ॥
न शक्तः सा परा त्वं वै नारायणि नमोऽस्तु ते। पराशक्तिस्त्वमीशानी वाच्यवाचकरूपिणी ॥
सर्वसारमयी त्वं वै नारायणि नमोऽस्तु ते। सृष्टिकर्त्री ब्रह्मशक्तिर्गोश्री(?)र्विष्णुबलोद्यमा ॥
संहारिणी रुद्रशक्तिर्नारायणि नमोऽस्तु ते। इति स्तुत्वा स्ववृत्तान्तं प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥ ५८ ॥
मातः पुरा वरं प्राप्य त्वत्तो याता वयं दिवि। तदद्यापि न सम्पन्नं नरा नो न यजन्ति वै ॥ ५९ ॥
तद्यथाऽस्मान् यजन्त्येते भवन्त्यस्मत्परायणाः। तथा कुरु महादेवि स्युर्नराः पशवो हि नः ॥ ६० ॥

अट्ठाईस नामों की पुनरावृत्ति इन सबों ने प्रारम्भ कर दी ॥ ४५ ॥ धरती पर अँगूठे टेककर, बाँहें ऊपर उठाये, निरवलम्ब, हवा पीकर देवताओं के साथ देवराज ने तप प्रारम्भ किया ॥ ४६ ॥ एकाग्र चित्त से मन, वचन, नेत्र और शरीर से अचल होकर जैसे पत्थर पर खुदे गुड़ियों के चित्र की तरह देवगण तप करने लगे ॥ ४७ ॥ इस तरह तिहत्तर महीने देवताओं के उग्र तप करते हुए बीत जाने पर उनकी तपस्या से तुष्ट होकर शीघ्र महालक्ष्मी प्रकट हो गई ॥ ४८ ॥ वहाँ पहुँचकर कठपुतली की तरह ध्यान में तत्पर देवताओं को सुनाकर महालक्ष्मी ने उनसे कहा ॥ ४९ ॥ अरे ओ इन्द्रादि देवगण! मैं आपसे प्रसन्न हूँ, वर देने वाली हूँ। ऐसा उग्र तप करने से आप सब रुको ॥ ५० ॥ बोलो, शङ्कारहित होकर बोलो, तुम्हें मनचाहा मिलेगा। भगवती की मीठी आवाज देवताओं ने सुनी ॥ ५१ ॥ आँखें खोलकर देवताओं ने हरिप्रिया लक्ष्मी की पहले देखी आकृति पहचान कर धरती पर गिरकर प्रणाम किया ॥ ५२ ॥ खुशी के मारे उनका गला भर आया। फिर भी रुद्धकण्ठ से उन्होंने स्तुति प्रारम्भ की—शरण में आये आर्त्तजनों के हे दुःख रूपी पहाड़ को चूर्ण करने के लिए वज्र धारण करने वाली! ॥ ५३ ॥ हम प्रणतजनों की रक्षा करने वाली हे लक्ष्मि! हे नारायणि! तुम्हें हमारा प्रणाम है। तुम्हारी कृपा का लेश पाकर अन्धे-लंगड़े व्यक्ति भी ॥ ५४ ॥ विधि-प्रमुखों की स्पर्द्धा करते हैं। हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है। पुराणपुरुष विष्णु भी तुम्हारे बिना संसार को पालने में ॥ ५५ ॥ समर्थ नहीं है। वह पराशक्ति तुम्हीं हो, हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं पराशक्ति हो, तुम्हीं वाच्य एवं वाचक स्वरूप हो ॥ ५६ ॥ सबका सारस्वरूप तुम्हीं हो। हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं सृष्टि करने वाली हो, ब्रह्मा की शक्ति हो, गोलोक की लक्ष्मी हो, विष्णु के बल और पराक्रम हो ॥ ५७ ॥ रुद्र की तुम्हीं संहारक शक्ति हो, हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है। इस तरह उनकी स्तुति कर देवताओं ने अपना वृत्तान्त कहना शुरू किया ॥ ५८ ॥ हे माँ! पहले आपसे वरदान पाकर हम स्वर्ग लौट गये। पर आज तक भी मेरे निमित्त धरती पर लोग यज्ञ नहीं कर रहे हैं ॥ ५९ ॥ तो ये मानव हमारे निमित्त यज्ञ करें, हमारे परायण हों, हे महादेवि! आप हमारे लिए ऐसा करें कि ये मानव हमारे सेवक बन जायें ॥ ६० ॥ देवताओं की ये बातें सुनकर

इति देववचः श्रुत्वा देवसाहाय्यकारणात्। विचार्य देवान् प्रोवाच शृणुध्वं विबुधर्षभाः ॥ ६१ ॥
मया यदुक्तं पूर्वं वस्तत्तथैव न चाऽन्यथा। निष्कामास्तु नराः कालस्वभावात्तत्र किम्भवेत्॥
भवत्वेवं तथाऽप्यत्र विधास्ये भवदीप्सितम्। इत्युक्त्वा सा स्वमनसा कुमारं दिव्यवर्चसम्॥ ६३ ॥
उत्पाद्य तरसा तेभ्यो दत्त्वोवाच बुधान् तदा। अयं कुमारः कामाख्यो महाबलपराक्रमः ॥ ६४॥
साधको भवतां कार्ये भविष्यति न संशयः। एतत्सत्याय योगेन मर्त्याः स्युर्वो वशंवदाः ॥ ६५॥
एनं गृहीत्वा गच्छन्तु भवन्तो वाञ्छिताऽऽप्तये। वत्स काम सुरार्थं त्वं जित्वा मर्त्यानशेषतः॥
संस्थापय सुरेन्द्रादिसुराणां वशवृत्तिषु। इत्युक्ताऽन्तर्हिता सद्यः पश्यताञ्च दिवौकसाम्॥ ६७॥
ततः सुरा नमस्कृत्य काममादाय संययुः। आगत्य स्वर्भुवि तदा कामं सत्कृत्य सर्वतः ॥ ६८॥
देवैः सह तदोवाच कामं संश्रयपूर्वकम्। इन्द्रः संस्तुत्य सम्बोध्य मधुरस्मितपूर्वकम्॥ ६९॥
काम त्वं रमया सृष्टो मनसाऽस्मद्धितेप्सया। त्वं पञ्चहायनो बालः कथमस्मत्समीहितम्॥ ७०॥
साधयिष्यसि तद्ब्रूहि यथाऽस्मद्वाञ्छितम्भवेत्। एवमिन्द्रवचः श्रुत्वा मत्वा स्वस्याऽवहेलनम्॥
रुषा कषायिताक्षः स उवाच स्फुरिताऽधरः। शृणु शक्र सहस्राक्ष नाऽवज्ञां कर्त्तुमर्हसि॥ ७२॥
बालोऽपि सिंहः करिणां मण्डलीदण्डनक्षमः। न पश्यस्यग्निकणिका दहत्याखण्डलं बलम्॥ ७३॥
वीर्येन कालो देशो वा हेतुर्नैसर्गिकं हि तत्। तस्मादभीष्टं किं यत्ते मया साध्यं वद द्रुतम्॥ ७४॥
पश्यसीमं क्षणं शक्र भवदीप्सितसाधनम्। नोक्तं त्वया यावदिह तावत्सिद्ध्यन्तरायकम्॥ ७५॥

उनकी सहायता हेतु देवी ने उनसे कुछ विचार कर कहा—हे देवगण! आप लोग सुनें॥ ६१॥ मैंने आपसे पहले जो कहा, वह व्यर्थ कैसे हो सकता है? पर स्वभाव से जो मनुष्य निष्काम है उन पर इसका क्या प्रभाव होगा?॥ ६२॥ फिर भी ऐसा ही होगा, तुम सबके अभीष्ट सिद्धि का उपाय करती हूँ। यह कहकर उस देवी ने अपने मन से दिव्य वर्चस्व वाले एक कुमार को॥ ६३॥ उत्पन्न कर उन्हें सौंपते हुए उनसे कहा—लो, इन्हें सम्भालो। इनका नाम कामदेव होगा। ये महाबली और पराक्रमी होंगे॥ ६४॥ ये आपके कार्य के साधक होंगे, इसमें सन्देह मत करना। इस सत्य के संयोग से मनुष्य तुम्हारे वशवर्त्ती होंगे॥ ६५॥ अपने अभीष्ट-प्राप्ति के लिए इन्हें अपने साथ ले जाओ और कुमार से कहा—बेटे काम! देवार्थ तुम सारे मानव पर विजय प्राप्त कर॥ ६६॥ इन्द्रादि देवताओं का वशवर्त्ती तुम मानवों को बना दो। इतना कहकर महालक्ष्मी वहीं तिरोहित हो गई॥ ६७॥ उसके बाद देवताओं ने उन्हें प्रणाम कर कामदेव के साथ वहाँ से चलते बने। स्वर्ग पहुँचकर कामदेव का भव्य स्वागत किया॥ ६८॥ इन्द्र ने वहाँ उनकी स्तुति कर देवताओं के साथ मिलकर उन्हें पहले सन्तुष्ट कर मुस्कराते हुए उनसे मीठी आवाज में कहा॥ ६९॥ हे काम! महालक्ष्मी ने देवकार्य की सिद्धि के लिए तुम्हें अपने मन से उत्पन्न किया है। तुम तो पाँच साल का बच्चा हो, हमारी सहायता कैसे करोगे?॥ ७०॥ 'अगर मेरा काम पूरा कर सकोगे तो बोलो।' इन्द्र की यह बात सुनकर तथा अपमान समझकर॥ ७१॥ क्रोध के मारे उसकी आँखें लाल हो गईं, होंठ फड़कने लगे। उसने कहा—हे देवराज! सुनो, इस तरह तुम मुझे अपमानित तो नहीं कर सकते॥ ७२॥ सिंह का बच्चा भी हाथियों के झुण्ड को ताड़ना करने में जैसे समर्थ होता है। क्या तुम नहीं जानते, आग का एक छोटा कण भी आखण्डल के बल को जलाकर राख कर देता है?॥ ७३॥ देश या काल स्वाभाविक बल से ही अधिकृत होते हैं। इससे तुम शीघ्र बतलाओ, तुम्हारा क्या अभीष्ट है जिसे मुझे पूरा करना है॥ ७४॥ अभी तुरन्त ही तुम देखोगे कि तुम्हारा अभीष्ट कैसे सिद्ध होता है? जब तक तुम अपना अभीष्ट बतलाते नहीं तभी तक वह तुमसे दूर है॥ ७५॥ काम की ये बातें सुनकर इन्द्र ने कहा—हे काम! तुम क्रोध मत करो। तुम्हारे क्रोध को बढ़ाने के

इति कामवचः श्रुत्वा प्राह वज्रधरस्तदा । काम मा क्रुध यन्नोक्तं तत्ते वीर्यविवृद्धये ।। ७६ ।।
रमादेव्या यदुक्तं तन्मृषा नैव तथैव तत् । त्वं साक्षात् परमेशानीमनोजातोऽस्मदर्थतः ।। ७७ ।।
साक्षाद्धरेः क्षेत्रभवः किमसाध्यं त्वया भवेत् । नरा यथाऽस्मद्वशगा यजन्त्यनुदिनं हि नः ।। ७८ ।।
कर्त्तव्यं भवता तद्वत् येनाऽहं त्रिजगत्पतिः । भवामि पशवोऽस्माकं पाल्याः स्युर्मनुजा भुवि ।।
एवमिन्द्रवचः श्रुत्वा कामः प्रोवाच सस्मितः । फलुवाचा हर्षयंस्तान् सुरान् वीर्येण दर्पितः ।।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तरामसंवादे
कामोपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ।। १०४९ ।।



लिए ही अब तक मैंने अपना अभीष्ट नहीं बतलाया है।। ७६।। भगवती रमा ने जो कुछ कहा, वह असत्य न हो यही मेरी कामना है। तुम उनके मानस पुत्र हो, हमारी कामना की सम्पूर्ति हेतु तुम्हारी उत्पत्ति हुई है।। ७७।। साक्षात् भगवान् विष्णु के तुम क्षेत्रोद्भव हो, तुम्हारे लिए भला क्या असाध्य है? मानव हमारे वशवर्त्ती हो, हमारे निमित्त प्रतिदिन यज्ञ करें।। ७८।। इसे ही पूरा करना आपका कर्त्तव्य है, जिससे मैं त्रिलोक का स्वामी बन सकूँ। मानव धरती पर हमारे पशु हों, पाल्य हों।। ७९।। इन्द्र की ऐसी बातें सुनकर मुस्कराते हुए काम ने कहा—अपने बल के दर्प में चूर उन देवताओं को अपनी सारहीन बातों से प्रसन्न करते हुए कहा।। ८०।।

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में दत्तात्रेय-परशुराम संवाद का काम-उपाख्यान नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

पुरन्दर गतोऽहं ते कार्यसिध्यै न तन्मृषा। एकलोऽहं विजित्याऽऽशु करोमि त्वद्वशे नरान्॥ १॥
इत्युक्त्वा धनुरादाय निषङ्गञ्च महत्तरम्। पश्यतां सर्वदेवानां भुवमाक्रान्तवान् रुषा॥ २॥
पद्मकिञ्जल्कसङ्काशः पद्मपत्रनिभेक्षणः। फुल्लपद्मसमानाऽऽस्यः पक्वबिम्बरदच्छदः॥ ३॥
कुण्डलप्रोल्लसद्गण्डो रत्नकोटीरशोभितः। केमलाङ्गो दीर्घबाहुः पीताम्बरलसत्कटिः॥ ४॥
वामहस्तलसच्चापो दक्षहस्ताऽऽत्तसायकः। आमर्षसभ्रुकुटिलः कुमारः पञ्चहायनः॥ ५॥
जगाम पृथिवीमध्ये पश्यतां नयनोत्सवः। इन्द्रोऽपि स्वगणैर्द्रष्टुं कृत्यं कामस्य दुष्करम्॥ ६॥
ऐरावतं समारुह्य वज्रहस्तस्समाययौ। अन्येऽपि देवा ऋषयः सिद्धविद्याधकिन्नराः॥ ७॥
गगने संस्थितास्तत्र यत्र कामो भुवि स्थितः। अथ कामो नरान् प्राह समाहूय रुषा वचः॥ ८॥
भो नराः शृणुताऽऽज्ञां मे भवन्तः सर्व एव हि। यजन्तु देवान् शक्रादीन्न चेच्छास्या हि मे नराः॥ ९॥
एतद्वाक्यं समाकर्ण्य जना जहसुरुच्चकैः। नूनं स्तनन्धयः कस्याप्ययं स्यात्क्रीडने रतः॥ १०॥
वदन्त एवमन्योन्यं जनास्तत्सौभगेक्षकाः। अहो धन्यतमा चाऽस्य जननी यदपत्यकम्॥ ११॥
ईदृग्विधं सुचार्वङ्गं नयनाकर्षणं प्रियम्। नैवंविधः शिशुर्दृष्टो भुवि कस्याऽपि केनचित्॥ १२॥
कोऽप्ययं राजतनयो नेदृशः प्राकृतो भवेत्। इत्येवं वदतां तेषां जनानां स रमासुतः॥ १३॥
विस्मापयन्नुवाचोच्चैः शृण्वतां वसुधौकसाम्। भो नरा मां प्राकृतकं न जानीथ कुमारकम्॥

*** विमला ***

हे इन्द्र! तुम्हारे कार्य की सिद्धि के लिए मैं गया था, इसे असत्य मत मानो। मैं अकेला हूँ फिर भी मनुष्यों को जीतकर तुम्हारा वशवर्त्ती बना दूँगा॥ १॥ इतना कहकर क्रोध से तमतमाते हुए हाथ में तीर और पीठ पर महत्तर तरकस रखकर देवताओं के सामने ही धरती पर आक्रमण कर दिया॥ २॥ कमलफूल की तरह उसकी आँखें थीं। कमलपत्र की तरह उसकी आँखों की कान्ति थी। खिले कमल की तरह उसकी मुखकान्ति थी। पके बिम्बफल की तरह दन्तपंक्ति थी॥ ३॥ दोनों कोनों में लटके रत्न-कुण्डल की शोभा से दोनों गाल सुशोभित थे। कोमल शरीर, लम्बी बाँहें और कमर में पीताम्बर शोभ रहे थे॥ ४॥ बायें हाथ में धनुष तथा दायें हाथ में तीर, क्रोध से भौंहें टेढ़ी थीं तथा वह मात्र पाँच साल का बच्चा था॥ ५॥ देखने में अति ललाम वह बालक धरती पर उतर आया। इन्द्र भी अपने गणों के साथ इनका दुष्कर कर्म देखने के लिए॥ ६॥ ऐरावत हाथी पर सवार होकर हाथ में व्रण लिये प्रस्थान किये। दूसरे भी देवता, ऋषि, सिद्ध, विद्याधरगण और किन्नर थे॥ ७॥ जहाँ काम धरती पर थे, उसी के सामने वे ऊपर आकाश में थे। काम ने मनुष्यों को बुलाकर क्रोध में कहा—॥ ८॥ हे मानव! आप सभी मेरी आज्ञा सुनें, आप सभी मेरे शासन में हैं। आप लोग इन्द्रादि देवगण के लिए यज्ञ करें॥ ९॥ उनकी ये बातें सुनकर लोग ठठाकर हँसने लगे। यह किसी का दुहमुँहा बच्चा यहाँ खेलने आ गया है॥ १०॥ इस तरह आपस में बोलते हुए उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगे और कहा—आह! जिसका यह बेटा है वह माँ धन्य है॥ ११॥ इतना नयनाकर्षक, सुडौल एवं स्वस्थ शरीर का बच्चा आज तक कहीं और किसी ने नहीं देखा होगा॥ १२॥ निश्चय ही यह कोई राजकुमार है, सामान्य जन तो यह हो ही नहीं सकता। इस तरह उसे बोलते देख लक्ष्मीपुत्र ने॥ १३॥ ऊँची आवाज में उन्हें कहा—

अहं पद्मालयासूनुरागतो मातृशासनात्। विधातुं वो निर्जराणां सर्वान् मर्त्यान् वशंवदान्॥ १५॥
साम्नाऽथ वाऽपि दण्डेन करोमि वशवर्त्तिनः। देवानां नात्र सन्देहो मतं वो वदथाऽऽशु मे॥
एवं वचः समाकर्ण्य प्रोचुस्ते विस्मिता जनाः। कुमार शृणु नो वाक्यं किमर्थं देवतावशे॥ १७॥
स्थास्यामस्ते कुतोऽस्माकं न तिष्ठन्ति वशे सुराः। यथाऽस्माभिर्न कृत्यं वै तेषां तैरपि नस्तथा॥
अन्यच्चाप्यवगच्छ त्वं राजा नो मानवः प्रभुः। वीरव्रतोऽयमध्यास्ते ब्रह्मावर्त्ते तु सम्प्रति॥ १९॥
वशंवदास्तस्य वयं स नः पालयिता प्रभुः। न तवाऽऽज्ञां करिष्याम एकाज्ञावशवर्त्तिनः॥ २०॥
इत्थं ब्रुवत्सु मर्त्येषु क्रोधारुणितलोचनः। अस्त्रजालेन तान्मर्त्यान् बबन्धाऽद्भुतविक्रमः॥ २१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कर्णात्कर्णं निशम्य तत्। समागता राष्ट्रपालाः कोटिशः प्रोद्यताऽऽयुधाः॥
तान् दृष्ट्वा पुनरेवैषः क्रोधाग्निज्वलिताऽऽकृतिः। शरान् धनुषि सन्धाय पदैकमपि नाऽचलत्॥
तं दृष्ट्वा सुन्दरं बालं विस्मापनपराक्रमम्। प्राहुस्तं राष्ट्रपालास्ते दर्पमानोद्धतं वचः॥ २४॥
रे कुमारक मा नाशमुपैह्याद्यं बलात् स्वयम्। पतङ्ग इव दावाग्निमस्मद्रोषेण सङ्गतः॥ २५॥
आत्मनाशाय चोद्युक्तो व्यर्थं त्वं मातृशोचन। एवं तेषामुपश्रुत्य वचो वै मर्मकृन्तनम्॥ २६॥
नाऽपश्यत्तत्र किमपि रोषाऽन्धीकृतलोचनः। प्रबुद्धः क्रोधमूर्च्छायाः क्षणेन प्राह तान् प्रति॥
व्यर्थं कत्थन्ति वै बाला न बालो वयसाऽल्पकः। वीर्याल्पकोऽल्पमेधाश्च बालः प्रोक्तो विचक्षणैः॥
तद्वो वीर्यं बलं शस्त्रं प्रदर्शयत मा चिरम्। अनन्तरं मदीयास्त्रवीर्योर्वरितकीर्त्तिकान्॥ २९॥

हे मानव! सुनना ही चाहते हो तो सुनो। मैं कोई प्राकृतिक मनुष्य तो हूँ नहीं॥ १४॥ मैं महालक्ष्मी का पुत्र हूँ। अपनी माता की आज्ञा से मैं यहाँ आया हूँ। आप सभी देवताओं का वशवर्तीत्व कबूल करें॥ १५॥ अपना विचार शीघ्र बोलो, अन्यथा साम या दण्ड से मैं आप सबों को देवताओं का वशवर्त्ती तो बना ही दूँगा॥ १६॥ ऐसी बातें सुनकर विस्मित होकर उन्होंने कहा—कुमार! मेरी बातें सुनो, हम देवताओं के वशवर्त्ती क्यों बनें?॥ १७॥ जैसे स्वर्ग में देवता रहते हैं, वैसे ही धरती पर हम सब रहते हैं। तो फिर तुम्हीं बतलाओ, वे हमारे लिए भला पूज्य कैसे हैं॥ १८॥ दूसरी बात यह भी जान लो, ब्रह्मावर्त्त प्रदेश में इस समय वीरव्रत नाम के एक राजा है, हम मानवों के वही पालयिता है; हम मानव उन्हीं के वशवर्त्ती हैं॥ १९॥ हम उनके वशवर्त्ती हैं, वे हमारे पालक प्रभु हैं। एक मात्र उन्हीं की आज्ञा के हम वशवर्त्ती हैं। तुम्हारे आदेश का हम पालन नहीं कर सकते हैं॥ २०॥ मनुष्यों ने जब ऐसा कहा तो क्रोध से काम की आँखें लाल हो गईं। उस अद्भुत पराक्रमी ने अपने अस्त्रजाल से उन मानवों को बाँध लिया॥ २१॥ इसी बीच कानों-कान ये बातें सुनकर करोड़ों सैनिक हाथ में हथियार उठाये वहाँ पहुँच गये॥ २२॥ फिर उन्हें देखकर इनका चेहरा तमतमा उठा। धनुष पर तीर चढ़ाकर उन्हें एक पग भी आगे बढ़ने से लाचार कर दिया॥ २३॥ काम के सुन्दर बाल रूप को तथा उनके आश्चर्यजनक पराक्रम को देखकर राष्ट्रपालों ने घमण्ड भरें उद्धत वचन कहा॥ २४॥ रे कुमार! अपने हठ के कारण अपना विनाश स्वयं मत कर। क्रोध के कारण जंगली आग में जलते पतंगा मत बन॥ २५॥ आत्मनाश के लिए क्यों तैयार हो रहे हो? व्यर्थ ही माँ के शोक का कारण बन रहे हो? इस तरह उनकी मर्मान्तिक बातें सुनकर॥ २६॥ क्रोध के मारे उसकी आँखे बन्द हो गईं। क्षणभर में ही क्रोध की मूर्च्छा पर विजय पाकर उनसे कहा—॥ २७॥ कम उम्र के कारण तुम मुझे व्यर्थ ही बच्चा कह रहे हो? पराक्रम और मेधा की कमी जिसके पास है उसे ही बुद्धिमान् बालक कहते हैं?॥ २८॥ अतः तुम सब अपने वीर्य, बल और शस्त्र का शीघ्र प्रदर्शन करो। इसके बाद मेरा वीर्य एवं अस्त्रबल देखोगे॥ २९॥ बेकार का बकवास बन्द करो, इसे शीघ्र व्यर्थ सिद्ध कर देता हूँ। हे राष्ट्रपालक!

विधास्यामि द्रुतं युष्मान् व्यर्थां वाचं विमुञ्चथ। अथैतद्वाक्यतो द्राग् नुन्नास्ते वै राष्ट्रपालकाः॥
ववर्षुरस्त्रजालानि सान्द्राऽऽसारानिवाऽम्बुदाः। शस्त्राऽऽसारास्तेऽभितस्तं पतन्तः प्रोल्लसन्ति वै॥
राकेन्दोर्ज्वलितोल्कानां सहस्रं पततामिव। आयातीं शस्त्रवृष्टिं स दृष्ट्वा लघुपराक्रमः॥ ३२॥
अस्त्रवृष्ट्या क्षणेनैको नाशयामास सर्वतः। खण्डितान्यष्टधा तेषां शस्त्राण्यासन् पृथक्पृथक्॥
शस्त्रनीहारमुक्तोऽथ कामो दिनमणिर्बभौ। तद्दृष्ट्वा शक्रमुख्यास्तं शशंसुः साधु साध्विति॥
अवाकिरन् पुष्पवर्षैर्वादयन्तोऽथ दुन्दुभीन्। पुनर्द्रुततरं कामस्तान् प्रत्येकं शरैस्त्रिभिः॥ ३५॥
विव्याध समरे तैस्ते नामशेषत्वमापिताः। कटिबाहुशिरोर्वङ्घ्रिपार्श्वकुक्षिषु दारिताः॥ ३६॥
ते खण्डिताः समभवन् खण्डैः कीर्णा वसुन्धरा। शोणितस्रोतसस्तत्र ववुरुष्मोदका इव॥ ३७॥
केशाऽन्त्रशैवला मीनीकृताङ्गुलिसहस्रकाः।ऊह्यन्मुण्डाऽसंख्यगणाः (?) पिशाचोत्सवदर्शनाः॥
मरालीभूतकाकौघाः तरङ्गीभूतहोतिकाः। फेनिलौघा महावेगा निम्नाऽऽवर्त्तशताऽऽकुलाः॥
भीरूणां हृदये कम्पं विदधाति पदे पदे। एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा कामस्याऽमोघविक्रमम्॥ ४०॥
इन्द्रादयोऽमराः स्वेष्टं सिद्धमित्येव सञ्जगुः। तत्राऽन्तरे चारगणाः श्रुत्वा राज्यस्य विप्लवम्॥
वीरव्रताय कथितुं ब्रह्मावर्त्ते समागताः। प्रविश्य राजधानीं ते द्वारिकान् प्रोचुरञ्जसा॥ ४२॥
विज्ञापयन्तु नः प्राप्तान् महाराज्ञे यशस्विने। कार्यमात्यन्तिकं ह्यस्ति द्रुतं नात्र विलम्ब्यताम्॥
इति श्रुत्वा चारवाक्यं द्वारिकाः सहसोत्थिताः। स्वनाथाय जगुर्वृत्तं चारोक्तं तं निशम्य तु॥ ४४॥
द्वारनाथो महाराजसविधे वेगवत्तरम्। गत्वाऽऽशीर्भिर्वर्धयित्वा कृताञ्जलिरुवाच तम्॥ ४५॥

इसका परिणाम अभी देखोगे॥ ३०॥ सघन मूसलाधार वर्षा की तरह चारों ओर से शर की वर्षा होने लगी। चारों ओर से सैनिकों की मूसलाधार की तरह शस्त्रवर्षा से वह काफी प्रसन्न होता रहा॥ ३१॥ पूनम के चाँद से जलते हजारों गिरते उल्का की तरह बरसते शस्त्रों को देख कर उस पराक्रमी बालक ने॥ ३२॥ एक ही क्षण में अपने अस्त्रों की वृष्टि से उनके बाणों को विनष्ट कर दिया। उनके शस्त्रों को अलग-अलग आठ-आठ खण्डों में काट डाला॥ ३३॥ शस्त्ररूपी कुहरे से मुक्त होकर बालक काम सूर्य की तरह चमकने लगा। यह देख कर इन्द्रादि देवगण साधु-साधु कहने लगे॥ ३४॥ आकाश में देवगण दुन्दुभि बजाने लगे, फूलों की वर्षा होने लगी। लेकिन शीघ्र ही काम ने तीन बाणों से प्रत्येक को॥ ३५॥ वेधकर समर में उन सबों को मार डाला। कमर, बाँहें, शिर, पैर, बगल तथा पेटों को चीर डाला॥ ३६॥ उनके शरीर के टुकड़ों से धरती पट गई। गर्मजल की तरह वहाँ लहू की गर्मधारा बह चली॥ ३७॥ उस खून की धारा में केश और अँतरी सेवार की तरह छाये थे। हजारों अँगुलियाँ मछलियों की तरह तैर रही थीं, असंख्य पिशाचगण मुण्ड लेकर महोत्सव मनाने लगे॥ ३८॥ कौओं के झुण्ड हंसिनी की तरह क्षेत्र को घेरे थे, अस्त्र-शस्त्रों के समूह तरंगायित थे। अत्यन्त वेग के साथ फेन के समूह घूम रहे थे॥ ३९॥ पग-पग पर डरपोकों का हृदय काँप रहा था। काम के इस अमोघ विक्रम और अद्भुत पराक्रम को देखकर॥ ४०॥ इन्द्रादि देवगण अपने अभीष्ट की सिद्धि मानने लगे। इसी बीच दूतों के समूह राज्य की इस विपत्ति के बारे में सुनकर॥ ४१॥ वीरव्रत को यह सूचना देने ब्रह्मावर्त पहुँचे। राजधानी पहुँचकर द्वारपालों से शीघ्र ही कहा॥ ४२॥ यशस्वी महाराज को हमारे आने की शीघ्र सूचना दो। अत्यन्त आवश्यक सूचना है। जल्द करो, विलम्ब नहीं करो॥ ४३॥ दूत की ये बातें सुनकर द्वारपाल सहसा उठकर खड़ा हुआ और शीघ्र महाराज के पास जाकर दूत के वाक्य का निवेदन किया॥ ४४॥ शीघ्र ही द्वारपाल महाराज के पास उपस्थित होकर अञ्जलिबद्ध होकर उनसे निवेदित किया॥ ४५॥ मन्त्रिमण्डल एवं सम्भ्रान्त पौरजनों के बीच सिंहासन पर महाराज वीरव्रत बैठे थे। अधीनस्थ मण्डलाधिपों की सूचना लेकर देशान्तर से

सिंहासनगतं मन्त्रिमुख्यैः पौरैरुपासितम् । मण्डलाधिपसङ्घातैर्दूतैर्देशान्तराऽऽगतैः ॥ ४६ ॥
भटैर्भटाधिपैः शूरैः प्रतिपक्षक्षयङ्करैः । निशितोत्खातसंवेल्लत्करवालकरोद्यतैः ॥ ४७ ॥
परीतं हेमभृङ्गस्थमृगेन्द्र इव संस्थितम् । महाराज यशःसूर्यहतशत्रुतमिस्रक ॥ ४८ ॥
प्राप्ताश्चारैः सोमदिशः प्रोचुरात्यन्तिकन्तु तैः । अग्रे यदाज्ञापयति देवस्तद्विदधाम्यहम् ॥ ४९ ॥
इति श्रुत्वा द्वारनाथवाक्यं राजेङ्गितस्ततः । वर्द्धनो मन्त्रिराट् प्राह प्रवेशय स मां द्रुतम् ॥ ५० ॥
आज्ञप्त एवं द्वारेशश्चारान् तत्राऽऽनयद्द्रुतम् । चारा दूरान्महीपालं नत्वा बद्धकराः स्थिताः ॥
तान् प्राह वर्द्धनोऽत्यन्तप्रियो राज्ञः प्रिये स्थितः । चारा निरामयं कच्चिद्देशेषु प्रविभावितम् ॥
राष्ट्रकोशेषु सेनासु प्रकृतिष्वस्ति साम्प्रतम् । आत्यन्तिकं वचो राज्ञः पादयोर्विनिवेद्यताम् ॥
तन्निशम्य नता भूयश्चारा बद्धकराम्बुजाः । नाथ ते वर्धते कीर्तिसितचन्द्रः प्रतिक्षणम् ॥ ५४ ॥
पराः पारं गताः सद्यो लोकालोकमहीभृतः । हिमवत्पार्श्वतः कश्चित्कुमारोऽर्कप्रतापनः ॥ ५५ ॥
औत्तरानष्टपालान् स निजघान महारणे । बद्धाः प्रकृतयः सर्वा देशो विप्लावितोऽद्य वै ॥ ५६ ॥
स एकाकी पञ्चसमः कमलाऽङ्घ्रिकराङ्ककः । हतास्तेन मुहूर्त्तेन कोटिशो राष्ट्रनायकाः ॥ ५७ ॥
एतद्विज्ञापितं देव भवानग्रे परायणम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा वीरव्रतस्तदा ॥ ५८ ॥
परामृशन् पार्श्वसंस्थं चापं शरधिमाशु वै । उत्थाय निर्ययौ सोमकाष्ठाभिमुखतस्तदा ॥ ५९ ॥
तदा शीघ्रं पुरो गत्वा वर्धनः प्रणिपत्य तम् । उवाचाऽमृतसंस्रावववाक्यं वाक्यज्ञकोविदः ॥ ६० ॥
क्षम्यतां नाथ भगवन् स्वयं तं शुभमेष्यति । विमृश्यकारिणं सम्यगशुभं दूरतस्त्यजेत् ॥ ६१ ॥

राजदूत भी आ रहे थे॥ ४६ ॥ दुश्मनों के लिए अत्यन्त भयङ्कर सेना एवं सेनापति हाथों में खुली एवं अत्यन्त तेज धार वाली तलवार लिये घूम रहे थे॥ ४७॥ शत्रु रूपी अन्धकार को अपनी कीर्तिरूपी सूर्य से विनष्ट करने वाले परिचारकों से घिरे मृगेन्द्र की तरह महाराज सिंहासन पर समासीन थे॥ ४८ ॥ नित्य स्थायी एवं समीपस्थ परिचारक ने विनम्रभाव से निवेदन किया—देव! उत्तरीय क्षेत्र से महत्त्वपूर्ण सूचना लेकर गुप्तचर आये हैं, आपके आदेश की प्रतीक्षा है॥ ४९ ॥ प्रमुख द्वारपाल का निवेदन सुनकर राजा का संकेत पाकर महामन्त्री वर्धन ने उन्हें शीघ्र प्रवेश की अनुमति दी॥ ५० ॥ आदेश मिलते ही प्रमुख द्वारपाल ने गुप्तचरों को सामने ला खड़ा किया। गुप्तचर राजा को प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया॥ ५१ ॥ राजा के अत्यन्त प्रियमन्त्री वर्द्धन ने दूत से पूछा—तुम जिस किसी राज्य से आये हो अपनी आँखों देखा हाल सुनाओ॥ ५२ ॥ राजकोष, सेना और प्रजा के कुशल तो हैं? अपनी विश्वस्त बातें तो श्रीमहाराज के चरणों में निवेदित करो॥ ५३ ॥ यह सुनकर वह गुप्तचर पुनः हाथ जोड़कर नतानन हो गया और कहा—प्रभु! आपका यश चारों ओर शुक्लपक्ष के चन्द्र की तरह प्रतिक्षण बढ़ रहा है॥ ५४॥ हे महाराज! दृश्य-अदृश्य जगत् के राजाओं से भिन्न किसी दूर क्षेत्र से कोई सूर्य के सदृश जलाने वाले राजकुमार ने॥ ५५ ॥ उत्तरीय अष्टपालों को युद्ध में ललकार कर मार डाला। सारी प्रजा को बाँध डाला। इस समय वह देश विध्वस्त हो गया है॥ ५६ ॥ वह अकेले पाँच की तरह है, अपने को लक्ष्मी का पुत्र कहता है। आपके करोड़ों सैनिकों को एक क्षण में ही मार डाला॥ ५७ ॥ मैं आपके चरणों का दास हूँ। अतः मैने आपसे यह निवेदित किया है। दूत की ये बातें सुनकर राजा वीरव्रत तब॥ ५८ ॥ कुछ सोचते हुए शीघ्र ही बगल में रखे तीर-धनुष उठाकर सोमकाष्ठ को अभिमुख कर बाहर निकल पड़े॥ ५९ ॥ तब महामन्त्री वर्द्धन ने महाराज के सामने जाकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए अमृतवाणी में कहा। वे वाक्यार्थ के स्वयं विशेषज्ञ थे॥ ६० ॥ हे भगवन्! हे नाथ! आप मुझे क्षमा करें। मैं भी उसी शुभ की कामना करता हूँ। जो कुछ भी काम विचारपूर्वक किया जाता है

मन्त्रिभिः सहितो मन्त्रं कृत्वा निश्चित्य चाऽऽगमम्। फलाऽवसानं कर्त्तव्यं विभज्य स्वमनीषया॥
एवं बहुप्रार्थितं तन्मत्रिणाऽऽकर्ण्य भूपतिः। सभां सभासदः पश्चाद्राजानमनु ये गताः॥ ६३॥
पञ्चाशदक्षौहिणीपा राज्ञोऽग्रे दूरतो गताः। ससेनास्तान् वर्धनस्तु संन्यवर्त्तयत द्रुतम्॥ ६४॥
पुनः सभां समागम्य नानारत्नोज्ज्वलान्तदा। आसीनाः स्वस्वसंस्थाने राज्ञा सह सभासदः॥
अनन्तरं महाराजं वर्धनः प्राह सान्त्वयन्। आकर्णय महाराज समाधाय मनो वचः॥ ६६॥
दण्डनीतिमुपाश्रित्य राजानः सुखभागिनः। विमृश्यकारी तत्राऽऽदौ श्लाघितस्तेन वच्म्यहम्॥
राज्ञा विमृश्य कर्त्तव्यं सर्वं सम्यक् सुमन्त्रिभिः। साम दानं भेददण्डौ प्रोक्ता नीतावुपायकाः॥
पूर्वपूर्वाऽसम्भवे तु तत्र स्वादुत्तरोत्तरम्। अत्राऽर्हः कतमोपायो भवेद्विमृश मन्त्रिभिः॥ ६९॥
क्वचिद्विमर्शरहितं कर्त्तव्यं सविधोद्भवे। अन्तरयति तत्राऽपि स्यात्तर्हि तदपीष्यते॥ ७०॥
व्यवस्य मन्त्रिभिश्चैतदुद्यमं क्रियतां ततः। एतच्छ्रुत्वा वचो राजा मन्त्रिणां मुखमैक्षत॥ ७१॥
ज्ञात्वेङ्गितं मन्त्रिणस्तु प्राहुः स्वस्वमतं तदा। कश्चित्सामोत्तमं प्राह दानमेकः परं परः॥ ७२॥
दण्डमाहाऽपरस्तत्र श्रुत्वा बहुविधं मतम्। राजा तूष्णीं स्थितः किञ्चिदीक्षाञ्चक्रेऽथ वर्धनम्॥
तदोत्थाय प्रणम्याऽग्रे वर्द्धनः प्राक्रमद्वचः। राजाऽन्यन्मन्त्रिभिः प्रोक्तं स्वस्वाऽवसरगोचरम्॥
सर्वे सदेव तत्राऽपि प्रकृते तद्विचार्यताम्। समे साम स्वपक्षा ये चाऽव्यये वाऽपरं बले॥ ७५॥
तदसत्त्वे द्वितीयं स्यात्परे परबलाश्रये। परस्य तत्र नो लाभो यत्राऽयः स्वस्य वै भवेत्॥ ७६॥

उसके पास अशुभ फटकते ही नहीं है॥ ६१॥ आने वाली घटना का निश्चय कर मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा कर, अपनी बुद्धि से कार्यों का विभाजन कर जो राजा काम करता है. उसका परिणाम शुभद होता है॥ ६२॥ इस तरह मन्त्रियों की बहुत प्रार्थना सुनकर राजा सभाभवन की ओर चल पड़ा, पीछे-पीछे सभासदों ने राजा का अनुगमन किया॥ ६३॥ राजा के आगे पचास अक्षौहिणी सेना निकल गई। आगे बढ़ते हुए सेना के साथ उन्हें शीघ्र ही मन्त्रिराज वर्द्धन ने रोक लिया॥ ६४॥ पुनः सभाभवन की ओर सब-के-सब लौट गये। विभिन्न रत्नों से निर्मित अपने-अपने आसनों पर राजा सहित सभासद बैठ गये॥ ६५॥ इसके बाद महाराज को सान्त्वना भरे शब्दों में समझाते हुए वर्धन ने कहा—महाराज! मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनें॥ ६६॥ मेरी दृष्टि में दण्डनीति का आश्रय लेकर ही राजे सुखभागी होते हैं। उनमें भी पहले जो विचारपूर्वक काम करते हैं, वे ही श्लाघ्य माने जाते हैं॥ ६७॥ विचारवान् मन्त्रियों के साथ अच्छी तरह विचार-विमर्श कर राजा को साम, दान और भेदनीति का प्रयोग करना चाहिए—ऐसा कहा गया है॥ ६८॥ पहले जो असम्भव होता है, उत्तरोत्तर उसके योग्य उपायों का चिन्तन विचारवान् मन्त्रियों के साथ विचार कर ही राजा को करना चाहिए॥ ६९॥ सुविधाजनक परिस्थिति में कहीं विमर्श रहित पारिस्थित कार्य भी कर लिया जाता है, उसमें भी अन्तर तो हो ही जाता है॥ ७०॥ अतः मन्त्रियों के साथ विचार कर ही आप कोई प्रयास करें। यह सुनकर राजा ने मन्त्रियों की ओर देखा॥ ७१॥ राजा का संकेत पाकर मन्त्रियों ने अपना अभिमत व्यक्त किया। किसी ने साम को उत्तम बतलाया तो किसी ने दान को॥ ७२॥ किसी ने दण्डविधान को उत्तम बतलाया। अनेक तरह के विचारों को सुनकर राजा चुप लगा गये। तब वर्धन ने अपनी इच्छा व्यक्त करना चाहा॥ ७३॥ तब राजा के आगे खड़े होकर वर्द्धन ने प्रणाम किया और अपना विचार व्यक्त करने का उपक्रम प्रारम्भ किया। अन्य मन्त्रियों के द्वारा राजा को बताये गये मत॥ ७४॥ सभी शाश्वत हैं, फिर भी अभी की जो स्थिति है, वे तो अलग ढंग से विचारणीय है। स्वपक्षीय स्थिति यदि सामान्य हो तो सम व्यवहार हो, अक्षयी अपर बल में॥ ७५॥ तो अशक्त में द्वितीय स्थान है। इससे भिन्न तो पराश्रित की बात हुई। जहाँ अपनी आय है वहाँ से प्रतिपक्षी को कोई लाभ नहीं है॥ ७६॥ वहाँ भी उसे नहीं रहने पर उसका चरम

तत्राप्यसति तस्याऽन्त्योऽपरः स्याद्बहुसंश्रयः । सोऽप्याद्याभ्यामेव भवेत् न चेद्बहुसमाश्रयः ॥
चतुर्थस्तत्र वै प्रोक्तः सर्वथाऽन्याऽनुपस्थितौ । यत्राऽऽद्येन सुसम्पाद्यं तत्रान्त्यं वै प्रयोजयन् ॥
अनर्थायैव तत्सर्वं न फलोदयमावहेत् । पराऽर्थस्य विशेषेण निश्चयान्नाऽद्ययोः स्थलम् ॥ ७९ ॥
आद्योत्थितत्वान्नाऽद्यस्य चाऽसहायात् परश्च न । तस्मादन्त्य उपायोऽत्र भाति शेषित इत्यसौ ॥
तत्र चाऽन्त्यमनालोच्य कुर्वन्नप्यवसीदति । बालः पञ्चाब्दक इति तेन राष्ट्रेश्वरा जिताः ॥ ८१ ॥
देवकार्यार्थमायातस्तस्माद्बलवदुत्तरम् । तत्राप्यर्थो न राज्यादौ तत्र दानं हि सत्तमम् ॥ ८२ ॥
दाने समुन्नतिर्नो चेत् समानं बलमिष्यताम् । एकः कुमारस्तेनाऽत्र हता राष्ट्राधिपाः क्षणात् ॥
कोटिशोऽतिबलास्तेन दैवं बलमिदं भवेत् । तत्राऽस्माभिः प्राकृतकैः फलं नैव समीहितम् ॥
तस्माद्राजन् कुलगुरुमुपतिष्ठ पिनाकिनम् । महादेवं तदंशेन सर्वं सेत्स्यति ते मतम् ॥ ८५ ॥
इतोऽन्यन्मे बुद्धिपथे न समायात्युपायकः । समं स्वस्वबलेनैव समाक्रामन्ति निम्नगम् ॥ ८६ ॥
तस्मान्महाराज मया विज्ञापितमिदं वचः । ससभ्यस्त्वं विचार्याऽथ सफलं कर्त्तुमर्हसि ॥ ८७ ॥
एतच्छ्रुत्वा वर्द्धनस्य मतं सर्वमतोत्तमम् । साधु साध्विति ते सभ्या मन्त्रिणोऽप्यूचुरादरात् ॥ ८८ ॥
राजा तदाकर्ण्य तदा महादेवस्य तोषणे । चकार निश्चलां बुद्धिं वर्द्धनोक्त्या विचक्षणः ॥ ८९ ॥
विप्रैराचार्यमुख्यैश्चाऽप्यनुज्ञातो यथाविधि ॥ ९० ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तरामसंवादे कामाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ ११३९ ॥

बहु संश्रयी ही होता है। वह भी पहले के ही दोनों में होना चाहिए न कि बहुसमाश्रयी में ॥ ७७ ॥ दूसरे की सर्वथा अनुपस्थिति में ही चौथे का प्रयोग कहा गया है। जहाँ पहले अर्थात् साम से ही कार्यों का सुसम्पादन हो वहाँ अल्प का प्रयोग ॥ ७८ ॥ वहाँ अनर्थ के लिए ही वे सब फलोदय को ही वहन करते हैं, परार्थ के विशेषणात्मक निश्चय से पहले के दोनों ही पकड़ाते हैं ॥ ७९ ॥ पहले की उपस्थिति में पहले की एवं दूसरे की सहायता का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए इसका केवल अन्तिम उपाय ही शेष बच जाता है ॥ ८० ॥ ऐसी स्थिति में अन्तिम उपाय पर बिना चिन्तन किये जो काम करता है उसे दुःख ही होता है। सोचने की बात है, एक पाँच साल का बच्चा हमारी सेना का इस तरह विनाश कर दे ॥ ८१ ॥ देवकार्य के निमित्त वह आया है, अतः उसमें उत्कृष्ट बल की सम्भावना है। उस पर भी उस बच्चे को राज्यप्राप्ति का कोई प्रलोभन नहीं है। अतः यहाँ दोनों पात्र ही उत्तम है ॥ ८२ ॥ दान में यदि समुन्नति अनुभव न हो तो समान बल की चेष्टा करे। सोचिये, एक छोटे बालक ने यहाँ हमारे सेनानायक तक को मार डाला ॥ ८३ ॥ करोड़ों शक्तिशाली सैनिकों को उसने मार डाला, यह कोई दैवी बल ही तो हो सकता है। इसमें हम प्राकृत फल की कामना कैसे कर सकते हैं? ॥ ८४ ॥ महादेव की कृपा से ही यह सब ठीक हो सकता है, यह मेरा विचार है। अतः आप अपने कुलगुरु पिनाकी शिव की शरण में जाय ॥ ८५ ॥ इससे भिन्न कोई अन्य उपाय मुझे नहीं सूझता, क्योंकि समान बलशाली पर समशक्तिधर को आक्रमण करना चाहिए ॥ ८६ ॥ इसलिए हे महाराज! मेरा यही विचार है, इस पर आप सभासदों से उचित परामर्श कर अपने उद्देश्य में सफल हों ॥ ८७ ॥ वर्द्धन के ये विचार जो सर्वोत्तम थे, सभासदों और मन्त्रियों ने साधुवाद के साथ स्वीकार किया ॥ ८८ ॥ बुद्धिमान् वर्द्धन की बात सुनकर राजा ने महादेव की शरण में जाने का निश्चय कर लिया ॥ ८९ ॥ इस कार्य के लिए ब्राह्मणों और आचार्यों से यथाविधि अनुज्ञात हो उन्होंने प्रस्थान किया ॥ ९० ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में दत्तात्रेय-परशुराम संवाद का कामाख्यान नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अथ राजा शुभेऽरण्ये तीर्थरोधसि निर्जने । राज्यं मन्त्रिषु संन्यस्य तपस्येव मनो दधे ॥ १ ॥
तत्र स्थितः शशाङ्कार्धशेखरं जगदीश्वरम् । ध्यायन्नेकाग्रचित्तेन जितबाह्येन्द्रियो बभौ ॥ २ ॥
एवं सर्वाऽऽत्मना राजा जलाऽऽहारो महेश्वरम् । उपस्थितो दिनानान्तु पञ्चकं तदनन्तरम् ॥
निराहारो निराधारो नियतेन्द्रियमानसः । ध्यायन् पिनाकिपादाब्जमूर्ध्वबाहुर्नरेश्वरः ॥ ४ ॥
बाह्यं वाऽप्यान्तरं वाऽपि न किञ्चिद्वेद तत्परः । एवं दिनत्रयेऽतीते चाष्टमे क्षणदामुखे ॥ ५ ॥
आविर्बभूव सर्वेशः साधितुं भक्तवाञ्छितम् । शारदाभ्रप्रतीकाशवृषस्कन्धविराजिते ॥ ६ ॥
आसने नूत्नरत्नौघचित्रजातिविचित्रिते । मुक्ताजालसमाकीर्णे राङ्कवाजिनकोमले ॥ ७ ॥
आसीनः स्फटिकाऽच्छाऽऽभो जटामण्डलमण्डितः । बालचन्द्रकृतोऽत्तंसस्त्रिनेत्रो नागकुण्डलः ॥
फुल्लपङ्कजपञ्चास्यः प्रसन्नवदनोडुपः । कुण्डलाऽहिफणान्यस्तमणिराजत्कपोलभूः ॥ ९ ॥
चतुर्बाहुलसच्छूलकपालमृगटङ्ककः । सर्पयज्ञोपवीताऽऽढ्यो रुद्राऽक्षस्रगलङ्कृतः ॥ १० ॥
व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः । व्यालेशमण्डितौघेन मण्डिताङ्गोऽतिसुन्दरः ॥ ११ ॥
रुद्राणीविलसद्वामवामाऽङ्कः करुणानिधिः । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राक्षस्रगलङ्कृतैः ॥ १२ ॥
पठद्रुद्राऽध्यायमन्त्रैः प्रमथैः परिवारितः । राज्ञः पुरोऽवस्थितः स महादेवः परात्परः ॥ १३ ॥

*** विमला ***

इसके बाद राजा मन्त्रियों पर अपना राज्य सौंपकर शुभ नदी के तट पर निर्जन वन में तप करने चले गये ॥ १ ॥ संसार के स्वामी भगवान् चन्द्रशेखर शिव के ध्यान में वहाँ वे इन्द्रियों को नियन्त्रित कर एकाग्रचित्त से तल्लीन हुए ॥ २ ॥ इस तरह सर्वात्मन् महादेव की लगातार पाँच दिनों तक केवल जल पीकर राजा ने उपासना की। उसके बाद ॥ ३ ॥ निराधार, निराहार, संयमित इन्द्रिय एवं नियन्त्रित मन वाले राजा ने बाँहें ऊपर उठाकर महादेव का ध्यान किया ॥ ४ ॥ राजा की तत्परता इतनी अधिक बढ़ गई कि उसे तन-बदन की सुधि तक नहीं रही। इस तरह तीन दिन बीत जाने पर रात के अष्टम प्रहर में भगवान् शिव भक्त की कामना-पूर्ति के लिए आविर्भूत हुए। उनका वर्ण श्वेत तथा वे वृषभारूढ़ थे ॥ ५-६ ॥ उनके वृषभासन में रंग-बिरंगे नये रत्न जड़े थे। मोतियों एवं मुक्ताओं के झालर लटक रहे थे। यह आसन रंकु नामक हिरण के कोमल बाल से बना था ॥ ७ ॥ स्फटिक की तरह स्वच्छ आभा वाले आसन पर वे विराजित थे। शिर पर जटामण्डल सुशोभित था। उस पर अर्द्धचन्द्र सुशोभित था। तीन आँखें थीं। नाग के कुण्डल लटक रहे थे ॥ ८ ॥ खिले कमल की तरह पाँच मुख थे। उस पर प्रसन्न वदन चन्द्र विराजित थे। फणियल साँप के मणि से कपोल सुशोभित थे ॥ ९ ॥ चारों हाथों में त्रिशूल, खप्पर, मृग और कुठार शोभ रहे थे। साँप के यज्ञोपवीत तथा रुद्राक्ष के माले गले में लटक रहे थे ॥ १० ॥ व्याघ्रचर्म पहने थे और हाथी की चमड़ी ओढ़े थे। नागराज उनके आभूषण थे, वे अति ही सुन्दर लग रहे थे ॥ ११ ॥ वे करुणा के सागर थे। उनकी बायीं ओर भवानी विराजित थी, देह में भस्म लपेटे गले में रुद्राक्ष की माला शोभ रही थी ॥ १२ ॥ प्रमथगण अर्थात् शिव के गण भूत-प्रेत

प्रोवाच दृष्ट्वा राजानं ध्येयमात्रात्मना स्थितम्। मधुराऽक्षरसंयुक्तं सम्बोध्य कृपया शिवः ॥
तदा प्रमथसङ्घस्य कोलाहलमहाध्वनेः । ध्येयात्परावृत्तमनः प्रोन्मील्य नयनेऽग्रतः ॥ १५ ॥
अपश्यद्देवदेवं तमम्बिकाप्रमथाऽन्वितम्। प्रणतो दण्डवद्भूमौ मूर्ध्न्याऽऽहितकराञ्जलिः ॥ १६ ॥
तद्दर्शनोत्सवोद्दच्चन्द्रमाश्च द्विगुणाङ्ककः । आनन्दाऽश्रुपरीवाहप्लावितोरःस्थलाऽवनिः ॥

भूयो भूयः प्रणम्यैवं प्रस्तोतुमुपचक्रमे ॥ १८ ॥
शङ्कर भक्तहितङ्कर जगतां रक्षक दुष्टसुशिक्षक
ते पादाम्भोजं विबुधेशानामपि नो लभ्यं करुणाब्धे।
तत्ते भवतो निर्मलदृष्ट्या पश्याम्यद्य महाफलदं
तस्मान्मत्तो धन्यो नाऽन्यो मातुषलोके जगदीश ॥ १९ ॥
प्राग्जन्मार्जितपुण्यसमूहैराप्तं दुर्लभमानुष्यं
तत्र च गात्रं बलवन्नेत्रञ्जातं स्वान्तं विमलतरम्।
एवं सत्यपि करुणासिन्धुं त्यक्त्वाऽन्यत्र रता मनुजा
ये तान्मूढान्नरपशुभूतान् धिग्धिक् स्वार्थच्युतिहेतून् ॥ २० ॥
हस्तौ तावकपदपरिचर्यासक्तौ वाणी गुणकथने
नेत्रे श्रीशिवमूर्तिनिरीक्षाकर्मणि चित्तं ते तत्त्वे।
कर्णौ लीलाऽकर्णननिरतौ चरणौ देवपरिक्रमणे
कालो यस्य त्वेवं यातो धन्याद्धन्यः स एवाऽत्र ॥ २१ ॥
शम्भो तावकपदसेवायां क्षणमपि येन स्थितमत्र
तस्य बुधेशपदं तृणतुल्यं मानुषभाग्यं कियदुक्तम्।

उन्हें घेरकर रुद्राध्याय के मन्त्र पढ रहे थे। ऐसे परात्पर महादेव राजा के सामने उपस्थित हो गये॥ १३ ॥ ध्यानमग्न राजा को देखकर बड़ी मीठी आवाज में उन्होंने उनसे कहा॥ १४॥ प्रमथगणों के कोलाहल से राजा का ध्यान टूट गया। उन्होंने आँखें खोलकर देखीं॥ १५॥ भगवती भवानी एवं प्रमथगणों के साथ देवाधिदेव महादेव को देखकर अञ्जलि बाँधकर माथे से लगाकर धरती पर डण्डे की तरह गिरकर प्रणाम किया॥ १६॥ शिव-दर्शन के लिए समुद्यत चन्द्रमा दूनी छटा से लहरा रहे थे। आँखों से बहते आनन्द के आँसू छाती से टघर कर धरती को भिंगा रहे थे॥ १७॥ बार-बार उन्हें इस तरह प्रणाम कर उनकी स्तुति प्रारम्भ कर दिये॥ १८॥ हे शङ्कर! आप भक्तों के लिए हितकर हैं, संसार के रक्षक हैं, दुष्टों को दुष्टता की शिक्षा देने वाले हैं। हे करुणा के सागर! आपके चरणकमल तो देवराज के लिए भी दुर्लभ हैं। अतः महाफलप्रद आपको मैं निर्मल दृष्टि से देख रहा हूँ। अतः हे जगदीश! आज मैं धन्य हूँ, मत्त हूँ। मुझसे अधिक भाग्यवान् धरती पर कोई दूसरा मनुष्य नहीं है॥ १९॥ पूर्वजन्म के अर्जित पुण्यसमूह से ही दुर्लभ मनुष्य-तन मिलता है; सुन्दर एवं शक्तिशाली शरीर, सुन्दर दृष्टि और स्वच्छ हृदय मिलता है। फिर भी इसके बावजूद मात्र क्षुद्रस्वार्थ के लिए आप करुणासागर को छोड़कर अन्यत्र मन लगाते हैं, ऐसे नरपशु को अनेकों धिक्कार हैं॥ २०॥ जिनके हाथ आपकी परिचर्या में लगे हैं, वाणी गुण-कथन में आसक्त है, आँखें शिवमूर्ति के निरीक्षण में लगी हैं, चित्त शिवतत्त्व के चिन्तन में लगे हैं, कान शिवलीला सुनने में लगे हैं, पैर शिव की परिक्रमा कर रहे हैं; इन कर्मों में संलग्न व्यक्ति धन्य से भी अधिकतर धन्य है॥ २१॥ हे भगवान् शम्भो! इस धरती पर एक क्षण

एवं सत्यपि मम या वाञ्छा क्षुद्रार्थेषु निविष्टा सा
लोके · विद्वत्परिहसनार्था भूयादीश्वर चिरकालम्॥ २२॥
तस्मान्मह्यं दिश देवेश प्रेमोच्छित्तिं विषयेषु प्रायो
जानन्नपि भुवि लोको विषयो दुःखनिदानमिति।
वाञ्छन्त्येव सदा तव मायामोहितचित्ता शिव मयि ते
करुणादृष्टिर्विलसतु दीनेऽनन्यशरण्ये प्रणतोऽस्मि॥ २३॥
एवं संस्तुत्य देवेशं शङ्करं लोकशङ्करम्।
प्रेमविह्वलितस्वान्तो दण्डवत् प्रणतो भुवि। अथ देवोऽवरुह्याऽऽशु वृषाद्गौरीयुतस्तदा॥ २४॥
उपसृत्य समीपे तं राजानं मूर्ध्नि सोऽस्पृशत्। उवाच प्रेममधुरसुन्दरं वचनं शिवः॥ २५॥
वत्सोत्तिष्ठ द्रुतं ब्रूहि प्रियं किं तेऽभिवाञ्छितम्। यन्न लभ्येत तल्लोके मद्भक्तस्य न विद्यते॥
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा प्रोत्थायाऽञ्जलिसंयुतः। शिवाऽङ्घ्रिदर्शनोदञ्चद्वैराग्यभरमन्थरः॥ २७॥
महादेव प्रियं मेऽद्य यदि त्वं दातुमिच्छसि। तर्हि मे विषयाऽऽसक्तिं समूलां विनिवर्त्तय॥ २८॥
नेच्छामि किञ्चित्त्वत्पादसेवनादन्यदल्पकम्। कृपा पूर्णा यदि मयि नय मां त्वत्समीपतः॥ २९॥
राज्ञ एवं वचः शम्भुर्निशम्य प्राह सुस्मितम्। वत्सैतदस्तु कालेन मत्सामीप्यं भविष्यति॥ ३०॥
परन्तु सद्यस्त्वं गच्छ कामं जय दुरासदम्। तस्य जेता भुवि दिवि प्रायो नैवाऽस्ति मामृते॥ ३१॥
तस्मात् कामं विनिर्जित्य प्रजाः पालय धर्मतः। एवं तद्वचनं श्रुत्वा ननाम भुवि दण्डवत्॥ ३२॥
प्राह देवं महेशानं न वाञ्छामीति ते रितम्(?)। प्रसादं कुरु ते पादसेवां हित्वा महत्तरम्॥ ३३॥

भी जिसने आपके चरणों की सेवा कर ली है उस मनुष्य के भाग्य का क्या कहना है? उसे तो इन्द्र का पद भी तृणतुल्य ही लगेगा। इसके बावजूद हे महादेव! मेरी कामना तो अति क्षुद्र है। इस लोक में बुद्धिमान् जनों के लिए यह बहुत दिनों तक परिहास का विषय होगा॥ २२॥ हे देवेश! मेरे मार्ग का आप निर्देश करें, विषयों में मेरी आसक्ति को विनष्ट कर दें। प्रायः धरती पर सभी जानते हैं कि दुःख का कारण विषय-वासना ही है, फिर भी आपकी माया से मोहित सभी विषय-वासना की ही कामना करते हैं। हे शिव! आप मुझ पर दया करें, मैं दीन हूँ, आपका अनन्य शरणागत हूँ, प्रणाम करता हूँ॥ २३॥ इस तरह लोककल्याणकारी भगवान् शिव को प्रेमविह्वल हृदय से धरती पर गिरकर पुनः प्रणाम किया। तब भगवान् शिव गौरी के साथ बैल से नीचे उतर गये॥ २४॥ शिव ने समीप जाकर धरती पर झुके राजा के शिर का स्पर्श किया। फिर प्रेम-मधुर सुन्दर वचन राजा से कहा॥ २५॥ बेटे! उठो, शीघ्र बतलाओ, तुम्हारी क्या कामना है। इस संसार में मेरे भक्तों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ २६॥ शिव की ये बातें सुनकर उसके मन में शिवदर्शन से जो वैराग्य उत्पन्न हुआ था, वह कुछ शिथिल हो गया॥ २७॥ हे महादेव! यदि आप मुझे मेरा अभीष्ट देना ही चाहते हैं तो मुझमें विषय-वासना के प्रति जो आसक्ति है, उसे समूल नष्ट कर दें॥ २८॥ मुझे अब आप के चरणों की सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। यदि आपकी कृपा हो तो मुझे अपने चरणों के समीप ही बुला लें॥ २९॥ राजा की यह प्रार्थना सुनकर मुस्कराते हुए शिव ने कहा—वत्स! कालान्तर में तुम्हारी यह इच्छा पूरी होगी। समय आने पर मैं तुम्हें अपने पास बुला लूँगा॥ ३०॥ अतः तुम अभी शीघ्र ही जाकर काम पर विजय प्राप्त करो। क्योंकि धरती और स्वर्ग में मेरे अतिरिक्त उसे कोई जीत नहीं सकता॥ ३१॥ इसलिए काम को जीतकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करो। शिव की यह आज्ञा शिरोधार्य कर उसने धरती पर झुककर पुनः प्रणाम किया॥ ३२॥ आपके अतिरिक्त मुझे किसी वस्तु की कामना

त्रिलोकेशत्वमपि मे माऽस्तु किं सार्वभौमता। वद देव त्वया प्रोक्तं ददामीत्यभिवाञ्छितम्॥
तदन्यथयितुं कस्मान्नाऽहं शत्रुजयं वृणे। त्वत्सान्निध्यं यदि न मे तर्ह्यहं देवसंस्थितः॥ ३५॥
तपस्येव ततो देव वरं फल्गु न मे मतम्। इति श्रुत्वा नृपवचो भूयः प्राह महेश्वरः॥ ३६॥
शृणु राजन् त्वया पूर्वं कामस्य जयहेतवे। तपश्चरितमेतस्मात्तद्व्यर्थं न भविष्यति॥ ३७॥
यदि पूर्वं मत्समीपप्राप्तये पतितं भवेत्। तर्हि तत्फलमेव स्यान्न भवेद्भावना वृथा॥ ३८॥
तस्मादिदं फलं नैव मदुक्तं व्यर्थतामियात्। गच्छ कामं रणे जित्वा सार्वभौमत्वमास्थितः॥ ३९॥
अन्ते मज्ज्ञानमासाद्य मत्समीपं प्रपत्स्यसि। मत्प्रसादात्तव मनः सदा निर्वासनं भवेत्॥ ४०॥
इत्युक्त्वा पश्यतः शम्भुरन्तर्धानं गतस्तदा। ततो राजा महादेवं प्रणम्य प्रेमभावतः॥ ४१॥
शिवाज्ञां मानयन्नन्तर्निर्मलः सम्बभूव ह। एतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वाञ्जित्वा जनान् भुवि॥ ४२॥
बद्ध्वा समागमद्ब्रह्मावर्त्तं तत्र बहिःस्थिताः। दृष्ट्वा जनाः कुमारं तं सौन्दर्यौघपरिप्लुतम्॥
निबद्धनयनास्तत्र विस्मृताऽऽत्मगृहादयः। यद्यदङ्गं येन दृष्टं तत्सौन्दर्याऽऽहृतेक्षणाः॥ ४४॥
दारुमूर्त्या इव जना निश्चेष्टास्तत्र संस्थिताः। तदा कामो नागरिकानाह रोषाऽरुणेक्षणः॥ ४५॥
हे जना मां महाराजं वदन्तु प्राप्तमन्तिके। शीघ्रं मच्छास्तिमथ वा युद्धं वा स्वीकरोतु सः॥ ४६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा कामस्याऽत्यद्भुतं जनाः। पुरा श्रुतं महाभीमवीर्यं प्राप्तं निशाम्य ते॥ ४७॥
तत्र सुनागराः सर्वे पलायनपरा भवन्। हाहेति पुत्र पुत्रेति मातर्भ्रातः सखे इति॥ ४८॥

नहीं है। मुझ पर कृपा करें, आपकी चरण-सेवा के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए॥ ३३॥ मुझे तीनों लोकों का ईश्वरत्व भी नहीं चाहिए फिर सार्वभौमता का प्रश्न ही क्या है? आपने ही तो कहा है, अभिलषित ही तुम्हें दूँगा॥ ३४॥ मैंने तो शत्रुजय की कामना नहीं की है तो आपकी बात निरर्थक कैसे होगी? आपका सामीप्य यदि मुझे न मिला तो मैं पुनः तप करूँगा॥ ३५॥ तपस्या ही मेरे लिए श्रेष्ठ है, अन्य तो क्षुद्र है। राजा की ये बातें सुनकर महादेव ने उनसे फिर कहा॥ ३६॥ सुनो राजा! पहले तुमने काम-विजय के लिए ही तो यह तपस्या की थी तो वह निरर्थक कैसे होगी?॥ ३७॥ यदि तुम पहले मेरे सामीप्य के लिए प्रार्थना करते तो ठीक था, क्योंकि तब तुम्हें उसी का फल मिलता। भावना कैसे व्यर्थ होगी?॥ ३८॥ इसलिए जाओ, पहले काम-विजय कर सार्वभौमत्व प्राप्त करो। मेरी ये बातें व्यर्थ तो होंगी नहीं॥ ३९॥ अन्त में मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरा सामीप्य भी प्राप्त करोगे। मेरी कृपा से तुम्हारा मन सदैव वासना रहित होगा॥ ४०॥ यह कहकर शिव उसी क्षण तिरोहित हो गये। उसके बाद राजा प्रेमविह्वल होकर शिव को प्रणाम कर॥ ४१॥ उनकी यह आज्ञा मान कर भीतर से निर्मल बन गया। इस बीच काम ने धरती पर सब लोगों को जीतकर॥ ४२॥ सबको बाँधकर ब्रह्मावर्त पहुँच गया। वहाँ वह बाहर ही रुका रहा। रूप-सौन्दर्य के उस खजाने को जिसने देखा, उसकी आँखें वहीं बँध गईं। अपने आपको तथा गृह-परिवार को भी वे भूल गये। जिस अंग को जिसने देखा उसकी आँखें वहीं बँध गईं॥ ४३-४४॥ कठपुतली की तरह जो जहाँ थे, वहीं निश्चेष्ट खड़े रह गये। इधर क्रोधारुण आँखों से देखते हुए काम ने नागरिकों से कहा—॥ ४५॥ हे नागरिको! मैं तुम्हारे पास आया हूँ, तुम सब या तो मुझे अपने महाराज के रूप में स्वीकार कर मेरे शासन को स्वीकार करो अथवा युद्ध करो॥ ४६॥ काम की ये बातें सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गये। फिर उनसे कहा—पहले हम लोगों ने तुम्हारे बल-पराक्रम के बारे में सुना था, अब तो तुम्हें सामने ही देख रहे हैं। यह कहकर सभी नागरिक वहाँ से भागने लगे। कोई अपने बेटे को बुलाता तो कोई माँ को, कोई भाई को तो कोई साथी को॥ ४७-४८॥ बाहर निकलो, भागो, इस तरह रोते-चिल्लाते वे भागने लगे। उनकी चिल्लाहट

निर्गच्छध्वं पलायध्वमित्याक्रन्दः समाबभौ। तत् परम्परया श्रुत्वा जनाः पौरास्तु सर्वतः॥ ४९॥
निर्जग्मुः स्त्रीबालवृद्धा आह्वयन्तः परस्परम्। एवं क्षणात्तन्नगरमुद्वेलमिव सागरम्॥ ५०॥
व्याक्षुब्धं जनसन्दोहाक्रन्दकोलाहलेन तत्। दुर्गपाला भटाः सेनानायकौघाः सहस्रशः॥ ५१॥
वाहनानि समारुह्य शस्त्रास्त्रधृतबाहवः। एतस्मिन्नन्तरे तस्य सेनानीः सुधृतिर्द्रुतम्॥ ५२॥
महावीर्यबलः सेनां प्रस्थाप्य नगराद्बहिः। द्वारे निवेश्य द्वाराधिपतीन् प्रागादितः क्रमात्॥
कोणेष्वपि महाशूरभटान् संस्थाप्य गुल्मशः। वर्धनस्य गृहं प्रागात् द्रुतं वाहनमास्थितः॥ ५४॥
वर्धनस्तावदेवाऽऽशु संस्थाप्याऽन्तःपुरे जनान्। रक्षकान् रक्षणार्थाय दूतान् शीघ्रगमानपि॥
राज्ञे निवेदितुं प्रेत्य स्वयं मन्त्रिभिरावृतः। निवेद्य राजपुत्रेषु कामस्याऽऽगमनं ततः॥ ५६॥
निर्जगाम स्वभवनात् सुधृतिं समवैक्षत। आगत्य वर्धनं नत्वा प्रोवाच स चमूपतिः॥ ५७॥
शृणु वर्द्धन मद्वाक्यं सेनासेनाधिपैः सह। प्रेषिता कामरोधाय विहितं द्वाररक्षणम्॥ ५८॥
गुल्मा निवेशिताः कोणे नागराः सन्निवर्त्तिताः। पलायनपराः सर्वे गच्छाम्यहमितः परम्॥ ५९॥
राजपुत्रानुपादातुं शत्रुञ्जयमुखान् ततः। तान् पुरस्कृत्य तरसा गच्छामि समराऽवनिम्॥ ६०॥
एवं वदति तत्काले सुधृतौ राजपुत्रकाः। सहिताः स्वस्वसेनाभिर्निर्जग्मुरमितौजसः॥ ६१॥
शत्रुञ्जयः शत्रुहा च भीमः समरतापनः। चत्वारो राजतनयाः शक्रतुल्यपराक्रमाः॥ ६२॥
सन्नद्धगात्रा मुकुटकुण्डलाऽऽद्यैरलङ्कृताः। वज्रसंहननाः प्रोद्यद्बहुशस्त्रास्त्रकोविदाः॥ ६३॥
रथेषु सूर्यवर्चःसु सदश्वेषु विराजिताः। चामरैर्वीज्यमानास्ते स्तुता वन्दिगणैर्मुहुः॥ ६४॥
सुधृतिस्तान् सुसङ्गम्य नत्वाऽऽरुह्य गजाधिपम्। जगाम राजपुत्राणामग्रे सर्वान् समाक्षिपन्॥

सुनकर देखा-देखी सभी नागरिक भागने लगे॥ ४९॥ औरत, बच्चे, बूढ़े सभी एक-दूसरे को पुकारते बाहर भागने लगे। एक क्षण में ही लगा कि सागर में तूफान आ गया हो॥ ५०॥ जन-समूह के रोने-चिल्लाने के कोलाहल से वातावरण संक्षुब्ध हो गया। दुर्गपाल, सेना और सेनानायकों के हजारों व्यक्ति॥ ५१॥ अस्त्र और शस्त्र हाथों में लेकर अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर निकल पड़े। इसी बीच सेनानी सुधृति शीघ्र ही॥ ५२॥ नगर से बाहर महाबलशाली सेना को रखकर द्वाराधिपतियों द्वारा रक्षा के लिए नियुक्त कर क्रमशः बाहर निकलने लगा॥ ५३॥ महाशूर एवं जुझारू सैन्य-टुकड़ियों को कोणों में संस्थापित कर वर्द्धन के घर से बाहर सवारियों पर चढ़कर निकल पड़े॥ ५४॥ इसी बीच वर्द्धन ने अन्तःपुर की सुरक्षा के लिए रक्षकों को नियुक्त कर शीघ्रगामी दूतों को॥ ५५॥ राजा को सूचना देने के लिए भेजकर स्वयं मन्त्रियों से घिरे राजपुत्रों को काम के आगमन की सूचना देकर॥ ५६॥ अपने घर से बाहर निकल आये। सेनानायक सुधृति ने ज्यों ही उन्हें बाहर निकलते देखा, आकर उन्हें प्रणाम कर निवेदित किया॥ ५७॥ हे वर्द्धन! द्वाररक्षा की व्यवस्था कर सैन्य-टुकड़ियों को सेनानायक के साथ काम को बाहर रोकने के लिए भेज चुका हूँ॥ ५८॥ भागते हुए नागरिकों को लौटा लिया है। हर कोणों में सैन्यदल को नियुक्त कर दिया है। अब मैं जा रहा हूँ॥ ५९॥ शत्रुओं पर विजय पाने के लिए राजपुत्रों को आगे कर शीघ्र ही अब मैं समरभूमि में जा रहा हूँ॥ ६०॥ ऐसा कहते हुए अत्यन्त तेजस्वी सेनानायक सुधृति सेना के साथ राजकुमारों को साथ लेकर बाहर निकल गये॥ ६१॥ शत्रुञ्जय, शत्रुहा, भीम और समरतापन ये चारों राजकुमार इन्द्र के समान पराक्रमी थे॥ ६२॥ शस्त्रास्त्र से सुसज्जित देहवाले, मुकुट-कुण्डलादि से सुशोभित, वज्र प्रहार के लिए तैयार, अस्त्र-शस्त्रों के जानकार॥ ६३॥ रथों में सूर्य के रथ के घोड़े की तरह पराक्रमी घोड़े जुते थे। उस पर बैठे राजकुमारों को चामर डुलाये जा रहे थे। चारण और बन्दी स्तुति गान कर रहे थे॥ ६४॥ सेनापति सुधृति उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम कर गजराज पर

उवाच राजपुत्रोऽथ वर्धनं कुलवर्धनम् । अप्रमत्तैः कुरु भटै रक्षणं सेनया युतैः ॥ ६६॥
सान्तःपुरे स्वनगरे चारैर्वृत्तं निवेदयन् । इति श्रुत्वा राजसुतवाक्यं स्वीकृत्य तद्वचः ॥ ६७॥
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो वचस्तत्कालसम्मितम् । राजपुत्र महाभाग गच्छ त्वं सह सेनया ॥ ६८॥
कर्त्तव्यमत्र यत्किञ्चिन्नगरे मयि जीवति । न हास्यति त्वत्प्रसादात् प्रायः कृत्यन्तु साम्प्रतम् ॥ ६९॥
कृतमेवाऽवजानीहि भवताऽपि रणोद्यमे । सावधानेन योद्धव्यं त्वया सेनाधिपैः सह ॥ ७०॥
एतस्मिन्नन्तरं तत्र प्राप्तः कुलपुरोहितः । विद्यापतिर्ब्राह्मणौघवृतस्तेजोमयः शुचिः ॥ ७१॥
तं दृष्ट्वा राजपुत्रास्ते रथादुत्तीर्य सत्वरम् । अभिवाद्य गुरुं विप्रान् प्रश्रयाऽवनताः स्थिताः ॥
ततो विद्यापतिः विप्रैराशीर्भिरनुयोज्य तान् । फालेषु तिलकं कृत्वा सम्पृश्याऽङ्गानि सर्वशः ॥
रक्षां समकरोन्मन्त्रैर्भटावन्नामसंयुतैः । अग्रे शिवो रक्षतु त्वां शूलपाणिस्त्रिलोचनः ॥ ७४॥
पिनाकी पृष्ठतः पार्श्वे पाशहस्तो महेश्वरः । मूर्धानं जटिलस्तेऽव्याद्धस्तौ सर्पविभूषणः ॥ ७५॥
कालाग्निनयनो वक्षः कटिं करोटित्वक्पटः । रुद्राक्षभूषणः कुक्षिं कपाली पादयुग्मकम् ॥ ७६॥
पुष्पवद्दृक् पृष्ठदेशं सर्वतः श्रीशिवङ्करः । भस्मनैव विधायाऽङ्गरक्षां दत्त्वाऽऽशिषः शुभाः ॥
कारयित्वा महादानान्यपि नानाविधानि च । प्रणतस्तै राजपुत्रैर्विप्रैर्विद्यापतिर्ययौ ॥ ७८॥
अथ सर्वे जनाश्चक्रुर्ज्जयशब्दं दिविस्पृशम् । सिंहनादं भटास्तद्वच्छङ्खनादश्च सैनिकाः ॥ ७९॥
दुन्दुभीन् पटहान् भेरीन् वादयन्तः सुकाहलान् । निर्जग्मुः सैनिका राजपुत्रान् संवृत्य सर्वतः ॥

सवार होकर सबको इधर-उधर हटाते हुए राजकुमारों के आगे-आगे चलने लगे ॥ ६५ ॥ कुलश्रेष्ठ सचिव वर्द्धन को राजकुमारों ने कहा–सेना के साथ सुरक्षा-प्रहरियों को सावधान कर दो ॥ ६६ ॥ अन्तःपुर के साथ नगरों में दूत के द्वारा यह सूचना भिजवा दो। राजकुमार की इन बातों को राजमन्त्री ने स्वीकार कर लिया ॥ ६७ ॥ तत्कालोपयुक्त श्रेष्ठ वचन मन्त्री ने कहा–हे महाभाग! ओ राजकुमार! आप सेना के साथ आगे बढ़ें ॥ ६८ ॥ नगर की सुरक्षा में जो कुछ भी कर्त्तव्य है, मेरे जीवित रहते उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। आपकी कृपा से प्रायः सब कुछ सम्पन्न हो चुका है ॥ ६९ ॥ युद्ध के मैदान में आप भी अपना कर्त्तव्य ठीक से समझ लें। सेनापतियों के साथ पूरी सावधानी के साथ आप युद्ध करेंगे ॥ ७० ॥ इसी बीच वहाँ कुलपुरोहित पहुँच गये। वे तेजोमय विद्वान् ब्राह्मणों के समूह के साथ थे ॥ ७१ ॥ उन्हें देखकर राजपुत्रों ने रथ से उतर कर उन्हें प्रणाम किया, फिर प्रश्रयावनत होकर सामने खड़े हो गये ॥ ७२ ॥ उसके बाद विद्यापति ब्राह्मण ने अन्य ब्राह्मणों के साथ उन्हें आशीर्वद दिया तथा मांगलिक दृष्टि से उनकी देह का स्पर्श किया ॥ ७३ ॥ योद्धाओं की तरह ये मन्त्र आपकी रक्षा करेंगे। आगे शूलपाणि, त्रिलोचन भगवान् शिव आप सबकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ पीछे से आपकी रक्षा पिनाकी करें। बगल से हाथ में पाश लिये महेश्वर, शिर की रक्षा जटाधारी शिव एवं हाथों की रक्षा सर्प आभूषण वाले शिव करें ॥ ७५ ॥ कालाग्नि आँखों वाले हृदय की रक्षा करें। खोपड़ी के वस्त्र वाले कमर की रक्षा करें। रुद्राक्ष आभूषण वाले पेट की रक्षा करें। कपाली दोनों पैर की ॥ ७६ ॥ सूर्य-चन्द्र या पुष्पवत् प्रसन्नवदन महादेव आपकी रक्षा पृष्ठदेश की करें। चारों ओर से शिवशङ्कर रक्षा करें, भस्मधारी सर्वाङ्ग की रक्षा करें। ऐसा शुभ आशीर्वचन देकर ॥ ७७ ॥ उनसे अनेक तरह के महादान दिलवा कर प्रणत राजकुमारों को आशीष देकर विद्यापति ब्राह्मण चले गये ॥ ७८ ॥ इसके बाद वहाँ उपस्थित लोगों ने जयघोष से आकाश को गूंजा दिया। योद्धाओं ने सिंहनाद किया तथा सैनिकों ने शङ्खनाद किया ॥ ७९ ॥ राजकुमारों को चारों ओर से घेरकर नगाड़े, धौंसे, ताशे और ढोल बजाते सैनिकों ने प्रस्थान किया ॥ ८० ॥ घोड़ों का हींसना, हाथियों की चिंग्घाड़, वीरों के हुङ्कार, रथों की घड़घड़ाहट, धनुष की टंकार, ताल ठोकना

अश्वानां ह्रेषितं वीरहुङ्कारा गजचीत्कृताः। रथघोषा ज्यानिनादा आस्फोटाः क्ष्वेलना अपि॥
मिलिता रोदसीमध्ये विदारणकरा इव। उत्सिक्तोदधिवत्सेना नगरद्वारतस्तदा॥८२॥
निर्जगाम महाभीमा भीरुहृत्स्फोटदर्शना। द्वितीयसागरमिव भूमध्ये संस्थितिं गतम्॥८३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
कामाख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १२२२॥

और खेल भी॥८१॥ धरती और आकाश के बीच रणस्थल की तरह, सब मिलकर उमड़े हुए सागर की तरह सेना नगरद्वार से॥८२॥ डरपोकों के दिल को दहला देने वाली महाभयङ्कर आवाज के साथ धरती पर दूसरे समुद्र की तरह बाहर निकली॥८३॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
कामाख्यान नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १२२२॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अथ तां महतीं सेनां सुधृतिर्व्यभजत् क्रमात् । शत्रुञ्जयं राजपुत्रं दशाऽक्षौहिणीसंयुतम् ।। १ ।।
मध्ये निवेश्य पुरतः स्वयं कुञ्जरसंस्थितः । विंशत्यक्षौहिणीयुतः स्थितः सेनाधिपैर्वृतः ।। २ ।।
वामे शत्रुहणं विंशत्यक्षौहिणीयुतं तथा । दक्षे भीमं सन्निवेश्य विंशत्यक्षौहिणीयुतम् ।। ३ ।।
विंशत्यक्षौहिणीयुतं पश्चात् समरतापनम् । तद्बहिः पृष्ठभागे तु शूलखेटकधारिणः ।। ४ ।।
महाशूराः सिंहसमाः समरेष्वनिवर्त्तिनः । लक्षकोटिसहस्राणां कोटिकोटिशतैर्मिताः ।। ५ ।।
गदापरिघहस्तास्तु तावन्तो दक्षतः स्थिताः । शक्तिचक्रधरा वामे स्थिताः शूरास्तथाऽमिताः ।। ६ ।।
एवं सन्नद्धसेनानां विभज्य सुधृतिस्तदा । राजपुत्राय विज्ञाप्य स्वयमग्रे गजस्थितः ।। ७ ।।
कामस्याऽभिससाराऽग्रे विकर्षन् महतीं चमूम् । तदन्तरे नारदस्तु जगामाऽऽखण्डलाऽग्रतः ।। ८ ।।
तमपश्यच्छतमखो रजताऽद्रिसमप्रभम् । कृष्णाजिनपरीधानं भस्मदिग्धकलेवरम् ।। ९ ।।
शारदेषज्जलयुतजीमूतमिव खे स्थितम् । वायुवेगादिवाऽऽयान्तं वृत्तान्ताऽम्बुसुवृष्टये ।। १० ।।
कामयुद्धाय लोकाय गजराजोपरि स्थितम् । विबुधेशो गजात्तस्मादवरुह्य मुनेस्तदा ।। ११ ।।
चरणौ शिरसा नत्वा सभाज्य विधिदृष्टतः । पुरः स्थितस्तदा प्राह नारदो विबुधेश्वरम् ।। १२ ।।

✻ विमला ✻

इसके बाद सेनापति सुधृति ने उस महती सेना का क्रमशः विभाजन कर दिया। उनमें से दस अक्षौहिणी सेना कुमार शत्रुञ्जय के साथ कर दी ।। १ ।। बीच में इन्हें रखकर स्वयं हाथियों के झुण्ड में आगे चलते हुए बीस अक्षौहिणी सेना के साथ घिरे हुए सेनाधिप साथ थे ।। २ ।। इस राजकुमार के बायें बीस अक्षौहिणी सेना के साथ कुमार शत्रुहण था और दायें बीस अक्षौहिणी सेना के साथ भीम कुमार था ।। ३ ।। पीछे बीस अक्षौहिणी सेना के साथ कुमार समरतापन था। उससे बाहर पिछले भाग में त्रिशूल और गदाधारी सैनिक थे ।। ४ ।। ये वीर समरभूमि से बिना विजय के लौटने वाले नहीं थे, सिंह के समान शक्तिशाली थे, महाशूरवीर थे तथा हजारों, लाखों, करोड़ों संख्या में थे ।। ५ ।। ये सैनिक हाथ में मुद्गर एवं लोहे के डण्डे लिये दाहिने थे और इतनी ही संख्या में बायीं ओर हाथ में चक्र एवं शक्ति धारण किये शूरवीर थे ।। ६ ।। इस तरह सेनापति सुधृति ने सेना को टुकड़ियों में विभाजित कर सारी सूचनाओं से राजकुमार को अवगत करा स्वयं हाथी पर सवार होकर जागे उपस्थित हुआ ।। ७ ।। कामविजय के लिए इतना बड़ा सैन्य-दल लेकर आगे बढ़ते देखकर देवर्षि नारद देवराज इन्द्र के सामने जा खड़े हुए ।। ८ ।। चाँदी के पहाड़ की तरह कान्ति वाले इन्द्र ने इन्हें देखा। ये शरीर में विभूति रमाये काले हिरण की चमड़ी लपेटे थे ।। ९ ।। शरद् ऋतु जलयुक्त मेघ की तरह ये आकाश में सुन्दर वृत्तान्त रूपी जलवृष्टि के लिए वायुवेग से आते दिखलायी पड़े ।। १० ।। लोकहित के लिए युद्ध में निरत काम को देखने के लिए, हाथी पर सवार इन्द्र ने नारद मुनि को आते देखा। अतः हाथी रोककर इन्द्र उससे नीचे उतर गये ।। ११ ।। आनन्दमग्न होकर सम्माननीय दृष्टि से उन्हें देखते हुए ऐरावत हाथी से नीचे उतर कर इन्द्र ने उनके चरणों में प्रणाम किया। नारदजी ने भी उनसे कहा ।। १२ ।। हे इन्द्र! क्या तुम

सुत्रामन् किं पश्यसि त्वं राज्ञस्तु महती चमूः। सुसन्नद्धाऽत्र सम्प्राप्ता पश्याऽनन्ता समुद्रवत्॥ १३॥
भवदर्थं कथञ्चैकः कामः संसाधयिष्यति। यद्यपि श्रीमहत्त्वेन साध्यमेवाऽतिदुष्करम्॥ १४॥
मूर्त्तिप्रधानं ना वीर्यं किन्तु बीजगुणात्तु तत्। उपलं वटधानाया स्थूलमप्यवनीगतम्॥ १५॥
प्ररोहयेन्नैव वटशाखाञ्चाप्यतिपल्लवाम्। तथाऽपि राज्ञः सेना सा त्वसङ्ख्या काम एकलः॥
विपरीतमिवाऽऽभाति तस्माद्देवगणैर्वृतः। कामपृष्ठं समाश्रित्य कामं लक्ष्मीञ्च तोषय॥ १७॥
अन्यथा सा जगन्माता तुभ्यं क्रुध्यत्यवज्ञया। इति नारदसद्वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् ततः॥ १८॥
युक्तमित्येव तज्ज्ञात्वा गन्तुमेव मनो दधे। ततो नत्वा देवमुनिं सहितो देवसेनया॥ १९॥
आजगाम कामपार्श्वं मरुत्पितृगणैर्वृतः। प्राप्तं शक्रं देवगणैर्दृष्ट्वा कामः प्रसन्नधीः॥ २०॥
आत्मानं पूजितं मत्वा देवैः शक्रमुवाच ह। देवेश पश्य महतीं सेनामर्णवसन्निभाम्॥ २१॥
भीरुहृत्कम्पनकरीं नानाध्वजविचित्रिताम्। वायुतुन्नाऽभ्रसदृशैर्धावद्भिरभितो रथैः॥ २२॥
गजैर्नीलाद्रिसदृशैर्दानधारासु निर्झरैः। रक्तकम्बलसन्ध्याऽभ्रैः चित्रधातुविचित्रितैः॥ २३॥
अश्वैः कल्लोलसदृशैः सर्वतः परिवारिताम्। एवं शक्रः कामवचो निशम्य प्राह तत्तदा॥ २४॥
शृणु काम कथञ्चैकः सर्वतः संस्थितां चमूम्। नानाशूरसमाक्रान्तां योधयस्यतिदारुणाम्॥ २५॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य कामः क्रोधाऽरुणेक्षणः। शृणु शक्र मृषा पूर्वं मया नोक्तं कदाचन॥ २६॥
इमां सेनां निमेषाऽर्द्धात् पश्यतस्तव संक्षयम्। नयामि त्वं न सन्देहं कुरु सत्यं वदामि ते॥ २७॥

देख रहे हो? महाराज वर्धन की इस महती सेना को, युद्ध के लिए तत्पर समुद्र की तरह अनन्त इस सेना को देखो तो॥ १३॥ आपके निमित्त अकेला क्या कर लेगा? यद्यपि लक्ष्मी के प्रभाव से अकेले भी काम के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है॥ १४॥ पराक्रम मूर्तिप्रधान नहीं होता है, वह तो बीजगुणाश्रयी होता है; पत्थर पर वटबीज एवं विस्तृत धरती पर भुने हुए जौ या धान की तरह॥ १५॥ पल्लवित हरित बरगद की डाल धरती पर जैसे पेड़ नहीं बन जाती। फिर भी राजा वर्धन की असंख्य सेना और दूसरी ओर अकेला काम॥ १६॥ मुझे इस युद्ध का परिणाम तो विपरीत दीख पड़ता है। अतः देवसेना के साथ काम की मदद कर लक्ष्मी एवं काम को प्रसन्न करो॥ १७॥ अन्यथा जगन्माता महालक्ष्मी तुम्हारी अवज्ञा से क्रुद्ध होगी। देवराज इन्द्र नारद की ये बातें सुनकर तब॥ १८॥ 'ठीक ही तो इनका कहना है' मानकर चलने को तैयार हो गये। देवमुनि को प्रणाम कर उसके बाद देवसेना के साथ॥ १९॥ पवन और पितृगणों के साथ कामदेव के पास पहुँच गये। उधर देवगणों के साथ इन्द्र को अपनी सहायता से आया देख काम अतिप्रसन्न हुए॥ २०॥ अपने आप को देवताओं से पूजित मानकर शक्र से कहा—हे देवराज! सागर की तरह उमड़ती राजा की इस सेना को देखिए॥ २१॥ डरपोकों के दिल को दहला देने वाली, अनेक तरह की पताकाओं से सुसज्जित वायुवेग को भी धकेलती राजा की सेना रथ के चारों ओर दौड़ रही है॥ २२॥ गजवाहिनी काले पहाड़ की तरह लग रहे हैं, उनसे चूते मदजल निर्झर की तरह शोभ रहे हैं। उन पर लाल कम्बल सान्ध्यकालीन आकाश की तरह चित्र-विचित्र धातु से शोभ रहे हैं॥ २३॥ घोड़े लहर की तरह चारों ओर से घेर रहे हैं। काम की इन बातों को सुनकर इन्द्र ने कहा॥ २४॥ हे काम! चारों ओर से घिरे अतिदारुण शूरवीरों से आक्रान्त सेना से अकेले तुम कैसे लड़ोगे?॥ २५॥ इन्द्र की इन बातों को सुनकर काम की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। सुनो इन्द्र! काम करने से पूर्व व्यर्थ वकवास मेरी आदत नहीं है॥ २६॥ इस सेना को आधे पल में ही मैं बिलकुल विनष्ट कर देता हूँ। मैं सच कहता हूँ, इसमें सन्देह मत करो, तुम केवल देखते रहो॥ २७॥ हे इन्द्र!

यावदेव न सम्प्राप्ता मत्समक्षमियं चमूः । तावदेव विलम्बं त्वं जानीहि विबुधेश्वर ॥ २८ ॥
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य देवाः सेन्द्रपुरोगमाः । अपूजयन् साधुशब्दैर्विस्मिताः सर्वतः स्थिताः ॥ २९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सेना प्राप्ता समीपतः । कामस्तदा तां महतीं सेनां दृष्ट्वा स्वयं पुरः ॥ ३० ॥
ससार पुरतस्तस्याऽऽविस्फारितधनुष्करः । यावज्जिगमिषुः कामस्तावदिन्द्रो बुधैर्वृतः ॥ ३१ ॥
परिवार्य बभूवाऽग्रे कामं योद्धुं महाभुवि । यावत्सेनाद्वयमुखं युक्तं तावच्चमूद्वये ॥ ३२ ॥
महाशब्दः समभवत् युद्धवादित्रनिर्गतः । मृदङ्गभेरीपटहशृङ्गकाहलशङ्खजः ॥ ३३ ॥
सिंहनादनेमिघोषमिश्रः प्रतिभयङ्करः । प्रवृत्तः शस्त्रसम्पातः सघोषः सेनयोर्द्वयोः ॥ ३४ ॥
विबुधानां मानवानां परस्परमभूद्रणः । तत्र शूरा महाकाया मृगेन्द्रसमविक्रमाः ॥ ३५ ॥
नानाशस्त्राऽस्त्रकुशलाः शत्रुपक्षभयङ्कराः । समेता द्वन्द्वशस्तत्र समशस्त्रास्त्रवाहनाः ॥ ३६ ॥
रथिभिस्तत्र रथिनो गजस्थैर्गजिनस्तदा । अश्विभिश्चाऽश्विनः पादक्रमिणः पादचारिभिः ॥ ३७ ॥
धानुष्कैर्धनुषा युक्ता गदाहस्तैर्गदाधराः । खड्गिनः खड्गकुशलैर्धृतभल्लैश्च भल्लिनः ॥ ३८ ॥
भुशुण्डीशक्तिपरशुपरिघप्रासशूलिनः । भुशुण्डीशक्तिपरशुपरिघप्रासशूलिभिः ॥ ३९ ॥
योद्धुं समुद्यतास्तत्र क्रमेण समभावतः । एवं न्यायेन समरो दैत्यैर्देवैः समेधितः ॥ ४० ॥
मुहूर्त्तमभवत् साम्यान्निश्चले(?)नाप्यनाकुलः । धर्मयुद्धरताः सर्वे परस्परजयैषिणः ॥ ४१ ॥
छिद्राऽन्वेषपराः शस्त्राण्युत्सृजन्तोऽन्तरेऽन्तरे । अथ मर्त्यसुरानीकद्वयं सम्मिलितं तदा ॥ ४२ ॥

जब तक यह सेना मेरे सामने नहीं आ जाती तभी तक तुम इस काम में देर समझो ॥ २८ ॥ देवताओं के साथ इन्द्र काम की यह बात सुनकर विस्मित एवं चकित होकर साधुवाद देने लगे ॥ २९ ॥ इसी बीच सेना समीप आ गई। काम ने सामने से आती इस महती सेना को देखा और उसके सामने अपने आप को खड़ा कर दिया ॥ ३० ॥ जब तक काम आगे बढ़े उससे पहले ही धनुष पर तीर चढाये इन्द्र के साथ देवगण काम के आगे आ गये ॥ ३१ ॥ अपने परिचरों से घिरे, युद्धभूमि में काम-विजय के लिए राजकुमार आगे आयें, तब तक दोनों ओर की सेना टुकड़ियों में आमने-सामने टकरा गई ॥ ३२ ॥ ढोल, डफली, धौंसे, नगाड़े, सींग की तुरही, ताशे और शङ्ख जैसे जूझारू बाजे से निकली भयङ्कर आवाज से आकाश गूँज उठा ॥ ३३ ॥ सिंहनाद और रथ के पहिये की घड़घड़ाहट की मिश्रित प्रति भयङ्कर ध्वनि से आकाश गूँजने लगा। दोनों सेनाओं के आक्रमण हथियारों की आवाज आने लगी ॥ ३४ ॥ देवता और मनुष्यों का परस्पर युद्ध होने लगा। इस युद्ध में विशालकाय वनराज की तरह वीर-पराक्रमी योद्धागण थे ॥ ३५ ॥ अनेकविध शस्त्रास्त्र संचालन में पटु, शत्रुपक्ष के लिए भयावह योद्धागण दोनों ही पक्षों में समान बलशाली एवं समान शस्त्रास्त्र तथा समान रथ वाले थे। कोई किसी से घट-बढ़ नहीं थे ॥ ३६ ॥ रथी रथियों से, गजारोही गजारोहियों से, अश्वारोही अश्वारोहियों से, पैदल पैदलों से भिड़ गये ॥ ३७ ॥ इसी तरह धनुर्धारी धनुषधारियों से, गदा वाले गदाधरों से, तलवार वाले तलवारधारियों से तथा भाले वाले भालाधारियों से भिड़ने लगें ॥ ३८ ॥ भुशुण्डी, बर्छी, फरसे, लोहे की गदा, फलक वाले हथियार तथा त्रिशूल धारी इन्हीं हथियार वाले विपक्षियों के साथ भिड़ रहे थे ॥ ३९ ॥ क्रम से समान स्तर पर सभी न्यायपूर्वक युद्ध के लिए उद्यत थे। यह देवासुर संग्राम का समस्तरीय युद्ध था ॥ ४० ॥ लगभग एक घण्टा परस्पर देखने में ही बीत गया। समबलता के कारण वे निश्चल थे। उनमें आकुलता नहीं थी, परस्पर विजय की चाह लिये वे धर्मयुद्ध में निरत थे ॥ ४१ ॥ छिद्रान्वेषण में तत्पर वे बीच-बीच में अस्त्र फेंकते रहे। इस तरह देवता और मनुष्य के सैनिक परस्पर एक-दूसरे के समीपवर्ती हो गये ॥ ४२ ॥

युद्धं समभवद्धोरं तुमुलं लोमहर्षणम् । आह्वयन्तो रोषवाक्यैर्भ्रूकुटिकुटिलाऽनना: ।। ४३ ।।
स्थिरीभव मत्समक्षं पश्य प्राणान् हरामि ते । तव त्राता न चान्योऽस्ति प्रेषयामि यमक्षयम् ।। ४४ ।।
धिक् त्वामनार्य बहुधा मुधा कत्थस्ययं क्षण: । जीवितान्तकरस्तेऽद्य धात्रा क्लृप्तो न चाऽन्यथा ।।
हत: पश्य मया त्वं वै न पलाय्य गमिष्यसि । इत्यादि वाक्यं बहुधा वदन्तन्ते परस्परम् ।। ४६ ।।
एवं युद्धे जायमाने महाघोरे भयङ्करे । क्रोधेनाऽन्धीकृता: सर्वे नाऽविदु: स्वं परं तथा ।। ४७ ।।
बुधैर्बुधानां मर्त्यानां मर्त्यैर्युद्धं तदाऽभवत् । सेनासंक्षुब्धरजसा पटलेनाऽवृतं नभ: ।। ४८ ।।
हेतिवर्षसमाक्रान्त्या ध्वान्तीभूतश्च सर्वत: । एवं स्थितेऽतिरोषेण भूयोऽप्यन्धीकृता युधि ।। ४९ ।।
नाऽविदन् स्वं परं वाऽपि जघ्नु: स्वीयान् स्वयं रुषा । न विदुस्तेऽतिरोषेण भुवं खं वा दिशस्तथा ।।
दिनं रात्रं तथाऽऽत्मानं युद्धं शस्त्रमपीतरत् । सम्प्रहारैकसंस्कारशेषा जघ्नु: परस्परम् ।। ५१ ।।
एतस्मिन्नन्तरे शक्रसुतो वसुगणैर्वृत: । जगामैरावतसुतस्कन्धारूढोऽत्यमर्षण: ।। ५२ ।।
जयन्त: सुधृतेरग्रे महत्या देवसेनया । तयो: समभवद्युद्धं मुहूर्त्तमतिदारुणम् ।। ५३ ।।
तदा सुधृतिसेनाग्रैर्निहतेन्द्रमहाचमू: । छिन्नपादशिरोहस्तपार्श्वाऽक्षिश्रोत्रनासिका: ।। ५४ ।।
सुरसङ्घा गतप्राणा: पतिता: क्ष्मातले तत: । गतप्राणास्तत्र केचिदल्पप्राणास्तथाऽपरे ।। ५५ ।।
मूर्च्छिताश्चेतरे चान्ये भीत्या त्वत्र मृषा मृता: । निमील्य नेत्रे प्राणानां गतिं रुद्ध्वा चिरं बलात् ।।
वीरे दूरस्थिते नेत्रकोणेनाऽप्यवलोकनम् । कुर्वत: श्वासमपि च रेचयन्ति शनै: शनै: ।। ५७ ।।

भयङ्कर अव्यवस्थित द्वन्द्वयुद्ध रोंगटें खड़े हो जाने वाला प्रारम्भ हो गया, उत्तेजक वाक्यों में वे एक-दूसरे को ललकारने लगें। क्रोध से उनकी भौंहें टेढी हो गयीं।। ४३।। रुको, मेरे सामने देखो, कैसे तुम्हें मारकर यमलोक क्षण में पहुँचा देता हूँ।। ४४।। अरे अनार्य! तुम्हें धिक्कार है, तुम्हारा वकवास बेकार है। तुम्हारे जीवन का आज अन्तिम दिन है। विधाता का यह लेख तुम्हारे लिए अमिट है।। ४५।। यहाँ से तुम भाग भी नहीं सकोगे। आपस में ऐसी बातें एक-दूसरे को वे कहते थे।। ४६।। इस तरह होने वाले घोर भयङ्कर युद्ध में क्रोध में अन्धे होकर वे अपने और पराये की पहचान भी खो दिये।। ४७।। देवताओं के साथ देवताओं का और मनुष्यों के साथ मानवों का तब युद्ध प्रारम्भ हो गया। सेना की भाग-दौड़ से उठने वाली धूलि से आकाश भर गया।। ४८।। अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा से चारों ओर अन्धेरा छा गया। ऐसे युद्ध में क्रोध से भी सैनिक अन्धे हो गये।। ४९।। अपने और पराये का बोध समाप्त हो गया, क्रोधान्ध होकर स्वयं आत्मीय जनों को ही मार डाला। अतिक्रोध के मारे धरती, आकाश और दिशाओं का ज्ञान भी उन्हें नहीं रहा।। ५०।। दिन-रात हथियार को अपने से अलग किये बिना एक-दूसरे पर प्रहार करना ही जिनका शेष संस्कार बचा था। वे आपस में एक-दूसरे को मार रहे थे।। ५१।। इसी बीच अति असहिष्णुता के कारण इन्द्रपुत्र जयन्त वसुगणों से घिरा ऐरावत के पुत्र की पीठ पर सवार होकर रणभूमि में पहुँच गया।। ५२।। सुधृति के आगे देवसेना के साथ जयन्त आ भिड़ा। एक घण्टे तक उन दोनों के बीच अत्यन्त दारुण युद्ध हुआ।। ५३।। तब सुधृति की सेना ने इन्द्रसेना को मार गिराया। सिर, पैर, हाथ, बगल, आँख, कान, नाक कटे थे अर्थात् किसी-न-किसी तरह सब विकलांग हो गये।। ५४।। देवसमूह इसके बाद प्राण को छोड़कर धरती पर गिर गये। कुछ तो युद्ध में हत हुए और कुछ आहत हो गये।। ५५।। कुछ तो मूर्च्छित हो गये, कुछ मरने का स्वांग रचकर डर से धरती पर लेट कर बलपूर्वक आँखें बन्द कर प्राणवायु की गति को रोके रहें।। ५६।। वीर दूर से ही आँखें घुमाकर देख रहे थे। वे अपनी साँसों को भयाक्रान्त हो धीरे-धीरे छोड़ रहे थे।। ५७।। ऐसी तबाही देखकर डर के मारे बचे

एवं निशाम्य कदनमन्ये भीत्याऽभिदुद्रुवुः । भग्नामेवं देवचमूं दृष्ट्वा वसुगणास्तदा ॥ ५८ ॥
सावित्रप्रमुखास्तत्र सुधृतेस्तां महाचमूम् । उद्वेलसागरमिव प्रवृद्धां जघ्नुरञ्जसा ॥ ५९ ॥
वसुभिर्हन्यमाना सा सुधृतेर्महती चमूः । ननाश तीव्रवातेन वर्षाभ्रततिवद्द्रुतम् ॥ ६० ॥
केचिद्द्विधा कृता मध्ये केचिच्छिन्नकराऽङ्घ्रयः । केचिदर्धाङ्गविधुराः केचिच्च तिलशः कृताः ॥
एवं चमूं विलोक्याऽन्ये दुद्रुवुर्भयकातराः । अशक्नुवन्तः सरितः शोणितानां व्यतिक्रमे ॥ ६२ ॥
इतस्ततश्च धावन्तो वसुभिस्ताडिता भृशम् । अप्राप्य शरणं किञ्चित्पतिता रक्तसिन्धुषु ॥ ६३ ॥
अगाधरक्तसलिले निमग्नास्तत्र केचन । बाहुभ्यां प्रतरन्त्यन्ये मज्जन्तश्च पदे पदे ॥ ६४ ॥
मृतान् गजान् समासाद्य तस्थुः प्राणपरीप्सवः । अन्तरीपमिवाऽऽसाद्य दूरात् प्रोह्य समागताः ॥
अन्ये रथाङ्गमासाद्य तेरुर्नौकामिवाऽर्णवे । अश्वान् रथान् तथा केचित्तीर्णाः शोणितवाहिनीम् ॥
सेनापराभवं दृष्ट्वा सुधृतेस्तनुजस्तदा । रणधीरो महाशूरः वज्रसंहननो युवा ॥ ६७ ॥
रथमारुह्य सन्नद्धो मणिहेमपरिष्कृतम् । धनुर्विस्फारयन् प्रागाद्वसूनां पुरतो रुषा ॥ ६८ ॥
प्राहोच्चैः सैनिकान् स्वीयान् पलायनपरान् तदा । निवर्त्तध्वं निवर्त्तध्वं नोचितं वः पलायनम् ॥
अभिद्रवन् तं धर्मश्च जहाति श्रीर्यशस्तथा । भर्तृपिण्डस्य निकृतिर्युद्धे देहसमर्पणम् ॥ ७० ॥
एवं वदन् वसुगणं समासाद्य वचोऽब्रवीत् । धिग्वोऽबलान् कातरांश्च यदनुद्रुत्य सर्वतः ॥ ७१ ॥
शस्त्रैः प्रहरथाऽलं तन्मां पश्यत पुरः स्थितम् । शूरैर्विगर्हितः पन्था भीतानां यदनुद्रवः ॥ ७२ ॥

सैनिक भागने लगे। देवसेना की यह दुर्दशा देखकर वसुगणों ने॥ ५८॥ सुधृति की उस महती सेना को, जो अपने तट की सीमा तोड़कर उफनते सागर की तरह बढ़ रही थी, उन्हें ठीक ढंग से मारना शुरू कर दिया॥ ५९॥ बादल के समूहों को जैसे झंझावात शीघ्र ही विनष्ट कर देता है, ठीक उसी तरह वसुओं के द्वारा पिटती सुधृति की सेना विनष्ट हो गई॥ ६०॥ कुछ लोग बीच से ही दो टुकड़ों में कट गये, कुछ लोगों के पैर कट गये, कितने अर्द्धांग हो गये और कुछ लोग छोटे-छोटे टुकड़ों में काट दिये गये॥ ६१॥ सेना की ऐसी दुर्दशा देखकर भयातुर होकर बचे-खुचे लोग भागने लगे। किन्तु लहू की बहती नदी को लाँघना उनके वश की बात नहीं थी॥ ६२॥ वसुओं से अत्यधिक पिटकर इधर-उधर भागते कहीं भी सहारा न पाकर अन्ततः वे उस लहू के सागर में कूद पड़े॥ ६३॥ कुछ तो अथाह लहू के सागर में डूबकर मर गये और कुछ बाँहों से तैरते हुए पग-पग पर गोता खा रहे थे॥ ६४॥ जान बचाने के इच्छुक लोग मरे हाथियों को पाकर उसी पर टिक गये। वे ऐसे लगते थे जैसे दूर से आये थके लोग किसी दीप का सहारा लिये हों॥ ६५॥ सागर में जैसे कोई व्यक्ति छोटी नाव के सहारे तैरता हो, उसी तरह उस लहू के सागर में तैरने लगे और कोई रथ या घोड़े के सहारे लहू के सागर को पार कर रहे थे॥ ६६॥ तब अपनी सेना की पराजय देखकर परम पराक्रमी युवा, वज्र-प्रहार करने में चतुर सेनापति सुधृति का पुत्र रणधीर॥ ६७॥ क्रोध से तमतमाते हुए मणि और सोने से सजे रथ पर सवार होकर वसुओं के आगे धनुष टँकारते हुए युद्ध के लिए उपस्थित हो गया॥ ६८॥ ऊँची आवाज में अपने भागते हुए सैनिकों को ललकारते हुए कहा—लौट आओ, तुम सभी लौट आओ, तुम्हारा इस तरह भागना उचित नहीं है॥ ६९॥ तुम्हारा युद्धक्षेत्र से पलायन धर्म पर आक्रमण है, लक्ष्मी और यश का परित्याग है। भर्तृपिण्ड से उद्धार तो युद्ध में देह-समर्पण से ही होता है॥ ७०॥ ऐसे बोलते हुए वसुगणों के सामने जाकर कहा–तुम्हें धिक्कार है, ऐसे दुर्बलों और कातरों पर प्रहार करना अन्याय है॥ ७१॥ मैं तुम्हारे आगे ही खड़ा हूँ, शस्त्रों का प्रहार मुझ पर करो। डरे हुए पर आक्रमण तो वीरों

पश्यामि भवतां वीर्यं प्रदर्शयत मे द्रुतम् । तदन्वहं स्ववीर्येण तोषयाम्यचिरेण वः ॥ ७३ ॥
वसवस्तद्वचः श्रुत्वा रणधीरोदितं तदा । युगपत्परिवव्रुस्तं रसं मधुकरा इव ॥ ७४ ॥
तथापि रणधीरस्तु वसुमध्ये रथस्थितः । न चचाल सुवर्णाद्रिर्यथोपगिरिसंवृतः ॥ ७५ ॥
अथ तं शरवर्षेण ववर्षुर्वसवोऽभितः । तथा मुसलशक्त्यृष्टिकुन्तभल्लाऽसिवृष्टिभिः ॥ ७६ ॥
वसुशस्त्राऽतिवर्षेण सम्प्लुतं सेनयाऽऽत्मजम् । दृष्ट्वा मृतं मेनिरे तं सैनिका दूरसंस्थिताः ॥
कलभं सर्वतः सिंहैराक्रान्तमिव कश्चन । न समर्थो मोचयितुं विषण्णवदनो भवन् ॥ ७८ ॥
अथ तां शस्त्रवृष्टिं स लघुहस्तः क्षणाऽर्द्धतः । एकैकमष्टधा छित्त्वा तान्जघान त्रिभिः शरैः ॥
प्रत्येकं निशितैस्तच्च दृष्ट्वाऽद्भुतपराक्रमम् । शशंसुर्देवता मर्त्याः साधु घोषैश्च सर्वतः ॥ ८० ॥
ततस्ते विविधैरस्त्रैर्जघ्नुर्मण्डलसंस्थिताः । सोऽपि शीघ्रं तमस्त्रौघं प्रत्यस्त्रैरहनत् क्रमात् ॥ ८१ ॥
एकोऽष्टभिर्महद्युद्धमकरोद्भ्रमिवद्भ्रमन् । एवं मुहूर्तमभवद्युद्धं वसुगणैस्तदा ॥ ८२ ॥
भ्रमन्नावर्त्तवद्युद्धं सर्वेषां सम्मुखेऽकरोत् । ततः प्रत्येकमुरसि विव्याध निशितैः शरैः ॥ ८३ ॥
ध्वजानेकैकशः छित्त्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् । सारथीनां शिरो भल्लैश्चकर्त्ताऽतिद्रुतं तदा ॥ ८४ ॥
निशितेन क्षुरप्रेण हृदि विव्याध तान् वसून् । हतध्वजाऽश्वयन्तारो वसवः सुदृढाऽर्द्दिताः ॥ ८५ ॥
मूर्च्छिताः पतिता भूमौ कृत्तमूला इव द्रुमाः । हा हा कारो महानासीद्वसून् दृष्ट्वा निपातितान् ॥

के लिए निन्दनीय मार्ग है॥ ७२॥ तुम्हारा पराक्रम तो मैं देख ही रहा हूँ। अगर ताकत है तो मुझे अपनी वीरता दिखलाओ। मैं अपने पराक्रम से शीघ्र तुम्हें सन्तुष्ट कर देता हूँ॥ ७३॥ रणधीर की ये बातें वसुओं ने जब सुनी तो जैसे रस पर मधुमक्खियाँ टूट पड़ती हैं उसी तरह चारों ओर से वे टूट पड़ें॥ ७४॥ फिर भी जैसे उपगिरियों से प्रच्छन्न सुवर्णगिरि की तरह वसुओं के ही रथ पर सवार रणधीर थे॥ ७५॥ इसके बाद उसे वसुओं ने चारों ओर से घेरकर बाणों की वृष्टि कर दी तथा मुसल, शक्ति, दुधारी तलवार, बर्छी, भाले और तलवारों की वर्षा होने लगी॥ ७६॥ वसुओं की शस्त्रवृष्टि में डूबे रणधीर को मरा हुआ ही समझकर सैनिक दूर ही ठिठके-सहमे खड़े रहे॥ ७७॥ चारों ओर सिंह से आक्रान्त हाथी के बच्चे को कोई भी छुड़ाने में जैसे असमर्थ होता है उसी तरह अत्यन्त दुःखी सैनिक हुए॥ ७८॥ अपने छोटे हाथों से बालक रणधीर ने उस शस्त्रवृष्टि को एक-एक कर आठ-आठ टुकड़ों में काट डाला तथा तीन शरों से आधे क्षण में सब को मार गिराया॥ ७९॥ तेज हथियारों से उन्हें कटते तथा उस बालक के अद्भुत पराक्रम को देखकर सभी देवता और मानव चारों ओर से ऊँची आवाज में साधुवाद देते हुए प्रशंसा करने लगे॥ ८०॥ उसके बाद गोलाकार क्रम में व्यवस्थित एक-एक सैनिक को उसने मार डाला। उसने भी शीघ्र ही उनके अस्त्रसमूहों को क्रमशः विनष्ट करना शुरू किया॥ ८१॥ वह रणधीर भी आठ वसुओं के बीच घिरे भँवर की तरह घूम-घूमकर महान् संग्राम शुरू कर दिया। इस तरह एक घण्टे तक वसुओं के साथ वह युद्ध करता रहा।॥ ८२॥ आठों वसुओं के साथ वात्याचक्र की तरह घूम-घूम कर सबके सामने वह युद्ध करता रहा। उसके बाद प्रत्येक की छाती को उसने तेज तीरों से बेध डाला॥ ८३॥ उनके रथों पर लगी पताकाओं को टुकड़ों में काटकर गिरा दिया तथा रथ में जुते चार-चार घोड़ों को मारकर सारथियों की गर्दन भाले से शीघ्र ही काट डाली॥ ८४॥ तेज हथियारों से उन वसुओं की छाती को छेद डाला। वसुओं के रथ, घोड़े, पताके अच्छी तरह विनष्ट कर दिये गये॥ ८५॥ जड़ से काट देने पर जैसे पेड़ निराधार धरती पर गिर जाते हैं उसी तरह वसुगण मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गये। वसुओं को इस तरह गिरे देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया॥ ८६॥

देवसेनासु मर्त्येषु जयशब्दो महानभूत् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसुः सावित्रसंज्ञकः ॥ ८७ ॥
मूर्च्छामुक्तो ऽतिनिशितैः रणधीरं शरैस्त्रिभिः । निहत्य सिंहनादं स कृतवान् प्राह मण्डले ॥ ८८ ॥
सावित्रशरसंविद्धो रणधीरोऽतिमर्षितः । अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद धनुः सावित्रहस्तगम् ॥ ८९ ॥
स छिन्नधन्वा महतीं गदामादाय वेगतः । अश्वान् विसंज्ञानकरोद्बलाहकसमान् तदा ॥ ९० ॥
रणीधीरोरसि तदा प्रास्यत् सर्वायसीं गदाम् । अथाऽऽयान्तीमशनिवद्गदामतिभयङ्करीम् ॥ ९१ ॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद त्रिधा नभसि मध्यतः । अथाऽऽददेऽतिनिशितं खड्गं चर्म च सुन्दरम् ॥
सावित्रो रणधीरस्य रथेऽवप्लुत्य तद्धनुः । चिच्छेद यन्ता भल्लेन हतः क्रोडेऽतिवेगितः ॥ ९३ ॥
शिरो जहार खड्गेन यन्तुः समुकुटं रुषा । रणधीरः छिन्नधनुर्हतसारथिरुच्चकैः ॥ ९४ ॥
क्रुद्धः खेटकनिस्त्रिंशौ जगृहे शत्रुतापनः । गृहीतमात्रं तरसा तौ चिच्छेद महाजवी ॥ ९५ ॥
गदां शक्तिञ्च शूलञ्च गृहीतं सोऽच्छिनदद्रुतम् । एवं सावित्रखड्गस्य लाघवं वीक्ष्य देवराट् ॥ ९६ ॥
अपूजयत् साधुवादै रणधीरश्चुकोप ह । विवृत्य मुष्टिं सुदृढां वज्रनिष्पेषनिष्ठुराम् ॥ ९७ ॥
जघान वक्षसि वसुं जगर्ज च महामृधे । अपाऽक्रामत् पञ्चहस्तं संज्ञामीषज्जहौ ततः ॥ ९८ ॥
प्राहरत् पुनरेवाऽऽजौ रणधीरं महाबली । अवप्लुत्याऽन्तरे हस्ताद्वसोराक्षिप्य खड्गकम् ॥ ९९ ॥
बभञ्ज जानुना मध्ये तदद्भुतमिवाऽभवत् । अथ तौ मुष्टिभिर्घ्नन्तौ विशस्त्रौ च परस्परम् ॥
मुहूर्त्तं तत आप्लुत्य सावित्रं भुव्यपोथयत् । तस्य वक्षासि संरुह्य मुष्टिना मूर्ध्न्यताडयत् ॥ १०१ ॥

मानवीय सेना में जय-जयकार होने लगा। इसी बीच वहाँ सावित्र नाम का वसु उपस्थित हो गया ॥ ८७ ॥ रणधीर के आयुधों को उसने अत्यन्त तीखे तीरों से काटकर उन्हें घायल कर सैन्य-मण्डल में सिंहनाद करने लगा ॥ ८८ ॥ सावित्र के शर से बिंध कर रणधीर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसने सावित्र के हाथ के धनुष को अपने अर्द्धचन्द्र से काट डाला ॥ ८९ ॥ धनुष कटते ही वह गदा लेकर उस पर टूट पड़ा। प्रलयकालीन बादल की तरह उन पर झपट कर उनके घोडों को मूर्च्छित कर दिया ॥ ९० ॥ तब सम्पूर्ण लौह-निर्मित गदा से रणधीर की छाती पर सावित्र ने प्रहार किया। अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाली वज्रतुल्य गदा को अपनी ओर आते देख ॥ ९१ ॥ अपने छोटे हाथों से आकाश में ही उसे तीन खण्डों में विभक्त कर नष्ट कर दिया और तेज धार वाली पनियल तलवार और सुन्दर चर्म धारण कर लिया ॥ ९२ ॥ इसके बाद सावित्र ने रणधीर के रथ में कूद कर उसके धनुष को तोड़ डाला तथा अत्यन्त वेग के साथ उसके सारथी की छाती में भाला घोंपकर उसे मार डाला ॥ ९३ ॥ और क्रोध से उसका समुकुट सिर तलवार से काट डाला। हत सारथी एवं आयुधहीन रणधीर ने ॥ ९४ ॥ क्रोधित होकर शत्रुओं को ताप पहुँचाने वाले गदा और तलवार उठा लिये। इन अस्त्रों को उठाते ही अतिवेगवान् उसने शीघ्र ही इन्हें भी नष्ट कर दिया ॥ ९५ ॥ उसने गदा, शक्ति, त्रिशूल जिस किसी हथियार को उठाया उसने उसे उसी क्षण विनष्ट कर डाला। इस तरह सावित्र की तलवार की लघुता देखकर देवराज इन्द्र ने ॥ ९६ ॥ उसे साधुवाद दिया। इसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध होकर रणधीर ने वज्रतुल्य अत्यन्त कठोर एवं सुदृढ मुक्के से सावित्र की छाती पर प्रहार किया और जोर से गरजा। उस महायुद्ध में वसु मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ ९७-९८ ॥ फिर उन देवताओं ने महाबली रणधीर पर प्रहार किया, किन्तु रणधीर ने छलांग लगाकर वसु के हाथ से तलवार छीन ली ॥ ९९ ॥ रणधीर ने उस तलवार को घुटने से तोड़ डाला। यह अत्यन्त आश्यर्चजनक हुआ। अब ये दोनों हथियार-विहीन होकर मुक्कामुक्की शुरू कर दिये ॥ १०० ॥ एक मुहूर्त में उसे धरती पर पटक कर उसकी छाती पर बैठकर मुक्के से उसके सिर पर प्रहार किया ॥ १०१ ॥ मुक्का लगते

मुष्टिनाऽभिहतो रक्तं सावित्रः पतितो वमन्। ज्ञात्वा मुमूर्षुं सावित्रं सिंहाऽऽक्रान्तगजं यथा॥
प्रेषयामास देवेशो जयन्तं तद्विमोक्षणे। ततो जयन्तो महतीं शक्तिमादाय वेगतः॥ १०३॥
जघान पृष्ठतस्तस्य धर्माऽपेतेन वर्त्मना। रणधीरो हतः शक्त्या न्यपतन्मूर्च्छितो भुवि॥ १०४॥
तदन्तरे तु सावित्रमपोवाहेन्द्रनन्दनः। कथञ्चित्प्राणसंशेषमिन्द्रपार्श्वं समानयत्॥ १०५॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
पञ्चदशोऽध्यायः॥ १३२७॥

ही सावित्र लहू का वमन करने लगा। सावित्र को मृत्युमुख में जाते देखकर जैसे हाथी पर सिंह झपटता है उसी तरह॥ १०२॥ देवराज़ का पुत्र जयन्त महती दैवी शक्ति लेकर अतिशीघ्र सावित्र की मुक्ति के लिए पिता से प्रेरित होकर वहाँ आ पहुँचा॥ १०३॥ उसने अधर्म का मार्ग अपना कर रणधीर पर पीछे से प्रहार किया। शक्ति-प्रहार से आहत रणधीर मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गया॥ १०४॥ इसके बाद इन्द्रसुत जयन्त ने सावित्र को अधमरी स्थिति में उठाकर देवराज इन्द्र के पास पहुँचा दिया॥ १०५॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अथ षोडशोऽध्यायः

जयन्तशक्तिसंविद्धो गाढमूर्च्छामुपेत्य तु। रणधीरोऽकिञ्चनज्ञो मुहूर्त्तात्प्रत्युपस्थितः॥ १॥
तदन्तरे जयन्तोऽपि रथाऽऽरूढाऽऽत्तकार्मुकः। रणधीराऽग्रतः प्रागात्तिष्ठ तिष्ठेति वै वदन्॥
तं दृष्ट्वा रणधीरोऽपि निर्भर्त्सयत वै रुषा। शचीसुतं त्वां जानामि न च त्वं शक्रनन्दनः॥ ३॥
स्त्रीस्वभावं समासाद्य पृष्ठतो मां यतोऽवधीः। कृत्वैवं कर्म यल्लोके कृतं कापुरुषैर्लघु॥ ४॥
पुरुषम्मन्य एव त्वं वीरगोष्ठीबहिष्कृतः। व्रजाऽत्र वीरभूमौ ते न कार्यमवशिष्यते॥ ५॥
न शोचय शर्चीं व्यर्थं धिगनार्याऽसतीसुत। अथवा ते भवेच्छ्रद्धा युद्धे तर्हि स्थिरीभव॥ ६॥
मदग्रे निमेषाऽर्द्धेन नयाम्यन्तकसन्निधिम्। इत्युक्त्वा निशितैर्भल्लैश्चिच्छेद तिलशो रथम्॥
तदन्तरे जयन्तोऽपि गदां चिक्षेप रोषतः। हतोऽसि रणधीरेति तदवप्लुत्य सोऽग्रहीत्॥ ८॥
गृहीत्वा तां गदां प्राह साधु शूरोऽसि शक्रज। हतोऽस्मि नात्र सन्देहो हतस्त्वां निहनिष्यति॥
इति ब्रुवति रोषेण कषायीकृतलोचनः। चिच्छेद खड्गपातेन धनुस्तदपि शक्रभूः॥ १०॥
छिन्ने द्वितीये चापेऽपि रुषा खड्गं परामृशत्। वेगादाप्लुत्य सव्येन करेण निमिषाऽर्द्धतः॥ ११॥
निपात्य शक्रतनयकिरीटं जगृहे शिखाम्। विचकर्ष शिखां धृत्वा तार्क्ष्यः सर्पपतिं यथा॥ १२॥
छेत्तुं गले यावदयं करवालं समुन्नयत्। तावदग्निः शतमखसुतं मत्वा हतं जवात्॥ १३॥

✲ विमला ✲

जयन्त की शक्ति से घायल रणधीर गहरी बेहोशी में सब कुछ भूल गया। इसके बाद एक मुहूर्त अर्थात् अड़तालीस मिनट के बाद उसके होश लौट आये॥ १॥ इसी बीच जयन्त भी धनुष खींचे हुए रथ पर सवार होकर ठहरो, ठहरो करते हुए रणधीर के आगे से निकल गया॥ २॥ इस तरह भागते हुए जयन्त को देखकर क्रुद्ध रणधीर ने उसे फटकारते हुए कहा—रे शची का बेटा! मैं तुम्हें पहचानता हूँ, तुम इन्द्र के पुत्र नहीं हो॥ ३॥ इसीलिए अपनी औरताना स्वभाव के कारण ही छिपकर मेरी पीठ पर आक्रमण कर मुझे मारने की कुचेष्टा की है। संसार के कायरों में भी तुम बदतर हो॥ ४॥ तुम नाम मात्र के ही पुरुष हो। अतः तुम वीरों की गोष्ठी से बहिष्कृत हो। भाग जा, इस वीरभूमि में तुम्हारे योग्य कोई शेष काम नहीं है॥ ५॥ तुम बेकार शची के लिए मत सोच, तुम्हें धिक्कार है। तुम अनार्य हो, पुंखली-पुत्र हो फिर भी तुम्हें युद्ध में भाग लेने की श्रद्धा है तो रुक॥ ६॥ तो आ मेरे सामने, आँख झपकते ही मैं तुम्हें यमराज के पास भेज देता हूँ। यह कहते हुए तेज भाले से उसके रथ के टुकडे कर डाले॥ ७॥ इसी बीच क्रुद्ध जयन्त ने रणधीर की ओर अपनी गदा फेंकी और कहा—रणधीर! अब तुम मरे। इधर रणधीर ने छलांग लगाकर उस गदा को हाथों में थाम लिया॥ ८॥ उस गदा को थामकर रणधीर ने कहा—वाह! बहादुर हो, अब तुम इन्द्र का बेटा हो। मैं तो मर गया, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर मृत व्यक्ति से अब तुम मरोगे, सँभलो॥ ९॥ क्रोध से ऐसा बोलते हुए उसकी आँखें लाल हो गयीं। उसने अपनी तलवार से उसके धनुष को काट डाला॥ १०॥ दूसरा धनुष कट जाने पर क्रोध से उसने तलवार उठा ली। इसी बीच पलक झपकते ही वेग से उछलकर बायें हाथ से॥ ११॥ उसके माथे से मुकुट फेंककर उसकी चोटी पकड़ ली और जैसे गरुड़ नागराज को घसीटता है। उसी तरह घसीटते हुए चल दिया॥ १२॥ जयन्त की गर्दन काटने रणधीर ने ज्यों ही तलवार उठाई अग्नि

आक्रोशत्स्वमृतान्धःसु हा हेति परिघेण तम् । जघान दक्षिणकरे सर्वप्राणेन पावकः ॥ १४॥
परिघाऽऽहतहस्तात्तु करवालोऽपतद्भुवि । व्यर्थीकृतन्तु तत्कर्म दृष्ट्वा स्वात्मपराभवम्॥
चुक्रोध रणधीरोऽथ जयन्तञ्च पदाऽऽहनत् । संहतः पादघातेन पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ १६ ॥
पावकं वामहस्तेन गले जग्राह सत्वरः । दक्षमुष्टिं वज्रकल्पां पातयामास मूर्धनि ॥ १७ ॥
मुष्टिनाऽभ्याहतो वह्निर्घूर्णमानो भुवं ययौ । तदन्तरे शतमखः प्राप्तः पुत्रपरीप्सया ॥ १८ ॥
ऐरावतस्थस्तं दृष्ट्वा रणधीरो ह्यवप्लुतः । तलेनाऽऽहत्य देवेन्द्रं किरीटं पातयद्रुषा ॥ १९ ॥
किरीटभङ्गाऽवमतोऽतोदयत् कुलिशेन तम् । वज्राऽऽहतोऽथ जघने निपपात महीतले ॥ २० ॥
विसञ्ज्ञो मूर्च्छितो गाढं रणधीरोऽभवत्तदा । सेनापतिसुतं तादृग्विधं भीमो निशाम्य तु ॥ २१ ॥
सारथिञ्चोदयामास रणधीराऽन्तिकं नय । इत्याज्ञप्तो निमेषेण रथं सारथिरानयत् ॥ २२ ॥
अवतीर्य रथाद्भीमो रथोपरि निधाय तम् । अपवाह्य स्वयं भीमो गदामादाय सुप्रभाम् ॥ २३ ॥
सर्वायसीं महारत्नप्रत्युप्तां शत्रुतापनीम् । उड्डीय शक्रशिरसि पातयामास वेगतः ॥ २४ ।
गदयाऽभिहतः शक्रो भग्नमूर्धा पपात ह । मूर्च्छितः करिराजस्य पृष्ठे कृत्तद्रुमो यथा ॥ २५ ॥
तथाविधं देवपतिं ज्ञात्वैरावतसत्तमः । प्राद्रवद्वेगतो युद्धाच्छक्रप्राणरिरक्षया ॥ २६ ॥
दृष्ट्वा पराङ्मुखं भीमो देवेभं जगृहे जवात् । लाङ्गूले विचकर्षाऽथ धनुःशतमितं बली ॥ २७ ॥
आत्मानं नो मोचयितुं समर्थः करिराट् तदा । करेण तं समादातुं प्रचक्राम पुनः पुनः ॥ २८ ॥
सव्याऽपसव्यमार्गेण भ्रामयित्वा मुहुर्मुहुः । गदया कटिदेशे तं जघान बलवद्रुषा ॥ २९ ॥

ने उसे मरा ही जानकर वेग के साथ ॥ १३ ॥ जोर से चिल्लाते हुए 'हाय मारा गया' कहकर अपनी सारी शक्ति लगाकर अग्नि ने लोहे की गदा से रणधीर के दाहिने हाथ पर प्रहार कर दिया ॥ १४॥ लोहे की गदा की चोट से उसके हाथ की तलवार छिटक कर दूर जा गिरी। यह कार्य व्यर्थ होते देखकर उसने अपना पराभव माना ॥ १५ ॥ क्रुद्ध एवं अवरुद्ध रणधीर ने जयन्त पर पैरों से आघात किया। रणधीर के पैरों की चोट से वह बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ा ॥ १६ ॥ फिर अतिशीघ्र ही लपक कर बायें हाथ से अग्नि की गर्दन पकड़कर वज्रतुल्य अपने दायें हाथ की मुट्ठी से अग्नि के सिर पर चोट किया ॥ १७ ॥ मुक्के की चोट खाकर अग्निदेव नाचकर धरती पर जा गिरे। इसी बीच इन्द्र ने अपने पुत्र की यह दुर्गति देखकर ॥ १८ ॥ ऐरावत हाथी पर सवार इन्द्र को देखकर क्रुद्ध रणधीर ने थप्पड़ मारकर उनके सिर से मुकुट को गिरा दिया ॥ १९ ॥ मुकुट गिरने से क्रुद्ध इन्द्र ने मदमत्त होकर हाथ में वज्र उठा लिया और उसी से उसके कुल्हे पर प्रहार कर दिया। वज्र की चोट खाकर वह धरती पर गिर गया ॥ २० ॥ वज्र की चोट खाकर रणधीर पर गहरी बेहोशी छा गई। उसने अपनी चेतना खो दी। तब सेनापति के पुत्र की यह दुर्दशा देखकर भीम ने ॥ २१ ॥ अपने सारथी से कहा—मुझे रणधीर के पास ले चल। आदेश पाकर सारथी ने पलक झपकते ही रथ वहाँ पहुँचा दिया ॥ २२ ॥ रथ से उतरकर भीम ने सर्वप्रथम रणधीर को उठाकर रथ में रखा और स्वयं उसे दूर हटा कर शक्तिशाली गदा हाथ में ले लिया ॥ २३ ॥ महारत्नजटित शत्रु को ताप पहुँचाने वाली वह गदा उड़कर अतिवेग के साथ इन्द्र के सिर पर जा गिरी ॥ २४ ॥ गदा की चोट से इन्द्र की गर्दन टूट गयी और धराशायी होकर मूर्च्छित हो गया। ठीक उसी तरह जैसे गजराज की पीठ पर कटा हुआ वृक्ष लटक गया हो ॥ २५ ॥ इन्द्र को ऐसा जानकर हस्तिश्रेष्ठ ऐरावत इनके प्राण की रक्षा के लिए इन्हें मूर्च्छितावस्था में लेकर युद्धक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ ॥ २६ ॥ भीम ने इन्द्र को लेकर इस तरह ऐरावत को भागते देखकर उस महाबली ने उसकी पूँछ पकड़ कर सौ धनुष पीछे खींच लिया ॥ २७ ॥ वह गजराज अपने को उसके हाथ की पकड़ से मुक्ति पाने के लिए बार-बार प्रयास करके भी कुछ नहीं कर सका ॥ २८ ॥ तब भीम ने बार-बार उसे बायें-दायें

ताडितस्तेन गदया चीत्कुर्वन् त्रिःपरिक्रमन्। जगाम धरणीमग्रजानुभ्यां रुधिरं वमन्॥ ३०॥
ततो भीमः खमाप्लुत्य पतितं शक्रपार्श्वतः। वज्रं समाददे तस्य पृष्ठतस्तदनन्तरम्॥ ३१॥
शक्रं निहन्मि तस्यैव शस्त्रेणेति व्यचिन्तयत्। तदन्तरे शक्रहेतिरन्तर्धानं गतो द्रुतम्॥ ३२॥
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मरुद्गणसमावृतः। भीमेन युद्धमकरोन्मृत्योस्त्रातुं शचीपतिम्॥ ३३॥
गदामादाय भीमोऽपि बहुभिः परिवारितः। गदया ताडयामास मरुतस्तान् समन्ततः॥ ३४॥
तदन्तरे सारथिस्तु रणधीरं सुमूर्च्छितम्। सुधृतेः सन्निधिं नीत्वा पुनः प्रत्यागतस्त्वरा॥ ३५॥
बहुशो देवतावृन्दैर्निरुद्धोऽपि सुवेगतः। वञ्चयित्वा भर्त्तृशयं रथमानयदक्षतम्॥ ३६॥
दृष्ट्वा रथं सर्वशस्त्रसम्भृतं प्रारुहत्तदा। सारथिं पूजयामास वाक्यैर्मधुरपेशलैः॥ ३७॥
उद्यम्य चापमस्त्रौघैर्वायुना समयुध्यत। कुरङ्गवाहनरथे शस्त्रास्त्रसुपरिष्कृते॥ ३८॥
समासीनो धूम्रवर्णः पाशाङ्कुशमुखाऽऽयुधः। भीमं निशितबाणौघैर्ववर्षाऽतिबलो रुषा॥
बाणौघेन समाच्छन्नो विवस्वान् तुहिनैरिव। प्रतिसायकवृष्ट्या तं नाशयामास वेगतः॥ ४०॥
अथ तीक्ष्णेन भल्लेनाऽहनद्वायुं स्तनाऽन्तरे। गाढविद्धो वायुरपि क्षणमासीज्जडीकृतः॥ ४१॥
तदन्तरे तु मरुतो युगपत् समयोधयन्। अङ्कुशान् चिक्षिपुर्भीमं निहन्तुमतिवेगिनः॥ ४२॥
तावद्भिरर्धचन्द्रैस्तान् भीमश्छित्त्वाऽतिवेगतः। एकैकं हृदि विव्याधाऽऽकर्णाऽकृष्टैः शरैस्त्रिभिः॥
मरुतस्तैर्हताः सर्वे पेतुरुर्व्यां सुमूर्च्छिताः। बुद्धस्तदन्तरे वायुर्भीमे प्रास्यदथाऽङ्कुशम्॥ ४४॥
तेनाऽतिविद्धो हृदये कश्मलं क्षणमाविशत्। पुनः संज्ञामवाप्याऽथ गदामादाय वेगतः॥ ४५॥
स्वस्माद्रथादवप्लुत्य वायोः स्यन्दनमारुहत्। भ्रामयित्वा गदां मूर्ध्नि मारुतस्य जघान ह॥ ४६॥

घुमाकर गदा से उसकी कमर पर प्रहार कर दिया॥ २९॥ गदा की चोट खाकर चिंग्घाड़ते हुए, तीन चक्कर काटकर लहू वमन करते हुए अगले दोनों घुटनों के बल धरती पर जा गिरा॥ ३०॥ उसके बाद भीम आकाश में कूदकर इन्द्र के पास पड़े हुए वज्र उठाकर चल दिया॥ ३१॥ 'उसी के हथियार से उसे मैं मार डालता हूँ' ऐसा उसने सोचा। इसी बीच उसके हाथ से वज्र विलुप्त हो गया॥ ३२॥ इसी बीच इन्द्र को मृत्यु से बचाने के लिए मरुद्गण के साथ वायुदेव ने भीम के साथ युद्ध शुरू किया॥ ३३॥ अनेकों अवरोधों के बावजूद गदा लेकर चारों ओर घेरे हुए मरुतों पर गदा से उसने प्रहार किया॥ ३४॥ इसी बीच सारथी बेहोश रणधीर को सुधृति के पास पहुँचाकर शीघ्र लौट आया॥ ३५॥ देवताओं के अनेकों रोक-टोक के बावजूद उन्हें धोखा देकर वेग के साथ उसे मालिक के पास पहुँचा दिया॥ ३६॥ सारथी की प्रशंसा करते हुए सभी आयुधधारी उस रथ पर सवार हो गये॥ ३७॥ शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हरिण जुते रथ पर सवार होकर योद्धा पवनदेव के साथ युद्ध करने लगे॥ ३८॥ अत्यन्त बलशाली क्रोधान्ध मरुत ने अनेक आयुधों से सुसज्जित होकर तीव्र बाणों की वर्षा भीम पर कर दी॥ ३९॥ कुहरे की तरह बाणों से घिरे देवताओं की बाणवृष्टि को प्रतिबाणवृष्टि से शीघ्र ही विनष्ट कर दिया॥ ४०॥ इसके बाद तेज भाले से वायुदेव की इन्होंने छाती छेद दी। एक क्षण वायु भी संज्ञाविहीन हो गये॥ ४१॥ इसके बाद मरुत ने एक साथ युद्ध करना शुरू कर दिया, वेग से अंकुश फेंककर भीम को मारना चाहा॥ ४२॥ इसी बीच बहुत वेग से अर्द्धचन्द्र उठाकर भीम ने उसे काटकर, कान तक धनुष को खींच कर तीन बाणों से एक-एक की अलग-अलग छाती छेद डाली॥ ४३॥ भीम से आहत सभी मरुत धरती पर मूर्च्छित होकर गिर गये। इसके बाद होश में आकर वायु ने भीम पर अंकुश से प्रहार किया॥ ४४॥ इस आयुध से छाती पर गहरी चोट खाकर भीम एक क्षण बेहोश रहा। पुनः होश में आकर हाथ में गदा लेकर अतिवेग से॥ ४५॥ अपने रथ से उछलकर वायुदेव के रथ पर भीम जा पहुँचा और गदा घुमाकर सिर पर उन्हें दे मारा॥ ४६॥ गदा की चोट सिर पर लगते ही वायुदेव तड़पकर गिरे और

पतितस्तु गदाऽऽविद्धो भग्नमूर्धा समीरणः। मूर्च्छितो विगतप्रज्ञः सारथिस्तमपावहत्॥४७॥
पराभवं मारुतस्य दृष्ट्वा यक्षपतिस्तदा। वरुणः पितृराडिन्द्रो गन्धर्वपतिरेव च॥४८॥
विमृश्य दुर्जयं भीमं समीयुर्युगपन्मृधे। ऐरावतस्थो देवेन्द्रः पितृराण्महिषस्थितः॥४९॥
झषस्थो वरुणोऽमर्त्यवाहनो धननायकः। गन्धर्वपतिरश्वस्थो विविधैर्हेतिभिर्वृताः॥५०॥
आजग्मुर्भीममायोद्धुं समेताः कृतसंविदः। तद्दृष्ट्वा सुधृतिः प्राह गत्वा शत्रुञ्जयान्तिके॥५१॥
राजपुत्रा महेन्द्राद्या गच्छन्ति कृतसंविदः। हन्तुं भीमं महाबाहुं तद्यामस्तत्र वै वयम्॥५२॥
एकस्य बहुभिर्युद्धं विषमं प्रतिभाति मे। इति तद्वाक्यमाकर्ण्य युक्तमित्यभिमन्यत॥५३॥
ततः शत्रुञ्जयमुखानरुन्धन् देवतागणान्। समाशश्वास सुधृतिर्देवेशं गजसंस्थितः॥५४॥
शत्रुञ्जयो धनपतिं वरुणं शत्रुहा तथा। गन्धर्वराजं भीमोऽपि यमं समरतापनः॥५५॥
शत्रुञ्जयसुतो वीरविक्रमश्च प्रभञ्जनम्। शत्रुघ्नतनयो वह्निं वीरसेन इतीरितः॥५६॥
इन्द्राऽऽत्मजं भीमपुत्रो वीरभानुसमाह्वयः। वीराग्रगः समरतापनपुत्रो वसुं तथा॥५७॥
एवं समासाद्य तदा युद्धं चक्रुर्महाऽद्भुतम्। भीरुहृत्कम्पजननं परस्परजयैषिणः॥५८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुररहस्ये माहात्म्यखण्डे
कामाऽऽख्यानं नाम षोडशोऽध्यायः॥१३८५॥



बेहोश हो गये। सारथी उन्हें ले भागा॥४७॥ पवनदेव की हार देखकर कुबेर, वरुण, यम और गन्धर्वपति॥४८॥ दुर्जय भीम पर विचार कर ऐरावत पर इन्द्र और भैंसे पर यमराज सवार होकर सभी देवता एक साथ मिलकर युद्ध के मैदान में आ डटे॥४९॥ अनेक अस्त्र और शस्त्रों से सुसज्जित मछली पर वरुणदेव, अतिनश्वर वाहन पर धननायक और घोड़े पर सवार होकर गन्धर्वपति भीम को घेर कर खड़े हो गये॥५०॥ प्रतिज्ञा कर एक साथ जुटकर भीम से युद्ध करने आ डटे। यह देखकर सुधृति ने शत्रुञ्जय के पास जाकर कहा॥५१॥ हे राजपुत्र! महेन्द्रादि देवगण संकल्प लेकर कुमार भीम को मारने जा रहे हैं, अतः उन्हें रोकने के लिए हम सबों को वहाँ जाना जरूरी है॥५२॥ एक का अनेक के साथ युद्ध मुझे विषम प्रतीत होता है। उसकी यह बात सुनकर सबको यह बात युक्तिसंगत प्रतीत हुई॥५३॥ उसके बाद शत्रुञ्जय प्रमुख लोगों ने आगे बढ़कर देवगणों को रोक लिया तथा ऐरावत पर सवार देवराज इन्द्र को सुधृति ने आगे बढ़ने में विवश कर डाला॥५४॥ शत्रुञ्जय कुबेर से, शत्रुहा वरुण से, गन्धर्वराज चित्ररथ से और समरतापन यमराज से जा भिड़ें॥५५॥ शत्रुञ्जय के पुत्र वीर विक्रम वायु से, शत्रुघ्न पुत्र वीरसेन अग्नि से जा टकराये॥५६॥ भीम का पुत्र वीरभानु जयन्त के साथ, समरतापन का पुत्र वीराग्रगण्य वसुओं के साथ आ भिड़े॥५७॥ ऐसे आश्चर्यजनक युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह युद्ध परस्पर विजय की चाह से हो रहा था, यह कायरों के दिल को दहला देने वाला था॥५८॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में
कामाख्यान नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



अथ सप्तदशोऽध्यायः

मुहूर्त्तमात्रमभवत् सुयुद्धं रोमहर्षणम् । भीममश्वसमारूढश्चित्रसेनः शरैस्त्रिभिः ॥ १ ॥
विव्याध तद्धनुर्मध्ये चिच्छेद च महेषुणा । स छिन्नधन्वा परिघं गन्धर्वेशे समुत्सृजत् ॥ २ ॥
आयान्तं परिघं मध्ये चिच्छेद निशितेषुणा । सार्धपत्रैश्चतुःसंख्यैश्चतुरो भीमवाजिनः ॥ ३ ॥
कृत्वा गताऽसून् समरे सारथिञ्चैकपत्रिणा । छित्त्वा किरीटमेकेन सिंहनादमथाऽकरोत् ॥ ४ ॥
हताश्वसारथिर्भीमः प्रजज्वाल सुमन्युना । गदयाऽताडयच्चित्रसेनाश्वमतिवेगतः ॥ ५ ॥
गदापातप्रणष्टाऽसुर्भिन्नमूर्धा वमन्नसृक् । पपात तुरगात्तस्य चित्रसेनं परामृशत् ॥ ६ ॥
ज्ञात्वा तु बलिनं चित्रसेनोऽन्तर्धानमागतः । अन्तर्हितो महामायां प्रचकार विमोहिनीम् ॥ ७ ॥
अश्मवर्षान् शस्त्रवर्षान् सर्पान् प्रेतगणानपि । प्रादुश्चकार मुण्डौघानसृगङ्गारमारुतान् ॥ ८ ॥
यतो यतो निःसरति माया तस्य ततस्ततः । एवं भीमस्समालोक्य मायां गन्धर्वनिर्मिताम् ॥ ९ ॥
तदा प्रायुङ्क्त निर्माय शस्त्रं भीमो विहायसि । चित्रसेनमहामाया विनष्टाऽस्त्रेण तत्क्षणे ॥ १० ॥
ददर्श गन्धर्वपतिमायान्तं स्वस्य सम्मुखे । वेगात्त्रिशूलमादाय पुरारिमिव चाऽन्धकम् ॥ ११ ॥
तस्य मूर्ध्नि गदां भीमः प्राहिणोदतिवेगतः । गदयाऽभिहतो भूमौ पपात विगताऽसुवत् ॥ १२ ॥
अथाऽवहत्तं गन्धर्वो विवक्षुः प्राणरक्षणम् । वीराऽग्रगो वसून् युद्धे शस्त्राऽस्त्रैः समवाकिरत् ॥

* विमला *

लगभग अड़तालीस मिनटों तक यह रोमाञ्चकारी युद्ध चलता रहा। तब घोड़े पर सवार चित्रसेन ने तीन बाणों से भीम को ॥ १ ॥ बेधकर तीव्र बाण से उसके धनुष को काट दिया। अब धनुर्विहीन भीम पर लोहे के डण्डे से प्रहार किया ॥ २ ॥ अपनी ओर आते हुए डण्डे को भीम ने बीच में ही अपने तेज बाण से टुकड़ों में काट कर गिरा दिया। भीम के रथ में जुते चार घोड़ों को चार बाणों से ॥ ३ ॥ काटकर मार डाला, फिर एक बाण से सारथी को मारकर, एक बाण से उसके मुकुट को काटकर सिंहनाद किया ॥ ४ ॥ अपने घोड़े और सारथी को मरा देख क्रोध से भीम जल उठा। उसने अतिवेग से गदा उठाकर चित्रसेन के घोड़े पर प्रहार किया ॥ ५ ॥ गदा की चोट से घोड़े की गर्दन टूट गई और वह लहू वमन करते हुए गिर गया। भीम ने मृत घोड़े की पीठ से चित्रसेन को पकड़कर खींच लिया ॥ ६ ॥ भीम को महाबली जानकर चित्रसेन आँखों से ओझल हो गया। अन्तर्हित रहकर ही जगन्मोहिनी माया का सहारा लिया ॥ ७ ॥ दृष्टिरुद्ध स्थिति में ही वह शस्त्रों, साँपों, प्रेतों, मुण्डों, लहू, आग और हवा की वर्षा करने लगा ॥ ८ ॥ जहाँ-जहाँ उसकी माया करामात करती वहाँ-वहाँ उसे देखकर भीम ने जान लिया कि यह माया तो गन्धर्व-निर्मित है ॥ ९ ॥ तब भीम ने आकाश में ही शस्त्र का निर्माण कर उसी आयुध से चित्रसेन की माया को उसी क्षण विनष्ट कर दिया ॥ १० ॥ अपने सामने चित्रसेन को आते देखकर भीम ने त्रिशूल लेकर साक्षात् रुद्र की तरह उस पर प्रहार कर दिया ॥ ११ ॥ अत्यन्त वेग के साथ चित्ररथ के सिर पर भीम ने गदा दे मारी। गदा की चोट से मृत की तरह वह धरती पर गिर गया ॥ १२ ॥ उस गन्धर्वराज चित्रसेन के प्राण की रक्षा हेतु गन्धर्व उन्हें उठाकर ले गया। इधर वीराग्रग

वसवः शरवर्षेण ववर्षुः समराङ्गणे । अपोह्य शरवर्षं तं वसूनेकैकशस्तदा ॥ १४ ॥
त्रिभिः सुपुङ्खैर्विव्याध पादहृन्मूर्धसु क्रमात्। ते हता मन्युनाऽऽक्रान्ताः पर्याप्तं युगपद्रणे ॥ १५ ॥
शस्त्रैरुच्चावचैर्जघ्नुः सर्वप्राणैर्बलीयसः । अथ वीराग्रगस्तीक्ष्णभल्लैर्हृदि जघान तान् ॥ १६ ॥
कर्णान्ताऽऽकृष्टैरथ ते गाढविद्धा महेषुभिः। निपेतुर्मूर्च्छिताः सर्वे सावित्रस्तु शरैस्त्रिभिः ॥ १७ ॥
छित्त्वा वीराऽग्रगरथं सारथिं वाजिनस्तथा । खण्डशः शरवर्षेण चकार निमेषाऽर्धतः ॥ १८ ॥
अथ खड्गेन सावित्रं जघानोड्डीय पक्षिवत्। तदा सावित्रमुकुटं खड्गहत्या द्विधाऽभवत् ॥ १९ ॥
सावित्रः शेखरभ्रंशात् सक्रोधः परिघेण तम्। प्राहरन्मूर्ध्नि तेनाऽसौ भिन्नमूर्धा पपात ह ॥ २० ॥
मुहूर्त्तं मूर्च्छितः सोऽथ प्रोत्थाय गदयाऽहनत्। सावित्रं बलवत् सोऽथ वमन् रक्तं पपात ह ॥
अग्निना वीरसेनोऽपि चिरं युद्ध्वा महाऽसिना। जघानाऽग्निं सुवेगेन हतस्तेन च मूर्धनि ॥ २२ ॥
असृग्धारासम्प्लुतां गां वह्निर्जज्वाल मन्युना । प्राहिणोन्निजशक्तिं स वीरसेनं विनाशितुम् ॥
तां दृष्ट्वा वीरसेनोऽपि ज्वलन्तीमशनिप्रभाम्। तोयाऽस्त्रं प्राहिणोच्छीघ्रं शान्ता शक्तिस्तदस्त्रतः ॥
अथाऽग्निः स्वां विनिहतां दृष्ट्वा शक्तिं रुषा पुनः। इषुभिर्निशितैस्तस्य चिच्छेदाऽऽयुधसन्ततिम् ॥
हतसर्वायुधः सोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वेगतः । जघान मूर्ध्नि तेनाऽग्निर्निपपात महीतले ॥ २६ ॥
तावत्तु वीरसेनोऽपि जग्राह ज्वलनं जवात्। बाहुभ्यां वक्षसाऽऽपीड्य नगरे तं समानयत् ॥ २७ ॥
शीतिकामन्त्रितदृढरज्जुभिस्तमबन्धयत् । अकरोत्तुमुलं युद्धं वायुना वीरविक्रमः ॥ २८ ॥

ने अस्त्र-शस्त्रों के आघात से वसुओं को रणाङ्गण में सुला दिया ॥ १३ ॥ इसके बाद वसुओं ने रणभूमि में बाणों की वर्षा कर दी। उस बाणवृष्टि को दूर हटाकर एक-एक वसुओं को ॥ १४ ॥ तीन सुन्दर पंखों वाले बाण से क्रमशः पैर, छाती और माथे में बेधकर एक साथ रणभूमि में उन्हें पराजित कर दिया ॥ १५ ॥ सबके प्राणस्वरूप बलवान् उन वसुओं को उन्होंने छोटे-बड़े बाणों से वेध डाला। इसके बाद वीराग्रग ने तेज भाले से उनकी छाती पर प्रहार किया ॥ १६ ॥ अपने कान तक प्रत्यञ्चा को खींचकर तीव्र बाण से उसने उन्हें गहरा घाव कर दिया। वे सभी मूर्च्छित होकर गिर गये। तब तीन शरों से सावित्र ने ॥ १७ ॥ पलक झपकते ही वीराग्रग के रथ, घोड़े और सारथी को टुकड़े-टुकड़े में काट डाला ॥ १८ ॥ तब पक्षी की तरह उड़कर तलवार से सावित्र पर इसने प्रहार किया। उसका मुकुट दो खण्डों में होकर गिर गया ॥ १९ ॥ मुकुट गिरने से क्रुद्ध सावित्र ने लोहे का डण्डा उठाकर उसके सिर पर दे मारा। सिर फटने से वह गिर गया ॥ २० ॥ एक मुहूर्त वह मूर्च्छित रहा, फिर उठकर उसने गदा से सावित्र के सिर पर प्रहार किया, जिससे लहू का वमन करते हुए वह गिर गया ॥ २१ ॥ इधर अग्नि के साथ वीरसेन ने बहुत काल तक युद्ध करने के बाद तलवार उठाकर अत्यन्त वेग के साथ अग्नि पर प्रहार कर दिया ॥ २२ ॥ तब अत्यन्त क्रुद्ध अग्नि ने वीरसेन को समाप्त कर देने के लिए अपनी परम शक्ति वह्निज्वाला को उगलते बाण से प्रहार किया ॥ २३ ॥ आग की ज्वाला उगले इन्द्र के वज्र की तरह उस बाण को आते देखकर अपने जल वर्षाने वाले अस्त्र से उसे शान्त कर दिया ॥ २४ ॥ अपनी शक्ति को इस तरह विनष्ट होते देख क्रुद्ध अग्नि ने तीव्र आयुधों से उसके आयुध-समूहों को नष्ट कर दिया ॥ २५ ॥ जब उसने उसके सारे आयुधों को नष्ट कर डाला तब उसने शीघ्र ही शिर पर मुक्के मारकर अग्नि को धरती पर गिरा दिया ॥ २६ ॥ इसी बीच वीरसेन ने वेग के साथ अग्नि को पकड़ लिया। अपनी बाँहों से उसकी छाती पर प्रहार कर उन्हें विवश कर नगर ले आया ॥ २७ ॥ अभिमन्त्रित रस्सी से उन्हें बाँध दिया। इधर वीरविक्रम ने वायु के साथ घोर युद्ध प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥ बाणवृष्टि से उन्हें व्याकुल कर वीरविक्रम ने सिंहनाद किया।

शरवर्षैः समाच्छाद्य सिंहनादमथाऽकरोत् । शरवर्षं क्षणेनैव विधूय प्रतिवर्षतः ॥ २९ ॥
जघानोरस्यङ्कुशेन महता वीरविक्रमम् । अङ्कुशेनाऽऽहतं वक्षः स्फुटितं रुधिरस्रवम् ॥ ३० ॥
अङ्कुशाऽऽघातसञ्जातव्यथयाऽकम्पत क्षणम् । विघूर्णमाननयनो निष्प्रज्ञः क्षणमास्थितः ॥
अथ प्रज्ञां समासाद्य हृदि मग्नाऽङ्कुशं तदा । बलादुत्पाट्य वेगेन ताडयत्तेन मारुतम् ॥ ३२ ॥
निजाऽङ्कुशाऽऽहतो वायुर्भग्नमूर्धाऽपतद्भुवि । मृतवन्मूर्च्छितो वायुस्तदाऽसौ वीरविक्रमः ॥
पुनः पपात तां सोढुमशक्तो हृदयव्यथाम् । बहु सुस्राव रुधिरं हृदयादङ्कुशाऽऽहतात् ॥ ३४ ॥
वायोश्च मस्तकात्तद्वदुभावपि सुमूर्च्छितौ । शत्रुञ्जयः कुबेरेण चकार तुमुलं रणम् ॥ ३५ ॥
शत्रुञ्जयो रथाऽऽरूढः कुबेरो नरवाहनः । उभौ शस्त्राऽस्त्रकुशलौ धनुर्विद्याविचक्षणौ ॥ ३६ ॥
परस्परं दर्शयन्तौ स्वस्वशस्त्रास्त्रकौशलम् । चिरं युद्ध्वा कुबेरेण शत्रुञ्जय उवाच तम् ॥ ३७ ॥
धनेश किं विलम्बेन दर्शय स्वम्बलाऽवधिम् । नो चेदिमं शरं विद्धि तव प्राणहरं परम् ॥ ३८ ॥
शत्रुञ्जयवचः श्रुत्वा क्षणेन निशितेषुणा । शरेणाऽऽपूरितं चापं चिच्छेदाऽद्भुतविक्रमः ॥ ३९ ॥
अथाऽश्वान् सारथिकेतुं चतुर्भिश्च त्रिभिस्त्रिभिः । छित्त्वा जगर्ज धनपो हतमातङ्गसिंहवत् ॥
साधु शूर श्लाघ्यतमो विदितं मे बलं तव । इतो याहि न चेदेष क्षणः स्याज्जीविताऽन्तकः ॥ ४१ ॥
शत्रुञ्जयो धनेशोक्तं श्रुत्वाऽमर्षेण पूरितः । गदामुद्यम्य वेगेनाताडयद्वाहनं नरम् ॥ ४२ ॥
गदयाऽभिहितो मर्त्यः पपात भुवि मूर्च्छितः । तदन्तरे धनेशस्य गदया मूर्ध्न्यताडयत् ॥ ४३ ॥

इनकी बाणवृष्टि को अपनी बाणवृष्टि से रोक दिया॥ २९॥ फिर वीर विक्रम की छाती पर उन्होंने महाशक्तिशाली अपने अंकुश से प्रहार कर दिया। अंकुश से आहत उसकी छाती से लहू की धारा बह चली॥ ३०॥ अंकुश के आघात की व्यथा से वह एक क्षण काँपता रहा। उसकी आँखें नाचती रहीं और एक क्षण के लिए वह बेहोश हो गया॥ ३१॥ इसके बाद उसे जब होश लौट आये तब उसने छाती में चुभे अंकुश को पूरी ताकत लगाकर उखाड़ लिया और पूरे वेग के साथ मारुत पर दे मारा॥ ३२॥ अपने ही अंकुश से आहत पवनदेव की गर्दन टूट गई और धरती पर तड़प कर गिर गया। मुर्दे की तरह मूर्च्छित वीरविक्रम पवनदेव ने॥ ३३॥ उठने की चेष्टा की और हृदय की असह्य वेदना को न सहने के कारण फिर गिर गया। छाती में अंकुश चुभने के कारण उससे काफी खून निकल चुका था॥ ३४॥ वायु के माथे से भी उसी तरह अर्थात् दोनों ही प्रतिद्वन्द्वी एक ही तरह गहरी बेहोशी में थे। इधर शत्रुञ्जय ने कुबेर के साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ किया॥ ३५॥ शत्रुञ्जय रथ पर सवार था और कुबेर नर वाहन पर। दोनों ही जैसे शस्त्रास्त्र में कुशल थे, वैसे ही धनुर्विद्या में भी ये पारङ्गत थे॥ ३६॥ अपने-अपने शस्त्रास्त्र-संचालन की क्षमता एक-दूसरे को दिखलाते हुए बहुत समय तक युद्ध कर शत्रुञ्जय ने कुबेर से कहा॥ ॥ ३७॥ हे धनेश! बेकार समय काटने से क्या फायदा? अपनी ताकत शीघ्र दिखलाओ, अन्यथा हमारे ये बाण तुम्हारे लिए जानलेवा सिद्ध होंगे॥ ३८॥ शत्रुञ्जय की ये बातें सुनकर अद्भुत पराक्रमी कुबेर ने आकर्ण प्रत्याञ्चा खींचकर तीव्र बाण से॥ ३९॥ तब कुबेर अपने तीन-तीन प्रखर बाणों से शत्रुञ्जय के घोड़े, सारथी और पताके को काटकर जैसे हाथी को मारकर सिंह गरजता है, वैसे ही गरज उठा॥ ४०॥ 'साधु वीर! साधु, तुम प्रशंसनीय हो, लेकिन मुझे तुम्हारी ताकत का पता है। जल्द यहाँ से खिसक जा, अन्यथा बेकार जान गँवानी पड़ेगी'॥ ४१॥ शत्रुञ्जय धनेश की ये बातें सुनकर क्रोध से भर गया और तमक कर गदा उठा लिया और कसकर कुबेर पर प्रहार कर दिया॥ ४२॥ गदा की चोट खाकर कुबेर धराशायी हो गये। फिर धनेश की गदा से सिर पर उसे चोट की॥ ४३॥

वज्रनिष्ठुरया मूर्ध्नि ताडितो गदया भृशम्। क्षणमात्रं मूर्च्छितोऽसौ तदा तद्धस्तगं धनुः॥ ४४॥
शत्रुञ्जयः समाक्षिप्य बभञ्जाऽतुलविक्रमः। निवृत्तमूर्च्छो धनपो दृष्ट्वा चापस्य भञ्जनम्॥
क्रोधसंरक्तनयनो जग्राह महतीं गदाम्। तदा शत्रुञ्जयः प्राह सखे शृणु वचो मम॥ ४६॥
पृथिव्यान्तु गदायुद्धे मत्तुल्यो नहि विद्यते। शस्त्राचार्यः प्राह यन्मे तद्ब्रवीमि निशामय॥ ४७॥
शिक्षितोऽतितरां तेन गदायां तदनन्तरम्। गदायुद्धेन ते तुल्यं पश्यामि भुवि कञ्च न॥ ४८॥
यदि जेताऽसि धनपं गदायां स महत्तमः। तदद्य यावन्मनसि त्वद्गदेक्षा समाहिता॥ ४९॥
अर्थात्त्वया सङ्गतोऽहं गदायुद्धे धनेश्वर। प्रदर्शयाऽऽत्मनो वीर्यं गदायुद्धेऽतिसम्भृतम्॥ ५०॥
एवं शत्रुञ्जयवचो निशम्य धनदस्तदा। ओमित्युक्त्वा तेन सह गदायुद्धं समारभत्॥ ५१॥
शत्रुञ्जयो धनेशश्च गदायुद्धविशारदौ। सुशिक्षितौ महाप्राणौ दृप्तपञ्चास्यविक्रमौ॥ ५२॥
तौ चेरतुर्मण्डलानि सव्यसव्येतराणि च। विषमाणि समाऽर्धानि विषमाऽर्धसमानि च॥ ५३॥
समानि समनिम्नानि समनिम्नाऽर्धकाणि च। अवप्लुतप्लुताऽर्धानि विषमप्लुतकानि च॥ ५४॥
उत्प्लुतप्रोत्प्लुतव्युत्थप्लुतंहसप्लुतानि च। गदायुद्धप्रोक्तगतीः सर्वा अपि परस्परम्॥ ५५॥
दर्शयन्तौ गतिज्ञौ तौ सुशिक्षौ युद्धकोविदौ। परस्परप्रहारस्य सन्धिप्रेक्षणकोविदौ। ५६॥
उपक्रमगतिज्ञानात् संभ्लाघन्तौ परस्परम्। अलक्ष्यवेगसञ्चारौ लक्षितौ कन्दुकाविव॥ ५७॥
एवं तयोर्गदायुद्धं प्रेक्षन्तः सिद्धचारणाः। शशंसुर्युद्धकौशल्यमहो युद्धमितीङ्गनैः॥ ५८॥

वज्र से भी अधिक कठोर गदा के प्रहार से वह मूर्च्छित हो गया। एक क्षण वह बेहोश रहा, फिर उसके हाथ का धनुष॥ ४४॥ शत्रुञ्जय ने छीनकर उसे तोड़ डाला। बेहोशी हटते ही कुबेर ने टूटे धनुष को देखा॥ ४५॥ क्रोध के मारे उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने महती गदा उठा ली। तब शत्रुञ्जय ने उससे कहा—मित्र! मेरी बात सुनो॥ ४६॥ धरती पर मेरी तरह गदायुद्ध में कोई प्रवीण नहीं है। शस्त्राचार्य ने मुझसे जो कुछ कहा वही मैं तुमसे कहता हूँ॥ ४७॥ उसके बाद बड़े ही मनोयोग से मुझे गदा की शिक्षा देकर कहा—संसार में गदा-युद्ध में तुम्हारी तुलना में अब कोई नहीं है॥ ४८॥ उस महत्तम गदायुद्ध में यदि तुम कुबेर-विजेता बन जाओ तो जानूँ। इसीलिए आज तुम्हारे मन में मेरे साथ गदायुद्ध की भावना उत्पन्न हुई है॥ ४९॥ हे कुबेर! इसीलिए मैं तुम्हारे साथ गदायुद्ध करूँगा। अपना पराक्रम इस गदायुद्ध में तुम दिखलाओ॥ ५०॥ शत्रुञ्जय की ये बातें सुनकर कुबेर ने 'ॐ' शब्द का उच्चारण किया और उसके साथ गदायुद्ध प्रारम्भ किया॥ ५१॥ शत्रुञ्जय और धनेश दोनों ही गदायुद्ध में प्रवीण थे, सुशिक्षित और महाप्राण थे, दोनों मदोन्मत्त थे। दोनों में महारुद्र का पराक्रम था॥ ५२॥ दोनों ही बायें-दायें मण्डलाकार पैतरा बाँध रहे थे। कहीं सम, कहीं विषम, कहीं अर्द्धसम तो कहीं अर्द्ध विषम॥ ५३॥ सम के साथ समनिम्न और समनिम्न के साथ आधे, कभी नीचे छलांग लगाता तो कभी ऊपर और कभी आधी दूरी॥ ५४॥ ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर अनेक गति में अनेक गदायुद्ध की कलाओं में वे दोनों ही समस्तरीय थे॥ ५५॥ गदायुद्ध की गति में दोनों प्रवीण थे, अपनी-अपनी कुशलता प्रदर्शित कर रहे थे। दोनों गदागति में प्रवीण, सुशिक्षित एवं युद्धविशारद थे॥ ५६॥ गदा-प्रक्षेपण की आरम्भिक गति का उन्हें पूर्ण ज्ञान था, अतः दोनों एक-दूसरे से टकरा रहे थे। किन्तु उनकी गति का वेग तो अलक्ष्य, केवल गेंद की तरह उछलते ही दीखते थे॥ ५७॥ दोनों के ऐसे गदायुद्ध को सिद्ध और चारण गण देखते हुए प्रशंसा कर रहे थे। दिल दहलाने वाला यह युद्ध आश्चर्यजनक था॥ ५८॥ इस तरह बहुत समय तक युद्ध करने के बाद कुबेर को यह बोध हो गया कि शत्रुञ्जय गदायुद्ध में

एवं चिरं तेन सह युद्ध्वा धनपतिस्तदा। स्वतोऽधिकं गदायुद्धे मेने शत्रुञ्जयं ततः॥५९॥
आप्लुत्य खे धनपतिः प्रहर्तुञ्चोन्नयद्गदाम्। तज्ज्ञात्वाऽवञ्चयच्छत्रुञ्जयोऽमोघमवप्लुतम्॥६०॥
ज्ञात्वा स्वं धनपः पृष्ठे जघानाऽधर्मतस्तदा। शत्रुञ्जयः पृष्ठदेशे ताडितो मूर्च्छितः क्षणम्॥६१॥
ततः प्रज्ञां समासाद्य क्रोधादरुणलोचनः। धिक्त्वामनार्यमशुभं धर्माऽपेतं धनाऽधिपम्॥६२॥
यन्मामधर्मयुद्धेन जघ्निवान् राक्षसो यथा। न त्वया गदया योद्धुमर्होऽहं धर्ममाश्रितः॥६३॥
युद्धेषु संश्लाघ्यतमं गदायुद्धं प्रचक्षते। बहुभिर्धर्मनियमैर्नियतं योगवर्त्मवत्॥६४॥
तत्त्वत्कृतस्याऽपचितिं पश्य कर्त्ताऽस्मि सम्प्रति। इत्युक्त्वा भुवि चिक्षेप गदां सर्वायसीं ततः॥
मुष्टिमुद्यम्य वेगेन जघान हृदि वै ततः। मुष्टिनाऽभिहतो यक्षराजः शोणितमुद्गिरन्॥६६॥
पपात भुवि चाऽत्यन्तं मूर्च्छितो मृतवत्तदा। पतितं तं पाशचयैर्बबन्ध निमिषाऽर्धतः॥६७॥
अथ मोचयितुं यक्षा राजानं कोटिकोटिशः। शस्त्रोद्यतकराः शत्रुञ्जयः हन्तुं समारभन्॥६८॥
अथ तान् गदया सर्वान् शमयामास वेगतः। दिनेश इव भूतौघान् ततस्तं निधिपं जवात्॥६९॥
समादाय व्रजन्तं तं पुलस्त्यः सुनिशाम्य वै। आगत्य वत्सेत्यामन्त्र्य मधुरं वाक्यमब्रवीत्॥७०॥
शत्रुञ्जय धनेशोऽयं जितो युद्धे त्वया बलात्। देहि मह्यमिमं पौत्रं प्रेयांसं हृदयङ्गमम्॥७१॥
वीरव्रतो याचितं न विप्रेभ्यो न प्रयच्छति। तं तत्सुतः कथं मह्यं न ददास्यभियाचितम्॥७२॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत्। समर्प्य तस्मै धनपं संन्यवर्त्तत वेगतः॥७३॥

उससे अधिक दक्ष है॥५९॥ आकाश में छलांग लगाकर धनपति कुबेर ने शत्रुञ्जय पर प्रहार करने के लिए गदा उठा लिया। यह जानकर बिना दाव-पेंच लगाये ठीक ठिकाने पर उसने छलांग लगा दी॥६०॥ तब उसे पता चला कि अधर्मपूर्वक कुबेर ने पीछे से छिप कर उस पर प्रहार किया है। पीठ पर गदा की चोट खाकर एक क्षण के लिए शत्रुञ्जय मूर्च्छित हो गया॥६१॥ उसके बाद होश आते ही क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गईं। अरे अधर्मी धनाधिप! तुमने कैसा अनार्य एवं अशुभ कर्म किया है? तुम्हें धिक्कार है॥६२॥ तुमने अधर्म का सहारा लेकर राक्षस की तरह मुझ पर छिप कर प्रहार किया है। जबकि मैंने धर्मपूर्वक तुम्हारे साथ गदायुद्ध में भाग लिया है॥६३॥ दाव-पेंच की दृष्टि से युद्ध में गदायुद्ध प्रशस्त है। अतः यह युद्ध बहुत सारे धर्म और नियमों में योगविद्या की तरह बँधा है॥६४॥ तुमने जो पाप किया है उसका प्रायश्चित्त अभी मैं करता हूँ, देखो। यह कहकर उसने अपनी गदा धरती पर फेंक दी॥६५॥ और मुक्का बाँधकर कुबेर की छाती पर कसकर प्रहार कर दिया। मुक्के की चोट से आहत कुबेर रक्तवमन करता॥६६॥ बेहोश होकर मुर्दे की तरह धरती पर जा गिरा। उसे गिरते देख पलक झपकते ही उसे पाशों में जकड़ लिया॥६७॥ इसके बाद यक्षराज कुबेर को छुड़ाने के लिए करोड़ों-करोड़ यक्षों ने हाथों में हथियार लेकर शत्रुञ्जय पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिये॥६८॥ उन यक्षों को गदा की चोट से शीघ्र शान्त कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे अन्धकार-समूह को एकमात्र सूर्य विनष्ट कर देते हैं। उसके बाद अत्यन्त वेग से कुबेर को॥६९॥ लेकर जाते हुए उसको मुनि पुलस्त्य ने रोक कर बड़े ही मधुर स्वर में कहा—हे वत्स!॥७०॥ शत्रुञ्जय! इस कुबेर को तुमने युद्ध में अपनी शक्ति से जीत लिया है। यह मेरा पौत्र है, मेरी आँखों का तारा एवं बड़ा ही प्यारा है, इसे मुझे लौटा दे बेटा॥७१॥ हे वीरव्रत! एक ब्राह्मण ने तुमसे याचना की है, क्या इसे ठुकरा दोगे? उसकी सन्तान को उसकी याचना पर भी न दोगे?॥७२॥ मुनि की ऐसी वाणी सुनकर धरती पर दण्डवत् होकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें कुबेर को समर्पित कर शीघ्र युद्ध के मैदान में

एवं जयन्तेन तत्र वीरभानुरयोधयत् । तौ युद्ध्वा सुचिरं तत्र बहुशस्त्राऽस्त्रकोविदौ ॥ ७४॥
लोकान् विस्मापयामासतुः स्वकौशलकर्मभिः । खड्गयुद्धं समासाद्य जयन्तो वीरभानुना ॥ ७५ ॥
बलिना ताडितो मूर्ध्नि न्यपतत् स्यन्दनोपरि । सारथिः पतितं दृष्ट्वा जयन्तं तमपावहत् ॥ ७६ ॥
शत्रुहा वरुणेनाऽयं युयोधाऽतिबलीयसा । शस्त्रैरस्त्रैर्बहुविधैः शंसनीयपराक्रमः ॥ ७७॥
वरुणो मकराऽरूढः शत्रुहा रथसंस्थितः । विचित्रं युद्धं चक्राते लोकविस्मापनं महत् ॥ ७८॥
शत्रुहा वरुणेनैवं सुसंयुध्याचिरं ततः । त्रिभिः शरैः सुनिशितैर्हृदि विव्याध तोयपम् ॥ ७९ ॥
त्रिभिः शरैर्गाढविद्धो वरुणः क्रोधमाययौ । चतुर्भिर्निशितैर्भल्लैश्चतुरस्तस्य वाजिनः ॥ ८० ॥
निहत्य ध्वजमेकेन यन्तारश्चैकपत्रिणा । हत्वा कर्णान्तपूर्णेन हृदि विव्याध तोयपः ॥ ८१ ॥
शत्रुहा हतकेत्वश्वसारथिर्गाढमन्युना । वारुणं मकरं तीक्ष्णकर्णिना मूर्ध्न्यताडयत् ॥ ८२ ॥
अन्येन चापं चिच्छेद किरीटमपरेषुणा । आकर्णाऽऽकृष्टबाणेन विव्याध निटिले तदा ॥ ८३ ॥
तीक्ष्णबाणविनिर्भिन्नफालदेशाज्जलेशितुः । असृग्धाराऽतिवेगेन निरगात् सोऽपि मूर्च्छितः ॥
शुशुभेऽसृग्धारया स फालनिर्गतया तदा । शैलेश इव शृङ्गोद्यच्छोणतोयझराऽऽवृतः ॥ ८५ ॥
अथ प्रज्ञां समासाद्य क्रोधेन वरुणो रुषा । बबन्ध निजपाशेनाऽमोघेन बलिनं बलात् ॥ ८६ ॥
तदा दृष्ट्वा शत्रुहणं बद्धं समरतापनः । नीयमानं जलेशेन रुरोध पथि सायकैः ॥ ८७ ॥
वरुणो बलवान् तेन युयोध सुचिरं तदा । बद्धं शत्रुहणं चापं गृहीत्वा शस्त्रकोविदः ॥ ८८ ॥
तस्याऽपि निशितैर्बाणैः सारथिं रथवाजिनः । निहत्य छित्त्वा तच्चापं वरुणः प्रययौ जवात् ॥

लौट गया ॥ ७३ ॥ इधर जयन्त के साथ वीरभानु का युद्ध चल रहा था। वे दोनों ही शस्त्र और अस्त्र संचालन में प्रवीण थे। वे दोनों बहुत समय तक युद्ध कर ॥ ७४ ॥ अपने युद्ध-कौशल से लोगों को आश्चर्यचकित करते हुए दोनों वीरों ने तलवार लेकर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ७५ ॥ बलवान् वीरभानु की तलवार के वार से जयन्त की गर्दन कटकर रथ पर गिर गई। सारथी ने उसे गिरते देखकर उठा लिया ॥ ७६ ॥ अत्यन्त बलवान् शत्रुहा वरुण के साथ भिडा था। बहुप्रशंसनीय शस्त्र एवं अस्त्रों का प्रयोग उस युद्ध में किया जा रहा था ॥ ७७ ॥ वरुणदेव मछली पर सवार थे और शत्रुहा रथ पर। दोनों ही दर्शकों को अचम्भित करने वाला विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥ ७८ ॥ शत्रुहा वरुण के साथ भयङ्कर युद्ध कर रहा था। शीघ्र ही उसने तीन धारदार तीरों से वरुण की छाती को वेध दिया ॥ ७९ ॥ क्रुद्ध वरुण ने भी अपने तेज चार भाले से शत्रुहा के रथ में जुते चारों घोड़ों को मार गिराया ॥ ८० ॥ एक बाण से इन्होंने उसकी पताका काट डाली और एक बाण से रथ काट डाला तथा एक तीर से उसकी छाती छेद डाली ॥ ८१ ॥ अपने रथ, सारथी, पताका और घोड़े को मारे जाते देख अत्यन्त क्रुद्ध होकर शत्रुहा ने फलदार तीर से वरुण के माथे को बेध दिया ॥ ८२ ॥ एक दूसरे बाण से उसके मुकुट को काट डाला तथा एक और अन्य तीव्र बाण से उसके मस्तक को बेध दिया ॥ ८३ ॥ फिर एक तीव्र बाण से उसके ललाट को बेध डाला। उससे लहू की धारा फूट निकली और वह मूर्च्छित हो गया ॥ ८४ ॥ माथे से निकलती लहू की धारा ऐसे शोभती थी जैसे नगाधिराज की चोटी से लहू का झरना फूट निकला हो ॥ ८५ ॥ जब वरुण को होश आया तब उस बलवान् ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने शक्तिशाली फाँसों से उस बलवान् को जकड़ लिया ॥ ८६ ॥ इस तरह बन्धन में जकड़कर शत्रुहा को ले जाते वरुण को देखकर समरतापन ने रास्ते में ही बाणवृष्टि कर उसे रोक लिया ॥ ८७ ॥ बलवान् वरुण उससे बहुत देर तक युद्ध करता रहा। शस्त्रविद्या में निपुण उसने बद्ध शत्रुहा और उसके धनुष को लेकर ॥ ८८ ॥ उसके भी रथ, घोड़े

तदा खड्गं समादाय गत्वा समरतापनः । वरुणं निजघानाऽऽशु मूर्ध्नि तीक्ष्णाऽसिना स च ॥
तेन खड्गप्रहारेण भिन्नमूर्धा जलेश्वरः । मूर्च्छितः पतितो भूमौ कृत्तपक्षमहीध्रवत् ॥ ९१ ॥
तदन्तरे तु वरुणं बद्ध्वा समरतापनः । नेतुं समीहते यदा तदा वैवस्वतो यमः ॥ ९२ ॥
महामहिषसंरूढो योद्धुं समरतापनम् । आययौ भिन्ननीलाऽद्रिप्रतिमो मृत्युनाऽऽवृतः ॥ ९३ ॥
रोगैर्दूतैश्च सहितो विकृताऽऽस्याऽङ्गबाहुभिः । आयान्तं सम्मुखं दृष्ट्वा भीमं भीमगणैर्वृतम् ॥
यद्दर्शनेनैव जनाः सन्त्यजन्ति भयाद्सून् । तं दृष्ट्वाऽपि तदा धीरो नाऽकम्पत महीध्रवत् ॥
युयोधाऽन्यरथारूढः शस्त्राऽस्त्रैर्विविधैर्बली । युद्ध्वा चिरं यमेनैवमर्धचन्द्रेण वक्षसि ॥ ९६ ॥
आकृष्य कर्णपर्यन्तं जघान शमनस्य वै । तेनाऽऽहतो दण्डधरो वमन् रक्तं सुफेनिलम् ॥ ९७ ॥
पपात महिषाद्भूमौ दूता हा हेति चुक्रुशुः । वरुणं पुनरासाद्य गन्तुमेव मनो दधे ॥ ९८ ॥
तदद्भुतं यमपराभवं दृष्ट्वा सुरा नराः । विस्मिताः प्रशशंसुस्तं सर्वे समरतापनम् ॥ ९९ ॥
तदन्तरे यमगणा वरुणस्य गणा अपि । आगत्य रोद्धुं युगपत्प्रवृत्ताः सर्वतो दिशम् ॥ १०० ॥
तान् दृष्ट्वा परितः सर्वानसंख्यातगणान् तदा । गदामादाय महतीं सर्वानिवाऽभ्यकालयत् ॥
ते काल्यमाना बहुधा न न्यवर्त्तन्त वै यदा । वायव्याऽस्त्रेण वरुणगणं तूर्णमपाकरोत् ॥ १०२ ॥
गणं याम्यमथाऽग्नेयाऽस्त्रेण हत्वा तदा पुनः । गन्तुं मनो दधे यावत्तावद्रोगाः सहस्रशः ॥ १०३ ॥
परिवार्य विलोप्तुं तं यदा समरतापनम् । उद्ययुस्तावदेवाऽयं मत्वाऽन्यास्त्रैः सुनिर्गतान् ॥

और सारथी को मारकर उसके चाप को काट कर शीघ्रता से वरुण चलता बना ॥ ८९ ॥ उसके बाद समरतापन ने तेज तलवार लेकर पूरी ताकत के साथ वरुण के शिर पर दे मारी ॥ ९० ॥ उसकी तलवार के वार से वरुण की गर्दन कट गयी और वह परकटे पहाड़ की तरह धरती पर जा गिरा ॥ ९१ ॥ इसके बाद ज्यों ही वरुण को समरतापन ने बाँध कर ले जाना चाहा कि इसी बीच उसे वैवस्वत यमराज ने आकर घेर लिया ॥ ९२ ॥ काले भैंसे पर सवार नीलपर्वत की तरह मृत्यु से घिरे समरतापन को युद्ध के लिए ललकारते हुए आ धमके ॥ ९३ ॥ उनके साथ दूत की तरह अनेक रोग थे। उनके मुँह, अङ्ग और बाँहें विकृत थीं। अपने भयङ्कर दूतों के साथ उस भयङ्कर यमराज को सामने से आते देखकर ॥ ९४ ॥ जिसे देखने से ही डर के मारे लोगों की जान निकल जाती है, उसे सामने देखकर भी वह वीर पहाड़ की तरह अडिग रहा ॥ ९५ ॥ अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सजकर वीर समरतापन ने दूसरे रथ पर सवार होकर बहुत देर तक यमराज के साथ युद्ध किया और अन्त में यम की छाती पर अर्द्धचन्द्र से प्रहार कर दिया ॥ ९६ ॥ फिर कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर यमराज पर तीर चला दिया। उससे आहत यमराज फेनिल लहू का वमन करते हुए ॥ ९७ ॥ भैंसे पर से धरती पर आ गिरे, उनके दूतगण हाहाकार कर उठे। इधर वीर समरतापन वरुण के पास फिर लौटकर उसे उठा ले जाना चाहा ॥ ९८ ॥ यमराज की यह अद्भुत पराजय देखकर सभी नर और देवता विस्मित होकर समरतापन की प्रशंसा करने लगे ॥ ९९ ॥ इसी बीच यमगण और वरुण के गण ने भी मिलकर चारों ओर से उसे घेरकर रोकना चाहा ॥ १०० ॥ चारों ओर से घेरने वाले उन दूतों को देखकर समरतापन ने गदा उठाकर उन पर प्रहार करना शुरू कर दिया ॥ १०१ ॥ जब घायल होकर वे पुनः लौट न सके तब उन वरुणगणों को वायव्यास्त्र से दूर हटा दिया ॥ १०२ ॥ यमगणों को आग्नेयास्त्र से पुनः मारकर ज्यों ही जाना चाहा त्यों ही हजारों रोग उसे आकर घेर लिये ॥ १०३ ॥ इन्हें रोककर विलुप्त करने के लिए ज्यों ही समरतापन ने दूसरा अस्त्र निकालना चाहा ॥ १०४ ॥ तब तक त्रयास्त्र अर्थात् तीन आयुधों को लेकर रोगों के प्रति छोड़

नाम त्रयास्त्रमासाद्य रोगान् प्रति समुत्सृजत्। तदस्त्रोत्सर्गमात्रेण क्षणादेवाऽखिलाऽऽमयाः ॥
महावातेन जलदा इव निःशेषतां ययुः। तदन्तरे महाकालमहिषो यमवाहनः ॥ १०६ ॥
क्रुद्धो विनिःश्वसन् हन्तुं प्रागात् समरतापनम्। खुरैर्विदारयन् पृथ्वीं शकृन्मूत्रमवासृजत् ॥
लाङ्गूलमुन्नयन्नर्दन्नदन् जातिरवं तदा। आयान्तं वीक्ष्य महिषमग्रे समरतापनः ॥ १०८ ॥
पशौ शस्त्रेण किमिति त्यक्त्वा शस्त्रमशेषतः। मुष्टिना प्राहरन्मूर्ध्नि बलवान् बलवत्तरम् ॥
तेन मुष्टिप्रहारेण भिन्नमूर्धा ह्यपासरत्। ईषत्कश्मलमायातो महिषोऽभ्यद्रवत् पुनः ॥ ११० ॥
अभिद्रुत्य विषाणाभ्यां हित्वा समरतापनम्। गृहीत्वा शृङ्ग्योर्मध्ये पलायनपरोऽभवत् ॥ १११ ॥
तदद्भुतं वीक्ष्य सुरा जहर्षुः शत्रुघातनात्। विषण्णा मनुजा मत्वा हतं समरतापनम् ॥ ११२ ॥
ततः प्रज्ञां समासाद्य पृष्ठमारुह्य सत्वरम्। महिषस्याऽहनत् पृष्ठतलाभ्यां बलवद्रुषः ॥ ११३ ॥
तलप्रहाराऽभिहतं पृष्ठं तस्य विदीर्यत। विदीर्णपृष्ठः पतितो मृतवन्निर्गतेक्षणः ॥ ११४ ॥
निर्यातितबहिर्जिह्वो घर्घरारावसंयुतः। मूर्च्छाविमुक्तः प्रेतेशस्तद्दृष्ट्वाऽतिरुषाऽन्वितः ॥ ११५ ॥
उद्यम्य कालदण्डं तं हन्तुं समरतापनम्। ययौ यदा तदा दृष्ट्वा सुधृतिः समचिन्तयत् ॥ ११६ ॥
अमोघः कालदण्डोऽयं प्राप्तः समरतापनम्। भस्मीकुर्यान्न सन्देहः किं कृत्वा नः शुभं भवेत् ॥
एवं विमृश्य मनसि ययौ शीघ्रं यमाऽन्तिकम्। तिष्ठ क्व गच्छसीत्युक्त्वाऽयमङ्गजवरस्थितः ॥
तीक्ष्णेणाऽऽकर्णकृष्टेन भल्लेन समताडयत्। दण्डोद्यते सव्यभुजे ततस्तेनैवमाहतात् ॥ ११९ ॥
कराच्च्युतः कालदण्डः निपपात महीतले। पुनर्दण्डं समादातुं यमो यावत् समागतः ॥ १२० ॥

दिया। उस अस्त्र को छोड़ते ही सारे रोग क्षणभर में ही ॥ १०५ ॥ तूफान के झोंके से जैसे मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, उसी तरह समाप्त हो गये। इसी बीच महाकाल यमवाहन भैंसा ॥ १०६ ॥ अत्यन्त क्रुद्ध फुँफकारते हुए समरतापन को मारने के लिए आगे बढ़ा। खुर से धरती को खरोंचते और पेशाब और पाखाना करते हुए ॥ १०७ ॥ अपनी पूँछ उठाये धरती को रौंदते, तेज आवाज में डकारते सामने से आते उस भैंसे को समरतापन ने देखकर ॥ १०८ ॥ हाय, इस जानवर के लिए हथियार की आवश्यकता ही क्या है? यह सोचकर सारे हथियारों को रखकर मुक्के से कसकर उस पर प्रहार कर दिया ॥ १०९ ॥ उस मुक्के की चोट खाकर वह भैंसा पीछे हटा, थोड़ी देर तक कसमसाने के बाद फिर आगे की ओर दौड़ पड़ा ॥ ११० ॥ दौड़कर अपने दोनों सींगों के बीच समरतापन को उठाकर भाग गया ॥ १११ ॥ इसका अद्भुत शत्रुघात को देखकर देवगण काफी प्रसन्न हुए। समरतापन को मरा जानकर मानव विह्वल हो उठे ॥ ११२ ॥ उस क्रुद्ध बलवान् को जैसे होश आया उस भैंसे की पीठ पर जा चढ़ा और भैंसे की पीठ पर हाथ से पीटना शुरू कर दिया ॥ ११३ ॥ चपेटे की मार से उस भैंसे की पीठ फट गई और वह मरे हुए की तरह चारों खाने चित्त जा गिरा ॥ ११४ ॥ कण्ठ से घर-घर आवाज आने लगी, जीभ बाहर निकल आयी। होश में आने के बाद यमराज भैंसे की यह दुर्दशा देखकर अति क्रुद्ध होकर ॥ ११५ ॥ कालदण्ड उठाकर जब समरतापन को मारने चला, तब सुधृति यह देखकर सोचने लगा ॥ ११६ ॥ यह तो अचूक कालदण्ड है, इसका स्पर्श होते ही समरतापन जलकर राख हो जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हमें अब क्या करना चाहिए जिससे हमारा कल्याण हो? ॥ ११७ ॥ मन में ऐसा विचार कर शीघ्र ही वह यम के पास पहुँच गया। रुको, कहाँ जा रहे हो? यह तुम्हारा श्रेष्ठ अङ्गज खड़ा है ॥ ११८ ॥ और कान तक खींचकर तीखे भाले से यम पर प्रहार कर दिया। दण्ड देने के लिए तैयार बायें हाथ ऊपर ऊठाये यम के उसी हाथ पर भाले का प्रहार हुआ ॥ ११९ ॥ एक क्षण वे हिले और हाथ से छिटक

सुधृतिस्तावदन्येन भल्लेन यममूर्धनि । जघान तेन भल्लेन भग्नमूर्धा पपात ह ॥ १२१ ॥
तत्कर्माऽत्यद्भुतं दृष्ट्वा शशंसुर्निर्जरा नराः । साधुशब्देन महता तदा वै मेघवाहनः ॥ १२२ ॥
दृष्ट्वाऽतिमानुषं तस्य सुधृतेर्विक्रमं जवात् । ऐरावतसमारूढः प्रायाद्योद्धुं शतक्रतुः ॥ १२३ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १५०८ ॥

कर कालदण्ड धरती पर दूर जा गिरा। फिर उस कालदण्ड को उठाने के लिए यमराज जब तक वहाँ पहुँचता है॥ १२० ॥ तब तक सुधृति ने दूसरे भाले से यम के झुके सिर पर प्रहार कर दिया। उस भाले की चोट से मस्तक फूट गया और यम धराशायी हो गया ॥ १२१ ॥ उसका यह आश्चर्यजनक काम देखकर देव और मानव सभी साधु-साधु कहकर प्रशंसा करने लगे। तब इन्द्र ने ॥ १२२ ॥ सुधृतिं का अतिमानवीय पराक्रम देखकर अत्यन्त वेग के साथ ऐरावत हाथी पर चढ़कर उससे युद्ध करने इन्द्र चल पड़ा ॥ १२३ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अथाऽष्टादशोऽध्यायः

सुधृतिं प्राप्य समरे गजसंस्थं पुरन्दरः। चिरं युद्धं समकरोत्तुमुलं लोमहर्षणम्॥ १॥
सुधृतेर्युद्धसारत्वं सुधृतित्वं निशाम्य तु। शतक्रतुर्विस्मितोऽभूत् युध्यमानो रणाऽजिरे॥ २॥
शतक्रतुः सितशरधाराभिः सुधृतिन्तदा। ववर्ष तोयद इव मेरुशृङ्गं सुवृष्टिभिः॥ ३॥
शतक्रतुशराऽऽसारसंच्छन्नः सुधृतिस्तदा। न दिशो नाऽपि चाऽऽकाशं भुवं वा पश्यति क्वचित्॥
एवमिन्द्रशराऽभ्रौघच्छन्नं सुधृतिपृषणम्। हा हेति चुक्रुशुर्दृष्ट्वा मर्त्यसेनाः समन्ततः॥ ५॥
एतस्मिन्नन्तरे शक्रशरवृष्टिं महाऽस्त्रतः। विनाश्य निर्ययौ सूर्य इव जीमूतमण्डलात्॥ ६॥
अथ सायकवृष्ट्याऽऽशु देवेशं समवाकिरत्। तीक्ष्णनाराचजालेन विव्याध च शचीपतिम्॥
इन्द्रोऽपि तावदेवाऽऽशु शरजालं समन्ततः। चिच्छेदाऽस्त्रेण महता वायुनेवाऽभ्रमण्डलम्॥
एवं कृतप्रतिकृतं निरीक्षन्तौ परस्परम्। संश्लाघन्तौ च सुधृतिदेवेन्द्रौ लाघवं बलम्॥ ९॥
तन्मध्ये सुधृतिः शीघ्रहस्तस्तीक्ष्णैः शरैस्त्रिभिः। धनुर्निषङ्गं मुकुटं चिच्छेद युगपद्द्रुतम्॥ १०॥
अथेन्द्रः शेखरभ्रंशात् क्रुद्धः प्रस्फुरिताऽधरः। दधाराऽन्यत्किरीटाऽग्र्यं विश्वकर्मविनिर्मितम्॥
तावत्तदपि वेगेन चकर्त्त सुधृतिः शरैः। पुनरन्यद्विश्वकर्मदत्तं मूर्ध्न्याऽभिधारयत्॥ १२॥
तावत्तदपि चिच्छेद भूयोऽन्यान्यपि भार्गवः। किरीटानां शतश्चैकं सुधृतिर्लघुविक्रमः॥ १३॥

❊ विमला ❊

रणाङ्गण में सुधृति को पाकर इन्द्र हाथी पर सवार होकर उसके साथ लम्बी अवधि तक रोमाञ्चक तुमुल युद्ध करता रहा॥ १॥ रणाङ्गण में युद्ध करते हुए सुधृति के युद्धकौशल की श्रेष्ठता और उसका गहरा धैर्य देखकर देवराज इन्द्र विस्मित हुए॥ २॥ तब इन्द्र ने सुधृति पर सफेद बाणों की वर्षा कर दी। लगता था जैसे मेरुगिरी की चोटी पर मेघ मूसलाधार वर्षा कर रहा हो॥ ३॥ इन्द्र के बाणों की वर्षा में डूबे सुधृति को न दिशाएँ दीखती थीं, न आकाश दीखता था और न धरती दीखती थी॥ ४॥ सुधृति को इन्द्र के बाणों की वर्षा से घिरे देखकर मानवसेना चारों ओर हाहाकार कर उठी॥ ५॥ इन्द्र की शरवृष्टि को अपने आयुध से काटकर सुधृति ठीक उसी तरह निकल आया जैसे मेघमण्डल को चीर कर सूर्य॥ ६॥ फिर सुधृति ने बाणवृष्टि से इन्द्र को छितरा दिया। अपने तीक्ष्ण बाणों के जाल से देवेश को बेध डाला॥ ७॥ इन्द्र ने भी शीघ्र ही सुधृति के चारों ओर बाणों का जाल बिछा दिया। फिर सुधृति ने उसे अपने बाणों से उसी तरह काट डाला, जैसे वायु के झोंके मेघमण्डल को॥ ८॥ दोनों के ऐसे कर्म और प्रतिकर्म चलते रहे और वे दोनों एक-दूसरे की प्रशंसा करते रहे॥ ९॥ इसी बीच सुधृति ने शीघ्र ही अपने हाथ के तीन तीक्ष्ण बाणों से इन्द्र के धनुष, तरकस और उनके माथे के मुकुट को एक साथ काट डाला॥ १०॥ मुकुट कटने के कारण इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उनके ओठ फड़कने लगे। विश्वकर्मा-निर्मित दूसरा मुकुट उसने माथे पर धारण कर लिया॥ ११॥ तब तक अत्यन्त वेग से फिर सुधृति ने अपने बाण से उनके मुकुट को काट गिराया और इन्द्र ने पुनः दूसरा विश्वकर्मा-निर्मित मुकुट सिर पर रख लिया॥ १२॥ तब तक इसे भी उसने काट डाला। सैकड़ों

चिच्छेदैवं तदा देवराजो लज्जाऽनताऽऽननः। क्रोधाग्निना प्रज्वलित ऐन्द्राऽस्त्रं समवासृजत्॥
सुधृतिस्तरसा तच्च वायव्यास्त्रेण नाशयत्। तथा दीर्घेण भल्लेन प्राहरच्चेन्द्रवाहनम्॥ १५॥
हतो भल्लेन देवेन्द्रगजः कुम्भान्तरे दृढम्। क्रुद्धः सुधृतिहस्तस्थश्चापमाच्छिद्य सत्वरम्॥ १६॥
बभञ्ज पादेन तदा तदद्भुतमिवाऽभवत्। साधु साध्विति देवाः श्लाघितो गजपुङ्गवः॥ १७॥
ससार सुधृतिं वेगात्करेणाऽऽदातुकामुकः। तदन्तरे तु सुधृतिरङ्कुशं बृहदायसम्॥ १८॥
गजराजाय चिक्षेप महामात्रस्तमाच्छिनत्। इन्द्रोऽपि बद्धमुकुटश्चिक्षेप परिघन्तदा॥ १९॥
गजराजाय सुधृतेः परिघेनाऽऽहतो गजः। क्रुद्धोऽभिधावदिन्द्रं स मुसलात्तकरः करी॥ २०॥
तावद्वज्रेणाऽभिहतो ममार सुधृतेर्गजः। ततः स्यन्दनमास्थाय सुधृतिर्लघुविक्रमः॥ २१॥
तीक्ष्णैः शरैस्त्रिभिर्देवपतिं मूर्ध्न्यभिताडयत्। गाढाविद्धः शरैस्तीक्ष्णैरीषत्कश्मलमाप सः॥
पुनरैरावतश्चाऽपि त्रिभिः संजघ्निवान् शरैः। इन्द्रोऽपि मूर्च्छानिर्मुक्तः शक्तिं तावत्समाक्षिपत्॥
नवघण्टासुरुचिरां दीप्तामशनिसन्निभाम्। दृष्ट्वाऽऽयान्तीं महावेगाममोघां सुधृतिस्तदा॥
रथाद्द्रुतं गदाहस्त आप्लुतः पक्षिराडिव। तावत् स्यन्दनमासाद्य शक्तिरैन्द्री ससारथिम्॥ २५॥
साश्वध्वजं सशस्त्रञ्च भस्मशेषं चकार ह। सुधृतिः क्रोधताम्राक्षस्तावदैरावतं बली॥ २६॥
गदां सर्वायसीं भूयो भ्रामयित्वा जघान ह। गदयाऽभिहतः कुम्भे बलेनाऽभ्रभुवल्लभः॥ २७॥
भूयो भ्रमन्निपतितो वमन् रक्तं सफेनिलम्। इन्द्रस्तावदवप्लुत्य वज्रहस्तोऽभिधावत॥ २८॥

बार इसने शिर पर मुकुट रखा और सैकड़ों बार इसने उसे काट डाला॥ १३॥ इस तरह सैकड़ों बार अपने मुकुटों को कटते देख इन्द्र ने लज्जा से अपना सिर झुका लिया और क्रोध से प्रज्वलित ऐन्द्रास्त्र को उठा लिया॥ १४॥ सुधृति ने अत्यन्त शीघ्रता से वायु अस्त्र से उसे काट डाला और अपने लम्बे भाले से इन्द्र के वाहन पर प्रहार कर दिया॥ १५॥ उसके सिर पर भाले की गम्भीर चोट लगी और ऐरावत इस चोट से धराशायी हो गया। इसके बाद क्रुद्ध गज ने सुधृति के हाथ से धनुष शीघ्र छीन लिया॥ १६॥ और अपने पैर से उसे तोड़ डाला। यह एक आश्चर्यजनक बात हुई। गजपुंगव की प्रशंसा करते हुए सब देवगण साधु-साधु कहने लगे॥ १७॥ गजराज ने वेग के साथ सुधृति की ओर बढ़कर अपनी सूँड़ से उसका धनुष लेना चाहा। इसी बीच सुधृति ने लौहनिर्मित भयङ्कर अंकुश उठाकर॥ १८॥ गजराज पर प्रहार करना चाहा जिसे महामन्त्री ने लपक कर छीन लिया। इधर इन्द्र ने भी माथे पर मुकुट बाँधकर इस पर लोहे की गदा से प्रहार कर दिया॥ १९॥ इधर सुधृति की गदा से गजराज आहत हो गया, इसका हाथी इसके हाथ से गदा छीनकर क्रुद्ध होकर इन्द्र की ओर दौड़ा॥ २०॥ तब तक इन्द्र ने सुधृति के हाथी पर वज्र से प्रहार कर दिया। वज्र की चोट खाकर वह हाथी वहीं ढेर हो गया। तब परम पराक्रमी सुधृति ने रथ पर चढ़कर॥ २१॥ तीन तीव्र बाणों से इन्द्र के माथे पर प्रहार कर दिया। तीखे बाण की चोट से कुछ क्षण के लिए इन्द्र मूर्च्छित हुए॥ २२॥ फिर तीन तीक्ष्ण बाणों से ऐरावत पर भी प्रहार कर दिया। इधर इन्द्र ने भी होश में आकर शक्ति नामक आयुध से सुधृति पर प्रहार कर दिया॥ २३॥ नौ घण्टाओं से रुचिकर बने, अत्यन्त प्रदीप्त, वज्र की प्रभा से सम्पन्न, महावेग के साथ आती उस अचूक शक्ति नामक आयुध को सुधृति ने देखा॥ २४॥ गदा हाथ में लेकर शीघ्र ही पक्षिराज गरुड़ की तरह रथ से उड़कर तब तक रथ पाकर रथ, सारथी और रथ के साथ॥ २५॥ उसके घोड़े, पताका और हथियारों को भस्म कर डाला। यह देखकर गुस्से से सुधृति की आँखें लाल हो गईं, उसने लोहे की गदा घुमाकर बली ऐराबत पर दे मारी॥ २६॥ लोहे की गदा फिर घुमाकर उससें प्रहार कंर दिया। उसकी गदा के प्रहार से ऐरावत चक्कर खाकर॥ २७॥ घूमकर लहू का वमन

सुधृतिस्तावदेवाऽऽशु गदया दक्षिणे भुजे। ताडयामास बलवत्ताडितो देवभूपतिः॥ २९॥
मूर्च्छामवाप नितरां पतितं कुलिशं करात्। सुधृतिः सत्वरं तावद्देवेन्द्रं मूर्च्छितं भुवि॥ ३०॥
बद्ध्वा नेतुममिक्रामत्तावद्देवाः समन्ततः। नानाविधप्रहरणाः सुधृतिं वव्रुरोजसा॥ ३१॥
सुधृतित्वात्तु सुधृतिरिन्द्रं वामेन पाणिना। गृहीत्वैव दक्षिणेन गदया तानभिद्रवत्॥ ३२॥
तदन्तरे वीरसेनः शत्रुञ्जयमुवाच ह। पितृव्य किं पश्यसि त्वं सुधृतिं हन्ति देवताः॥ ३३॥
इन्द्रं बद्ध्वा गृहीत्वाऽसौ एको युध्यति संयुगे। नाऽयं विलम्बने काल इत्युक्त्वा चोदयद्रथम्॥
शत्रुञ्जयमुखाः श्रुत्वा वीरसेनस्य भाषितम्। शस्त्रवृष्टिं प्रकुर्वन्तो विविशुः शक्रवाहिनीम्॥ ३५॥
अथाऽभवद्घोरतरो रणः परमदारुणः। अमर्त्यानाञ्च मर्त्यानां शस्त्राऽस्त्रबहुसङ्कुलः॥ ३६॥
करवालप्रासशूलगदाचक्रपरश्वधैः। भुशुण्डीशक्तिपरिघशतघ्नीतोमरेषुभिः॥ ३७॥
उच्चावचैः शस्त्रजालैरन्योन्यमभिहन्यताम्। पक्वतालफलानीव वायुना शिरसां गणः॥ ३८॥
पतन्ति शस्त्रघातेन हस्तपादादिकं तथा। रथाऽश्वगजपादातिपदघातोद्गतं रजः॥ ३९॥
आच्छाद्य ज्योतिषां राशिं गाढसन्तमसायितम्। तत्र केचिन्न पश्यन्ति परं वा स्वीयमेव वा॥ ४०॥
शब्दमार्गाऽनुसारेण युध्यन्ति निपुणा रणे। अश्वेभ्यः पतिताः केचिद्गजेभ्योऽपि तथा परे॥ ४१॥
गजैः सम्मृदितास्तत्र बहवोऽश्वाः पदातयः। तावच्छस्त्रौघसम्पातवेगनिर्यदसृक्प्रवैः॥ ४२॥
परितः प्रोच्छलद्भिस्तु यन्त्रादिव विनिर्गतैः। रजः संशान्तमभवदभ्रनिर्गमवत् क्षणात्॥ ४३॥

करते हुए धरती पर जा गिरा। उस सवारी से उछल कर हाथ में वज्र लिये इन्द्र दौड़ गया॥ २८॥ इसी बीच सुधृति ने गदा उठाकर इन्द्र के दाहिने हाथ पर दे मारी। उस शक्तिशाली गदा की चोट से इन्द्र॥ २९॥ बेहोश हो गया और उसके हाथ से वज्र छिटक कर दूर जा गिरा। धरती पर गिरे इन्द्र को सुधृति ने शीघ्र ही॥ ३०॥ बाँध कर उसे ले जाना चाहा; इसी बीच देवताओं ने अनेक प्रकारों के हथियारों से लैस होकर अपने-अपने ओज के साथ प्रहार करना शुरू कर दिया॥ ३१॥ अत्यन्त धैर्यशाली होने के कारण सुधृति ने इन्द्र को बायें हाथ से घसीटते हुए अपने दायें हाथ की गदा से उन पर बरसने लगा॥ ३२॥ इसी बीच वीरसेन ने शत्रुञ्जय से जाकर कहा—चाचा! देख क्या रहे हैं? सुधृति को देवगण घेर कर मार रहे हैं॥ ३३॥ इन्द्र को बाँधकर घसीटते हुए अकेले वे देव-समूह से जूझ रहे हैं। यह देर करने का समय नहीं है। इतना कहकर वह अपने रथ को आगे बढ़ा दिया॥ ३४॥ शत्रुञ्जय-प्रमुख वीरों ने वीरसेन की बातें सुनकर शस्त्रों की वर्षा करते हुए देवसेना को चीरकर भीतर घुस गये॥ ३५॥ दिल दहलाने वाला भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हो गया। देव और मानव अनेकविध हथियारों का प्रयोग युद्ध में करने लगे॥ ३६॥ तलवार, भाले, बर्छी, त्रिशूल, गदा, चक्र, कुल्हाड़ी, फरसे, भुशुण्डी, शक्ति, परिघ, शतघ्नी, तोमर एवं बाणों से॥ ३७॥ छोटे-बड़े हथियारों से परस्पर मार-काट करने लगे। पके तालफल जैसे हवा के झोंके से गिरते हैं उसी तरह उस रणाङ्गण में शिर कट-कट कर गिरने लगे॥ ३८॥ शस्त्रांघात से सैनिकों के हाथ-पैर प्रभृति कट-कट कर गिरते थे। रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिकों के पदाघात से धूलिकण आकाश में उड़ रहे थे॥ ३९॥ ये धूलिकण सूर्य के प्रकाश को ढँक लिये थे। इसके कारण न कोई किसी को देख पाता था और न अपने आपको ही देख पाता था॥ ४०॥ आवाज का अनुसरण कर कुशल योद्धागण रणाङ्गण में जूझ रहे थे। कोई घोड़े से गिरता तो कोई हाथी से॥ ४१॥ पैदल सैनिक कहीं हाथी के पैरों से कुचल रहे थे तो कहीं घोड़ों के टापों से। कहीं विभिन्न हथियारों के आघात से लहू की धारा बह रही थी॥ ४२॥ चारों ओर उछलते सैनिक ऐसे लगते थे जैसे मशीन से कुछ बाहर निकल रहे हैं। बादल छटने के कुछ देर में धूलिकण शान्त

प्रकाशे सति ते शूरा भ्रष्टवाहाः समागमन्। वाहनैर्विविधैः स्वीयैरन्यैरपि भृगूद्वहैः॥४४॥
रथिनो गजसंस्थाना गजिनश्चाऽश्ववाहनाः। अश्वारोहा रथारूढा एवं व्याकुलितं भवत्॥४५॥
यथाप्राप्तं समारूढा भ्रष्टवाहा विशङ्किनः। युद्धायैव सुसन्नद्धा न विदुर्वाहनं स्वकम्॥४६॥
एवमत्यन्तसम्मर्दैः प्रादुरासीदसृग्वहा। नदी फेनाऽऽवर्त्तयुता महावेगा भयङ्करा॥४७॥
अनेकक्षुद्रसरितां योगेनेव महानदी। क्षुद्रशोणितधाराभिर्युता साऽसृग्वहा नदी॥४८॥
द्वीपप्रायमृतकरी निरोधप्रतिवाहिनी। कङ्कवायसहंसाऽऽढ्यदीर्घकेशाऽन्त्रशैवला॥४९॥
हस्तिहस्तग्राहवती खेटकूर्मौघसंवृता। नृजङ्घोरुमहामत्स्या क्षुद्रमत्स्याऽङ्गुलाऽऽवलिः॥५०॥
महाघोषवती भीरुहृदयोत्कम्पकारिणी। युद्ध्यमाना भटास्तत्र परस्परजिघांसवः॥५१॥
नष्टशस्त्रा मुष्टितलनखदन्ताऽऽयुधाभवन्। विस्फारिताक्षा भ्रुकुटीकुटिला दष्टदृक्छदाः॥
शस्त्राण्युद्यम्य धावन्तश्छिन्नबाहूदराः परे। क्वचिन्मस्तकहीनाश्च युयुधुः शस्त्रपाणयः॥५३॥
एवं प्रवृत्ते समरे मर्त्याऽमर्त्यसमाकुले। शत्रुञ्जयाद्या नृपतिपुत्रास्तत्सूनवोऽपि च॥५४॥
विविशुर्देवसेनायां महाबलपराक्रमाः। चिरं ते देवसेनाभिर्युद्ध्वा संक्षोभ्य चाऽमरान्॥५५॥
आसेदुः सुधृतिं सेनापतिं बद्धसुराधिपम्। बद्धं सुरेशं वामेन गृहीत्वेतरहस्ततः॥५६॥
गदया समयुध्यन्तं दृष्ट्वा ते विस्मिता भवन्। साधु शूररणश्लाघ्य इति स्तुत्वा नृपाऽऽत्मजाः॥
संजघ्नुर्देवसेनां ते बलवद्युद्धदर्पिताः। तैर्हन्यमाना विबुधा सोढुमप्रभविष्णवः॥५८॥

हो गये॥४३॥ प्रकाश होने पर पता चला कि वीर वाहन-विहीन हो चुके थे। वे भगवान् परशुराम जैसे अनेक तरह के अपने या पराये वाहनों पर आरूढ़ हुए॥४४॥ रथी गजारोही बने थे, गजारोही अश्वारोही बने थे, अश्वारोही रथारूढ़ थे; इस तरह सम्पूर्ण सैन्य दल व्याकुल हो रहा था॥४५॥ वाहन-विहीन वीरों को जिसे जो कुछ मिला उसी पर उन्होंने अपनी सवारी गाँठ ली। युद्ध के लिए तैयार वे योद्धा अपने वाहन को भी भूल गये थे॥४६॥ ऐसे युद्ध में खून की नदी की धारा बह चली। फेन उठ रहे थे, भँवर चक्कर काट रहे थे। वह अत्यन्त वेगवती नदी भयङ्कर लग रही थी॥४७॥ जैसे छोटी-छोटी नदियों के सम्पर्क से महानदी बन जाती है, उसी तरह छोटी-छोटी लहू की धारा से लहू की महानदी बन गई थी॥४८॥ वीरों के सन्तरण का निरोधक शवों के समूह उस नदी के द्वीप बने थे। बगुले के पंखों वाले बाण कौए और हंस थे, वीरों के बाल और अँतड़ी शैवाल थे॥४९॥ हाथी ग्राह थे, घोड़े कछुए, मनुष्य की जाँघें बड़ी मछलियाँ और कटी अँगुलियाँ छोटी मछलियाँ थीं उस नदी की॥५०॥ बड़ी आवाज के साथ वह नदी बह रही थी, भीरु के हृदयों को कँपाने वाली वह आवाज थी। परस्पर विजय की कामना से सभी योद्धा युद्ध कर रहे थे॥५१॥ जिन योद्धाओं का हथियार विनष्ट हो गया था वे मुक्के, थप्पड़, नाखून तथा दाँतों को ही आयुध बना लिये थे। इनकी आँखें फैली थीं, भौंहें तनी थीं और आखों पर दाँत कटने का सुराग बना था॥५२॥ किन्हीं की बाँहें कटी थीं तो किन्हीं के पेट; ऐसे अङ्ग-भङ्ग व्यक्ति भी हथियार उठाकर एक-दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। किन्हीं की गर्दन कटी थीं, फिर भी हथियार उठाये दौड़ रहे थे॥५३॥ इस तरह देवता और मनुष्यों का युद्ध चल रहा था। शत्रुञ्जय आदि राजा के बेटे और पोते इस युद्ध में भाग ले रहे थे॥५४॥ इन महाबलियों ने देवसेना के व्यूह में प्रवेश कर बहुत काल तक युद्ध संचालित कर देवताओं को मथ डाला, उन्हें अत्यन्त क्षुब्ध कर दिया॥५५॥ इसी बीच सेनापति सुधृति ने देवराज इन्द्र को बाँधकर बायें हाथ से कस कर पकड़ लिया और दाहिने हाथ से॥५६॥ गदा लेकर उसे युद्ध करते देखकर सब राजकुमार दंग रह गये तथा उसकी स्तुति कर कहा—धन्य हो महावीर! रणक्षेत्र के प्रशंसनीय वीर

त्यक्त्वा शस्त्राणि हा हेति चुक्रुशुश्चाऽभिविद्रुताः । तदा कुबेरो वरुणो यमो गन्धर्वराडपि ॥ ५९ ॥
मिलित्वा युयुधुस्तत्र वायुसोममुखैर्युताः । तान् युध्यमानान् सुचिरं ते युद्ध्वा राजनन्दनाः ॥
बबन्धुस्ते कुबेरादीन् बलाद्युद्धेन निर्जितान् । शत्रुञ्जयो धनपतिं शत्रुहा वरुणं तथा ॥ ६१ ॥
चित्रसेनो यममपि भीमं समरतापनः । जयन्तं वीरसेनश्च वीरभानुः समीरणम् ॥ ६२ ॥
वीराग्रगो वसूंस्तद्वत् शशाङ्कं वीरविक्रमः । बद्ध्वा सेन्द्रान् सर्वदेवान्नेतुं समुपचक्रमुः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १५१७ ॥



हो ॥ ५७ ॥ युद्धोन्माद से दर्पित ये सारे राजकुमार देवताओं के साथ भयङ्कर युद्ध ठान दिये। उनसे पिटे देवता इस युद्ध को बर्दाश्त नहीं कर सके ॥ ५८ ॥ वे हथियार फेंककर हाहाकार करते हुए मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। तब कुबेर, वरुण, यम और गन्धर्वराज भी ॥ ५९ ॥ एक साथ मिलकर युद्ध करने लगे। उनका पवनदेव, चन्द्रमा प्रभृति देवताओं ने भी साथ दिया। चिरकाल तक उनके साथ ये राजकुमार जूझते रहे ॥ ६० ॥ युद्ध में उन्हें बलपूर्वक जीतकर कुबेर प्रभृति को इन्होंने बाँध लिया। शत्रुञ्जय ने कुबेर को तथा शत्रुहा ने वरुण को ॥ ६१ ॥ चित्रसेन ने यम को भी तथा भीम को समरतापन ने तथा जयन्त को वीरसेन ने और पवनदेव को वीरभानु ने बाँध लिया ॥ ६२ ॥ उसी तरह वीराग्रग ने वसुओं को, वीरविक्रम ने शशाङ्क को बाँध कर इन्द्र सहित सभी देवताओं को लेकर चलने लगे ॥ ६३ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५१७ ॥



अथैकोनविंशोऽध्यायः



एवमिन्द्रमुखान् बद्ध्वा यदा नेतुं प्रचक्रमुः। तदा कामो धनुर्दिव्यं तान् रुरोध विकर्षयन्॥ १॥
विद्रुता विबुधाः केचित् केचित्तत्र निपातिताः। विडौजप्रमुखा देवप्रवृद्धा बन्धनं गताः॥ २॥
देवगन्धर्वदाराद्याश्चुक्रुशुर्भयपीडिताः। तदा कामो विकर्षन् स्वं धनुर्मर्त्यानरुन्धत॥ ३॥
विमुञ्चन् शस्त्रवर्षाणि शरजालेन संवृणोत्। तदा सुधृतिमुख्यास्ते न्यस्य बद्धान् दिवौकसः॥ ४॥
युयुधुः सर्व एवैते कामेनाऽतिबलीयसा। पञ्चहायनको बाल एकः सर्वानयुध्यत॥ ५॥
कामः शस्त्राऽस्त्रकुशलस्तदद्भुतमिवाऽभवत्। विस्मयं परमं जग्मुर्मर्त्या देवास्तथेतरे॥ ६॥
सर्वेषामस्त्रजालानि शस्त्राण्यपि पृथक् पृथक्। छित्त्वा जघान प्रत्येकं सायकैः सितशल्यकैः॥
हताः सुधृतिमुख्यास्ते स्यन्दनं संश्रिताः पृथक्। सर्वप्राणैरयुध्यन्त कामेन बलवत्तराः॥ ८॥
तदा ते निशितैर्बाणैः कामं विव्यधुरेकशः। कामस्तानपि चिच्छेद मध्ये प्राप्तान् शरैः पृथक्॥
कामस्य दृष्ट्वाऽतिबलं सुधृतिः प्रजवात्तदा। भो राजपुत्राः शृणुत वर्धनेन पुरोदितम्॥ १०॥
एकः कुमारस्तेनाऽत्र हता राष्ट्राऽधिपाः क्षणात्। कोटिशोऽतिबलास्तेन दैवं बलमिदं भवेत्॥
इति तत्सत्यमेवाद्य पश्यामः कामपौरुषम्। एकः कुमारः सर्वान् नो रुरोध समितिञ्जयान्॥ १२॥

✲ विमला ✲

जब वे इन्द्रादि प्रमुख देवताओं को बाँधकर ले जाने लगे तब काम ने दिव्य धनुष हाथ में लेकर उन्हें रास्ते में ही रोक दिया॥ १॥ देवसेना के बीच भगदड़ मच गयी। कुछ जान बचाकर भागे और कुछ वहीं गिर गये। इन्द्रादि प्रमुख देवताओं की एक बड़ी संख्या बन्धन में जकड़ी थी॥ २॥ देवता और गन्धर्वों की पत्नियाँ डर के मारे थर-थर काँप रही थीं। इसी बीच काम ने अपने धनुष को टँकारते हुए मानवीय सेना को आगे बढ़ने से रोक लिया॥ ३॥ काम ने अपनी बाणवृष्टि का शरजाल बिछाकर मानवीय सेना को ढँक दिया। तब सुधृति प्रभृति मानवीय सेना ने बँधे देवप्रमुखों को एक किनारे रखकर॥ ४॥ अत्यधिक बलवान् काम के साथ ये सभी एक साथ जूझने लगे। पाँच साल का एक छोटा बच्चा सबके साथ अकेला युद्ध में भिड़ा था॥ ५॥ काम शस्त्र-अस्त्र संचालन में कुशल था, इसके प्रयोग करने में उसकी अद्भुत क्षमता थी। यह देखकर देवता, मनुष्य और अन्य सभी विस्मित थे॥ ६॥ सब सैनिकों के हाथ में भिन्न-भिन्न तरह के अस्त्र थे, अलग-अलग शस्त्र थे, संचालन में सब-के-सब प्रवीण थे। फिर भी उन हथियारों को अपने तीव्र बाण से काटकर॥ ७॥ सुधृति-प्रमुख सेनानी अलग-अलग रथ पर सवार होकर सबके साथ एक साथ मिलकर उस परमवीर काम के साथ युद्ध कर रहे थे॥ ८॥ तब वे अपने-अपने तीव्र बाणों से एक साथ मिलकर प्रहार करने लगे, काम ने भी उन्हें अपने तीव्र बाणों से बीच में ही काट डाला॥ ९॥ काम का अतिबल देखकर सुधृति ने अतिशीघ्रता से कहा—ओ राजकुमारो! सुनो, महाराज वर्धन ने मुझसे पहले जो कहा था॥ १०॥ एक छोटा राजकुमार एक क्षण में ही हमारे करोड़ों सैनिकों को मार गिराया है तो निश्चय ही यह अतिबल कोई दैविक बल है॥ ११॥ काम का पौरुष देखकर मुझे ये बातें आज सत्य प्रतीत हो रही हैं। एक छोटा राजकुमार हम सबों को एक साथ इस तरह रोक रखा है॥ १२॥ आज तक भी हमारे राजा हमारे प्रभु वीर-व्रत

अद्यापि नाऽऽगच्छति नो राजा वीरव्रतो विभुः। कामो न जेतुमस्माभिः शक्यो वीरव्रतादृते॥
सोऽपि राजा महादेवं सन्तोष्य तपसा यदि। भूयात् प्राप्तवशे नो चेत्कामोऽस्माञ्जयति क्षणात्॥
वदत्येवमनीकेशे कामः शीघ्रतरक्रियः। सुधृतेरायुधं तीक्ष्णशरेणाऽच्छिनदञ्जसा॥ १५॥
अन्येन हृदि विव्याध गाढं बाणेन पत्रिणा। सुधृतिर्हृदि संविद्धः कृत्तमूल इव द्रुमः॥ १६॥
पपात भुवि निष्प्रज्ञो विभिन्नहृदयस्तदा। शत्रुञ्जयं शत्रुहणं भीमं समरतापनम्॥ १७॥
विजेययुद्धकुशलो विध्वा मर्मसु सायकैः। तीक्ष्णैराशीविषप्रख्यैर्मूर्च्छितानकरोद्भृशन्॥ १८॥
ते हताः कामबाणौघैर्जर्जरीभूतविग्रहाः। हित्वा प्रज्ञामायुधञ्च प्रेयसीमिव कामुकः॥ १९॥
संश्लिष्य भूमिं सर्वाङ्गैर्न विदुर्बाह्यमान्तरम्। वीरविक्रममुख्यास्ते पुत्रा दृष्ट्वा तथाविधान्॥
पितॄन् शोकसमाक्रान्ताः परिदेवितुमारभन्। हा ताताऽस्मान् परित्यज्य क्व गतोऽनाथतां गतान्॥
तव ताते च किं ब्रूमो सोऽपि त्यक्ष्यति जीवितम्। विना भवद्भिर्निमिषमपि नो भविता नृपः॥
एवं विलपमानान् तान् दृष्ट्वा सुधृतिनन्दनः। रणधीरः प्राह तदा वचो मे शृणुताऽऽदरात्॥
पराक्रमस्य कालोऽयं न च वै परिदेवितुम्। शत्रुरत्येति सर्वान् नो भवेच्छोको हि वीर्यहा॥ २४॥
योद्धव्यं क्षत्रियैर्युद्धं यावत्प्राणस्य धारणम्। तस्माच्छोकं परित्यज्य युध्यामोऽत्र यथाबलम्॥
राज्ञे निवेदनायैष वीरसेनः प्रयात्वितः। भवतां देवितं दृष्ट्वा सैनिकाः सर्वतो दिशम्॥ २६॥
प्रयान्ति भीता हा हेति रटन्तस्त्यक्तहेतयः। निवर्त्तयध्वं शोकात् स्वं चित्तं धैर्यसमाश्रयात्॥ २७॥

लौटकर नहीं आये हैं, उनके सिवा काम को जीतना हमारे वश की बात नहीं है॥ १३॥ वे राजा भी तप से महादेव को सन्तुष्ट कर यदि शीघ्र नहीं लौटे या इस काम को वशवर्त्ती नहीं बनाये तो यह काम हमें क्षणभर में जीत लेगा॥ १४॥ इस तरह सेनापति बोल ही रहा था कि काम ने शीघ्र ही अपने तेज शर से सुधृति के आयुधों को काट गिराया॥ १५॥ पंखदार दूसरे बाण से काम ने सुधृति की छाती को छलनी कर दिया। छाती में बाण बिंधने के कारण जड़ से कटे पेड़ की तरह वह धराशायी हो गया॥ १६॥ छाती में शक्तिशाली बाण बिंधने के कारण वह बेहोश होकर धरती पर गिर गया। फिर शत्रुञ्जय, शत्रुहण, भीम एवं समरतापन को॥ १७॥ युद्ध में दक्ष काम ने इनकी छाती में विष उंगलने वाले बाणों से छेदकर शीघ्र ही इन्हें बेहोश कर जीत लिया॥ १८॥ किसी कामुक को जैसे उसकी प्रेयसी प्रिय होती है, वैसे ही प्रिय अपने आयुधों और चेतना को भूलकर काम के बाण से जर्जर देह लेकर वे सभी मूर्च्छित हो गये॥ १९॥ इन वीरों को भीतर-बाहर के ज्ञान से शून्य होकर, सर्वाङ्ग शरीर से धरती को अलिङ्गन करते देखकर वीरविक्रम प्रमुखों ने॥ २०॥ 'पिताओं को शोक से समाक्रान्त करने वाले' कहकर रोने लगे। हा तात! हमें छोड़कर हमें अनाथ बनाकर कहाँ चले गये॥ २१॥ तुम्हारे पिताजी से मैं क्या कहूँगा? एक पल भी तुम्हारे बिना क्या वे जी सकते हैं? वे भी प्राण छोड़ ही देंगे। फिर हमारे राजे कौन होंगें?॥ २२॥ उन्हें इस तरह विलाप करते देख सुधृति के पुत्र रणधीर ने उनसे कहा—कृपया आप मेरी बातें ध्यान से सुनें॥ २३॥ यह समय बैठ कर रोने का नहीं अपितु पराक्रम दिखलाने का है। शत्रु ने हमारे पराक्रम को नष्ट कर इन्हें मारकर हमें शोक दिया है॥ २४॥ क्षत्रियों के शरीर में जब तक प्राण हैं, उन्हें युद्ध ही करना चाहिए। अतः हमें शोक छोड़कर यथाशक्ति युद्ध ही करना चाहिए॥ २५॥ राजा के पास इन घटनाओं का निवेदन करने के लिए यहाँ से वीरसेभ शीघ्र प्रस्थान करें। आपको दयनीय स्थिति में देखकर आपके सैनिक चारों ओर॥ २६॥ डर के मारे हाहाकार करते हुए आयुध फेंककर भाग खड़े हुए हैं। शोक से घबड़ाये अपने चित्त को शान्त कर इन सैनिकों को फिर लौटाइए॥ २७॥ सुधृति के पुत्र की यह बात सुनकर धैर्य धारण कर सबके

निशम्यैव सुधृतिजवाक्यं धैर्यं समाश्रिताः। युद्धाय निर्ययुः सर्वे वीरविक्रममुख्यकाः॥ २८॥
राज्ञे निवेदनायाऽऽशु वीरसेनः सुनिर्गतः। शत्रुञ्जयसुताद्यास्ते कामस्याऽभिमुखे स्थिताः॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा दृष्ट्वा कामात् पराभवम्। इन्द्रादीन्मोचितुं सर्वे धृतधैर्याः समाक्रमन्॥ ३०॥
रणधीरोऽथ तान् सर्वान्निवार्य शरवृष्टिभिः। विद्रुतानाह्वयत् सर्वान् सैनिकान्मर्त्यपक्षगान्॥
हे हे शूरा नोचितं वः पलायनमशंसितम्। पलाय्य समराद्यूयं भर्तृपिण्डविनिर्ययम्॥ ३२॥
अकृत्वा गच्छयाऽत्यन्तमघशंसनिकां गतिम्। भर्तृपिण्डस्य निर्योगो युद्धे देहसमर्पणम्॥ ३३॥
पलाय्याऽभ्यागतं वीरपत्न्यश्चोपालभन्ति वै। अलं प्राणपरित्राणाल्लोकद्वितयनाशनात्॥ ३४॥
निवर्त्तध्वं निवर्त्तध्वं धैर्यमालम्ब्य सत्वरम्। इति तद्वचनं श्रुत्वा निवृत्ताः सर्व एव ते॥ ३५॥
पुनः समभवद्युद्धं देवमानवसेनयोः। मुहूर्त्तमात्रमभवद्रणः परमदारुणः॥ ३६॥
तदन्तरे तु मनुजान् कामः सायकवृष्टिभिः। विधमन्मारुत इव मेघवृन्दं नभस्तले॥ ३७॥
ते हन्यमानाः समरे कामस्य शरवृष्टिभिः। न शेकुः सम्मुखे स्थातुं वायोरग्रे घना इव॥ ३८॥
तदन्तरे सुधृतिजः शत्रुञ्जयसुतं बली। प्राह तत्कालसदृशं रणधीरो महाधृतिः॥ ३९॥
राजपुत्र शृणु वचो भ्रातृभिः सेनयाऽपि च। युतस्त्वं देवसेनाभ्यो रक्षेन्द्रादीन् पितॄनपि॥ ४०॥
अहं कामं योधयिष्ये पश्य मेऽद्य पराक्रमम्। इत्युक्त्वा रथमारूढो धनुर्विस्फारयन्महत्॥ ४१॥
कामस्य सम्मुखं प्रागात् सायकैरभिवर्षयन्। अथ कामोऽपि तं वर्षं शरस्य शरवृष्टिभिः॥ ४२॥
विनिवार्य सुनिशितान् प्रायुञ्जत् सायकान् तदा। तान् प्राप्तानेव मध्ये चिच्छेद सायकैस्त्रिभिः॥

सब युद्ध करने के लिए तैयार हो गये॥ २८॥ राजा को निवेदन करने के लिए वीरसेन शीघ्र ही प्रस्थान कर गया तथा शत्रुञ्जय के बेटे प्रभृति काम के सामने युद्ध के लिए आ डटे॥ २९॥ इसी बीच देवताओं ने काम से हारे हुए इन्हें देखकर पूरे धैर्य के साथ इन्द्रादि प्रमुख देवताओं को बन्धन-मुक्त कराने के लिए आक्रमण कर दिया॥ ३०॥ रणधीर ने देवसेना को अपने तीर की वर्षा से रोककर अपने भगोड़े सैनिकों को चिल्लाकर बुलाते हुए कहा॥ ३१॥ ओ वीरो! रणभूमि से इस तरह पीठ दिखाकर तुम्हारा लगना वीरोचित कर्म नहीं है। यह तो बिलकुल ही निन्दनीय है॥ ३२॥ अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किये बिना भगोड़े क्यों भयङ्कर पाप समेट रहे हो। रणक्षेत्र में अपने देह का समर्पण ही तो भर्तृपिण्ड का निर्योग है॥ ३३॥ युद्धक्षेत्र के भगोड़े सिपाहियों पर तो उनकी पत्नियाँ भी ताना ही मारती हैं। जान बचाना तो बेकार ही है, इससे से तो उनके दोनों लोक नष्ट होते हैं॥ ३४॥ लौटो, लौट आओ, धीरज रखो, जल्दी आओ। रणधीर की बातें सुनकर सभी भगोड़े सिपाही लौट आये॥ ३५॥ फिर देव और मानव सेना एक-दूसरे के साथ जूझने लगी। लगभग अड़तालीस मिनटों तक यह परमदारुण युद्ध चलता रहा॥ ३६॥ इसके बाद काम ने मानवीय सेना को अपनी बाणवृष्टि से उसी तरह तितर-बितर कर दिया जैसे हवा बादलों को उड़ा देती है॥ ३७॥ काम की शरवृष्टि से आहत सैनिक उसके सामने खड़े भी नहीं हो पाते थे; जैसे पवन के सामने मेघ॥ ३८॥ उसी समय काल के समान महान् धैर्यशाली और बली रणधीर ने सुधृति के पुत्र तथा शत्रुञ्जय के बलवान् पुत्रों से कहा॥ ३९॥ राजकुमारो! मेरी बातें ध्यान से सुनों। तुम इन देवसेनाओं से अपने पिताओं एवं इन्द्रादि देवों को भाइयों तथा सेना के साथ मिलकर बचाओ॥ ४०॥ मैं इस काम का सामना करता हूँ। तुम लोग आज मेरा पराक्रम देखो। इस तरह रथ पर सवार होकर धनुष टंकार करते हुए॥ ४१॥ तीरों की वर्षा करते हुए काम के सामने आ डटा। इधर काम ने भी उस बाणवृष्टि का जवाब बाणवृष्टि से देना प्रारम्भ कर दिया॥ ४२॥ अत्यन्त तीव्र बाणों को आते देख उन्हें बीच में ही अपने तीन बाणों से रोककर बीच में ही काट डाला॥ ४३॥ काम ने तीव्र बाण से

छित्त्वा द्रुतं मुष्टिदेशे मन्मथस्य महेषुणा। जघान रणधीरोऽपि तदा कामकराद्धनुः॥४४॥
प्रापत भुवि तद्दृष्ट्वा शशंसुः साधु साध्विति। कामोऽपि विक्रमं दृष्ट्वा रणधीरस्य संयुगे॥
साधु वीर श्लाघ्यतम स्तुत्वैवं निशितं शरम्। चापमादाय सन्धाय रणधीरस्य पश्यतः॥४६॥
चिच्छेद चापं शरौघं लघुहस्तः प्रतापवान्। तेन क्रुद्धः सुधृतिजश्चापमन्यत् समाददे॥४७॥
अथ कामस्तस्य रथमश्वान् सूतं शरासनम्। चिच्छेद युगपद्बाणैः शीघ्रं लघुपराक्रमः॥४८॥
अथाऽऽदाय गदां सर्वलोहामशनिसन्निभाम्। प्राद्रवन्मदनं हन्तुं क्रोधेनाऽग्निरिव ज्वलन्॥४९॥
रणधीरं तथाऽऽयान्तं दृष्ट्वा कामः सुवेगतः। चकार वर्षं निशितशराणां घनराडिव॥५०॥
रणधीरोऽपि तां वृष्टिं सर्पानिव खगेश्वरः। ग्रसन् जघान गदया सर्वप्राणेन मन्मथम्॥५१॥
गदया ताडितो मूर्ध्नि भ्रमन्नेत्रः पपात ह। गाढमूर्च्छामवाप्तोऽथ रणधीरोऽपि तत्क्षणम्॥५२॥
कामसायकवर्षेण चालनीभूतविग्रहः। पपात मूर्च्छितोऽत्यन्तं वज्राहत इवाऽद्रिराट्॥५३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
एकोनविंशतितमोऽध्यायः॥१६२४॥



उसके हाथ के बाण को काट गिराया। उसने भी काम के हाथ में पकड़े धनुष को काट गिराया॥४४॥ धरती पर उसके गिरे धनुष को देखकर सभी साधु-साधु कहकर प्रशंसा करने लगे। काम भी उसकी प्रशंसा किये बिना न रह सका॥४५॥ साधु वीर! तुम अत्यन्त प्रशंसनीय हो, ऐसी स्तुति कर, रणधीर के देखते-देखते धनुष पर तीव्र बाण सन्धान कर॥४६॥ उस छोटे हाथ वाले प्रतापी ने अपने शरसमूह से उसके बाण को काट डाला। इससे अत्यन्त क्रुद्ध सुधृति के पुत्र ने शीघ्र ही अपने हाथों में दूसरा धनुष उठा लिया॥४७॥ तब पराक्रमी काम ने कई बाणों को एक साथ मिलाकर उसके रथ, घोड़े, सारथी और शरासन को काट डाला॥४८॥ इसके बाद आग की तरह क्रोध से जलते हुए लौह-निर्मित वज्र की तरह गदा उठाकर काम को मारने के लिए दौड़ गया॥४९॥ इस तरह रणधीर को आते देखकर तेज बाणों की वर्षा उस पर मेघराज की तरह उसने प्रारम्भ कर दी॥५०॥ रणधीर ने भी उस वृष्टि को जैसे गरुड़ साँपों को नष्ट करता है, उसी तरह नष्ट कर सारी शक्ति लगाकर गदा से काम पर प्रहार कर दिया॥५१॥ माथे पर गदा की चोट खाकर काम चक्कर खाकर नीचे गिर गया और गहरा बेहोश हो गया। उसी क्षण रणधीर भी॥५२॥ काम की बाणवृष्टि से जिसकी देह छलनी हो गयी हो, वह उसी तरह मूर्च्छित होकर गिर गया; जैसे वज्र की चोट से पर्वतराज गिरता हो॥५३॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१६२४॥



अथ विंशतितमोऽध्यायः

तदन्तरे वीरसेनो मार्गे राजानमैक्षत । प्रणम्य चरणौ मूर्ध्ना विमना इव संस्थितः॥ १ ॥
तथाविधं प्रियतमं पौत्रं राजा निरीक्ष्य तु। आशिर्भिरनुयोज्याऽथ मूर्ध्न्युपाघ्राय चाऽवदत्॥ २ ॥
वत्स किं दीनभूतोऽसि कच्चित्ते कुशलं तनौ । नगरे भ्रातृषु तथा पितृषु स्त्रीगणेषु च॥ ३ ॥
सेनासु भृत्यवर्गेषु कोशेषु गुरुमन्त्रिषु । वद शीघ्रं समीक्ष्य त्वां दीनं शुष्यति नो मनः॥ ४ ॥
इति श्रुत्वा तदा वीरसेनः प्राञ्जलिरब्रवीत्। राजंस्त्वन्निर्गमदिनाच्चतुर्थेऽह्नि पुरा श्रुतः॥ ५ ॥
कामो गीर्वाणसेनाभिरिन्द्राद्यैरपि संवृतः । समागतः सुतुमुलं युद्धं चक्रुर्बुधा नरैः॥ ६ ॥
अथाऽस्माभिः सुधृतिना सेनया सह संयुगे। युद्ध्वा विनिर्जिता देवा बद्धा इन्द्रमरुन्मुखाः॥ ७ ॥
अथ कामः क्षणेनैव महाबलपराक्रमः । शत्रुञ्जयादीन् सुधृतिं पातयामास संयुगे॥ ८ ॥
अक्षौहिणीनां पञ्चाशद्धतास्तेन दिनाऽर्धतः । भ्रातरो रणधीरेण तदाऽऽश्वस्ताः सुदुःखिताः॥
साम्प्रतं योधयत्येको रणधीरः स्वसेनया । मन्ये निपतितः सोऽपि कामेन सह सङ्गरे॥ १० ॥
सुधृतिप्रमुखा येन क्षणाद्युद्धे निपातिताः । तत् कथं योधयेदेको रणधीरो महाबलम्॥ ११ ॥
इति प्रोक्तं सर्ववृत्तं भवानग्रे परायणम्। तच्छ्रुत्वा पौत्रवचनं या भैरिति समीरयन्॥ १२ ॥
आजगाम युद्धभुवि धनुर्विस्फारयन्मुहुः। क्षणेन तावत् कामोऽपि मूर्च्छातः प्रत्यबुध्यत॥ १३ ॥

✲ विमला ✲

इसके बाद वीरसेन ने रास्ते में राजा को आते देखा। उनके चरणों पर माथा टेककर, उन्हें प्रणाम कर एक तरफ दुःखी होकर खड़ा हो गया॥ १॥ अपने प्रिय पौत्र को इस स्थिति में देखकर राजा ने उसे अनेक आशीर्वाद दिये तथा उसका शिर सूँघ कर पूछा॥ २॥ बेटे! तुम इस तरह दीन क्यों हो? खैरियत तो है? नगर में तुम्हारे भाई लोग, पिता लोग और राजरानियों के कुशल तो हैं?॥ ३॥ सेना, सेवक, कोश, गुरु और मन्त्रियों की खैरियत तो है, शीघ्र बतलाओ। तुम्हें इस दीन स्थिति में देखकर मेरा मन सूख रहा है॥ ४॥ यह सुनकर वीरसेन ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—राजन्! आपके यहाँ से जाने के बाद चौथे दिन पहले जैसा सुना था॥ ५॥ काम ने इन्द्रादि प्रमुख देवता और देवसेना के साथ यहाँ आकर कठोर और भयङ्कर युद्ध देव और मानव के बीच ठान दिया॥ ६॥ हम लोगों ने सेना और सेनापति सुधृति के साथ मिलकर उसका सामना किया और युद्ध में लड़कर इन्द्र एवं पवनादि देवों को पराजित कर उन्हें बाँध लिया॥ ७॥ महाबली, अतिपराक्रमी काम ने एक क्षण में शत्रुञ्जयादि के साथ सुधृति को एक साथ मार गिराया॥ ८॥ पाँच सौ अक्षौहिणी सेना को उसने आधे दिन में ही मार गिराया। भाइयों को तब रणधीर ने आश्वस्त किया॥ ९॥ इस समय अकेले रणधीर अपनी सेना के साथ उनके साथ जूझ रहा है। मैं मानता हूँ काम के साथ युद्ध में उसकी भी पराजय होगी ही॥ १०॥ सुधृति प्रमुखों को पलक झपकते जिसने पराजित कर दिया, उस महाबली के साथ अकेला रणधीर कैसे लड़ेगा?॥ ११॥ इस तरह आपके यह विनत सेवक ने आपके सामने सारा वृत्तान्त निवेदित कर दिया। पोते की बात सुनकर राजा ने उनसे कहा—'मत डरो'॥ १२॥ युद्धभूमि में अपने धनुष को बार-बार टंकारते हुए राजा आ धमका। उधर एक क्षण के बाद काम भी होश में आ गया॥ १३॥

राजानं पुरतो दृष्ट्वा कामः शरसुवृष्टिभिः । अवाकिरन्मेरुगिरिं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ॥ १४॥
राजाऽपि प्रतिवर्षेण शरवृष्टिं व्युदस्य ताम् । नीहारपटलान्मुक्तः चण्डांशुरिव सम्बभौ ॥ १५॥
अथ राजाऽपि निशितैर्गार्धपत्रैः सुतेजितैः । विव्याध मदनं भूयः सोऽपि तान्मध्य आच्छिनत्॥
आच्छिद्याऽऽकर्णपूर्णेन राजानं ताडयद्भृशम् । राजाऽपि तं शरं मध्ये चिच्छेदाऽप्राप्तमाशुगैः॥
एवं युद्धमभूत् कामराज्ञोरत्यन्तदारुणम् । राजानं वीक्ष्य सम्प्राप्तं सैनिकाः सहसोत्थिताः ॥ १८॥
सुधृतिप्रमुखाश्चापि मूर्च्छामुक्ताः समन्ततः । तन्वः प्राणमवाप्येव राज्ञा सर्वेऽभिसङ्गताः ॥ १९॥
प्रणेमुः सर्व एवैते शत्रुञ्जयमुखा नृपम् । युध्यमानो नृपः प्राह सुधृते शृणु मद्वचः ॥ २०॥
कामेन युद्ध्वाऽतिचिरं खिन्नाः श्रान्ताश्च सम्प्रति । इन्द्रादीन् रक्षत भृशं सुरेभ्यः सर्वतो दिशम्॥
योद्धाऽस्म्यहं मन्मथेन भवन्तः प्रेक्षका मम । इत्युक्त्वा युयुधेऽत्यन्तं राजा कामेन संयतः ॥ २२॥
तयोर्युद्धं समभवत् विष्णुकैटभयोरिव । उच्चावचैरस्त्रगणैः शस्त्रैरपि सुतेजनैः ॥ २३॥
अस्त्राण्यस्त्रेण शस्त्राणि शस्त्रेण विनिवार्य्य च । चक्रतुर्युद्धमत्यन्तं परस्परजयैषिणौ ॥ २४॥
अभेद्यकवचौ तद्वदच्छेद्यदृढकार्मुकौ । अक्षय्यतूणयुगलौ धनुर्विद्याविशारदौ ॥ २५॥
लाघवेन च वीर्येण बभूवतुरतिक्रियौ । एवं तयोर्विक्रमतोरतिक्रान्तं दिनत्रयम्॥ २६॥
युध्यतोस्तुर्यदिवसे युद्धमासीन्महत्तरम् । अस्त्राऽग्निभिः सर्वलोका व्याप्ताः समभवन् तदा॥
राजा तदा हीयते यच्छ्रान्त्या कामोऽभिवर्धत । ज्ञात्वा राजां हीयमानमात्मानं शङ्करं तदा ॥ २८॥

राजा को सामने देखकर काम ने भी शरवृष्टि प्रारम्भ कर दी। पहाड़ पर वर्षा की तरह उसने राजा पर बाणों की वृष्टि कर दी॥ १४॥ उसे राजा ने भी अपनी शरवृष्टि से तबाह कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे कुहरे के जाल को फाड़कर सूर्य बाहर निकल आता है॥ १५॥ राजा ने भी पंखदार अत्यन्त तीव्र एवं तेजस्वी बाणों से काम को बेध दिया। उसने भी राजा को बीच में ही अपने बाणों से बेध दिया॥ १६॥ राजा के बाणों को काट कर अपनी प्रत्यञ्चा कान तक खींचकर राजा पर उलट कर उसने प्रहार कर दिया। राजा ने भी उसे अपनी ओर आते देखकर उस तीर को बीच में ही काट डाला॥ १७॥ इस तरह काम के साथ राजा का अतिप्रचण्ड युद्ध हुआ। समर में जूझते राजा को देखकर सारे सैनिक उत्साहित होकर सहसा उठ खड़े हुए॥ १८॥ सुधृति प्रमुख चारों ओर जो मूर्च्छित होकर गिरे थे, वे सब होश में आकर राजा के सामने आ खड़े हुए॥ १९॥ शत्रुञ्जय-प्रमुख सारे वीर राजा को प्रणाम करने लगे। उधर काम के साथ युद्ध करते हुए राजा ने सुधृति से कहा—मेरी बात सुनो॥ २०॥ काम के साथ कई दिनों से युद्ध करते-करते मैं थक गया हूँ और क्लान्त भी हो गया हूँ। तुम इन्द्रादि बन्दी देवताओं को चारों ओर से घेर कर इन देवताओं से बचाओ॥ २१॥ मैं अकेला काम से लड़ूँगा, तुम लोग केवल देखते रहो। यह कहकर राजा ने संयत मन से श्रम के साथ युद्ध करना शुरू कर दिया॥ २२॥ इन दोनों का युद्ध भगवान् विष्णु और कैटभ के युद्ध की तरह था। तेजस्वी शस्त्र और छोटे-बड़े अस्त्रों से युद्ध चलने लगा॥ २३॥ अस्त्रों को अस्त्र से और शस्त्रों को शस्त्र से रोककर एक-दूसरे पर विजय पाने की अभिलाषा से वे युद्ध करने लगे॥ २४॥ वे दोनों ही धनुर्विद्या में विशारद थे। दोनों के पास कभी न खत्म होने वाले तरकश थे, अभेद्य कवच थे। उसी तरह कभी न कटने वाले मजबूत धनुष थे॥ २५॥ अति तत्परता से, शूरवीरता से दोनों ही हद से आगे बढ़ते रहे। इस प्रकार दोनों अपने-अपने पराक्रम से तीन दिनों तक लड़ते रहे॥ २६॥ इस तरह लड़ते हुए दोनों का चौथे दिन अति भयङ्कर युद्ध ठन गया। अस्त्रादि से सब लोक प्रदीप्त हो उठे॥ २७॥ अब राजा को लज्जा का अनुभव होने लगा। उसने सोचा कि मैं थक गया हूँ, अतः काम का पलड़ा भारी पड़ रहा है। तब अपने को कमजोर समझ कर भगवान्

सस्मार मनसा शीघ्रं तदा देवस्त्रिलोचनः । त्रिशूलं प्रेषयामास तद्राज्ञस्तु शरासने ॥ २९ ॥
सन्निविष्ट सायकवत्तद्राजा पाणिनाऽऽददे । तं शरं सारभूतं स मेने गुरुतरं यतः ॥ ३० ॥
नन्वेष सायकोऽत्यन्तं भारभूतोऽशनिप्रभः । कुत एवं निषङ्गे मे नाऽऽसीत् पूर्वं कदाचन ॥ ३१ ॥
अथवाऽहं श्रान्त इति स्यादेवमपि वा शिवः । कुलेशः कामविजये सन्निधानं गतो भवेत् ॥ ३२ ॥
चिन्तयन् चिन्तितं बाणं कार्मुके समयोजयत् । तदाऽर्चिषः समुत्पेतुः शरादशनिसन्निभात् ॥
तदाऽपसव्यं कामस्य चक्रुः शकुनयो मृगाः । दिशः प्रजज्वलुर्भूमिश्चकम्पे रज आततम् ॥ ३४ ॥
तद्दृष्ट्वा विपरीतं स कामः सस्मार मातरम् । लक्ष्मीं साऽप्रेषयत् दूतान् रक्षणार्थं मनोभुवः ॥
तावच्चिक्षेप राजा तं शरमग्निशिखोपमम् । पश्यतां सर्वलोकानां शरः कालाऽग्निसन्निभः ॥ ३६ ॥
दहन्निव त्रिलोकीं स पपात मदनोपरि । हा हेति चुक्रुशुर्देवा दृष्ट्वा शरनिपातनम् ॥ ३७ ॥
सम्प्राप्य स शरः कामं ददाहाऽनलवत्तृणम् । धनुस्तृणयुगं शस्त्रं सर्वं भस्मीभवत् क्षणात् ॥ ३८ ॥
कामोऽपि विगतप्राणो दग्धाङ्गारसमाऽङ्गकः । निपपात क्षितितले क्षीणपुण्यो यथाऽम्बरात् ॥
तदन्तरे ते दूताश्च लक्ष्म्या ये प्रेषिताः पुरा । आगता ददृशुः कामं भूमौ निपतितं व्यसुम् ॥ ४० ॥
ते गृहीत्वा विसंज्ञं तं जग्मुः पद्मासमीपतः । अथ राज्ञा हतं कामं दृष्ट्वा सुधृतिमुख्यकाः ॥ ४१ ॥
अत्यन्तं जहृषुः सर्वे महारिपुनिपातनात् । सैनिका जयभेर्यादीन्यभिजघ्नुः समन्ततः ॥ ४२ ॥
हर्षव्याकुलिताः सर्वे प्रोत्सिक्ता अब्धिवज्जनाः । राजानमभिसङ्गम्य वर्धयामासुरुच्चकैः ॥ ४३ ॥

शिव को॥ २८॥ मन से स्मरण किया और तब भगवान् शिव ने अपने त्रिशूल को राजा के शरासन पर भेज दिया॥ २९॥ बाणों में मिलकर बाण की तरह ही वह राजा के हाथ में आया। वह बाण राजा के हाथ में बहुत ही भारी महसूस हुआ, उसने माना॥ ३०॥ यह बाण अत्यन्त भारी है। इसकी प्रभा वज्र की तरह है। यह तीर मेरे तरकश में कहाँ से आया ? इसे तो मैंने कभी देखा ही नहीं॥ ३१॥ अथवा मेरे कुल के इष्ट महादेव ने मुझे थका जानकर मेरे पास काम-विजय के लिए मेरे तरकश में तीर का सन्निवेश किया है॥ ३२॥ चिन्त्य बाण के सन्दर्भ में सोचते हुए उस बाण को धनुष की प्रत्यञ्चा पर रख दिया। धनुष पर बाण रखा कि उससे ज्वाला फूट पड़ी, तीर वज्र की तरह चमकने लगा॥ ३३॥ तब काम की दायीं ओर पशु-पक्षी भागने लगें। दिशाएँ दहक उठीं, धरती काँपने लगी, धूलि से आकाश भर गया॥ ३४॥ इस विपरीत स्थिति देखकर काम ने अपनी माता लक्ष्मी को याद किया और अपने बचाव के लिए लक्ष्मी के पास दूत भेजा॥ ३५॥ तब तक राजा ने उस लहकते बाण को काम पर छोड़ दिया। कालाग्नि की तरह लहकते उसने देखते ही सभी लोकों को॥ ३६॥ त्रिलोक को जलाते हुए की तरह दहकता हुआ वह बाण मदन की देह पर जा गिरा। काम की देह पर बाण गिरते देखकर देवगण हाहाकार कर उठे॥ ३७॥ काम की देह का स्पर्श करते ही उस तीर ने उसे उसी तरह जला डाला जैसे खरपात को आग जला देती है॥ ३८॥ काम भी विगत प्राण होकर तीर लगते ही जलकर राख हो गया। पुण्य क्षीण होने पर प्राणी जैसे स्वर्ग से धरती पर आ गिरता है, उसी तरह काम भी धरती पर आ गिरा॥ ३९॥ इसी बीच वे दूत जिन्हें पहले लक्ष्मी के पास भेजा था, उन्होंने लौट कर समर भूमि में काम को निर्जीव धरती पर गिरा देखा॥ ४०॥ उसे उसी स्थिति में उठाकर उन दूतों ने भगवती महालक्ष्मी के पास पहुँचा दिया। इधर सेनापति सुधृति प्रमुख ने राजा के द्वारा मृत काम को देखकर॥ ४१॥ वे अपने महान् शत्रु को विनष्ट देखकर खुशी के मारे नाचने लगे। चारों ओर सैनिक जयघोष करते हुए नगाड़े पीटने लगे॥ ४२॥ हर्ष से व्याकुल जनसमूह राजा की ओर सागर की तरह उमड़ पड़ा। राजा के पास पहुँच कर ऊँची आवाज में उनका जय घोष करने लगे॥ ४३॥ कुछ लोग राजा को

प्रणेमुरपरे तत्र परिरम्भन्ति चाऽपरे । पश्यन्ति सप्रणयतोऽप्यन्ये भाषन्ति केचन॥ ४४॥
एवं प्रवृत्ते सेनायां संमर्दे हर्षसम्भवे । सुधृतिं प्राह नृपतिः कालोचितवयस्तदा॥ ४५॥
सुधृते सत्वरं सेनां सन्नह्य चतुरङ्गिणाम्। प्रयाणं नगरायाऽऽदौ कृत्वा पश्चाच्च सैनिकाः॥ ४६॥
ये क्षताः शस्त्रघातेन तान् भैषज्येन योजय । साम्परायेण कृत्येन मृतानग्रक्षतेन तु॥ ४७॥
पृष्ठक्षतान्निखातेषु सह पश्वादिभिः कुरु। इत्याज्ञाप्य क्षितिपतिः समारोहत स्यन्दनम्॥ ४८॥
तावद्भटाः सैनिकाश्च नायका नायकाऽधिपाः । वाहनानि विचित्राणि संरुह्य हेतिपाणयः॥
इन्द्रादिविबुधेशानान् बद्धानादाय सर्वतः । परिवार्य महीपालं नगरायाऽभिचक्रमुः॥ ५०॥
बन्दिवृन्दैः स्तूयमानः शस्यमानस्तथा भटैः। प्रयातो नगरायाऽऽशु महीपालः श्रिया ज्वलन्॥
भूपतेर्विजयं श्रुत्वा मन्त्रिणो नगरं द्रुतम् । अलञ्चक्रुश्च विजयं घोषयामासुरुच्चकैः॥ ५२॥
वर्धनो मन्त्रिराट् तत्र दूतान् शीघ्रगमान् बहून्। आख्यातुं विजयं राज्ञो बन्धुप्रियजनेषु च॥ ५३॥
प्रस्थाप्य राजमार्गेषु साकं तोरणबन्धनैः । कदलीपूगवृक्षैश्च दीपपाश्चालिकागणैः॥ ५४॥
समादिशदलङ्कर्त्तुं तथा देवाऽऽलयेषु च । पूजनाय कुलगुरोश्चन्द्रमौलीश्वरस्य तु॥ ५५॥
विशेषेण बहुविधानुपचारान् प्रकल्पयत्। कन्याः सुरूपा भूषाढ्याः श्वेतकौशेयवासिनीः॥
दध्यक्षतकराश्चान्याः पूर्णकुम्भफलग्रहाः। अन्या विवधपात्रेषु विचित्रा इति दीपकान्॥ ५७॥
आददानाः सङ्घशस्ता समादिशत वै द्रुतम्। विद्यापतिः कुलगुरुर्विप्रैर्विद्याविशारदैः॥ ५८॥

प्रणाम कर रहे थे, कुछ उन्हें अङ्क में भर रहे थे तो कुछ चाव भरी आँखों से देख रहे थे और कुछ प्रशंसा कर रहे थे॥ ४४॥ खुशी के मारे सैनिक एक-दूसरे से लिपट रहे थे। ऐसे आनन्द के माहौल में राजा ने सेनापति सुधृति से समयोचित बातें कहीं॥ ४५॥ राजा की आज्ञा के बाद शीघ्र ही सुधृति ने चतुरङ्गिणी सेना सजाकर नगर के लिए प्रस्थान कर दिया। आगे चतुरङ्गिणी और पीछे इसकी सेना थी॥ ४६॥ हथियारों की चोट से जो घायल हैं, उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करो। सामरिक कृत्य सम्पादन करने में मारे गये हैं, उन्हें अग्रक्षत के साथ॥ ४७॥ या पीठ की ओर से जो घायल हैं या जो दफना दिये गये हों, उन्हें पशुओं के साथ लेकर चलो। ऐसी आज्ञा देकर राजा स्वयं रथ पर सवार हो गया॥ ४८॥ तब तक योद्धा, सैनिक, नायक और नायकाधिप हाथ में हथियार उठाये चित्र-विचित्र वाहनों पर सवार होकर॥ ४९॥ इन्द्रादि देवताओं को चारों ओर से घेरकर उन्हें बाँधकर राजा अपने नगर की ओर प्रस्थान किया॥ ५०॥ बन्दी और चारण उसकी स्तुति कर रहे थे, योद्धागण उसकी प्रशस्ति गा रहे थे। उसकी लक्ष्मी प्रज्वलित थी, ऐसा वह राजा अपने नगर की ओर प्रस्थान किया॥ ५१॥ राजा की विजय की सूचना पाकर मन्त्रियों ने नगर को शीघ्र सजा दिया। ऊँची आवाज में लोग जयघोष करने लगे॥ ५२॥ बन्धु-बान्धव एवं प्रियजनों को राजा की विजय की सूचना देने के लिए महामन्त्री ने शीघ्रगामी दूतों को राजधानी भेज दिया॥ ५३॥ राजमार्ग को तोरणद्वार से सजाया गया। साथ ही जगह-जगह पर केले और सुपारी के पेड़ लगाये गये, गुड़ियों के हाथ में दीपमाला सजायी गई॥ ५४॥ देवालयों को अलंकृत करने का आदेश दे दिया गया। कुलगुरु भगवान् शिव की पूजा का आदेश दिया गया॥ ५५॥ खाश ढंग से अनेक उपचारों की व्यवस्था की गई। सफेद रेशम की साड़ी पहने जेवरों से सजी सुन्दर-सुन्दर कन्याएँ॥ ५६॥ हाथ में दही-अक्षत लिये खड़ी थीं। कुछ के हाथ में जल से भरे कलश थे और कुछ के हाथ में विविध फल थे। कुछ के हाथों में विचित्र पर जलते दीप थे॥ ५७॥ कुलगुरु विद्याविशारद विद्यापति को अन्य विद्वान् ब्राह्मणों के साथ इस शुभ मुहूर्त पर बुलाया गया॥ ५८॥

जयाऽभिषेकसामग्रीं कल्पयद्विधिदृष्टतः । प्रकल्प्यैवं मन्त्रिगणैर्वर्धनप्रमुखैर्युतः ॥ ५९ ॥
विद्यापतिः स्यन्दनं स्वं समारुह्य पुराद्बहिः । जगाम सहितो विप्रैर्वर्धनो हयमारुहत् ॥ ६० ॥
गजं रथं समारूढाश्चाऽन्ये मन्त्रिमुखा ययुः । क्रमेण निर्गताः सर्वे नगरद्वारतो बहिः ॥ ६१ ॥
तदन्तरे भूमिपतिः कुलरत्नाऽभिधं गजम् । चतुर्दन्तं श्वेतवर्णमैरावतकुलोद्भवम् ॥ ६२ ॥
अलङ्कृतं समारुह्य नगराऽभिमुखो ययौ । शत्रुञ्जयाद्यास्तनुजास्तत्पुत्राश्च पृथक् पृथक् ॥ ६३ ॥
हस्तिश्रेष्ठान् समारुह्य राजानमनुसंययुः । रणधीरो रथाऽऽरूढो राज्ञ आसीत् पुरःसरः ॥ ६४ ॥
निवर्त्य नृपतेराज्ञां सेनया सह पृष्ठतः । प्रययौ देवराजादीन् बद्धानादाय संयतः ॥ ६५ ॥
सुधृतिर्गजमारूढो गदापाणिः प्रतापनः । अविदूरे पुरद्वाराद्राजा गुरुमवैक्षत ॥ ६६ ॥
ततोऽवरुह्य करिणो विद्यापतिमुपाययौ । रणधीरो राजपुत्राश्चाऽन्ये सर्वे निशम्य तु ॥ ६७ ॥
राजानमवरूढं स्वाद्वाहनाद्गुरुदर्शनात् । अवतेरुः स्ववाहेभ्यो राजानमनुसंययुः ॥ ६८ ॥
राजा गुरुं समासाद्य पस्पर्श शिरसा पदम् । शत्रुञ्जयाद्यास्तदनु प्रणेमुर्गुरुपुङ्गवम् ॥ ६९ ॥
विद्यापतिश्चापि नृपमाशीर्भिरनुयोज्य तु । राजानमवदत् पश्चात् सर्वविद्याविशारदः ॥ ७० ॥
राजन्निमं मुहूर्त्तं वै प्रवेशे ह्यवरं विदुः । विश्राम्याऽग्रिममौहूर्त्ते प्रशस्ते नगरे विश ॥ ७१ ॥
तच्छ्रुत्वा प्राह नृपतिर्नमस्कृत्य तथाऽस्त्विति । ततोऽवतीर्य स गुरुः स्यन्दनादविदूरतः ॥ ७२ ॥
तरुच्छायां समाश्रित्य निषसादाऽऽसने शुभे । तदाज्ञया क्षितिपतिर्निषण्णो नाऽतिदूरतः ॥ ७३ ॥
शत्रुञ्जयाद्याः सर्वेऽपि निषेदुर्गुर्वनुज्ञया । विद्यापतिस्ततोऽपश्यद्रथसंस्थान् दिवौकसः ॥ ७४ ॥
दृष्ट्वा पप्रच्छ नृपतिं क्व इमे बन्धनं गताः । इति वाक्यं गुरोः श्रुत्वा प्राञ्जलिः प्राह भूमिपः ॥ ७५ ॥

विधिवत् जयाभिषेक की सामग्री जुटाकर वर्धन प्रभृति प्रमुख मन्त्रियों के साथ ॥ ५९ ॥ गुरु विद्यापति को रथ में बैठाकर अनेक विद्वान् ब्राह्मणों के साथ स्वयं घोड़े पर सवार होकर नगर से बाहर निकले ॥ ६० ॥ हाथी और रथ पर सवार होकर अन्य प्रमुख मन्त्रीगण क्रमशः सब-के-सब नगर-द्वार से बाहर निकल गये ॥ ६१ ॥ इसके बाद ऐरावत वंश के कुलरत्न नामक गजराज, जिसे चार दाँत एवं श्वेत रंग था, उस पर राजा सवार हुए ॥ ६२ ॥ सुसज्जित उस हाथी पर सवार होकर राजा नगर की ओर प्रस्थान किये तथा शत्रुञ्जय प्रभृति राजा के पुत्र एवं उनके पोते भी साथ चले ॥ ६३ ॥ हाथी की पीठ पर सवार राजा चल रहे थे और उनसे आगे रथ पर सवार रणधीर चल रहा था ॥ ६४ ॥ राजा की आज्ञा से उनके पीछे सेना के साथ देवराज इन्द्र प्रभृति देवताओं को बाँध कर संयतभाव से प्रस्थान किया ॥ ६५ ॥ प्रतापी सेनापति सुधृति हाथ में गदा लिये चल रहा था। राजा ने नगरद्वार के समीप गुरु को देखा ॥ ६६ ॥ इसके बाद हाथियों को रोककर वे विद्यापति के पास पहुँचे। रणधीर एवं राजकुमारों ने भी इन्हें देखा ॥ ६७ ॥ राजा गुरु को देखते ही अपने वाहन से नीचे उतर गया और राजा के साथ चलने वाले लोग भी अपने-अपने वाहन से नीचे उतर गये ॥ ६८ ॥ राजा ने गुरु के पास पहुँच कर उनके चरणों का स्पर्श अपना सिर झुकाकर किया। शत्रुञ्जय प्रभृति ने भी गुरुश्रेष्ठ को उसी तरह प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ गुरु विद्यापति ने भी राजा को आशीर्वाद दिया, फिर सर्वविद्याविशारद गुरु ने राजा से कहा ॥ ७० ॥ हे राजन्! नगर-प्रवेश के लिए यह मुहूर्त घटिया दर्जे का है। कुछ क्षण विश्राम कर अगले प्रशस्त मुहूर्त में नगर-प्रवेश करें ॥ ७१ ॥ यह सुनकर राजा ने गुरु को प्रणाम कर वैसा ही करना स्वीकार किया। उसके बाद गुरु भी रथ से उतर कर राजा के पास आ गये ॥ ७२ ॥ पेड़ की छाया में वे शुभासन पर बैठ गये। उनकी आज्ञा से राजा भी उनके समीप ही बैठ गया ॥ ७३ ॥ शत्रुञ्जय प्रभृति राजकुमार भी गुरु की आज्ञा से वहीं बैठ गये। तब गुरु ने रथ पर बैठे देवताओं को देखा ॥ ७४ ॥ उन्हें देखकर

एते शक्रादयो देवाः शत्रुपक्षसमाश्रयाः । सुधृतिप्रमुखैर्युद्धे निर्जिता बन्धनं गताः ॥ ७६ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विद्यापतिरुदारधीः । असम्यगिव तन्मत्वा वचनं प्राह भूमिपम् ॥ ७७ ॥
हे राजन् शृणु मत्प्रोक्तं नैतदौपयिकं तव । एते हि देवाः पूज्या नो मर्त्यदिष्टैकहेतवः ॥ ७८ ॥
कारणेन हि सम्बद्धास्त्वजेया मानवैः सदा । मोचयेमान् प्रार्थयस्व शीघ्रं पूजय पूजनैः ॥ ७९ ॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं राजा सुधृतिमैक्षत । नृपतेरिङ्गितं ज्ञात्वा सुधृतिः सत्वरं सुरान् ॥ ८० ॥
विमुच्य राजसविधमानयन्मानपूर्वकम् । इन्द्रादीनागतान् दृष्ट्वा प्रोत्थितो नृपतिर्द्रुतम् ॥ ८१ ॥
क्रमेण नत्वा शक्रादीनासनाद्यैः सभाजयत् । क्रमेण सम्पूज्य सुरान् राज्यं कोशञ्च वाहनम् ॥ ८२ ॥
पुत्रदारादिकं सर्वं स्वञ्चाऽपि विनिवेद्य वै । अज्ञानकृतमेतन्मे क्षमध्वमिति सोऽब्रवीत् ॥ ८३ ॥
तद्दृष्ट्वेन्द्रमुखा देवा राज्ञो दाक्षिण्यमुत्तमम् । प्रोचुः शुभतरां वाचं तत्कालसदृशीं तदा ॥ ८४ ॥
धन्योऽसि नृपतिश्रेष्ठ यस्य ते भक्तिरीदृशी । श्रीगुरौ दुर्लभा लोके कथं हास्यति ते प्रियम् ॥ ८५ ॥
अनयैव हि भक्त्या ते सर्वं सिध्येत् समीहितम् । राजन्निष्टं साधयस्व साधयामो वयं दिवम् ॥ ८६ ॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवाः शक्रमुख्यास्ततः परम् । राजा प्रयातो नगरं गुरुणा सम्प्रचोदितः ॥ ८७ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
विंशतितमोऽध्यायः ॥ १७११ ॥



गुरु ने राजा से पूछा—ये बन्धन में बँधे बन्दी कौन हैं?तब गुरु की बात सुनकर हाथ जोड़कर उनसे राजा ने कहा॥ ७५॥ ये सभी इन्द्रादि देवता हैं। शत्रुपक्ष से ये युद्ध कर रहे थे। इन्हें सेनापति सुधृति प्रमुख योद्धाओं ने युद्ध में पराजित कर बाँध लिया है॥ ७६॥ उदार बुद्धि वाले गुरु विद्यापति ने राजा की ये बातें सुनकर इसे अनुचित कर्म की तरह मानकर राजा से अपनी बातें कहीं॥ ७७॥ हे राजन्! मेरी बातें सुनो, ये कार्य तुम्हारे योग्य नहीं हुआ। हम मानवों के इष्ट साधन के हेतुस्वरूप ये देवता हमारे पूज्य हैं॥ ७८॥ कार्य-कारण भाव से ये हमारे साथ सम्बद्ध हैं। मनुष्यों के लिए ये हमेशा अजेय हैं। इन्हें शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कर इनकी यथोचित प्रार्थना एवं पूजा करो॥ ७९॥ गुरु की यह बात सुनकर राजा ने सेनापति सुधृति की ओर देखा। राजा का इशारा समझकर सुधृति ने शीघ्र ही देवताओं को॥ ८०॥ बन्धन-मुक्त कर उन्हें सम्मानपूर्वक राजा के पास ले आया। इन्द्रादि देवताओं को अपने पास आते देखकर राजा शीघ्र ही ससम्मान उठ खड़ा हुआ॥ ८१ ॥ क्रमशः इन्द्रादि देवताओं को प्रणाम कर समुचित आसन पर बिठाया। फिर क्रमशः उन देवताओं की पूजा कर उन्हें अपना राज्य, कोश और वाहन॥ ८२॥ पुत्र, पत्नी और अपने आपको समर्पित कर उनसे प्रार्थना भरे शब्दों में कहा—जो कुछ हुआ अज्ञानतावश ही। इसे आप सब क्षमा करें॥ ८३॥ राजा की ऐसी शिष्टता देखकर इन्द्रादि प्रमुख देवताओं ने समयोचित शुभद बातें कहीं॥ ८४॥ हे राजाओं में श्रेष्ठ राजा! तुम धन्य हो, गुरु में तुम्हारी ऐसी भक्ति लोक में दुर्लभ है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी अभीष्ट वस्तु तुमसे अलग कैसे रहेगी ? ॥ ८५ ॥ इसी भक्ति के कारण तुम्हें तुम्हारा सारा अभीष्ट फल मिलेगा। हे राजन्! तुम्हें तुम्हारी अभिलषित वस्तु मिले, हम भी देवलोक प्रस्थान करते हैं॥ ८६॥ यह कहकर देवता सब तिरोहित हो गये और राजा ने भी गुरु की प्रेरणा पाकर नगर की ओर प्रस्थान किया॥ ८७॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १७११ ॥



अथैकविंशोऽध्यायः

काममादाय ते दूताः कमलासविधं गताः । न्यवेदयन् युद्धवृत्तं देवानाञ्च पराभवम्॥ १ ॥
श्रुत्वा लक्ष्मीर्जगन्माता दृष्ट्वा कामं गताऽऽयुषम् । ईषच्छोकसमाक्रान्ता धैर्यमालम्ब्य वै पुनः ॥
त्रिपुरां परमेशानीं ध्यात्वा निश्चलमानसा । निमील्य नेत्रयुगलं तन्मयी संस्थिता क्षणम्॥ ३ ॥
उन्मील्य नेत्रयुगलममृतांशुप्रवर्षणम् । अपश्यन्मन्मथं लक्ष्मीस्तत्क्षणादेव मन्मथः॥ ४ ॥
उत्तस्थौ निद्रित इव युद्धोत्सुकितमानसः । सम्प्रेक्ष्य परितः स्वञ्च निरायुधमवेत्य सः॥ ५ ॥
लज्जितः प्रेक्ष्य जननीं ववन्दे तत्पदाम्बुजम् । वन्दित्वाऽतिविषण्णाऽऽस्यो लक्ष्मीं प्राह तदा वचः ॥
मातः कुतो मे समरे मर्त्यैरासीत् पराभवः । अहं ते मानससुतो विष्णुपत्न्याः समुद्गतः॥ ७ ॥
देवताविजयार्थं ते सङ्कल्पादभवं शिवे । मोघः कथं ते सङ्कल्पो देवानाञ्चाऽपि बन्धनम्॥ ८ ॥
वद मातर्द्रुतं ह्येतच्छोको मां दहतीश्वरि । फल्गुभूतो मृतो युद्धे किमर्थं जीवितस्त्वया॥ ९ ॥
अल्पीयसैः पराभूतो मनसस्ते सुतोऽप्यहम् । मम नौपयिकं लोके जीवनं सर्वनिन्दितम्॥ १० ॥
श्रुत्वाऽत्र कारणं मातर्हास्यामि खलु जीवितम् । श्रुत्वैवं कामवचनं शोकोद्गारसमन्वितम्॥ ११ ॥
प्रोवाच पद्मा पद्माऽऽस्या तत्कालप्रतिमं वचः । वत्स काम शोकमेतं जहि कापुरुषाऽऽश्रितम्॥
पुरुषा न हि शोचन्ति धीराः क्वाऽपि महाशयाः । आपदाम्भोधिनिर्मग्ना अपि धैर्यमहाप्लवम्॥

❊ विमला ❊

वे दूत काम को लेकर कमला के पास पहुँच गये। युद्ध की कथा उन्होंने उन्हें सुना दिया। देवताओं की पराजय की भी कहानी कह सुनायी॥ १॥ जगन्माता लक्ष्मी ने सारी कहानी सुनकर तथा काम को मरा देखकर थोड़ी देर तक शोक-सन्तप्त हुई; पुनः धैर्य धारण कर॥ २॥ निश्चल मन से परमेश्वरी त्रिपुरा का ध्यान कर, दोनों आँखें बन्द कर एक क्षण तन्मय होकर ध्यान करने लगी॥ ३॥ अमृतवर्षिणी दोनों आँखें खोलकर लक्ष्मी ने काम को देखा और महालक्ष्मी को देखते ही मन्मथ जी उठा॥ ४॥ युद्ध करने के लिए उत्सुक मन वाले काम को लगा जैसे किसी ने उसे नींद से झकझोर कर जगा दिया हो, उसने आँखें खोलकर चारों ओर देखा तथा अपने को निहत्था पाकर॥ ५॥ माता को देखकर काम बड़ा लज्जित हुआ। फिर माता के चरणों की वन्दना की। वन्दना के बाद दुःखी मन से मुँह लटका कर माता से पूछा॥ ६॥ मातः! युद्ध में मेरी पराजय मनुष्य से क्यों हुई? मैं तो विष्णुपत्नी महालक्ष्मी का मानस पुत्र हूँ॥ ७॥ हे शिवे! देवताओं की विजय के लिए मेरी उत्पत्ति तुम्हारे संकल्प से हुई है। तुम्हारा संकल्प असत्य कैसे हुआ? देवगण बन्धन में कैसे आये?॥ ८॥ हे ईश्वरी! हे मातः! बोलो न, यह सोचकर तो मेरी देह दहक रही है। बलहीन होकर युद्ध में मारे गये मुझे तुमने क्यों जीवित किया?॥ ९॥ मैं तो तुम्हारा मानसिक पुत्र हूँ, मेरी हार क्षुद्र मानव से हुई है। लोक में निन्दित होकर मेरा जीना ही अब बेकार है॥ १०॥ इसका कारण जानकर माँ! मुझे अपनी जिन्दगी पर हँसी आ रही है। शोकोद्गार भरे काम की ये बातें सुनकर॥ ११॥ पद्मानना महालक्ष्मी ने उस समय के उपयुक्त बातें कही। बेटे काम! कायरों की तरह ऐसा शोक प्रकट करना तुम बन्द करो॥ १२॥ महाशय एवं धीर पुरुष कभी भी ऐसी सोच नहीं करते। विपत्तिसागर में डूबते व्यक्ति का सहारा भी तो एक

समासाद्य प्रयान्त्येव तीर्त्वा सम्पत्तटं द्रुतम्। आपत्सु ग्लानिमायान्ति जनाः फल्गुस्वभावजाः॥
शृण्वत्र कारणं वक्ष्ये येन त्वं निर्जितो रणे। न मर्त्यवीर्यात्त्वं युद्धे केवलं निर्जितः खलु॥ १५॥
राजा वीरव्रतः साक्षान्महादेवमुपाश्रितः। तत्प्रसादेन युद्धे त्वं निर्जितोऽसि महीपते॥ १६॥
तद्गच्छाऽऽराधय शिवं महादेवमधीश्वरम्। जेताऽसि समरे सर्वान् प्रसादात्तस्य शूलिनः॥ १७॥
तच्छ्रुत्वा श्रीवचः कामो जगाद क्रोधमूर्च्छितः। मा वदैवं महादेवि शत्रुपक्षसमाश्रयम्॥ १८॥
देवं वा मनुजं वाऽपि मादृशो जगतीतले। कथं नु शरणीकुर्याद्धीनः सन् जगदीश्वरि॥ १९॥
ततोऽन्यं वद देवेशं यत्प्रसादादहं द्रुतम्। जेता भवेयं सर्वेषां देवानामपि वै रणे॥ २०॥
महादेवं विजेष्यामि प्रथमं तदनन्तरम्। देवान् मर्त्यान् दानवादीन् सर्वानेव क्रमेण तु॥ २१॥
तच्छ्रुत्वा कामवचनं प्राह पद्मालया तदा। वत्स देवं न जानीषे महादेवं त्रिलोचनम्॥ २२॥
सर्वदेवाऽधिदेवेशं हित्वा कोऽन्यो महांस्ततः। यथा जलानां जलधिर्ज्योतिषाञ्च नभोमणिः॥
पर्वतानां सुमेरुश्च तथा देवेषु शङ्करः। प्राणिनां जङ्गमा श्रेष्ठास्तेषु मर्त्यास्ततः सुराः॥ २४॥
तेभ्यो ब्रह्मा चतुर्वक्त्रः स्रष्टा लोकस्य चोत्तमः। ततो विष्णुः पालयिता यन्नाभिकमलाद्विधिः॥
सञ्जातः प्रलयस्यांऽन्ते स भवेत् पुरुषोत्तमः। ततोऽपि त्र्यम्बकः श्रेष्ठः सर्वदेवाऽधिदेवराट्॥
यस्य संहरणं कृत्यमंशभूता महेश्वराः। रुद्राः कुर्वन्ति सर्वेशा मन्युरूपाः सुभीषणाः॥ २७॥
स देवः सर्वदेवेशः सदाशिव इति स्मृतः। यल्लिङ्गस्य पुरा विष्णुरन्तं नाऽपश्यदच्युतः॥ २८॥
यदंशेन विधेर्मानं भङ्क्त्वा छिन्नं शिरो महत्। नाऽस्ति तस्माच्छ्रेष्ठतरस्तस्मात्तं शरणं व्रज॥

मात्र धैर्य ही होता है॥ १३॥ विपत्तिसागर में डूबते व्यक्ति भी तो अन्ततः तैरकर ही सम्पत्ति का किनारा पाते हैं। क्षुद्र स्वभाव वाले व्यक्तियों को ही विपत्ति में ग्लानि होती हैं॥ १४॥ सुनो, युद्ध में तुम्हारी पराजय का कारण मैं बतलाती हूँ। केवल मानवीय शक्ति से ही युद्ध में तुम्हारी हार नहीं हुई है॥ १५॥ राजा वीरव्रत ने साक्षात् महादेव की उपासना की। उसी महादेव की कृपा से युद्ध में उसने तुमको पराजित किया है॥ १६॥ अतः जाओ और उन सर्वोच्च स्वामी महादेव शिवजी की आराधना करो। उन शिवजी की कृपा से तुम युद्ध में सबको जीत लोगे॥ १७॥ लक्ष्मी की यह बात सुनकर क्रोध से मूर्च्छित होकर काम ने कहा—माँ! ऐसी बात मत बोल, वह तो शत्रुपक्षीय है॥ १८॥ संसार में मेरे जैसे हीन को हे माँ! कोई देवता हो या मनुष्य हो, क्यों नहीं शरणागत बना देती हो?॥ १९॥ अतः किसी अन्य देवेश का नाम बतलाओ जिनकी उपासना कर मैं उनकी कृपा से युद्ध में सारे देवताओं को भी जीतकर विजयी बनूँ॥ २०॥ पहले मैं महादेव को ही जीतूँगा, फिर देव, दानव और मानव को क्रमशः जीतूँगा॥ २१॥ काम की ये बातें सुनकर लक्ष्मी ने कहा—बेटे! देवाधिदेव त्रिनेत्र महादेव को तुम नहीं जानते॥ २२॥ सब देवताओं में सर्वश्रेष्ठ महादेव को छोड़कर उनसे बड़ा और कौन है? जलों में सागर और प्रकाशों में सर्वातिशायी सूर्य होते हैं, उसी तरह सर्वशक्तिमान् ये शिव ही हैं॥ २३॥ पर्वतों में जैसे सुमेरु है वैसे ही देवताओं में महादेव सर्वश्रेष्ठ हैं। प्राणियों में जङ्गम श्रेष्ठ है, जंगमों में मनुष्य श्रेष्ठ और मानवों में देवता श्रेष्ठ होते हैं॥ २४॥ देवताओं में चतुर्मुख ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे उत्तम लोक के स्रष्टा है। इसके बाद ब्रह्मा के नाभिकमल से उत्पन्न सृष्टि के पालनकर्त्ता विष्णु का स्थान है॥ २५॥ प्रलय के अन्त में जिनकी उत्पत्ति हो वे ही भगवान् पुरुषोत्तम हैं। उनसे भी श्रेष्ठ सब देवताओं के अधिराज भगवान् शिव हैं॥ २६॥ जिसका संहरण कृत्य है, जिनके अंशभूत महेश्वर एकादश रुद्र रूप हैं, जो क्रोध की प्रतिमूर्ति हैं, महाभयङ्कर हैं॥ २७॥ वे देवता सब देवताओं के स्वामी हैं, वे सदाशिव के नाम से विख्यात हैं। जिनके लिङ्ग का अन्त और आदि भगवान् अच्युत विष्णु ने भी

निशम्य जननीवाक्यं पुनः प्राह स मन्मथः । मातः सर्वोत्तममपि शिवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ ३० ॥
नाऽऽराधयाम्यहं यस्माच्छत्रुसंश्रयणो हि सः । वद मातः शिवो यस्मान्महिमानमवाप्तवान् ॥
तं समाराध्य जेताऽस्मि महादेवमपीश्वरि । नैसर्गिको वा महिमा तस्य देवस्य मे वद ॥ ३२ ॥
आकर्ण्य कामवचनं तदा लक्ष्मीर्महेश्वरी । ध्याननिष्ठा समभवन्निमील्य नयनद्वयम् ॥ ३३ ॥
क्षणं ध्यात्वा महादेवीं त्रिपुरां परमेश्वरीम् । प्रार्थयामास कामस्य सौभाग्यप्राप्तये तदा ॥ ३४ ॥
विज्ञाय प्रार्थनं देवी लक्ष्म्याः कामस्य सिद्धये । गौरीं नियोजयामास सा तत्राऽविर्बभूव ह ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा गौरीं महालक्ष्मीः सहसोत्थाय सन्नता । भूत्वा गौरीं समादाय करेण विनिवेशयत् ॥ ३६ ॥
रत्नाऽऽसने ततः पूजां विधाय कमलोद्भवा । स्तुत्वा मधुरया वाचा प्राह गौरीं महेश्वरी ॥ ३७ ॥
देवि धन्याऽस्मि यत्तेऽहं कृपया ह्यवलोकिता । त्वं साक्षाद्देवदेवस्य महादेवस्य प्रेयसी ॥ ३८ ॥
त्वद्दर्शनं न सुलभं ब्रह्मादीनामपीश्वरि । अद्य मे त्रिपुरा प्रीता यत्त्वां द्रक्ष्यामि चक्षुषा ॥ ३९ ॥
अनुजां वासुदेवस्य पत्नीं पशुपतेः प्रियाम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा गौरी प्रोवाच सस्मितम् ॥ ४० ॥
किं पद्मे नेत्रयुगलं निमील्य ध्यानमास्थिता । किं चिन्तयसि मे ब्रूहि द्रुतं कमलवासिनि ॥ ४१ ॥
निशम्य गौरीवचनं प्राह साऽमृतपेशलम् । गौरि ते वच्मि वृत्तान्तं शृणु यच्चिन्तयाम्यहम् ॥ ४२ ॥
अयं कुमारः कामाख्यः सुतो मे मानसः शिवे । देवानामिष्टसिध्यर्थमुद्भावितं इहेश्वरि ॥ ४३ ॥
स निर्जितो रणे वीरव्रतेन धरणीतले । स राजा परमेशस्य तव पत्युः प्रसादतः ॥ ४४ ॥
अजेयमपि मे पुत्रं जितवान् संयुगे शिवे । विषण्णो निर्जितस्तेन सर्वान् जेतुमिहेच्छति ॥ ४५ ॥

नहीं देखा ॥ २८ ॥ जिसके अंश से विधि की प्रतिष्ठा को भङ्ग कर गर्दन काट डाली, इसलिए उनसे श्रेष्ठतर कोई देवता नहीं है। अतः उन्हीं की शरण में जाओ ॥ २९ ॥ माँ की बातें सुनकर फिर उस काम ने कहा—मातः! सर्वोत्तम त्रिभुवनेश्वर शिव हैं ॥ ३० ॥ फिर भी मैं शिव की आराधना नहीं करूँगा। क्योंकि वे हमारे शत्रु के आश्रय हैं। माँ! बतलाओ, शिव में यह सामर्थ्य किसने दिया है ॥ ३१ ॥ हे ईश्वरि! मैं उसी की आराधना कर महादेव पर भी विजय प्राप्त करूँगा। अथवा यह बतलाओ कि शिव की यह महिमा नैसर्गिक है ॥ ३२ ॥ काम की बात सुनकर महालक्ष्मी ने दोनों आँखें बन्द कर लीं और कुछ क्षण के लिए ध्यानमग्न हो गई ॥ ३३ ॥ महादेवी परमेश्वरी ने एक क्षण त्रिपुरा का ध्यान कर काम की सौभाग्य-प्राप्ति के लिए प्रार्थना की ॥ ३४ ॥ काम की सिद्धि के लिए लक्ष्मी की प्रार्थना को जानकर भगवती त्रिपुरा ने गौरी को प्रतिनियोजित किया। उसी क्षण महागौरी वहाँ प्रकट हुई ॥ ३५ ॥ महालक्ष्मी गौरी को देखकर विनम्र भाव से सहसा उठ खड़ी हुईं और उनका हाथ पकड़ कर सम्मानपूर्वक उन्हें बैठाया ॥ ३६ ॥ रत्नासन पर उन्हें बैठाकर लक्ष्मी ने उनकी पहले पूजा और स्तुति की, फिर उनसे विनम्र होकर कहा ॥ ३७ ॥ हे देवि! आपको यहाँ देखकर आज मैं धन्य हुई। तुम साक्षात् देवाधिदेव महादेव की प्रिय पत्नी हो ॥ ३८ ॥ ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी तुम्हारे दर्शन दुर्लभ हैं। आज मुझ पर भगवती त्रिपुरा प्रसन्न हैं जो आपको अपनी आँखों से सामने देख रही हूँ ॥ ३९ ॥ वासुदेव की छोटी बहन और महादेव की तुम प्रिय पत्नी हो। लक्ष्मी की यह बात सुनकर मुस्कराती महागौरी ने कहा ॥ ४० ॥ हे पद्मे! आँखें बन्द कर ध्यानावस्थित होकर क्यों याद किया? हे कमलवासिनी! क्या सोच रही हो? शीघ्र मुझसे कहो ॥ ४१ ॥ गौरी की बात सुनकर अमृतमय वचन महालक्ष्मी ने कहा—हे गौरि! मेरी चिन्ता का जो वृत्त है तुम्हें बतलाती हूँ ॥ ४२ ॥ हे शिवे! यह कुमार काम मेरा मानस पुत्र है। देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए मैंने इसे आविर्भूत किया है ॥ ४३ ॥ पृथ्वीपति राजा वीरव्रत ने तुम्हारे पति परमेश्वर शिव की कृपा से युद्ध में काम को पराजित कर दिया ॥ ४४ ॥ अजेय होते हुए भी मेरा पुत्र जिनसे

शिवमाराधयेत्युक्तो न शृणोति वचो मम। इति श्रुत्वा रमावाक्यं ददर्श काममन्तिके॥ ४६॥
स्मितपूर्वं वत्स काम एहीति प्राह शङ्करी। श्रुत्वा गौरीवचः काम उपसृत्य शिवां तदा॥ ४७॥
दण्डवत् प्रणिपत्याऽथ बद्धाञ्जलिपुटस्थितः। प्राह गौरी वत्स किं ते कर्त्तुं व्यवसितं वद॥ ४८॥
कामः प्राह ततो मातः शृणु मे यच्चिकीर्षितम्। युद्धे सर्वान् विजेष्यामि तपस्तप्त्वा सुदुष्करम्॥
तत्र देवं न जानामि यस्तुष्टो वाञ्छितप्रदः। इति श्रुत्वा गिरं तस्य प्रोवाच शिववल्लभा॥ ५०॥
व्यवसायो महानेष न शिवाऽऽराधनं विना। भविष्यति ततः काम शिवमाराधय द्रुतम्॥ ५१॥
न कश्चिन्मत्प्रियाल्लोके शिवादन्यो हि विद्यते। दुर्लभार्थप्रदानाय तस्माद्व्रज महेश्वरम्॥ ५२॥
इत्युक्त्वा मदनं गौरी प्राह लक्ष्मीं ततो वचः। प्रेषिताऽस्मि महादेव्या त्वच्छ्रिये त्रिपुराऽऽख्यया॥
चिन्तां परित्यज तव पुत्रः प्राप्नोति वाञ्छितम्। इति तस्या निगदितुं स्वन्देशमहमागता॥ ५४॥
प्रसादयतु देवेशं शिवं कामार्थलब्धये। एवं वदन्त्यां गौर्यां स कामः प्राह रुषाऽन्वितः॥ ५५॥
शृणु शर्वाणि मद्वाक्यं शत्रुपक्षसमाश्रयम्। शिवं कदाऽप्यहं नैव शरणं यामि शङ्करि॥ ५६॥
शिवादप्यधिकं देवं प्रसाद्य प्राप्य चेहितम्। शिवं तदाश्रितांश्चाऽपि विजेष्याम्यहमोजसा॥ ५७॥
त्यजामि वा देहमिमं न शिवं संश्रये क्वचित्। श्रुत्वैवं कामवचनं क्रुद्धा प्राह महेश्वरी॥ ५८॥
यस्मान्मद्वचनं पथ्यमपि त्वं न शृणोष्यतः। शिवं युद्धे समासाद्य भस्मशेषत्वमृच्छसि॥ ५९॥
शशापैवं तदा लक्ष्मीः श्रुत्वा शापं सुतस्य तम्। क्रुद्धा शशाप गौरीं सा रोषाऽऽरुणितलोचना॥
यस्मात् कुमारे मे शापो दत्तस्तस्मात्त्वयाऽधुना। भर्तृनिन्दाश्रुतिवशात् भस्मशेषी भविष्यसि॥

हारा है, उन्हें जीतना चाहता है॥ ४५॥ मैं इसे 'शिव की आराधना करो' जब कहती हूँ तो यह मेरी बात सुनता ही नहीं है। रमा की यह बात सुनकर समीप ही काम को देखी॥ ४६॥ मुस्कराती गौरी ने कहा—बेटे काम! यहाँ आओ। गौरी की बात सुनकर काम उनके पास चला आया॥ ४७॥ दण्डवत् गिर कर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तब गौरी ने कहा—बेटे! तुम्हें क्या करना है, बतलाओ॥ ४८॥ तब काम ने कहा—हे मातः! सुनिये, कठोर तप कर युद्ध में मैं सबको जीत लेना चाहता हूँ; मेरी यही कामना है॥ ४९॥ पर मैं उस देवता को नहीं जानता जिनकी आराधना मैं करूँ। काम की बात सुनकर शिववल्लभा गौरी ने उससे कहा॥ ५०॥ यह काम तो बड़ा ही कठिन है, शिव की आराधना के बिना यह सम्भव नहीं है। तुम्हारी इच्छा वही पूरी कर सकते हैं। अतः शिव की आराधना करो॥ ५१॥ संसार में शिव से अधिक मेरे लिए कोई दूसरा प्रिय नहीं है। अतः दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति के लिए महेश्वर की आराधना ही करो॥ ५२॥ काम को यह कहकर गौरी ने लक्ष्मी से कहा—तुम्हारे कल्याण के लिए भगवती त्रिपुरा ने मुझे यहाँ भेजा है॥ ५३॥ चिन्ता छोड़कर तुम्हारा पुत्र इसी से वांछित प्राप्त करेगा, उनका यही सन्देश लेकर मैं यहाँ आयी हूँ॥ ५४॥ अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए काम! तुम उनकी ही आराधना करो। इस तरह कहती हुई गौरी को क्रोधित होकर काम ने कहा॥ ५५॥ हे शङ्करि! मेरी बात सुनो, शत्रुपक्ष को सहारा देने वाले शिव की आराधना मैं कदापि नहीं करूँगा॥ ५६॥ शिव से भी अधिक शक्तिशाली देवता की आराधना कर मैं अपनी अभिलषित वस्तु प्राप्त कर लूँगा। मैं अपने पराक्रम से शिव सहित शत्रुओं को जीत लूँगा॥ ५७॥ युद्धभूमि में यह देह छोड़ दूँगा पर शिव की शरण में नहीं जाऊँगा। काम का यह हठ देखकर गौरी ने कहा॥ ५८॥ मेरी हितकर बातें भी तुम सुनना नहीं चाहते हो तो निश्चय ही शिव के साथ युद्ध में तुम जल कर राख हो जाओगे॥ ५९॥ पुत्र को गौरी का शाप सुनकर क्रोध से आँखें लाल किये लक्ष्मी ने भी गौरी को शाप दिया॥ ६०॥ हाय गौरी! तुमने मेरे बेटे को इस समय श्राप दिया है, अतः मैं भी तुम्हें श्राप

ततोऽतिक्रोधसंयुक्ता गौरी प्राह हरेः प्रियाम्। कुमारे प्रेमभावेन विचाररहिता यतः ॥ ६२ ॥
ततस्त्वं भर्तृवियुता शोकं प्राप्स्यसि वै चिरम्। सपत्नीभिरपि क्लिष्टा भविष्यसि हरिप्रिये ॥ ६३ ॥
इति शप्ता पुनर्लक्ष्मीः क्रुद्धा योद्धुं समुत्थिता। रुद्राण्यपि मृगेन्द्रं स्वं वाहनं समुपस्थिता ॥ ६४ ॥
धनुर्दिव्यं समादाय शरवर्षाणि चक्रतुः। विविधानि च शस्त्राणि तथाऽस्त्राणि च भार्गव ॥ ६५ ॥
एवं तयोः समभवत् युद्धमत्यन्तदारुणम्। गौर्य्या समागतास्तत्र प्रमथा युयुधुर्भृशम् ॥ ६६ ॥
लक्ष्मीस्तान् प्रमथानस्त्रैर्विव्याध बलवत्तरैः। हतास्तदा महाऽस्त्रेण प्रमथा भृशपीडिताः ॥ ६७ ॥
पलायिताः शिवं प्रोचुर्युद्धं देव्याश्च पद्मया। श्रुत्वा शिवो वृषाऽऽरूढः प्रययौ यत्र सङ्गरः ॥ ६८ ॥
तदन्तरे युद्धवृत्तं श्रुत्वा विष्णुः समागतः। ब्रह्माऽपि युद्धसन्देशं प्राप्य देवैः समावृतः ॥ ६९ ॥
आजगाम सरस्वत्या समेतो युद्धमीक्षितुम्। सिद्धगन्धर्वविद्याध्राः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ७० ॥
आजग्मुर्युद्धमभवद्यत्र तत्र समीक्षकाः। अभवत्तुमुलं युद्धं लक्ष्मीगौर्योः परस्परम् ॥ ७१ ॥
सृजतो विविधाऽस्त्राणि परस्परजयेच्छया। निवारयितुमायातौ शिवविष्णू समीपतः ॥ ७२ ॥
अस्त्राऽग्निना विनिर्दग्धौ मूर्च्छितौ सम्बभूवतुः। अथ लक्ष्मीर्धनुर्दिव्यं गौर्याश्चिच्छेद सायकैः ॥
हृदि विव्याध निशितशरेणाऽऽनतपर्वणा। हृदयाच्छरसंविद्धाद्रुधिरं बहु निर्ययौ ॥ ७४ ॥
गाढविद्धा मूर्च्छिताऽभूद्गौरी तस्मिन्महारणे। शोणितं हृदयात्तस्या निर्गतं यद्रणाऽजिरे ॥ ७५ ॥
प्रलयाग्निरिवाऽत्यन्तं प्रजज्वाल समन्ततः। तज्ज्वालाभिः समाकीर्णं जगन्नाशोन्मुखं बभौ ॥
तदा ब्रह्मा रमां स्तोतुमुपाक्रमत् कृताञ्जलिः। भीतो जगन्निधनतस्तां क्षमापयितुं विधिः ॥ ७७ ॥

देती हूँ कि पति की निन्दा सुनकर तुम भी जलकर राख बनोगी ॥ ६१ ॥ उसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध होकर गौरी ने विष्णुप्रिया से कहा—कुमार के प्रति प्रेमातिशय के कारण ही तुमने विचारशून्य काम किया है ॥ ६२ ॥ अतः हे विष्णुप्रिये! तुम भी पति से वियुक्त होकर चिरकाल तक वियोग की ज्वाला में जलोगी और अपनी सौतों से व्यथित रहेगी ॥ ६३ ॥ उनका श्राप सुनकर लक्ष्मी पुनः मरने-मारने पर उतारू हो गई और भगवती गौरी भी अपने वाहन सिंह के पास पहुँच गई ॥ ६४ ॥ हाथ में दिव्य धनुष लेकर शर वर्षाने लगी। हे भार्गव! इस युद्ध में अनेक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया गया ॥ ६५ ॥ इस तरह गौरी और महालक्ष्मी क बीच दारुण युद्ध हुआ। इधर गौरी के साथ आये शिवदूत प्रमथगणों ने भारी युद्ध ठान दिया ॥ ६६ ॥ इधर लक्ष्मी ने भी उन प्रमथों को अपने शक्तिशाली हथियारों से बेध डाला। इस महास्त्र से आहत प्रमथगण अत्यन्त पीड़ित हुए ॥ ६७ ॥ वे वहाँ से भागकर शिव के पास पहुँच कर उन्हें गौरी और लक्ष्मी के बीच चल रहे युद्ध की सूचना दी। अपने बैल पर सवार होकर भगवान् शिव युद्धभूमि की ओर प्रस्थान किये ॥ ६८ ॥ इसी बीच युद्ध की वार्ता सुनकर भगवान् विष्णु भी आ गये। ब्रह्मदेव भी युद्ध की बात सुनकर देवताओं के साथ वहाँ आ धमके ॥ ६९ ॥ उनके साथ देवी सरस्वती भी थी। युद्ध देखने के लिए सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर एवं शेषनाग भी उपस्थित हुए ॥ ७० ॥ लक्ष्मी और गौरी के बीच परस्पर प्रचण्ड युद्ध चल रहा था। जहाँ युद्ध चल रहा था वहाँ दर्शकों की भीड़ जुट गई ॥ ७१ ॥ परस्पर विजय की कामना से एक-पर-एक आयुधों का सृजन किया जा रहा था। इस युद्ध को रोकने के लिए शिव और विष्णु वहाँ पहुँचे ॥ ७२ ॥ अस्त्राग्नि के प्रयोग से दोनों देवियाँ मृतप्राय हो चुकी थीं। फिर लक्ष्मी ने अपने दिव्य धनुष से गौरी के तीरों को काट डाला ॥ ७३ ॥ फिर अपने तीव्र बाण से गौरी की छाती को बेध डाला। छाती में तीर चुभने के कारण बहुत अधिक रक्तस्राव हुआ ॥ ७४ ॥ उस महायुद्ध में गहरी चोट के कारण गौरी बेहोश हो गई। उसकी छाती से बहे लहू के कारण रणाङ्गण खून से पट गया ॥ ७५ ॥ प्रलयकालीन आग की तरह चारों ओर वह लहू धधक

जय लक्ष्मि महदेवि जय सम्पदधीश्वरि । जय पद्मालये मातर्जय नारायणप्रिये ॥ ७८ ॥
त्वं गतिः सर्वजगतां भीतानां भयहारिणी । प्रणतार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ७९ ॥
सकृत् सन्नतिमात्रेण भक्त्या दारिद्र्यनाशिनि । जगतो हर भीतिं त्वं नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
जगतां जनयित्री त्वं पालयित्री हरिप्रिया । संहारिणी रुद्ररूपा नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८१ ॥
पद्माऽऽस्ये पद्मनिलये पद्मकिञ्जल्कवर्णिनि । पद्मप्रिये पद्मपदे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८२ ॥
त्राहि त्राहि कृपामूर्ते जगद्विध्वंसनादितः । कृपया रक्ष जगतीं नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८३ ॥
इति स्तुत्वा चतुर्वक्त्रो दण्डवत् पतितो भुवि । इन्द्राद्या निखिला देवाः सिद्धविद्याधरादिकाः ॥
त्राहि देवि महालक्ष्मीत्येवमुच्चुक्रुशुर्भृशम् । महाग्नेर्विबुधान् दृष्ट्वा चित्रस्तान् शरणागतान् ॥
विधिस्तुत्या च तरसा प्रसन्ना चाऽभवत् क्षणात् । मा बिभ्यथेति तान् देवानुक्त्वा सा परमेश्वरी ॥
तमग्निं रुधिरोद्भूतं भक्षयामास वै क्षणात् । अग्निज्वालाविनिर्दग्धान् देवान्मर्त्यानपीतरान् ॥
दृष्ट्या पीयूषवर्षिण्या जींवयामास च क्षणात् । अथ विष्णुशिवौ चाऽपि मूर्च्छामुक्तौ समुत्थितौ ॥
ते सर्वे ददृशुर्लक्ष्मीं रुधिरोत्थाऽग्निभक्षणात् । ज्वालामालां विमुञ्चन्तीं रोमकूपेभ्य आतताम् ॥
विमुक्ता मूर्च्छया साऽपि गौरी शङ्करवल्लभा । क्रोधादग्निं महाज्वालं वमन्तीं पर्युपस्थिता ॥
दृष्ट्वा लक्ष्मीं रमाञ्चापि क्रोधव्याकुलितेक्षणाम् । तयोः समाधानहेतोर्ब्रह्मविष्णुशिवास्तदा ॥
भारतीं प्रेषयामासुः प्रसाद्य विधिवल्लभाम् । सा समागत्य तरसा भवानीञ्च हरिप्रियाम् ॥ ९२ ॥

उठा। उस ज्वाला में घिर कर संसार नाशोन्मुख हो गया ॥ ७६ ॥ तब ब्रह्मा हाथ जोड़कर महालक्ष्मी की स्तुति करने लगे। विनाशोन्मुख संसार से भयभीत विधाता को क्षमा करें ॥ ७७ ॥ महादेवी लक्ष्मी की जय हो, सम्पत्ति की अधिष्ठातृ देवी लक्ष्मी की जय हो। पद्मालया माता लक्ष्मी की जय हो। विष्णुप्रिया की जय हो ॥ ७८ ॥ तुम्हीं तो सारी दुनिया की गति हो, डरे हुए के डर को नष्ट करने वाली हो। प्रणत व्यक्ति के कष्ट को नष्ट करने वाली हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम है ॥ ७९ ॥ थोड़ी भी विनम्रता के साथ भक्ति करने वालों की दरिद्रता तुम हर लेती हो। संसार के भयभीतों के भय को तुम मिटा देती हो। हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम ॥ ८० ॥ हे हरिप्रिये! संसार की तुम्हीं जन्मदात्री, पालनकर्त्री और रुद्र रूप में संहार करने वाली हो। हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम है ॥ ८१ ॥ कमलवदनी, कमलवासिनी, कमलरूपिणी, कमलप्रिये, कमल के सदृश चरण वाली हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम है ॥ ८२ ॥ हे कृपामूर्ते! रक्षा करो, रक्षा करो; संसार को विनष्ट होने से बचाओ, कृपया संसार की रक्षा करो। हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम है ॥ ८३ ॥ इस तरह स्तुति कर दण्डवत् धरती पर गिर कर इन्द्रादि समस्त देवगण तथा सिद्ध-विद्याधरादि ॥ ८४ ॥ बड़ी ऊँची आवाज में हे महालक्ष्मी! हमारी रक्षा करो। इस महाग्नि को देख कर सारे देवगण डर कर तुम्हारे शरणागत हुए हैं ॥ ८५ ॥ ब्रह्मा की ऐसी स्तुति से शीघ्र प्रसन्न होकर उस परमेश्वरी ने देवताओं से कहा—हे देवगण! मत डरो ॥ ८६ ॥ महालक्ष्मी ने गौरी के लहू से उत्पन्न उस अग्नि को क्षण में ही पी लिया। अग्नि की ज्वाला में डरे उन देवताओं, मनुष्यों और अन्य प्राणियों को ॥ ८७ ॥ एक क्षण में ही अमृत बरसाने वाली आँखों से देखकर जीवित कर दिया। विष्णु और शिव की भी मूर्च्छा टूट गई और वे उठ बैठे ॥ ८८ ॥ लहू से निकलती अग्नि की ज्वाला का भक्षण करती लक्ष्मी को उन्होंने देखा और उस ज्वालामाला को अपने विस्तृत रोमकूपों से वह छोड़ रही थी ॥ ८९ ॥ शिवप्रिया गौरी की भी मूर्च्छा टूट गई। क्रोध से अग्नि की महाज्वाला का वमन करती सामने उपस्थित हुई ॥ ९० ॥ क्रोध से आकुल आँखों वाली लक्ष्मी और गौरी को देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने उन दोनों के समाधान हेतु तब ॥ ९१ ॥ ब्रह्मा की वल्लभा श्रीसरस्वती को प्रसन्न कर भेजा। उन्होंने शीघ्र

समादाय स्वपाणिभ्यामकरोन्मेलनं तयोः । हे रमे हे भवानि त्वं शृणु मद्वचनं शुभम्॥ ९३॥
अनर्हमेतद्युवयोः क्रोधं लोकस्य नाशनम् । समाधानं विधास्येऽहं शापानाञ्च परस्परम्॥ ९४॥
गौर्याः शापादेष कामः शिवाद्भस्मीभविष्यति । पुनरुज्जीवनं प्राप्य गौर्याः प्रियनिमित्ततः ॥ ९५॥
शिवं जेष्यति हे गौरि तव देहान्तरे पुनः । भर्तृनिन्दाश्रवणतो भस्मीभावो भविष्यति॥ ९६॥
रमे तवाऽपि सापत्नदुःखाच्छीघ्रं कलेवरम् । विनष्टं सत् पुनश्चारुतरं स्याच्च कलेवरम्॥ ९७॥
अंशाऽवतारे च तव भर्त्रा स्याच्च वियुक्तता । मोहं परित्यज्य परं स्वरूपं परिचिन्तय॥ ९८॥
इति वाणीवचः श्रुत्वा गौरी च हरिवल्लभा । प्रकृतिस्था तमोभावं त्यक्त्वा शान्तिं परां ययौ॥
इति ते रामसम्प्रोक्तं रमाऽऽख्यानं शुभोदयम् । य एतच्छृणुयात्तस्या रमा स्याद्वाञ्छितार्थदा॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
एकविंशतितमोऽध्यायः॥ १८११॥



आकर गौरी और लक्ष्मी को॥ ९२॥ लेकर दोनों हाथों से दोनों को पकड़ कर मिलाया और कहा—हे लक्ष्मी और हे भवानी! तुम दोनों मेरी कल्याणकारी बातें सुनों॥ ९३॥ लोकविनाशक तुम दोनों का यह क्रोध उचित नहीं है। तुम दोनों ने एक-दूसरे को जो श्राप दिया है, उसका समाधान मैं करती हूँ॥ ९४॥ गौरी के श्राप से यह काम शिव की तीसरी आँख से भस्म होगा। गौरी के प्रिय साधन हेतु पुनः जीवन प्राप्त करेगा॥ ९५॥ हे गौरि! देहान्तर में तुम पुनः शिव को प्राप्त करोगी। पतिनिन्दा सुनने से जलकर राख हो जाओगी॥ ९६॥ हे रमा! तुम भी सौत के कष्ट से शीघ्र ही अपनी देह छोड़ दोगी और फिर सुन्दर देह पाओगी॥ ९७॥ विष्णु के अंशावतार में तुम्हें पति-वियोग सहना ही पड़ेगा। अतः मोह छोड़कर अपने परमस्वरूप का चिन्तन करो॥ ९८॥ रमा और गौरी वाणी की ये बातें सुनकर प्रकृतिस्थ हुईं और तमोभाव को छोड़कर शान्ति प्राप्त की॥ ९९॥ हे परशुराम! लक्ष्मी की यह शुभद कथा मैंने तुम्हें सुना दी है, जो व्यक्ति यह कथा सुनेगा लक्ष्मी उसे वाँछित फल देती है॥ १००॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १८११॥



अथ द्वाविंशोऽध्यायः

इति श्रुत्वा महाऽऽख्यानं जामदग्न्यो महाशयः । दत्तात्रेयं पुनः प्राह विस्मितोऽत्यद्भुतश्रुतेः ॥
श्रीगुरो भवता प्रोक्तमाख्यानमतिशोभनम् । रमायाश्चित्रितं सर्वविस्मापनकरं तथा ॥ २ ॥
कथं लक्ष्मीर्भर्तृरता वियोगाद्दुःखिताऽभवत् । सपत्नीकृतदुःखं वा देहान्तकरणं महत् ॥ ३ ॥
गौर्याश्च भर्तृनिन्दातो भस्मताऽभूत् कथं वद । कृपया नाथ मयि तत् सर्वं वक्तुमिहाऽर्हसि ॥ ४ ॥
इत्यर्थितो भार्गवेण प्रीतः प्राह दयानिधिः । शृणु राम पुरावृत्तमाख्यास्ये संयतो भव ॥ ५ ॥
पुरा विष्णुर्महालक्ष्म्या वैकुण्ठे संस्थितोऽभवत् । वृन्दां भूमिञ्च सन्तुष्टः स्वीचकाराऽतिभक्तितः ॥
ताभ्यां चिरं पूजितो वै लक्ष्म्याः कोपेन शङ्कितः । परोक्षं रमते ताभ्यामेवं चिरतरं ह्यभूत् ॥ ७ ॥
लक्ष्म्याऽपि विदितश्चैतत् पृष्ट आच्छादयद्धरिः । अथ कालेन महता कदाचित् पार्षदैर्युता ॥ ८ ॥
लक्ष्मीवाण्या समाहूता विष्णुना ज्ञापिता ययौ । तदा लक्ष्मीविहीनः स भूवृन्दाभ्यां च सम्बभौ ॥
क्रीडन् समास्थितस्ताभ्यां लालितोऽतितरां हरिः । तदा कस्माद्रमा देवी सम्प्राप्ता सत्यलोकतः ॥
भूवृन्दाभ्यां समालक्ष्य क्रीडन्तमतिकामुकम् । क्रोधाग्निना प्रजज्वाल हरिरालक्ष्य शङ्कितः ॥
निर्गता वैकुण्ठधाम्नो ययौ द्रुततरं रमा । अनुव्रज्य हरिः शीघ्रं हिमाद्रौ तां परामृशत् ॥ १२ ॥
जग्राह दक्षहस्ते तां सान्त्वयामास वै तदा । क्रोधेन सा प्रज्वलन्ती वह्निना घृतपिण्डवत् ॥ १३ ॥

⁂ विमला ⁂

परशुराम महाशय ने इस आख्यान को सुनकर दत्तात्रेय से पुनः पूछा—अत्यधिक आश्चर्यजनक एवं अद्भुत यह कथा मैंने सुनी ॥ १ ॥ हे गुरुदेव! आपने अत्यन्त सुन्दर एवं आश्चर्यजनक महालक्ष्मी का विचित्र चरित कहा ॥ २ ॥ पति में इतना अनुरक्त होने के बावजूद लक्ष्मी पति-वियोग के दुःख से कैसे दुःखी हुई? सौत के द्वारा दी गई पीड़ा से व्यथित होकर उन्होंने कैसे शरीर का त्याग किया? ॥ ३ ॥ फिर गौरी ने पति की निन्दा सुनकर आत्मदाह कैसे किया? हे नाथ! मुझ पर कृपा कर ये सब मुझे बतला दें ॥ ४ ॥ परशुराम की प्रार्थना से प्रसन्न होकर दयालु गुरु दत्तात्रेय ने कहा—हे परशुराम! तैयार होकर सुनो, अब मैं तुम्हें पुरावृत्त सुनाऊँगा ॥ ५ ॥ पहले भगवान् विष्णु महालक्ष्मी के साथ वैकुण्ठ में रहते थे। धरती पर वृन्दा और भूमि की परम भक्ति से सन्तुष्ट होकर उन्हें स्वीकार कर लिया ॥ ६ ॥ उन दोनों से पूजित विष्णु लक्ष्मी के क्रोध से शङ्कित परोक्ष रूप से बहुत दिनों तक रमण करते रहे ॥ ७ ॥ लक्ष्मी को भी जब इसका पता चला तो उन्होंने विष्णु से इसके सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने इसे छिपा लिया। इस तरह बहुत काल बीत जाने पर एक बार अपने अनुचरों के साथ ॥ ८ ॥ लक्ष्मी सरस्वती के बुलावा पर विष्णु से कहकर चली गई। इधर लक्ष्मी की अनुपस्थिति में भगवान् विष्णु भूमि और वृन्दा के साथ विहार करने लगे ॥ ९ ॥ इन दोनों से अत्यन्त ललित विष्णु इनके साथ क्रीड़ा कर रहे थे, तभी सत्यलोक से महालक्ष्मी वहाँ आ धमकी ॥ १० ॥ अत्यन्त कामुकता के साथ क्रीड़ा करती भूमि और वृन्दा को देखकर क्रोध से प्रज्वलित होकर सशङ्क भाव से हरि को लक्ष्मी ने देखकर ॥ ११ ॥ रमा अतिशीघ्र वैकुण्ठ धाम को छोड़कर बाहर निकल गई। उनका पीछा करते हुए भगवान् विष्णु ने उन्हें हिमालय में जाकर पकड़ लिया ॥ १२ ॥ बहुत-सी प्रेमिकाओं में आसक्त अपने प्रेमी हाथ से उन्हें पकड़कर

द्रवीभूता जलमयी सञ्जाता कमलाऽऽलया। अक्षयं सलिलं तच्च नदीरूपेण चाऽवहत्॥ १४॥
सैवं पद्माऽभिधा जाता नदी परमपावनी। नारदस्य तु शापेन शुष्कतोयाऽभवद्धि सा॥ १५॥
भगीरथोऽपि राजर्षिस्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम्। गङ्गां रथानुगां चक्रे रथस्तन्मार्गजो ययौ॥ १६॥
गङ्गया सङ्गता पद्मा शापान्मुक्ता यदा बभौ। तदा पद्मा गङ्गया तु मिलिता प्रवहच्चिरम्॥ १७॥
कालान्तरे विभक्ता च प्राक् समुद्रेण सङ्गता। पद्मागङ्गाविभेदे तु स्नानात् स्वर्गमवाप्नुयात्॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं रामः पप्रच्छ सादरम्। भगवन् नारदोऽत्यन्तशान्तचित्तो दयानिधिः॥
कस्मात्तेन नदी शप्ता विमुक्ता शापतः कथम्। एतन्मे शंस भगवन् संभिन्ना गङ्गया कृतः॥ २०॥
एवं पृष्टो भार्गवेण प्राह दत्तो महामुनिः। शृणु राम पुरावृत्तं नारदस्याऽतिचित्रितम्॥ २१॥
कदाचिन्नारदो ब्रह्मलोके ब्रह्मसमागतः। तत्र प्रसङ्गो गान्धर्ववेदस्य समजायत॥ २२॥
तत्र गन्धर्वमुख्याश्च देवा यक्षाश्च किन्नराः। गान्धर्वं समुपाक्रामत् प्रशस्तं चोत्तरोत्तरम्॥ २३॥
वीणायां मूर्च्छयद्रागं नारदश्चापि तं तदा। तद्रागस्य मूर्च्छनया सर्वे ब्रह्मसभासदः॥ २४॥
नादब्रह्मणि संलीनाः प्रापुर्निर्वाणवत् सुखम्। प्रशंसुर्नारदं सर्वे साधु साध्विति वै तदा॥ २५॥
अथ वाणी कच्छपीं स्वां रागमूर्च्छनकोविदा। अवादयत्तद्गतिं तु नारदाद्याश्च नो विदुः॥ २६॥
अन्ते सभा विसृष्टाऽभून्नारदो निर्गतस्ततः। सरस्वत्या गतिं तां तु चिन्तयन् पथि संययौ॥ २७॥
नारदेन न विदिता सा गतिः सर्वतोत्तमा। पद्मातीरे समागत्य नारदो निर्जने वने॥ २८॥

जब सान्त्वना देने लगे तब क्रोध से जलती रमा आग के सम्पर्क में पिघलते घृतपिण्ड की तरह॥ १३॥ पिघल कर लक्ष्मी पानी बन गई और वह अक्षय जल नदी के रूप में बह चली॥ १४॥ वही नदी पद्मा नाम से विख्यात हुई, जो परमपावनी बनी। नारदजी के श्राप से आगे चलकर शुष्कतोया अर्थात् जिसका पानी सूख गया हो, वैसी नदी बन गई॥ १५॥ राजर्षि भगीरथ ने अत्यन्त दुष्कर तप कर गङ्गावतरण धरती पर कराया और रथ के पीछे से उसका अनुगमन किया। वह रथ भी सूखी पद्मा नदी के मार्ग से गुजरा॥ १६॥ गंगा का सम्पर्क होते ही पद्मा शापमुक्त हो गई। फिर यह गंगा के साथ होकर बहुत दिनों तक बहती रही॥ १७॥ कालान्तर में गङ्गा से अलग होकर समुद्र में जा मिली। जहाँ पद्मा गङ्गा से अलग हुई, वहाँ स्नान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है॥ १८॥ गुरु की बात सुनकर परशुराम ने फिर उनसे सादर पूछा—भगवन्! नारद तो अत्यन्त शान्तचित्त और दयालु ऋषि है॥ १९॥ तो फिर उन्होंने नदी को श्राप क्यों दिया और यह पद्मा नदी उनके श्राप से मुक्त कैसे हुई? यही मेरी शङ्का है और गङ्गा से वह कहाँ अलग हुई?॥ २०॥ परशुराम का यह प्रश्न सुनकर महामुनि दत्तात्रेय ने कहा—सुनो राम! नारद की अतिविचित्र यह एक पुरानी कथा है॥ २१॥ एक बार घूमते-घूमते नारदजी ब्रह्मलोक की ब्रह्मसभा में पहुँचे, उस समय वहाँ गन्धर्वश्रेष्ठ की चर्चा चल रही थी॥ २२॥ वहाँ प्रमुख गन्धर्व, देवता और यक्ष उपस्थित थे। सब-के-सब उत्तरोत्तर अपनी प्रशंसनीय कला का प्रदर्शन कर रहे थे॥ २३॥ वीणा के तार पर मूर्च्छना राग बजाते हुए नारद भी वहाँ पहुँच गये। उनके राग की मूर्च्छना से सभी सभासद॥ २४॥ नादब्रह्म में संलीन निर्वाण सुख का अनुभव कर रहे थे। सब-के-सब नारद के राग की प्रशंसा साधु-साधु कहकर करने लगे॥ २५॥ अपने को मूर्च्छन राग में विशिष्ट जानकर सरस्वती अपनी कच्छपी वीणा बजाने लगी, उसकी गति नारदादि को भी पता नहीं थी॥ २६॥ अन्त में सभा विसर्जित हो गई, नारद भी वहाँ से बाहर निकल गये। सरस्वती की उस गति को सोचते हुए रास्ते में चल रहे थे॥ २७॥ नारद उस गति को बिलकुल ही नहीं जानते थे, वह गति सर्वोत्तम थी। निर्जन वन में बहती पद्मा नदी के किनारे पहुँचे॥ २८॥ उस गति को मूर्च्छित कर सरस्वती के द्वारा

तां गतिं मूर्च्छयामास सरस्वत्या सुमूर्च्छितताम्। अपश्रुतिं तत्र श्रुत्वा जहासोच्चैस्तदा नदी ॥ २९ ॥
नारदः स्वोपहासेन लज्जितो मन्युना वृतः। शशाप पद्मां सरितं यतोऽहं हसितस्त्वया ॥ ३० ॥
ततो नष्टजला त्वं वै भविष्यसि सरिद्वरे। इति शापं सुभीमं सा श्रुत्वा तं दण्डवन्नता ॥ ३१ ॥
प्रार्थयामास बहुधा शापस्याऽन्तं तदा नदी। प्रार्थितो नारदः शापस्याऽन्तमाह नदीं प्रति ॥ ३२ ॥
गङ्गया श्रीब्रह्ममय्या भविष्यसि यदा सह। तदा त्वं शापतो मुक्ता भविष्यसि महानदि ॥ ३३ ॥
अथ पद्मा नारदं तं पप्रच्छ प्रणता सती। देवर्षे का हि सा गङ्गा कथं भूमिं प्रयास्यति ॥ ३४ ॥
कथं ब्रह्ममयी सा च वद मे कृपयाऽखिलम्। इति पद्मावचः श्रुत्वा हृष्टो देवर्षिसत्तमः ॥ ३५ ॥
प्राह गङ्गासुचरितं पद्मां प्रति महातृषिः। शृणु पद्मे कथां पुण्यां महापातकनाशिनीम् ॥ ३६ ॥
परस्य जगतः कर्त्तुर्ब्रह्मणः शिवरूपिणः। शक्तिः सर्वमयी तस्य सारभूता हृदात्मिका ॥ ३७ ॥
महाकाशमयी यस्यां प्राप्तान्यणुविधिं नदि। असंख्यातान्यण्डकानि यत्राऽण्डे भुवनावलिः ॥
एवं स्थिता महाशक्तिर्ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुश्च ताम्। महता तपसा युक्ता प्रसन्ना साऽभवत्तदा ॥ ३९ ॥
वरं वृणीध्वं भो देवा इत्यभून्नाभसं वचः। तच्छ्रुत्वा प्रावदन् देवा ब्रह्मविष्णुपुरःसराः ॥ ४० ॥
देवी त्वं वरदात्री चेन्मूढजीवा अपि द्रुतम्। अनायासेन परमां प्राप्नुयुर्येन सद्गतिम् ॥ ४१ ॥
तथा व्यक्तस्वरूपा त्वं भूत्वा तिष्ठेह सर्वतः। निशम्यैवं विधिमुखवचनं प्रत्यभाषत ॥ ४२ ॥
देवाः शृणुध्वं वः प्रीत्यै व्यक्तरूपा भवाम्यहम्। यदा तु बाष्कलिर्नाम दानवेशो महाबलः ॥ ४३ ॥
त्रिलोकीं स्ववशे कुर्याज्जित्वेन्द्रादीन् स्वतेजसा। तदैव विष्णुरिन्द्रार्थं वटुरूपेण दानवम् ॥ ४४ ॥
भिक्षित्वा त्रिपदं स्थानं त्रिलोकीमाहरिष्यति। विष्णोरुत्क्षिप्तपादेन भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहतः ॥

सुमूर्च्छित उस अपश्रुति को सुनकर वह नदी ठठाकर हँस पड़ी ॥ २९ ॥ नारद अपना उपहास देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। अरी पद्मे! तुमने मेरी खिल्ली उड़ाई है, अतः मैं तुम्हें श्राप देता हूँ ॥ ३० ॥ हे श्रेष्ठ सरिते! तुम्हारा पानी सूख जायेगा। यह भयङ्कर श्राप सुनकर पद्मा ने दण्डवत् धरती पर गिर कर प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ श्राप की समाप्ति के लिए तब पद्मा ने अनेक बार प्रार्थना की। तब इनकी प्रार्थना से प्रसन्न नारद ने इन्हें शाप के अन्त का उपाय बतलाया ॥ ३२ ॥ हे महानदि! जब धरती पर गङ्गावतरण होगा और उसका साथ तुम्हें मिलेगा तब तुम स्वतः शापमुक्त हो जाओगी ॥ ३३ ॥ तब सती पद्मा ने प्रणत होकर नारद से पूछा—हे देवर्षे! यह गङ्गा कौन है? धरती पर क्यों आयेगी? ॥ ३४ ॥ वह ब्रह्ममयी क्यों या कैसे होगी? कृपया मुझे ये सब बतला दें। पद्मा की ये बातें सुनकर देवर्षि नारद ने सन्तुष्ट होकर ॥ ३५ ॥ कहा—हे पद्मे! गङ्गा का सुन्दर चरित सुनो। यह कथा पुण्यप्रदा एवं महापातकनाशिनी है ॥ ३६ ॥ सृष्टिकर्त्ता परमात्मा ब्रह्मा की कल्याणमयी शक्ति सर्वमयी है। उसका सारभूत स्वरूप हृदयात्मिका है ॥ ३७ ॥ हे नदि! वह महाकाशस्वरूपा है। उसमें भुवन समूहात्मक असंख्य ब्रह्माण्ड भरे हैं ॥ ३८ ॥ ऐसी उस महाशक्ति की ब्रह्मादि देवताओं ने अपनी कठोर तपस्या और अनेक स्तुतियों से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ फिर आकाशवाणी हुई—हे देवगण! आप पर मैं सन्तुष्ट हूँ, वरदान माँगो। यह सुनकर ब्रह्मा-विष्णु प्रभृति देवताओं ने कहा ॥ ४० ॥ हे देवि! यदि आप वरदा हैं तो मन्दमति प्राणी भी शीघ्र ही परमसद्गति जिससे प्राप्त करें ॥ ४१ ॥ वैसा करने के लिए आप यहाँ स्पष्ट रूप से हर जगह मौजूद रहे। विधाता के मुख से ऐसी बातें सुनकर जवाब दिया ॥ ४२ ॥ हे देवगण! आप लोगों पर प्रसन्न होकर मैं व्यक्त रूप धारण करूँगी। जब बाष्कलि नामक महाबली दैत्यराज ॥ ४३ ॥ अपने तेज से इन्द्रादि देवताओं को जीतकर तीनों लोक को अपना वशवर्त्ती बना लेगा तब इन्द्र के लिए भगवान् विष्णु बटु रूप धारण कर उस दानव से ॥ ४४ ॥ भीख माँग कर तीन डग धरती में तीनों लोकों का

तोयरूपाऽमृतमयी निर्गच्छामि महानदी। तां मां दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च पीत्वा वा सद्गतिं व्रजेत्॥
गङ्गा त्रिपथगा चेति तदा सिद्धा वदन्ति माम्। इत्युक्त्वा विररामोऽथ नभोरूपा महेश्वरी॥ ४७॥
एवं सा विधिमुख्यानां वरं दत्त्वा महानदी। भविष्यति हि सा गङ्गा तत्सङ्गात्ते शुभोदयः॥ ४८॥
श्रुत्वैवं नारदवचः पुनः पप्रच्छ सा नदी। देवर्षे तद्वद मम कथं विष्णुपदक्षतात्॥ ४९॥
गङ्गाऽवतीर्णा तत्पश्चाद्भुवश्च कथमेष्यति। श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं भविष्यमपि सुस्फुटम्॥
पद्मयैवं पुनः पृष्टः प्राह देवर्षिसत्तमः। शृणु पद्मे कथां पुण्यां गङ्गावतरणाऽभिधाम्॥ ५१॥
इतस्त्रयोविंशतिमे पर्याये दानवेश्वरः। त्रेतायां बाष्कलिर्नाम विष्णुभक्तोऽतिधर्मवित्॥ ५२॥
तपसा तोषयित्वा तं ब्रह्माणं कमलासनम्। वरं लब्ध्वा स विपुलं युधि निर्जित्य वासवम्॥ ५३॥
भविष्यति त्रिलोकेशः सदा धर्मपरायणः। अथेन्द्राद्यैः सुरैर्विष्णुः प्रार्थितो माययाऽभवत्॥ ५४॥
विप्रभक्तं बाष्कलिं तं वञ्चितुं विप्रवेषतः। वटुः खर्वतरोऽगच्छद्भिक्षितुं दानवाधिपम्॥ ५५॥
योगदृष्ट्या भार्गवस्तं गुरुः प्राह विदन् हरिम्। दानवेश न विप्रोऽयं विष्णुरिन्द्रार्थमागतः॥ ५६॥
वञ्चितुं त्वां विजानीहि नास्मै त्वं दातुमर्हसि। अथ दृष्ट्वा समायान्तं विष्णुं वटुकरूपिणम्॥ ५७॥
मुमोदाऽतितरां साक्षाद्विष्णुदर्शनतो हि सः। उत्थाय शीघ्रं प्रणतः स्वाऽऽसने सन्निवेशयत्॥
प्रक्षाल्य पादौ तोयेन तीर्थं मूर्ध्नि विधारयत्। सम्पूज्य भक्तिभावेन कृताञ्जलिरभाषत॥ ५९॥
भगवन् किं प्रियं तेऽद्य यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्। तत्प्रतीच्छ मया दत्तं जानीह्येवाऽविशङ्कितम्॥

आहरण करेंगे। विष्णु के ऊपर पैर उठाने से ब्रह्माण्ड कटाह से अलग हटकर॥ ४५॥ अमृतमय जल वाली महानदी के रूप में मैं निकलूँगी। उस नदी के रूप में मुझे देखकर, स्पर्श कर और पीकर लोग सद्गति प्राप्त करेंगे॥ ४६॥ सिद्धगण मुझे त्रिपथगा गङ्गा कहकर पुकारेंगे। आकाशरूपिणी वह महाशक्ति इतना कहकर रुक गई॥ ४७॥ इस तरह विधि-प्रमुख देवताओं को वरदान देकर वह महानदी गङ्गा बनेगी और गङ्गा का साथ जब तुम्हें मिलेगा तब तुम्हारा कल्याण होगा॥ ४८॥ नारद मुनि की यह बात सुनकर पद्मा ने पुनः पूछा—हे देवर्षे! कृपया मुझे यह भी बतला दें कि विष्णुपद के आघात से॥ ४९॥ गङ्गा कैसे अवतरित हुई और फिर धरती पर कैसे आयेगी? भविष्य की ये सारी बातें स्पष्ट रूप से मैं जानना चाहती हूँ॥ ५०॥ पद्मा ने जब उन्हें पुनः इस तरह पूछा तो देवर्षि नारद ने उनसे कहा—हे पद्मे! गङ्गावतरण नामक यह पुण्य कथा ध्यान से सुनो॥ ५१॥ आज से सृष्टि के नियमित तेईस चक्र व्यतीत होने पर त्रेता में अतिधर्मात्मा विष्णुभक्त दैत्यराज बाष्कलि होगा॥ ५२॥ अपने कठोर तप से बाष्कलि ने कमलासन ब्रह्मा को प्रसन्न कर उनसे वरदान पाकर कठोर युद्ध में देवराज इन्द्र को जीतकर॥ ५३॥ वह त्रिलोकाधिपति बनेगा और धर्मपरायण होगा। इन्द्रादि देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना कर उन्हें अपने पक्ष में किसी तरह कर लेंगे, तब अपनी माया से॥ ५४॥ विष्णु ब्राह्मणभक्त बाष्कलि को छलने के लिए ब्राह्मणवटु का वेष बनाकर अत्यन्त लघु अर्थात् ठिंगना (वामन) रूप में दानवराज के पास भिक्षा माँगने पहुँचेंगे॥ ५५॥ दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने अपनी योगदृष्टि से इन्हें पहचान कर कहा—हे दानवराज! ये ब्राह्मण नहीं है। ये इन्द्र के लिए छद्म वेषधारी विष्णु तुम्हारे सामने खड़े हैं॥ ५६॥ ये तुम्हें ठगने आये हैं, इन्हें कोई दान मत दो। उधर दानवराज बटुक रूपधारी विष्णु को अपने द्वार आया जानकर॥ ५७॥ उनका मन प्रसन्नता से झूम उठा, साक्षात् विष्णुदर्शन से उसने अपने आपको निहाल समझा। उठकर उन्हें प्रणाम किया और अपने आसन पर बैठाया॥ ५८॥ अपने हाथों उनके चरणों को धोकर उस तीर्थ-जल को शिर पर धारण किया। भक्तिभाव से उनकी पूजा कर उनसे हाथ जोड़कर कहा—॥ ५९॥ हे भगवन्! आपको क्या प्रिय है जिसकी कामना आ५ हमसे करते हैं?

वटुराह दानवेशं राजंस्त्वं ब्रह्मचारिणे। मह्यं भूमिं प्रयच्छाऽऽशु पादत्रितयसम्मितम्॥ ६१॥
तच्छ्रुत्वा बाष्कलिः प्राह भगवन् गुरुणा ह्यहम्। प्रतिषिद्धोऽपि ते दद्यां कथं सर्वान्तरात्मने॥
ईश्वराय भगवते न दद्यां याचितं किल। तां क्षमस्व गुरोर्वाक्यविहतिं पुरुषोत्तम॥ ६३॥
इत्युक्त्वा तत्करतले पानीयं समवासृजत्। प्रतिगृह्यतामिति वदन् बाष्कलिर्दृढभावनः॥ ६४॥
विष्णुस्तदेश्वरीशक्तिमाविष्टोऽवर्धत क्षणात्। सव्येन भुवमाक्रम्य पादमन्यमथोत्क्षिपत्॥ ६५॥
पादाङ्गुष्ठनखोद्भिन्नब्रह्माण्डोर्ध्वतलात् स्रुता। ब्रह्मद्रवा तदा गङ्गा सुधाविशदभासुरा॥ ६६॥
तृतीयपादं निक्षेप्तुं स्थलं याचत दानवम्। एकेन भूमिः सङ्क्राता द्वितीयेन नभस्तलम्॥ ६७॥
तृतीयपादविन्यासस्थानं वद नृपोत्तम। श्रुत्वा विष्णुवचः प्राह बाष्कलिर्दानवेश्वरः॥ ६८॥
भगवन्नस्ति मूर्धा मे स्थानं तत्ते दिशाम्यहम्। इति श्रुत्वा पदं मूर्ध्नि न्यस्यत भूतलेन यत्॥ ६९॥
प्रसन्नो दानवेशाय सायुज्यं दिशदुत्तमम्। भिन्नोर्ध्वाण्डमहाभित्तेर्निर्गतां ब्रह्मरूपिणीम्॥ ७०॥
गङ्गां कमण्डलौ ब्रह्मा ग्रहिष्यति महौजसा। अथ कालेन महता देवेन्द्रः सुमहत्तपः॥ ७१॥
तप्त्वा प्रसाद्य ब्रह्माणं समानेष्यति वै दिवम्। ततः कालान्तरे सूर्यवंशे राजा भविष्यति॥ ७२॥
सगराख्यो वाजिमेधसहस्रं स विधास्यति। हरिष्यति च तत्राऽश्वमिन्द्रः कपिलसन्निधिम्॥ ७३॥
षष्टिसहस्रसंख्याताः सगरस्य तु ये सुताः। अश्वं मृगयमाणास्ते भेत्स्यन्ति त्वरितो भुवम्॥ ७४॥
तत्र तेजः समासाद्य कापिलं भस्मतां गताः। सागरा अथ तत्पौत्रो भगीरथ इतीरितः॥ ७५॥

उसे निःशङ्क होकर कहें, उसे प्राप्त ही आप समझें॥ ६०॥ उस बटुक ने कहा—हे राजन्! मुझ ब्रह्मचारी के लिए शीघ्र ही तीन डग धरती मात्र दे दो॥ ६१॥ यह सुनकर बाष्कलि ने कहा—भगवन्! गुरु के मना करने पर भी सबके भीतर निवास करने वाले आपके लिए किसी-न-किसी प्रकार मैं व्यवस्था कर ही लूँगा॥ ६२॥ आप ईश्वर हैं, आप भगवान् हैं, फिर आपने याचना की है, उसे मैं कैसे न दूँ? दूसरी ओर गुरु की बात काट कर उन्हें मैंने चोट पहुँचाई है, कृपया इसे आप क्षमा कर दें॥ ६३॥ यह कहकर उनके हाथ में पानी डालते हुए दृढ़ भावना के साथ बाष्कलि ने यह कहते हुए 'इसे स्वीकार करें' ॥ ६४॥ बस, इसके बाद अपनी ईश्वरी शक्ति में समाहित विष्णु क्षणभर में ही बढ़कर आकाश छू लिये। उन्होंने बायाँ पैर उठाकर एक डग में सारी धरती नाप ली, दूसरा पैर ऊपर की ओर उठाया॥ ६५॥ विष्णु के पैर के अँगूठे के नाखून से निकल कर ब्रह्माण्ड के ऊपरी तल से बहती हुई ब्रह्माण्ड पिघलाती अतिविशद एवं भव्य गङ्गा फूट निकली॥ ६६॥ तीसरा डग भरने के लिए दानवराज से याचना करते स्थान विष्णु ने पूछा और कहा—एक कदम में सारी धरती मैंने नाप ली और दूसरे कदम में आकाश॥ ६७॥ हे नृपश्रेष्ठ! अब तीसरा कदम रखने की जगह बतलाओ। विष्णु की यह बात सुनकर दानवेन्द्र बाष्कलि ने कहा॥ ६८॥ भगवन्! इसके लिए बचा हुआ मेरा सिर है, यह मैं देता हूँ। यह सुनकर वामन ने धरती से उठाकर अपना पैर उसके सिर पर रख दिया॥ ६९॥ दानवेन्द्र पर अत्यन्त प्रसन्न होकर विष्णु ने उसे अपना सायुज्यपद प्रदान किया। उधर ब्रह्माण्ड की महाभित्ति को तोड़कर ब्रह्मस्वरूपिणी गङ्गा बाहर निकल आई॥ ७०॥ इस स्थिति में अपनी सृजनात्मक शक्ति से ब्रह्माजी अपने कमण्डलु में गङ्गा को धारण कर लेगें। बहुत समय बीत जाने पर देवेन्द्र अपने घोर तप से॥ ७१॥ ब्रह्माजी को प्रसन्न कर गङ्गा को स्वर्ग ले आयेंगे। इसके बाद कालान्तर में कोई सूर्यवंशी राजा होगा॥ ७२॥ सगर नाम का वह राजा हजारों वाजिमेध यज्ञ करेगा। इन्द्र उसके यज्ञीय घोड़े का अपहरण कर उसे कपिल मुनि के आश्रम तक पहुँचा देंगे॥ ७३॥ उस घोड़े की खोज में सगर के साठ हजार बेटे धरती का कोना-कोना छान डालेंगे॥ ७४॥ कपिल मुनि के आश्रम तक पहुँच कर कपिल के तेज से वे साठों हजार सगर के

भविष्यति स धर्मात्मा गतिं पैतामहीमथ । विचिन्त्य तप आतिष्ठदत्युग्रञ्च महत्तरम्॥ ७६॥
तप्त्वा स्वर्गाद्द्रुतं गङ्गां पतन्तीं शिवमूर्धनि। पुनर्महत्तपस्तप्त्वा ततो भूमिं भगीरथः॥ ७७॥
अवतारयिष्यति वै रथं साऽनुगमिष्यति। भगीरथो रथे स्थित्वा त्वन्मार्गेणाऽनुयास्यति॥ ७८॥
तदा त्वं शापतो मुक्ता भविष्यसि सरिद्वरे। एवं रमा सपत्नीजं दुःखं प्राप्ता महत्तरम्॥ ७९॥
पुनः कालान्तरे राम रावणं राक्षसाधिपम्। रावणं सर्वलोकानां हन्तुं विष्णुरभून्नरः॥ ८०॥
सूर्यवंशं समासाद्य चतुर्धा स्वं विभज्य तु। तस्य पत्नी महालक्ष्मीर्जानकी भूसमुद्भवा॥ ८१॥
भूत्वा भर्तृवियोगं सा प्राप्ता गौर्यास्तु शापतः। गौरी चाऽपि पुरा राम महादेवेन कारणात्॥ ८२॥
वियुक्ताऽभूद्दक्षकन्या तद्यज्ञे शिवनिन्दनम्। श्रुत्वा भस्मीभवत्क्रोधाल्लक्ष्मीशापेन भार्गव॥ ८३॥
इति श्रुत्वा दत्तगुरोर्वाक्यं पश्चाद्द् भृगूद्वहः। पुनः पप्रच्छ स गुरुं विस्तरेण कथां हि ताम्॥ ८४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ १८९५॥

बेटे जलकर राख हो गये। उसके बाद सगर का पौत्र भगीरथ होगा॥ ७५॥ अपने पितामह की तरह वह एक महान् धर्मात्मा होगा। कुछ सोचकर अत्यन्त उग्र तपस्या करना वह प्रारम्भ करेगा॥ ७६॥ घोर तप कर वह स्वर्ग से गङ्गा को धरती पर लाने का प्रयास करेगा, किन्तु स्वर्ग से गिरती गङ्गा बीच में ही शङ्कर की जटा में समा जायेगी। फिर घोर तप कर धरती पर भगीरथ उन्हें उतारेंगे॥ ७७॥ धरती पर आगे भगीरथ का रथ चलेगा, उसके पीछे-पीछे गङ्गा बहती चलेगी। भगीरथ रथ पर सवार होकर तुम्हारे खात के बीच से गुजरेगा॥ ७८॥ हे सरिद्वरे! उसी समय तुम शापमुक्त हो जाओगी। इस तरह सौत से प्राप्त महत्तर दुःख रमा झेलेगी॥ ७९॥ पुनः कालान्तर में राक्षसाधिपति रावण को मारने के लिए रामावतार के रूप में विष्णु नरतन धारण करेंगे॥ ८०॥ सूर्यवंश में जन्म लेकर वे इसे चार खण्डों में विभक्त करेंगे। उनकी पत्नी लक्ष्मी जानकी के रूप में अवतीर्ण होगी॥ ८१॥ वह गौरी के शाप से यहाँ भी पति का वियोग झेलेगी। गौरी भी हे परशुराम! पहले महादेव के ही कारण से॥ ८२॥ वियुक्त होगी। पहले वह दक्ष की पुत्री बनेगी, लक्ष्मी के श्राप से पिता के यज्ञ में शिवनिन्दा सुनकर क्रोधित होकर आत्मदाह करेगी॥ ८३॥ गुरु दत्त की वाणी सुनकर परशुराम ने यह कथा भी सविस्तर सुनना चाहा॥ ८४॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में
बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १८९५॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीगुरो श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण कथामिमाम्। गौरी केन निमित्तेन वियुक्ता शङ्करेण वै॥ १॥
कुतो दक्षात् समुत्पन्ना निन्दा केन कृता तदा। कुतो देवाधिदेवस्य निन्दा वै समजायत॥ २॥
एतन्मे भगवन् शंस कृपया तव सेवके। सुपृष्टो भार्गवेणैवं प्राह प्रवदता वरः॥ ३॥
राम भार्गव वक्ष्यामि गौर्याः शापकथां शृणु। पुरा भस्मासुरो लोके तपस्तप्त्वा महत्तरम्॥ ४॥
शिवं सुतोषयामास वरं प्राप ततोऽद्भुतम्। करं न्यसेद्यस्य मूर्ध्नि स यायाद्भस्मतां क्षणात्॥ ५॥
एवं लब्ध्वा वरं दैत्यः प्रत्येतुं शिवमूर्धनि। निक्षेप्तुं करमारब्धस्ततो देवः पलायितः॥ ६॥
दैत्येनाऽनुद्रुतो भूयो भीत्याऽन्तर्द्धि समाययौ। अथ गौरी महादेवं मृगयित्वा तु सर्वतः॥ ७॥
वियुक्ता देवदेवेन दुःखेनाऽत्यन्तभूयसा। देहं विलोपितवती ततो विष्णुरुपायतः॥ ८॥
जघान तं महादैत्यमथ कालान्तरे भुवि। दक्षप्रजापतिर्देवीं तपसाऽतोषयच्छिवाम्॥ ९॥
तदा गौरी देहहीना गगनैकस्वरूपिणी। तुष्टा तं छन्दयामास वरेण वरदा सती॥ १०॥
स वव्रे तनया भूत्वा गृहे मे वस शङ्करि। इति दत्त्वा समुत्पन्ना तनयोमाऽभिधानतः॥ ११॥
दाक्षायणी तां शिवाय ददौ दक्षः प्रजापतिः। अथाऽऽत्मानं महादेवश्वशुरत्वेन वै गुरुम्॥ १२॥
मानयामास कस्मिंश्चित्काले ब्रह्मा शिवेन वै। सङ्गतः कार्यवशतः सहितो विष्णुमुख्यकैः॥

❋ विमला ❋

हे गुरुदेव! गौरी भगवान् शङ्कर से कैसे वियुक्ता हुई? यह कथा मैं सविस्तार सुनना चाहता हूँ॥ १॥ दक्ष के घर गौरी कैसे उत्पन्न हुई? किसने शिव की निन्दा की? फिर देवाधिदेव महादेव की निन्दा ही क्यों हुई?॥ २॥ हे भगवन्! आपके सेवक की ये सब जानने की अभिलाषा है, कृपया बतला दें। शिष्य परशुराम की प्रार्थना से प्रभावित गुरु दत्तात्रेय ने कहा॥ ३॥ हे भृगुपुत्र परशुराम! अब मैं गौरी की शाप-कथा कहूँगा, सुनो। पहले संसार में भस्मासुर नाम का एक दैत्य था, जिसने घोर तप कर॥ ४॥ भगवान् शिव को परम प्रसन्न कर वर प्राप्त किया कि जिस किसी के सिर पर वह अपना हाथ रख दे, वह उसी क्षण जलकर राख हो जाय॥ ५॥ ऐसा वरदान प्राप्त कर भस्मासुर ने शिव के माथे पर ही हाथ रखने की कुचेष्टा शुरू कर दी। उसके डर से भगवान् शिव वहाँ से भाग निकले॥ ६॥ दैत्य ने भागते हुए शिव का पीछा करना शुरू किया। शिव भी डर कर उसकी आँखों से ओझल हो गये। इधर गौरी चारों ओर शिव को खोजकर॥ ७॥ तब महादेव से वियुक्त होकर अत्यधिक दुःखी पार्वती ने अपनी देह को ही विलोपित कर दिया। उसके बाद विष्णु ने कालान्तर में इसी धरती पर अपना मनोहर रूप बनाकर उस दैत्य को मार डाला। इधर दक्ष प्रजापति ने अपनी तपस्या से भगवती भवानी को सन्तुष्ट कर लिया॥ ८-९॥ तब देहविहीन आकाशरूपा गौरी ने उस पर प्रसन्न होकर उसका अभिलषित वर प्रदान किया॥ १०॥ उसने वर माँगा—हे शङ्करि! आप मेरी बेटी बन कर मेरे घर में निवास करें। यह वर देकर भवानी ने उमा नाम से दक्षगृह में जन्म लिया॥ ११॥ अपनी पुत्री दाक्षायणी अर्थात् पार्वती का दक्ष प्रजापति ने शिव के साथ विवाह कर दिया तथा शिव के श्वसुर होने के नाते अपने को शिव से बड़ा मान लिया॥ १२॥ किसी समय किसी काम के लिए ब्रह्माजी विष्णु प्रमुख

तत्राऽऽजग्मुर्बुधगणाः प्रजापतिगणा अपि । अपि दक्षः जगामाऽथ तं दृष्ट्वा देवतागणाः ॥
प्रत्युत्थिता ऋषिगणाश्चाऽन्ये ये तत्र संस्थिताः । ब्रह्मविष्णुहरेभ्योऽन्ये सर्वे तं प्रत्युपस्थिताः ॥
अथ दक्षो मन्युयुतो महामानी शिवं प्रति । ज्वलन् क्रोधाग्निनैवाऽसौ प्रोवाच परुषं वचः ॥ १६ ॥
एष शम्भुर्मम गुरोः प्रत्युत्थानविवर्जितः । मानस्तम्भसमारूढः शिष्यभूतोऽतिमूढधीः ॥ १७ ॥
सच्चारित्रविहीनोऽयं नाऽत्र संस्थातुमर्हति । निशम्य दक्षवचनं पद्मभूर्जगदीश्वरः ॥ १८ ॥
मैवमज्ञ इव ब्रूहीत्येवं तं विनिवारयत् । दक्षस्तदा प्रभृति वै शिवं सर्वत्र निन्दति ॥ १९ ॥
कदाचिद्दक्ष ईजानः सर्वान् देवानृषीन् मुनीन् । निमन्त्रयच्छिवमृते पूर्वविद्वेषहेतुतः ॥ २० ॥
दाक्षायणीमप्यात्मभवां शिवे रोषान्न चाऽऽह्वयत् । प्रवृत्ते तु महायज्ञे वैमानिकगणात् सती ॥
शुश्राव यज्ञं सुश्रेष्ठं पितुः सर्वसमर्हणम् । शङ्करं प्रार्थयामास पितृयज्ञदिदृक्षया ॥ २२ ॥
शिवेन प्रतिषिद्धाऽपि दर्शनोत्कण्ठिता सती । जगाम यज्ञसदनं दीक्षितो यत्र वै पिता ॥ २३ ॥
अथाऽवलोक्य पितरं प्रणयादब्रवीत्तदा । तात किं ते विस्मृताऽहं यज्ञे सर्वसमर्हणे ॥ २४ ॥
इमास्ते तनुजाः सर्वा जामातृसहिताः कुतः । निमन्त्रिताः शिवः कस्मान्नाऽऽहूतः सहितो मया ॥
इत्याकर्ण्य मृडान्योक्तं दक्षो रोषाऽरुणेक्षणः । शृणु वत्से न यज्ञेऽस्मिन् शिवः पूजां समर्हति ॥ २६ ॥
इति नाऽऽकारितस्त्वं तु न पूज्या तस्य योगतः । निशम्यैवं पितुर्वाक्यं सती प्राहाऽपमानिता ॥ २७ ॥
तात ते चित्तविभ्रंशो महानेषोऽशुभोदयः । म्रियमाणस्येव जन्तोर्विपरीताऽर्थदर्शनम् ॥ २८ ॥

देवताओं के साथ शिव से मिलने आये॥ १३॥ वहाँ देवगण और प्रजापतिगण भी पधारे। तत्पश्चात् दक्ष प्रजापति भी वहाँ पहुँचा। उन्हें देखकर देवगण॥ १४॥ उठकर खड़े हो गये। साथ ही ऋषिगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अतिरिक्त जो भी बैठे थे सब-के-सब उठ खड़े हुए॥ १५॥ क्रुद्ध एवं महाभिमानी दक्ष ने क्रोध की आग में जलते हुए शिव के प्रति बड़ा ही कठोर वचन कहा—॥ १६॥ यह शम्भु शिष्य के तुल्य होकर भी मुझ गुरु का उठकर सम्मान नहीं किया। यह मन्दमति अहङ्कार के शिखर पर समारूढ़ है॥ १७॥ यह सदाचारविहीन है। यहाँ यह रहने योग्य नहीं है। दक्ष की ऐसी बातें सुन कर जगदीश्वर ब्रह्मा ने कहा॥ १८॥ 'मूर्ख की तरह ऐसी बातें मत बोलो' यह कहकर उसे ब्रह्माजी ने रोक दिया। बस, उसी दिन से दक्ष हर जगह शिव की निन्दा करने लगा॥ १९॥ एक बार दक्ष ने महायज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में उन्होंने पहले विद्वेष के कारण शिव को छोड़कर सब देवताओं, ऋषियों और मुनियों को आमन्त्रित किया॥ २०॥ उस यज्ञ में शिव पर क्रोध के कारण अपनी बेटी दाक्षायाणी को भी बुलावा नहीं भेजा। 'यज्ञ प्रारम्भ हो चुका है' इसकी सूचना सती को गगनचारी गणों से मिली॥ २१॥ "पिता सर्वश्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण यज्ञ कर रहे हैं" सती ने जब यह सुना तब उसे देखने जाने की इच्छा से अनुमति हेतु शंकर से प्रार्थना की॥ २२॥ शङ्कर की मनाही के बावजूद यज्ञ देखने की उत्कण्ठा से यज्ञमण्डप में पहुँच गई। वहाँ उन्होंने पिता को यज्ञ करने के लिए तैयार देखा॥ २३॥ उन्हें देखकर विनोदपूर्वक सती ने पिता से कहा—इतने विशिष्ट यज्ञ में भी मैं आपको याद नहीं आई॥ २४॥ आपकी ये सारी बेटियाँ और जामातागण तो इस यज्ञ में उपस्थित हैं ही, तब शिव के साथ आपने मुझे क्यों नहीं बुलाया ?॥ २५॥ भवानी की ये बातें सुनकर क्रोध के मारे दक्ष की आँखें लाल हो गईं और उसने कहा—सुनो बेटी! इस यज्ञ में शिव पूजा पाने का हकदार नहीं है॥ २६॥ इसीलिए बेटी! तुम्हें बुलावा नहीं भेजा, क्योंकि शिव के साथ रह कर तुम भी पूजा के योग्य नहीं रह गई। पिता की बातें सुनकर अपमानित सती ने कहा॥ २७॥ पिताजी! इस कल्याणकारी वेला में आपकी मति मारी गई है। मरने वाले जीवों को हर चीज उलटी ही दीखती है।॥ २८॥ शिव तो परम कल्याणमय हैं, सबसे पूजित हैं। जिस यज्ञ में उनकी

शिवः परमकल्याणमयः सर्वसुपूजितः । पूज्यते यत्र नो यज्ञे न स यज्ञो भवेत् क्वचित् ॥ २९ ॥
यज्ञस्तेऽयं सुसम्पन्नोऽप्येष नैवेह शोभते । विभूषिताऽपि युवतिर्व्यंशुका सुन्दरी यथा ॥ ३० ॥
विद्याहीनो यथा विप्रो भर्तृहीना यथाऽबला । शौर्यहीनो यथा राजा कर्णहीनः प्लवो यथा ॥ ३१ ॥
चन्द्रहीना यथा रात्रिः सूर्यहीनं दिनं यथा । तथा क्रतुरयं तात शिवहीनो न राजते ॥ ३२ ॥
श्रुत्वैवं वचनं सत्याः प्राह दक्षोऽतिमर्षितः । धिगनार्ये वृथाजल्पे किं न पश्यसि वै पतिम् ॥ ३३ ॥
अशिवं शिवनामानं श्मशानाऽऽवासतत्परम् । नृकरोटधरं चर्मवाससं सर्पभूषणम् ॥ ३४ ॥
भूतप्रेताऽनुगं त्रस्थिमालिनं जटिलं नटम् । एवंविधः कथं पूज्यः क्रतुषु स्याद्विनिन्दितः ॥ ३५ ॥
गच्छ त्वं तत्र यत्राऽस्ति पतिस्ते ह्यशिवङ्करः । इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं सती पतिविनिन्दनम् ॥ ३६ ॥
पिधाय कर्णौ हस्ताभ्यां मन्युना ज्वलिता सती । असाम्प्रतं वचस्तेऽद्य देवदेवं विनिन्दसि ॥ ३७ ॥
व्यर्थं तेऽतः क्रतुरयं विहतोऽस्तु पितस्तथा । भर्तुर्महेश्वरस्येत्थं निन्दकादेष देहकः ॥ ३८ ॥
सम्भूतो धारणाऽनर्हः संश्रुतं पतिनिन्दनम् । इत्युक्त्वाऽतिरुषा संवर्त्ताऽग्निधारणमास्थिता ॥ ३९ ॥
क्षणं प्रजज्वाल ततो देहस्तस्या महाग्निना । ज्वालया सहितो देहो भस्मशेषीभवत् क्षणात् ॥ ४० ॥
एवं सा भस्मतां प्राप्ता लक्ष्म्याः शापेन भार्गव । भर्तृनिन्दाश्रुतिवशात् क्रोधाग्नौ भस्मतां गता ॥
इति श्रुत्वाऽथ पप्रच्छ रामो भृगुकुलोद्वहः । कथारससमास्वादहर्षनिर्भरिताऽन्तरः ॥ ४२ ॥
भगवन् भवता प्रोक्ता गङ्गा शक्तिस्वरूपिणी । का सा शक्तिर्ब्रह्ममयी लोकानुद्धर्तुमिच्छया ॥ ४३ ॥
ब्रह्माद्यैः प्रार्थिता गङ्गारूपिणी समजायत । श्रोतुं मे तदतीवेच्छा वद मेऽनुग्रहाद्गुरो ॥ ४४ ॥

पूजा नहीं होती वह यज्ञ तो यज्ञ ही नहीं है॥ २९॥ सुसम्पन्न होने के बावजूद भी तुम्हारा यह यज्ञ उसी तरह नहीं शोभता है, जैसे सारे आभूषणों से सुसज्जित कोई नंगी सुन्दरी नहीं शोभती है॥ ३०॥ जैसे विद्याविहीन ब्राह्मण, पतिविहीना अबला नारी, वीरताविहीन राजा, पतवारविहीन डोंगी नाव॥ ३१॥ चन्द्रमा रहित रात तथा सूर्यरहित दिन जैसे नहीं शोभता उसी तरह हे पिताजी! शिवरहित आपका यह यज्ञ नहीं शोभता है॥ ३२॥ सती की यह बात सुनकर क्रोधान्ध दक्ष ने कहा—अरी अनार्ये! तुम्हें धिक्कार है। बेकार ही क्यों बकवास करती हो, अपने पति को क्यों नहीं देखती हो?॥ ३३॥ नाम तो उसका शिव है पर वह सम्पूर्ण अशिव ही है, श्मशान में रहता है। नर-खोपड़ी हाथ में, चमड़े का वस्त्र और साँप आभूषण है॥ ३४॥ भूत-प्रेत अनुचर, हाड़ की माला, माथे पर जटा, नटवेष—ऐसा निन्दनीय व्यक्ति यज्ञ में कैसे पूज्य हो सकता है?॥ ३५॥ जहाँ तुम्हारा अकल्याणकारी पति है, वहीं जाओ। सति पति की ये निन्दनीय बातें सुनकर॥ ३६॥ हाथों से कानों को ढँक कर क्रोध से जलती सती ने कहा—ये तुम्हारी सारी बातें अनुचित हैं। देवाधिदेव की निन्दा करते हो॥ ३७॥ हे पिताजी! तुम्हारा यह यज्ञानुष्ठान बिलकुल ही बेकार है। मेरे पति महेश्वर की यह निन्दा सुनकर यह देह॥ ३८॥ पति की निन्दा सुनने के बाद अब इस शरीर को धारण करना उचित नहीं है। यह कहकर संवर्ताग्नि के पास आकर खड़ी हो गई॥ ३९॥ एक क्षण उसे प्रज्वलित होने दिया, उसके बाद उसी ज्वाला के साथ अपनी देह को जलाकर राख कर दिया॥ ४०॥ हे भार्गव! इस तरह लक्ष्मी के शाप से गौरी जलकर राख हो गई। पति की निन्दा सुनने के कारण अपनी ही क्रोधाग्नि से जल मरी॥ ४१॥ सतीपात की कथारस का आस्वादन कर प्रसन्नता से परशुराम का हृदय झूम उठा। यह कथा सुनकर उन्होंने फिर पूछा॥ ४२॥ भगवन्! आपने कहा—गङ्गा शक्तिस्वरूपिणी है; वह ब्रह्ममयी शक्ति कौन है जिसने संसार का उद्धार करने की इच्छा से॥ ४३॥ वह शक्ति ब्रह्मा प्रभृति देवताओं की प्रार्थना से प्रभावित होकर गङ्गा के रूप में अवतीर्ण हुई? यह कथा सुनने की मेरी तीव्र इच्छा है। हे गुरुदेव! कृपया मुझे बतलायें॥ ४४॥ परशुराम के इस तरह

इति पृष्टो भार्गवेण दत्तात्रेयः समब्रवीत्। शृणु राम तथा शक्तिर्या गङ्गारूपिणी स्मृता॥ ४५॥
सा पुरोक्तैव त्रिपुरा कुमारी च त्रिरूपिका। या सम्भूता सैव शक्तिर्गङ्गा भूलोकपावनी॥ ४६॥
यां ब्रह्मप्रमुखाश्चाऽपि पूजयन्त्यतिभक्तितः। सा परब्रह्ममहिषी गङ्गा मोक्षात्मरूपिणी॥ ४७॥
या दृष्टा चाऽथ संस्पृष्टा पीताऽपि कणमात्रतः। पुनाति सर्वदुष्कृत्यं गङ्गा सर्वोत्तमोत्तमा॥ ४८॥
त्रिपुरा च त्रिमार्गस्था त्रिपथेति श्रुता पुनः। स्थूला त्रिपथगा जाता स्थूलदृष्ट्यनुकम्पया॥ ४९॥
तस्माद्गङ्गा रसमयी त्रिपुरैव समीरिता। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं भार्गव त्वया॥ ५०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥ १९४५॥



पूछने पर गुरु दत्तात्रेय ने कहा—हे परशुराम! गङ्गा के रूप में जो शक्ति विख्यात है, उसके सम्बन्ध में मैं कहता हूँ, सुनो॥ ४५॥ तीन रूप वाली कुमारी त्रिपुरा के सम्बन्ध में पहले ही मैं बतला चुका हूँ। वही महाशक्ति पतितपावनी गङ्गा के रूप में अवतीर्ण हुई है॥ ४६॥ जिस महाशक्ति को ब्रह्मा प्रभृति देवगण अत्यन्त भक्ति से पूजते हैं। वह परब्रह्म की पटरानी है। वही गङ्गा है, मोक्ष ही उसकी आत्मा का स्वरूप है॥ ४७॥ जिस सर्वोत्कृष्ट गङ्गा के दर्शन, स्पर्श एवं कण मात्र जलपान से मनुष्य के सारे दुष्कर्म पवित्र हो जाते हैं॥ ४८॥ तीन मार्ग में अवस्थित त्रिपथा नाम से यह विख्यात है। हम मानवों पर अनुकम्पा कर उन्होंने स्थूल रूप धारण किया। इस रूप में यह त्रिपथगा है जिन्हें हम इस स्थूल दृष्टि से भी देख सकते हैं॥ ४९॥ इसीलिए भगवती त्रिपुरा ही रसमयी गङ्गा हैं। हे परशुराम! तुम्हारे सारे प्रश्नों का यथोचित उत्तर मैं दे चुका हूँ॥ ५०॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १९४५॥



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

इति श्रुत्वा जामदग्न्यः कथामृतरसाऽऽप्लुतः। पुनर्गुरुपूर्वकथां प्रष्टुं समुपचक्रमे॥ १॥
श्रीगुरो करुणासिन्धो त्वत्प्रोक्तरससेवनात्। शोकमोहभयाः सर्वे निःशेषेण लयं गताः॥ २॥
न तृप्यामि मनाक् क्वापि कथासंश्रवणात्तव। एवं परास्ते मदने मनुष्येषु महीतले॥ ३॥
देवानां प्रियकृद्यागः किं निमित्तमवर्त्तत। कामेनापि कथं देवः शङ्करः खलु निर्जितः॥ ४॥
भस्मीभूतः कथं भूयो जीवितो वद कृत्स्नशः। एवं रामेणाऽनुयुक्तो दत्तात्रेयो गुरूत्तमः॥ ५॥
उपामन्त्र्य जामदग्न्यं प्राह प्रवदतां वरः। जामदग्न्य महाबुद्धे शृणु प्रश्नान् यथाक्रमात्॥ ६॥
इतिहासः पूर्वतनश्चित्रितोऽयं सुखोदयः। एवं विनिर्जिते कामे बन्धान्मुक्तो दिवस्पतिः॥ ७॥
निर्जरोभिः समेतोऽगात् त्रिविष्टपपुरं प्रति। उवास तत्र देवेन्द्रः पूर्ववद्देवतादिभिः॥ ८॥
यावद्वीरव्रतो राजा पृथिवीमधिसंस्थितः। तावद्देवपतिर्वीरव्रतेन कृतसंख्यकः॥ ९॥
ततः कालान्तरे शक्रः प्रायाद्देवगणैर्वृतः। सत्यलोकं तत्र विधिं दण्डवत्प्रणतो बुधैः॥ १०॥
तदालोक्य विधिः शक्रं सन्नतं सह दैवतैः। प्रोवाच कृपयाऽऽविष्टः स्निग्धगम्भीरया गिरा॥
विबुधेश समुत्तिष्ठ किं ते समभिवाञ्छितम्। वद द्रुतं तद्दिशामि येन त्वं सुखमाप्स्यसि॥ १२॥
इति श्रुत्वा विधिवचो विबुधेश्वर उत्थितः। बद्ध्वाऽञ्जलिं निगदितुं प्राक्रमद्विबुधैर्वृतः॥ १३॥
पितामह पुराऽस्माभिर्भवता प्रेरितैः किल। प्रसादिता महालक्ष्मीस्तया कामो महाबली॥ १४॥

*** विमला ***

यह सुनकर परशुराम कथारूपी अमृतरस में गोता खाने लगे। पुनः गुरु से पूर्व कथा सुनने का उपक्रम प्रारम्भ करने लगे॥ १॥ हे गुरुदेव! आप करुणा के सागर हैं। आपके द्वारा कथित कथारस के सेवन से हमारा शोक, मोह और भय बिलकुल ही समाप्त हो गया॥ २॥ आपके कथाश्रवण से मेरा मन थोड़ा भी तृप्त नहीं हुआ। इस तरह काम की पराजय के बाद धरती पर मनुष्यों के बीच॥ ३॥ देवताओं का प्रिय यज्ञ कैसे प्रारम्भ हुआ? और काम ने भगवान् शङ्कर को कैसे पराजित किया?॥ ४॥ फिर जीवित काम कैसे जलकर राख हुआ? राम की यह पृच्छा सुनकर श्रेष्ठ गुरु दत्तात्रेय ने॥ ५॥ जामदग्न्य को बुलाकर श्रेष्ठ प्रवक्ता गुरु दत्तात्रेय ने कहा—हे बुद्धिमान् परशुराम! अपने प्रश्नों का उत्तर क्रमशः सुनो॥ ६॥ पूर्वतन इतिहास का यह चित्रण सुखोदय है। इस तरह काम की पराजय और देवराज इन्द्र की बन्धनमुक्ति॥ ७॥ फिर देवताओं के साथ इसने देवपुरी में निवास किया। वहाँ देवराज इन्द्र देवताओं के साथ पहले की ही तरह॥ ८॥ धरती पर जब तक वीरव्रत राजा निवास करते हैं, तब तक देवराज वीरव्रत के साथ युद्ध नहीं करेंगे॥ ९॥ कुछ समय बीत जाने पर देवराज इन्द्र देवताओं के साथ सत्यलोक पहुँचे। वहाँ उन्होंने देवताओं के साथ ब्रह्माजी को प्रणाम किया॥ १०॥ देवताओं के साथ इन्द्र को प्रणत देखकर ब्रह्मा ने कृपापूर्वक स्निग्ध पर गम्भीर वाणी में कहा॥ ११॥ हे देवेन्द्र! उठो। तुम क्या चाहते हो? शीघ्र बोलो, मैं तुम्हें मनचाही वस्तु दूँगा, जिसे पाकर तुम सुखी बनोगे॥ १२॥ विधाता की बातें सुनकर देवताओं के साथ देवराज इन्द्र उठ खड़े हुए और देवताओं से घिरे उन्होंने हाथ जोड़कर कहना शुरू किया॥ १३॥ हे पितामह! कुछ दिन पूर्व आपसे प्रेरित होकर हमने महालक्ष्मी

अस्मदर्थस्य संसिद्ध्यै प्रेरितस्तेन वै सह । वीरव्रतात् पराभूतो बद्धो देवगणैः सह ॥ १५ ॥
कथञ्चिद्गुरुवाक्येन मुक्तो धर्मं विजानता । अथ तत्सखिभावेन कालोऽयमतिवाहितः ॥ १६ ॥
नाऽद्यापि मर्त्या भूलोके यजन्ति विबुधान् क्वचित् । इति विज्ञापनार्थाय देवैरत्र समागतः ॥
अग्रे यथा भवानाह तथा वर्त्ते सुरैः सह । इति श्रुत्वा शक्रवचः स्रष्टा ध्यात्वा क्षणं ततः ॥ १८ ॥
प्राह ब्रह्मा शतमखं देवेश शृण्वितीरयन् । न सम्प्रति मनुष्या वो यष्टुमर्हन्ति सर्वथा ॥ १९ ॥
निष्कामत्वात्तथाप्येकमुपायं शृणु वच्मि ते । पर्जन्यानामधिपतिं त्वां करोम्यथ देवप ॥ २० ॥
यस्त्वां यजेत भूलोके तत्र त्वमभिवर्षय । अद्य यावत्स्वतन्त्रास्ते मेघाः पर्जन्यकारकाः ॥ २१ ॥
मदाज्ञयैव कालेषु वर्षन्तः सर्वतो दिशम् । ते सर्वे त्वदधीनाः स्युरद्यप्रभृति देवप ॥ २२ ॥
एवं पर्जन्यराजाऽभूदिन्द्रस्तेन च हेतुना । जनाः पर्जन्यकामा ये तेषां याज्य अभूद्वृषा ॥ २३ ॥
एवं देवान् यजन्ति स्म क्वचिन्मर्त्याः कृषीवलाः । एवं तदा भूमिलोके यागः प्रावर्तताऽग्रतः ॥
कामो यथा महादेवमजयत्तद्वदामि ते । एवं लक्ष्मीभवान्योश्च समाधाने तदुत्तरम् ॥ २५ ॥
कामो मातरमाचष्ट कृताञ्जलिपुटः स्थितः । मातर्मे ब्रूहि येनाऽहं शिवं जेताऽस्मि संयुगे ॥ २६ ॥
तमुपायं न चेद्देहं विन्यसे तव सम्मुखे । मानिनां मानहानिर्वै मरणादतिरिच्यते ॥ २७ ॥
अद्य यावद्विजानन्ति लोका युद्धेऽमृतं हि माम् । प्रायस्तथैवाऽस्तु तच्च न मे जीवनमुत्तमम् ॥
निशम्यैवं कामवचो ध्यात्वा लक्ष्मीः क्षणं ततः । त्रिपुरायै नमस्कृत्य कामं प्रेक्ष्याऽब्रवीत्तदा ॥

की आराधना की। प्रसन्न होकर उन्होंने काम का उत्पादन किया॥ १४॥ हमारे कार्य की सिद्धि के लिए उनसे प्रेरित होकर काम युद्ध के मैदान में महाराज वीरव्रत से पराजित हुआ और हम सब बाँध लिये गये॥ १५॥ धर्मज्ञ गुरु के निर्देश पर किसी तरह हम सब बन्धनमुक्त हुए और वीरव्रत के साथ मैत्री भाव से समय बिता रहे हैं॥ १६॥ आज तक धरती पर मनुष्य देवताओं के लिए कोई यज्ञ नहीं करते। बस, यही सूचित करने के लिए देवगण यहाँ पधारे हैं॥ १७॥ आगे आपका जो आदेश होगा उसका अनुपालन हम देवगण करेंगे। इन्द्र की यह बात सुनकर एक क्षण के लिए विधाता ध्यानमग्न होकर॥ १८॥ फिर ब्रह्मा ने शतमख इन्द्र से कहा—हे देवेन्द्र! मेरी बातें सुनो। अभी मनुष्य देवनिमित्तक यज्ञ किसी भी स्थिति में नहीं करेंगे॥ १९॥ क्योंकि वे सभी मानव निष्काम हैं। फिर भी एक उपाय है जो मैं तुम्हें बतलाता हूँ। ओ देवराज! मैं तुम्हें वर्षा अर्थात् मेघ का अधिपति बना देता हूँ॥ २०॥ धरती पर जहाँ लोग तुम्हारे लिए यज्ञ करेंगे वहाँ तुम मेघ बरसाओ और आज से जहाँ चाहो वहाँ मेघ बरसाओ, इसमें तुम स्वतन्त्र हो॥ २१॥ मेरी आज्ञा से ही यथावसर तुम सर्वत्र वर्षा करो। हे देवराज! आज से इसी वर्षा के कारण तुम्हारी अधीनता समस्त मानव कबूल करेंगें॥ २२॥ इसी तरह इन्द्र मेघ के राजा बने और इसी मेघ की कामना से लोग यज्ञ करने लगे॥ २३॥ इस तरह मेघ की कामना से कृषकगण देव-निमित्तक यज्ञ करने लगे। उसी दिन से धरती पर यज्ञ करने की प्रथा प्रचलित हुई॥ २४॥ इस तरह लक्ष्मी और भवानी का झगड़ा शान्त होने के बाद काम ने महादेव पर कैसे विजय प्राप्त की, यह मैं तुम्हें बतलाता हूँ॥ २५॥ अञ्जलि बाँधकर माता लक्ष्मी के सामने बैठकर काम ने अति विनम्र होकर कहा—माँ! मैं युद्ध में शङ्कर पर विजय कैसे प्राप्त करूँगा? बतलाओ॥ २६॥ इसका उपाय मुझे बतलाओ, अन्यथा मैं तुम्हारे सामने ही इस देह को विनष्ट कर दूँगा। क्योंकि मानियों के मान की हानि मृत्यु से भी अधिक दुःखद है॥ २७॥ आज तक लोग यही जानते हैं कि युद्ध में काम अमृत है। अपमानित जीवन की अपेक्षा यह मरण ही उत्तम है॥ २८॥ काम की यह बात सुनकर क्षणभर के लिए लक्ष्मी ने ध्यान कर भगवती त्रिपुरा को नमस्कार किया और काम को देखकर कहा॥ २९॥

काम तेऽहं ब्रवीम्यद्य रहस्यं सर्वतोऽधिकम्। येन सिद्धिस्तव भवेद्युद्धे सर्वांश्च जेष्यसि॥ ३०॥
नैतत्त्वया क्वचिद्वाच्यं प्रमादेनाऽन्यथाऽपि वा। शिवादीनामपि ननु माहात्म्यं यद्वशादभूत्॥
तस्याः श्रीत्रिपुरादेव्याः शीघ्रप्रीतिकरं महत्। यन्मयाऽऽसादितं पूर्वं कामेश्वर्याः सुसेवनात्॥
तत्ते ब्रवीमि श्रीदेव्या नामाऽष्टशतमुत्तमम्। संस्पृश्य विरजां शीघ्रमेहि मन्मथ मा चिरम्॥ ३३॥
इति श्रुत्वा रमावाक्यं हर्षसंफुल्ललोचनः। संस्पृश्य विरजातोयं शुचिर्नत्वा ह्युपस्थितः॥ ३४॥
तावल्लक्ष्मीं महादेवीं क्रमेणाऽभ्यर्च्य भक्तितः। संस्थापिते रत्नपीठे कामद्रव्योपचारकैः॥ ३५॥
अथ कामं समाहूय दापयित्वाऽञ्जलिं क्रमात्। त्रिपुरायाः प्रसादश्च संयोज्य तदनन्तरम्॥ ३६॥
नाम्नामष्टोत्तरशतं प्रोवाचाऽस्मै रमा तदा। श्रीदेव्याः प्राह यत् स्थूलं वपुस्तदपि सुन्दरम्॥ ३७॥
एवं सम्प्राप्य कामोऽपि मातरं दण्डवन्नतः। आशीर्भिर्योजितो मात्रा प्रबद्धकरसम्पुटः॥ ३८॥
मातरं प्राह मदनः स्वं जानन् कृतकृत्यकम्। मातर्ममाऽऽज्ञां वितर व्रजेऽहं तां प्रसादितुम्॥ ३९॥
त्रिपुरां परमेशानीं त्रिमूर्त्तीनाञ्च संश्रयाम्। इति प्रार्थ्य तयाऽऽज्ञप्तो नमस्कृत्य च मातरम्॥ ४०॥
ध्यायन् श्रीत्रिपुरापादपद्मं हृदि सुभक्तितः। जगाम मन्दरगिरिकन्दरे सुरमन्दिरे॥ ४१॥
तत्र निर्मलसुस्वादुसलिलाऽऽस्रावकूलके। कदम्बतरुमूले वै निषसाद शुभे स्थले॥ ४२॥
स्नात्वा तत्र समासीनो ध्यायन्मूर्तिं हृदम्बुजे। रमाप्रोक्तक्रमेणैव मानसैरुपचारकैः॥ ४३॥
अभ्यर्च्य त्रिपुरामम्बां महाविभवविस्तरैः। अष्टोत्तरशतं नाम्नां जजाप परभक्तितः॥ ४४॥
नामाऽष्टशतकाऽऽवृत्तिं प्रत्यहं तस्य कुर्वतः। ध्यानतत्परचित्तस्य प्रसन्ना श्रीः पराम्बिका॥

काम! आज मैं तुम्हें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहस्य बतलाती हूँ, जिसकी सिद्धि के बाद युद्ध में तुम सबको जीत सकते हो॥ ३०॥ यह बात तुम किसी से नहीं बतलाना, भूल से भी नहीं। इसी रहस्य के कारण शिवादि देवों की भी महत्ता है॥ ३१॥ उस त्रिपुरा का यह रहस्य उसे शीघ्र ही अति प्रसन्नकारक है। हे काम! उस परमेश्वरी की सेवा से जिसे मैंने पहले प्राप्त किया है॥ ३२॥ हे काम! यह श्रीदेवी के उत्कृष्ट एक सौ आठ नाम हैं। इसका स्पर्श कर शीघ्र ही व्यक्ति विरजा अर्थात् रागरहित और पवित्र बन जाता है॥ ३३॥ लक्ष्मी की यह बात सुनकर खुशी के मारे काम की आँखें खिल उठीं। विरजा जल का स्पर्श कर पवित्र होकर भगवती को प्रणाम कर उपस्थित हो गया॥ ३४॥ तब तक लक्ष्मी ने क्रम से भक्तिपूर्वक महादेवी की पूजा कर काम के लिए पूजा की सारी सामग्री रत्नपीठ पर जुटाकर॥ ३५॥ काम को बुलाकर क्रम से अञ्जलि दिलवाकर त्रिपुरा के प्रसाद का संयोजन कर, उसके बाद॥ ३६॥ रमा ने उसके लिए त्रिपुरा का १०८ नाम सुना दिया और कहा—भगवती श्रीदेवी का स्थूल शरीर उससे भी अधिक सुन्दर है॥ ३७॥ इस तरह इस रहस्य को पाकर काम ने अपनी माता को दण्डवत् प्रणाम किया। माँ का आशीर्वाद पाकर दोनों हाथ जोड़कर॥ ३८॥ माता लक्ष्मी से कहा—मैं उन्हें जानकर कृतकृत्य हुआ। माँ! अब मुझे आज्ञा दें, मैं उन्हें प्रसन्न करने जा रहा हूँ॥ ३९॥ उस त्रिमूर्ति त्रिपुरा के आश्रय में मैं जाता हूँ। इस तरह उनकी प्रार्थना कर, उनसे आदेश लेकर तथा उन्हें प्रणाम कर॥ ४०॥ हृदय में भक्तिपूर्वक त्रिपुरा का ध्यान करते हुए मन्दराचल की कन्दरा में सुरमन्दिर की ओर प्रस्थान किया॥ ४१॥ वहाँ सुस्वादु एवं निर्मल जल बहाने वाली नदी के किनारे कदम्ब पेड़ की जड़ में शुभस्थान में बैठ गया॥ ४२॥ स्नान कर हृदय में त्रिपुरा की मूर्ति का ध्यान करते हुए लक्ष्मी के द्वारा बतलाये गये क्रम से ही मानसोपचार से॥ ४३॥ महाविभव विस्तार से त्रिपुराम्बा की पूजा कर भक्तिपूर्वक अष्टोत्तर शत नाम का जप शुरू कर दिया॥ ४४॥ ध्यानतत्पर चित्त से एक सौ आठ बार अष्टोत्तर शत नाम का जप प्रतिदिन काम करने लगा। इससे पराम्बिका उस पर प्रसन्न हो गई॥ ४५॥ उस पराम्बा ने

अथ स्वप्ने मन्मथस्य रमारूपेण सा परा। आगत्य प्राह मदनं मधुनिष्यन्दया गिरा॥ ४६॥
वत्स काम किं बहुधा नाममात्रप्रपाठतः। अनवाप्यैव विद्यां मे कथं ते स्यात् समीहितम्॥ ४७॥
इति श्रुत्वा प्रणम्याऽथ कामः प्राह कृताञ्जलिः। मातर्विद्यां न जानामि भवत्या न पुरोदिता॥
कृपया तां ब्रूहि मह्यं प्रपन्नाय कृपामयि। अथ सा परमेशानी प्राह कामं दयाऽन्विता॥ ४९॥
वत्स नाऽद्यापि विदिता सा त्वयाऽन्ध इवोडुपम्। नामस्तोत्रे सुनिहिता गुप्ता पञ्चदशात्मिका॥
नवधा संस्थिता तत्र द्विषट्नामसमाश्रया। आद्यमाद्येव सौत्र्येके पञ्चमं वेद दिङ्गनौ॥ ५१॥
षष्ठं रसाङ्कयोरन्त्यमश्वे सूर्ये च संस्थितम्। द्वितीययुक्तमेतावत्तृतीयश्च चतुर्थकम्॥ ५२॥
द्वितीये तत्परे स्थाने भूतरुद्रतिथौ स्थितम्। षष्ठसप्तमतुर्यानां योगमष्टमसंयुतम्॥ ५३॥
एतन्महाकारणं वै त्रिपुरारूपमद्भुतम्। इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी क्षणेन परमेश्वरी॥ ५४॥
अथ कामो नेत्रयुगमुन्मील्य समचेष्टत। न तां तत्र बहिर्दृष्ट्वा विमनाः समपद्यत॥ ५५॥
नूनं मया स्वप्न एष दृष्टः परमशोभनः। न मे निद्रा समायाति ध्यायतो जगदम्बिकाम्॥ ५६॥
एष मे याति षष्ठो वै मासः साधयतोऽन्वहम्। न कदाचिदगान्निद्रा रात्रावपि समाहितः॥ ५७॥
इति सञ्चिन्त्य भूयोऽपि स्वप्नदृष्टं विभावयत्। विभाव्यमानस्य तदा नाम स्तोत्रादुपस्थिता॥
विद्या पञ्चदशार्णा या तस्यां संशयितोऽभवत्। स्वप्नत्वेन श्रमं मत्वा तदा प्राहाऽशरीरिणी॥
काम नाऽत्र संशयितुमर्हसीति स्फुटं वचः। नाभसं काम आकर्ण्य विमृश्याऽथ पुनः पुनः॥ ६०॥

लक्ष्मी के रूप में काम के सपने में आकर बड़ी मीठी आवाज में मदन से कहा॥ ४६॥ बेटे! लगातार नाम के पाठ मात्र से भला क्या लाभ? बिना श्रीविद्या को प्राप्त किये तुम्हें सिद्धि कैसे मिलेगी?॥ ४७॥ यह सुनकर उन्हें प्रणाम कर कृताञ्जलि होकर काम ने कहा—माँ! मैं तो इस विद्या को जानता ही नहीं हूँ। आपने भी तो पहले कभी बतलाया ही नहीं॥ ४८॥ हे दयामयि! दया कर मुझ प्रपन्न को वह विद्या बतला दें। वह परमेश्वरी ने दया से भरकर काम से कहा॥ ४९॥ अन्धे के लिए आइने या डोंगी नाव की तरह तुमने नामस्तोत्र का जप तो किया, किन्तु उसमें सुगुम्फित गुप्त पञ्चदशात्मिका विद्या को आज तक नहीं जाना॥ ५०॥ वहाँ बारह नामों का प्रश्रय प्राप्त कर नौ प्रकार की वह विद्या उपस्थित है, पहली को पहले के ही साथ सूत्र रूप में, पञ्चम को दिशा और गन रूप में जानो॥ ५१॥ छठे को रस और अंक में, अन्त्य को अश्व और सूर्य में संस्थित जानो। तृतीय और चतुर्थ को द्वितीय युक्त जानो॥ ५२॥ दूसरे को उससे अगले स्थान में चान्द्रमास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी एवं एकादशी तिथि में जानो और उसकी एक चौथाई षष्ठ, सप्तम और अष्टम का योग मानो॥ ५३॥ इतना ही महाकारण भगवती त्रिपुरा का अद्भुत स्वरूप है। इतना कह कर वह परमेश्वरी एक क्षत्र में ही अन्तर्हिता अर्थात् आँखों से ओझल हो गई॥ ५४॥ इसके बाद काम ने दोनों आँखें खोलकर कुछ समझने की चेष्टा की। पर वहाँ उसे बाहर कुछ नहीं दीख पड़ा और अन्यमनस्क हो गया॥ ५५॥ निश्चय ही मैंने यह परम सुन्दर दिव्य स्वप्न ही देखा है। जगदम्बा का ध्यान करते हुए मेरी आँखों में नींद तो दूर भाग गई है॥ ५६॥ इस तरह दिन-रात अपने लक्ष्य साधन में लीन रहने के कारण रात में भी मुझे नींद नहीं आती थी॥ ५७॥ इस तरह सोचकर बार-बार स्वप्नदृष्ट पदार्थ का प्रत्यक्ष भान होने लगा। स्तोत्र से नाम का उसे स्पष्ट बोध होने लगा॥ ५८॥ उस पञ्चदशार्णा महाविद्या के प्रति उसे सन्देह होने लगा। इस तरह जब उसने अपने श्रम को स्वप्नगत माना तब उस अशरीरिणी ने कहा॥ ५९॥ तब काम ने उस बिना शरीर वाली महाशक्ति की आकाशवाणी सुनी। हे काम! इसमें तुम संशय मत करो। इस स्पष्ट आवाज को सुनकर काम बार-बार सोचने लगा॥ ६०॥ इसका अन्त होते नहीं देख काम ने

नाऽन्तं समाययौ तेन सस्मार जननीं रमाम्। अथ कामस्मृता लक्ष्मीः सन्निधानं समेत्य सा॥
काम किं ते संस्मृताऽस्मीत्येवमाह पुरःस्थिता। दृष्ट्वा प्राप्तां रमां कामः प्रणम्याऽऽरचिताऽञ्जलिः॥
स्वप्नवृत्तं नभोवाणीं प्राह मातुर्यथातथम्। श्रुत्वाऽथवा चिरं ध्यात्वा प्रसन्नवदनाऽब्रवीत्॥ ६३॥
वत्स काम धन्यतमस्त्वं ते सिद्धमभीप्सितम्। त्रिपुरैव हि ते स्वप्ने प्रसन्ना प्राह सा परा॥ ६४॥
सन्देहं जहि तत्र त्वं यत्तयोक्तं हि तत्तथा। भूयस्तां साधयेत्युक्त्वा साऽन्तर्धानं ययौ क्षणात्॥ ६५॥
अथ कामश्च तां विद्यां जजापैकाग्रमानसः। दिव्यं वर्षत्रयं पश्चादाविर्भूता महेश्वरी॥ ६६॥
अपश्यन्मन्मथं तत्र संहृताऽक्षगणं दृढम्। निश्चेष्टं निर्विकारश्च समानप्राणनिर्गमम्॥ ६७॥
तेजोराशिं समालोक्य कृपयाऽऽसाद्य वै तनुम्। रमोपदिष्टध्यानाऽनुरूपमूर्तिसमुज्ज्वला॥ ६८॥
प्राह वत्स काम किं ते वाञ्छितं तत्प्रतीच्छ मे। इति वाक्यं समाकर्ण्य चक्षुरुन्मील्य चाऽग्रतः॥
ददर्श देवीं त्रिपुरां ध्यातरूपां मनोहराम्। महातेजोमयीश्चाऽथ हर्षाब्धौ स न्यमज्जत॥ ७०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २०१५॥

अपनी माता रमा का स्मरण किया। काम के स्मरण करते ही महालक्ष्मी वहाँ उपस्थित हो गई॥ ६१॥ आगे खड़ी लक्ष्मी ने पूछा—काम! तुमने मुझे स्मरण किया है? अपनी माता को सामने खड़ी देखकर काम ने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर॥ ६२॥ अपना स्वप्नवृत्तान्त तथा आकाशवाणी के सम्बन्ध में बतलाया। यह सुनकर कुछ देर ध्यान कर प्रसन्नवदना लक्ष्मी ने कहा॥ ६३॥ वत्स काम! तुम धन्य हो, तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हुआ। त्रिपुरा ने ही तुम्हें स्वप्न में सब कुछ बतलाया है॥ ६४॥ तुम संशय मत करो। उसने जैसा कहा वैसा ही करो, तुम साधना करो। ऐसा कहकर वह तिरोहित हो गई॥ ६५॥ अब काम ने उस महाविद्या को एकाग्र मन से जपना शुरू किया। तीन दिव्य वर्ष व्यतीत हो जाने पर त्रिपुरा स्वयं प्रकट हुई॥ ६६॥ वहाँ उन्होंने काम को जो अपनी समस्त इन्द्रियों को दृढ़तापूर्वक संहृत कर निश्चेष्ट, निर्विकार, समान प्राण निर्गम की स्थिति में था, देखा॥ ६७॥ काम पर कृपा कर भगवती त्रिपुरा उसी रूप में प्रकट हुई, जिस रूप का ध्यान करने के लिए रमा ने काम को सिखाया था॥ ६८॥ हे वत्स काम! तुम्हारी क्या अभिलाषा है बोलो, मैं वही दूँगी। यह बात सुनकर आँखें खोलकर काम ने आगे देखा॥ ६९॥ जैसा वह ध्यान करता था उसी रूप में मनोहर शरीर वाली त्रिपुरा को देखा। उस महातेजोमयी रूप को देखकर काम प्रसन्नता के सागर में गोता लगाने लगा॥ ७०॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०१५॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

दृष्ट्वैवं त्रिपुरां देवीं कुरुविन्दसमप्रभाम् । मणिप्रवेकप्रत्युप्तचारुकोटिरशोभिताम्॥ १ ॥
कोटीरप्रान्तविलसद्बालपीयूषदीधितिम् । ललन्तिकारत्नकान्तिसिन्दुरद्विगुणारुणाम्॥ २ ॥
विकसन्नीलकुमुदसुहृन्नेत्रत्रयोज्ज्वलाम् । मणिताटङ्कयुगलसङ्क्रान्ताऽपाङ्गसम्पदम्॥ ३ ॥
नासामुक्ताफलोष्ठाभापाटलीभूतदिक्तटाम् । दन्तपङ्क्तिपराभूतकुन्दकोरकडम्बराम्॥ ४ ॥
ग्रीवाब्जशिखरोद्भूतमुखाम्बुजविचित्रिताम् । मृदुबाहुलताप्रान्तकोरकाभाङ्गुलावलिम्॥ ५ ॥
नखेन्दुकान्तिशबलकङ्कणोर्मिमणीगणाम् । मुक्ताहारमृणालोद्यत्कुचकञ्जसुकुड्मलाम्॥ ६ ॥
नाभीह्लदकूलक्लृप्तसोपानामवलित्रयाम् । हीरहारविसाऽऽसक्तलोमपङ्क्त्यात्मशैवलाम्॥
कौसुम्भांशुककूर्पासाऽन्तरसंशोभिभूषणाम् । कटिव्योममध्यमासद्रशनामणितारकाम्॥ ८ ॥
पाशाङ्कुशपुष्पबाणपुण्ड्रचापाऽऽयुधाऽन्विताम् । गुल्फाऽऽसक्तांशुकप्रान्तप्रोतरत्नगणोज्ज्वलाम्॥
रत्ननूपुरहंसादिपादभूषणभूषिताम् । काश्मीरशशिकस्तूरीसमालेपसुवासिताम्॥ १० ॥
कर्णोत्तंसितकादम्बप्रसूनाऽमोदमिश्रिताम् । विकसत्पद्मबकुलमालतीहारधारिणीम्॥ ११ ॥
रमावाणीवीज्यमानबालव्यजनशोभिनीम् । आनन्दसान्द्राऽन्तराऽङ्गो हर्षाऽश्रुभरितेक्षणः॥

*** विमला ***

इस तरह लालमणि की दिव्य प्रभा की तरह कान्तिवाली भगवती त्रिपुरा को, जिनके माथे पर अत्यन्त श्रेष्ठ मणि जड़ित मुकुट था, देखा॥ १॥ मुकुट की झालर बालचन्द्र की छटा से सुशोभित थी। सिन्दूरी लाल रत्नों की लम्बी माला गले में लटक रही थी॥ २॥ विकसित नीलकमल की तरह सुन्दर एवं चमकती उनकी तीनों आँखें थीं। उनकी आँखों की कोर मणि-निर्मित कर्णबाली से प्रतिबिम्बित थी॥ ३॥ उनकी नाक मुक्ताफल की तरह आरक्त होंठों की आभा से आभासित थी। मुखमण्डल की आभा से दिशाएँ गुलाबी बन गई थीं। अनखिले सफेद मोतियों के फूल के सौन्दर्य को इनकी दन्तपक्ति पराजित कर रही थी॥ ४॥ गलारूपी कमलनाल पर खिले कमल-फूल की तरह इनका मुखमण्डल सुशोभित था। कोमल बाहुलता के शीर्ष पर अविकसित फूल की तरह उनकी अँगुलियाँ थीं॥ ५॥ नखचन्द्र की कान्ति और कंकण में जटित रत्न-समूह की कान्ति मिलकर चित्र-विचित्र शोभा बना रही थी। उनके वक्षःस्थल की शोभा मुक्ताहार बढ़ा रही थी॥ ६॥ नाभिकुण्ड तक पहुँचने के लिए पेट पर त्रिवलियों की सीढ़ी बनी थी। उस कुण्ड का बिसतन्तु हीरे की हार थी और उनकी रोमावलि ही शैवाल थे॥ ७॥ उनकी देह पर केशरिया रंग का दुपट्टा था और उनकी चोली के ऊपर अनेक सुन्दर आभूषण शोभ रहे थे। कमर में रत्नजटित करधनी शोभ रही थी॥ ८॥ हाथों में पाश, अंकुश, पुष्प, बाण, कमल, धनुष एवं अनेक आयुध थे। टखने पर जो रेशमी वस्त्र थे उनके किनारे अनेक बहुमूल्य रत्न जड़े थे॥ ९॥ उनके पैर भी अनेक आभूषणों से आभूषित थे। सुन्दर नूपुर पैरों में शोभ रहे थे। केसर और कस्तूरी के लेप से शरीर सुगन्धित हो रहा था॥ १०॥ कर्णभरण कदम्ब के फूल की सुगन्ध से महक रहे थे। विकसित कमल, हरसिंगार और मालती-फूल की माला भी गले में सुशोभित थी॥ ११॥ लक्ष्मी और सरस्वती पंखें झल रही थीं। उन्हें देखकर सघन आनन्द से हृदय भर गया और आँखों में खुशी के आँसू

रोमाञ्चपीवरतनुर्दण्डवत्प्रणतो भुवि । आनन्दसिन्धुनि मग्नो नेक्षितुं न च भाषितुम्॥ १३॥
उत्थातुं वा समर्थोऽभूत्तदा वीक्ष्य पराम्बिकाम् । एवंविधं मन्मथं तं दृष्ट्वा श्रीत्रिपुराऽम्बिका॥
उत्तिष्ठ काम सम्पश्य प्राप्तां मां तव भावतः । प्रसन्नां वरदां ब्रूहि वाञ्छितं किं ददामि ते॥
श्रुत्वा श्रीत्रिपुरावाक्यमुत्थाय प्राञ्जलिः स्थितः । हर्षगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे॥ १६॥

कलये करुणापाङ्गी कारणमकूर्त्यैककारणीभूतम्।
कामेश्वरीं न हीतरदेवं कञ्चित् कदाचिदभियाचे॥ १७॥
अभियाचे परमां तामङ्कुशपाशप्रसूनचापकराम्।
अलमलमनुत्तराम्बाचरणादन्येन देवताऽऽख्येन॥ १८॥
गृह्यन्ते त्रिपुरायाः करुणकल्लोलवासितकटाक्षाः।
सर्वोपरि लोकेऽस्मिन् पश्याम्यम्बामिहैकरूपां ताम्॥ १९॥
ईप्सितमनीप्सितं वा ममाऽस्तु सततं त्रिमूर्तिजनयित्र्याः।
ईहाशून्याया नो करोमि शरणं ततोऽन्यदेवगणम्॥ २०॥
ललतु हृदि सैव देवी मम नित्यं या महेशसंसेव्या।
ललिता राज्ञी मान्या कदापि सेव्याऽस्तु देवता माऽन्या॥ २१॥
हर्षयतु मामजस्रं हरिहरमुख्यैः समाश्रिताऽङ्घ्रियुगा।
या च हयारूढाख्या सेनानेत्री नमामि तां ब्रूयाम्॥ २२॥
रक्षतु मामिक्षुधनुःपुष्पशराढ्यकृपेक्षया सततम्।
कामेश्वराऽभिरामा नाऽन्या ममेश्वरी भवति॥ २३॥

छलक आये॥ १२॥ रोमाञ्च होने के कारण देह मोटी हो गई। धरती पर गिरकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। वह पूरी तरह आनन्द-सागर में डूबकर न तो कुछ देख सकता था और न बोल ही सकता था॥ १३॥ पराम्बिका को देखकर बड़ी मुश्किल से वह उठ खड़ा हुआ। इस तरह विह्वल स्थिति में काम को देखकर पराम्बिका ने कहा॥ १४॥ हे काम! उठो, जैसी तुमने भावना की उसी रूप में मुझे देखो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर देने आयी हूँ। अपना वांछित कहो—मैं तुम्हें दूँगी॥ १५॥ भगवती त्रिपुरा की बात सुनकर उठकर अञ्जलिबद्ध होकर हर्षगद्गद वाणी से स्तुति करना काम ने प्रारम्भ किया॥ १६॥ हे करुणामयि! अपराध क्षमा करो, तुम कारण की मूर्ति हो, कारणीभूता हो। हे कामेश्वरी! आपके सिवा कुछ भी कभी भी किसी अन्य देवता से मैं याचना नहीं करता॥ १७॥ मेरी याचना उसी परम शक्ति से है जिसके हाथों में अंकुश, पाश, पुष्प और चाप है। इस पराम्बा से भिन्न अन्य देवता नामधारी से याचना तो बिलकुल ही व्यर्थ है॥ १८॥ करुणापूर्ण कटाक्ष की ही शरण ग्रहण करता हूँ, जो इस संसार में सर्वोपरि है। यहाँ मैं उन्हीं का एक मात्र रूप देखता हूँ॥ १९॥ मेरा ईप्सित हो या अनीप्सित मैं हमेशा ब्रह्मा, विष्णु और महेश की जननी की शरण में कामना-शून्य होकर समर्पित हूँ। इसके बाद ही कोई अन्य देवगण हैं॥ २०॥ भगवान् शिव से संसेवित बड़ी देवी मेरे हृदय में निवास करती हैं। वही ललिता देवी मेरे लिए मान्या हैं, सेव्या हैं, कोई दूसरा नहीं॥ २१॥ हरिहर प्रमुख देवताओं से सुसेवित पादपद्मों वाली वह देवी मुझ पर प्रसन्न हों जो घोड़े पर सवार होकर सेना का नेतृत्व करती है। उन्हें मैं पुनः प्रणाम करता हूँ॥ २२॥ इषु, धनुष, पुष्प, शर प्रभृति सतत आयुध धारण करने वाली जगदम्बा, कामेश्वराभिरामा ही मेरी परमेश्वरी है और कोई दूसरी नहीं॥ २३॥ वह महेशानी हमेशा हमारे हृदय में अपने चरणकमलों की दृढभक्ति उत्पन्न करें। अम्बा कामाक्षी के अतिरिक्त किसी अन्य

अङ्कुरयतु हृदि भक्तिं निजपदयुगले सदा महेशानी।
अम्बा कामाक्षी नैवाऽन्यस्यां ममाऽस्तु तरलेशः॥ २४॥
सम्मनुते मम हृदयं वस्तुं तस्याः पदाब्जयोः सततम्।
सर्वज्ञाया देव्या घटयतु तन्मे महेश्वरी मनसः॥ २५॥

इति संस्तुत्य मदनो देवीं तां त्रिपुराम्बिकाम्। ननाम दण्डवद्भूयो भक्तिनिर्भरमानसः॥ २६॥
अथ सा त्रिपुरेशानी प्राह मञ्जुलया गिरा। वत्सोत्तिष्ठ प्रसन्नाऽस्मि वरं ब्रूह्यभिवाञ्छितम्॥ २७॥
ददामि दुर्लभमपि नाऽलभ्यं तव विद्यते। श्रुत्वैवं लोकजननीवाक्यमुत्थाय मन्मथः॥ २८॥
श्रीदेवीदर्शनादेव नष्टाऽविद्यातमोगणः। उपलभ्य स्वात्मशक्तिमयीं त्रिपुरसुन्दरीम्॥ २९॥
आप्तकामः प्रसन्नाऽऽत्मा प्राह देवीं कृताञ्जलिः। त्रिपुराऽम्ब त्वत्पदाब्जदर्शनाऽमृतसेवनात्॥
शान्ततृष्णोऽस्मि किं याचे नाऽलब्धमिह किञ्चन। पीताऽमृतस्य क्षारोदपानवद्वरयाचनम्॥
पश्यतस्त्वां मम भवेदुपहासाय केवलम्। मातर्यदाज्ञापयसि तन्मूर्ध्नाऽभिवहाम्यहम्॥ ३२॥
इति श्रुत्वा परा प्रोचे दयमाना स्मिताऽऽनना। वत्स काम न ते किञ्चित् प्राप्तव्यमवशिष्यते॥
विज्ञातमत्स्वरूपस्य ब्रह्मत्वमपि वै तृणम्। तथापि साभिप्रायेण यतस्त्वं मामुपस्थितः॥ ३४॥
न तन्मोघं भवेज्जातु न कृतं हीयते यतः। तवाऽजेयो न भूम्यां वा पाताले दिवि वा भवेत्॥ ३५॥
गृहाण चापं बाणांश्चेत्युक्त्वा सा जगदम्बिका। स्वीयाच्चापाच्छरेभ्यश्च चापं बाणांश्च तत्समान्॥
ददौ कामाय भूयस्तं प्राह तुष्टा महेश्वरी। सौभाग्यमुत्तमं लोके सर्वतोऽस्तु रमात्मज॥ ३७॥

के प्रति मेरी भक्ति नहीं है॥ २४॥ मेरी अभिलषित हार्दिक वस्तु उनके चरणकमलों में ही उपलब्ध है, ऐसी मेरी मान्यता है। वह तो सर्वज्ञा हैं, मेरी मनचाही वस्तु तो वही दे सकती है॥ २५॥ इस तरह काम ने भगवती त्रिपुराम्बिका की स्तुति कर उनके चरणों में भक्तिनिर्भर मन से पुनः धरती पर गिर कर साष्टांग प्रणाम किया॥ २६॥ इसके बाद भगवती त्रिपुरा ने बड़ी मीठी आवाज में कहा—बेटे! उठो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अभिलषित वर माँगो॥ २७॥ मैं तुम्हें दुर्लभ वस्तु भी दूँगी, तुम्हारे लिए संसार में कुछ भी अलभ्य नहीं है। लोकजननी जगदम्बा की यह बात सुनकर काम उठ खड़ा हुआ॥ २८॥ हे त्रिपुरसुन्दरी! श्रीदेवी के दर्शन मात्र से ही मेरी सारी अविद्याएँ और तमोगुण विनष्ट हो गये हैं। मेरी आत्मशक्ति मुझे उपलब्ध हो गई है॥ २९॥ विश्वस्त भाव से प्रसन्न होकर हाथ जोड़कर काम ने देवी से कहा—हे अम्बे! त्रिपुरे! तुम्हारे चरणकमल के दर्शन रूपी अमृत-सेवन से॥ ३०॥ मेरी तृष्णा शान्त हो चुकी है। मेरे लिए कुछ भी पाना अवशेष नहीं है। मैं क्या माँगू? जिसने छककर अमृतरस पी लिया हो उसे खारा पानी पिलाने जैसा ही तो मेरे लिए अब कोई वर-याचना होगी॥ ३१॥ तुम अब मेरी आँखों के सामने हो, फिर वर-याचना तो मेरे लिए उपहासास्पद ही होगी। अतः हे माँ! स्वेच्छा से जो कुछ दोगी, उसे मैं शिरोधार्य कर लूँगा॥ ३२॥ यह सुनकर जगदम्बा का हृदय दया से भर आया। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—बेटे काम! अब तुम्हारे लिए पाने योग्य कुछ भी नहीं बचा है॥ ३३॥ जिसने मेरे स्वरूप को जान लिया उसके लिए ब्रह्म का पद भी तृण के समान है। फिर भी साभिप्राय तुम हमारे सामने उपस्थित हुए हो॥ ३४॥ इसलिए तुमने जो कुछ किया वह व्यर्थ तो जायेगा नहीं, अतः तुमसे अजेय न धरती होगी, न आकाश और न पाताल ही॥ ३५॥ यह धनुष और बाण लो। यह कहकर उस जगदम्बा ने अपने चाप और बाण से तत्तुल्य चाप और बाण निकालकर॥ ३६॥ काम को दिया और उस पर परम प्रसन्न होकर कहा—हे लक्ष्मीपुत्र! इस संसार में सर्वोत्कृष्ट सौभाग्य तुम्हें मिलेगा॥ ३७॥ त्रिलोक में जो सौभाग्यशाली हैं वे सब-के-सब तुम्हें देखते ही अपना धैर्य खो

त्वया दृष्टा जनाः सर्वे धैर्यमभ्युत्सृजन्तु वै। लोकेषु सुभगा ये स्युः सर्वसौभाग्यसम्पदः ॥ ३८॥
दृष्टान्तभूतस्त्वं भूया मद्भक्तेष्वग्रगस्तथा। स्वप्ने मया समादिष्टा या विद्या साऽपि मन्मथ ॥ ३९॥
त्वन्नाम्नैवाऽस्तु विख्याता सर्वविद्योत्तमोत्तमा। यतस्त्वमाद्यः सर्वेषामस्या भूत उपासकः॥
यत्तुभ्यं रमया प्रोक्तं नाम्नामष्टोत्तरं शतम्। यच्च त्वया संस्तुताऽहं श्लोकैर्नवभिरुत्तमैः ॥ ४१॥
विद्यावर्णनामयुतैर्भक्त्युद्गारसमन्वितैः। तदेतत् स्तोत्रयुगलं विद्या साऽपि च मन्मथ॥ ४२॥
तव सौभाग्यजननात् सौभाग्यप्रदमस्तु वै। सौभाग्यविद्या सा ख्याता सौभाग्याऽष्टोत्तरञ्च तत्॥
सौभाग्यनवरत्नाऽऽख्यं स्तोत्रं स्याद्भुवि विश्रुतम्। एतत् स्तोत्रं प्रपठतां प्रीता शीघ्रं भवाम्यहम्॥
विद्यार्थिनां भवेद्विद्या धनं स्याच्च धनार्थिनाम्। पुत्रार्थिनां पुत्रलाभः पत्नी भार्यार्थिनां नृणाम्॥
एतत्स्तोत्रं पठद्भिस्तु यद्यत् स्याच्चिन्तितं भुवि। तत्सर्वं प्राप्यते सत्यं न तेषां हीयते क्वचित्॥
एतत्स्तोत्रं सर्वपूर्तिकरं प्रपठतां नृणाम्। प्रसन्नाऽहं शीघ्रतरं भवामि शृणु मन्मथ॥ ४७॥
इत्युक्त्वा त्रिपुरादेवी नामाऽष्टशतकस्य च। विद्यायाश्चाऽपि माहात्म्यं तत्राऽन्तर्धानमागता॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानं
नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २०६३॥



देंगे॥ ३८॥ तुम धरती पर उदाहरण स्वरूप बनोगे। मेरे भक्तों में तुम अग्रगण्य होंगे। हे काम! मैंने तुम्हें जिस विद्या का स्वप्न में उपदेश दिया था वह भी तुम्हें सिद्ध हो॥ ३९॥ वह विद्या तुम्हारे नाम से विख्यात होगी। वह सारी विद्याओं में उत्कृष्ट विद्या है। इसका प्रथम उपासक तुम्हीं हो। इसे सर्वप्रथम तुमने ही प्राप्त किया है॥ ४०॥ रमा ने जो तुम्हें एक सौ आठ नाम बतलाये हैं और जिन नौ उत्कृष्ट श्लोकों से तुमने मेरी स्तुति की है॥ ४१॥ अक्षर और नाम से युक्त भक्तिपूर्ण उद्‌गार के साथ निःसृत वही तो विद्या है और यह स्तुति, दोनों ही हे काम! वह परा विद्या है॥ ४२॥ तुम्हारे सौभाग्य से इसकी उत्पत्ति हुई है, यह सौभाग्य देने वाली विद्या है। ये अष्टोत्तरशत सौभाग्य है और यही सौभाग्य विद्या के नाम से ख्यात होगी॥ ४३॥ यह स्तोत्र संसार में 'सौभाग्यनवरत्न' के नाम से विख्यात होगा। जो इस स्तोत्र का पाठ करेगा, उस पर मैं परम प्रसन्न रहूँगी॥ ४४॥ इसके पाठ से विद्यार्थियों को विद्या मिलेगी, धनार्थियों को धन मिलेगा, पुत्रार्थियों को पुत्र मिलेगा और पत्नी चाहने वाले को सुशीला पत्नी मिलेगी॥ ४५॥ इस संसार में मनुष्य जो कुछ सोचता है, इस स्तोत्र के पाठ से उसे वह सब कुछ मिलेगा, यह बिलकुल सत्य है॥ ४६॥ मनुष्य की सारी इच्छाओं को पूरा करने वाला स्तोत्र है। जो इसका पाठ करेगा उस पर मैं शीघ्र प्रसन्न हो जाऊँगी॥ ४७॥ इतना कहकर त्रिपुरा देवी 'अष्टशतक' नाम की महिमा एवं श्रीविद्या की महिमा बतलाकर तिरोहित हो गई॥ ४८॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में
पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०६३॥



अथ षड्विंशोऽध्यायः



निशम्यैतज्जामदग्न्यो माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम्। स्तोत्रस्य भूयः पप्रच्छ दत्तात्रेयं गुरूत्तमम्॥ १ ॥
भगवन् त्वन्मुखाम्भोजनिर्गमद्वाक्सुधारसम्। पिबतः श्रोत्रमुखतो वर्धतेऽनुक्षणं तृषा॥ २ ॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां श्रीदेव्या यत्प्रसादतः। कामः सम्प्राप्तवान् लोके सौभाग्यं सर्वमोहनम्॥
सौभाग्यविद्यावर्णानामुद्धारो यत्र संस्थितः। तत्समाचक्ष्व भगवन् कृपया मयि सेवके॥ ४ ॥
निशम्यैवं भार्गवोक्तिं दत्तात्रेयो दयानिधिः। प्रोवाच भार्गवं रामं मधुराऽक्षरपूर्वकम्॥ ५ ॥
शृणु भार्गव यत् पृष्टं नाम्नामष्टोत्तरं शतम्। श्रीविद्यावर्णरत्नानां निधानमिव संस्थितम्॥ ६ ॥
श्रीदेव्या बहुधा सन्ति नामानि शृणु भार्गव। सहस्रशतसंख्यानि पुराणेष्वागमेषु च॥ ७ ॥
तेषु सारतमं ह्येतत्सौभाग्याष्टोत्तराऽऽत्मकम्। यदुवाच शिवः पूर्वं भवान्यै बहुधाऽर्थितः॥
सौभाग्याऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य भार्गव। ऋषिरुक्तः शिवश्छन्दोऽनुष्टुप् श्रीललिताऽम्बिका॥
देवता विन्यसेत्कूटत्रयेणाऽऽवर्त्य सर्वतः। ध्यात्वा सम्पूज्य मनसा स्तोत्रमेतदुदीरयेत्॥ १० ॥
कामेश्वरी कामशक्तिः कामसौभाग्यदायिनी। कामरूपा कामकला कामिनी कमलाऽऽसना॥
कमला कल्पनाहीना कमनीयकलावती। कमला भारतीसेव्या कल्पिताऽशेषसंसृतिः॥
अनुत्तराऽनघाऽनन्ताऽद्भुतरूपाऽनलोद्भवा। अतिलोकचरित्राऽतिसुन्दर्यतिशुभप्रदा॥ १३॥
अघहन्त्र्यतिविस्ताराऽर्चनतुष्टाऽमितप्रभा। एकरूपैकवीरैकनाथैकान्ताऽर्चनप्रिया॥ १४॥

*** विमला ***

स्तोत्र की सर्वाधिक यह महिमा सुनकर परशुराम ने श्रेष्ठ गुरु दत्तात्रेय से पुनः पूछा॥ १॥ भगवन्! आपके कमलमुख से निकलते हुए वाक्सुधारस अपने कान रूपी मुख से पीते हुए मेरी तृष्णा प्रतिपल बढ़ रही है॥ २॥ इस संसार में सबको मोह लेने वाला सौभाग्य श्रीदेवी की कृपा से एक सौ नाम वाला जो स्तोत्र काम ने प्राप्त किया है॥ ३॥ सौभाग्यविद्या के वर्णों का उद्धार जिनमें सन्निहित है मुझ सेवक पर कृपाकर उसे बतला दे॥ ४॥ परशुराम की बातें सुनकर दयानिधि गुरु दत्तात्रेय ने बड़े ही मधुर स्वर में परशुराम से कहा॥ ५॥ सुनो परशुराम! तुमने एक सौ आठ नामों के सन्दर्भ में पूछा है, वह श्रीविद्या है। वर्णरत्नों का खजाना है॥ ६॥ हे परशुराम! सुनो, श्रीदेवी के बहुत सारे नाम हैं। पुराणों और आगमों में सैकड़ों और हजारों की संख्या में वे गिनाये गये हैं॥ ७॥ उन नामों का सारतम ये सौभाग्य नामक अष्टोत्तरशतात्मक नाम है। भगवती भवानी की बार-बार प्रार्थना करने पर बहुत पहले भगवान् शिव ने उन्हें बतलाया था॥ ८॥ इस मन्त्र के शिव ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, ललिताम्बिका देवता, कूटत्रय विन्यास से घिरे हैं॥ ९॥ त्रिपुरा का ध्यान कर, मन से उनकी पूजा कर स्तोत्र का पाठ करना चाहिए॥ १०॥ ये अष्टोत्तरशत नाम हैं—कामेश्वरी, कामशक्ति, कामसौभाग्यदायिनी, कामरूपा, कामकला, कामिनी, कमलासना॥ ११॥ कमला, कल्पनाहीना, कमनीयकलावती, कमला, भारती-सेव्या, कल्पिता, अशेषसंसृति॥ १२॥ अनुत्तरा, अनघा, अनन्ता, अद्भुतरूपा, अनलोद्भवा, अतिलोक-चरित्रा, अतिसुन्दरी, अतिशुभप्रदा॥ १३॥ अघहन्त्री, अतिविस्तारा, अर्चनतुष्टा, अमितप्रभा, एकरूपा, एकवीरा, एकनाथा, एकान्ता, अर्चनप्रिया॥ १४॥ एकैकभावतुष्टा, एकरसा, एकान्तजनप्रिया, एधमाना,

एकैकभावतुष्टैकरसैकान्तजनप्रिया । एधमानप्रभावैधद्भक्तपातकनाशिनी ॥ १५ ॥
एलामोदमुखैनोऽद्रिशक्रायुधसमस्थितिः । ईहाशून्येप्सितेशादिसेव्येशानवराङ्गना ॥ १६ ॥
ईश्वराऽऽज्ञापिकेकारभाव्येप्सितफलप्रदा । ईशानेतिहरेक्षेषदरुणाक्षीश्वरेश्वरी ॥ १७ ॥
ललिता ललनारूपा लयहीना लसत्तनुः । लयसर्वा लयक्षोणिर्लयकर्णी लयात्मिका ॥ १८ ॥
लघिमा लघुमध्याऽऽढ्या ललमाना लघुद्रुता । हयाऽऽरूढा हताऽमित्रा हरकान्ता हरिस्तुता ॥
हयग्रीवेष्टदा हालाप्रिया हर्षसमुद्धता । हर्षणा हल्लकाभाङ्गी हस्त्यन्तैश्वर्यदायिनी ॥ २० ॥
हलहस्ताऽर्चितपदा हविर्दानप्रसादिनी । रामरामाऽर्चिता राज्ञी रम्या रवमयी रतिः ॥ २१ ॥
राक्षेणीरमणीराका रमणीमण्डलप्रिया । रक्षिताऽखिललोकेशा रक्षोगणनिषूदिनी ॥ २२ ॥
अम्बान्तकारिण्यम्भोजप्रियाऽन्तकभयङ्करी । अम्बुरूपाऽम्बुजकराऽम्बुजजातवरप्रदा ॥ २३ ॥
अन्तःपूजाप्रियाऽन्तःस्वरूपिण्यन्तर्वचोमयी । अन्तकाऽरातिवामाङ्कस्थिताऽन्तःसुखरूपिणी ॥
सर्वज्ञा सर्वगा सारा समा समसुखा सती । सन्ततिः सन्तता सोमा सर्वा साङ्ख्या सनातनी ॥ २५ ॥
एतत्ते कथितं राम नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । अतिगोप्यमिदं नाम्नः सर्वतः सारमुद्धृतम् ॥ २६ ॥
एतस्य सदृशं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । अप्रकाश्यमभक्तानां पुरतो देवताद्विषाम् ॥ २७ ॥
एतत् सदाशिवो नित्यं पठन्त्यन्ये हरादयः । एतत्प्रभावात्कन्दर्पस्त्रैलोक्यं जयति क्षणात् ॥ २८ ॥
सौभाग्याऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं मनोहरम् । यस्त्रिसन्ध्यं पठेन्नित्यं न तस्य भुवि दुर्लभम् ॥ २९ ॥
श्रीविद्योपासनवतामेतदावश्यकं मतम् । सकृदेतत्प्रपठतां नाऽन्यत्कर्म विलुप्यते ॥ ३० ॥
अपठित्वा स्तोत्रमिदं नित्यं नैमित्तिकं कृतम् । व्यर्थीभवति नग्नेन कृतं कर्म यथा तथा ॥ ३१ ॥

प्रभावैधत्, भक्तपातकनाशिनी ॥ १५ ॥ एला, आमोदमुखा, ऐनोद्रि, शक्रायुधसमस्थिति, ईहाशून्या, ईप्सिता, ईशादिसेव्या, ईशानवराङ्गना ॥ १६ ॥ ईश्वराज्ञापिका, इकारभाव्या, ईप्सितफलप्रदा, ईशाना, हरेक्षेषद्, अरुणाक्षी, ईश्वरेश्वरी ॥ १७ ॥ ललिता, ललनारूपा, लयहीना, लसत्तनु, लयसर्वा, लयक्षोणि, लयकर्णी, लयात्मिका । १८ ॥ लघिमा, लघुमध्या, आढ्या, ललमाना, लघुद्रुता, हयारूढा, हताऽमित्रा, हरकान्ता, हरिस्तुता ॥ १९ ॥ हयग्रीवेष्टदा, हालाप्रिया, हर्षसमुद्धता, हर्षणा, हल्लकाभाङ्गी, हस्त्यन्तैश्वर्य-दायिनी ॥ २० ॥ हलहस्ता, अर्चितपदा, हविर्दानप्रसादिनी, रामरामार्चिता, राज्ञी, रम्या, रवमयी, रति ॥ २१ ॥ रक्षिणी, रमणी, राका, रमणीमण्डलप्रिया, रक्षिता, अखिललोकेशा, रक्षोगणनिषूदिनी ॥ २२ ॥ अम्बा, अन्तकारिणी, अम्भोजप्रिया, अन्तकभयङ्करी, अम्बुरूपा, अम्बुजकरा, अम्बुजजातवरप्रदा ॥ २३ ॥ अन्तःपूजाप्रिया, अन्तःस्वरूपिणी, अन्तर्वचोमयी, अन्तका, आरातिवामाङ्कस्थिता, अन्तःसुखरूपिणी ॥ २४ ॥ सर्वज्ञा, सर्वगा, सारा, समा, समसुखा, सती, सन्तति, सन्तता, सोमा, सर्वा, साङ्ख्या, सनातनी ॥ २५ ॥ हे परशुराम! ये ही एक सौ आठ नाम हैं जिन्हें मैंने तुम्हें सुना दिया। ये सारे नाम सारभूत हैं और अत्यन्त गोपनीय हैं ॥ २६ ॥ इसके जैसे स्तोत्र तीनों लोक में दुर्लभ है। देवताओं के दुश्मन अर्थात् नास्तिकों और अभक्तों के आगे इसे प्रकाशित नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥ इसे नित्य सदाशिव पढ़ते हैं। हरादि देवगण भी पाठ करते हैं। इसी स्तोत्र के प्रभाव से क्षणभर में त्रिलोक को कामदेव जीत लेता है ॥ २८ ॥ यह मनोहर स्तोत्र सौभाग्याष्टोत्तरशत नाम से ख्यात है। जो व्यक्ति इसको तीन बार प्रतिदिन पढ़ेगा उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ २९ ॥ श्रीविद्या की जो उपासना करता है, उसके लिए इस स्तोत्र का पाठ आवश्यक माना जाता है। एक बार भी जो इसका पाठ करता है उसका कोई कर्म विलुप्त नहीं होता है ॥ ३० ॥ बिना इस स्तोत्र का पाठ किये जो व्यक्ति कोई नियम या नैमित्तिक कर्म करता है, उसका वह कर्म उसी तरह निष्फल होता है जैसे किसी नंगे व्यक्ति का कृतकर्म व्यर्थ

सहस्रनामपाठादावशक्तस्त्वेतदीरयेत् । सहस्रनामपाठस्य फलं शतगुणं भवेत्॥ ३२॥
सहस्रधा पठित्वा तु वीक्षणान्नाशयेद्रिपून् । करवीररक्तपुष्पैर्हुत्वा लोकान् वशं नयेत्॥ ३३॥
स्तम्भयेत् श्वेतकुसुमैर्नीलैरुच्चाटयेद्रिपून् । मरिचैर्विद्वेषणाय लवङ्गैर्व्याधिनाशने॥ ३४॥
सुवासिनीर्ब्राह्मणान् वा भोजयेद्यस्तु नामभिः । यश्च पुष्पैः फलैर्वाऽपि पूजयेत् प्रतिनामभिः॥
चक्रराजेऽथवाऽन्यत्र स वसेच्छ्रीपुरे चिरम् । यः सदा वर्तयन्नास्ते नामाऽष्टशतमुत्तमम्॥ ३६॥
तस्य श्रीललिता राज्ञी प्रसन्ना वाञ्छितप्रदा । एतत्ते कथितं राम शृणु त्वं प्रकृतं ब्रुवे॥ ३७॥
अथैवं मदनः प्राप्य वरं देव्या महत्तरम् । मर्त्यानमर्त्यानसुरान् यातुधानांश्च किन्नरान्॥ ३८॥
यक्षान् किंपुरुषादींश्च चकार स्ववशे द्रुतम् । अथ कालान्तरे कामो महादेवजिगीषया॥ ३९॥
गत्वा क्रोधाग्निमासाद्य भस्मीभूतः पतङ्गवत् । तत्कथां तेऽभिधास्यामि शृणु राम समाहितः॥
गौरी दाक्षायणी भूत्वा पितुर्दक्षस्य बर्हिषि । श्रुत्वा निन्दां महेशस्य पत्युर्भस्मत्वमागता॥ ४१॥
आकाशमात्ररूपा सा गौरी जगति संस्थिता । अथ काले चिरतरे समतीते नगेश्वरः॥ ४२॥
हिमवान् ब्रह्मपुत्रेण नारदेनाऽभिसङ्गतः । प्रत्युत्थाय देवमुनिं सभाजयत भक्तितः॥ ४३॥
पाद्यार्घ्यमाल्यहाराद्यैरालेपैर्वस्त्रभूषणैः । पूजयित्वा स्वादुतरैरभोजयत भोजनैः॥ ४४॥
एवं सम्पूजितं देवमुनिं परमशोभनम् । समासीनं सभामध्ये प्राह पर्वतभूपतिः॥ ४५॥
देवर्षे त्वत्समालोकाद्धन्योऽहं सम्प्रति क्षितौ । यत्त्वया ब्रह्मपुत्रेण दीनोऽहं सेवकीकृतः॥ ४६॥

होता है॥ ३१॥ सहस्र नाम पाठ से भिन्न हृदय से यदि इस स्तुति का पाठ कोई करता है तो उसे सहस्र नाम पाठ का सौगुणा अधिक फल मिलता है॥ ३२॥ भगवती के प्रति आसक्त भाव से इस स्तोत्र का एक हजार बार पाठ जिसने कर लिया, वह जिस शत्रु की ओर आँख उठाकर देखेगा वहीं विनष्ट हो जायेगा। लाल करवीर के फूल से हवन कर त्रिलोक को वशवर्ती बना सकता है॥ ३३॥ श्वेत फूल से हवन करने पर स्तम्भन, नीले फूल से शत्रुओं का उच्चाटन, काली मिर्च से शत्रुता एवं लवङ्ग से हवन करने पर रोग विनष्ट होते हैं॥ ३४॥ सुवासिनी कन्याओं अथवा ब्राह्मणों को जो भगवती के नाम पर भोजन कराता है, अथवा फूल या फल से प्रत्येक नाम की पूजा करता है॥ ३५॥ चक्र पर या कहीं अन्यत्र पूजा करता है, इस एक सौ आठ नाम से तादात्म्य बनाये रखता है; निश्चय ही वह श्रीपुर में अधिक काल तक निवास करता है॥ ३६॥ उस पर श्रीललिता रानी प्रसन्न होकर अभिलषित वस्तु प्रदान करती है। हे परशुराम! तुम्हें मैंने यह सब तो सुना दिया और अब तुम्हें मूल विषय समझाता हूँ॥ ३७॥ इस तरह मदन ने देवी का महत्तर वरदान पाकर देव, दानव, मानव, असुर, यातुधान और किन्नरों को॥ ३८॥ यक्ष और किम्पुरुषादि को अपने वश में शीघ्र लाकर कालान्तर में काम महादेव को जीतने की इच्छा से॥ ३९॥ महादेव के पास जाकर उनकी क्रोधाग्नि में फतिंगे की तरह जलकर राख हो गया। हे परशुराम! वह कथा मैं तुम्हें सुनाऊँगा, तुम स्थिर चित्त से सुनो॥ ४०॥ गौरी दक्ष की पुत्री बनकर पिता दक्ष के यज्ञ में अपने पति की निन्दा सुनकर जलकर राख हो गई॥ ४१॥ गौरी निराकार हो कर संसार में संस्थित थी। बहुत दिन बीत जाने पर एक बार पर्वतराज॥ ४२॥ हिमालय के पास ब्रह्माजी के सुपुत्र नारदजी पधारे। देवमुनि नारद को देखकर हिमराज उठकर खड़े हो गये और उनका स्वागत किया॥ ४३॥ पाद्य, अर्घ्य, माला, चन्दन, वस्त्र और आभूषणों तथा मधुरालाप से उनकी पूजा कर सुस्वादु भोजन कराया॥ ४४॥ इस तरह हिमालय से सम्पूजित नारद सभा के बीच बैठे सुशोभित थे। हिमालय ने उनसे कहा—॥ ४५॥ हे देवर्षे! धरती पर आज आपको देखकर मैं धन्य हो गया। आपने मुझ गरीब को सेवा का अवसर प्रदान किया॥ ४६॥ हे भगवन्! देवलोक

भगवन् ब्रूहि भुवनात् कस्मात्त्वं समुपागतः । दुर्लभं दर्शनं तेऽद्य गमनेच्छाऽपि कुत्र ते ॥ ४७ ॥
एवं पृष्टो नारदोऽथ मधुप्रस्यन्दनं वचः । बभाषे पर्वतश्रेष्ठं स्ववृत्तान्तविवक्षया ॥ ४८ ॥
पर्वतेश समायातः सत्यलोकादहं ननु । त्वां दिदृक्षुर्धन्यतमं व्रजामि शिवसन्निधिम् ॥ ४९ ॥
श्रुत्वैवं नारदवचो हिमवान् प्राह सन्नतः । भगवन् वद कस्मात्ते धन्य इत्यहमीरितः ॥ ५० ॥
अनपत्यत्वशोकेन वराकः कृपणो भृशम् । इति श्रुत्वा गिरिवचो नारदः प्राह सान्त्वयन् ॥ ५१ ॥
शृणु भूभृद्राज यतो धन्यस्तत्ते वदाम्यहम् । त्वं सम्प्रति पराशक्तिपदभक्तियुतो यतः ॥ ५२ ॥
अतः प्रोक्तो मया धन्य इति त्वं प्रीतिहेतुतः । नह्यल्पपुण्यैर्लोकेऽस्मिन् पराभक्तिः प्रजायते ॥
यां ब्रह्मविष्णुरुद्राद्याः पूजयन्ति दिवानिशम् । सा शक्तिः परमा लोके यस्यां सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
यत्ते प्रपूर्वदिवसे वामदेवो मुनीश्वरः । अनुजग्राह तदहं वेद्मि वै योगचक्षुषा ॥ ५५ ॥
स मुनिः शाक्तमूर्धन्यस्तेन त्वमनुदेशितः । अतस्त्वत्तो धन्यतमो भवेत् क इह तद्वद ॥ ५६ ॥
श्रुत्वैवं नारदेनोक्तं हिमवान् पुनरब्रवीत् । ब्रह्मंस्त्वं योगनेत्रेण भूतं भव्यञ्च पश्यसि ॥ ५७ ॥
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चित् कालत्रितयगर्भिते । पृच्छामि किञ्चिदाचक्ष्व कृपया मयि सेवके ॥ ५८ ॥
अपत्येन विना ब्रह्मन्न सुखं विद्यते क्वचित् । तन्मेऽपत्यं यथा भूयात्तमुपायं विचारय ॥ ५९ ॥
श्रुत्वैवं हिमवद्वाक्यं क्षणं ध्यात्वाऽथ नारदः । प्रोवाच गोत्रपतये नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ६० ॥
शृणु पर्वतराजन्य तवाऽपत्यं न विद्यते । नाऽत्रोपायोऽपि सन्दृष्टः कन्यैका ते भविष्यति ॥ ६१ ॥
शृणु तच्चापि ते वक्ष्ये दुःखायैव हि सन्ततिः । न हि लोकेऽपत्ययुताः सन्दृष्टाः सुखिनः क्वचित् ॥

से आपने धरती पर आने का कष्ट कैसे किया? आपके दर्शन तो दुर्लभ है। अब आप कहाँ जाना चाहेंगे? ॥ ४७ ॥ इस तरह मधुर एवं विनम्र पृच्छा सुनकर नारद ने कहा—हे पर्वतश्रेष्ठ! मैं अपना वृत्तान्त सुनाने यहाँ आया हूँ॥ ४८ ॥ हे पर्वतेश! सत्यलोक से मैं तुम्हारे जैसे धन्यतम व्यक्ति से मिलने आया हूँ और अब मैं शिवलोक जा रहा हूँ॥ ४९ ॥ नारदजी की यह बात सुनकर विनम्रभाव से हिमवान् ने पूछा—हे भगवन्! कृपया आप बतलाये किसलिए आपने यहाँ आकर मुझे धन्य किया? ॥ ५० ॥ मैं तो सन्तानहीनता के कारण अत्यन्त दयनीय बना हूँ। हिमराज की यह बात सुनकर उन्हें सान्त्वना देते हुए नारद ने कहा ॥ ५१ ॥ हे पर्वतराज! सुनो, तुम भाग्यवान् हो, इसलिए मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ। इस समय तुम्हारे हृदय में उस पराशक्ति की पूर्णभक्ति है॥ ५२ ॥ उनकी प्रीति के कारण ही मैंने तुम्हें भाग्यवान् कहा है। इस संसार में अल्प पुण्य वाले लोगों को पराभक्ति कभी नहीं होती है॥ ५३ ॥ जिस पराशक्ति को दिन-रात ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश पूजते हैं, वही पराशक्ति संसार में परमशक्ति है, जिनमें सब कुछ प्रतिष्ठित है॥ ५४ ॥ जिसे आज से पहले मुनीश्वर वामदेव ने तुम्हें दिया था उसे मैं अपने योगचक्षु से जानता हूँ॥ ५५ ॥ वे मुनि शाक्तमूर्धन्य हैं, उन्होंने तुम्हें उपदेश दिया है। अतः तुमसे अधिक भाग्यवान् इस दुनिया में कौन है? तुम्हीं बतलाओ ॥ ५६ ॥ नारद मुनि का यह कथन सुनकर नगाधिराज हिमालय ने उनसे कहा—हे ब्रह्मन्! अपनी योगदृष्टि से तो भूत और भविष्य सब कुछ आप देखते ही हैं॥ ५७ ॥ तीनों काल में घटित होने वाली कोई भी घटना आपसे अविदित नहीं है। मेरी कुछ पृच्छाएँ हैं। कृपया मुझ सेवक पर दया कर बतलायें॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन्! सन्तान के बिना मुझे कहीं भी सुख नहीं है। अतः मुझे सन्तान कैसे उपलब्ध होगी? इस पर विचार करें॥ ५९ ॥ हिमालय का प्रश्न सुनकर एक क्षण के लिए देवमुनि ध्यानस्थ हो गये और फिर उनसे दिव्य दर्शन नारदजी ने कहा ॥ ६० ॥ हे पर्वतराज! सुनो, तुम्हें अपत्य-सुख नहीं है। इस सन्दर्भ में कोई उपाय भी नहीं दीखता। हाँ, एक कन्या तुम्हें होगी॥ ६१ ॥ फिर भी तुमसे कहता हूँ, सुनो; सन्तान तो दुःख देने के लिए ही

तत्राऽपि कन्या दुःखानां निदानमवधारय । यदि सा परमाशक्तिरनुगृह्णाति ते नग ॥ ६३ ॥
तदा सुखाय कन्याऽपि भविष्यति न संशयः । श्रुत्वेत्थं नारदवचः प्राह पर्वतराट् पुनः ॥ ६४ ॥
भगवन् सा परा शक्तिर्वामदेवमुखाच्छ्रुता । वर्णरूपा ह्यवगता न सा चिन्तयितुं क्षमा ॥ ६५ ॥
अतस्तद्रूपमत्यन्तनिगूढं वागगोचरम् । ततः कथं मे भवति तस्याश्चाऽनुग्रहो वद ॥ ६६ ॥
इति श्रुत्वा नारदोऽथ समाचष्टे विचक्षणः । शृणु शैलकुलाधीश सा हि सूक्ष्मा परात्परा ॥ ६७ ॥
वागाद्यगम्या महती त्रिपुरा सर्वकारणम् । तस्या यत्परमं रूपं सर्वाऽन्तरतया स्थितम् ॥ ६८ ॥
योगिश्रेष्ठा विजानन्ति स्वाऽबहिष्ट्वेन नेतरे । तस्या यदपरं रूपं स्थूलं तत्सर्वगोचरम् ॥ ६९ ॥
तदुपास्याऽभिलषितं प्राप्नुह्यचिरमद्रिप । तदप्यनन्तं भक्तानां भावनापथि संस्थितम् ॥ ७० ॥
तत्र गौरी मृडानी या विद्यारूपा परात्परा । तां भजाऽऽशु महादेवीं वाञ्छितप्राप्तये नग ॥ ७१ ॥
श्रुत्वेत्थं नारदप्रोक्तं पुनः पप्रच्छ पर्वतः । भगवन् सा हि का देवी या गौरीति समीरिता ॥ ७२ ॥
किंरूपा किंसमाचारा किंवीर्या शंस मे मुने । निशम्य पर्वतवचो निजगाद ततो मुनिः । ७३ ॥
शृणु पर्वतराजन्य गौर्या रूपादिकं शुभम् । सा सम्भूता पराशक्तेर्विष्ण्वंशेन महेश्वरी ॥ ७४ ॥
नीलाभा सिंहसंस्थाना त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरी । खड्गश्च खेटकं शूलं मुद्गरं पाणिपङ्कजैः ॥ ७५ ॥
दधाना शङ्करसती यस्याः संश्रयणाद्भवः । संहृतिं रचयन् कल्पस्याऽन्ते न ग्लायति क्वचित् ॥
एवंविधसमाचारा कारणाद्देहनाशतः । दक्षात्तनुं समासाद्य पतिनिन्दनसंश्रुतेः ॥ ७७ ॥

होती है। संसार में अपत्यवान् लोगों को कहीं सुखी नहीं देखा है॥ ६२॥ इनमें भी बेटी तो दुःख का कारण होती ही है, इसे जान लो। ऐसी स्थिति में ओ नगराज! यदि उस परमा शक्ति की तुम पर कृपा हो॥ ६३॥ तो कन्या भी तुम्हारे सुख का निमित्त होगी, इसमें संशय मत करो। नारद की ये बातें सुनकर पर्वतराज ने पुनः कहा॥ ६४॥ हे भगवन्! उस पराशक्ति के बारे में वामदेव मुनि से मैंने सुना है। पर उनके रूप और वर्ण से तो अनभिज्ञ हूँ, फिर उनका चिन्तन कैसे करूँ?॥ ६५॥ अतः उनका रूप तो अत्यन्त ही निगूढ़ है, वे अतीन्द्रिय हैं तो फिर उनकी कृपा मुझ पर कैसे होगी? यह बतलाने का कष्ट करें॥ ६६॥ बुद्धिमान् नारद ने यह सुनकर कहा—हे पर्वतराज! वह परात्परा अतिसूक्ष्म है॥ ६७॥ वाणी आदि से वह पकड़ में आने वाली नहीं है। वह महती त्रिपुरा सभी ही कारणों के कारणस्वरूपा हैं। उनका जो परम रूप है वह सबके अन्तःकरण में विद्यमान है॥ ६८॥ उन्हें श्रेष्ठ योगी ही अपने से बाहर देख पाते हैं और कोई दूसरा नहीं। उनका जो दूसरा स्थूलरूप है, उसे सब देख सकते हैं॥ ६९॥ हे पर्वतराज! उनकी उपासना कर शीघ्र मनचाही वस्तु प्राप्त करो। उसमें भी भावना की राह पर उपस्थित उनके अनेक भक्त हैं॥ ७०॥ उनमें भी हे नगाधिराज! अपनी चाही वस्तु की शीघ्र प्राप्ति के लिए गौरी, मृडानी या विद्या रूपा परात्परा की शरण में जाओ॥ ७१॥ नारदमुनि की ये बातें सुनकर हिमालय ने उनसे पुनः पूछा—भगवन्! वह कौन देवी हैं जो गौरी के नाम से ख्यात हैं?॥ ७२॥ उनका रूप कैसा है? उनका व्यवहार कैसा है? उनका पराक्रम कैसा है? कृपया मुझे बतलाओ। हिमालय की ये बातें सुनकर पर्वतराज ने कहा॥ ७३॥ सुनो पर्वतराज! गौरी के शुभरूपादि के सम्बन्ध में। वह पराशक्ति के विष्णु अंश से उत्पन्न महेश्वरी है॥ ७४॥ वे नीली कान्तिवाली हैं, सिंह पर बैठी हैं, तीन आँखों वाली हैं, मुकुट पर चन्द्र विराजित है। हाथों में तलवार, गदा, त्रिशूल, मुद्गर सुशोभित हैं॥ ७५॥ जिस भगवती का आश्रय ग्रहण कर भगवान् शिव इन्हें सती के रूप में प्राप्त कर कल्प के अन्त में संहार का विधान कर किसी भी स्थिति में थकते नहीं हैं॥ ७६॥ ऐसे व्यवहार के कारण देह विनष्ट होने पर दक्ष के शरीर से जन्म लेने पर पति की निन्दा न सुनने

स्वं देहं भस्मसात् कृत्वा व्योमरूपतया स्थिता। सम्प्रार्थ्यमाना विबुधैर्न देहमभिवाञ्छति॥ ७८॥
तां विना त्र्यम्बकोऽत्यन्तदुःखितो नगभूपते। तां समाराध्य परमां याचस्व प्रियमात्मनः॥ ७९॥
कन्या भव ममेत्येवं ततस्त्वं पर्वताऽधिप। तथा कन्यारूपया त्वं युतः परमशोभनः॥ ८०॥
लोके पूज्यतमश्चाऽपि देवैः स्तुत्यो भविष्यसि। महादेवस्य श्वशुरस्ततः ख्यातिं गमिष्यसि॥ ८१॥
तनयां च परां शक्तिं गौरीं प्राप्य नगोत्तम। सौख्यं यशो महावश्च लोके तव भविष्यति॥ ८२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे गौर्युपाख्यानं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २१४५॥

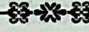


के कारण॥ ७७॥ अपनी देह जलाकर आकाश रूप में उपस्थित होकर देवताओं की अनेक प्रार्थनाओं को सुनने के बावजूद पुनः देह धारण नहीं करना चाहती है॥ ७८॥ उनके बिना हे नगधिराज! त्र्यम्बक शिव भी अत्यन्त दुःखी हैं। उनकी आराधना कर अपनी मनचाही वस्तु माँग लो॥ ७९॥ हे पर्वतिश! उनके प्रसन्न होने पर तुम उनसे कहो कि वे तुम्हारी कन्या के रूप में तुम्हारे घर अवतरित हों। तुम्हारी बेटी के रूप में वे अत्यन्त शोभनीय होगीं॥ ८०॥ लोक में पूज्यतम देवताओं से भी स्तुत्य बनोगे। महादेव शिव के श्वसुर के रूप में ख्याति प्राप्त करोगे॥ ८१॥ और बेटी के रूप में उस पराशक्ति गौरी को पाकर हे नगेश! तुम सुख, यश और महाशक्ति संसार में प्राप्त करोगे॥ ८२॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में गौरी-उपाख्यान नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१४५॥



अथ सप्तविंशोऽध्यायः



नगराज शृणु कथां गौरीचरितसंयुताम्। पुरा रथन्तरे कल्पे तारकेयो महासुरः॥ १॥
तपसा तोषयामास महादेवं त्रिलोचनम्। वरं बहुविधं लब्ध्वा बबाधेऽतितरां जगत्॥ २॥
सृष्टौ स्थितौ संहरणे तस्मै शक्तिमदाद्भवः। सम्मुखस्थस्य सामर्थ्यमवकर्षति च क्षणात्॥ ३॥
एवं वरेण सहितो दर्पितः स महासुरः। ससर्जाऽण्डान्यनेकानि ब्रह्मविष्णुशिवानपि॥ ४॥
इन्द्रादीनखिलान् देवान् स्वयं सर्वाधिपोऽभवत्। तेन सृष्टा ब्रह्ममुखाः पूजयन्ति महासुरम्॥
स्वयं यज्ञाऽधिपो जातः स्वसृष्टाण्डेषु सर्वतः। वेदा विनिर्मितास्तेन विद्याश्च विविधास्तथा॥
अथाऽऽगत्य तारकेयो ब्रह्मादीनाह सोऽसुरः। मां यजन्तु सुराः सर्वे मम वेदान् पठन्तु च॥ ७॥
अहं सर्वेश्वरो देवः प्रणमन्तु च मां सदा। इति तद्वचनं श्रुत्वा न स्वीचक्रुर्यदा सुराः॥ ८॥
तदा देवान् विनिर्जित्य बद्ध्वा स्वाण्डे विनिक्षिपत्। आदित्यांश्च वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा॥
बद्ध्वा निजाण्डे निक्षिप्य ब्रह्मादीन् भेत्तुमाययौ॥ १०॥
दृष्ट्वाऽसुरं समायान्तं स्वान्नेतुं विधिमुख्यकाः। योद्धुमभ्युद्यतास्ते वै स्वपरीवारसंयुताः॥
युद्ध्वा चिरं तेन विधिमुखा दृष्ट्वा महासुरम्। अजेयं वरदानेन तिरोभूतास्तदेश्वराः॥ १२॥
अन्तर्धानं प्रयातेषु तेषु पश्चान्महासुरः। विधिं हरिं शिवं चाऽन्यं सृष्ट्वा लोके न्यवेशयत्॥ १३॥

✻ विमला ✻

हे नगराज! अब मैं तुम्हें गौरी के चरित्र की कथा सुनाता हूँ, उसे सुनो। पहले रथन्तर कल्प में तारकेय नाम का एक महादैत्य हुआ॥ १॥ वह अपनी कठोर तपस्या से त्रिलोचन महादेव को सन्तुष्ट कर उनसे अनेक वरदान प्राप्त कर संसार को अत्यन्त पीड़ित करने लगा॥ २॥ सृष्टि, स्थिति और विनष्टि में उसे यह शक्ति प्राप्त थी कि उसके सामने जो आयेगा उसके सारे सामर्थ्य को क्षणभर में अपनी ओर खींच लेगा॥ ३॥ ऐसा वरदान प्राप्त कर उस घमण्डी महादैत्य ने अनेक ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ अनेक ब्रह्माण्ड की रचना कर डाली॥ ४॥ इन्द्र प्रभृति सारे देवताओं का स्वयम्भू सर्वाधिप बन बैठा। उसके द्वारा रचित ब्रह्मादि देवता उस महासुर की पूजा करने लगे॥ ५॥ अपने रचित ब्रह्माण्ड में हर जगह यज्ञों का वह स्वयं अधिपति बन गया। वेदों का उसने निर्माण किया। अनेक विद्याओं की भी उसने रचना की॥ ६॥ एक बार उस तारकेश ने ब्रह्मादि देवताओं से कहा—सभी देवगण मेरी पूजा करें तथा मेरे द्वारा रचित वेदों का पाठ करें॥ ७॥ मैं ही इन सारे देवताओं का स्वामी हूँ। मुझे ही ये हमेशा प्रणाम करेंगे। उसकी ये बातें सुनकर जब देवताओं ने स्वीकार नहीं किया॥ ८॥ तब उसने देवताओं को जीतकर उन्हें बाँधकर अपने ब्रह्माण्ड में ले आया। आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों और मरुतों को॥ ९॥ बाँधकर अपने ब्रह्माण्ड में रखकर ब्रह्मादि देवताओं को डराने फिर उनके पास लौट आया॥ १०॥ उस दैत्य को आते देखकर अपने अपहरण की आशंका से विधि-प्रमुख देवगण अपने परिवारों के साथ उसके साथ मरने-मारने को तैयार हो गये॥ ११॥ उसके साथ बहुत दिनों तक युद्ध करके उस महादैत्य को देखकर तथा वरदान के कारण उसे अजेय समझकर उसकी आँखों से ये ओझल हो गये॥ १२॥ इन देवताओं को तिरोहित होकर भागते जानकर उस महादैत्य ने ब्रह्मा, विष्णु और

सृष्ट्वेन्द्रादीनपि सुरान् स्वर्गादिषु निवेश्य च। सर्वैः पूजां समासाद्य बभौ सर्वेश्वरोऽसुरः॥ १४॥
अथ कालान्तरे भूयोऽपश्यन्नण्डान्यनेकशः। स्वर्गे शचीं समालोक्य तत्सौन्दर्येण मोहितः॥ १५॥
दूतं निशठनामानमानेतुं तां समादिशत्। गत्वा दूतः शचीं प्राह नत्वा स्वस्वामिनेरितम्॥ १६॥
इन्द्राणि तारकेयेन प्रेषितोऽहं समागतः। प्राह त्वामसुरेशानः सर्वलोकेश्वरो विभुः॥ १७॥
मम पार्श्वं प्रयाह्याशु प्रणयेन शुचिस्मिते। अखिलाऽण्डमहाराज्यं भुंक्ष्व त्वं मत्परिग्रहात्॥ १८॥
एवं सम्मानितश्चाहं भवामि वशगस्तव। अन्यथा त्वं बलाऽऽकृष्टा मानहीना भविष्यसि॥
इति श्रुत्वा दूतवचः शची चिन्तासमाकुला। किं करोमि न चाऽन्यो मे रक्षको विद्यतेऽधुना॥
इन्द्रो जयन्तो देवाश्च बद्ध्वा नीताः सुदूरतः। तेषां वृत्तं न जानामि न कश्चिद्रक्षिता मम॥ २१॥
उपायेन सुरपतिं वारयामि च सम्प्रति। आपदि प्रौढधिषणैरशक्तैः सर्वयत्नतः॥ २२॥
क्षणं तदर्धं वाऽपोह्य प्राप्यते सुखमुत्तमम्। बलवद्व्यवधानेन स्वात्मानं मोचयाम्यहम्॥ २३॥
इति निश्चित्य मनसा शची दूतमचक्षत। शृणु दूत तारकेये मत्सन्देशं च प्रापय॥ २४॥
विष्णुर्देवेषु परमश्रीस्तत्पत्नी मनोहरा। वयं तस्याऽनुचर्यस्तां त्वं समानेतुमर्हसि॥ २५॥
ततो वयमनाहूता भवामः परिचारिकाः। एवं शच्या समादिष्टो दैत्यः प्रोवाच सन्नतः॥ २६॥
तच्छ्रुत्वा तारकेयोऽपि तथ्यमित्यनुमन्यत। अथ दूतं विष्णुपत्न्ये प्रेषयामास सोऽसुरः॥ २७॥
वैकुण्ठे दूत आगत्य लक्ष्म्यै चाऽसुरभाषितम्। न्यवेदयदथ रमा श्रुत्वा दूतस्य भाषितम्॥ २८॥

महेश की दूसरी सृष्टि कर उस लोक में उन्हें स्थापित कर दिया॥ १३॥ इन्द्रादि देवताओं की भी दूसरी सृष्टि कर स्वर्ग में उन्हें निवेशित कर दिया और सबसे पूजा ग्रहण कर वह दैत्य सर्वेश्वर बन गया॥ १४॥ कुछ समय बीत जाने पर वह अपने अनेक ब्रह्माण्डों का परिदर्शन करते हुए स्वर्ग पहुँचा। वहाँ शची को देखकर उसके सौन्दर्य से वह मोहित हो गया॥ १५॥ अपने निशठ नाम के दूत को शची को लाने भेजा। शची के पास जाकर उसे प्रणाम कर अपने स्वामी का अभिप्राय निवेदित कर दिया॥ १६॥ उसने कहा—हे शची! मुझे दैत्यराज तारकेय ने आपके पास भेजा है और कहा है—मैं असुरों का अधिपति हूँ, सर्वलोकेश्वर हूँ और सबका स्वामी हूँ॥ १७॥ शीघ्र ही मेरे पास आ जाओ। हे शुचिस्मिते! मुझसे प्यार करो और मेरे परिग्रह से अखिल ब्रह्माण्ड के राज्य का सुख भोगो॥ १८॥ इस तरह मैं सम्मानित बनूँगा और तुम्हारा वशवर्ती बन जाऊँगा, अन्यथा बलपूर्वक तुम्हें घसीटकर मँगवा लूँगा और तुम अपमानिता बनोगी॥ १९॥ दूत की यह बात सुनकर शची काफी चिन्तित हुई। मैं क्या करूँ? इस समय मेरा कोई दूसरा सहायक भी तो नहीं है॥ २०॥ इन्द्र, जयन्त और देवगण तो यहाँ से बहुत दूर बाँधकर ले जाये गये हैं; मैं तो उनके बारे में नहीं जानती कि वे किस स्थिति में हैं। फिर वे मेरी रक्षा कैसे करेंगे?॥ २१॥ किसी-न-किसी उपाय से सुरपति को रोकना होगा। क्योंकि इस आपत्ति काल में देवगण भी सब तरह से मेरी रक्षा में अशक्त हैं॥ २२॥ छल या आधे क्षण यदि इसे रोका जाय तो निश्चय ही उत्तम सुख मिलेगा ही, शक्तिशाली व्यवधान से अपने आप को छुटकारा भी दिला सकती हूँ॥ २३॥ मन में यह निश्चय कर शची ने दूत से कहा—हे दूत! मेरा सन्देश तारकेय से जाकर कहो॥ २४॥ विष्णु देवताओं में श्रेष्ठ हैं और उनकी पत्नी लक्ष्मी परम सुन्दरी है। हम सब तो उनकी अनुचरी हैं, उन्हें तुम ला सकते हो॥ २५॥ इसके बाद तो हम सब बिन बुलाये ही आपकी परिचारिकाएँ बन जायेगीं। इस शची के द्वारा दी गयी सूचना दूत ने दैत्यराज को प्रणाम कर निवेदित कर दी॥ २६॥ यह सुनकर तारकेय ने भी इस तथ्य को सत्य मान कर दूत को विष्णुपत्नी के पास भेज दिया॥ २७॥ वैकुण्ठ पहुँचकर दूत ने लक्ष्मी को दैत्यराज का सन्देश कह सुनाया। महालक्ष्मी ने दूत की बात सुनकर॥ २८॥ अवहेलना

सावहेलं दूतमाह हे दूत शृणु मद्वचः । नाऽहं कामयितुं योग्या तारकेयस्य दुर्मतिः ॥ २९ ॥
प्रार्थयत्यात्मनाशं स गच्छ शीघ्रमितो बहिः । इत्थं निरस्तो दूतोऽथ गत्वोवाचाऽसुराधिपम् ॥
प्रतिषेधं श्रियः श्रुत्वा समन्युस्तारकेयकः । आगत्य सेनया सार्धं रुरोध श्रीनिकेतनम् ॥ ३१ ॥
अथ लक्ष्मीर्युता स्वीयशक्तिभिः शतकोटिभिः । निर्गत्याऽसुरसेनां तां नाशयामास सत्वरम् ॥
तारकेयः समालोक्य लक्ष्म्या वीर्यं महत्तरम् । स्वयं युयोध बलवान् तया शस्त्राऽस्त्रकोविदः ॥
तयोः समभवद्युद्धं तारकेयश्रियोस्तदा । भयदं सर्वलोकानां विष्णुशङ्करयोरिव ॥ ३४ ॥
युध्यतोश्च तयोरेवमत्यगाद्वर्षपञ्चकम् । नाशितं रमया सैन्यं दैत्यः संसृजति क्षणात् ॥ ३५ ॥
एवं पुनः पुनर्नष्टसैन्यं सृष्ट्वा युयोध सः । अथ लक्ष्मीः समालक्ष्य चाऽजयं दैत्यपुङ्गवम् ॥ ३६ ॥
सस्मार विष्णुं मनसा भर्तारं पुरुषं परम् । अथ नारायणः श्रीमान् वैनतेयं समास्थितः ॥ ३७ ॥
आविर्बभूव समरे पार्षदैः परिवारितः । एवं कालोदिताऽनेकचण्डांशुसमभास्वरः ॥ ३८ ॥
लक्ष्मीं ददर्श समरश्रान्तां त्रस्यन्मुखाम्बुजाम् । क्रुद्धोऽत्यन्तं युयोधाऽऽजौ दैत्यराजेन यत्नतः ॥
तदा स दैत्यः स्वं रूपं द्विधा कृत्वा क्षणेन तु । प्रत्येकं युयुधे लक्ष्म्या विष्णुना युगपत् बली ॥ ४० ॥
अथ विष्णुः प्रकुपितश्चक्रं यद्वै सुदर्शनम् । अमोघं तत् प्रचिक्षेप दैत्यनाशाय तत्क्षणे ॥ ४१ ॥
चक्रं तद्दैत्यमासाद्य ददाहाऽग्निरिवाऽलयम् । तदा लक्ष्म्या युध्यमानः ससर्जाऽन्यं महासुरम् ॥
पुनः स विष्णुना युद्धं चक्रे घोरं महत्तरम् । एवं भूयो हतो दैत्यः ससर्जाऽऽत्मानमात्मना ॥ ४३ ॥
दृष्ट्वा दैत्यमजेयं तं वरदानान्महेशितुः । रमया सह देवेशस्तिरोभूतो रणाऽजिरे ॥ ४४ ॥

के साथ लक्ष्मी ने कहा—हे दूत! मेरी बात सुनो—दुर्मति तारकेय की कामना के योग्य मैं नहीं हूँ॥ २९ ॥ वह अपने आत्मनाश की याचना करता है, तू यहाँ से भाग जा। इस तरह अपमानित होकर दूत ने दैत्याधिपति को जाकर निवेदित कर दिया॥ ३० ॥ लक्ष्मी का विरोध सुनकर तारकेय का क्रोध आकाश छूने लगा। उसने अपनी सेना के साथ श्रीनिकेतन को घेर लिया॥ ३१ ॥ अपनी सौ करोड़ शक्तियों के साथ लक्ष्मी ने बाहर निकल कर आसुरी सेना को शीघ्र ही विनष्ट कर दिया॥ ३२ ॥ लक्ष्मी के महत्तर पराक्रम को देखकर शस्त्र और अस्त्र के विशेषज्ञ बलवान् तारकेय स्वयं युद्ध करने लगा॥ ३३ ॥ तब लक्ष्मी और तारकेय का युद्ध शुरू हुआ। यह युद्ध सर्वलोक में भय पैदा करने वाला विष्णु और शंकर के युद्ध के समान था॥ ३४॥ उन दोनों को युद्ध करते पाँच साल बीत गये। रमा जिस सेना को विनष्ट कर देती, वह दैत्य उसकी पुनः सृष्टि कर लेता॥ ३५ ॥ इस तरह बार-बार नष्ट किये गये सैन्य की नई सृष्टि कर वह दैत्य रमा से लड़ता रहा। तब उस दैत्यश्रेष्ठ को लक्ष्मी ने अजेय देखकर॥ ३६ ॥ अपने पति परमपुरुष भगवान् विष्णु का स्मरण मन-ही-मन किया। तब भगवान् नारायण गरुड़ पर सवार होकर॥ ३७॥ समर-भूमि में अपने सहचरों से घिरे आविर्भूत हुए। इस तरह कालोदित अनेक प्रचण्ड किरणों की तरह प्रदीप्त॥ ३८ ॥ समरश्रान्ता, भयाक्रान्ता, मलिनमुखाम्बुजा लक्ष्मी को देखा। फिर अत्यन्त शक्तिशाली विष्णु ने प्रयासपूर्वक उस दैत्यराज से युद्धभूमि में संग्राम प्रारम्भ किया॥ ३९ ॥ तब वह दैत्यराज अपने को दो रूपों में विभक्त कर एक साथ लक्ष्मी और विष्णु से युद्ध करने लगा॥ ४० ॥ तब अत्यन्त क्रुद्ध भगवान् विष्णु ने उस दैत्य को विनष्ट करने के लिए अपने अमोघ अस्त्र चक्र का प्रयोग कर दिया॥ ४१ ॥ उस चक्र ने दैत्य के पास पहुँच कर उसे उसी तरह जला डाला जैसे आग घर को। तब उस महादैत्य ने लक्ष्मी से जो रूप लड़ रहा था, उसी से एक और दूसरे रूप की सृष्टि कर ली॥ ४२॥ तब वह फिर अपने रचित दूसरे रूप से भगवान् विष्णु ने लड़ने लगा। इस तरह बार-बार विष्णु उसे मारते और वह अपनी आत्मा से आत्मतुल्य वीर पैदा कर लेता॥ ४३ ॥ तब भगवान् शिव के वरदान से अजेय

अथ मत्वा दैत्यपतिः परास्तं रमया हरिम्। जगाम स्थानमात्मीयमसुरैः परिवारितः॥ ४५॥
तदन्तरे तु गन्धर्वमुखाच्छ्रुत्वा पराभवम्। विष्णोर्लक्ष्मीसमेतस्य शची सस्मार वै गुरुम्॥ ४६॥
स्मृतमात्रो गुरुस्तत्र शचीसविध आगतः। तं दृष्ट्वाऽऽङ्गिरसश्चाऽग्रे शची प्रत्युत्थिताऽभवत्॥
अथ तं सा पूजयित्वा प्रणम्य भक्तियोगतः। मुञ्चन्त्यश्रूणि नेत्राभ्यां दीना प्रोवाच तं गुरुम्॥ ४८॥
गुरोऽहमतिखिन्नाऽस्मि दैत्यराजेन पीड़िता। महाबलेन बद्धो मे पतिरिन्द्रः सहाऽमरैः॥ ४९॥
परामर्ष्टुं मामधुना समीहत्यसुरेश्वरः। दूतं मे प्रेषयामास युक्त्या स च निवारितः॥ ५०॥
लक्ष्मीनारायणौ युद्धे निर्जितौ तेन सम्प्रति। आयास्थत्यभिनेतुं मामद्य श्वो वा महासुरः॥ ५१॥
किं करोमि क्व गच्छामि नाऽस्ति मे शरणं क्वचित्। प्रपन्नां रक्ष दीनां मामाङ्गिरस गुरोऽधुना॥
संश्रुत्वैवं विलपितमिन्द्राण्या धिषणस्तदा। समालोक्य ज्ञानदृशा शचीं प्राह दयाऽन्वितः॥ ५३॥
पुलोमजे शृणु मम वचनं कालसम्मितम्। एष दैत्यो महादेववरात् सर्वजयी भवेत्॥ ५४॥
नास्त्यस्य जेता लोकेऽस्मिन् परलोके च विद्यते। स्त्रीभिर्वा न पराजेयः साक्षाद्गौरीमृतेऽसुरः॥
आगमिष्यति दूतस्ते नेतुं शीघ्रं महासुरः। त्वं मासं व्यवधिं कृत्वा गौरीमाराधय द्रुतम्॥ ५६॥
इत्युक्त्वा निर्गतो जीवः शची च परमेश्वरीम्। गौरीं समाराधयितुं तदैव समुपाक्रमत्॥ ५७॥
मूर्तिं पृथ्वीमयीं कृत्वा सिंहसंस्थां चतुर्भुजाम्। खड्गं च खेटकं शूलं मुद्गरं दधतीं शुभाम्॥ ५८॥
त्रिनेत्रां चन्द्रचूडालां मेचकाऽऽभां सुभूषिताम्। नानोपहारैराराध्य ध्यात्वाऽऽवाह्य यथाविधि॥

बने उस दैत्य को समझ कर युद्ध के मैदान से रमा के साथ भगवान् विष्णु तिरोहित हो गये॥ ४४॥ लक्ष्मी और विष्णु को पराजित मानकर दैत्याधिपति अपने सहचरों के साथ अपने स्थान लौट गये॥ ४५॥ लक्ष्मी और विष्णु की पराजय की बात गन्धर्व के मुख से सुनकर शची ने गुरु का स्मरण किया॥ ४६॥ स्मरण करते ही गुरु शची के पास पहुँच गये। उस आङ्गिरस मुनि को सामने उपस्थित देखकर शची उठ खड़ी हुई॥ ४७॥ उसके बाद भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम कर शची ने उनकी पूजा की। उनकी आँखों से अजस्र आँसुओं की धारा बह चली। अत्यन्त गिड़गिड़ाते हुए उसने गुरु से कहा॥ ४८॥ हे गुरुदेव! मैं अत्यन्त दुःखिनी हूँ, दैत्यराज से पीड़ित हूँ। वह महाबली मेरे पति को देवताओं के साथ बाँधकर ले गया है॥ ४९॥ देवराज मुझसे विचार-विमर्श करना चाहते हैं। उन्होंने छिपाकर युक्तिपूर्वक मेरे पास दूत भेजा है॥ ५०॥ उस दैत्य ने लक्ष्मी और नारायण को युद्ध में जीत लिया है और मुझे ले जाने के लिए आज या कल मेरे पास आने ही वाला है॥ ५१॥ मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मुझे शरण देने वाला कोई नहीं है। हे गुरुदेव! मैं आपकी शरण में हूँ, दीना हूँ, मेरी रक्षा करें॥ ५२॥ इस तरह देवताओं के साथ इन्द्राणी को रोते देखकर दया से द्रवित होकर ज्ञानदृष्टि से कुछ देखकर शची से कहा॥ ५३। हे शची! समयोचित मेरी बातों पर ध्यान दो। महादेव के वरदान के प्रभाव से यह दैत्य सर्वजयी बन गया है॥ ५४॥ लोक-परलोक में इसे जीतने वाला अभी कोई नहीं है। गौरी के सिवा कोई और नारी इसे पराजित नहीं कर सकती हैं॥ ५५॥ महासुर का दूत शीघ्र तुम्हें ले जाने के लिए आयेगा। इससे पहले ही एक महीने का संकल्प लेकर महागौरी की आराधना प्रारम्भ कर दो॥ ५६॥ यह कहकर देवगुरु बृहस्पति बाहर निकल गये और इधर शची रानी भी शीघ्रता के साथ महागौरी की आराधना में जुट गई॥ ५७॥ हाथों में गदा, शूल, मुद्गर और तलवार लिये चार भुजा वाली, सिंह पर बैठी महागौरी की मिट्टी की शुभमूर्त्ति बनाकर॥ ५८॥ तीन आँखों वाली, मुकुट की कलंगी पर चन्द्रमा विराजित, नीली कान्ति से सुशोभित और अनेक उपहारों से आराध्य भगवती का यथाविधि आवाहन एवं ध्यान कर॥ ५९॥ गुरु से उपदिष्ट एक सौ आठ नाम वाले स्तोत्र से स्तुति कर, भगवती के स्वरूप

गुरूपदिष्टस्तोत्रेण नामाऽष्टशतकात्मना । स्तुत्वा तदेकचित्ताऽभूत्तन्मन्त्रजपतत्परा ॥ ६० ॥
अथाऽसुरोऽपि स्मृत्वा तां शचीं कामशराऽऽहतः । दूतेन सह निर्गत्य देवलोकं समाययौ ॥ ६१ ॥
संस्थितो नन्दनवने दूतं तं प्रेषयद्द्रुतम् । अथ दूतः समागत्य शचीं प्रोवाच सन्नतः ॥ ६२ ॥
देवि दैत्येश्वरः प्राप्तः संस्थितो नन्दने वने । वसन्तकुसुमैश्छन्नो वसन्त इव रूपवान् ॥ ६३ ॥
त्वद्दर्शनं समाकाङ्क्षन् तव ध्यानैकतत्परः । त्वां समानयितुञ्चाऽहं प्रेषितोऽस्मि वरानने ॥ ६४ ॥
एहि त्वं चपलाऽपाङ्गि दैत्यराजं भज द्रुतम् । ब्रह्माण्डानां शतं यस्य वशे तन्महिषी भव ॥ ६५ ॥
अनेके धातृविष्णवाद्यास्त्वां सेवितुं स्त्रिया सह । या त्वयोक्ता पुरा लक्ष्मीस्तया युक्तो जनार्दनः ॥
निर्जितो युधि स्वं लोकं त्यक्त्वा भीत्या पलायितः । प्रबुद्धं ते महाभाग्यं यत्त्वां काङ्क्षति दैत्यराट् ॥
इति संश्रुत्य दूतस्य वाक्यं सा सुरराट्प्रिया । मनसा गर्हयन्ती तं प्राह वाक्यविशारदा ॥ ६८ ॥
शृणु मे वचनं दूत यन्मामिच्छति दैत्यराट् । चिरादेतद्वाञ्छितं मे घटितं कालपाकतः ॥ ६९ ॥
भविता नूतनतया पतिर्मे सुरराट् खलु । तत्र मासव्रतपरा स्थित्वा पतिसुखाय वै ॥ ७० ॥
समाप्तव्रतचर्याऽहं भजाम्यसुरभूपतिम् । व्रते पूर्णे वियोगो न भर्त्रा जातु भविष्यति ॥ ७१ ॥
विहते तु व्रते पत्युर्वियोगः स्याद्द्रुतं मम । नाऽहं पतिवियोगार्तिं भजामि व्रतयोगतः ॥ ७२ ॥
तद्गत्वा ब्रूहि दैत्येन्द्रं क्षम्यतां मासमात्रकम् । एवं शचीवचः श्रुत्वा दैत्यराजे निवेदयत् ॥ ७३ ॥
श्रुत्वा सोऽपि प्रसन्नस्तं प्रतीक्षन्समयं स्थितः । इन्द्राणी च प्रतिदिनं वायुमात्राऽशना सती ॥ ७४ ॥

के साथ एकचित्तता स्थापित कर मन्त्रजाप में तत्पर हुई ॥ ६० ॥ इधर वह दैत्य कामबाण से आहत होकर उस शची की याद कर दूत के साथ बाहर निकल कर देवलोक की ओर प्रस्थान किया ॥ ६१ ॥ यहाँ नन्दन वन में वह ठहर गया और दूत को शीघ्र शची को लाने के लिए भेज दिया। दूत ने शची के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम कर कहा ॥ ६२ ॥ हे देवि! दैत्येश्वर नन्दन वन में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे वसन्त पुष्पों से आच्छादित साक्षात् वसन्त की तरह रूपवान् है ॥ ६३ ॥ हे सुन्दरि! तुम्हें देखने के लिए वे आकुल हैं। तुम्हारे ध्यान में डूबे हैं। तुम्हें ले जाने के लिए मुझे तुम्हारे पास भेजा है ॥ ६४ ॥ हे चंचल आँखों वाली! आओ और दैत्यराज को स्वीकार करो। सैकड़ों ब्रह्माण्ड के स्वामी की राजमहिषी बनो ॥ ६५ ॥ अनेक विधाता एवं विष्णु अपनी पत्नियों के साथ तुम्हारी सेवा में तत्पर बने रहेंगे। जिस लक्ष्मी के बारे में तुमने पहले कहा था वह भी अपने पति विष्णु के साथ तुम्हारी सेवा में रहेगी ॥ ६६ ॥ युद्ध में इनसे हार कर लक्ष्मी और विष्णु अपना लोक छोड़ कर भाग चुके हैं। तुम महाभाग्य हो और जानती हो कि दैत्यराज तुम्हें चाहते हैं ॥ ६७ ॥ देवराज इन्द्र की पत्नी ने दूत की बातें सुनकर मन से उससे घृणा करती हुई बड़ी चतुराई के साथ उससे कहा ॥ ६८ ॥ हे दूत! मेरी बात सुनो। यदि दैत्यों के राजा मुझे चाहते हैं तो यह तो मेरी बहुत दिनों से मनचाही वस्तु ही यथावसर मुझे मिलने वाली है ॥ ६९ ॥ 'मेरा भावी दूसरा पति दैत्यराज होगा'— यह जानकर अपने पति के कल्याण के लिए मैं एक महीने का व्रत कर रही हूँ ॥ ७० ॥ यह व्रतानुष्ठान समाप्त कर मैं शीघ्र उनके पास पहुँच रही हूँ। व्रत समाप्त होने पर पति का वियोग मुझे नहीं सहना पड़ेगा ॥ ७१ ॥ अनुष्ठित व्रत के बीच यदि मैं उनसे मिलती हूँ तो मुझे शीघ्र पति का वियोग झेलना पड़ेगा। व्रतभंग के कारण मैं पति-वियोग नहीं झेलना चाहती हूँ ॥ ७२ ॥ इसलिए दैत्यराज से जाकर कहो कि वे मात्र एक महीने के लिए ही क्षमा करें। शची की ये बातें दूत ने जाकर दैत्यराज से निवेदित कर दीं ॥ ७३ ॥ यह बात सुनकर दैत्यराज भी खुश होते हुए एक महीने तक प्रतीक्षा करता रहा। इधर सती इन्द्राणी वायु पीकर निराहार व्रत में तल्लीन हुई ॥ ७४ ॥ नियन्त्रित इन्द्रिय, मन, वचन, कर्म से मन में स्थिर महागौरी

यता स्वान्तेन्द्रियाहारविहारवचनक्रिया । ध्यायन्नजस्रं श्रीगौरीपादाब्जं मनसि स्थिरम् ॥ ७५ ॥
दिनानामतियायैवं चतुर्गुणितसप्तकम् । ऊनत्रिंशद्दिने रात्रौ चिन्तयामास वै शची ॥ ७६ ॥
नाद्यापि देवी सम्प्रीता दिनमेकमिहाऽन्तरम् । ततोऽहं दैत्यराजस्य भविष्यामि नियन्त्रणे ॥ ७७ ॥
एतन्मे विषमं भाति किं कृत्वा स्याच्छुभं मम । नान्यो ह्युपायः प्रकृते महद्भयमुपस्थितम् ॥ ७८ ॥
आत्मदानं नोचितं वै दैत्यराजाय सर्वथा । तस्मादेकं प्रतीक्षिष्ये दिनं गौरीं समाहिता ॥ ७९ ॥
ततः प्रभातेऽमुं देहं देव्यै वह्नौ समर्पये । इति निश्चित्य देवेशपत्नी कुण्डं महत्तरम् ॥ ८० ॥
चकार तत्र भवने यत्र गौरी निवेशिता । कश्चिद्दैत्यपतेर्दूतः शचीं पप्रच्छ तं विधिम् ॥ ८१ ॥
सा प्राह मासनिर्वर्त्यं व्रतं पूर्णं भविष्यति । अहं श्वः कल्पसमये दैत्येशं तमनुव्रजे ॥ ८२ ॥
गच्छ दूत दैत्यपतिः सूर्यस्योदयनं प्रति । आगच्छत्विह मां नेतुं सन्नद्धः समलंकृतः ॥ ८३ ॥
श्रुत्वा दूतः शचीवाक्यं तथ्यं मत्वाऽसुरेश्वरे । निवेदयत् सोऽपि हृष्टः कालं तं प्रसमीक्षत ॥ ८४ ॥
अथेन्द्राणी महापूजां कृत्वा देव्यै समर्हणैः । एधांसि कुण्डे निक्षिप्य प्रज्वाल्य ज्वलिताऽनले ॥
ध्यात्वा गौरीं भक्तियुता स्वदेहं होतुमिच्छया । सूर्योदयं समालक्ष्य परिक्रम्य च पावकम् ॥ ८६ ॥
बद्ध्वाऽञ्जलिं प्रणम्याऽथ प्रार्थयामास शङ्करीम् । नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै ते समर्पये ॥ ८७ ॥
इमं देहं तेन देवी प्रीताऽस्तु परदेवता । इति प्रार्थ्य शची यावत्पावके देहपातनम् ॥ ८८ ॥
वाञ्छन्ती तावदाकाशे वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् । अकस्मादभवद्धोरनिःस्वनोऽतिभयङ्करः ॥ ८९ ॥
तं श्रुत्वा च महाशब्दमपश्यद्गगनाऽङ्गणे । सिंहं सुवर्णसङ्काशं शैलराजमिवोन्नतम् ॥ ९० ॥

के चरणकमलों का ध्यान करती हुई ॥ ७५ ॥ इस तरह अट्ठाईसवाँ दिन बीत जाने के बाद उनतीसवें दिन की रात में शची ने विचार किया ॥ ७६ ॥ आज तक भी देवी मुझ पर प्रसन्न नहीं हुई। मात्र एक दिन का ही तो अन्तर बचा है, इसके बाद तो मुझे दैत्यराज के नियन्त्रण में ही रहना पड़ेगा ॥ ७७ ॥ यह तो मुझे बड़ा ही विषम प्रतीत होता है। क्या करने पर मेरा कल्याण होगा? इस प्रकरण प्राप्त भय के आने पर मुझे कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता है ॥ ७८ ॥ दैत्यराज के सामने आत्मसमर्पण करना तो सर्वथा अनुचित है ही। अतः अब महागौरी के एकनिष्ठ व्रत की भी एक ही दिन की प्रतीक्षा रह गई है ॥ ७९ ॥ कल प्रभात वेला में ही देवी के लिए इस देह को प्रज्वलित अग्नि में समर्पित कर दूँगी। यह निश्चय कर शची ने एक विशाल कुण्ड का ॥ ८० ॥ उस भवन में निर्माण किया, जहाँ महागौरी स्थापित थी। इसी समय दैत्यराज का दूत इस प्रक्रिया के बारे में आकर उनसे पूछा ॥ ८१ ॥ उन्होंने कहा—महीना पूरा होने पर मेरा व्रत पूरा हो जायेगा। मैं कल उचित समय पर दैत्यराज के पास जाऊँगी ॥ ८२ ॥ हे दूत! तुम दैत्यराज के पास लौट जाओ और सूर्योदय से पहले तैयार होकर मुझे ले जाने के लिए यहाँ आ जाओ ॥ ८३ ॥ शची की बात सत्य मानकर दूत दैत्यराज के पास पहुँचा और उसे उसी तरह निवेदित कर दिया। यह सुनकर दैत्यराज खुश हो गया और समय की प्रतीक्षा करने लगा ॥ ८४ ॥ इधर इन्द्राणी ने देवी की महापूजा समाप्त कर हवनकुण्ड में ज्वलित अग्नि को रखकर उसे प्रज्वलित कर दिया ॥ ८५ ॥ भक्तिपूर्वक गौरी का ध्यान कर इन्द्राणी अपने देह की आहुति डालने की इच्छा से सूर्य को उदित होते देखकर अग्निदेव की परिक्रमा पूरी कर ॥ ८६ ॥ अंजलि बाँधकर उन्हें प्रणाम करने के बाद उस शंकरी की उसने प्रार्थना की—'देवी को मेरा प्रणाम, महादेवी को मेरा प्रणाम, शिवा के लिए यह मेरा समर्पण है ॥ ८७ ॥ मेरी इस देह के समर्पण से वह परम देवता प्रसन्न हो'। इतनी प्रार्थना कर ज्यों ही शची ने हवनकुण्ड में आत्मदाह करना चाहा ॥ ८८ ॥ तक तब आकाश में वज्रपात से अधिक निष्ठुर, अतिभयंकर अकस्मात् घोर आवाज सुनायी पड़ी ॥ ८९ ॥ इस कठोर आवाज को सुनकर शची

तस्योपरि महादेवीं पूज्यमूर्तिसमाकृतिम् । दृष्ट्वा नमस्कृत्य शची हर्षव्याकुलिताऽन्तरा ॥ ९१ ॥
अथ तं शब्दमाकर्ण्य तारकेयो सुरेश्वरः । खड्गहस्तस्तं निनदमनुप्राद्रवदम्बरे ॥ ९२ ॥
दृष्ट्वा जघान खड्गेन तं सिंहं मूर्ध्नि कोपितः । पतितः सिंहमूर्ध्न्याशु पफाल शतधाऽऽयुधम् ॥
अथ गौरी समालोक्य दैत्यं रोषारुणेक्षणा । जघान हृदि शूलेन भिन्नवक्षाः पपात ह ॥ ९४ ॥
अथ शीघ्रं समुत्थाय दैत्योऽन्तर्धिं समागतः । क्षणेनैव महासैन्यं ससर्जाऽऽकाशमण्डले ॥ ९५ ॥
अथाऽभवन्महायुद्धं भवानीदैत्यसेनयोः । गौरीनिःश्वाससम्भूता मातृका मन्युदीपिताः ॥ ९६ ॥
कोटिकोटिगणैर्युक्ता युयुधुर्दैत्यसेनया । मातृकाभिः स्वीयसेनां प्रनष्टां प्रेक्ष्य दैत्यराट् ॥ ९७ ॥
भूयः ससर्ज परमं दैत्यसैन्यं महत्तरम् । निमेषेणैव तदपि मातृकाभिर्विनाशितम् ॥ ९८ ॥
अथ दैत्यपतिर्मत्वा मातृका बलवत्तराः । ससर्ज त्र्यम्बकं देवं शिवं चन्द्रावतंसकम् ॥ ९९ ॥
स शिवः शूलमुद्यम्य गौर्या योद्धुं समाययौ । तं दृष्ट्वा मातृकाः सर्वा बभूवुर्न्यस्तहेतिकाः ॥
मत्वा गौरीपतिं शम्भुमथ सा शङ्करी जगौ । नायं शिवो मम पतिरेष दैत्यविनिर्मितः ॥ १०१ ॥
असाम्प्रतं हि शस्त्रस्य हानं मायाविनां रणे । इत्युक्त्वा मातृकामोहनाशनाय महेश्वरी ॥ १०२ ॥
सस्मार शङ्करं देवं सोऽपि स्मरणमात्रतः । आविरासीच्छूलपाणिः पार्षदैः परिवारितः ॥ १०३ ॥
दृष्ट्वा पिनाकिनं तां वै युयुधुर्धृतहेतिकाः । अथ ब्रह्मादयो देवा यक्षा गन्धर्वकिन्नराः ॥ १०४ ॥
नागा गणाश्चाप्सरसः सिद्धाः किम्पुरुषा अपि । अभ्यागमन् दैत्यराजगौर्योर्युद्धदिदृक्षवः ॥ १०५ ॥

आकाश कीं ओर देखने लगी। आकाश में उन्होंने देखा—पर्वतराज हिमालय की तरह विशाल सोने के रंग का एक सिंह॥ ९० ॥ उस सिंह पर पूज्य मूर्ति की तरह महादेवी बैठी थी, उन्हें देखकर प्रणाम कर शची का हृदय हर्ष से व्याकुल हो उठा॥ ९१ ॥ उंस कठोर शब्द को सुनकर तारकासुर ने हाथ में तलवार लेकर उस आवाज का अनुसरण करते हुए आकाश की ओर देखा॥ ९२ ॥ आकाश में यह देखकर क्रुद्ध दैत्यराज ने सिंह के सिर पर तलवार से प्रहार किया। सिंह के सिर पर गिरते ही वह तलवार सौ टुकड़ों में बिखर गई॥ ९३ ॥ उस दैत्य को देखते ही महागौरी की आँखें लाल हो उठीं, उन्होंने दैत्य की छाती में त्रिशूल से प्रहार किया, उसकी छाती फटी और वह गिर गया॥ ९४॥ इसके बाद वह महादैत्य शीघ्र ही उठकर आकाश में चला गया और एक क्षण में ही उसने महासैन्य की रचना कर डाली॥ ९५॥ अब भवानी और महादैत्य की सेना के बीच घनघोर युद्ध आरम्भ हो गया। इधर गौरी की साँस से क्रोध से प्रदीप्त मातृकाएँ उत्पन्न हुईं॥ ९६ ॥ करोड़ों-करोड़ गणों से युक्त दैत्यसेना से वे युद्ध करने लगीं। मातृकाओं से अपनी सेना को विनष्ट होती देख इधर दैत्यराज ने॥ ९७ ॥ पुनः परम शक्तिशालिनी महत्तर दैत्यसेना की रचना कर डाली, जिन्हें पलक झपकते ही मातृकाओं ने विनष्ट कर डाला॥ ९८ ॥ अब दैत्यराज ने मातृकाओं को अपने से अधिक बलवान् मानकर त्र्यम्बक चन्द्रचूड़ की रचना कर डाली॥ ९९ ॥ वह शिव शूल हाथ में लेकर गौरी से युद्ध करने लगे। इस शिव को देखकर सारी मातृकाएँ अपने हाथों से हथियार फेंक डालीं॥ १०० ॥ इन्हें गौरी के पति शिव मानकर वे शंकरी के पास चली गईं। शंकरी ने उन्हें समझाया—ये उनके पति शिव नहीं है बल्कि दैत्य-निर्मित शिव हैं॥ १०१ ॥ इस मायावी के युद्ध में तुमने हथियार फेंककर उचित नहीं किया। यह कहकर मातृकाओं के मोह को विनष्ट करने के लिए महेश्वरी ने॥ १०२ ॥ भगवान् शिव का स्मरण किया और इस स्मरण मात्र से ही महादेव शूलपाणि भी अपने अनुचरों से घिरे उसी क्षण वहाँ प्रादुर्भूत हुए॥ १०३ ॥ उस पिनाकी शिव को देखकर पुनः मातृकाएँ अपना-अपना हथियार उठाकर युद्ध करने लगीं। इधर ब्रह्मादि देवगण, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर॥ १०४॥ नाग, अन्य गण, अप्सराएँ तथा सिद्ध गौरी और दैत्यराज का युद्ध देखने

अथाऽभवद्दैत्यपतिगौर्योः परमदारुणम् । युद्धं तत्राऽसुरपतिः सेनाश्च बहुधाऽसृजत् ॥ १०६ ॥
सृष्टमात्रं क्षणेनैव मातृकाभिर्विनाश्यते । अथ स्वसृष्टाऽण्डगणे प्रविलीयत चाऽसुरः ॥ १०७ ॥
विदित्वाऽण्डे विलीनं तं संक्रुद्धा शङ्करी तदा । अथ क्रोधात्समुत्पन्ना महाकाली विभीषणा ।
दिगम्बरा मुक्तकेशी मुण्डमालाविभूषिता । करवालकरां तां दृष्ट्वा प्रोवाच शङ्करी ॥ १०९ ॥
कालि शीघ्रं दैत्यसृष्टान्यण्डानि ध्वंसयेति वै । श्रुत्वा निर्गत्य सा काली ब्रह्माण्डानि शतं क्षणात् ॥
बिभेद करवालेन भक्षयामास ताः प्रजाः । एवं विनष्टेऽण्डगणे दैत्यो धृतमहायुधः ॥ १११ ॥
आजगाम नियुद्धाय सेनां स्रष्टुं मनो दधे । तावद्गौरी महादैत्यं पातयित्वा महीतले ॥ ११२ ॥
पादेनाऽऽक्रम्य हृदये शूलेन शिर आच्छिनत् । स छिन्नमूर्धा शूलेन विगतासुरभूत्तदा ॥ ११३ ॥
एवं दैत्येश्वरवधं निशम्य विधिमुख्यकाः । जयेति शब्दं व्याजह्रुर्ववर्षुः कुसुमैर्वृषा ॥ ११४ ॥
संस्तुत्य विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । बद्धाञ्जलिपुटाः प्राहुर्देवास्तां सिंहवाहिनीम् ॥
भवानि दैत्यराजोऽयं भवत्या विनिपातितः । देवशत्रुः सर्वलोककण्टको बलवत्तरः ॥ ११६ ॥
नेमं हन्तुं हरिर्वाऽपि हरो वा प्रभवेत् क्वचित् । कुत इन्द्रादयो देवाः प्रभवः स्युर्महेश्वरि ॥ ११७ ॥
अस्य दुष्टस्य संहृत्या पालितं पुत्रवज्जगत् । तस्मात्त्वं जगदम्बेति स्थाने प्रत्यक्पयोनिधेः ॥
तीरे ख्याता महादेवि भविष्यसि महीतले । पूजिता वाञ्छितानर्थान्मर्त्यानां त्वं प्रयच्छसि ॥
इति संस्तुत्य नत्वा ते प्रययुर्निजमन्दिरम् । अथेन्द्राण्यपि तत्रैव यत्र दैत्यो निपातितः ॥ १२० ॥
अभ्यागत्य प्रणम्याऽम्बामाह वाक्यं कृताञ्जलिः । गौर्यहं दुःखजलधिनिमग्नाऽभ्युद्धृता त्वया ॥

के लिए वहाँ आ गये ॥ १०५ ॥ गौरी के साथ दैत्यराज का घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इधर दैत्यराज ने अपनी अनेकविध सेना की रचना प्रारम्भ कर दी ॥ १०६ ॥ उधर दैत्यराज सेना की रचना करता और इधर पलक झपकते ही मातृकाएँ उसे विनष्ट कर डालतीं। अब दैत्यराज अपने निर्मित ब्रह्माण्ड में जा छिपा ॥ १०७ ॥ अपने ब्रह्माण्ड में विलीन उसे जानकर शंकरी अत्यन्त क्रुद्ध हो गई और अपने क्रोध से भयंकरी काली को उत्पन्न कर दिया ॥ १०८ ॥ दिगम्बरा, मुक्तकेशी, मुण्डमाला से विभूषित हाथ में खुली तलवार लिये उन्हें देखकर शंकरी ने उनसे कहा ॥ १०९ ॥ हे कालि! दैत्यों द्वारा रचित इन ब्रह्माण्डों को तुम शीघ्र नष्ट कर डालो। यह सुनकर वहाँ से निकलकर काली ने उन सैकड़ों ब्रह्माण्डों को एक क्षण में ही ॥ ११० ॥ अपनी तलवार से चीर कर उनकी प्रजा को खा डाला। इस तरह अपने रचित ब्रह्माण्ड को विनष्ट होते देख वह राक्षसराज भयंकर आयुध उठाकर ॥ १११ ॥ युद्ध करने के लिए रणागण में आ डटा और नई सेना की रचना की ओर ध्यान दिया। इसी बीच महागौरी ने दैत्यराज को धरती पर पटक कर ॥ ११२ ॥ पैरों से रोंदकर छाती में त्रिशूल चुभाकर सिर काट डाला। गर्दन कटने के बाद वह दैत्यराज मर गया ॥ ११३ ॥ इस तरह दैत्यराज का वध सुनकर विधिप्रमुख देवगणों ने जय-जयकार करते हुए फूलों की वर्षा की ॥ ११४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति देवगणों ने विविध स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर बद्धाञ्जलि होकर उस सिंहवाहिनी से कहा ॥ ११५ ॥ हे भवानि! यह दैत्यराज आपसे मारा गया। यह देवताओं का शत्रु था, सबलोगों का कण्टक था और महान् बलशाली था ॥ ११६ ॥ इसे न तो विष्णु मार सकते थे और न महादेव ही, फिर इन्द्रादि देवताओं की बात ही क्या? हे महेश्वरि! ॥ ११७ ॥ आपने इस दुष्ट का विनाश कर पुत्रवत् संसार का पालन किया है, इसलिए आप जगदम्बा हैं। आप पश्चिमी सागर के ॥ ११८ ॥ तट पर महादेवी के नाम से पृथ्वी पर विख्यात होंगी। जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे उन्हें तुम वांछित फल प्रदान करोगी ॥ ११९ ॥ इस तरह उनकी स्तुति कर उन्हें प्रणाम कर वे देवगण अपने-अपने घर लौट गये। इधर इन्द्राणी भी वहीं जहाँ दैत्य गिरा था ॥ १२० ॥

प्रणताऽस्मि जगद्धात्रि गौरि दीनार्तिहारिणि। इत्युक्त्वा पादयोरग्रे प्रणता देवराट्प्रिया॥ १२२॥
अथ गौरी शचीं प्राह सन्तुष्टा स्मितपूर्वकम्। इन्द्राण्यहं प्रसन्नाऽस्मि वरं ब्रूह्यभिवाञ्छितम्॥
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः शची प्रोवाच सन्नता। देवि तुष्टा यदि मम वरं देहि ममेप्सितम्॥ १२४॥
महाऽऽपत्सु स्तुता येन नामाऽष्टशतकाऽऽत्मना। स्तवेन तं महाऽऽपद्भ्यः समभ्युद्धर मामिव॥
त्वत्पादपद्मयोर्भक्तिर्भूयान्मम सुनिश्चला। अथ गौरी प्राह शचीं प्रसन्नां वचनं शुभम्॥ १२६॥
इन्द्राणि यत्त्वया प्रोक्तं तत्तथैवाऽस्तु सर्वथा। व्रज स्वं स्थानमित्युक्त्वा चाऽन्तर्धानं जगाम सा॥
इति ते वीर्यमाख्यातं गौर्याः सर्वोत्तमोत्तमम्। शृण्वतां पापशमनं गौरीं तां नग पूजय॥ १२८॥
इत्युक्त्वा हिमशैलाय गौर्य्या वीर्यकथां शुभाम्। ययौ शैलाऽभ्यनुज्ञातो नारदोऽम्बरमार्गतः॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे गौर्युपाख्यानं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः॥ २२६४॥



वहाँ आकर गौरी को प्रणाम कर शची ने अञ्जलिबद्ध होकर कहा—हे गौरि! दुःखसागर में डूबती हुई मेरा आपने उद्धार किया॥ १२१॥ मैं आपके सामने प्रणत हूँ, जगन्मातः गौरि! आप दीन-दुःखियों के दुःख हरने वाली हो। यह कहकर उनके चरणों में देवराज-पत्नी प्रणत हुई॥ १२२॥ तब गौरी ने सन्तुष्ट होकर मुस्कराते हुए शची से कहा—हे इन्द्राणी! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम मनोवांछित वरदान माँग लो॥ १२३॥ देवी की यह बात सुनकर अति विनम्र होकर शची ने कहा—हे देवि! यदि आप मुझ पर सन्तुष्ट हैं तो मुझे वांछित वर दें॥ १२४॥ घोर विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति जो तुम्हारी स्तुति तुम्हारे एक सौ आठ नाम से करें उसका तुम मेरी ही तरह उद्धार करो॥ १२५॥ तुम्हारे चरणों की सुनिश्चल भक्ति मुझे मिले। शची की बात सुनकर गौरी ने प्रसन्न होकर कहा—शची! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुमने जैसा माँगा है, वैसा ही होगा। अब तुम अपने घर लौट जाओ। यह कहकर गौरी अन्तर्धान हो गई॥ १२६-१२७॥ इस तरह गौरी के सर्वोत्कृष्ट पराक्रम को जो सुनेगा उसका पाप नष्ट होगा। अतः हे पर्वतराज हिमालय! गौरी की पूजा करो॥ १२८॥ हिमालय को गौरी के पराक्रम की कल्याणकारी कथा सुनाकर नारदजी आकाशमार्ग से चलते बने॥ १२९॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में गौरी-उपाख्यान नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२६४॥



अथाऽष्टाविंशोऽध्यायः

इति श्रुत्वा कथां पुण्यां गौरीवीर्यविचित्रिताम्। अपृच्छद्भार्गवो भूयो दत्तात्रेयं महामुनिम्॥ १ ॥
भगवन्नद्भुततमं गौर्या वीर्यमुदाहृतम्। शृण्वतो न हि मे तृप्तिः कथां ते मुखनिःसृताम्॥ २ ॥
गौर्या नामाऽष्टशतकं यच्छच्यै धिषणो जगौ। तन्मे कथय यच्छ्रोतुं मनो मेऽत्यन्तमुत्सुकम्॥
भार्गवेणेत्थमापृष्टो योगिराडत्रिनन्दनः। अष्टोत्तरशतं नाम्नां प्राह गौर्या दयानिधिः॥ ४ ॥
जामदग्न्य शृणु स्तोत्रं गौरीनामभिरङ्कितम्। मनोहरं वाञ्छितदं महाऽऽपद्विनिवारणम्॥ ५ ॥
स्तोत्रस्याऽस्य ऋषिः प्रोक्त अङ्गिराश्छन्द ईरित। अनुष्टुप् देवता गौरी आपन्नाशाय यो जपेत्॥
ह्लां ह्लीं इत्यादि विन्यस्य ध्यात्वा स्तोत्रमुदीरयेत्।
सिंहसंस्थां मेचकाऽऽभां कौसुम्भांऽशुकशोभिताम्॥ ७॥
खड्गं खेटं त्रिशूलञ्च मुद्गरं बिभ्रतीं करैः। चन्द्रचूडां त्रिनयनां ध्यायेद्गौरीमभीष्टदाम्॥ ८ ॥
गौरी गोजननी विद्या शिवा देवी महेश्वरी। नारायणाऽनुजा नम्रभूषणा नुतवैभवा॥ ९ ॥
त्रिनेत्रा त्रिशिखा शम्भुसंश्रया शशिभूषणा। शूलहस्ता श्रुतधरा शुभदा शुभरूपिणी॥ १०॥
उमा भगवती रात्रिः सोमसूर्याऽग्निलोचना। सोमसूर्यात्मताटङ्का सोमसूर्यकुचद्वयी॥ ११॥
अम्बाऽम्बिकाऽम्बुजधराऽम्बुरूपा प्यायिनी स्थिरा।
शिवप्रिया शिवाऽङ्कस्था शोभना शुम्भनाशिनी॥ १२॥

*** विमला ***

भगवती गौरी के पराक्रम की पुण्यप्रदा विचित्र कथा सुनकर भार्गव ने मुनि दत्तात्रेय से पुनः पूछा॥ १॥ हे भगवन्! महागौरी के पराक्रम की अद्भुत कथा आपने सुनायी। किन्तु आपके मुख से निकली इस कथा को सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई॥ २॥ गौरी के एक सौ आठ नाम वाला स्तोत्र जो देवगुरु बृहस्पति ने शची को बतलाया था, उसे सुनने के लिए मेरा मन अत्यन्त उत्सुक है; कृपया मुझे बतला दें॥ ३॥ परशुराम के इस तरह पूछने पर योगीराज अत्रिनन्दन ने अष्टोत्तरशत नामक गौरी का स्तोत्र बतलाया॥ ४॥ हे परशुराम! गौरी का नामाङ्कित स्तोत्र सुनो। यह स्तोत्र अतिमनोहर, अभिलषित वस्तु का प्रदाता एवं निवारक है॥ ५॥ इस स्तोत्र के अङ्गिरा ऋषि है, छन्द अनुष्टुप् है, देवता गौरी है। आपत्ति-निवारण के लिए इसका जप करें॥ ६॥ 'ह्लां, ह्लीं' इस मन्त्र से विन्यास कर तब गौरी का ध्यान कर स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। भगवती गौरी का ध्यान है—सिंह पर बैठी, गहरे नीले रंग की आभा फैलाती, रेशमी वस्त्र से सुशोभित॥ ७॥ हाथों में तलवार, गदा, त्रिशूल एवं मुद्गर लिये, मुकुट पर चन्द्रमा विराजित, तीन आँखों वाली, अभीष्ट फल देने वाली गौरी का ध्यान करना चाहिए॥ ८॥ १. गौरी, २. गो, ३. जननी, ४. विद्या, ५. शिवा, ६. देवी, ७. महेश्वरी, ८. नारायणानुजा, ९. नम्रभूषणा, १०. मुतवैभवा॥ ९॥ ११. त्रिनेत्रा, १२. त्रिशिखा, १३. शम्भुसंश्रया, १४. शशिभूषणा, १५. शूलहस्ता, १६. श्रुतधरा, १७. शुभदा, १८. शुभरूपिणी॥ १०॥ १९. उमा, २०. भगवती, २१. रात्रि, २२. सोम-सूर्याग्निलोचना, २३. सोमसूर्यात्मताटङ्का, २४. सोमसूर्यकुचद्वयी॥ ११॥ २५. अम्बा, २६. अम्बिका, २७. अम्बुजधरा, २८. अम्बुजरूपा, २९. प्यायिनी, ३०. स्थिरा, ३१. शिवप्रिया, ३२. शिवाङ्कस्था,

खड्गहस्ता खगा खेटधरा खाच्छनिभाऽऽकृतिः । कौसुम्भचेला कौसुम्भप्रिया कुन्दनिभद्विजा ॥
काली कपालिनी क्रूरा करवालकरा क्रिया । काम्या कुमारी कुटिला कुमाराऽम्बा कुलेश्वरी ॥
मृडानी मृगशावाक्षी मृदुदेहा मृगप्रिया । मृकुण्डुपूजिता माध्वीप्रिया मातृगणेडिता ॥ १५ ॥
मातृका माधवी माद्यन्मानसा मदिरेक्षणा । मोदरूपा मोदकरी मुनिध्येया मनोन्मनी ॥ १६ ॥
पर्वतस्था पर्वपूज्या परमा परमाऽर्थदा । परात्परा परामर्शमयी परिणताऽखिला ॥ १७ ॥
पाशिसेव्या पशुपतिप्रिया पशुवृषस्तुता । पश्यन्ती परचिद्रूपा परीवादहरा परा ॥ १८ ॥
सर्वज्ञा सर्वरूपा सासम्पत्तिः सम्पदुन्नता । आपन्निवारिणी भक्तसुलभा करुणामयी ॥ १९ ॥
कलावती कलामूला कलाकलितविग्रहा । गणसेव्या गणेशाना गतिर्गमनवर्जिता ॥ २० ॥
ईश्वरीशानदयिता शक्तिः शमितपातका । पीठगा पीठिकारूपा पृषत्पूज्या प्रभामयी ॥ २१ ॥
महामाया मतङ्गेष्टा लोकाऽलोका शिवाऽङ्गना । एतत्तेऽभिहितं राम स्तोत्रमत्यन्तदुर्लभम् ॥
गौर्या अष्टोत्तरशतनामभिः सुमनोहरम् । आपदाम्भोधितरणे सुदृढप्लवरूपकम् ॥ २३ ॥
एतत् प्रपठतां नित्यमापदो यान्ति दूरतः । गौरीप्रसादजननमात्मज्ञानप्रदं नृणाम् ॥ २४ ॥
भक्त्या प्रपठतां पुंसां सिध्यत्यखिलमीहितम् । अन्ते कैवल्यमाप्नोति सत्यं ते भार्गवेरितम् ॥ २५ ॥
श्रुत्वेत्थं नारदवचः प्रालेयाद्रिर्महामतिः । गौरीमुद्दिश्य तपसि निश्चलं मन आदधे ॥ २६ ॥
अथ पुण्यनदीतीरे सभार्यः पर्वताऽधिपः । स्नात्वा सुखाऽऽसनाऽऽसीनो देवर्षिप्रोदितक्रमात् ॥
ध्यात्वा मूर्तिं महागौर्याः सिंहसंस्थां विभूषिताम् । अभ्यर्च्य विविधाऽऽकारैरुपहारैः सुभक्तितः ॥

---

३३. शोभना, ३४. शुम्भनाशिनी ॥ १२ ॥ ३५. खड्गहस्ता, ३६. खगा, ३७. खेटधरा, ३८. खात्, ४०. शनि-भाकृति, ४१. कौसुम्भचेला, ४२. कौसुम्भप्रिया, ४३. कुन्दनिभा, ४४. द्विजा ॥ १३ ॥ ४५. काली, ४६. कपालिनी, ४७. क्रूरा, ४८. करवालकरा, ४९. क्रिया, ५०. काम्या, ५१. कुमारी, ५२. कुटिला, ५३. कुमाराम्बा, ५४. कुलेश्वरी ॥ १४ ॥ ५५. मृडानी, ५६. मृगशावाक्षी, ५७. मृदुदेहा, ५८. मृगप्रिया, ५९. मृकुण्डुपूजिता, ६०. माध्वीप्रिया, ६१. मातृगणेडिता ॥ १५ ॥ ६२. मातृका, ६३. माधवी, ६४. माद्य-न्मानसा, ६५. मदिरेक्षणा, ६६. मोदरूपा, ६७. मोदकरी, ६८. मुनिध्येया, ६९. मनोन्मनी ॥ १६ ॥ ७०. पर्वतस्था, ७१. पर्वपूज्या, ७२. परमा, ७३. परमार्थदा, ७४. परात्परा, ७५. परामर्शमयी, ७६. परिणता-खिला ॥ १७ ॥ ७७. पाशिसेव्या, ७८. पशुपतिप्रिया, ७९. पशुवृषस्तुता, ८०. पश्यन्ती, ८१. परचिद्रूपा, ८२. परीवादहरा, ८३. परा ॥ १८ ॥ ८४. सर्वज्ञा, ८५. सर्वरूपा, ८६. सासम्पत्ति, ८७. सम्पदुन्नता, ८८. आपन्निवारिणी, ८९. भक्तसुलभा, ९०. करुणामयी ॥ १९ ॥ ९१. कलावती, ९२. कलामूला, ९३. कला-कलितविग्रहा, ९४. गणसेव्या, ९५. गणेशाना, ९६. गतिर्गमनवर्जिता ॥ २० ॥ ९७. ईश्वरी, ९८. ईशान-दयिता, ९९. शक्ति, १००. शमितपातका, १०१. पीठगा, १०२. पीठिकारूपा, १०३. पृषत्पूज्या, १०४. प्रभा-मयी ॥ २१ ॥ १०५. महामाया, १०६. मतङ्गेष्टा, १०७. लोकालोका और १०८. शिवाङ्गना। हे राम! यह अत्यन्त दुर्लभ 'अष्टोत्तरशत' नामक स्तोत्र मैंने तुमसे कहा ॥ २२ ॥ गौरी के १०८ नामों से जुड़ा यह मनोहर स्तोत्र विपत्तिसागर में डूबते व्यक्ति के लिए मजबूत डोंगी (नाव) है ॥ २३ ॥ इस स्तोत्र का जो नित्य पाठ करता है, विपत्ति उससे दूर भाग जाती है, गौरी की कृपा होती है और मनुष्य का आत्मज्ञान जगता है ॥ २४ ॥ भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति इसका पाठ करता है उसकी सारी वाँछित वस्तु उसे मिलती है और अन्त में उसे मुक्ति मिलती है। हे भार्गव! यह सत्य है ॥ २५ ॥ नारद की ये बातें सुनकर नगाधिराज हिमालय गौरी-निमित्तक तपस्या में लीन हो गये ॥ २६ ॥ गङ्गातट पर हिमालय अपनी पत्नी के साथ स्नान कर देवर्षि नारद द्वारा बतलाये गये क्रम से सुखासन पर बैठकर ॥ २७ ॥ सिंह पर सवार,

ध्यानैकतत्परो नित्यमभूत् प्रालेयपर्वतः । ध्यानादुपरतः स्तोत्रं पठत्येतत् पुनः पुनः ॥ २९ ॥
पक्वपर्णाऽशनो दान्तो मौनी स्थण्डिलसंश्रयः । तपस्तेपे पर्वतेन्द्रो वर्षद्वादशकं ततः ॥ ३० ॥
गौरी प्रसन्ना तस्याग्रे ध्यानरूपं समास्थिता । प्रोवाच तं पर्वतेन्द्रं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३१ ॥
नगेन्द्र त्वं किमुद्दिश्य तपश्चरसि तद्वद । अलं ते घोरतपसा ददामि वरमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
तच्छ्रुत्वा पर्वताऽधीशः प्रणम्य भुवि दण्डवत् । बद्धाऽञ्जलिपुटः स्तुत्वा स्तोत्रैर्नामसमन्वितैः ॥
शिरस्यञ्जलिमाधाय तां गौरीमभियाचत । देवि गौरि नमस्तुभ्यं शङ्करप्रियदर्शने ॥ ३४ ॥
अनपत्यत्वदोषाऽग्निदग्धं मामनुजीवय । इति श्रुत्वा नगवचः प्राह गौरी नगेश्वरम् ॥ ३५ ॥
पर्वतेश न तेऽपत्यं पुरुषं जातु विद्यते । कन्यैका मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ ३६ ॥
अथाऽब्रवीद्धिमगिरिः प्रणम्य रचिताऽञ्जलिः । देवि कन्यापितृत्वन्तु दुःखायेति बुधा जगुः ॥
यदि कन्यैव मे भूयात्तन्मे त्वं तनुजा भव । न ह्यन्यथा प्रतीच्छामि वरं त्वद्दत्तमप्युत ॥ ३८ ॥
श्रुत्वा हिमवता प्रोक्तं प्राह गौरी महेश्वरी । नगाधिराज न ततुं धारयामि कदाचन ॥ ३९ ॥
कन्या चैका प्रदिष्टा मे न ततस्तेऽधिकं भवेत् । इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता सद्यो मनोरथशरीरिवत् ॥
अथाऽद्रिराजस्तपसि पुनर्निश्चितमानसः । आतिष्ठदत्युग्रतरं तपस्तापससम्मतम् ॥ ४१ ॥
अब्भक्षो वर्षशतकं वायुभक्षस्तथा शतम् । एवं शतद्वयेऽतीते वह्निकुण्डं महत्तरम् ॥ ४२ ॥
कृत्वोर्ध्वे रज्जुशतकं विटपे वटशाखिनः । बद्ध्वा तत् सन्निवेश्य स्वपादयोर्हिमवांस्ततः ॥ ४३ ॥

विभूषित महागौरी की मूर्ति का ध्यान कर पूर्ण भक्ति के साथ अनेक उपहारों से उनकी अभ्यर्चना कर प्रालेय पर्वत पर नित्य ध्यानावस्थित हुए। ध्यान समाप्त होने के बाद बार-बार हिमराज स्तोत्र पाठ करने लगे॥ २८-२९॥ नगेन्द्र ने बारह साल तक सूखी पत्ती चबाकर इन्द्रियों को नियन्त्रित कर मौन धारण कर धरती पर सोकर कठोर तप किया॥ ३०॥ उस पर प्रसन्न होकर जिस रूप में पर्वतराज ने गौरी का ध्यान किया था उसी रूप में गौरी ने प्रकट होकर हिमालय को गम्भीर वाणी में कहा॥ ३१॥ हे नगेन्द्र! तुमने किस उद्देश्य से यह तप किया है, बतलाओ। इससे अधिक तप करना बेकार है, मैं तुम्हें उत्तम वरदान देती हूँ॥ ३२॥ यह सुनकर पर्वताधीश ने धरती पर गिरकर उन्हें प्रणाम किया, फिर बद्धाञ्जलि होकर एक सौ आठ नाम वाले स्तोत्र स स्तुति कर॥ ३३॥ सिर से अंजलि लगाकर उन्होंने गौरी से याचना की। हे देवि गौरी! हे शंकरप्रियदर्शनि! तुम्हें मेरा प्रणाम स्वीकार हो॥ ३४॥ सन्तान नहीं होने के दोष रूपी आग में दिन-रात जलते मेरे जीवन की रक्षा करो। उनकी बातें सुनकर गौरी ने पर्वतेश्वर से कहा॥ ३५॥ हे पर्वतेश! तुम्हे बेटे का सुख नहीं लिखा है। हाँ, मेरी कृपा से तुम्हें एक बेटी होगी, इसमें संशय नहीं करो॥ ३६॥ हिमगिरि ने अंजलि बाँधकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—हे देवि! बुद्धिमान् लोगों की दृष्टि में कन्या का जन्म तो दुःख के लिए होता है॥ ३७॥ यदि कन्या होना ही मुझे लिखा है तो आप मेरी बेटी बनकर जन्म ग्रहण कीजिये। इससे बड़ा कोई भी वर मुझे नहीं चाहिए॥ ३८॥ हिमालय की बातें सुनकर महेश्वरी गौरी ने उनसे कहा—हे नगाधिराज! मैं किसी भी स्थिति में शरीर धारण नहीं करूँगी॥ ३९॥ एक कन्या का मैंने वरदान दिया है, उससे अधिक तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। यह कहकर जैसे किसी मनुष्य का मनोरथ विलीन हो जाय उसी तरह गौरी उसकी आँखों से ओझल हो गई॥ ४०॥ इसके बाद पुनः तपस्या के लिए हिमालय ने अपना मन निश्चित किया। उन्होंने तापस-सम्मत अति उग्रतर तप करना प्रारम्भ कर दिया॥ ४१॥ सौ साल तक केवल पानी पीकर तथा दूसरे सौ साल तक केवल हवा पीकर—इस प्रकार दो सौ साल तक उग्र तपस्या करने के बाद एक विशाल प्रज्वलित अग्निकुण्ड का निर्माण किया॥ ४२॥ कुण्ड के ऊपर बरगद

अवाक्शिरा निरालम्बी निरुच्छ्वासो निराशकः । एकाग्रं तप आतिष्ठदधस्तस्य प्रिया सती ॥
एधांसि कुण्डे निक्षिप्य समेधयति पावकम् । एवं प्रतपतस्तस्य समाप्ते वत्सरे पुनः ॥ ४५ ॥
छित्त्वैकां रज्जुमगराडातिष्ठत्तप उत्तरम् । एवं तपस्यतस्तस्य वर्षाणां शतकं यदा ॥ ४६ ॥
एकन्यूनमतिक्रान्तं तस्य मूर्ध्नस्तदा महान् । तपोऽग्नेर्धूम उदभूत्तेन व्याप्तं त्रिविष्टपम् ॥ ४७ ॥
धूमव्याप्त्या व्याकुलिता देवा इन्द्रादयो यदा । तदा भीतिं समापन्नाश्चाऽऽजग्मुरगसन्निधिम् ॥
कुण्डाऽग्निना समृद्धस्य तपोऽग्नेर्ज्वालया ततः । दूरादेव परावृत्ताः सत्यलोकमुपाययुः ॥ ४९ ॥
आगत्य धातृसदनं सभायां ददृशुर्विधिम् । दृष्ट्वा तं दूरतो देवा इन्द्राद्या दण्डवन्नताः ॥ ५० ॥
प्रणतानमरान् दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । प्राह गम्भीरया वाचा सम्बोध्य विबुधाऽधिपम् ॥
देवेन्द्रोत्तिष्ठ देवैस्त्वं किमागमनकारणम् । वद शीघ्रं भयं त्यक्त्वा विधास्ये ते ह्यभीप्सितम् ॥ ५२ ॥
श्रुत्वैवं ब्रह्मवचनमुत्तस्थुः सेश्वराऽमराः । बद्धाञ्जलिपुटस्तत्र प्राहेन्द्रो मन्थरं वचः ॥ ५३ ॥
जगदीश्वर भीताःस्मो भयहेतुं ब्रवीमि ते । पृथिव्यां शैलराजो वै हिमवानिति विश्रुतः ॥ ५४ ॥
स इदानीं तपः श्रेष्ठमातिष्ठति चिरं खलु । तदीहितज्ञा न वयं किं वा वाञ्छति सम्प्रति ॥ ५५ ॥
तस्य मूर्ध्नो महान् धूमो निर्गतः स्वर्गवासिनाम् । भयं सुतीव्रं तेनेत्थमभूत् परमदारुणम् ॥ ५६ ॥
सर्वत्र तेन धूमेन व्याप्तं स्वर्गपुरं ननु । अमराणां शरीराणि दहत्यग्निरिवोल्बणः ॥ ५७ ॥
प्रचलत्यासनं भूयः सुधर्मायां मयि स्थिते । अत्यस्वस्था देवगणा विन्दन्ति न सुखं क्वचित् ॥ ५८ ॥
त्वमेव शरणं लोके विपन्नानां सदा हि नः । एवं निशम्येन्द्रवचो विश्वसृट् ध्यानमास्थितः ॥ ५९ ॥

पेड़ की डाल में एक सौ रस्सियाँ बाँधकर लटका दीं। उन रस्सियों में अपने पैरों को बाँधकर उलटे सिर हिमवान् लटक गये॥ ४३॥ बिना कुछ बोले उलटे सिर निरालम्बी, निरुच्छ्वास, निराश, एकाग्र तप उन्होंने ठान दिया। उस डाल के नीचे उनकी सती पत्नी बैठी थी॥ ४४॥ कुण्ड में आहुतियाँ डालकर आग को प्रज्वलित कर दिया। इस तरह प्रज्वलित हवनकुण्ड की आग में तपते उनका एक साल बीत गया॥ ४५॥ हरेक साल पूरा होने पर एक डोरी काट देता। इस तरह कठोर तपस्या करते हुए निन्यानबे वर्ष पूरा किया॥ ४६॥ जब एक मात्र डोरी शेष रह गई तब उसके सिर से तपोग्नि का धूआँ उठकर देवलोक को घेर लिया॥ ४७॥ धूम से व्यापक देवलोक के इन्द्रादि देवगण जब व्याकुल हो उठे तब डर के मारे जहाँ हिमालय तपस्या कर रहे थे, उनके पास पहुँचे॥ ४८॥ कुण्ड की आग से बढ़ी हुई तप की अग्नि की ज्वाला से देवगण दूर से ही देखकर लौट गये और सीधे सत्यलोक पहुँचे॥ ४९॥ यहाँ आकर ब्रह्माजी को सभाभवन में बैठे देखकर इन्द्रादि देवगण दूर से ही दण्डवत् विनत होकर प्रणाम किये॥ ५०॥ प्रणाम करते हुए देवताओं को लोकपितामह ब्रह्मा ने बड़ी गम्भीर वाणी में देवराज को सम्बोधित करते हुए कहा॥ ५१॥ हे देवेन्द्र! देवताओं के साथ मिलकर यहाँ आने का क्या कारण है? भयमुक्त होकर जल्दी बताओ। मैं तुम्हारा अभीप्सित पूरा करूँगा॥ ५२। ब्रह्मा का यह आश्वासन सुनकर इन्द्रादि देवता उठ खड़े हुए और अञ्जलि बाँधकर देवराज इन्द्र ने उनसे धीरे-धीरे कहा॥ ५३॥ हे जगदीश्वर! हम सभी भयाक्रान्त है, भय का कारण निवेदित करता हूँ। धरती पर विख्यात शैलराज हिमालय है॥ ५४॥ इस समय ये बहुत दिनों से अति उग्र तप कर रहे हैं। हमें पता नहीं कि वे इस तपस्या के फलस्वरूप क्या चाहते हैं॥ ५५॥ उनके माथे से महान् धूम-समूह निकलकर हम स्वर्गवासियों को परम दारुण और तीव्र भय उत्पन्न किया है॥ ५६॥ सम्पूर्ण स्वर्ग नगरी उस धुएँ से व्याप्त हैं। हम देवताओं की देह प्रखर अग्नि में जल रही है॥ ५७॥ हमारे आसन हिल रहे हैं जब कि हम सभी अपने धर्म में स्थिर हैं। सारे देवगण अत्यन्त अस्वस्थ हैं, उन्हें कहीं भी सुख नहीं मिल रहा है॥ ५८॥ विपत्तिग्रस्त होने पर हमेशा

क्षणेनोन्मील्य नयने माभैरिति शतक्रतुम्। प्रवदन्निर्जगामाऽथ देवैः सह विधिस्तदा॥ ६०॥
आगत्य क्षीरपाथोधेः ाशयानमुपकूलके। संस्थिता ददृशुर्देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ६१॥
प्रणम्य दण्डवद्विष्णुं बद्धाऽञ्जलिपुटा बुधाः। अस्तुवन् संस्तवैस्तस्य वैदिकैः कीर्तिवर्धनैः॥ ६२॥
अथ प्रणम्याऽब्जयोनिरुपसृत्य बुधेरितम्। हिमवत्तपसो वृत्तमवदल्लोकसृट् तदा॥ ६३॥
श्रुत्वा विष्णुर्विधिमुखैः सह तत्र द्रुतं ययौ। यत्र पर्वतराजन्यस्तपो दारुणमास्थितः॥ ६४॥
दृष्ट्वा तं तद्विधं विष्णुरेकरज्ज्ववलम्बिनम्। ज्वलदग्निकुण्डमूर्ध्नि लम्बमानं तपस्विनम्॥ ६५॥
तपस्तेजोराशिमयं भामन्तमिव भास्करम्। निशामयत पत्नीञ्च परिचर्यारतां तदा॥ ६६॥
विष्णुस्तामुपसङ्गम्य पर्यपृच्छद्विनीतवत्। का त्वमत्र महाऽरण्ये शुश्रूषसि कुतस्त्विमम्॥ ६७॥
क एष किमभिप्रेत्य तप उग्रमुपस्थितः। श्रुत्वा सा विष्णुवचनं प्राह मञ्जुलया गिरा॥ ६८॥
पर्वतानामधिपतिर्हिमवानेष मे पतिः। अपत्यत्वे समानेतुं भवानीमभिवाञ्छति॥ ६९॥
प्रतिषिद्धस्तया देव्या शतपाशाऽवलम्बनः। सङ्कल्प्य वर्षशतकं लम्बन्नग्निशिखोर्ध्वतः॥ ७०॥
प्रतिवर्षं ह्येकपाशं छिनत्ति नगभूपतिः। एकोनवर्षशतकमतीतमधुना पुनः॥ ७१॥
वर्षे शततमे चैकं दिनन्तु परिशोषितम्। यदि गौरी न प्रसन्ना श्वः कल्पे शेषपाशकम्॥ ७२॥
छित्त्वा कुण्डे स्वकं देहं भस्मसात्कर्तुमुद्यतः। तदन्वस्मिन्नहमपि कुण्डे देहमिमं स्वकम्॥ ७३॥
त्यजामि भर्तृलोकायेत्युवाच पर्वतप्रिया। अथ विष्णुर्विधात्राद्यैर्विचार्य कृत्यमुत्तरम्॥ ७४॥
उपतस्थे शिवां गौरीमस्तौषीद्भक्तिनिर्भरः। नमस्ते गौरि शर्वाणि नमो मङ्गलरूपिणी॥ ७५॥
नमः सर्वजगद्धात्रि शरणागतवत्सले। इत्यादि बहुशः स्तुत्वा प्रणतो दण्डवत् पराम्॥ ७६॥

संसार में आप ही हमारी शरण हैं। इन्द्र की यह बात सुनकर ब्रह्माजी ध्यानावस्थित हो गये॥ ५९॥ एक क्षण के बाद आँखें खोलकर इन्द्र से कहा—मत डरो और फिर देवताओं के साथ वे सत्यलोक से बाहर आ गये॥ ६०॥ उन्होंने क्षीरसागर में सोये हुए शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु को देखा॥ ६१॥ देवताओं ने दण्डवत् उन्हें प्रणाम कर बद्धाञ्जलि होकर कीर्तिवर्धक वैदिक स्तोत्र से उनकी स्तुति की॥ ६२॥ उसके बाद उन्हें प्रणाम कर उनके समीप जाकर देवताओं द्वारा सूचित हिमालय-तपकथा ब्रह्मा ने उन्हें सुना दी॥ ६३॥ ब्रह्मा के मुख से उनकी तपस्या की कथा सुनकर उनके साथ शीघ्र ही भगवान् विष्णु जहाँ पर्वतराज दारुण तपस्या कर रहे थे, वहाँ पहुँचे॥ ६४॥ वहाँ विष्णु ने वैसे ही एक डोरी लटके अधोमुख उन्हें देखा। वह तपस्वी जलते कुण्ड पर माथे के बल लटक रहा था॥ ६५॥ तेजोराशिमय ऊपर सूर्य की तरह चमकते तपस्या में हिमालय लीन थे और उनकी पत्नी परिचर्या में तल्लीन थी॥ ६६॥ विष्णु ने उनके पास पहुँचकर बड़े विनम्रभाव से उस सती से पूछा—तुम कौन हो? इस घोर जंगल में इनकी क्यों शुश्रूषा कर रही हो?॥ ६७॥ यह कौन है? किसलिए इतना उग्र तप कर रहा है? विष्णु की बातें सुनकर उस सती ने बड़ी मीठी आवाज में कहा॥ ६८॥ पर्वतों के स्वामी हिमालय ये मेरे पति हैं। सन्तान के रूप में भवानी को ये पाना चाहते हैं। ६९॥ देवी ने इसका विरोध किया तब सौ डोरियों में अपने को बाँधकर अग्निशिखा के ऊपर सौ साल तक लटकने का इन्होंने संकल्प लिया॥ ७०॥ प्रतिवर्ष एक बन्धन हिमालय काटते हैं, इस तरह निन्यानबे वर्ष अभी बीत चुके हैं॥ ७१॥ सौ साल पूरा होने में एक ही दिन अब बाकी है, यदि गौरी प्रसन्न नहीं हुई तो कल बची एक डोरी को भी॥ ७२॥ काट कर अपनी देह को कुण्ड में जलाकर राख कर देने के लिए हिमालय तैयार है। उसके बाद मैं भी अनुसरण कर इस देह को॥ ७३॥ भर्तृलोक के लिए छोड़ दूँगी—ऐसा पर्वतराज हिमालय की पत्नी ने कहा। तब विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति देवताओं ने इस सुन्दर कृत्य के लिए॥ ७४॥ शिवा गौरी की भक्तिनिर्भर होकर स्तुति प्रारम्भ की। हे गौरि! सर्वाणि!

एवं हरेः प्रार्थनया प्रसन्ना सा महेश्वरी। आकाशरूपिणी प्राह स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ ७७ ॥
नारायण किमर्थं ते संस्तुताऽहं वदस्व तत्। त्वं मेऽग्रज इति पुरा प्राह श्रीत्रिपुरेश्वरी ॥ ७८ ॥
तत्ते स्मृता ह्यवरजा किमर्थमिह तद्वद। श्रुत्वा गौरीवचो विष्णुः प्राह सस्मितपूर्वकम् ॥ ७९ ॥
शृणु मद्वचनं गौरि पश्य लोके महद्भयम्। उपस्थितं पर्वतस्य तपसाऽतिगरीयसा ॥ ८० ॥
पूरयित्वा पर्वतस्य वाञ्छितं शिववल्लभे। रक्ष लोकान् सभुवनान् तपोऽग्निशलभायितान् ॥ ८१ ॥
एतेन लोकाः सेन्द्राद्या भवामः पालिता वयम्। पश्य त्वन्मूर्तिरहितं शङ्करं तपसि स्थितम् ॥ ८२ ॥
पुराऽस्माकं जगत्कृत्ये सृष्ट्यादौ विश्रमाय वै। ससर्जैव त्रिमूर्तिं सा त्रिपुरा परमेश्वरी ॥ ८३ ॥
यदि त्वमशरीरैव भविष्यसि ममाऽनुजे। तदा श्रीत्रिपुरेशान्या शासनाऽलङ्घनं भवेत् ॥ ८४ ॥
इत्येतत्ते प्रकथितं स्मृतिकारणमम्बिके। अग्रे यथा त्वं जानासि तथा रक्ष चराऽचरम् ॥ ८५ ॥
श्रुत्वैवं विष्णुवचनं दृष्ट्वा लोके तपोभयम्। श्रुत्वाऽऽज्ञां त्रिपुरायाश्च प्रोवाचोमिति वै हरिम् ॥
अथ देवा हरिमुखा नत्वा गौरीं महेश्वरीम्। आज्ञामादाय स्वं स्थानमभिजग्मुर्गतत्रसाः ॥ ८७ ॥
अथाकाशवपुर्गौरी महागम्भीरया गिरा। प्राह तं शैलकुलपं तपोऽग्निज्वालया वृतम् ॥ ८८ ॥
भो भो शैलकुलेशान प्रसन्नाऽस्मि निरीक्ष माम्। यत्तेऽभिलषितं तत्ते दिशामि द्रुतमीरय ॥ ८९ ॥
एवं वचः पर्वतेशः श्रुत्वेषद्ध्यानसंस्थितः। किं स्वप्न उत सत्यो वेत्येवं सञ्चित्य च क्षणम् ॥ ९० ॥
उन्मील्य नयनेऽपश्यत् परितः पर्वतेश्वरः। दृष्ट्वा न किञ्चित्तत्राऽगः स्वप्नं यावदमन्यत ॥ ९१ ॥

तुम्हें नमस्कार, तुम मंगलस्वरूपणी हो ॥ ७५ ॥ सारे संसार को सहारा देनेवाली शरणागतों के प्रति स्नेहशीला भगवती को मेरा प्रणाम। इस तरह अनेक ढंग से उनकी स्तुति कर प्रणाम किया ॥ ७६ ॥ इस तरह विष्णु की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उस महेश्वरी ने आकाश रूपी कोमल किन्तु गम्भीर वाणी में कहा ॥ ७७ ॥ हे नारायण! किसलिए आपने मेरी स्तुति की है? बतलाइए। मुझे त्रिपुरेश्वरी ने पहले ही बतलाया है कि आप मेरे अग्रज हैं ॥ ७८ ॥ अतः आपने मुझ छोटी बहन को किसलिए याद किया है? बतलाइए। गौरी की यह बात सुनकर श्रीहरि विष्णु ने मुस्कराते हुए कहा ॥ ७९ ॥ हे गौरी! मेरी बातें सुनो। देखो, संसार में महाभय उपस्थित हुआ है, इसका कारण हिमालय का कठोर तप है ॥ ८० ॥ हे शिववल्लभे! तप की आग में फतिंगे की तरह जलकर राख होने के लिए तैयार हिमालय की मनचाही वस्तु देकर चौदहों भुवन और संसार की रक्षा करो ॥ ८१ ॥ इससे सारे लोक इन्द्रादि सहित हम सारे देवता संरक्षित होंगें, पालित होंगें। तपस्यारत उसको मूर्ति रहित तुमको और शंकर को देखते हुए देखो ॥ ८२ ॥ पहले संसार की उत्पत्ति, स्थिति और विनष्टि के लिए भगवती त्रिपुरा ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में हम त्रिदेव की सृष्टि की है ॥ ८३ ॥ ओ मेरी छोटी बहन! इसके बाद भी तुम यदि शरीर धारण नहीं करोगी तो भगवती त्रिपुरा के शासन का उल्लंघन होगा ॥ ८४ ॥ हे अम्बिके! तुम्हें याद करने का यही कारण है जिसे मैंने बतला दिया, आगे तुम जानती हो कि अब चराचर की रक्षा तुम्हारे हाथ में है ॥ ८५ ॥ विष्णु की यह बात सुनकर तप के डर से थरथराते संसार को देखकर भगवती त्रिपुरा की आज्ञा सुनकर श्रीहरि की बात उन्होंने स्वीकार कर ली ॥ ८६ ॥ सारे देवगण विष्णु सहित महागौरी को प्रणाम कर उनकी आज्ञा लेकर डरते हुए अपनी-अपनी जगह प्रस्थान किये ॥ ८७ ॥ आकाशस्वरूपिणी गौरी ने गम्भीर वाणी में तप की अग्नि की ज्वाला से घिरे उस नगराज से कहा ॥ ८८ ॥ अरे ओ शैलाधिराज! मेरी ओर देख, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो शीघ्र वर माँगो, मैं तुम्हें देती हूँ ॥ ८९ ॥ ध्यान में स्थिर उस शैलाधिराज ने जब यह बात सुनी तब सोचने लगे, क्या यह सपना है अथवा सत्य? ॥ ९० ॥ अपनी आँखें खोलकर चारों ओर पर्वतेश्वर ने देखा। कहीं कुछ भी न देखकर उसने इस कथन को स्वप्न

तावद्गौरी पुनः प्राह वचनं प्राङ्निरूपितम्। संश्रुत्य गौर्या वचनं स्वरूपायाः शुभोदयम्॥ ९२॥
स हर्षमधिकं प्राप्तो ववन्दे तद्दिशामुखः। अथ स्तुत्वा बहुतरं भक्तिनिर्भरिताऽन्तरः॥ ९३॥
हिमाद्रिः स्वं ह्यभिमतं वरं वव्रे महेश्वरीम्। गौरि मे सुप्रसन्नाऽसि यदि मे तपसः फलम्॥ ९४॥
अस्ति चेन्मम पुत्रीत्वं क्षेत्रसम्भवतोऽस्तु ते। अभिलाषो महानत्र त्वां देवीं शिशुरूपिणीम्॥
वत्सलो लालयिष्यामि मुग्धलीलाऽवलोककः। जामातरं महादेवं प्राप्य सम्पूज्य वां ततः॥ ९६॥
सञ्जित्य लोकद्वितयं सम्भवाम्यतिनिर्वृतः। इति मे प्रार्थनां देवि पूरय प्रतियाचिता॥ ९७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानं नामाऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २३६१॥



ही माना॥ ९१॥ तब तक गौरी ने कही हुई बातें फिर दुहरा दीं। गौरी की यह बात सुनकर और उनका कल्याणकारिणी स्वरूप को देखकर॥ ९२॥ हर्षातिरेक प्राप्त कर उस दिशा की वन्दना करने लगा जिस दिशा से यह आवाज आयी थी। भक्तिनिर्भर मन से अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर॥ ९३॥ हिमालय ने महेश्वरी से अपना अभिमत वर माँगा—हे गौरि! यदि मेरी तपस्या का फल आप मुझ पर सुप्रसन्न हैं॥ ९४॥ तो मेरी बेटी बनकर मेरे पास आइए। तुम्हें शिशु रूप में पाने की हे देवि! मेरी महती अभिलाषा है॥ ९५॥ तुम्हारी लीला देखकर मैं मुग्ध बनूँगा, तुम्हारा लालन-पालन करूँगा, महादेव को पूजकर मैं अपना जामाता बनाऊँगा॥ ९६॥ दूसरे लोक को जीतकर मैं अतिनिवृत्त हो जाऊँगा। हे देवि! मेरी इतनी ही प्रार्थना है, दूसरी बार याचना है, कृपया इसे पूरा करो॥ ९७॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान के सन्दर्भ में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २३६१॥



अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः



श्रुत्वैवं गिरिवर्यस्य प्रार्थनां सा महेश्वरी । प्रोवाचाऽतिशुभां वाचं नभोमात्रस्वरूपिणी ।। १ ।।
शृणु पर्वतराजन्य यस्त्वया याचितो वरः । भविष्यति द्रुतं सर्वं तनुजाऽहं भवामि ते ।। २ ।।
यन्मया त्वं निषिद्धोऽपि तपस्येवाऽभिसंरतः । अनीहन्त्या मम वपुस्तपसा ते सुसाधितम् ।। ३ ।।
तेन मां तनुजारूपां विस्मृत्य परमां शिवाम् । बुद्ध्या प्राकृतया युक्तो भविष्यसि नगाधिप ।। ४ ।।
इत्युक्त्वा सा महादेवी अन्तर्धानं समागमत् । अथाऽद्रिराट् प्रणम्याऽम्बामाजगाम स्वमालयम् ।।
मेनया प्रियया युक्तः प्राप्येष्टं मुदितोऽभवत् । ततः स्वल्पेन कालेन प्रशस्ततरसम्मते ।। ६ ।।
मेनका हिमशैलस्य सती गर्भमधारयत् । निविष्टा सा परा तत्र महायोगमयी शिवा ।। ७ ।।
विष्ण्वादिदेवकार्यार्थं परायाश्च निदेशतः । अथ सा मेनका तत्र गिरिराजगृहोत्तमे ।। ८ ।।
पराशक्त्यंशयोगेन बभ्राजाऽतितरां तदा । ददर्श हिमवान् कान्तां देवतामिव रूपिणीम् ।। ९ ।।
उपलक्ष्य स्वाभिमतं मुमोदाऽत्यन्ततो गिरिः । सम्पूर्णसर्वाऽवयवां देहगौरवयोगिनीम् ।। १० ।।
कपोलयोः पाण्डुराऽऽभां स्वेदबिन्दुलसन्मुखाम् । श्रान्तामकाण्डतः श्यामस्निग्धचूचुकसुस्तनीम् ।।
उद्गच्छद्रोमलतिकां विलीनवलिकोदराम् । सुगूढजघनां लीलाविलासेष्वलसप्रियाम् ।। १२ ।।
समालोक्य जहौ तापं मानसं पर्वतेश्वरः । यदा गौरी मेनकाया गर्भभूता बभौ शिवा ।। १३ ।।

⁂ विमला ⁂

पर्वतराज हिमालय की यह प्रार्थना सुनकर आकाशस्वरूपिणी उस देवी ने अति कल्याणकारी बात कही ।। १ ।। हे गिरिराज! सुनो, तुमने जिस वर की कामना की है वह सब शीघ्र ही पूरा होगा, मैं तुम्हारी पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण करूँगी ।। २ ।। मेरे मना करने करने पर भी तुमने घोर तप किया। मैं शरीर नहीं धारण करना चाहती थी, फिर भी तुमने तपोबल से मुझसे ऐसा करवाया है ।। ३ ।। अतः हे नगाधिराज! बेटी रूप में मुझे पाकर भी तुम मेरे परम शिवा होने की बात भूल जाओगे। तुम स्वाभाविक बुद्धि से मुझे तनुजा के रूप में स्वीकार करोगे ।। ४ ।। यह कहकर वह महादेवी तिरोहित हो गई और शैलेश भी उन्हें प्रणाम कर अपने घर लौट आया ।। ५ ।। अपनी प्रिय पत्नी मेना के साथ मनचाहा वर पाकर वे काफी प्रसन्न हुए। उसके कुछ ही दिनों के बाद यह प्रशस्ततर घटना घटी ।। ६ ।। नगाधिराज की सती पत्नी ने गर्भ धारण किया। उस गर्भ में महायोगमयी परशिवा ने प्रवेश किया ।। ७ ।। विष्णु प्रभृति देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए एवं महादेवी त्रिपुरा के निर्देश से वह मेना उस गिरिराज के गृह में ।। ८ ।। उस पराशक्ति के आंशिक योग से अत्यधिक देदीप्यमान हुईं। हिमवान् ने अपनी पत्नी को किसी देवी के रूप में देखा ।। ९ ।। गिरिराज हिमालय अपने अभिमत का संकेत पाकर परम प्रसन्न हुआ। सम्पूर्ण शरीर के सारे अवयव गौरवान्वित हो गये ।। १० ।। दोनों गाल की कान्ति पीली हो गई। मुख से हमेशा स्वेदकण टपकते रहते। बेवजह थकी-थकी महसूस करती। दोनों सुन्दर स्तन के चूचुक स्निग्ध एवं काले हो गये ।। ११ ।। रोमावली निकलकर विलीन त्रिवली को छू रही थी, जाँघें काफी स्थूल हो चुकी थीं। लीला-विलास में अपनी पत्नी को अलसाये ।। १२ ।। देखकर पर्वतेश्वर ने अपने मन के ताप को मिटा दिया, जब गौरी मेनका के गर्भ से उत्पन्न होगी ही ।। १३ ।। उस दिन से जहाँ पर्वतेश्वर

तदा प्रभृति शैलेन्द्रविषयेषु शुभोदयः। वृक्षाः पुष्पफलाऽऽक्रान्ताः पुष्पाणि च फलानि च॥
निविडानि रसैर्गन्धैः पक्षिणः शिववाशिताः। मारुतो मन्दगमनो हितस्पर्शश्च प्राणिनाम्॥ १५॥
द्यौः शुभ्राऽभ्रसमाकीर्णा मेघाः सौरभवर्षिणः। दिनेशो निर्मलकरो दिशो विमलदर्शनाः॥ १६॥
रात्रिस्तारेन्दुशोभाढ्या जनाः संहृष्टमानसाः। एवंविधानि चिह्नानि सम्भूतान्यभितस्तदा॥
एवं चिह्नानि संवीक्ष्य गौर्याविर्भावमद्रिराट्। मेनेऽतिहर्षसंयुक्तस्तं कालमभिकाङ्क्षितम्॥ १८॥
अथ पर्वतराजन्यकान्ता सर्वशुभोदये। सुषुवे कन्यकां काले गौरी शङ्करवल्लभाम्॥ १९॥
तां त्रिनेत्रां चन्द्रचूडां चतुर्बाहुविराजिताम्। खड्गं खेटं मुद्गरञ्च दधानां तीक्ष्णशूलकम्॥ २०॥
मेचकाऽऽभां रक्तवस्त्रां सर्वाऽऽभरणभूषिताम्। विलोक्यैवंविधां देवीं भीता शैलेन्द्रवल्लभा॥
प्रियं पर्वतराजन्यमाह्वयन्मेनका भृशम्। आगत्य हिमशैलेन्द्रो दृष्ट्वा कन्याञ्च तादृशीम्॥ २२॥
मत्वा गौरीं महेशानीं ननाम भुवि दण्डवत्। अथोत्थाय भक्तिभराऽऽक्रान्तः संस्तवमारभत्॥

नमो देवि देवेशलोकेशपूज्ये नमो गौरि भक्ताऽऽर्तिसंहारकर्त्रि।
नमो लोकजालैकहेतुस्वरूपे नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि॥ २४॥
पराशक्तिरूपा शिवस्य त्वमेका जगज्जालसूत्रात्मिका सर्वसंस्था।
त्वमेकाऽक्षराऽर्थैकरूपा विरूपा नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि॥ २५॥
नतानां भवाब्धौ गभीरेऽतिभीमे स्थितानां समुद्धारणे का त्वदन्या।
समर्था ततो मां समभ्युद्धराऽऽर्तं नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि॥ २६॥
अविद्यामहाग्राहवक्त्रे निविष्टं हृषीकाऽर्थवाञ्छामहासर्पदष्टम्।
विदित्वा विलम्बं न युक्तं कृपार्द्रे नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि॥ २७॥

का निवास था वहाँ कल्याणकारी वस्तुएँ दीखने लगीं। पेड़-पौधे, पुष्प और फल लद गये। जहाँ कहीं पुष्प और फल ही दीखने लगें॥ १४॥ सघन रस और गन्धों से चिड़ियाँ प्रसन्न थीं, हवाएँ मन्द गति से चल रही थीं, प्राणियों को उसका स्पर्श हितकर प्रतीत होता था॥ १५॥ आकाश शुभ्र था, आकाश में फैले मेघ सुगन्ध वर्षा रहे थे। सूर्य की किरणें निर्मल थीं और दिशाएँ स्वच्छ प्रतीत हो रही थीं॥ १६॥ रात चन्द्रमा और तारों से सुशोभित थी, जनमानस सन्तुष्ट था। इस तरह के मांगलिक चिह्न सब ओर दिखायी पड़ने लगें॥ १७॥ पर्वतेश्वर ने इन शुभ चिह्नों को देखकर गौरी का आविर्भाव माना तथा खुशी के साथ समय की प्रतीक्षा करने लगा॥ १८॥ इसके बाद पर्वतराज की पत्नी ने शुभलग्न में शंकरवल्लभा गौरी को कन्या के रूप में जन्म दिया॥ १९॥ उस शिशु की तीन आँखें, शिर पर चन्द्रमा और चार बाँहों में तलवार, गदा, मुद्गर तथा तीक्ष्ण त्रिशूल थे॥ २०॥ नीली आभा चारों ओर फैली थी, रक्त वस्त्र थे और सारे आभूषणों से वह विभूषित थी। ऐसी देवी को देखकर मेना डर गई॥ २१॥ प्रिय पर्वतराज को शीघ्र ही मेना ने बुलवाया। पर्वतराज ने आकर उसी रूप में उस कन्या को देखकर॥ २२॥ महेश्वर पत्नी गौरी मानकर धरती पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया, फिर भक्तिपूर्वक गद्गद हृदय से स्तुति प्रारम्भ की॥ २३॥ हे देवेश और लोकेश पूज्या देवि! हे भक्तो के कष्ट को मिटाने वाली गौरी! तुम्हें नमस्कार, लोकजाल के एकमात्र हेतुस्वरूपा हे भवानि! तुम्हें बार-बार मेरा प्रणाम है॥ २४॥ शिव की पराशक्तिस्वरूपा तुम्हीं एकमात्र जगत्‌जाल के सूत्र रूप में सबमें स्थित हो। तुम एकाक्षरा हो, एक अर्थ के रूप में हो। हे भवानि! तुम विरूपा हो, इसलिए तुम्हें बार-बार मेरा प्रणाम है॥ २५॥ गम्भीर भवसागर में डूबते विनत व्यक्ति का कौन दूसरा उद्धार कर सकता है? एक मात्र तुम्हीं तो आर्त व्यक्ति का उद्धार करने मे समर्थ हो। अतः हे भवानि! तुम्हें बार-बार प्रणाम है॥ २६॥ अविद्यारूपी महाग्राह

चिरात्त्वत्पदं मोचकं दुःखपाशान्न चाऽन्यन्ममाऽस्तीह दुःखप्रशान्त्यै।
इति स्वाऽन्तरे निश्चितार्थः सदाऽऽह नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि॥ २८॥
स्तुत्वेत्थं हिमशैलेशो नत्वा भूयः कृताञ्जलिः। भक्त्युद्रेकघनस्वान्तो गौरीं प्रोवाच शङ्करीम्॥
देवीदानीं मयि महारचितोऽनुग्रहस्त्वया। कल्पद्रुमाऽऽश्रितानां किं वाञ्छिताऽऽप्तिर्विचित्रिता॥
न हि धन्यो मदन्योऽत्र यद्देवी मदपत्यताम्। स्वीचक्रे न ममैतस्मादन्यद्भाग्यं सुदुर्लभम्॥ ३१॥
अहं जडात्मा दीनोऽपि लोके देव्यनुकम्पितः। महाभाग्यवतां मूर्ध्नि न्यस्तवान् पदमम्बिके॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं मदन्यो भाग्यवान्न हि। यद्देवीं तनुजारूपां पश्याम्यथ स्वचक्षुषा॥ ३३॥
देवि मे मानसं किञ्चिदस्ति तत्प्रार्थयामि ते। बिभेमि देहि देव्याज्ञां शरण्ये भक्तवत्सले॥ ३४॥
श्रुत्वा हिमगिरेर्वाक्यं मधुरं प्राह सा तदा। जहि भीतिं शैलराज वद यद्वाञ्छितं तव॥ ३५॥
मद्भक्तेन हि न प्राप्यमिति किञ्चिन्न विद्यते। श्रुत्वा प्रणम्य शैलेशो वाक्यमाह कृताञ्जलिः॥ ३६॥
देवि त्वां प्राकृतशिशुरूपां द्रष्टुं समीहितम्। शिशुलीलाविलोकेन तुष्यन्ति पितरो भुवि॥ ३७॥
देवतारूपिणीं दृष्ट्वा सा मे प्रीतिर्न वर्धते। या पित्रोर्विद्यतेऽपत्ये प्रजालोकप्रपूर्तिदा॥ ३८॥
एषा मे प्रेयसी मेना शिशुं त्वां द्रष्टुमीप्सति। कालिका त्वं करालाऽऽभा न ह्येवं रूपमीप्सितम्॥
भव गौरी वर्णतोऽपि भवेन्नामाऽपि सार्थकम्। अथ त्वया च यो दत्तः शापस्त्वद्रूपवीक्षणे॥ ४०॥

के मुख में प्रविष्ट महासर्प से काटे व्यक्ति को जैसे श्रीकृष्ण की कृपा वांछित है, उसी तरह जानकर मेरी सहायता में विलम्ब करना उचित नहीं है; मुझ पर्वत पर तुम कृपा करो। हे भवानि! तुम्हें बार-बार मेरा प्रणाम है॥ २७॥ तुम्हारे चरण ही मुझे दुःखपाश से मुक्ति दिला सकते हैं, मेरे दुःख की शान्ति तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता है? हे भवानि! अपने मन में ऐसा ही निश्चित कर मैं तुम्हारा ही सहारा खोजता हूँ। भवानि! तुम्हें बार-बार मेरा प्रणाम है॥ २८॥ इस तरह उनकी स्तुति कर उन्हें प्रणाम कर फिर हाथ जोड़कर भक्ति के उद्रेक से भरे हृदय से उन्होंने शंकरी गौरी को कहा॥ २९॥ हे देवि! मुझ पर आपका यह परम अनुग्रह है, कल्पवृक्ष के नीचे बैठे व्यक्ति के लिए फिर वांछित क्या शेष रह जाता है?॥ ३०॥ हमसे अधिक भाग्यवान् इस संसार में कोई नहीं है, आपने सन्तान के रूप में मेरे घर आना कबूल किया है, मेरे लिए इससे अधिक और कोई सौभाग्य तो सुदुर्लभ ही है॥ ३१॥ मैं जड़ात्मा हूँ, दीन हूँ, फिर भी आपकी कृपा मुझ पर है। मैं महाभाग्यवान् हूँ, क्योंकि मेरे शिर पर आपके चरणों की छाया है॥ ३२॥ मेरा अहोभाग्य है, हमसे कोई अधिक भाग्यवान् नहीं है। मैं पुत्री के रूप में अपनी आँखों से देवी को देख रहा हूँ॥ ३३॥ हे देवि! मेरे मन में कुछ है, जिसके लिए मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ, पर डरता हूँ। मुझ शरणागत पर हे भक्तवत्सले! यदि कृपा हो तो आप मुझे अपने मन की बात कहने की आज्ञा दो॥ ३४॥ हिमगिरि की बातें सुनकर मीठी आवाज में भगवती ने कहा—हे शैलराज! डर छोड़ दो, जो तुम्हारी इच्छा हो—बोलो॥ ३५॥ जो मेरा भक्त है, उसके लिए संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं होता है। यह सुनकर शैलेश ने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा॥ ३६॥ हे देवि! मैं आपको सामान्य शिशु के रूप में ही देखना चाहता हूँ, कोई भी पिता अपनी सन्तान की बाललीला देखकर सन्तुष्ट होते हैं॥ ३७॥ देवी के रूप में आपको देखकर वह प्रीति नहीं बढ़ती जो प्रजालोक की सम्पूर्ति करने वाली सन्तान को देखकर एक पिता के दिल में होती है॥ ३८॥ मेरी पत्नी यह मेना भी आपको सामान्य शिशु के रूप में ही देखना चाहती है। हे कालिके! तुम्हारी करालाभा उसे भी कतई पसन्द नहीं है॥ ३९॥ हे गौरि! रूप से भी आप वैसी ही हो जायें ताकि आपका गौरी नाम भी सार्थक हो। आपने जो शाप दिया उसी रूप में हम आपको देखना चाहेंगे॥ ४०॥

कुरु तत्राऽनुग्रहं मे प्रार्थिताऽसि महेश्वरि । एवं हिमाद्रिवचनं श्रुत्वोवाच शिवप्रिया ॥ ४१ ॥
अद्रिराज मया दत्तः शापस्ते प्रीतिकारणम् । मद्रूपाऽविस्मृतौ न स्यादपत्यप्रीतिरीप्सिता ॥ ४२ ॥
किन्तु कालेनाऽऽत्मरूपं दर्शयामि महोदयम् । इत्युक्त्वा निजरूपं तत् सञ्जहार महेश्वरी ॥ ४३ ॥
कृत्वा रूपं शिशुरिव रुरोद पर्वताऽऽत्मजा । श्रुत्वा तद्रुदितं देव्या पर्वतः प्रियया सह ॥ ४४ ॥
विसस्माराऽखिलं तच्च कन्यां जाताममन्यत । प्रसूतिपीडितेवाऽऽसीन्मेनका मोहिता सती ॥
अथ तत्र जनाः श्रुत्वा रुदितं राजवेश्मनि । अभ्याजग्मुर्द्रुततरं पृच्छन्तः किमभूदिति ॥ ४६ ॥
कन्याप्रसूतिं संश्रुत्य स्त्रियः सर्वाः समागताः । ददृशुः सूतिकाऽऽगारे कोटिसूर्यसमद्युतिम् ॥
नूतनस्वर्णवर्णाभां पद्मपत्राऽऽयतेक्षणाम् । पूर्णचन्द्राननां रक्तपाणिपादतलान्विताम् ॥ ४८ ॥
समानदेहविन्यासां चित्राऽऽलिखितसुन्दरीम् । कन्यामद्भुतरूपां तां जहर्षुः सर्वतो जनाः ॥
तदन्तरे समागत्य धात्री कन्यां समाददे । पर्वतेन्द्रस्तदा तीर्थं संस्पृश्य विधिवद्द्रुतम् ॥ ५० ॥
धेनूनामयुतं तद्वद्दशाऽयुतसुवर्णकम् । प्रायच्छद्विप्रमुख्येभ्यो जातकञ्चाऽकरोत्तदा ॥ ५१ ॥
उत्सवश्च महानासीद्धिमशैलपुरे तदा । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात् पतत् ॥ ५२ ॥
तदाऽगराजस्य गृहे सम्मर्दः सुमहानभूत् । ब्राह्मणानां गायकानां नर्तकानाञ्च वन्दिनाम् ॥ ५३ ॥
याचकानां शिल्पिनाञ्च जल्पघोषश्च सम्बभौ । अथ काले विप्रमुख्यैरगेशः स्वतनूद्भवाम् ॥ ५४ ॥
नाम कृत्वा संस्कुरुत नाम चक्रे पुरोहितः । स्वर्णवद्गौरवर्णेयं यस्मात् कन्या तवाऽचल ॥ ५५ ॥
ततो गौरीति विख्याता भवत्विह महीतले । एवं हिमाचलः कन्यां प्राप्य गौरीं महेश्वरीम् ॥ ५६ ॥

हे महेश्वरी! आपके सामने मैं प्रार्थना करता हूँ, आप मुझ पर कृपा करें। हिमालय का यह वचन सुनकर शिवप्रिया ने कहा ॥ ४१ ॥ हे पर्वतराज! मैंने जो आपको शाप दिया है, वह आपके लिए प्रीतिकारक है; अपनी सन्तान की चाह में मेरा रूप आप नहीं भूल सकेंगे ॥ ४२ ॥ किन्तु यथासमय मैं आपके महान् उद्देश्य के लिए अपना रूप दिखाती हूँ, इतना कहकर महेश्वरी ने अपना असली रूप मिटा दिया ॥ ४३ ॥ एक शिशु का रूप बनाकर पर्वतराज की पुत्री के रूप में रोना शुरू कर दिया। उस देवी की रुलाई सुनकर पर्वतराज अपनी पत्नी के साथ ॥ ४४ ॥ सब कुछ उसी क्षण भूल गये। मुझे कन्या उत्पन्न हुई है, यह मानने लगे। बेचारी सती मेना भी उनकी आभा से मोहित होकर प्रसूति-पीड़ा में तड़पने लगी ॥ ४५ ॥ इसके बाद बाहरी लोगों ने हिमालय के राजभवन में शिशु का रुदन सुनकर 'क्या हुआ' यह पूछते हुए शीघ्र ही भीतर घुस आये ॥ ४६ ॥ कन्या ने जन्म लिया— यह सुनकर सारी औरतें भीतर घुस आईं। प्रसूतिगृह में उन्होंने करोड़ों सूर्य की तरह की प्रभा को फैलते देखा ॥ ४७ ॥ नये सोने की कान्ति की तरह चमकते रंग तथा कमलपत्र की तरह विशाल आँखें और पूर्ण चन्द्रमा की तरह आकर्षक मुख तथा हथेली और तलवे उस शिशु के आरक्त थे ॥ ४८ ॥ उस कन्या के समान देह विन्यास तथा चित्रलिखित सौन्दर्य एवं अद्भुत रूप देखकर खुशी के मारे सब नाचने लगे ॥ ४९ ॥ इसी बीच धात्री उस कन्या को उठाकर पर्वतराज के पास ले आई। पर्वतराज ने शीघ्र ही विधिवत् तीर्थस्पर्श कर ॥ ५० ॥ दस हजार गाएँ एवं उसी तरह एक लाख सोने की मुद्रा उन्होंने प्रमुख ब्राह्मणों को जातक-जन्मोत्सव के सुअवसर पर दान दिया ॥ ५१ ॥ हिमशैलपुर में महान् उत्सव होने लगा। देवताओं ने दुन्दुभि नाद किया और आकाश से पुष्पवृष्टि हुई ॥ ५२ ॥ उसके बाद नगाधिराज के घर में ब्राह्मणों, गायकों, नर्तकों और बन्दीजनों की भीड़ जुट गई ॥ ५३ ॥ याचकों, शिल्पियों ने जय-जयकार किया। उचित अवसर पर हिमालय ने अपनी बेटी का ॥ ५४ ॥ नाम रखकर उसे संस्कृत करने के लिए पुरोहित से कहा। पुरोहित ने उत्तर दिया— तुम्हारी कन्या सोने की तरह गौरवर्णा है ॥ ५५ ॥ अतः धरती पर यह कन्या गौरी के नाम से विख्यात

मुमोद सर्वर्द्धियुतः कन्यालीलां विलोकयन् । एवं शैलेन्द्रभवने ववृधे लीलयाऽन्विता ॥ ५७ ॥
आरूढयौवना गौरी बभूव स्वल्पकालतः । हिमाद्रिस्तां विलोक्य स्वां कन्यामारूढयौवनाम् ॥
अचिन्तयत् पतिं तस्या अनुरूपगुणाऽन्वितम् । गर्गं मुनीन्द्रं सङ्गम्य नत्वा पप्रच्छ पर्वतः ॥ ५९ ॥
महर्षे मम कन्येयं पतिं कं समुपैष्यति । वद ते न ह्यविदितं भविष्यं भूतमप्युत ॥ ६० ॥
श्रुत्वेत्थं हिमशैलस्य वाक्यं गर्गो महामुनिः । ध्यात्वा क्षणं विदित्वा तत् प्राह संहृष्टमानसः ॥
नत्वा तां परमां गौरीं सम्बोध्याऽगकुलेश्वरम् । शृणु शैलेश कन्यायास्तव वृत्तं महाऽद्भुतम् ॥
भवानी तव कन्येयं तपसा तेऽभिराधिता । अस्याः पतिः शिवो नाऽन्यः सर्वदेवप्रपूजितः ॥ ६३ ॥
त्वमेनां न विजानासि तस्याः शापेन मोहितः । सस्मार गौरीं परमां गर्गवाक्येन शैलराट् ॥ ६४ ॥
कदाचिदथ देवर्षिर्नारदो भक्तशेखरः । तन्माहात्म्यं विजिज्ञासुः पर्वतेन्द्रगृहं ययौ ॥ ६५ ॥
दृष्ट्वा देवर्षिमायान्तं हिमाद्रिः सहसोत्थितः । अभिगम्य मुनीन्द्रं तमासनाद्यैरपूजयत् ॥ ६६ ॥
पूजितः प्राह देवर्षिर्हिमाङ्गं स्मितपूर्वकम् । पर्वतेन्द्र तनूजा ते सम्प्राप्तोऽहमवेक्षितुम् ॥ ६७ ॥
तां मे प्रदर्शय क्षिप्रं ततो यास्यामि वै दिवम् । श्रुत्वेत्थं नारदवचः कन्यामानीय सत्वरम् ॥ ६८ ॥
वत्से नमस्कुरु मुनिमित्युवाच कुमारिकाम् । अथ गौरी यथाऽऽगत्य नमश्चक्रे मुनीश्वरम् ॥ ६९ ॥
प्रणमन्तीं परां गौरीं दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमः । सङ्गोपयन् देवगुह्यं मनसा प्रणनाम ताम् ॥ ७० ॥
दृष्ट्वा तां यौवनाऽऽरूढामुवाच विधिनन्दनः । अगेश दिष्ट्या तेऽपत्यं सम्प्राप्तं चिरकालतः ॥

होगी। इस तरह हिमालय महेश्वरी गौरी को कन्या के रूप में प्राप्त कर काफी प्रसन्न हुआ ॥ ५६ ॥ अपनी कन्या की लीला देखते हुए शैलेन्द्र को ऐसा लगा कि उसके भवन में बाललीला करती हुई बढ़ती जा रही है ॥ ५७ ॥ अति अल्प काल में गौरी किशोरावस्था पार कर गई। एक दिन हिमालय ने देखा कि उनकी कन्या पूरी जवान हो गई ॥ ५८ ॥ अपनी युवा कन्या को देखकर इसके अनुरूप गुणों से युक्त इसके पति के सम्बन्ध में हिमालय चिन्तित हुआ। एक दिन पर्वतराज ने गर्ग मुनि के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर इसके बारे में पूछा ॥ ५९ ॥ हे महर्षि! मेरी यह कन्या पति के रूप में किसे प्राप्त करेगी, आप तो भूत, भविष्य सबके ज्ञाता है, मुझे बतलायें ॥ ६० ॥ गर्ग मुनि ने हिमशैल की यह बात सुनकर एक क्षण के लिए ध्यान लगाया। ध्यान में ही सब कुछ जानकर प्रसन्न मन से कहा ॥ ६१ ॥ उस महागौरी को प्रणाम कर पर्वतेश्वर को सम्बोधित कर गर्ग मुनि ने कहा—हे शैलेश ! तुम्हारी पुत्री बड़ी ही अद्भुत है ॥ ६२ ॥ तुम्हारी यह पुत्री भवानी है, तुम्हें यह आराधना से प्राप्त हुई है। सभी देवताओं से प्रपूजित भगवान् शिव के अतिरिक्त इसका कोई दूसरा पति नहीं हो सकता है ॥ ६३ ॥ इसी के शाप से मोहित होकर तुम इसे ही नहीं जानते। ओ शैलराज ! गर्ग के कथन से ही तुम उस महागौरी का स्मरण करो ॥ ६४ ॥ इसके बाद एक दिन भक्तशेखर देवर्षि नारद इस कन्या की महिमा को जानने के लिए पर्वतेश्वर के घर गये ॥ ६५ ॥ देवर्षि को आते देखकर हिमाद्रि सहसा उठकर खड़े हुए। नारद के पास जाकर आसनादि से हिमाद्रि ने उनकी पूजा की ॥ ६६ ॥ हिमालय की पूजा समाप्त होने पर देवर्षि ने मुस्कराते हुए कहा—हे पर्वतराज! मैं तुम्हारी पुत्री को देखने आया हूँ ॥ ६७ ॥ मुझे उसे शीघ्र दिखला दो, उसे देखकर ही मैं स्वर्ग की ओर जाऊँगा। नारदजी की बात सुनकर शीघ्र ही शैलराज ने अपनी कन्या को लाकर उन्हें दिखला दिया ॥ ६८ ॥ अपनी पुत्री से हिमालय ने कहा—बेटी! मुनिजी को प्रणाम करो। गौरी ने भी वहाँ पहुँच कर देवर्षि को प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ प्रणाम करती हुई परागौरी को देखकर देवर्षि ने इनके देवत्व को छिपाते हुए इन्हें मन-ही-मन चुपके से प्रणाम किया ॥ ७० ॥ उन्हें तरुणावस्था में देखकर नारद ने हिमालय से कहा—हे नगेश ! भाग्य से ही बहुत दिनों के बाद तुम्हें यह सन्तान मिली है ॥ ७१ ॥

नन्वियं करपीडायाः कालमालम्ब्य संस्थिता। काले कन्यां सुपात्रे यो न प्रयच्छति दुर्मतिः ॥ ७२ ॥
तस्य पूर्वतराः सर्वे गच्छेयुर्दुर्गतिं गतिम्। वद पर्वतराजन्य कस्मै त्वं दातुमुद्यतः ॥ ७३ ॥
कन्या पात्रे नियुक्ता तु महासौख्यप्रदायिनी। श्रुत्वर्षिवाक्यमगराट् नत्वा प्राह कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥
देवर्षे त्वं समस्तस्य लोकस्य प्रसमीक्षकः। न हि त्वया ह्यविदितं शुभमन्यद्भवेत् क्वचित् ॥ ७५ ॥
अहं गर्गस्य वचसा वरं मन्ये त्रिलोचनम्। त्वं कथं मन्यसे तन्मे शंस शिष्यस्य पृच्छतः ॥ ७६ ॥
निशम्य पर्वतवचो जगाद सुरतापसः। शृणु पर्वतराजन्य शिवो यस्ते वरो मतः ॥ ७७ ॥
नाऽहं मन्ये कुमार्यास्ते तुल्यं तं पाणिपीडने। इयं सर्वेषु लोकेषु रत्नभूता कुमारिका ॥ ७८ ॥
समस्तगुणशोभाऽऽढ्यं पतिमर्हति तादृशम्। शिवे सर्वेऽशिवगुणाः सदोन्मत्तविचेष्टितः ॥ ७९ ॥
श्मशाननिलयो भूतसङ्घसेव्योऽहिभूषणः। चर्मवासा विरूपाक्षो विषाऽऽहारो भयङ्करः ॥ ८० ॥
पुरा देवी तस्य पत्नी गौरी तमनवस्थितम्। दृष्ट्वा लोपं गतवती पुनर्दाक्षायणी तथा ॥ ८१ ॥
सद्भिर्विनिन्दितं वीक्ष्य भस्मीभूता महाऽध्वरे। तस्मादेनां शिवो नाऽर्हः पत्नीं सर्वगुणाऽऽलयाम् ॥
शृणु प्रालेयशैलेश कन्यायाः सदृशं पतिम्। माधवः पुण्डरीकाक्षो वैकुण्ठनिलयः पुमान् ॥ ८३ ॥
एनामर्हति पत्नीत्वे समानेतुं सदृग्गुणैः। इयञ्चाऽपि पतिं विष्णुं गुणैरर्हति सम्मतैः ॥ ८४ ॥
अहो पर्वत ते भाग्यं विष्णुर्जामातृतां व्रजेत्। यं गुणैर्मोहिता लक्ष्मीर्दासीवत् सेवतेऽन्वहम् ॥ ८५ ॥
मन्यसे यदि मद्वाक्यं वृणोमि हरिमीश्वरम्। इत्याकर्ण्य नारदोक्तिं पर्वतेशोऽतिविस्मृतः ॥ ८६ ॥

तुम्हारी यह कन्या अब विवाह करने योग्य हो गई है, जो दुर्बुद्धि व्यक्ति विवाह योग्य कन्या का विवाह नहीं करता ॥ ७२ ॥ उसका पूर्वकृत पुण्य भी विनष्ट हो जाता है और उसकी दुर्गति होती है। हे पर्वतराज! बताओ, तुम यह कन्या किसे देना चाहते हो? ॥ ७३ ॥ सुपात्र को जो कन्यादान करता है उसे महासुख मिलता है, देवर्षि की बात सुनकर हिमालय ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा ॥ ७४ ॥ हे देवर्षे! आप तो सम्पूर्ण लोक के समीक्षक हैं, द्रष्टा हैं, आपसे क्या छिपा है? आपसे अलग कोई कल्याणकारी बात छिपी नहीं है ॥ ७५ ॥ मैं गुरु गर्ग के कहने पर इसका वर भगवान् त्रिलोचन शंकर को मान चुका हूँ। मैं आपका शिष्य हूँ और आपसे पूछता हूँ, आप किस वर की अनुशंसा करते हैं, कहें ॥ ७६ ॥ पर्वतराज की बातें सुनकर नारदजी ने कहा—हे हिमालय! सुनो, तुमने जो शिव को वर के रूप में चुना है ॥ ७७ ॥ मेरे विचार में तुम्हारी पुत्री के लिए वे उत्तम वर नहीं हैं, क्योंकि सम्पूर्ण लोक में यह कुँआरी उत्तम रत्न की तरह है ॥ ७८ ॥ संसार के सारे गुणों की शोभा से यह लड़की भरपूर है, इसे तो वैसा ही वर चाहिए। शिव में तो सभी अमंगलकारी गुण भरे-पड़े हैं, वे हमेशा उन्मत्त की तरह चेष्टा करते रहते हैं ॥ ७९ ॥ श्मशान घाट में रहते हैं, भूत-प्रेतों की संगति करते हैं, साँप उनका आभूषण है, कपड़े की जगह चमड़ी लपेटते हैं, विरूपाक्ष हैं, जहर पीते हैं, वे भयंकर हैं ॥ ८० ॥ पहले महागौरी उनकी पत्नी थी, उन्हें अनवस्थित देखकर लुप्त हो गई। फिर दक्षपुत्री बनकर जन्म लिया ॥ ८१ ॥ यहाँ भी अच्छे लोगों के मुँह से शिव की निन्दा सुनकर बेचारी सती यज्ञकुण्ड में जलकर राख हो गई। इसलिए आपकी सर्वगुणसम्पन्न बेटी के लिए मैं शिव को उपयुक्त वर नहीं मानता ॥ ८२ ॥ हे पर्वतेश्वर! इस कन्या के लिए उपयुक्त वर मेरी दृष्टि में वैकुण्ठवासी पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि माधव ही हैं ॥ ८३ ॥ यह तो अपने समान गुण वाले पुरुष की ही पत्नी होने लायक है, अपने गुण के कारण विष्णुपत्नी ही बनने लायक है ॥ ८४ ॥ अहो हिमालय! यह तो तुम्हारा भाग्य होगा कि विष्णु तुम्हारे जामाता बनेंगे, जिनके गुणों से मुग्ध हो लक्ष्मी सदैव उनकी दासी बनी रहती है ॥ ८५ ॥ यदि तुमको मेरी बात पसन्द हो तो मैं श्रीहरि विष्णु को इसके लिए राजी करूँ। नारद की यह बात सुनकर हिमालय अतिविस्मृत हुआ ॥ ८६ ॥

शापाद्गौर्याः प्रियां शम्भोस्तपसाऽऽराधितां पुरा। प्राह देवमुनिं शैलो वरं निश्चित्य माधवम्॥
धन्योऽहं यत्त्वया कन्या मम पात्रे नियोजिता। सत्यं शिवो नाऽर्हति मे कन्यामशिवलक्षणः॥
व्रजाऽद्यैव यथा कन्यां समियान्माधवो द्रुतम्। तथा विधेहि सन्धानं माभूत् कालस्य पर्ययः॥
समुत्पतन्ति प्रत्यूहाः शुभोदर्केषु कर्मसु। तस्मादविहतं यद्वद्भवेत्तद्वत् समाचर॥९०॥
श्रुत्वेत्थं पर्वतवचो नारदः प्रहसन् गिरिम्। साधयामि तवाऽभीष्टमित्युक्त्वा प्रययौ दिवम्॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २४५२॥



शम्भुप्रिया गौरी की आराधना पहले जो उसने की थी, शाप के कारण उसे भूल गया और उसने श्रीहरि विष्णु को जामाता के रूप में स्वीकार कर नारदजी से कहा॥८७॥ मैं धन्य हूँ, तुमने मेरी कन्या के लिए सुन्दर वर का अन्वेषण किया, सचमुच अशुभ लक्षण वाले ये शिव मेरी कन्या के वर नहीं हो सकते॥८८॥ आज ही आप श्रीहरि विष्णु से जाकर शीघ्र मिले, समय की प्रतीक्षा न करें॥८९॥ कल अहले सुबह इस शुभकर्म का परिणाम देखना चाहता हूँ, इसलिए इस कर्म में किसी तरह की बाधा न हो वैसा आप करें॥९०॥ हिमालय की यह बात सुनकर देवर्षि नारद ने हँसते हुए कहा—हे हिमालय! अब मैं तुम्हारा अभीष्ट साधन के लिए जाता हूँ। यह कहकर वे स्वर्ग की ओर चले गये॥९१॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २४५२॥



अथ त्रिंशोऽध्यायः

अधिगत्य पितुर्गौरी व्यवसायमसम्मतम् । स्वरूपगोपनोद्युक्ता लीलाश्चाऽपि वितन्वती ॥ १ ॥
जगाम सखिभिः सार्धं वनं चतसृभिः शुभम् । हिमशैलतटप्रान्तसंस्थितं घोरसन्निभम् ॥ २ ॥
झिल्लीझङ्कारभरितं निकुञ्जततिमण्डितम् । नानातरुलताचित्रं विहगैश्च सुशोभितम् ॥ ३ ॥
दिवाकरकरैर्हीनं शीतलोद्देशसुन्दरम् । क्वचिद्धिमैर्निपतितैः पाण्डुरं तृणवर्जितम् ॥ ४ ॥
रजताऽद्रिनिभं शृङ्गं दूरतः प्रविराजते । क्वचिन्निर्झरतो नीरं योगिमानसनिर्मलम् ॥ ५ ॥
वहत्यत्यच्छपाषाणफलकाऽवलिभूमिषु । अत्युच्चविटपाऽऽसक्तघनराजिविराजितम् ॥ ६ ॥
नृत्यद्बर्हिगणाऽऽकीर्णं परभृत्पञ्चमोदयम् । तत्र देवनदीं दिव्यामासाद्य गिरिकन्यका ॥ ७ ॥
वयस्याभिः परिवृता निषसादोपकूलके । श्रान्तां तां समुपालक्ष्य गौरीं काचित् सखी तदा ॥ ८ ॥
द्रुतं गङ्गाम्बुना पादौ सम्यक् समवनेजत । कृतसख्यूरूपधानां सुप्तां तां पर्वताऽऽत्मजाम् ॥ ९ ॥
तृणराजोरुवृन्तेन संवीजयत काचन । अन्या निजोरुयुगले कौशेयस्तोमकोमले ॥ १० ॥
आरोप्य तत्पादयुगं संवाहनपराऽभवत् । एवं मुहूर्तं विश्रम्य समुत्थायाऽऽलिभिः सह ॥ ११ ॥
स्नात्वा सुरसरित्तोये कन्दरं तीरसंश्रयम् । समासाद्य तत्र रात्रौ सैकतीं त्रिपुरातनुम् ॥ १२ ॥
कामेश्वराऽङ्कनिलयां गन्धपुष्पफलादिभिः । समाराध्य विधानेन महद्भिरुपचारकैः ॥ १३ ॥
स्तुत्वा स्तुतिगणैर्देवीं वैदिकैस्तान्त्रिकैरपि । वार्क्षैर्विशेषतोऽभ्यर्च्य गानैर्नृत्यैः परिक्रमैः ॥ १४ ॥

※ विमला ※

पिता की अरुचिकर चेष्टा जानकर अपने वास्तविक स्वरूप का बचाव करती तथा अपनी लीला को विस्तार देती गौरी ॥ १ ॥ अपनी चार मङ्गलमयी सखियों के साथ हिमालय की घाटी में अवस्थित अति डरावने जैसे जंगल में चली गई ॥ २ ॥ झींगुरों की झनझनाहट से भरे, लतामण्डपों से सुशोभित, अनेक पेड़-लताओं से चित्रित और चिड़ियों से सुशोभित ॥ ३ ॥ सूर्य की किरणों से रहित ठण्डी हवाओं से पूरित, कहीं हिमपात से पीली घास रहित ॥ ४ ॥ चाँदी के पर्वत की शोभा धारण किये चोटी वाले दूर से ही दिखायी पड़ते थे। कहीं निर्झर से बहते पानी योगियों के मन की तरह निर्मल थे ॥ ५ ॥ कहीं पारदर्शी पाषाण-फलकों की शृङ्खला से भरी भूमि थी, जिन पर ऊँचे-ऊँचे सघन पंक्तियों में पेड़ सुशोभित थे ॥ ६ ॥ कहीं-कहीं नाचते कुशों से भरी धरती पटी थी, तो कहीं पंचम राग में कोयल कूक रही थी, वहीं प्रवाहित दिव्य गंगा नदी को पाकर गौरी ॥ ७ ॥ उसके तट पर अपनी सखियों से घिरी ठहर गई। तब उनकी सखियों में से एक ने उन्हें थकी देखकर ॥ ८ ॥ दौड़कर गंगाजल से उनके पैरों को अच्छी तरह से धो डाला। सखियों से सुसेवित सोई हुई उस पार्वती को ॥ ९ ॥ कोई सखी कोमल घासों के पंखे बनाकर उन्हें हवा करने लगी। दूसरी रेशमी कोगल वस्त्रों से ढँके अपने दोनों स्तनों के बीच ॥ १० ॥ उनके दोनों पैरों को रखकर उन्हें सहलाने लगी। इस तरह एक पल विश्राम कर अपनी सखियों के साथ उठकर ॥ ११ ॥ गंगा में स्नान कर उसी तीर पर अवस्थित कन्दरा में आकर उसी रात में त्रिपुरा की बालू की एक मूर्ति बनाकर। १२ ॥ भगवान् शिव के अंक में अवस्थित गन्ध-पुष्प-फलादि से विधि-विधान के साथ पूजा कर ॥ १३ ॥ स्तुति कर उस देवी की वैदिक एवं तान्त्रिक मन्त्रों से विशेष रूप से पूजा कर

एवं तस्याः पूजयन्त्याश्चाऽत्यगात् सा निशीथिनी। कल्पे कालेऽभिसंवृत्ते चक्रे गौरी शुभं स्तवम्॥
परापदाम्बुजप्रीतिरसमाद्यच्छुभाऽन्तरा । अद्भुतं ज्ञानकलिकास्तोत्रं समुपचक्रमे॥ १६॥

शिवे देवि संवित्सुधासागराऽऽत्मस्वरूपाऽसि सर्वान्तराऽऽत्मैकरूपा।
न किञ्चिद्विना त्वत्कलामस्ति लोके ततः सत्स्वरूपाऽसि सत्येऽप्यसत्ये॥ १७॥
असत्यं पुनः सत्यमन्ये द्विरूपं द्वयाऽतीतमेके जगुः सर्वमेतत्।
न ते तां विदुर्मायया मोहितास्ते चिदानन्दरूपा त्वमेवाऽसि सर्वम्। १८॥
क्षणानां क्रमैर्भिन्नरूपां धराद्यैर्मितामाहुरेके तमोमात्ररूपाम्।
तमोदीप्तिसम्भिन्नरूपाश्च शान्तस्वरूपां महेशीं विदुस्त्वां न तेऽज्ञाः॥ १९॥
शिवादिक्षितिप्रान्ततत्त्वावलिर्या विचित्रा यदीये शरीरे विभाति।
पटे चित्रकल्पा जले सेन्दुतारानभोवत्परा सा त्वमेवाऽसि सर्वा॥ २०॥
अभिन्नं विभिन्नं बहिर्वाऽन्तरे वा विभाति प्रकाशस्तमो वाऽपि सर्वम्।
ऋते त्वां चितिं येन नो भाति किञ्चित्ततस्त्वं समस्तं न किञ्चित्त्वदन्यत्॥ २१॥
निरुध्याऽन्तरङ्गं विलययाऽक्षसङ्गं परित्यज्य सर्वत्र कामादिभावम्।
स्थितानां महायोगिनां चित्तभूमौ चिदानन्दरूपा त्वमेका विभासि॥ २२॥
तथाऽन्ये मनः सेन्द्रियं सञ्चरच्चाप्यसंयम्य तन्मार्गके जागरूकाः।
स्वसंवित्सुधाऽऽदर्शदेहे स्फुरन्तं महायोगिनाथाः प्रपश्यन्ति सर्वम्॥ २३॥
निरुक्ते महासारमार्गेऽतिसूक्ष्मे गतिं ये न विन्दन्ति मूढस्वभावाः।

गीत, नृत्य और परिक्रमा करते हुए॥ १४॥ उनकी पूजा करती हुई रातभर जागरण किया। उचित समय आने पर गौरी ने उनकी स्तुति प्रारम्भ कर दी॥ १५॥ भगवती परामबा के प्रीतिरस में उनकी अन्तरात्मा डूबी थी। उसने अद्भुत ज्ञानकलिका स्तोत्र का पाठ करना प्रारम्भ कर दिया॥ १६॥ हे देवि शिवे! आप ज्ञानसुधा-सागरात्मरूपिणी हो। सबकी अन्तरात्मा में आपका निवास है। तुम्हारी कला के अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है। अतः तुम सत्य हो या असत्य—सबमें सत्स्वरूपा ही हो॥ १७॥ फिर असत्य को भी सत्य ही मानती हूँ। क्योंकि दोनों ही रूप एक-दूसरे से परे एक ही है। यह सब कुछ तो उसी रूप का विकास है। तुम्हारी माया से मोहित लोग तुम्हारे इस रूप को नहीं जानते हैं। सबमें चिदानन्दस्वरूपा तो तुम्हीं हो॥ १८॥ समय के क्रम से भिन्न ही तुम्हारा रूप है। यह धरती प्रभृति दृश्य जगत् उसी के एक रूप का विकास है। वह रूप तो एक ही तमोमात्र है। यह रूप तो तमोगुण से ही प्रदीप्त है। इससे भिन्न तो तुम शान्तिस्वरूपा हो, किन्तु अनभिज्ञ लोग तुम्हारे इस रूप को नहीं जानते हैं॥ १९॥ शिवादि देवगण, धरती की सीमा की जो पंक्तियाँ हैं वे सब तुम्हारी विचित्र देह में ही शोभते हैं। वस्त्र पर छपे उचित चित्र, जल की परछाईं पर झिलमिलाते चन्द्र-तारे-आकाश की तरह हे पराशक्ति! तुम्हीं तो सब कुछ हो॥ २०॥ अभिन्न हो या विभिन्न, भीतर हो या बाहर जो कुछ शोभता है, प्रकाश हो या अन्धकार सब कुछ तुम चिति के बिना कुछ भी नहीं; जो कुछ भी है, सब तुम्हीं हो, तुम्हारे सिवा और कुछ भी नहीं है॥ २१॥ अन्तरङ्ग को रोककर इन्द्रिय-समूह को अपने में विलीन कर सभी जगह कामादि भावों को छोड़कर महायोगियों की चित्तभूमि में चिदानन्दस्वरूपा तुम्हीं शोभती हो॥ २२॥ तथा दूसरे लोग मन के साथ संचरित इन्द्रियों से भी संयमित उस मार्ग पर आरूढ होते हैं। अपने ज्ञानरूपी सुधा के आदर्श देह में महायोगी तुम्हें ही स्फुटित देखते हैं॥ २३॥ अभिव्यक्त महासार के मार्ग में जो तुम्हारी सूक्ष्म गति है, उसे जड़ स्वभाव वाले लोग नहीं जानते हैं।

जनान् तान् समुद्धर्तुमक्षाऽवगम्यं बहिःस्थूलरूपं विभिन्नं बिभर्षि॥ २४॥
तदाराधनेऽनेकमार्गान् विचित्रान् विधायाऽथ मार्गेण केनाऽपि यान्तम्।
नदीवारि सिन्धुर्यथा स्वीकरोति प्रदाय स्वभावं स्वात्मीकरोषि॥ २५॥
तथा तासु मूर्तिष्वनेकासु मुख्या धनुर्बाणपाशाऽङ्कुशाऽऽढ्यचैव मूर्तिः।
शरीरेषु मूर्धेव ये तां भजेयुर्जनास्त्रैपुरीं मूर्तिमत्युत्तमास्ते॥ २६॥
जनान् दुःखसिन्धोः समुद्धर्तुकामा पथस्ताननेकान् प्रदिश्य प्रकृष्टान्।
दयार्द्रस्वभावेति विख्यातकीर्तिस्त्वमेकैव पूज्या पराशक्तिरूपा॥ २७॥
सदा ते पदाब्जे मनःषट्पदो मे पिबन् तद्रसं निर्वृतः संस्थितोऽस्तु।
इति प्रार्थनां मे निशम्याऽऽशु मातर्विधेहि स्वदृष्टिं दयार्द्रामपीषत्॥ २८॥

इति संस्तुत्य सा गौरी त्रिपुरां परमेश्वरीम्। स्तोत्रेण ज्ञानकलिकाऽऽख्येन ध्यानं समास्थिता॥
अथ सा ध्येयमात्राऽऽत्मरूपिणी समजायत। यदा तदा सा त्रिपुरा प्रत्यक्षीभवदम्बिका॥ ३०॥
चक्रराजरथाऽऽरूढा सर्वाऽऽभरणभूषिता। सा चाऽमररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता॥ ३१॥
पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणलसद्बाहुचतुष्टया। बन्धूककुसुमाऽऽभा सा चन्द्रचूडा त्रिलोचना॥ ३२॥
कामेश्वराऽङ्कनिलया रत्नकौशेयवासिनी। ददर्श गौरीं ध्यायन्तीं ध्येयमात्राऽवशेषिणीम्॥
परिवारस्वानुचरकोलाहलशतैरपि। अप्रबुद्धां समालोक्य गौरीं तां त्रिपुराऽम्बिका॥ ३४॥
चित्ताऽकर्षिणिकां शक्तिमवलोकयदम्बिका। अथ सा परमेशान्या विदित्वा वीक्षणाऽशयम्॥
चकर्ष गौरी चित्तं तद्ध्येये लीनमास्थितम्। ध्येयनिर्गतचित्ता सा किमेतदिति विस्मिता॥ ३६॥

ऐसे लोगों के उद्धार हेतु बाहरी स्थूल अनेक रूप तुम धारण करती हो॥ २४॥ तुम्हारी आराधना के अनेक मार्ग हैं और वे सभी विचित्र हैं, उनमें से किसी एक को जो अपना आधार बनाकर चलते हैं, उनकी भी आराधना उसी तरह सफल होती है; उसे भी तुम उसी तरह स्वीकार करती हो, जैसे अनेक नदियों की धारा को सागर आत्मसात् कर लेता है॥ २५॥ उसी तरह उन अनेक मूर्तियों में वह मूर्ति प्रमुख है जिसके हाथों में धनुष, बाण, पाश, अंकुश शोभते हैं। देहों में जैसे सिर की प्रधानता है, उसी तरह मूर्तियों में त्रिपुरा मूर्ति ही सर्वोत्कृष्ट है॥ २६॥ दुःखसागर में डूबते मनुष्यों का उद्धार करने के लिए अनेक प्रकृष्ट पथ दिखलाये गये हैं। तुम्हारा स्वभाव परम दयालु है, तुम्हारा यश विख्यात है, पराशक्ति के रूप में एकमात्र तुम्हीं पूज्या हो॥ २७॥ हे मातः! तुम्हारे चरणकमलों में भौंरे की तरह मेरा मन भक्तिरस को पीते हुए सदैव संलग्न रहे। मेरी इस प्रार्थना को सुनकर शीघ्र ही अपनी दयादृष्टि मेरे लिए खोलो। २८॥ इस तरह गौरी त्रिपुरा परमेश्वरी की इस ज्ञानकलिका नामक स्तोत्र से स्तुति कर ध्यानमग्न हो गई॥ २९॥ इस तरह गौरी ने त्रिपुरा के साथ अपनी आत्मा का तादात्म्य स्थापित कर लिया, तब अम्बिका त्रिपुरा उसके सामने प्रकट हो गई॥ ३०॥ चक्रराज रथ पर सवार हर तरह के आभूषणों से सुशोभित, लक्ष्मी और सरस्वती क्रमशः बायें, दायें चमर डुलातीं॥ ३१॥ पाश, अंकुश, धनुष और बाण चारों हाथो में शोभते, सिर पर चन्द्रमा, आँखें तीन बन्धूक फूल की तरह कान्तिवाली॥ ३२॥ भगवान् शिव की गोद में बैठी रत्नजटित रेशमी वस्त्र पहने भगवती त्रिपुरा का ध्यान करते हुए गौरी ने उसी रूप में देखा॥ ३३॥ अपने परिवार एवं सैकड़ों अनुचरों के कोलाहल के बीच अप्रबुद्ध गौरी को देखकर चित्ताकर्षिणी शक्ति की ओर त्रिपुरा ने देखा। उस शक्ति ने भगवती के आशय को जानकर॥ ३४-३५॥ अपने ध्येय में लीन गौरी के चित्त को वहाँ से हटा दिया। भगवती त्रिपुरा से चित्त हटते ही उसने कहा— यह क्या?॥ ३६॥ पार्वती ने अपनी बाहरी आँखें खोलकर सामने खड़ी पराम्बिका को देखकर अतिहर्ष

प्रेक्षाश्वके बहिर्दृष्टिमुन्मील्य नगकन्यका। दृष्ट्वा पराम्बिकां गौरी प्रणनामाऽतिहर्षिता॥ ३७॥
बद्धाञ्जलिपुटा देवीं प्रवक्तुमुपचक्रमे। देवि संशाधि मां भृत्यां किं विधास्यामि साम्प्रतम्॥ ३८॥
अग्रजः कमलाक्षो मां देहेन समयोजयत्। तत् त्वदाज्ञामहं मूर्ध्नाऽऽवहन्ती देहमास्थिता॥ ३९॥
त्वद्वितीर्णश्च मे भर्ता तपस्येवाऽभिसंरतः। तदाज्ञापय यत् कार्यं मया तत् परमेश्वरि॥ ४०॥
निशम्य प्रार्थनां गौर्याः प्राह सा परमेश्वरी। शृणु पार्वति यत्किञ्चिन्नाऽस्ति तेऽविदितं क्वचित्॥
मदंशभूता यस्मात्त्वं न हास्यति तवेप्सितम्। तपसा विरतो देवः शिवस्त्वां परिणेष्यति॥ ४२॥
कुमारो भविता शीघ्रं सर्वलोकैकनन्दनः। त्वयाऽहं संस्तुता येन स्तोत्रेण नगनन्दिनि॥ ४३॥
यस्मात्तच्छाक्तविज्ञानगर्भितं पठतां नृणाम्। ज्ञानदं ज्ञानकलिकास्तोत्रमित्यभिविश्रुतम्॥ ४४॥
तस्मादस्तु मत्प्रसादात् प्रीता स्यां पठतां नृणाम्। इति गौरीं समाभाष्य जगामाऽन्तर्द्धिमम्बिका॥
अथ गौरी प्रणम्याऽम्बां स्नात्वा सुरसरिद्वरे। पुनः सम्पूज्य तां मूर्तिं विसृज्य सलिले ततः॥ ४६॥
भुक्त्वा प्रसादं सखिभिः सह पर्वतनन्दिनी। वनस्य शोभां प्रेक्षन्ती सुशीतलशिलातले॥ ४७॥
शयाना पर्णशयने शृण्वन्ती सखिभाषितम्। तत्र काचित् सखी प्राह गौरीं प्रति तदा वचः॥ ४८॥
शृणु गौरि त्वया चैतदविमृश्य कृतं ननु। पितरौ सम्परित्यज्य वृद्धौ त्वद्विरहाऽऽतुरौ॥ ४९॥
वनेऽस्माभिर्महाघोरे समायाताऽसि तन्न सत्। त्वां विना तौ महादुःखदावाग्निमभिसङ्गतौ॥
जीवितं जहीतः सत्यं शलभाविव पावकम्। श्रुत्वैवं सखिवाक्यं सा गूहन्ती स्वस्य वैभवम्॥ ५१॥
पित्रोर्वियोगतो दीना रुदन्ती प्राह तां सखीम्। अवेहि सखि मद्वाक्यमहं पूर्वं पतिं शिवम्॥ ५२॥

के साथ प्रणाम किया॥ ३७॥ हाथ जोड़कर भगवती से कहना शुरू किया—हे देवि! मेरी रक्षा करो, मुझ सेविका के लिए यह कैसा तुम्हारा विधान है?॥ ३८॥ तुम्हारी आज्ञा अपने सिर पर चढ़ाकर मैंने देह धारण किया और आज श्रीहरि विष्णु मेरे बड़े भाई हैं और उन्हीं के साथ मेरे विवाह की योजना बना दी॥ ३९॥ तुम्हारे दिये हुए मेरे पति तपस्या में लीन हैं, अब तुम्हीं बताओ, मुझे क्या करना चाहिए?॥ ४०॥ गौरी की प्रार्थना सुनकर उस परमेश्वरी ने कहा—सुनो पार्वती! जो कुछ नहीं है, उसे तुम भी नहीं जानती॥ ४१॥ तुम्हारी उत्पत्ति मेरे अंश से हुई है, अतः तुम्हारी इच्छित वस्तु तुमसे अलग नहीं होगी। महादेव शिव तपस्या से विरत हो चुके हैं, उन्हीं के साथ तुम्हारा विवाह होगा॥ ४२॥ विवाह के बाद शीघ्र ही सब लोक को आनन्द देने वाला तुम्हें एक पुत्र होगा। हे पर्वतपुत्री! तुमने जिस स्तोत्र से मेरी स्तुति की है॥ ४३॥ वह स्तोत्र शाक्त-विज्ञान गर्भित है, वह ज्ञानकलिका नाम से विख्यात होगा। उस स्तोत्र का जो मनुष्य पाठ करेगा वह ज्ञानी होगा॥ ४४॥ इस स्तोत्र का पाठ करने वाले लोगों पर मैं परम प्रसन्न रहूँगी। गौरी को इतना कहकर भगवती त्रिपुरा आँखों से ओझल हो गई॥ ४५॥ गौरी ने भगवती त्रिपुरा को प्रणाम कर गंगा में स्नान कर स्वनिर्मित मूर्ति की पूजा कर उसे गंगाजल में विसर्जित कर दिया॥ ४६॥ फिर भगवती का प्रसाद सखियों के साथ खाकर वन की शोभा देखती शीतल शिलातल पर॥ ४७॥ पत्ता बिछाकर लेट गई और सखियों की बातें लेटकर सुनने लगी। उनमें से किसी सखी ने गौरी से कहा॥ ४८॥ हे गौरी! तुमने यह बिना विचारे काम किया है। तुम्हारे विरह में आतुर वृद्ध माता-पिता को छोड़कर तुमने यह विचारहीन काम किया है॥ ४९॥ हम लोग जो इस महाघोर जंगल में आये हैं, यह सत्य नहीं है। तुम्हारे बिना तुम्हारे माता-पिता दुःख-दावाग्नि में जल रहे हैं॥ ५०॥ जीवित रहकर भी जैसे फतिंगे आग में जलते हैं, उसी तरह जल रहे हैं। सखी की ऐसी बातें सुनकर अपने वैभव को छिपाती हुई गौरी ने॥ ५१॥ सखियों से कहा—हे सखि! तुम मेरी बात को सुनो, माँ-बाप के वियोग से अतिदीन और रोती हुई उसने बतलाया कि

वृताऽस्मि मनसा तन्मे पित्रा मोघं कृतं ततः। युष्माभिरागता साकं वनमेतद्भयङ्करम्॥५३॥
तौ रक्षतु परादेवी या मया पूजिता शिवा। एवमादिबहूक्त्वा सा निद्रामभिसमागता॥५४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानं
नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २५०६॥

मैंने पहले ही शिव को पति के रूप में॥५२॥ मन से वरण कर लिया था। मेरे पिता ने इसे झुठला दिया, तब तुम लोगों के साथ इस भयंकरं वन में आ गई॥५३॥ मेरे माँ-बाप की रक्षा वह परादेवी करेगी, जिस शिवा की मैंने पूजा की है। इस तरह की अनेक बातें कहकर उस शिलापट पर पार्वती सो गई॥५४॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५०६॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

यदा गौरी वनं याता ततः पश्चान्महीधरः। वनाद्गृहान्तरं प्राप्तस्तनूजादर्शनोत्सुकः॥ १॥
आयान्तं सम्मुखे याति प्रत्यहं तं तनूद्भवा। अनागतां तद्दिने तां चिन्तयामास भूधरः॥ २॥
नूनं नाऽऽयाति सा कस्मात्सम्मुखेऽद्य ममाऽऽत्मजा। गता क्वचिद्वा शारीरपीडिता वा भवेत् क्वचित्॥
अथ वा मयि रुष्टा स्यान्न रुष्टा मयि सा क्वचित्। किञ्चिदत्र निमित्तं स्यादिति चिन्ताऽऽकुलो नगः॥
प्रविश्याऽन्तर्गृहं मेनां प्रियां स समचष्टत। कुत्राऽऽत्मजेति सा पृष्टा प्रब्रवीत् पतिमद्रिपम्॥
सखीभिः सहिता याता क्वचित् क्रीडापराऽऽत्मजा।
स्यात् सखीनां गृहे वाऽपि वाटिकायामथाऽपि वा॥ ६॥
तामानेतुं प्रेषयामि धात्रीमित्यब्रवीत् प्रिया। प्रेषिताऽपि तया धात्री विचित्याऽऽलिगृहाणि च॥
वाटिकां पुनरभ्येत्य न क्वचित् सेति साऽब्रवीत्। नगः श्रुत्वा वचो धात्र्याः शोकसंविग्नमानसः॥
हा हतोऽस्मीति निःश्वस्य तां विचेतुं बहिर्ययौ। अनुजीविभिः सार्धं विचिन्वन् तत्र तत्र हा॥
शोकाऽन्धः प्रस्खलन् भूयो मार्गग्राणः समन्ततः। मृगयित्वा पुरे तस्मिन् गृहाणि च वनानि च॥
समागता गृहे स्यादित्येवं भूयो गृहं ययौ। तत्राऽप्यनुपलभ्यैनां विललाप महीधरः॥ ११॥
हा कन्ये कुत्र याता त्वं संहृता वाऽपि केनचित्। हृता वा भक्षिता वा त्वं रक्षोभिर्वा वृकादिभिः॥
न मां वृद्धं प्रियं तातं गता हित्वा कदाऽपि सा। कश्चिन्न हन्ता तस्या वै गुणैः स्वीयैः शुभोदयैः॥

*** विमला ***

जब गौरी जंगल जाती और उसके बाद हिमराज भी जंगल जाते और बेटी को भर आँख देखने की ललक दिल में संजोये जंगल से घर आते॥ १॥ तो उन्हें आते देख प्रतिदिन गौरी उनके सामने जाती थीं। किन्तु उस दिन बेटी को सामने नहीं देखकर पर्वतराज सोच में पड़ गये॥ २॥ आज मेरी बेटी मेरे सामने क्यों नहीं आयी? कहीं बाहर गयी है क्या? या बीमार तो नहीं हो गयी है?॥ ३॥ अथवा मुझ पर कहीं गुस्सा तो नहीं गई है? वह तो मुझ पर कभी गुस्सा नहीं करती थी, इसका क्या कारण हो सकता है? ऐसा सोचते समय हिमालय चिन्तातुर हो गये॥ ४॥ अपने घर में प्रवेश कर हिमराज ने अपनी पत्नी से पूछा—हमारी बेटी कहाँ है? इसके उत्तर में पति से उन्होंने कहा॥ ५॥ सखियों के साथ खेलने के लिए आपकी बेटी कहीं गई है या सखियों के घर अथवा फुलवारी में कहीं होगी॥ ६॥ उन्हें लाने के लिए अभी मैं दासी को भेजती हूँ। दासी सभी सखियों के घर देखकर॥ ७॥ फुलवारी आकर उन्हें ढूँढा और लौटकर उन्हीं कहीं न पाने की सूचना हिमराज को दी। यह सुनकर हिमराज शोकसागर में डूब गया॥ ८॥ हा! मैं तो मरा! यह कहते हुए लम्बी साँसें खींचकर उसे खोजने के लिए बाहर निकल गये। अनुजीवियों के साथ जहाँ-तहाँ खोजते हुए॥ ९॥ शोक से अन्धे बने गिरते-बजरते, इधर-उधर उस नगर के घर और जंगलों में उन्हें खोजकर॥ १०॥ शायद घर लौट आई होगी, इस सम्भावना से घर लौट आये, पर यहाँ भी उसे न पाकर पर्वतराज फूट-फूट कर रोने लगे॥ ११॥ हा बेटी! तुम कहाँ गई? किसी राक्षस या जंगली जानवरों ने तुम्हें पकड़ लिया, खा डाला या अपहरण कर लिया?॥ १२॥ मुझ बूढ़े बाप का साथ तुमने कभी नहीं छोड़ा, तुम्हारे कल्याणकारी

वशीकृत्य स्थिता सा हि मद्रिपूनपि सर्वतः । तां विनाऽहं क्षणमपि जीवितुं नोत्सहे क्वचित्॥
शस्त्रेण कालकूटेन तथोद्वन्धेन केन वा । अग्निना वाऽपि हास्यामि प्राणान्नाऽस्त्यत्र संशयः॥
अहो मृषोक्तं भवति दैवतानामपि क्वचित् । यदेनां प्राह दैवज्ञो मम मानप्रवर्द्धिनीम्॥ १६॥
अस्या भर्ता सर्वसेव्यः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः । स ते कीर्तिं सर्वलोके प्रकृष्टां प्रविधास्यति॥ १७॥
इत्यादिवचसां तेषां मृषात्वं न कथं भवेत्। इत्येवं विलपन् शैलः पपात भुवि मूर्च्छितः॥ १८॥
अथ तं तादृशं वीक्ष्य नृपं मन्त्रिपुरोगमाः । उत्थाप्याऽश्वासयाञ्चक्रुस्समाधानवचोगणैः॥ १९॥
नृपते मा त्यज धृतिमापत्सु धृतिमुत्तमाम्। न त्यजन्ति महात्मानो धृतिराप × × मतः॥ २०॥
आपत्सु धैर्यत्यागं वै प्राहुः कापुरुषव्रतम् । तस्माद्धैर्यं समालम्ब्य यत बुद्धयनुसारतः॥ २१॥
एवं प्रबोधितोऽमात्यैरुत्थाय मन्त्रिभिः सह । यावदन्वेषणोद्युक्तस्तावच्चारः समाययौ॥ २२॥
वर्द्धयित्वा शैलराजं प्रणतः प्राह वै वचः । महाराज वयं दिक्षु तां मार्गितुमभिद्रुताः॥ २३॥
तत्र प्रागुत्तरस्यां वै महारण्यप्रवेशिनी । अस्त्येकपदिका याता तयाऽरण्यं कुमारिका॥ २४॥
तत्पदाऽङ्कमुपालक्ष्य जानीमो वयमद्रिप । अन्यासाञ्च चतसृणां लक्षितानि पदान्यपि॥ २५॥
नगरोपचतप्रस्ताः कन्या न सन्ति कुत्रचित् । दारिकायास्तव विभो प्रेयस्योऽतितरां हिताः॥
तथैकपद्यया वनं गताश्चाराः सहस्रशः । मार्गितुं राजपुत्रीं तां सर्वतो मार्गकोविदाः॥ २७॥
तत्सन्देशहरश्चाहं सम्प्राप्तस्त्वत्पदाऽन्तिकम् । प्राप्यैवं चारवचनं मुमूर्षुरिव सद्रसम्॥ २८॥
हारं मणिमयं तस्मै सम्प्रहृष्टो ददौ द्रुतम् । अथ द्रुततरं शैलः प्रययौ तेन वर्त्मना॥ २९॥

गुणों के कारण तुम्हें कोई नहीं मार सकता॥ १३॥ मेरे जितने दुश्मन हैं, उन्हें भी तुमने वशवर्ती बना लिया। तुम्हारे बिना तो मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता॥ १४॥ हथियार या जहर पीकर या आग में जलकर निश्चित रूप से उसके बिना मैं अपने प्राणों को छोड़ दूँगा॥ १५॥ अरे, ज्योतिषियों और देवताओं का कथन क्या कभी झूठा हो सकता है? उन्होंने मुझसे कहा था—यह सन्तान तुम्हारे मान-सम्मान को बढ़ायेगी॥ १६॥ इसका पति सर्वसेव्य, सर्वज्ञ और पुरुषोत्तम होगा। वह जामाता तुम्हारी कीर्ति सभी लोकों में फैलायेगा॥ १७॥ उनकी ये सारी बातें झूठी कैसे होगी? इस तरह विलाप करते हुए शैलराज धरती पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥ १८॥ उन्हें इस तरह देखकर उनके मन्त्रियों और पुरोहितों ने उन्हें उठाकर अनेक तरह से आश्वासन दिया॥ १९॥ हे राजन्! आपत्तिकाल में अपने उत्कृष्ट धैर्य को मत छोड़िए, आपत्ति में महात्मा धैर्य नहीं छोड़ते॥ २०॥ विपत्ति में धैर्य कायर ही छोड़ते हैं, अतः धैर्य धारण कर जो आपकी बुद्धि कहे, वैसा ही कीजिए॥ २१॥ इस तरह सचिवों से आश्वस्त होकर हिमराज उठ खड़े हुए और जब तक मन्त्रियों के साथ उन्हें खोजने के लिए तत्पर हुए तब तक वहाँ गुप्तचर उपस्थित हुआ॥ २२॥ उसने प्रणत होकर शैलराज को निवेदित किया—हे महाराज! हर दिशा में उन्हें खोजने के लिए दूतों को मैंने भेज दिया है॥ २३॥ वहाँ पूरब-उत्तर दिशा की ओर महारण्य में प्रवेश करने वाली पगडण्डी गई है, सम्भवतः उसी राह से कुमारी गई है॥ २४॥ हे नगाधिराज! उस पगडण्डी पर उनका पदचिह्न पाया गया है, साथ ही उनकी चार सखियों के भी पदचिह्न उस राह पर मिले हैं॥ २५॥ आपके नगर से वे चारों कन्याएँ भी लापता हैं। हे स्वामी! आपकी पुत्री की वे प्रिय सखियाँ हैं॥ २६॥ उस पगडण्डी से हजारों दूत जंगल की ओर रवाना हो चुके हैं। उस राह के चप्पे-चप्पे से परिचित दूत वहाँ उन्हें ढूँढ़ रहे हैं॥ २७॥ वहाँ से सन्देश लेकर लौटे एक दूत को मैं आपके चरणों में उपस्थित कर रहा हूँ। यह समाचार मरते हुए हिमालय को जीवनदान दिया॥ २८॥ हिमालय ने उस पर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर अपने गले का रत्नहार उसे दिया और शीघ्रता से शैलराज

चारप्रदिष्टेन वनं गहनं भीमसन्निभम्। वृक्षैर्गुल्मैर्लताभिश्च महासालैर्भयानकैः॥ ३०॥
निचितं झिल्लिकारावैर्झङ्कृतं भीतिवर्धनम्। समालोक्य शैलराजः पर्यतप्यत दुःखितः॥ ३१॥
अहो कष्टमिदं दुर्गं वनं सा मम कन्यका। भीरुः कथं प्रविष्टा स्यात् सुकुमारशरीरिणी॥ ३२॥
अयस्कल्पैः सुनिशितैः कण्टकैर्वर्त्म सञ्चितम्। कथं सा मृदुपादाभ्यां संयाता सखिभिः सह॥ ३३॥
मया कदाचिदपि नो रोषिता क्वाऽपि तत् कुतः। वनं प्रविष्टा सखिभिः केन वा हेतुना भवेत्॥
एवम्भूते घोरतमे श्वापदैर्मांसभोजनैः। समाकीर्णे कथं जीवेद्भयेनैव मृता भवेत्॥ ३५॥
श्वापदैर्भक्षिता वा स्यात् दष्टा स्याद्वाऽपि पन्नगैः। व्यापादिता वा भल्लूकैर्हृता वा वनचारिभिः॥
नष्टा सा सर्वथैवाऽद्य न तां पश्याम्यहं पुनः। इत्येवं विलपन् भूयः स्खलंश्चाऽपि पदे पदे॥ ३७॥
आतपैरभितप्ताऽङ्गः पतितोऽभून्महीतले। अथाऽनुयायिभिः शीघ्रमुत्थाप्य तरुमूलतः॥ ३८॥
निवेशितः शीततोयैरभिषिक्तश्च जीवितः। उपलभ्य ततः प्रज्ञामुन्मील्य नयने गिरिः॥ ३९॥
शोकसंविग्नहृदयः कन्यामेवाऽनुशोचत। ततः क्षणेन सम्प्राप्तश्चारः पर्वतसन्निधिम्॥ ४०॥
वर्धयित्वा प्रणम्याऽह हर्षयन् पर्वताऽधिपम्। पर्वतेश्वर कन्या ते इतः क्रोशचतुष्टये॥ ४१॥
चारैरासादिता देवनदीतीरे सखीवृता। प्रसुप्ता तत्र तां सर्वे चारा रक्षन्ति सर्वतः॥ ४२॥
अहं विज्ञप्तुमायातः स्वामिपादसमीपतः। द्रष्टुमर्हसि तां शीघ्रं गौरीं हृदयनन्दिनीम्॥ ४३॥
श्रुत्वा चारस्य वचनममृतस्यन्दिपेशलम्। उत्थितः सहसा देहः प्राणानिव सुसङ्गतः॥ ४४॥

ने उसकी बतलायी राह से प्रस्थान किया॥ २९॥ दूत ने जिस राह का निर्देश किया, वह भयंकर गहन वन की ओर जाती थी। वृक्षो, लतागुल्मों तथा बड़े-बड़े साल के वृक्षों से वह जंगल बड़ा भयावना लग रहा था॥ ३०॥ सारी घाटी झिंगुरों की झनकार से भयानक बन गई थी। वहाँ का दृश्य देखकर पर्वतराज काफी दुःखी हुये॥ ३१॥ हाय! कितनी कष्टकर यह स्थिति है, सुकुमार देह वाली भीरु स्वभाव वाली मेरी बेटी इस भयंकर जंगल में कैसे घुसी?॥ ३२॥ इसकी राहें लोहे की तरह नुकीले काँटों से भरी पड़ी हैं। अपने कोमल नंगे पैरों से अपनी सखियों के साथ इस कण्टीली भूमि को वह पार कैसे की होगी?॥ ३३॥ हाय! मैंने तो कभी उस पर क्रोध नहीं किया, डाँटा-फटकारा भी कभी नहीं, फिर वह इस भयंकर जंगल में अपनी सखियों के साथ क्यों आई? आने का कारण क्या हो सकता है?॥ ३४॥ ऐसे घनघोर जंगल में जहाँ आदमखोर जानवरों से चप्पा-चप्पा भरा है, जीवित कैसे होगी? वह तो डर कर ही मर गई होगी॥ ३५॥ या तो उसे हिंसक जन्तु खा गये होंगे, साँप काट लिये होंगे या जंगल में घूमने वाले भालू उसे खा गये होंगे॥ ३६॥ निश्चय ही वह विनष्ट हो गई है, क्योंकि मैं उसे कहीं देख नहीं रहा हूँ। इस तरह पग-पग पर ठोकर खाते, रोते, बिलखते॥ ३७॥ प्रचण्ड धूप से तप कर धरती पर गिर गया। अनुयायियों ने उन्हें शीघ्र उठाकर पेड़ की छाया में॥ ३८॥ रख कर ठण्डे जलकण के छींटें मार कर उन्हें होश में लाये। होश में आकर गिरिराज ने फिर अपनी आँखें खोलीं॥ ३९॥ शोक में उनका हृदय डूबा था, अपनी बेटी के बारे में ही वे प्रतिक्षण सोच रहे थे कि उसी क्षण एक दूत उनके पास दौड़कर पहुँचा॥ ४०॥ और आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम कर खुशखबरी सुनायी—हे महाराज! यहाँ से चार कोस आगे आपकी पुत्री हमें मिली है॥ ४१॥ आपके दूत वहाँ पहुँचे हैं। वह सखियों के साथ गंगा नदी के किनारे सोई हैं। चारों ओर से आपके दूत उन्हें घेरकर उनकी रक्षा कर रहे हैं॥ ४२॥ मैं आपके चरणों में यह संवाद निवेदित करने यहाँ आया हूँ। अब आप अपनी हृदयनन्दिनी गौरी को शीघ्र देख सकते हैं॥ ४३॥ दूत की सुधारस में डूबी इन बातों को सुनकर सहसा पर्वतराज उठ खड़े हुए। उनकी देह में फिर से प्राणों का संचार हो गया॥ ४४॥ दूत के द्वारा

ययौ द्रुतं वनं चारदर्शितेनैव वर्त्मना । स गत्वा ददृशे कन्यां सुप्तां सखिगणैः सह ॥ ४५ ॥
उत्थाप्याङ्कं समारोप्य मूर्ध्न्युपाघ्राय शैलराट् । आनन्दाऽश्रूणि मुञ्चानः कन्यां स्वां पर्यपृच्छत ॥
वत्से केन निमित्तेन वनमेतत् समागता । नाऽपराद्धं मया क्वाऽपि त्यक्तोऽहं केन हेतुना ॥ ४७ ॥
माता ते त्वां विना सद्यो जीविता स्यात् कथञ्चन । वद त्वमिह सम्प्राप्ता हेतुना केन तद्द्रुतम् ॥
एवं पितुः समाकर्ण्य शोकोद्गारयुतं वचः । प्राकृतं भावमाश्रित्य मोहयन्ती समागतान् ॥ ४९ ॥
तात सत्यं शृणु वचः प्रब्रवीमि तवाऽग्रतः । मया त्रिलोचनः शम्भुर्मनसा संवृतः पतिः ॥ ५० ॥
त्वया तदन्यथयितं देवर्षेर्वचनान्ननु । तस्माद्वनं सङ्गताऽस्मि प्राणानुत्स्रष्टुमुद्यता ॥ ५१ ॥
न हि पतिं वृणे कृष्णं भ्रातरं भगिनी इव । यदि दास्यसि मां तात शम्भवे सत्यतो वद ॥ ५२ ॥
तदागच्छामि नगरे वने नो चेद्वसाम्यहम् । इत्युक्त्वा समुपाश्लिष्य पितरं सा रुरोद ह ॥ ५३ ॥
अयं शैलपतिः कन्यां रुदन्तीं दीनमानसः । समाश्वास्य तदा प्राह चाऽश्रूणि परिवर्तयन् ॥ ५४ ॥
वत्से त्वं न विजानासि शिवं नाम्ना शिवं न नु । अशिवाऽऽकारचारित्रः श्मशानस्थोऽहिभूषणः ॥
चर्मवासाः कपालस्रग्भूषितो भूतसेवितः । श्वित्रवत्पाण्डुरतनुः क्रोधनश्चाऽव्यवस्थितः ॥ ५६ ॥
पुरा दाक्षायणी तस्य भर्तुर्दुश्चरितैः सती । शोकोपहतचित्ता सा भस्मीभूता पितुर्गृहे ॥ ५७ ॥
विष्णुः सर्वगुणोपेतः पीताम्बरसुशोभितः । वनमालाकौस्तुभाद्यैरलङ्कृततनुः शुभः ॥ ५८ ॥
निसर्गसुगुणैर्लक्ष्मीर्यं वव्रे पतिमुत्तमा । स ते योग्यः पतिः वत्से न शिवस्ते सदृग्गुणः ॥ ५९ ॥

बतलायी गयी राह से चलकर हिमराज वहाँ पहुँचे जहाँ उनकी प्यारी पुत्री सखियों से घिरी सो रही थी ॥ ४५ ॥ शैलराज ने उठाकर अपनी गोद में बैठाकर उनके सिर को सूँघा। उनकी आँखों से खुशी के आँसू छलक पड़ें। उन्होंने उनसे पूछा ॥ ४६ ॥ बेटी ! इस घोर जंगल में तुम क्यों चली आयी ? मैंने तो भूल से भी कभी तुम्हें कोई कष्ट नहीं दिया, फिर तुम मुझे छोड़कर क्यों चली आई ? ॥ ४७ ॥ तुम्हारी माँ तुम्हारे बिना किसी तरह जी रही है। तुम शीघ्र बतलाओ, हमें छोड़कर तुम यहाँ क्यों चली आई ? ॥ ४८ ॥ इस तरह पिता की शोक-सन्तप्त बातें सुनकर स्वाभाविक रूप से गौरी ने पिता से कहा ॥ ४९ ॥ हे पिताजी ! आपके सामने मैं सच-सच बतलाती हूँ, सुनिए। मैं अपने मन से त्रिलोचन शिव को अपने पति के रूप में स्वीकार कर चुकी हूँ ॥ ५० ॥ आपने नारदजी के बहकावे में आकर मेरे मन के विरुद्ध काम किया। इसीलिए मैं जंगल भागकर आई हूँ और यहाँ अपनी जान गँवाने को तैयार हूँ ॥ ५१ ॥ मैं किसी भी स्थिति में विष्णुजी के साथ विवाह नहीं कर सकती, क्योंकि उनके साथ तो हमारा बहन और भाई का रिश्ता है। पिताश्री आप सच-सच बतला दें, मेरी शादी तो आप शिव के साथ ही करेंगे न ? ॥ ५२ ॥ तभी मैं आपके नगर में पैर रखूँगी, अन्यथा मैं जंगल में ही रहूँगी। इतना कहकर वह पिता से लिपट कर फफक कर रोने लगी ॥ ५३ ॥ मन से अत्यन्त दुःखी रोती हुई कन्या को जिस किसी तरह आश्वसित कर, उनकी आँखों से बहते आँसुओं को पोंछकर नगाधिराज ने कहा ॥ ५४ ॥ बेटी ! शिव को तुम नहीं जानती, वे नाम के ही शिव हैं, अन्यथा आकार और चरित्र से बड़े ही अशिव अर्थात् अमङ्गल या अशुभ हैं। श्मशान में रहते हैं और साँप उनका भूषण है ॥ ५५ ॥ चमड़ी पहनते हैं, नरखोपड़ी और हड्डियों से विभूषित है, भूत-प्रेत उनके संगी-साथी हैं। सफेद कोढ़ की तरह पीताभ श्वेत उनकी देह है, क्रोधी स्वभाव और अव्यवस्थित चरित है ॥ ५६ ॥ पहले दक्षसुता सती उनकी पत्नी थी, अपने पति के आचरण से अत्यन्त खिन्न होकर पिता के घर में ही जलकर मर गई ॥ ५७ ॥ इधर विष्णु तो सर्वगुणसम्पन्न हैं, पीताम्बर पहनते हैं; वनमाला एवं कौस्तुभ मणि से सुशोभित सुन्दर शरीर वाले हैं ॥ ५८ ॥ स्वाभाविक गुणों से सम्पन्न उन्हें लक्ष्मी ने वरण किया है। वही

श्रुत्वा पितुर्वचः प्राह गौरी रोषाऽरुणेक्षणा। तात मे सैव(?) भर्ताऽस्तु शुभो वाऽप्यशुभोऽपि वा॥
नाऽन्यं वृणे शिवात् कश्चिद्भर्तारमपि सद्गुणम्। निदानमत्र दिष्टं मे नाऽन्यद्वक्तुं त्वमर्हसि॥ ६१॥
श्रुत्वेत्थं तनुजावाक्यं तद्विश्लेषसुकातरः। ओमित्युक्त्वा समादाय कन्यां स्वनगरं ययौ॥ ६२॥
अथ तां पुत्रिकां दातुं शिवायाचिन्तयद्गिरिः। सस्मार नारदं भूयः पर्वतेन्द्रः सभास्थितः॥ ६३॥
विदित्वा नारदस्तत्र तेजोराशिः समाययौ। गिरिस्तं पूजयामास शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना॥
स्वीकृत्य तत्सपर्यां स प्राह पर्वतभूपतिम्। पर्वतेश स्मृतः किन्ते कारणं तत् प्रचक्ष्व मे॥ ६५॥
मया ते वाञ्छितं यत्तत् साधितं शुभमूर्जितम्। जामातृत्वे रमाकान्तः पुरुषः प्रार्थितो मया॥ ६६॥
अङ्गीचकार भगवांस्तव भाग्यवशाच्च नु। श्रुत्वेत्थं नारदवचो हिमाद्रिर्भीतमानसः॥ ६७॥
बद्धाञ्जलिः क्षमस्वेति प्रार्थयामास तं मुनिम्। मुने हि ते प्रतिश्रुत्य कन्यां दास्यामि विष्णवे॥
इत्यहं वितथीभूतो निजभाग्यविपर्ययात्। यदा ते विष्णवे कन्यां दास्यामीति प्रतिश्रुतम्॥ ६९॥
ततः परदिने कन्या मम रुष्टा सखीगणैः। प्रविष्टा विपिनं घोरं मृत्युवक्त्रमिव स्थितम्॥ ७०॥
आसादिता कथञ्चित् सा समानीता च यत्नतः। रमापतिं पतिं नैव सर्वथा साऽभिवाञ्छति॥
प्रमथेशं तु भर्तारं दौर्भाग्यादीहति स्वयम्। मया किं तत्र कर्तव्यं दुर्भाग्येन मुनीश्वर॥ ७२॥
अगाधे घोरविपदि मग्नोऽहं सागरे ननु। अत्र त्वमेव मां शीघ्रं समुद्धर्तुमितोऽर्हसि॥ ७३॥
पर्वतस्य निगदितं श्रुत्वेत्थं देवतापसः। द्रष्टुं गौर्यास्तु माहात्म्यं चुक्रोधाऽतितरां तदा॥ ७४॥

तुम्हारे लिए योग्य वर हो सकते हैं, न कि असमान गुण वाले ये शिव॥ ५९॥ पिता की बातें सुनकर क्रोध से गौरी की आँखें लाल हो गईं। उन्होंने कहा—पिताश्री! वे शुभ हों या अशुभ, वे ही मेरे पति हैं॥ ६०॥ शिव के सिवा दूसरे क। किसी भी स्थिति में मैं अपना वर नहीं मानती, चाहे वह लाख गुणवान् हो। इसका परिणाम मैं जानती हूँ। इसके अतिरिक्त आप अब कुछ भी न कहें॥ ६१॥ बेटी के वियोग से कातर बने गिरिराज ने उनकी यह बात सुनकर उन्हें स्वीकार कर लिया तथा उन्हें साथ लेकर नगर में प्रविष्ट हुए॥ ६२॥ अब हिमालय शिव के लिए अपनी कन्या का दान देने के लिए चिन्तित हुए। सभामण्डप में एक बार फिर उन्होंने नारद का स्मरण किया॥ ६३॥ स्मरण मात्र से ही तेजोदीप्त नारद वहाँ उपस्थित हुए। शास्त्रीय दृष्टि से हिमालय ने उनकी पूजा की॥ ६४॥ उनकी पूजा स्वीकार कर नारद ने हिमालय से कहा—हे पर्वतेश! तुमने मुझे किस लिए याद किया है, बतलाओ॥ ६५॥ मैंने तो तुम्हारी मनचाही वस्तु तैयार कर ली है, तुम्हारे जामाता के रूप में लक्ष्मीपति श्रीविष्णु हरि से मैंने प्रार्थना की है॥ ६६॥ तुम्हारे ही भाग्य से उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है, नारद की बात सुनकर हिमालय सिर से पैर तक काँप उठे॥ ६७॥ हाथ जोड़ मुनि से प्रार्थना करते हुए हिमालय ने उनसे क्षमा-याचना की। हे मुनिवर! आपसे श्रीहरि की गुणगाथा सुनकर ही उन्हें कन्यादान का वचन दिया था॥ ६८॥ किन्तु मेरे भाग्यदोष से मेरा यह कथन व्यर्थ हुआ, क्योंकि जब मैंने व्यर्थ ही 'विष्णु को कन्यादान करूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा की॥ ६९॥ उसके दूसरे ही दिन मेरी बेटी मुझसे रुष्ट होकर अपने विश्वस्त सखियों के साथ मौत के मुँह की तरह विकट एवं घोर जंगल में प्रवेश कर गई॥ ७०॥ किसी तरह उन्हें आश्वस्त कर मैं उन्हें यहाँ प्रयासपूर्वक ले आया हूँ, वह किसी भी स्थिति में रमापति को पति के रूप में वरण करना नहीं चाहती है॥ ७१॥ भगवान् शिव को दुर्भाग्यवश वह स्वयं पति के रूप में चाहती है, मैं इसमें क्या करूँ? हे मुनीश्वर! आप ही बतायें॥ ७२॥ अगाध घोर विपत्ति के सागर में डूबा हुआ हूँ, इस विपत्तिसागर से बचाने में आप ही समर्थ हो सकते हैं॥ ७३॥ पर्वतराज की यह बात सुनकर नारद ने गौरी की महिमा को देखना चाहा। वे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये॥ ७४॥

सस्मार पार्षदान् विष्णोर्विजयादींस्तदा मुनिः। स्मृतमात्रा तु ते तत्र सम्प्राप्ता विष्णुपार्षदाः॥
प्रोवाच विजयं तत्र नारदो मन्युना ज्वलन्। एष शैलकुलाऽङ्गारः स्वामिने मे निजात्मजाम्॥
ददामीति प्रतिश्रुत्य परिभावयितुं हि नः। समीहत्यधमस्तस्माद्वद्ध्वैनं तत्तनूद्भवाम्॥७७॥
नय शीघ्रं मुररिपुः पाणिमस्याः प्रतीच्छतु। श्रुत्वैवं नारदवचो विजयः पार्षदेश्वरः॥७८॥
जित्वा पर्वतराजन्यं समरे बन्धयद्दृढम्। अथ सर्वे पर्वतस्य पौरा भीता विचुक्रुशुः॥७९॥
हा हेति धावमानाश्च सस्त्रीबालाः सहस्रशः। तावत् कन्यां समानेतुं विविशुर्हरिपार्षदाः॥८०॥
मेना पुत्रीं समादाय पुरोहितमुपागमत्। काश्यपः पर्वतगुरुर्दृष्ट्वा नगपतिप्रियाम्॥८१॥
हस्ते गृहीत्वा तनुजां त्रातारमभिवाञ्छतीम्। रुदन्तीं रक्ष रक्षेति ब्रुवाणां भयविह्वलाम्॥८२॥
माभैर्वत्से समायाहीत्युक्त्वा स्वस्य गृहाऽन्तरम्। प्रवेश्यतां समाश्वास्य पार्वतीं प्राह काश्यपः॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
कामोपाख्यानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ २५८८॥



विष्णु के विजयादि पार्षदों का मुनि ने स्मरण किया। स्मरण मात्र से ही विष्णु के अनुचर वहाँ उपस्थित हो गये॥७५॥ क्रोध से जलते हुए नारद ने विष्णुपार्षद विजय से कहा—इस पर्वतकुलांगार ने मेरे स्वामी श्रीहरि विष्णु को॥७६॥ 'अपनी पुत्री दूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा कर अब ठगना चाहता है। यह अधम है, अतः वधू के रूप में इसकी बेटी को॥७७॥ शीघ्र ही श्रीहरि विष्णु के पास ले चले, वे इसका पाणिग्रहण करना चाहते हैं। विष्णु के पार्षदों में सर्वश्रेष्ठ विजय ने नारद की ऐसी बातें सुनकर॥७८॥ पर्वतराज को युद्ध में जीतकर उसे मजबूत बन्धन में जकड़ लिया। यह देखकर पर्वतराज के सभी नागरिक भय से थर-थर काँपने लगे॥७९॥ हजारों-हजार नागरिक औरत और बच्चे के साथ 'हाय मारा गया'—कहकर भागने लगे। इधर विष्णु के अनुचर गण हिमालय-पुत्री को पकड़ने के लिए राजमहल में घुसे॥८०॥ इसी बीच रानी मेना अपनी बेटी को लेकर राजपुरोहित एवं राजगुरु के आश्रम में पहुँच गई। महर्षि काश्यप ने मेना को॥८१॥ अपनी बेटी को हाथ से पकड़े रक्षक को ढूँढ़ती भय से विह्वल रोती हुई 'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' यह बोलती देखकर कहा॥८२॥ बेटी! मत डरो, मेरे पास आओ। इतना कहकर अपने घर में प्रविष्ट होकर उन्हें आश्वासन देकर पार्वती से कहा॥८३॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान
नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५८८॥



अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

लीलयाऽलं महादेवि किं रोदिषि भयार्तवत्। जानेऽहं न च ते भीतिरस्मान्मोहयितुं हि तत्॥
ततो मेनां भयार्तां तां प्राह पर्वतराट् प्रियाम्। शृणु मेने मोहिताऽसि देव्या संस्मर पूर्वजम्॥ २ ॥
वृत्तं यत्तपसाऽऽराध्य देवीं प्राप्ताऽसि नन्दिनीम्। तामेव शरणं याहि मया सह नगप्रिये॥ ३ ॥
श्रुत्वा पुरोहितवचः स्मृत्वा कन्यां पराम्बिकाम्। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव विविधैः स्तवैः॥
लोकानां जनयित्री त्वं सर्वलोकमहेश्वरी। मत्तनूद्भवत्वं यत्ते नटानां वेषवत्तु तत्॥ ५ ॥
अहो धन्यतमो लोके मत्तो नाऽन्यो हि विद्यते। अनन्तपुण्यैश्चाऽदृश्या सा मे यस्मात्तनूद्भवा॥
अथ संस्तुत्य बहुधा काश्यपः प्राह शङ्करीम्। मातर्न ते स्तुतिं कर्तुं समर्थोऽह्यहिराडपि॥ ७ ॥
तस्मात्त्वां किमहं स्तोष्ये प्रसीद परमेश्वरि। मातरं त्राहि सन्त्रस्तां दीनां पर्वतराट्प्रियाम्॥ ८ ॥
प्रार्थितेत्थं तदा गौरी निजं रूपं समास्थिता। कालमेघनिभा सिंहवाहना भूषणोज्ज्वला॥ ९ ॥
आयुधैर्ज्वालितैर्ज्वालामालापरिवृतैर्युता। त्रिनेत्रा स्वर्णवसना बालचन्द्राऽवतंसिनी॥ १० ॥
निर्जगाम गृहात्तस्मात्समुद्राद्भानुमानिव। अथ तां नारदो दृष्ट्वा प्रणम्य विविधैः स्तवैः॥ ११ ॥
अस्तूयत परां देवीं गौरीं शङ्करवल्लभाम्। एतस्मिन्नन्तरे विष्णुपार्षदाः पर्वतेश्वरम्॥ १२ ॥

*** विमला ***

हे महादेवि! यह लीला बेकार है; भयार्त्त की तरह क्यों रो रही हो? मैं जानता हूँ कि तुम्हें किसी का डर नहीं है, यह सब मुझे मोहित करने का प्रयास है॥ १॥ डर से थरथराती हिमालय की पत्नी मेना से ऋषि ने कहा—लो मेना! सुनो, तुम इनकी माया से मोहित हो। पहले वाली देवी की याद कर॥ २॥ उस कथा को याद करो, जो तुमने कठोर तप कर इस कन्या को प्राप्त किया है। हे नगप्रिये! मेरे साथ उसी देवी की शरण में जाओ॥ ३॥ पुरोहित की बातें सुनकर कन्या को पराम्बिका के रूप में याद कर मेना ने दण्डवत् गिर कर उन्हें प्रणाम कर अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ४॥ सभी लोकों को तुम्हीं उत्पन्न करने वाली हो, तुम्हीं सब लोकों की महेश्वरी हो। जैसे नट वेष बदल कर अपना अभिनय करता है, उसी तरह तुमने भी हमारी देह से उत्पन्न होने का अभिनय किया है॥ ५॥ अहो! इस लोक में मुझसे बढ़कर भाग्यवान् दूसरा कोई नहीं है। क्योंकि अनन्त पुण्यकर्मों के फलस्वारूप अदृश्य आपने मेरे यहाँ पुत्री के रूप में जन्म लिया॥ ६॥ इसके बाद अनेक स्तुतियों से तुष्ट कर काश्यप ने शङ्करी से कहा—हे मातः! तुम्हारी स्तुति करने में सहस्रमुख नागराज भी समर्थ नहीं है॥ ७॥ फिर मैं तुम्हारी क्या स्तुति कर सकता हूँ? परमेश्वरी! प्रसन्न हो जाओ। इस दीन-दुखिया पर्वतराज की पत्नी की रक्षा करो॥ ८॥ इस तरह की प्रार्थना सुनकर गौरी अपने रूप में आ गई। कालमेघ की कान्ति की तरह उसकी देहद्युति चमक उठी, सिंह पर सवार तथा रत्नाभूषणों से उज्ज्वल बनी॥ ९॥ उनके प्रज्वलित हथियारों से ज्वालामाला फूटकर निकल रही थी, तीन आँखों वाली स्वर्णवसना चन्द्रावतंसिनी थीं॥ १०॥ ऐसी भगवती घर से उसी तरह बाहर निकली जैसे समुद्र से सूर्य निकल रहा हो, उन्हें देखकर नारद ने अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर प्रणाम किया॥ ११॥ शंकरवल्लभा परादेवी गौरी की उन्होंने स्तुति की। इसी बीच विष्णु के अनुचर पर्वतेश्वर को॥ १२॥

बद्ध्वा तस्याऽऽत्मजां गौरीं ग्रहीतुं तत्र चाऽगमन्। तान् दृष्ट्वा पार्वती क्रुद्धान् पितरञ्च पराजितम्॥
आक्रन्दतश्च तद्भृत्यानीषत्क्रोधारुणाऽभवत्। तद्देहादरुणा देवी निर्जगाम भयङ्करी॥ १४॥
ज्वालामुखी कालरात्रिस्त्रिशीर्षा च त्रिलोचना। त्रिशूलं करवालश्च बिभ्रती घोरराविणी॥ १५॥
सा प्रणम्य प्राह गौरीं किं करोमीति सम्मुखे। आज्ञापयद्विष्णुगणान् जहीति गिरिजा तदा॥ १६॥
ततो विष्णुगणान् विष्णुसमाकारबलाऽऽयुधान्। शलभान् पावक इव नाशयामास साऽरुणा॥
करवालत्रिशूलोद्यद्वह्निना भस्मतां गताः। अथ तद्वृत्तमाकर्ण्य विष्णुर्मन्युवशङ्गतः॥ १८॥
सुपर्णमधिरुह्याऽऽशु चक्रहस्तोऽभिसंययौ। तां ददर्शाऽरुणां देवीं ज्वालावक्त्रां भयङ्करीम्॥
सहस्रारं प्रचिक्षेप ज्वालामालापरीवृतम्। अथाऽऽयान्तं सहस्रारं कोटिसूर्यसमप्रभम्॥ २०॥
कल्पान्ताऽग्निरिवाऽशेषं भस्मीकुर्वाणमम्बरे। दृष्ट्वा शूलं प्रचिक्षेप सहस्रारं प्रतीश्वरी॥ २१॥
तच्छूलमरुणाहस्तान्मुक्तं खे क्षणमात्रतः। भस्मीचकाराऽग्निरिव तृणं चक्रं सुदर्शनम्॥ २२॥
अथ क्रुद्धो हरिर्भीमां गदामादाय वेगतः। अभ्यधावत तां देवीं गत्वा मूर्ध्न्यभिताडयत्॥ २३॥
ताडिता फूत्कृतिं चक्रे ज्वालावक्त्रा हरेः पुरः। तन्मुखज्वालया दग्धः सुपर्णः पतगेश्वरः॥ २४॥
विष्णुं समादाय वक्त्रे चिक्षेप ज्वलितेऽरुणा। विष्णुं ग्रसन्तीं तां दृष्ट्वा ज्वालावक्त्रां सुरा नराः॥
हा हेत्युच्चुक्रुशुस्तत्र यावत् सा श्रीपतिं रुषा। देवी निगिरणोद्युक्ता तावज्ज्वालामुखीं द्रुतम्॥
गले जग्राह गौरी तां प्रोवाचेषत्स्मयाऽन्विता। अलं वत्से साहसेन भ्रातरं मे समुद्गिर॥ २७॥

बाँधकर उसकी पुत्री गौरी को पकड़ने के लिए आये। उन्हें देखकर तथा पिता को पराजित स्थिति में पाकर॥ १३॥ उनके भृत्यों को रोते देखकर क्रोध से वह आरक्त हो गई और उनके देह से भयंकरी अरुणा देवी बाहर निकल आई॥ १४॥ वह ज्वालामुखी पर्वत की तरह फूट रही थी, वह कालरात्रि थी, उसे तीन सिर तथा तीन आँखें थीं, एक हाथ में त्रिशूल एवं दूसरे में तलवार लिये वह जोर-जोर से गरज रही थी॥ १५॥ उस काली ने गौरी को प्रणाम कर कहा—मुझे बतलाइए कि मैं कया करूँ? तब गिरिजा ने उसे आज्ञा दी कि इन विष्णुगणों को मार डालो॥ १६॥ इसके बाद विष्णुगण, जो विष्णु के सदृश स्वरूप और आयुध धारण किये हुए थे, उन्हें उस अरुणा ने उसी तरह विनष्ट कर डाला जैसे आग में जलकर फतिंगे विनष्ट हो जाते हैं॥ १७॥ तलवार और त्रिशूल से निकलती आग की ज्वाला में वे सब-के-सब जलकर राख हो गये। यह बात जब विष्णु ने सुनी तो वे क्रोध से भड़क उठे॥ १८॥ वे शीघ्र ही गरुड़ पर सवार होकर हाथ में चक्र लिये दौड़ पड़े। उस अरुणा देवी को, जिसके मुँह से भयंकर ज्वाला निकल रही थी, देखा॥ १९॥ ज्वालामाला से घिरे चक्र से विष्णु ने अरुणा पर प्रहार किया। करोड़ों सूर्य की प्रभा वाले उस चक्र को अपनी ओर आते देखकर॥ २०॥ कल्पान्त अग्नि की तरह अशेष आकाश भस्म कर देने वाले अपने त्रिशूल को परमेश्वरी ने सहस्रार की ओर फेंका॥ २१॥ अरुणा के हाथ से छूटा वह त्रिशूल एक पल में आकाश में लहराते सुदर्शन चक्र को जैसे आग घास को जलाती है उसी तरह जला डाला॥ २२॥ इससे अत्यन्त क्रुद्ध श्रीहरि विष्णु ने वेग के साथ अपनी भीम गदा लेकर दौड़कर उस देवी के सिर पर प्रहार किया॥ २३॥ चोट लगते ही जिसके मुँह से अग्निज्वाला निकल रही थी, उस देवी ने सामने खड़े विष्णु को फूँक दिया। उसके मुख से निकली ज्वाला से गरुड़ जलकर राख हो गया॥ २४॥ उस अरुणा ने जलते मुख में विष्णु को उठाकर फेंकना चाहा, ज्वालामय अपने मुख में विष्णु को निगलते देखकर देवता और मनुष्य॥ २५॥ हाहाकार कर उठे। जब तक अपने क्रोध में आतुर अरुणा लक्ष्मीपति विष्णु को निगलना चाह रही थी, तब तक शीघ्र ही॥ २६॥ गौरी ने अरुणा का गला पकड़ लिया और मुस्कराते हुए उसे कहा—हे वत्से!

पालकं जगतो नोचेदुत्सीदेत्त्रिजगद्द्रुतम्। तदोद्गीर्णस्तया विष्णुर्मूर्च्छितो ह्यपतत् क्षितौ ॥ २८ ॥
ज्वालाराशिश्च हरिणा सहोद्गीर्णोऽरुणाख्यया। गौरी ज्वालाकुलान्तस्थं हरिं निःसारयद्द्रुतम्॥
ववृधे चाऽथ सा ज्वाला तिर्यगूर्ध्वश्च सर्वतः। तां दृष्ट्वा लोकसंहन्त्रीं ज्वालामतिभयानकाम्॥
ब्रह्मेशाद्याः सुरगणा गौरीं भीताः प्रतुष्टुवुः। वेपमाना जगुस्त्राहि त्राहीत्युच्चैर्महेश्वरीम्॥ ३१ ॥
संस्तुता सा प्रपन्नान् तान् प्राह गम्भीरया गिरा। मा बिभ्यत सुरा यूयमभयं वः प्रयच्छितम्॥
ब्रुवन्तु को वरो मत्तो भवद्भिः प्रार्थितो द्रुतम्। इति श्रुत्वा विधिमुखा देवाः प्रोचुर्नगात्मजाम्॥
देवि ज्वालामिमां कालाऽनलज्वालासमां द्रुतम्। एधमानां प्रशमय लोकान् रक्ष चराऽचरान्॥
प्रार्थितैवं सुरगणैः सञ्जहार क्षणेन ताम्। प्राह देवान् प्रति शिवा देवाः शृणुत मद्वचः ॥ ३५ ॥
एषा ज्वालामुखी देवी मत्क्रोधप्रभवा ननु। जगद्भक्षयितुं सद्यः प्रवृत्ता सर्वथा शमम्॥ ३६ ॥
न शक्या नेतुमधुना तिष्ठत्वत्र नगोत्तमे। पूजिता देवमनुजैः प्रीतेष्टान् सम्प्रयच्छतु ॥ ३७ ॥
कल्पान्ते सर्वजगतां भक्षणात्तुष्टिमेष्यति। इयं रुद्रस्य संहारशक्तिरस्यास्तु योगतः ॥ ३८ ॥
शिवः सर्वस्य लोकस्य संहारं रचयेत् परम्। इत्युक्त्वाऽमृतवर्षिण्या दृष्ट्या विष्ण्वादिकान् सुरान्॥
गणानपि मृतान् विष्णोर्जीवयामास चाऽम्बिका। विष्ण्वादिभिः स्तुता पश्चात् कन्यारूपं समास्थिता॥
पितरं मोचयामास पार्षदैर्बन्धनं गतम्। दृष्ट्वाऽपि गौर्यास्तद्रूपं महिमानमवेत्य च ॥ ४१ ॥
मायया मोहितो गौर्या विस्मृतस्तत्क्षणेन हि। मुक्तं कथञ्चिदात्मानं मत्वा स्वामात्मजां द्रुतम्॥

मेरे भाई को निगलने का साहस बेकार कर रही हो॥ २७॥ ये तो संसार के पालक हैं, इन्हें निगल जाओगी तो शीघ्र ही तीनों लोक प्रभावित हो जायेंगे। यह सुनकर अरुणा ने उन्हें मुँह से उगल दिया और विष्णु मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गये॥ २८॥ अरुणा ने विष्णु के साथ ज्वाला-समूह को भी उगल दिया। उस ज्वाला से अकुलाते श्रीहरि विष्णु को शीघ्र ही बाहर निकाल लिया॥ २९॥ किन्तु वह ज्वाला नीचे-ऊपर चारों ओर बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। लोकसंहार करने वाली अतिभयंकर उस ज्वाला को देखकर॥ ३०॥ ब्रह्मा, शिव आदि देवगण अत्यन्त डरकर गौरी को सन्तुष्ट करने लगे। वे काँपते हुए ऊँची आवाज में त्राहि-त्राहि करते महेश्वरी के पास पहुँचे॥ ३१॥ शरणागत उन देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने गम्भीर वाणी में कहा—मैं आप सबों को अभयदान देती हूँ॥ ३२॥ बोलिए, शीघ्र जो वरदान मुझसे पाना चाहते हैं, माँगिए। यह सुनकर ब्रह्मादि देवताओं ने उस पार्वती से कहा॥ ३३॥ हे देवी! आपकी यह ज्वाला जो कालानल की ज्वाला की तरह बढ़ती ही जा रही है, इसे रोककर त्रिलोक के चराचर जीवों की रक्षा करें॥ ३४॥ देवताओं से ऐसी प्रार्थना सुनकर भगवती ने एक क्षण में ही उस ज्वाला को समाप्त कर देवताओं से कहा—हे देवगण! आप मेरी बात सुनें॥ ३५॥ यह ज्वालामुखी देवी मेरे क्रोध से उत्पन्न हुई हैं, संसार को शीघ्र ही जला डालने के लिए यह प्रवृत्त हुई थी, उसे मैंने सदा के लिए शान्त कर दिया है॥ ३६॥ इस समय मैं इसे वापस लाने में समर्थ नहीं हूँ, यहाँ इस सुन्दर हिमालय पर वे टिके। जो मनुष्य या देवता इन्हें पूजेंगे उन्हें यह अभीष्ट वस्तु प्रदान करेगी॥ ३७॥ कल्पान्त के समय समस्त सृष्टि का संहार कर सन्तुष्ट होगी। यही रुद्र की संहार-शक्ति है। इसी शक्ति के सहयोग से॥ ३८॥ शिव सब लोकों का संहार करते हैं। इतना कहकर अमृत बरसाने वाली आँखों से विष्णु प्रभृति देवताओं को॥ ३९॥ उनके मृत गणों को देखकर पुनर्जीवन दान दिया। इसके बाद देवताओं के साथ विष्णु ने इनकी स्तुति की। इसके बाद महागौरी अपने पूर्व कन्या के रूप में आ गयी॥ ४०॥ फिर विष्णु के पार्षदों के द्वारा बाँधे गये अपने पिता को गौरी ने बन्धन-मुक्त किया। गौरी की महिमा जानकर तथा उनके उस रूप को देखकर भी॥ ४१॥ उनकी माया से मोहित

परिष्वज्य समाघ्राय प्रणम्य विबुधेश्वरान्। प्राह बद्धाञ्जलिर्दीनो विष्णुं तं त्रिजगत्पतिम्॥ ४३॥
रमापते मेऽपचितिं क्षमस्व प्रार्थितो मया। अहं तुभ्यं ददाम्येव तनुजां नाऽत्र संशयः॥ ४४॥
सा सर्वथा पतिं भर्ग वव्रे तस्मान्मृषोदितम्। ममाऽभूदत एतन्मे सर्वथा क्षन्तुमर्हसि॥ ४५॥
एष ते तनुजो ब्रह्मा देवाश्चेमे सुसङ्गताः। यदत्र युज्यते तन्मां शाधि ते शरणागतम्॥ ४६॥
श्रुत्वैवं पर्वतवचो विधिः प्रोवाच सस्मयः। धन्यस्त्वं पर्वतेशोऽसि यत्ते कन्येयमीदृशी॥ ४७॥
भर्तारं शिवमेवाऽत्र समर्हति महेश्वरम्। सोऽप्येनामर्हति शिवः पत्नीं सर्वगुणाऽऽश्रयाम्॥
कथं विष्णुर्भवेद्भर्ता तस्या भ्रातेव संस्थितः। योजयामि शिवं सद्यः पतित्वेऽस्या नगोत्तम॥ ४९॥
इत्युक्त्वा समभिव्रज्य शिवं प्राह विधिस्तदा। स्तुत्वा प्रणम्य देवेशं शङ्करं लोकशङ्करम्॥ ५०॥
महादेवं प्रार्थयामो वयं पर्वतनन्दिनीम्। प्रतीच्छ भार्यामात्मीयां कालेऽस्मिन्नेव शोभने॥ ५१॥
नैतद्वचो निषेधाऽर्हं पूर्ववृत्तञ्च संस्मर। इति प्रोक्तो जगद्धात्रा ओमित्येवाऽह वै शिवः॥ ५२॥
अथ पर्वतराजन्यं प्राह ब्रह्मा चतुर्मुखः। साधितस्ते महेशानः कन्यापाणिग्रहाय वै॥ ५३॥
अस्मिन्नेव शुभे काले कन्यां दातुं त्वमर्हसि। वाक्यं विधेः समाकर्ण्य चैतत् प्राह नगेश्वरः॥ ५४॥
ब्रह्मन् न साधितं किञ्चिद्वैवाहिकमनुत्तमम्। असम्भूत्य च सम्भारान् अनिमन्त्र्य कुलेश्वरान्॥
कथं विवाह आरभ्यो न किञ्चित् प्रतिभाति मे। समाकर्ण्य नगोक्तं तद्विधिस्त्वष्टारमाह्वयत्॥
आहूयाऽऽज्ञापयत्तत्र तं सामग्रीप्रसाधने। आज्ञप्तो विधिना त्वष्टा ससृजेऽर्धमुहूर्ततः॥ ५७॥

होकर गौरी की महिमा और उनके इस रूप को उसी क्षण भूल गये और अपने को किसी तरह मुक्त मानकर, सामने खड़ी बेटी को दौड़कर शीघ्र ही॥ ४२॥ छाती से लगाकर उनका सिर सूँघकर, देवताओं को प्रणाम कर, त्रिजगत्पति उस विष्णु को हाथ जोड़कर हिमालय ने कहा॥ ४३॥ हे रमापति! मेरा अपराध या पाप क्षमा करें। मैंने आपसे प्रार्थना की थी—मैं आपको कन्यादान करना चाहता हूँ, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है॥ ४४॥ किन्तु वह तो शिव से विवाह करना चाहती है। अतः मेरा कथन अब असत्य सिद्ध हुआ। मेरे इस अपराध को आप क्षमा करें॥ ४५॥ हे ब्रह्मदेव! यह तो आपकी पुत्री है, सभी देवगण इसके साथ हैं, मैं आपका शरणागत हूँ; आपकी समझ में जो उचित आये सो करें॥ ४६॥ हिमालय की यह बात सुनकर ब्रह्मा ने विस्मित होते हुए उनसे कहा—हे हिमालय! तुम धन्य हो, तुम्हें ऐसी कन्या मिली है॥ ४७॥ महेश्वर भगवान् शिव ही इस कन्या के लिए योग्य वर हैं। वे भी सर्वगुणसम्पन्ना इस कन्या को अपनी पत्नी के रूप में चाहते हैं॥ ४८॥ हे पर्वतश्रेष्ठ! विष्णु इसके पति कैसे होंगे? उनके साथ तो इनका भाई-बहन का रिश्ता है। अभी-अभी ही मैं शिव के साथ इसका विवाह संयोजित करता हूँ॥ ४९॥ यह कहकर विधाता ने शिव की स्तुति कर प्रणाम किया और कहा॥ ५०॥ हे पर्वतनन्दिनी! हम अब महादेव की प्रार्थना करते हैं, इसी समय तुम उनसे विवाह करने के लिए तैयार हो जाओ॥ ५१॥ मेरी यह बात मत काटो, अपना पूर्ववृत्त स्मरण करो। विधाता ने ऐसा कहकर शिव से स्वीकृति-वचन ले लिया॥ ५२॥ इधर चतुर्मुख ब्रह्मा ने पर्वतराज से कहा—तुम्हारी कन्या के पाणिग्रहण हेतु मैंने महादेव से स्वीकृति ले ली है॥ ५३॥ इसी समय शुभकाल में तुम कन्यादान की तैयारी करो। विधाता की यह बात सुनकर नगेश्वर ने कहा॥ ५४॥ हे ब्रह्मदेव! विवाह की तैयारी तो मैंने कुछ भी नहीं की है, न तो अपने कुलदेवता को आमन्त्रित किया है, न ही किसी और को॥ ५५॥ फिर विवाह की तैयारी मैं कैसे करूँ, मुझे कुछ भी नहीं सूझता। हिमालय की यह बात सुनकर विधाता ने विश्वकर्मा का आवाहन किया॥ ५६॥ उसे बुलाकर विधाता ने उसे सारे वैवाहिक साधनों को जुटाने का आदेश दिया। विधाता का आदेश पाकर विश्वकर्मा ने आधे क्षण में वैवाहिक साधनों की रचना

विवाहशालां वेदीश्च पात्राण्यग्नींश्च सर्वतः। वस्त्रभूषणमाल्यानि प्रस्तराऽऽस्तरणानि च ॥ ५८ ॥
अन्नपानादिकं सर्वमहीनं समकल्पयत्। प्राह सिद्धं सर्वमिति देवशिल्पिर्विधिं तदा ॥ ५९ ॥
दृष्ट्वा तद्दर्शयामास नगराजाय विश्वसृट्। निशम्य हृष्टो हिमवान् प्रणनाम पितामहम् ॥ ६० ॥
अब्रवीद्देवदूतांश्च विमानैः सहितान् द्रुतम्। भूसुरान् भूपतीनन्यान्नगवंश्यान् विशेषतः ॥ ६१ ॥
समानयन्त्विति तदा देवदूताः सहस्रशः। आदाय सर्वानाजग्मुर्मुहूर्ताऽर्धेन ते द्रुतम् ॥ ६२ ॥
दृष्ट्वा समागतान् सर्वान् पर्वतं प्राह विश्वसृट्। नगेश्वराऽऽगताः सर्वे साधितं सर्वसाधनम् ॥
सज्जीभव विवाहाय तनुजाश्च समानय। आज्ञप्त एवं शैलेशो गत्वा स्वभवनं द्रुतम् ॥ ६४ ॥
कन्याया मङ्गलस्नानं कारयित्वा यथाविधि। काश्यपेन स्वगुरुणा सर्वं वैवाहिकं विधिम् ॥ ६५ ॥
कृत्वा कन्यां समादाय प्रियया सहितो नगः। ज्ञातिभिर्ज्ञातिपत्नीभिः संवृतो निर्ययौ गृहात् ॥
विवाहशालामाविश्य तस्थौ स सपरिच्छदः। अथ ब्रह्मा शिवं तत्र विवाहविधिना तदा ॥ ६७ ॥
योजयामास तत्पश्चात् स्वगणैः परिवारितः। विवेश शालां भूतेशः सर्वमङ्गलसंयुताम् ॥ ६८ ॥
तं ददर्श महादेवं विकटं जटिलं कृशम्। व्याघ्रचर्माऽशुकधरं नागचर्मोत्तरीयकम् ॥ ६९ ॥
कपालमालाविलसद्गलं पन्नगकुण्डलम्। कालसर्पोपवीतश्च विरूपाक्षं त्रिलोचनम् ॥ ७० ॥
भूतसङ्घैर्विरूपास्यैरुन्मत्ताऽऽचारसङ्कुलैः। श्मशाननिलयैर्घोरैर्गणैश्च परितो वृतम् ॥ ७१ ॥
दृष्ट्वा पर्वतराजन्यो विमनाः समजायत। दृष्ट्वा विधिर्नगं म्लानमुखं शोकपरिप्लुतम् ॥ ७२ ॥
विज्ञाय मानसं तस्य प्रोवाचाऽगं विधिस्तदा। किं नगेश्वर शोकेन सम्प्लुतोऽसि शुभाऽऽगमे ॥

कर दी ॥ ५७ ॥ विवाहशाला, वेदी, अग्निपात्र, वस्त्राभूषण, माले, प्रस्तरखण्ड तथा बिछावन जैसे उपकरण तैयार कर दिये ॥ ५८ ॥ वरयात्री के भोजन हेतु अन्न-जल तथा अन्य साधनों को जुटाकर विश्वकर्मा ने विधाता से कहा—हे ब्रह्मदेव! वैवाहिक उपकरणों की पूरी तैयारी हो गई ॥ ५९ ॥ विधाता ने स्वयं पहले सब कुछ देख लिया, फिर हिमालय को सब कुछ दिखलाया। हिमालय देखकर सन्तुष्ट हुए और विधाता को प्रणाम किया ॥ ६० ॥ देवदूतों से उन्होंने कहा—विमान लेकर शीघ्र ही ब्राह्मणों, राजाओं, इस पर्वत के जितने वंशधर हैं—विशेष रूप से उन्हें ॥ ६१ ॥ ले आओ। तब हजारों देवदूत आधे क्षण में उन सबों को ले आये ॥ ६२ ॥ उन्हें आये देखकर विश्वकर्मा ने पर्वतराज से कहा—हे नगेश्वर! आपके सभी आमन्त्रित लोग पधार चुके हैं, मैंने आपका सारा काम कर दिया ॥ ६३ ॥ अब आप पुत्री को विवाह के लिए तैयार होकर उन्हें यहाँ लायें। ऐसी आज्ञा पाकर पर्वतिश्वर ने अपने राजभवन में शीघ्र ही प्रवेश कर ॥ ६४ ॥ कन्या का यथाविधि मंगल-स्नान करवाया। अपने गुरु काश्यप से सारी वैवाहिक विधि सम्पन्न कराई ॥ ६५ ॥ इसके बाद कन्या को लेकर अपनी पत्नी तथा परिचित एवं सम्बन्धियों की पत्नियों के साथ भवन से बाहर निकले ॥ ६६ ॥ विवाह-मण्डप में अपने लोगों के साथ यथास्थान बैठ गये। तब ब्रह्माजी ने विवाह की अनेक विधियों के साथ भगवान् शंकर को ॥ ६७ ॥ तैयार किया। उसके बाद अपने गणों के साथ भूतेश भगवान् शिव ने सर्वमंगल युत होकर विवाहमण्डप में प्रवेश किया ॥ ६८ ॥ उस महादेव को जो विकट रूप में थे, लम्बी जटाएँ थीं, कृशकाय थे, बाघ की चमड़ी का वस्त्र पहने थे और नाग की चमड़ी का चादर ओढ़े ॥ ६९ ॥ नर-खोपड़ी की माला गले में लटकाये, पन्ने का ही कुण्डल पहने, काले नाग का जनेऊ पहने, विरूपाक्ष त्रिलोचन ॥ ७० ॥ विकृत रूप वाले भूतसमूहों के साथ उन्मत्त की तरह आचरण करते हुए, श्मशानवासी भयंकर गणों से घिरे हुए आये ॥ ७१ ॥ उन्हें देखकर पर्वतराज बड़ा दुःखी हुए। इधर विधाता ने देखा कि पर्वतराज मुँह मलिन किये शोक में डूबे हैं ॥ ७२ ॥ उनके मन की बात जानकर उनसे ब्रह्मा ने कहा—ओ हिमालय! इस शुभ समय में शोक

जानासि न महेशानमाश्चर्यचरितं शिवम्। इत्युक्त्वा विधिरीशानं प्रार्थयामास सन्नतः॥७४॥
देव त्वामीदृशं दृष्ट्वा नगः खिन्नो महेश्वर। तद्दर्शय स्वमात्मानं सर्वलोकैकसुन्दरम्॥७५॥
एवं सम्प्रार्थितः शम्भुर्योगैश्वर्यबलाऽन्वितः। आत्मानं दर्शयामास कोटिमन्मथसुन्दरम्॥७६॥
तप्तहेमसमाऽऽभासं नीलेन्दीवरलोचनम्। नानारत्नौघविलसन्मुकुटेन विराजितम्॥७७॥
रक्तमाल्याऽम्बरधरं नानारत्नविभूषणम्। तादृशैः प्रमथैश्चित्रभूषणाऽम्बरशोभितैः॥७८॥
सेव्यमानं समालोक्य पर्वतः प्रीतमानसः। अहो धन्या मम सुता यस्या भर्ताऽयमीदृशः॥७९॥
सर्वलोकमहेशानः सर्वलोकमनोहरः। इत्युक्त्वा तं महादेवं प्रणनाम नगेश्वरः॥८०॥
न जानामि महादेव तव माहात्म्यमद्भुतम्। जडः स्थाणुस्वभावोऽहं तन्मेऽगः क्षन्तुमर्हसि॥
इति क्षमाप्य भूतेशं विधिं प्रोवाच शैलराट्। ब्रह्मन्नियं मे तनुजा पाणिं गृह्णातु शङ्करः॥८२॥
मन्यसे यदि तच्छीघ्रं न कालोऽतिगतो भवेत्। ओमित्युक्त्वा विधिः शीघ्रं शिवं प्राह स्मयन्निव॥
पाणिं शिव गृहाणाऽस्याः पार्वत्या मा विलम्ब्यताम्। अत्येति कालः सगुणः सर्वदोषविवर्जितः॥
निशम्य शम्भुर्विध्युक्तं पाणिं गौर्याः समाददे। शैलः समुत्सृजत्तोयं मेनया समवार्जितम्॥८५॥
अथ घोषो महानासीत् मङ्गलध्वनिमिश्रितः। उच्चावचान्यवाद्यन्त वाद्यानि परितस्तदा॥८६॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः। अस्तुवन् बन्दिनस्तत्र पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः॥८७॥
ववौ गन्धवहो मन्दं चक्रे सुरभिला दिशः। जेपुर्वशिष्ठप्रमुखाः शैवोपनिषदां गणम्॥८८॥

क्यों कर रहे हो?॥७३॥ तुम महेश्वर को नहीं जानते, उनका चरित बड़ा विस्मयकारक है। यह कहकर विधाता ने बड़े विनम्र होकर शिव से प्रार्थना की॥७४॥ हे देव महेश्वर! आपके इस रूप को देख हिमालय बड़े दुःखी हैं, कृपया सर्वलोकों में सर्वाधिक सुन्दर आप अपना रूप इन्हें दिखा दें॥७५॥ ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर योगेश्वर भगवान् शिव ने अपने योगबल से करोड़ों कामदेव को ले जाने वाला आत्म-सौन्दर्य प्रदर्शित किया॥७६॥ तप्त सोने की कान्ति की तरह उनकी देह से आभा फूट रही थी, नीलकमल की तरह सुन्दर आँखें थीं, अनेक बहुमूल्य रत्नों से बना मुकुट उनके सिर पर था॥७७॥ लाल माला, श्वेत वस्त्र जो नाना रत्नों से विभूषित थे, उसी तरह सुन्दर प्रमथ चित्रों से भरे आभूषण धारण किये हुए थे। अनेक देवगण उनकी सेवा में लगे थे॥७८॥ ऐसे देवसेव्यमान महादेव को देखकर हिमालय का हृदय गद्गद हो गया। उनके मुँह से अनायास ही निकल गया—मेरी बेटी बड़ी भाग्यशालिनी है जिसे इतने सर्वोत्कृष्ट वर मिले हैं॥७९॥ सभी लोक के ये सम्प्रभु हैं, सब लोक के ये स्वामी हैं, सब लोक में ये सर्वाधिक मनोहर हैं। इतना कहकर पर्वतेश्वर ने उन महादेव को प्रणाम किया॥८०॥ हे महादेव! मैं आपकी इस अद्भुत महिमा को नहीं जानता हूँ, मैं स्वभाव से पहाड़ होने के कारण जड़ हूँ; इस स्थाणु स्वभाव के कारण मेरे अपराध को क्षमा करें॥८१॥ इस तरह महादेव से क्षमा-याचना कर पर्वतेश ने विधाता से कहा—हे ब्रह्मन्! यह रही मेरी बेटी। प्रसन्नतापूर्वक महादेव इसका पाणिग्रहण करें॥८२॥ यदि मेरी बात मान्य हो तो जल्दी करे, व्यर्थ समय न बितायें। विधाता ने 'ॐ' उच्चारण कर शीघ्र ही मुस्कराते हुए शिव से कहा॥८३॥ हे शिव! इस पार्वती का अब आप हस्तग्रहण करें, इसमें विलम्ब न करें। हर तरह के दोषों से रहित इस सुन्दर समय को हाथ से न जाने दें॥८४॥ विधाता की बात सुनकर भगवान् शिव ने कुमारी गौरी का हाथ थाम लिया। इधर मेना के साथ पर्वतराज ने दोनों के हाथ पर शंख के जल का उत्सर्जन किया॥८५॥ मंगलध्वनि के साथ बहुत तेज आवाज आने लगी। चारों ओर छोटे-बड़े बाजे बजने लगे॥८६॥ गन्धर्वपति वहाँ पहुँच गये, अप्सराएँ नाचने लगीं, बन्दी और चारण स्तुति करने लगे, वर-वधू पर स्वर्ग से फूल बरसाये गये॥८७॥

विधिर्विवाहविधिना योजयामास शङ्करम्। तत्र पर्वतराजन्यः सर्वान् विप्रमुखान् जनान्॥ ८९॥
रत्नाऽऽभरणवासोभिरसंख्येयधनैरपि । सम्भांवयामास तथा देवान् विधिमुखानपि॥ ९०॥
पूजयामास विधिना सम्भृतैः स्तुसमर्हणैः । भोजयामास नगराट् सर्वांस्तत्र समागतान्॥ ९१॥
विविधैरन्नपानाद्यैः षड्रसाढ्यैर्मनोहरैः । भुक्त्वा विप्रमुखास्तत्र यथेष्टं तर्पिता धनैः॥ ९२॥
आशिषस्ते प्रयुञ्जाना निर्ययुः सर्वतो दिशम्। एवं विवाहे संवृत्ते हिमवान् प्रददौ धनम्॥ ९३॥
असंख्यातं रत्नगणं वासांस्याभरणानि च । हस्त्यश्वरथदासीनां गणानपि च कोटिशः॥ ९४॥
पार्वत्यै स्वतनूजायै प्रियायै प्रीतमानसः । अथ तत्सर्वमादाय पार्वतीसहितः शिवः॥ ९५॥
गन्तुं निजालयं शीघ्रं मनो दधे महेश्वरः । विधिविष्णुमुखैर्देवैः स्तूयमानापदाऽऽनकः॥ ९६॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये माहात्म्यखण्डे
कामोपाख्यानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ २६८४॥



शीतल मन्द हवाएँ बहने लगीं, दिशाएँ सुगन्ध से महक उठीं। वशिष्ठ प्रमुख ऋषिगण शैवोपनिषद् का जप करने लगे॥ ८८॥ विधि ने विवाह-विधि से शंकर को नियोजित किया। इधर पर्वतराज ने सभी प्रमुख ब्राह्मणों को॥ ८९॥ रत्न-भूषण, वस्त्र एवं असंख्य धनों से देवताओं और विधि प्रमुख देवगणों को भी सम्मानित किया॥ ९०॥ तैयार मूल्यवान् उपकरणों से विधि ने उनकी पूजा की और नगेश ने वहाँ उपस्थित सबों को यथेच्छ भोजन कराया॥ ९१॥ ब्राह्मणादि उपस्थित जनों को षड्रससम्पन्न सुस्वादु अन्न-पानादि खिलाकर यथेष्ट धनादि देकर हिमराज ने सन्तुष्ट किया॥ ९२॥ इन्हें आशीर्वाद देकर वे सब दिशाओं की ओर चले गये। इधर विवाह के उपलक्ष्य में हिमालय ने पर्याप्त धन प्रदान किया॥ ९३॥ अनगिनत रत्न, वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़े और रथ तथा करोड़ों दास-दासियाँ॥ ९४॥ अपनी प्रिय पुत्री पार्वती के लिए प्रदान किया। पार्वती के साथ सब कुछ समेटकर भगवान् शिव॥ ९५॥ ब्रह्मा, विष्णु और देवगणों के द्वारा स्तूयमान अनेक बाजे-गाजे के साथ महेश्वर अपने निवास की ओर चल पड़े॥ ९६॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान
नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २६८४॥



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

अथ देवैः स्तूयमानो महेशः पार्वतीयुतः। हिमाद्रिणाऽभ्यनुज्ञातो निर्ययौ हिमवद्वनात्॥ १॥
किञ्चिद्दूरमनुययौ पर्वतः प्रेमकातरः। ततोऽनुजज्ञे श्वशुरमनुयान्तं महेश्वरः॥ २॥
प्रतियातुमनीशं तं दुहितृप्रेमभारतः। अपश्यत् पार्वतीं देवः कटाक्षेण स्मिताऽऽननः॥ ३॥
ज्ञात्वेङ्गितं महेशस्य देवी पर्वतनन्दिनी। पितरं बोधयामास स्वशापभ्रष्टसंस्मृतिम्॥ ४॥
दर्शयामास विभवं स्वस्याः परममद्भुतम्। अथ दृष्ट्वा नगपतिस्तनूजां परमेश्वरीम्॥ ५॥
ज्ञात्वा स्वरूपं तस्याश्च जगत्तत्त्वञ्च सर्वशः। निवृत्तमोहः सम्प्राप्तनिजवैभवनिर्भरः॥ ६॥
अनुज्ञातः शिवाभ्यां स प्रययौ स्वं निवेशनम्। महादेवोऽपि पार्वत्या सहितो धातृमुख्यकान्॥
अनुज्ञाप्य स्वस्वदेशं प्रमथैरभिसंवृतः। रजताऽद्रिं समासाद्य तपस्येव मनो दधे॥ ८॥
अथ देवनदीतीरे संश्रयं गुणवत्तरम्। समासाद्य महादेवो न्यग्रोधतरुमाश्रितः॥ ९॥
तपश्चचार परमं दिव्यवर्षसहस्रकम्। तत्र विघ्नकरं काममनयद्भस्मशेषताम्॥ १०॥
भार्गवैवं मन्मथोऽपि भस्मत्वं प्राप्तवान् शिवात्। एवं श्रुत्वाऽद्भुतकथां भार्गवः र्यपृच्छत॥
दयानिधेऽवधूतेश कथामधुझरी तव। मुखपद्मस्रुताऽतीव तृषां पीताऽपि यच्छति॥ १२॥
तत्र माद्यत्स्वभावोऽहं न तृप्यामि द्विरेफवत्। तदहं श्रुतिवक्त्रेण पातुमिच्छामि वै पुनः॥ १३॥
कथं शिवेन निर्दग्धः कामो विघ्नं तपस्यतः। किमर्थमाचरत् सर्वं शंसैतत् परिपृच्छतः॥ १४॥

---

* विमला *

देवताओं से स्तुति किये जाते हुए पार्वती के साथ हिमालय की आज्ञा से महादेव हिम-घाटी के जंगल से बाहर निकल गये॥ १॥ हिमालय पुत्री-प्रेम से कातर होकर उनके पीछे-पीछे कुछ दूर तक गये। महादेव ने अपने श्वशुर को अनुसरण करते हुए जाना॥ २॥ पुत्री के कारण उन्हें पीछे आते देखकर मुस्कराते हुए शिव ने कटाक्ष से पार्वती की ओर देखा॥ ३॥ महादेव का इशारा समझकर पार्वती ने अपने शापभ्रष्ट स्मृति का पिता को बोध कराया॥ ४॥ उन्होंने परम अद्भुत अपना स्वरूप दिखलाया। उस परमेश्वरी रूप में अपनी बेटी को देखकर॥ ५॥ हिमालय ने सर्वव्यापी जगत्तत्त्वस्वरूपा उसके स्वरूप को जानकर मोह से छुटकारा पाया॥ ६॥ शिव-पार्वती से आदेश लेकर हिमालय अपने घर की ओर लौट गये। महादेव ने भी पार्वती को साथ लेकर ब्रह्मा-प्रमुखों को॥ ७॥ अपने-अपने देश लौट जाने का आदेश देकर प्रमथ-गणों के साथ रजताद्रि पर तप करने का विचार किया॥ ८॥ उसके बाद गंगा नदी के किनारे विशाल बरगद पेड़ के नीचे पहुँच कर अपना आश्रय ग्रहण किया॥ ९॥ वहाँ उन्होंने हजार दिव्य वर्ष तक तप किया। वहाँ अपने तप में विघ्न पैदा करने वाले काम को जलाकर राख कर डाला॥ १०॥ परशुराम ने 'शिव के द्वारा कामदहन कैसे हुआ'—यह प्रशन उन्होंने किया॥ ११॥ गुरु दत्तात्रेय से उन्होंने पूछा—हे दयानिधे! हे अवधूतेश! मधु चुलाने वाली आपके मुख से कथा रूपी मधु पीकर भी मेरी तृष्णा शान्त नहीं होती॥ १२॥ मैं नशीले स्वभाव का हूँ, इसलिए भौंरें की तरह कथारस पीकर भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता। अतः कान रूपी मुख से मैं फिर कुछ पीना चाहता हूँ॥ १३॥ काम के द्वारा तपस्या में विघ्न डालने के कारण शिव ने उसे किस तरह जलाया? उसका कैसा आचरण

अथाऽपि विष्णोर्निर्दग्धं ज्वालामुख्या सुदर्शनम्। प्राप्तं पुनः कथं तेन वदैतदपि मे गुरो॥ १५॥
एवं सुपृष्टो मुनिराट् दत्तात्रेयो जगौ कथाम्। कथयामि शृणु कथां भृगुवंशाऽवतंसक॥ १६॥
तथा सुदर्शने नष्टे विष्णुस्त्रिजगतीपतिः। कालाऽन्तरे सुररिपुर्मुराऽऽख्यो दैत्यपुङ्गवः॥ १७॥
योद्धुमभ्याययौ विष्णुं महाबलपराक्रमः। युध्यमानस्तेन हरिरभवद्धीनवर्चसः॥ १८॥
सुदर्शनेन रहितो विशृङ्गः पुङ्गवो यथा। अथ ब्रह्मा प्राह हरिं हरे शृणु वचो मम॥ १९॥
सुदर्शनेन रहितो नेमं जेतुं विभुर्भवान्। उपतिष्ठ परां ज्वालामुखीं देवीं समाहितः॥ २०॥
प्राप्य चक्रं तया दत्तं जेतुमेनं समर्हसि। श्रुत्वैवं ब्रह्मगदितं युध्यमानो रमापतिः॥ २१॥
अन्तर्द्धिमाययौ तत्र ततो दृष्ट्वा मुराऽसुरः। पराजितो हरिरिति ज्ञात्वा स्वभवनं ययौ॥ २२॥
अथ विष्णुरुपव्रज्य शैलराजं पराऽऽश्रयम्। यत्र साऽहर्निशं ज्वालामुखी प्रज्वलिताऽऽनना॥
स्नात्वा संयतवाक्कायमानसस्तामुपस्थितः। निराहारो निराधारस्तपस्तेपे महत्तरम्॥ २४॥
ऊर्द्ध्वबाहुर्मीलिताक्षः सहस्रं परिवत्सरान्। अथ सा सुप्रसन्नाऽभूज्ज्वालावक्त्रा महेश्वरी॥ २५॥
आविर्भूता हरिपुरश्चिकीर्षन्त्यभिवाञ्छितम्। सूर्यकोटिप्रतीकाशा तरुणाऽरुणसद्वपुः॥ २६॥
मस्तकत्रयसंराजत्किरीटत्रयशोभिनी। खड्गं त्रिशूलं बिभ्राणा मुण्डमालाविभूषिता॥ २७॥
नेत्रेभ्यो वदनेभ्यश्च श्रोत्रेभ्यो घ्राणमार्गतः। समस्तरोमकूपेभ्यो महाज्वालां क्षणे क्षणे॥ २८॥
मुञ्चन्ती भीषणाकारा गौरीक्रोधसमुद्भवा। स्तूयमाना सुरवरैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥ २९॥
नृत्यद्भिर्गायमानैश्च संवृता स्वगणैरपि। निशाम्य विष्णुस्तां ज्वालामुखीं सन्निधिमागताम्॥ ३०॥

था? मुझ प्रष्टा को सब कुछ ठीक से बतलाये॥ १४॥ और भी ज्वालामुखी देवी ने विष्णु के सुदर्शन को कैसे जलाया? और फिर उन्होंने इसे कैसे प्राप्त कर लिया? हे गुरुदेव! यह भी मुझे बतलायें॥ १५॥ इस तरह परशुराम के पूछने पर मुनि दत्तात्रेय ने कहा—हे भृगुकुलभूषण! मैं कथा कहता हूँ, तुम सुनो॥ १६॥ इस तरह तीनों लोकों के स्वामी श्रीहरि विष्णु का सुदर्शन चक्र जब जल गया तो उसके बहुत दिनों के बाद देवताओं का दुश्मन मुर नाम का एक दैत्यराज॥ १७॥ महाबली और पराक्रमी होने के कारण विष्णु से युद्ध करने आया। उससे लड़ते हुए विष्णु ने अपने को उससे शक्तिहीन पाया॥ १८॥ क्योंकि सुदर्शन से रहित वे सींग रहित पुङ्गव की तरह थे। तब ब्रह्मा ने उनसे कहा—हे विष्णु! मेरी बात आप सुनें॥ १९॥ सुदर्शनि विहीन होकर आप इस राक्षस को जीत नहीं सकते। इसके लिए समज्जित होकर उस परादेवी ज्वालामुखी के सामने बैठे॥ २०॥ उनसे चक्र पाकर इसे आप जीत सकते हैं। युद्ध करते हुए रमापति विष्णु ने ब्रह्मदेव की यह बात सुनकर॥ २१॥ अचानक युद्ध के मैदान से तिरोहित हो गये। मुरासुर ने इन्हें तिरोहित देखकर समझा कि विष्णु हार कर भाग गया। यह जानकर वह अपने घर लौट गया॥ २२॥ इसके बाद विष्णु भगवान् हिमालय पर जहाँ दिन-रात वह पराशक्ति ज्वालामुखी जलती ही रहती है॥ २३॥ वहाँ स्नान कर संयत वाक्, काया और मन से निराहार एवं निराधार होकर घोर तप करने लगे॥ २४॥ बाँहों को ऊपर उठाये, आँखें बन्द किये हजारों साल तक जब तप किया, तो वह ज्वालामुखी परादेवी प्रसन्न होकर॥ २५॥ श्रीहरि विष्णु के सामने प्रकट हुई। उसके शरीर से करोड़ों सूर्य के प्रकाश निकल रहे थे, वह युवती थी, उसका सारा शरीर रक्ताभ था। वह विष्णु को कुछ देना चाह रही थी॥ २६॥ उनके तीनों सिर पर तीन राजमुकुट शोभ रहे थे, गले में मुण्डमाला थी, हाथ में तलवार और त्रिशूल थे॥ २७॥ आँखों से, तीनों मुखों से, कानों से, नाकों से, समस्त रोमकूपों से क्षण-प्रतिक्षण महाज्वाला फूटकर निकल रही थी॥ २८॥ उनका आकार भयंकर था, गौरी के क्रोध से वह उत्पन्न हुई थी; देवता, गन्धर्व और अप्सराओं से संस्तुत्य थी॥ २९॥ उनके गण उन्हें घेर कर

प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः। स्तुतिं चक्रे गुह्यवाग्भिर्विचित्राभिर्भृगूद्वह॥ ३१॥
अथ तुष्टा स्तुतिगणैर्ज्वालावक्त्रा महेश्वरी। प्राह विष्णुं लोकपतिं गम्भीरवचसा तदा॥ ३२॥
विष्णो लोकेश तुष्टोऽस्मि वरं वृण्वभिवाञ्छितम्। ददामि तुभ्यमखिलमनर्हं ते न विद्यते॥ ३३॥
मम देव्या यतो भ्राता पूजितः सर्वतस्ततः। श्रुत्वेत्थं तद्वचो विष्णुः प्राह बद्धाञ्जलिस्तदा॥ ३४॥
शृणु मद्वचनं देवि पुराऽहं जगतीमिमाम्। रक्षितुं श्रीमहेशान्या सृष्टस्त्रिपुरया ननु॥ ३५॥
तदाज्ञया लोकरक्षाविधौ सततमुद्यतः। तत्राऽद्य दैत्यराट् कश्चिन्मुर इत्यभिविश्रुतः॥ ३६॥
जगतीनाशनोद्युक्तो बाधतेऽखिलदेवताः। तं जेतुं प्रार्थितो देवैरहं स्वबलसंवृतः॥ ३७॥
युध्यमानस्तेन युद्धे हीनवीर्योऽभवं ननु। चक्रेण रहितस्तेन तदर्थं त्वामुपस्थितः॥ ३८॥
चक्रदानेन जगतीं रक्षाऽद्य सचराऽचरीम्। अथ वा जहि दैत्येशं त्वमेव बलवत्तरा॥ ३९॥
श्रुत्वेत्थं प्रार्थितं विष्णोर्देवी ज्वालामुखी तदा। आह सस्मितया वाचा सम्बोध्य कमलापतिम्॥
नारायण त्वं दयिता भ्राता गौर्यास्त्रिविक्रमः। अहमाज्ञाकरी तस्यास्त्वं तस्मान्मान्य एव हि॥
निग्रहे दैत्यराजस्य शक्ताऽहमपि साम्प्रतम्। आज्ञा श्रीत्रिपुरेशान्याः सर्वेषां मूर्ध्नि तिष्ठति॥
वायुर्वाति सदा सूर्य उदेतीन्दुः सतारकः। धरा लोकं धारयति वारिधिर्नातिवर्तते॥ ४३॥
यद्भयात्तदहं कस्मान्न बिभेमि निरर्गला। सन्तुष्टा च त्वत्तपसा गृहाण निजमायुधम्॥ ४४॥
इत्युक्त्वा स्वायुधाच्चक्रं सहस्रारं सुदर्शनम्। सहस्रज्वालया युक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम्॥ ४५॥

नाच गा रहे थे। अपने पास उस ज्वालामुखी देवी को आते देखकर भगवान् विष्णु ने॥ ३०॥ गुह्य वाक्यों से जो अपने आप में विचित्र था, उससे भक्तिपूर्वक देवी को प्रणाम कर अंजली बाँधकर, खड़े होकर देवी की स्तुति की॥ ३१॥ ज्वाला से लपलपाते मुँह वाली उस महेश्वरी ने विष्णु की स्तुति से सन्तुष्ट होकर लोकपति विष्णु से गम्भीर वाणी में कहा॥ ३२॥ हे त्रिलोकस्वामी विष्णु! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, अभिलषित वर मुझसे माँगों, मैं तुम्हें वर देती हूँ। तुम्हारे लिए मेरे पास नहीं देने योग्य कुछ भी नहीं है॥ ३३॥ क्योंकि तुम मेरी आराध्या महागौरी के भाई हो और सबसे पूज्य हो। ज्वालामुखी देवी की यह बात सुनकर विष्णु ने कहा॥ ३४॥ हे महादेवी! मेरी बात सुनो, इस सृष्टि की रक्षा करने के लिए भगवती त्रिपुरा ने मुझे उत्पन्न किया॥ ३५॥ उनके आदेश से लोकरक्षा में मैं हमेशा संलग्न रहा, किन्तु आज कोई मुर नाम का दैत्यराज॥ ३६॥ संसार को विनष्ट करने के लिए सभी देवताओं को बाधित कर रहा है। देवताओं की प्रार्थना करने पर उसे जीतने के लिए अपनी शक्ति से मैं तैयार हुआ॥ ३७॥ सुदर्शन चक्र के अभाव में उससे युद्ध करते हुए मैं बलहीन हो गया, इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ॥ ३८॥ संसार के चर-अचर जीवों की रक्षा के लिए या तो मुझे चक्र दीजिए अथवा अपनी शक्ति और पराक्रम से इस दानवराज को मारिए॥ ३९॥ विष्णु की यह प्रार्थना सुनकर उन्हें सम्बोधित कर मुस्कराते हुए भगवती ने कहा॥ ४०॥ हे नारायण! तुम त्रिविक्रमा महागौरी के प्रिय भाई हो और मैं तो उनकी आज्ञाकारिणी सेविका हूँ, अतः मुझे तुम्हारी हर बात माननी है॥ ४१॥ उस दैत्यराज को निगृहीत करने में मैं अभी भी सशक्त हूँ, लेकिन महादेवी त्रिपुरा की आज्ञा सबके सिर पर है॥ ४२॥ हवा दिन-रात बहती है, सूर्य आकाश में उगते हैं, तारों के साथ चन्द्र आकाश में शोभते हैं, पृथ्वी लोक को धारण करती है, समुद्र में बाढ़ नहीं आती है॥ ४३॥ जिसके भय से यह सब कुछ होता है, भला उससे मैं क्यों न डरूँ? उसके नियन्त्रण से बाहर कैसे चलूँ? तुम्हारी तपस्या से मैं सन्तुष्ट हूँ, अतः दूसरे वर के रूप में तुम अपना आयुध स्वीकार करो॥ ४४॥ यह कहकर अपने आयुध से सहस्रार सुदर्शन चक्र निकाल कर हजारों ज्वाला से घिरे सर्वशक्तिसमन्वित॥ ४५॥ प्रसन्न मन से विष्णु को दिया। लो

निस्सार्य प्रददौ तस्मै विष्णवे प्रीतमानसा । इदं सुदर्शनं चक्रं महासारं ततोऽधिकम् ॥ ४६ ॥
अमोघमप्रतीकार्यं मानसं ते भविष्यति । अनेन जेता लोकानां नाऽजेयस्तव विद्यते ॥ ४७ ॥
गच्छ दैत्यं जहि क्षिप्रं लोकं श्रेयोयुतं कुरु । इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता सद्यः स्वप्नदृष्टेव सा शिवा ॥ ४८ ॥
अथ चक्रं समासाद्य मुरं समर आह्वयत् । दैत्यसेनापरिवृतं तत्क्षणेनैव श्रीधरः ॥ ४९ ॥
सुदर्शनेन भस्मत्वमनयच्छलभं यथा । इति ते कथितं राम विष्णोश्चक्राऽऽप्तिकारणम् ॥ ५० ॥
अथ कामो यथा भस्मीभूतस्तच्छृणु भार्गव । प्रणीय पार्वतीं देवस्तप आतिष्ठदुत्तमम् ॥ ५१ ॥
अथ कालेन महता तारको नाम दैत्यराट् । शूरपद्माऽभिधानोऽपि तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ॥ ५२ ॥
अष्टादशाऽण्डाऽऽधिपत्यं चक्रतुर्बलदर्पितौ । अथ ताभ्यां पराभूतो युधीन्द्रः सुरनायकः ॥ ५३ ॥
उपतस्थौ विधातारं दीनो देवगणैर्वृतः । स दृष्ट्वैवंविधं शक्रं नष्टत्रिभुवनश्रियम् ॥ ५४ ॥
विचार्य प्राह देवेशं प्रश्रयाऽवनतं स्थितम् । शृणु शक्र महानेष दैत्यराजो बलैर्युतः ॥ ५५ ॥
तारकः शूरपद्मश्च मयाऽग्रतः समीहितौ । न त्वया वा तथाऽन्येन जेतुं शक्यौ कथञ्चन ॥ ५६ ॥
विना महादेवसुतं स्वामिनं दिष्टमीदृशम् । तद्गच्छ प्रार्थय शिवं पुत्रोत्पादनकर्मणि ॥ ५७ ॥
तत्सुतस्तव सेनायाः पतिर्भूत्वा सुरेश्वरम् । पराजित्य त्रिभुवनश्रियं दास्यति पूर्ववत् ॥ ५८ ॥
श्रुत्वा विधिवचो देवपतिर्देवगणैर्वृतः । ययौ त्रिलोचनं देवं प्रार्थितुं जवतस्तदा ॥ ५९ ॥
तत्र गत्वा देवदेवं नीलकण्ठमुमापतिम् । अपश्यद्विबुधाऽधीशः शान्तसर्वाश्रयं तदा ॥ ६० ॥
सनकाद्यैर्मुनिगणैः सत्त्वोर्जितमहाऽऽशयैः । शारदाऽम्बुनिभस्वच्छशान्तचित्तैर्निरञ्जनैः ॥ ६१ ॥

यह सुदर्शन चक्र महासार से भी अधिक शक्तिशाली है ॥ ४६ ॥ यह अमोघ अस्त्र तुम्हारे मन के मुताबिक काम करेगा। इससे तुम सर्वजेता बनोगे, तुम्हारे लिए कोई अजेय नहीं होगा ॥ ४७ ॥ जाओ, शीघ्र उस दैत्य को मारो, संसार को कल्याणयुक्त करो। यह कहकर वह देवी स्वप्न की तरह आँखों से ओझल हो गई ॥ ४८ ॥ उस सुदर्शन चक्र को प्राप्त कर विष्णु ने उसी समय युद्ध के लिए मुर को ललकारा। दैत्यसेना से घिरा मुर भी रणांगन में विष्णु से उसी क्षण आ भिड़ा ॥ ४९ ॥ आग में फतिंगा जैसे जलता है उसी तरह सुदर्शन चक्र से जलकर मुर राख हो गया। विष्णु ने कैसे सुदर्शन चक्र प्राप्त किया, यह कथा हे परशुराम! मैंने तुम्हें सुना दी ॥ ५० ॥ अब काम कैसे जलकर राख हुआ, यह कथा । पार्वती को ब्याह कर भगवान् शिव तपस्या में लीन हो गये ॥ ५१ ॥ बहुत समय बीत जाने पर तारक नाम का एक शक्तिशाली दैत्यराज हुआ, शूरवीर होते हुए भी उसने घोर तप किया ॥ ५२ ॥ बलदर्पित उस दैत्य ने अठारह ब्रह्माण्डों का आधिपत्य स्वीकार किया। युद्ध में उससे पराजित होकर इन्द्र ॥ ५३ ॥ देवगणों से घिरे दीनावस्था में विधाता के पास पुहँचे। विधाता ने तीनों लोकों के श्रेयस्वरूप इन्द्र को इस स्थिति में देखकर ॥ ५४ ॥ कुछ विचार कर विनयावनत देवराज से कहा—हे इन्द्र! सुनो, यह दैत्यराज महाबली है ॥ ५५ ॥ तारक और शूरपद्म पर मैंने पहले ही सोचा है। ये दोनों न तुमसे जीते जा सकते हैं, न किसी अन्य से ॥ ५६ ॥ महादेव के पुत्र के बिना इसे कोई नहीं मार सकता है, इसने मुझसे यह वरदान प्राप्त किया है। इसलिए जाओ और पुत्रोत्पादन के लिए शिव को प्रेरित करो ॥ ५७ ॥ हे सुरेश्वर! शिव का पुत्र ही तुम्हारी सेना का नायक बनकर उसे पराजित कर तीनों लोकों को पहले की तरह श्रेय देगा ॥ ५८ ॥ विधि की ये बातें सुनकर अपने देवगणों के साथ देवराज इन्द्र शीघ्रता से महादेव से प्रार्थना करने के लिए उस त्रिलोचन के पास पहुँचे ॥ ५९ ॥ वहाँ जाकर देवाधिदेव नीलकण्ठ उमापति देवताओं के स्वामी शिव को शान्त सबके आश्रय के रूप में देखा ॥ ६० ॥ सनकादि मुनिगणों के द्वारा अर्जित सतो गुण महाशय बने शरद् ऋतु के आकाश की तरह शान्त, स्वच्छ और पवित्र चित्त वाले ॥ ६१ ॥ तापस गणों

परिवृतं मीलिताक्षं ज्वलितं तपसां गणैः । न तत्र कश्चिच्चलति न निःश्वसिति नेक्षते ॥ ६२ ॥
परस्परं न पश्यन्ति न वदन्त्यपि कर्हिचित् । न पक्षिणोऽपि वाशन्ति न वायुर्वाति वेगतः ॥ ६३ ॥
सूर्यो नैव प्रतपति न स्पन्दन्ते च शाखिनः । चित्राऽऽलिखितवत्तत्र निष्क्रियं प्रत्यचेष्टत ॥ ६४ ॥
तत्र दूरेऽपि संस्थातुं नाऽशकद्देवभूपतिः । तपस्तेजः × × × ×।
चिन्तयित्वा चिरं तत्र नाऽन्तं प्राप कथञ्चन ॥ ६५ ॥
अथ सस्मार वचसां पतिं गुरुमनन्यधीः । नाऽन्योऽत्राऽलं मम त्राण इति मत्वा शतक्रतुः ॥ ६६ ॥
स्मृतमात्रो योगिराजः समायातः शतक्रतुम् । प्राप्तं गुरुं समालोक्य देवेशः सुखितो बभौ ॥ ६७ ॥
अथेन्द्रस्तस्य चरणौ प्रपीड्य शिरसा नतः । बद्धाञ्जलिः प्रत्युवाच दीनोऽत्यन्तसुदुःखितः ॥ ६८ ॥
मामेवं पश्यसि गुरो हृतराज्यं सुदुःखितम् । आपद्वारिधिनिर्मग्नमनन्यशरणं चिरम् ॥ ६९ ॥
आज्ञप्तो लोकपतिना प्रार्थितुं नीलकन्धरम् । उत्पादनाय पुत्रस्य तदेवमुपसर्पितुम् ॥ ७० ॥
असमर्थः किं करोमि कथं मे स्यात् समीहितम् । आचक्ष्वाऽत्रोचितां युक्तिं यथा मे स्यात् समीहितम् ॥
श्रुत्वेन्द्रवचनं जीवश्चिन्तयित्वाऽखिलाऽऽगमम् । माहेन्द्रकार्यसंसिद्ध्यै हर्षयन्निव वज्रिणम् ॥
शतक्रतो शृणु वचो गौरीं तोषय भक्तितः । सा ते विधास्यति श्रेयो नाऽन्यदत्र परायणम् ॥ ७३ ॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो जीवो वायुनुन्नाऽभ्रलेशवत् । अथ देवेश आतिष्ठद्गौरीं तोषयितुं तपः ॥ ७४ ॥
वर्षमेकं ततस्तुष्टा गौरी सन्निहिताऽभवत् । शतक्रतो ब्रूहि यत्ते मनसि ह्यभिवाञ्छितम् ॥ ७५ ॥
इति प्राह तदा देवपतिर्देवीमवैक्षत । प्रणम्य दण्डवत् स्तुत्वा विविधैः स्तुतिभिस्तदा ॥ ७६ ॥

से जिनकी आँखें बन्द थीं, ऐसे प्रज्वलित ऋषियों से घिरे जहाँ न किसी के चलने की आवाज होती थी, न साँस लेने की और न ही कोई कुछ देखता था ॥ ६२ ॥ आपस में भी न कोई किसी को देखता था और न कोई किसी से बात करता था। पक्षी भी पर नहीं मारते थे, न हवा तेज चलती थी ॥ ६३ ॥ सूर्य भी तेज नहीं तपते थे और न चिड़ियाँ ही चहकती थीं। चित्रलिखित की तरह वहाँ सब कुछ निष्क्रिय एवं चेष्टारहित था ॥ ६४ ॥ वहाँ दूर रहकर भी देवराज इन्द्र तप के तेज को नहीं सह सकते थे। वहाँ देर तक सोचते रहने के बाद भी उनके नजदीक नहीं जा सकते थे ॥ ६५ ॥ अनन्य बुद्धिमान् गुरु बृहस्पति का तब स्मरण किया, क्योंकि यह मानकर कि उनके सिवा कोई अब मुझे बचाने वाला नहीं है ॥ ६६ ॥ इन्द्र के स्मरण मात्र से योगीराज बृहस्पति वहाँ आ गये। गुरु को सामने देखकर इन्द्र पर्याप्त सुखी हुए ॥ ६७ ॥ इन्द्र ने उनका चरणस्पर्श कर सिर झुकाकर प्रणाम किया। उसके बाद हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन और दुःखी होकर कहा ॥ ६८ ॥ हे गुरुदेव! आप मुझे ऐसा देख रहे हैं, जिसका राज्य अपहृत हो चुका है, दुःखी है, विपत्ति के सागर में डूब रहा है; जिसका कोई भी शरण नहीं है ॥ ६९ ॥ ब्रह्माजी की आज्ञा से नीलकण्ठ महादेव की प्रार्थना करने के लिए उनके पास आया ॥ ७० ॥ किन्तु उनके पास जाने में भी जब मैं असमर्थ हूँ तो भला मनवाञ्छित माँग कैसे कर सकता हूँ? अतः उचित परामर्श मुझे दें ताकि मै अपना वाञ्छित पा सकूँ ॥ ७१ ॥ इन्द्र की ये बातें सुनकर गुरु बृहस्पति ने सम्पूर्ण आगम पर विचार कर इन्द्र को प्रसन्न करते हुए की तरह उनकी कार्यसिद्धि के लिए कहा ॥ ७२ ॥ हे इन्द्र! मेरी बात सुनो, गौरी को अपनी भक्ति से सन्तुष्ट करो, वही तुम्हें मनोवांछित दे सकती है; उनके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ ७३ ॥ यह कहकर गुरु बृहस्पति आँखों से उसी प्रकार ओझल हो गये, जैसे हवा से उड़ाये गये बादल। इसके बाद इन्द्र गौरी को सन्तुष्ट करने के लिए तपस्या करने लगे ॥ ७४ ॥ एक साल तक तप करते रहने के बाद इन्द्र के सामने गौरी प्रकट हुई। उन्होंने कहा—हे इन्द्र! तुम्हारे मन में जो कुछ वांछित है—बोलो ॥ ७५ ॥ इतना कहे जाने के

प्राह गौरीं देवपतिः कृताञ्जलिपुटस्तदा । देव्यहं हृतराज्यश्रीरसुरेण किलाऽभवम् ॥ ७७ ॥
तत्र प्राह विधाता मां महादेवसुतात्तव । भवेदीप्सितमित्येवं नाऽन्यस्ते कार्यसाधकः ॥ ७८ ॥
तदहं स्वार्थसंसिद्ध्यै समायातस्त्विहाऽधुना । दृष्ट्वा तपस्यभिरतं महादेवं त्रिलोचनम् ॥ ७९ ॥
सर्वथा नष्टसर्वाऽऽशो गुरुणा प्रेरितस्ततः । त्वामेव शरणं प्राप्तः संरक्षाऽऽपन्महार्णवात् ॥
इत्युक्त्वा दण्डवद्भूयः पपात तत्पदाऽन्तिके ॥ ८० ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ २७६४ ॥



बाद देवराज ने गौरी को देखा, दण्डवत् धरती पर गिर कर प्रणाम किया और अनेक स्तवनों से उनकी स्तुति कर ॥ ७६ ॥ इन्द्र ने अंजलिबद्ध होकर गौरी से कहा—हे देवि! असुरों ने मेरा राज्यापहरण कर लिया है ॥ ७७ ॥ ब्रह्माजी ने मुझसे कहा कि महादेव और आपके पुत्र से ही मेरा अभीप्सित सिद्ध होगा, वही मेरे कार्य के साधक होंगे ॥ ७८ ॥ अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मैं यहाँ आया, त्रिलोचन महादेव को तप में निरत देखकर ॥ ७९ ॥ अपनी सारी आशा पर पानी फिरते देखकर गुरु से प्रेरित होकर आपकी शरण में आया हूँ, मुझ विपत्तिसागर में डूबते की आप रक्षा करें। यह कहकर उनके चरणों के पास दण्डवत् गिरे ॥ ८० ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २७६४ ॥



अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रुत्वेत्थमिन्द्रवचनमुवाच तु महेश्वरी । शृणु हर्यश्व मद्वाक्यं दुर्घटं प्रतिभाति मे॥ १ ॥
न मे सन्तानयोगोऽस्ति ऋषिपत्न्यास्तु शापतः । महादेवस्य च तथा मदन्यत्र सुतोद्भवः॥ २ ॥
तत् कथं स्यात्तव हितं सर्वथा भाति दुष्करम् । निशम्यैवं वचो गौर्याः शक्रः प्राञ्जलिरब्रवीत्॥
देवि नूनं तव कथं शापः केन कुतः कथम् । त्वं सर्वलोकसम्पूज्या महादेवेऽपि वा कथम्॥ ४ ॥
वदैतदिति चित्रं मे भाति शङ्करवल्लभे । हरिणा प्रार्थिता सैवं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ५ ॥
शृणु शक्र यथा शापो मया प्राप्तः शिवेन च । पुराऽहं हिमशैलस्य पितुर्गेहे स्थिता यदा॥ ६ ॥
तदा कदाचित् सखिभिः संवृता वनमभ्यगाम् । शरत्कालेऽरण्यशोभां द्रष्टुमुत्सुकिता सती॥
तदा पित्रा समादिष्टाः सहस्रं वनचारिणः । मद्रक्षणायाऽनुगताः वनान्येवमहङ्गता॥ ८ ॥
अथ तत्र कदाचिद्वै मया मृगी दृष्टा शुभा । अदृष्टपूर्वा रुचिरा मृगेण सह सङ्गता॥ ९ ॥
क्रीडार्थं तां समानेतुमादिष्टा वनचारिणः । मिथुनं मृगयोः सर्वे परिवव्रुः समन्ततः॥ १० ॥
मिथुनं तत् समानीय ददुर्मह्यं वनेचराः । अथ तत्र निःश्वसन्ती रुदन्ती हरिणी पुरः॥ ११ ॥
अहं देवि सुहोत्राऽऽख्यः काश्यपस्तपसि स्थितः । पत्न्याऽनया भरद्वाजसुतयाऽस्मिन् महावने॥
कुरङ्गमिथुनं दृष्ट्वा तद्रतिर्मेऽभियाचता । तत्कुरङ्गशरीरेण स्थिता स्वरतिकारणात्॥ १३ ॥

✲ विमला ✲

इन्द्र की ये बातें सुनकर महेश्वरी ने कहा—हे इन्द्र! मेरा कथन इस सन्दर्भ में दुर्घट प्रतीत होता है॥ १॥ क्योंकि ऋषिपत्नियों के शाप से मुझे सन्तान योग नहीं है, मुझसे भिन्न कहीं अन्य स्त्री से महादेव का पुत्र होगा॥ २॥ तो फिर तुम्हारा हित कैसे होगा? यह सर्वथा मुझे दुष्कर लगता है। गौरी की ये बातें सुनकर इन्द्र ने अंजलिबद्ध होकर उनसे कहा॥ ३॥ हे देवि! आप और महादेव दोनों ही सर्वलोकपूज्य हैं। फिर आपको कौन, कहाँ और कैसे शाप दिया?॥ ४॥ हे शङ्करप्रिये! ये सब मुझे विचित्र लगता है। कृपया मुझे बतलायें। इन्द्र की ऐसी प्रार्थना सुनकर गौरी कहने लगी॥ ५॥ हे इन्द्र! सुनो, मुझे और शिव को कैसे शाप मिला? पहले जब मैं अपने पिता पर्वताधिराज के घर में थी॥ ६॥ तब एक बार शरद् ऋतु की शोभा देखने के लिए उत्सुक अपनी सखियों के साथ मैं जंगल घूमने गई॥ ७॥ मेरी रक्षा के लिए मेरे साथ हजारों सैनिक पिताजी के आदेश से जंगल मेरे साथ आये॥ ८॥ वहाँ मैंने एक अनन्य मनमोहक हिरण के जोड़े को कामक्रीड़ा में लीन देखा॥ ९॥ अपने मनोरंजन के लिए मैंने वनचारियों से उस जोड़े को कहीं से भी पकड़ कर ले आने को कहा॥ १०॥ वनेचरों ने मेरी आज्ञा से उस जोड़े को पकड़कर मेरे सामने लाकर खड़ा कर दिया। वहाँ उसाँसे लेती, रोती हरिणी उनसे बोली॥ ११॥ हे देवि! मैं कश्यप की सन्तान सुहोत्र नामक ऋषि हूँ। यह हिरणी मेरी पत्नी भरद्वाज ऋषि की पुत्री है। इनके साथ मैं इस वन में तपस्या कर रहा हूँ॥ १२॥ एक दिन एक हिरण जोड़े को मैथुन करते देख इन्होंने कामासक्त होकर मुझसे रति की याचना की और हम दोनों हिरण रूप में आकर रतिक्रीड़ा में निरत हुए॥ १३॥ इस तरह अपनी अज्ञानता के कारण हमने जो अपकर्म किया

तत्र क्षमस्वाऽपवृत्तमनया कृतमज्ञया। इति सम्प्रार्थिता तेन शाप एवंविधो मम॥ १४॥
महादेवस्याऽपि शृणु शापहेतुं पुरातनम्। पुरा त्रेतामुखे विप्राः कर्मणेन्द्रादिकान् सुरान्॥ १५॥
अत्यवर्तन्त तपसा महता सुसमेधिताः। चक्रुर्देवान् वशे सेन्द्रान् ससिद्धाऽसुरराक्षसान्॥ १६॥
आज्ञाप्रतीक्षका देवा विप्राणामभवन् तदा। एवं त्रिलोकीं विप्राणां वशगां वीक्ष्य सर्वथा॥ १७॥
हतप्रभाव इन्द्रोऽभूद्विप्राज्ञापालकः स्वतः। अथ शक्रो देवगणवृतो ब्रह्माणमभ्ययौ॥ १८॥
निवेदयच्च दीनात्मा विप्राऽधीनत्वमात्मनः। श्रुत्वा विधिः प्राह हरिं नैतत् प्रतिविधावहम्॥
समर्थोऽस्मि यतस्तेषां बिभेमि तपसां बलात्। इत्युक्त्वा देवसहितो विष्णुमभ्यागमद्विधिः॥
निवेदयद्देववृत्तं यथावच्चतुराननः। श्रुत्वा नारायणः प्राह ब्राह्मणानां तपोबलम्॥ २१॥
निशाम्य विधिमामन्त्र्य शृणु ब्रह्मन् वचो मम। अद्य विप्रैर्जितं सर्वं दारुकावनवासिभिः॥ २२॥
तपसां राशिभिस्तस्मादुपायो न हि दृश्यते। तेषां निरोधे क्षणतो भस्मीकुर्युर्जगत्त्रयम्॥ २३॥
ब्रह्माण्डानां शतस्याऽपि स्रष्टुमर्हाः पुनः क्षणात्। व्यवसायो नाऽत्र कश्चित् सफलो दृश्यते मम॥
तद्गच्छामो महादेवं स श्रेयो नो विधास्यति। इत्युक्त्वा सहितो ब्रह्ममुखैः कैलासमागमत्॥ २५॥
नत्वा शिवं बद्धकरास्तस्थुर्विष्णुमुखास्तदा। दृष्ट्वा विष्णुं सुरैर्युक्तं विधिश्च प्राह शङ्करः॥ २६॥
शृण्वन्तु विबुधाः सर्वे वाक्यमत्र यथाविधम्। जानामि भवतामत्र समागमनकारणम्॥ २७॥
अद्य विप्रास्तपोराशिज्वालामालापरीवृताः। भस्मीकुर्युः प्राप्तमात्रं वह्निज्वालास्तृणं यथा॥
तदत्र कृत्यं निश्चेतुं मन्त्रयामः सुमन्त्रिभिः। इत्युक्त्वाऽन्यान् विसृज्याऽथ प्रधानसुरनायकैः॥

है, उसे आप क्षमा कर दें। ऐसी प्रार्थना कर उसने ऐसा शाप दिया॥ १४॥ महादेव के भी पुरातन शाप का कारण सुनो। पहले त्रेतायुग में ब्राह्मण लोग अपने सुकर्म से इन्द्रादि देवताओं को॥ १५॥ अपने तप के प्रभाव से इन्द्रादि देवताओं, सिद्धों और असुरों को अपना वशवर्त्ती बना लिया॥ १६॥ तब देवगण ब्राह्मणों की आज्ञा के प्रतीक्षक बन गये। इस तरह तीनों लोक को ब्राह्मणों का वशवर्त्ती देखकर॥ १७॥ अपने को ब्राह्मणों का आज्ञापालक मानकर इन्द्र भी हतप्रभ हो गये। तब इन्द्र देवताओं को साथ लेकर ब्रह्मा के पास पहुँचे॥ १८॥ वहाँ उन्होंने अपना दुःख एवं ब्राह्मणों के आगे अपना अधीनत्व निवेदित किया। यह सुनकर इन्द्र को अपनी विवशता इस सन्दर्भ में बतलायी॥ १९॥ मैं समर्थ तो हूँ पर उनके तपोबल से भय खाता हूँ। यह कहकर देवताओं के साथ ब्रह्माजी श्रीहरि विष्णु के पास पहुँचे॥ २०॥ ब्रह्माजी ने देवताओं का वृत्तान्त यथावत् विष्णु को सुना दिया। ब्राह्मणों का तपोबल सुनकर श्रीहरि नारायण ने कहा॥ २१॥ ब्रह्माजी को देखकर उन्हें सम्बोधित करते हुए श्रीहरि ने कहा—हे ब्रह्मन्! मेरी बात सुनें। आज दारुका वनवासियों को ब्राह्मणों ने जीत लिया है॥ २२॥ इनके तपोबल के कारण इन्हें जीता नहीं जा सकता, कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है। इनका विरोध करने पर क्षणभर में ही ये तीनों लोक को जला डालेंगे॥ २३॥ वे क्षणभर में सैकड़ों ब्रह्माण्ड की सृष्टि कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं दीखता॥ २४॥ तो हम लोग महादेव के पास ही चलें, वही कोई उपाय ढूँढ़ सकते हैं। यह कहकर ब्रह्मादि प्रमुख देवताओं के साथ विष्णु कैलास पहुँचे॥ २५॥ विष्णु-प्रमुख सभी देवगण भगवान् शिव को प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं को देखकर शिव ने पूछा॥ २६॥ हे देवगण! आप सब किसलिए यहाँ आये हैं, यह मैं जानता हूँ॥ २७॥ आज ब्राह्मण लोग अपनी तपोराशि की ज्वालामाला से घिरे हैं। जैसे आग घास-फूस को जला देती है उसी तरह वे क्षण में ही सब कुछ जला सकते हैं॥ २८॥ अतः इस विषय

मन्त्रयामास सुचिरमुपन्यस्य पृथक् पृथक्। अथाऽह पुण्डरीकाक्ष उपायोऽन्यो न रोचते॥ ३०॥
अन्यत्र छद्मना जेतुमशक्यास्ते महीसुराः। तद्गच्छतु भवस्तत्र मनोहरवपुर्भृशम्॥ ३१॥
विप्रदारान्मोहयित्वा धर्माच्च्यावयतु द्रुतम्। धर्मच्युता यदा विप्रा जेतुं शक्यास्तु सर्वथा॥ ३२॥
एष मेऽभिमतः पक्षः सर्वथा ह्यभिरोचते। श्रुत्वेत्थं केशववचस्तुष्टा विधिमुखाः सुराः॥ ३३॥
समीड्य शङ्करं देवं चोदयामासुराशिषे। शिवोऽपि देवकार्यार्थं वृषाऽऽरूढः सपार्षदः॥ ३४॥
जगाम तत्र विप्रास्ते वने यत्र तपःपराः। अथ तान् भूसुरान् सर्वानभिलक्ष्य विनिर्गतान्॥ ३५॥
समित्पुष्पाद्याहृतये प्रविवेश तदाश्रमान्। कृत्वा रूपं सुरुचिरं कोटिमन्मथसुन्दरम्॥ ३६॥
दर्शयामास दारेषु चाऽऽत्मानं तादृशं शिवः। तं तादृशं समालोक्य विप्राणां ताः सुयोषितः॥
कामबाणाऽऽहताः सर्वाः शिवमेवाऽन्वयुस्तदा। निरुध्यमानाः पुत्राद्यैर्विस्मृतप्रियबान्धवाः॥
अन्वगुस्त्यक्तसर्वस्वाः शिवेनाऽत्यन्तमोहिताः। अथ ताभिः परिवृतः शिवोऽगच्छद्वनान्तरम्॥
कामाचारविनोदैस्ता मोहयामास शङ्करः। सङ्गताः शिवेनैवं सर्वा गर्भं दधुस्तदा॥ ४०॥
उपभुज्य विप्रसतीः आह देवः पिनाकभृत्। यात स्वभवनान्याशु भर्तारो यत्सुकोपनाः॥ ४१॥
पुनः काले नु गच्छामः पुरः सन्ध्याऽतिवर्तते। एवं ता मुनिपत्न्यस्तु श्रुत्वा शङ्करभाषितम्॥
जग्मुर्गेहाऽभिमुखतो भीता भर्त्रपचारतः। तदन्तरे मुनिगणाः फलपुष्पसमिद्ग्रहाः॥ ४३॥

में हम सब मिलकर विचार करें। यह कहकर दूसरों को छोड़कर प्रधान सुरनायक के साथ॥ २९॥ बहुत देर तक अलग-अलग उनके साथ उन्होंने मन्त्रणा की। उसके बाद विष्णु ने कहा—कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं दीखता॥ ३०॥ कोई दूसरे छद्म से इन विप्रों को जीता तो नहीं जा सकता है। अतः भगवान् शिव को मनोहर रूप बनाकर वहाँ जाना चाहिए॥ ३१॥ ब्राह्मणों की पत्नियों को मोहित कर उन्हें शीघ्र ही धर्मच्युत कर दें। जब ये ब्राह्मण धर्मच्युत हो जायेंगे तो इन्हें जीतना आसान हो जायेगा॥ ३२॥ यही मेरा अभिमत पक्ष है, यही बिलकुल अच्छा भी लगता है। केशव की ये बातें विधि प्रमुख देवताओं को भी अभिमत लगी॥ ३३॥ देवाधिदेव शङ्कर की स्तुति कर अपना आशीष प्रदान कर उन्हें देवताओं ने प्रेरित किया। शिव भी देवकार्य के लिए बैल पर सवार होकर अपने पार्षदों के साथ॥ ३४॥ वहाँ गये जहाँ वन में तपस्या में निरत ब्राह्मण-गण थे। उन सब ब्राह्मणों को देखकर॥ ३५॥ जब वे ब्राह्मणगण समिधा, फूल इत्यादि लाने आश्रम से बाहर निकल गये तब ये आश्रमों में प्रवेश किये। करोड़ों काम को लजाने वाले आकर्षक अपना रूप बनाकर॥ ३६॥ अपना सुन्दर रूप बनाकर शिव ने उन ब्राह्मणपत्नियों को दिखलाया। उन्हें इस आकर्षक रूप में देखकर ब्राह्मणपत्नियाँ॥ ३७॥ काम के बाण से आहत होकर वे सब-के-सब शिव के पीछे लग गयीं। पुत्रादि से अवरुद्ध होने के बावजूद वे अपने प्रिय बान्धवों को भी भूल गईं॥ ३८॥ शिव के प्रति अत्यन्त आसक्त होकर अपना सर्वस्व छोड़कर उनके पीछे लग गईं। उनसे घिरे शिव भी दूसरे वन में घुस गये॥ ३९॥ कामाचारादि एवं विनोद से शिव ने उन्हें मोह लिया। उनके साथ सम्भोग कर उन्हें गर्भवती बना दिया॥ ४०॥ ब्राह्मणपत्नियों का उपभोग कर शिव ने उनसे कहा—तुम लोगों के पति तुम पर क्रुद्ध हो रहे हैं। अतः अब तुम सब अपने-अपने घर लौट जाओ॥ ४१॥ शाम होने ही वाली है, अब अपने नगर लौट जाओ। शङ्कर की ये बातें सुनकर मुनिपत्नियाँ॥ ४२॥ अपने-अपने पति के डर से डरती हुई वे अपने घर की ओर चल पड़ीं। उसी बीच फल-पुष्पादि संग्रह कर वे ब्राह्मण भी॥ ४३॥ घर आकर अपनी-अपनी पत्नियों को विकृत आकृतियों में देखकर उन ब्राह्मणों ने यह जान लिया कि

प्राप्ता गृहांस्तत्र दारान् वीक्ष्याऽतिविकृताऽऽकृतीन्।
अभिलक्ष्य गर्भयुताः पत्नीः स्वाः सर्व एव ते॥ ४४॥
शङ्किता अभवन् तत्र ज्ञात्वा तत्तपसो बलात्। महादेवाऽपचरितं चुक्रुधुर्मुनिपुङ्गवाः॥ ४५॥
जग्मुर्यत्र महादेवो भस्मीकुर्म इति क्रुधा। आगच्छतो मुनीन् दृष्ट्वा महादेवेति कोपनान्॥ ४६॥
पलायनपरः शीघ्रमभवद्वृषकेतनः। पलायनपरं देवं नभोमार्गसमाश्रयम्॥ ४७॥
दृष्ट्वा मुनिगणाः क्रुद्धाः शापं तस्मिन्नवासृजुः। परक्षेत्रेष्वयं यस्मात् कामी बीजं स्वमुत्सृजत्॥
तस्मादितः परश्चाऽन्यस्त्रीषु षण्डत्वमेष्यति। येन लिङ्गेन चाऽस्माकं पत्न्य एताः प्रदूषिताः॥
पतत्वस्मत्समक्षं तल्लिङ्गं जारस्य सर्वथा। एवं विप्रैः शिवः शप्तस्तस्मात्ते कथमीप्सितम्॥ ५०॥
भवेदमरराजन्य न ह्यपत्यस्य सम्भवः। श्रुत्वेत्थं पार्वतीवाक्यमिन्द्रः पप्रच्छ सादरम्॥ ५१॥
देव्यहं श्रोतुमिच्छामि शिवः किमकरोत्ततः। कथं छिन्नं तस्य लिङ्गं किं भूतं तत्ततः परम्॥ ५२॥
पृष्ट्वैवं देवराजेन प्राह गौरी दिवस्पतिम्। एवं शापोत्तरं तस्य शिवस्याऽऽकाशगामिनः॥ ५३॥
पपात लिङ्गं सञ्छिन्नं दूरादाकाशमार्गतः। पतल्लिङ्गं समालोक्य ब्रह्मा विष्णुमचोदयत्॥ ५४॥
एतल्लिङ्गं यदि पतेच्छूलिनः पृथिवीतले। शतधा पृथिवी शीर्णा भविष्यति न संशयः॥ ५५॥
नाऽस्त्यन्यो धारको लोके विद्यते त्वामृते हरे। योन्याकृत्या धारयैतत् क्षोभशान्त्यै न चाऽन्यथा॥
त्वामहं धारयिष्यामि योनिरूपेण संस्थितम्। इत्युक्त्वा पीठरूपेण स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः॥
योनिरूपेण तस्योद्र्ध्वे संस्थितः कमलेक्षणः। अथ लिङ्गं योनिमध्ये पपात क्षणतस्तदा॥ ५८॥
पततस्तस्य वेगेन योनिस्तु निरभिद्यत। भित्त्वा योनिं पीठमध्ये प्राविशल्लिङ्गमद्भुतम्॥ ५९॥

उनकी पत्नियाँ गर्भवती हैं॥ ४४॥ ये मुनिगण पहले तो शङ्कित हुए, फिर अपने तपोबल से महादेव के इस कुकर्म को जान लिये॥ ४५॥ क्रुद्ध ब्राह्मणों ने महादेव को जलाकर राख करने के लिए उनके पास चले। महादेव भी उन्हें आते देखकर उन्हें क्रुद्ध जानकर॥ ४६॥ उठकर भागने लगे। आकाशमार्ग से उन्हें भागते॥ ४७॥ देखकर मुनिगणों ने उन्हें श्राप दिया। रे कामी! तुमने परनारी में जो अपना वीर्य स्खलित किया है॥ ४८॥ अतः अपनी या पराई स्त्री के सम्पर्क में तुम नपुंसक बन जाओगे और जिस लिङ्ग से हमारी पत्नियों को तुमने प्रदूषित किया है॥ ४९॥ वह तुम्हारे जैसे जारपविका का लिङ्ग अभी हमारे सामने गिर जाय। इस तरह ब्राह्मणों से प्रशप्त शिव का मुझसे पुत्र कैसे सम्भव है? तुम्हारा मनोरथ कैसे पूरा होगा?॥ ५०॥ अतः हे देवेन्द्र! हमारी सन्तान की कल्पना तो असम्भव ही है। पार्वती की यह बात सुनकर देवेन्द्र ने उनसे सादर पूछा॥ ५१॥ हे देवि! मैं सुनना चाहता हूँ कि इसके बाद शिवजी ने क्या किया? उनका लिङ्ग कैसे कटा? और उसके बाद क्या हुआ?॥ ५२॥ देवराज के इस तरह पूछने पर गौरी ने कहा—इस तरह शाप के बाद उस आकाशगामी शिव का॥ ५३॥ दूर आकाशमार्ग से उनका लिङ्ग कट कर गिर गया। गिरते लिङ्ग को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा॥ ५४॥ भगवान् शिव का यह लिङ्ग यदि धरती पर गिरेगा तो यह धरती सैकड़ों टुकड़ों में बिखर जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ५५॥ हे श्रीहरि! आपके सिवा इस लोक में इसे धारण करने वाला कोई दूसरा नहीं है। शिव का कोप शान्त करने के लिए योनि का रूप धारण कर इन्हें रोके॥ ५६॥ ब्रह्मा ने कहा—आप योनि रूप धारण करें और मैं आपको पीठ रूप में धारण करूँगा॥ ५७॥ पीठ रूप ब्रह्मा के ऊपर उसी क्षण योनि रूप धारण कर विष्णु स्थिर हो गये और शिव का कटा लिङ्ग ऊपर से गिर कर उसी में स्थिर हो गया॥ ५८॥ वेग से गिरता लिङ्ग योनि को

विष्णुर्ब्रह्माऽपि तल्लिङ्गं धारयामासतुर्बलात्। तद्भारेण धरां भूयो निविशन्तीं रसातलम्॥ ६०॥
कम्पमानां हरिः शेषरूपी दृढमधारयत्। एतस्मिन्नन्तरे देवः शम्भुः प्रकुपितोऽभवत्॥ ६१॥
तस्य क्रोधसमुद्भूतः पावको नेत्रनिःसृतः। जगद्दग्धुं समारेभे तदद्भुतमिवाऽभवत्॥ ६२॥
दह्यमाने सर्वलोके हा हा कारो महानभूत्। अथ देवाः सगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः॥ ६३॥
सिद्धाः पितृगणा देवमुनयोऽन्येऽपि सर्वतः। अस्तुवन्नीलकण्ठं तं क्रुद्धं कालाऽन्तकं शिवम्॥
यदा न क्षमते देवः शिवो लिङ्गस्य छेदनात्। तदा ब्रह्मा शिवोपस्थलिङ्गात्मा समजायत॥ ६५॥
दृष्ट्वा लिङ्गोद्गमं तस्य शान्तमीषन्महेश्वरम्। विष्णुः कृताऽञ्जलिः प्राह स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः॥
महादेव जगन्नाथ त्राहि लोकांश्चराऽचरान्। नश्यमानांस्तव क्रोधाऽग्निना तमुपसंहर॥ ६७॥
तव यत् पतितं लिङ्गं पूजयामो वयं सदा। इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षो लिङ्गे पूजामकल्पयत्॥ ६८॥
विविधैरुपचाराऽऽद्यैः पूजयित्वा यथाविधि। परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुतिश्चक्रे विचित्रिताम्॥
अथ लिङ्गपूजनेन शान्तः सन्निहितो भवः। जगाद विष्णुं सम्बोध्य विष्णो मद्वचनं शृणु॥ ७०॥
अद्य त्वया पूजितोऽहं लिङ्गेऽस्मिन्नादितस्ततः। अलौकिकी क्रिया चेयं कृता मत्प्रीतिहेतवे॥
अद्य प्रभृत्यहं तस्माल्लिङ्ग एव प्रपूजनात्। भवामि नाऽन्यथा विष्णो सन्तुष्टः सर्वथा जनैः॥
स्थापयन्तु च मां लिङ्गरूपिणं सर्वदेवताः। मर्त्याऽऽद्या अपि सर्वत्र तत्र सन्निधिमेम्यहम्॥ ७३॥
ब्रह्मा पीठात्मको योनिर्विष्णुर्लिङ्गमहं त्रयम्। समष्ट्या परमेशस्य रूपं स्यात्तुर्यसंज्ञितम्॥ ७४॥

चीर कर पीठ रूपी ब्रह्मा में घुस गया॥ ५९॥ ब्रह्मा और विष्णु अपनी सारी शक्ति लगाकर उस शिवलिङ्ग को धारण किये। इस आपाधापी में उस लिङ्ग के भार से धरती रसातल की ओर खिसक गई॥ ६०॥ थर-थर काँपती धरती को शेषनागरूपी विष्णु ने बड़ी दृढ़ता से धारण किया। इसी बीच भगवान् शिव भी काफी क्रुद्ध हो गये॥ ६१॥ महादेव के क्रोध के कारण उनकी तीसरी आँख खुल गई। उससे आग की ज्वाला फूट निकली। उस ज्वाला में घू-घू कर संसार जलने लगा। यह एक अद्भुत घटना थी॥ ६२॥ जलते संसार में हा-हाकार हो उठा। देव, गन्धर्व, विद्याधर और नाग॥ ६३॥ सिद्ध, पितृगण, देव और मुनिगण चारों ओर से क्रुद्ध, कालान्तक, नीलकण्ठ शिव की स्तुति करने लगे॥ ६४॥ लिङ्ग कटने से क्रुद्ध शिव जब किसी तरह शान्त नहीं हुए तब ब्रह्माजी ने स्वयं शिव के पेडू में लिङ्ग का रूप धारण कर लिया॥ ६५॥ अपने शरीर में पुनः लिङ्ग का उद्गम देखकर शिव थोड़ा शान्त हुए। भगवान् विष्णु ने उन्हें बार-बार प्रणाम कर हाथ जोड़ कर कहा॥ ६६॥ हे महादेव! हे जगन्नाथ! तीनों लोकों के चराचर जीवों की आप रक्षा करें। आपकी क्रोधाग्नि में ये जल रहे हैं, इन्हें अब आप शान्त करें॥ ६७॥ आपका लिङ्ग जो नीचे गिरा है, हम सब उसकी पूजा करेंगे। यह कहकर विष्णु ने उस लिङ्ग की पूजा की॥ ६८॥ अनेक उपचारादि से यथाविधि लिङ्ग की पूजा कर प्रदक्षिणा की। पुनः उन्हें प्रणाम कर रंग-बिरंगी स्तुतियाँ कीं॥ ६९॥ इसके बाद लिङ्गपूजन से शिव शान्त हो गये और विष्णु को सम्बोधित कर कहा—हे विष्णु! मेरी बात सुनो॥ ७०॥ आज आपने सर्वप्रथम मेरे इस लिङ्ग की पूजा की है। यह एक अलौकिक आपकी क्रिया हुई। यह आपने मुझे प्रसन्न करने के लिए किया है॥ ७१॥ अतः आज से लेकर जो मेरे लिङ्ग की पूजा करेगा, उसी से मैं सन्तुष्ट रहूँगा, अन्यथा नहीं॥ ७२॥ सर्वदेवमय इस लिङ्ग की स्थापना कर जो मनुष्य आज से मेरी पूजा करेगा, मैं सदैव उसके पास ही रहूँगा॥ ७३॥ पीठात्मक ब्रह्मा, योनिरूपी विष्णु और लिङ्गरूपी मुझ त्रिदेव का एक साथ जो पूजन करेगा, उसकी आत्मा ब्रह्ममय होगी॥ ७४॥ यह कहकर स्वयं शिव ने लिङ्गपूजा की, फिर ब्रह्मा, बाद

इत्युक्त्वा पूजयामास स्वयं शम्भुस्त्रिलोचनः। ब्रह्मा देवपतिर्देवाः सर्वे चक्रुस्तदर्चनम्॥ ७५॥
एतद्देवेश ते प्रोक्तं शिवस्य चरितं महत्। शापस्य च मया प्रोक्तं कारणं सर्वमादितः॥ ७६॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ २८४०॥

में इन्द्रादि सब देवताओं ने उस लिङ्ग की पूजा की॥ ७५॥ हे इन्द्र! शिवजी का यह महान् चरित्र मैंने आपको सुना दिया। शाप का आदि से अन्त तक कारण भी समझा दिया॥ ७६॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २८४०॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

अथ देवपतिर्गौरीं पुनः पप्रच्छ सादरम्। भूमिलोके लिङ्गपूजा कथं मर्त्यैः कृताऽभवत्॥ १ ॥
एतदाख्याहि मे श्रोतुर्यदि श्रोतव्यमस्ति वै। अथ प्राह सुरेशं सा गिरिजा हृष्टमानसा॥ २ ॥
शृणु देवेश वक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्। अथ भूमौ जनाः श्रुत्वा देवेभ्यो लिङ्गपूजनम्॥ ३ ॥
न श्रद्दधुर्वचः प्रायो लोकविद्विष्टमित्युत। अथ लिङ्गाऽर्चनं लोके लुप्तं मत्वा त्रिलोचनः॥ ४ ॥
आस्थितस्तप अत्युग्रं त्रिपुराप्रीतिहेतवे। दशवर्षसहस्राणि ततः सा जगदीश्वरी॥ ५ ॥
प्रसन्ना दर्शयामास स्वात्मानं मूर्तिमत्तया। दृष्ट्वा मूर्तिं जगन्मातुः स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः॥ ६ ॥
प्रणतो दण्डवद्भूमौ भक्तिनिर्भरिताऽन्तरम्। अथ सा त्रिपुरेशानी लीलाविग्रहधारिणी॥ ७ ॥
आह शम्भुं शिवेत्येवमामन्त्र्य जगदीश्वरी॥ ८ ॥
शृणु शङ्कर मद्वाक्यं लोकविद्विष्टमेव तत्। यल्लिङ्गपूजनं प्रोक्तं न वाञ्छन्ति जनास्ततः॥ ९ ॥
तथाऽप्यहं ते तपसा तुष्टा दास्यामि वाञ्छितम्। अद्यप्रभृति लोकेषु तव मूर्तिस्तु सर्वतः॥ १० ॥
लिङ्गात्मतां समायातु लिङ्गे पूजनमात्रतः। तुष्टास्त्रिमूर्तयः सन्तु तथा तुर्यो महेश्वरः॥ ११ ॥
ब्रह्मणा विष्णुना चाऽपि त्वया तुर्येण शम्भुना। सदाशिवेन चाऽऽराध्यं लिङ्गं सर्वैरपीश्वरैः॥
यो लिङ्गं नाऽर्चयेद्भक्त्या तस्य त्वं वा हरिस्तथा। अन्येऽपि देवा विमुखा भवन्तु मम शासनात्॥
मद्भक्तस्याऽपि लिङ्गाऽर्चा नित्यमावश्यकी भवेत्। अनभ्यर्च्य लिङ्गमैशं मदुपास्तिं करोति यः॥

* विमला *

इसके बाद देवपति इन्द्र ने गौरी से सादर पुनः पूछा—हे देवि! धरती पर मनुष्यों में लिङ्गपूजा का प्रचलन कैसे हुआ?॥१॥ यदि यह मेरे सुनने लायक हो तो कृपया मुझे सुना दें। तब प्रसन्नचित्त गिरिजा ने देवेन्द्र से कहा॥२॥ हे देवेश! पापों को विनष्ट करने वाली यह पवित्र कथा मैं तुम्हें सुनाती हूँ। धरती पर जब लोगों ने देवताओं के द्वारा लिङ्गपूजा की चर्चा सुनी॥३॥ लोगों में इस घृणित आचार के प्रति श्रद्धा नहीं हुई। तब संसार में लिङ्गार्चन को लुप्त होते देखकर भगवान् त्रिलोचन शिव ने॥४॥ भगवती त्रिपुरा के निमित्त कठोर तप प्रारम्भ कर दिया। तप करते दस साल जब बीत गये तब उस जगदीश्वरी ने॥५॥ प्रसन्न होकर अपना मूर्तिमन्त स्वरूप उन्हें दिखला दिया। जगन्माता की मूर्ति सामने देखकर शिव ने उन्हें बार-बार प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति की॥६॥ भक्तिपूर्ण हृदय से धरती पर दण्डवत् प्रणत देखकर लीलाविग्रहधारिणी उस त्रिपुरा ने॥७॥ शिव को सम्बोधित कर उनसे कहा॥८॥ हे शङ्कर! मेरी बात सुनो—जिस लिङ्ग-पूजन के सम्बन्ध में कहा गया है, वह लोकाचार में घृणित है। इसीलिए जन-समुदाय इसकी पूजा नहीं करते हैं॥९॥ फिर भी मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट होकर तुम्हें मनचाहा वर देती हूँ। आज से संसार में हर जगह तुम्हारी मूर्ति ही॥१०॥ लिङ्गात्म रूप में, लिङ्गपूजन मात्र से ही पूजित होगी। लिङ्गपूजन मात्र से ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर लोगों पर प्रसन्न होंगे॥११॥ ब्रह्मा, विष्णु और एक चतुर्थांश सदाशिव से एवं सभी शक्तिसम्पन्नों से यह लिङ्ग आराधित होंगे॥१२॥ जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस लिङ्ग की पूजा नहीं करेगा, उससे तुम या हरि अथवा सब देवगण मेरे शासन से विमुख हो जायेंगे॥१३॥ मेरे भक्तों के लिए भी प्रतिदिन

तस्य निष्फलमेवाऽस्तु सर्वं कर्म कृतं शिव। लिङ्गपूजनमात्रेण प्रीताऽहं वाञ्छिताऽर्थदा॥ १५॥
विधिना पूजिता लिङ्गे येनाऽहं भक्तिभावतः। तस्मै ददामि सालोक्यमलभ्यमन्यथा जनैः॥
यस्तु लिङ्गे यन्त्रराजं विलिख्य पूजयेच्च माम्। तत्फलं चक्रराजाऽर्चाकोटिकोटिगुणं भवेत्॥
लिङ्गमूर्ध्नि कृतं यन्त्रं सर्वयन्त्रोत्तमोत्तमम्। तत्र पूजनमात्रेण पूजिताः सर्वदेवताः॥ १८॥
यस्मात्त्रिमूर्तिरूपं तद्देवा मूर्तित्रयोद्भवाः। अन्यत्ते सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं शृणु शङ्कर॥ १९॥
लीनार्थगमकं यस्माल्लिङ्गं साक्षात् परः शिवः। मद्रूपमपरं लिङ्गं सर्वकारणभावतः॥ २०॥
इत्युक्त्वा विधिमुख्यांश्च प्रशास्य लिङ्गपूजने। पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवाऽन्तरधीयत॥ २१॥
ततः प्रभृति लोकेषु प्रसृतं लिङ्गपूजनम्। एतत्तेऽभिहितं शक्र तस्मान्नाऽपत्यसम्भवः॥ २२॥
तथापि पश्यसि शिवं तपः परममास्थितम्। निरुच्छ्वासं निरुन्मेषं कथं तेन समागमः॥ २३॥
गच्छेन्द्र काममत्रार्थे नियोजय रमासुतम्। स जेष्यति शिवं देवं कालेन तव सम्मतम्॥ २४॥
भवेदिति समादिश्य जगामाऽन्तर्धिमम्बिका। अथ देवपतिः शीघ्रमागत्य स्वर्निवेशनम्॥ २५॥
सस्मार मन्मथं देवं स्वकार्यवशतो द्रुतम्। अथ संस्मृतमात्रस्तु मन्मथो रतिसंयुतः॥ २६॥
आविर्भूतः शक्रसभामध्ये निमेषमात्रतः। तरुणो लावण्यनिधिः पुष्पबाणेक्षुकार्मुकः॥ २७॥
ततोऽतिमात्रसौन्दर्ययुतां संश्लिष्य वै रतिम्। आच्छिन्दन् स्वर्निवासानां चक्षूंषि न मनांसि च॥
दृष्ट्वा प्राप्तं मन्मथं तं प्रत्युद्गम्य दिवस्पतिः। समानयत् परे धृत्वा स्वाऽऽसने सन्निवेशयत्॥ २९॥

इस लिङ्ग की पूजा आवश्यक होगी। बिना शिवलिङ्ग की पूजा किये जो मेरी उपासना करता है॥ १४॥ उसके सारे कृतकर्म निष्फल ही होंगे। अतः हे शिव! लिङ्गपूजन मात्र से ही मैं प्रसन्न होकर ही मनचाही वस्तु उन्हें दूँगी॥ १५॥ भक्तिपूर्वक सविधि लिङ्ग में जो मेरी पूजा करता है, उसे मैं सालोक्य एवं अलभ्य वस्तु भी प्रदान करती हूँ॥ १६॥ शिवलिङ्ग पर जो मेरा यन्त्र लिखकर मेरी पूजा करता है उसे विष्णुपूजा से करोड़ों गुणा अधिक फल मिलता है॥ १७॥ शिवलिङ्ग के शीर्ष पर सभी यन्त्रों में उत्कृष्ट मेरा यन्त्र लिखकर जो मेरी पूजा करता है, उसे सभी देवताओं की पूजा का फल एक साथ मिलता है॥ १८॥ क्योंकि मूर्त्तित्रय से समुत्पन्न ये त्रिदेव हैं। हे शङ्कर! इसका दूसरा रहस्य भी है, उसे भी मैं बतलाती हूँ॥ १९॥ लीन अर्थात् पूर्ण रूप से विलीन अर्थ का संकेतक होने के कारण लिङ्ग साक्षात् शिव ही हैं। सर्वकारण भाव से यह लिङ्ग मेरा ही दूसरा रूप है॥ २०॥ इतना कहकर लिङ्गपूजा के लिए ब्रह्मादि प्रमुख देवताओं को प्रशासित कर सभी देवताओं के देखते-ही-देखते भगवती त्रिपुरा आँखों से ओझल हो गईं॥ २१॥ उसी दिन से संसार में लिङ्गपूजन का प्रसार हुआ। मैंने तुम्हें हे इन्द्र! यह कथा सुना दी और इसीलिए कहती भी हूँ कि मुझे सन्तान होने की कोई सम्भावना नहीं है॥ २२॥ फिर भी तुम देखते नहीं—आँखें बन्द किये, साँसों को रोके शिव दिन-रात तपस्या में लीन हैं। फिर उनके साथ मेरा समागम कैसे होगा?॥ २३॥ इसलिए हे इन्द्र! जाओ और लक्ष्मी के पुत्र काम को इसके लिए नियोजित करो। वही यथावसर शिव को जीतकर तुम्हारा अभीप्सित सिद्ध करेगा॥ २४॥ इतना कहकर वह जगदम्बा उसी क्षण तिरोहित हो गई और इन्द्र ने भी शीघ्र ही अपने स्वर्ग पहुँच कर॥ २५॥ अपने कार्यवश शीघ्र ही कामदेव का स्मरण किया। केवल स्मरण करने से ही अपनी पत्नी रति के साथ॥ २६॥ पलक झपकते ही इन्द्र की सभा के बीच तरुण सौन्दर्य के मानो सागर पुष्प-बाण और धनुष लिये आविर्भूत हुआ॥ २७॥ इसके बाद अति सौन्दर्य-सम्पन्न परम सुन्दरी अपनी पत्नी रति को आलिङ्गनबद्ध किये काम को जहाँ स्वर्गवासियों ने देखा। उनका मन और उनकी आँखें वहीं रुक गईं॥ २८॥ इधर इन्द्र काम को आया देख उठ खड़े हुए और उसके पास जाकर उसका हाथ पकड़

अथाऽभ्यर्हणमादाय पूजयामास मन्मथम्। तथा सुपूजितः कामो देवैः सम्मानितो भृशम्॥ ३०॥
सन्तुष्टः प्राह देवेशं शृण्वताञ्च दिवौकसाम्। ब्रूहीन्द्र संस्मृतः कस्मात् किं ते कृत्यं मया स्थितम्॥
यास्यामि तत्ते सम्पाद्य सर्वथा ते प्रपूजितः। साधयिष्याम्यसाध्यञ्च त्वदर्थं संशयं जहि॥ ३२॥
इति ब्रूवाणं देवेशः प्राह हृष्टः कृताऽञ्जलिः। नैतच्चित्रं रमापुत्र सदृशं वचनं तव॥ ३३॥
लोकमात्रा मदर्थे त्वं सृष्टोऽजेयोऽखिलैरपि। यस्ते शत्रुः शिवो देवः सद्यः स तप आस्थितः॥
तं जित्वा सत्वरं शैलजातायां सन्नियोजय। श्रुत्वेत्थं शक्रवचनं मदनो विमना अभूत्॥ ३५॥

स्मृत्वा प्राक् गिरिजाशापं शिवादात्मप्रणाशनम्।
स्थितस्तूष्णीं क्षणं तादृग्विधमालक्ष्य वज्रभृत्॥ ३६॥

आह किं काम विमना लक्ष्यसेऽत्र विशेषतः। इति शक्राऽनुयुक्तः स निःश्वसन्नाह स्वाऽन्तरम्॥
वद शक्र कस्य नाम प्रियं स्यादात्मनाशनम्। शप्तोऽस्मि गौर्या भस्मत्वं यास्यसि त्र्यम्बकादिति॥
स कालः प्राप्त इत्येवं मन्ये कालो दुरत्ययः। तथाऽप्युक्त्वा करोमीति न कुर्यान्मादृशः कथम्॥
गच्छामि ते प्रियं कर्तुमग्रे दैवं परायणम्। इत्युक्त्वा निर्ययौ स्वर्गाद्रथं जैत्रं समास्थितः॥ ४०॥
अथ कण्ठे समाश्लिष्य रतिरत्यन्तदुःखिता। पतिं निवारयामास रुदन्ती सर्वयत्नतः॥ ४१॥
नाथ त्वयि समापन्ने कीर्तिशेषमहं कथम्। जीविष्याम्यलमेतेन आत्मनाशव्रतेन ते॥ ४२॥
गच्छावो नगरं स्वीयं जीवन् भद्राणि पश्यति। सत्यं तपस्तथा वीर्यं सर्वं जीवनहेतवे॥ ४३॥
जीवनाद्विच्युतौ किं स्यात्तपःसत्यपराक्रमैः। मदुक्तं मन्यसे नो चेदहं त्वत्पुरतोऽधुना॥ ४४॥

कर उन्हें सम्मानपूर्वक लाकर अपने सिंहासन पर बिठलाया॥ २९॥ उसके बाद पूजन-सामग्रियों से इन्द्र ने काम की पूजा की। फिर देवराज से पूजित काम देवताओं के द्वारा भी उस सभा में पर्याप्त सम्मानित हुआ॥ ३०॥ उनकी पूजा से सन्तुष्ट होकर काम ने देवताओं के बीच इन्द्र से कहा—हे इन्द्र! आपने मुझे किसलिए याद किया है? मुझे क्या करना है? बतलायें॥ ३१॥ आपने मेरी पूजा की है, अतः आपका कार्य मैं पूरा करूँगा। आपके लिए असाध्य कार्य को भी मैं साध्य बना डालूँगा, इसमें सन्देह मत करें॥ ३२॥ इस तरह काम के कहने पर सन्तुष्ट होकर देवेन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा—हे रमापुत्र! आपने जो कुछ भी कहा इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। आपके योग्य ही आपका वचन है॥ ३३॥ तुम्हारी सृष्टि मेरे लिए ही हुई है। सारी दुनिया में तुम अजेय हो। तुम्हारे शत्रु ये शिव अभी तपस्या में निरत हैं॥ ३४॥ उन्हें जीतकर पार्वती के साथ उन्हें योजित करो। इन्द्र की यह बात सुनकर काम कुछ दुःखी हुआ॥ ३५॥ पूर्व प्रदत्त गिरिजा के शाप को तथा उससे प्राप्त आत्मविनाश को याद कर काम एक क्षण अवाक् रह गया। उन्हें इस स्थिति में देखकर इन्द्र ने॥ ३६॥ कहा—क्यों कामदेवजी! इसे सुनकर आप बड़े ही दुःखी लग रहे हैं। इन्द्र की यह बात सुनकर भीतर-ही-भीतर लम्बी साँस खींचकर उसने कहा॥ ३७॥ बतलाओ इन्द्र! किसको आत्मनाश प्रिय है? गौरी ने मुझे शाप दिया है—शिव तुम्हें जलाकर राख कर देंगे॥ ३८॥ काल तो बड़ा ही दुरत्यय है, मुझे लगता है वह समय अब नजदीक आ गया है। फिर भी जो कह चुका हूँ उसे तो पूरा करना ही मेरे जैसे लोगों का काम है॥ ३९॥ मैं तुम्हारा काम पूरा करने के लिए जाता हूँ, आगे ईश्वर के हाथ में है। यह कहकर जैत्र रथ पर सवार होकर स्वर्ग से वह बाहर निकल गया॥ ४०॥ अत्यन्त दुःखिता रति ने रोती हुई अपने पति काम को गले लगाकर प्रयासपूर्वक उन्हें रोका॥ ४१॥ हे नाथ! तुम्हारा यह आत्मनाश व्रत बेकार है। तुम्हारे मरने के बाद मैं कैसे जी सकती हूँ?॥ ४२॥ हम अपने नगर चले, जीवित रहते हुए सारे कल्याणकारी कार्य कर सकेंगे। सत्य, तप और पराक्रम सब तो जीवन-निमित्त कहे हैं॥ ४३॥ मरने के बाद तप,

त्यजामि जीवितञ्चैतत्ततो गच्छ यथेच्छतः। त्वया विना कृता चाऽहं क्षणाऽर्धमपि नोत्सहे॥
प्राणान् धारयितुं नाथ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते। निशम्य स्वप्रियावाक्यं कण्ठे सक्तां रतिं तदा॥ ४६॥
धैर्यवान् प्राह कन्दर्पः प्रिये शृणु वचो मम। शोचन्त्यापत्सु नो धीराः शोकः सर्वार्थनाशनः॥
भाव्यन्यथयितुं नैव शक्ता ब्रह्ममुखा अपि। पुनस्त्वया समेष्यामि कालेन प्राणनायिके॥ ४८॥
तावत्त्वं त्रिपुरेशानीमाराधय शुभान्तरा। सा ते महेश्वरी सर्वं वाञ्छितं प्रविधास्यति॥ ४९॥
इत्थं ब्रूवत्यपि निजकान्ते कामे रतिः प्रिया। शोकसंविग्नहृदया मूर्च्छिता न्यपतत् क्षितौ॥ ५०॥
मूलकृत्तेव कदली हैमी क्षितितलं गता। दृष्ट्वा तादृग्विधां प्राणप्रेयसीं शोककातरः॥ ५१॥
उत्थाप्याङ्कं समारोप्य मदनः पर्यदेवयत्। अथ सस्मार जननीं रमां नारायणप्रियाम्॥ ५२॥
साऽपि तत्स्मृतिमात्रेण सान्निध्यं समुपागता। दृष्ट्वा तां जननीं कामो भुवि न्यस्य प्रियां रतिम्॥
प्रणाममकरोन्मातुः स्ववृत्तञ्च न्यवेदयत्। मातर्मया प्रतिश्रुत्य करोमीति प्रियं हरौ॥ ५४॥
कथं स्यां विमुखस्तस्माद्यथा कापुरुषो भुवि। तदहं जेतुकामोऽद्य मातः शिवमुपव्रजे॥ ५५॥
एनां प्रियां समाश्वास्य सान्निध्यं नेतुमर्हसि। इत्युक्तवन्तं मदनं परिष्वज्य रमा तदा॥ ५६॥
शोकभारपरिम्लानमुखी तं प्राह धैर्यतः। वत्स गच्छ महेशानं कालेनैव विजेष्यति॥ ५७॥
शापो गौर्या निराकर्तुमशक्यो विधिनाऽपि वै। तद्गच्छ श्रीमहादेवीं स्मरन् विद्यामयीं जपन्॥
सा ते विधास्यति शुभं गच्छ श्रेयः समाप्नुहि। इत्युक्तो मदनो नत्वा मातरं लोकमातरम्॥ ५९॥

सत्य या पराक्रम किस काम का? मेरा कहा मानिये नहीं तो मैं आपके सामने अभी ही॥ ४४॥ अपनी जान गवाँ दूँगी, फिर आप जो चाहे करें। आपके बिना एक क्षण भी मैं जीना नहीं चाहती हूँ॥ ४५॥ हे नाथ! मैं प्राण धारण के लिए ही यह सच कह रही हूँ। अपने गले लगी प्रिया की बातें सुनकर॥ ४६॥ धैर्यवान् काम ने कहा—हे प्रिये! मेरी बातें सुनो—विपत्तिकाल में धीर पुरुष सोचते नहीं है। क्योंकि शोक सर्वार्थनाशक है॥ ४७॥ जो भावी है उसे ब्रह्मा प्रमुख शक्तिशाली देवगण भी नहीं टाल पाते हैं। फिर मैं तुम्हारे साथ ही तो अपना जीवनयापन करूँगा॥ ४८॥ इस बीच तुम भगवती त्रिपुरा की आराधना करो। वही महेश्वरी तुम्हारी हर कामना पूरी करेगी॥ ४९॥ अपने पति के इस तरह समझाने-बुझाने के बावजूद रति शोक से जिसकी छाती फट गई हो—धरती पर मूर्च्छित होकर गिर गयी॥ ५०॥ ठण्ड के कारण जड़ कट जाने पर जैसे केले के वृक्ष धरती पर गिर जाते हैं उसी तरह शोक से आतुर बनी प्राण से भी अधिक प्रिया को धरती पर गिरी देखकर॥ ५१॥ काम उसे उठाकर अपनी गोद में लेकर काफी दुःखी हुआ। फिर उसने नारायणप्रिया अपनी माता को इस विपत्ति में याद किया॥ ५२॥ महालक्ष्मी भी याद करते ही शीघ्र उसके पास पहुँच गई। माता को सामने देखकर काम ने अपनी प्रिया रति को गोद से उतार कर उसे धरती पर रखकर॥ ५३॥ माता को प्रणाम किया। फिर अपनी कहानी कह सुनायी। माँ! मैं इन्द्र के सामने प्रतिज्ञा कर उनका प्रिय करने जा रहा हूँ॥ ५४॥ तुम्हीं बतलाओ, धरती पर जैसे कायर व्यक्ति अपने वचन से मुड़ जाते हैं, मैं अपना प्रदत्त वचन का पालन कैसे न करूँ? अतः मैं काम आज शिव को जीतने के लिए उनके पास जाना चाहता हूँ॥ ५५॥ इस प्रिया रति को आश्वासन देकर अपने पास ले जाओ। ऐसे कहते हुए बेटे को छाती से लगाकर रमा ने कहा॥ ५६॥ शोक के भार से यद्यपि उनका मुख मुरझा गया था फिर भी धैर्य के साथ उन्होंने काम से कहा—बेटे! जाओ, महेश्वर को काल जीत सकता है॥ ५७॥ स्वयं विधाता भी गौरी के शाप को टाल नहीं सकते, फिर भी तुम श्रीमहादेवी का स्मरण करते हुए विद्यामयी को जपते हुए जाओ॥ ५८॥ वही तुम्हारे लिए कल्याण का विधान करेगी, जाओ और श्रेय प्राप्त करो। उनकी बात

प्रयातस्त्रिपुरां ध्यायन् भक्तिभावसुनिर्भरः । अथ तत्र रतिं पद्मा अपाङ्गैरमृतप्रवैः ।। ६० ।।
प्रेक्षाञ्चक्रे ततः साऽपि निद्रितेव समुत्थिता । अदृष्ट्वा प्रियमात्मीयं शोकार्ता करुणं वचः ।। ६१ ।।
आचचक्षे रमां देवीं दृष्ट्वा स्वाभिमुखे स्थिताम् । आये क्व मे प्रियतमो ब्रूहि तेन विना कृता ।। ६२ ।।
न जीवितुं समीहामि क्षणाऽर्धमपि निश्चितम् । नाथाहं किं परित्यक्ता सर्वथा त्वामनुव्रता ।।
त्वां विना शून्यमेवाऽहं पश्यामि सचराऽचरम् । इत्यादि प्रलपन्तीं तां समाश्वास्य प्रबोध्य च ।।
भवनं स्वं समानीय पार्षदैरन्वरक्षयत् । आश्वस्ता पार्षदैः साऽपि निवसद्विष्णुधामनि ।। ६५ ।।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।। ३९०५ ।।



सुनकर लोकमाता महालक्ष्मी को प्रणाम कर मदन ।। ५९ ।। भक्तिभाव से उन पर निर्भर होकर मन-ही-मन भगवती त्रिपुरा का ध्यान करते हुए प्रस्थान किया। उसके बाद अमृत चुलाने वाली अपनी आँखों से रति को ।। ६० ।। देखा। रति उसी तरह उठ बैठी जैसे सोये से किसी ने जगा दिया हो। उसने अपने प्रिय को सामने न देखकर शोक से कातर होकर करुण बातें कही ।। ६१ ।। अपने सामने लक्ष्मी को देखकर पूछा—आर्ये! मेरा प्रिय कहाँ है? बोलो। उनके बिना तो ।। ६२ ।। आधा क्षण भी मैं जीवित नहीं रह सकती, इसे निश्चित मानो। हे नाथ! मैं तो सर्वदा तुम्हारी अनुगामिनी रही हूँ, फिर मुझे आपने छोड़ कैसे दिया? ।। ६३ ।। तुम्हारे विना तो मैं सचराचर जगत् को ही शून्य मानती हूँ। इस प्रकार बिलखती रति को किसी तरह समझा-बुझाकर ।। ६४ ।। अपने घर ले आयी और पार्षदों के संरक्षण में रख दिया। पार्षदों से आश्वस्त वह भी विष्णुलोक में टिक गई ।। ६५ ।।

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कामोपाख्यान नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।। ३९०५ ।।



अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

अथ कामो जैत्ररथं समास्थाय द्रुतं ययौ। चिन्तयंस्त्रिपुराऽम्बायाः पादपद्मं शुभोदयम्॥ १॥
अथ मार्गे सुरनदीतीरमासाद्य सुन्दरम्। स्नात्वा तत्र परां देवीमुपतस्थे यतान्तरः॥ २॥
यदा स संहृताऽशेषकरणस्त्रिपुरापदम्। समालम्ब्य निश्चलत्वं प्राप तन्मात्ररूपतः॥ ३॥
तदा सन्निहिता देवी त्रिपुरा परमेश्वरी। अरुणाऽरुणकल्पाढ्या चन्द्रचूडा त्रिलोचना॥ ४॥
पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणान् दधाना पाणिपङ्कजैः। नवरत्नपरिक्षिप्तकिरीटप्रांशुमण्डिता॥ ५॥
तारुण्यपूर्णलावण्यवरेण्याऽऽकारमास्थिता। देवाधिदेवनिकरस्तुता त्रिपुरसुन्दरी॥ ६॥
तां दृष्ट्वा दण्डवत् कामो ननाम पदसन्निधौ। नतस्य तस्य मूर्ध्न्यम्बा करपद्मं न्यधारयत्॥ ७॥
स्पृष्टः कराऽम्बुजेनैषः कृतार्थं स्वममन्यत। आनन्दाऽश्रुपरीताऽक्षः पुलकाऽङ्कुरुहैः श्रितः॥
उत्थितो देवता वीक्ष्याऽऽनन्दभाराऽतिमन्थरः। तुष्टाव गद्गदरवः तत्प्रीत्याऽपगतस्मृतिः॥
तं तथाभूतमालोक्य प्रसन्ना परमेश्वरी। विदित्वैतत् समायाता तत्र पद्मा हरिप्रिया॥ १०॥
नत्वा स्तुत्वा प्राह परां त्रिपुरां परमेश्वरीम्। मातस्ते भक्तमूर्धन्यः कामो मे प्रीतिवर्धनः॥ ११॥
गौरीशापभराक्रान्तो नाऽतो भवितुमर्हति। नैवमेतत् समुचितं यत्त्वज्जनपराभवः॥ १२॥
एनं विना कथं लोकव्यवहारः सुनिर्वहेत्। प्रवृत्तिर्न स्थितेर्भूयात् शाधि त्वं पादसन्नतम्॥ १३॥

*** विमला ***

इसके बाद विजयी रथ पर सवार होकर मन-ही-मन कल्याणकारी परिणाम के लिए भगवती त्रिपुरा के चरणों का ध्यान करते हुए शीघ्र ही काम ने प्रस्थान किया॥ १॥ रास्ते में सुन्दर गङ्गा नदी का तट पाकर उसमें स्नान कर अन्तर्मन को नियन्त्रित कर उस भगवती त्रिपुरा की उपासना में बैठ गया॥ २॥ उसने अपनी सारी इन्द्रियों को नियन्त्रित कर त्रिपुरा के चरणों में समाहित कर उन्हीं चरणों को अपना निश्चल आधार बनाकर उनकी तन्मयता प्राप्त कर ली॥ ३॥ तब परमेश्वरी त्रिपुरा लाल वर्ण, उचित ललायी लिये, सिर पर चन्द्रमा विराजित एवं त्रिनेत्रा काम के निकटस्थ हुई॥ ४॥ हाथों में पाश, अंकुश और धनुर्बाण लिये, माथे पर नवरत्न की ज्योति से जगमगाते मुकुट धारण किये॥ ५॥ जवानी के उत्कृष्ट सौन्दर्य से दमकते शरीर वाली, देवाधिदेव-समूहों से संस्तुत भगवती त्रिपुरसुन्दरी काम के सामने उपस्थित हुई॥ ६॥ उन्हें सामने देखकर काम ने उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। चरणों पर गिरे काम के सिर पर भगवती ने अपना कर-कमल रख दिया॥ ७॥ भगवती के करकमल के स्पर्श से काम ने अपने को धन्य माना। आँखों से खुशी के आँसू छलक पड़ें तथा प्रसन्नता से रोंगटे खड़े हो गये॥ ८॥ उदित देवता को सामने देखकर आनन्द के भार से अतिशिथिल बने, अपनी स्मृति खोये गद्गद स्वर से उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ९॥ काम को इस स्थिति में देखकर परमेश्वरी परम प्रसन्न हुई और इन सारी बातों से अवगत होकर श्रीहरिप्रिया लक्ष्मी भी वहाँ आ गई॥ १०॥ लक्ष्मी ने परमेश्वरी परादेवी त्रिपुरा को प्रणाम कर और उनकी स्तुति कर उनसे कहा—हे मातः! मेरा यह प्यारा बेटा काम आपका उत्कृष्ट भक्त है॥ ११॥ गौरी के शाप से आक्रान्त अब यह इस दुनिया में नहीं रहेगा और आपके भक्त का इस तरह पराजय भी उचित नहीं लगता॥ १२॥ इसके बिना लोक-व्यवहार कैसे

श्रुत्वा रमोक्तं त्रिपुरा प्राह गम्भीरया गिरा। पद्मे शृणु न मे भक्तो नाशमर्हति कुत्रचित्॥ १४॥
तावत् स्थातुमदीक्षायां यावद्देहपुनर्भवः। गौरीशापेन देहोऽयं भस्मीभवतु शङ्करात्॥ १५॥
पुनः कालेन देहं स्वं नवं प्राप्याऽतिसुन्दरम्। नन्दयिष्यत्येष रतिं त्वाञ्च नाऽस्त्यत्र संशयः॥ १६॥
इत्युक्त्वा मन्मथं वीक्ष्य दृशि स्वस्यां समाहरत्। ततः सा त्रिपुरा लोके कामाक्षीत्यभिविश्रुता॥
विलीनो मदनस्तस्याः सुषुप्त इव सम्बभौ। अथाऽपतत् कामदेहस्तयोः सम्मुखतो भुवि॥ १८॥
पतितस्य तस्य रोमकूपेभ्यस्तादृशास्ततः। विनिर्ययुः कोटिकोटिसंख्याः कामाः समन्ततः॥
तान् समादिश्य लोकेषु प्राणिनां कामनाविधौ। उत्थापयत्तच्छरीरं महामाया स्वमायया॥ २०॥
स उत्तस्थौ कामदेहः सुप्तो मर्त्य इव द्रुतम्। तमाह्वयत् काम इति सा परा जगदीश्वरी॥ २१॥
मायामयान् पुष्पबाणानिक्षुचापञ्च तादृशम्। जहि शीघ्रं महादेवं तपस्यन्तं त्वमित्यदात्॥ २२॥
अथ कामो रथाऽऽरूढः पुष्पबाणेक्षुकार्मुकः। जगाम तत्र श्रीकण्ठो यत्र शम्भुस्तपोमयः॥ २३॥
अनुवव्राज देवेशः कामं स्वार्थस्य सिद्धये। तपस्यत्येष देवेश इत्यालक्ष्य दिवस्पतिः॥ २४॥
देवैः परिवृतो दूरे पश्यंस्तद्विजयं स्थितः। अथ कामः समालक्ष्य तपस्यन्तं त्रिलोचनम्॥ २५॥
ताडयत् पुष्पबाणेन हृदि सन्धाय कार्मुके। अथ देवः समाधिस्थः स्वभावं लक्ष्य चञ्चलम्॥ २६॥
किमिदञ्चेति चोन्मील्य नेत्रेऽपश्यदगात्मजाम्। विकृतिं स्वात्मनो ज्ञात्वा क्रुद्धश्चन्द्रार्धशेखरः॥
पार्श्वेऽपश्यदात्तचापं पुष्पबाणकरं तदा। क्रोधेन दृष्टमात्रोऽथ नेत्राऽग्निज्वालयाऽऽप्लुतः॥

चलेगा? सांसारिक प्रवृत्ति कैसे टिकेगी? इसलिए अपने शरणागत की रक्षा करें॥ १३॥ लक्ष्मी की यह बात सुनकर त्रिपुरा ने बड़ी गम्भीर वाणी में कहा—हे महालक्ष्मी! याद रखो, मेरे भक्तों का कभी भी विनाश नहीं होता॥ १४॥ तब तक यह दीक्षित रूप में ही मेरे पास रहेगा, जब तक कि फिर इसकी दूसरी देह न हो जाय। इसकी इस देह को गौरी के शाप से शंकर के द्वारा जलकर राख होने दो॥ १५॥ फिर यथावसर अतिसुन्दर अपनी नई देह पाकर तुम्हें और रति को प्रसन्न करेगा, इसमें सन्देह मत करो॥ १६॥ यह कहकर काम को देखकर अपनी आँखें उधर से हटा लीं। उसी दिन से संसार में त्रिपुरा कामाक्षी कहलायी॥ १७॥ भगवती की आँखों में मदन विलीन हो गया, जैसे कोई गाढ़ी नींद में सो रहा हो। इसके बाद लक्ष्मी और त्रिपुरा के सामने ही काम की एक दूसरी देह आ गिरी॥ १८॥ उस गिरी देह के रोमकूप से वैसे ही करोड़ों-करोड़ों संख्या में चारों ओर काम निकल कर फैल गये॥ १९॥ उन्हें तीनों लोक में प्राणियों की कामना के रूप में जाने का आदेश देकर उस महामाया ने अपनी माया से उस गिरी देह को उठाकर खड़ा कर दिया॥ २०॥ सोया हुआ मनुष्य जैसे जगकर उठा हो उसी तरह काम की वह देह उठ खड़ी हुई। उस परा जगदीश्वरी ने उसे 'काम' कहकर पुकारा॥ २१॥ मायामय उस काम के हाथों में पुष्प-बाण और धनुष वैसे ही थे। उसे भगवती त्रिपुरा ने आदेश दिया—तपस्या करते शिव को मारो॥ २२॥ काम भी रथ पर सवार होकर पुष्प-बाण और धनुष लेकर जहाँ तपोमय श्रीकण्ठ शिव थे, वहाँ चला गया॥ २३॥ देवराज इन्द्र ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उस काम का अनुसरण किया। देवेन्द्र ने दूर से ही देखा, भगवान् शिव तपस्या में लीन हैं॥ २४॥ देवताओं से घिरे इन्द्र शिव पर काम-विजय देखते हुए आकाश में खड़े थे। इधर काम ने तपस्या-निरत शिव को लक्ष्य साध कर॥ २५॥ छाती तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर पुष्पबाण से प्रहार किया। इधर समाधिस्थ भगवान् शिव स्वभावतः चंचल हो उठे॥ २६॥ यह क्या? सोचते हुए उन्होंने सामने पार्वती को देखा। पार्वती को देखते ही अपने मन में उत्पन्न विकृति को जानकर भगवान् चन्द्रशेखर अत्यन्त क्रुद्ध हुए॥ २७॥ बगल में पुष्पबाण और धनुष लिये काम को देखा, मात्र क्रोध करने

संवर्तवह्निना तूलराशिवत् क्षणमात्रतः । भस्मीभूतः शक्रमुखसुराणां तत्र पश्यताम् ॥ २९ ॥
अथ क्रोधाऽग्निना तेन दह्यमानं चराऽचरम् । ज्ञात्वा चतुर्मुखः प्राप्तः सिद्धर्षिगणसंस्तुतः ॥ ३० ॥
क्षमापयद्देवदेवं शम्भुं त्रिजगतां गुरुम् । इति ते सर्वमाख्यातं भार्गवाऽतिसुविस्तृतम् ॥ ३१ ॥
गौर्याः पर्वतराजेन सम्भवादिकमुत्तमम् । कामस्य भस्मीभावश्चाऽप्यतीतं सुमहाऽद्भुतम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
कामोपाख्यानं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ २९३७ ॥



से उनकी आँख से निकली ज्वाला में वह डूब गया॥ २८॥ संवर्त नाम की उस आग से रुई की ढेर की तरह काम जलकर राख हो गया और इन्द्रादि देवगण आकाश में देखते ही रह गये॥ २९॥ उधर क्रोध की आग से जलते चर-अचर जीवों को जानकर सिद्ध और ऋषिगणों के साथ ब्रह्मा वहाँ पहुँचकर शिव की स्तुति करने लगे॥ ३०॥ तीनों लोक के गुरु देवाधिदेव शंकर ने उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर सबको क्षमा कर दिया। गुरु दत्तात्रेय ने परशुराम से कहा—मैंने विस्तार से तुम्हें सारी कहानी सुना दी॥ ३१॥ पर्वतराज के घर गौरी कैसे उत्पन्न हुई और काम जलकर राख कैसे हुआ? अतीत की यह अद्भुत कथा मैंने तुम्हें सुना दी॥ ३२॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में काम-
उपाख्यान नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २९३७॥



अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भगवन्नद्भुततमं श्रुतमेतन्मनोहरम् । गौर्याविर्भावमहिमा कामभस्मत्वमेव च॥ १ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवगौरीसमागमात् । यथा कुमार उत्पन्नः कथं दैत्यान् स चाऽजयत्॥
कथं सा त्रिपुरेशान्या नेत्रे लीनोऽपि मन्मथः । उत्पन्नो रतिशोकान्तः पद्माहृदयनन्दनः॥ ३ ॥
ब्रूहि मह्यं प्रपन्नाय शिष्याय कृपया गुरो । कस्तृप्येत्तव वक्त्रेन्दुपीयूषप्रस्रवाऽऽत्मकम्॥ ४ ॥
श्रीमातुर्जनतापौघहरं शुभकथाऽभिधम् । पिबन् रसायनं लोके मूढोऽपि स्थावरादृते॥ ५ ॥
वदैतन्मे पुरावृत्तं याचते प्रणताय मे । एवं पृष्टो जामदग्न्यरामेणाऽत्रिसुतो गुरुः॥ ६ ॥
शृणु रामेति चाऽऽमन्त्र्य प्रवक्तुमुपचक्रमे । एवं भस्मत्वमानीते कामे सुरपतिर्वृषा॥ ७ ॥
दुःखितोऽभूदभिमताऽलाभेनाऽत्यन्ततस्तदा । ब्रह्माणं प्रार्थयामास स्वाभिप्रेतस्य सिद्धये॥
ततो विधाता कामारिं स्तुत्वा संशाम्य मन्युतः । इन्द्रादिभिः परिवृतो भूयस्तुष्टाव शङ्करम्॥
गुह्यैः प्रसिद्धैश्चरितैः स्तुतो देवस्त्रिलोचनः । सन्तुष्टः प्राह देवेन्द्रादीन् विधातृमुखांस्तदा॥ १० ॥
भो विधातृमुखा देवा यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् । तद्ब्रूत मा चिरं वस्तत् प्रदिशामि न संशयः॥
श्रुत्वेत्थं शङ्करवचः प्राह वेधाः प्रजापतिः । त्रिलोचनेमे देवाद्यास्तारकेण सुराऽरिणा॥ १२॥
क्लेशिता निर्जिताः सर्वे विना स्वाऽनीकनायकम् । तत्त्वं सङ्गच्छ पार्वत्या भविता ते ततः सुत॥

*** विमला ***

हे भगवन्! आपसे यह मनोहर विस्मयोत्पादक कथा मैंने सुनी। गौरी के आविर्भाव की महिमा और काम का भस्मत्व॥ १॥ अब मैं शिव-गौरी का समागम सुनना चाहता हूँ, साथ ही कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति और दानवों की पराजय भी॥ २॥ यह भी बतायें कि जब भगवती त्रिपुरा ने काम को अपनी आँखों में विलीन कर लिया तो फिर वह रति के शोक को विनष्ट करने के लिए एवं पद्मा के हृदय को उल्लसित करने के लिए कैसे उत्पन्न हुआ?॥ ३॥ हे गुरुदेव! मुझ शरणागत शिष्य के लिए कृपा कर यह बतलायें। भला आपके मुखचन्द्र से निकले कथा-अमृत को सुनकर कौन सन्तृप्त होगा?॥ ४॥ माता गौरी की यह शुभ कथा लोगों के पापसमूह को मिटाने वाली है। इस कथारस को पीते हुए स्थावर को छोड़कर मूढ़ व्यक्ति भी तर जाते हैं॥ ५॥ यह पुरानी कथा मुझ प्रणत को आप बतलायें, यही मेरी याचना है। परशुराम के ऐसा पूछने पर अत्रिपुत्र दत्तात्रेय गुरु—॥ ६॥ 'सुनो राम' यह कहकर प्रवचन देने लगे। इस तरह काम के जल कर राख हो जाने के बाद॥ ७॥ अपना अभिमत सिद्ध न होते देख देवराज इन्द्र अत्यन्त दुःखी हुए तथा अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए ब्रह्मा से उन्होंने प्रार्थना की॥ ८॥ उसके बाद विधाता ने शिव की स्तुति कर, उनके क्रोध को शान्त कर, इन्द्रादि देवताओं के साथ मिलकर पुनः शिव को सन्तुष्ट किया॥ ९॥ प्रसिद्ध चरित गुह्यों से संस्तुत त्रिलोचन महादेव ने सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा एवं इन्द्रादि देवताओं से कहा॥ १०॥ हे विधाता! ओ देवगण! आप सब मुझसे क्या चाहते हैं? शीघ्र बतलायें, देर न करें। मैं आपको मनचाहा वर दूँगा, आप सन्देह न करें॥ ११॥ शिव की यह बात सुनकर प्रजापति ब्रह्मा ने कहा—हे त्रिलोचन! ये देवगण तारक नाम के असुर से॥ १२॥ बिना सुयोग्य सेनानायक के पीड़ित एवं पराजित हैं। अतः आप देवी पार्वती के साथ सङ्गम

स देवसेनां नीत्वा तान् विजेष्यति न संशयः। नो चेदसुरसन्तप्तं भस्मीभूतं जगद्भवेत्॥ १४॥
श्रुत्वा विधातृप्रमुखप्रार्थितं चन्द्रशेखरः। अङ्गीचकार तद्दृष्ट्वा नियत्या नियतं तदा॥ १५॥
अथ पर्वतराजन्यकन्यया सङ्गतिं ययौ। पार्वत्या सङ्गतस्यैवं सहस्रं वत्सरा ययुः॥ १६॥
अथ देवान् विधिः प्राह शक्रादीन् सम्मुखस्थितान्। शृणुध्वं मे सुरा वाक्यं पार्वत्या सङ्गतः शिवः॥
अद्याऽपि नो मुञ्चति स्वं वीर्यं वर्षसहस्रतः। तपसा चिरकालेन सम्भृतं तन्निबोधत॥ १८॥
समग्रं यदि मुञ्चेत् स सत्त्वं जातं ततो भुवि। भस्मीकुर्यादशेषं वै महत्तेजो यतो हि तत्॥ १९॥
कारणेनाऽपि गच्छामः पुनस्तत्र शिवाऽन्तिके। इत्युक्त्वा प्रययौ धाता शक्राद्यैः परिवारितः॥
प्रार्थयामास तं देवं तत्र गत्वा सुरैः सह। विरम त्वं महादेव मैथुनाच्चिरकालिकात्॥ २१॥
साकल्पवीर्यसम्भूतं कस्ते धारयितुं क्षमः। रक्ष सर्वानिमान् लोकानन्यथा नाशमेष्यति॥ २२॥
इत्यर्थितो महादेवो विरराamाऽतिमैथुनात्। ततो देवस्य यत् क्षुब्धं वीर्यं तत् स्खलितं भुवि॥ २३॥
रसपर्वततुल्यं तद्भूमिर्धारयितुं तदा। न शक्ता तेजसा यस्य दह्यमाना विधिं ययौ॥ २४॥
ब्रह्मन्नाऽहं समर्थाऽस्मि महादेवस्य तेजसाम्। धारणे दह्यमानाऽहं रक्ष मां शरणागताम्॥ २५॥
आकर्ण्य भूमिवचनं पावकं सम्मुखस्थितम्। प्राह वह्ने धारयैतच्छिववीर्यं भुवि स्थितम्॥ २६॥
परिपाकात् कुमारः स्याद्यावत्तावन्मयेरितः। श्रुत्वा प्राह विधेर्वाक्यं वीतिहोत्रः समीहितम्॥
भगवन् धारयाम्येतद्यदि मे स सुतो भवेत्। नो चेदहं क्लेशभागी व्यर्थं स्यां तत् कथं भवेत्॥ २८॥
श्रुत्वाऽग्न्यभिमतं वेधाः प्राह तेऽस्तु समीहितम्। ततोऽग्निः पृथिवीसंस्थं हरवीर्यं समाददे॥

करें, ताकि आपको कोई पुत्र हो॥ १३॥ वही देवसेना को साथ लेकर उस पर विजय प्राप्त करेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं; अन्यथा देवता सन्तप्त होंगे और संसार जलकर राख होगा॥ १४॥ विधातृ प्रमुख देवताओं की स्तुति सुनकर चन्द्रशेखर शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। यह देखकर नियति से नियत॥ १५॥ इसके बाद भगवान् शिव ने हिमालय की पुत्री पार्वती की संगति की। उनका यह सङ्गम हजारों वर्ष तक चलता रहा॥ १६॥ तब इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा के सामने उपस्थित होकर कहा—हे देव! हम देवताओं की बात आप सुनों। पार्वती के साथ शिव का सङ्गम तो हुआ॥ १७॥ पर हजारों साल बीत जाने पर भी शिव ने अपना वीर्य स्खलित नहीं किया। चिरकालिक तप से संकेन्द्रित शिव को आप जागरित करें॥ १८॥ अगर शिव अपने सत्त्व को छोड़ देते हैं तो यह सम्पूर्ण धरती जलकर राख हो जायेगी, क्योंकि शिव का वीर्य महान् तेजस्वी है॥ १९॥ इन कारणों को हम जानते हैं, फिर भी इन्द्रादि देवताओं के साथ हम उनके पास जायेंगे। यह कहकर विधि शिव के पास पहुँचे॥ २०॥ उन्होंने देवताओं के साथ वहाँ जाकर महादेव से प्रार्थना की। हे शिवशंकर! आप इस चिरकालिक मैथुन से कुछ क्षण रुके॥ २१॥ आपके स्खलित सम्पूर्ण वीर्य को इस संसार में कौन धारण कर सकता है? इन लोकों की रक्षा करें, अन्यथा इनका नाश तो अवश्यम्भावी है॥ २२॥ ऐसी प्रार्थना सुनकर अतिमैथुन से महादेव रुके, फिर भी उनका जो वीर्य क्षुब्ध हो चुका था वह धरती पर आ गिरा॥ २३॥ उस पर्वत तुल्य महातेज को धरती धारण न कर सकी और जलती हुई विधाता के पास पहुँची॥ २४॥ हे ब्रह्मन्! महादेव के इस तेज को धारण करने में मैं बिलकुल असर्मथा हूँ। मैं जल रही हूँ, मुझ शरणागत की आप रक्षा करें॥ २५॥ धरती की यह बात सुनकर सामने उपस्थित अग्निदेव से ब्रह्मा ने कहा—हे अग्नि! धरती पर पड़े इस शिववीर्य को धारण करो॥ २६॥ जब यह वीर्य परिपक्व होगा तब कुमार की उत्पत्ति होगी। विधाता की बात सुनकर अग्नि ने कहा॥ २७॥ यदि वह मेरा बेटा होगा तो मैं उसे धारण करता हूँ, अन्यथा मुझे आप यह कष्ट क्यों दे रहे हैं?॥ २८॥ अग्नि की बात सुनकर विधाता ने कहा—हे अग्नि! तुम्हारा अभिलषित तुम्हें मिलेगा। तब धरती पर पड़े शिववीर्य को अग्नि ने उठा लिया॥ २९॥

धारयामास तद्वह्निरसह्यमपि तेजसा । नाऽशकत्तद्धारयितुं यदाऽग्निः सर्वथा तदा ॥ ३० ॥
विधातारमुपव्रज्य लज्जितः प्राह पावकः । ब्रह्मन्नाऽहं समर्थोऽस्मि धारणेऽस्य हरौजसः ॥ ३१ ॥
तद्रक्ष मां दह्यमानं मयैतत् क्व विसृज्यताम् । विचार्य विधिराहाऽग्निमेषा त्रिपथगा नदी ॥ ३२ ॥
त्यजाऽस्यां तन्महावीर्यं शाङ्करं सा वहिष्यति । श्रुत्वा विधिवचो गङ्गा प्राञ्जलिः प्राह सा विधिम् ॥
देवेश नाऽफला जातु परवीर्यं विधारये । पुत्रः सपदि मे भूयाद्धारयामि न चाऽन्यथा ॥ ३४ ॥
अस्त्वित्युक्ता विधात्रा सा दधाराऽग्निविसर्जितम् । वीर्यं शैवं ततो गङ्गा कालेनाऽल्पीयसैव सा ॥
तत्तेजसा दह्यमाना क्वथिताऽपांवहाऽभवत् । बाष्पधूमसमाक्रान्ता हतयादोगणा ततः ॥ ३६ ॥
विधातारं समभ्येत्य प्राह लज्जानताऽऽनना । ब्रह्मन्नेतद्धारयितुमुत्सहे न कथञ्चन ॥ ३७ ॥
क्वथ्यमानतोयवहा कृशीभूताऽस्मि साम्प्रतम् । विक्लिन्नो यादसां सङ्घः सरितः सागरोऽपि च ॥
नाऽनुमोदति मत्सङ्गं निस्तोया च भवाम्यहम् । तद्ब्रूहि विसृजामि क्व धातर्मयि कृपां कुरु ॥
श्रुत्वा पितामहो गङ्गावाक्यं क्षणमचिन्तयत् । ततः प्राह त्रिपथगां गङ्गे शृणु वचो मम ॥ ४० ॥
कैलासपर्वताऽधो यच्छराणां सुमहद्वनम् । तत्र वीर्यं शाङ्करं तदुत्स्रष्टुं त्वं समर्हसि ॥ ४१ ॥
श्रुत्वैवं धातृवचनं गङ्गा पप्रच्छ सादरम् । अत्याश्चर्यमिदं प्रोक्तं कथं तत्रोत्सृजाम्यहम् ॥ ४२ ॥
सर्वसहा चाऽऽश्रयाशो गङ्गा चाऽहं सरिद्वरा । न शेकुर्धारणे यस्य तच्छराणां वनं कथम् ॥ ४३ ॥
धारयेदत्र नो हेतुरल्पः स्यात् सर्वथा विधे । वदैतच्छ्रोतुमिच्छामि श्रवणाऽर्हं भवेद्यदि ॥ ४४ ॥

तेज से असह्य उस वीर्य को अग्नि ने धारण किया। जब अग्नि की धारण-शक्ति से वह तेज असह्य हो गया तब ॥ ३० ॥ विधाता के पास आकर लज्जित होकर अग्नि ने कहा—हे ब्रह्मन्! यह शिव का वीर्य धारण करने में मैं बिलकुल असमर्थ हूँ ॥ ३१ ॥ मुझ जलते हुए की रक्षा करो और शीघ्र बतलाओ कि इसे कहाँ रखूँ? कुछ विचार कर ब्रह्मा ने कहा कि इसे गंगा में डाल दो ॥ ३२ ॥ शिव का यह तेजस्वी वीर्य गंगा ही धारण कर सकती है। ब्रह्मा की बात सुनकर गंगा ने हाथ जोड़कर कहा ॥ ३३ ॥ हे देवेश! कहीं दूसरे का वीर्य मैं धारण करूँ और विफल हो जाय तो? यदि शीघ्र यह मेरा बेटा हो जाय तब तो मैं परवीर्य को धारण करूँगी अन्यथा नहीं ॥ ३४ ॥ विधाता ने कहा—वैसा ही होगा। तुम पहले अग्नि से विसर्जित शिववीर्य को धारण तो करो। शिव के वीर्य को गंगा ने धारण तो किया पर थोड़ी ही देर के बाद वह ॥ ३५ ॥ उस तेज से जलती हुई खौलते पानी वाली हो गई। बाष्प-धूम से आक्रान्त हुई तथा उससे जलजन्तु सभी मर गये ॥ ३६ ॥ उसने लजाती हुई सिर झुकाकर ब्रह्मा से कहा—हे ब्रह्मन्! इस शिववीर्य को मैं किसी स्थिति में धारण नहीं कर सकती ॥ ३७ ॥ यह कहती हुई मैं गंगा जल वहन करने वाली देखो कितनी दुबली हो गई हूँ? सारे जलजन्तु मारे गये, छोटी-छोटी मिलने वाली मेरी नदियाँ और सागर भी सूख चले ॥ ३८ ॥ मैं इसे किसी भी तरह अपने पास नहीं रख सकती, मैं सूख जाऊँगी। अतः हे विधाता! मुझ पर कृपा करो और मुझे बतलाओ—इसे मैं कहाँ छोड़ूँ? ॥ ३९ ॥ पितामह गंगा की बात सुनकर कुछ क्षण चिन्तित हुए, उसके बाद गंगा से कहा—हे गंगे! मेरी बातें सुनो ॥ ४० ॥ कैलाश पर्वत की घाटी में जो विशाल जंगल है, वहाँ तुम शंकर के वीर्य को सरकण्डे के जंगल में छोड़ सकती हो ॥ ४१ ॥ विधाता की बातें सुनकर गंगा ने सादर कहा—यह तो बड़ी ही आश्चर्य की बात आपने कही, भला मैं उस जंगल में इसे कैसे छोड़ूँ? ॥ ४२ ॥ मैं नदियों में श्रेष्ठ, सबको आश्रय देने वाली और सब कुछ सहन करने वाली हूँ और मैं जब इसे सहन नहीं कर सकी तो ये षड्पात वाले सरकण्डों का जंगल कैसे वहन कर सकता है ॥ ४३ ॥ हे विधाता! जहाँ तक मैं समझती हूँ, शिववीर्य को सरकण्डे का जंगल धारण करे—इसका कोई सामान्य कारण नहीं

पृष्टो धाता गङ्गयैवं प्राह सर्वं जगद्विधिः । शृणु गङ्गे शरवणवृत्तं यत्तत्पुरातनम् ॥ ४५ ॥
पुरा भस्मासुरकृते वियुक्ता पतिना शिवा । तदा दुःखेन महता शीर्णं तस्याः कलेवरम् ॥ ४६ ॥
पपात तत्र शोचन्त्याः शतधा च सहस्रधा । तस्या विशीर्णदेहोत्थमासीच्छरवणन्त्विदम् ॥ ४७ ॥
यस्माद्गौर्यंशभूतं तत्ततो वीर्यविधारणे । समर्थमिति सम्प्रोक्तं त्यज तत्राऽविशङ्किता ॥ ४८ ॥
श्रुत्वैवं गङ्गया वीर्यमुत्सृष्टं शरकानने । प्राप्य तद्वीर्यमचिराद्ववृधे शरकाननम् ॥ ४९ ॥
अथ कालेन तद्वीर्यं कुमारात्मकमुत्तमम् । तमपश्यद्विधिः पूर्वं ततोऽन्येऽपि समाययुः ॥ ५० ॥
ददृशुस्तत्र ते सर्वे तं कुमारं महाऽद्भुतम् । स्वर्णाभं कोटिसूर्याणां तेजसां परिभावकम् ॥ ५१ ॥
विशालनेत्रं विपुलदीर्घवक्षःकराऽम्बुजम् । कोटिकन्दर्पलावण्यसमाक्षेपाऽतिसुन्दरम् ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा वैश्वानरः प्राह मत्पुत्र इति भार्गव । अथ प्रोक्तं गङ्गयाऽपि ममाऽयं तनुजस्त्विति ॥ ५३ ॥
शिवः पर्वतजायुक्तस्तमपश्यत् कुमारकम् । मत्वाऽऽत्मजं सुसन्तुष्टौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ ५४ ॥
चक्रे विधाता नामानि कुमारस्याऽस्य हेतुतः । अग्निभूरेष गाङ्गेयः पार्वतीनन्दनोऽपि च ॥ ५५ ॥
स्कन्दवीर्यसमुद्भूतो यस्मात् स्कन्दस्ततो भवेत् । कृत्वैवं तस्य नामानि धात्री काऽस्य भविष्यति ॥
विचार्य कृत्तिकास्तत्र जगद्धाता न्ययोजयत् । पुत्रं स्वानान्तु तं कृत्वा स्तन्यं पाययितुं यदा ॥ ५७ ॥
अहम्पूर्विकयाऽन्योन्यमुपतस्थुः कुमारकम् । कुमारः कृत्तिका दृष्ट्वा स्पर्धमानाः परस्परम् ॥ ५८ ॥
युगपत् षण्मुखो भूत्वा स्तन्यं तासां पपौ द्रुतम् । तेन षण्मुखतां यातः कार्त्तिकेयत्वमप्युत ॥ ५९ ॥
पीत्वा स्तन्यं कृत्तिकानां ववृधे निमेषाऽर्धतः । पर्वतः षट्शृङ्ग इव तं दृष्ट्वा देवतादयः ॥ ६० ॥

होगा; यदि मैं इसे सुनने लायक हूँ तो मुझे सुनाइए ॥ ४४ ॥ गंगा के इस तरह पूछने पर विधाता ने कहा—हे गंगे! सरकण्डे के जंगल की पुरातनी कथा मैं सुनाता हूँ, तुम सुनो ॥ ४५ ॥ पहले भस्मासुर के कारण पार्वती पतिवियुक्त हुई। उस महान् दुःख के कारण पार्वती का शरीर टुकड़े-टुकड़े में बँट गया ॥ ४६ ॥ सोचते-सोचते पार्वती का देह शतसहस्र खण्डों में धरती पर आ गिरी। उसी से यह सरकण्डे का जंगल तैयार हुआ ॥ ४७ ॥ चूँकि गौरी के अंश से समुत्पन्न यह सरकण्डे का जंगल है, अतः मैंने इसे शिव के वीर्य को धारण करने में समर्थ बतलाया, इसमें सन्देह मत करो ॥ ४८ ॥ इस तरह इस कथा को सुनकर गंगा ने शिववीर्य को सरकण्डे के जंगल में छोड़ दिया। उस जंगल के सम्पर्क में आते ही वह शिववीर्य शीघ्र बढ़ गया ॥ ४९ ॥ यथावसर वह शिववीर्य कुमार कार्तिकेय का रूप धारण किया। सर्वप्रथम ब्रह्मा ने उस रूप को देखा, उसके बाद दूसरे देवगण ॥ ५० ॥ वहाँ उन सबों ने अति आश्चर्यजनक उस कुमार को देखा। उनकी देह सुनहली आभा से चमक रही थी, करोड़ों सूर्य के तेज से वह चमक रहा था ॥ ५१ ॥ बड़ी-बड़ी आँखें, चौड़ी छाती, कमल के समान हाथ, करोड़ों काम की तरह अतिसुन्दर आकृति उस शिशु की थी ॥ ५२ ॥ उसे देखकर सर्वप्रथम अग्निदेव ने कहा कि यह मेरा पुत्र है, फिर गंगा ने कहा—यह मेरा पुत्र है ॥ ५३ ॥ अन्त में उस कुमार को शिव और पार्वती ने देखा। उन्हें अपना पुत्र मानकर वे दोनों सन्तुष्ट हुए ॥ ५४ ॥ विधाता ने सकारण उस कुमार का नामकरण किया—अग्निभू, गांगेय और पार्वतीनन्दन भी ॥ ५५ ॥ छलकते वीर्य से उसकी उत्पत्ति हुई थी, अतः उसका नाम स्कन्द भी रख दिया गया। इतने नाम रखकर विधाता सोचने लगे—आखिर इसकी उपमाता कौन होगी? ॥ ५६ ॥ कुछ विचार कर जगत्स्रष्टा ने कृत्तिकाओं को नियोजित किया। उन्हें अपना पुत्र मानकर जब उन्हें स्तनपान कराने की बारी आई ॥ ५७ ॥ कुमार के पास पहुँच कर—'पहले मैं, पहले मैं दूध पिलाऊँगी' की आपाधापी करने लगीं। तब उन्हें परस्पर स्पर्धा करते देखकर ॥ ५८ ॥ अपना छः मुख बनाकर एक साथ सबका दूध पीने लगे और इनका नाम षण्मुख कार्तिकेय हो गया ॥ ५९ ॥ उन कृत्तिकाओं का स्तनपान

विस्मयं परमं प्राप्तास्ततः सर्वान्निशाम्य सः। स्कन्दः प्राह बलिं सर्वे मे अर्पयन्तु स्वशक्तितः॥
अथ ब्रह्माऽर्पयत्तस्मै स्वीयामक्षस्रजं तथा। शिवः शूलं शक्तिमग्निश्चक्रं विष्णुस्तथाऽङ्कुशम्॥
मारुतो वरुणः पाशं यमो दण्डं धनेश्वरः। गदां समुद्रो रत्नानां भूषणानि समन्ततः॥ ६३॥
छत्रं त्वष्टा पादुके च चामरेऽतिसुनिर्मले। ददौ पूजां सर्वदेवाश्चक्रुस्तस्य नतास्तदा॥ ६४॥
शक्रं दृष्ट्वा स्तब्धधियमनम्रं मन्युना वृतः। स्कन्दः समाह्वयद्योद्धुं धृष्टं दृष्ट्वा पुरन्दरम्॥ ६५॥
अथाऽभवन्महायुद्धं स्कन्दवासवयोस्तदा। शिवपार्षदसंयुक्तः स्कन्दः शक्रः सुरैर्वृतः॥ ६६॥
महासत्त्वं तमालक्ष्य युद्धे तेन प्रपीडितः। शक्रः पलायनपरः क्रौञ्चाऽद्यन्तरमाययौ॥ ६७॥
दृष्ट्वा पुरस्थितं क्रौञ्चगिरिं परमकोपनः। शरैर्विदारयामास पर्वतं सर्वतो दिशम्॥ ६८॥
अथ स्कन्दशरैर्नुन्नः क्रौञ्चः शिथिलबन्धनः। भग्नाऽसंख्यातशिखरो ब्रह्माणं शरणं ययौ॥ ६९॥
ब्रह्मणा संस्तुत्य तदा शामितः शङ्करात्मजः। प्रपन्नमिन्द्रं सङ्गम्य हृतां त्रिभुवनश्रियम्॥ ७०॥
प्रत्यर्पयत्तेन वृतः सेनापत्यमविन्दत। देवसेनापतिर्भूत्वा शक्राद्यैरभिसंवृतः॥ ७१॥
युयोध तारकाख्येन शूरपद्माऽसुरेण च। अष्टादशाऽण्डाधिपत्यलक्ष्म्या प्रख्यातकीर्तिना॥ ७२॥
अनेकाऽसुरसङ्घानां कोटिकोटिमहाऽर्बुदैः। युतेन युद्ध्वा सुचिरं प्रदर्श्याऽऽत्मपराक्रमम्॥
जघान समरे स्कन्दः शूरपद्मञ्च तारकम्। तत्तदण्डेषु शक्रादींस्त्रैलोक्यैश्वर्यसंयुतान्॥ ७४॥
कृत्वाऽसुराणां नाशेन त्रैलोक्यज्वरनाशनः। लोकानानन्दितांश्चक्रे स्कन्दः स्वामी षडाननः॥
एवं श्रुत्वाऽवधूतेशमुखात् स्कन्दकथां शुभाम्। पप्रच्छ भार्गवो रामः पुनः कुतुकिताऽन्तरः॥

कर आधे पल में ये बहुत बढ़ गये। देवताओं ने देखा कि किसी पहाड़ की ये छः चोटियाँ हैं॥ ६०॥ उन्हें सबों ने देखा और देखकर परम विस्मित हुए। स्कन्द ने उन्हें कहा—आप सब अपनी शक्ति से अपना बल मुझे दें॥ ६१॥ ब्रह्मा ने अपनी अक्षमाला दी, शिव ने त्रिशूल दिया, अग्नि ने अपनी शक्ति दी, विष्णु ने अपना चक्र दिया तथा॥ ६२॥ मरुतों ने अंकुश दिये। वरुण ने पाश, यम ने दण्ड एवं कुबेर ने गदा तथा समुद्र ने अनेक रत्नों के आभूषण दिये॥ ६३॥ विश्वकर्मा ने छत्र, पादुका एवं चमर दिये। सभी देवताओं ने उनकी पूजा कर उन्हें प्रणाम किया॥ ६४॥ यह सब देखकर इन्द्र स्तब्ध रह गया और क्रोध से तड़प उठा। पुरन्दर की यह धृष्टता देखकर स्कन्द ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा॥ ६५॥ उसके बाद इन्द्र और स्कन्द का घोर संग्राम हुआ। इन्द्र के साथ देवसेना थी और स्कन्द के साथ शिव के पार्षद॥ ६६॥ कुछ ही देर में स्कन्द से पीड़ित होकर इन्द्र को लगा—यह कोई महासत्त्व है, इसे जीतना सम्भव नहीं। युद्ध का मैदान छोड़कर इन्द्र क्रौंच पर्वत की कन्दरा में जा छिपा॥ ६७॥ अतिक्रुद्ध कार्तिकेय ने सामने क्रौंच पर्वत को देखा, अपने बाणों से चारों ओर प्रहार कर उस पर्वत को इन्होंने छिन्न-भिन्न कर डाला॥ ६८॥ इनके बाणों से छिन्न-भिन्न क्रौंच शिथिल हो गया, उसके अनगिनत शिखर टूटकर गिर गये। वह भागकर ब्रह्मा की शरण में पहुँचा॥ ६९॥ ब्रह्माजी ने शंकरपुत्र की स्तुति कर उन्हें शान्त किया और त्रिभुवन का श्रेय इन्द्र से अपहृत हो चुका था। वह कार्तिकेय के पास शरणागत हो गया॥ ७०॥ उनके पास सब कुछ समर्पित कर उन्हें सेनापति का पद दिया। अब ये इन्द्रादि देवताओं से पूजित होकर देवसेना का नायक होकर॥ ७१॥ तारकासुर और सूरपद्म असुर से युद्ध किया। अट्ठारहं ब्रह्माण्डों का वह अधिपति था, उसकी विख्यात कीर्ति थी॥ ७२॥ अनेक असुर-संघों, करोड़ों महायोद्धाओं के साथ आत्मपराक्रम प्रदर्शित करते हुए वह इनसे युद्ध कर रहा था॥ ७३॥ रणांगन में सूरपद्म और तारकासुर को मार गिराया, इन्द्रादि देवों को अपना-अपना ऐश्वर्य लौटा दिया॥ ७४॥ असुरों के विनाश से इन्होंने तीनों लोको को विगतज्वर किया। तीनों लोकों में खुशी की लहर दौड़ गई और ये षड़ानन

भगवन्नद्भुतमिदं श्रुतमेतत्कथाऽमृतम्। सन्देहो मे महान् जातः पृच्छामि ब्रूहि तन्मम॥ ७७॥
कथमेष महाभागः स्कन्दस्तमसुरेश्वरम्। जितवान् शिवविष्ण्विन्द्रदुर्जेयमपि संयुगे॥ ७८॥
एतन्मे वद सम्प्रश्नं श्रोतुमुत्कण्ठितोऽस्म्यहम्। अथ प्राह दत्तगुरुर्भार्गवं प्रति प्रीतितः॥ ७९॥
शृणु भार्गव यत् पृष्टं गुह्यमेतत् पुरातनम्। सनत्कुमारो भगवान् सर्वसत्त्वात्मकः शुभः॥ ८०॥
पराऽवरज्ञः सर्वस्य स्वात्मभूतः शमाश्रयः। पर्वते ऋषभाऽऽख्याने निवसत् स्वात्मनन्दनः॥
अथ तत्र लोकधाता प्राप्तो द्रष्टुं स्वमात्मजम्। दृष्ट्वा प्राप्तं स्वजनकं प्रत्युत्थायाऽऽसनादिभिः॥
सम्पूज्य प्रह्वभावेन प्राह किञ्चिन्मनोगतम्। ब्रह्मन् मे हृदये किञ्चित् प्रष्टुं विपरिवर्तते॥ ८३॥
पृच्छाम्यनुज्ञां तत् प्रष्टुमित्युक्त्वा तेन प्रेरितः। प्राह ब्रह्मन् मया पूर्वरात्रौ दृष्टं महाऽद्भुतम्॥
युद्धमासीन्महाभीममसुराणां तथाऽमरैः। तत्र सर्वे मया युद्धे निहता बलवत्तराः॥ ८५॥
असुरास्तत् कथमिदं निर्हेतुकमभूद्वद। सनत्कुमारेण पृष्टः प्राह ब्रह्मा प्रजापतिः॥ ८६॥
शृणु पुत्र पुरा विप्रस्त्वं जन्माऽन्तरगोचरः। ब्रह्मविद्याऽभ्यासपरः श्रुतवानसुरैः सह॥ ८७॥
देवानां युद्धवृत्तान्तं तत्र सङ्कल्पितं त्वया। अहं जित्वाऽसुरान् सर्वान् देवताभ्यः श्रियं पुनः॥
दास्यामीति ततो वैश्वानरोपासनतत्परः। कालधर्ममनुप्राप्तस्तेन ब्रह्मत्वमेव ते॥ ८९॥
भवितव्यं तथाऽपि त्वं खण्डोपासनकारणात्। मत्पुत्रत्वमनुप्राप्तः सा जन्मान्तरवासना॥ ९०॥
स्वप्नात्मना त्वया दृष्टा भविष्यति च तत्तथा। श्रुत्वेत्थं ब्रह्मवचनं पुनः पप्रच्छ सादरात्॥ ९१॥
भगवन् तत् कथं भाविजन्म मे नाऽस्ति सर्वथा। पराऽवरज्ञस्य कुतो भवेत्तद्ब्रूहि पृच्छते॥ ९२॥

स्कन्द इन सबके स्वामी बन गये॥ ७५॥ इस तरह स्कन्द की शुभ कथा दत्तात्रेय के मुख से सुनकर भृगुपुत्र परशुराम ने कौतूहल वश उनसे पुनः पूछा॥ ७६॥ भगवन्! मैंने इस कथामृत को सुना। इसे सुनकर मेरे मन में एक बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया है। उसके निराकरण हेतु मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। कृपया मुझे बतलायें॥ ७७॥ शिव, विष्णु और इन्द्र के लिए जो दुर्जेय था, उसे इस महाभाग स्कन्द ने कैसे जीत लिया?॥ ७८॥ मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें, इसे सुनने के लिए मैं काफी उत्कण्ठित हूँ। परशुराम को गुरु दत्तात्रेय ने प्रेमपूर्वक कहना शुरू किया॥ ७९॥ सुनो परशुराम! तुमने जो पूछा है, वह अति पुरानी एक गुप्त कथा है। भगवान् सनत्कुमार सर्वसत्त्वात्मक एवं शुभ है॥ ८०॥ सर्वोत्कृष्ट या महत्त्वहीन अथवा आगे-पीछे के जानकार, सबकी अपनी आत्मा की तरह शान्ति और धैर्य का अधिष्ठान एक आत्मज्ञानी ऋषभ नामक पर्वत पर रहते थे॥ ८१॥ वहाँ लोकविधाता ब्रह्मा अपने पुत्र सनत्कुमार को देखने आये। सनत्कुमार ने पिता को आया देख उठकर आसनादि से॥ ८२॥ प्रणत भाव से उनकी पूजा कर अपना मनोगत भाव व्यक्त किया। उन्होंने कहा—ब्रह्मन्! मेरे हृदय में कुछ जिज्ञासाएँ हैं॥ ८३॥ पूछने के लिए मैं पहले आपका आदेश पाना चाहूँगा। फिर उनका आदेश पाकर उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन्। पिछली रात मैंने एक सपना देखा है॥ ८४॥ एक भयङ्कर देवासुर संग्राम चल रहा है। इस संग्राम में मैंने महाबली असुरों को मार गिराया॥ ८५॥ इन असुरों को मैंने कैसे मार गिराया? कृपया मुझे बतलायें। सनत्कुमार के इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए ब्रह्मा ने कहा॥ ८६॥ सुनो पुत्र! पहले तुम एक ब्राह्मण के पुत्र थे, ब्रह्मविद्या के अभ्यास में तत्पर थे। तुमने सुना—असुरों के साथ॥ ८७॥ देवताओं का संग्राम चल रहा है। तुमने संकल्प लिया कि असुरों को पराजित कर मैं देवताओं को उनका ऐश्वर्य लौटा दूँगा॥ ८८॥ इसके लिए उन्होंने अग्नि की उपासना प्रारम्भ कर दी। यथासमय उन्होंने संसार से शरीर का त्याग कर ब्रह्मत्व प्राप्त किया॥ ८९॥ फिर भी भवितव्यता को किसने रोका है? खण्डोपासना के कारण ही तुम मेरे पुत्र हुए और उस जन्मान्तर की वासना के कारण ही॥ ९०॥ तुमने ऐसा स्वप्न देखा और ऐसा ही होगा भी। ब्रह्मा की बात सुनकर पुनः

अथ ब्रह्मा प्राह पुत्रं शृण्वित्यामन्त्र्य तं प्रति। स्वेच्छयैव हि ते जन्मद्वारा सर्वमिदं भवेत्॥ ९३॥
इत्युक्त्वा पूजितस्तेन ययौ स्वं भवनं विधिः। अथ कालाऽन्तरे शम्भुर्वृषाऽऽरूढः शिवायुतः॥
पश्यन् जगद्विलासं स प्राप्तस्तस्याऽऽश्रमं प्रति। ददर्श तत्र गिरिजा निषण्णं विधिनन्दनम्॥ ९५॥
प्रसन्नवदनं शान्तं सुखं सर्वाऽङ्गशीतलम्। उपलक्ष्य मुनिं तादृग्विधं पप्रच्छ शङ्करम्॥ ९६॥
महेश सर्वलोकेषु नैवं कश्चन लक्षितः। निश्चिन्तः सर्वतः शीतः कोऽयमद्भुतदर्शनः॥ ९७॥
एवं पृष्टो गिरिजया प्राह देवो वृषध्वजः। सनत्कुमारः ख्यातोऽयं ब्रह्मपुत्रः सुशान्तधीः॥ ९८॥
ब्रह्मभूतः परानन्दमग्नो नित्यसुनिर्वृतः। कृतकृत्यस्ततो नाऽस्ति क्लेशलेशोऽप्रवृत्तितः॥ ९९॥
प्रवृत्तिरेव क्लेशस्य मूलं सर्वत्र पार्वति। इति श्रुत्वा ततः प्राह गौरी शङ्करमम्बिका॥ १००॥
एवञ्चेत्तत्र गच्छावस्तेन सम्भाष्य वै ततः। व्रजावोऽन्यत्र देवेश ममाऽत्र प्रीतिरुत्तमा॥ १०१॥
पार्वतीं प्राह तत्पश्चाच्छिवस्तत्कालसम्मितम्। प्रिये शृणु न गन्तव्यमकार्ये न विना फलम्॥
अकृत्येषु तथा गच्छन् सर्वथा परिभूयते। इत्युक्ताऽपि तत्र गन्तुमौत्सुक्यं वीक्ष्य शङ्करः॥ १०३॥
जगाम तत्सन्निधानं पार्वतीसहितः शिवः। अवतीर्य वृषात्तत्र जग्मतुर्योगिराट्पुरः॥ १०४॥
ज्ञात्वाऽऽशयं न तौ तत्र प्रेक्षाश्चक्रेनभीप्सितः। पार्वतीशङ्करौ तस्य सम्मुखे चिरमास्थितौ॥
अप्रेक्षणाच्चैश्चाऽवज्ञां प्राप्य देवः पिनाकभृत्। परीक्षितुं तद्धृदयपरिपाकं महेश्वरः॥ १०६॥
क्रुद्धः प्राह विधेः सूनुमाहूय प्रतिबोध्य च। अनार्याणामिदं वृत्तं प्राप्तवानसि दुर्मते॥ १०७॥

सादर सनत्कुमार ने उनसे पूछा॥ ९१॥ हे भगवन्! जब मेरा कोई अगला जन्म होगा ही नहीं तो फिर इस अतृप्त आकांक्षा की सम्पूर्त्ति कैसे होगी? मुझ परावरज्ञ अर्थात् आगे-पीछे के जानकार का पुनर्जन्म कैसा?॥ ९२॥ तब ब्रह्मदेव ने उनसे कहा—हे बेटा! यह सब तुम्हारी इच्छा से ही घटित होगा। वह जन्म भी तुम्हारे आत्माधीन ही होगा॥ ९३॥ यह कहकर उनसे पूजित होकर ब्रह्माजी स्वभवन लौट गये। कालान्तर में भवानी के साथ वृषारूढ भगवान् शङ्कर॥ ९४॥ सांसारिक सौन्दर्य देखते हुए सनत्कुमार के आश्रम में पहुँच गये। वहाँ गिरिजा ने विधातापुत्र को बैठा देखा॥ ९५॥ प्रसन्नवदन, शान्त, सुखी एवं सर्वाङ्गशीतल जैसे मुनि को देखकर पार्वती ने शिव से पूछा॥ ९६॥ हे महेश्वर! ऐसा निश्चिन्त, सर्वाङ्गशीतल मुनि तो किसी भी लोक में दिखलायी नहीं पड़ा, आखिर यह अद्भुत दर्शन है कौन?॥ ९७॥ पार्वती का यह प्रश्न सुनकर महेश्वर ने कहा—हे देवि! यह ब्रह्माजी का अत्यन्त शान्त बुद्धि वाला पुत्र है। यह सनत्कुमार नाम से जाना जाता है॥ ९८॥ यह तो ब्रह्मस्वरूप है, परमानन्द में लीन है, अपने आप में पूर्णता का प्रतीक है; क्रियाशीलता के अभाव में इसे क्लेश का लेश भी नहीं है। यह सन्तुष्ट एवं परितृप्त है॥ ९९॥ हे पार्वति! प्रवृत्ति ही सारे दुःखों की जड़ है। यह सुनकर अम्बिका गौरी ने शिव से कहा॥ १००॥ यदि ऐसा है तो उनके पास चलकर हम लोग उनसे कुछ बातें करने के बाद ही हे शङ्कर! हम लोग कहीं अन्यत्र चलेंगे॥ १०१॥ पार्वती से तत्कालोचित बात भगवान् शिव ने कही—हे देवि! कहीं भी बिना काम के निष्प्रयोजन नहीं जाना चाहिए॥ १०२॥ बेमतलब कहीं जाकर दुःख ही तो मिलता है। यह कहने के बाद भी भवानी की परम उत्सुकता देखकर॥ १०३॥ उनके पास पार्वती के साथ शिव पहुँच गये। बैल से उतर कर उस योगीराज के आगे पहुँच गये॥ १०४॥ इन दोनों के आशय को बिना समझे इनकी ओर साकांक्ष भाव से देखा ही नहीं। उनके सामने बहुत देर तक भवानी और शङ्कर बैठे रहे॥ १०५॥ सनत्कुमार ने जब इन्हें आँख उठाकर भी नहीं देखा तब अपनी अवहेलना मानकर पिनाकी महेश्वर ने उसके हृदय की पवित्रता की परीक्षा लेनी चाही॥ १०६॥ क्रुद्ध होकर उन्होंने 'ब्रह्मपुत्र' कहकर सम्बोधित किया और प्रतिबोधित कर कहा—हे दुर्मतिय! तुमने

अवज्ञानं सतां लोके सद्यो हन्ति स्ववैभवम्। ब्रह्मपुत्रोऽसीति मया सकृत् क्षान्तस्तवाऽनयः॥
मादृशे त्वमवज्ञां नो भूयः कर्तुमिहाऽर्हसि। श्रुत्वेत्थं शम्भुवचनं प्रोवाच ब्रह्मणः सुतः॥ १०९॥
न बिभीषयितुं शक्यः शिवोऽहमकुतोभयः। भयहेतुं भक्षयित्वा स्वं स्वकीयाऽभिसम्मतौ॥
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः कृते विन्यस्य दृश्यकम्। शापानां कोटिभिर्नो मे वराणां वाऽपि कोटिभिः॥
विशेषो वाऽविशेषो वा कदाचित् कुत्रचिद्भवेत्। अशेषाणां विशेषाणामाश्रयो न ह्युपाश्रयः॥
एधस्यां पावक इव विशेषानुपशेषकः। शापे न वाऽनुग्रहे वा स्यात्तुष्टिर्येन ते भव॥ ११३॥
अशङ्कितस्तन्मयि त्वं प्रतिक्षिप सुसत्वरम्। अहो महानुग्रहोऽयं मयि ते प्रकटीकृतः॥ ११४॥
अयत्नेनैव सन्तुष्टः सन्तोष्यो बहुसाधनैः। सनत्कुमार उक्त्वैवं विरराम वचो विधेः॥ ११५॥
श्रुत्वैवं तस्य वचनं दृष्ट्वा चाऽविकृताऽऽत्मताम्। प्रसन्नः प्राह भूतेशो ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते॥
तुष्टोऽस्मि निष्ठया चाऽतिदृढया तव सुव्रत। याचस्वाऽभिमतं यत्ते दास्याम्यप्राप्यमप्युत॥
श्रुत्वा विहस्य विधिजः प्राह शम्भुमशङ्कितः। साधयस्व महादेव एष मे काङ्क्षितो वरः॥ ११८॥
मायाविनां महेशान नाऽहं वेपयितुं क्षमः। महावातैरिवाऽऽकाशो ब्रूहि ते यदि वाञ्छितम्॥
तथाऽप्यकम्प्यं मत्वा तमोमित्याह महेश्वरः। यदि दास्यसि मे कामं प्रतीच्छ मम पुत्रताम्॥
तथेत्युक्त्वा पुनः प्राह नन्वल्पं तव याचितम्। पुत्रोऽहमेव सर्वेषां तिरश्चामपि शङ्कर॥ १२१॥
किमत्र दुष्करं यत्ते पुत्रः स्यामिति शंस मे। तवैव पुत्रो भविता न पार्वत्याः कथञ्चन॥ १२२॥
त्वयैवाऽहं वृतोऽत्राऽर्थे तन्निसृष्टो वरो मया। अथ सा पार्वती देवी प्राह तं मुनिपुङ्गवम्॥ १२३॥

यह अनार्यों का आचरण किया है॥ १०७॥ संसार में सज्जनों की अवहेलना तो उसी क्षण उसके सारे वैभवों को छीन लेती है। तुम ब्रह्मा के पुत्र हो, मैंने इसलिए तुम्हें इस अनीति के लिए क्षमा कर दिया॥ १०८॥ मेरे जैसे लोगों की अवज्ञा यहाँ तुम फिर भी मत करना। शिव की ये बातें सुनकर ब्रह्मापुत्र ने कहा॥ १०९॥ हे शिव! मुझे आप डराने की कोशिश न करें, मेरे पास भय के लिए अवकाश ही कहाँ है? भयहेतु को खाकर अपने मन मुताबिक जो चाहे करें॥ ११०॥ दृश्य जगत् को अपने आप में समाहित कर संशय रहित होकर मैं यहाँ बैठा हूँ। मेरे लिए आपके करोड़ों शाप या वरदान का कोई महत्त्व नहीं है॥ १११॥ वह विशेष हो या सामान्य, कभी हो या कहीं हो; अशेष या विशेषों का मैंने आश्रय छोड़ दिया है॥ ११२॥ प्रज्वलित आग की तरह मेरे लिए यह विशेष अनुपशेषक है। आप चाहे शाप देकर सन्तुष्ट हो या कृपा कर सन्तुष्ट हो, जो आप चाहे करें॥ ११३॥ उससे मैं शंका रहित हूँ, मैं अशंकित हूँ, जो करना चाहे जल्दी करे। मुझ पर तो आपने महानुग्रह प्रकट किया है॥ ११४॥ जिन्हें बहुत साधनों से लोग प्रसन्न करते हैं, वह आप तो बिना प्रयास के ही मुझ पर सन्तुष्ट है। इतना कहकर सनत्कुमार चुप लगा गया॥ ११५॥ उस अविकृत आत्मा को देखकर तथा उसकी बातें सुनकर प्रसन्न होकर महादेव ने कहा—हे ब्रह्मपुत्र! तुम्हें मेरा प्रणाम॥ ११६॥ हे सुव्रत! तुम्हारी अतिदृढ़ निष्ठा से मैं सन्तुष्ट हूँ, अप्राप्य वरदान भी जो तुम चाहो माँग लो॥ ११७॥ यह सुनकर विधिपुत्र ने निःशक भाव से विहँस कर कहा—हे महादेव! मेरा यह अभिलषित वर आप स्वयं साधिए॥ ११८॥ हे महेश्वर! आपकी माया के बिना मैं काँप भी नहीं सकता, तूफान भला क्या आकाश को उड़ा सकता है? अतः आपकी जो वांछा हो, वह कहिए॥ ११९॥ फिर भी उसे हिलते न मानकर महेश्वर ने उसकी बात मानकर कहा—यदि मेरा मनवांछित तुम मुझे देना चाहते हो तो मेरा बेटा बनकर जन्म लो॥ १२०॥ 'ऐसा ही होगा' यह कहकर फिर उन्होंने कहा कि हे महादेव! यह याचना तो बड़ी छोटी है, मैं तो सभी पशु-पक्षियों का भी पुत्र हूँ॥ १२१॥ आपका पुत्र होने में क्या विशेषता है? यह भी मुझे बतला

ब्रह्मपुत्र प्रार्थितोऽसि मयाऽपि ननु सर्वथा। समाङ्गौ दम्पती यस्मात्तन्मे पुत्रत्वमर्हसि॥ १२४॥
अभ्यागतानां साम्येन पूजनं हि सतां व्रतम्। तत्र देवः प्राप्तवरो रिक्तोऽहं तत् कथं व्रजे॥ १२५॥
वैषम्यं न तु सद्धर्म इति आहुर्मनीषिणः। श्रुत्वेत्थं पार्वतीवाक्यं पुनराह विधातृजः॥ १२६॥
देवि ते पुत्रतां यामि प्रसिद्ध्या न ते देहजः। एतन्मम व्रतं गुह्यमयोनौ भवनं क्वचित्॥ १२७॥
इति श्रुत्वा पुनः प्राह पार्वती मुनिपुङ्गवम्। न स्त्रीणां देहसम्बन्धमृते पुत्रसुखं भवेत्॥ १२८॥
तस्माद्देहेन सम्बन्धं काङ्क्षामि तव सर्वथा। इत्युक्तः स मुनिः किञ्चिद्विमृश्योवाच शङ्करीम्॥
देवि किं मोहयस्येवं वचनैः प्राकृतैरिव। त्वं सर्वलोकजननी प्राप्तकामाऽपि सर्वथा॥ १३०॥
शृणु तथ्यं वदाम्यम्ब व्रतमेतन्ममेहितम्। तस्मात् पूर्वतनो देहो विशीर्णः पर्वताऽन्तरे॥ १३१॥
शरात्मना स्वर्णमयं वनं तत्र महेश्वरि। भवामि पूर्वदेहेन सम्बन्धात्ते सुखञ्च तत्॥ १३२॥
इत्युक्तौ प्रणतौ देवौ जग्मतुः स्वमभीप्सितम्। सनत्कुमारोऽपि मुनिर्ज्ञाननिष्ठामहित्वतः॥
ब्रह्माद्यखिलदेवानां दैत्यादीनाञ्च सर्वतः। प्राप्ताऽऽत्मभावः सर्वेषां बलेन परिबृंहितः॥ १३४॥
अजयत्तारकादींस्तानसुरान् सर्वतोऽधिकान्। एतत्तेऽभिहितं वृत्तं कुमारप्रभवाऽऽश्रयम्॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कुमार-
सम्भव नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३०७२॥

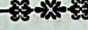


दें। अगर पुत्र बनूँगा भी तो आपका ही, देवी पार्वती का बिलकुल ही नहीं॥ १२२॥ आपने ही मुझे पुत्र के रूप में वर माँगा है, उसे मैं स्वीकार करता हूँ। तब पार्वती देवी ने उस मुनिश्रेष्ठ से कहा॥ १२३॥ हे ब्रह्मपुत्र! मैंने भी सर्वथा आपकी प्रार्थना की है, दूसरी बात पति-पत्नी तो समांग होते हैं, अतः आप मेरा भी पुत्र होंगे॥ १२४॥ समतुल्य अभ्यागतों का पूजन तो सज्जनों का व्रत है। महादेव वरदान लेकर लौटेंगे और मैं खाली हाथ लौटूँगी॥ १२५॥ मनीषियों ने इसमें विषमता उचित धर्म नहीं कहा है। पार्वती की यह बात सुनकर सनत्कुमार ने फिर कहा॥ १२६॥ हे देवि! आपके पुत्र के नाम से भी मेरी ख्याति होगी, लेकिन आपकी देह से मैं जन्म नहीं लूँगा, मैं अयोनिज ही रहूँगा॥ १२७॥ यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ से पार्वती ने फिर कहा—किसी भी नारी को देह-सम्बन्ध के बिना पुत्रसुख कैसे मिलेगा?॥ १२८॥ इसलिए पुत्र के रूप में मैं अपनी देह से सम्बन्धित ही चाहती हूँ। पार्वती की यह बात सुनकर कुछ क्षण विचार कर सनत्कुमार ने उनसे फिर कहा॥ १२९॥ हे देवि! सामान्य जनों की तरह आप क्यों मुझे मोह रही है, सर्वथा आप प्राप्तकामा होकर भी सर्वलोकजननी है॥ १३०॥ हे अम्बे! मैं तथ्य कहता हूँ, आप सुने। यह मेरा अभीप्सित व्रत है, मैंने अपनी पूर्व देह को पर्वत-कन्दराओं में विसर्जित किया था॥ १३१॥ इसलिए हे महेश्वरी! मैं सुनहले सरकण्डे के जंगल के रूप में जन्म लूँगा। आपकी पूर्वदेह से उसका सम्बन्ध भी होगा और आप सुखी भी होगी॥ १३२॥ यह कहकर दोनों प्रणतभाव से अपना अभीप्सित पाकर लौट गये। इधर सनत्कुमार भी मुनियों के ज्ञाननिष्ठा की महिमा में विलीन हो गये॥ १३३॥ ब्रह्मा प्रभृति सभी देवताओं एवं दैत्यों में इन्होंने आत्मभाव प्राप्त किया और सबके बल से अपने आपको समृद्ध कर लिया॥ १३४॥ इसके बाद सर्वाधिक तारक प्रभृति असुरों को जीत लिया। मैंने कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति की यह कथा हे परशुराम! तुम्हें सुना दी॥ १३५॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कुमार-
उत्पत्ति नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३०७२॥



अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः



श‍ृणु ते सम्प्रवक्ष्यामि भृगुवंशविभूषण । भारत्याः सत्प्रभावं वै महाश्चर्यकरं परम्॥ १ ॥
भारती या पुरा प्रोक्ता शङ्कराऽवरजा शिवा। वर्णत्रयं त्राति सूक्ष्मा सावित्री तत ईरिता॥ २ ॥
सा धातृपत्नी प्रागेव विवाहः सुनिरूपितः। कदाचित् सत्यलोके सा ब्रह्मणः सविधे स्थिता॥
सभायां सिद्धदेवर्षिसमेतायां भृगूद्वह । संस्तुता सिद्धऋषिभिर्विविधैः संस्तवैः पृथक्॥ ४ ॥
अनादरपरो धाता तत्स्तवे प्रहसन् स्थितः। दृष्ट्वा सा ब्रह्मणः स्वस्मिन्नवज्ञानं चुकोप हि॥ ५ ॥
उवाच लोकधातारं रोषाऽरुणितलोचना । न ते युक्तमवज्ञानं मयि सर्वात्मना यतः॥ ६ ॥
अपारयन् सृष्टिकृत्ये यत्नेनाऽऽसादिता त्वया। स्मर तत्प्राक्तनं वृत्तं यदा नाऽहं स्थिता तव॥
दीनः सामर्थ्यविकलः शरणं जननीं गतः। श्रुत्वा प्रोक्तन्तु सावित्र्या विधिः प्राह ज्वलन् क्रुधा॥
नैवं त्वं वक्तुमर्हा मां स्त्रीणां भर्ता हि दैवतम्। भर्तुरग्रे पूज्यभावः पत्नीनां प्रविदूषितः॥ ९ ॥
अजानती सतीवृत्तमधिक्षिपसि मां वृथा। न मे पत्नीत्वयोग्याऽसि सच्चारित्रविदूषिणी॥ १० ॥
न त्वं क्रतुविधानेषु मया सह भविष्यसि। इति शप्ता तु सावित्री पुनरत्यन्तकोपिता॥ ११ ॥
प्रतिशापं ददौ धात्रे ज्वलन्तीव सुमन्युना। यदि नाऽर्हा यज्ञविधौ भवामि श‍ृणु तर्हि ते॥ १२ ॥
भवित्र्यभीरकुलजा पत्नी यज्ञविधौ तव। प्रतिशापं निशम्याऽजः पुनः प्रकुपितोऽभवत्॥ १३ ॥

✲ विमला ✲

हे भृगुवंशविभूषण परशुराम! मैं तुम्हें भारती का परम आश्चर्यकर सत्प्रभाव सुनाता हूँ, तुम सुनो॥ १॥ पहले यह भारती भगवान् शंकर की छोटी बहन कही गई है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वैश्य की अत्यन्त सूक्ष्म रूप से रक्षा करती है, अतः यह सावित्री भी कहलाती है॥ २॥ विधाता की पत्नी के रूप में पहले ही इसका विवाह निरूपित किया गया था। एक बार सत्यलोक में यह विधाता के समीप बैठी थी॥ ३॥ सभा में सिद्ध, देव, ऋषियों के साथ भगवान् विष्णु ने भी अनेक स्तोत्रों से अलग-अलग सावित्री की स्तुति की॥ ४॥ विधाता अपना अनादर समझकर हँसते हुए चुपचाप बैठे थे। यह देखकर अपनी अवज्ञा समझ कर सावित्री ब्रह्मा पर क्रुद्ध हो गई॥ ५॥ क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गईं और उसने विधाता से कहा—मैं सर्वात्मा हूँ, इस तरह मेरी अवहेलना आपके लिए उचित नहीं है॥ ६॥ प्रयासपूर्वक भी सृष्टिकर्म करने में जब तक मैं आपके साथ न थी, तब क्या आप पार पाते थे? इस पूर्व के वृत्त को याद कीजिए॥ ७॥ दीन, सामर्थ्यहीन होकर जननी के शरणागत क्यों हुए थे? सावित्री की यह बात सुनकर क्रोध से जलते हुए विधाता ने कहा॥ ८॥ इस तरह तुम कहने की अधिकारिणी नहीं हो, क्योंकि नारियों का पति ही भगवान् होता है और पति के आगे पत्नियों का दोषरहित पूज्यभाव होना चाहिए॥ ९॥ सती नारी के स्वभाव को बिना जाने बेकार ही मुझ पर आक्षेप कर रही हो। सदोष चरित होने के कारण तुम मेरी पत्नी होने लायक नहीं हो॥ १०॥ यज्ञविधानों में तुम मेरे साथ नहीं रहोगी, ब्रह्मा ने यह शाप दिया। इस शाप से सावित्री अत्यन्त कुपित हुई॥ ११॥ विधाता पर क्रोध से जलती हुई सावित्री ने भी उलटा कर शाप दिया—यदि मैं यज्ञ में आपके साथ नहीं रहने लायक हूँ, तो कान खोलकर विधाता सुन लो॥ १२॥ तो यज्ञ-विधान में तुम्हारी पत्नी कोई

अथ देवादयः सर्वे दृष्ट्वा क्रुद्धं पितामहम्। सावित्रीमपि संक्रुद्धां तुष्टुवुः परिवारिताः॥ १४॥
तयोः क्रोधेन जगती चकम्पेऽतीव सर्वथा। ततो नारायणशिवौ तत्राऽऽजग्मतुरञ्जसा॥ १५॥
श्रुत्वा विधिश्च सावित्रीं क्षामयामासतुस्तदा। विधे नैवं समुचितं त्रिपुरायाः कलोद्भवा॥ १६॥
या तेऽपमानिता देवी सावित्री तन्न शोभनम्। शृणु देवि त्वयाऽप्येतच्छापदानमचिन्तितम्॥
न तद्योग्यं प्रतिकृतिरावाभ्यामुच्यते यथा। यज्ञाऽनर्हेति यत्प्रोक्तं धात्रा रुष्टेन यत्त्वया॥ १८॥
अभीरजा भवेत् पत्नी चेति तत्र विनिश्चितम्। त्वमेव स्वांऽशतोऽभीरकुलजा यज्ञकर्मणि॥ १९॥
उपयोक्ष्यसि नाऽनेन देहेन यज्ञभागिनी। श्रुत्वैवं विष्णुशिवयोरुक्तं धाता च भारती॥ २०॥
शेपतुः कोपशेषेण पुनस्तत्रेतरेतरम्। विधिराहाऽभीरजैषा भूयात् पत्नी सवे मम॥ २१॥
यतोऽविचारपरमा मां शशाप रुषाऽन्विता। ततोंऽशेनाऽपि सञ्जातां स्मृतिरेनां प्रहास्यति॥
श्रुत्वा शापं पुनर्दत्तं भारती चाऽतिकोपिता। विधिं प्रति शशापाऽऽशु यतस्तेन विमर्शनम्॥
ततोऽविमृश्य चाऽकाम्या कामुकस्त्वं भविष्यसि। पुनर्विसृष्टशापौ तौ दृष्ट्वा क्रुद्धौ हरीश्वरौ॥
चक्रतुः संस्तवं तत्र बहुधा प्रार्थ्य क्षामितौ। अथ कालेन महता ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २५॥
पुष्कराख्ये महातीर्थे यष्टुं व्यवसितोऽभवत्। आज्ञापयद्यज्ञशालानिर्माणे देवशिल्पिनम्॥ २६॥
स चकार यज्ञशालां सर्वतः समलङ्कृताम्। क्लृप्तसम्भारसर्वस्वां वेदीं कुण्डादिमण्डिताम्॥
नवरत्नसमाकीर्णां सर्वर्तुगुणशोभिताम्। सौवर्णभाण्डनिचयामन्नपानसमाकुलाम्॥ २८॥

शूद्रा होगी। सावित्री का उलटा शाप सुनकर ब्रह्माजी पुनः प्रकुपित हुए॥ १३॥ सभी देवगण पितामह को क्रुद्ध देखकर साथ ही सावित्री को भी संक्रुद्ध जानकर उन्हें शान्त करने लगे॥ १४॥ उन दोनों के क्रोध से संसार थर-थर काँपने लगा। तब अतिशीघ्र भगवान् शिव के साथ भगवान् विष्णु आ धमके॥ १५॥ विधाता और सावित्री को झगड़ते देखकर उन्हें शान्त करने की उन लोगों ने चेष्टा की और विधाता से कहा—त्रिपुरा के अंश से उत्पन्न सावित्री के साथ ऐसा व्यवहार उचित नहीं हुआ॥ १६॥ आपसे जो सावित्री अपमानित हुई है, यह उचित नहीं हुआ और सावित्री से भी कहा—हे देवि! सुनो, तुमने भी जो विधाता को शाप दिया वह अचिन्तित है॥ १७॥ आप दोनों के लिए यह सब उचित नहीं है। विधाता! आपने जो इन्हें रुष्ट होकर यज्ञ के योग्य न होने का शाप दिया है, यह भी उचित नहीं है। यह आपने क्रोधवश किया है॥ १८॥ हे देवि! आपने भी बिना सोचे विधाता से कहा कि आपकी पत्नी कोई शूद्रा होगी, यह भी उचित नहीं है। अतः आपको ही अपने अंश से किसी शूद्रा को विधाता के यज्ञकर्म में साथ देने के लिए उत्पन्न करना होगा॥ १९॥ इस देह से अब आप यज्ञभागिनी न हो सकेंगी। विष्णु और शिव की यह बात सुनकर दोनों ही॥ २०॥ बच-खुचे कोप से पुनः एक-दूसरे को शाप दिया। विधाता ने कहा—तू शूद्रा हो जाओ, तभी तुम मेरी पत्नी बनोगी॥ २१॥ बिना विचारे आपने क्रोध के वश में जो मुझे शाप दिया है, इसलिए भगवती के अंश से जन्म लेने के बावजूद ये बातें तुम्हें याद नहीं रहेगीं॥ २२॥ फिर दुबारा यह शाप सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध भारती ने विधि को शाप दिया॥ २३॥ बिना विचारे अकाम्या के प्रति तुम कामुक बनोगे। एक-दूसरे को क्रोधावेश में शाप देते देखकर शिव और विष्णु ने॥ २४॥ इन दोनों की अनेकविध स्तुतियाँ कर इन्हें शान्त किया। बहुत समय बीत जाने के बाद लोकपितामह ब्रह्मा ने॥ २५॥ पुष्कर नामक महातीर्थ में यज्ञ करना चाहा। उन्होंने देवशिल्पी विश्वकर्मा को यज्ञशाला बनाने का आदेश दिया॥ २६॥ विश्वकर्मा ने चारों ओर से सुसज्जित एक सुन्दर यज्ञशाला का निर्माण किया। उस यज्ञशाला में अनेक वेदियों तथा कुण्डों का निर्माण किया गया॥ २७॥ हर जगह नवरत्न से उसे सजाया गया, सब ऋतुओं के गुणों से उसे सुशोभित किया गया।

तत्र विप्रा याजकाग्र्या भृगुकश्यपकर्दमाः । वसिष्ठपुलहाऽगस्त्यपुलस्त्यक्रतुमुख्यकाः ॥ २९ ॥
आजग्मुः सर्वतः श्रेष्ठाश्चाऽन्येऽपि मुनिपुङ्गवाः । श्रौतविद्यासु कुशलाः सर्वविद्याविशारदाः ॥
वासवप्रमुखा देवा गन्धर्वाश्चाऽप्सरोगणाः । विद्याधराः किम्पुरुषाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ३१ ॥
यातुधानासुरगणा मनुष्याश्च समन्ततः । अभ्यागमन् यज्ञवाटं पुष्करे सर्वतो दिशम् ॥ ३२ ॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननन्दुश्चाप्सरोगणाः । वन्दिनो विधिमुख्यानामपठन् विविधाः स्तुतीः ॥ ३३ ॥
अथ कालेऽतिकल्याणे सुनक्षत्रग्रहैर्युते । यक्ष्यमाणः प्रियां पत्नीमाह्वयज्जगतीपतिः ॥ ३४ ॥
इन्द्रादिभिः समाहूता देवि देवश्चतुर्मुखः । यक्ष्यमाणः शुभे काले चिरात्त्वां सम्प्रतीक्षते ॥ ३५ ॥
व्रज तत्राचिरं देवि कालोऽयं वीक्षितः शुभः । नाऽतियायात् सर्वथैव प्रोक्ताऽप्येवं विधेः प्रिया ॥
अवश्यम्भाविभावेन सावित्री न समागता । विलम्बयन्ती तां ज्ञात्वा मुहूर्तः समतिक्रमेत् ॥ ३७ ॥
इति क्रुद्धो विधिर्विष्णुं प्रोवाच पुरतः स्थितम् । हरे प्रयाहि पत्नीं मे सरूपामपरां द्रुतम् ॥ ३८ ॥
समानय मुहूर्तोऽयं यथा नाऽतिव्रजेत्तथा । समादिष्टो विधात्रैवं हरिरन्विष्य भूतले ॥ ३९ ॥
ब्राह्मणादिष्वलब्ध्वा तत्सरूपां गोपकन्यकाम् । दृष्ट्वा सरूपां सावित्र्या समानयत वै हरिः ॥ ४० ॥

तामानीतां विलोक्याऽऽहुः शुभरूपगुणाऽन्विताम् ।
महान् शब्दः समभवत् साधु साध्विति सर्वतः ॥ ४१ ॥

परिणीय च तां पत्नीं यक्ष्यमाणो विधिस्तदा । सङ्कल्प्य क्रतुराजं तं प्रावर्तयत लोकपः ॥ ४२ ॥
अथाऽऽजगाम सावित्री यज्ञशालां सखीवृता । ददर्श ब्रह्मणः पार्श्वे गायत्रीं लोकसुन्दरीम् ॥ ४३ ॥
तच्छोभाऽऽक्षिप्तसौन्दर्या तारा राकेन्दुना यथा । आत्मानं जानती सम्यैर्हसितेव विलज्जिता ॥

सोने के बड़े-बड़े बर्तन रखे गये, अन्न और पेय की व्यवस्था की गई ॥ २८ ॥ वहाँ याजक में भृगु, कश्यप, कर्दम, वसिष्ठ, पुलह, अगस्त्य, पुलस्त्य जैसे याजकों को आमन्त्रित किया गया। २९ ॥ अनेक श्रेष्ठ मुनिगण, वेदविद्या में निपुण, सर्वविद्याविशारद यज्ञ में भाग लेने के लिए आ पहुँचे ॥ ३० ॥ इन्द्र-प्रमुख देवगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, विद्याधर, किम्पुरुष, किन्नर, महानाग ॥ ३१ ॥ भूत-प्रेत-पिशाच, असुरगण और मनुष्य चारों ओर से यज्ञस्थल पुष्कर क्षेत्र में आ जुटें ॥ ३२ ॥ गन्धर्वपति भी वहाँ पधारे, अप्सराएँ खुशी के मारे नाचने लगीं। बन्दीगण विधि-प्रमुखों की नाना प्रकार की स्तुतियाँ गाने लगे ॥ ३३ ॥ सुन्दर नक्षत्र और ग्रह से युक्त कल्याणकारी समय आने पर यज्ञकर्त्ता विधाता ने अपनी पत्नी सावित्री का आवाहन किया ॥ ३४ ॥ इन्द्रादि देवताओं ने सावित्री का आवाहन करते हुए कहा—हे देवि ! चतुर्मुख ब्रह्माजी यज्ञ करने वाले है, बहुत देर से वे इस शुभ काल में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ हे देवि ! आप शीघ्र वहाँ जाये, शुभकाल बीत रहा है; इसका अतिक्रमण नहीं होना चाहिए ॥ ३६ ॥ अवश्यम्भावी को कोई नहीं टाल सकता, समय पर सावित्री नहीं आई। इधर शुभ मुहूर्त बीतता जा रहा था, सावित्री के आने में विलम्ब जानकर ॥ ३७ ॥ सामने खड़े विष्णु से क्रुद्ध विधाता ने कहा—हे हरे ! मेरी पत्नी की समरूपा शीघ्र कोई दूसरी पत्नी ले आवें ॥ ३८ ॥ कहीं यह शुभ मुहूर्त बीत न जाय, इसलिए जल्दी किसी सुकन्या को ले आवें। विधाता से आदिष्ट होकर विष्णु [illegible] पर सुकन्या खोजने लगे ॥ ३९ ॥ किन्तु ब्राह्मणादि वर्णों में ऐसी कोई सुकन्या उपलब्ध नहीं हुई, तब उन्होंने एक गोपकन्या को देखा जो सावित्री की समरूपा थी। उसे विष्णु उठा लाए ॥ ४० ॥ उस शुभ रूप-गुणसमन्वित लायी गयी सुन्दरी को देखकर चारों ओर से जोर-जोर से आवाज आई—साधु-साधु ॥ ४१ ॥ यक्षमाण विधाता ने उससे विवाह कर उसे पत्नी के रूप में स्वीकार किया। फिर उन्होंने उस महान् यज्ञ का संकल्प लिया ॥ ४२ ॥ इसी बीच सखियों से घिरी सावित्री ने यज्ञशाला में प्रवेश किया और लोकसुन्दरी गायत्री को ब्रह्माजी के बगल में बैठी देखा ॥ ४३ ॥ उसका सौन्दर्य, उसकी शोभा के सामने तारे

प्रालेयदर्शनात् पद्ममिव शुष्यन्मुखाऽम्बुजा। प्रविशन्तीव स्वाऽङ्गेषु लज्जाशैलभराऽऽवृता॥
क्षणं विसंज्ञेव तत्र लेख्यकर्मगतेव सा। स्थिता स्थाणुसमाऽऽचारा ततः सर्वं निशाम्य तत्॥ ४६॥
विधेर्विचेष्टितश्चातितरां मन्युपरीवृता। प्रजज्वाल त्रिलोकीं सा कुर्वन्ती भस्मसादिव॥ ४७॥
प्राह प्रस्फुरमाणोष्ठी समाचीर्णं त्वया विधे। इत्युक्त्वा निर्ययौ तस्मात् सावित्री यज्ञदेशतः॥
संस्थिता शैलशृङ्गस्य मध्ये तस्याऽविदूरतः। अथ तस्याः क्रोधवह्निर्ज्वालामालापरीवृतः॥ ४९॥
प्रादुरासीद्यज्ञशालां सऋत्विक्ससभासदाम्। सयज्वपत्नीसम्भारां दिधक्षन्निव सर्वतः॥ ५०॥
वायुनाऽप्येधितो वह्निर्यदा दग्धुमुपाक्रमत्। तदा पलायिताः सर्वे सदस्या ऋत्विजस्तथा॥ ५१॥
देवा गन्धर्वमुनयः सिद्धचारणकिन्नराः। अविचार्यैव चाऽन्योन्यं त्यक्तसर्वपरिग्रहाः॥ ५२॥
दिशो दशाऽभिपेतुस्ते क्रोशन्तो भयकम्पिताः। भूश्चकम्पे महावायुवेपिताऽऽश्वत्थपर्णवत्॥
अन्धकारैर्दिशः क्रान्ता उद्वेलाः सर्वसागराः। राहुनेव दिवानाथस्तमसा ग्रसितोऽभवत्॥ ५४॥
पर्वताश्च विदीर्यन्त कल्पान्तसमये इव। एवम्भूतेषु लोकेषु चोद्र्ध्वाऽधोभागवर्तिषु॥ ५५॥
भीता ब्रह्मादयः सर्वे कर्तव्येष्वविनिश्चयाः। सावित्रीमनुसञ्जग्मुः प्रार्थितुं क्रमशस्तदा॥ ५६॥
आदाविन्द्रो देवगणैर्युतस्तत्र जगाम ह। सावित्रीं प्रार्थितुं यत्र शैलशृङ्गे स्थिता हि सा॥ ५७॥
तत्र गच्छनेव मार्गे तस्याः क्रोधसमुद्भवाः। शक्तयः कोटिशः क्रूरकरवालधरास्तदा॥ ५८॥
सर्वान्नाशयितुं दिक्षु निर्गतास्ताभिरेव सः। गृहीतः पाशनिर्बद्धो निक्षिप्तः शैलकन्दरे॥ ५९॥
एवं यमोऽग्निर्वरुणः कुबेरो नैर्ऋतो मरुत्। रुद्राश्च वसवो विश्वेदेवाद्या बन्धनं गताः॥ ६०॥

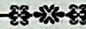
और चन्द्रमा की शोभा फीकी थी। सावित्री को लगा कि वह अपनी शोभा से उसका उपहास कर रही है और वह लजा गई॥ ४४॥ पाला देखते ही जैसे कमलिनी मुरझा जाती है, उसी तरह उसका मुख सूख गया। अपने अंग में ही समाती हुई लज्जा के पहाड़ के भार से दब-सी गई॥ ४५॥ एक क्षण वह सरस्वती बेहोश जैसी हो गई; लगता था जैसे वह कोई चित्र हो, कोई सजीव प्राणी नहीं। सब कुछ देखकर वह स्थाणु की तरह स्थिर हो गई॥ ४६॥ ब्रह्माजी के कर्म से वह अत्यन्त क्रुद्ध हुई। उसके क्रोध रूपी आग से लगता था कि वह त्रिलोक को भस्म कर डालेगी॥ ४७॥ ओठ फरकाती वाणी ने कहा—हे विधाता! तुमने जो कुछ भी किया, बहुत अच्छा किया। इतना कहकर वह सावित्री यज्ञीय क्षेत्र से बाहर निकल गई॥ ४८॥ पर्वत की चोटी के बीच में यहाँ से दूर जा बैठी। उसके क्रोधाग्नि की ज्वालामाला से घिर कर यज्ञशाला धधक उठी, ऋत्विक् जलने लगे, सभासद जलने लगे, पत्नी के यज्ञकर्त्ता धधक उठे, चारों ओर आग की ज्वाला फूट पड़ी॥ ४९-५०॥ वायु से प्रेरित आग जब धधकने लगी तो सारे सदस्य और ऋत्विक् भाग चले॥ ५१॥ सारे देवता, गन्धर्व और मुनिगण, सिद्ध, चारण एवं किन्नर बिना विचार किये हुए ही एक-दूसरे को छोड़कर सभी सेवक भी भाग चले॥ ५२॥ दसों दिशाएँ भयकम्पित हो उठीं। वायुवेग से जैसे पीपल के पत्ते हिलते हैं, उसी तरह धरती काँपने लगी॥ ५३॥ सारी दिशाएँ अन्धकाराच्छन्न हो गईं, सागर उद्वेलित हो उठा। राहु जैसे सूर्य को ग्रस लेता है उसी प्रकार सब ओर अन्धेरा छा गया॥ ५४॥ महाप्रलय की तरह पहाड़ टूटने लगे। ऐसी स्थिति में सभी लोकों में ऊपर-नीचे रहने वाले जीव॥ ५५॥ डर गये। ब्रह्मादि त्रिदेव अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर पा रहे थे। ये त्रिदेव सावित्री के पास जाकर स्तुति करने लगे॥ ५६॥ सर्वप्रथम देवताओं के साथ इन्द्र वहाँ पहुँचे। सावित्री की प्रार्थना करने हेतु ही वे उस शैलशिखर तक पहुँचे॥ ५७॥ उनके पास पहुँचने से पहले ही रास्ते में सावित्री के क्रोध से उत्पन्न करोड़ों उनकी शक्तियाँ हाथों में क्रूर तलवार लिये॥ ५८॥ उन्हीं से निकलकर चारों दिशाओं में फैल गईं। अपने हाथों में पाश लेकर इन्द्रादि

एवं बद्धेषु देवेषु शक्तिसङ्घैः समन्ततः । विष्णुर्विचारयामास शिवेन विधिसन्निधौ ॥ ६१ ॥
सावित्र्याः क्रोधदावाग्निनिर्दग्धं स्याज्जगत्त्रयम् । देवा बद्धाः सर्व एव किं कृत्वा नः शुभं भवेत् ॥
इति दीर्घं विचिन्त्याऽथ पार्वतीञ्च रमामपि । प्रेषयामास सावित्र्याः संशमाय हरिस्तदा ॥ ६३ ॥
ते गत्वा क्रोधशक्तीस्ताः सन्निवर्त्य समन्ततः । भारतीं प्राप्य मधुरवाक्यं प्रोचतुरञ्जसा ॥ ६४ ॥
ताभ्यां बहु प्रार्थिताऽपि न शान्तिमगमद्यदा । तदा विधिहरीशानां जग्मुर्यत्राऽस्ति भारती ॥
सा ददर्श विधातारं सावित्री सम्मुखाऽऽगतम् । ईषच्छान्ताऽपि च पुनः प्रजज्वाल सुमन्युना ॥
प्रज्वलन्त्याः क्रोधवशाद्रूपं तस्या महाऽद्भुतम् । भीमं समभवत्तस्या नेत्राभ्यां वह्निरुद्गतः ॥ ६७ ॥
तेन कल्पाग्निकल्पेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । समाक्रान्ता दाववह्निनेव मत्तेभयूथपाः ॥ ६८ ॥
दह्यमानांस्तु तान् दृष्ट्वा हरिकान्ता च पार्वती । तुष्टाव त्रिपुरामाद्यां नाऽन्यस्त्रातेति निश्चयात् ॥
अथ स्तुता महादेवी तत्राऽऽविरभवत् परा । कामकोट्यधिलावण्यसन्दोहाऽऽनन्दसुन्दरी ॥
रत्नचित्राऽम्बरा कल्पधरां मुकुटशोभिनीम् । चतुर्भुजाऽऽत्तसहजाऽऽयुधसम्बन्धुबन्धुराम् ॥
दृष्ट्वा प्रणमनं चक्रुर्गौर्याद्या भक्तिनिर्भराः । तस्याः सन्निधिमात्रेण तमोराशिरिवाऽरुणे ॥ ७२ ॥
विलयं प्रोदितेऽगच्छत् क्रोधाग्निः सर्वतः स्थितः । अथ तां भारतीं प्राह त्रिपुरा हसिताऽऽनना ॥
अलं वत्सेति क्रोधेन लोकनाशनहेतुना । उपसंहर शक्तीस्ता यास्ते क्रोधसमुद्भवाः ॥ ७४ ॥
भवन्तु विज्वरा लोकाः पश्येमान् शान्तया दृशा । इत्युक्ता भारती देव्या लज्जिता क्रोधसम्भवा ॥

देवताओं को बाँधकर पर्वतकन्दरा में कैद कर दिया ॥ ५९ ॥ इस तरह यम, अग्नि, वरुण, कुबेर, नैर्ऋत, मरुत, एकादश रुद्र, आठों वसु तथा विश्वेदेवादि को बाँधकर कैदी बना लिया गया ॥ ६० ॥ इस तरह उन शक्तिसमूहों ने चारों ओर से जब देवताओं को घेर कर बन्दी बना लिया, तब भगवान् विष्णु ने शिव के साथ ब्रह्मा के पास जाकर विचार-विमर्श किया ॥ ६१ ॥ सावित्री के क्रोध रूपी दावाग्नि में तीनों लोक जल रहे हैं, सभी देवता बन्दी बना लिये गये, अब क्या करने से हमारा कल्याण होगा ॥ ६२ ॥ इस तरह बहुत देर तक विचार कर श्रीहरि विष्णु ने लक्ष्मी और पार्वती को सावित्री का क्रोध शान्त करने के लिए उनके पास भेजा ॥ ६३ ॥ भारती को उन क्रोधशक्तियों ने चारों ओर से लौटकर उनके पास पहुँचकर मधुर वाक्यों में उन्हें निवेदित किया ॥ ६४ ॥ लक्ष्मी और पार्वती के द्वारा अनेकों प्रार्थना करने के बाद भी जब वह शान्त नहीं हुई तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश वहाँ पहुँचे जहाँ भारती थी ॥ ६५ ॥ अपने सामने ब्रह्माजी को पाकर सावित्री जो थोड़ा शान्त हुई थी, फिर क्रोध से धधक उठी ॥ ६६ ॥ क्रोध के मारे जलती हुई उसका रूप बड़ा विचित्र हो गया। उनकी आँखों से एक भीमकाय शक्ति बाहर निकल गई ॥ ६७ ॥ वह भीमकाय शक्ति महाप्रलयकालिक अग्नि की तरह मदमत्त गजराज की तरह, जंगली आग की तरह ब्रह्मा, विष्णु और महेश को आक्रान्त करने लगी ॥ ६८ ॥ उन्हें जलते देखकर लक्ष्मी और पार्वती दूसरा कोई उपाय न जानकर भगवती त्रिपुरा की प्रार्थना करने लगीं ॥ ६९ ॥ लक्ष्मी और पार्वती की प्रार्थना सुनकर वहाँ ही भगवती त्रिपुरा प्रादुर्भूत हुई। उनकी देह से करोड़ों काम का सौन्दर्य फूट रहा था। वह अत्यन्त आनन्दमय सुन्दरी थी ॥ ७० ॥ रत्नजटित उनके वस्त्र थे और कल्पधर सिर पर मुकुट शोभ रहा था और उनके चारों हाथों में सहज-सुन्दर आयुध सुशोभित थे ॥ ७१ ॥ उन्हें देखकर भक्तिनिर्भर मन से लक्ष्मी और गौरी ने प्रणाम किया। उनके सामीप्य मात्र से ही अरुणोदय से जैसे अन्धकार ॥ ७२ ॥ विलीन हो जाता है, उसी तरह सब ओर क्रोध की जलती ज्वाला शान्त हो गई और मुस्कराती त्रिपुरा ने उस भारती से कहा ॥ ७३ ॥ हे वत्से! लोक-विनाश के हेतुस्वरूप यह क्रोध बेकार है। ये शक्तियाँ जो तुम्हारे क्रोध से उत्पन्न हुयी हैं, उन्हें समाप्त करो ॥ ७४ ॥ देखो इस

विलापिताः स्वके देहे शान्तिं प्राप्ता च भारती। अथ तां त्रिपुरां देवीं सावित्री प्रणता सती ॥ ७६ ॥
विविधैः संस्तवैश्चित्रैस्तुष्टाव परभक्तितः। क्षमस्व मेऽनयाद्देवि त्रिपुरे क्रोधसम्भवात् ॥ ७७ ॥
स्थिताऽस्मि शासने मातस्तव शाधि स्वकिङ्करीम्। अथ श्रीमातृकरुणाऽऽलोकतः सहसोत्थिताः ॥
धातृविष्णुशिवास्तद्वन्मुक्ता देवाश्च बन्धतः। सावित्रीं पुनरप्याह शान्तिं वत्से समाप्नुहि ॥ ७९ ॥
प्रवर्तयतु भूतेशो यज्ञं भूयस्त्वया युतः। इति श्रुत्वा वचो देव्याः सावित्री प्रणता सती ॥ ८० ॥
बद्धाऽञ्जलिपुटा प्राह मातर्नाऽहं स्वयम्भुवा। इच्छामि सङ्गतिं भूयः स्थास्याम्यत्रैव सर्वदा ॥
तव पादाऽम्बुजध्यानपरमाऽऽनन्दसम्प्लुता। नाऽत्र मामम्ब भूयस्त्वं सन्निरोद्धुं समर्हसि ॥ ८२ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भारत्युपाख्यानं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१५४ ॥



शान्त दृष्टि को, लोक को ज्वररहित करो। इतना कहने के बाद देवी भारती काफी लज्जित हुई ॥ ७५ ॥ विलाप करती हुई भारती ने अपनी देह में शान्ति प्राप्ति की। उस त्रिपुरा देवी को सती सावित्री ने प्रणाम किया ॥ ७६ ॥ अनेक चित्र-विचित्र स्तुतियों से परम भक्ति के साथ उन्हें सन्तुष्ट किया और कहा—हे देवि त्रिपुरा! इस क्रोधावेश में मैंने जो अन्याय किया है उसके लिए मुझे क्षमा कर दें ॥ ७७ ॥ हे माँ! मैं आपके शासन में हूँ, मुझ दासी को शरण दें। श्रीमाता त्रिपुरा की करुणापूर्ण दृष्टि से वह अचानक उठ खड़ी हुई ॥ ७८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव को देवताओं के साथ सावित्री के बन्धन से मुक्त कर दिया। फिर सावित्री से कहा—वत्से! शान्त हो जाओ ॥ ७९ ॥ ब्रह्मा पुनः तुम्हें अपने साथ लेकर यज्ञ करे। देवी की यह बात सुनकर प्रणता सती सावित्री ने ॥ ८० ॥ अंजलि बाँधकर कहा—हे माँ! अब मैं ब्रह्मा के साथ नहीं रहना चाहती हूँ, मैं अब सब दिन यहाँ ही रहूँगी ॥ ८१ ॥ तुम्हारे चरणों में ध्यान लगाकर परम आनन्द में मग्न रहूँगी। हे मातः! मुझे आप इस काम में न रोकें ॥ ८२ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में भारती-उपाख्यान नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३१५४ ॥



अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

ततः प्राह विधिर्देवीं स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः। महेश्वरि तवाऽऽज्ञायां स्थितोऽस्मि निखिलात्मना॥
तवाज्ञामन्तरा लोके कः समर्थो विचेष्टितुम्। विज्ञापयामि किञ्चित्त्वां मातस्तत् कृपया शृणु।
सावित्री यदि न शान्ता भविष्यति तदा कथम्। भवेत् क्रतुर्मम शिवे लोकं वा नीरुजं तथा॥ ३॥
पुराऽनया महादेव्या शप्तः क्रोधेन हेतुना। अकाम्यां कामयेत्येवमथैषा यज्ञकर्मणि॥ ४॥
पत्नीत्वेन कृता या सा हीनजातिसमुद्भवा। तत्रर्षिवर्यैर्ब्रह्मेष्टैर्वाच्यो जातोऽस्मि तत्कथम्॥ ५॥
प्रसीद श्रीमहाराज्ञि सर्वमेतत् समं कुरु। प्रार्थिता लोकधात्रैवं श्रीपरा त्रिपुरेश्वरी॥ ६॥
प्राह देवा मद्वचनं देव्यः शृणुत सादरम्। येयं विधातुर्यज्ञस्य पत्नी सर्वमनोहरा॥ ७॥

तस्योत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि महाविभवविस्तराम्।
कश्चित्पुरा ब्राह्मणाऽग्र्यः कौशिको लोकविश्रुताः॥ ८॥

तपसा विद्यया चैव हर्यक्षाऽऽख्यो महाशयः। तपस्तेपे सुपार्श्वाख्यपर्वते लोकपूजिते॥ ९॥
अत्युग्रतपसा देवीं सावित्रीं समतोषयत्। प्रसन्ना तस्य सावित्री तद्दर्शनपथं गता॥ १०॥
ब्रूहि ब्राह्मण तुष्टाऽस्मि तपसा महता तव। ईप्सितं ते साधयामि नाऽदेयं तव विद्यते॥ ११॥
किमिन्द्रत्वमुतेन्दुत्वं धनेशत्वं त्वमिच्छसि। तपसा ते जितं सर्वं प्राजापत्याऽऽचरस्थितम्॥ १२॥
सावित्र्या वचनं श्रुत्वा हर्यक्षः पुनराह यत्। तच्छृणुध्वं विधात्राद्याः प्रणम्य सुकृताञ्जलिः॥ १३॥

*** विमला ***

उसके बाद विधाता ने त्रिपुरा देवी की स्तुति कर बार-बार प्रणाम कर कहा—हे देवि! सबकी आत्मस्वरूपा आप हैं। आपकी आज्ञा में ही मैं टिका हूँ॥ १॥ तुम्हारे आदेश के बिना ससार में कोई हिल भी नहीं सकता है। आपके चरणों में मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, कृपया इसे सुना जाय॥ २॥ हे पराशिवे! सावित्री यदि शान्त अब भी नहीं होती है तो फिर मेरा यज्ञ कैसे होगा? और यदि यज्ञ न हुआ तो लोग स्वस्थ कैसे रहेंगे॥ ३॥ पहले इस महादेवी ने क्रोधवश श्राप दिया, जिसके कारण मुझे यज्ञ में अकाम्या की कामना करनी पड़ी॥ ४॥ हीनजाति की कन्या को पत्नीत्वेन मुझे वरण करना पड़ा। ऋषि-मुनिगण मेरे इस कार्य की निन्दा करेंगे॥ ५॥ हे महारानी! आप प्रसन्न हों, इन समस्याओं का समाधान करें। इस तरह त्रिपुरेश्वरी की विधाता ने प्रार्थना की॥ ६॥ हे देवगण! मेरी बातें आप सब ध्यान से सुनें। यह जो विधाता की सुन्दर यज्ञपत्नी बनी॥ ७॥ उसकी उत्पत्ति के बारे में मैं विस्तार-पूर्वक बतलाती हूँ। पहले कोई लोकविख्यात अग्निसेवी ब्राह्मण था॥ ८॥ अपनी तपस्या और विद्या से महाशय बना एक हर्यक्ष नाम का ब्राह्मण था। वह लोकपूजित ब्राह्मण सुपार्श्व नामक पहाड़ पर तप करता था॥ ९॥ अपनी उग्र तपस्या से उसने देवी सावित्री को प्रसन्न कर लिया। उस पर प्रसन्न होकर देवी सावित्री ने उसे दर्शन दिये॥ १०॥ हे ब्राह्मण! तुमने अपनी कठोर तपस्या से मुझे प्रसन्न कर लिया है। मैं तुम्हें मुँहमाँगा वर दूँगी। तुम्हारे लिए मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं हैं॥ ११॥ क्या तुम देवराज का पद चाहते हो या चन्द्रत्व अथवा कुबेर का पद चाहते हो? बोलो। प्रजापति के आचार में स्थित होकर तपोबल से तुमने सब कुछ जीत लिया है॥ १२॥ सावित्री की बात सुनकर हर्यक्ष ने फिर कहा—

देवि नाऽहं वृणेन्द्रत्वं चन्द्रत्वं वा धनेशताम्। पुराऽहं स्वाश्रमे स्थाने कदाचित्तपसि स्थितः॥
काचिद्गोपवधूस्तत्र चारयन्ती गवाङ्गणम्। मदक्षिपथमापन्ना तस्याः सौन्दर्यविभ्रमात्॥ १५॥
मोहितस्तामन्वगममनङ्गशरपीडितः। प्रार्थिता सा मया भूयो नाऽभ्यमन्यत मद्वचः॥ १६॥
तदा बलात्परामृष्टा क्रोशन्ती गोपकन्यका। समानीयाऽऽश्रमवरे स्वाङ्गैराक्रम्य तां बलात्॥
द्वन्द्वधर्ममनुप्राप्तो मन्मथेन प्रपीडितः। अथ तत्राऽभ्याजगाम नारदो मुनिपुङ्गवः॥ १८॥
निशाम्य तां गोपवधूं मयाऽऽक्रान्तां बलीयसा। क्रोशन्तीं मुञ्च मुञ्चेति प्राह मां प्रति रोषितः॥
अहं कामेन मूढात्मा नामुञ्चं मैथुने रतः। तदा क्रुद्धो नारदो मां शशाप शृण्वतो मम॥ २०॥
ब्राह्मणाऽधम दुर्बुद्धे नैषा काम्या तु कामिनि। यतः कामविमूढात्मा बलादेनां समाविशः॥
नीचेन कर्मणाऽनेन नीचत्वं प्राप्स्यसि द्रुतम्। यतो गोपवधूसक्तस्ततो गोपः भविष्यसि॥ २२॥
ततोऽहं शापभयतः शापान्तं नारदं प्रति। जिज्ञासुर्बहुधा नत्वा समपृच्छं पुनः पुनः॥ २३॥
नोवाच क्रोधवशतस्ततः सम्प्रार्थितो दृढम्। सावित्री शापतस्त्वां वै मोचयिष्यति तोषिता॥
उपतिष्ठ महादेवीमित्युक्त्वाऽन्तर्हितो बभौ। तदहं त्वां महादेवीमुपसंस्थो महेश्वरि॥ २५॥
शापाऽब्धिमग्नं मां शीघ्रमभ्युद्धर महेश्वरि। इत्युक्ता सा ब्राह्मणेन शापाऽन्तं प्राह तं प्रति॥ २६॥
हर्यक्ष शृणु मद्वाक्यं शापाऽन्तं प्रब्रवीमि ते। गोपयोनिषु ते जन्म भविष्यति न संशयः॥ २७॥
तत्रैकजन्मनि शृणु भविष्याम्यहमंशतः। कन्या तव ततो विष्णोः प्राप्य श्रेष्ठं वरं पुनः॥ २८॥
प्राप्य नारायणं पुत्रं प्रयास्यसि परं पदम्। उक्त्वैवमन्तर्धानं सा जगामेयं तव प्रिया॥ २९॥

हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए निवेदित किया॥ १३॥ हे देवि! मुझे न तो इन्द्रत्व चाहिए, न चन्द्रत्व और न ही धनेशता। कभी मैं अपने आश्रम में ही तपस्या में लीन था॥ १४॥ अचानक एक गोपवधू अपनी गायों को चराती मेरी आँखों के सामने आ गयी। मैं उसके रूप-सौन्दर्य के विभ्रम से॥ १५॥ मोहित हो, कामासक्त भाव से उसका पीछा किया। मैंने उसकी प्रार्थना की और मन की बात कही, पर उसने मेरी एक भी न सुनी॥ १६॥ तब मैंने उस गोपकन्या के साथ बल का प्रयोग किया। वह चीखती और चिल्लाती रही और मैं उसे घसीट कर आश्रम में ले आया॥ १७॥ काम से पीड़ित होकर मैं उसके साथ बलात्कार करने लगा। इसी बीच वहाँ देवर्षि नारद आ पहुँचे॥ १८॥ उस गोपवधू को देखकर जिसे मैंने बलपूर्वक दबोच रखा था और वह मुझे जोर-जोर से चिचिया कर कह रही थी—मुझे छोड़ दे, छोड़ दे॥ १९॥ और मैं कामान्ध हक्का-बक्का बना उसे बिना छोड़े उसके साथ सम्भोग करता रहा। यह सुनकर महर्षि नारद ने मुझे श्राप दिया॥ २०॥ अरे अधम ब्राह्मण! यह सुन्दरी तुम्हारी चाह के योग्य नहीं है। तुमने काम के वशीभूत होकर जबरन इसका उपभोग किया है, अतः॥ २१॥ इस नीच कर्म से शीघ्र ही तुम नीचत्व प्राप्त करोगे। तुम एक गोपकन्या में आसक्त हुए हो, अतः तुम एक गोप बनोगे॥ २२॥ शाप के डर से काँपता हुआ मैंने महर्षि नारद की अनेक प्रार्थना के बाद उनसे शाप का अन्त जानना चाहा॥ २३॥ पर अत्यन्त क्रुद्ध नारदजी ने मुझे इसके बारे में कुछ भी कहने से इनकार कर दिया। जब मैंने दृढ़तापूर्वक फिर उनसे विनती की तब उन्होंने कहा—भगवती सावित्री के अनुग्रह से तुम शापमुक्त होगे॥ २४॥ महादेवी की उपासना करो, यह कहकर नारदजी तिरोहित हो गये। हे महेश्वरि! उसी दिन से मैं आपके चरणों की उपासना में लगा हूँ॥ २५॥ हे देवि! शापसागर में डूबते मुझ अधम का उद्धार करो। ब्राह्मण के ऐसा कहने पर महादेवी ने कहा॥ २६॥ हे हर्यक्ष! मेरी बातें सुनो, मैं तुम्हें शापान्त बतलाती हूँ। गोपयोनि में तो तुम्हारा जन्म होगा ही—इसमें संशय मत करो॥ २७॥ एक जन्म में हमारे अंश से तुम्हें एक कन्या होगी, तब फिर विष्णु से एक श्रेष्ठ वरदान

सेयं तदंशसम्भूता तव शापादयोनिजा । अनिन्द्येयं सर्वजनैरग्रजैः समुपासिता ॥ ३० ॥
छन्दःप्रसूतिर्गायत्री गायन्तं त्राति सर्वतः । वेदसारमयी ब्रह्मविद्याख्यातिं गमिष्यति ॥ ३१ ॥
सावित्रि पश्य वत्से त्वं निजांशप्रभवामिमाम् । शापेन नैषा विज्ञाता त्वमेवैषा द्विधा स्थिता ॥
श्रुत्वेत्थं त्रिपुरावाक्यं गायत्री स्वात्मरूपिणी । प्रत्यचेष्टत सावित्री प्रतिबिम्बं यथाऽऽत्मनः ॥
अनुग्रहेण श्रीदेव्या लब्ध्वा शापहतां स्मृतिम् । सन्तुष्टाऽभवदत्यन्तं शान्तां प्रकृतिमास्थिता ॥
अथोवाच महादेवी त्रिपुरा विधिमुख्यकान् । गायत्रीयं मदुद्भूता मद्वाग्रूपा परा यतः ॥ ३५ ॥
एनां वर्णमयीं सर्वे मुखबाहूरुजा जनाः । प्राप्य जाताः पुनस्तेन भूयासुर्द्विजसंज्ञया ॥ ३६ ॥
अथाऽह लोकधातारं शृणु ब्रह्मन्मयेरितम् । अकाम्याकामुकत्वं यत् सावित्रीशापतः स्थितम् ॥
तत्राऽपीयं वेदमयी तव वाचा विनिर्गता । आत्मजा तत्र ते कामो भविष्यत्यपदे ततः ॥ ३८ ॥
वाणीरूपा च सावित्री सर्वाऽऽराध्या भविष्यति । श्रोतव्यं मद्वचः सर्वैर्गायत्रीयं मदात्मजा ॥ ३९ ॥
अहमेव न सन्देहो निशाम्येनां ममाऽऽत्मजाम् । चक्षुष्मन्तः प्रपश्यन्तु प्रणिगद्यैवमम्बिका ॥ ४० ॥
समाविवेश गायत्र्यां स्वर्धुनीव यमाऽनुजाम् । तदद्भुतं तत्र विधिमुखा दृष्ट्वा समक्षतः ॥ ४१ ॥
विस्मिता जयशब्देन वर्धयामासुरम्बिकाम् । अथाऽपश्यन् तत्र सर्वे गायत्रीं त्रिपुरात्मिकाम् ॥
चतुर्भुजां चन्द्रचूडां त्रिनेत्रां कुङ्कुमप्रभाम् । पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणप्रसूनशरसंयुताम् ॥ ४३ ॥
त्रैलोक्यसुन्दरीं तुर्यां सर्वभूषणभूषिताम् । प्रणेमुर्विधिमुख्यास्ते जयशब्दप्रपूर्वकम् ॥ ४४ ॥

पाकर ॥ २८ ॥ भगवान् विष्णु को ही अपने पुत्र के रूप में पाकर तुम परम पद को प्राप्त करोगे। इतना कहकर वह भगवती तिरोहित हो गई ॥ २९ ॥ वही भगवती के अंश से उत्पन्न यह अयोनिजा कन्या है, इसकी कोई निन्दा नहीं कर सकता। यह सबों में श्रेष्ठ है, सब लोग इसकी उपासना करते हैं ॥ ३० ॥ वह स्वेच्छा से उत्पन्न गायत्री है, जो सब ओर से सबकी रक्षा करती है। वह वेद का सारमयी रूप है, ब्रह्मविद्या के नाम से ख्याति प्राप्त करेगी ॥ ३१ ॥ हे वत्से सावित्री! तुम इसे देखो, यह तुम्हारे अंश से उत्पन्न हुई है। शाप के कारण तुम इसे नहीं जानती हो, तुम्हीं इन दो रूपों में विभक्त हो ॥ ३२ ॥ भगवती त्रिपुरा की यह बात सुनकर गायत्री को अपना ही रूप समझकर गायत्री को अपना ही प्रतिबिम्ब रूप माना ॥ ३३ ॥ श्रीत्रिपुरा की कृपा से उसने शाप से खोई अपनी स्मृति को फिर से प्राप्त की और सन्तुष्ट हुई एवं अत्यन्त शान्त प्रकृति में आ गई ॥ ३४ ॥ विधिप्रमुख देवताओं को त्रिपुरा ने कहा—यह लड़की गोपकन्या नहीं, गायत्री है, मुझसे उत्पन्न हुई है। मेरी वाणी ही इसका रूप है, अतः यह पराशक्ति है ॥ ३५ ॥ इसको मेरे मुख, बाहु और जंघे से उत्पन्न वर्णमयी जानो। पुत्री के रूप में पाकर तुम भी आज से ब्राह्मण बन जाओ ॥ ३६ ॥ इसके बाद लोकविधाता से उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन्, मेरी बातें सुनो, तुमने अकाम्या अपना जो कामुकत्व प्रकट किया है, वह सावित्री के शाप के कारण ही ॥ ३७ ॥ फिर भी यह तुम्हारी वाणी से वेदमयी बनकर निकलेगी और इसका कामुकत्व भी तुम्हें मिलेगा। यह मेरी आत्मजा है ॥ ३८ ॥ वाणीस्वरूपा सावित्री सबकी आराध्या होगी। हे देवगण! आप लोग भी मेरी बात ध्यान से सुनें, यह गायत्री मेरी पुत्री है ॥ ३९ ॥ गायत्री मैं ही हूँ, मेरी पुत्री को देखो, इसमें सन्देह मत करो। आँख वाले इसे देखें, यह अम्बिका है ॥ ४० ॥ विधि-प्रमुख देवताओं के सामने ही वहाँ एक अद्भुत घटना घटी। जैसे यमुना में गंगा मिलकर एकरूप हो जाती है, वैसे ही गायत्री के शरीर में भगवती त्रिपुरा प्रविष्ट हो गईं ॥ ४१ ॥ सब देवगण उस अम्बिका का विस्मित-चकित होकर जय-जयकार करने लगे। अम्बिका त्रिपुरा को गायत्री रूप में आते सबने देखा ॥ ४२ ॥ चार भुजाएँ, सिर पर चन्द्रमा, तीन आँखें, सिन्दूरी लाल शरीर-कान्ति, चारों हाथों में क्रमशः पाश, अंकुश, धनुष और कुसुमशर

तदा प्राह पुनर्देवी सर्वे शृण्वन्तु मद्वचः । अहमेव हि गायत्री न मत्तोऽन्या कथञ्चन ॥ ४५ ॥
वाक्समष्टिमयी चाऽहं सर्वे पश्यन्तु मां तथा । दर्शनं दिव्यमासाद्य प्रसन्ना वो दिशामि तत् ॥ ४६ ॥
इत्युक्त्वा प्रादिशत्तेषां दिव्यं लोचनमम्बिका । ददृशुः सर्व एवैते गायत्रीं त्रिपुराम्बिकाम् ॥ ४७ ॥
आकाशरूपिणीं यत्र व्याप्य सर्वं समास्थिताम् । मातृकार्णक्लृप्तदेहां परामादौ सुधामयीम् ॥
स्वरवक्त्रां पञ्चवर्गक्लृप्तबाहुपदोदराम् । अन्तःस्थाऽऽत्मतदूर्ध्वाङ्गहृन्मूलपरिशेषिकाम् ॥ ४९ ॥
पश्यन्तीमध्यमानाभिहृदयां वक्त्रवैखरीम् । मध्यमाबुद्धिसहितां पश्यन्तीहृदयान्विताम् ॥ ५० ॥
वैखरीवचनां वर्णवक्त्रां पदहृदात्मिकाम् । वाक्योदरां घोषसूक्ष्मां वर्णस्थूलस्वरूपिणीम् ॥ ५१ ॥
अशेषाऽऽगममूर्धाढ्यां ज्योतिर्नेत्रां महेश्वरीम् । वक्त्रव्याकरणां छन्दोवाणीं शिक्षादिकन्धराम् ॥
कल्पकर्णां सामहृदं ऋग्यजूरूपसुस्तनीम् । अथ वर्णोदरां सांख्ययोगपार्श्वयुतां शुभाम् ॥ ५३ ॥
कर्माऽऽगमकरां तर्कजघन्याऽङ्गीं परात्पराम् । उपवेदपृष्ठदेशां पुराणाऽऽलोकशोभिनीम् ॥
काव्याऽलङ्कारहसितामात्मविद्यात्मकाऽऽशयाम् । बौद्धजैनाऽऽद्यागमाऽऽत्मनखलोमविराजिताम् ॥
दृष्ट्वैवं त्रिदशाद्यास्ते प्रणेमुर्दण्डवद्भुवि । अथ बद्धाञ्जलिपुटास्तुष्टुवुः परमेश्वरीम् ॥ ५६ ॥
अथ तुष्टा जगन्माता पूजिता सुरमुख्यकैः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ५७ ॥
आभीरा धृतदण्डास्ते नत्वा प्रोचुर्विधिं तदा । ब्रह्मन्नः शृणु वाक्यानि लोका ब्रह्मविनिर्मिताः ॥
नियत्या नियतास्तत्र तव वाग्रूपया ननु । तत्र स्त्री न स्वतन्त्राऽस्ति त्रिपु स्थानेष्वपीश्वरी ॥ ५९ ॥
कन्याऽऽप्तौ जनको द्वारमथवा भ्रातृमुख्यकाः । न स्वतन्त्रस्ततो भोक्ता चैवं सर्गात् प्रवर्तितम् ॥

थे ॥ ४३ ॥ त्रैलोक्यसुन्दरी, तरुणी, सभी आभूषणों से आभूषित उन्हें देखकर जय-जयकार करते हुए विधि-प्रमुख देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ तब उस देवी ने फिर कहा—मेरी बातें सुनो। मैं ही गायत्री हूँ, मुझसे अलग कुछ भी नहीं है ॥ ४५ ॥ मैं सम्पूर्ण वाङ्मय हूँ, सभी मुझे इसी रूप में देखें। मैं प्रसन्न होकर आप सबों को यह सब देखने के लिए दिव्यदृष्टि देती हूँ ॥ ४६ ॥ यह कहकर अम्बिका त्रिपुरा ने उपस्थित देवताओं को दिव्यदृष्टि दी। उस दिव्य दृष्टि के कारण अम्बा त्रिपुरा को सबों ने गायत्री के रूप में देखा ॥ ४७ ॥ वे आकाशरूपिणी थीं, सब कुछ उनमें समाहित था, मातृकार्णक्लृप्त उनकी देह थी। वह आदि पराशक्ति अमृतमय थी ॥ ४८ ॥ उनका मुँह स्वर स्वरूप था। उनकी बाँहें, पैर और पेट पाँचों वर्ग में बँटा था, अन्तःस्थ उनकी आत्मा थी, ऊर्ध्वांग हृदयमूल परिशेष था अर्थात् ॥ ४९ ॥ उस परादेवी को देखते जिनकी मध्यमा वैखरी आत्मा थी, व्याकरणादि अंगोपांग से युत थी ॥ ५० ॥ वैखरी उनकी बातें थी, वर्ण उनका मुख था और पद हृदय, वाक्य उदर था। घोष उनका सूक्ष्म शरीर था और वर्ण स्थूल स्वरूप था ॥ ५१ ॥ उस महेश्वरी की अशेष आगम उनकी मूर्धा थी और ज्योति आँखें, मुख व्याकरण था, छन्द वाणी थी और शिक्षादि कन्धे थे ॥ ५२ ॥ कल्प उनके दोनों कान थे, साम हृदय, ऋग्वेद और यजुर्वेद उनके दोनों स्तन थे, वर्ण उनका पेट, शुभ सांख्य योग उनकी पाँखें थीं ॥ ५३ ॥ उस परात्परा के कर्मागम हाथ थे और तर्क जघन्यांग। उपवेद पीठ और सुन्दर आलोक था ॥ ५४ ॥ काव्यालंकार सहित आत्मविद्या उनकी आत्मा का आशय थी। बौद्ध, जैन आदि के आगम उनके शरीर की रोमावलियाँ थीं ॥ ५५ ॥ इस रूप में देवताओं ने उन्हें देखकर धरती पर दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया। फिर अंजलि बाँधकर उस परमेश्वरी की स्तुति कर देवों ने उन्हें प्रसन्न किया ॥ ५६ ॥ देवप्रमुखों से पूजित होकर जगन्माता सन्तुष्ट हुई। इसी बीच हजारों यादव वहाँ पहुँच गये ॥ ५७ ॥ वे ग्वाले हाथ में डण्डा लिये थे। उन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम कर कहा—हे ब्रह्मदेव! संसार के सभी प्राणी ब्रह्मनिर्मित ही हैं ॥ ५८ ॥ वहाँ भी नियति ने वाग् रूप से तुम्हें नियत कर रखा है। याद रखो, तीनों लोकों की

तदेष सेतुर्भग्नोऽद्य बली तां भजते यदि। परस्परं नाशमीयुः सामिषश्येनपक्षिवत्॥ ६१॥
तद्ब्रूह्यत्र समाधानं नश्येदत्र जगत्त्रयम्। श्रुत्वेत्थं गोपभूपालवचनं प्राह लोकसृट्॥ ६२॥
नियतिर्न विलङ्घ्याऽस्ति दैवी सर्वोपरि स्थिता। दृष्ट एवं विधिरपि तस्मात्त्वं शान्तिमाप्नुहि॥
पश्याऽऽत्मजां तव पराशक्तिरूपामिमां पुरः। दृष्ट्वा विधिवचो गोपपतिस्तां समवैक्षत॥ ६४॥
आत्मजामेव तां दृष्ट्वा सर्वदेवप्रपूजिताम्। पराशक्तिं विदित्वाऽथ नत्वा सम्प्रार्थयत्तदा॥ ६५॥
देव्यहं वञ्चितो मूढो मायया तव शङ्करि। नाऽविदं त्वां मद्गृहस्थां पराशक्तिं महेश्वरीम्॥ ६६॥
तत् कृपां कुरु देवेशि पुनर्मद्गृहमाविश। प्रार्थितैवं पराशक्तिः प्रोवाचाऽऽभीरभूपतिम्॥ ६७॥
शृणु गोपकुलाऽधीश मां पराऽऽकाशरूपिणीम्।
जानीहि त्रिविधाऽऽकारां सावित्र्याद्यात्मना स्थिताम्॥ ६८॥
तत्राऽहं भारतीरूपा तोषिता तव वेश्मनि। सम्भूताऽस्मि पुनश्चाऽपि गौर्यंशेन समुद्भवा॥ ६९॥
सृष्ट्यन्तरे भविष्यामि सह भ्रात्रा च विष्णुना। नन्दगोपस्त्वं भविता सर्वोत्तममहीपतिः॥ ७०॥
तत्राऽहं भविता कन्या कात्यायन्यभिविश्रुता। एषोऽनुजो मम भवेत् साक्षान्नारायणः परः॥
आहरिष्यति ते कीर्तिं त्रिलोकविततां शिवाम्। अहं विन्ध्याऽद्रिनिलया भूत्वा कलियुगे ततः॥
जनान् दुःखपरान् सर्वानुद्धरामि पुनः पुनः। गोपीभिः पूजिता तत्र मासं ते विषये शिवा॥ ७३॥
अभीष्टं सर्वलोकानां दुर्लभं प्रदिशाम्यहम्। इति प्राप्य वरं तस्यास्तुष्टा गोपा अशेषतः॥ ७४॥
जग्मुः स्वनिलयानेव नत्वा देवीं सुरानपि। अथ सा परमेशानी जगामाऽन्तर्द्धिमम्बिका॥ ७५॥

स्वामिनी होने के बावजूद स्त्री कहीं स्वतन्त्र नहीं होती॥ ५९॥ कन्याप्राप्ति के बाद अपने पिता या भाइयों के दरवाजे से स्वतन्त्र होकर नहीं रह सकती हैं॥ ६०॥ हे बली ब्रह्मा! यदि आज आप इस सर्वमान्य प्रथा को तोड़कर उस गोपकन्या को अपने पास रखते हो तो सामिष श्येन पक्षी की तरह तुम दोनों विनष्ट हो जाओगे॥ ६१॥ इसलिए इसका समाधान बतलाओ, नहीं तो तीनों लोक यहाँ विनष्ट हो जायेंगे। गोपभूपाल की यह बात सुनकर तब ब्रह्मा ने कहा॥ ६२॥ यह नियति का विलंघन नहीं है, दैव-इच्छा सर्वोपरि होती है। यह काम भी भाग्यप्रेरित है, अतः पहले तुम शान्त हो जाओ॥ ६३॥ अपनी बेटी को देखो, पराशक्ति के रूप में यह तुम्हारे आगे खड़ी है। विधाता की बात सुनकर गोपपति ने उसकी ओर देखा॥ ६४॥ अपनी ही बेटी को सभी देवताओं से पूजिता देखकर, उन्हें पराशक्ति मानकर प्रणाम कर उनकी प्रार्थना की॥ ६५॥ हे देवि शङ्करि! मैं तुम्हारी माया से ठगा गया, मैं मूढ़ हूँ। मेरे घर में तुम थी, पर तुम पराशक्ति हो, महेश्वरि हो—यह मैं जान नहीं सका॥ ६६॥ इसलिए हे देवि! कृपा करो और मेरे घर में फिर प्रवेश करो। ऐसी प्रार्थना सुनकर त्रिपुरा ने आभीर-भूपाल से कहा॥ ६७॥ हे गोपकुल के स्वामी! सुनो, मुझे पराशक्ति और आकाशरूपिणी मानो। मैं सावित्री प्रभृति तीनों रूपों में अवस्थित हूँ॥ ६८॥ भारती रूप में अब मैं तुम्हारे घर जाकर तुम्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकती। मैं फिर गौरी के अंश से उत्पन्न हुई हूँ॥ ६९॥ कल्पान्तर में अपने भाई विष्णु के साथ मैं तुम्हारे घर फिर आऊँगी। उस समय तुम सर्वोत्कृष्ट महीपति नन्द गोप के रूप में रहोगे॥ ७०॥ उस समय मैं कात्यायनी के नाम से तुम्हारी बेटी बनूँगी और यह मेरा छोटा भाई साक्षात् श्री हरिविष्णु बनेंगे॥ ७१॥ तीनों लोक में तुम्हारी कीर्ति फैलायेंगे। फिर मैं कलियुग में विन्ध्याचल में लीन हो जाऊँगी॥ ७२॥ वहाँ मैं बार-बार दुःखीजनों की रक्षा करूँगी और मासभर गोपियों द्वारा मैं वहाँ पूजित रहूँगी॥ ७३॥ सभी लोगों को दुर्लभ अभीष्ट फल दूँगी। यह वरदान पाकर सभी गोप प्रसन्न हुए॥ ७४॥ सबके साथ देवी और देवताओं को प्रणाम कर गोपभूपति अपने घर चले गये। इसके बाद ही वह परमेशानी अम्बिका

सावित्री पर्वतस्थाना गायत्र्या सहितो विधिः। समाहरत् क्रतु भूयः पुष्करे तीर्थशेखरे॥ ७६॥
इत्येतत्ते समाख्यातं सावित्र्याख्यानमद्भुतम्। शृण्वतां पापशमनं भूयः किं श्रोतुमिच्छति॥ ७७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे सावित्र्युपाख्यानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३२३०॥

देखते-देखते सबकी आँखों से ओझल हो गई॥ ७५॥ सावित्री उस पहाड़ पर चली गई और गायत्री को साथ लेकर ब्रह्मा ने पुष्कर तीर्थ ने पुनः यज्ञ किया॥ ७६॥ हे परशुराम! यह अद्भुत सावित्री-कथा मैंने तुम्हें सुना दी। यह कथा सुनने वालों के पाप का शमन होता है, फिर आगे तुम क्या सुनना चाहते हो?॥ ७७॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में सावित्री-उपाख्यान नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२३०॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

एवं दत्तात्रेयगीतां कथामाकर्ण्य भार्गवः। उत्सुकः श्रवणे भूयः कथां पप्रच्छ सादरम्॥ १॥
न तृप्तिर्लेशतोऽप्यत्र कथारसनिषेवणात्। पानात् काम्यरसस्येव भूयस्तत् पातुमुत्सहे॥ २॥
गायत्रीसङ्गतां देवीं बीजाऽवयवशोभिनीम्। अभिष्टुवन् विधिमुखा यथा तन्मे समीरय॥ ३॥
अथाऽपि सा जगन्माता पुनर्गोपगृहे कथम्। नारायणेन सहिता भविष्यति कदा कुतः॥ ४॥
कथं वा नन्दगोपालो विततां कीर्तिमाप्तवान्। कथं कात्यायनी साऽऽसीद्गोप्यः किंप्रापुरीप्सितम्॥
एतन्मे ब्रूहि विततं शिष्याय श्रोतुमिच्छते। इति पृष्टो दत्तगुरुः प्रसन्नः प्राह भार्गवम्॥ ६॥
कथाप्रसङ्गयोग्योऽसि यत्ते तृप्तिर्न विद्यते। जामदग्न्य महादेवीशक्तिविद्धोऽसि सर्वथा॥ ७॥
अहो भाग्यमिदं लोके दुर्लभं विषयाऽऽत्मनाम्। यच्छ्रीदेव्याः कथासारसमुत्सुकितचित्तता॥
शृणु भार्गव वक्ष्यामि यथा सा त्रिपुरेश्वरी। संस्तुता वागात्ममयी विधिविष्णुमुखैस्तदा॥ ९॥
दृष्ट्वा तां सर्वविद्यात्ममातृकावर्णरूपिणीम्। जयत्युद्घुष्य प्रणताः स्तवञ्चक्रुरनुत्तमम्॥ १०॥

जय जय देवि परापररूपिणि जय जय जगतां जनयित्रि
जय जय लीलाभासितसकले जय जय सर्वाऽऽश्रयरूपे।
जय जय सर्वप्रलयविभाविनि जय जय सर्वाऽन्तररूपे
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ ११॥

※ विमला ※

इस तरह दत्तात्रेय द्वारा कही गई कथा सुनकर उत्सुक परशुराम ने फिर कथा सुनने के लिए उनसे सादर पूछा॥ १॥ इस कथारस के सेवन से मुझे लेश भी तृप्ति नहीं हुई; जैसे मनोवांछित रस पीने के बाद फिर उसे पीने का उत्साह जागता हो, उसी तरह॥ २॥ गायत्री के स्वरूप में मिल जाने के बाद उनके कारणभूत अंग-प्रत्यंग शोभने वाली उस देवी की जैसे स्तुति की, कृपया वह मुझे बतलायें॥ ३॥ और भी वह जगन्माता फिर गोपगृह में कहाँ और कैसे नारायण के साथ उत्पन्न होगी॥ ४॥ अथवा नन्दगोपाल किस तरह कीर्ति प्राप्त करेंगे और वह भगवती कात्यायनी कैसे बनेगी एवं गोपियाँ क्या पाना चाहेगी?॥ ५॥ सुनने की इच्छा रखने वाले शिष्य के लिए विस्तारपूर्वक ये बतलायें। यह प्रश्न सुनकर गुरु दत्तात्रेय ने भार्गव से कहा॥ ६॥ तुम कथा-प्रसंग के योग्य हो, इसीलिए तुम्हें इससे तृप्ति नहीं मिलती है। हे परशुराम! महादेवी की शक्ति से निश्चय ही तुम अनुदेशित हो॥ ७॥ आश्चर्य! यह भाग्य विषयासक्त लोगों के लिए दुर्लभ है, जो उत्सुक चित्त से त्रिपुरा देवी के इस कथासार को सुने॥ ८॥ सुनो भार्गव! ब्रह्मा-विष्णु प्रमुखों ने उस त्रिपुरेश्वरी की, वागात्मयी की स्तुति कैसे की॥ ९॥ मातृकावर्णरूपिणी उस त्रिपुरा को देखकर प्रणत देवताओं ने जय-जयकार किया और पुनः उनकी स्तुति करने लगे॥ १०॥ हे परापररूपिणी देवि! तुम्हारी जय हो, संसार को जन्म देने वाली देवी! तुम्हारी जय हो। तुम्हारी लीला से भासित यह सकल संसार है, तुम्हारी जय हो। तुम सबकी आश्रयस्वरूपा हो, तुम्हारी जय हो। सभी प्रलयों का तुम्हें प्रत्यक्ष ज्ञान है, तुम्हारी जय हो। तुम सबकी अन्तःस्वरूपा हो, तुम्हारी जय हो। तुम्हारी देह में समस्त विद्याओं का विलास है, तुम्हारी जय हो। हे शंकरि!

निर्गतगुणकृतिजातिविभेदे चित्सुखसान्द्रसुधाजलधे
परिहृतपरिमितिपरवाग्रूपिणि मूलविलासिनि मुक्तिमयि।
स्वातन्त्र्येण समीहितभावे मणिपुरवासिनि पश्यन्ति
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ १२॥
तदनु ज्ञानमयाऽऽत्मविभक्तान्मध्यमभावान् कलयन्ती
मध्यमरूपाऽनाहतवासिनि मिश्रितरूपे बुद्धिमयि।
वसुविधशक्तिबहिष्कृतभावे पीठविभेदे विचित्रकृते
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ १३॥
अद्वयसंविन्मात्रशरीरं सद्वयभावं कलयन्ती जाता-
ऽनुत्तरमुखशरकिरणैर्मिथुनविभेदादपि दशधा।
आद्या तत्परपरसंयोगाद्भूयश्चापि चतुर्विधता
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ १४॥
अन्ते भेदाऽभेदविभेदादपि नृपसंख्यस्वररूपा
पञ्चविधं तत्पञ्चकमाद्यं व्यत्यययोगाद्वेदविधा।
तदनु चतुर्धा मध्यमहीना मिथुनद्वितयं कलयन्ती
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ १५॥
एवं भूशरमितभेदाढ्या विद्याराज्ञी माता त्वं
तत्सम्भेदादखिलभिन्नं भावयसि त्वं शब्दमयि।
त्वत्कलया यदि नो सम्भिन्नं गगनमयं स्यादखिलमिदं
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ १६॥

हमारी रक्षा करो, तुम्हारी जय हो॥ ११॥ गुणसमूहों के द्वारा किये गये जातिविभेद में निर्गत साधन चित्सुख सुधा रूपी सागर में सीमा रहित श्रेष्ठ वाग्रूपिणी, कारणों में विलास करने वाली मुक्तिमयी देवि! स्वतन्त्रतापूर्वक इच्छित परिणाम में मणिपुर में निवास करने वाली जो सब कुछ देख रही है, दिव्या से प्रकाशवान् देह वाली देवि! हे शंकरि! हमारी रक्षा करो, तुम्हारी जय हो॥ १२॥ इसके बाद ज्ञानमय आत्मविभाग के मध्यम भाग में शोभती मध्यमस्वरूपा, अनाहत में निवास करने वाली मिश्रितस्वरूपा बुद्धिमयी, वसुविधि शक्ति के बहिष्कृत भाव में, पीठ के विभेद में चित्र-विचित्र अपनी कृतियों, विद्या से प्रज्वलित देह वाली हे देवि! तुम्हारी जय हो। हे शंकरि! हमारी रक्षा करो, तुम्हारी विजय हो॥ १३॥ अद्वैत का ज्ञान मात्र ही जिसका शरीर है, द्वैतभाव को फैलाती अनुत्तर मुख वाली शरकिरणों से दोनों के विभेद करने के बावजूद दस विद्याओं के रूप में हो, फिर पहली दूसरे के संयोग से चार प्रकार की विद्या हो। हे विद्याविलसित देह वाली! तुम्हारी जय हो। हे शंकरि! हमारी रक्षा करो, तुम्हारी विजय हो॥ १४॥ अन्त में भेद-अभेद के विभेद से भी नृपसंख्य स्वरूपा हो, उस पाँच प्रकार में भी पहला पञ्चक के रूपान्तर से चार प्रकार की हो, उस चार प्रकार में भी मध्यमहीन होने पर मात्र दो ही रूप तुम्हारा शोभता है। हे विद्याविलसित देह वाली भगवती! तुम्हारी जय हो। हे शङ्करि! तुम हमारी रक्षा करो, तुम्हारी विजय हो॥ १५॥ इस तरह एक और पाँच की संख्या या भेद में मर्यादित विद्याराज्ञी तुम सब की माता हो। इन सारे भेदों से तुम भिन्न हो, तुम शब्दमय हो, तुम्हारी कला से यदि ये भिन्न नहीं है तो सब-के-सब गगनमय अर्थात् शून्यमय हैं। हे विद्याविलसित देहवाली!

स्थानत्रयमपि कलया हीनं तव यदि मातर्नो किञ्चित्
परमश्चाऽपि पदं विकलं चेच्छपथो योऽयं नेतरथा।
तत्त्व प्रत्याहृतकलया तद्रूपं व्याप्य सदा स्फुरसि
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ १७॥
वयमिह लोके सर्जनमुख्ये कृत्ये युक्तास्त्वद्भीत्या
त्वत्पदपद्मप्रभवाः काले सीदन्तस्त्वामविन्दन्तः।
काले काले पादप्रणतान् नु भीतान् मूढानतिदीनान्
जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि॥ १८॥

मेधा वाणी भारती त्वं विद्या माता सरस्वती। ब्राह्मी माया वर्णमयी पराऽऽद्या कृतिरव्यया॥
विकल्पा निर्विकल्पाऽजा कला नादमयी क्रिया। कालशक्तिः सर्वरूपा शिवा श्रुतिरनुत्तरा॥
रक्षाऽस्मांस्त्वं महादेवि सर्वलोकमहेश्वरि। पतितांस्त्वच्चरणयो रक्ष देवि नमोऽस्तु ते॥ २१॥
इति स्तुता सा परमा मातृका विश्वरूपिणी। प्राह देवान् विधिमुखान् प्रसन्ना तत्कृताऽर्चना॥
शृणुध्वं विधिमुख्या मे वचोऽभिलषिताऽऽस्पदम्। स्तवेनाऽनेन तुष्टाऽस्मि श्रेष्ठेयं मत्स्तुतिः कृता॥
गुह्यार्थगर्भिता चेयं मातृकावर्णसम्भवा। मातृकास्तुतिरित्येषा विख्याताऽस्तु समन्ततः॥ २४॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेदेनां तस्याऽहं वाङ्मयी हृदि। प्रादुर्भवामि काव्यादिमयी विद्यास्वरूपिणी॥ २५॥
एनां स्तुतिं प्रपठतो न हि विद्या विहीयते। समो वाक्पतिना भूयाद्वादेषु विजयी तथा॥ २६॥
चतुर्विंशतिनामानि भवद्भिः पठितानि तु। प्रत्यहं त्रिषु कालेषु पठेद्वेदाऽक्षिवारकम्॥ २७॥

तुम्हारी जय हो। हे शङ्करि! तुम हमारी रक्षा करो, तुम्हारी विजय हो॥ १६॥ स्थानत्रय भी हे मातः! यदि तुम्हारी कला से हीन है तब संसार में कुछ भी नहीं है, परमपद भी विकल है। तुम्हारा ही पथ पथ है, अन्यथा कुछ नहीं है। सारे तत्त्व भी तुम्हारी कला से निकले हैं और तुम्हारे रूप में समा कर हमेशा चमकते हैं। हे विद्याविलसित देह वाली! तुम्हारी जय हो। हे शंकरि! तुम हमारी रक्षा करो, तुम्हारी जय हो॥ १७॥ हम ब्रह्मा, विष्णु, महेश सृष्टि की संरचनाक्रम में तुम्हारे ही भय से लगे रहते हैं। तुम्हारे चरणकमलों से उत्पन्न समय भी बिना तुम्हें जाने बीतता रहता है। समय-समय पर भयाक्रान्त मूढ़ जन अतिदीन तुम्हारे चरणों में ही प्रणत होते हैं। हे विद्याविलसित देहवाली! तुम्हारी जय हो। हे शंकरि! तुम हमारी रक्षा करो, तुम्हारी जय हो॥ १८॥ तुम्हीं मेधा हो, वाणी हो, विद्या हो, भारती हो और माता सरस्वती हो। तुम्हीं ब्राह्मी हो, माया हो, वर्णमयी हो, परा हो, आद्याकृति और न कभी विनष्ट होने वाली हो॥ १९॥ तुम्हीं विकल्पा हो, निर्विकल्पा हो, अजन्मा हो, कला हो और नादमयी क्रिया हो; कालशक्ति हो, सर्वस्वरूपा हो, कल्याणमयी हो और अनुत्तरा श्रुति हो॥ २०॥ हे महादेवि! हमारी रक्षा तुम्हीं हो, सब लोकों की महेश्वरी हो। तुम्हारे चरणों पर हम गिरे हैं, हमारी रक्षा करो, तुम्हें हमारा प्रणाम॥ २१॥ इस तरह उस परमा-विश्वरूपिणी मातृका की इन सब ने स्तुति की। विधि-प्रमुख देवताओं से उन्होंने कहा—तुम्हारी इस अर्चा से मैं परम प्रसन्न हुई॥ २२॥ हे विधि-प्रमुख देवगण! मेरी बातें सुने, आप अपने अभिलषित प्राप्त करें। अतिश्रेष्ठ मेरी यह स्तुति आपने की है, इस स्तुति से मैं आप सब पर परम प्रसन्न हूँ॥ २३॥ मातृकावर्ण से उत्पन्न इस स्तुति के शब्द गूढ़ार्थ-गर्भित हैं, संसार में मातृका-स्तुति के नाम से यह विख्यात होगी॥ २४॥ जो व्यक्ति दिन में तीनों काल इस स्तोत्र का पाठ करेगा, मैं उसके हृदय में वाङ्मय के रूप में प्रादुर्भूत होऊँगी। विद्यास्वरूपिणी मैं काव्यमयी हूँ॥ २५॥ जो इस स्तुति का पाठ करेगा, वह विद्याविहीन कभी नहीं होगा तथा वाक्पति बृहस्पति के तुल्य हो वाद-विवाद में सर्वत्र विजयी बनेगा॥ २६॥ ये चौबीस नाम

ततो धारयति श्लोकसहस्रमपि प्रत्यहम्। बुद्धिः कुशाऽग्रसदृशी सूक्ष्माऽर्थप्रविभेदिनी॥ २८॥
जायते नाऽत्र सन्देहः सत्यमेतन्मयेरितम्। विधिविष्णुविरूपाक्षाः शृणुध्वं वचनं मम॥ २९॥
न भूयः शक्तयश्चेमाः परिभाव्याः कथञ्चन। क्रुद्धा जगद्भक्षयेयुर्विधिविष्णुशताऽऽवृतम्॥ ३०॥
मदंशभूता भवतामाश्रया माननोचिताः। इत्युक्त्वा सा महादेवी स्वं रूपं प्रतिपद्यत॥ ३१॥
एतद्भृगुकुलाऽऽराध्य प्रोक्तं स्तोत्रं पुरा कृतम्। शृणु वक्ष्यामि सा भूयो यथा गोपकुलोद्भवा॥
युगेऽष्टाविंशतितमे दैत्या मर्त्यस्वरूपिणः। भूलोकं पीडयिष्यन्ति हीनचर्यापरायणाः॥ ३३॥
कालिन्द्यास्तटसंस्थाना मथुराख्या तु या पुरी। साम्प्रतं लवणाख्येन दैत्येनाऽधिष्ठिता हि सा॥
तस्यां चन्द्राऽन्वयजनिर्भविष्यति नृपोत्तमः। उग्रसेन इति ख्यातो भोजवंशविवर्धनः॥ ३५॥
तस्याऽऽत्मजः सर्वभीमः कालनेमिर्महासुरः। क्रूरः कंस इति ख्यातः सर्वलोकप्रपीडकः॥ ३६॥
शिशुपालश्चेदिषु च हिरण्यकशिपुः स्वयम्। हिरण्याक्षो दन्तवक्रः शाल्वः सोमपतिस्तथा॥
नरकः प्राग्ज्योतिषजो जरासन्धश्च मागधः। इत्याद्या मानुषाऽऽत्मानो दैत्या धर्मप्रहिंसकाः॥
अनेककोटिसेनाभिः प्रत्येकं परिवारिताः। अप्रधृष्या महासत्त्वाः सर्वशस्त्राऽस्त्रकोविदाः॥
तेष्वग्रगण्यः कंसो वै देवब्राह्मणसज्जनान्। प्रहिंसन् सर्वदा भूमावुद्भटः सम्भविष्यति॥ ४०॥
अथाऽधर्मभराक्रान्ता भूमिर्ब्रह्माणमेष्यति। असहन्ती महाभारमधर्मिष्ठजनोद्भवम्॥ ४१॥
विधिर्देवगणोपेतो भूम्या च हरिमेष्यति। तत्राऽऽयातः शिवो ध्यातो न तद्रक्ष्येति चोत्तरम्॥
अथ त्रिमूर्तिभिर्ध्याता त्रिपुरा परमेश्वरी। आविर्भविष्यति सुरैः प्रणता पूजिता च तैः॥ ४३॥

आप सबों को प्रतिदिन तीनों काल पढ़ना चाहिए। यह वेदाक्षिवारक मन्त्र है॥ २७॥ इसके बाद प्रतिदिन श्लोकसहस्र को भी जो धारण करता है, उसकी बुद्धि कुशाग्र हो जाती है; सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अर्थ को भी वह समझता है॥ २८॥ हे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र! मेरी बातें सुनो। ऊपर जो कुछ मैंने कहा है, वह बिलकुल सत्य है, इसमें सन्देह मत करो॥ २९॥ ये शक्तियाँ फिर कभी न होगीं, इनके साथ कभी भी दुर्व्यवहार नही करना चाहिए। ये अगर क्रुद्ध होगीं तो क्षणभर में संसार का भक्षण कर लेगी और ब्रह्मा-विष्णु को तो सैकड़ों चक्कर लगा देगी॥ ३०॥ आप मेरे अंश से ही उत्पन्न हैं, यह मान्य भी है। इतना कहकर वह अपने रूप में आ गई॥ ३१॥ हे भृगुकुलनन्दन परशुराम! तुम्हें मैंने यह पुराकृत स्तोत्र सुना दिया। अब सुनो, वह देवी गोपकुल में कैसे उत्पन्न हुई॥ ३२॥ अट्ठाइसवें युग में दैत्य मनुष्य रूप में पैदा होंगे। वे घृणित आचरण वाले संसार को पीड़ित करेंगे॥ ३३॥ यमुना नदी के किनारे मथुरा नाम की नगरी इस समय लवण नामक दैत्य के अधीन है॥ ३४॥ उस नगरी में एक उत्कृष्ट राजा होगा। भोजवंश को बढ़ाने वाले उस राजा का नाम उग्रसेन होगा॥ ३५॥ सबको डराने वाला कालनेमि नामक महासुर क्रूर कंस के नाम से ख्यात सर्वलोकपीड़क उसका पुत्र होगा॥ ३६॥ स्वयं हिरण्यकशिपु चेदिराज शिशुपाल के रूप में आयेगा, हिरण्याक्ष दन्तवक्र होगा और शाल्व सोमपति॥ ३७॥ प्राग्ज्योतिष में नरकासुर उत्पन्न होगा और मगध का सम्राट् जरासंध होगा। ये सब धर्महिंसक दैत्य मनुष्यात्मक होंगे॥ ३८॥ अनेक करोड़ सेनाओं से ये घिरे होंगे, ये महाबली होंगे और सर्वशास्त्रविशारद होंगे॥ ३९॥ इनमें अग्रगण्य कंस होगा जो देवता एवं ब्राह्मणों को हमेशा सतायेगा, धरती पर उद्भट बलशाली होगा॥ ४०॥ अधर्म के भार से आक्रान्त धरती ब्रह्मा के पास पहुँचेगी। इन अधर्मियों के महाभार को वह सहने में अक्षम हो जायेगी॥ ४१॥ तब ब्रह्मा देवगण और धरती के साथ विष्णु के पास पहुँचेंगे, ध्यान करने पर शिव वहाँ आयेंगे। मैं इसे नहीं बचा सकता—यह उनका उत्तर होगा॥ ४२॥ तब तीनों देवता मिलकर भगवती त्रिपुरा का ध्यान करेंगे। इन तीनों प्रणत देवताओं से पूजित होकर त्रिपुरा प्रकट

प्रार्थिता भूभारहत्यै प्रवक्ष्यति बुधेश्वरान् । दुरुद्धरो ह्ययं भारः सर्वैरपि सुरेश्वरैः ॥ ४४ ॥
दैत्यास्तपोवीर्ययुता महाबलपराक्रमाः । न ते शक्या विजेतुं वो कालवीर्यप्रभावतः ॥ ४५ ॥
तस्माद्भवन्तः सर्वेऽत्र भूमौ मानुषजन्मतः । सम्भवन्त्वहमप्यत्र अंशेनाऽवतराम्यनु ॥ ४६ ॥
शापदग्धं करोम्यादौ कंसमेष हरिस्ततः । हनिष्यति मयाऽऽविष्टः सर्वानपि तथाऽसुरान् ॥
मत्तः प्राप्तवरो गोपो नन्दः परमशोभनः । साम्प्रतं भुवि कालिन्दीमनुगोव्रजनायकः ॥ ४८ ॥
तस्याऽहं सम्भविष्यामि पत्न्यामेष हरिः स्वयम् । देवक्यां वसुदेवेन भूत्वा नन्दगृहात्तु माम् ॥ ४९ ॥
कंसाऽन्तिकं प्रापयतु ततस्तं नाशयाम्यहम् । एवं प्रोक्ता महादेव्या देवाः सर्वे महीतले ॥ ५० ॥
द्विजेषु जाताः स्वस्वांऽशैः भाराऽवतरणोद्यताः । नारायणोऽपि देवक्यां भविष्यत्यखिलांऽशतः ॥
वसुदेवेन वृष्णीनां कुले परमशोभने । निशीथे तमसा वीते भगवान् स्वस्वरूपतः ॥ ५२ ॥
आविर्भविष्यति ततो वसुदेवेन संस्तुतः । बालभावं समेत्यात्थ वसुदेवं प्रवक्ष्यति ॥ ५३ ॥
नारदोक्त्या स्वसुर्गर्भाद्विदित्वा स्वात्मनो मृतिम् । एष कंसो मातुलो मे जागर्त्यतितरां भिया ॥
सम्प्रति श्रीमहादेव्या मोहिन्या मोहितो हि माम् । जातं मृत्युं न जानाति यावत्तावद्द्रुतं हि माम् ॥
नय नन्दगोपगृहं तत्र सा परमेश्वरी । सम्भूताऽस्ति तथाऽऽविष्टोऽहं जेष्यामि समेधितः ॥ ५६ ॥
जेतुं न शक्यः कंसोऽयमधुनाऽतिबली यतः । नय मां नन्दसदनं तत्र निक्षिप्यतामनु ॥ ५७ ॥
समाहराऽत्र तत्पश्चात् साऽस्य वीर्यं हरिष्यति । स्मर तां सर्वजननीं प्रतिरोधो न ते भवेत् ॥ ५८ ॥
विदित्वा परमां शक्तिं विष्णोर्वाक्यात् स्मृता हि सा । प्रभुं करिष्यति गतौ ततस्तं शिशुरूपिणम् ॥

होगी ॥ ४३ ॥ धरती का भार हटाने के लिए उनकी प्रार्थना होगी। देवताओं से वह कहेगी—धरती का यह भार सभी देवताओं से उद्धार करने योग्य नहीं है ॥ ४४ ॥ ये दैत्य तपोबल से युक्त हैं, महाबली और पराक्रमी हैं। कालवीर्य के प्रभाव के कारण आपमें से कोई उसे जीत नहीं सकते ॥ ४५ ॥ इसलिए आप सब धरती पर मनुष्य रूप में जन्म ग्रहण करें। इसके बाद मैं भी अपने ही अंश से धरती पर अवतरित होऊँगी ॥ ४६ ॥ पहले मैं उस कंस को शापदग्ध करूँगी, उसके बाद यह श्रीहरि विष्णु मेरे द्वारा वशीकृत सभी असुरों के साथ इसका वध करेंगे ॥ ४७ ॥ इस समय धरती पर यमुना नदी के किनारे गोव्रजभूमि में मेरा वरदान पाकर सुशोभन नन्दजी गोपनायक जन्म लेंगे ॥ ४८ ॥ नन्दराज की पत्नी से मैं जन्म ग्रहण करूँगी और स्वयं हरि देवकी और वसुदेव से जन्म ग्रहण कर मुझे नन्दगृह से ॥ ४९ ॥ कंस के घर भिजवायेंगे। उसके बाद मैं उसका विनाश करूँगी। महादेवी के ऐसा कहने पर सभी देवगण धरती पर ॥ ५० ॥ उनका भार उतारने के लिए अपने अंश से द्विजकुल में जन्म ग्रहण करेंगे और श्रीहरि विष्णु अपने सम्पूर्ण अंश से देवकी के पुत्र होंगे ॥ ५१ ॥ परम सुन्दर वृष्णि कुल में वसुदेव के यहाँ अन्धकाराच्छन्न मध्य रात्रि में अपने सम्पूर्ण स्वरूप से ॥ ५२ ॥ भगवान् विष्णु अवतरित होंगे। अवतरित होकर बालभाव में आकर तथा वसुदेव से संस्तुत होकर उन्हें कहेंगे ॥ ५३ ॥ नारद के कथनानुसार कंस की मौत उसके भानजे के हाथ होगी। यह जानकर भयाक्रान्त स्थिति में मेरा मामा कंस बड़ा ही जागरूक बना रहेगा ॥ ५४ ॥ श्रीमहादेवी की मोहिनी माया से मोहित होकर जन्म-मरण से अनजान मुझे शीघ्र ही ॥ ५५ ॥ नन्दगोप के घर ले जायेंगे। जहाँ स्वयं भगवती अवतीर्ण हुई हैं, उनसे आविष्ट मैं वहाँ ही पलूँगा ॥ ५६ ॥ इस समय कंस को मैं जीत नहीं सकता, क्योंकि अभी वह अत्यन्त बलशाली है। अतः मुझे नन्दजी के घर पहुँचा दोगे ॥ ५७ ॥ वह भगवती क्रमशः उसके बल का आहरण करेगी। उसके बाद उस जगज्जननी का सदैव स्मरण करोगे तो मार्ग की सारी बाधाएँ स्वतः नष्ट हो जायेगीं ॥ ५८ ॥ उसे परम शक्ति जानकर विष्णु के कथनानुसार सर्वप्रथम उसका उसने स्मरण किया, फिर भगवान् जो करेंगे, अच्छा होगा। यह

समादाय यास्यति स गोकुलं प्रति निर्भयः । महादेवीं स्मरन्नेव निशीथेऽतितमोवृते ॥ ६० ॥
प्रकाशितमहामार्गः कालिन्दीमपि सन्तरत् । अथ गत्वा नन्दगृहं मोहग्रस्तजनाऽऽकुलम् ॥
यशोदा शयनेऽपश्यद्देवीं तां जनितां तदा । कोटिसूर्यसमाभासां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ॥ ६२ ॥
शूलाऽसिखड्गपरशुपानपात्रकमण्डलून् । चर्मपाशावष्टभुजैर्दधानां भीमरूपिणीम् ॥ ६३ ॥
कालरात्रिं शिशुं न्यस्य प्रणम्याऽऽनकदुन्दुभिः । बद्धाञ्जलिपुटस्तावत् प्राप्तो ब्रह्मा च शङ्करः ॥
नारायणोऽपि नत्वा तामस्तवीत्त्रिपुरां शिवाम् । प्रसन्ना तान् समाधाय वसुदेवं प्रतीश्वरी ॥ ६५ ॥
नय मां त्वद्गृहमिति वदिष्यति ततस्तु ताम् । यावन्नीत्वा गृहे न्यस्यत्तावत् पालैश्च सर्वतः ॥ ६६ ॥
विदित्वा तत्र संयास्यत्यवेक्ष्य शिशुरूपिणीम् । समादायाऽऽत्ममृत्युं तां स्वस्रा भूयो निवारितः ॥
हन्तुमेव मनो यावत्तावद्गुरुतरां तु ताम् । मत्वा समर्थस्तां वोढुं प्रक्षेप्स्यति महीतले ॥ ६८ ॥
अथ प्राप्य नभोमार्गं प्राग्रूपा तं प्रवक्ष्यति । मूढ कंस न जानासि स्वमृत्युं विषयस्थितम् ॥ ६९ ॥
अचिरेण समेत्य त्वां पातयिष्यति भूतले । हृतं ते बलसर्वस्वं मया सद्यो विभावय ॥ ७० ॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी भविष्यति महेश्वरी । तस्मिन्ननुप्रविष्टा सा भविष्यति सुबृंहणी ॥ ७१ ॥
अथ कृष्णस्तया देव्या च बृंहितोऽतिदुर्हृदान् । हत्वा कंसं रङ्गतले हनिष्यति सुलीलया ॥ ७२ ॥
नन्दस्तत्कृपया विष्णुं प्राप्य पुत्रं जगद्गुरुम् । त्रिलोकविशदां कीर्तिं प्राप्स्यत्यखिलपूजिताम् ॥
अथ तत्र गोपकन्या रूपलावण्यसंश्रयाः । नारायणं कृष्णमिति ज्ञात्वा तद्गतमानसाः ॥ ७४ ॥
तत्समागमसम्प्राप्त्यै तपस्यन्तुं नदीमनु । कात्यायनं मुनिं सर्वास्तोषयिष्यन्ति सेवया ॥ ७५ ॥

कहकर उस शिशु रूपी परमात्मा को ॥ ५९ ॥ लेकर निर्भय होकर वह गोकुल प्रस्थान करेगा। यद्यपि घोर अन्धकारपूर्ण वह रात थी, फिर भी भगवती का स्मरण करते हुए ही ॥ ६० ॥ यमुना नदी पार कर स्वतः प्रकाशित महामार्ग से नन्द के घर पहुँच कर मोहग्रस्त जनाकुल देखा ॥ ६१ ॥ यशोदा ने स्वप्न में देखा कि उस देवी को उसने जन्म दिया जिसके शरीर से करोड़ों सूर्य के सदृश प्रकाशपुंज निस्सरित हो रहा था, तीन आँखों तथा सिर पर चन्द्रमा विराजित थे ॥ ६२ ॥ अपनी आठ भुजाओं में वह भीमरूपिणी तलवार, खड्ग, फरसा, पानपात्र, कमण्डलु, चमड़े के पाश धारण किये थी ॥ ६३ ॥ उस कालरात्रि शिशु को रखकर उन्हें प्रणाम किया, इतने में ही नगाड़े और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। ब्रह्मा और शंकर अंजलिबद्ध होकर वहाँ पहुँचे ॥ ६४ ॥ भगवान् विष्णु ने भी उन्हें प्रणाम कर त्रिपुरा शिवा की स्तुति की। उस ईश्वरी ने प्रसन्न होकर देवताओं के साथ वसुदेवजी को भी समाश्वस्त किया ॥ ६५ ॥ और कहा—मुझे अपने घर ले चलो। जब तक उन्हें लेकर वे घर में रखते तब तक चारों ओर के रक्षकों ने ॥ ६६ ॥ यह जानकर तथा कन्या को देखकर कि इसे ले जायेंगे, अपनी मृत्यु समझकर बहन के रोकने पर ॥ ६७ ॥ उसे मार डालने का ही मन बनाया, तब तक उसे इतना अधिक भारी प्रतीत होगी कि उठाने में समर्थ होने के बावजूद उसे पटक डालेगा ॥ ६८ ॥ वह शिशु उड़कर आकाश में पहुँचकर अपना पूर्व रूप धारण कर कहेगी—अरे मूर्ख कंस! तुम नहीं जानते, तुम्हारी मौत तुम्हारी ओर बढ़ रही है ॥ ६९ ॥ बहुत जल्दी तुम्हें इसी तरह उठाकर धरती पर पटकेगा। तुम्हारा सारा बल मैंने हर लिया है, जिसे तुम शीघ्र अनुभव प्राप्त करोगे ॥ ७० ॥ इतना कहकर वह महेश्वरी देवी तिरोहित हो जायेगी और उस बालिका में वह त्रिपुरा प्रविष्ट होकर विस्तृत आयाम प्राप्त करेगी ॥ ७१ ॥ इसके बाद कृष्ण इस देवी की परम कृपा से रंगशाला में बड़ी आसानी से कंस पर प्रहार कर उसे मार डालेगा ॥ ७२ ॥ गोपनायक नन्द भी उसकी कृपा से भगवान् विष्णु को पुत्र रूप में प्राप्त कर जगद्गुरु बनेगा। तीनों लोकों में उसकी विशद कीर्ति फैलेगी और वह सर्वजनपूजित होगा ॥ ७३ ॥ वहाँ व्रजवासिनी गोपकन्याएँ रूप और लावण्य से युक्त होगीं, श्रीहरि विष्णु को कृष्ण जानकर उनसे प्रेम करेगीं ॥ ७४ ॥ उनका समागम प्राप्त कर

स प्रसन्नो विमृश्याऽथ ता वक्ष्यति कुमारिकाः । असाध्यं वः प्रेप्सितं यन्नारायणसुसङ्गताः ॥
तुष्टोऽहं साधयिष्यामि सर्वथा तन्न संशयः । विदित्वा नन्दसदनभवां तां कृष्णसंश्रयाम् ॥ ७७ ॥
उपस्थास्यति सद्भक्त्या स्वोपास्यामेव तन्मयीम् । अथ सा कालरात्रिर्वै प्रसन्ना तेन संस्तुता ॥ ७८ ॥
आविर्भविष्यति शिवा भक्तमानसपूरणी । सा प्रवक्ष्यति तुष्टा तं विप्रवर्यं समीहितम् ॥ ७९ ॥
किन्ते तद्ब्रूहि मत्तस्त्वं मा चिरं समवाप्नुहि । अथ तां वक्ष्यति नत इमा गोपकुमारिकाः ॥ ८० ॥
विष्णुनांऽशावतीर्णेन प्राप्स्यन्त्यचिरसङ्गतम् । तत् प्रसाधय देवेशि एतन्मे काङ्क्षितं भवेत् ॥ ८१ ॥
अहं चिरं सेवितः सन् आभिः सर्वाऽऽत्मभावतः । दिशाम्यभीप्सितमिति सन्तुष्टोऽब्रुवमञ्जसा ॥
तन्मे मृषा न हि भवेत् कृपया तव शङ्करि । एवं कात्यायनवचः श्रुत्वा त्रिजगदीश्वरी ॥ ८३ ॥
विप्रं वक्ष्यति पुनरस्तु तन्मे द्विजोत्तम । परन्त्वत्र महान् काम एष तासां मनोगतः ॥ ८४ ॥
तन्मे व्रतं चरन्त्वेता मासेऽस्मिन्नाग्रहायणे । तव नाम्ना प्रसिद्धायाः कात्यायन्या यथाविधि ॥
ततः कामं दिशाम्युक्तमित्युक्त्वाऽन्तर्द्धिमेष्यति । ततस्ता वचनात्तस्य व्रतं कृत्वा यथाविधि ॥
प्रियं कृष्णं मनःकान्तं प्राप्स्यन्ति पुरुषोत्तमम् । इति श्रुत्वा कथां तत्र दत्तात्रेयं भृगूद्वहः ॥ ८७ ॥
पप्रच्छ भूयः सोत्साहो भगवन् करुणानिधे । व्रतं तत् किंविधं ब्रूहि आचरिष्यन्ति ताः कथम् ॥
कथं कात्यायनी प्रीता तासामिष्टं प्रदास्यति । पृष्ट एवं दत्तगुरुर्जामदग्न्येन हर्षितः ॥ ८९ ॥
शृणु वत्सेत्युपामन्त्र्य व्रतस्याऽऽह विधिं परम् । शृणु भार्गव वक्ष्यामि जानामि ह्यखिलाऽऽगमम् ॥
मार्गशीर्षस्याऽद्य तिथिं समारभ्य व्रतश्चरेत् । कात्यायन्याः पूर्णिमान्तं स्त्रीणामत्राऽधिकारिता ॥

यमुना के किनारे तपस्या करते हुए उनकी सेवा से प्रसन्न होकर कात्यायन मुनि सबको सन्तुष्ट करेंगे ॥ ७५ ॥ वे प्रसन्न होकर विचार करते हुए उन कन्याओं से कहेंगे—असाध्य की तुम सब कामना करती हो, भगवान् नारायण की संगति चाहती हो ॥ ७६ ॥ मैं तुम सबों से सन्तुष्ट हूँ, मैं तुम्हारे कार्य का सहायक बनूँगा, इसमें संशय मत करो। नन्दसदन में उत्पन्न श्रीकृष्ण की ॥ ७७ ॥ अपनी सच्ची भक्ति से उपासना करो, अपने उपास्य में तन्मय हो जाओ। तुम्हारी स्तुति से वह कालरात्री निश्चय ही प्रसन्न होगी ॥ ७८ ॥ वह शिवा जो भक्त के मन की बात पूरी करती है निश्चित रूप से आविर्भूत होगी। वह प्रसन्न होकर इस विप्रप्रवर की इच्छित बात अवश्य पूरी करेगी ॥ ७९ ॥ तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझसे कहो, देर मत करो—ये विनत गोप-कुमारिकाएँ उनसे कहेगीं। विष्णु के अंश से अवतीर्ण श्रीकृष्ण की संगति शीघ्र इन्हें मिलेगी, इसलिए देवेशि! यही मेरी कामना है, इसे आप पूरी करे ॥ ८०-८१ ॥ इन सबों ने आत्मभाव से बहुत दिन तक मेरी सेवा की है, इन्हें आप यथाशीघ्र अभीप्सित देगीं—ऐसा मैं इन्हें कह चुका हूँ ॥ ८२ ॥ हे शंकरि! तुम्हारी कृपा से मेरी बात झूठ नहीं होगी। कात्यायन की यह बात सुनकर त्रिलोकेश्वरी भगवती ॥ ८३ ॥ उस ब्राह्मण से फिर कहेगी—हे ब्राह्मण! यह तो होगा किन्तु इन गोपियों के मन में कामभावना भरी है ॥ ८४ ॥ इसलिए इस अग्रहण महीने में ये कुमारियाँ मेरा व्रत करेगीं और यह व्रत कात्यायनी के नाम से ही प्रसिद्ध होगा ॥ ८५ ॥ तब मैं काम को निर्दिष्ट करूँगी, यह कहकर भगवती त्रिपुरा तिरोहित हो गई। उसके बाद वे उनके वचन से विधिपूर्वक वह व्रत कर ॥ ८६ ॥ अपने मनोभिलषित प्रिय पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को प्राप्त करेगीं। यह कथा सुनने के बाद परशुराम ने दत्तात्रेय से पूछा ॥ ८७ ॥ हे करुणानिधि मेरे गुरु! मैं यह भी जानना चाहता हूँ, यह व्रत क्या है? इसका विधान क्या है? गोपकन्याओं ने इसे कैसे पूरा किया? ॥ ८८ ॥ भगवती कात्यायनी ने उन पर प्रसन्न होकर उन्हें अभीष्ट फल कैसे दिया? इस तरह पूछने पर प्रसन्न होकर गुरु दत्तात्रेय ने कहा ॥ ८९ ॥ बेटे! सुनो, मैं तुम्हें इस व्रत की परम विधि बतलाता हूँ। इसके सम्पूर्ण आगम स्वरूप को जो मैं जानता

स्नात्वोषसि नदीतीरे शुक्लवस्त्रादिभूषिताः। सैकतीं प्रतिमां कृत्वा कात्यायन्या यथाविधि॥
तत्र ध्यात्वा प्रोक्तवत्तां शुक्लमाल्याऽक्षतादिभिः। नवनीतप्रधानं वै नैवेद्यं विविधं भवेत्॥ ९३॥
एवं सम्पूज्य संस्तुत्य गीतनृत्यैश्च तोषयेत्। उद्वास्य सैकतीं मूर्तिं नद्यां निक्षिप्य भार्गव॥ ९४॥
मालवी सहदेवा च नन्दा भद्रा सुनन्दिनी। पद्मा विशाला गोदाम्नी श्रीदेवी देवमालवी॥ ९५॥
श्यामा सुपेशा शालाङ्गी मानवी मानदाऽमृता। इति गोपकुमारीणां प्रधानाः षोडशेरिताः॥
पूजाऽन्ते संस्मरेदेताः पूजासम्पूर्तिहेतवे। गोपीप्रिय नमस्तुभ्यं गोपाल गोव्रजेश्वर॥ ९७॥
गोपीवस्त्राऽपहरण गोगापालनिषेवित। मातः कात्यायनि नमो नन्दगोपकुमारिके॥ ९८॥
कंसवीर्यहरे कृष्णवीर्ये विन्ध्याऽद्रिवासिनि। इति देवीं कृष्णमपि नत्वा गां वत्ससंयुताम्॥ ९९॥
प्रदक्षिणीकृत्य दूर्वामुष्टिं तस्यै निवेदयेत्। हविष्यान्नं समश्नीयान्मासमात्रं समाहिता॥ १००॥
मासाऽन्ते शक्तितोऽभ्यर्च्य विशेषेण महेश्वरीम्। ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या नवनीतप्रधानतः॥
एवं व्रताऽऽचरणतो वाञ्छितं प्राप्यतेऽखिलम्। कुमारी लभते श्रेष्ठं पतिं सर्वसुखावहम्॥ १०२॥
तरुणी लभते पुत्रं पौत्रं पुत्रवती तथा। सौभाग्यं सर्वसौख्यानि लभते नाऽत्र संशयः॥ १०३॥

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कात्यायनी-
चरितं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३३३३॥



हूँ वह मैं बतला दूँगा॥ ९०॥ मार्गशीर्ष महीने की कृष्ण-प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ कर उसी महीने की पूर्णिमा तक यह कात्यायनी व्रत चलता है। इसकी अधिकारिणी औरत ही होती है॥ ९१॥ सबेरे नदी किनारे स्नान कर सफेद वस्त्र पहन कर यथाविधि कात्यायनी की प्रतिमा बालू से बनाकर॥ ९२॥ उस प्रतिमा का ध्यान कर सफेद पुष्प की माला और अक्षतों से पूजा करें। इनके अनेक नैवेद्यों में मक्खन प्रधान होता है॥ ९३॥ इस तरह उनकी पूजा और स्तुति कर नृत्य और गीत से उन्हें सन्तुष्ट करे। उसके बाद सैकत मूर्ति को हे परशुराम! विसर्जित कर नदी में प्रवाहित कर दे॥ ९४॥ मालती, सहदेवा, नन्द, भद्रा, सुनन्दिनी, पद्मा, विशाला, गोदाम्नी, श्रीदेवी, देवमालवी॥ ९५॥ श्यामा, सुपेशा, शालांगी, मानवी, मानदा और अमृता गोपकुमारियों में ये सोलह प्रधान हैं॥ ९६॥ पूजा के अन्त में पूजा-सम्पूर्ति के लिए इनका स्मरण करना चाहिए। हे गोपीप्रिय! तुम्हें प्रणाम है, हे गोपाल! हे व्रजेश्वर!॥ ९७॥ गोपी के वस्त्रों का अपहरण करने वाले! गाय और गोपालों से निसेवित कृष्ण को प्रणाम है। माता कात्यायनी को प्रणाम है, नन्दगोपकुमारिका को प्रणाम है॥ ९८॥ कंस के पराक्रम को मिटाने वाली, कृष्ण के शौर्य को बढ़ाने वाली, विन्ध्याचल पर निवास करने वाली देवी को तथा श्रीकृष्ण को भी प्रंणाम कर बछड़ा सहित गाय की॥ ९९॥ प्रदक्षिणा कर एक मुट्ठी दूब उन्हें देकर हविष्यान्न पूरा महीना भोजन करना चाहिए॥ १००॥ महीने के अन्त में अपनी शक्ति के अनुसार महेश्वरी की अर्चना कर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। भोजन में प्रधान रूप से मक्खन होना चाहिए॥ १०१॥ इस तरह व्रत का जो आचरण करता है, उसे सारे मनोवांछित फल मिलते हैं। कुमारी कन्या को सब सुख देने वाले श्रेष्ठ पति मिलते हैं॥ १०२॥ युवती को पुत्र मिलता है और पुत्रवती को पोते। व्रती को हर तरह का सौभाग्य मिलता है, हर तरह के सुख मिलते हैं, इसमें किसी तरह का संशय नहीं करना चाहिए॥ १०३॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कात्यायनी-
चरित नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३३३३॥



अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवन्नद्भुततमा श्रुता कात्यायनीकथा। मनागपि न तृप्यामि कथाऽमृतनिषेवणात्॥ १॥
भूय इच्छाम्यहं श्रोतुं कथं विन्ध्यनिवासिनी। जाता कात्यायनी देवी तन्मे वद दयानिधे॥ २॥
रामेणैवं समापृष्टो दत्तात्रेयोऽवदद्गुरुः। शृणु राम प्रब्रवीमि भविष्यं परमाऽद्भुतम्॥ ३॥
यदा कृष्णो मातुलं स्वं कंसं हत्वा च तत्पितुः। राज्यं निवेद्य पित्रादीन् यादवांस्तोषयिष्यति॥
तदा कंसस्य श्वशुरः पुत्रीप्रियचिकीर्षया। कालयिष्यति भूयो वै यादवान्मथुरास्थितान्॥ ५॥
तदा मागधसामीप्यान्नाशं मत्वा रमापतिः। यादवैः सहितः प्रत्यक्सागरे द्वारकां विशेत्॥ ६॥
अथ कृष्णं दूरगतं ज्ञात्वाऽघासुरसोदरौ। महाबलपरीवारौ निशुम्भशुम्भसंज्ञकौ॥ ७॥
कृष्णशत्रू दैत्यराजौ तत्सम्बन्धेन गोकुलम्। समेत्य क्रूरचरितावशङ्कं नाशयिष्यतः॥ ८॥
नेष्यतो नन्दनृपतिं बद्ध्वा गोपकुमारिकाः। तथा धनानि गावश्च तदा नन्दप्रिया सती॥ ९॥
कृष्णाऽनुरक्तगोपीभिः कात्यायनमुपेष्यति। आर्तां प्रपन्नां तां विप्रः कात्यायन्याः समुद्भवम्॥
प्रवक्ष्यति च सम्बन्धं ज्ञात्वा तां तनुजां स्वकाम्। यशोदा विस्मिता देवीमुपस्थास्यति भक्तितः॥
ततः प्रसन्नाऽऽविर्भूता तत्र कात्यायनी परा। मातरं तां समाश्वास्य सिंहवाहनमास्थिता॥
अनुयास्यति तौ दैत्यनाथौ शुम्भनिशुम्भकौ॥ १२॥

*** विमला ***

हे भगवन्! अद्भुततमा कात्यायनी की कथा मैंने सुनी। पर इस अमृत-सेवन से मुझे थोड़ी भी तृप्ति नहीं हुई॥१॥ फिर मैं यह सुनना चाहता हूँ कि देवी कात्यायनी विन्ध्याचल-निवासिनी कैसे बनी? हे दयानिधे! कृपया मुझे बतलाये॥२॥ परशुराम ने जब ऐसा पूछा तब गुरु दत्तात्रेय ने कहा—सुनो राम! मैं तुम्हें परमविस्मापक भविष्य बतलाता हूँ॥३॥ जब श्रीकृष्ण अपने मामा कंस को मार कर उनके पिता उग्रसेन को मथुरा का राज्य समर्पित कर पिता प्रभृति यादवों को सन्तुष्ट करेंगे॥४॥ तब कंस का श्वशुर पुत्रीप्रिय की कामना से मथुरा स्थित यादवों को फिर सतायेगा॥५॥ तब श्रीकृष्ण जरासन्ध के सामीप्य से यादवों का विनाश मानकर यादवों के साथ सागर के बीच द्वारका नगरी में प्रवेश करेंगे॥६॥ श्रीकृष्ण दूर चले गये—यह जानकर अघासुर नामक दो सोदर भाई जो शुम्भ और निशुम्भ नाम से विख्यात थे, महाबली और पराक्रमी थे॥७॥ वे दोनों ही दैत्यराज श्रीकृष्ण को अपना शत्रु मानकर उनसे सम्बन्धित गोकुल में प्रवेश कर निःशंक भाव से क्रूर आचरण करेंगे॥८॥ नन्द नृपति को वे बाँधकर तथा गोपकुमारियों, नन्दजी की गायें एवं उनके धनों का अपहरण कर ले जायेंगे। तब नन्दजी की प्रिय पत्नी यशोदा॥९॥ कृष्णानुरक्त गोपियों के साथ कात्यायन मुनि के आश्रम में जायेगी। उन्हें आर्त एवं शरणागत जानकर देवी कात्यायनी प्रकट होगी॥१०॥ सम्बन्ध की चर्चा में यह जानकर कि वह भगवती उनकी अपनी पुत्री है, उन्हें आश्चर्य होगा और भक्तिपूर्वक उनके पास पहुँचेगी॥११॥ उसके बाद प्रसन्न होकर परा भगवती कात्यायनी सिंह पर सवार होकर आविर्भूत होगी, माता यशोदा

भविष्यति ततो युद्धं सुभीमं दैत्यनाशनम्। यमुनाकूलमासाद्य दिनानि त्रीणि पञ्च च॥ १३॥
मोचयित्वा नन्दमुखान् गोपकन्याश्च सर्वतः। अनुयास्यति तान् हन्तुं दैत्यान् बलसुदर्पितान्॥
देवीवीर्येण सन्त्रस्ताः पलायिष्यन्ति तेऽसुराः। तदा देवी प्रार्थिता सा मातरेते महासुराः॥ १५॥
नार्हन्त्युपेक्षां हनने यतः कलियुगे जनाः। हीनसत्त्वा भविष्यन्ति तानेकोऽप्येषु नाशयेत्॥ १६॥
ततो हन्तुमिमान् दैत्यान् समर्हसि महेश्वरि। एकोऽप्यत्राऽवशेषश्चेत् प्रवृत्तिर्न कलौ भवेत्॥
तस्मान्निःशेषतस्त्वेनानविचार्यं हनिष्यसि। प्रार्थितैवं दैत्यगणान् हन्तुमेव प्रयास्यति॥ १८॥
ततो निशुम्भः स्वं स्थानं विन्ध्यकन्दरसंस्थितम्। देवखातं महाभीमं निविशिष्यति वै तथा॥
शुम्भो यास्यति जाह्नव्यां दरीमन्यामनीकिनीम्। एवं त्रिधा विद्रुतेषु दैत्येष्वथ महेश्वरी॥ २०॥
कात्यायनी त्रिधा भूत्वा दैत्याननुद्रविष्यति। प्रविश्य देवकी तन्तु निशुम्भं निहनिष्यति॥ २१॥
कालीरूपेण तत्सेनां भक्षयिष्यति चाऽपरा। शुम्भं हनिष्यति परा विन्ध्याऽग्रे गाङ्गरोधसि॥
एवं दैत्यान् त्रिरूपेण हत्वा कात्यायनी परा। त्रिरूपेण स्थिता तत्र लोके रक्षणहेतवे॥ २३॥
अथ देवाः समागत्य स्तोष्यन्ति विवधैः स्तवैः। भविष्यति प्रसन्ना सा देवानां वरदा तदा॥ '२४॥
महेश्वरि त्रिधैव त्वमेषु स्थानेषु सुस्थिरा। तिष्ठ भूयः कलियुगे दैत्यबाधाविमुक्तये॥ २५॥
त्वां दैत्यनाशिनीं दृष्ट्वा प्रभविष्यन्ति नाऽसुराः। वयं भुवि समागत्य पूजयामः सुपर्वसु॥ २६॥

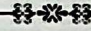
को आश्वासन देकर शुम्भ-निशुम्भ नामक दोनों दैत्यों के पास जायेगी। यमुना नदी के किनारे दोनों दैत्यों के साथ आठ दिनों तक भगवती कात्यायनी का भयंकर युद्ध होगा॥ १२-१३॥ उसके बाद नन्द जी को तथा गोपकन्याओं को छुड़ाकर बल से दर्पित उन दैत्यों को मारने के लिए जायेगी॥ १४॥ भगवती के पराक्रम से सम्पन्न होकर वे दैत्य भागेंगे, तब माँ की प्रार्थना से वह देवी इन महासुरों को॥ १५॥ मारने में इनकी उपेक्षा सह नहीं सकेगी, क्योंकि कलियुग में लोग सत्त्वहीन हो जायेंगें, तब इनमें से कोई एक दैत्य भी उनका विनाश कर देगा॥ १६॥ तब इन दैत्यों को मारने में भगवती ही समर्थ होगी, क्योंकि इनमें एक भी अगर बचा रह जायेगा तो वह कलियुगी लोगों के क्रिया-कलाप को ठप कर देगा॥ १७॥ इसलिए इन्हें निःशेष कर देना ही उचित होगा, ऐसा सोचकर भगवती उन्हें मारेगी। ऐसी प्रार्थना से प्रभावित भगवती दैत्यों को मारने ही जायेगी॥ १८॥ तब निशुम्भ अपने लिए जगह खोजकर विन्ध्याचल के देवखात नामक कन्दरा में, जो बड़ा ही भयंकर था, प्रवेश करेगा॥ १९॥ शुम्भ जाह्नवी नदी में प्रवेश करेगा और उसकी सेना घाटी में प्रवेश करेगी। इस तरह तीन खण्डों में विभक्त इन दैत्यों को भगवती महेश्वरी॥ २०॥ कात्यायनी अपने तीन रूप धारण कर उसे मारने के लिए उसके पीछे जायेगी। वह मगरमच्छ के शरीर में प्रवेश कर निशुम्भ को मारेगी॥ २१॥ काली रूप से उसकी सेना का भक्षण करेगी और विन्ध्याचल के आगे गंगा को रोकने वाले शुम्भ को परा रूप में मारेगी॥ २२॥ इस तरह कात्यायनी तीन रूप धारण कर दैत्यों को मार कर तीनों लोकों की रक्षा कर वहीं रुकेगी॥ २३॥ इसके बाद देवगण वहाँ आकर अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुति करेंगें। उन पर प्रसन्न होकर देवताओं को वह वरदान देगी॥ २४॥ हे महेश्वरि! तुम तीन रूप धारण कर यहीं विन्ध्याचल में सुस्थिर रहोगी। कलियुग में दैत्यों की बाधा से मुक्ति के लिए तुम यहाँ रहो॥ २५॥ तुम दैत्यनाशिनी को देखकर असुर यहाँ नहीं आयेंगे। हम देवगण पर्व-पर्व पर धरती पर पहुँचकर तुम्हारी पूजा करेंगे॥ २६॥ कलियुग में लोग काममय हो जायेंगे, दम्भी

कलौ काममया लोका दम्भाऽनृतपरायणाः । पिशुनाः पापनिरता नास्तिका धर्मबाधकाः ॥
कामुकास्तत्र पुरुषा गमिष्यन्त्यपि मातरम् । स्नुषां तनूजां भगिनीं कामयिष्यन्ति कामुकाः ॥
स्त्रियं पतिविरोधिन्यः प्रत्यास्यन्त्यन्त्यजानपि । भार्योपजीव्या भर्तारः कन्याजीव्याश्च मातरः ॥
विक्रयिण्यः स्त्रियो योनेः पण्यस्येव यथाऽऽपणे । अन्त्यजाऽध्यापका विप्रा वृथा पशुविहिंसकाः ॥
धनार्थमविधानेन याजयिष्यन्त्यवैदिकान् । धनार्थं मातरं पुत्रं पितरं पतिमेव च ॥ ३१ ॥
गुरुं मित्रञ्च विश्वस्तमपि घ्नन्ति परस्परम् । धर्मवार्तां ज्ञानवार्तां वदिष्यन्ति गृहे गृहे ॥ ३२ ॥
आचरिष्यन्त्यविहितं ज्ञाननिष्ठासमीरणाः । तान्त्रिकाभासमार्गाणि संश्रित्य द्विजबन्धवः ॥
दूषयिष्यन्ति सन्मार्गं वेदागमसमाश्रयम् । अविधानेन यास्यन्ति क्रतुभेदेषु ब्राह्मणाः ॥ ३४ ॥
सोमं सुराञ्च मांसानि भक्षयिष्यन्ति तर्षया । शास्त्राणि कल्पयिष्यन्ति स्वस्वाऽभिमतसम्मितम् ॥
प्रायः सर्वे खलाः स्तब्धा वञ्चकाः सर्वदूषकाः । हीनवर्णा उत्तमानां गुरवश्चोपदेशकाः ॥ ३६ ॥
तपःपरायणाः शूद्रा ब्राह्मणाश्च श्ववृत्तयः । स्त्रीजीवना नृपतयो वैश्याश्चौर्यपरायणाः ॥ ३७ ॥
शासिष्यन्ति महीमेतामन्त्यजाताश्च भूयशः । आगमाभासमाश्रित्य द्विजमुख्या अपीश्वरि ॥ ३८ ॥
पास्यन्ति मदिरां कामाद्गच्छन्त्यखिलयोनिषु । वेदागमप्रविहितं हित्वा कामपरायणाः ॥ ३९ ॥
बौद्धाऽऽर्हतम्लेच्छमार्गान् संश्रयिष्यन्ति सर्वशः । एवंविधानामत्यन्तकामिनां कामपूर्तितः ॥
त्वद्दर्शनादेव गतिर्भवेन्नह्यन्यथा क्वचित् । एवं सुरैः प्रार्थिता सा त्रिरूपा विन्ध्यवासिनी ॥ ४१ ॥

होंगे, दिन-रात झूठ बोलेंगे, चुगलखोर होंगे, पापकर्म में ही डूबे रहेंगे, नास्तिक और धर्मकार्य में बाधा पहुँचायेंगे॥ २७॥ कलियुगी लोग इतने कामी होंगे कि अपनी माँ के साथ भी गमन करेंगे। ये कामुक जन अपनी बहन, बेटी और भगिनी तक की भी कामना करेंगे॥ २८॥ नारियाँ पति-विरोधिनी होगी, पति को डराने वाली होगी, माताएँ कन्याजीव्या होगी॥ २९॥ नारियाँ हाट बाजार में जाकर योनि-विक्रय करेगीं, अन्त्यज ब्राह्मणों के अध्यापक होंगे। ब्राह्मण निरर्थक पशुओं की हत्या करेंगे॥ ३०॥ धनार्जन के लिए अनैतिक ढंग से वेदविहीन लोग यज्ञ करेंगे। धन के लिए माता को, पुत्र को, पिता को और पति को॥ ३१॥ गुरु को, मित्र को तथा विश्वस्त लोगों को भी मारेंगे। घर-घर में धर्म की वार्ता, ज्ञान की वार्ता लोग करेंगे॥ ३२॥ पर अनीति वाला काम सब करेंगे। ज्ञाननिष्ठ व्यक्ति भी भटकेंगे, ब्राह्मण-गण तान्त्रिक आभास वाले मार्ग का आश्रय ग्रहण करेंगे॥ ३३॥ ब्राह्मण-समूह जो वेद और आगम मार्ग के अनुयायी हैं, वे सन्मार्ग छोड़कर धर्म को दूषित करेंगे। यज्ञों के भेदों में वे ब्राह्मण विधान रहित होकर कर्म करेंगे॥ ३४॥ सोमरस और सुरा पीयेंगे तथा मांस भक्षण करेंगे, कामना से अपने मन के मुताबिक शास्त्रों की रचना करेंगे॥ ३५॥ प्रायः सभी दुष्ट होंगे, स्तब्ध होंगे, वंचक होंगे, सबको दूषित करने वाले होंगे। नीच जाति के लोग उच्च जाति के लोगों के गुरु होंगे, उपदेशक होंगे॥ ३६॥ शूद्र तपपरायण होंगे, ब्राह्मण श्ववृत्ति धारण करेंगे, क्षत्रिय स्त्रीजीवी होंगे और वैश्य चोरी करेंगे॥ ३७॥ पुनः इस धरती का शासन अत्यज करेंगे। आगम नहीं, आगम का आभास लेकर द्विजप्रमुख जीयेंगे॥ ३८॥ शराब पीयेंगे, कामी इतने होंगे कि किसी भी जाति की महिला का संगम करेंगे। वेद और आगम की मुख्य धारा को छोड़कर काम में ही डूबे रहेंगे॥ ३९॥ बौद्ध और अर्हत भी हर जगह मलेच्छ मार्ग पर चलेंगे। इस तरह अत्यन्त कामी लोगों की कामना पूरी होगी॥ ४०॥ हे देवि! ऐसे पतित लोगों का उद्धार तो तुम्हारे दर्शन से ही सम्भव होगा एवं इस तरह देवताओं के

लोकान् सर्वान् समुद्धर्तुं संस्थास्यति महीतले। एतत्तेऽभिहितं देव्या भूयः शुम्भनिषूदनम्॥ ४२॥
श्रुत्वैतत् सर्वपापेभ्यो मुच्यते वाञ्छितं लभेत्। इति तेऽभिहितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कात्यायनी-चरितं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३३७६॥



प्रार्थना करने पर त्रिरूपा विन्ध्यवासिनी॥ ४१॥ सभी ऐसे लोगों के उद्धार के लिए धरती पर स्थापित होगी। हे भगवती! ये तुम्हारा अविधान कहा गया, अब शुम्भवध की बात होगी॥ ४२॥ हे परशुराम! यह कथा सुनकर सब तरह के पापों से लोगों को मुक्ति मिलेगी और अभिलषित फल मिलेगा। यह तो मैंने तुम्हें सुना दिया, अब आगे क्या सुनोगे? बतलाओ॥ ४३॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कात्यायनी-चरित नामक इकतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३३७६॥



अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

जामदग्न्यः प्राह ततः श्रुत्वा कात्यायनीकथाम्। कथारसाऽऽकृष्टचेताः प्रमोदितशुभाऽन्तरः॥
भगवन्नाथ करुणामूर्ते त्वत्कीर्तितां कथाम्। भूयो मे शृण्वतो नास्ति तृप्तिः स्वल्पाऽपि कुत्रचित्॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि वृत्तं शुम्भनिशुम्भयोः। अतीतमपि तौ यद्वद्धतौ किंबलपौरुषौ॥ ३॥
कया मूर्त्या कथं युद्धमभूत् सर्वमशेषतः। वद मे भगवन्नाऽन्यो वक्ताऽस्य सुलभो भुवि॥ ४॥
अवधूतगुरुस्त्वेवं पृष्टो रामेण तां कथाम्। प्राह क्रमेण शिष्याय प्रीतः प्रीत्या कथाश्रुतौ॥ ५॥
जामदग्न्य शृणु कथामेतां परमपावनीम्। चण्डिकामहिमायुक्तां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्॥ ६॥
सुमेधसा ब्राह्मणेन सम्प्रोक्तां सुरथाय वै। मधुकैटभनामानावादिदैत्यौ महाबलौ॥ ७॥
युयोध याभ्यां श्रीविष्णुर्वर्षसहस्रपञ्चकम्। छलेन तेन निहतौ मेदिनीयं यतोऽभवत्॥ ८॥
मेदिनी मेदसा व्याप्ता तयोर्देहस्य वै ततः। तयोर्वंशे समभवन्निशुम्भः शुम्भ एव च॥ ९॥
चेरतुस्तप अत्युग्रं वर्षाणामयुताऽष्टकम्। ततो विधिः प्रसन्नोऽभूत्तयोर्वरचिकीर्षया॥ १०॥
तौ वव्राते वरं स्वेष्टं सर्वलोकभयावहम्। सर्वाऽजेयत्वमथ तज्ज्ञात्वा लोकविधिस्तदा॥ ११॥
पुरुषैस्त्वमजेयोऽसीत्युक्त्वा शुम्भं परं तथा। अन्तर्धानं ययौ तेन वरेण दैत्यपुङ्गवौ॥ १२॥
अजेयौ सर्वलोकानां दैत्यौ तौ सम्बभूवतुः। विजित्य लोकांस्त्रीन् दैत्यौ त्रैलोक्यश्रियमापतुः॥

*** विमला ***

जामदग्नि ने कहा—कात्यायनी की कथा सुनकर कथारस की ओर आकृष्ट मेरा चित्त भीतर से अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है॥ १॥ हे भगवन्! हे नाथ! हे दयामूर्ते! आपके द्वारा कही गई कथा सुनते हुए मेरे मन को थोड़ी भी परितुष्टि नहीं मिलती है॥ २॥ इसलिए अब मैं शुम्भ-निशुम्भ की कथा सुनना चाहता हूँ। समय बीत जाने पर भी मैं यह जानना चाहता हूँ कि किस बल और पुरुषार्थ से वे दोनों मारे गये?॥ ३॥ किस मूर्ति के साथ कैसे युद्ध हुआ? यह पूरी कथा मुझे आप सुनायें। क्योंकि आपके सिवा इस धरती पर कोई दूसरा व्यक्ति सुलभ नहीं है॥ ४॥ अवधूत गुरु दत्तात्रेय को परशुराम ने जब इस तरह पूछा तब गुरु ने शिष्य के लिए प्रसन्न होकर यह कथा कहना प्रारम्भ किया॥ ५॥ हे परशुराम! सुनो। यह कथा परम पवित्र है, चण्डिका की महिमा से युक्त है, हर तरह की सिद्धि देने वाली है॥ ६॥ सुरथ वैश्य को सुमेधस नामक ब्राह्मण ने यह कथा सुनायी थी। मधु-कैटभ नाम के दो महाबली दैत्य हुए॥ ७॥ उनके साथ पाँच हजार वर्षों तक विष्णु ने युद्ध किया। अन्त में छल से विष्णु ने उन्हें मार गिराया, जिनकी मेदा से यह मेदिनी अर्थात् धरती बनी॥ ८॥ उन दोनों की देह से निकली चर्बी और वसा से ही मेदिनी व्याप्त हुई। उन्हीं के वंश में शुम्भ और निशुम्भ दो दैत्य उत्पन्न हुए॥ ९॥ अस्सी हजार वर्षों तक उन्होंने कठोर तप किया, इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वर माँगने को कहा॥ १०॥ उन दोनों ने सर्वलोकभयावह और सर्व-विजेता का वर माँगा। यह जानकर तब विधाता ने॥ ११॥ कहा—ठीक है, तुम्हें कोई पुरुष नहीं जीतेगा। इतना कहकर ब्रह्माजी तिरोहित हो गये और इस वर के प्रभाव से॥ १२॥ ये दोनों ही दैत्य तीनों लोक में अजेय बन गये। तीनों लोकों को जीत कर ये त्रिलोकाधिपति बन गये॥ १३॥ शुम्भ स्वर्गाधिपति बना और निशुम्भ पृथिवीपति बना;

शुम्भोऽभवत् स्वर्गपतिर्निशुम्भो भूपतिर्बभौ। कौबेरमथ याम्यञ्च वारुणं नैर्ऋतं पदम्॥ १४॥
आग्नेयं वायवीयञ्च पदं शुम्भो ददौ क्रमात्। दैत्यानामेव भ्रातॄणां पुत्राणाञ्च विभागतः॥ १५॥
एवं दैत्यहृतैश्वर्या देवा दैन्यं समागताः। दुर्गेषु वनराजीषु चेरुर्भीताः सुरेश्वराः॥ १६॥
एवं ते स्वपदभ्रष्टाः सुरा दैन्यं समाश्रिताः। मर्त्यलोकेषु दैत्येभ्यो भीता गुप्तस्वरूपिणः॥ १७॥
मनुष्यवेषैराच्छन्नाः कन्दराऽन्तर्वनेष्वपि। तापसं वेषमाश्रित्य जटावल्कलचीरिणः॥ १८॥
इन्द्रादयः समभवंस्तथाऽन्ये पक्षिरूपिणः। एवं वर्षाऽयुतशतं देवाः स्वस्वपदच्युताः॥ १९॥
शासन्ति दैत्या जगतीं सर्वतः शुम्भपालिताः। हविर्भागानप्सरसो मृतकल्पमहीरुहान्॥ २०॥
ऐरावतं नन्दनादीनाच्छिद्य बुभुजुर्बलात्। आददुः सर्वरत्नानि लोकत्रयगतान्यपि॥ २१॥
मर्त्यलोके न कुत्रापि देवयज्ञः प्रवर्तते। आसुराः क्रतवः सर्वे शुम्भशासनतोऽभवन्॥ २२॥
शुम्भः प्रावर्तयद्वेदान् साङ्गान् विद्यासमन्वितान्। पुराणं कल्पसूत्रञ्च धर्मशास्त्रमशेषतः॥ २३॥
तथा तत्फलदान् लोकानुत्तमाधममध्यमान्। स्वर्गांश्च नरकांश्चैव शासति स्वमतेन सः॥ २४॥
तदाऽतिक्लेशिता देवाः शक्रमुख्याः समेत्य ते। ययुः शतधृतेर्लोकमसुरैरविलक्षिताः॥ २५॥
अथ तत्र समासीनं धातारं सिद्धसेवितम्। प्रज्वलद्वह्निकूटाभं विष्वक्तेजोभिराततम्॥ २६॥
चतुर्भिर्मुकुटैर्युक्तं चतुःशृङ्गमहीध्रवत्। मूर्तिमद्भिः श्रुतिगणैर्विद्याभिः सेवितं विभुम्॥ २७॥
दूरादेवाऽमराः सर्वे दण्डवत्प्रणतास्तदा। उत्थाय मूर्ध्नि विन्यस्याऽञ्जलिबन्धं प्रतुष्टुवुः॥ २८॥
दृष्ट्वाऽपरान् स्तुतिपरान् दीनानपहृतश्रियः। प्राह शक्रमभिप्रेक्ष्य विधिः सर्वविभावनः॥ २९॥

कुबेर, यम, वरुण और नैर्ऋत का पद प्राप्त किया॥ १४॥ अग्नि और वायु का पद क्रमशः शुम्भ ने निशुम्भ को दिया। दोनों दैत्यों के पुत्रों के बीच इन पदों का बँटवारा कर दिया॥ १५॥ इस तरह दैत्यों के द्वारा देवताओं का ऐश्वर्य छीन लिये जाने के बाद देवगण अत्यन्त दीन हो गये। देवराज इन्द्र दैत्यों के डर से खण्डहरों, जंगलों में छिपने लगे॥ १६॥ यहाँ तक कि वे देवगण अपने पद से भ्रष्ट होकर दैन्यभाव को प्राप्त किये और दैत्यों से डरकर छद्म वेश बनाकर मनुष्यलोक में निवास करने लगे॥ १७॥ मनुष्य वेश में छिपे पर्वत की कन्दराओं में और जंगलों में भी तापस का वेश बनाकर, जटा-वल्कल धारण कर घूमते रहे॥ १८॥ तापस वेश तो इन्द्रादि प्रमुख देवगणों का था, पर अन्य देवगणों का चिड़ियों का रूप था। इस तरह अपने-अपने पद से च्युत देवगण लाख वर्ष तक छिपते फिरे॥ १९॥ इधर दैत्यगण शुम्भपालित सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करते थे। हविर्भाग, अप्सराएँ, अमृत और कल्पवृक्ष का ये उपभोग करते थे॥ २०॥ ऐरावत, नन्दनवन बाहुबल से छीनकर तीनों लोकों के सभी रत्नों का भी उपभोग करते थे॥ २१॥ मर्त्यलोक में कहीं भी कोई देवयज्ञ नहीं करता था। शुम्भ-शासन के अधीन सभी आसुरी यज्ञ करते थे॥ २२॥ शुम्भ ने सांग, सविद्या पुराना कल्पसूत्र और धर्मशास्त्र तथा वेदों को बदल डाला॥ २३॥ तथा उनका फल लोगों को उत्तम, मध्यम और अधम कोटि से देता था। स्वर्ग और नरक का शासन भी ये दैत्य अपने मन से ही करते थे॥ २४॥ उसके बाद अतिक्लेशित इन्द्रादि देवगण एक साथ मिलकर इन दानवों से छिपकर ब्रह्मलोक पहुँचे॥ २५॥ सत्यलोक में विधाता को बैठे देखा, सिद्धगण उनकी सेवा में लगे थे, वह्नि की ज्वाला की तरह वे प्रज्वलित थे, उनके चारों ओर से सूर्य का तेज निकल रहा था॥ २६॥ चार चोटी वाले पहाड़ की तरह चार मुकुट उनके माथे पर शोभ रहे थे। चारों वेद और विद्याओं से सेवित मूर्तिमान् विभु की तरह वे थे॥ २७॥ दूर से ही सभी अमरगण दण्डवत् प्रणत थे। अंजलिबद्ध देवताओं को उठाकर सन्तुष्ट होते हुए ब्रह्मा ने हाथ रखा॥ २८॥ अपहृत शोभा वाले अत्यन्त दीनावस्था में स्तुति करते हुए देवताओं को देखकर सर्वविभावन इन्द्र को

देवेश ब्रूहि किं तेऽद्य कारणं समुपागमे। इति पृष्टः शतमुखः कृताञ्जलिरुवाच तम्॥ ३०॥
धातः शुम्भनिशुम्भाभ्यां बलिभ्यां वरदानतः। हृतं त्रिभुवनेशित्वं वयमेव निराकृताः॥ ३१॥
बद्धाः कथञ्चिन्निर्मुक्ताश्छन्नरूपा वनाऽद्रिषु। हतश्रियो हतबलाः कृपणाः प्राकृता इव॥ ३२॥
इन्द्रचन्द्रकुबेरेशवरुणाऽग्निमरुत्पदम्। आच्छिद्य दानवैः सर्वं भुज्यते तत्तु नित्यशः॥ ३३॥
तद्ब्रूहि नः कृत्यतमं शुम्भं प्रकृतिदं पुनः। दीनानां नो विपत्त्राणे नास्त्यन्यस्त्वदृते क्वचित्॥
इति श्रुत्वा शक्रवचो विधिः क्षणमचिन्तयत्। ततः प्राह सुरेशं तं ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ३५॥
निशम्यतां देवपते यदत्राऽनन्तरं भवेत्। नेमौ वध्यौ विष्णुमुखैरपि पुम्भिः कदाचन॥ ३६॥
न योषिदपरा काचिदस्त्यस्य प्रतिविक्रमा। त्रिपुरां परमेशानीं प्रभवेत विनाऽत्र का॥ ३७॥
तद्वयं हरिणा युक्ता हरेण च सुसंयताः। प्रसादयामस्तां देवीं जगद्यात्राप्रसिद्धये॥ ३८॥
इत्युक्त्वा शिवविष्णुभ्यां देवैरपि युतो विधिः। गत्वा त्रिपथगातीरं हिमवच्छृङ्गमद्भुतम्॥ ३९॥
प्रणताः परमेशानीं देवास्त्रिभुवनेश्वराः। बद्धाञ्जलिपुटा भक्त्या तुष्टुवुर्विश्वभावनीम्॥ ४०॥
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ४१॥
इत्यादिविविधैः स्तोत्रैरस्तुवन् भक्तिभावनाः। अथ प्रसन्ना परमा त्रिपुरेशी महेश्वरी॥ ४२॥
भवानीं प्राहिणोत्तत्र देवानां सुकृतेच्छया। एवं सा प्रहिता देव्या पार्वती सखिभिर्वृता॥ ४३॥
ययौ स्नातुमिवाऽऽरात्तान् देवान् दृष्ट्वाऽऽब्रवीद्वचः। अविदन्तीव के यूयं किमर्थमिह सङ्गताः॥
एवं पृष्टाः सुराः प्राहुः शुम्भदैत्यनिराकृताः। वयं देवा इह प्राप्ता देवीं तां शरणागताः॥ ४५॥

अभिलक्ष्य कर कहा॥ २९॥ हे देवेश! बोलो, आज यहाँ आने का तुम्हारा क्या कारण है? ब्रह्मा के ऐसा पूछने पर इन्द्र ने अंजलिबद्ध होकर उनसे कहा॥ ३०॥ हे विधाता! आपके वरदान से बलवान् शुम्भ और निशुम्भ ने त्रिभुवन का स्वामित्व ही अपहृत कर लिया। हम सब निकाल बाहर किये गये॥ ३१॥ उस दैत्य के बन्धन से किसी तरह मुक्त होकर जंगलों में पर्वत-घाटियों में हतश्री, हतबल, दुःखी प्राकृत पुरुषों की तरह घूम रहे हैं॥ ३२॥ इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, ईश, वरुण, अग्नि और मरुत का पद छीनकर दैत्यगण प्रतिदिन उसका उपभोग कर रहे हैं॥ ३३॥ इसलिए हमारा क्या कर्तव्य होगा? आप निर्दिष्ट करे। शुम्भ के अधिकार में ये सारी वस्तुएँ हैं, हम दीनों को इस विपत्ति से आपके अतिरिक्त कोई दूसरा त्राण नहीं दिला सकता॥ ३४॥ इन्द्र की यह बात सुनकर विधाता कुछ क्षण तक सोचते रहे, फिर लोकपितामह ब्रह्मा ने देवराज से कहा॥ ३५॥ हे देवपते! यहाँ क्या अन्तर होगा—इसे आप सुने। विष्णु-प्रमुख पुरुष देवताओं से ये दोनों दैत्य कभी नहीं मारे जायेंगे॥ ३६॥ बची नारी, वह कोई ऐसी नारी नहीं है जो इसका प्रतिबल हो। अतः परमेश्वरी त्रिपुरा के बिना इसे अन्य कोई भी पराजित नहीं कर सकता॥ ३७॥ इसलिए हम सभी विष्णु और शिव के साथ मिलकर जगत्-यात्रा के लिए प्रसिद्ध देवी त्रिपुरा को प्रसन्न करेंगे॥ ३८॥ इतना कहकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हिमालय की चोटी पर बहती गंगा नदी के किनारे जाकर॥ ३९॥ तीनों लोकों के स्वामी देवगण ने प्रणत भाव से भक्तिपूर्वक बद्धाञ्जलि होकर उनकी स्तुति की॥ ४०॥ हम महादेवी को प्रणाम करते हैं। शिवा को प्रणाम करते हैं। प्रकृति को प्रणाम करते हैं, नियत देवी को प्रणाम करते हैं॥ ४१॥ इस प्रकार भक्तिभाव से पूर्ण अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुति की। इससे वह परमा त्रिपुरेश्वरी महेश्वरी परम प्रसन्न हुई॥ ४२॥ देवताओं की इच्छा के अनुसार देवी त्रिपुरा ने गौरी को प्रेरित किया। भगवती से प्रेरित होकर देवी पार्वती सखियों से घिरी॥ ४३॥ स्नान करने गङ्गा नदी पहुँची। वहाँ अपने से कुछ दूर देवताओं को देखकर गौरी ने कहा—अनजाने ही तुम सब कौन हो और यहाँ किसलिए आये हो?॥ ४४॥ इस तरह

श्रुत्वा पुनः प्राह गौरी भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का। इति चण्डक्रोधयुता ज्वलदग्निशिखोपमा॥ ४६॥
भिन्ननीलमणिप्रख्या काली क्रोधेन साऽभवत्। अथ तस्याः शरीरात्तु निर्गता त्रिपुरांऽशतः॥
रूपमत्युत्तमं कृत्वा शक्तिः शुम्भवधेहया। प्राह गौरीं सुरगणैः स्तुताऽहं शुम्भपीडितैः॥ ४८॥
नाशयिष्यामि तौ शुम्भनिशुम्भौ दानवेश्वरौ। सहिताऽहं त्वया कालि देवानां प्रियकारिणि॥
भाषन्तीमिति तां देवीं विधातृप्रमुखाः सुराः। उच्चैर्जयेति शब्देन वर्धयामासुरम्बिकाम्॥ ५०॥
अथ ब्रह्मा प्राह परां स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः। पार्वत्याः क्रोधयुक्ताया देहाद्यस्मात्समुद्गता॥ ५१॥
चण्डिकेति ततो लोके नाम तेऽस्तु महेश्वरि। तन्मध्ये शुम्भदैत्यस्य मन्त्रिणावसुराऽधिपौ॥ ५२॥
चण्डमुण्डाविति ख्यातौ मृगयातत्परौ वने। जयशब्दं समाकर्ण्य तद्विज्ञातुं समागतौ॥ ५३॥
दृष्ट्वा तावसुरावुग्रौ भीताः शक्रमुखाः सुराः। निलिल्युर्वृक्षखण्डेषु कन्दरेषु जलेषु च॥ ५४॥
अथ चण्डः समालोक्य चण्डिकां लोकमोहिनीम्। मुण्डश्च कामसन्तप्तौ ग्रहीतुं तामुपेयतुः॥
का त्वं पद्मपलाशाक्षि वनेऽस्मिन् विजने स्थिता। मां वा ममाऽनुजं वाऽपि स्वीकुरुष्व यथेप्सितम्॥
तारुण्यलावण्यपूर्णहृतं मे मानसं त्वया। ईक्षामात्रेण सर्वाङ्गसुन्दरि त्वमुपैहि माम्॥ ५७॥
अहं त्रिभुवनेशस्य शुम्भस्याऽमात्य उत्तमः। मां भज प्रीतिसंयुक्ता नो चेन्नेष्यामि त्वां बलात्॥
इत्युक्त्वाऽभिससाराऽऽशु ग्रहीतुं तां करे द्रुतम्। तावत्काली चण्डिकया दृष्टा तौ जगृहे बलात्॥
शिरो गृहीत्वा हस्ताभ्यां तयोः काली बलीयसी। घातयामास चान्योऽन्यं ततस्तौ मूर्च्छितौ भुवि॥

पूछने पर देवताओं ने कहा—हम सबको शुम्भ दैत्य ने निकाल बाहर किया है। हम देवगण आपके शरणागत हैं॥ ४५॥ सुनकर गौरी ने कहा—आप सब स्तुति क्या कर रहे हैं? यह कहते हुए अत्यन्त क्रुद्ध हो गईं। चण्ड क्रोध के कारण वह अग्निशिखा की तरह जलने लगीं॥ ४६॥ नीलमणि के टुकड़े के समान क्रोध से वह काली हो गई। त्रिपुरा के अंश से ही उसकी उत्पत्ति हुई॥ ४७॥ शक्ति ने अति उत्तम रूप बनाकर शुम्भवध की चाह से तैयार होकर गौरी को कहा—शुम्भ से पीड़ित देवताओं से हम स्तुत हैं॥ ४८॥ हम आपके साथ मिलकर दानवेश्वर शुम्भ-निशुम्भ का विनाश करेंगे। हे कालि! आप तो देवताओं को समीहित देते वाली ही हैं॥ ४९॥ चमकती हुई उस देवी को विधाता-प्रमुख देवताओं ने जय-जयकार कर बढ़ाया॥ ५०॥ पार्वती के क्रोधित शरीर से ये शक्तियाँ निकली थीं, इसलिए उन्हें बार-बार प्रणाम करते हुए स्तुति कर देवताओं ने कहा॥ ५१॥ हे महेश्वरि! आप अपने इस रूप के कारण संसार में चण्डिका के नाम से ख्यात होंगी। इसी बीच असुराधिप शुम्भ के दो मन्त्री॥ ५२॥ जो चण्ड और मुण्ड के नाम से विख्यात थे, जंगल में शिकार के लिए आये थे; जय-जयकार की ऊँची आवाज सुनकर जानकारी के लिए इधर बढ़ आये॥ ५३॥ इन उग्र असुरों को देखकर इन्द्रादि देवगण पेड़ों की ओट में, पर्वतकन्दराओं में और जल में अपने को छिपा लिया॥ ५४॥ चण्ड लोकमोहिनी चण्डिका को देखकर और मुण्ड उनके रूप पर कामासक्त होकर उन्हें पकड़ना चाहा॥ ५५॥ हे पद्मपलाशाक्षि! इस विजन वन में तुम कौन हो? मुझे या मेरे भाई को जिसे तुम चाहो, उसे स्वीकार कर लो॥ ५६॥ अपनी जवानी और सौन्दर्य से तुमने तो मेरा दिल ही जीत लिया। ओ सर्वाङ्गसुन्दरी! स्वेच्छा से तुम मेरे पास आ जाओ॥ ५७॥ त्रिभुवनेश्वर शुम्भ का मैं अमात्य (सचिव) हूँ। प्रेम से मुझे वरण कर लो, अन्यथा बलपूर्वक तो हम तुम्हें साथ ले ही जायेंगे॥ ५८॥ यह कहकर उनका हाथ पकड़ने के लिए वह आगे बढ़ा ही था कि काली चण्डिका ने लपक कर दोनों को बलपूर्वक पकड़ लिया॥ ५९॥ दोनों हाथों से उन दोनों की गर्दन कसकर पकड़ ली और दोनों को कसकर शिर से शिर टकरा दिया और वे दोनों ही मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गये॥ ६०॥ दोनों के सिर फट गये, लहू से धरती

पेततुर्भिन्नमूर्धानौ शोणितोक्षितभूतले । प्राह देवि कालिकेमौ न हन्तव्यौ कथञ्चन॥ ६१॥
प्रवृत्तिं प्राप्य चैताभ्यां तावुभावागमिष्यतः । अथ तौ मूर्च्छया मुक्तौ लज्जितौ भयकातरौ॥ ६२॥
अपसृत्य ततः शुम्भं समेत्य प्राहतुर्नतौ । महाराजाऽसुरपते काऽपि त्रैलोक्यसुन्दरी॥ ६३॥
प्रालेयाद्रिं समाश्रित्य दीपयन्ती दिशः स्थिता । मन्यावहे स्त्रीषु रत्नभूतां तां सर्वतोऽधिकाम्॥
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च रम्भा चाऽपि तिलोत्तमा । मेनका च त्वां भजन्ति सदेमा मिलिता अपि॥
तस्याः पादनखस्याऽपि सौन्दर्यस्य कलासमाः । भवेयुर्न भवेयुर्वा इति मे निश्चिता मतिः॥ ६६॥
शचीलक्ष्मीमुखाभिः सा सेव्यमाना मनोहरा । तां विना ते त्रिजगतीविभुत्वं व्यर्थतामियात्॥
सर्वलोकपतिस्त्वञ्चेद्रत्नभूतामपीदृशीम् । नाऽऽसादयसि तन्नैव जीवितं सफलं भवेत्॥ ६८॥
आवाभ्यां तां समादातुं त्वदर्थं प्रसमीहितम् । यावत्तावत्तस्य काचित् काली विकटरूपिणी॥
प्रेष्याऽऽवां जगृहे क्षिप्रं लीलयेव बलीयसी । तस्याः कथञ्चिन्निर्मुक्तौ पश्य भिन्नं शिरो मम॥ ७०॥
अद्य ते निहतो दर्पः स्त्रिया प्रतिहतो बत । पुनस्तां कालिकां हत्वा प्राप्य तां लोकसुन्दरीम्॥ ७१॥
प्रवर्तय प्रतिहतां कीर्तिमाश्वसुरेश्वर । एवं तयोर्वचः श्रुत्वा शुम्भः कामातुरोऽभवत्॥ ७२॥
आहूय दूतं सुग्रीवं प्रेषयामास तां प्रति । दूत काचिद्धिमगिरावबला लोकसुन्दरी॥ ७३॥
आस्ते तां सर्वथोपायैरानेतुं त्वमिहाऽर्हसि । यद्युपायैस्त्रिभिश्चाऽपि मत्पार्श्वं नोपयास्यति॥ ७४॥
आनयामोऽथ तुर्येण गच्छ शीघ्रं सुसाधय । अथ तत्र ययौ दूतस्तां ददर्श च संस्थिताम्॥ ७५॥
प्रणम्य प्राह देवि त्वामाह त्रिजगतीश्वरः । शुम्भाऽसुरो रत्नभूतां मत्वा त्वां स्त्रीषु सर्वतः॥ ७६॥
अहं हि सर्वरत्नानां पतिस्तस्माद्भजस्व माम् । साम्येन नो चेद्वैषम्यं प्राप्ताऽप्येष्यसि मद्वशम्॥

लाल हो गई। देवी काली ने कहा—इन्हें मारूँगी नहीं॥ ६१॥ अपनी प्रवृत्ति के कारण फिर ये आयेंगे। उन दोनों को मूर्च्छा से मुक्त कर दिया। वे दोनों ही लज्जित थे और भय से कातर बने थे॥ ६२॥ वहाँ से खिसककर उन्होंने दैत्यपति से प्रणामपुरःसर निवेदित किया—हे असुरपते! कोई त्रिलोकसुन्दरी॥ ६३॥ हिमालय पहाड़ पर दशों दिशाओं को प्रोद्भासित करती टिकी है। हम मानते हैं कि वह स्त्रीरत्नों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रत्न है॥ ६४॥ आपकी सेवा में पहले से ही उर्वशी, पूर्वचित्ति, रम्भा, तिलोत्तमा और मेनका प्रभृति लगी ही हैं॥ ६५॥ पर इस नारीरत्न के पैर के नाखूनों के बराबर भी वे नहीं हैं, बिलकुल ही नहीं है—ऐसा मैं मानता हूँ॥ ६६॥ शची और लक्ष्मी भी उसकी चेरी हैं, वह अत्यन्त मनोहरा है। उसके बिना तीनों लोक का विभुत्व आपका व्यर्थ है॥ ६७॥ सभी लोक के आप पति हैं और यह नारी रत्नस्वरूपा है। इसे बिना लाये तो आपका जीवन ही बेकार है॥ ६८॥ हम दोनों आपके लिए उसे जब तक लाना चाहेंगे तब तक कोई विकट रूप वाली काली॥ ६९॥ हमें भेजकर शीघ्र ही उस बलवती को पकड़ मँगवायें। देखिए हमारे सिर उसने कैसे क्षत-विक्षत कर दिया है॥ ७०॥ आज तुम्हारा दर्प स्त्री से पिट कर आहत हुआ है। अतः उस काली को सबसे पहले मारकर उस त्रिलोकसुन्दरी को पाकर॥ ७१॥ हे असुरेश्वर! उसे मारकर अपना कीर्तिस्तम्भ स्थापित करें। उसकी ऐसी बातें सुनकर शुम्भ कामातुर हो गया॥ ७२॥ अपने दूत सुग्रीव को बुलाकर उसके पास भेज दिया। फिर उससे कहा—ओ दूत! सुनो, हिमालय पर्वत पर कोई परम सुन्दरी नारी॥ ७३॥ है, उसे हर उपाय से यहाँ लाने में तुम समर्थ हो। यदि तीनों उपाय से भी वह मेरे पास नहीं आयेगी॥ ७४॥ तो उसे बलपूर्वक भी यहाँ तुम ले आओ। शीघ्रता करो, जाओ, उसे ले आओ। दूत वहाँ गया और उसे वहाँ देखा॥ ७५॥ उन्हें पहले प्रणाम कर दूत ने कहा—हे देवि! तुम्हें त्रिलोकेश्वर ने बुलाया है। शुम्भासुर ने तुम्हें स्त्रियों में रत्नस्वरूपा माना है॥ ७६॥ उन्होंने कहा है—मैं ही सभी रत्नों का पति हूँ। अतः

का त्वं कस्य कुतो भूता किं चिकीर्षसि भामिनि । ब्रूहि सर्वमशेषेण जिज्ञासत्यसुरेश्वरः ॥ ७८ ॥
अथाऽऽह देवी तं दूतं सस्मयं मृदुभाषिणी । अहं चण्डीति विख्याता नाऽन्यस्याऽद्यावधि क्वचित् ॥
निसर्गतोऽत्र सम्प्राप्ता हन्तुं देवद्विषो ननु । संग्रामे ह्यजिता न स्यां वशे कस्याऽपि कुत्रचित् ॥
ब्रूहि गत्वा सुरपतिं जित्वा नयतु मां वशम् । दूतस्तयेत्थमादिष्टः शुम्भाय प्रतिवेदयत् ॥ ८१ ॥
श्रुत्वा शुम्भः प्रकुपितः पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम् । समादिशत् प्रयाहीति गत्वा जित्वा च तां लघु ॥
बद्ध्वा समानय क्षिप्रमित्युक्तो धूम्रलोचनः । दैत्यसेनापरिवृतः प्रययौ योद्धुमम्बिकाम् ॥ ८३ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये चण्डिकामाहात्म्यं
नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३४५९ ॥



तुम मेरे पास आओ। सीधे से नहीं तो बलपूर्वक तुम मेरे वश में आओगी ही ॥ ७७ ॥ तुम कौन हो? कहाँ उत्पन्न हुई हो? किसे चाहती हो? किसकी हो? सब कुछ ठीक-ठीक बतला दें। असुरपति यह जानना चाहते हैं ॥ ७८ ॥ तब देवी ने मुस्कराते हुए मीठे शब्दों में दूत से कहा—लोग मुझे चण्डी कहते हैं। आज तक मैं किसी की नहीं हुई हूँ ॥ ७९ ॥ स्वभावतः मैं यहाँ आई हूँ। देवताओं के दुश्मन को मारना चाहती हूँ। युद्ध में मैं अजिता हूँ, किसी के वश में नहीं हूँ ॥ ८० ॥ जाकर उसे कहो, पहले देवराज को जीतकर मुझे तब वश में करे। दूत! तुम्हें मेरा यह आदेश है, असुरपति से जाकर बोलो ॥ ८१ ॥ सुनकर शुम्भ प्रकुपित हुआ और समीप में बैठे धूम्रलोचन को आदेश दिया—जाओ और उसे जीतकर शीघ्र ही ॥ ८२ ॥ बाँध कर मेरे पास शीघ्र ले आओ। ऐसा आदेश धूम्रलोचन को दिया। दैत्यसेना को साथ लेकर अम्बिका से लड़ने को चल पड़ा ॥ ८३ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में चण्डिका-
माहात्म्य नामक बयालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३४५९ ॥



अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

आसाद्य तां धूम्रनेत्रो दैत्यसेनासमावृतः । ववर्ष शरवर्षेण प्राह देवीं रुषाऽन्वितः ॥ १ ॥
मूढे दैत्येश्वरं याहि दैत्यैः सम्मानिता द्रुतम् । नोचेद्बद्ध्वा यास्यसि तं मानहीना मया द्रुतम्॥
सेनापतेर्वचः श्रुत्वा सस्मयं प्राह चण्डिका । नय मामबलां दैत्य जित्वा युद्धेन मा चिरम्॥ ३ ॥
इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्षाऽसुरपुङ्गवम् । अथ देवाः समालोक्य भूमिष्ठां चण्डिकां पराम्॥ ४ ॥
रथस्थं धूम्रनेत्रञ्च विषमं बुबुधुस्ततः । वाहनार्थे हरिं देवाः प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥ ५ ॥
अथ विष्णुर्भृगुपतिर्भूत्वा पर्वतसन्निभः । अवहच्चण्डिकां युद्धे त्रासयन् दैत्यमण्डलम्॥ ६ ॥
अथ युद्ध्वाऽचिरं देव्या धूम्राक्षो दैत्यनायकः । समुत्पतद्ग्रहीतुं तां करेण द्रुतमम्बिकाम्॥ ७ ॥
दृष्ट्वाऽऽयान्तं धूम्रनेत्रं हुङ्कारमकरोत् परा । हुङ्कारसहनिर्गच्छद्वक्त्रज्वालापरीवृतः ॥ ८ ॥
पतङ्गवद्भस्मशेषीभवत् स निमेषाऽर्धतः । अथ सेनां दैत्यपतेरुद्वेलमिव सागरम्॥ ९ ॥
शासयामास निमिषाद्धरिर्हरिवपुर्धरः । अथ श्रुत्वा हतं सैन्यं शुम्भो धूम्राक्षसंयुतम्॥ १० ॥
क्रुद्धः प्राह पार्श्वगतौ चण्डमुण्डौ महाऽसुरौ । युवाभ्यामविलम्बं सा ससेनाभ्यां विजित्य तु ॥ ११ ॥
समानेया हरिं तञ्च बद्ध्वा हत्वाऽपि वा भृशम् । आनीयतामिति तदा श्रुत्वा शुम्भस्य भाषितम्॥
भीतौ तावाहतुः शुम्भं महाराज वचः शृणु । आवाभ्यां न विजेया सा सर्वथाऽसुरभूपते ॥ १३ ॥

✻ विमला ✻

दैत्यसेना से घिरे धूम्रनेत्र ने देवी के पास पहुँच कर बाणवृष्टि करते हुए क्रोधान्वित होकर देवी से कहा ॥ १ ॥ अरी मूर्खे! दैत्यसेना से सम्मानित शीघ्र दैत्येश्वर के पास जाओ। अन्यथा अपमानित होकर बन्धन में पड़कर मेरे साथ शीघ्र वहाँ पहुँचोगी ॥ २ ॥ सेनापति की बातें सुनकर मुस्कराती हुई चण्डिका ने उससे कहा—अरे दैत्य! तो फिर देर क्यों? युद्ध में मुझ अबला को जीतकर ले चल ॥ ३ ॥ इतना कहकर असुर-सेनापति पर देवी ने बाणों की वर्षा कर दी। देवताओं ने परा चण्डिका को धरती पर देखकर ॥ ४ ॥ तथा धूम्रलोचन को रथ पर सवार देखकर युद्ध को देवताओं ने विषम समझा। फिर देवी के वाहन के लिए शीघ्र ही प्रार्थना की ॥ ५ ॥ तब भगवान् विष्णु पर्वताकार सिंह बनकर रणाङ्गण में चण्डिका को वहन करते हुए दैत्यमण्डल को भयाक्रान्त करने लगे ॥ ६ ॥ शीघ्र ही देवी ने दैत्यनायक धूम्रलोचन के साथ युद्ध कर उसे गिरते हुए स्थिति में अम्बिका ने थाम लिया ॥ ७ ॥ फिर धूम्रलोचन को अपनी ओर बढ़ते देखकर पराम्बिका ने हुंकार किया। हुंकार शब्द के साथ ही उनके मुख से तीव्र अग्निज्वाला निकल गई ॥ ८ ॥ वह दैत्य पलक झपकते ही फतिंगे की तरह जलकर राख हो गया और दैत्यपति की सेना सागर की तरह उफनने लगी ॥ ९ ॥ उस सेना को आधे पल में ही सिंह रूपी विष्णु ने शान्त कर दिया। अब शुम्भ को जब यह पता चला कि धूम्रलोचन के साथ सारी सेना मारी गई, तो यह सूचना पाकर ॥ १० ॥ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और पास ही बैठे महासुर चण्ड-मुण्ड से कहा—तुम दोनों शीघ्र ही सेना के साथ चण्डिका को जीत कर ॥ ११ ॥ और उस सिंह को भी बाँधकर या मारकर साथ ही ले आओ। शुम्भ का यह भाषण सुनकर ॥ १२ ॥ डरते हुए चण्ड-मुण्ड ने कहा—हे महाराज! मेरी बातें सुने! हे असुरभूपते! हम उसे कभी जीत न सकेंगे ॥ १३ ॥ क्योंकि पलक झपकते ही उस

यतो हतो धूम्रचक्षुर्निमेषाद्देवतापनः । सन्धिर्हि रोचते मेऽत्र बलीयस्यां विशेषतः ॥ १४ ॥
श्रुत्वा तयोरिति वचः क्रुद्धः शुम्भोऽब्रवीत्तु तौ । उद्भाव्य विग्रहं भूयो युवां सन्धिं समीहितः ॥
कातर्यमूलमेतद्वां मत्पिण्डस्याऽविनिर्जयम् । शङ्के पक्षान्तरगतावित्यपीह मनीषया ॥ १६ ॥
श्रुत्वा शुम्भवचश्चण्डो मुण्डश्चाऽपि विनिर्ययौ । विपर्ययाऽवसायं तं ज्ञात्वाऽपचितिमात्मनः ॥
महत्या सेनया युक्तौ चण्डमुण्डौ समागतौ । ददृशतुः सिंहसंस्थां मेरुशृङ्गस्थसूर्यवत् ॥ १८ ॥
तां समादातुमुद्युक्तौ दैत्यसेनासमावृतौ । क्षिपन्तौ शस्त्रजालानि ततश्चुक्रोध चण्डिका ॥ १९ ॥
क्रोधभ्रूकुटिकाऽऽज्ञप्ता काली सा भीमरूपिणी । दैत्यसेनां समासाद्याऽसुरान् सर्वानभक्षयत् ॥
विनाश्याऽसुरसेनां सा चण्डमुण्डौ महासुरौ । छित्त्वा खड्गेन चादाय चण्डिकायै निवेदयत् ॥
अथ तौ निहतौ ज्ञात्वा शुम्भः क्रोधसमाकुलः । सर्वसैन्यसमायुक्तो निशुम्भाद्यैश्च संयुतः ॥ २२ ॥
योद्धुमभ्याययौ देवीं तुहिनाऽचलसंस्थिताम् । देवी समीक्षत तदा सैन्यमसुरभूपतेः ॥ २३ ॥
अपारं सागरमिव रथोत्तुङ्गतरङ्गकम् । नृत्यत्तुरङ्गभङ्गाढ्यं राजग्राहसमाकुलम् ॥ २४ ॥
खेटकूर्मयुतं वेल्लत्करवालतिमिङ्गिलम् । श्वेतच्छत्रमहाफेनं महावादित्रनिःस्वनम् ॥ २५ ॥
गजघण्टाक्षणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् । एवं सेन्नामपारां तां दृष्ट्वा देवीं सुरास्तदा ॥ २६ ॥
एकाकिनीं चिन्तयानाः कथमेतद्भवेदिति । ज्ञात्वा विषादं देवानामसृजन्मातृकागणम् ॥ २७ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वैष्णवी शिखिवाहनी । वाराही नारसिंही च आग्नेयी चैव वारुणी ॥
एवं सुरेशशक्तीस्ताः शक्तिसङ्घसमावृताः । तत्तद्देवसमाकारा ययुर्वस्त्रायुधोज्ज्वलाः ॥ २९ ॥

देवता के क्रोध से धूम्रलोचन मारा गया, तब खास कर ऐसे बलवान् शत्रु से सन्धि करना ही मुझे अच्छा लगता है ॥ १४ ॥ उन दोनों की बात सुनकर क्रुद्ध शुम्भ ने उनसे कहा—झगड़ा शुरूकर अब तुम दोनों को सन्धि की बात सूझती है ॥ १५ ॥ तुम्हारा यह कातरतामूलक है, मेरी शक्ति में सन्देह है, मुझे सन्देह है कि तुम दोनों ने अपनी बुद्धि के कारण वैरी पक्ष का आश्रय तो ग्रहण नहीं कर लिया ? ॥ १६ ॥ शुम्भ की बातें सुनकर चण्ड और मुण्ड भी इसका विपरीत अन्त और अपना विनाश जानकर बाहर निकल आये ॥ १७ ॥ एक बहुत बड़ी सेना लेकर चण्ड-मुण्ड रणांगन में पहुँचें। वहाँ उन्होंने सिंह पर बैठी भगवती को मेरु पहाड़ पर सूर्य की तरह चमकते देखा ॥ १८ ॥ उसे अपनी ओर बढ़ते दैत्यसेना के साथ बाण प्रहार करते देखकर चण्डिका अत्यन्त क्रुद्ध हुई ॥ १९ ॥ क्रोध से भृकुटि उनकी टेढ़ी हो गई और उसी आँख से उन्होंने काली को आदेश दिया। उनका आदेश पाते ही भीमरूपिणी महाकाली ने दैत्यसेना के पास पहुँचकर सभी असुरों को चबा डाला ॥ २० ॥ असुरसेना का विनाश कर उस महाकाली ने महासुर चण्ड-मुण्ड की तलवार से गर्दन काटकर चण्डिका के सामने निवेदित किया ॥ २१ ॥ चण्ड-मुण्ड को मारा गया जानकर शुम्भ क्रोध से आकुल-व्याकुल हो गया। सभी सेना को तथा निशुम्भादि को साथ कर ॥ २२ ॥ देवी के साथ युद्ध करने के लिए तुहिनाचल पर पहुँचा। देवी ने जब उसे देखा, तब असुरभूपति की सेना ॥ २३ ॥ अपार सागर की तरह उत्तुंग रथ-तरंग की तरह नाचते घोड़ों के समूह गजग्राह से आकुल लग रहे थे ॥ २४ ॥ खेट, गदा और भाले को नचाते चमकती तलवार जलचर जीव की तरह थे; श्वेत छत्र महाफेन था, युद्धवाद्य महासागर का गर्जन जैसा लग रहा था ॥ २५ ॥ गजघण्टाओं के झंकार से दिशाएँ बहरी हो चुकी थीं; ऐसी अपार सेना एक ओर और दूसरी ओर अकेली देवी को देखकर ॥ २६ ॥ देवगण देवी के अकेलेपन को देखकर चिन्तित हो गये। उनके विषाद को जानकर भगवती ने मातृकागण की सृष्टि कर दी ॥ २७ ॥ ब्राह्मी, माहेश्वरी, ऐन्द्री, वैष्णवी तथा मयूरवाहिनी, वाराही, नारसिंही, आग्नेयी और वारुणी ॥ २८ ॥ इस तरह सुरेशों की शक्तियाँ संघ रूप में इकट्ठी हुयीं।

असङ्ख्यं तच्छक्तिसैन्यमसुरानभिसंययौ । तयोः समभवद्युद्धं सेनयोरुभयोरपि ॥ ३० ॥
खड्गैः परश्वधैर्भिन्दिपालैः परशुपट्टिशैः । त्रिशूलचक्रपरिघदण्डतोमरमुद्गरैः ॥ ३१ ॥
अन्यैरुच्चावचाकारैरायुधैस्तुमुलो रणः । अभवच्छक्तिसेनाभिरसुराणां भयङ्करः ॥ ३२ ॥
असृङ्मय्यो ववुर्नद्यः फेनिला भीरुभीतिदाः । तदन्तरे दैत्यसैन्यं दृष्ट्वा क्षीणन्तु शक्तिभिः ॥ ३३ ॥
रक्तबीजाभिधो दैत्यो योद्धुमभ्याययौ रणे । युयोध शक्तिसेनाभिः स दैत्यो रक्तबीजकः ॥ ३४ ॥
युध्यतस्तस्य रुधिरबिन्दवस्तत्र भूतले । यावन्तः पतितास्तेभ्यः पुरुषा वीर्यवत्तराः ॥ ३५ ॥
तत्समा अभवन्नन्ये तेभ्यश्चान्ये ततोऽपरे । रक्तबीजसमाः सर्वे रूपबुद्धिपराक्रमैः ॥ ३६ ॥
अनेकाऽर्बुदसंख्यातैर्व्याप्तं तैः सर्वभूतलम् । दृष्ट्वैतदद्भुतं देवा भीताः किन्नु भवेदिति ॥ ३७ ॥
अथ सा चण्डिका दृष्ट्वा रक्तबीजसमुद्भवम् । कालीं पार्श्वस्थितां प्राह युक्तियुक्ततरं वचः ॥ ३८ ॥
कालिके विस्तृतं वक्त्रं कृत्वाऽसृङ्क्तसम्भवम् । रक्तबीजस्य समरे भक्षती चर सर्वतः ॥ ३९ ॥
तथेति सा विस्तृताऽऽस्या चरमाणा रणाऽजिरे । भक्षयन्ती शोणितानि दैत्यानां त्रासकारिणी ॥
एवं तस्यां भक्षयन्त्यां क्षयं जग्मुर्महाऽसुराः । मातृकाशस्त्रसञ्छिन्नाः क्षीणरक्ताश्च भूयशः ॥ ४१ ॥
एवं नष्टे रक्तबीजे निशुम्भो दैत्यशेखरः । योद्‌धुमभ्याययौ देवीं चण्डिकामसुरैर्वृतः ॥ ४२ ॥
शरवर्षं ववर्षोच्चैश्चण्डिकां प्रति कोपितः । अथ साऽनाशयच्छीघ्रं तं वर्षं प्रतिवर्षतः ॥ ४३ ॥
शक्तिभिर्दैत्यसेना च युयोधाऽतिबलीयसी । शक्तिभिर्मृगराजेन काल्या च निहतां चमूम् ॥ ४४ ॥
दृष्ट्वा निशुम्भः सङ्क्रुद्धः चण्डिकाऽभिमुखो ययौ । अथाऽऽयान्तं दैत्यपतिं शस्त्रवर्षैरवाकिरत् ॥

ये उन देवताओं के आकार में, जिनका जो वस्त्र और हथियार था, धारण किये थीं ॥ २९ ॥ वे शक्तियाँ असंख्य थीं, असुरों की सेना से भिड़ी थीं। दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध चल रहा था ॥ ३० ॥ तलवार, फरसे, भाले, मुद्गर, त्रिशूल, परिघ, पट्टेदार हथियार, चक्र, लौहमुद्गर, डण्डे, तोमर प्रभृति ॥ ३१ ॥ अन्य छोटे-बड़े आकार के अनेकों हथियारों से दैत्यसेना और महाशक्ति के बीच भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥ खून की नदियाँ बह चलीं और दानव-हड्डियों से भरकर फेनिल हो गयीं। भीरुओं के हृदय में भय पैदा करने लगा, इसी बीच शक्तियों से हारती दैत्यसेना को देखकर ॥ ३३ ॥ रक्तबीज नाम का दैत्य युद्ध करने आ जुटा। वह रक्तबीज नामक दैत्य शक्तिसेना के साथ युद्ध करने लगा ॥ ३४ ॥ युद्ध करते हुए उसके शरीर से जितने रक्तबिन्दु धरती पर गिरते थे, उससे उतने ही अधिक शक्तिशाली दैत्य पैदा हो जाते थे ॥ ३५ ॥ उसी की तरह उससे भिन्न अन्य दैत्य भी पैदा हो रहे थे। वे रक्तबीज की तरह सभी रूप, बुद्धि और पराक्रम में समान थे ॥ ३६ ॥ वे सभी अर्बुद की संख्या में सारी धरती पर पट गये। उन अद्‌भुत सेना को देखकर भला देवगण भयभीत क्यों न होते ? ॥ ३७ ॥ रक्तबीज से उत्पन्न इन सैनिकों को देखकर चण्डिका ने युक्तितर वचन कहा ॥ ३८ ॥ हे कालिके! तुम अपना मुँह फैलाकर रक्तबीज से उत्पन्न इन दैत्यों को रणांगन में सब ओर घूमकर खा डालो ॥ ३९ ॥ ठीक है, ऐसा कहकर काली ने अपना दैत्यों को डराने वाला मुँह फैला दिया और रणांगन में घूम-घूमकर खून पी गयी ॥ ४० ॥ इस तरह काली के खून पीने से उन सभी महासुरों का क्षय हो गया, वे क्षीणरक्त हो गये। फिर मातृकाशस्त्र से वे सब-के-सब मारे गये ॥ ४१ ॥ इस तरह रक्तबीज के मारे जाने के बाद दैत्यराज निशुम्भ अपनी असुरसेना के साथ देवी चण्डिका के साथ युद्ध करने आ पहुँचा ॥ ४२ ॥ क्रोध से व्याकुल बने चण्डिका के ऊपर उसने बाणों की वर्षा कर दी। उसके प्रति बाण बरसाकर चण्डिका ने उसे भी मार डाला ॥ ४३ इधर अति बलवान् शत्रुसेना के साथ शक्तियाँ युद्ध कर रही थीं और शक्तियों में मृगराज बनी काली ने शत्रुसेना का नाश कर डाला ॥ ४४ ॥ क्रुद्ध निशुम्भ यह देखकर चण्डिका के सामने आ गया। उस

ग्रस्तं तं शस्त्रवर्षेण दैत्या हाहेति चुक्रुशुः । क्षणेन शस्त्रवर्षन्तं विधूय शरवर्षतः ॥ ४६ ॥
निर्जगाम शस्त्रमेघात् निशुम्भो दिनकृद्यथा । अथ देव्यै प्रचिक्षेप शक्तिं सर्वाऽऽयसीं क्रुधा ॥ ४७ ॥
तां मध्ये सायकैस्त्रेधा चिच्छेद चण्डिकाऽम्बरे । परिघं परशुं शूलं गदां प्रासादिकं तथा ॥ ४८ ॥
क्षिप्रं क्षिप्तं निशुम्भेन चिच्छेद सायकैर्मुहुः । अथ खड्गं समादाय निशुम्भश्चण्डिकां प्रति ॥ ४९ ॥
अभ्यधावदतिक्रोधात्तिष्ठ तिष्ठेति तां वदन् । देवीसमीपं सम्प्राप्तं कालान्तकयमोपमम् ॥ ५० ॥
दृष्ट्वा बिभ्युर्देवगणाः स्वस्तीत्याहुर्महर्षयः । तदन्तरे समायातं बलेनाऽऽक्रम्य तं परा ॥ ५१ ॥
खड्गेनाऽभ्यहरत्तस्य मस्तकं निमिषाऽर्धतः । अथ सिंहः कालिका च शक्तयो दैत्यवाहिनीम् ॥
चक्रुर्निःशेषितां क्रोधान्मुहूर्तेन समन्ततः । शुम्भो निशम्य निहतं भ्रातरं खिन्नमानसः ॥ ५३ ॥
सेनां तथा विनिहतां रोषमाहारयत् परम् । सिंहं जघान खड्गेन मूर्ध्नि शुम्भोऽसुरेश्वरः ॥ ५४ ॥
युद्ध्वा चिरं शक्तिभिश्च कालिकामभिसंययौ । तया समभवद्युद्धं शुम्भस्य परमाद्भुतम् ॥ ५५ ॥
शस्त्राभिज्ञत्वतस्तस्य बलेन विक्रमेण च । लाघवेनाऽपि सा काली विस्मयं परमं गता ॥ ५६ ॥
देवाश्च ऋषयः सर्वे साधु साध्वित्यपूजयन् । दृष्ट्वा तं चण्डिकाऽत्युग्रं धृत्या विक्रमणेन च ॥ ५७ ॥
आक्रमन्तं तां कालीमाससादाऽसुरेश्वरम् । आयान्तीं चण्डिकां दृष्ट्वा हसन्नुच्चैरुवाच ताम् ॥
शृणु दुष्टे यदि मया युद्धश्रद्धा तवाऽस्ति चेत् । तिष्ठन्त्विमाः सर्वतस्ते मुहूर्तं पश्य मे बलम् ॥
स्त्रीषु कारुणिको भाव इति मे समुपेक्षिताः । अतस्त्वमेका समरे मां प्राप्य न भविष्यति ॥ ६० ॥

दैत्यपति को आते हुए देखकर चण्डिका ने हथियारों की उस पर वर्षा कर दी ॥ ४५ ॥ उसे हथियारों की वर्षा से ग्रस्त देखकर दैत्यों ने हाहाकार किया। एक क्षण में ही हथियारों की वर्षा से उन्हें देवी ने धुन डाला ॥ ४६ ॥ मेघ को चीरकर जिस तरह सूर्य बाहर निकलते हैं उसी तरह देवी के शरवर्षा से निशुम्भ बाहर निकल गया और क्रुद्ध होकर देवी की ओर आयसी शक्ति का प्रयोग किया ॥ ४७ ॥ उसके बीच आकाश में चण्डिका ने तीन प्रकार के तीरों से उसे छेद डाला और फिर परिघ, फरसा, त्रिशूल, गदा, प्रास आदि ॥ ४८ ॥ शीघ्र फेंका, किन्तु निशुम्भ ने एक क्षण में अपने तीरों से उन्हें काट डाला। तब निशुम्भ तलवार लेकर चण्डिका के प्रति ॥ ४९ ॥ 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए अत्यन्त क्रोध के साथ दौड़ा। कालान्तक यमराज की तरह वह देवी के पास पहुँच गया ॥ ५० ॥ यह देखकर देवगण डर से घबरा गये, महर्षि 'स्वस्ति-स्वस्ति' कहने लगे। इसी बीच पराशक्ति ने आते हुए उस दैत्य को बलपूर्वक दबोचकर ॥ ५१ ॥ तलवार से पलक झपकते ही उसकी गर्दन काट डाली और सिंह एवं काली दोनों ने मिलकर दैत्यवाहिनी शक्तियों को ॥ ५२ ॥ अत्यन्त क्रुद्ध होकर चारों ओर से घेर कर पल भर में निःशेष कर दिया। उधर शुम्भ भाई की मृत्यु सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ५३ ॥ साथ ही सेना को मारा गया जानकर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और दौड़कर असुरेश्वर शुम्भ ने तलवार से सिंह के माथे पर वार कर दिया ॥ ५४ ॥ बहुत देर तक शक्तियों से युद्ध कर कालिका के सामने आ गया। महाकाली के साथ शुम्भ का परम अद्भुत युद्ध हुआ ॥ ५५ ॥ शस्त्र के जानकार बल से, विक्रम से और लाघव से भी अतिश्रेष्ठ बने उस दैत्यराज को देखकर काली परम विस्मित हुई ॥ ५६ ॥ देवता और ऋषि सब-के-सब 'साधु-साधु' कह उठे। इधर उसे देखकर चण्डिका अतिउग्र धैर्य और विक्रम के साथ ॥ ५७ ॥ काली पर भारी पड़ते उस असुरेश्वर पर झपट पड़ी। चण्डिका को आते देखकर उन पर ठठाकर हँसते हुए कहा ॥ ५८ ॥ अरे दुष्टे! यदि मुझसे लड़ने की तुम्हें लालसा है तो इन शक्तियों को रोको और एक क्षण में मेरा बल देखो ॥ ५९ ॥ स्त्री तो दया की पात्र होती है, इसलिए मैंने तुम्हारी उपेक्षा कर दी; अकेली समर में तुम मुझे पाकर फिर तुम नहीं रहोगी ॥ ६० ॥ दानवराज शुम्भ की बात सुनकर चण्डिका

श्रुत्वेत्थं दानववचो विनिवर्त्याऽखिला अपि । सिंहाधिपं समारूढा शुम्भेन युयुधे मृधे ॥ ६१ ॥
शरनीहारसञ्छन्नां चक्रे तां क्षणमात्रतः । शुम्भबाणाब्धिनिर्मग्नां दृष्ट्वा देवीं सुरेश्वराः ॥ ६२ ॥
हा हेति चुक्रुशुर्भीत्या जह्रषुर्दैत्यसैनिकाः । प्रशशंसुः साधुशब्दैर्जयशब्दैरवर्धयन् ॥ ६३ ॥
तदन्तरे चण्डिकाऽपि वातैरिव शरोत्करैः । निर्भिद्य शरनीहारमुद्गच्छद्भानुमानिव ॥ ६४ ॥
उद्गतामस्त्रजालेन भूयो भूयः समाक्षिपत् । साऽपि प्रत्यस्त्रतो भूयो निरस्याऽस्त्राणि सम्बभौ ॥
अथ तामजयामस्त्रैर्मत्वा शुम्भः प्रतापवान् । उत्पत्याऽऽदाय तां देवीमाक्रमद्गगनाऽन्तरम् ॥
अथ तां दैत्यराजेन हृतां दृष्ट्वाऽमरेश्वराः । दुःखिता अस्तुवन्नाद्यां त्रिपुरां परमेश्वरीम् ॥ ६७ ॥
स दैत्यस्तां समादाय ययौ निमेषमात्रतः । योजनानां सहस्राणि दशसप्तत्रयोदश ॥ ६८ ॥
यान्तं गृहीत्वा स्वात्मानं चण्डिकाऽवेत्य सत्वरम् । खड्गेन प्राहरन्मूर्ध्नि वज्रकल्पेन दानवम् ॥
स हतो बलवन्मूर्ध्नि किञ्चित्कश्मलमाविशत् । अमुञ्चत्तां ततः सोऽपि युयुधे गगनाऽङ्गणे ॥ ७० ॥
चिरं युद्ध्वा तेन सह गदाहस्तं महासुरम् । प्रहर्तुमुत्पतन्तं तं पादे जग्राह चण्डिका ॥ ७१ ॥
भ्रामयित्वा बहुगुणं क्षितौ वेगादपोथयत् । भूमावास्फालितो दैत्य उद्वमन् रुधिरं बहु ॥ ७२ ॥
मूर्च्छामवाप निमेषं यावत्पुनरुदश्वति । तावत्पादेन हृदये समाक्रम्य च चण्डिका ॥ ७३ ॥
शूलेन कन्धरे तस्य विव्याध परमा क्रुधा । छिन्नोत्तमाङ्गो दैत्येशो निष्प्राणः समपद्यत ॥ ७४ ॥
ततोऽसुरगणाः सर्वे शेषिता दिक्षु विद्रुताः । दिशो वितिमिरा आसन् हते शुम्भे महासुरे ॥ ७५ ॥
शान्ता वाता ववुः सूर्यः सप्रभः सागराः स्थिराः । एवं देव्या विनिहतं शुम्भं दैत्यगणेश्वरम् ॥
देवा निशम्य जह्रषुरस्तुवंश्चाप्यनेकशः । तुष्टाव विष्णुस्तां देवीं चण्डिकां प्रीतमानसः ॥ ७७ ॥

ने सारी शक्तियों को अलग हटाकर स्वयं सिंह पर सवार होकर उनसे युद्ध करने लगी ॥ ६१ ॥ एक पल में ही उसने अपने बाणों के कुहरे में उन्हें छिपा लिया। शुम्भ के बाणसागर में डूबी चण्डिका को सुरेश्वरों ने देखकर ॥ ६२ ॥ हाहाकार किया तथा दैत्यसैनिक खुशी के मारे जय-जयकार कर शुम्भ को प्रोत्साहित करने लगे ॥ ६३ ॥ इसी बीच चण्डिका भी हवा की तरह शरसमूहों को भेदकर बाण-कुहरे को चीर कर सूर्य की तरह वह चमक उठी ॥ ६४ ॥ लगातार बाणवर्षा के बावजूद शस्त्रजाल से बाहर निकल आई। उसने भी अपने हाथ के आयुधों से उनके आयुधों का प्रतिरोध किया ॥ ६५ ॥ इसके बाद प्रतापी शुम्भ ने आयुधों से उन्हें अजेय मानकर झपटकर देवी को आकाश में ले जाकर आक्रमण किया ॥ ६६ ॥ दैत्यराज के द्वारा अपहृत देवी को देखकर अमरेश्वरों ने दुःखी होकर परमेश्वरी त्रिपुरा की स्तुति प्रारम्भ कर दी ॥ ६७ ॥ वह दैत्य उन्हें लेकर एक पल में हजारों योजन आकाश में उड़ चला ॥ ६८ ॥ अपने को पकड़ कर ले जाते जानकर चण्डिका ने शीघ्र ही उस वज्रकल्प राक्षस के सिर पर तलवार से प्रहार कर दिया ॥ ६९ ॥ सिर पर चोट खाकर उसे मूर्च्छा हुई। उसे छोड़कर वह आकाश के रणाङ्गण में ही उनसे युद्ध करने लगा ॥ ७० ॥ बहुत देर तक गदा हाथ में लिये उस महान् दैत्य से युद्ध करते हुए जब वह उछलकर प्रहार करना चाहा तो नीचे से चण्डिका ने उसका पैर पकड़ लिया ॥ ७१ ॥ उसे चक्कर लगाकर बड़े वेग से धरती पर पटक दिया। धरती पर गिरते ही वह दैत्य बहुत अधिक लहू का वमन करते हुए ॥ ७२ ॥ एक क्षण बेहोश हो गया। फिर उठकर उसी पैर से चण्डिका की छाती पर प्रहार किया ॥ ७३ ॥ इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर चण्डिका ने त्रिशूल से उसके कन्धे पर प्रहार किया, फलतः उसकी गर्दन कट गई और वह मर गया ॥ ७४ ॥ उसके बाद बचे-खुचे राक्षस भाग खड़े हुए। उस महासुर के मरने पर दिशाएँ तिमिरमुक्त हुईं ॥ ७५ ॥ हवाएँ शान्त हो गयीं, सूर्य प्रभापूर्ण हो गया, सागर स्थिर हो गये। दैत्यगणेश्वर शुम्भ को देवी ने मार डाला ॥ ७६ ॥ देवगण ने प्रसन्न होकर उनकी अनेक स्तुतियाँ

जयति सुरवरेण्या शङ्करी शुम्भहन्त्री परशिवपरशक्तिः पश्यतां पापहन्त्री।
निजपदयुगभक्तव्रातसन्तापहन्त्री परिचितनिजभावस्वान्तविभ्रान्तिहन्त्री ॥ ७८॥
यदि खलु पदपद्मं संस्मृतश्चेत्कदाचित् कथमपि जनिमद्भिः संसृतावेकवारम्।
पुनरपि कथमेषां स्यात् सृतिर्दुःखदात्री मरुसलिलसमाना सन्निकर्षस्थितीनाम् ॥ ७९॥
तव जननि परो यो वैभवोऽनन्तपारः कथमहमहिराट् त्वं प्राप्य तच्च प्रवक्ष्ये।
अपि नभसि कदाचिद्रेणवः पार्थिवाः स्युर्गणनपरिसमाप्ता नैव ते तस्य संख्या ॥ ८०॥
जगति जनितदुःखं हंसि यत्तन्न चित्रं भवति ननु निजोऽयं तोकके मातृभावः।
न हि जगति समर्थो भ्रान्तिमांश्चापि कश्चिन्निजगृहमभिनश्येत् प्रेक्ष्य कुर्यादुपेक्षाम् ॥ ८१॥
वचननिचयसारा सुन्दरीं कोऽपि लोके वचनरसविलासैस्तोषमानेतुमीहेत्।
स खलु मधुपृषत्कैर्नेतुमीष्टेऽमृताब्धिं मधुरससमभावे देवि तत्ते स्तुतिः का ॥ ८२॥
इति स्तुत्वा हरिर्देवीं नमश्चक्रे च दण्डवत्। विधिमुख्या अपि सुरा भक्तिनिर्भरिताऽन्तराः ॥ ८३॥
एवं स्तुता चण्डिका साऽसुरान् हत्वा सुरार्तिदान्। देवताभ्यो वरं दत्त्वा चाऽन्तर्धानं समाययौ ॥
एवं राम पुरा देवी निजघान महासुरान्। शुम्भादीन् वीर्यबलवत्तरान् लोकविनाशनान् ॥ ८५॥
एवं सा जगतां धात्री त्रिपुरा लोकभावनी। यदा यदा विधिमुखैरापन्नैरसुरादिभिः ॥ ८६॥

कीं। विष्णु ने भी प्रसन्न मन से चण्डिका को सन्तुष्ट किया ॥ ७७॥ देवताओं में परमपूज्या, शुम्भ दैत्य को मारने वाली हे शङ्करी! तुम्हारी जय हो। हे दवि! तुम परशिव एवं परशक्ति हो, दर्शन मात्र से पापों को विनष्ट करने वाली हो। अपने चरणकमलों में आसक्त भक्तसमूहों की व्यथा को विनष्ट करने वाली हो, अपनी भावना से परिचित होने के कारण अपने भक्तों के हृदय की भ्रान्ति को मिटाने वाली हो ॥ ७८॥ यदि आपके पादपद्मों की किसी ने भूल से भी याद कर ली, एक बार भी सच्चे हृदय से तुम्हें स्मरण किया है, उसके संसार के आवागमन का कष्ट तुम मिटा देती हो। दुःखद संसारचक्र भला उसे कैसे सता सकता है? वह तो आपके सामीप्य सुख का उसी तरह अनुभव करता है जैसे बालू के साथ पानी की संस्थिति ॥ ७९॥ हे मातः! जो तुम्हारे अनन्य भक्त होते हैं, वे अनन्त वैभव के अधिकारी होते हैं; शेषनाग के रूप में तुम्हें पाकर तुम्हारा वर्णन कैसे करूँ? कदाचित् आकाश में भी धूलिकण के सदृश पार्थिव होते हैं, यदि वे तुम्हारे गुणों की गणना करने लगे तो वे तुम्हारी संख्या का पार नहीं पा सकते ॥ ८०॥ संसार में आवागमन जन्य जो दुःख होता है, इसमें आश्चर्य ही क्या होता है? निश्चय ही यह मेरा है, यह तो सन्तान का मातृभाव है और कुछ नहीं। इस संसार में ऐसा भ्रमित बुद्धि वाला कोई नहीं होगा जो अपने घर को विनष्ट होते देखकर उसकी उपेक्षा करे ॥ ८१॥ इस कथन का जो सार है, हे सुन्दरि! इस संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो अपने वचन के विलास से तुम्हें सन्तुष्ट न करना चाहे। वह आदमी मधु के साथ अमृतसागर को मिलाना चाहता है, अतः हे देवि! मधुरस की तरह तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? ॥ ८२॥ इस तरह विष्णु ने देवी की स्तुति कर उन्हें दण्डवत् होकर प्रणाम किया। ब्रह्मा प्रभृति देवों ने भी भक्ति-गद्गद हृदय से ॥ ८३॥ देवताओं को सताने वाले असुरों को मारकर, देवताओं से संस्तुत्य होकर चण्डिका देवताओं को वरदान देकर उसी क्षण तिरोहित हो गई ॥ ८४॥ हे परशुराम! आज से बहुत दिन पहले लोकविनाशक अतिपराक्रमी और बलवान् महाअसुर शुम्भादि का देवी ने वध किया ॥ ८५॥ इस तरह संसार की माता लोकभाविनी त्रिपुरा जब-जब विधि-प्रमुख देवगण आपद्गस्त हुए ॥ ८६॥ तब देवताओं ने देवकार्य-साधन के लिए और लोकरक्षा के लिए उनकी आराधना की और उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवती त्रिपुरा

आराधिता तदा देवकार्यसाधनहेतवे । रक्षणाय च लोकानामवतीर्णा निजांऽशतः ॥ ८७॥
नारायणादयश्चान्ये प्राप्यैवाऽस्याः कलालवम् । जगद्रक्षादिकं कर्तुमवतेरुरनेकधा ॥ ८८॥
एनां विहाय जगति स्पन्देताऽपि कथं तृणम् । यथा तरङ्ग जलधिमृते भार्गव सर्वथा ॥ ८९॥
तस्मात् परात्परमयीं प्रणताऽघहन्त्रीं भक्त्या भजेत परिहृत्य समस्तकृत्यम् ।
नो चेदनन्तभववारिधिमध्यमग्नो यास्यत्यगाधतलमात्मविनाशहेतुम् ॥ ९०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये माहात्म्यखण्डे चण्डिका-
चरितं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३५९४॥



अपने अंश से अवतीर्ण हुई ॥ ८७॥ भगवान् विष्णु सहित अन्य शक्तिशाली देवगण उनकी कला का एक कण पाकर ही अनेकों बार संसार की रक्षा करने हेतु अवतार ग्रहण किये ॥ ८८॥ हे परशुराम ! इन्हें छोड़कर संसार का तिनका भी नहीं हिल सकता, जैसे सागर को छोड़कर तरंग का कोई अस्तित्व नहीं होता ॥ ८९॥ इसलिए पापनाशिनी परात्परमयी भगवती को प्रणाम करो, अपना सारा काम छोड़कर इन्हें भक्तिपूर्वक भजना चाहिए; नहीं तो अनन्त भवसागर के बीच में डूबकर अगाध तल में आत्मविनाश के लिए उसे जाना होगा ॥ ९०॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में चण्डिका-
चरित नामक तैतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३५९४॥



अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः



निशम्य चण्डिकाऽऽख्यानं रामो भृगुकुलोद्वहः। कथामधुसमास्वादमाद्यन्मधुकराऽन्तरम्॥ १॥
त्रिपुरावैभवस्फारश्रवणाऽऽनन्दनन्दितः। न वेद स्वान्तरं बाह्यं क्षणं लिखितवत् स्थितः॥ २॥
अथ स्मृत्वा प्रकृतकं विस्मितः प्राह सादरम्। भगवन् करुणासिन्धो भवताऽहं समुद्धृतः॥ ३॥
अपाराऽगाधसंसारमध्यमग्नोऽतिविह्वलः। धन्योऽहं भगवत्पादपोतमाश्रित्य निर्भयः॥ ४॥
भवाम्भोधिं महाभीमं सन्तरिष्येऽचिरेण वै। अनुग्रहात्ते भीतिर्मे मृत्यूद्भूता न शिष्यति॥ ५॥
तस्याः श्रीत्रिपुरादेव्याः प्रसङ्गात् कथिता त्वया। कात्यायनीचण्डिकयोः कथा सुमहिमोन्नता॥
अंशावतारात्मिकयोरधुनाऽन्यत् समुच्यताम्। न वितृप्यामि लेशेनाऽप्यहं श्रीचरितश्रुतः॥ ७॥
चेतनः को नु तृप्येत श्रीकथामृतसेवनात्। विना मुमूर्षोर्मृत्युघ्नादामयीव महौषधात्॥ ८॥
श्रुत्वैवं जामदग्न्यस्य वाक्यमत्रिसुनन्दनः। हृष्टः प्राह पराशक्तिकथातत्परतां विदन्॥ ९॥
निशम्य तां भृगुकुलतिलकाद्भुतसत्कथाम्। त्रिपुराक्रोधजातायाः कालिकाया विचित्रिताम्॥
पुरा दितिसुता दैत्याः कालखञ्जा इति श्रुताः। सहस्रमभवंस्तेऽत्र भ्रातरो बलवत्तराः॥ ११॥
तपश्चक्रुर्वत्सराणामर्बुदानां त्रयोदश। तदा तत्तपसा सर्वलोको व्याकुलितोऽभवत्॥ १२॥
इन्द्रासनं प्रचलितं देवांश्च भयमाविशत्। देवैः सम्प्रार्थितो वेधाः समागत्य जगाद तान्॥ १३॥

*** विमला ***

श्रीचण्डिका की कथा सुनकर परशुराम का हृदय मधुमत्त भौंरे की तरह कथामधु पीकर मस्त हो गया॥ १॥ त्रिपुरा की विस्तृत महिमा सुनकर वे आनन्दसागर में गोता खाने लगे। उन्हें न तो बाहर की सुधि थी और न भीतर की, वे एक चित्र की तरह बेहोश थे॥ २॥ होश आने पर विस्मित होकर गुरु से कहा—भगवन्! आपने मेरा उद्धार कर दिया॥ ३॥ अपार एवं अगाध संसार-सागर के बीच मैं हतबुद्धि डूबा था, आज आपके चरणपोत के सहारे निडर होकर मैं संसार-यात्रा कर रहा हूँ॥ ४॥ महाभयङ्कर संसारसागर मैं शीघ्र ही पार कर जाऊँगा। आपके अनुग्रह से मुझे मृत्यु का भय भी शेष नहीं रहेगा॥ ५॥ उस त्रिपुरा देवी के सम्बन्ध में आपने प्रसंगवश कथा कही, उसके साथ ही सुन्दर महिमा से मण्डित कात्यायनी और चण्डिका की कथा भी मैंने सुन ली॥ ६॥ भगवती त्रिपुरा के ये दोनों अंशावतारात्मक रूपों की कथा मैंने सुन ही ली, अब कोई दूसरी कथा सुनायें। क्योंकि श्रीचरित को सुनकर मुझे अब लेशभर भी तृप्ति नहीं मिलती है॥ ७॥ श्रीकथामृत के सेवन से भला किसकी चेतना को तुष्टि होगी? महौषधि के सेवन से मुमूर्षु के बिना मृत्युघातकी यह कथा है—इससे तृप्ति कैसे होगी?॥ ८॥ दत्तात्रेय ने परशुराम की ऐसी बात सुनकर प्रसन्न होकर गुरु ने समझा कि पराशक्ति की कथा सुनने में यह अत्यन्त तत्पर है॥ ९॥ परशुराम ने अद्भुत इस कथा को सुनकर त्रिपुरा के क्रोध से उत्पन्न काली की विचित्र कथा सुनने की इच्छा प्रकट की॥ १०॥ पहले दिति नामक राक्षसी के पुत्र दैत्य कहलाये, वे कालखंज के नाम से जाने जाते थे। वे हजार भाई थे और सब-के-सब बलवान् थे॥ ११॥ वे तेरह अरब वर्षों तक घोर तप किये। उनकी इस कठोर तपस्या से सारे लोक व्याकुल हो उठे॥ १२॥ इन्द्रासन हिल उठा, देवगण डर से काँपने लगे। देवताओं ने विधाता से प्रार्थना की,

दैत्या वरं ब्रूत किं वो मतं मत्तः समाप्स्यथ। तपसाऽलं सर्वलोकनाशनेनेति ते ततः॥ १४॥
प्रणम्य प्राहुरत्यन्तमभयं मृत्युतोऽस्तु नः। श्रुत्वा दैत्येरितं वेधा ज्ञात्वा सर्वभयावहम्॥ १५॥
स्त्रीभ्योऽन्यत्राऽमरत्वं वो भवेदिति समाह तान्। विमृश्य तेऽपि चान्योऽन्यमब्रुवन् चतुराननम्॥
वर्तमानचरित्राभ्यः स्त्रीभ्योऽप्यमरताऽस्तु नः। अस्त्वित्युक्त्वा जगाम खं चतुर्वक्त्रो निवेशनम्॥
अथ दैत्याः कालखञ्जा महाबलपराक्रमाः। जित्वाऽमरान् महेन्द्रादीन् जह्रुस्त्रिभुवनश्रियम्॥
हविर्भागानप्सरसो दिक्पालसदनानि च। ततो गत्वाऽधिपैर्देवाः स्वपदादवरोपिताः॥ १९॥
धात्रादिभिः सुसङ्गम्य प्रार्थयामासुरात्मनाम्। पराभवात् कालखञ्जैरुद्धारः स्यात् कथन्त्विति॥
प्रार्थितो ध्यानमाश्रित्य भविष्यं समचष्टत। विज्ञाय तेषामुदयं बभाषे तांश्चतुर्मुखः॥ २१॥
भो देवा अत्र नाऽन्यस्य कृत्यं समवशिष्यते। न तेषां पुरुषैर्मृत्युः स्त्रीभिर्वा प्रकृतात्मभिः॥ २२॥
या स्याल्लोकचरित्रातिरिक्ता तेषां मृतिस्ततः।
तादृशी नास्ति लोकेषु योषित्काचित्क्वचित्सुराः॥ २३॥
लोकातिरिक्तशीला या तस्मादेतद्धि दुष्करम्। तदत्र त्रिपुरेशानीं राधयामोऽर्थसिद्धये॥ २४॥
इत्युक्त्वा मेरुशिखरमासाद्य विधिमुख्यकाः। त्रिपुरां तुष्टुवुर्देवीं लोकयात्राविधायिनीम्॥ २५॥
तदन्तरे कालखञ्जा ज्ञात्वाऽमरविचेष्टितम्। भार्गवोक्ताद्ययुस्तत्र विहन्तुममरक्रियाः॥ २६॥
बध्यतां हन्यतां शीघ्रं गत्वेत्याहुः सुराऽरयः। दृष्ट्वा देवाः कालखञ्जानागतान् भीतमानसाः॥
उच्चैर्विचुक्रुशुर्देवीं शरणीकृतभावनाः। त्राहि त्राहि महेशानि बध्यमानान् सुराऽरिभिः॥ २८॥

तब विधाता दैत्यों के पास आकर उनसे बोले॥ १३॥ ओ दैत्यगण! तुम लोग मुझसे क्या चाहते हो, वह वरदान माँगो; अपने कठोर तप से व्यर्थ ही सभी लोकों का विनाश कर रहे हो। उसके बाद उन्होंने॥ १४॥ ब्रह्मा को प्रणाम कर कहा—हम मृत्यु से भी मुक्ति चाहते हैं। दैत्य की ये बातें सुनकर तथा ऐसे वरदान को भयावह मानकर॥ १५॥ औरतों को छोड़कर अन्य के हाथों तुम सब की अमरता होगी–ब्रह्मा ने उनसे कहा। उन्होंने भी परस्पर विचार कर ब्रह्मा से कहा॥ १६॥ वर्तमान चरित्र वाली औरतों से भी हमें अमरता मिले। ब्रह्मा इसे स्वीकार कर सत्यलोक चले गये॥ १७॥ इसके बाद अत्यन्त बली और पराक्रमी कालखंज दैत्यों ने इन्द्रादि देवताओं को जीतकर त्रिभुवनों की लक्ष्मी को जीत लिया॥ १८॥ हविष्य का अंश, अप्सराएँ, दिक्पालों के घर जीतकर देवताओं के अधिपों को अपना वशवर्ती बना लिया॥ १९॥ तब देवगण ने विधाता के पास पहुँचकर उनसे प्रार्थना और कालखंज से अपनी पराजय एवं उससे उद्धार का उपाय पूछा॥ २०॥ उनकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ध्यान लगाये और ध्यान में उनका भविष्य सोच कर उनसे कहा॥ २१॥ हे देवगण! इस विषय में अब किसी का कोई कृत्य अवशिष्ट नहीं है, क्योंकि इन कालखंजों की मौत न किसी पुरुष से होगी, न किसी सामान्य स्त्री से॥ २२॥ जो नारी लोकचरित्र से भिन्न होगी, इनकी मृत्यु उन्हीं के हाथों सम्भव है। ऐसी कोई औरत कहीं किसी लोक में नहीं है॥ २३॥ लोक से भिन्न चरित्र वाली जो होगी वही इस दुष्कर कर्म को कर सकती है। इसलिए भगवती त्रिपुरा की कामना-पूर्ति के लिए आराधना करें॥ २४॥ यह कहकर मेरु के शिखर पर आकर विधि-प्रमुख देवगण लोकयात्राविधायिनी त्रिपुरा देवी को सन्तुष्ट करने की चेष्टा करने लगे॥ २५॥ इसके बाद कालखंज देवताओं की चेष्टा जानकर उन्हें मारने के लिए उस स्थान पर पहुँच गये॥ २६॥ मारो, बाँध डालो—ऐसा कहते हुए वे दैत्य शीघ्र ही वहाँ पहुँचे। देवताओं ने कालखंजों को आये देखकर भयभीत मन से॥ २७॥ ऊँची आवाज में देवी को शरणीकृत भावना से 'बचाओ-बचाओ' कहकर पुकारा–हे महेशानि! ये दैत्य हमें मारने आये हैं॥ २८॥ हे त्रिपुरे! देवगण आपकी शरण में

देवान् शरण्ये त्रिपुरे आपन्नान् भक्तवत्सले। विक्रोशत्स्वतिभीतेषु दैत्येभ्यस्त्रिपुराम्बिका॥ २९॥
आविरासीत् सुरगणानार्तांस्त्रातुं महाभयात्। अथाऽभवन्महाशब्दः प्रागुदीच्यां भयावहः॥
प्रजज्वाल महातेजः खं दिशं व्याप्य सर्वतः। तेन शब्देन महता तेजसा चाऽमरारयः॥ ३१॥
निपेतुर्मूर्च्छितास्तत्र मत्वा ब्रह्माण्डभेदनम्। आविर्बभूवाऽथ परा त्रिपुरा परमेश्वरी॥ ३२॥
तां दृष्ट्वा त्रिपुरां देवाः सौन्दर्यजलधिं दिशम्। कोटिकन्दर्पसौन्दर्यसन्दोहतनुसुन्दराम्॥ ३३॥
विद्युल्लतामिव तनुत्विषा लोकाऽक्षिसम्मुषम्। समानतुलिताऽशेषाऽवयवन्यासशोभिताम्॥
चन्द्रचूडां त्रिनयनां पाशाऽङ्कुशधनुःशरान्। दधानां पाणिकमलैर्दीर्घविद्रुमनालजैः॥ ३५॥
मुखेन्दुसौन्दर्यसरित्फुल्लेन्दीवरलोचनाम्। मुखलावण्यजलधिं मुक्ताविन्दुमदच्छदाम्॥ ३६॥
मुखेन्दून्मेषचकितयुतकोककुचद्वयीम्। अङ्गप्रवाललतिकानिर्गमद्बाहुशाखिकाम्॥
पाणिप्रवालशाखाऽग्रकोरकाऽङ्गुलिशोभिनीम्। माणिक्यकदलीकाण्डसूक्ष्मच्छदसमांऽशुकाम्॥
जङ्घानिषङ्गनिक्षिप्तमदनेषुनिभाऽङ्गुलाम्। विद्युल्लतापरिक्षिप्तताराऽऽभाकल्पभूपिताम्॥
मुखेन्दूदयनिर्गच्छदूर्ध्वसन्तमसाऽलकाम्। दण्डवत्प्रणता देवा वदन्तस्त्राहि मामिति॥ ४०॥
तदन्तरेऽसुराः केचिदुत्थिता विस्मृतेस्तदा। शस्त्रहस्ताऽमरगणान् जिघांसन्तोऽभिसङ्गताः॥
दृष्ट्वा तानसुरान् क्रुद्धा हुङ्कारमकरोत्तदा। तद्धुङ्कारान्महाशक्तिः प्रादुर्भूता चतुर्भुजा॥ ४२॥
भिन्नाऽञ्जनचयाऽऽभासा मुक्तकेशी दिगम्बरी। दृष्ट्वा करालवदना लम्बजिह्वाऽतिभीषणा॥
तां प्राह त्रिपुरेशानी संहरेमान् दितेः सुतान्। आज्ञप्तैवं महादेव्याः कालीक्रोधसमुद्भवा॥ ४४॥

हैं, ये विपद्ग्रस्त हैं। हे भक्तवत्सले! हे त्रिपुराम्बिके! इन दैत्यों से डरे हुए देवताओं की आप रक्षा करें॥ २९॥ उसी क्षण देवताओं को महाभय से बचाने के लिए भगवती आविर्भूत हुई। पूरब और उत्तर दिशा की ओर महाभयंकर आवाज सुनायी पड़ी॥ ३०॥ आकाश और सारी दिशाओं में व्याप्त होकर एक महातेज प्रज्वलित हो उठा। उस महान् आवाज से और तेज से दैत्यगण॥ ३१॥ बेहोश होकर वहीं गिर गये और इसे ब्रह्माण्ड का फटना माना। इसी बीच परमेश्वरी त्रिपुरा आविर्भूत हुई॥ ३२॥ सौन्दर्यसागर की तरह महादेवी त्रिपुरा को देवताओं ने देखा, जिनके सुन्दर शरीर से करोड़ों काम के सौन्दर्य छिटक रहे थे॥ ३३॥ विद्युल्लता की तरह उनकी देहयष्टि थीं, आँखें आकर्षक थीं, शरीर के सारे अवयव सन्तुलित थे। वह अत्यन्त शोभासम्पन्न थी॥ ३४॥ उनके सिर पर चन्द्रमा विराजित थे, उन्हें तीन आँखें थीं; विद्रुमनाल की तरह अपने करकमलों में पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण किये थी॥ ३५॥ चन्द्रमा की तरह सुन्दर उनका मुख था और कमल के सदृश उनकी आँखें थीं। उनके मुख-लावण्य के सागर में मुक्ताबिन्दु सुशोभित थे॥ ३६॥ मुख रूपी चन्द्रोदय से चकित चकवा-चकई की तरह उनके दोनों स्तन थे। उनके अंग-प्रवाललतिका से डालों की तरह बाँहें निकली थीं॥ ३७॥ लाल-लाल तलहटियों में सुन्दर अँगुलियाँ शोभ रही थीं। माणिक्य और कदली-काण्ड की तरह अत्यन्त सूक्ष्म उनके वस्त्र थे॥ ३८॥ जंघारूपी निषंग से फेंके गये मदन के बाणों की प्रभा की तरह अंगूठे थे, विद्युल्लता से परिक्षिप्त तारों की आभा से जगमगाते भूषण थे॥ ३९॥ मुख रूपी चन्द्रमा के उदय से निकले सुन्दर बाल थे। उनके सामने दण्डवत् गिरकर प्रणत देवगण—'मेरी रक्षा करो'—कह रहे थे॥ ४०॥ इसी बीच में अपने अस्तित्व को भूलकर कुछ असुर हाथ में हथियार लिये देवताओं को मारने के लिए आ जुटे॥ ४१॥ उन असुरों को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध देवी ने हुंकार किया। उस हुंकार से चतुर्भुजा महाशक्ति प्रादुर्भूत हुई॥ ४२॥ काजल की कान्ति की तरह चमकती खुले केश वाली, नंग-धड़ंग, कराल शरीर वाली, लम्बी जिह्वा वाली, अत्यन्त भय देने वाली देवी को देखकर॥ ४३॥ भगवती त्रिपुरा ने उनसे कहा—दिति के इन बेटों का विनाश करो। महादेवी

अतिशीला समभवल्लोकवृत्तविपर्ययात् । नग्नोन्मुक्तदीर्घकचा घोररूपा भयङ्करी ॥ ४५ ॥
दंष्ट्रोल्लसल्लम्बजिह्वा करवालकरा परा । निहत्य दैत्यांस्तां कांश्चिन्मुण्डैः कचनिबन्धनैः ॥ ४६ ॥
आपादलम्बिनीं मालां तथा तत्करपङ्क्तिभिः । दधार निर्मितां काञ्चीमेवं लोकाऽतिकारिणी ॥
वारुणीं मदिरां भूयो भूयः पीत्वाऽतिभीषणी । असुरान् भक्षयन्ती सा सृक्वणीस्रुतशोणिता ॥
समेत्य त्रिपुरां देवीं कामुकीं मैथुनेच्छया । देवि मे दिश भर्तारमनुरूपं सुखावहम् ॥ ४९ ॥
नो चेत् कामपराधीना दैत्यान् हन्तुं न पारये । प्रार्थितैवं कालिकया त्रिपुरा परमेश्वरी ॥ ५० ॥
देवं सदाशिवं प्राह भव भर्त्ताऽनुरूपतः । इत्याज्ञप्तोऽभवत्तस्यास्तुल्यरूपः सदाशिवः ॥ ५१ ॥
दृष्ट्वा तं कालिका तुल्यं नाम चक्रे महेश्वरी । प्रतीच्छाऽमुं महाकालं भर्तारं कालिके समम् ॥
दृष्ट्वा प्रसन्ना सा काली महाकालेन सङ्गता । ययौ दैत्यान्नाशयितुं तदङ्गाऽसङ्गहर्षिता ॥ ५३ ॥
अत्यन्तकामुकी तेन महाकालेन क्रीडितुम् । समारेभे ततः सोऽपि पपौ भूयः सुरां बहु ॥ ५४ ॥
मत्तेन मिथुनीभावं प्रयाता कालिका तदा । उन्मत्तमतिमत्तं तं काली कामवशाऽऽकुला ॥ ५५ ॥
कृत्वाऽधस्तं महाकालं मदव्याकुलितं द्रुतम् । विपरीतरतिश्चक्रेऽवितृप्ता कामचारतः ॥ ५६ ॥
रत्यासक्तां महाकालीं चिरं दैत्याः समुत्थिताः । दृष्ट्वा देवान् हन्तुमैच्छन् तदा देवैरभिष्टुता ॥ ५७ ॥
विपरीतरतादाशु विरता सुरसङ्घकम् । योधयामास चण्डाऽट्टहासा काली भयङ्करी ॥ ५८ ॥
आक्रम्य रोदसी खड्गप्रहारेण महासुरान् । हत्वा हत्वा प्रचिक्षेप मुखे भक्षणतत्परा ॥ ५९ ॥

की आज्ञा पाते ही काली क्रोध से उत्पन्न ॥ ४४ ॥ अत्यन्त गतिशील लोकाचार के विरुद्ध नग्न, खुले लम्बे बाल, घोर रूपवाली और भयंकरी ॥ ४५ ॥ बाहर की ओर निकले लम्बे दाँत और बाहर लपलपाती लम्बी जीभ, हाथ में खुली तलवार, कुछ दैत्यों को मारकर उनके मुण्डों का कबरी-बन्धन बनाया ॥ ४६ ॥ तथा उन्हीं मुण्डों की लम्बी माला गले में लटकी थी और उनके हाथों की हड्डियों की करधनी थी। यह लोकातिकारिणी रूपा थी ॥ ४७ ॥ बार-बार वारुणी मदिरा पीकर अत्यन्त मदोन्मता होकर राक्षसों को चबाने लगी। उनके मुँह से लहू चू रहा था ॥ ४८ ॥ इसी स्थिति में उसने भगवती त्रिपुरा के पास पहुँचकर कहा—हे देवि! अब मुझे मैथुन करने की इच्छा हो रही है। मैं इस समय अतिकामुकी हूँ, अतः मेरे अनुरूप सुखावह भर्ता मुझे प्रस्तुत करो ॥ ४९ ॥ नहीं तो कामाधीन होकर दैत्यों को मैं नहीं मार सकूँगी। काली की ऐसी प्रार्थना सुनकर भगवती त्रिपुरा ने ॥ ५० ॥ देव सदाशिव से कहा—आप काली के अनुरूप भर्त्ता बने। यह आदेश पाते ही सदाशिव ने उसी के अनुरूप अपना रूप बना लिया ॥ ५१ ॥ उन्हें वे काली के अनुरूप देखकर उनका नाम महेश्वरी रखा और त्रिपुरा ने उनसे कहा–हे कालिके! इस महाकाल को अपने अनुकूल पति के रूप में स्वीकार करो ॥ ५२ ॥ महाकाल को देखकर काली काफी प्रसन्न हुई। उनके साथ उनके शरीर में चिपकी अति प्रसन्न होकर दैत्यों का विनाश करने निकल पड़ी ॥ ५३ ॥ अत्यन्त कामुकी होकर उसने महाकाल के साथ खेलना शुरू किया। इसक बाद महाकाल ने भी काफी सुरा पी ली ॥ ५४ ॥ तब काली कामाधीन होकर उस उन्मत्त अतिप्रमत्त महाकाल के साथ प्रमत्त होकर रतिक्रिया के लिए अकुला उठी ॥ ५५ ॥ महाकाल को नीचे कर मद से व्याकुल होकर शीघ्र ही विपरीत रति करने लगी। रतिक्रिया से उसे सन्तुष्टि ही नहीं हो रही थी ॥ ५६ ॥ रतिक्रिया में अत्यासक्त उन्हें देखकर राक्षसगण उठ खड़े हुए और देवताओं को मारना चाहा। देवताओं ने भगवती की स्तुति की ॥ ५७ ॥ सुरसमूहों की स्तुति से शीघ्र ही विपरीत रति में आसक्त महाकाली विरत हुई और प्रचण्ड अट्टहास करती हुई भयंकरी काली युद्ध करने लगी ॥ ५८ ॥ चौडे धार वाले खड्ग से प्रहार करती हुई दैत्यों पर आक्रमण कर उन्हें मार-मारकर अपने मुख में फेंकती थी और उसे चबाती जाती

एवं तानसुरान् काली भक्षयन्ती रणाऽजिरे । चचार दैत्यदावाग्निः सर्वलोकभयङ्करी ॥ ६० ॥
तस्या दैत्यांश्चर्वयन्त्याः सफेनं रुधिरं बहु । सृक्वणीभ्यां प्रसुस्राव गिरिशृङ्गाद्यथा झरः ॥ ६१ ॥
एवं तानसुरान् सर्वान् भक्षयित्वा मुहूर्ततः । रक्तपानेन तेषां सा सुरापानादपीश्वरी ॥ ६२ ॥
प्रोन्मत्ता ताण्डवं चक्रे भिन्नाऽञ्जनचयोपमा । यथा संवर्तवातेन नीलाद्रिः प्रतिसञ्चरेत् ॥ ६३ ॥
एवं नृत्ये समारब्धे तथा ब्रह्माण्डमण्डपे । चकम्पे विश्वमखिलं वायुनेव महातरुः ॥ ६४ ॥
पदनिक्षेपनिष्पिष्टचूर्णशेषमहीधरम् । विभ्रमद्बाहुसङ्घट्टत्रोटिताऽशेषलोककम् ॥ ६५ ॥
करवालाऽग्रसञ्छिन्नताराग्रहमहापथम् । निःश्वासधूतजीमूतततिचूर्णितदिक्तटम् ॥ ६६ ॥
विलोक्य नाशाऽभिमुखं ब्रह्माण्डभयविह्वलाः । कृताञ्जलिपुटा धातृमुखाः कालीमुपस्थिताः ॥
अस्तुवन्निस्तुलवचोगुम्फनैरर्थगुम्फितैः । महर्षिसिद्धविद्याध्रयक्षगन्धर्वसंयुताः ॥ ६८ ॥

काली करालवदना करवालधारा नीताऽन्तकालमसुरारिगणा महेशी ।
लोकाऽर्तिनाशनविधानविलासवेषा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥ ६९ ॥
सम्भिन्ननीलमणिशैलनिभा नितान्तपादाऽन्तसङ्गतविमुक्तकचप्रताना ।
देवारिमुण्डकृतकुण्डलमण्डिताऽऽस्या पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥ ७० ॥
दैत्यप्रतानपरिचर्वणवक्त्रपार्श्वप्रस्यन्दिरक्तमयसंप्लुतिशोभिताङ्गी ।
निर्गत्सु रक्तरसनाऽन्तरितस्तनाऽऽढ्या पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥ ७१ ॥
मुण्डं महासिमभयं वरदं दधाना दीर्घैर्महाहिनिभपाणिभिरुग्ररूपैः ।
देवारिनाशनविलासविलोलचित्ता पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥ ७२ ॥

थी ॥ ५९ ॥ इस तरह उन असुरों को रणांगन में खाती हुई महाकाली ने दैत्यों के लिए सर्वलोकभयंकरी दावाग्नि प्रज्वलित कर दी ॥ ६० ॥ महाकाली दैत्यों को चबा रही थी और उनके मुँह से फेन लगा लहू झर-झर चू रहा था; ऐसा लगता था जैसे पहाड़ की चोटी से कोई झरना झर रहा हो ॥ ६१ ॥ इस तरह सारे असुरों को पलक झपकते ही खाकर उनका लहू पीकर और शराब पीकर भी वह महेश्वरी ॥ ६२ ॥ प्रोन्मत्त होकर ताण्डव नृत्य करने लगी। वह काजल की ढेर की तरह लग रही थी, ऐसा लगता था जैसे संवर्त वात के झोंके से नीलाद्रि चंचल हो उठा हो ॥ ६३ ॥ इस तरह महाकाली के महानृत्य से ब्रह्माण्ड काँपने लगा, सारा संसार जैसे हवा से पेड़ काँपते हैं उसी तरह काँपने लगा ॥ ६४ ॥ उनके पैरों की उछाल से पर्वत चूर-चूर हो गये, बाँहें घुमाने से अशेष लोक टूट-टूटकर गिरने लगे ॥ ६५ ॥ तलवार की धार से कटे हुए तारे और ग्रह महापथ को घेर लिये। उनकी उसाँसों से बादल-मण्डल चूर-चूर होकर दिशाओं के किनारे गिरने लगे ॥ ६६ ॥ भयविह्वल ब्रह्माण्ड को विनाशोन्मुख देखकर विधाता-प्रमुख देवगण अंजलि बाँधकर काली के सामने उपस्थित हुए ॥ ६७ ॥ अर्थगुम्फित श्लिष्ट शब्दों से महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष और गन्धर्वों को साथ लेकर वे महाकाली की स्तुति करने लगे ॥ ६८ ॥ हे करालवदने काली! हाथ में तलवार लेकर हे महेशि! तुमने असुरों का विनाश कर डाला। सम्पूर्ण लोक की विपत्ति को विनष्ट करने के लिए तुमने अपना यह विलास वेष बनाया। विपत्ति के सागर में डूबते हमारी रक्षा की हैं ॥ ६९ ॥ नीलमणि पर्वत के समान जिसकी आभा है, पैरों तक पहुँचे काले-काले खुले बाल हैं, दैत्यों के मुण्डों को काट-काटकर अपना कर्णभूषण बनाकर अपने मुखमण्डल को सुशोभित किया है; विपत्ति के महासागर में डूबते हम सबों की रक्षा करो ॥ ७० ॥ दैत्य-समूहों को चबाते रहने के कारण मुँह के दोनों किनारों से लगातार चूने वाले लहू से तुम्हारा अंग सुशोभित है। लहू से लपलपाती जीभ तुम्हारे स्तन तक लटक रही है। विपत्तिसागर में पड़े हम सबों की तुम रक्षा करो ॥ ७१ ॥ एक हाथ में मुण्ड, दूसरे में तलवार, तीसरे में अभयदान और चौथे में वरदान धारण किये हुए लम्बी बाँहें

सद्यो निकृत्तदितिजोऽत्तनुमूर्द्धक्लृप्ताऽऽपादप्रलम्बिरुचिरस्रगलङ्कृताङ्गी।
तद्बाहुनिर्मितकटीरशनानिबद्धा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात्॥ ७३॥
नृत्यप्रकम्पितसमुन्नतपीवराऽतिमात्रस्तनाऽऽहतिविशीर्णसुमेरुशृङ्ग ।
आशाऽम्बरा पदनखक्षतदारितक्ष्मा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात्॥ ७४॥
क्रोधोद्भवात्ममपि दैत्यविनाशहेतोर्घोरं स्वरूपमवभासयसि महिम्ना।
न स्याद्यतो विषमिहाऽऽमृततोयराशेः पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात्॥ ७५॥
यत्रेदमित्थमखिलं प्रतिभाति घोरं मायादृशां न च यथार्थदृशां कदाचित्।
तत्त्वं पराऽमृतसुखप्रतिभानरूपा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात्॥ ७६॥
इति स्तुत्वा विधिमुखा दण्डवत्प्रणता भुवि। शृण्वन्त्यपि स्तुतिं काली नाऽबुध्यत मदोत्कटा॥
अथ विष्णुर्महाकालं प्रार्थयामास सन्नतः। शान्तये कालिकादेव्याः स्तुत्वा स्तुतिभिरुत्तमैः॥
उपसृत्य महाकालः पानमत्तां शनैः शनैः। पादमूले कालिकायाः शयानोऽथ दिगम्बरः॥ ७९॥
सा तं समारुह्य हृदि ननर्त विगतस्मृतिः। तदङ्गसंस्पर्शमात्रात् प्रत्यबुध्यत वै पतिम्॥ ८०॥
निवृत्तताण्डवा भूत्वा प्राह देवान् पुरः स्थितान्। प्रसन्नाऽस्मि सुराः किं वो वाञ्छितं तत् प्रतीच्छथ॥
इति प्रोक्ताः कालिकया विधिमुख्याः समब्रुवन्। सम्पन्नं कालिके सर्वं कृपया ते वयं सुराः॥ ८२॥
सर्वथा स्मो हतरिपुगणा विगतसाध्वसाः। त्वमेवं रमणी भर्त्रा सह लोकशिवङ्करी॥ ८३॥
जनान् पातु गिरावस्मिन् स्थिरीभव महेश्वरि। प्रार्थितैवं देवगणैः काली प्राह प्रसादिता॥ ८४॥

उग्ररूप में भयंकर नाग की तरह दैत्यों के विनाशलीला से चंचल चित्त वाली विपत्ति के सागर में डूबते हम देवों की तुम रक्षा करो॥ ७२॥ दिति के बेटों की गर्दन काटकर उनके मुण्डों की माला बनाकर गले से पैर तक लटकाने वाली, उनकी बाँहों से करधनी बनाकर कटी में पहनने वाली विपत्ति के सागर में डूबते हम सबों की तुम रक्षा करो॥ ७३॥ नाचते समय उनके अतिउन्नत और स्थूल स्तनद्वय काँप रहे थे, लगता था जैसे दो सुमेरु पर्वत टूटकर अब गिरे, तब गिरे; दिशाएँ जिनके वस्त्र हैं, पैर के नाखून से धरती क्षत-विक्षत हो रही थी, ऐसी महाकाली विपत्ति के सागर में डूबते हमारी रक्षा करें॥ ७४॥ आत्मक्रोध से दैत्य-विनाश के हेतु अपना घोर-कठोर रूप में शोभने वाली महा महिमामयी इससे अधिक विष और अमृत रूपी जलराशि दूसरी कोई नहीं हो सकती, ऐसी महाकाली विपत्तिसागर में डूबते हम सबकी रक्षा करें॥ ७५॥ जहाँ इदं और इत्थं अर्थात् संसार की हर वस्तु घोर रूप में प्रतीत होती है, यह तुम्हारी माया का रूप है, यथार्थ नहीं। तुम तो निःसन्देह अमृत-सुख का प्रतिभासित रूप वाली हो, हे भगवति! विपत्तिसागर में डूबते हम देवताओं की रक्षा करो॥ ७६॥ विधि-प्रमुख देवताओं की भगवती की ऐसी स्तुति सुनकर भी मदोत्कटा महाकाली कुछ भी नहीं सुन सकी॥ ७७॥ तब भगवान् विष्णु ने महाकाल की विनम्र होकर प्रार्थना की और कालिका देवी की शान्ति के लिए उत्तम स्तोत्रों से स्तुति कर॥ ७८॥ काली के पैरों के नीचे सोये दिगम्बर महाकाल के पास, जो पीकर उन्मत्त बने थे, धीरे-धीरे पहुँचे॥ ७९॥ महाकाली उस समय अपनी सुध-बुध खोकर उनकी छाती पर चढ़ी नाच रही थीं। पति के अंग के स्पर्श मात्र से वह प्रबुद्ध हुई॥ ८०॥ ताण्डव नृत्य रोककर देवताओं को आगे खड़े देखकर उन्होंने कहा—ओ देवगण! मैं तुम पर खुश हूँ, जो चाहो वांछित माँग लो॥ ८१॥ काली के ऐसा कहने पर विधि-प्रमुख देवताओं ने कहा कि तुम्हारी कृपा से हमारा सब कुछ सम्पन्न हो गया॥ ८२॥ हम विपत्ति से मुक्त हुए, हमारे दुश्मन मारे गये और तुम अपने पति के साथ लोककल्याणकारी बन गई॥ ८३॥ हे महेश्वरी! इसी पहाड़ पर लोकरक्षा के लिए अब तुम स्थिर हो जाओ। देवगणों की

गिरौ वसामि भो देवा रूपेणाऽनेन सर्वदा। प्रदात्री वाञ्छितार्थानां मत्पराणां विशेषतः॥८५॥
यो मामेवंविधां लोके भावयेद्भक्तिनिर्भरः। स्थापयेदपि मन्मूर्तिं पूजयेत् पिशिताऽऽसवैः॥८६॥
बलिभिः कामभोगैश्च द्वन्द्वभावसमुद्भवैः। निर्विकल्पः सर्वसिद्धिं साधयामि न संशयः॥८७॥
इति तेऽभिहितं राम कालिकाचरितं महत्। एवं सा कालिका भूत्वा चकार लोकरक्षणम्॥८८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कालीचरितं
नामं चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥३६८२॥

इस प्रार्थना से प्रसन्न होकर काली ने कहा॥८४। हे देवगण! इसी रूप से हमेशा मैं इस पहाड़ पर निवास करूँगी। जो मेरे भक्त हैं उन्हें विशेष रूप से वाञ्छितार्थ दूँगी॥८५॥ इस तरह मेरे रूप की भक्तिनिर्भर होकर जो मेरी भावना करेगा, मेरी मूर्ति की स्थापना कर मांस और शराब से मेरी पूजा करेगा॥८६॥ द्वन्द्व भाव से उत्पन्न बलि देकर कामभोग से सन्तुष्ट करेगा, निर्विकल्प भाव से मैं उस साधक को सर्वसिद्धि दूँगी, इसमें संशय मत करो॥८७॥ हे परशुराम! मैंने तुम्हें महाकाली का चरित सुना दिया। इस तरह उसने कालिका के रूप में लोकरक्षा की है॥८८॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में कालीचरित
नामक चौंवालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३६८२॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

जामदग्न्याऽथ ते वक्ष्ये दुर्गामाहात्म्यमद्भुतम्। यच्छ्रुत्वा पातकेभ्योऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥
त्रिपुरांऽशसमुद्भूता दुर्गा देवी महेश्वरी। देवानां दुर्गतेस्त्राणाद्दुर्गेति परिकीर्तिता॥ २ ॥
दुरितं गच्छति स्मृत्या तस्माद्दुर्गा समीरिता। तस्या माहात्म्यमनघं पुराणेषु समीरितम्॥ ३ ॥
पुरा देवपतिः शक्रः श्रियौन्नत्यात् स्मयं गतः। ऐरावतं समारूढो गन्धर्वाऽप्सरसां गणैः॥ ४ ॥
सेवितो विन्ध्यशिखरे शृङ्गं प्राप्तः कुतूहलात्। तत्र कश्यपदायादः सुनेत्रो मुनिसत्तमः॥ ५ ॥
तपश्चचार विपुलं तेजसा समभिज्वलन्। तस्य पत्नी गौतमजा सुमित्राख्या पतिव्रता॥ ६ ॥
स्नातुं समाययौ नद्यां नर्मदायां समीपतः। दृष्ट्वेन्द्रस्तां स्थूलतनुं कृष्णवर्णां विरूपिणीम्॥ ७ ॥
जहासोच्चैः स्मयन्नतस्तामुपव्रज्य हेलया। प्रोवाच प्रहसन् वाक्यमात्मपातं विमूढधीः॥ ८ ॥
काऽसि कस्याऽसि सुभगे महिषी प्रतिभासि मे। कतरं विपुलं लोके महिषं जनयिष्यसि॥ ९ ॥
श्रुत्वाऽवहेलनं क्रुद्धा सुमित्रा पतिदेवता। प्राह शक्रं सुनिर्भर्त्स्य निःश्वसन्ती रुषाऽन्विता॥ १० ॥
दुर्मते ते दर्पहरो महिषो भविता द्रुतम्। शची ते महिषी भूत्वा जनयिष्यति तं रिपुम्॥ ११ ॥
विसृष्टे तु महाशापे भीतो देवपतिस्तदा। दण्डवत् प्रणतो देवीं त्राहि त्राहीत्यवोचत॥ १२ ॥
ययौ स्वमाश्रमं स्नात्वा सुमित्राऽतिसुरोषिता। अनुवव्राज देवेन्द्रः शचीयुक्तो भयाऽऽतुरः॥

✻ विमला ✻

हे परशुराम! अब मैं तुम्हें दुर्गाजी की अद्भुत महिमा सुनाता हूँ, इसे सुनकर लोग हर तरह के पापों से मुक्त हो जाते हैं॥ १॥ त्रिपुरा के अंश से समुद्भूत महेश्वरी दुर्गा देवी हैं। देवताओं को दुर्गति से त्राण दिलाने के कारण ही ये दुर्गा नाम से विख्यात हुई॥ २॥ जिनकी केवल स्मृति से पाप विनष्ट होता है, वही दुर्गादेवी कहलाती है। उनकी महिमा को पापनाशिनी पुराणों में कहा गया है॥ ३॥ पहले की बात है, इन्द्र का विलास-वैभव और ऐश्वर्य बढ़ जाने से उनका अहङ्कार भी बढ़ गया। एक बार गन्धर्वों एवं अप्सराओं से सेवित ऐरावत हाथी पर चढ़कर॥ ४॥ विन्ध्याचल के शिखर पर कौतूहल के कारण उतर गये। वहाँ कश्यप के पुत्र मुनियों में श्रेष्ठ सुनेत्र नामक मुनि रहते थे॥ ५॥ वे उस पर्वत पर तप करते थे, तेज के मारे वो प्रज्वलित हो रहे थे। गौतम की पुत्री सुमित्रा उनकी पतिव्रता पत्नी थी॥ ६॥ एक बार नर्मदा नदी में वह स्नान करने उसके तट पर पहुँची। उसकी मोटी देह, काला रंग और उसकी कुरूपता देखकर इन्द्र ने॥ ७॥ खूब जोर से हँसते हुए उसके पास पहुँचकर उसकी अवहेलना करते हुए व्यंग्य करते हुए आत्मघाती शब्दों का प्रयोग किया॥ ८॥ अरी ओ सुभगे! तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? मुझे तो तुम भैंस की तरह लगती हो, इस विस्तृत संसार में किस भैंसे को जन्म दोगी॥ ९॥ इन अवहेलना भरी बातों को सुनकर पतिव्रता सुमित्रा ने काफी क्रुद्ध होकर इन्द्र की भर्त्सना कर आह भरते हुए कहा॥ १०॥ रे दुष्टबुद्धि इन्द्र! तुम्हारा घमण्ड मिटाने के लिए भैंसा जन्म लेगा और वह भैंसा तुम्हारी महिषी शची के ही पेट से जन्म लेकर तुम्हारा दुश्मन बनेगा॥ ११॥ इस महाशाप से घबराकर और डरकर देवपति इन्द्र ने दण्डवत् प्रणत होकर देवी से कहा—मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो॥ १२॥ फिर नदी में स्नान कर अत्यन्त क्रुद्ध सुमित्रा अपने आश्रम में प्रविष्ट हुई।

दृष्ट्वा सुनेत्रमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम्। प्रसादयामास शक्रः शचीयुक्तः पुनः पुनः ॥ १४॥
ज्ञात्वा सोऽप्यपचारं तं दृष्ट्वाऽतिरुषितां प्रियाम्। भीतः सुनेत्रः प्राहेदमिन्द्रं पत्नीं सुतोषयत्॥
देवेन्द्र शृणु वक्ष्यामि न श्रुतं किं त्वया पुरा। पतिव्रतानां माहात्म्यं सर्वलोकविशेषितम्॥ १६॥
पतिव्रता यदि क्रुद्धा ब्रह्माण्डं नाशयेत् क्षणात्। प्रसन्ना विसृजेद्भूयो ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥ १७॥
पतिव्रताया माहात्म्यात् स्तब्धः सूर्यश्चिरं ननु। पुरा दाक्षायणी मूर्तिर्यज्ञपत्नी पतिव्रता॥ १८॥
चकार प्रलयं लोके माहात्म्यात्तपसो ननु। तत् प्रसादय तामेव गत्वा नत्वा शचीयुतः॥ १९॥
न मे शक्तिः प्रतीकारे सर्वथा देवभूपते। पुराऽभून्मुद्गलो नाम तपोराशिर्द्विजोत्तमः॥ २०॥
तस्य भार्या सानुमती सुन्दरी लोकपूजिता। तां वायुर्ददृशे नद्यां विगाहन्तीं सुमध्यमाम्॥ २१॥
सौन्दर्यसम्पदा तस्याः कामबाणप्रपीडितः। जघनं प्रविवेशाऽशु वस्त्रोत्क्षेपणहेतवे॥ २२॥
विज्ञाय वायोर्दौरात्म्यमूरुभ्यां तमकर्षत। संहृत्य स्वोरुमध्ये तं रुरोध तपसा हि सा॥ २३॥
रुद्धो वायुर्यदा जातस्तया सर्वे जडीकृताः। लोकाः क्षणं तद्विचार्य लोकनाशमकारणात्॥ २४॥
तत्याज देहव्यापारहेतुं वायुं पतिव्रता। तदन्यं वायुमखिलमूरुमध्ये निरोधयत्॥ २५॥
अथ लोका मरुद्धीना विह्वला अभवन्मुहुः। न वाति जगति क्वाऽपि मारुतो लयमागतः॥ २६॥
वायुलोकेऽपि लुप्तं तं ज्ञात्वा तल्लोकवासिनः। निवेदयन् वायुनाशं देवेशस्य समीपतः॥ २७॥
निशम्य नाशं मरुतः शक्रोऽन्विष्याऽखिलं जगत्। विधातारमुपेत्याऽथ प्रणम्याऽतिसुदुःखितः॥
भगवन् मरुता हीनो लोको नाशमुपैष्यति। न वर्धते तृणमपि निःसत्त्वं भुवनत्रयम्॥ २९॥

उनके पीछे-पीछे शची के साथ भयातुर देवराज ने भी प्रवेश किया॥ १३॥ वहाँ आग की तरह जलते मुनि सुनेत्र को बैठा देखकर शची के साथ इन्द्र ने बार-बार उनकी प्रार्थना कर उन्हें प्रसन्न किया॥ १४॥ जब उसे इन्द्र के दुराचार का पता चला एवं पत्नी को अत्यन्त क्रुद्ध देखकर भयभीत इन्द्र को सुनेत्र ने कहा—आप उन्हें ही सन्तुष्ट करें॥ १५॥ हे देवेन्द्र! सुनो मैं तुमसे कहता हूँ, क्या तुमने पहले कभी सुना नहीं, पतिव्रताओं की महिमा तो सर्व लोकों में विदित है॥ १६॥ पतिव्रता यदि क्रुद्ध हो जाय तो ब्रह्माण्ड को एक पल में विनष्ट कर देगी, वही यदि खुश हो जाय तो चराचर सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माण कर दे॥ १७॥ पतिव्रता की महिमा के आगे सूर्य भी रुका रहता है, पहले दाक्षायणी मूर्ति यज्ञपत्नी पतिव्रता ने॥ १८॥ अपने तप की महिमा से लोक में प्रलय मचा दिया था। इसलिए हे देवेन्द्र! शची के साथ उनके पास जाकर उन्हें ही प्रणाम कर खुश करो॥ १९॥ हे देवराज! इससे प्रतिकार करने की क्षमता मुझमें नहीं है। पहले मुद्गल नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ थे॥ २०॥ उसकी पत्नी सानुमति अत्यन्त खूबसूरत और लोकपूजिता थी। एक बार उसे नदी में स्नान करते हुए पवनदेव ने देखा॥ २१॥ उसकी रूप-सम्पदा को देखकर वह कामबाण से पीड़ित हुआ। उठे कपड़े के कारण शीघ्र उसकी जंघा में प्रवेश कर गया॥ २२॥ दुरात्मा वायु की इस धृष्टता को जानकर उसे जंघे की ओर खींचा और अपने तपोबल से दोनों जंघों के बीच दबोच लिया॥ २३॥ वायु का प्रवाह जब रुक गया, तो सब-के-सब जड़ हो गये। क्षण में संसार के विनाश को सोचकर। २४॥ देह-व्यापार के हेतुभूत वायु को बिना छोड़े अपने जांघों के बीच रोक रखा॥ २५॥ वायुहीन संसार विह्वल हो गया। संसार में कहीं भी हवा नहीं चलती थी, पवन का विलय हो चुका था॥ २६॥ वायुलोक में भी उस लोक के वासियों ने वायु को लुप्त जानकर देवराज इन्द्र के समीप वायु के गुम हो जाने की सूचना दी॥ २७॥ मरुत् का विनाश सुनकर इन्द्र ने सारी दुनिया छान डाली। फिर विधाता के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम कर अत्यन्त दुःखी होते हुए॥ २८॥ हे भगवन्! मरुतहीन संसार तो विनष्ट हो जायेगा, घास-फूस भी

नेषत्तस्मै विप्रकृतं केनचित् क्रोधहेतवे। कुतो विलयनं प्राप्तो न जाने मारुतो बली॥ ३०॥
श्रुत्वेन्द्रवचनं वेधा ध्यात्वा तत्समचेष्टत। अवगत्याऽऽह हर्यश्वं शृणु शक्र मरुद्गतिम्॥ ३१॥
कुरुक्षेत्रे मुद्गलस्य मुनेर्भार्या पतिव्रता। तयोपसंहृतो वायुरपचाराल्लयं गतः॥ ३२॥
ऊरुमध्ये कृशीभूतो लुप्तशक्तिः सुदुःखितः। पतिव्रता सानुमती तपस्तेजःसुसम्भृता॥ ३३॥
प्रार्थिता वा विमुञ्चेत्तमुपायेन सुरेश्वरः। न त्वं साक्षात् प्रार्थय तां क्रुद्धा भस्मीकरिष्यति॥ ३४॥
मुद्गलं शरणं याहि स ते श्रेयो विधास्यति। श्रुत्वैवं धातृवचनं जगाम मुद्गलाऽऽश्रमम्॥ ३५॥
सुरैः परिवृतः शक्रः पूजाद्याहृतिहेतवे। वने स्थितं तं समेत्य भीतस्तस्या निरन्तरे॥ ३६॥
प्रणम्य प्रार्थयामास मारुतस्य विमुक्तये। मुद्गलः प्राह देवेन्द्रं मधुरं वचनं तदा॥ ३७॥
देवेन्द्र शृणु सत्यं ते ब्रवीमि सुरसंयुतः। नाऽहं समर्थस्तां वक्तुं मारुतं विसृजेति वै॥ ३८॥
मयैतद्विदितं पूर्वं तपसा सर्वमेव तत्। अपराधयुतं तं चेद्वक्ष्यामि विसृजेति ताम्॥ ३९॥
मां साश्रमं सलोकं वा भस्मीकुर्यात् क्षणेन सा। तद्युक्तिं तेऽभिधास्यामि कुबेरवरुणाऽग्निभिः॥
ब्रह्मचर्यसमाच्छन्नो निवसंस्त्वं समाहितः। सेवाभिस्तोषय तां तुष्टा कुर्यात् समीहितम्॥ ४१॥
ओमित्युक्त्वा देवपतिः कुबेरवरुणाऽग्निभिः। ब्रह्मचर्ये प्रतिच्छन्नो निवसंस्तत्र संयतः॥ ४२॥
श्रद्धया तां सानुमतीं परिचेतः समन्ततः। तस्याः प्रियतमा गावस्तत्सेवायां शतक्रतुः॥ ४३॥
धनेशः फलमूलानामाहृतौ नित्यसंयतः। जलाऽऽहरणवस्त्रादिक्षालने वरुणोऽन्वहम्॥ ४४॥
अग्निहोत्रस्य सम्पत्तावग्निस्तस्थे नु संयतः। देवेन्द्रो गा दुहन् दुग्धं प्रत्यहं समवर्धयत्॥ ४५॥

नहीं बढ़ पायेंगे; तीनों लोक का जीवन ठप हो जायेगा॥ २९॥ पता नहीं, किसके क्रोध के कारण कहाँ पवनदेव विनष्ट हुए? पता नहीं, इस बलवान् मरुत् का कहाँ विलयन हुआ?॥ ३०॥ इन्द्र की बात सुनकर ब्रह्मा ने ध्यान कर उसके कृत कर्म को जानकर उनसे कहा—हे इन्द्र! मरुत् की गति के बारे में सुनो॥ ३१॥ कुरुक्षेत्र में अवस्थित मुद्गल मुनि की पतिव्रता पत्नी ने वायु के अपचार के कारण उसे अपने तपोबल से विलीन किया है॥ ३२॥ पतिव्रता सानुमती के तपोबल से उसकी जंघा के बीच बलहीन, कृशकाय और अत्यन्त दुःखी पवनदेव हैं॥ ३३॥ हे सुरेश्वर! उसे प्रसन्न कर उसकी प्रार्थना कर उसे छुड़ाने का प्रयास करे, पर याद रखो उसके सामने जाकर प्रार्थना मत करना, क्योंकि वह अत्यन्त क्रुद्धा है पर तुम्हें भस्म कर डालेगी॥ ३४॥ पहले मुद्गल ऋषि की शरण में जाओ, वही तुम्हारा कल्याण करेगा। विधाता की सलाह सुनकर इन्द्र सीधे मुद्गल ऋषि के आश्रम में पहुँचे॥ ३५॥ देवताओं से घिरे इन्द्र पूजादि सामग्रियों के कारण वन में स्थित निरन्तर डरते हुए उनके पास पहुँचे॥ ३६॥ उन्हें प्रणाम कर मरुत् की मुक्ति के लिए प्रार्थना की। तब मुद्गल ऋषि ने बड़ी मीठी आवाज में उनसे कहा॥ ३७॥ देवेन्द्र! आप सुने, मैं सच-सच आपको बतलाता हूँ। मैं उन्हें मरुत् की विमुक्ति के लिए कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हूँ॥ ३८॥ मैंने अपने तप के प्रभाव से यह सब कुछ जान लिया था, फिर भी इस अपराधी की मुक्ति के लिए यदि मैं उनसे कहूँ॥ ३९॥ तो मुझे साश्रम और सलोक एक पल में जलाकर राख कर देगी। फिर भी इसकी युक्ति मैं आपको बतलाता हूँ; कुबेर, वरुण और अग्नि॥ ४०॥ के साथ ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर आश्रम में निवास करे और अपनी सेवा से उन्हें सन्तुष्ट कर उनसे अभिलषित प्राप्त करो॥ ४१॥ देवराज इन्द्र ने स्वीकारोक्ति देकर वरुण, कुबेर और अग्नि के साथ ब्रह्मचारी के रूप में आश्रम में निवास किया॥ ४२॥ श्रद्धापूर्वक सानुमती की सेवा में तत्पर रहने लगे। उनकी प्रियतमा गाय की सेवा इन्द्र करते थे॥ ४३॥ नित्य संयत भाव से कुबेर फल-मूलादि का आहरण करते और वरुणदेव पानी लाते तथा वस्त्रादि का प्रक्षालन करते॥ ४४॥ अग्निदेव अग्निहोत्र की सामग्रियाँ जुटाते। इन्द्र प्रतिदिन गायें दुहते, इससे गाय का दूध प्रतिदिन बढ़ता जाता था॥ ४५॥

अत्यन्तमधुरं दुग्धं स्नेहोत्कर्षमभूत्तदा। कुबेरोऽभ्याहरत् स्वादुफलमूलानि चाऽन्वहम्॥ ४६॥
वरुणः स्वादुभूतं वै तोयमानयतीप्सितम्। एवं तैरनिशं देवी सेव्यमाना सुतोषिता॥ ४७॥
प्रसन्ना प्राह भर्तारमेकान्ते समुपस्थितम्। एते विद्यार्थिनो देवपरिचर्यापरायणाः॥ ४८॥
सम्प्रत्यनुग्रहे योग्या इति मे भाति सत्यतः। विशेषतस्तु मामेव सेवमानाः कुतस्त्विमे॥ ४९॥
अत्र त्वया चाऽनुमतास्तत्र हेतुं वद प्रभो। पृष्ट एवं मुद्गलस्तु स्मितपूर्वमभाषत॥ ५०॥
शृणु भद्रे क्षमायुक्ता न रोषं कर्तुमर्हसि। क्रोधेन नश्यति तपस्तस्मात् क्षान्ता सदा भव॥ ५१॥
त्वयाऽपचारी संरुद्धो मारुतो जघनाऽन्तरे। तेन हीनेन लोकोऽयमवसादमुखं गतः॥ ५२॥
तस्याऽद्य वायो रुद्धस्य चाऽतीयुर्दशवत्सराः। तं विमोचयितुं चैते शक्राऽग्निजलयक्षपाः॥ ५३॥
भीतास्त्वत्सेवनपराः प्रसादं कर्तुमर्हसि। तदन्तरे प्रसन्नां तां ज्ञात्वा शक्रमुखाः सुराः॥ ५४॥
कृताञ्जलिपुटा नत्वा प्रसादायोपसंस्थिताः। तान् दृष्ट्वाऽतिप्रसन्ना सा मुमोच मारुतं तदा॥ ५५॥
समीरो निर्गतो रोधाल्लज्जितः प्रणिपत्य ताम्। ययौ शक्रादिसंयुक्तो नत्वा मुद्गलमेव च॥ ५६॥
एवं पुरातनं वृत्तं स्वारोचिषसमुद्भवम्। तस्मात्त्वमिन्द्रस्तार्त्तीयो रैवताऽन्तरसंस्थितः॥ ५७॥
प्रसादयाऽत्र तामेव नाऽन्यथाऽभयसंक्षयः। श्रुत्वा मुनेर्वचस्त्वेवं सुमित्रामभिजग्मतुः॥ ५८॥
शची तां प्रार्थयामास भूयो दैत्यमुपाश्रिता। ततः सा शक्रमहिषीमब्रवीत् कृपयाऽन्विता॥ ५९॥
गच्छ भद्रे प्रसूयाऽऽशु महिषं शापतश्च्युता। इन्द्रोऽपि भ्रष्टसर्वस्वो देवीमाराध्य सत्वरम्॥ ६०॥
देव्या हतरिपुर्भूत्वा पुनरेष्यति तं पदम्। एवं सम्प्राप्य शापान्तमाश्रमात्तौ विनिर्गतौ॥ ६१॥

स्नेहोत्कर्ष के कारण उस गाय का दूध बड़ा ही मीठा हो गया। उधर कुबेर भी सुस्वादु एवं मधुर फल प्रतिदिन जुटाने लगे॥ ४६॥ वरुण का लाया जल भी बड़ा मीठा एवं स्वाद युक्त होता। इस तरह उस देवी की सेवा कर इन सबों ने उस देवी को बड़ा ही सन्तुष्ट किया॥ ४७॥ उस देवी ने प्रसन्न होकर एकान्त में अपने पति से कहा—ये विद्यार्थी देव-परिचर्या में बड़े ही प्रवीण प्रतीत होते हैं॥ ४८॥ इस समय ये अनुग्रह के योग्य हैं; ऐसा मुझे लगता है खासकर मेरी ही सेवा ये क्यों कर रहे हैं॥ ४९॥ आपसे अनुमति लेने के बाद ये सेवारत हैं, इसका क्या कारण हो सकता है? बतलाइए। पतिव्रता के पूछने पर मुद्गल ऋषि ने मुस्कराते हुए उनसे कहा॥ ५०॥ हे भद्रे! सुनो, तुम्हें क्षमायुक्त होना चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध से तो सारा तप नष्ट हो जाता है, अतः तुम्हें सदा क्षमाशील होना चाहिए॥ ५१॥ तुमने दुष्कर्मी मरुत् को अपनी जाँघों के बीच रोक रखा है, इससे हीन होकर यह लोक काफी दुःखी हुआ है॥ ५२॥ तुम्हें इस वायु को रोके दस साल बीत गये। उन्हें छुड़ाने के लिए ये ब्रह्मचारी इन्द्र, अग्नि, वरुण और कुबेर हैं॥ ५३॥ ये डरे हैं, तुम्हारी सेवा कर तुम्हें प्रसन्न करना चाहते हैं। इसके बाद उन्हें प्रसन्न जानकर इन्द्रादि देवगण ने॥ ५४॥ अंजलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रसन्नता के लिए उनके पास पहुँचे। उन्हें देखकर अति प्रसन्न होकर पवनदेव को छोड़ दिया॥ ५५॥ अवरोध से छूटकर पवनदेव बाहर निकले और लजाते हुए उस पतिव्रता को प्रणाम कर मुद्गल ऋषि को भी प्रणाम कर इन्द्रादि देवताओं के साथ चलते बने॥ ५६॥ स्वारोचिष से उत्पन्न यह पुरानी कथा हुई। इसलिए हे इन्द्र! रैवत पर्वत पर संस्थित तातीर्य ऋषि को॥ ५७॥ इसीलिए उन्हें ही प्रसन्न करो, अन्यथा अभयदान में संशय है। मुनि की बात सुनकर वे दोनों सुमित्रा के पास गये॥ ५८॥ शची ने उनकी प्रार्थना की, दैत्यों की वह उपासिता थी। उसके बाद उसने कृपान्वित होकर इन्द्राणी से कहा॥ ५९॥ हे भद्रे! शीघ्र ही शाप से गिरे भैंसे को जन्म दो, इन्द्र भी सब गँवाकर शीघ्र देवी की आराधना करे॥ ६०॥ देवी जब उसके दुश्मन को मार डालेगी तब वह पुनः अपना पद प्राप्त कर लेंगे; इस तरह शाप का

**अथेन्द्राणी क्षणेनैव महिषी समजायत। गिरिशृङ्गनिभा चाऽतिविकटा घोररूपिणी॥ ६२॥
भूत्वा सैवं तु महिषी प्राविशद्वनमुत्तमम्। निघ्नन्ती व्याघ्रसिंहेभान् दारयन्ती गिरेर्गणान्॥ ६३॥
प्रविवेश महारण्यं दुर्गं प्राणिविवर्जितम्। तत्राऽऽदिदैत्यराजस्य कैटभस्य महौजसः॥ ६४॥
स्कन्नं वीर्यं पर्वताभं तृणैरन्तर्हितं स्थितम्। महिषी तत्तृणं जग्धुं प्रवृत्ताऽतिक्षुधाऽन्विता॥ ६५॥
शीतेन तद्घनीभूतं स्फटिकाऽद्रिरिव स्थितम्। निःश्वासोष्मसमाक्रान्त्या द्रवीभूतं क्रमेण तत्॥
भक्षितं तत्तृणयुतमशेषं यर्हि चाऽभवत्। तदा सा गर्भिणी भूत्वा महिषं समजीजनत्॥ ६७॥
प्रसूय महिषं शापान्मुक्तेन्द्राणी दिवं ययौ। वने तस्मिन् स महिषः कालेन समवर्धत॥ ६८॥
महागिरिप्रमाणोऽसौ शृङ्गाभ्यां पर्वतान् बली। चिक्षेप लीलया भूयः खुरैः पृथ्वीं व्यदारयन्॥
अथाऽसुरास्तं समेत्य दैत्यराज्ये न्यवेशयन्। स प्राप्य दैत्यराजत्वं युयोधाऽसुरचोदितः॥ ७०॥
देवैः शक्रादिभिर्भूयो यममग्निं धनेश्वरम्। जित्वाऽधिकारमकरोत् स्वयमेव महासुरः॥ ७१॥
शक्रञ्च वरुणं सोमं जित्वा श्रियमुपाहरत्। त्रिलोकीशासनपरः महिषः समजायत॥ ७२॥
एवं निराकृतास्तेन महिषेण दुरात्मना। शक्रादिदेवाः सञ्जग्मुः पद्मयोनिं प्रजापतिम्॥ ७३॥
तस्मै निवेदयामासुर्महिषेण पराभवम्। भगवन् महिषाऽऽख्येन वयं सर्वे विनिर्जिताः॥ ७४॥
हृताऽधिकारसर्वस्वाश्चरामो भुवि मर्त्यवत्। विचिन्तयाऽत्रोपायं रक्षाऽस्मान् शरणागतान्॥
निशम्य शक्रादिवचो ध्यात्वा लोकपितामहः। मत्वा गुरुतरं कर्म दध्यौ विष्णुञ्च शङ्करम्॥ ७६॥**

अन्त हो जायेगा। यह सुनकर वे दोनों आश्रम से बाहर आ गये॥ ६१॥ एक क्षण में ही इन्द्राणी भैंस बन गई। वह पहाड़ की तरह अत्यन्त विकट और घोररूपिणी और विशाल हो गई॥ ६२॥ ऐसी विशाल भैंस होकर वह सघन जंगल में घुस गई; बाघ, सिंह और हाथियों को चिरती और पर्वत-शृंखलाओं को ढहाती।६३॥ तब दुर्ग और प्राणी वर्जित जंगल में उस भैंस ने प्रवेश किया। वहाँ आदि दैत्यराज महातेजस्वी कैटभराज का॥ ६४॥ स्खलित वीर्य पर्वताकार घास में छिपा था। भैंस बनी इन्द्राणी भूख के मारे आर्त थी। उसने उस घास को चरना शुरू किया॥ ६५॥ ठण्ड से वह वीर्य जमकर स्फटिक पत्थर की तरह घास से चिपका था। भैंस की गर्म साँस से क्रमशः वह पिघलने लगा॥ ६६॥ घास में चिपके गर्म वीर्य को भी उसी के साथ वह खा गई। फलतः उसने गर्भिणी होकर एक भैंसे को जन्म दिया॥ ६७॥ भैंसे को जन्म देकर शापमुक्त होकर इन्द्राणी स्वर्ग लौट गयी। समय के साथ वह भैंसा बढ़ने लगा॥ ६८॥ अपने दोनों सींगों के कारण वह पहाड़ के इतना ऊँचा हो गया। वह बलवान् भैंसा अपने सींगों से पहाड़ों को आसानी से उछाल देता था और अपने खुरों से धरती को चीर देता था॥ ६९॥ इसके बाद दैत्यगण ने उसे लेकर दैत्यराज में निवेशित कर दिया। असुरों ने उसे पाकर दैत्यों का राजा बना दिया और युद्ध के लिए प्रेरित किया॥ ७०॥ इन्द्रादि देवताओं को तथा यम, अग्नि, कुबेर को जीतकर उस महिषासुर ने अपने अधिकार में कर लिया॥ ७१॥ इन्द्र, वरुण और सोम को जीतकर उनकी श्रियों का अपहरण किया। फिर वह महिषासुर तीनों लोक का शासक बन गया॥ ७२॥ इस तरह उस दुरात्मा महिषासुर से पराजित देवगण इन्द्र के साथ पद्मयोनि प्रजापति ब्रह्मा के पास पहुँचे॥ ७३॥ महिषासुर से पराजित देवगण ने उन्हें निवेदित किया—हे भगवन्! महिषासुर नामक असुर ने हमें पराजित कर दिया है॥ ७४॥ हमारे सारे अधिकार और सर्वस्व उसने छीन लिया और हमें जनसाधारण की तरह धरती पर घूमने को विवश कर दिया है। आप हम शरणागतों की रक्षा करें॥ ७५॥ इन्द्रादि देवताओं की बात सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने ध्यान कर इस कर्म को गुरुतर मानकर विष्णु और शंकर का ध्यान किया॥ ७६॥ सामने उन्हें उपस्थित देखकर ब्रह्माजी सादर उठ खड़े हुए। उनका हाथ

अथ तौ समनुप्राप्तावुत्थाय विधिरादरात्। गृहीत्वा तावासनयोर्विनिवेश्याऽभ्यपूजयत्॥ ७७॥
अथ देवैः शक्रमुखैः प्रणतौ हरिशङ्करौ। निशम्य दैत्यराजस्य चेष्टां विधिमवोचतुः॥ ७८॥
नैतदल्पं विजानीहि महद्भयमुपस्थितम्। तपसा सर्वदेवानामवध्योऽयं महाऽसुरः॥ ७९॥
त्वत्तः प्राप्तवरः पूर्वं महिषोऽसुरनायकः। न देवैर्नाऽसुरैर्मर्त्यैर्न तिर्यग्भिर्भवेन्मृतिः॥ ८०॥
प्रत्येकं मिलितैर्वाऽपि पुरुषैर्न पराजयः। न कदाचिदिमं जेतुं योषित् काऽपि भविष्यति॥ ८१॥
नाऽपि देवगणाऽन्येन क्वचित्तस्य पराजयः। एवं पुरा प्राप्तवरो विषमं समुपस्थितम्॥ ८२॥
नाऽत्र किञ्चित् ध्यातुमपि शक्यते तस्य वै वधे।
नाऽस्माभिर्वध्यता चाऽस्य नान्येभ्योऽपि च वध्यता॥ ८३॥
तस्मादत्र महादेवीं त्रिपुरां परमेश्वरीम्। उपस्थास्याम एवाऽऽशु साऽस्माकं शं विधास्यति॥
इति निश्चित्य वैकुण्ठमुखास्तां तुष्टुवुः पराम्। दुर्गतस्तारयेत्येवमुच्चैर्देवगणैर्वृताः॥ ८५॥
विदित्वैतद्देवकृत्यं महिषस्य चमूपतिः। बिडालाक्षोऽसुरैर्युक्तो हन्तुं देवान् समाययौ॥ ८६॥
बिभ्युर्देवाः समालोक्य दैत्यं योद्धुं समागतम्। हरिश्चुक्रोध शम्भुश्च क्रुद्धाद्धरिमुखात्तदा॥ ८७॥
शम्भोर्मुखाद्विधिमुखाच्छक्रादिसुरवक्त्रतः। निर्गत्य सुमहत्तेजः क्षणेनैकीभवत्तदा॥ ८८॥
तत्तेजःपुञ्जमतुलं सर्वदेवविनिर्गतम्। नारीरूपमभूत् कान्त्या त्रिलोकीं व्याप्य संस्थितम्॥ ८९॥
तां पप्रच्छुर्हरिमुखा नत्वा का त्वमितीश्वरीम्। सा प्राह विष्णुप्रमुखान्मेघगम्भीरया गिरा॥ ९०॥
स्मृता दुर्गतिनाशाय दुर्गाऽहममरैर्ननु। प्रसन्ना भवतां दैत्यानरीन् हन्मि भवत्स्तुता॥ ९१॥

पकड़कर उन्हें आसन पर बैठाकर उनकी पूजा की॥ ७७॥ उसके बाद इन्द्रादि देवताओं ने भी उन दोनों को प्रणाम किया और अपनी व्यथा-कथा सुनाई। दैत्यराज की दुष्ट चेष्टा जानकर उन्होंने ब्रह्मा से कहा॥ ७८॥ इसे छोटा मत समझो, यह तो महाभय उपस्थित हुआ है। अपने तप के कारण यह महासुर सभी देवताओं के द्वारा अवध्य है॥ ७९॥ ब्रह्मा से पहले ही असुरों के नायक इस महिष ने वर पा लिया है कि इसकी मौत देवता, दानव, मानव, पशु-पक्षियों से नहीं होगी॥ ८०॥ प्रत्येक पुरुष यदि एक साथ मिल जाय तो भी इसकी पराजय नहीं हो सकती; कदाचित् इसे जीतने में कोई नारी भी समर्थ नहीं होगी॥ ८१॥ ऐसा एक भी देवगणों में समर्थ नहीं है जिससे इसकी पराजय सम्भव हो, पहले ही इसने ऐसा वर प्राप्त कर लिया है। यह बड़ा ही कष्टदायक समय आया है॥ ८२॥ इसके वध के लिए हम किसी का ध्यान भी नहीं कर सकते, हम त्रिदेवों से भी यह मारा नहीं जा सकता है और न कोई दूसरा ही इसे मार सकता है॥ ८३॥ इसलिए इस काम के लिए महादेवी परमेश्वरी त्रिपुरा की उपासना में शीघ्रातिशीघ्र लग जाइए। एकमात्र वही हैं जो हमारा कल्याण कर सकती हैं॥ ८४॥ ऐसा निश्चय कर विष्णु-प्रमुख देवताओं ने उस पराशक्ति को 'हमारी दुर्गति नाश करो' ऐसी प्रार्थना कर सन्तुष्ट किया॥ ८५॥ देवता ऐसा कह रहे हैं, यह जानकर महिषासुर का सेनापति, जिसका नाम बिडालाक्ष था, अपनी दैत्यसेना के साथ देवताओं को मारने आ धमका॥ ८६॥ दैत्यों को युद्ध के लिए समुद्यत देखकर देवगण डर गये। विष्णु और शिव प्रमुख सारे देवगण क्रोध से उफनने लगे॥ ८७॥ शिव, ब्रह्मा और इन्द्रादि देवताओं के मुँह से महान् तेज निकल कर पलभर में इकट्ठा हो गया॥ ८८॥ सभी देवताओं के मुँह से निकला वह तेजःपुंज अतुलनीय था। वह तेजःपुंज एक नारी रूप में बदल गया, उस नारी के शरीर की कान्ति तीनों लोक तक फैल गयी॥ ८९॥ विष्णु-प्रमुख देवताओं ने उस कान्ति-पुंज स्वरूपा नारी से पूछा—हे ईश्वरि! तुम कौन हो? मेघ की तरह गम्भीर वाणी में विष्णु-प्रमुख देवताओं से उन्होंने कहा—॥ ९०॥ अपनी दुर्गति नाश करने के लिए देवताओं ने मेरी याद की है, अतः मेरा

श्रुत्वा देवीवचो विष्णुर्दुर्गे हंसि रिपुं कथम्। न सुरैर्न तु तद्भिन्नैर्हतः स्यात् सोऽसुरः क्वचित्॥
अथ दुर्गा प्राह हरिं भयं त्यज हरे द्रुतम्। न भिन्ना नाऽपि चाऽभिन्ना सर्वदेवसमुद्भवा॥ ९३॥
निहन्मि दैत्यं महिषमायुधानि च वाहनम्। कल्पयन्तु सुराः सर्वे युधि जेष्यामि वो रिपुम्॥
एवमुक्ता दुर्गया ते स्वायुधेभ्योऽमरा द्रुतम्। निर्यान्त्यायुधजालानि ददुर्देव्यै पृथक् पृथक्॥ ९५॥
हिमाद्रिर्वाहनं सिंहं स्वत्वसारं ददौ तदा। विश्वकर्मा भूषणानि समुद्रो रत्नमालिकाम्॥ ९६॥
वरुणो वारुणीपात्रमानन्दरससम्भृतम्। अथ सा सिंहमारूढा भूषिताऽऽयुधसंयुता॥ ९७॥
त्रिलोकीमभिसंव्याप्य काशयन्ती स्वतेजसा। स्तूपमाना स्थिता तत्र दैत्यान् हन्तुं कृतोद्यमा॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये माहात्म्यखण्डे दुर्गो-
पाख्यानं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३७८०॥



नाम दुर्गा है, आप सबों की स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ, आपके दुश्मनों को मैं मारूँगी॥ ९१॥ देवी की बात सुनकर विष्णु ने पूछा—हे देवि! आप उन्हें कैसे मारेगी? वह न तो देवताओं से और न देवताओं से भिन्न किसी और से मरेगा॥ ९२॥ तब दुर्गा ने विष्णु से कहा—हे विष्णु! शीघ्र भय छोड़ दो, मैं न तो किसी से भिन्न और न अभिन्न हूँ। सभी देवताओं से मेरी उत्पत्ति है॥ ९३॥ मैं उस महिषासुर दैत्य को मारूँगी। आप देवगण मेरे आयुध एवं वाहन की व्यवस्था करे, मैं युद्ध में उसे जीत लूँगी॥ ९४॥ दुर्गा के इतना कहने पर सभी देवगण शीघ्र ही अपने-अपने आयुधों से अलग-अलग आयुध निकालकर देवी को समर्पित किये॥ ९५॥ हिमाद्रि ने अतिशक्तिशाली वाहन के रूप में सिंह दिया, विश्वकर्मा ने अनेक आभूषण दिये, समुद्र ने रत्नों की माला दी॥ ९६॥ वरुण ने आनन्द रस से भरा वारुणिपात्र दिया। अब वह दुर्गा सिंह पर समारूढ होकर हथियारों से सज गई॥ ९७॥ अपने तेज से त्रिलोक को प्रकाशित करती हुई, दैत्यों को मारने के उद्यम में लगी हुई स्तूप की तरह वहाँ ठहर गई॥ ९८॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में दुर्गा-
उपाख्यान नामक पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३७८०॥



अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः



अथ सा सिंहसंस्थाना कोटिसूर्यसमद्युतिः । विविधाऽऽयुधसंराजत्सहस्रभुजशोभिनी ॥ १ ॥
किरीटकोटिसंक्रान्तसूर्यमार्गा त्रिलोचना । कनकाऽम्बरसंवीता रत्नभूषणभूषिता ॥ २ ॥
समुद्रदत्तं जलजं पूरयामास हर्षिता । सिंहो जगर्ज तमनुजगुर्देवा जयेति ताम् ॥ ३ ॥
जयसिंहध्वनिभ्यां स शङ्खनादोऽतिभैरवः । स मूर्च्छितस्त्रिभुवनं दारयन्निव सम्बभौ ॥ ४ ॥
तेन शब्देन निर्वस्त्रो बिडालाक्षः पलायितः । शब्दश्रुतिसमुद्भूतरोषो महिषदानवः ॥ ५ ॥
ससेनोऽभ्याययौ शब्दमनुलक्ष्यातिवेगितः । बिडालाक्षेण संश्रुत्य देव्याः परमवैभवम् ॥ ६ ॥
क्रोधसम्मूर्च्छितोऽभ्यागान्महिषो दैत्यसंवृतः । उदग्रश्चिक्षुरश्चाऽसिलोमा दीर्घहनुर्बली ॥ ७ ॥
बिडालाक्षश्चेति पञ्च सैनिका महिषस्य ते । अनेककोटिदैत्यानां सेनाभिः परिवारिताः ॥ ८ ॥
उग्रवीर्यस्तथोग्राऽऽस्यः प्रलम्बश्च प्रभञ्जनः । सारणः कृकलासश्च काकवक्त्रो विशङ्कटः ॥ ९ ॥
महिषस्य सुता ह्येते महावीर्यपराक्रमाः । योद्धुमभ्याययुर्देवीं धृतशस्त्राः प्रकोपनाः ॥ १० ॥
भेरुण्डः काकतुण्डश्च कुरण्डश्चण्डविक्रमः । भाण्डीरडिम्भौ क्रकचः काचकान्तः कटोत्कटः ॥
नवैते मन्त्रिणस्तस्य योद्धुं देवीं समाययुः । सेनाभिः कोटिसंख्याभिः प्रत्येकमभिसंवृताः ॥ १२ ॥
अथाऽभवन्महायुद्धं दैत्यानां त्रिदशैः सह । शस्त्राऽस्त्रवर्षणं भीरुहृदयस्य विदारणम् ॥ १३ ॥

✻ विमला ✻

इसके बाद सिंहपीठासीन भगवती दुर्गा करोड़ों सूर्य की प्रभा से द्युतिमान् थी। उनके हजार हाथों में अनेक हथियार सुशोभित थे॥ १॥ उनके सिर पर मुकुट करोड़ों सूर्य के प्रतिबिम्ब से अलंकृत थे। उन्हें तीन आँखें थीं। वे सुनहले वस्त्र पहने थी और रत्नों के अलङ्कारों से विभूषित थी॥ २॥ समुद्र के द्वारा दिये गये कमलों से वह लदी थी। वह प्रसन्नवदना थी। सिंह गरज रहा था और उसके पीछे देवगण उसकी जय-जयकार कर रहे थे॥ ३॥ जयध्वनि के साथ सिंहगर्जन और शङ्खगर्जन अति भयङ्कर बनकर तीनों लोकों को चीरते मूर्च्छा उत्पन्न कर रहे थे॥ ४॥ इस डरावने शब्द को सुनकर नंग-धडंग बिडालाक्ष भागा और इस भयानक शब्द को सुनकर महिषासुर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा॥ ५॥ जिधर से आवाज आ रही थी उसी दिशा की ओर सेना के साथ दौड़ पड़ा। रास्ते में बिडालाक्ष से देवी के परम वैभव की बात सुनकर॥ ६॥ अपनी दैत्यसेना के साथ महिषासुर क्रोध से मूर्च्छित बना सामने आ गया। उसकी शक्तिशालिनी बाँहों में भयंकर तलवार एवं अनेक जीवनघाती हथियार शोभ रहे थे॥ ७॥ बिडालाक्ष और अपने पाँच सैनिकों के साथ अनेक करोड़ दैत्यसेना से घिरा हुआ महिषासुर॥ ८॥ उग्रवीर्य, उग्रास्य, प्रलम्ब, प्रभंजन, सारण, कृकलास, काकवक्त्र तथा विशंकट॥ ९॥ ये आठ बहाबली और पराक्रमी महिषासुर के आठ बेटे थे। ये सब देवी से युद्ध करने के लिए हाथों में हथियार लिये अत्यन्त क्रुद्ध होकर आ धमके॥ १०॥ भेरुण्ड, काकतुण्ड, कुरण्ड, चण्डविक्रम, भाण्डीर, डिम्भ, क्रकच, काचकान्त, कटोत्कट॥ ११॥ ये नौ उसके मन्त्री थे। ये भी देवी से युद्ध करने आ पहुँचे। इनमें से प्रत्येक के साथ करोड़ की संख्या में सेना थी॥ १२॥ दैत्यों का देवताओं के साथ महायुद्ध हुआ। यह युद्ध शस्त्रास्त्रों की वर्षा से डरपोकों के दिल को दहलाने वाला था॥ १३॥ शस्त्रास्त्र से सुसज्जित दैत्यसेना को घेरकर

शस्त्रास्त्रैर्दैत्यसेनां तां जघ्नुर्देवाः समन्ततः। दैत्याश्च देवान् सञ्जघ्नुरेवं युद्धमभूत्तयोः॥ १४॥
ततो भेरुण्डप्रमुखाः समेत्याऽमरपुङ्गवान्। शस्त्रास्त्रैर्ववृषुस्तैस्ते सञ्जाता हीनवर्चसः॥ १५॥
दृष्ट्वाऽमरपराभूतिं दुर्गा सिंहमचोदयत्। दुर्गयाऽधिष्ठितः सिंहः प्रोड्डीय गगनान्तरम्॥ १६॥
न्यपतद्दैत्यसेनासु गरुत्मान् पन्नगेष्विव। नखैः कांश्चिन्मुखैः कांश्चित् कांश्चिल्लाङ्गूलविभ्रमात्॥
सटाविक्षेपतः कांश्चिदुरसा वेगतोऽपि च। दैत्यान् विनाशयामास गरुत्मानिव पन्नगान्॥ १८॥
हृतगण्डकर्णपार्श्वनासाहृत्करपादकाः। क्रोडकुक्षिशिरोहीना दैत्याः सिंहेन चाऽभवन्॥ १९॥
दैत्यारण्ये महावह्निरिव जातो मृगाधिपः। क्षणेन नाशितप्रायं सैन्यं दृष्ट्वा च सैनिकाः॥ २०॥
उदग्राऽऽद्याः शस्त्रधराः सिंहं हन्तुं प्रचक्रमुः। सिंहोऽपि तान् युयोधैको दुर्गया ह्यभिरक्षितः॥
नखैर्ददार गात्राणि तेषां वज्रसमानि वै। अथोत्पत्य नभो वेगान्निपत्योदग्रमूर्धनि॥ २२॥
पिपेष सिंह उरसा दैत्यानाञ्च प्रपश्यतः। दृष्ट्वा तादृक् तस्य वीर्यं प्रशंसुर्देवदानवाः॥ २३॥
पुनर्निमेषेण जवाद्युगपच्चिक्षुरादिकान्। उत्पपात गृहीत्वा खं पादैर्गृध्र इवाऽऽमिषम्॥ २४॥
उदरं पाटयामास हरिणानां वृको यथा। ते पाटितोदराः सर्वेऽपतन् भूमौ गताऽसवः॥ २५॥
हत्वेवं सैनिकान् पञ्च भूयः सेनामनाशयत्। हतान् सेनापतीन् दृष्ट्वा भेरुण्डाद्यास्तु मन्त्रिणः॥
सकृदभ्याययुः सिंहं हन्तुं ते बलिनो नव। नवभिस्तैश्चिरं युद्ध्वा कुरण्डं चण्डविक्रमम्॥ २७॥
तलप्रहारेण सकृन्नाशयामास वै क्षणात्। भेरुण्डं भक्षयामास भाण्डीरञ्च व्यदारयत्॥ २८॥
पातयन् डिम्भमुरसा क्रकचञ्च कचोत्कटम्। लाङ्गूलेनाहरत् काचकान्तस्याशु शिरो महत्॥

देवगण मारने लगे। दैत्य भी देवताओं को उसी तरह मारने लगे, ऐसा युद्ध उन दोनों में हुआ॥ १४॥ इसके बाद भेरुण्ड प्रमुख ने देवताओं को घेरकर शस्त्र-अस्त्रों की वर्षा से उन्हें हीनवर्चस बना दिया॥ १५॥ अमरों की पराजय देखकर दुर्गा ने सिंह को प्रेरित किया। पीठ पर सवार दुर्गा को लिये ही सिंह आकाश में उड़कर॥ १६॥ सेना के बीच उसी तरह कूद पड़ा जैसे साँपों के बीच गरुड़। कुछ को नाखूनों से, कुछ को दाँतों से तो कुछ को पूँछ में लपेटकर॥ १७॥ कुछ को सटा से, कुछ को वेग के कारण छाती से दबोच कर दैत्यों का उसी तरह विनाश कर डाला जैसे गरुड़ साँपों का विनाश करते हैं॥ १८॥ किन्हीं के हृदय, किन्हीं के कान, कुछ के बगल, कुछ के नाक, कुछ के हाथ-पैर, कुछ की कमर, कुछ के पेट तो कुछ को गर्दन विहीन दैत्यों को सिंह ने कर दिया॥ १९॥ दैत्य रूपी जंगल में महाअग्नि की तरह सिंह प्रज्वलित हो उठा। क्षणभर में ही सेना को विनष्टप्राय देखकर॥ २०॥ उदग्रादि हथियारबन्द सेनानायकों ने सिंह को मारना चाहा। एक मात्र दुर्गा से संरक्षित सिंह उनसे युद्ध करने लगा॥ २१॥ अपने वज्र के समान कठोर नाखूनों से उनके शरीर को चीर डाला। सिंह उछलकर आकाश में जाता और वेग के साथ उदग्र के माथे पर कूद पड़ता॥ २२॥ अपनी छाती से सिंह ने दैत्यों को देखते-देखते रौंद डाला। सिंह का ऐसा पराक्रम देखकर देव और दानव सभी उसकी प्रशंसा करने लगे॥ २३॥ फिर पलभर में वेग के साथ चक्षु आदि दानवों पर गिरकर अपने पैरों से पकड़कर उसी तरह आकाश में उड़ गया जैसे गिद्ध अपने चंगुल में मांस लेकर उड़ता है॥ २४॥ बाघ जैसे हरिणों का पेट चीर देता है उसी तरह इसने राक्षसों का पेट चीर दिया और वे सभी प्राण त्याग कर धरती पर गिर गये॥ २५॥ इसी तरह पाँच सेनाओं का उसने विनाश किया। सेनापतियों को इस तरह मरते देखकर भेरुण्डादि नौ मन्त्रीगण॥ २६॥ बलवान् सिंह को मारने के लिए सामने आये। उन नौ मन्त्रियों के साथ बहुत देर तक युद्ध करने के बाद कुरण्ड और चण्डविक्रम को॥ २७॥ अपने पंजे के प्रहार से एक क्षण में विनष्ट कर डाला। भेरुण्ड को खा लिया और भाण्डीर को चीर डाला॥ २८॥ डिम्भ को छातीबल से पटक

चपेटया काकतुण्डमनयद्यमसादनम् । एवं मन्त्रिगणं हत्वा स सिंहो धूतकेसरः ॥ ३० ॥
प्रावृड्जलदवद्भीममनुञ्चन्निनदं तदा । निशाम्य निहतान् सैन्यपतीन् शूरांश्च मन्त्रिणः ॥ ३१ ॥
महिषस्य सुता ह्यष्टौ महाबलपराक्रमाः । योद्धुमभ्याययुर्देवीं युद्धशस्त्राऽस्त्रकोविदाः ॥ ३२ ॥
उग्रवीर्यो गदाहस्तो योधयामास तं हरिम् । युद्ध्वा चिरं तलहतः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ३३ ॥
उग्रास्यश्च प्रलम्बश्च प्रभञ्जनः स सारणः । चत्वार एते हरिणा युयुधुर्बलशालिनः ॥ ३४ ॥
त्रिशूलपरिघप्रासकरवालकरैस्तु सः । हरिर्युयोध चैकोऽपि कालोऽन्तकयमोपमैः ॥ ३५ ॥
तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्त उग्रवीर्योऽतिकोपनः । गदामादाय वेगेन सम्भ्राम्य हरिमूर्धनि ॥ ३६ ॥
चिक्षेप सा हरिशिरः प्राप्याऽशनिदृढं तदा । उत्पपाताऽतिवेगेन क्षितेः कन्दुकवत् क्षणात् ॥ ३७ ॥
तया पतन्त्या निहतः सारणश्चूर्णिताऽङ्गकः । अथ सिंहः समाक्षिप्य चोग्रवीर्यं प्रकोपनः ॥ ३८ ॥
ददार नखवज्रेण पर्वतं वृत्रहा यथा । दारिताङ्गश्चोग्रवीर्यो ममार पतितो भुवि ॥ ३९ ॥
अथाऽवशिष्टाः षट् पुत्रा महिषस्य बलोत्कटाः । मत्वा हरिमजेयं तं युगपद्योद्धुमाययुः ॥ ४० ॥
तैर्युध्यमानं बलिनमालक्ष्य हरिपुङ्गवम् । दुर्गा श्रान्तं चिरं युद्धान्मत्वा सिंहमुवाच ह ॥ ४१ ॥
साधु साधु हरिश्रेष्ठ प्रसन्ना तव विक्रमात् । एतैर्नियोद्धुमिच्छामि विरम त्वमितः परम् ॥ ४२ ॥
श्रुत्वैवमम्बिकावाक्यं विरराम महाऽऽहवात् । अथ दुर्गा तैर्युयोध मुहूर्तं घोरविक्रमैः ॥ ४३ ॥
ततः शूलेन सर्वांस्ताननयद्यमसादनम् । हतान् पुत्रान् मन्त्रिणश्च सैनिकानपि वीक्ष्य सः ॥ ४४ ॥
अल्पाऽवशिष्टां सेनाञ्च क्रोधसंरक्तलोचनः । योद्धुमभ्याययौ दुर्गां महिषः शैलराडिव ॥ ४५ ॥

डाला, क्रकच और कचोत्कट को पूँछ से लपेटकर पटक दिया। काचकान्त का सिर काट डाला ॥ २९ ॥ काकतुण्ड को अपने थप्पड़ से मारकर यमपुरी पहुँचा दिया। इस तरह मन्त्रियों को मारकर वह सिंह धूतकेसर ॥ ३० ॥ वर्षाऋतु के मेघ की तरह गर्जन सुनकर तथा दैत्यसेनापतियों और शूरवीर मन्त्रियों की मृत्यु सुनकर ॥ ३१ ॥ महाबल पराक्रमी, युद्ध, शस्त्र और अस्त्र में विशेषज्ञ महिषासुर के आठ बेटे देवी के साथ युद्ध करने के लिए आ धमकें ॥ ३२ ॥ हाथ में गदा लेकर उस सिंह से उग्रवीर्य लड़ने लगा। इन दोनों का युद्ध बहुत देर तक चलता रहा, अन्त में सिंह के पंजे से चोट खाकर धरती पर बेहोश हो गिर गया ॥ ३३ ॥ इसके बाद उग्रास्य, प्रलम्ब, प्रभंजन और सारण—ये चारों बलशाली एक साथ मिलकर सिंह के साथ युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥ त्रिशूल, परिघ, प्रास और तलवार जैसे घातक हथियारों से ये सजे थे। उधर अकेला सिंह कालान्तक यमराज की तरह इनसे युद्ध कर रहा था ॥ ३५ ॥ तब तक अतिकुपित उग्रवीर्य ने होश में आकर हाथ में गदा लेकर वेग के साथ घुमाकर सिंह के माथे पर दे मारा ॥ ३६ ॥ वज्र की तरह मजबूत वह गदा सिंह के माथे से टकराकर गेंद की तरह धरती पर जा गिरी और वहाँ से उछलकर सारण के शरीर को चूर-चूर कर दिया। इधर प्रकुपित सिंह उग्रवीर्य को खींचकर ॥ ३७-३८ ॥ अपने नखवज्र से उसी तरह चीर डाला जैसे पहाड़ को इन्द्र फाड़ देते हैं और उसका मृत शरीर धरती पर जा गिरा ॥ ३९ ॥ बल से उत्कट बने महिषासुर के बचे छः बेटों ने एक साथ मिलकर उस सिंह को अजेय मानकर युद्ध करने लगे ॥ ४० ॥ उनसे युद्ध करते शक्तिशाली सिंह को देखकर तथा अधिक देर तक युद्ध करने से थके जानकर दुर्गा ने सिंह से कहा ॥ ४१ ॥ हे हरिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, धन्य हो; मैं तुम्हारे पराक्रम से काफी प्रसन्न हूँ। अब तुम कुछ देर रुको और इनसे मुझे निपटने दो ॥ ४२ ॥ अम्बिका की यह बात सुनकर वह कुछ क्षण के लिए रुक गया और दुर्गा ने घोर पराक्रम के साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ ४३ ॥ उसके बाद दुर्गा ने त्रिशूल उठाकर यथाशीघ्र सबको यमसदन पहुँचा दिया। अपने पुत्रों, मन्त्रियों और सैनिकों को मरा देखकर वह ॥ ४४ ॥ बची-खुची

खुरक्षेपैर्दारयन्तं महीं श्वासैर्घनाऽऽवलिम्। नाशयन्तं पातयन्तं तारकाः पुच्छवेगतः॥ ४६॥
गर्जन्तं सांवर्तकवद्वमन्तं पावकं मुखात्। मेहन्तं मूत्रयन्तश्च नृत्यन्तं वक्रकन्धरम्॥ ४७॥
दृष्ट्वा समाह्वयद्दुर्गा मेघगम्भीरभाषिणी। एहि दुष्ट महादैत्य मुहूर्तं समरे स्थिरः॥ ॥ ४८॥
युद्ध्वा मया पितृगणान् प्रपश्यसि ततो द्रुतम्। इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्ष महिषासुरम्॥ ४९॥
नीलाद्रिमिव जीमूतः प्रावृष्यासारपङ्क्तिभिः। सा वृष्टिः सायकौघस्य पर्वते जलवृष्टिवत्॥
नेषद्रुजं समकरोन्महिषस्य तनौ तदा। मोघं दृष्ट्वा बाणवर्षं शूलखड्गपरश्वधैः॥ ५१॥
तोमरप्रासपरिघशक्तिपट्टिशमुद्गरैः। जघान तानि शस्त्राणि मोघान्येव तदाऽभवन्॥ ५२॥
तदङ्गं प्राप्य शस्त्राणि चूर्णीभूतानि वै क्षणात्। करकावर्षवद्गण्डशैलमासाद्य तत्क्षणात्॥ ५३॥
अथ मत्वा महासारवर्ष्माणमसुरेश्वरम्। बबन्ध पाशैः सुदृढैः शाक्तैर्मन्त्राऽभिमन्त्रितैः॥ ५४॥
बध्यमानः क्षणेनैव सिंहो भूत्वा युयोध ताम्। शक्त्या हतः सिंहतनुं त्यक्त्वा निमेषमात्रतः॥
सहस्रसिंहसुवहं रथमास्थाय दंशितः। योद्धुमभ्याययौ यत्र पौरुषं रूपमास्थितः॥ ५६॥
महागिरिनिभो दैत्यः सहस्रवदनेक्षणः। सहस्रहस्ताऽङ्घ्रियुतो नानाप्रहरणोद्यतः॥ ५७॥
युयोध दुर्गां परमामस्त्रशस्त्रमवर्षणः। निमेषेणैव तं वर्षं शरवर्षैर्महेश्वरी॥ ५८॥
निवार्य मारुतेनेव जघानाऽऽकर्णपूरितैः। विद्धस्तेनेषुणा गाढं क्षणं मूर्च्छामवाप्य च॥ ५९॥
पुनर्मायामुपाश्रित्य युयोधाऽतिबलो तदा। प्रादुश्चकाराऽश्मवर्षमतिमात्रं यदाऽसुरः॥ ६०॥

सेना लेकर आँखें लाल किये हिमालय की तरह विशाल महिषासुर दुर्गा से युद्ध करने के लिए रणांगन में आ जुटा॥ ४५॥ खुरक्षेप से धरती को चीरते हुए, साँसों से मेघखण्डों को मिटाते, पूँछ की चोट से तारों को आकाश से गिराते॥ ४६॥ सांवर्तक मेघ की तरह गर्जते हुए, मुख से आग उगलते हुए, छुल-छुल मूतते हुए, कन्धा टेढ़ाकर नाचते हुए॥ ४७॥ मेघगम्भीर वाणी में दुर्गा ने उसे देखा और कहा—अरे दुष्ट महादैत्य! एक क्षण समर में आकर तो देख॥ ४८॥ मेरे साथ युद्ध कर के शीघ्र ही अपने पितृगणों के दर्शन करोगे। यह कहकर उस महासुर पर बाणों की वर्षा कर दी॥ ४९॥ नीले पहाड़ पर बादल जैसे मूसलाधार वर्षा करते हैं, उसी तरह पर्वत रूपी महिषासुर पर जलवृष्टि की तरह बाणों की वर्षा कर दी॥ ५०॥ महिषासुर के शरीर पर उस बाण का कोई प्रभाव न देखकर शूल, खड्ग और फरसे॥ ५१॥ तोमर, प्रास, परिघ, शक्ति, पट्टीश और गदा को बाण की तरह उसने वर्षा कर दी। ये भी बेकार सिद्ध हुए॥ ५२॥ उसके शरीर से लगकर सारे शस्त्र ठीक उसी तरह टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे जैसे गण्डशैल पर ओले गिरकर चूर-चूर हो जाते हैं॥ ५३॥ अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग को महासुर पर व्यर्थ मानकर महादेवी ने शाक्त मन्त्रों से अभिमन्त्रित मजबूत पाश से उसे बाँध लिया॥ ५४॥ तब एक क्षण में ही देवी ने सिंह रूपी उस महिषासुर को शक्ति से आहत किया। महिषासुर ने पलक झपकते ही सिंह शरीर को छोड़ दिया॥ ५५॥ फिर हजार सिंह वाले रथ पर सवार होकर पुरुष के रूप में युद्ध करने के लिए आ पहुँचा॥ ५६॥ महान् पर्वत की तरह उस दैत्य का रूप था; उसके हजारों मुख, आँखें, नाक और हाथ थे; अनेक तरह से प्रहार करने के लिए वह तैयार था॥ ५७॥ दुर्गा देवी पर परम अस्त्र-शस्त्र बरसाते हुए वह युद्ध करने लगा। पलक झपकते ही महेश्वरी ने उस वर्षा को अपने बाणों से रोक दिया॥ ५८॥ जैसे हवा बादल को उड़ाती है उसी तरह उसकी बाणवर्षा को रोककर कान तक प्रत्यञ्चा को खींचकर तीक्ष्ण बाण का देवी ने प्रहार किया। बाण लगते ही क्षणभर के लिए वह बेहोश हुआ॥ ५९॥ फिर माया का सहारा लेकर उसने युद्ध किया। उस दैत्य ने बहुत अधिक पत्थर की वर्षा कर दी॥ ६०॥ फिर देवी दुर्गा उस शिलावृष्टि से आक्रान्त हुई। उन्हें शिलावृष्टि से घिरे

तदा दुर्गा शिलावृष्ट्या समाक्रान्ताऽभिजायत। दृष्ट्वाऽश्मवर्षसञ्छन्ना देवा हा हेति चुक्रुशुः ॥
ततः सा मारुताऽस्त्रेण वर्षन्तं नाशयत् परा। एतस्मिन्नन्तरे सिंहो वहन् दुर्गां महाबलः ॥ ६२ ॥
पक्षीवोड्डीय दैत्यस्य निपपात महारथे। तावज्ज्ञात्वाऽऽत्मनो मृत्युं गदया हरिपुङ्गवम् ॥ ६३ ॥
निहत्य मूर्ध्नि दैत्योऽपि रथात्तस्मादवप्लुतः। सिंहप्रतापवेगेन ससिंहौघो महारथः ॥ ६४ ॥
चूर्णीकृतोऽथ सा देवी तं पाशेनाऽनुपाशयत्। तावद्दैत्योऽप्यभूच्छैलः सुमेरुरिव चोन्नतः ॥ ६५ ॥
अथ सा कुलिशाऽस्त्रेण बिभेद गिरिरूपिणम्। भिद्यमानो नगात्तस्माद्गजो भूत्वा युयोध ताम् ॥
सिंहेन सह तां शीघ्रं करेणोत्क्षेप्तुमुद्यतः। तावद्देवी तस्य करं चिच्छेद करवालतः ॥ ६७ ॥
अथ भूयो भवेद्दैत्यः पूर्ववन्महिषाऽऽकृतिः। शृङ्गाभ्यां शैलशृङ्गाणि चिक्षेप समरेऽनु ताम् ॥
अथ सिंहः खमुत्पत्य निपपाताऽसुरोपरि। हरिणा तं समाक्रान्तं दुर्गा दृष्ट्वा महासुरम् ॥ ६९ ॥
महाखड्गेन चिच्छेद महिषस्याऽऽशु संयुगे। शिरो महागिरिनिभं ततस्तस्मान्महासुरः ॥ ७० ॥
कराभ्यां खेटनिस्त्रिंशौ दधानो निर्जगाम ह। तं निर्गच्छन्तमेवाऽऽशु दुर्गा पाशेन दानवम् ॥ ७१ ॥
बद्ध्वा जघान खड्गेन युध्यमानं महासुरम्। स छिन्नमूर्धा खड्गेन निपपात गताऽऽयुषः ॥ ७२ ॥
एवं दैत्ये विनिहते महिषे शेषदानवाः। भीता ययुर्भूमितलं दिशो वितिमिराऽभवन् ॥ ७३ ॥
ववौ वायुः सुखस्पर्शो जज्वलुः शान्तपावकाः। ववर्ष दुर्गा पर्जन्यः पुष्पवर्षैः सुमोदनैः ॥ ७४ ॥
अवर्धयन् जयेत्युच्चैर्देवा विधिमुखास्तदा। एवं दैत्ये हते लोकशत्रौ श्रीजगदम्बिकाम् ॥ ७५ ॥
प्रणम्य विबुधा दुर्गां ब्रह्मविष्णुशिवादयः। संहृष्टाश्चाऽस्तुवन् भक्त्या परं तां त्रिपुराकलाम् ॥

नमो नमस्ते जगतां विधात्रि संहर्त्रि सर्वाऽन्तरसत्यरूपे।

देखकर देवगण हाहाकार करने लगे॥ ६१॥ इसके बाद उस पराशक्ति ने मारुतास्त्र की वर्षा रोक दी। इसी बीच उनका महाबली सिंह उन्हें पीठ पर उठाये ही॥ ६२॥ पक्षी की तरह उड़कर उस दैत्यराज के रथ पर जा गिरा। इन्हें रथ पर देख तथा अपनी मौत निश्चित मानकर उसने सिंह पर गदा से प्रहार किया॥ ६३॥ सिंह के माथे पर गदा मार कर सिंह के प्रतापवेग से सिंह-समूह द्वारा जुते रथ से कूद पड़ा॥ ६४॥ उस रथ को चूर-चूर कर देवी ने उसे जब तक पाश में जकड़ना चाहा तब तक वह सुमेरु की तरह ऊँचा हो गया॥ ६५॥ फिर देवी दुर्गा ने वज्रास्त्र से पर्वताकार उस राक्षस को छिन्न-भिन्न कर दिया। उस फटे पर्वत से हाथी बनकर वह निकलकर युद्ध करने लगा॥ ६६॥ सिंह के साथ दुर्गा देवी को भी वह हाथी बना दैत्य सूँड़ में लपेट कर फेंकना चाह ही रहा था कि भगवती ने अपनी तलवार से उसकी सूँड़ ही काट डाली॥ ६७॥ पुनः वह दैत्य भैंसा बनकर अपने सींगों से पहाड़ की चोटियों को उखाड़ कर देवी पर फेंकने लगा॥ ६८॥ इसके बाद वह सिंह आकाश में उछलकर उस दैत्य पर झपट पड़ा। उस महादैत्य को सिंह से आक्रमित देखकर दुर्गा ने॥ ६९॥ पर्वत तुल्य उस महादैत्य के मस्तक को अपनी तलवार से काट डाला। उसके बाद उस शरीर से॥ ७०॥ वह दैत्य अपने हाथों में गदा और तलवार लिये निकला। वह निकल ही रहा था कि दुर्गा ने उसे अपने पाश में जकड़कर॥ ७१॥ युद्ध करते उस महादैत्य को तलवार से काट डाला। देवी की तलवार से वह सिर कटा दैत्य मरकर धरती पर गिर पड़ा॥ ७२॥ इस तरह महिषासुर के मरने पर बचा दानव-समूह पाताललोक में जा छिपा॥ ७३॥ सुखस्पर्शी हवा बहने लगी, शान्त आग जलने लगी, दुर्गा सुन्दर अवसर पर मेघ बरसाने लगी॥ ७४॥ विधाता-प्रमुख देवताओं ने भगवती का जय-जयकार किया। उस भगवती ने लोकशत्रु उस महादैत्य को मारकर समाप्त किया॥ ७५॥ दुर्गा देवी को प्रणाम कर ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि उस सन्तुष्ट त्रिपुरा कला की स्तुति करने लगे॥ ७६॥ सबके हृदय में सत्यरूप से उपस्थित संसार की जन्मदात्री

प्रपन्नलोकाद्यविनाशहेतुदयाऽम्बुराशे परिपाहि दुर्गे॥ ७७॥
महाभयाद्दानवराजरूपा त्वया समस्तं जगदेतदद्य।
त्रातं यथा क्रूरमहाऽहिग्रस्तं भेकं तथाऽस्मात् परिपाहि दुर्गे॥ ७८॥
यदा वयं दुर्विषहाऽऽपदोघैर्ग्रस्तास्तदा त्वं जगतां विधात्री।
लीलावपुः प्राप्य विमृष्टमात्रा विपन्निमग्नान् परिपाहि दुर्गे॥ ७९॥
यत्तेऽखिलं लोकवितानमेतत्तनोः कलांऽशप्रविभक्तसंस्थम्।
तदन्तरे दर्शयसि स्वरूपं माया तवैतत् परिपाहि दुर्गे॥ ८०॥
मायात्मिका त्वं निजनिर्मलेऽम्ब यतो जगच्चित्रमुदीर्यसेऽङ्गे।
विचित्ररूपाऽपि चिदेकरूपाऽविभाव्यशक्तिः परिपाहि दुर्गे॥ ८१॥
यत्ते पदाब्जैकसमाश्रयास्ते विचित्रकृत्या विधिविष्णुमुख्याः।
तत्ते विचित्राऽऽकृतिरत्र का स्यात् स्तुमः कथं त्वां परिपाहि दुर्गे॥ ८२॥
दुर्गेषु नित्यं भवसङ्कटेषु दुरन्तचिन्ताऽहिनिगीर्यमाणान्।
शरण्यहीनाञ्छरणाऽऽगतार्तिनिवारिणी त्वं परिपाहि दुर्गे॥ ८३॥
एवं ब्रह्ममुखा देवाः स्तुत्वा दुर्गां महेश्वरीम्। पुष्पाद्यैः पूजयामासुर्विविधैरर्हणैः शिवाम्॥ ८४॥
ततः प्रसन्ना तान् प्राह दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। भवद्भिः पूजिता देवाः प्रसन्ना वोऽभिवाञ्छितम्॥
प्रतीच्छध्वं दिशाम्यद्य दुष्प्रापमपि सर्वथा। निशम्य दुर्गया प्रोक्तमूचुर्देवा महेश्वराः॥ ८६॥
भगवत्या हतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः। त्रैलोक्यकण्टकः सर्वं जगज्जातं निरामयम्॥ ८७॥

और संहारकर्त्री भगवती को मेरा प्रणाम है। दया की तुम सागर हो, शरणागत को विनाश से बचाने वाली हो, हे दुर्गे! हमारी रक्षा करो॥ ७७॥ दानवराज स्वरूप महाभय से तुमने संसार की उसी तरह रक्षा की है जैसे भयंकर साँप के मुँह में पड़े मेढ़क की रक्षा। हे देवि दुर्गे! हमारी रक्षा करो॥ ७८॥ जब कभी हम जानलेवा जहर के सदृश आपद्ग्रस्त होते हैं तब तुम हे संसार की विधात्री! लीलादेह धारण कर विपत्तिग्रस्त हम सबों की रक्षा करो॥ ७९॥ सम्पूर्ण संसार में व्याप्त तुम्हारा शरीर है, फिर भी जब अपनी कला के अंश से अलग रूप धारण करती हो तभी हमे तुम दीख पड़ती हो; यह सब तुम्हारी माया है, हे दुर्गे! तुम हमारी रक्षा करो॥ ८०॥ हे भगवति! तुम मायात्मिका हो, अपने आप में परम पवित्र हो, अपने शरीर में सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाली हो; विचित्र रूप वाली होकर भी एकरूपा हो, अविभाव्य शक्ति वाली हो, हमारी रक्षा करो॥ ८१॥ तुम्हारे चरणकमलों का आश्रय ग्रहण कर ब्रह्मा-विष्णु प्रमुख आश्चर्यजनक काम करते हैं, इसलिए इससे विचित्र और तुम्हारी आकृति क्या हो सकती है? तुम्हारी स्तुति हम कैसे करें? हे दुर्गे! हमारी रक्षा करो॥ ८२॥ दुर्गों में, प्रतिदिन संसार के संकटों में दुरन्त चिन्ता रूपी साँप से निगले जाते हुए शरणागत-विहीन हम आपके शरणागत है; हमारा कष्ट निवारण करने वाली तुम्हीं हो, हे दुर्गे! हमारी रक्षो करो॥ ८३॥ इस तरह ब्रह्मा प्रमुख देवताओं ने महेश्वरी दुर्गा की स्तुति कर पुष्पादि तथा अन्य उपकरणों से पराशिवा भगवती की पूजा की॥ ८४॥ उसके बाद दुर्गतिविनाशिनी दुर्गा ने परम प्रसन्न होकर उन देवताओं से कहा—आपसे पूजित होकर हे देवगण! मैं आप सबों की पूजा से प्रसन्न हूँ। मैं आप सबों को मनवांछित देने को तैयार हूँ॥ ८५॥ प्रतीक्षा करो, आज मैं आप सब को दुष्प्राप्य वस्तु भी दूँगी। दुर्गा की बात सुनकर महेश्वरादि देवों ने उनसे कहा॥ ८६॥ हमारे शत्रु महिषासुर को आपने मार गिराया। तीनों लोकों के उस कण्टक को आपने समाप्त कर संसार को संकटमुक्त कर दिया॥ ८७॥ हम सबने अपनी-अपनी

वयं स्वस्वपदं प्राप्ता भगवत्याः प्रसादतः। नास्ति वाञ्छितशेषो नो यत्त्वां कल्पद्रुमाश्रिताः॥
अथाऽपि त्वां सुपृच्छामो जगद्रक्षणहेतवे। विपन्नं त्वं कथं शीघ्रं प्रसन्ना रक्षसीश्वरी॥८९॥
एतन्नो ब्रूहि देवेशि रहस्यमपि सर्वथा। प्रार्थितैवं सुरगणैः प्राह दुर्गा दयाऽन्विता॥९०॥
देवाः शृणुध्वमेतत्तु गोप्यमत्यन्तदुर्लभम्। द्वात्रिंशन्नाममाला मे सर्वाऽऽपत्प्रविनाशनी॥९१॥
नास्ति तत्सदृशी काचित्स्तुतिस्त्रैलोक्यमण्डले। रहस्यरूपा सर्वत्र शृणुध्वं तां ब्रवीमि वः॥९२॥
दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गाऽऽपद्विनिवारिणी। दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी॥९३॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमाऽपहा। दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला॥९४॥
दुर्गमा दुर्गमाऽऽलोका दुर्गमाऽऽत्मस्वरूपिणी। दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता॥९५॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी। दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमाऽर्थस्वरूपिणी॥९६॥
दुर्गमाऽसुरसंहर्त्री दुर्गमाऽऽयुधधारिणी। दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी॥९७॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी। नामाऽऽवलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः॥९८॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः। शत्रुभिः पीड्यमानो वा दुर्गबन्धगतोऽपि वा॥९९॥
द्वात्रिंशन्नामपाठेन मुच्यते नाऽत्र संशयः। राज्ञा वधाय चाऽऽज्ञप्तः क्रुद्धेन दण्डनाय च॥१००॥
युद्धे शत्रुभिराक्रान्तो व्याघ्राद्यैर्वा तथा वने। मुच्यते सर्वभीतिभ्यः पठन्नष्टोत्तरं शतम्॥१०१॥
आपत्सु नैतत्सदृशमन्यदस्ति भयाऽपहम्। एतत्तु पठतां देवा न किञ्चिद्धीयते क्वचित्॥१०२॥
नैतद्देयमभक्ताय नास्तिकाय शठाय च। देयं भक्ताय शान्ताय गुरुदेवरताय च॥१०३॥

जगह पा ली है। आपकी कृपा से हमें सब कुछ मिल गया है। हमारे लिए अब कुछ भी वांछित शेष नहीं हैं। आप हमारा कल्पद्रुम है। हम सब आपके आश्रित हैं॥८८॥ फिर भी हम जानना चाहेंगे कि विपद्ग्रस्त संसार की रक्षा के लिए हे ईश्वरि! आप शीघ्र कैसे प्रसन्न होंगी॥८९॥ सर्वथा रहस्यमय होने के बावजूद हे देवेशि! इतना भर हमें बता दें। देवताओं के इस तरह प्रार्थना करने पर दयालु दुर्गा ने उनसे कहा॥९०॥ हे देवताओ! अत्यन्त गोपनीय एवं अत्यन्त दुर्लभ यह है, फिर भी आप लोग सुने; यह हर तरह की आपत्ति को विनाश करने वाली मेरे बत्तीस नामों की माला है॥९१॥ तीनों लोक में ऐसी या इसकी तरह कोई अन्य स्तुति नहीं है, हर जगह यह रहस्यमय है; आप लोग सुनें, मैं कहती हूँ॥९२॥ दुर्गा, दुर्गार्तिशमनी, दुर्गाऽऽपद्विनिवारिणी, दुर्गमच्छेदिनी, दुर्गसाधिनी, दुर्गनाशिनी॥९३॥ दुर्गतोद्धारिणी, दुर्गनिहन्त्री, दुर्गमाऽपहा, दुर्गमज्ञानदा, दुर्गदैत्यलोकदवानला॥९४॥ दुर्गमा, दुर्गमाऽऽलोका, दुर्गमाऽऽत्मस्वरूपिणी, दुर्गमार्गप्रदा, दुर्गमविद्या, दुर्गमाश्रिता॥९५॥ दुर्गमज्ञान-संस्थाना, दुर्गमध्यानभासिनी, दुर्गमोहा, दुर्गमगा, दुर्गमार्थस्वरूपिणी॥९६॥ दुर्गमाऽसुरसंहन्त्री, दुर्गमा-ऽऽयुधधारिणी, दुर्गमाङ्गी, दुर्गमता, दुर्गम्या, दुर्गमेश्वरी॥९७॥ दुर्गभीमा, दुर्गभामा, दुर्गभा, दुर्गदारिणी—दुर्गा की मेरी इस नामावली का जो मनुष्य॥९८॥ पाठ करता है, वह हर तरह के भय से मुक्त हो जायेगा, इसमें सन्देह नहीं है। शत्रुओं से पीड़ित हो अथवा कारागार में बन्द हो॥९९॥ राजा से वध के लिए या क्रोधवश दण्ड के लिए आदेशित व्यक्ति भी इन बत्तीस नामों के पाठ से मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥१००॥ युद्ध में शत्रुओं से पराजित तथा जंगल में बाघादि से अधिकृत हर तरह के डर से मुक्ति के लिए इस नामावली का अष्टोत्तरशत (एक सौ आठ) पाठ करना चाहिए॥१०१॥ विपत्तियों में भयविनाश के लिए इसके जैसा दूसरा कोई स्तोत्र नहीं है। इसे पढ़ते हुए देवगणों की कहीं कुछ भी हानि नहीं होती॥१०२॥ अभक्त, नास्तिक एवं शठ जैसे व्यक्ति को यह नहीं बतलाना चाहिए। यह केवल अपने भक्त, शान्तचित्त और गुरु में निरत व्यक्ति को देना

प्राप्तो महापदं यस्तु पठेन्नामावलीमिमाम् । सहस्रवारमयुतवारं वा लक्षमेव वा ।। १०४ ।।
ब्राह्मणैर्वा स्वयं वाऽपि मुच्यते सकलाऽऽपदः । संसिद्धेऽग्नौ हुनेदेभिर्नामभिर्लक्षसंख्यया ।।
तिलैः शुक्लैस्त्रिमध्वक्तैर्मुच्यते चाऽऽपदांगणैः । अयुतत्रयमेतस्य पुरश्चरणमुच्यते ।। १०६ ।।
पुरश्चरणपूर्वन्तु सर्वकार्याणि साधयेत् । मन्मूर्तिं मृन्मयीं कृत्वा शुभ्रामष्टभुजाऽन्विताम् ।। १०७ ।।
गदाखड्गत्रिशूलेषुचापाब्जखेटमुद्गरान् । दधानां चन्द्रचूडालां त्रिनेत्रां लोहिताऽम्बराम् ।। १०८ ।।
सिंहारूढां विनिघ्नन्तीं शूलेन महिषाऽसुरम् । प्रपूज्य तत्र मां भक्त्या विविधैरुपहारकैः ।। १०९ ।।
नामभिः पूजयेत् पुष्पैः शतवारं हयाऽरिभिः । रक्तैर्हुनेदपूपैश्च मन्मन्त्रजपपूर्वकम् ।। ११० ।।
निवेदयेत् सुभक्ष्यैश्च विविधैः पिशिताऽऽसवैः । एवं मण्डलमात्रेण असाध्यमपि साधयेत् ।।
यो नित्यं मां भजेन्मर्त्यः स क्वचिन्नापदं व्रजेत् । इत्युक्त्वा साऽमरांस्तत्र ययावन्तर्धिमम्बिका ।।
एतद्दुर्गामहाऽऽख्यानं शृण्वतामापदो न हि । इति रामसमाख्यातं दुर्गाचरितमद्भुतम् ।। ११३ ।।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दुर्गो-
पाख्यानं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ३८९३ ।।



चाहिए ।। १०३ ।। हजार बार या दस हजार बार या एक लाख बार जो इस नामावली का पाठ करता है, उसे निश्चित रूप से महापद की प्राप्ति होती है ।। १०४ ।। ब्राह्मणों के द्वारा अथवा स्वयं जो पाठ करता है, वह हर तरह की आपत्ति से मुक्त हो जाता है। इस मन्त्र की सिद्धि के लिए एक लाख बार इस नामावली से हवन करना चाहिए ।। १०५ ।। तिल, चावल, मधु, घी से हवन करने पर विपदाओं से मुक्ति मिलती है। तीस हजार आहुतियों से पुरश्चरण कहा गया है ।। १०६ ।। पुरश्चरण से पहले सभी कार्यों को पूरा कर ले। मेरी मूर्ति मिट्टी की होनी चाहिए, उसमें आठ भुजाएँ होनी चाहिए ।। १०७ ।। आठों हाथों में गदा, तलवार, त्रिशूल, धनुष, कमल, खेट और मुद्गर धारण किये होना चाहिए; सिर पर चन्द्रमा, तीन आँखें और लाल वस्त्र धारण किये होना चाहिए ।। १०८ ।। सिंह पर आरूढ़ होना चाहिए, त्रिशूल को महिषासुर का वध करते दिखलाना चाहिए। मेरी इस मूर्ति का भक्तिपूर्वक अनेक उपहारों से पूजा कर ।। १०९ ।। उन नामों से फूल लेकर सौ बार पूजा करें, रक्त और पूजा से मन्त्रजपपूर्वक हवन करना चाहिए ।। ११० ।। सुन्दर भक्ष्य, अनेक तरह के मांस और शराब से पूजा करनी चाहिए। इस तरह मण्डल मात्र से असाध्य को भी लोग साध लेते हैं ।। १११ ।। जो मनुष्य प्रतिदिन मुझे भजते हैं, वे कहीं भी आपद्ग्रस्त नहीं होते। इतना कहकर वह भगवती सभी देवताओं के सामने ही तिरोहित हो गई ।। ११२ ।। हे परशुराम! दुर्गा का यह अद्भुत चरित्र मैंने तुम्हें सुना दिया। यह दुर्गामाहात्म्य के नाम से विख्यात चरित जो सुनता है, उसे विपत्ति कभी नहीं होती ।। ११३ ।।

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में दुर्गा-
उपाख्यान नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।। ३८९३ ।।



अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवन्नवधूतेश करुणाऽपारवारिधे । कृपयोक्तमुपाख्यानं दुर्गायाः परमाऽद्भुतम् ॥ १ ॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि त्वत्कृपाविषयो यतः ।
दुर्लभं मर्त्यलोकेऽस्मिन्त्वत्कृपाऽऽलोकनं ननु ॥ २ ॥
तव वक्त्रेन्दुसम्भूतं त्रिपुरामहिमाऽमृतम् । पिबतां नृचकोराणामानन्दः केन सम्मितः ॥ ३ ॥
पिबतस्त्वन्मुखाम्भोजकथामधुरसं पुनः । न मे तृप्तिर्यथा कामिजनस्य स्त्रीसुखादिव ॥ ४ ॥
तच्छ्रोतुमभिवाञ्छामि कामस्य पुनरुद्भवम् । पुरा श्रीत्रिपुरादेव्या लीनो नेत्रेषु मन्मथः ॥ ५ ॥
देहः शिवक्रोधवह्निभस्मीभूत इति श्रुतम् । प्राणप्रियेण रहिता रतिः परमदुःखिता ॥ ६ ॥
कथं पुनः प्रियं प्राप्ता तन्मे शंस महामते । इति पृष्टो भार्गवेण दत्तात्रेयो मुनीश्वरः ॥ ७ ॥
अत्यन्तं हर्षजलधावभवन्मग्नमानसः । पुलकाङ्कुरुहो नेत्रस्रुताऽऽनन्दाऽऽस्रवाऽऽविलः ॥
मुहूर्तमात्रमभवद्गतबाह्याऽन्तरस्मृतिः । अथ स्मृतिं समासाद्य हर्षगद्गदया गिरा ॥ ९ ॥
जामदग्न्येत्युपामन्त्र्य प्राह रामं तपोनिधिः । जामदग्न्य धन्यतमस्त्वं यस्मात्त्रिपुराकथाम् ॥ १० ॥
शृण्वन्नपि स्वल्पमपि नैषि तृप्तिं कथाश्रुतेः । एतन्महाभाग्यमिह यच्छ्रीदेवीकथामृते ॥ ११ ॥
शुश्रूषुत्वमनन्त्यजन्मभवं यल्लोकदुर्लभम् । धन्योऽहं स्मारितो यत्ते त्रिपुरामहिमोन्नतिम् ॥ १२ ॥
यत्प्रसङ्गाल्लोकतन्त्रत्रोटनक्षमता भवेत् । प्रसङ्गात् प्राकृताल्लोके चन्द्रेन्द्रादिकथा शुभा ॥ १३ ॥

*** विमला ***

हे भगवन् अवधूतेश! हे करुणा के अपार सागर! दुर्गा का यह परम अद्‌भुत आख्यान कृपापूर्वक आपने सुनाया है॥ १॥ मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ, क्योंकि आपकी कृपा इस मर्त्यलोक में दुर्लभ है; मुझे तो आपकी कृपादृष्टि मिली है॥ २॥ आपके मुख से निकली त्रिपुरा की महिमारूपी सुधा पीते हुए मनुष्य रूपी चकोर के आनन्द को किसने आँका है?॥ ३॥ आपके मुखकमल से निकली कथा का मधुरस पीते हुए फिर मेरे मन को उसी तरह तृप्ति नहीं मिली जैसे कामीजनों को स्त्रीसुख से॥ ४॥ इसलिए पहले श्रीत्रिपुरा देवी की आँखों में काम विलीन हो गया तो फिर उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? यह मैं सुनना चाहता हूँ॥ ५॥ भगवान् शिव की क्रोधाग्नि में काम की देह जलकर राख हो गई, प्राणप्रिय से रहित रति परम दुःखी हुई, यह तो मैंने सुना॥ ६॥ उसे प्रिय का मिलन कैसा हुआ? यह मुझे बतलायें। भार्गव के यह पूछने पर मुनि दत्तात्रेय का॥ ७॥ खुशी के सागर में उनका मानस डूब गया, रोंगटें खड़े हो गये, आँखों से आनन्द की अविरल अश्रुधारा बह चली॥ ८॥ एक पल मात्र उन्होंने बाहर-भीतर से उसे स्मरण किया और याद आते ही हर्षगद्‌गद वाणी में कहने लगे॥ ९॥ हे जमदग्निपुत्र! तपोनिधि परशुराम!! तुम धन्यतम व्यक्ति हो, क्योंकि श्रीत्रिपुरा की कथा॥ १०॥ सुनते हुए भी कथा-श्रवण से तुम्हें थोड़ी भी तृप्ति नहीं होती है। इस संसार में व्यक्ति का यह महाभाग्य है कि श्रीदेवी के कथामृत में वह डूब जाय॥ ११॥ यह कथा सुनकर फिर तुम्हारा दूसरा जन्म नहीं होगा। यह लोकदुर्लभ है, मैं भी धन्य हूँ, क्योंकि तुमने त्रिपुरा की उन्नत महिमा की मुझे याद दिला दी॥ १२॥ लोक में चन्द्र, इन्द्र आदि की शुभ कथा प्रसंगवश या स्वाभाविक रूप से जो सुनता है, उसमें लोकतन्त्र तोड़ने की

ततो विरिञ्चिक्रौञ्चाऽरिगणपाऽऽदिकथोत्तमा। ततो विष्णोस्ततः शम्भोर्महिमा लोकपावनः ॥
ततो मुख्यं रमागौरीभारत्यादिसुवैभवम्। सर्वोत्तमं पराशक्तेस्त्रिपुरायाः कथानकम्॥ १५॥
वर्ण्यते महिमा तस्याः केन वा पृथिवीतले। तारागणाश्च नभसि वर्षधारास्तथाऽम्बरे॥ १६॥
भूम्यां रजांसि यत्नेन मितानि स्युः कथञ्चन। न तस्यास्त्रिपुरादेव्या महिम्नोऽन्तोऽस्ति भार्गव॥
मुख्याऽवतारचरितं संक्षेपेण निरूपितम्। पूर्णस्वरूपा या देवी तां वक्तुं न हि कश्चन॥ १८॥
समर्थोऽस्मिन् प्रभवति लोके साक्षान्महेश्वरः। वेदशास्त्रपुराणानि तन्त्राण्यपि च सर्वशः॥ १९॥
तस्याः स्वरूपमप्राप्य स्थितान्यर्वाक्पदे सदा। यथेन्द्रियाणां स्वतनौ वह्नेर्वा यो गतिः क्वचित्॥
वायोः प्रस्तरगर्भाऽन्तः तद्रूपे निखिलाऽऽगमाः। तत्स्वरूपबलात्सिद्धं भातं सर्वं तदाश्रयात्॥

चितिशक्तिस्तथारूपा त्रितयात्पूर्वभाविनी।
त्रिपुराख्या समाख्याता व्याख्याऽऽख्यानविवर्जिता॥ २२॥

अनादिमध्यनिधना सा स्ववैभवनिर्भरात्। विचित्राऽऽभासरूपेण सृष्ट्याद्याख्यां सदा गता॥
तद्वैभवभरोत्थेऽस्मिन्निमित्तेऽस्य विनिर्मिते। स्वनिर्मितस्थितिविधौ दृश्यतामभिपद्यते॥ २४॥
तत्र तेऽभिहितं पूर्वं चरित्रं त्रिपुराऽऽस्पदम्। कुमार्याद्यंशसम्भूतं विचित्रविभवोन्नतम्॥ २५॥
इदानीं तेऽभिधास्यामि त्रिपुरायाः परात्परम्। यद्रूपं तस्य माहात्म्यं येन कामो विभावितः॥
सा मूर्तिर्ललितेत्युक्ता सर्वेषु ललनात् सदा। अस्या विचित्रं चरितं भण्डदैत्यनिबर्हणम्॥ २७॥
अतिवीर्यबलज्ञानक्रियाचरितचित्रितम्। पुरा भण्ड इति ख्यातस्तपोवीर्यबलाऽन्वितः॥ २८॥

क्षमता होती है॥ १३॥ उससे भी अधिक महिमा ब्रह्मा, क्रौञ्चारिगणपों की कथा उत्तम होती है। उससे भी अधिक विष्णु की, उससे भी अधिक लोकपावन शम्भु की महिमा-कथा होती है॥ १४॥ उससे भी प्रमुख रमा, गौरी और भारती की सुन्दर वैभव वाली कथा होती है और इन सबों से उत्कृष्ट कथा पराशक्ति त्रिपुरा की होती है॥ १५॥ इस धरती पर भला उसकी महिमा का किसने वर्णन किया है? आकाश में तारे तथा आकाश में वर्षधारा॥ १६॥ धरती पर धूलिकणों को प्रयास कर के भी किसी ने गिना है क्या? उसी तरह हे परशुराम! भगवती त्रिपुरा की महिमा का कोई ओर-छोर नहीं है॥ १७॥ इनके अवतारों की संक्षिप्त कथा मैंने सुना दी और भगवती का जो प्रमुख स्वरूप है उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता है॥ १८॥ लोक में केवल महोदव ही है जो इसका तथा वेदशास्त्र एवं पुराणों का सही ढंग से वर्णन कर सकते हैं॥ १९॥ उसका स्वरूप अप्राप्य है। हमेशा वह अपने में ही स्थित है। जैसे देह में इन्द्रियाँ तथा अपने आप में अग्नि स्थिर है॥ २०॥ जैसे प्रस्तर गर्भ में वायु का, उसी रूप में निखिल आगमों का रूप है; उसी तरह बलात् भगवती का रूप सिद्ध है, जो उसी के आश्रय से सर्वत्र भासित है॥ २१॥ चिति शक्ति उसी रूप में है; त्रितय अर्थात् तीन रूपों में होने वाली है, जो त्रिपुरा नाम से ख्यात है, जिसकी न कोई व्याख्या है और न कोई आख्यान है॥ २२॥ अनादिमध्यनिधना वह देवी आत्मवैभव पर ही निर्भर है। वह विचित्र है, आभास रूप से सृष्टि से प्रारम्भ में भासित है॥ २३॥ उसी के वैभवभार से उसे इसी निमित्त में उसका निर्माण है। अपने निर्मित स्थिति-विधि में वह दृश्यमान है॥ २४॥ इसमें त्रिपुरास्पद चरित्र पहले कहा जा चुका है। यह चरित्र विचित्र विभवों से समुन्नत कुमारी आदि के अंशों से प्रादुर्भूत है॥ २५। इस समय मैं तुम्हें कहूँगा—त्रिपुरा के जो रूप है तथा उसकी जो महिमा है तथा जिसमें काम विभावित है॥ २६॥ सबमें हमेशा आमोदित रहने के कारण उस मूर्ति को ललिता कहा गया है। इसका भी चरित्र भण्ड नाम के दैत्य को मारने से विचित्र बना है॥ २७॥ अत्यन्त वीर्य, बल, ज्ञान, क्रिया और चरित्र से चित्रित पहले जमाने में तपवीर्य और

ससर्जाऽण्डान्यनेकानि ब्रह्मविष्णुशिवानपि। पराजितास्तेन देवास्त्रिपुरां परमेश्वरीम्॥ २९॥
प्रसादयामासुरलं साऽग्निकुण्डसमुद्भवा। ललिता त्रिपुरामूर्त्तिर्देवानां प्रीतिहेतवे॥ ३०॥
निहत्य भण्डं सगणमकरोन्नीरुजं जगत्। तदा विष्णुमुखा देवाः स्तुत्वा तां ललिताऽम्बिकाम्॥
कामस्योत्पत्तये देवीं प्रार्थयामासुरानताः। रतिमानीय कृत्वाऽग्रे श्रीदेवीपादपद्मयोः॥ ३२॥
मातः कामस्य दयिता रतिरेषाऽतिदुःखिता। विधवा प्रियवैधुर्यशोकाऽग्निज्वलिता सदा॥ ३४॥
कृशीभूताऽतिमलिना छिन्ननालाऽब्जिनी यथा। इमामुद्धर शोकाब्धौ मज्जन्तीं कृपया द्रुतम्॥
भक्तमूर्धन्यभूतस्य नोचितं ते पराभवम्। त्रिनेत्रेनेति मन्यामस्तदम्बाऽस्यां दयां कुरु॥ ३६॥
निशम्य प्रार्थनां देवी देवानां प्राह सुस्मिता। देवाः शृणुध्वं सत्यं तन्मद्भक्तस्य पराभवः॥ ३७॥
न भवेत् कुत्रचिल्लोके न कामोऽपि पराकृतः। शापस्य गौरवाद्गौर्या मद्भक्ताया विशेषतः॥
देह एव पराभूतो न कामो भस्मतां गतः। नेत्रे मम वसत्येषः कामो मद्भक्तशेखरः॥ ३९॥
एषा मद्भक्तिपरमा रतिः कामप्रिया सती। वैधव्यं कथमीयेत दिनं ध्वान्तगणं यथा॥ ४०॥
मयैष पुनरुद्भूतो मदनो रतिमेष्यति। पश्यध्वं क्षण एवैष रतेर्दुःखनिकृन्तनः॥ ४१॥
इत्युक्त्वा ललिता देवी कामेशं परमेश्वरम्। सुन्दराऽपाङ्गपीयूषवर्षणैरभ्यषेचयत्॥ ४२॥
अपाङ्गाद् हृदयं प्राप्य कामेशस्य स मन्मथः। शरीरं प्राप्य तद्देहात् कन्दर्पो निर्जगाम ह॥ ४३॥
सुप्तोत्थितमिवाऽऽत्मानममंसत स मन्मथः। प्रणनाम महादेवीं भक्तिक्षीराऽब्धिसम्प्लुतः॥
मातरं पितरं देवान्नत्वा सर्वानवस्थितः। तुष्टाव ललितेशार्नी विविधैरुत्तमैः स्तवैः॥ ४५॥

बलयुक्त भण्ड नाम का एक दैत्य था॥ २८॥ ब्रह्मा, विष्णु और विष्णु के साथ उसने अनेक ब्रह्माण्डों की सृष्टि की थी। उसने देवताओं को पराजित कर दिया था, पराजित देवताओं ने परमेश्वरी त्रिपुरा को॥ २९॥ प्रसन्न कर लिया। देवताओं की प्रसन्नता के लिए अग्निकुण्ड से त्रिपुरा ललिता के रूप में उत्पन्न हुई॥ ३०॥ ससैन्य भण्ड को मारकर संसार को भगवती ने निरुपद्रव कर दिया। तब विष्णुप्रमुख देवताओं ने ललिताम्बिका की स्तुति कर॥ ३१॥ काम की उत्पत्ति के लिए विनत होकर देवी की प्रार्थना की तथा श्रीदेवी के चरणकमलों में रति को लाकर खड़ा कर दिया॥ ३२॥ हे मातः! यह अत्यन्त दुःखिता रति काम की पत्नी है, अपने प्रिय पति के शोक रूपी अग्नि में सदैव जलती यह काम की विधवा है॥ ३४॥ यह अत्यन्त दुबली, मलिन, नाल रहित कमल फूल की तरह है; शोकसागर में डूबती अबला का कृपया आप उद्धार करे॥ ३५॥ आपका यह मूर्धन्य भक्त है, फिर त्रिनेत्र शिव से इसकी पराजय हम नहीं मानते; यह उचित भी नहीं है, आप इस अबला पर दया करें॥ ३६॥ देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर मुस्कराती ललिता ने कहा—हे देवगण! आप सुनो, यह सच है कि मेरे भक्तों की पराजय॥ ३७॥ संसार में कहीं भी नहीं होती है और न काम ही पराजित है, खासकर मेरे ही भक्त को गौरी के शाप की गुरुता के कारण ही ऐसा हुआ है॥ ३८॥ काम की देह ही पराजित हुई है, काम नहीं जला है; वह तो मेरी आँखों में बसा है, वह मेरा भक्तशिरोमणि है॥ ३९॥ और मेरी भक्ति में निरत कामप्रिया सती रति भला विधवा कैसे हो सकती है? दिन को रात का अन्धकार भला कैसे घेर सकता है?॥ ४०॥ मुझसे ही यह मदन फिर उत्पन्न होकर रति से मिलेगा। आप लोग देखें—एक क्षण में ही रति का दुःख कैसे विनष्ट होता है?॥ ४१॥ इतना कहकर ललिता देवी ने परमेश्वर कामेश को अपनी सुन्दर आँखों से अमृत वर्षाकर अभिसिंचित कर दिया॥ ४२॥ कामेश की आँखों से हृदय पाकर वह मन्मथ अपनी देह पाकर उस देह से काम बाहर निकल आया॥ ४३॥ सोये हुए-से जैसे कोई जगा हो, ऐसा अपने को मानकर उस कामदेव ने भक्ति के क्षीरसागर में डुबकी लगाते हुए सामने खड़ी भगवती को प्रणाम किया॥ ४४॥ माता-पिता और देवताओं को प्रणाम कर अनेक उत्तम स्तुतियों से परमेश्वरी ललिता

अथ मात्रा रमादेव्या श्रुत्वा स्वततुनाशनम्। पुनर्नेत्रादुद्भवश्च प्रार्थयाभास तां शिवाम्॥ ४६॥
जगदम्ब न वाञ्छामि देहमत्यन्तनश्वरम्। विदेह एव तिष्ठामि नाशभीतिर्न मे भवेत्॥ ४७॥
नाऽहं जीवितुमर्हामि महेश्वरपराजितः। यदि देवस्त्रिनयनः परिभूयान्मया हतः॥ ४८॥
तदा मे जीवितेनाऽर्थः सत्यं प्रतिशृणोमि ते। तन्नेत्राऽग्निं समासाद्य भस्मीभूतः पतङ्गवत्॥ ४९॥
त्वत्पादसंश्रयोऽप्यम्ब न मे जीवनजं फलम्। तदलं देवि देहेन जीवितेन च सर्वथा॥ ५०॥
देहं नैवाऽहमिच्छामि दयां मयि समावह। धिङ् मां रमासुतो भूत्वा श्रीदेवीपादसंश्रयः॥ ५१॥
परिभूतो वरिगोष्ठ्यां पुनर्जीवाम्यनार्यवत्। श्रुत्वैवं मन्मथवचः प्राह श्रीललिताऽम्बिका॥ ५२॥
वत्स कन्दर्प मा खेदं गच्छ त्वमरिमर्दन। मत्पादसंश्रयाणां तु नास्ति क्वाऽपि पराभवः॥ ५३॥
मन्नेत्रयोः संस्थितस्त्वं सुषुप्त इव पूरुषः। गौरीशापविनिर्दग्धो देहो भस्मत्वमागतः॥ ५४॥
त्वद्देहसम्भवाः कामा असंख्यास्त्वत्समौजसः। जयन्ति सर्वलोकांस्ते तेषां त्वमीश्वरो भव॥
अथ कामान् देहभवानाहूयाम्बाऽब्रवीद्वचः।
कामाः शास्तैष वो देवः कामराजो मम प्रियः। शासनेऽस्य सदा स्थेयं भवद्भिर्देहसम्भवैः॥ ५६॥
यच्छ काम पुनर्देहं शिवं जहि निमेषतः। देवैः सम्प्रार्थितः पुत्रसमुत्पादनकर्मणि॥ ५७॥
आस्ते निष्काम एवाऽसौ समुद्रः स्तिमितो यथा। न त्वयाऽभिहतो नूनं विवशो विह्वलेन्द्रियः॥
समेष्यत्यद्रिजां शीघ्रं मोहिनीं विष्णुमप्युत। तनुं नेच्छस्यलं यत्ते तनुमन्यो न पश्यति॥ ५९॥

को उसने सन्तुष्ट किया॥ ४५॥ काम की माता महालक्ष्मी से अपने शरीर के विनाश की बात सुनकर तथा भगवती के नेत्र से पुनः अपनी उत्पत्ति जानकर उसने उस शिवा से प्रार्थना की॥ ४६॥ हे जगदम्बे! यह देह तो अत्यन्त नश्वर है, मैं इस देह की कामना नहीं करता; क्योंकि मुझे देह-विनाश का डर न हो इसलिए बिना देह का ही रहना चाहता हूँ॥ ४७॥ महेश्वर शिव से पराजित होकर मैं जीना ही नहीं चाहता। यदि त्रिनयन शिव ने मुझे पराजित कर मारा है॥ ४८॥ तो फिर मेरे जीने का क्या अर्थ है? शिव की नेत्राग्नि को पाकर तो मैं फतिंगो की तरह जल मरा॥ ४९॥ तुम्हारे चरण का आश्रय लेने के बावजूद हे माँ! मुझे जन्म लेने का क्या फल मिला? इसलिए हे महादेवि! देह और जीवन दोनों ही मेरे लिए सर्वथा बेकार है॥ ५०॥ मुझ पर दया करे, महालक्ष्मी का बेटा होकर, श्रीदेवी के चरणों का आश्रय ग्रहण कर मुझे धिक्कार है, इसलिए मैं पुनः देह धारण नहीं करना चाहता हूँ॥ ५१॥ पराजित होकर मैं श्रेष्ठ जनों की गोष्ठी में पुनर्जीवन धारण कर अनार्य की तरह जीना नहीं चाहता। काम की यह बात सुनकर श्रीललिताम्बिका ने कहा॥ ५२॥ बेटे कन्दर्प! बेकार खेद मत करो, तुम तो दुश्मनों को विनष्ट करने वाले हो। मेरे चरणों के आश्रय लेने वालों की पराजय तो कभी होती ही नहीं॥ ५३॥ मेरे नेत्रों में संस्थित तुम सोये हुए पुरुष की तरह थे, गौरी के शाप के कारण ही तुम्हारी देह जली थी॥ ५४॥ तुम्हारी देह से समुत्पन्न तुम्हारी ही तरह ओजस्वी अनगिनत काम सभी लोक को जीत रहे हैं, उन सबका तुम स्वामी बनो॥ ५५॥ काम के देह से समुत्पन्न उन अनन्त कामों को बुलाकर भगवती ने कहा—मेरा प्रिय यह देव कामराज तुम्हारा स्वामी होगा। चूँकि आप सब इनकी देह से उत्पन्न हैं, अतः हमेशा आपको इनके शासन में ही रहना चाहिए॥ ५६॥ हे काम! अब तुम पुनर्देह प्राप्त करो और पलक झपकते शिव पर विजय प्राप्त करो। देवताओं के द्वारा प्रार्थित पुत्रोत्पादन कर्म में उन्हें प्रेरित करो॥ ५७॥ वह निष्काम भाव से निश्चल सागर की तरह स्थिर हैं, तुमसे अभी वे पराजित नहीं होंगे। इसलिए इन्द्रियों के द्वारा उन्हें विवश करना होगा॥ ५८॥ गिरजा को शीघ्र साथ लो, मोहिनी रूप विष्णु को भी आने दो। तुम बेकार ही देह नहीं चाहते हो, जब तक तुम्हें देह नहीं

रतिं विना त्रिलोकेऽपि गच्छ देवं द्रुतं जहि। इत्याज्ञप्तो ययौ कामः सन्नद्धः शङ्करं प्रति॥ ६०॥
अदृश्य एव बाणेन जघान स्वरिपुं शिवम्। हतः कामेन चाऽत्यन्तं देवैरपि शिवोऽर्थितः॥ ६१॥
अनुगच्छन् पर्वतजां कामबाणप्रपीडितः। ततो जातो गुहस्तेन हतास्तारकमुख्यकाः॥ ६२॥
दैत्याः सखायो भण्डस्य महावीर्यपराक्रमाः। अथ कालान्तरे शम्भुर्मोहिनीदर्शनादलम्॥ ६३॥
कामास्त्रविद्धहृदयो बभूव स्खलितेन्द्रियः। एतत्ते सर्वमाख्यातं कामस्य जननं पुनः॥ ६४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोज्जीवनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९५७॥



मिलेगी तब तक दूसरा तुम्हें देखेगा कैसे?॥ ५९॥ रति के बिना त्रिलोक में तुम कहीं भी जा सकते हो, शिव पर शीघ्र प्रहार करो। इस तरह भगवती से आदिष्ट होकर काम शंकर से युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया॥ ६०॥ अदृश्य होकर ही काम ने अपने दुश्मन शिव पर प्रहार किया। देवताओं से भी प्रार्थित शिव काम से बुरी तरह हत हुए॥ ६१॥ कामबाण से पीड़ित शिव पार्वती के पीछे लग गये, फलतः उनसे कुमार कार्तिकेय का जन्म हुआ, जिसने तारका प्रमुख दैत्यों का संहार किया॥ ६२॥ उस दैत्य का मित्र भण्ड जो महावीर और पराक्रमी था, कालान्तर में शम्भु मोहिनी-दर्शन से कामास्त्र से विद्ध हृदय होकर स्खलितेन्द्रिय हुए—ये सब आख्यान काम के पुनर्जन्म के मैंने तुम्हें सुना दिये॥ ६३-६४॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में काम-उज्जीवन नामक सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३९५७॥



अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः



श्रुत्वा कामपुनर्भूतिं जामदग्न्योऽतिकौतुकी। दत्तात्रेयं पुनरपि पप्रच्छ विनयाऽन्वितः॥ १॥
भगवन् श्रोतुमिच्छामि कथं निष्काम ईश्वरः। मोहिन्या मोहितो जातस्तन्मे शंस दयानिधे॥
भार्गवेणैवमापृष्टो दत्तः प्रोवाच योगिराट्। शृणु रामाऽभिधास्यामि कथां परमपावनीम्॥ ३॥
पुरा देवाऽसुरे युद्धे क्षीरसागरसम्भवम्। दैत्या जह्रुः सुधाकुम्भं तदा विष्णुर्महासुरान्॥ ४॥
मोहिनीरूपमासाद्य सुधाकुम्भं समाहरत्। वञ्चयित्वा दितिसुतान् देवेभ्यो विभजत् सुधाम्॥
श्रुत्वैतच्छङ्करो वृत्तं विष्णुना सङ्गतः क्वचित्। प्रोवाच विष्णो रूपं ते मोहिन्याख्यं प्रदर्शय॥ ६॥
जगाद विष्णुः श्रीकण्ठं तद्रूपमतिमोहनम्। दृष्ट्वा त्वं मोहितः सद्यो मुक्तवीर्यो भविष्यसि॥ ७॥
श्रुत्वा जहास सुतरामब्रवीद्वचनं पुनः। नाहं दैत्यसमो विष्णो ये त्वया मोहिता भृशम्॥ ८॥
न मेरुशिखरे वात्या वीर्यं मूर्च्छति कुत्रचित्। आस्ते मोहमयी वृत्तिर्यन्मां मोहयितुं क्षमः॥ ९॥
हरिरेवमधिक्षिप्तो दर्शयिष्यामि कालतः। इत्याभाष्य गतौ विष्णुशङ्करौ स्वं स्वमालयम्॥ १०॥
एवं शिवेनाऽधिक्षिप्तो विष्णुः स्वस्मिन् व्यचिन्तयत्।
नूनं शिवो महातेजा ऊर्ध्वरेता यताऽऽत्मवान्॥ ११॥
साक्षात् कामोऽपि नाऽशकद्यं मोहयितुमीश्वरम्। तं कथं मोहयिष्यामि येन कामो हतः क्षणात्॥

*** विमला ***

काम का पुनर्जन्म सुनकर अति उत्सुक परशुराम ने विनयान्वित होकर पुनः गुरु दत्तात्रेय से पूछा॥ १॥ हे भगवन्! मैं सुनना चाहता हूँ, भगवान् शिव तो निष्काम है, फिर कैसे वे मोहिनी के रूप से मोहित हुए॥ २॥ परशुराम के इस प्रश्न को सुनकर योगीराज दत्तात्रेय ने कहा—सुनो राम! यह परम पावनी कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ॥ ३॥ पहले देवासुर संग्राम में क्षीरसागर से निकले अमृतकलश को दैत्यों ने छीन लिया, तब भगवान् विष्णु ने दैत्यों से॥ ४॥ मोहिनी रूप बनाकर सुधाकुम्भ ले लिया। दैत्यों को ठगकर देवताओं के बीच अमृत बाँट दिया॥ ५॥ शंकर ने जब यह कहानी सुनी और कभी विष्णु से उनकी भेंट हुई तब उन्होंने कहा—हे विष्णु! जरा अपना मोहिनी रूप तो दिखलाओ॥ ६॥ तब विष्णु ने महादेव से कहा—वह रूप तो बड़ा ही मोहक है, उसे देखकर तो तुम मोहित हो जाओगे महादेव! और उसी क्षण तुम्हारा वीर्यपात होगा॥ ७॥ यह सुनकर महोदव को हँसी आ गई, उन्होंने फिर कहा—हे विष्णु! मैं राक्षसों की तरह नहीं हूँ, जो तुम्हें देखते ही मोहित हो गये॥ ८॥ मेरु की चोटी पर कहीं कोई वीर्यत्याग नहीं कर सकता, यह तो तुम्हारी मोहिनी वृत्ति है, जो मुझे मोहने की क्षमता रखती है॥ ९॥ यह आक्षेप विष्णु ने सुना और कहा—समय आने पर दिखला दूँगा। इतना कहकर दोनों अपने-अपने आवास पर लौट गये॥ १०॥ इस तरह शिव से अधिक्षिप्त विष्णु ने अपने आप विचार किया; निश्चय ही भगवान् शिव महातेजस्वी हैं, ऊर्ध्वरिता हैं और संयत आत्मा वाले हैं॥ ११॥ साक्षात् कामदेव भी जिस शिव को मोहने में अशक्त हुआ और उसे एक क्षण में शिव ने भस्म कर डाला, उसे मैं भला कैसे मोह सकूँगा?॥ १२॥ निश्चित ही उनके सामने मैं मोहिनी रूप

नूनं यास्यामि लघुतां प्रदर्श्य मोहिनीतनुम् । यं सा पर्वतजा गौरी भगिनी लोकसुन्दरी ॥ १३ ॥
त्रिपुरांऽशसमुद्भूता सदा सन्निहिता सती । न समर्था मोहयितुं स्पर्शदर्शपराऽप्यलम् ॥ १४ ॥
तत्कथं मोहिनीवेषं कृत्वाऽहं मोहयामि तम् । इति चिन्तापरो भूत्वा विमृश्य तदनन्तरम् ॥ १५ ॥
नूनमत्र विना देव्यास्त्रिपुरायाः प्रसादनम् । न सेत्स्यति मतं तस्मात्तां समाराधयाम्यहम् ॥
इति निश्चित्योपतस्थौ त्रिपुरां लोकसुन्दरीम् । षष्टिवर्षसहस्राणि तां समाराधयद्धरिः ॥ १७ ॥
अथ प्रसन्ना त्रिपुरा प्रादुर्भूता महेश्वरी । प्रोवाच विष्णुं वत्सेति सम्बोध्य परमेश्वरी ॥ १८ ॥
वरं वरय तेऽभीष्टं यत्तद्वास्ये रमापते । नाऽदेयं विद्यते तुभ्यं चिरमाराधिता यतः ॥ १९ ॥
एवं नियुक्तः श्रीदेव्या नमस्कृत्य परां हरिः । प्राह देवि महेशानं कामारिमपि मोहितुम् ॥ २० ॥
मोहिनीरूपमिच्छामि यच्छिवस्याऽपि मोहकम् । श्रुत्वा विष्णोः प्रार्थितं तत् प्रोवाच त्रिपुरेश्वरी ॥
पुरुषं वाऽपि स्त्रीरूपं सर्वलोकैकमोहनम् । यदेच्छसि तदा तेऽस्तु गच्छ मन्मथसंयुतः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा त्वां मन्मथाऽऽविद्धो गिरिशो मोहमेष्यति । ऊर्ध्वरेताः शम्भुरयं योगीशो जितमन्मथः ॥
तदर्थं ते ददाम्यंशं मत्सौन्दर्यस्य तेन तम् । मोहयिष्यस्यतितरां लोके ख्यातिश्च यास्यसि ॥ २४ ॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा कामेन पुरुषोत्तमः । ययौ कैलासशैलेन्द्रं यत्र देवः स्थितः शिवः ॥ २५ ॥
पार्वत्या सहितस्तस्मादविदूरं मनोहरे । सुरसिन्धुतटे फुल्लवने शुकपिकाऽऽकुले ॥ २६ ॥
मोहिनीरूपमास्थाय विचचार समन्मथः । समानसर्वाऽवयवं सर्वसौन्दर्यसंश्रयम् ॥ २७ ॥
तप्तहेमाऽऽभसुतनुं पूर्णचन्द्रनिभाऽऽननम् । कस्तुरिकातिलकिकाकलङ्कच्छविलाञ्छनम् ॥

दिखाकर छोटा बन जाऊँगा। जिसकी बहन त्रिलोकसुन्दरी पार्वती है॥ १३ ॥ जो पार्वती त्रिपुरा के अंश से उद्भूत है और सती है एवं उनके पास ही हमेशा रहती है, उन्हें मोहने में स्पर्शदर्शपरा भी समर्थ नहीं हो सकती॥ १४॥ उस शिव को मोहिनी का वेश बनाकर भला मैं कैसे मोह सकूँगा ? ऐसी चिन्ता कर उन्होंने कुछ निर्णय लिया॥ १५ ॥ निश्चय ही बिना त्रिपुरा देवी को प्रसन्न किये मेरा काम नहीं होगा, अतः मैं उन्हीं की आराधना में लगता हूँ॥ १६ ॥ इतना निश्चय कर त्रिलोकसुन्दरी त्रिपुरा की साठ हजार साल तक विष्णु ने तपस्या की॥ १७॥ तब वह त्रिपुरा महेश्वरी प्रसन्न होकर आविर्भूत हुई और उस परमेश्वरी ने 'वत्स' कहकर सम्बोधित करते हुए कहा॥ १८ ॥ हे रमापति ! अपना अभीष्ट वरदान माँगो, क्योंकि तुमने बहुत दिनों तक मेरी आराधना की है, अतः मेरे पास तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है॥ १९ ॥ श्रीदेवी के ऐसा कहने पर उस पराशक्ति को प्रणाम कर श्रीविष्णु ने कहा—हे देवि ! महेश्वर काम के दुश्मन हैं, फिर भी मैं उन्हें मोहने के लिए॥ २० ॥ वह मोहिनी रूप चाहता हूँ, जो शिव के लिए भी मोहक हो। विष्णु की यह प्रार्थना सुनकर त्रिपुरेश्वरी ने उनसे कहा॥ २१ ॥ पुरुष का रूप अथवा स्त्री का रूप, सब लोक को मोहने वाला जो तुम चाहो, ले लो; कामदेव को साथ लेकर तुम जाओ॥ २२ ॥ तुम्हें देखकर महादेव कामासक्त होकर मोह प्राप्त करेंगे। वे शम्भु ऊर्ध्वरेता हैं, योगीश हैं और मन्मथ-विजेता हैं॥ २३ ॥ इसलिए मैं अपने सौन्दर्य का अंश तुम्हें देती हूँ। त्रिलोक में ऐसा कोई न होगा जो तुम्हें देखकर मुग्ध न हो और संसार में तुम्हारी ख्याति होगी॥ २४॥ देवी से ऐसा वर प्राप्त कर पुरुषोत्तम विष्णु काम के साथ कैलाश पर्वत पर जहाँ महादेव थे, गये॥ २५ ॥ पार्वती के साथ जहाँ महादेव बैठे थे, उससे थोड़ी ही दूर पर गंगा नदी के किनारे शुक-पिक से भरे सुन्दर वन में॥ २६ ॥ मोहिनी रूप बनाकर विष्णु काम के साथ घूमने लगे। उनके शरीर के अंग-प्रत्यंग एक समान थे, सर्व सौन्दर्य से युक्त थे॥ २७॥ तप्त सोने की तरह उनके देह की कान्ति थी, पूर्णचन्द्रमा

घननीलकबन्धान्तमध्योद्यन्मुखचन्द्रकम् । मन्दहासक्षीरनिधिफुल्लेन्दीवरनेत्रकम् ॥ २९ ॥
नासाचम्पकवित्रस्तनिवृत्ताऽलिविशेषकम् । मुखसौन्दर्याऽब्धिवलन्मीनचञ्चललोचनम् ॥ ३० ॥
कुन्दकोरकपङ्क्त्याऽऽभद्विजपङ्क्त्युपशोभितम् । गण्डाऽऽभोगस्फुरद्रत्नकुण्डलश्रीमनोहरम् ॥
कन्दुकाऽऽभकुचद्वन्द्वसतीर्थीकृतकोककम् । प्रवाललतिकाभोगशोभाजित्पाणियुग्मकम् ॥ ३२ ॥
रत्नाङ्गदोर्मिवलयशोभाद्विगुणसुन्दरम् । प्रवाललतिकोदञ्चत्कराम्बुजविराजितम् ॥ ३३ ॥
तनुवल्लीबाहुशाखाप्रान्तकोरकिताऽङ्गुलिम् । पृथुवक्षःस्थलीन्युब्जदुन्दुभिद्वयसुस्तनम् ॥ ३४ ॥
चर्मबन्धतसुग्रन्थिनिमग्नाऽसितचूचुकम् । नाभीविलोद्गमद्रोमलतातनुभुजङ्गकम् ॥ ३५ ॥
ऊर्ध्वाङ्गधारतोन्नेयमध्यभागसमाश्रयम् । नाभीह्रदस्वर्णतटसोपानत्रिवलीयुतम् ॥ ३६ ॥
कौसुम्भांऽशुकसंवीतिनितम्बलघुतायुतम् । काञ्चीमणिप्रविततिप्रभाद्विगुणिताऽरुणम् ॥ ३७ ॥
रत्ननूपुरविन्यस्तकिङ्किणीस्वनसुन्दरम् । मन्दयानाऽतिसौन्दर्यपराकृतमरालकम् ॥ ३८ ॥
एवं सुमोहिनीरूपं कृत्वा यज्ञपतिर्हरिः ॥ ३९ ॥
व्यहरत्कन्दुकक्रीडापरः फुल्लवनाऽऽलिषु । मधुरं सुस्वरं गायन् शिवस्य पुरतस्तदा ॥ ४० ॥
शिवः श्रुत्वा गीतरवमपश्यत्तां पुरो वने । गौरि पश्याऽतिसुभगां कन्दुकक्रीडने रताम् ॥ ४१ ॥
भज्यमानमिव लतां तडिल्लेखेव भासुराम् । कन्दुकक्रीडनाऽऽलोलहारवल्गत्पृथुस्तनीम् ॥ ४२ ॥
स्वेदार्द्रांऽशुकसुव्यक्तस्तनश्रोण्यूरुमण्डलाम् । स्तनभारनमन्मध्यां नृत्यत्कुचसुकुड्मलाम् ॥ ४३ ॥

की तरह उनका मुख था, कस्तूरी का तिलक उस चन्द्रमुख पर कलंक की छाया जैसा लग रहा था ॥ २८ ॥ घने बादल की तरह उनकी केशराशि थी, उसके बीच-बीच उन्मुख चन्द्रमा की शोभा लगी थी, मन्द-मन्द हास्य बिखेर रहे थे, क्षीरनिधि में खिले कमल की तरह आँखें थीं ॥ २९ ॥ चम्पा के फूल को पराजित करने वाली नाक थी, पर वहाँ भौंरे नहीं पहुँच रहे थे, मुख-सौन्दर्य रूपी सागर में चंचल आँख रूपी मछलियाँ तैर रही थीं ॥ ३० ॥ सफेद मोतियों की कली की तरह चमचमाती दन्तपंक्तियाँ थीं। गालों को घेरकर रत्न के कुण्डल श्रीमनोहर थे ॥ ३१ ॥ गोलाकार गेंद की तरह कुचद्वय लगता था जैसे हंस के जोड़े को अपना साथी उन्होंने बना लिया हो। प्रवाल की लता की लालिमा को उसकी तलहथियाँ जीत रही थीं ॥ ३२ ॥ रत्ननिर्मित बाजूबन्द से उनकी बाँहों की शोभा द्विगुणित हो रही थी। प्रवाललतिका के सदृश उनके बाहु-युगल सुशोभित थे ॥ ३३ ॥ शरीर लता की तरह था, दोनों बाँहें डाल की तरह थीं, उनमें कुन्दकली की तरह अँगुलियाँ थीं, पीन पयोधर सुदृढ़ एवं सुशोभन थे ॥ ३४ ॥ चमड़े के बन्धन में कसे काले कुचमण्डल थे। नाभी रूपी विष से निकली रोमावलि शरीर से निकले नाग की तरह थी ॥ ३५ ॥ ऊपरी अंग तक पहुँचने के लिए मध्यभाग का आश्रय लिये नाभी रूपी सरोवर के सुनहले तट की सीढ़ियाँ उनकी त्रिवलियाँ थीं ॥ ३६ ॥ उनके शरीर पर रेशमी वस्त्र सुशोभित थे। शरीर पर शोभते काञ्चीमणि की फैलती प्रभा से द्विगुणित हो रही थी ॥ ३७ ॥ उनके पैरों में रत्न-निर्मित पाजेब थे, उससे सुमधुर ध्वनि निकल रही थी। उनका मन्द गमन हंसगमन से भी अधिक सुन्दर था ॥ ३८ ॥ इस तरह सुन्दर मोहिनी रूप बनाकर यज्ञपति श्रीहरि विष्णु ॥ ३९ ॥ खिले फूलों के बीच कन्दुक-क्रीड़ा करने लगे एवं मधुर स्वर में मीठे-मीठे गीत गाते हुए शिव के आगे चले गये ॥ ४० ॥ गीत की आवाज सुनकर शिव ने सामने जंगल में उसे देखा। उन्होंने कहा—हे गौरि! देखो, यह कितनी सुन्दर है। कन्दुक-क्रीड़ा में कितनी व्यस्त है ॥ ४१ ॥ जैसे बिजली-लेखा किसी लता को विभक्त कर सुन्दर लगती है, उसी तरह सुन्दरी के गले का हार खेलने के कारण इसके दोनों स्थूल स्तनों को विभक्त कर रही है ॥ ४२ ॥ खेलने के

कन्दुकोत्पातसंलग्नकरनेत्राऽम्बुजद्वयीम् । उपयावोऽतिकुतुकाऽऽलोकाय द्रुतमद्रिजे ॥ ४४ ॥
अथ तामुपयान्तं तं मन्मथोऽप्यविदूरतः । जघान पुष्पविशिखैर्हृदि देवस्य शूलिनः ॥ ४५ ॥
विद्धो मन्मथबाणेन दृष्ट्वा तां मोहिनीं पुरः । कामाग्निज्वलितात्माऽसौ हित्वा गौरीं द्रुतं ययौ ॥
क्षुब्धेन्द्रियगणो देवस्तामासाद्य समीपतः । काऽसि सुन्दरि मां पश्य कुतस्त्विह समागता ॥ ४७ ॥
मनो हरसि मे बाले पृच्छामि त्वां शिवो ह्यहम् । अनादृत्यैव तद्वाक्यं सा क्रीडनपरा पुनः ॥ ४८ ॥
मन्मथाऽऽविद्धहृदयो गाढव्याकुलिताऽन्तरः । अनुव्रज्य करं तस्या जगृहेऽतिविमोहितः ॥ ४९ ॥
तदङ्गस्पर्शनोद्भूतसुखक्षुब्धेन्द्रियः शिवः ॥ ५० ॥
मुमोच वीर्यमत्यन्तं प्राकृतः पुरुषो यथा । अथ विष्णुर्निजं रूपं दधार शिवसन्निधौ ॥ ५१ ॥
ज्ञात्वा शिवोऽप्यतिक्षुब्धहृदयो ह्रियमावहत् । हरिस्त्रिलोचनं प्राह दर्शितं शिव ते मया ॥ ५२ ॥
यन्मे दिदृक्षितं रूपं मोहिन्याख्यं सुमोहनम् । श्रुत्वा हरिवचः शम्भुर्लज्जयाऽवनताऽऽननः ॥
एवं पुरा स कामारिर्मोहिनीरूपदर्शनात् । नष्टवीर्यः समभवदत्यन्तं क्षुभितेन्द्रियः ॥ ५४ ॥
त्रिपुरायाः कृपाप्राप्तौ न किञ्चिद् दुर्लभं भवेत् । एवं विष्णुविरिञ्च्याद्यास्त्रिपुरां परमेश्वरीम् ॥
समाराध्य प्राप्तकृपा व्यदधुर्दुर्घटान्यलम् । एवं ब्रह्मादयः सर्वे त्रिपुराया उपासकाः ॥ ५६ ॥
आराधयन्ति तामेव तद्विद्यां प्रजपन्ति च । तेषु सर्वोत्तमः कामो भक्तलोकैकशेखरः ॥ ५७ ॥
विद्याप्रवर्तकश्चैवमन्येऽप्यस्याः कृपावशात् । जाता विद्येश्वरास्तेषु मुख्यास्ते द्वादश स्मृताः ॥

कारण पसीने से भींगे वस्त्र इसके सुन्दर स्तनों से चिपके हैं। स्थूल स्तन के भार से कमर झुक गई है। नाचने के कारण कुचकुड्मल हिल रहे हैं॥ ४३ ॥ गेंद उछालने में लगे दोनों हाथ और दोनों कमलनयन कितने सुन्दर हैं? हे गौरि! शीघ्र देखो इन्हें, इसका सौन्दर्य कितना विस्मयकारक है?॥ ४४॥ उसे पास आते देख इधर मन्मथ ने भी पुष्पबाण से महेश्वर के हृदय को छलनी कर दिया॥ ४५॥ सामने उस मोहिनी को देखकर कामबाण से विद्ध कामाग्नि की ज्वाला में जलते हुए महादेव गौरी को छोड़कर शीघ्र ही उसकी ओर दौड़ पड़े॥ ४६ ॥ महादेव की सारी इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो उठीं। उस मोहिनी के पास पहुँचकर उन्होंने पूछा–हे सुन्दरि! तुम कौन हो? मेरी ओर देखो, तुम कहाँ से आई हो?॥ ४७॥ मैं शिव तुमसे पूछता हूँ। तुमने मेरा मन हर लिया है। शिव की बात पर बिना ध्यान दिये वह बाला खेलती रही॥ ४८॥ काम का गहरा घाव लगने के कारण उनकी भीतरी आत्मा कुलबुला उठी, अत्यन्त मोहित उसके पीछे दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया॥ ४९ ॥ उसके अंग के स्पर्श के सुख से शिव की सारी इन्द्रियाँ एक साथ क्षुब्ध हो उठीं॥ ५० ॥ और सर्वसाधारण पुरुष की तरह शिव का वीर्यपात हो गया। फिर क्या था, शिव के सामने विष्णु ने अपना रूप प्रकट कर दिया॥ ५१ ॥ शिव भी सामने विष्णु को देखकर अत्यन्त क्षुब्धहृदय लज्जित हुए। उन्होंने शिव से कहा—आपने मुझे देखा॥ ५२ ॥ मेरा मनोहर मोहिनी रूप आप देखना तो चाहते थे न, श्रीहरि की बात सुनकर शम्भु लज्जा से सिर झुका लिये॥ ५३ ॥ इस तरह पहले शिव को मोहिनी रूप दिखाकर वीर्य नष्ट कर उन्हें इन्द्रियों से अत्यन्त क्षुब्ध कर दिया॥ ५४॥ त्रिपुरा की कृपा से संसार को कुछ भी दुर्लभ नहीं होता। इस तरह ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति ने परमेश्वरी त्रिपुरा की॥ ५५ ॥ आराधना कर उनकी कृपा पाकर एक-से-एक दुर्घट घटनाओं को सम्भावित कर दिखलाया है। इस तरह ब्रह्मादि देवगण सभी त्रिपुरा के उपासक हैं॥ ५६ ॥ उन्हीं की आराधना करते हैं, उसी विद्या को जपते हैं। उनमें कामदेव सर्वोत्तम है, चोटी का भक्त है॥ ५७ ॥ उनकी कृपा से उसमें अनेक विद्या प्रवर्तक है। इनमें प्रमुख बारह विद्येश्वर कहे जाते है॥ ५८ ॥ हे परशुराम!

तानहं ते प्रवक्ष्यामि शृणु भार्गव संयतः । मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः ॥ ५९ ॥
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा । क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशाऽमी उपासकाः ॥
एतान् प्रातः स्मरेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते । एते प्राप्तप्रसादा यत्तस्या देव्यास्ततोऽन्वहम् ॥ ६१ ॥
स्मरणात् सर्वसौभाग्यफलप्राप्तिर्भवेदिह । त्रिपुरोपासका ये वै तैः स्मर्त्तव्या विशेषतः ॥ ६२ ॥
ततस्तस्यां सुभक्तिः स्याद्भवपाशनिकृन्तनी । जगत्सृष्टिमोषधीनाममृतांऽशुनिषेचनम् ॥ ६३ ॥
धनेशत्वञ्च सौभाग्यं शिवस्य विजयं तथा । समुद्रशोषणाद्यश्च देवतामुखतां तथा ॥ ६४ ॥
लोकप्रकाशकत्वञ्च देवेशत्वमनुत्तमम् । मृत्योर्जयं क्रौञ्चजयं योगीशत्वञ्च भार्गव ॥ ६५ ॥
त्रिपुरायाः प्रसादेन प्राप्ता एते हि साधकाः । एते समस्तविद्येशा अन्ये बीजाद्युपासकाः ॥ ६६ ॥
तत्र मुख्यास्त्रिगुरवो लोके सर्वत्र पूजिताः । मित्रीशषष्ठीशोड्डीशा आद्याऽऽचार्याः शिवाऽङ्गजाः ॥
कूटोपासनसम्प्राप्तमहेश्वरपदा इमे । एवं सा त्रिपुरेशानी कृत्वा विविधरूपकम् ॥ ६८ ॥
चक्रे जगद्रक्षणं सा कलया विश्वमास्थिता । पूर्वसागरतीरे तु कामगिर्यात्मना स्थिता ॥ ६९ ॥
मेरुसानौ स्थितौ सैव जालन्धरस्थानरूपतः । पूर्णगिर्यात्मना प्रत्यक् समुद्रप्रान्ततः स्थिता ॥ ७० ॥
एवं त्रिधा संस्थिताऽपि पुनर्बहुविधा स्थिता । काञ्चीपुरे तु कामाक्षी मलये भ्रामरी तथा ॥ ७१ ॥
केरले तु कुमारी सा अम्बाऽऽनर्तेषु संस्थिता । करवीरे महालक्ष्मीः कालिका मालवेषु सा ॥ ७२ ॥
प्रयागे ललिता देवी विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी । वाराणस्यां विशालाक्षी गयायां मङ्गलावती ॥
बङ्गेषु सुन्दरी देवी नेपाले गुह्यकेश्वरी । इति द्वादशरूपेण संस्थिता भारते शिवा ॥ ७४ ॥

उनके बारे में मैं तुम्हें बतलाता हूँ, तुम संयत होकर सुनो—मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा और काम ॥ ५९ ॥ अगस्ति, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कंन्द, शिव तथा क्रोधभट्टारक—ये बारह देवी के परम उपासक हैं ॥ ६० ॥ इन विद्येश्वरों का नाम प्रातःकाल स्मरण करने से हर तरह के पापों से लोगों को मुक्ति मिलती है। इनकी कृपा से प्रतिदिन त्रिपुरा की कृपा मिलती है ॥ ६१ ॥ इनके स्मरण से सर्वसौभाग्य फल इस संसार में मिलता है; खासकर जो त्रिपुरा के उपासक हैं, उन्हें तो इन नामों का स्मरण करना ही चाहिए ॥ ६२ ॥ इससे इनकी भक्ति सुदृढ़ होती है और संसार का बन्धन कटता है। संसार की सृष्टि का औषधिरूप अमृत से इनका शीघ्र सिंचन होता है ॥ ६३ ॥ धनेशत्व, सौभाग्य, शिव की विजय, समुद्रशोषण प्रभृति तथा देवताओं की प्रमुखता ॥ ६४ ॥ लोकप्रकाशकत्व, उत्तम देवेशत्व, मृत्यु पर विजय, क्रौञ्चजय तथा योगीशत्व—हे परशुराम! ॥ ६५ ॥ त्रिपुरा की कृपा से ही साधक गण ये सब प्राप्त करते हैं। ये सभी विद्या के स्वामी हैं, इनसे भिन्न भक्त बीजादि के उपासक होते हैं ॥ ६६ ॥ इनमें तीन गुरु प्रमुख हैं, जो लोक में सर्वत्र पूजित हैं। शिव के शरीर से उत्पन्न ये तीन आदि आचार्य हैं—मित्रीश, षष्ठीश और उड्डीश ॥ ६७ ॥ कूटोपासना से इन्होंने महेश का पद प्राप्त किया है। इस तरह वह देवी त्रिपुरा विविध रूप बनाकर ॥ ६८ ॥ संसार में व्याप्त होकर अपनी कला से उन्होंने संसार की रक्षा की है। बंगाल की खाड़ी से लेकर कामगिरि तक वे व्याप्त हैं ॥ ६९ ॥ मेरु पर्वत की चोटी पर वही है, जालन्धर स्थान के रूप से तथा पूर्णगिरि की आत्मा पश्चिम सागर के अन्त तक ये उपस्थित हैं ॥ ७० ॥ इस तरह तीन रूप में संस्थित रहकर भी अनेक स्थानों पर मौजूद है। कांचीपुर में कामाक्षी के रूप में और मलयाचल पर भ्रामरि के रूप में ॥ ७१ ॥ केरल में कुमारी और सौराष्ट्र में अम्बा रूप से, करवीर में महालक्ष्मी और मालव में कालिका रूप में वह है ॥ ७२ ॥ प्रयाग में ललिता देवी, विन्ध्याचल पर विन्ध्यवासिनी, वाराणसी में विशालाक्षी और गया में मंगलवती ॥ ७३ ॥ बंगाल में सुन्दरी देवी, नेपाल में गुह्यकेश्वरी—इन

एतासां दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते। अशक्तो दर्शने नित्यं स्मरेत् प्रातः समाहितः॥ ७५॥
तथाऽप्युपासकः सर्वैरपराधैर्विमुच्यते। एवमन्यानि रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७६॥
कृत्वा भुवि स्थिता देवी जनानुद्धर्तुमिच्छया। इति ते राम सम्प्रोक्तं मोहिन्याः शिवमोहनम्॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे मोहिन्युपाख्यानं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०३४॥

बारह रूपों में भारत देश में यह शिवा व्याप्त हैं॥ ७४॥ इनके दर्शन से सभी पापों से लोग मुक्त हो जाते हैं। जो व्यक्ति दर्शन करने में अशक्त हैं उन्हें समाहित भाव से प्रतिदिन प्रातःकाल स्मरण करना चाहिए॥ ७५॥ तथापि जो इनके उपासक हैं वे सब तरह के अपराधों से मुक्त हो जाते हैं। इस तरह से ये सैकड़ों-सहस्रों रूप॥ ७६॥ बनाकर संसार में लोगों का उद्धार करने की इच्छा से व्याप्त हैं। हे परशुराम! इस तरह मोहिनी का शिवमोहन रूप मैंने तुम्हें सुना दिया॥ ७७॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में मोहिनी-उपाख्यान नामक अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०३४॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

एवं श्रुत्वा जामदग्न्यो माहात्म्यश्रुतिकौतुकी । पप्रच्छाऽत्रिसुतं देवमवधूतकुलेश्वरम् ॥ १ ॥
भगवन्नधुना तस्यास्त्रिपुराया महाद्भुतम् । ललितारूपधारिण्या माहात्म्यं वद विस्तृतम् ॥ २ ॥
कथं वा सा जगद्धात्री प्रार्थिताऽऽविर्बभूव ह । किमाकारा कथं युद्धमासीद्भण्डेन संयुगे ॥ ३ ॥
किम्प्रभावः स दैत्येन्द्रः कस्य पुत्रः कथं सुरान् । अजयत् सर्वमाख्याहि शिष्यायाऽनुरताय मे ॥
न हि शिष्येण सम्पृष्टा गुरवो दीनवत्सलाः । समियन्ति क्लेशमिह त्रिपुरायाः कथारसात् ॥ ५ ॥
त्वद्वक्त्रविकसत्पद्मजातादत्यन्तमोदनात् । नैव जातु वितृप्यामि चिरं जक्षन् द्विरेफवत् ॥ ६ ॥
पृष्ट एवं जामदग्न्याद्दत्तात्रेयो मुनीश्वरः । निशाम्य श्रवणोत्साहं तस्य प्राह प्रमोदितः ॥ ७ ॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि साक्षाच्छ्रीललिताकथाम् । या हि साक्षान्महेशान्यास्त्रिपुरायाः कलात्मिका ॥
त्रिपुरा परमेशानी सर्वकारणकारणम् । सर्वाऽऽश्रया चितिः प्रत्यक्प्रकाशाऽऽनन्दनिर्भरा ॥
शिवः सर्वजगद्धाता संविदानन्दविग्रहः । तस्याः संविदियं शक्तिश्चिच्छक्तिरभिधीयते ॥ १० ॥
या चितिः परमेशस्य क्रियास्फूर्तिः सुखाऽऽत्मता । सा शक्तिः परमेशस्य विमर्शाऽऽख्या महत्तरा ॥
महाकाशात्मिका यस्यां जगदेतद्धि राजते । सा त्रिधा भाति रूपैश्च त्रिपुराख्या प्रकीर्तिता । १२ ॥
समुद्रस्य जलमिव सूर्यस्य किरणा इव । धरण्या मृत्तिकेवेयं शिवस्य शक्तिरीरिता ॥ १३ ॥

✲ विमला ✲

इस तरह भगवती त्रिपुरा की श्रवणकौतुकी महिमा सुनकर परशुराम ने अवधूतकुलेश्वर अत्रिनन्दन दत्तात्रेय से पूछा॥ १॥ हे भगवन्! इस समय उस त्रिपुरा की महाद्भुत ललितारूपधारिणी महिमा विस्तारपूर्वक बतलाये॥ २॥ वह जगद्धात्री प्रार्थना करने पर कैसे प्रकट हुई? उसका स्वरूप कैसा था? भण्ड के साथ उसका युद्ध कैसे हुआ?॥ ३॥ उस दैत्य का क्या प्रभाव था? वह किसका बेटा था? देवताओं को उसने कैसे जीत लिया? मुझ अनुरक्त शिष्य के लिए आप सब बतलायें॥ ४॥ शिष्य के पूछने पर दयालु गुरु त्रिपुरा के कथारस से उसके क्लेश को शान्त करने में कभी कोताही नहीं करते॥ ५॥ आपके मुखकमल से निकले कथारस पीते रहने के बावजूद भौंरे की तरह मेरे मन की तृप्ति नहीं होती है॥ ६॥ परशुराम के इस तरह पूछने पर दत्तात्रेय मुनीश्वर ने प्रमुदित भाव से उनके सुनने का उत्साह देखकर उनसे कहा॥ ७॥ सुनो राम! मैं तुम्हें साक्षात् श्रीललिता की कथा सुनाता हूँ, जो ललिता त्रिपुरा की कला के अंश से साक्षात् महेश्वरी हैं॥ ८॥ भगवती त्रिपुरा सभी कारणों की कारणस्वरूपा हैं। प्रत्यक् प्रकाश के आनन्द पर पूर्ण निर्भर सबका सहारा चितिस्वरूपा हैं॥ ९॥ शिव सम्पूर्ण जगत् के धाता है। ज्ञान का आनन्द ही उनका स्वरूप है। उनकी यह संविद् अर्थात् ज्ञानशक्ति ही चित् शक्ति कहलाती है॥ १०॥ जो चिति परमेश्वर की क्रिया की स्फूर्ति तथा सुखाऽत्मता है। परमेश्वर की विमर्श नामक महत्तरा शक्ति है॥ ११॥ महाकाशात्मिका उस भगवती का यह संसार शोभता है। इसमें यह भगवती तीन रूपों में व्याप्त है। इसी से वह त्रिपुरा कहलाती है॥ १२॥ समुद्र के जल की तरह, सूर्य की किरणों की तरह, धरती की मिट्टी की तरह यह शिव की शक्ति कहलाती है॥ १३॥ उसके बिना कहीं कोई देवता नहीं है, जैसे जल के बिना सागर नहीं और सूर्य के बिना किरणों

न तया विद्यते देवो विना क्वाऽपि कथञ्चन। जलं विनेव जलधिर्विनेवाऽर्को गभस्तिभिः॥ १४॥
ललिता तस्य वै मूर्तिः स्ववैभवभराऽऽत्मिका। चिच्छक्तेः स्थूलतरवद्देहः सा पूर्णरूपिणी॥
अन्याः सर्वाः शिरोबाहुपादवत् स्युर्निरूपिताः। कुमार्याद्याः शक्तयोऽस्या ललिता सर्वतोऽधिका॥
पुरा कुम्भोद्भवमुनिर्लोकान् दुःखपरायणान्। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दृष्ट्वा कारुण्यमागतः॥ १७॥
काञ्चीपुरे महाविष्णुं तोषयामास भूयसा। तपसा सोऽपि सन्तुष्टस्तस्मै स वरदोऽभवत्॥ १८॥
जगदुद्धरणे हेतुं पृष्ठः स प्राह तं मुनिम्। त्रिपुरायाः स्थूलमूर्तेर्माहात्म्यमतिचित्रितम्॥ १९॥
ललितायाा महादेव्या भण्डासुरवधादिकम्। तत्ते ब्रवीमि विततं शृणु भार्गव संयतः॥ २०॥
संक्षिप्योक्त्वा महाविष्णुर्विस्तरं श्रोतुमिच्छते। स्वांऽशं मुनिं हयग्रीवं नियोज्य प्रययौ हरिः॥
अथ स्वाश्रममागत्य पूजयित्वा हयाऽऽननम्। मुनिं पप्रच्छ ललिताविभवं परमाद्भुतम्॥ २२॥
अश्वानन महाप्राज्ञ कथं सा त्रिपुरा परा। आविर्भूता भण्डदैत्यं नाशयामास संयुगे॥ २३॥
एतदीहे श्रोतुमहं कृपया वक्तुमर्हसि। इति पृष्टो हयग्रीवो ललिताभक्तशेखरः॥ २४॥
स्मृत्वा श्रीललितादेव्या माहात्म्यं हर्षनिर्भरः। आनन्दाऽश्रुपरीताक्षः पुलकाङ्कुरुहो मुनिः॥
हर्षगद्गदया वाचा प्रवक्तुमुपचक्रमे। धन्योऽसि कुम्भसम्भूते जन्मान्तरशताऽर्जितम्॥ २६॥
फलितं सुकृतं तेऽद्य धीर्जाता तव चेदृशी। नाऽल्पपुण्यफलं ह्येतच्छ्रीकथाश्रवणार्हनम्॥ २७॥
ललितामाहात्म्यसुधां यः पातुमभिवाञ्छति। तं जानीयान्मृत्युभयमुक्तं पुरुषसत्तमम्॥ २८॥
एतत्सारं मर्त्यलोके ललितायाः कथाश्रुतिः। भक्तिसञ्जननद्वारा यया तत्पदमाप्नुयात्॥ २९॥
न यावत् संश्रुतं ह्येतल्ललिताचरितं नृभिः। तावत्सर्वं कृतं व्यर्थं भस्मनि प्रहुतं यथा॥ ३०॥

का कोई अस्तित्व नहीं होता॥ १४॥ अपने वैभव के स्वरूप ललिता उसी परमात्मा की मूर्त्ति है। चित् शक्ति का स्थूलतर देह है। वह पूर्ण स्वरूपिणी है॥ १५॥ कुमारी आदि अन्य शक्तियाँ सिर, पैर और बाँहों की तरह निरूपित हुई हैं। इनमें सर्वाधिक ललिता ही हैं॥ १६॥ पहले दुःखपरायण लोगों को अपनी तीर्थयात्रा के क्रम में देखकर कुम्भज मुनि को बड़ी दया आ गयी॥ १७॥ उन्होंने इसके लिए काञ्चीपुर में कठोर तपस्या कर महाविष्णु को सन्तुष्ट कर वरदान प्राप्त कर लिया॥ १८॥ संसार के उद्धार हेतु मुनि के पूछने पर उन्होंने कहा—त्रिपुरा की स्थूल मूर्ति की महिमा बड़ी विचित्र है। १९॥ हे परशुराम! संयतभाव से सुनो। ललिता देवी के द्वारा भण्डासुरादि के वध का आख्यान सुनाता हूँ॥ २०॥ संक्षेप में उनसे सुनने के बाद जब कुम्भज ने उसे विस्तार से सुनना चाहा, तब भगवान् विष्णु ने अपने अंश से उत्पन्न हयग्रीव को विस्तार से सुनाने को कहकर स्वयं वहाँ से चलते बने॥ २१॥ तब अपने आश्रम में आकर मुनि हयग्रीव की पूजा कर ललिता के विभव की अद्भुत कथा सुनाने का आग्रह किया॥ २२॥ हे बुद्धिमान् हयग्रीव! कृपया बतलाये, कैसे त्रिपुरा देवी ने प्रकट होकर भण्ड दैत्य का विनाश किया॥ २३॥ यही मैं सुनना चाहता हूँ, कृपया आप मुझे सुनायें। ऐसा पूछने पर ललिता देवी के भक्तशेखर॥ २४॥ ललितादेवी की महिमा का स्मरण कर परम प्रसन्न हुए। आँखों से खुशी के आँसू छलक पड़ें तथा खुशी के मारे उनके रोंगटे खड़े हो गये॥ २५॥ हर्षगद्गद वाणी में उन्होंने कहना शुरू किया—हे कुम्भज! तुम धन्य हो। सैकड़ों जन्म-जन्मान्तर के॥ २६॥ तुम्हारा पुण्यफल जगा है, जिससे तुम्हारी बुद्धि ऐसी हुई है। अल्पपुण्य फलवाले को श्रीकथा में ऐसी अभिरुचि नहीं होती है॥ २७॥ हे पुरुषसत्तम! ललिता के कथाश्रवण में उसकी महिमा-सुधा जो पीना चाहता है, उसे मृत्यु का डर नहीं होता है॥ २८॥ इस कथा का सार तथा मर्त्यलोक में ललिता की कथाश्रुति अभिभावना से जो सुनता है, उसे ललिता का पद प्राप्त होता है॥ २९॥ मनुष्य जब तक ललिता का चरित नहीं सुन

त्रिपुरोपासनायुक्तैः श्रोतव्यं सर्वथा त्विदम्। अशृण्वन्नाप्नुयात् किञ्चिदुपासनफलं यतः ॥ ३१ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं देवतापरैः। शृणुयाद्वाचयेद्वाऽपि पुण्यव्रतदिनाऽऽदिषु ॥ ३२ ॥
देवताप्रीतिमाप्नोति त्रिपुरा परमेश्वरी। आसीत् पुरा भण्ड इति दानवोऽतिमहाबली ॥ ३३ ॥
आराध्य स शिवं देवं वरं लेभेऽतिदुर्लभम्। अथाऽभयं प्राप्य दैत्यः सर्वेभ्योऽपि जगत्त्रयम् ॥ ३४ ॥
जित्वा शशास बलवान् यथा विष्णुर्जगत्पतिः। पराजितास्तेन युद्धे इन्द्राद्या विबुधास्तदा ॥ ३५ ॥
हृतैश्वर्या दीनतरा विचेरुर्भुवि मर्त्यवत्। हविर्भागानप्सरसो नन्दनश्च भयानकम् ॥ ३६ ॥
कल्पवृक्षश्च बुभुजुर्दैत्या भण्डसमाश्रयाः। प्रेक्ष्येन्द्राणीं भण्डदैत्यस्तदा श्रीरिव रूपिणीम् ॥ ३७ ॥
साम्नाऽभिवाञ्छताहर्तुं यावत्तावच्छची स्वयम्। पित्रा पुलोम्ना सहिता ययौ दैत्यैरलक्षिता ॥
कैलासपर्वते देवीं गौरीमाश्रित्य चाऽवसत्। एवमिन्द्रं कुबेरश्च वरुणं वायुमेव च ॥ ३९ ॥
अग्निं यमं सोममपि जित्वा दैत्यैरशासत। स्वर्गे स्थितः स्वयं भूमौ विशुक्रं स न्यवेशयत् ॥ ४० ॥
पातालेषु विषङ्गश्च त्रिलोकीमनुशासत। बद्ध्वा शक्रादिदिक्पालांश्चक्रे भारस्य वाहकान् ॥
अथ कालेन तद्दृष्ट्वा गुरुरौशनसः कविः। मोचयामास तान् देवानेवंदेवानबाधत ॥ ४२ ॥
बोधितोऽसुरसङ्घैः स कदाचिद्भण्डदानवः। दैत्यानां शोणितपुरं नाशितं प्राक्सुरोत्तमैः ॥ ४३ ॥
मयमाहूय शिल्पेशमाज्ञापयत तद्विधौ। अथाऽऽज्ञप्तो मयश्चक्रे शोणिताख्यं पुरं तदा ॥ ४४ ॥
स्वर्गादप्यधिकं सर्वशोभनं सुमनोहरम्। आलोक्य भण्डदैत्येशः स्वर्गं सर्वं व्यनाशयत् ॥ ४५ ॥

लेता तब तक उसके सारे धर्मानुष्ठान सब-के-सब होमाहुति की तरह जलकर राख हो जाते हैं॥ ३० ॥ त्रिपुरा की उपासना के साथ ही सर्वथा इससे सुनना चाहिए। इस कथा को बिना सुने उपासना का थोड़ा ही फल मिलता है॥ ३१ ॥ इसलिए प्रयासपूर्वक इस कथा को सुनना चाहिए। खाशकर पुण्य व्रतादि दिन में इसका वाचन या श्रवण करना चाहिए॥ ३२॥ देवताओं की प्रीति एवं देवी त्रिपुरा की प्रसन्नता उसे मिलती है। पहले भण्ड नामक एक महाबली दानव था॥ ३३ ॥ उसने शिव की आराधना कर दुर्लभ वर प्राप्त कर लिया। शिव से अभयदान पाकर वह दैत्य त्रिलोक में सर्वोपरि हुआ॥ ३४॥ इन्द्रादि देवताओं को पराजित कर वह बलवान् सबको जीतकर विष्णु की तरह सब पर शासन करने लगा॥ ३५॥ देवगण ऐश्वर्य-हीन होकर दीनतर स्थिति में आकर सामान्य मानव की तरह धरती पर विचरण करते थे। वह भयंकर दैत्य हविर्भाग और अप्सराओं का उपभोग कर आनन्दित था॥ ३६॥ भण्ड के आश्रित दैत्य कल्पतरु का उपभोग करते थे। एक दिन भण्ड ने लक्ष्मी की तरह सुन्दर इन्द्राणी को देखा, तब॥ ३७॥ उनका खुशी के साथ अपहरण करना चाहा। इसी बीच शची अपने पिता पुलोमा के साथ उसकी आँखों से ओझल हो गई॥ ३८॥ कैलास पर्वत पर वह गौरी के आश्रय में बस गई। इसी तरह इन्द्र, कुबेर, वरुण और वायु॥ ३९॥ अग्नि, यम और चन्द्र को भी जीतकर दैत्यों ने शासन करना शुरू कर दिया। स्वयं स्वर्ग में रहकर उसने धरती पर विशुक्र को निवास कराया॥ ४०॥ पाताल में विषङ्ग को बसाया, फिर तीनों लोकों में उसी तरह शासन करने लगा। इन्द्रादि दिक्पालों को बाँधकर भार ढोने का काम लेने लगा॥ ४१ ॥ कुछ समय बीत जाने के बाद बुद्धिमान् दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने देवताओं को बन्धन-मुक्त करवा दिया॥ ४२॥ कदाचित् उस भण्ड के दैत्यों ने प्रबोधित किया कि दैत्यों का नगर शोणितपुर को पहले देवताओं ने नष्ट कर दिया था॥ ४३॥ शिल्पेश मय दानव को बुलाकर उसी तरह नगर बनाने का आदेश दिया। आदेश पाकर मय ने उसी तरह शोणित नामक नगर बसा दिया॥ ४४॥ स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर, मनोहर और अति आकर्षक नगर बना दिया। इस सुन्दर नगर को देखकर भण्ड ने स्वर्ग को ढहा दिया॥ ४५॥ सुम्र्मनन्दन भी उस सुन्दर नगर में लाये गये। उसने शोणनगर को स्वर्ग

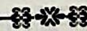
सुधर्मानन्दनश्चाऽपि निन्ये तस्मिन् पुरोत्तमे। स्वर्गं चक्रे शोणपुरं सर्वसम्पत्समृद्धिमत्॥ ४६॥
तत्र दैत्येश्वरः स्थित्वा स्वयं राज्यमशासत। दिक्पतीनपि दैतेयांश्चक्रे भण्डमहासुरः॥ ४७॥
सृष्ट्वा तत्तत्समान्दैत्यांस्तेजोवीर्यपराक्रमैः। एवं सर्वं समाक्रान्तं भण्डदैत्येश्वरेण वै॥ ४८॥
तदाऽतिदीप्ततेजस्वी भण्डो लोकानशासत। शोणिताऽऽख्यपुरस्याऽपि शून्यकं नाम कल्पयत्॥
एवं तपोवीर्ययुतो भण्डो दैत्यपुरेश्वरः। ब्रह्माण्डं तद्विभिश्चैव ब्रह्माण्डानि समाक्रमत्॥ ५०॥
ब्रह्माण्डानां शतं पञ्च भण्डश्चक्रे स्वयं वशे। पञ्चोत्तरशताऽण्डानामधिपः समजायत॥ ५१॥
सर्वत्राण्डेषु तस्याऽऽज्ञा जाताऽप्रतिहता तदा। एवं देवान्निराकृत्य समस्ताण्डान्यशासत॥ ५२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये ललितामाहात्म्ये भण्ड-
प्रतापो नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४०६०॥



की तरह चमका दिया, सारी सम्पत्ति और समृद्धि से भर दिया॥ ४६॥ वहाँ भण्ड स्वयं रहकर राज्य चलाता था, दिक्पतियों के पद पर भी उसने दैत्यों को नियुक्त कर दिया था॥ ४७॥ देवताओं के पदाधिकारियों के समान तेज, वीर्य और पराक्रम से युक्त दैत्यों की सृष्टि कर सब पद पर सबों को रखकर भण्ड दैत्येश्वर स्वयं शासन करता था॥ ४८॥ उसके बाद अतिदीप्त तेजस्वी भण्ड ने सभी लोकों का शासन किया। फिर उसने शोणितपुर का नाम बदल कर शून्य रख दिया॥ ४९॥ इस तरह तप और वीर्य से युक्त भण्ड उस नगर का स्वामी बना और वहीं से देव-निर्मित ब्रह्माण्डों की तरह अपर ब्रह्माण्ड का निर्माण किया॥ ५०॥ पाँच सौ ब्रह्माण्डों को स्वयं भण्ड ने वशवर्ती बनाया और उन पाँच सौ ब्रह्माण्डों का स्वयं अधिपति बन गया॥ ५१॥ सभी ब्रह्माण्डों में बेरोक-टोक उसकी आज्ञा का पालन होता था। इस तरह देवताओं को पराजित कर समस्त ब्रह्माण्डों पर वह शासन करता था॥ ५२॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में भण्ड-
प्रताप नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०६०॥



अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः



एवं श्रुत्वा हयग्रीवकथितं कुम्भसम्भवः । विस्मितस्तं पुनरपि पर्यपृच्छत भार्गव ॥ १ ॥
हयग्रीव दयासिन्धो प्रोक्तमेतद्विचित्रितम् । एवंवीर्यो भण्डदैत्यः कस्मात्सम्भूतिमागतः ॥ २ ॥
सामर्थ्यं वा कथञ्चैव तपसा वा स्वभावतः । कथं देवान् समजयत् ब्रह्मादीन्नाजयत् कुतः ॥ ३ ॥
एतन्मे ब्रूहि तत्त्वेन श्रोतुमुत्कण्ठितं मनः । एवं पृष्टः कुम्भजेन प्राह तुष्टो हयाननः ॥ ४ ॥
शृणु कुम्भोद्भव कथां प्राचीनां भण्डसंश्रयाम् । यदा शिवस्य क्रोधेन कामो भस्मत्वमागतः ॥ ५ ॥
तदा तद्भसितं लेखगणेशो बालभावतः । पुञ्जीकृत्य तेन नराकृतिश्चक्रेऽतिपेशलाम् ॥ ६ ॥
तां भस्मप्रकृतिं दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गशोभनाम् । प्रदर्शयामास गौर्यै गणेशो मातृनन्दनः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा साऽपि शिवं प्राह गणेशप्रीतिकाम्यया । जीवयैनं महाभाग गणेशप्रियपूरुषम् ॥ ८ ॥
क्रीडत्वनेन सहितो गणेशो मे प्रियः सुतः । पार्वत्या प्रहितः शम्भुर्भवितव्यस्य गौरवात् ॥ ९ ॥
दृष्ट्याऽमृतांशुवर्षिण्या निरीक्ष्य तमजीवयत् । स जीवितोऽतिसौन्दर्यवपुः कामांऽशसम्भवम् ॥
हरक्रोधसमायोगादसुरस्तामसोऽभवत् । गणेशस्य प्रियसखा तेनैव सह क्रीडति ॥ ११ ॥
तदन्तरे कदाचिद्वै दिक्पालास्तत्र संययुः । तान् दृष्ट्वाऽपृच्छदसुरो गणेशं क इमे इति ॥ १२ ॥
महर्द्धिमन्तः केनेमे प्राप्ता ईदृग्विधां श्रियम् । एवं पृष्टो गजमुखः प्राह तं प्रियमात्मनः ॥ १३ ॥

✻ विमला ✻

हे परशुराम! इस तरह हयग्रीव-कथित कथा सुनकर कुम्भज ऋषि ने विस्मित होकर उनसे ही पुनः पूछा ॥ १ ॥ हे हयग्रीव! हे दयासिन्धु! आपने तो भण्ड दैत्य की विचित्र कथा कह सुनायी, पर यह इतना वीर्यसम्पन्न दैत्य कहाँ से उत्पन्न हुआ? ॥ २ ॥ इतना सामर्थ्य इसमें कहाँ से आया? तपस्या से अथवा स्वाभाविक? देवताओं को इसने कैसे जीत लिया? ब्रह्मादि देवताओं को क्यों न जीता? ॥ ३ ॥ यह सब मुझे तत्त्व के साथ बतलायें, मेरा मन इसे सुनने के लिए उत्कण्ठित है। इस तरह कुम्भज के पूछने पर सन्तुष्ट होकर हयग्रीव ने कहा ॥ ४ ॥ हे कुम्भज! भण्ड की यह कथा अति प्राचीन है, सुनो। जब शिव के क्रोध से काम जलकर राख हो गया ॥ ५ ॥ तब उसकी राख उठाकर लड़कपन के कारण श्रीगणेशजी ने उसे इकट्ठा कर लिया और उस इकट्ठी राख से मनुष्य की सुन्दर आकृति बना डाली ॥ ६ ॥ उस भस्म के बने नर स्वरूप को देखकर जो सुन्दर और सर्वांगशोभन था, माँ के दुलारे गणेश ने माता गौरी को दिखलाया ॥ ७ ॥ गणेश की प्रसन्नता की इच्छा से माता गौरी ने पुतले को देखकर शिव से कहा—हे महाभाग! गणेश-प्रिय इस पुतले को आप जीवित कर दें ॥ ८ ॥ मेरा प्यारा बेटा गणेश इसके साथ खेलेगा। पार्वती से प्रेरित शिव भवितव्यता के गौरव से ॥ ९ ॥ अमृत बरसाने वाली अपनी आँखों से उसे देखकर जीवित कर दिया। काम के अंश से उत्पन्न वह जीवित हो गया और उसका शरीर बड़ा ही सुन्दर निकला ॥ १० ॥ शिव के क्रोध के समायोग से वह असुर तामस स्वभाव का हो गया और गणेश का प्रिय सखा बनकर उनके साथ खेलने लगा ॥ ११ ॥ इसी बीच वहाँ एक बार दिक्पाल पहुँचे, उन्हें देखकर उस असुर ने गणेश से पूछा—ये कौन है? ॥ १२ ॥ इतनी ऋद्धि वाले

सखे शृणु ब्रवीम्येते दिक्पाला लोकपूजिताः। तपसा तोषयित्वेशं महादेवं दिगीश्वराः ॥ १४॥
इमां विभूतिं सम्प्राप्तास्तपसा तोषिते शिवे। दुर्लभं न हि किञ्चित् स्याद्यथा प्राप्ते सुरद्रुमे ॥ १५॥
श्रुत्वा विघ्नेश्वरवचस्तपस्येव मनो दधे । अनुज्ञातो गणेशेन स्वर्धुनीतीरसंश्रयः ॥ १६॥
तपश्चक्रेऽतिविपुलं दशवर्षसहस्रकम् । महादेवं समुद्दिश्य फलाहारो यताऽऽत्मवान् ॥ १७॥
अथ प्रीतो महादेवो वरदस्तस्य चाऽग्रतः । ब्रूहि वत्स तेऽभिमतं प्रीतो दातुं समागतः ॥ १८॥
एवं महादेववचो निशम्य सोऽसुरोऽवदत् । प्रणम्य देवमीशानमयाचत कृताञ्जलिः ॥ १९॥
देवाऽहं सर्वजगतां शास्ता सर्वजयी तथा। सृजामि दैत्यान् देवांश्च दैत्यान् लोकाननेकधा ॥ २०॥
शस्त्राण्यस्त्राणि शास्त्राणि विद्या मायास्तथैव च। वशे भवन्तु मे देवा ब्रह्माद्या अपि नित्यशः ॥
अभयं सर्वतो मेऽस्तु मृत्युर्मे माऽस्तु कुत्रचित्। इति श्रुत्वा तस्य वचः प्राह देवः पिनाकभृत् ॥
नाऽर्हस्त्वमेवम्भूतानां वराणामिति शङ्करः । निगद्याऽन्तर्हितिमगादथ दैत्योऽपि दुःखितः ॥
पुनस्तपश्चकारोग्रं दश अयुतवत्सरान्। धूमाऽऽहारोऽम्बरे संस्थः शीताऽऽतपसहस्तदा ॥ २४॥
ततः पुनर्महादेवः सन्निधिं प्राप्य चाऽवदत् । तपसा घोरसङ्काशान्निवर्तस्व महामते ॥ २५॥
त्रिलोकीशासको भूयाः सुराऽसुरजयी तथा। सृज मर्त्याऽसुरसुरान् लोकान् शास्त्रादिकान्यपि ॥
देवमर्त्याऽसुरेभ्यस्ते भूयादभयमेव च । न ते वशे भविष्यन्ति ब्रह्माद्याश्चाऽमृतिर्न च ॥ २७॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै शिवोऽन्तर्धानमागमत्। शिवेऽन्तर्धानमायाते दैत्यः पुनरचिन्तयत् ॥ २८॥

ये ऐसी शोभा कहाँ से प्राप्त किये? इस तरह पूछने पर गणेशजी ने अपने प्रिय मित्र से कहा ॥ १३॥ हे मित्र! सुनो, मैं बताता हूँ। ये लोकपूजित दिक्पाल हैं। अपनी तपस्या से महादेव को सन्तुष्ट कर दिशाओं का ईश्वरत्व प्राप्त किये हैं ॥ १४॥ ये सारी विभूतियाँ इन्होंने अपने तप से शिव को सन्तुष्ट कर प्राप्त की हैं, ठीक उसी तरह जैसे कल्पवृक्ष के नीचे बैठ जाने पर किसी के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ॥ १५॥ गणेशजी की बातें सुनकर उसने तपस्या में ही मन लगाया। गणेशजी की आज्ञा पाकर वह गंगा नदी के किनारे चला गया ॥ १६॥ वहाँ उसने महादेव के उद्देश्य से आत्मसंयमी बनकर, फलाहार कर दस हजार वर्ष तक अतिकठोर तप किया ॥ १७॥ इससे प्रसन्न होकर महादेव ने उसके आगे प्रकट होकर कहा—वत्स! बोलो, मैं तुम्हारा अभिलषित देने आया हूँ ॥ १८॥ इस तरह महादेव की बातें सुनकर उस असुर ने उन्हें प्रणाम कर कहा, हाथ जोड़कर उनसे याचना की ॥ १९॥ हे प्रभु! मैं देव हूँ, सम्पूर्ण जगत् का शास्ता और सर्वजयी बनूँ, देवताओं और दानवों की सृष्टि कर सकूँ, दैत्यों के लिए अनेक लोकों की रचना कर सकूँ ॥ २०॥ शस्त्र, अस्त्र, शास्त्र, सारी विद्याएँ और उसी तरह माया भी मेरे वश हो; ब्रह्मा प्रभृति देवता भी मेरे वशवर्ती हों ॥ २१॥ मैं सर्वत्र अभय रहूँ, कहीं भी मेरी मौत न हो। उनकी यह बात सुनकर पिनाकी महादेव ने कहा ॥ २२॥ ऐसे वरदान पाने योग्य तुम नहीं हो। इतना कहकर भगवान् शिव तिरोहित हो गये और दैत्य भी दुःखी हुआ ॥ २३॥ फिर उसने एक लाख वर्षों तक धुँआ पीकर, शीत और धूप झेलते हुये, निराधार आकाश में टिककर उग्र तप किया ॥ २४॥ उसके तप से पुनः प्रभावित होकर उसके आगे महादेव प्रकट हुये और कहा—हे महामते! इतने कठोर तप से रुको ॥ २५॥ तीनों लोकों का शासक बनो, सुर-असुरजयी बनो; मर्त्यलोक, असुरलोक और देवलोकों की तथा शास्त्रादि की भी रचना करो ॥ २६॥ देवता, मनुष्य और असुरों से तुम्हें कोई भय न होगा; केवल ब्रह्मादि प्रमुख देवगण और मौत तुम्हारे वश में नहीं होगी ॥ २७॥ इस तरह उसे वरदान देकर शिव तिरोहित हो गये। शिव के अन्तर्धान के बाद वह दैत्य पुनः सोचने लगा ॥ २८॥

किं मे वरैरभिमतैरमरत्वमृते भवेत् । पुनस्तपश्चराम्येव यावन्मे वरदः शिवः ॥ २९ ॥
इति निश्चित्य भूयोऽपि तप उग्रं चचार सः । ऊद्र्ध्वपाद अधो मूर्धा निरुच्छ्वासो निरीहकः ॥ ३० ॥
तरोः स्कन्धे लम्बमानः प्रज्वाल्याऽग्निमधो भुवि । तज्ज्वालाप्लुष्टसर्वाङ्गः सन्नियम्येन्द्रियाण्यलम् ॥
विंशतिप्रयुतं तस्य वत्सराणां तपस्यतः । ययौ तदा तस्य मुनेरोमकूपेभ्य उद्गमत् ॥ ३२ ॥
धूमस्तेन च त्रैलोक्यं व्याप्तमासीत् समन्ततः । इन्द्राऽऽसनं प्रचलितं देवा मोहं समाययुः ॥ ३३ ॥
सन्तापः सर्वदेवानामभवद्धृदि साध्वसम् । भूश्चकम्पे समुद्राश्च वेलामत्यागमंस्तदा ॥ ३४ ॥
दिशः प्रजज्वलुर्नद्यः कालुष्यं सन्दधुस्ततः । देवा इन्द्रमुखास्त्रस्ताः प्रार्थयामासुरात्मजम् ॥ ३५ ॥
विधिर्विचार्य हरिणा ययौ देवं त्रिलोचनम् । मन्त्रयित्वा चिरं तत्र शिवं प्राह विधिस्तदा ॥ ३६ ॥
महादेवाऽसुराय त्वं वरं दातुं समर्हसि । अमरत्वमृते तस्य देहि सर्वं समीहितम् ॥ ३७ ॥
नोचेद्भस्वत्वमायान्ति लोकास्तस्य तपोऽग्निना । एवं विधिमुखैः शम्भुः प्रेरितस्तत्र संययौ ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा दैत्यं तपस्यन्तं क्षामाऽङ्गं धमनीततम् । एकाग्रचित्तं तपसा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३९ ॥
तपसा ते दैत्य तुष्टः प्राप्तोऽहं वरदः शिवः । ब्रूहि यत्ते स्वाऽभिमतं प्राप्स्यस्यखिलमीहितम् ॥
इतीरितः शिवेनाऽथ दृष्ट्वा देवं समागतम् । प्रणम्य दण्डवत् स्तुत्वा वाक्यं प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ४१ ॥
देव पूर्वं त्वया दत्तं सर्वं ह्यमरतां विना । तन्मे भूयाद्विधात्रादीनपि जेष्यामि संयुगे ॥ ४२ ॥
ब्रह्माण्डभेदने शक्तिरपि चाऽस्तु महेश्वर । श्रुत्वैवमासुरं वाक्यमाचष्टे तं महेश्वरः ॥ ४३ ॥
शृणु मे भाषितं दैत्य देवाऽसुरनरैर्न ते । मृत्युर्भवेद्योनिजातान्मानसान्न च कुत्रचित् ॥ ४४ ॥

यह मेरा अभिमत वर क्या हुआ? यदि मुझे अमरता नहीं मिली, जब तक शिव मेरे मनोऽनुकूल वर नहीं देंगे तब तक फिर तपस्या ही करता हूँ॥ २९॥ मन में इतना निश्चय कर फिर वह उग्र तप करने लगा। पैर ऊपर, सिर नीचे श्वासावरुद्ध और चेष्टारहित होकर॥ ३०॥ पेड़ की डालों में लटक कर, धरती पर आग जलाकर उसकी ज्वाला में सर्वांग झुलसाते हुये इन्द्रियों को नियन्त्रित कर॥ ३१॥ वह दो करोड़ वर्षों तक इस तरह तपस्या करता रहा। तब उस मुनि के रोमकूप से निकले॥ ३२॥ धुँए से तीनों लोक भर गया। इन्द्रासन हिलने लगा, देवगण मोहित हो गये॥ ३३॥ सभी देवताओं के हृदय में सन्ताप फैल गया, धरती काँपने लगी, समुद्र असमय उफनने लगा॥ ३४॥ दिशाएँ जलने लगीं, नदियाँ कलुषित हो गयीं, इन्द्रादि प्रमुख देवगणों ने सन्त्रस्त होकर ब्रह्मा की प्रार्थना की॥ ३५॥ विधाता विष्णु के साथ विचार कर भगवान् शिव के पास पहुँचे। वहाँ काफी मन्त्रणा के बाद विधाता ने शिव से कहा॥ ३६॥ हे महादेव! इस असुर को अब आप अमरता और मृत्युंजय का अभिलषित वरदान दे॥ ३७॥ नहीं तो उसके तप रूपी आग से सारा संसार जलकर राख हो जायेगा। इस तरह विधाता-प्रमुख देवताओं से प्रेरित होकर भगवान् शिव उसके पास गये॥ ३८॥ तपस्या करते हुये दैत्य का शरीर तो गल गया था, केवल धमनी मात्र शरीर था। एकाग्रचित्त तपस्या में जलती आग की तरह उसे देखकर॥ ३९॥ शिव ने कहा—हे दैत्य! मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हूँ, तुम्हारे पास आया हूँ, अब तुम अपना अभिमत व्यक्त करो, तुम्हारी मनोवाञ्छित सारी वस्तुएँ तुम्हें मिलेगीं॥ ४०॥ ऐसा कहते हुये अपने सामने उपस्थित शिव को देखकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर उनकी स्तुति कर हाथ जोड़कर कहा॥ ४१॥ हे देव! पहले तो आपने मुझे सब कुछ दिया ही था, केवल अमरता नहीं दी थी; फिर मुझे देना चाहते हैं तो दीजिए कि ब्रह्मा-प्रमुख देवों को मैं युद्ध में जीत लूँगा॥ ४२॥ हे महेश्वर! ब्रह्माण्ड-भेदन की शक्ति मुझ में हो। असुर की यह बात सुनकर महादेव ने॥ ४३॥ कहा—हे दैत्य!

तरुभ्यः पर्वतेभ्यश्च मृगाः सर्पाश्च पक्षिणः। कृमिकीटपतङ्गाद्या यक्षविद्याधकिन्नराः॥ ४५॥
पिशाचाः किम्पुरुषाश्च राक्षसाश्च त्रिमूर्तयः। शस्त्राणि च तथाऽस्त्राणि प्रसिद्धानीह यानि वै॥
नास्ति ते मृत्युरेतेभ्यः सर्वथाऽसुर संशृणु। अन्यच्च सर्वं ते प्रोक्तं भविष्यति न संशयः॥ ४७॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै शिवोऽन्तर्धानमाययौ। अथ दैत्यो विमृशत न मे मृत्युः सुरादिभिः॥ ४८॥
यदि तर्हि कुतो मृत्युर्जातोऽहं सर्वथाऽमरः। इति मत्वा कृतार्थं स्वं ययौ कैलासपर्वतम्॥ ४९॥
गणेशेन स्वसुहृदा मिलित्वा प्राह चाऽखिलम्। अथाऽद्रिजां नमस्कृत्य गणेशेन युतोऽसुरः॥
समाचष्टे वरप्राप्तिं श्रुत्वा साऽप्यभिनन्दत। प्राहाऽसुरं गिरिसुता वत्स प्राप्तो वरो महान्॥ ५१॥
देवेषु नाऽपराद्धव्यमन्यथा भीतिमाप्स्यसि। देवद्विजप्रजाद्रोहान्नष्टा दैत्याश्च दानवाः॥ ५२॥
दैत्यदानवसंसर्गं परित्यज सुदूरतः। सङ्गाद्बुद्धेः प्रणाशः स्याद्याहि पाताललोककम्॥ ५३॥
स्वर्गादपि विशिष्टं तं धर्मतः परिपालय। तथेत्युक्त्वा प्रणम्याऽथ लोकं पातालमन्वगात्॥ ५४॥
तत्र दैत्यैर्दानवैश्च पातालान्यन्वशासत। अथ तैर्दानवाऽधीशैर्भूयो भूयः प्रबोधितः॥ ५५॥
त्रिलोकीं जेतुमारब्धो दैत्यसेनासमावृतः। तत्रोत्तरकुरुष्वासीद्युद्धं सुमहदद्भुतम्॥ ५६॥
तस्य युद्धसमारम्भं दृष्ट्वा लोकपितामहः। निवारयत् सामवाक्यैर्न ते दैत्येश साम्प्रतम्॥ ५७॥
योद्धुं ते करदा देवा भविष्यन्तीह सर्वथा। पातालानां भूतलस्य त्वं राजा भव सर्वतः॥ ५८॥
सन्तु स्वर्गादिषु सुरा विरोधो माऽस्तु तेऽमरैः। श्रुत्वेत्थं ब्रह्मवचनं मन्त्रयित्वा सुरैस्तदा॥ ५९॥
इन्द्राणीं नन्दनं रम्भामुखाः करमयाचत। श्रुत्वाऽयुक्तं वचस्तस्य दैत्यं क्रुद्धोऽब्रवीद्विधिः॥ ६०॥

मेरी बात सुनो! देवता, दानव और मानव से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी और न योनिज मानसों से भी कहीं हार होगी॥ ४४॥ पेड़ों, पर्वतों, पशुओं, साँपों से, पक्षियों से, कीड़े-मकोड़ों से, कीट-पतंगों से, यक्ष, विद्याधर, किन्नरों से॥ ४५॥ पिशाच, किम्पुरुष, राक्षस तथा त्रिमूर्ति, शस्त्र, अस्त्र जो भी प्रसिद्ध यहाँ हैं उनसे॥ ४६॥ तुम्हारी सर्वथा मौत नहीं होगी। हे असुर! सुनो, अन्य सारी बातें जो मैंने कही हैं इसमें संशय मत करो॥ ४७॥ इतना वर देकर भगवान् शिव उसकी आँखों से ओझल हो गये। अब उस दैत्य ने यह सोचकर कि मेरी मौत देवादि गणों से नहीं होगी॥ ४८॥ तब फिर मेरा जन्म और मरण कैसा? मैं तो सर्वथा अमर हूँ। इस तरह अपने को कृतार्थ मानकर वह कैलास चला गया॥ ४९॥ अपने मित्र गणेश से मिलकर सब कुछ उन्हें बतला दिया। उसके बाद गणेश से युक्त उस असुर ने गौरी को प्रणाम कर॥ ५०॥ उसके वरप्राप्ति की बात कही। सुनकर गौरी भी प्रसन्न हुई और कहा—वत्स! तुमने तो महान् वर प्राप्त कर लिया है॥ ५१॥ लेकिन याद रखो, देवताओं के साथ अपराध मत करना, अन्यथा भय पाओगे; देवता, ब्राह्मण, प्रजा—इनके द्रोह से दैत्य-दानव विनष्ट हुये हैं॥ ५२॥ दैत्य-दानव के संसर्ग से परहेज रखो, उसकी संगति से बुद्धि नष्ट होगी, पाताललोक जाओ॥ ५३॥ यह स्वर्ग से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसे धर्म से प्रतिपालित करो। वैसा ही होगा, ऐसा कहकर पार्वती को प्रणाम कर वह पाताललोक चला गया॥ ५४॥ वहाँ दैत्य-दानवों से पाताल अनुशासित था। वहाँ यह दानवों का अधिपति होकर उनसे बार-बार प्रेरित हुआ॥ ५५॥ दैत्यसेना को साथ लेकर त्रिलोक-विजय प्रारम्भ किया। वहाँ उत्तरकुरु के साथ भयंकर युद्ध हुआ॥ ५६॥ उसके युद्ध को देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने उसे युद्ध रोकने के लिए समझाया और कहा—हे दैत्येश! इस समय यह युद्ध उचित नहीं है॥ ५७॥ देवगण तुम्हें कर देंगे, तुम पाताल और धरती के राजा बनो॥ ५८॥ देवगण को स्वर्ग में रहने दो, उनके साथ विरोध मत करो। ब्रह्मा की यह बात सुनकर देवताओं के साथ मन्त्रणा कर॥ ५९॥

भण्डस्त्वमसि दुर्बुद्ध इत्युक्त्वाऽन्तरधीयत। अथ देवैः समेतास्ते भण्डाद्या दैत्यदानवाः ॥ ६१ ॥
युयुधुर्दारुणतरं कुरुष्वत्यन्तदुर्मदाः। जित्वा बबन्धुरिन्द्रादीन् योजयन् भारवाहने ॥ ६२ ॥
एवं जित्वा त्रिलोकीं स भण्डदैत्योऽतिदर्पितः। स्वपार्श्वाभ्यां समसृजद्विषङ्गञ्च विशुक्रकम् ॥
पुत्रपौत्रशतैर्युक्तो महैश्वर्यविराजितः। चक्रेऽण्डानां शतं पञ्च स्ववशे भण्डदानवः ॥ ६४ ॥
वीर्योद्रिक्तं भण्डदैत्यं दृष्ट्वा तं तारकाऽसुरः। सख्यत्वमाययौ तस्य तस्मै प्रीतश्च सोऽभवत् ॥ ६५ ॥
अष्टादशानामण्डानामाधिपत्यं समादिशत्। चतस्रः स्वानुजाः कान्ताः श्रीरिवात्यन्तरूपिणीः ॥
सम्मोहिनी सुन्दरी च चित्राङ्गी कुमुदोत्करा। इति तस्मै ददौ भार्या हेतवे तारकासुरः ॥ ६७ ॥
उग्रकर्माऽग्रधन्वा च विद्युन्माली विभीषणः। इन्द्रशत्रुरमित्रघ्नो विजयो विश्वतापनः ॥ ६८ ॥
एते तस्याऽभवन् दैत्याः प्रियाः प्राज्ञाः सुमन्त्रिणः। तेभ्यो ददौ दिक्पतित्वं प्रसन्नो भण्डदानवः ॥
एवं वैभवसम्प्राप्त्या मत्तः कालेन सोऽभवत्। सृष्टिं स्थितिञ्च संहारं स्वयमेवाऽकरोत्तदा ॥ ७० ॥
दुर्मन्त्रिभिर्मन्त्रितोऽथ जेतुं लोकपितामहम्। सत्यलोकं ययौ दृप्तस्तत्र यावदयं गतः ॥ ७१ ॥
विज्ञाय लोकधाताऽपि सलोको दर्शनं गतः। वैकुण्ठेऽप्येवमभवत् कैलासमथ संययौ ॥ ७२ ॥
श्रुत्वा गणेशस्तं प्राप्तं प्रीत्या प्रमथसंवृतः। अगात्तं पूर्वसुहृदं मार्ग एव सुसङ्गतः ॥ ७३ ॥
दृष्ट्वा गणेशस्तं मत्तं भण्डं सन्त्यक्तसौहृदम्। रुरोध युक्तं दैत्येन्द्रैः प्रमथाऽनीकसंवृतः ॥ ७४ ॥
भण्डेनाऽथ समाज्ञप्तः प्राह दैत्यो विभीषणः। रे गजाऽऽस्य द्रुतं गत्वा ब्रूह्यात्मपितरं शिवम् ॥

इन्द्राणी, नन्दनवन और रम्भा प्रमुख अप्सराओं को उसने कर में माँगा। उसकी यह अनुचित बातें सुनकर ब्रह्मा ने दैत्य पर क्रुद्ध होकर कहा ॥ ६० ॥ "तुम भण्ड अर्थात् भाँड़ हो, दुर्बुद्धि हो" इतना कहकर ब्रह्मा तिरोहित हो गये। फिर देवताओं के साथ भण्ड प्रभृति दैत्य-दानवों ने ॥ ६१ ॥ अतिदारुण और अत्यन्त दुर्मद युद्ध किया। इन्द्रादि देवताओं को जीतकर भारवाहक के पद पर नियुक्त कर लिया ॥ ६२ ॥ इस तरह तीनों लोकों को जीतकर उस भण्ड दैत्य ने घमण्ड के साथ विषंग और विशुक्र की रचना कर डाली ॥ ६३ ॥ पुत्र और पौत्रों से युक्त होकर बड़ा ही ऐश्वर्यशाली बन गया तथा पाँच सौ ब्रह्माण्डों का निर्माण कर अपना वशवर्ती बना लिया ॥ ६४ ॥ अत्यन्त पराक्रमी दैत्य को देखकर तारकासुर ने उसके साथ मैत्री का हाथ बढ़ाया। उसे पाकर भण्ड भी बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ६५ ॥ तारकासुर ने लक्ष्मी की तरह रूपवती अपनी चार बहनों को पत्नी के रूप में उसे समर्पित कर दिया ॥ ६६ ॥ सम्मोहिनी, सुन्दरी, चित्रांगी और कुमुदोत्करा इन चार बहनों को तारकासुर ने उसे पत्नी बनाने के लिए समर्पित किया ॥ ६७ ॥ उग्रकर्मा, अग्रधन्वा, विद्युन्माली, विभीषण, इन्द्रशत्रु, अमित्रघ्न, विजय और विश्वतापन ॥ ६८ ॥—ये सभी दैत्य बुद्धिमान् और उसके मन्त्री थे। इन्हें प्रसन्न होकर दिक्पति का पद भण्ड ने दिया ॥ ६९ ॥ इस तरह वैभव की प्राप्ति से वह यथावसर उन्मत्त होकर सृष्टि, स्थिति और संहार अपने हाथों से करने लगा ॥ ७० ॥ दुर्मन्त्रियों से मन्त्रणा कर लोकपितामह ब्रह्मा को जीतने के लिए सत्यलोक चला गया। ब्रह्मा भी जब दृप्त होकर वह चला तब अदृश्य रहे ॥ ७१ ॥ उसके चले जाने के बाद विधाता लोकदृष्टि में आये। वैकुण्ठ में भी कुछ इसी तरह हुआ। इसके बाद यह कैलाश पहुँचा ॥ ७२ ॥ वह कैलाश आया है—जानकर गणेश अपने प्रमथगणों के साथ रास्ते में ही उसकी अगुवानी के लिए पहुँचे ॥ ७३ ॥ गणेश ने देखा कि भण्ड मत्त होकर दोस्ती छोड़ चुका है, फिर प्रमथगणों ने उसे रास्ते में ही रोका ॥ ७४ ॥ इसके बाद भण्ड का आदेश मिलते ही दैत्य विभीषण ने कहा—अरे हाथी मुँह वाले! जाकर अपने बाप शिव से कहो ॥ ७५ ॥ दैत्येश्वर भण्ड उनके पास जा रहे हैं, शीघ्र उनकी शरण

दैत्येश्वरोऽत्र संयातो द्रुतं तं शरणीकुरु। नो चेद्युध्यस्व शौर्येण ततः प्राप्स्यसि तत्फलम्॥ ७६॥
पलायनपरो मा भूर्यदि शूरोऽसि संयुगे। अथाऽपि मातरं ब्रूयाः शची त्वां समुपाश्रिता॥ ७७॥
तां वाञ्छत्येष दैत्येशस्तत्समर्पय मा चिरम्। अन्यथा केशपाशेषु परामृष्टा तया सह॥ ७८॥
दैत्यैर्हृता मत्समीपं मानहीना भविष्यसि। ब्रूहीत्थं गच्छ मूढेह मा मृत्युवशमन्वगाः॥ ७९॥
श्रुत्वेत्थं दैत्यवचनं गणेशः क्रोधमूर्च्छितः। तलप्रहारेण शिरः पातयामास तत्क्षणात्॥ ८०॥
निजघ्नुः प्रमथाश्चाऽपि दैत्यांस्तस्य पुरःसरान्। अथाऽभवन्महद्युद्धं दैत्यप्रमथयोर्भृशम्॥ ८१॥
निजघ्नुः सर्वतो दैत्यान् प्रमथा बलवत्तराः। तदन्तरे दैत्यगणैर्युद्धं श्रुत्वाऽथ पार्वती॥ ८२॥
वात्सल्याद्रक्षितुं पुत्रं गणेशं तत्र संययौ। शक्तीनां कोटिभिर्युक्ता संयुगे समचेष्टत॥ ८३॥
घोरं प्रमथदैत्यानां युक्तं तद्वीक्ष्य पार्वती। प्रमथान् हीयमानांस्तु ज्ञात्वा शक्तिगणाऽऽवृता॥ ८४॥
युयोध दैत्यैः सा देवी मुहूर्तं तत उल्बणम्। युद्धमासीच्छक्तिगणैर्दैत्यानां प्रमथैः सह॥ ८५॥
शक्तिभिः प्रमथैश्चैव बलवद्भिर्दृढं हताः। दैत्या न सेहुरार्तितां पलायनपराऽभवन्॥ ८६॥
छिन्नाङ्गाश्छिन्नमूर्द्धानश्चूर्णीकृतकलेवराः। निहता भक्षिताश्चान्ये प्रमथैः शक्तिभिस्तथा॥
एवं स्वसैन्यविध्वंसं दृष्ट्वा भण्डासुरस्तदा। योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रथसंस्थोऽतिभीषणः॥ ८८॥
रुरोध तं गणेशोऽपि भण्डं निर्भर्त्स्य वेगतः। गदाहस्तो विन्ध्य इव गङ्गां त्रिपथगां भुवि॥ ८९॥
तयोरथाभवद्युद्धं भण्डदैत्यगणेशयोः। वज्रनिष्पेषणं घोरं विष्णुकैटभयोरिव॥ ९०॥
उभावपि रणश्लाघ्यावुभावपि मदोत्कटौ। युयुधातेऽतिसंरब्धौ वने गन्धद्विपाविव॥ ९१॥

में उन्हें जाने को कहो, नहीं तो वीरता के साथ युद्ध करें; उसके बाद उसका फल पायेंगे॥ ७६॥ यदि युद्ध में शूर हैं तो भागे नहीं और अपनी माँ से जाकर कहो कि शची उनकी शरण में है॥ ७७॥ शची को ये दैत्यराज चाहते हैं, उन्हें शीघ्र इन्हें समर्पित कर दे, अन्यथा उसके साथ उन्हें भी केश पकड़ कर खींच कर लाया जायेगा॥ ७८॥ दैत्य उन्हें घसीट कर लायेगा तो फिर वे मानहीन होकर मेरे पास आयेगी; जाओ, उनसे जाकर कहो—वे मूर्खा हैं, मृत्यु के वश का अनुगमन न करे॥ ७९॥ दैत्य की यह बात सुनकर गणेश क्रोध से मूर्च्छित हो गये, गाल पर थप्पड़ मार कर उसे उसी क्षण नीचे गिरा दिया॥ ८०॥ उसके आगे के दैत्यों को प्रमथगणों ने मार डाला। फिर दैत्य और प्रमथगणों के बीच भयंकर युद्ध ठन गया॥ ८१॥ बलवान् प्रमथगण ने चारों ओर से घेरकर दैत्यों को मार डाला। इसी बीच प्रमथगण और दैत्यों के बीच युद्ध चल रहा है—यह सुनकर पार्वती॥ ८२॥ वत्सलता के कारण अपने पुत्र गणेश की रक्षा के लिए वहाँ पहुँच गईं। अपनी करोड़ों शक्तियों के साथ रणांगन में पहुँचकर॥ ८३॥ पार्वती प्रमथगण और दैत्यों के बीच घोर युद्ध देखकर, उनमें प्रमथों का घटता बल देखकर शक्तिगण से घिरी॥ ८४॥ उस देवी ने एक क्षण तक घोर युद्ध किया। वह युद्ध प्रमथों के साथ दैत्यों का शक्ति-संरक्षित युद्ध था॥ ८५॥ शक्ति के साथ बलवान् प्रमथों के द्वारा राक्षस मारे जाने लगे। दैत्य इस आक्रमण को सह न सके और तेजी से भागने लगे॥ ८६॥ कुछ के अंग छिन्न हुए, कुछ की गर्दनें कटीं, तो कुछ की देह कुचल दी गई। प्रमथों ने कुछ को मारा, बचे-खुचे को शक्ति चट गई॥ ८७॥ इस तरह अपनी सेना का विनाश देखकर भण्डासुर अत्यन्त कुपित होकर भीषण युद्ध करने लगा॥ ८८॥ गणेश ने भी उस भण्ड की भर्त्सना कर वेग के साथ हाथ में गदा लेकर उसे रास्ते में उसी तरह रोक दिया जैसे धरती पर त्रिपथा गंगा को विन्ध्याचल ने रोका था॥ ८९॥ भण्ड और गणेश के बीच युद्ध शुरू हो गया। वज्र-निष्पेषण की तरह घोर युद्ध विष्णु और कैटभ-युद्ध की तरह चलता रहा॥ ९०॥ दोनों के

अथ क्रुद्धो गणपतिर्गदामुद्यम्य वेगतः । प्राक्षिपद्भण्डदैत्याय वज्रं शक्रो नगेष्विव ॥ ९२ ॥
तया तस्य रथं साऽश्वसूतध्वजपरिष्कृतम् । क्षणेन भस्मतां नीतं पुनः शीघ्रं गणेश्वरः ॥ ९३ ॥
तयैव ताडयामास गदया वज्रकल्पया । अथाऽऽहतोऽतिवेगेन कृत्तमूलद्रुमो यथा ॥ ९४ ॥
मूर्च्छया निपतद्भूमौ महोक्लेवाऽतिसश्वरे । हा हेति चुक्रुशुर्दैत्यास्तुष्टाः प्रमथशक्तयः ॥ ९५ ॥
साधुशब्दैर्गणेशानं पूजयामासुरुच्चकैः । मूर्च्छामुक्तः क्षणेनैव भण्डः प्रोत्थाय सत्वरम् ॥ ९६ ॥
अङ्कुशेनाऽहनन्मूर्ध्नि बलेन बलिनां वरः । गजाऽऽस्यस्ताडितो मूर्ध्नि तीक्ष्णेन सृणिना तदा ॥
भिन्नकुम्भः पपातोर्व्यां शैलो वज्राऽऽहतो यथा । प्रमथाः शक्तिभिश्चापि हा हेत्युच्चुक्रुशुर्भृशम् ॥
तदन्तरे भण्डदैत्यं जिघृक्षन्तं गणेश्वरम् । पार्वती स्तम्भयामास हुङ्कारेण रुषाऽन्विता ॥ ९९ ॥
दैत्यं बद्ध्वाऽथ पाशेन शूलेनाऽऽहन्तुमुद्यता । तावद्विधिः समागत्य प्रार्थयामास पार्वतीम् ॥
देवि नाऽयं त्वया वध्यः शङ्करस्य वरान्ननु । युद्धान्निवर्तस्व ततो गच्छत्वेषोऽसुरो भवम् ॥ १०१ ॥
इत्युक्ता पार्वती ज्ञात्वा वरं तस्य महत्तरम् । गच्छ दैत्याऽधम भुवं मुक्तोऽस्यद्य पुनर्न हि ॥ १०२ ॥
इदं स्थानं प्रवेशाऽर्हं मेरुशृङ्गं कदाऽपि ते । भूयात् प्रविष्टस्य शिरः शतधा नास्ति संशयः ॥
एवं शप्त्वा शक्तिसङ्घैः प्रमथैरपि दानवान् । भण्डादीन् प्राक्षिपद्भूमौ वायुस्तालफलान् यथा ॥
एवं भण्डो जितो गौर्या विमना दैत्यसंवृतः । अभ्याययौ शून्यकं स्वं विषण्णो दीनमानसः ॥ १०५ ॥

बीच श्लाघ्य युद्ध था, दोनों ही मदोत्कट थे। जंगल में दो जंगली हाथियों की तरह वे दोनों भयंकर युद्ध कर रहे थे॥ ९१ ॥ पर्वत को ढहाने के लिए इन्द्र जैसे वज्र से आक्रमण करते थे, उसी तरह उस दैत्यराज पर क्रुद्ध गणपति ने गदा उठाकर दे मारा॥ ९२॥ उस गदा के प्रहार से रथ, घोड़ा, सारथी और परिष्कृत ध्वज एक पल में जलकर राख हो गये। फिर शीघ्र ही गणपति ने गदा उठाकर शीघ्र॥ ९३ ॥ वज्रकल्प उसी गदा से भण्ड पर प्रहार किया। अतिशीघ्रता से आहत भण्ड जड़ से कटे पेड़ की तरह॥ ९४॥ बेहोश होकर धरती पर गिर गया। दैत्यगण हाहाकार कर उठें, प्रमथगण और महाशक्तियाँ सन्तुष्ट हुयीं॥ ९५॥ ऊँची आवाज में गणेश की अभ्यर्थना साधु शब्दों से की गई, पर पलभर में ही भण्ड दैत्य होश में आकर शीघ्र खड़ा हुआ॥ ९६॥ अंकुश से माथे पर चोट करने पर अत्यन्त बलशाली हाथी भी तेज अंकुश की चोट से॥ ९७॥ माथा फट जाने से धरती पर गिर जाता है। वज्र से आहत होकर जैसे पर्वतशिखर ढहता है उसी तरह गणेश पर आक्रमण होते देख प्रमथगण और शक्तियाँ हाहाकार कर उठीं॥ ९८॥ इसी बीच गणेश को मारने की इच्छा से आगे बढ़ते भण्ड दैत्य को देखकर रोष से हुँकार करती हुई पार्वती ने उसे रास्ते में ही रोक दिया॥ ९९॥ उस दैत्य को पाश में जकड़ कर त्रिशूल लेकर मारने ही जा रही थी कि विधाता ने वहाँ आकर पार्वती से प्रार्थना की॥ १००॥ हे देवि! आपसे वध करने योग्य यह नहीं है, इसे शंकर का वरदान प्राप्त है। इसलिये युद्ध से रुके और इसे धरती पर भाग जाने दें॥ १०१॥ यह कहकर शिव का महत्तर वर जानकर पार्वती ने दैत्य से कहा—अरे अधम! मैं तुम्हें मुक्त करती हूँ, फिर कभी यहाँ मत आना, धरती पर चले जाओ॥ १०२॥ यह स्थान तुम्हारे प्रवेश के योग्य बिलकुल भी नहीं है। अगर भूल से भी तुम यहाँ प्रवेश करोगे तो तुम्हारा शिर सौ टुकड़ों में फट जायेगा, इसमें संशय मत करो॥ १०३॥ जैसे हवा ताड़ के फल को धरती पर फेंक देती है, उसी तरह उसे शाप देकर शक्तिसंघ और प्रमथों ने मिलकर भण्ड प्रभृति दानवों को उठाकर धरती पर फेंक दिया॥ १०४॥ इस तरह गौरी ने भण्ड को जीत लिया और दैत्यगण के साथ भण्ड अतिदीन भाव से अपने शून्य नगर में प्रवेश किया॥ १०५॥ इस तरह भण्ड के वीर्य और उसके कठोर

एवं भण्डस्य वीर्यं ते प्रोक्तं तत्तपसा भृतम्। गौरीशापवशादेव ब्रह्माद्यास्त्वपराजिताः ॥ १०६ ॥
एवं भण्डासुरो लोकान् विजित्याऽसुरनायकः। बबाधे सुरलोकांश्च नगरेषु वृको यथा ॥ १०७ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भण्ड-
प्रतापो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१६७ ॥



तप का वर्णन मैंने सुना दिया। गौरी के शाप से ही ब्रह्मादि देवगण सुरक्षित हुए॥ १०६॥ इस तरह भण्डासुर लोकों को जीतकर दैत्यों का नायक बना। जैसे नगर में प्रवेश कर भेड़िया उपद्रव करता है उसी तरह देवलोक पहुँच कर भण्ड ने उसे बाधित किया॥ १०७॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में भण्ड-
प्रताप नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४१६७॥



अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः



शृणु कुम्भज तेनैवं निरस्ताः सर्वतोऽमराः । दुःखिताः काननेष्वद्रिदरष्वन्तर्गुहासु च ॥ १ ॥
नदीकुञ्जेषु दैत्येशत्रस्ता दैत्यैरलक्षिताः । ऊषुर्दीर्घतमं कालं क्वचिद्दैत्यैर्विलक्षिताः ॥ २ ॥
आकृष्टास्ताडिताः सेवां कुर्युर्भृत्या यथर तथा । एवं वर्षसहस्राणामतीतं द्विसहस्रकम् ॥ ३ ॥
तदा क्वचित्तु देवेन्द्रो ददर्शाऽऽङ्गिरसं गुरुम् । प्रणम्य तं प्राह शक्रः बद्धाञ्जलिपुटस्तदा ॥ ४ ॥
गुरो मां पश्य शोचन्तं देवेशं त्वत्समाश्रयम् । चिराय परिदृष्टोऽसि शिष्ये मयि दयां कुरु ॥ ५ ॥
नाऽहं सोढुमितः शक्तः कष्टमेवंविधं विभो । पुरा विधिः प्रार्थितोऽपि मया भूयः स्वयं जगौ ॥
नाधुनाऽस्य प्रतीकारे कालो देवपते शृणु । प्रतीक्ष कालं कालेन विना नो सिध्यतीहितम् ॥
तस्याऽद्य वत्सरा वृत्ता असंख्येया युगात्मकाः । न तं कालं प्रपश्यामि लेशतोऽपि सुखावहम् ॥
पश्य मां मलिनं दीनं क्षामाऽङ्गं सर्वतो भयम् । एष कुञ्जः कण्टकितः स्वर्गो नन्दनमेव च ॥ ९ ॥
सुधर्मा चाऽत्र मशका गन्धर्वाः स्वरमण्डलाः । वन्दिनः करटा एते शालूराः स्तुतिवाचनाः ॥
रम्भाद्याः खद्योतगणा हंसतूलं शिलातलम् । उपधानं गुल्मपादो मन्त्राऽऽह्वानं शिवाध्वनिः ॥
परिषद्बकककङ्काद्याः पटवासो महीरजः । चामराः कण्टकितरुशाखा वात्याप्रवेपिताः ॥ १२ ॥
एवं समाचारयुतं पश्यंस्तेन द्रुतं मनः । नूनं भाग्यं ममैवैतदित्युक्त्वा मूर्च्छितोऽभवत् ॥ १३ ॥

✻ विमला ✻

हे कुम्भज! उनसे हार कर सभी देवगण दुःखी होकर जंगलों में पर्वत-कन्दराओं में, गुहाओं में॥ १॥ नदी-कुञ्जों में भण्ड से सन्त्रस्त होकर दैत्यों की आँखों से बचकर बहुत दिनों तक निवास करते रहे। अगर कहीं कोई देवता दैत्यों को दिखायी पड़ जाते तो॥ २॥ घसीट कर पहले खूब पीट देते और अन्त में अपनी सेवा में नौकरों की तरह नियुक्त कर लेते। इस तरह देवताओं के लुकते-छिपते दो हजार साल निकल गये॥ ३॥ देवराज इन्द्र ने अचानक गुरु बृहस्पति को देखा, उन्हें प्रणास कर हाथ जोड़ कर कहा॥४॥ हे गुरुदेव! अपनी शरण में आये शोचनीय स्थिति में मुझ देवराज को बहुत दिनों के बाद आपने देखा है। मुझ शिष्य पर आप दया करें॥५॥ इस तरह की तकलीफ झेलने में मैं अब समर्थ नहीं हूँ। पहले भी मैंने विधाता से इससे मुक्ति हेतु प्रार्थना की थी॥ ६॥ उन्होंने कहा था—हे देवराज! इसके प्रतीकार का समय अभी नहीं आया है, समय की प्रतीक्षा करो। समय के बिना तुम्हारा समीहित सिद्ध नहीं होगा॥ ७॥ ब्रह्मा के इस कथन को कहे आज अनगिनत युग बीत गये। लेश भर भी सुख देने वाला वह काल आज तक भी नहीं आया॥ ८॥ मुझे आप देखें—मलिन, दीन, दुबली देह, हर ओर डर-ही-डर; ये कटीले कुंज ही मेरे स्वर्ग के नन्दन हैं॥ ९॥ मच्छर यहाँ सुधर्मा हैं, उनकी गूंज गन्धर्व है, कौए बन्दी हैं, मेंढक स्तुतिवाचक हैं॥ १०॥ जुगनू रम्भा हैं, हंसतूल शिलातल है। गुल्मपाद ही उपधान है और गीदडों की आवाज मन्त्र का आह्वान है॥ ११॥ बगुले प्रभृति परिषद् है, महीरज पटवास है, कटीले पेड़ की डाली चामर है, हवा उसे डुलाती है॥ १२॥ यही मेरा आचार है, इसे देखकर शीघ्र मेरा मन दहल जाता है। निश्चय मेरा भाग्य यही है। इतना कहकर देवराज बेहोश हो गये॥ १३॥ उसे दुःख से मूर्च्छित देखकर गुरु को बड़ी दया आ गई। देवराज

तं दुःखमूर्च्छितं दृष्ट्वा गुरुः कारुण्यमागतः। समाश्वास्याऽमरपतिः प्रोवाचाऽऽङ्गिरसो वचः॥
शृणु देवर्षभ बुधा नाऽनुशोचन्ति कुत्रचित्। आपत्सु हर्षकलिताः सम्पत्सु समतां गताः॥ १५॥
सज्जना विकृतिं नैव गच्छन्ति विशदाऽऽशयाः। शोकं जित्वा विमर्शेन सन्धैर्येण महाजनाः॥
प्रभवन्ति शुभायैव कालमात्रप्रतीक्षकाः। शृणु तेऽत्राऽभिधास्यामि व्यवसायं फलावहम्॥ १७॥
तपसा तोष्य भूतेशं प्राप्तवान् सर्वतोऽभयम्। न योनिजैर्मानसैर्वा मृत्युस्तस्य शिवेरितः॥ १८॥
द्वैविध्यमन्तरा लोके नास्ति कश्चन कुत्रचित्। देवाद्यैः पुरुषैश्चाऽपि नाऽस्य मृत्युरुदीरितः॥
अतोऽमरगणैर्युक्तस्त्रिपुरां परमेश्वरीम्। प्रयाहि शरणं नाऽस्ति रक्षकोऽन्यः कथञ्चन॥ २०॥
इत्युक्त्वा मारुतं देवं दध्यौ देवगुरुस्तदा। ध्यातमात्रो जगत्प्राणः प्रणम्य समुपस्थितः॥ २१॥
वाचस्पतिस्तमाहाऽथ शृणु मारुत मे वचः। त्वं सर्वदागतिः सर्वप्राणश्चाऽपि महाबलः॥
नय शक्रं हिमगिरेः शिखरं व्योममार्गतः। शीघ्रमन्यान् सुरान् सर्वान् पावकप्रमुखानपि॥ २३॥
ततस्ततो दैत्यगणैरनयाऽलक्षितो भृशम्। तत्र पौरुषयोगेन साध्यं सर्वसमीहितम्॥ २४॥
ओमित्युक्त्वा निमेषेण देवान् सर्वान् समानयत्। समेता हिमवच्छृङ्गे शक्राद्याः सर्वतोऽमराः॥
अथ वायुं प्रेषयित्वा चाऽऽनिनाय गुणेश्वरान्। निश्चित्य भण्डदैत्यस्य विजयाय समीहितम्॥
त्रिपुरां परमेशानीं विना नेह गतिः क्वचित्। एवं विधिमुखा देवास्त्रिपुरां परमेश्वरीम्॥ २७॥
दध्युः सर्वजगद्धात्रीं निगृहीताऽक्षमारुताः। एवं तेषामगाद्ध्याननिष्ठानां वत्सरं शतम्॥ २८॥
अथ देवा मन्त्रयित्वा त्रिपुराप्रीतिहेतवे। महायागेन त्रिपुरामयजन् तन्त्रमार्गतः॥ २९॥

को आश्वासन देकर गुरु बृहस्पति ने॥ १४॥ हे देवराज! सुनो, बुद्धिमान् व्यक्ति कभी किसी भी स्थिति में चिन्ता नहीं करते, विपत्ति में प्रसन्न होते हैं और सम्पत्ति में समभाव रहते हैं॥ १५॥ जिनका आशय विशाल है, उनके पास विकृतियाँ नहीं आती हैं। ऐसे लोग महापुरुष होते हैं जो धैर्य और विचार के साथ शोक को जीतकर॥ १६॥ शुभ फल-प्राप्ति के लिए समय की प्रतिक्षा करते हैं। हे इन्द्र! अब मैं तुम्हें बतलाता हूँ, कल्याण-प्राप्ति के लिए तुम्हें क्या करना है॥ १७॥ अपनी तपस्या से भगवान् शंकर को सन्तुष्ट कर सब ओर उसने अभय प्राप्त कर लिया है। शिव से प्राप्त वर के अनुसार योनिजों से या मानसों से उसकी मृत्यु नहीं होगी॥ १८॥ दो तरह के अन्तर कहीं किसी समय लोक में नहीं है। देवता हो या पुरुष किसी से भी इसकी मृत्यु नहीं कही है॥ १९॥ अतः देवताओं के साथ परमेश्वरी त्रिपुरा की शरण में जाओ, उनके सिवा कही कोई दूसरा रक्षक नहीं है॥ २०॥ इतना कहकर देवगुरु बृहस्पति ने पवनदेव का स्मरण किया। ध्यान मात्र से संसार के प्राणस्वरूप पवनदेव गुरु को प्रणाम कर सामने खड़े हो गये॥ २१॥ तब बृहस्पति ने कहा—हे पवनदेव! मेरी बातें सुनो, तुम सतत गतिशील हो, सबके प्राण स्वरूप हो और महाबली हो॥ २२॥ आकाश-मार्ग से हिमालय की चोटी पर इन्द्र को शीघ्र पहुँचाओ, अग्निदेव-प्रमुख अन्य देवताओं को भी वहीं पहुँचाओं॥ २३॥ दैत्यगण से अलक्षित होकर पौरुष योग से हर अभीप्सित सारे साध्य वहाँ ही ये पायेंगे॥ २४॥ जैसी आज्ञा कहकर पवनदेव इन्द्रादि सारे देवताओं को हिमालय की चोटी पर पहुँचा दिये॥ २५॥ पवनदेव को भेजकर, देवताओं को निश्चिन्त कर भण्ड दैत्य पर विजय करने के लिए चेष्टा करने के लिए कहा॥ २६॥ गुरु बृहस्पति ने कहा—परमेश्वरी त्रिपुरा के बिना तुम सबों की कहीं कोई गति नहीं है, अतः विधि-प्रमुख सभी देवगण उसी त्रिपुरा देवी का॥ २७॥ हाथ में माला उठाकर सर्वजगत्धात्री का ध्यान करे। इस तरह उनका ध्यान करते सौ साल निकल गये॥ २८॥ तब देवताओं ने विचार कर त्रिपुरा को प्रसन्न करने के लिए तन्त्रमार्ग से त्रिपुरा का महायज्ञ प्रारम्भ किया॥ २९॥ इस महायज्ञ के ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मदेव बने और

समाप्तेऽथ महायागे मन्त्रद्रव्यसुसम्भृते। यत्र ब्रह्माऽभवद्ब्रह्मा आचार्यो गुरुरेव च॥ ३०॥
ऋत्विजः शिवविष्णवाद्या यागे तस्मिंस्तदाऽभवन्। प्राप्तेऽन्त्यदिवसे तस्मिंश्चिद्भावप्रविभाविते॥
यागवह्नौ चिदाकारे महाकुण्डसमेधिते। अजयत् पूर्णयाऽऽहुत्या गुरुर्ध्यायन् पराम्बिकाम्॥
तदा भक्त्या संस्तुवत्सु देवेषु त्रिपुराम्बिका। प्रादुरासीत् कुण्डमध्याच्चिदग्नेर्ज्वलतोऽन्तरात्॥
पूर्णाहुत्यां हुतायां वै कुण्डे जज्वाल पावकः। योजनैकसमुच्छ्राया ज्वालाऽत्यन्तं व्यवर्धत॥
तत्राऽभवन्महाशब्दः पर्वतस्येव भिद्यतः। शताऽशनिनिपातात्मा भिन्दच्छ्रोत्राणि नाकिनाम्॥
ततोऽमराणां चक्षूंषि मुष्णन् प्रौढेन तेजसा। सकृत् सौदामिनीकोटिसङ्घट्टसदृशच्छविः॥ ३६॥
महाप्रकाश उदभूद्वह्निज्वालाऽन्तरे तदा। महता ध्वनिना तद्वत्तेजसा च बुधास्तदा॥ ३७॥
बधिराऽन्धीकृताः सर्वे मूर्च्छिता आपतन् भुवि। विना गुरुं त्रिमूर्तिभ्यः पतिताः सर्व एव ते॥
तत्तेजोमध्यतः प्रादुरासीच्छ्रीत्रिपुराऽम्बिका। तरुणाऽरुणपुञ्जाऽङ्गसम्प्रदायतनुच्छविः॥ ३९॥
विद्युल्लतेव विद्योतत्तनूद्यत्तनुवल्लरी। विद्युल्लताविकसितपूर्णचन्द्राऽम्बुजाऽऽनना॥ ४०॥
कवरीतिमिरौघोद्यत्सिन्दूराऽरुणसुप्रभा। तारकाजालवद्व्योमकवरीरत्नभूषणा॥ ४१॥
दीर्घवेणीभोगिवक्त्रनिर्यत्सीमन्तजिह्विका। सिन्दूराऽरुणलोहित्याऽऽक्षिप्तकेशनभोऽङ्गणा॥
विपर्यस्ताऽर्धचन्द्राऽङ्कफाले राजद्विशेषिका। कुन्तलाऽलिगणाऽऽकीर्णविकसद्वदनाऽम्बुजा॥
मुखसौन्दर्यसरसीनीलाऽम्बुजनिभेक्षणा। कन्दर्पकोटिजननमन्त्राऽऽकूतसमीक्षणा॥ ४४॥
क्षीराऽब्धिकोटिलहरीसम्भवाऽपाङ्गसुन्दरा। चाम्पेयकलिकासम्पत्प्रपोषकसुनासिका॥ ४५॥

यज्ञ के आचार्य गुरु बृहस्पति, मन्त्र-द्रव्य से भरा महायज्ञ शुरू किया गया॥ ३०॥ शिव और विष्णु प्रभृति देवगण इसके ऋत्विज हुए। यज्ञ के अन्तिम दिन जो होना था वह घटित हुआ॥ ३१॥ प्रज्वलित महाकुण्ड में चिदाकार यज्ञवह्नि में पराम्बिका का ध्यान करते हुए गुरु ने पूर्णाहुति डाल दी॥ ३२॥ तब भक्तिपूर्वक देवताओं ने माता त्रिपुरा की स्तुति प्रारम्भ कर दी। तब कुण्ड के बीच से चितिस्वरूपा प्रज्वलित अग्नि के मध्य वह प्रकट हुई॥ ३३॥ पूर्णाहुति से कुण्ड में अग्निज्वाला फूट निकली। वह ज्वाला एक योजन तक अत्यधिक बढ़ चली॥ ३४॥ पर्वत को चीरने वाली उसमें से एक भयंकर आवाज निकली। सैकड़ों वज्र जैसे एक साथ गिरे हों, ऐसी महातेजस्वी आवाज स्वर्गवासियों के कानों को छेद डाली॥ ३५॥ उसके बाद अमरों की आँखों ने उस प्रौढ़ तेज के कारण ज्योति खो दी। फिर करोड़ों बिजली-समूह की तरह एक छोटी छवि निकली॥ ३६॥ तब उस वह्नि की ज्वाला में एक महाप्रकाश फूटता नजर आया, बहुत कड़ी आवाज और वैसे ही उसके तेज से देवगण॥ ३७॥ बहरे और अन्धे होकर सब-के-सब बेहोश होकर धरती पर गिर गये। उनके साथ गुरु को छोड़कर ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी अन्धे, बहरे और बेहोश हो गये॥ ३८॥ उस तेज के बीच से माता श्रीत्रिपुरा प्रकट हुई। तरुण, लाल पुंज उनके सम्पूर्ण शरीर की छवि थी॥ ३९॥ उनकी देहयष्टि से बिजली की कान्ति फूटकर निकल रही थी और उस विद्युत्-लता के छोर पर विकसित पूर्णचन्द्र की तरह उनका कमलमुख था॥ ४०॥ भगवती के जूड़े अन्धकार-समूह की तरह थे, सिन्दूर की अरुणिम आभा उससे फूट रही थी। उस जूड़े से रत्नाभूषण तारे की तरह चमक रहे थे॥ ४१॥ उनकी लम्बी चोटी साँप के मुँह की तरह थी और केश उसकी जीभ की तरह लपलपा रहे थे। लाल सिन्दूर की लाली केशरूपी आकाश में खिंचते जा रहे थे॥ ४२॥ अर्धचन्द्रांक फाल में विपर्यस्त विशेषिका शोभ रही थी, उनके बालों में भौंरे लटक रहे थे, मुख-कमल खिले थे॥ ४३॥ मुख-सौन्दर्य रूपी सरोवर में नीलकमल रूपी उनकी आँखें खिली थीं। करोड़ों कन्दर्प जननमन्त्र की इच्छा ही उनका देखना था॥ ४४॥ क्षीरसागर की करोड़ों

कुरुविन्दाऽऽदर्शशोभाप्रोल्लसद्गण्डमण्डला । अपाङ्गसरिदुन्मज्जत्ताटङ्कमणिनीरजा ॥ ४६ ॥
ताटङ्काऽम्बुजसंस्थानमुक्ताऽऽवलिमरालिका । कर्णभूषाकान्तिचापकटाक्षशरसन्ततिः ॥ ४७ ॥
पक्वदाडिमबीजात्मदन्तलौहित्यदच्छदा । विकसद्रक्तकुमुदाऽऽन्तरकिञ्जल्कदच्छविः ॥ ४८ ॥
प्रवालदच्छदोदञ्चद्दन्तकुन्दसुकोरका । मन्दहसक्षीरनिधिप्रवालरदनच्छदा ॥ ४९ ॥
मुखमाणिक्यकमलवृन्ताऽऽभचिबुकोज्ज्वला । मणिग्रैवेयकाकल्पलसद्ग्रीवाऽब्जसुन्दरा ॥ ५० ॥
पाणिरत्नमृणालोद्यत्पद्मकोशस्तनद्वयी । माणिक्यदेहलतिकास्तनस्तबकशोभिनी ॥ ५१ ॥
मुखचन्द्रप्रभाभीतिनिलीनकुचकोकिका । मन्दस्मितसरित्पूरखेलत्कुचमरालिका ॥ ५२ ॥
तनुवल्लीशाखिकोद्यत्पाणिपल्लवलोहिता । करप्रवालाऽग्रजपाकोरकाऽङ्गुलिमण्डिता ॥ ५३ ॥
सृणिपाशधनुर्बाणैर्लसद्बाहुचतुष्टया । वलयाऽङ्गदरत्नोर्मिकूर्पासविलसद्भुजा ॥ ५४ ॥
मुखपद्ममृणालाऽऽभमुक्ताहारलतोज्ज्वला । रोमाऽऽलितनुनालोद्यत्कुचद्वन्द्वाऽब्जकुड्मला ॥
रोमाऽऽलिवल्लरीमूलनाभिनिम्नाऽऽलवालिनी । नाभिसरोन्नीतरोमलताशैवालवल्लिका ॥
कौसुम्भरत्नवसनसमाच्छन्ननितम्बिनी । ऊर्ध्वाऽङ्गधारणामात्रनिमित्तप्राप्तमध्यमा ॥ ५७ ॥
सूक्ष्माऽभ्राऽऽभांऽशुकाऽन्तस्थदृश्यतारकभूषणा । माणिक्यकदलीकाण्डपरिभाव्यूरुमण्डला ॥
पद्मरागनिषङ्गाऽऽभजङ्घायुगसुमण्डिता । कमठीपृष्ठविभवसूचनप्रपदाऽन्विता ॥ ५९ ॥
मणिनूपुरसंराजत्किङ्किणीचारुसिञ्जिता । विकसत्पद्मसौभाग्यवदान्यपदपङ्कजा ॥ ६० ॥

लहर से उत्पन्न सुन्दर उनके अपांग थे। चम्पाकली के सौन्दर्य की पोषक उनकी नासिका थी॥ ४५॥ लालमणि रूपी शीशे की शोभा में भगवती के दोनों गाल शोभ रहे थे। कानों में मणि-निर्मित बालियों की चमक भगवती की आँख रूपी सरोवर में डुबकी लगा रही थी॥ ४६॥ मुखकमल में कर्णाभूषण हंस-पंक्तियों की तरह शोभ रहे थे। उनके कर्णभूषण की कान्ति चाप थे और कटाक्ष बाणों के समूह॥ ४७॥ पके दाड़िम के बीज की तरह दाँतों के मसूड़े थे, विकसित रक्त कुमुद की शोभा की तरह लाल मसूड़ों की शोभा थी॥ ४८॥ मूँगे की तरह लाल मसूड़े से निकले कुन्द की तरह दाँत थे। मन्द-मन्द चलते क्षीर-सरोवर में हंसों की तरह लाल मसूड़े में सफेद दाँत शोभ रहे थे॥ ४९॥ लाल माणिक्य की तरह उनके मुखकमल की शोभा थी और कमलवृन्त की शोभा की तरह उनकी ठोड़ी की शोभा थी। मणि-निर्मित गले के हार से उनकी कमलग्रीवा सुशोभित थी॥ ५०॥ कर-कमल कमलनाल की तरह थे। पद्मकोश की तरह उनके दोनों स्तन थे। लालमणि की तरह उनकी देह-लतिका थी और उसमें दोनों स्तन गुलदस्ते की तरह शोभ रहे थे॥ ५१॥ मुखचन्द्र की प्रभा के डर से स्तन रूपी हंसिनी मानो संकुचित हो रही थी। मन्द मुस्कान रूपी सरोवर में दोनों स्तन रूपी हंसिनी किलोल कर रही थी॥ ५२॥ शरीर रूपी लता की डालियों के समान उनकी लाल-लाल दोनों तलहथियाँ थीं। उन तलहथियों में सुन्दर अँगुलियाँ सुशोभित थीं॥ ५३॥ अंकुश, पाश, धनुष से सुशोभित चारों बाँहें थीं। वलय, बाजूबन्द, रत्ननिर्मित कूर्पास बाँहों में शोभ रहे थे॥ ५४॥ मुखपद्म पर मृणाल की आभा छिटक रही थी। मुक्ता का हार रूपी लता उज्ज्वल थी। उनकी रोमावली शरीर रूपी नाल से ऊपर उठे दोनों कमलवत् स्तन के कुड्मल थे। रोमों की पंक्तियाँ वल्लरी की तरह थी जिसका मूल नाभि भाग तक पहुँच रहा था। वह नाभि रूपी सरोवर में तैरती शैवाल की तरह थी॥ ५५-५६॥ कौसुम्भ वर्ण वाले रत्नजटित वस्त्रों से शरीर आच्छादित था, ऊर्ध्वांग धारण मात्र थे, निमित्त प्राप्त मध्यम अंग थे॥ ५७॥ सूक्ष्म अभ्र की आभा वाले वस्त्र थे और अन्तःस्थ दृश्य तारकभूषित थे। माणिक्य और कदली के काण्ड को तिरस्कृत करने वाला ऊरुमण्डल था॥ ५८॥ पद्मराग निषंग की तरह दोनों जाँघें थीं और कछुए के पीठ की तरह

पादाम्बुजप्रविलसन्मणिहंसकमण्डिता । नखचन्द्रसुधास्यन्दहृतसन्नतततप्तता ॥ ६१ ॥
मरालीमन्दगमनकुलाऽऽचार्यपदद्वयी । भक्तवाञ्छावितरणपदमन्दारपल्लवा ॥ ६२ ॥
एवमाविर्भवन्तीं तां दृष्ट्वा ब्रह्मादयस्तदा । दण्डवत् प्रणता भूत्वा जय देवीति तां जगुः ॥ ६३ ॥
तत्र वाचस्पतिर्नत्वा भूयः प्रोत्थाय तां पराम् । पश्यंस्तद्दर्शनोद्भूतहर्षवारिधिसम्प्लुतः ॥ ६४ ॥
उत्तंसितकरद्वन्द्वसम्पुटोद्यत्सरोरुहः । नेत्राऽम्बुजप्रवद्धर्षवारिपुरपरिप्लुतः ॥ ६५ ॥
अस्तौषीदतिसुप्रेमभरगद्गदमन्थरः । रचनाचातुरीमोदैर्मोदयंस्त्रिपुराम्बिकाम् ॥ ६६ ॥

तव विभवविलासं वर्णितुं मे न शक्तिर्यदिदमपि मयोक्तं तावकी नैव शक्तिः ।
न हि भवति ततो मे वाक्पतित्वस्य हानिर्यदि भवति तदा स्यात्त्वत्प्रमादस्य हानिः ॥ ६७ ॥
सुरगुरुरहमेवं वच्मि यत्तत्त्वमेव त्वमहमिदमितीयत्सर्वमम्ब त्वमेव ।
तत इह न हि मे स्तो हानिलाभौ तरङ्गे मधुरकटुरसौ वा क्षीरसिन्धोरिवाऽन्यौ ॥ ६८ ॥
यदिह विविधभेदं प्रेक्षते मूढदृष्टिर्मुकुरतलविराजच्चित्रवद्भासमानम् ।
यदिदमिह पुरस्ताद्दर्शितं दिव्यरूपं तदपि च कृपया नः पूर्ववन्माययैव ॥ ६९ ॥
विबुधसमुदयानां खं वरं मन्यमानो जननि तव विलासैर्मोहितो मूढबुद्धिः ।
तव निरवधिशक्तिं वर्णितुं दृश्यभेदं यतति विहततर्कैस्तैर्थिकस्त्वामजानन् ॥ ७० ॥
विविधवचनजालैरस्ति नास्तीति पक्षैर्विवदनपरमाणां याति कालो वृथैव ।
क्षणमपि जगदम्ब त्वत्कलां चिन्मयीं ये निजहृदि विमृशन्तः संस्थितास्ते हि धन्याः ॥ ७१ ॥

सुन्दर उनके दोनों पैर थे॥ ५९॥ मणि-निर्मित नूपुर और पाजेब से अनुगुंजित पैर थे। उनके चरण विकसित कमल की तरह सुन्दर लग रहे थे॥ ६०॥ उनके चरणकमल मणिहंस से मण्डित थे। नखचन्द्र से सुधारस टपकता था॥ ६१॥ उनके दोनों चरण-कमल मन्दगमना हंसी कुल के आचार्य पद थे। भक्तों की मनोवाञ्छा वितरण करने वाले ये पैर मन्दार-पल्लव की तरह सुशोभित थे॥ ६२॥ इस तरह अति सुन्दर और आकर्षक रूप को अवतरित होते देख ब्रह्मादि देवगण दण्डवत् प्रणाम कर जय-जयकार करने लगे॥ ६३॥ देवों ने गुरु बृहस्पति को प्रणाम कर उठकर उस परादेवी को देखते हुए उनके दर्शन से समुद्भूत हर्ष रूपी सागर में गोते खाने लगे॥ ६४॥ दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाये, सम्पुटित सरोरुह की तरह, कमल रूपी नयनों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी॥ ६५॥ अत्यन्त प्रेम से भरे गद्गद स्वर में धीरे-धीरे रचनाचातुरी की प्रसन्नता से अम्बा त्रिपुरा को प्रसन्न करते हुए स्तुति की॥ ६६॥ हे जगदम्बे! तुम्हारे विभव-विलास का वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। यदि जो कुछ मैंने कहा है, वह भी तुम्हारी शक्ति नहीं है, इससे जो लोग मुझे वाक्पति कहते हैं, उससे भी मेरी हानि नहीं है। यदि हानि होती है तो वह हानि तुम्हारी कृपा की हानि है, उसमें मेरा कुछ भी नहीं है॥ ६७॥ देवताओं का गुरु मैं ही यह बात कहता हूँ, जो यही तत्त्व है, इससे भिन्न संसार में मेरे लिए न कुछ हानि है और न लाभ; हानि-लाभ के तरंग में मीठा-तीता जो भी है, वह मेरे लिए क्षीरसिन्धु है॥ ६८॥ यदि इसमें अनेक भेद किसी को दिखायी पड़ता है, तो वह मूर्ख दृष्टि है, आइने की परछाईं की तरह ये अनेक चित्र परिलक्षित होते हैं। यदि यह सामने प्रदर्शित तुम्हारा दिव्य रूप देख रहा हूँ, वह भी आपकी कृपा से हमें पहले की तुम्हारी माया ही प्रतीत होती है॥ ६९॥ ये देवताओं के समूह का आकाशीय वर मानते हुए हे जननि! तुम्हारे विलास से ये मूढ़ बुद्धि मोहित हैं, तुम्हारी निस्सीम शक्ति का वर्णन करने के लिए दृश्यभेद का प्रयास करते हैं; तुम्हें बिना जाने ही विहित तर्कों से तुम्हारे पास पहुँचने की कोशिश करते हैं॥ ७०॥ विविध रचना-जालों में तुम नहीं हो; विवादों के द्वारा, तर्कों

विगतविषयतृष्णावासने स्वाऽन्तरङ्गे विमलमुकुरतुल्ये निश्चले स्वात्मनैव।
तव जननि कलां तां योगिनः प्रेक्षमाणाः परमसुखपदस्थास्ते हि धन्या जयन्ति॥ ७२॥
इति चिरतरकालं त्वत्स्वरूपं विमृश्याऽऽन्तरभुवि दृढभावाः स्युर्निसर्गस्वभावाः।
तदनु बहिरशेषं त्वत्स्वरूपं मृशन्तः त्वयि परमविलासास्ते हि योगीन्द्रपूज्याः॥ ७३॥
अहमपि ललिते त्वत्पादपद्मस्य कञ्चित् परिचयमभिगम्याऽन्तः सदा सर्वतोऽपि।
वचनविरचनानां चिन्तनानामपि त्वामणु किमपि विना नाऽवैमि तत्त्वां नतोऽस्मि॥ ७४॥
इति स्तुत्वाऽमरगुरुः प्रणतो दण्डवद्भुवि। गुणभूता विधिमुखा अपि तुष्टुवुरम्बिकाम्॥

जय जय जननि जगल्लयपालनसर्जनविभवे समचितिरूपे।
सर्वाऽऽभासनतनुरपि वितता संविदनुत्तरमात्रशरीरा॥ ७६॥
नैपुण्यमेतद्दर्पणसदृशं बाह्यनिरोधेऽप्यतिचित्रं ते।
विजयत्येतत्तव दुर्घटनाघटनाशक्तिर्महतीसत्ता॥ ७७॥
स्वं रूपं तद्विततमपीश्वरि दुर्घटशक्त्या परिमितरूपम्।
कृत्वा दर्शनदृश्यविभेदान् विविधान् सर्वान् परिभासयसि॥ ७८॥
एवं स्वीयं रूपमनेकं परिमितरूपा पश्यन्ती त्वम्।
बन्धकं चित्परिमृश्याऽन्तर्यत्नाद्भूयो भासि यथावत्॥ ७९॥
स्वात्माऽऽदर्शे प्रविततलीलां भावयसीत्थं स्वातन्त्र्यात्त्वम्।
दृष्ट्वा कल्पितमेतत्स्वीयं नन्दस्यनिशं देवि नमस्ते॥ ८०॥

के द्वारा जो तुम्हारे पास पहुँचना चाहते हैं, उनका समय बेकार जाता है। हे जगदम्बे! तुम्हारी चिन्मयी जो कला है, उसे अपने हृदय में उपस्थित क्षण भी जो सोचते हैं, वे धन्य हैं॥ ७१॥ अपने हृदय की तृष्णा को छोड़कर अपने अन्तरंग की वासना को हटाकर स्वच्छ दर्पण के तुल्य अपनी आत्मा को ही हे जननि! तुम्हारी कला मानकर जो योगी तुम्हें देखते हैं, वे परम सुख के पद प्राप्त करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं॥ ७२॥ इस तरह बहुत देर तक तुम्हारे स्वरूप का चिन्तन कर अन्तःसंसार में दृढ़ भाव से जो अवस्थित हैं, वह तो उनका नैसर्गिक स्वभाव है; उसके बाद बाहर की अशेष दुनिया को तुम्हारा विलास मानकर जो देखते हैं, वे योगीन्द्र के भी पूज्य हैं॥ ७३॥ हे ललिते! मैं तुम्हारे चरणकमलों का बहुत थोड़ा परिचय पाकर भीतर से हमेशा हर जगह वचन-विन्यास या चिन्तन में तुम्हारे अणु के बिना कुछ भी नहीं जानता, इसीलिए मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ॥ ७४॥ इस तरह स्तुति कर अमरगुरु बृहस्पति ने धरती पर दण्डवत् होकर प्रणाम किया। उसके बाद गुणभूत ब्रह्मा-प्रमुख देवताओं ने भगवती की स्तुति प्रारम्भ की॥ ७५॥ समचिति रूप वाली, संसार के जन्म-मरण और पालन करने वाली हे जननि! तुम्हारी जय हो। तुम्हारी देह विस्तृत रूप से सबमें आभासित हो, फिर भी तुम ज्ञानस्वरूपा हो, अनुत्तर मात्र तुम्हारी देह है॥ ७६॥ तुम्हारी यह निपुणता आइने की तरह है, बाहरी निरोध के बावजूद तुम अतिचित्रित हो। तुम्हारी यह दुर्घटना की महती घटना शक्ति वाली सत्ता की जय हो॥ ७७॥ तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त विस्तृत होने के बावजूद हे परमेश्वरि! अपनी दुर्घट शक्ति से परिमित रूप में हो, उसका दर्शन कर विविध दृश्यभेदों से सबको परिभासित करती हो॥ ७८॥ इस तरह से अपने अनेक रूपों को परिमित रूप में ही देखती हो। चित्शक्ति का चिन्तन करते हुए अन्तःप्रयास से फिर तुम यथावत् दीख पड़ती हो॥ ७९॥ अपनी आत्मा रूपी आइने में इस तरह विस्तृत लीला के रूप में अपनी स्वतन्त्रता के कारण ही भावना में आती हो, अपने इन कल्पित स्वरूपों को देखकर प्रसन्न हो,

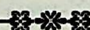
सन्ततलीलामिति यः कश्चन शक्त्या भिन्नस्तव जानीयात्।
स च लोकानां त्वमिव महेश्वरि लीलाद्रष्टा नन्दति देवः ॥ ८१ ॥
गूढं रूपं तव सविलासं द्रष्टुं शक्ता न हि ये दीनाः।
तेषामेतत्परमं रूपं प्रकटितमक्ष्णोः फलसञ्जननम् ॥ ८२ ॥
कुङ्कुमशोणं गुरुकुचनम्रं चन्द्रकलाऽऽढ्यं सुललितरूपम्।
सृणिशरचापान् पाशं बिभ्रद्वयमिह भूयः प्रणमामस्तत् ॥ ८३ ॥
स्तुत्वैवमपि ब्रह्माद्याः प्रणेमुः पादसन्निधौ। अथ तान् प्राह परमा वत्सा उत्तिष्ठत द्रुतम् ॥ ८४ ॥
एषाऽहं कृतसन्नाहा प्राप्ता शत्रुवधाय वः। किं वोऽभिलषितं भूयः प्रतीच्छध्वं गुणेश्वराः ॥ ८५ ॥
त्वमप्याङ्गिरस ब्रूहि वाञ्छितं किं ददामि ते। निशम्यैवं वचो देव्याः प्रोचुर्ब्रह्मादयस्ततः ॥ ८६ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिता-
ऽऽविर्भावो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२५३ ॥



इसलिए हे देवि! तुम्हें नमस्कार है ॥ ८० ॥ हर समय चलती तुम्हारी लीला को जो कोई तुम्हारी शक्ति से भिन्न जानता है, वह लोकों को हे महेश्वरि! तुम्हारी लीला के रूप में देखने वाला देवता प्रसन्न होता है ॥ ८१ ॥ तुम्हारे इस गूढ़ सविलास रूप को देखने में दीन व्यक्ति समर्थ नहीं है, उसके लिए तुमने यह रूप प्रकटित कर उसकी आँख होने का उसे फल दिया है ॥ ८२ ॥ गहरा लाल कुंकुम, अपने भार से झुके कुचद्वय, चन्द्रकला की तरह सुललित रूप; अंकुश, बाण, धनुष, पाश हाथ में लिये हे देवि! फिर हम तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥ ८३ ॥ इस तरह स्तुति कर ब्रह्मा प्रभृति देवताओं ने चरणों में गिरकर प्रणाम किया। उन्हें शीघ्र उठाकर त्रिपुरा ने कहा—हे वत्स! ॥ ८४ ॥ यह मैंने जो शरीर धारण किया है, इसे तुमने शत्रुवध के लिए प्राप्त किया है। तुम्हारी और जो कुछ मनोकामना हो उसकी प्रतीक्षा करो ॥ ८५ ॥ हे अंगिरापुत्र! तुम भी अपना वाञ्छित बोलो, मैं तुम्हें दूँगी। देवी की यह बात सुनकर ब्रह्मादि देवताओं ने कहा ॥ ८६ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललिता-
आविर्भाव नामक एक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४२५३ ॥



अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रृणु कुम्भोद्भव मुने ब्रह्मादीनां वचस्ततः । प्राहुर्ब्रह्ममुखा देवीं भक्तिनम्रसुमूर्तयः ॥ १ ॥
भूय एवं महापत्सु जगतां रक्षणोद्यता । विधेयममराऽरीणां शत्रूणां प्रविहिंसनम् ॥ २ ॥
मातः श्रृणु कथं भण्डदैत्यो भूयस्त्वया हतः । नूनं त्रिलोचनेनाऽसौ सर्वतोऽमरतां गतः ॥ ३ ॥
कथं वाऽमरकार्यं स्यात् कथं चाऽसुरघातनम् । श्रुत्वैवं धातृमुख्यानां वचः सा प्राह शङ्करी ॥
मा कृथाः पद्मयोने त्वं शङ्कामत्राऽसुराऽऽहतौ । माऽहं योनिसमुद्भूता मनसा वाऽपि कस्यचित् ॥
अग्निकुण्डसमुद्भूता स्त्रीस्वरूपाऽस्म्यलौकिकी । अप्रसिद्धेन चाऽस्त्रेण निहन्म्येनं महासुरम् ॥
श्रुत्वैवं ललितावाक्यं जहुश्चिन्तां गुणेश्वराः । अथोवाचाऽमरगुरुः पराशक्तिं कृताञ्जलिः ॥
देवि त्वां सर्वजननीमेवंरूपां महेश्वरीम् । पश्यन्तु शक्रप्रमुखा भूयासुस्तेन पाविताः ॥ ८ ॥
निशम्याऽऽङ्गिरसवचः प्राह सा त्रिपुरेश्वरी । श्रृणु जीवशक्रमुखा नैवं शक्तिमयीं तनुम् ॥ ९ ॥
ममैते द्रष्टुमप्यर्हा नाऽन्यैर्दृष्टमिदं वपुः । न हि साधारणः कश्चिदेवंरूपां प्रपश्यति ॥ १० ॥
यूयं मेऽस्यास्तनोर्भक्ताश्चैतद्ध्यानपराः सदा । अतो वो दर्शितं चैतन्नान्यैर्दृष्टं कदाचन ॥ ११ ॥
रूपान्तरं परिमितं तत् प्रपश्यतु वज्रभृत् । अथ भूयोऽपि बहुधा प्रार्थयामास तां गुरुः ॥ १२ ॥
प्रदर्शयैतच्छक्राय चेति सा गुरुमब्रवीत् । यदि मामीदृशीं शक्रः पश्येत्तच्छृणु वाक्यं ते ॥ १३ ॥

✻ विमला ✻

हे कुम्भज ऋषि! आप ब्रह्मादि देवताओं की बात सुने। तब ब्रह्मा-प्रमुख देवताओं ने भक्तिपूर्वक प्रणाम कर देवी से कहा ॥ १ ॥ फिर इस तरह महाविपत्ति में फँसे संसार की रक्षा करने में संलग्न आप हम देवताओं के शत्रुओं का हनन करे ॥ २ ॥ हे माँ! सुनो, भगवान् शिव से भण्ड दैत्य हर ओर से अमरता प्राप्त कर तुम्हारे द्वारा वह कैसे मारा जायेगा? ॥ ३ ॥ अथवा देवताओं का कार्य कैसे सधेगा? अथवा असुरों का विनाश कैसे होगा? विधाता-प्रमुख देवताओं की यह बात सुनकर शंकरी ने यह कहा ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मदेव! तुम व्यर्थ कष्ट नहीं करो, असुरों की मृत्यु के सम्बन्ध में शंका भी मत करो। मैं अयोनिजा हूँ, मन से भी मैं किसी की हत्या नहीं कर सकती ॥ ५ ॥ अग्निकुण्ड से मेरी उत्पत्ति हुई है, अलौकिक स्त्री के स्वरूप में हूँ; अप्रसिद्ध हथियार से मैं उसे कैसे मार सकती हूँ? ॥ ६ ॥ ललिता की यह बात सुनकर देवगण ने चिन्ता छोड़ दी। देवगुरु ने अञ्जलि बाँध कर उस पराशक्ति से कहा ॥ ७ ॥ हे देवि! तुम सबकी मातृरूपा महेश्वरी हो। इन्द्र-प्रमुख देवताओं की ओर देखो, इनके दृष्टिपथ में तो आओ ॥ ८ ॥ बृहस्पति की बात सुनकर उस त्रिपुरेश्वरी ने कहा—हे बृहस्पति! इन्द्रादि प्रमुख देवताओं की देह में यह शक्ति नहीं है ॥ ९ ॥ मेरे देखने योग्य यह शरीर दूसरों से नहीं देखा जा सकता है। कोई साधारण व्यक्ति ऐसा मेरा रूप नहीं देख सकता है ॥ १० ॥ तुम सब मेरे इस देह के भक्त हो, इसी रूप का सदैव ध्यान करते हो, इसीलिए तुम्हें यह रूपनयन पथगामी हुआ है। दूसरे इसे कभी नहीं देख सकते ॥ ११ ॥ मेरा परिमित रूपान्तर इन्द्र देख सकते हैं। फिर गुरु बृहस्पति ने इसके लिए बार-बार प्रार्थना की ॥ १२ ॥ इस तरह गुरु ने इन्द्र को यह रूप दिखलाने का देवी से आग्रह किया। तब देवी ने गुरु से कहा—यदि वह मेरा यह रूप देखना चाहता है तो सुनो ॥ १३ ॥ श्रीसूक्त की विधि

मां समाराधयतु स श्रीसूक्तविधिना ततः । दर्शयिष्यामि तस्मै स्वमिदं रूपं न संशयः ॥ १४॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छितान् देवान् सुधादृष्ट्या प्रबोध्य सा । अन्तर्धानं ययौ तत्र ब्रह्मादीनां प्रपश्यताम् ॥
अथोत्थिताः शक्रमुखा देवाः सर्वे बृहस्पतेः । श्रुत्वा श्रीत्रिपुरादेव्या आविर्भावं ततो वृषा ॥ १६ ॥
देवैः समेतो गुरुणा विज्ञातोपासनक्रमः । लक्ष्मीसूक्तविधानेन भक्तिश्रद्धाऽतिनिर्भरः ॥ १७॥
आराधयामास परां त्रिपुरां परमेश्वरीम् । एवं तस्याऽऽराधयतो मासाः षट् पञ्च चाऽत्ययुः ॥
तदन्तरे दैत्यगुरुर्ज्ञात्वाऽमरविचेष्टितम् । भण्डासुराय तद्वृत्तं ज्ञापयामास सर्वशः ॥ १९॥
शृणु दैत्यपते शत्रुः सुरेशो हिमवद्गिरौ । साम्प्रतं परमां शक्तिमुपतिष्ठति भक्तितः ॥ २०॥
सा प्रसन्ना क्षणेनैव त्वां सपुत्रं सबान्धवम् । ध्वंसयिष्यति दावाग्निस्तृणदारुचयं यथा ॥ २१॥
यतस्व तावदेव त्वं यावन्नाशं न यास्यसि । नाऽत्रोपास्यो दृश्यतेऽन्यः साम्नो बलवदाश्रिते ॥
दिवं भुवं समर्प्याऽऽशु सघनं सपरिच्छदम् । इन्द्राय पातालमात्रराज्यस्तां जगदीश्वरीम् ॥ २३॥
प्रयाहि शरणं देवीमन्यथा नाशमेष्यसि । इत्युक्त्वा पूजितस्तेन जगामाऽभिमतां गतिम् ॥ २४॥
अथ भण्डासुरो दैत्यो मन्त्रिभिर्मन्त्रशिक्षणैः । मन्त्रयामास दैत्योऽसौ सेवितः शून्यके पुरे ॥ २५॥
राज्ञाऽऽज्ञप्ता मन्त्रिणस्ते प्रोचुः स्वस्वमताऽनुगम् । कश्चित् साम भेदमन्यः परो दानमुवाच ह ॥
दण्डमाहुस्तथा केचिदेवं व्याकुलिता सभा । तदन्तरे विशुक्रस्य पुत्रः शुक्रसमो मतौ ॥ २७॥
श्रुतवर्मेति विख्यातः प्राह नत्वा सुरेश्वरम् । शृणु राजन्नर्थशास्त्रमर्यादासहितं वचः ॥ २८॥
बाह्यदृष्टिर्दोषवती निसर्गेणैव चञ्चला । दृष्ट्या बुद्ध्याख्यया सत्त्वरूपया विमृशेत् कृतिम् ॥

से वह मेरी आराधना करे। तब उसे यह रूप दिखला दूँगी, इसमें संशय न करो॥ १४॥ इतना कह कर ब्रह्मादि देवताओं के देखते रहते ही अपनी सुधादृष्टि से बेहोश देवताओं को होश में लाकर स्वयं तिरोहित हो गई॥ १५॥ उसके बाद इन्द्र-प्रमुख सभी देवगण उठ खड़े हुए। तब बृहस्पति से श्रीत्रिपुरा देवी का आविर्भाव सुनकर इन्द्र ने॥ १६॥ भक्तिश्रद्धासमन्वित होकर गुरु द्वारा निर्दिष्ट उपासना क्रम से देवताओं के साथ श्रीसूक्त विधि से उस त्रिपुरा देवी की आराधना शुरू कर दी। इस तरह त्रिपुरा देवी की आराधना करते पैंसठ महीने बीत गये॥ १७-१८॥ इसी बीच देवताओं की यह चेष्टा दैत्यगुरु शुक्राचार्य को पता चल गया। उन्होंने भण्डासुर को सारी बातें बतला कर कहा॥ १९॥ हे दैत्यराज! सुनो। हिमालय पर तुम्हारा शत्रु इन्द्र इस समय उस परमाशक्ति की भक्तिपूर्वक आराधना में तत्पर है॥ २०॥ वह अगर प्रसन्न हो गई तो क्षणभर में तुम्हें पुत्र, बन्धु और बान्धवों के साथ उसी तरह विनष्ट कर देगी जैसे घास-फूस के ढेर को दावाग्नि॥ २१॥ जब तक तुम्हारा विनाश न हो जाय तब तक तुम प्रयास करो। क्योंकि इसकी शान्ति के लिए कोई शक्तिशाली अन्य उपाय नहीं है॥ २२॥ अपने धन और परिच्छद के साथ सब कुछ धरती और स्वर्ग इन्द्र को समर्पित कर उस जगदीश्वरी का ध्यान कर स्वयं पाताललोक का ही राज्य करो॥ २३॥ उसी भगवती की शरण में जाओ, अन्यथा कोई दूसरा उपाय नहीं है; तुम्हारा नाश अवश्य होगा। इतना कहकर उनसे पूजित होकर अपने स्थान लौट गये॥ २४॥ इसके बाद भण्डासुर दैत्य मन्त्रियों से सलाह-विचार करने के लिए मन्त्रियों से घिरे शून्य नगर चला गया॥ २५॥ राजा से आदेश पाकर मन्त्रिगण ने अपना-अपना अभिमत सुनाया। किसी ने साम बतलाया, तो किसी ने भेद और किसी ने दान कहा॥ २६॥ और किसी ने दण्ड बतलाया। इस तरह सारा मन्त्रिमण्डल व्याकुल हो उठा। इसी बीच विशुक्र का बेटा शुक्र के समान बुद्धिमान्॥ २७॥ वह श्रुतवर्मा के नाम से विख्यात था, उसने राजा को प्रणाम कर कहा—सुनो राजन्! मर्यादित अर्थशास्त्र की बात यह है॥ २८॥ बाहरी

अविमृश्यकरो वह्नौ पतङ्ग इव नश्यति । सुविमृश्यकरो यस्तु तं सम्पत् प्रवृणोत्यलम् ॥ ३० ॥
मन्त्री वृथाऽभिनिवेशः स्फुटदृष्टिर्द्दुतग्रहः । राजाऽभिमतवक्ता च सततं स्वार्थतत्परः ॥ ३१ ॥
नाशयेद्राज्यसहितं राजानं नाऽत्र संशयः । यथा नौरासनच्छिद्रा सपान्थं नाविकं जले ॥ ३२ ॥
तस्माद्दुर्मन्त्रिणस्त्याज्या राज्ञा राज्यं बुभूषता । शृण्वहं तेऽभिधास्यामि कर्तव्याऽनन्तरक्रियाम् ॥
महाराज त्वया देवात्तपसा तोषितात् पुरा । अप्राप्तमभयं स्त्रीभ्यो मत्वाऽल्पमिति ते मुधा ॥
तदत्र न हि विस्रम्भः पुरा महिषदानवः । राज्यं त्रिभुवने प्राप्य स्त्रिया विनिहतो बली ॥ ३५ ॥
पुरा शुम्भनिशुम्भौ च बलिनावतिविक्रमौ । हतौ युद्धे चण्डिकया सबलाविति नः श्रुतम् ॥ ३६ ॥
जये लिङ्गं न हेतुः स्यान्निमित्तं बुद्धिविक्रमौ । अन्यच्च तेऽभिधास्यामि चिरमेतद्धि संस्थितम् ॥
दैत्यदानवरक्षःसु यो यः शुभतरो ह्यभूत् । तं तमुद्धरते विष्णुर्मार्गस्थमिव कण्टकम् ॥ ३८ ॥
तं नः श्रुतं तेन दैत्यरिपुणा हरिणा खलु । तोषिता परमाशक्तिराविर्भूता वधाय ते ॥ ३९ ॥
होमाऽग्निकुण्डाद्यद्योनिमनोभ्यां न च साऽभवत् । अमानसा योनिजेभ्यो नाऽमरत्वं त्वया वृतम् ॥
आचार्यो भगवान् शुक्रः सर्वबुद्धिमतां वरः । स यदाह न चाऽल्पं तद्विद्धि दैत्यगणेश्वरः ॥ ४१ ॥
तस्माद्गुरूक्तमेवेह युक्तं मे प्रतिभासते । मनीषिणा सर्वयत्नैर्निरस्यं कालजं भयम् ॥ ४२ ॥
अभये विक्रमो वर्यः शान्तिरेव भयाऽऽगमे । सर्वथा मूलनाशो हि शक्त्याऽपोह्य प्रजानता ॥
कृत्ते मूले फलाशा का मूलगोपे फलोदयः । अत्र मेऽभिमतं राजन् शृणु बुद्ध्या विचारितम् ॥ ४४ ॥

दृष्टि से दोषवती, निसर्ग से चंचला दृष्टि से बुद्धि नाम का सत्त्व रूप जो तथ्य है, उस पर विचार करना चाहिए॥ २९ ॥ बिना विचार करने वाले फतिंगे की तरह आग में कूदकर नष्ट होते हैं। विचारपूर्वक जो कोई काम करता हैं, सम्पत्ति उसी का वरण करती है॥ ३० ॥ जिस मन्त्री की दृष्टि स्पष्ट नहीं हो उसका अभिनिवेश बेकार है। राजा के सामने ठकुरसुहाती बोलने वाला तो स्वार्थी होता है॥ ३१ ॥ राज्य सहित राजा को वह विनष्ट कर देता है, इसमें सन्देह नहीं है। जैसे फुटही नाव पर सवार व्यक्ति नाविक सहित डूब जाता है॥ ३२ ॥ इसलिए राज्य में सुशोभित दुर्मन्त्रियों का परित्याग आवश्यक है। हे राजन्! तुम्हारा कर्तव्य बतलाता हूँ, इसके बाद जो उचित समझो करो॥ ३३ ॥ महाराज! आप तपस्या से देव को सन्तुष्ट कर अप्राप्य अभयदान और स्त्रियों से अपराजिता रहने का वर प्राप्त कर प्रसन्न हैं, पर यह बहुत छोटा है॥ ३४॥ इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि आपसे पहले महिष दानव त्रिभुवन का राज्य प्राप्त कर महाबली होने के बावजूद स्त्री के हाथों मारा गया॥ ३५ ॥ इससे भी पहले शुम्भ और निशुम्भ शक्तिशाली होते हुए भी चण्डिका से युद्ध में मारे गये॥ ३६ ॥ विजय में लिङ्ग कारण नहीं होता, विजय का निमित्त बुद्धि और पराक्रम ही होते हैं। दूसरी बात आपसे कहता हूँ, जो बहुत दिनों से चला आ रहा है॥ ३७॥ दैत्य-दानव और राक्षसों में जो-जो शुभतर हुए उन सबों को विष्णु ने राह के काँटे की तरह उद्धार कर दिया॥ ३८॥ उसे आपने नहीं सुना? दैत्यों के शत्रु इन्द्र ने उस पराशक्ति को सन्तुष्ट कर तुम्हारे वध के लिए प्रकट कर लिया॥ ३९ ॥ होमाग्निकुण्ड से अयोनिज और मन से क्या उत्पन्न नहीं हुई है? आपने तो अमानसा और योनिजा से अमरता का वर माँगा था॥ ४० ॥ सभी बुद्धिमानों में श्रेष्ठ आपके गुरु भगवान् शुक्र हैं, उन्होंने जो बतलाया, उसे कम मत समझिए॥ ४१ ॥ इसलिए गुरु का कथन ही इस सन्दर्भ में मुझे युक्तिसंगत प्रतीत होता है। बुद्धिमान् व्यक्ति हर तरह के प्रयास से सामयिक भय को विनष्ट कर देते हैं॥ ४२॥ पराक्रमी लोग अभयदान देते हैं, भय के आगमन पर शान्ति की खोज करते हैं। शक्ति के प्रतिकार को बिना जाने सर्वथा मूल नष्ट हो जाता है॥ ४३ ॥ जिस पेड़ की जड़ ही काट दी गई हो, उससे फल की आशा

गुरूक्तरीत्या संशान्तिं सम्पाद्य प्रकृते पुनः। तपसा पूर्ववद्देवान् शेषं भयमपोह्य च॥ ४५॥
ततो भूयस्त्रिजगतीं वशे कुरु सुविक्रमः। इति तेऽभिहितो मन्त्रो नाऽतः क्षेमं भवेत् क्वचित्॥
विमृश्य यदभीष्टं ते तदाचर न ते चिरम्। श्रुतवर्मवचः श्रुत्वा भण्डो दैत्यपतिर्वचः॥ ४७॥
प्राह तं दूषयन्नेव पक्षं दैत्यसभागतः। मर्तुकामस्याऽगदवन्न तत्तस्य ह्यरोचत॥ ४८॥
तदन्तरे मदोन्मत्तो दैत्यः प्रोवाच भूपतिम्। दैत्येश्वर मया प्रोक्तं शृण्वत्राऽतिसुखावहम्॥ ४९॥
न प्रवेश्या मन्त्रगोष्ठ्यां बालाः कातरतां गताः। एष बालस्तव भुजबलं नो वेत्ति किञ्चन॥ ५०॥
भीरोर्विप्रस्योशनसो वाक्यादतितरामयम्। राज्ञां युद्धप्रसङ्गेषु का विप्रस्य भवेन्मतिः॥ ५१॥
विप्रा वैतानधिषणा वेदविद्याविचक्षणाः। निमन्त्रणविधानज्ञास्तेषां युद्धेषु का गतिः॥ ५२॥
स्वधीतेस्तीक्ष्णधाराज्ञाः शूराः कुशसमित्स्तृतौ। न खड्गधारां जानन्ति न शूराः शरसंस्तृतौ॥
हन्त विप्रैरपि यदि युद्धं मन्त्रेण जीयते। ग्रामसिंहबिभीषितैस्तदेभा मूत्रमुत्सृजुः॥ ५४॥
यदि विप्रा युद्धकृत्यमपि जानीयुरुद्धतम्। तर्हि मत्तेभकुम्भस्य विपाटो जम्बुकैः कृतः॥ ५५॥
उत्तिष्ठैष क्षणो राजन्न विश्रान्तिं समर्हति। योषिद्वा पुरुषो वा नोपेक्ष्यः शत्रुतां गतः॥ ५६॥
हन्ताऽद्य योषिद्दैत्येन्द्र मेरून्मूलनविक्रमम्। विजेष्यति प्रतापाऽर्कसन्तापितजगत्त्रयम्॥ ५७॥
तदा नीलोत्पलदलैर्निर्भिद्येत महीधरः। कुशाग्रैरपि विद्धः स्याल्लोहशैलो निरन्तरः॥ ५८॥
अथ वा त्वमिहैवाऽऽस्व कामभोगपरः सुखम्। मामाज्ञापय ते भृत्यं गत्वाऽहं तान्निमेषतः॥

कैसी? जिसने जड़ की रक्षा की है, उसे फल भी मिला है। हे राजन्! इस विषय पर मेरा यही अभिमत है, इसे सुनिए और बुद्धिपूर्वक विचारिए॥ ४४॥ गुरु ने जिस तरह आपसे कहा है उसी तरह शान्ति का सम्पादन कीजिए और प्रकृति में तप से पहले की तरह बचे-खुचे देवताओं को भयमुक्त कीजिए॥ ४५॥ इसके बाद अपनी तपस्या से हे सुविक्रम! फिर तीनों लोकों को वशवर्ती बना ले। यही आपके लिए मेरी मन्त्रणा है, इससे भिन्न कहीं आपका कोई कल्याण नहीं है॥ ४६॥ विचार कर जो आपको अच्छा लगे कीजिए, पर देर मत कीजिए। श्रुतवर्मा की बात सुनकर दैत्यपति भण्ड॥ ४७॥ इस पक्ष को गलत ठहराते हुए दैत्य की सभा में आ गया। मरणासन्न व्यक्ति को जैसे औषधि नहीं रुचती उसी तरह उसे यह बात गले से नीचे नहीं उतरी॥ ४८॥ इसके बाद मदोन्मत्त दैत्य ने दैत्यराज से कहा—हे दैत्येश्वर! मैंने आपसे जो कुछ कहा, वह अत्यन्त सुख देने वाला है, उस पर ध्यान दीजिए॥ ४९॥ बच्चे और कातर व्यक्ति को मन्त्रणा की गोष्ठी में प्रवेश नहीं होना चाहिए। यह छोटा लड़का है, आपके बाहुबल को यह क्या जाने?॥ ५०॥ ब्राह्मण शुक्र तो डरपोक है, उसके वाक्य का क्या महत्त्व? युद्ध-प्रसंग में किसी राजा को ब्राह्मण की बुद्धि का क्या भरोसा?॥ ५१॥ ब्राह्मण तो यज्ञीय बुद्धि वाले, वेद-विद्या विचक्षण होते हैं, निमन्त्रण-विधान को जानते हैं; युद्ध में उनकी क्या गति है?॥ ५२॥ अपने अध्ययन में तीक्ष्ण धार शूर कुशाग्र बुद्धि होते हैं, दूसरे लोग तलवार की धार नहीं जानते और वीर बाण की दुनिया में रहते हैं॥ ५३॥ हन्त! ब्राह्मण से भी मन्त्र से यदि युद्ध जीता जाय तो गाँव में सिंह के भय से हाथी पेशाब करने लगे॥ ५४॥ यदि ब्राह्मण युद्ध-कृत्य को जानने लगे तो मतवाले हाथी के माथे को सियार जरूर चीर देगा॥ ५५॥ हे राजन्! उठिए! क्षणभर भी विश्राम मत कीजिए; औरत हो या मर्द, यदि वह शत्रु है तो उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए॥ ५६॥ मेरु पहाड़ को हिलाने वाला अपना पराक्रम याद कीजिए, जो भी औरत सामने डटे उसे मार डालिए; आपकी विजय निश्चित है, आपके प्रताप रूपी सूर्य से तीनों लोग सन्तापित हैं॥ ५७॥ तब यह मानिए कि नीलकमल से पर्वत को भेद दिया गया और कुश की नोक से लोहे के पर्वत को निरन्तर छेद डाला॥ ५८॥ अथवा आप

ब्रह्मादींस्तां च बद्ध्वा वा हत्वा वोपहरामि ते। श्रुत्वैवं दैत्यवचनं प्रहृष्टो भण्डदानवः॥ ६०॥
प्रहस्य श्रुतवर्माणं प्राह कालवशं गतः। वत्स किं युद्धवार्ताभिरेव भीतोऽसि वै मुधा॥ ६१॥
नैवमस्मत्कुले कश्चिज्जातो न भविताऽपि वा। यः स्त्रियो युद्धवार्ताभिरेव भीतो नपुंसकः॥
बालोऽसि गच्छ कान्ताभिश्चाटुभाषणमर्हसि। धिङ्मां यस्त्वादृशं चक्रे मन्त्रिणं मन्त्रनाशकम्॥
धीराणामपि धैर्याद्रिवज्रवाक्कौशलं खलम्। इत्युक्त्वा प्रोत्थितः खड्गहस्तो देवान् विहिंसितुम्॥
कोटिकोट्यसुरैर्युक्तः शूरैश्चित्राऽऽयुधैर्ययौ। यत्र शक्रमुखा देवास्त्रिपुरां समुपस्थिताः॥ ६५॥
आगतं भण्डदैत्येशं श्रुत्वा शक्रमुखाः सुराः। अत्यन्तभीता देवेशीमुच्चैः पाहीति सञ्जगुः॥ ६६॥
भीतान् विदित्वा त्रिपुरा प्राह नित्यां चतुर्दशीम्। गच्छ ज्वालामालिनि त्वं रक्ष भीतान् सुरान् द्रुतम्॥
आज्ञप्तैवं यतो दैत्या आयान्त्यमरहिंसकाः। ज्वालया तान् रुरोधोच्चैर्ज्वालामालिनिका शिवा॥
दृष्ट्वा ज्वालावृतं देशं मत्वा दावाग्निसम्प्लुतान्। हतान् देवान् प्रहर्षेण भण्डदैत्यः पुनर्ययौ॥ ६९॥
देवाश्च दैत्यसेनानां श्रुत्वा कोलाहलं भृशम्। वित्रस्ता मर्तुकामास्ते छित्त्वाऽङ्गानि समन्ततः॥
अग्निकुण्डे देवतायाः प्रीतये जुहुवुः पृथक्। अशेषाऽङ्गानि हुत्वैवं पूर्णाहुतितया तनुम्॥ ७१॥
विशिष्टां होतुकामास्ते पेठुर्मन्त्रानुपांशुतः। तदन्तरे सा त्रिपुरा भक्तरक्षापरायणा॥ ७२॥
कुण्डमध्यादाविरासीत्तडित्कोटिसमप्रभा। जातश्चटचटाशब्दः कुण्डमध्यान्महोन्नतः॥ ७३॥
ज्वाला व्यवर्धताऽतीव वह्नेस्ते ददृशुः सुराः। ज्वालामध्ये महादेवीं सर्वसौन्दर्यसन्ततिम्॥ ७४॥
हृष्टा जय जयेत्युच्चैरवोचुर्दण्डवन्नताः। अथोत्थाय शक्रमुखास्तुष्टुवुस्तां महेश्वरीम्॥ ७५॥

यहीं ठहर कर कामभोग का आनन्द ले। मेरे जैसे नौकरों को आदेश दे कि एक पल में वहाँ जाकर॥ ५९॥ ब्रह्मा प्रभृति देवों को बाँध कर या मार कर आपके सामने उपहार ला दूँ। दैत्य की यह बात सुनकर भण्ड दानव बड़ा खुश हुआ॥ ६०॥ काल के वशवर्ती दैत्यराज ने हँसते हुए श्रुतवर्मा से कहा—बेटे! युद्ध की वार्ता से तुम व्यर्थ ही इस तरह डर रहे हो॥ ६१॥ हमारे कुल में ऐसा न कोई जन्म लिया और न कोई जन्म लेगा, जो औरत के साथ युद्ध की बात से ही नपुंसक की तरह डर गया॥ ६२॥ बच्चे हो, जाओ, औरताना बातें यहाँ मत करो; मुझे धिक्कार है कि तुम्हारे जैसे मन्त्री से मैंने मन्त्रणा की॥ ६३॥ धीरों के भी धीर पर्वत वज्र के प्रहार से नष्ट हो जाता है। इतना कहकर देवताओं को मारने के लिए हाथ में तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ॥ ६४॥ करोड़ों-करोड़ चित्र-विचित्र हथियारों के साथ शूरवीर असुरों को संग लेकर जहाँ इन्द्रादि प्रमुख देवता त्रिपुरा की पूजा कर रहे थे, वहाँ पहुँच गया॥ ६५॥ इधर इन्द्रादि प्रमुख भण्ड दैत्य का आगमन सुनकर अत्यन्त डरकर भगवती त्रिपुरा से ऊँची आवाज में 'रक्षा करो, रक्षा करो' पुकारने लगे॥ ६६॥ इन देवताओं को डरा जानकर देवी त्रिपुरा ने अपनी शक्तियों से कहा—अरि ज्वालामालिनी! जाओ और इन डरे देवताओं की शीघ्र रक्षा करो॥ ६७॥ इस तरह आदेश पाते ही देवताओं की हत्या करने के लिए आने वाले दैत्यों को ज्वालामालिनिका शिवा ने अपनी ज्वाला से रोक दिया॥ ६८॥ इस देश को ज्वाला से घिरे देखकर दावाग्नि में देवताओं को स्वतः मरे मानकर खुशी के साथ भण्ड पुनः लौट गया॥ ६९॥ इधर देवगण दैत्यों का कोलाहल सुनकर डरते हुए मृत्युकामना से अपने अंगों को काट-काट कर॥ ७०॥ अग्निकुण्ड में देवताओं की प्रसन्नता के लिए हवन करने लगे। सारे अंगों से हवन कर पूर्णाहुति के लिए शरीर को॥ ७१॥ देने के लिए उपांशु मन्त्र पढ़ने लगे। इसी बीच वह भक्तरक्षापरायणा त्रिपुरा॥ ७२॥ कुण्ड के बीच से आविर्भूत हुई। करोड़ों बिजली की कान्ति उनकी देह से फूट रही थी। चट्-चट् शब्द करते हुए कुण्ड के बीच से॥ ७३॥ ज्वाला बड़ी तेजी से बढ़ने लगी, जिसे देवताओं ने देखा। ज्वाला के बीच से सर्वसौन्दर्यसम्पन्न महादेवी

आजग्मुर्ब्रह्मविष्णवाद्या मुनयश्चर्षयस्तथा। पुष्पवृष्टिरभूद्व्योम्नो नेदुर्दुन्दुभयोऽपि च॥ ७६॥
ववुर्वाताः सुखस्पर्शाः सुगन्धा मृदुसञ्चराः। ब्रह्माद्याः सर्वतस्तस्याः पूजां चक्रुर्यथाविधि॥ ७७॥
महोपचारमाल्याद्यैरुपहारैर्विशेषतः। विविधैर्भक्ष्यभोज्याद्यैरासवैः पिशितैरपि॥ ७८॥
एवं सम्पूज्य देवेशीं तोषयामासुरुच्चकैः। गायनैर्नृत्यवाद्याद्यैरुत्सवैरपि भूरिशः॥ ७९॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे त्रिपुरा-
ऽऽविर्भावो नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४३३२॥

थी॥ ७४॥ इन्हें देखकर देवगण गिरकर जय-जयकार किये। फिर उठकर इन्द्र-प्रमुख देवताओं ने महेश्वरी की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया॥ ७५॥ ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति देवगण, मुनि और ऋषिगण शीघ्र वहाँ आ पहुँचे। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और नगाड़े की आवाज आने लगी॥ ७६॥ सुखस्पर्शी, सुगन्धयुक्त मन्द-मन्द समीर चलने लगे। ब्रह्मादि सभी देवों ने यथाविधि उनकी पूजा की॥ ७७॥ महोपचार, माला प्रभृति, विशेष उपहार, अनेक प्रकार के भक्ष्य-भोज्य पदार्थ, शराब और मांस से उन्होंने पूजा की॥ ७८॥ इस तरह देवी की पूजा कर उन्हें प्रसन्न किया; गीत, नृत्य और वाद्य आदि उत्सव मनाये जाने लगे॥ ७९॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में त्रिपुरा-
आविर्भाव नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४३३२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः



अथ शक्रमुखा देवा दृष्ट्वा तां परमेश्वरीम्। विधातृमुख्यानूचुस्ते देव्याः संस्थानहेतवे॥ १॥
श्रुत्वाऽमरवचो ब्रह्ममुखास्तां जगदीश्वरीम्। प्रणम्य प्रार्थयामासुर्यत्तच्छृणु घटोद्भव॥ २॥
परमेश्वरि शक्राद्यैस्तव संस्थानमीहितम्। अस्यां जगत्यां यन्नित्यं पश्यामस्त्वां महेश्वरीम्॥
वयं गुणेश्वरा नित्यं त्वत्कृपाऽऽत्तमहित्वतः। प्राप्य त्वदीयं ते लोकं पश्यामस्त्वत्पदाम्बुजम्॥
एते शक्रादयो देवा नियत्या नियतास्तव। ब्रह्माण्डभेदं नाऽर्हन्ति तत्त्वां द्रष्टुमभीप्सवः॥ ५॥
तदत्र लोकं निर्माय निवासं कर्तुमर्हसि। प्रार्थितेत्थं ब्रह्ममुखैः त्रिपुराम्बा महेश्वरी॥ ६॥
मेरुशृङ्गे विश्वकर्मनिर्मिते नगरे शुभे। अवसत् सपरीवारा यथा लोके स्वके तथा॥ ७॥
अथाऽर्थिता निजाऽर्धांशविभागपरिकल्पितम्। कामेश्वरं पतिं चक्रे समूढाऽभवदम्बिका॥
इत्थं हयाऽऽस्यगदितं निशम्य घटसम्भवः। पप्रच्छ विभवश्रुत्यां परायां जातकौतुकः॥ ९॥
हयग्रीव दयासिन्धो कुत्र संस्थं हि तत्पुरम्। कीदृशं किं प्रमाणञ्च यस्मिन् वसति सा परा॥ १०॥
इन्द्रादीनामप्रवेश्यं विश्वशिल्पिः कथं नु तम्। ज्ञातवान्नाम किं तस्य संस्थानञ्चापि कीदृशम्॥
अथाऽपि शक्रप्रमुखैः श्रीसूक्तविधिना ननु। आराधिता सा त्रिपुरा प्रसन्नाऽभवदम्बिका॥ १२॥
विधानं कीदृशं तस्य सूक्तञ्चाऽपि कथंविधम्। किं माहात्म्यं भवेत् सूक्तमेतन्मे वक्तुमर्हसि॥ १३॥
भक्तस्य तव शिष्यस्य कृपां कुरु हयानन। इत्थं पर्यनुयुक्तः स हयाऽऽस्यो मुनिसत्तमः॥ १४॥

*** विमला ***

इन्द्र-प्रमुख देवताओं ने उस परमेश्वरी को देखकर उनके स्वरूप-दर्शन के लिए विधाता सहित सबने मिलकर प्रार्थना की॥ १॥ हे कुम्भज ऋषि! देवताओं की बातें सुनकर ब्रह्मा-प्रमुख देवों ने उस जगदीश्वरी को प्रणाम कर क्या प्रार्थना की—सुनो॥ २॥ हे परमेश्वरि! इन्द्रादि देवगण आपके दर्शन चाहतें हैं। इस संसार में जो कुछ भी नित्य है उसमें हम तुम्हें ही देखते हैं॥ ३॥ हम देवगण प्रतिदिन तुम्हारी कृपा के अधीन महिमान्वित हैं, अतः तुम्हारे लोक में हम तुम्हारे चरणकमलों के ही दर्शन करते हैं॥ ४॥ ये सभी इन्द्रादि देवगण तुम्हारी नियति से नियत हैं। ये ब्रह्माण्ड का भेदन कहीं कर सकते हैं, अतः तुम्हारे दर्शन चाहते हैं॥ ५॥ इसलिए इस दुनिया में कहीं अपने लोक का निर्माण कर आप निवास कर सकती हैं। ब्रह्मादि प्रमुख देवगणों से महेश्वरी त्रिपुरा इस तरह प्रार्थिता होकर॥ ६॥ अपने जिस लोक में रहती है, उसी तरह विश्वकर्मा-निर्मित मेरुशृंग पर अपने परिचरों से घिरे रहने लगी॥ ७॥ अपने अर्धांश से परिकल्पित कामेश्वर को पति बनाकर देवताओं की प्रार्थना पर वह जगदम्बा स्थूल रूप से वहाँ निवास करने लगी॥ ८॥ हयग्रीव से इस तरह कथा सुनकर कुम्भज ऋषि ने उनके विभव के सम्बन्ध में उत्सुकता उत्पन्न होने पर उनसे पूछा॥ ९॥ हे हयग्रीव! आप तो दया के सागर हैं, वह नगरी कहाँ है? कैसी है? किस प्रमाण की है जहाँ वह जगदम्बा निवास करती है?॥ १०॥ वहाँ इन्द्रादि देवताओं का प्रवेश विश्वकर्मा ने क्यों रोक दिया? आपको तो पता होगा ही, उनका रूप कैसा है?॥ ११॥ इस पर भी इन्द्र-प्रमुख देवताओं ने श्रीसूक्त की विधि से त्रिपुरा की आराधना की। जगदम्बिका त्रिपुरा इस आराधना से प्रसन्न हुई॥ १२॥ उसकी आराधना का विधान कैसा है? श्रीसूक्त का विधान कैसा है? उसका माहात्म्य क्या है? यदि कह सकते हैं तो मुझे बतलायें॥ १३॥ हे हयग्रीव!

मत्वा योग्यं हि तच्छ्रुत्वा निजगाद स हर्षितः। शृणु कुम्भज वक्ष्यामि भक्तिश्रद्धायुतो ह्यसि॥
नैतदश्रद्दधानाय चाऽभक्ताय शठाय च। वक्तुमर्हं सर्वथैव धन्योऽसि त्वं महीतले॥ १६॥
यत्कथाश्रवणोत्साह ईदृशस्तव दृश्यते। एतस्य कारणं वेद्मि नैतदल्पफलं मुने॥ १७॥
गुणमूर्तिषु सर्वेषां भक्तिः साधारणी भवेत्। त्रिपुरापादभक्तिस्तु दुर्लभा सर्वतो भवेत्॥ १८॥
यत्र स्यात् त्रिपुराभक्तिस्तज्जन्म चरमं भवेत्। शिवविष्ण्वादिभक्तिस्तु द्वारमत्र प्रकीर्तितम्॥
क्रमेणाऽऽराध्य विष्णवादीन् प्राप्य श्रीपादसेवनम्। मुच्यते सर्वथा जन्तुर्नान्यथा कल्पकोटिभिः॥
अत्रोपपत्तिं वक्ष्यामि संशयस्ते भवेन्न हि। लोके साम्राज्ययुक्तस्य येऽनुगास्तारतम्यतः॥ २१॥
मुख्या मध्यास्तथा हीनास्ते तुष्टाः स्वपदं प्रति। अनिरोधं स्वोपरिस्थप्राप्तौ मार्गं दिशन्ति च॥
यथाऽऽदौ द्वारिकस्तुष्टो द्वारेष्वप्रतिबन्धनम्। प्राङ्गणेशप्राप्तिमाप दिशत्येव घटोद्भव॥ २३॥
ब्रह्माद्या गुणसम्भूतास्तत्समाराधका इति। न सन्देहस्तव भवेत् सुप्रसिद्धतयैव च॥ २४॥
वस्त्वद्वैतेऽपि लौकिक्या दृष्ट्या तन्नियतेः स्फुटम्। मुख्यगौणप्रभेदश्च यथा देहेषु वै शिरः॥ २५॥
नाऽत्राऽऽश्वासो दुष्कृतिनामन्धानाञ्च प्रपश्यताम्। मे च पादभवा देवाः सदा सेवनतत्पराः॥
त्वं महाभाग्यवान् ब्रह्मन् प्राप्तो यच्छ्रीपरारतिम्। एतत् सङ्गस्य माहात्म्यमहो भाग्यमहो तपः॥
शृणु ब्रह्मंस्तव परापादभक्तिप्रयोजकम्। यत्ते प्रिया सती लोपामुद्राऽऽख्या राजकन्यका॥ २८॥
पुरा सा पितृगेहस्था प्राप भक्तिं परापदे। तद्धेतुं ते प्रवक्ष्यामि न तज्जानाति कश्चन॥ २९॥

मैं आपका भक्त हूँ, आपका शिष्य हूँ, मुझ पर कृपा करें। इस तरह प्रार्थना करने पर उस मुनिश्रेष्ठ हयग्रीव ने॥ १४॥ कुम्भज को योग्य शिष्य मानकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे कुम्भज! सुनो, तुम भक्त हो, श्रद्धालु हो, इसलिए मैं तुम्हें कहता हूँ॥ १५॥ जिसको श्रद्धा नहीं है, जो अभक्त है, जो शठ है; उसके सामने यह महिमा-कथा कभी नहीं कहनी चाहिए। इस संसार में तुम धन्य हो॥ १६॥ इस कथा को सुनने का तुममें इतना उत्साह मैं देखता हूँ। हे मुने! मैं इसका कारण भी जानता हूँ, तुम्हारे सामान्य पुण्य का यह फल नहीं है॥ १७॥ देवताओं में भी यह भक्ति साधारण होती है, त्रिपुरा के चरण की भक्ति तो सबके लिए दुर्लभ है॥ १८॥ जिसमें त्रिपुरा की भक्ति होती है उसका यह जन्म तो अन्तिम होता है; शिव, विष्णु आदि की भक्ति तो त्रिपुराभक्ति का दरवाजा मात्र कहा गया है॥ १९॥ क्रम से पहले विष्णु आदि देवताओं की आराधना कर श्रीत्रिपुरा के चरण की सेवा करनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति सर्वथा मुक्त हो जाता है, अन्यथा करोड़ों कल्प तक उसकी मुक्ति नहीं होती॥ २०॥ उनकी उत्पत्ति बतलाता हूँ, इसमें तुम्हें संशय नहीं होना चाहिए। इस संसार में जो साम्राज्य युक्त हैं वे इनके चरणों की सेवा की आनुपातिक क्रम से॥ २१॥ उत्तम, मध्यम और अधम होकर अपने पद के प्रति सन्तुष्ट हैं, रुकावट रहित हैं; अपने से ऊपर वाले के द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलते हैं॥ २२॥ इसमें सर्वप्रथम सन्तुष्टद्वारिक है, वे द्वार पर अप्रतिबन्धित हैं। प्रांगणेश इनसे आदेश प्राप्त कर मार्ग का निर्देश करते हैं॥ २३॥ ब्रह्मादि देवगण उनके गुण से सम्भूत हैं, वे सब इनके समाराधक हैं। हे कुम्भज ऋषि! ये सभी सुप्रसिद्ध हैं, इसमें तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिए॥ २४॥ अद्वैत में भी वस्तु लौकिक दृष्टि से नियति ने मुख्य और गौण भेद से स्पष्ट किया है; जैसे देह में शिर-पैर आदि॥ २५॥ दुष्कर्म की सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है, जैसे अन्धों के लिए देखना। भगवती के चरण से ही सभी देव उत्पन्न हुए हैं और उनकी सेवा में सभी तत्पर हैं॥ २६॥ हे ब्रह्मन्! तुम महाभाग्यवान् हो जो तुमने श्रीपराशक्ति की भक्ति में अनुरक्ति प्राप्त की है। इसके संघ के माहात्म्य से अहोभाग्य का उदय होता है, महातप का उदय होता है॥ २७॥ हे ब्रह्मन्! सुनो, त्रिपुरा की भक्ति में इतनी आसक्ति का प्रयोजक तुम्हारी

त्रिपुरामुख्यशक्तिस्तु भगमालिनिकाऽभिधा। तत्सेवनपरो राजा सर्वदा सर्वभावतः॥ ३०॥
बाल्यादियं शुद्धचित्ता पितृसेवापरायणा। पितुर्दृष्ट्वोपासनायाः क्रमं देव्या यथाक्रमम्॥ ३१॥
राज्यकर्म करे तस्मिंस्तां समाराधयत्यसौ। एवं चिराऽऽराधनेन भक्त्या भावनयाऽपि च॥ ३२॥
तुतोष सा भगवती वरेण समच्छन्दयत्। वव्रे चाऽसौ सर्वजगत्पूज्यायाः पादसेवनम्॥ ३३॥
प्रसन्ना साऽपि सद्विद्यां त्रैपुरीं समलक्षयत्। लक्षिता चाऽपि तां विद्यां वाक्समुद्रपरिप्लुताम्॥
समुद्धरद्रत्नमिव ततस्तस्य प्रसादनात्। विद्या ऋषित्वं सम्प्राप्ता तन्नाम्ना सा स्फुटङ्गता॥ ३५॥
तस्याः सङ्गप्रभावेन तव भक्तिसमुद्गमः। इति श्रुत्वा कुम्भभवः पत्न्या विभवविस्तरम्॥ ३६॥
प्रसन्नः पूजयामास पत्नीं श्रीपादतत्पराम्। अथाऽवदद्धयाऽऽस्योऽपि प्रसन्नः कुम्भजन्मने॥
शृणु ते सम्प्रवक्ष्यामि कलशीसुत संयतः। श्रीसूक्तस्य विधानं यत्पृष्टं परमपावनम्॥ ३८॥
न वक्तव्यमभक्ताय नाऽन्यदेवपराय च। विद्येवैतद्गोपितव्यं सर्वत्राऽतिसुगोपितम्॥ ३९॥
श्रीसूक्तं षोडशर्चं तदादिवेदसमुद्भवम्। पुरा श्रिया सुदृष्टं तद्वेदाऽब्धेः सम्यगुद्धृतम्॥ ४०॥
तेनाऽऽराध्य परां शक्तिं त्रिपुरां सुविधानतः। सम्प्राप्ता लोकमातृत्वं सर्वपूज्यत्वमागता॥ ४१॥
आराधिता वत्सराणामर्बुदान्येकविंशतिः। प्रसन्ना छन्दयामास वरेण त्रिपुरा परा॥ ४२॥
तया वृतश्च सायुज्यं ततः प्राह पराम्बिका। वत्से त्वया विना विष्णुरप्रभुः परिपालने॥ ४३॥

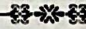
पत्नी सती लोपामुद्रा राजकन्या है॥ २८॥ पहले वह अपने पिता के घर में ही त्रिपुरा की भक्ति प्राप्त की थी। इसका हेतु मैं तुम्हें कहूँगा जो आज तक कोई नहीं जानता है॥ २९॥ भगवती त्रिपुरा की मुख्य शक्ति का नाम भगमालिनिका है, लोपामुद्रा के पिता राजा सर्वभाव से हमेशा इसी की सेवा में तत्पर रहता था॥ ३०॥ बचपन से ही यह कन्या पवित्र हृदय की थी, सदा पिता की सेवा में निरत रहती थी। पिता को देवी की यथाक्रम उपासना करते देखकर॥ ३१॥ अपना राज्यकर्म करते हुए वह देवी त्रिपुरा की आराधना में संलग्न थी। इस तरह भक्तिभावना से युक्त होकर बहुत दिनों की आराधना से॥ ३२॥ उसने भगवती को प्रसन्न कर लिया और उनसे वर प्राप्त किया। उसने भी पिता की तरह सर्वजगत्पूज्या त्रिपुरा के चरणों की सेवा में अपने को लगा दिया॥ ३३॥ उस भगवती ने भी प्रसन्न होकर उसे त्रैपुरी सद्विद्या प्रदान की। उस विद्या को पाकर लोपामुद्रा वाणी रूपी समुद्र में आप्लावन करने लगी॥ ३४॥ उसे रत्न की तरह धारण कर उसकी कृपा से उसे सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति हुई तथा ऋषित्व भी प्राप्त हुआ। वह विद्या उसी के नाम से प्रचलित हुई॥ ३५॥ उसी के संग रहने के प्रभाव से तुम्हारे हृदय में भी त्रिपुरा के प्रति भक्तिभावना उदित हुई है। यह सुनकर कुम्भज ऋषि को अपनी पत्नी के विभव-विस्तार का पता चला॥ ३६॥ वे प्रसन्न हो गये और त्रिपुराचरण में संलग्न अपनी पत्नी की पूजा की। यह कथा प्रसन्न होकर हयग्रीव ने कुम्भज ऋषि को कह सुनायी॥ ३७॥ हे कुम्भज मुनि! संयत भाव से श्रीसूक्त का परम पवित्र विधान, जिसे तुमने पूछा था, सुनो॥ ३८॥ पर याद रखो! यह विधान किसी अभक्त के सामने अथवा दूसरे देवता के उपासकों के सामने कभी नहीं कहना चाहिए। त्रैपुरी विद्या की तरह यह भी गोपनीय है, यह सब जगह अति सुगोपित है॥ ३९॥ सोलह ऋचाओं का यह श्रीसूक्त आदि वेद से समुद्भूत है। पहले लक्ष्मी से यह सुदृष्ट है, तब वेद रूपी सागर से अच्छी तरह उद्धृत है॥ ४०॥ इस श्रीसूक्त से उस पराशक्ति त्रिपुरा की विधानपूर्वक आराधना कर लोक-मातृत्व प्राप्त किया और सर्वपूज्यत्व बनी॥ ४१॥ उसने इक्कीस अरब वर्ष तक त्रिपुरा की आराधना की, प्रसन्न होकर त्रिपुरा ने उसे वर माँगने को कहा॥ ४२॥ उसने देवी से समरूपता (अर्थात् चार मुक्ति में से एक मुक्ति सायुज्य) का वर माँगा। इस पर पराम्बिका त्रिपुरा ने कहा—हे वत्से! तुम्हारे बिना विश्व के परिपालन में विष्णु भी असमर्थ हैं॥ ४३॥ अगर वे पालन नहीं करते हैं

अपालितं तेन चैतद्विशीर्येत निमेषतः । ततो मे नियतेर्भङ्ग एव नार्हसि सम्प्रति ॥ ४४ ॥
तत् साम्प्रतं दिशाम्येवं त्वदाख्यां सर्वदाऽप्यहम् । धारयामि स्वरूपञ्च तत्ते वक्ष्यामि श्रूयताम् ॥
श्रीविद्येत्यहमाख्याता श्रीपुरं मे पुरं भवेत् । श्रीचक्रं मे भवेच्चक्रं श्रीक्रमः स्यान्मम क्रमः ॥ ४६ ॥
श्रीसूक्तमेतद्भूयान्मे विद्या श्रीषोडशी भवेत् । महालक्ष्मीत्यहं ख्याता त्वत्तादात्म्येन संस्थिता ॥
त्वं चतुर्धा मत्समीपे पूजां प्राप्स्यसि संस्थिता । यद्यत्तव प्रियं लोके तन्ममाऽपि प्रियं भवेत् ॥ ४८ ॥
पूज्यसे भार्गवे वारे भक्तैस्त्वं सुविधानतः । तत्राऽहमपि पूज्या स्यां भक्तैरपि विशेषतः ॥ ४९ ॥
तत्र सूक्तभवैर्मन्त्रैः पूजिता ह्युपचारकैः । हुताऽपि विविधैर्द्रव्यैः प्रसन्ना वाञ्छिताऽर्थदा ॥ ५० ॥
अभिषिक्ता च सलिलैर्दुग्धाद्यैः फलजै रसैः । सर्वकामप्रदा तस्य यन्त्रे मूर्त्यादिकेऽपि वा ॥ ५१ ॥
नित्ये नैमित्तिके काम्ये पूजनेऽन्यत्र चाऽपि मे । लक्ष्मीसूक्तं षोडशर्चं देव्याः स्नानविधौ पठेत् ॥
सकृदावर्तनाल्लक्ष्मीः सदा तस्य गृहे वसेत् । पूजाऽशक्तौ केवलं वा सूक्तन्ते यः पठेत् सदा ॥ ५३ ॥
तस्याऽखिलं कृतं पूर्णं भवेत्तुष्टा भवाम्यहम् । विद्याऽपि त्वत्समायोगाद्भविष्यति मम प्रिया ॥
अहं विद्यात्मिका यत्तद्बीजं ते सर्वशोभनम् । पूर्णा तेन समादिष्टा महाश्रीषोडशाक्षरी ॥ ५५ ॥
उपचारेषु पूजाया मन्त्रान् सूक्तभवान् पठेत् । सा पूजा स्यान्महापूजा प्रसन्नाऽहं ततो द्रुतम् ॥
सूक्तेऽर्थरूपा गुप्ताऽहं मद्बीजञ्चाऽपि गोपितम् । पूर्णरूपा प्रार्थिताऽहं ऋषिभिः पावकात् पितुः ॥
नाऽन्यत् प्रियतरं लोके त्वत्सूक्ताद्भवति क्वचित् । त्वमहं देव्यहं त्वञ्च नावयोरन्तरं भवेत् ॥ ५८ ॥
ईक्षते योऽन्तरं तस्य भवेयुः परमापदः । इति दत्त्वा वरं तस्यै रमायै त्रिपुरा परा ॥ ५९ ॥

तो यह सृष्टि पलक झपकते ही समाप्त होगी, तब मेरा नियन्त्रण समाप्त हो जायेगा, जो इस समय उचित नहीं है ॥ ४४ ॥ इसलिए इस समय मैं तुम्हारे नाम से अपना स्वरूप धारण करती हूँ; वह मेरा रूप क्या होगा—बतलाती हूँ, सुनो ॥ ४५ ॥ श्रीविद्या के नाम से मेरी ख्याति होगी, श्रीपुर ही मेरा पुर होगा, श्रीचक्र ही मेरा चक्र होगा और श्रीक्रम ही मेरा क्रम है ॥ ४६ ॥ श्रीसूक्त ही मेरी श्रीषोडशी विद्या है, महालक्ष्मी के नाम से मैं ख्यात होकर तुम्हारे साथ तादात्म्य रूप में संस्थित हूँ ॥ ४७ ॥ मेरे समीप रहकर तुम चार प्रकार की पूजा ग्रहण करोगी। संसार में जो तुम्हें प्रिय होग. वह मेरे लिए भी प्रिय होगा ॥ ४८ ॥ शुक्र के दिन भक्तगण विधानपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे, उसी दिन मैं भी भक्तों से विशेष पूजनीया होऊँगी ॥ ४९ ॥ वहाँ श्रीसूक्त के प्रत्येक मन्त्र से उपचार के साथ पूजा करने पर, विविध द्रव्यों से हवन करने पर मैं प्रसन्न होकर साधक को उसकी इच्छानुसार उसे फल दूँगी ॥ ५० ॥ श्रीयन्त्र का जल से, दूध से, फल से जो अभिषेक करेगा, उसे वह यन्त्र या मूर्ति हर तरह से कामप्रदा होगी ॥ ५१ ॥ नित्यकर्म में हो या नैमित्तिक कर्म में हो या काम्यपूजन में हो अथवा किसी अन्यत्र मेरी पूजाक्रम में देवी के इस लक्ष्मीसूक्त की सोलह ऋचाओं से उनके स्नान कराने में पाठ करना चाहिए ॥ ५२ ॥ एक बार भी आवर्त्तन से पाठक के घर में लक्ष्मी का निवास होता है। पूजा करने में जो अशक्त है, केवल सूक्त का जो सदैव पाठ करता है ॥ ५३ ॥ उसकी सम्पूर्ण क्रिया मैं पूरी करती हूँ; मैं उस पर परम सन्तुष्ट रहती हूँ और उसकी विद्या भी तुम्हारे समायोग से मेरी प्रिया होगी ॥ ५४ ॥ मैं विद्यास्वरूपिणी हूँ, वह बीज रूप से तुममें सर्वशोभन है; हमारे आदेश से वह पूर्ण है, वह महा श्रीषोड़शाक्षरी है ॥ ५५ ॥ उपचारों में पूजा के मन्त्रों को अलग-अलग सूक्तों में पढ़ना चाहिए, वह पूजा महापूजा होती है; मैं शीघ्र उस पर प्रसन्न हो जाती हूँ ॥ ५६ ॥ सूक्त के अर्थरूप में मैं गुप्त हूँ, मेरा बीज भी गोपित है। मैं पूर्णरूपा हूँ, ऋषियों से प्रार्थना करने पर मैं आग से निकलती हूँ ॥ ५७ ॥ तुम्हारे सूक्त से अधिक प्रिय संसार में मेरे लिए कुछ भी नहीं है। तुम्हीं मैं हूँ और मैं ही तुम, हम दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं है ॥ ५८ ॥ जो कोई हम दोनों के बीच अन्तर करेगा उस पर विपत्ति के पहाड़ टूटेंगे। उस रमा

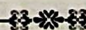
जगाम व्योमतां सद्यः प्रोक्तमेतद्धटोद्भव । श्रीसूक्तस्य महित्वं तेनैतदब्रूयाः कथञ्चन ॥ ६० ॥
अभक्तेषु शठेष्वन्तःश्रद्धाविरहितेषु च । अथ वक्ष्ये श्रीपुरस्य वृत्तं लोकोत्तरं शृणु ॥ ६१ ॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । यदा सा परमा देवी प्रार्थिता विधिमुख्यकैः ॥ ६२ ॥
शक्रादीनां दर्शनार्थं स्थितिं कुर्विति कुम्भज । अङ्गीचकार संस्थानं लीलाविग्रहधारिणी ॥ ६३ ॥
ततस्त्वष्टारमाहूय मेरुशृङ्गे महोन्नते । आज्ञापयद्विधिर्देव्याः श्रीपुरस्य विनिर्मितौ ॥ ६४ ॥
विश्वकर्मा तथाऽऽज्ञप्तः प्रणम्य प्रपितामहम् । भगवन्न मया ज्ञातं तत्पुरं कुत्र संस्थितम् ॥ ६५ ॥
किं प्रमाणं किमाकारं किम्मयं किंविधं स्थितम् । एतन्मे शंस भगवन् विधास्येऽहं निशम्य तत् ॥
अथ प्राह जगत्स्रष्टा शृणु विश्वकृते ब्रुवे । श्रीपुरस्य प्रमाणञ्च संस्थानं प्रकृतिं तथा ॥ ६७ ॥
रूपञ्चाऽपि स्फुटतरं सावधानमनाः शृणु । यच्छ्रुत्वा त्रिपुरापादभक्तिमासादयेच्छुभाम् ॥ ६८ ॥
कनकाद्रिः सुमेर्वाख्यो जगच्चित्रकलेवरः । तस्य मध्ये महाशृङ्गो यश्चतुःशतयोजनः ॥ ६९ ॥
तत्र श्रीत्रिपुरादेव्याः पुरं कुरु जगत्कृते । श्रुत्वा मया यथाप्रोक्तं कर्तव्यं सुविधानतः ॥ ७० ॥
मनोहरं चारुतरं वप्रभेदसुशोभितम् । यथा जगत्प्रतिकृतिस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ७१ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे लक्ष्मीसूक्तमहिमोक्तिर्नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४०३ ॥



को ऐसा वरदान देकर त्रिपुरा ॥ ५९ ॥ शीघ्र ही हे कुम्भज! आकाश में चली गई। श्रीसूक्त की यह महिमा कहीं भी नहीं बोलनी चाहिए, खासकर ॥ ६० ॥ जो भगवती का भक्त नहीं है, धोखेबाज या दुष्ट है, जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं है ऐसे लोगों को यह मत सुनाओ। अब मैं श्रीपुर का लोकोत्तर वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ ६१ ॥ जिसके सुनने मात्र से सब पापों से लोग मुक्त हो जाते हैं। जब वह परमा देवी ब्रह्मा-प्रमुख देवताओं से प्रार्थिता हुई ॥ ६२ ॥ हे कुम्भज! इन्द्रादि देवताओं के दर्शनार्थ रूप ग्रहण करने के लिए स्वीकार किया और लीलाविग्रहधारिणी बन गई ॥ ६३ ॥ तब विश्वकर्मा को बुलाकर ब्रह्मा ने मेरुपर्वत की महान् चोटी पर श्रीदेवी के लिए श्रीपुर निर्माण करने की आज्ञा दी ॥ ६४ ॥ ऐसा ब्रह्मा का आदेश पाकर विश्वकर्मा ने उन्हें प्रणाम कर उनसे पूछा—हे भगवन्! वह नगर कहाँ बनेगा? उस नगर का रूप कैसा होगा? ॥ ६५ ॥ उस नगर का विस्तार कितना होगा? आकार कैसा होगा? स्वरूप किस तरह का होगा? यह सब मुझे बतलायें; उसी आदेश के अनुसार मैं उसका निर्माण करूँगा ॥ ६६ ॥ यह सुनकर विधाता ने कहा—हे विश्वकर्मा! तुम सुनो, त्रिपुर नगर का प्रमाण और संस्थान उसकी प्रकृति के अनुसार होगा ॥ ६७ ॥ उसका स्फुटतर स्वरूप क्या होगा, इसे सावधान मन से सुनो, जिसे सुनकर त्रिपुरा के चरणकमलों की शुभ भक्ति स्वतः प्राप्त होती है ॥ ६८ ॥ सुमेरु नाम का एक सोने का पहाड़ है, संसार का चित्र ही उसका शरीर है। उसके बीच में विशाल चोटी है जो चार सौ योजन तक फैली है ॥ ६९ ॥ वहाँ ही श्रीत्रिपुरा देवी का नगर लोककल्याण के लिए निर्मित करो। मैंने जैसा कहा उसे सुनकर अच्छे विधान के साथ उसे पूरा करो ॥ ७० ॥ वह नगर मनोहर हो, सुन्दरतर हो, दुर्गों से घिरा हों, यथा जगत्-प्रकृति कैसी हो—यह मैं कहता हूँ, सुनो ॥ ७१ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में लक्ष्मीसूक्तमहिमा की उक्ति नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४४०३ ॥



अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अनेककोटिसङ्ख्यानां ब्रह्माण्डानां बहिःस्थितः। ऊर्ध्वतोऽनन्तसङ्ख्याकः सुधासिन्धुर्जगत्कृते॥
सुमेरुसदृशोन्नम्रनृत्यद्वीचितरङ्गकः। तस्य मध्ये मणिद्वीपः प्रभाक्षिप्ततमस्ततिः॥ २॥
योजनानां कोटिशतैर्विस्तृतोऽतिमनोहरः। कल्पद्रुमवनैश्चित्रैश्चित्रिता परितः स्थली॥ ३॥
तत्र स्थितं पुरं तस्याः सर्वरत्नसमुज्ज्वलम्। योजनानां चतुर्लक्षैर्दीर्घायामसुविस्तृतम्॥ ४॥
तावन्मितस्तस्य सालो लोहसारमयस्थितः। चतुरस्रः सर्वभद्रः समुज्ज्वलितदिक्तटः॥ ५॥
चतुःसहस्रमुन्नम्रो योजनानां सवप्रकः। चतुर्द्वारयुतो बाह्ये परिखेण विराजितः॥ ६॥
तदन्तः सप्तसाहस्रयोजनाऽन्तरितः स्थितः। प्राकारः कांस्यरचितः प्रोक्तमानोऽतिभासुरः॥
तदन्तरे कल्पवृक्षवाटीगणशताऽऽकुले। दशयोजनविस्तीर्णवापीशतविराजिते॥ ८॥
शतयोजनविस्तीर्णप्रफुल्लकमलाऽऽकरैः। दिक्ष्वष्टसु युतेस्ववर्वायस्मयाऽर्धबहिर्भुवि (???)॥
कांस्यक्लृप्ताऽन्तरभुवि नानापक्षिमृगैर्युते। कमलाऽऽकराऽन्तर्भुवि क्लृप्तकांस्यगृहाष्टके॥
अनेकचित्ररचिते पञ्चाऽऽवरणराजिते। शतयोजनविस्तारसमुन्नम्रे सशोभिते॥ ११॥
महासने महाकालः कालीसंश्लिष्टविग्रहः। त्रिपुराम्बापादसेवाप्राप्तसौभाग्यनिर्भरः॥ १२॥
आत्मानमष्टधा कृत्वा स्थितो गेहाष्टके पृथक्। असंख्यपरिवारौघैः सेवितः सततं स्थितः॥ १३॥
अन्तःकांस्यमयाद्वप्रात् प्रोक्तयोजनदूरतः। प्राकारस्ताम्ररचितस्तरुणाऽरुणसम्प्रभः॥ १४॥

❊ विमला ❊

अनेक करोड़ ब्रह्माण्ड बाहर हों, ऊपर की ओर उठे अनन्त सुधासिन्धु हों, उस सुधासिन्धु में सुमेरु पहाड़ की तरह नाचते वीचितरंग हों, उसके बीच में चारों ओर अपनी प्रभा फैलाते हुए मणिद्वीप हों॥ १-२॥ करोड़ों योजन विस्तृत अत्यन्त मनोहर कल्पवृक्ष के चारों ओर बगीचे लगे हों॥ ३॥ उसके बीच में सभी रत्नों से समुज्ज्वल देवी की नगरी हो। चार लाख योजन तक फैला वह नगर हो॥ ४॥ उसी माप के उसकी लौहसारमय दीवारें हों, चारों ओर सर्वभद्र अंकित हों—जिससे दिशाएँ समुज्ज्वलित हों॥ ५॥ चार हजार योजन ऊँचे दुर्ग बने हों, दुर्ग के बाहर-बाहर चार धारा वाली परीखा सुशोभित हों॥ ६॥ उसके अन्त में सात हजार योजन तक भीतर-भीतर कांस्य-निर्मित महल चमचमाते हों॥ ७॥ किले के भीतर सैकड़ों कल्पवृक्ष की फुलवारी लगी हो, दस योजन फैले सैकड़ों सरोवर विराजित हों॥ ८॥ सौ योजन विस्तीर्ण फैले उसमें विकसित कमल के समूह हों, आठों दिशाओं में सुगन्धित वायु से वहाँ की धरती प्रफुल्लित हो॥ ९॥ कांस्यक्लृप्त भीतर की धरती पर अनेक तरह के पशु-पक्षियों से भरे पड़े थे। कमलों के समूह से भीतर की धरती भरी पड़ी थी, उसमें कांसे के आठ घर थे॥ १०॥ उन भवनों में अनेक चित्र थे। पाँच आवरणों से सजा वह घर था, सौ योजन तक उस भवन का विस्तार था॥ ११॥ काली के साथ महाकाल की मूर्ति विशिष्ट आसन पर विराजित थी। अम्बा त्रिपुरा की सेवा से इन्हें यह सौभाग्य प्राप्त है॥ १२॥ अपनी आत्मा को आठ खण्डों में विभक्त कर वे आठों घर में सुशोभित हैं। असंख्य परिवार-समूहों से सतत सेवित भगवती वहाँ है॥ १३॥ भीतरी भाग कांसे की दीवारों से पहले कहे हुए योजन तक घिरे हुए हैं। भीतर का प्राकार ताँबे से बना हो, जिससे

प्रोक्तमानद्वारवापीपद्मिनीगृहमध्यभूः । बहिरन्तः कांस्यताम्रमयस्थलयुताऽन्तरः ॥ १५ ॥
तदन्तरं प्रोक्तवत्तु कल्पवृक्षवनैर्युतम् । गृहेषु राजते तेषु वसन्तर्तुः सुपेशलः ॥ १६ ॥
मधुमाधवशक्तिभ्यां सेवमानः पराम्बिकाम् । संयुतः स्वपरीवारैः समेधते निजश्रिया ॥ १७ ॥
सालमानं द्वारमपि वापिकाः पद्मिनीभुवः । प्रोक्तरीत्यैव विज्ञेया विशेषः प्रोच्यते क्रमात् ॥ १८ ॥
अथ सीसमयः सालः सन्तानवनमण्डितः । ग्रीष्मर्तुः संस्थितः शुक्रशुचिशक्तिपरीवृतः ॥ १९ ॥
आरकूटमयो वप्रो हरिचन्दनवाटिकः । नभोनभस्यशक्तिभ्यां वर्षर्तुस्तत्र शोभते ॥ २० ॥
पञ्चलोहमयः सालो मन्दारवनमण्डितः । शरदृतुरिषोर्जा(?)भ्यां शक्तिभ्यां तत्र राजते ॥ २१ ॥
ततो राजतसालो वै पारिजातवनाऽऽवृतः । सहस्सहस्यशक्तिभ्यां हेमन्तस्तत्र राजते ॥ २२ ॥
तपनीयमयस्सालो बालसूर्यशतप्रभः । कदम्बविपिनं तत्र हालाऽऽमोदसुमेदुरम् ॥ २३ ॥
भृङ्गसङ्गीतमधुरं लास्यगीतर्द्धिसङ्कुलम् । कीरमण्डलचाटूक्तिमधुरध्वनिसुन्दरम् ॥ २४ ॥
तत्र सा मन्त्रिणी देवी संस्थिता लोकमोहनी । सङ्गीतमातृका देवी मातङ्गीत्यभिविश्रुता ॥ २५ ॥
शुकाद्या श्यामला चान्या शारिकाद्या हसन्तिका । वीणावेणुमुखा तद्वच्छ्यामला लघुपूर्विका ॥
श्यामला राजपूर्वा स्यात्स्वयं या मन्त्रिणी मता।
श्रीमातृका तत्प्रियाऽन्या चेत्येवमष्टदिक्स्थिताः ॥ २७ ॥
मातङ्गकन्याकोटीनां कोटिभिः परिवारिता । अथ वप्रः पुष्परागमयः पूर्वोक्तवत् स्थितः ॥ २८ ॥
सिद्धेशः सिद्धसंवीतः तत्र ध्यायति तां पराम् । पद्मरागमयो वप्रस्तदन्तोऽग्निशिखाऽरुणः ॥ २९ ॥
चारणास्त्रिपुराभक्ता वसन्ति युवतीयुताः । सालो गोमेदमणिजस्तत्र भैरवनायकैः ॥ ३० ॥

युवा अरुण वर्ण की आभा प्रकट हो रही हो ॥ १४ ॥ इस तरह के भवन के दरवाजे पर कमलिनी युक्त सरोवर गृह के बीच भाग में हो। घर के भीतरी और बाहरी स्तर ताँबे और काँसे के बने हों ॥ १५ ॥ उसके भीतर पहले कहे जैसे कल्पवृक्ष वन से युक्त उन घरों में अपने सौन्दर्य के साथ वसन्त विराजते हैं ॥ १६ ॥ उन घरों में मधु, माधव और शक्तियों से सुसेवित पराम्बिका अपनी परिचारिकाओं के साथ अपने ही सौन्दर्य से सुशोभित हैं ॥ १७ ॥ दीवारों से घिरे दरवाजे पर भी कमलिनी युक्त वापिकाएँ सुशोभित हैं; उक्त रीति से ही इसे जानना चाहिए, विशेष क्रम से कहते हैं ॥ १८ ॥ सभी दीवारे शीशे से भरी थीं, हर ओर कल्पवृक्ष के जंगल फैले हों; शुक्र, शुचि और शक्तियों से घिरी ग्रीष्म ऋतु उपस्थित हो ॥ १९ ॥ परकोटे से आवाज निकलते, हरिचन्दन की फुलवारी को आकाश से सींचते हुए वर्षा ऋतु शोभती हो ॥ २० ॥ अकबन के वन से सुशोभित पंचलौहमय दीवार पर अपनी सारी शक्ति से शरद् ऋतु विराजित हो ॥ २१ ॥ इसके बाद पारिजात वन से सुशोभित वे दीवारे जहाँ हँसती हुई दीख पड़ती हों, वहाँ हेमन्त विराजित हो ॥ २२ ॥ तपनीय दीवारे बालसूर्य की सैकड़ों प्रभा से युक्त कदम्ब वन जहाँ हों, वहाँ मदिरा के आमोद से सुन्दर ॥ २३ ॥ भौंरों के संगीत से मधुर नाच और गान से भरे, शुग्गों की मधुर चाटूक्ति से सुन्दर ॥ २४ ॥ उस स्थान में वह मन्त्रिणी, लोकमोहिनी देवी संस्थित हैं। यह संगीतमातृका देवी भावश्री के नाम से विख्यात है ॥ २५ ॥ शुकाद्या श्याम वर्ण की है, अन्य सारिकाद्या हँसती है, वीणा और वंशी प्रमुखा उसी तरह श्यामवर्णा लघुपूर्विका हैं ॥ २६ ॥ श्यामला राजपूर्वा है जो स्वयं मन्त्रिणी है, श्रीमातृका उसकी प्रिया है और अन्य देवियाँ आठ दिशाओं में अवस्थित हैं ॥ २७ ॥ करोड़ों मातङ्गकन्याएँ हैं, करोड़ शक्ति से ये घिरी हैं। इनका विस्तार पुष्परागमय पहले कहे गये की तरह हैं ॥ २८ ॥ सिद्धेश या सिद्धसंवीत यहाँ ही उस पराशक्ति का ध्यान करते हैं। पद्मरागमय दुर्ग थे, उसके अन्त में लाल-लाल अग्निशिखा प्रज्वलित हो ॥ २९ ॥ वहाँ चारण त्रिपुरा के भक्त हों, जो युवती के साथ निवास करते हैं। गोमेद मणि से रचित

कालसङ्कर्षिणी देवी बटुकौघसमावृता । कराला कालमेघाभा करवालकृताऽऽयुधा ॥ ३१ ॥
अष्टकोटिभैरवाणां नाथैरष्टसुभैरवैः । द्वात्रिंशत्कोटिबटुकयुतैः संसेविता सदा ॥ ३२ ॥
महाराज्ञीपादपद्मं ध्यायन्ती सुविराजते । ततो वज्रमयः सालस्तत्र वज्रा नदी स्थिता ॥ ३३ ॥
परिखावद्वेष्टयित्वा सुधासिन्धुप्रवेशिनी । तटाभ्यां गोमेदवज्रमयाभ्यां प्रविभासिनी ॥ ३४ ॥
तत्र वज्रेश्वरी देवी वज्रभूषा समुज्ज्वला । वज्रप्रदानसन्तुष्टा वज्रिप्रमुखपूजिता ॥ ३५ ॥
वैदूर्यसालस्तस्यान्तस्तत्र नागा दितेः सुताः । निरन्तरं ध्यायमानाः पराम्बापादपङ्कजम् ॥ ३६ ॥
अथेन्द्रनीलसालः स्यात् तत्र मर्त्याः समास्थिताः । मुक्तावप्रस्तदन्तस्था दिक्पाला दिक्षु वैक्रमात् ॥
अथ सालः मारकतः स्वर्णतालवनैर्युतः । तालद्रुस्यन्ददत्यन्तहालासौरभसम्भृतः ॥ ३८ ॥
तत्र श्रीदण्डिनी देवी स्वप्ने स्यादेभिरावृता । अपराधिजनान् दण्डे योजयन्ती सुसंस्थिता ॥ ३९ ॥
मधुसेवोन्मिषत्स्वान्तरानन्दाब्धिपरिप्लुता । ततो विद्रुमसालः स्याद्वप्रात्तत्राऽन्तरे स्थितः ॥
अनेकसिद्धमुनिभिर्योगिभिश्च समावृतः । नवरत्नकृतो वप्रस्ततोऽतिरुचिरः शुभः ॥ ४१ ॥
तत्र विष्णुः पार्षदादिसेविताऽङ्घ्रिर्विराजते । ततोऽप्यनेकरत्नौघमयो वप्रोऽतिभासुरः ॥ ४२ ॥
शिवः प्रमथसंसेव्यस्तत्राऽध्यास्ते त्रिलोचनः । ततो मनोमयः सालोऽरुणोरुणसमच्छविः ॥ ४३ ॥
तन्मध्येऽमृतवापी स्यात् परितः परिखाऽऽकृतिः । प्रफुल्लपद्मसङ्कीर्णा त्र्यंशे मध्यभुवः स्थिता ॥
हंसैः कारण्डवैः कोकैः सारसैः सुविराजिता । तन्मध्ये नवरत्नाढ्यनौकायां सुविराजिते ॥ ४५ ॥

दीवारें हैं और उसके नायक भैरव हैं॥ ३० ॥ बटुक-समूहों से घिरी कालसंकर्षिणी भयंकर कालमेघ की तरह कान्ति वाली वह देवी अपने हाथ में तलवार लिये हो॥ ३१ ॥ आठ करोड़ भैरवों के नाथों से, आठ भैरवों से, बत्तीस करोड़ बटुकों से वह सदैव संसेविता है॥ ३२ ॥ महाराज्ञी त्रिपुरा के चरणों का ध्यान करते हुए विराजित हो। उसके बाद वज्रमय दीवारें हों, वज्रा नदी बहती हों॥ ३३ ॥ वह वज्रा नदी खाई की तरह इस किले को घेर कर अमृतसागर में प्रवेश करती हो। इस नदी के किनारे गोमेद और वज्रमणि से प्रतिबिम्बित हो॥ ३४॥ वहाँ वज्रेश्वरी देवी स्थापित हो, वज्रों के आभूषण से वह सुशोभित हो, वज्रों के दान से सन्तुष्ट हो, इन्द्रादि देवताओं से प्रपूजित हो॥ ३५॥ उसके बाद वैदूर्य मणि की दीवार से घिरा एक मण्डप हो, जिसमें दितिपुत्र नागदेव निवास करते हों। वे निरन्तर पराम्बा त्रिपुरा के चरणकमलों के ध्यान में मग्न हो॥ ३६ ॥ इसके बाद नीलमणि की दीवार हो जहाँ मर्त्यगण उपस्थित हों। मुक्ता की वहाँ ढेर लगी हो, दिशाओं में क्रमशः दिक्पाल अवस्थित हों॥ ३७ ॥ मरकतमणि की बनी दीवारे हों। सोने के तालवान युक्त हो, ताल वृक्ष से बहने वाली हवाएँ मद-सौरभ फैलती हों॥ ३८ ॥ वहाँ श्रीदण्डिनी देवी स्वप्नावस्था में भी इससे घिरी हो, अपराधियों को वहीं से वह दण्ड देती हो॥ ३९ ॥ मधुसेवन से अर्धनिमीलित आँखों वाली आन्तरिक आनन्दसागर में डुबकी लगाने वाली हो। उसके बाद विद्रुम की दीवारें हों, वहाँ बीच में दुर्ग बना हो, उस दुर्ग में वह उपस्थित हो॥ ४० ॥ अनेक सिद्ध मुनि और योगियों से वह घिरी हो। नवरत्न का अत्यन्त रुचिर और शुभ उसका किला बना हो॥ ४१ ॥ वहाँ भी विष्णुपार्षदादि से उनके चरणकमल सेवित हों। उसके बाद अनेक रत्न-समूहों से बने अतिदिव्य दुर्ग हों॥ ४२॥ वहाँ त्रिलोचन शिव प्रमथगणों से सेवित उपस्थित हो। उसके बाद मनोमय अरुण की तरह लाल छवि वाली दीवारें हों॥ ४३ ॥ उसके बीच में चारों ओर खाई की तरह आकृति वाला अमृत का सरोवर हो। उस सरोवर में खिले पद्म बीच की धरती पर एक तिहाई पर सुशोभित हों॥ ४४॥ सरोवर हंस, कारण्डव, कोक और सारसों से भरे हों, उसके बीच में नवरत्न की

पद्माऽऽसने समासीना तारा भक्तौघतारिणी। असंख्यरत्नपोतस्थशक्तिभिः परिवारिता ॥ ४६ ॥
दण्डिन्याज्ञां विना कश्चिन्न सन्तारयति क्वचित्। अथ बुद्धिमयः सालो विशदश्चन्द्रबिम्बवत् ॥
आनन्दवापिका तत्र प्रोक्तवत् सर्वशोभना। तत्राऽमृतेशी तरणिसंस्थाना शक्तिभिर्वृता ॥ ४८ ॥
सुरानन्दमयी तस्यामामोदभरिताऽन्तरा। आज्ञां विनाऽमृतेशान्या नैनत् पिबति कश्चन ॥ ४९ ॥
न सन्तरेद्वापिकाश्चाऽमृतैश्वर्याभिरक्षिताम्। अहङ्कारमयस्तस्माद्वरणः श्यामलाऽऽकृतिः ॥
नीलमेघप्रतीकाशस्तदन्तर्वापिकाऽपि च। विमर्शाऽऽख्या ज्ञानरसवहनिश्चलशीतला ॥ ५१ ॥
तत्र नौकास्थिता देवी कुरुकुल्ला महेश्वरी। तदाज्ञामन्तरा तत्र नैषत् प्राप्नोति तद्रसम् ॥ ५२ ॥
पीत्वा तल्लेशकमपि समस्ताऽज्ञानसम्भवम्। त्यजन्ति तापं पश्यन्ति जगत्तत्त्वमनावृतम् ॥ ५३ ॥
अथ सूर्यात्मकः सालः प्रकाशनिकरः स्थितः। तत्राऽन्तरे समासीनः सूर्यो जलजविष्टरे ॥ ५४ ॥
मार्तण्डभैरवाद्यैश्च रविभिर्द्वादशात्मभिः। समेतः सूर्यसदृशदेहैर्भक्तैरभिष्टुतः ॥ ५५ ॥
ततः शशाङ्काऽऽवरणः कोटिचन्द्रसमप्रभः। तत्र सोमः स्थितो राजा किरंस्तत्र सुधांऽशुभिः ॥
तदन्तरे तु शृङ्गारसालोऽत्यन्तविचित्रितः। कौस्तुभाऽऽख्यमणिव्रातनिर्मितो रुचिराऽऽकृतिः ॥
तन्मध्ये परिघा स्वच्छशृङ्गाररससम्भृता। तत्र कौस्तुभसङ्क्लृप्तपोते शृङ्गारनामके ॥ ५८ ॥
कन्दर्पः संस्थितो रत्या प्रीत्या सम्मिलितः स्वयम्। अनेककोटिकन्दर्पैरतिप्रीतिगणैरपि ॥ ५९ ॥
सेव्यमानो मोदते श्रीत्रिपुराभक्तशेखरः। तत्पारे तु महापद्मवनमामोदमेदुरम् ॥ ६० ॥
स्थलपद्मवनं तेषां काण्डाः पत्राणि केसराः। कर्णिकाश्चापि चाऽत्यन्तदीर्घास्तत्ते ब्रवीम्यहम् ॥

बनी नौका में देवी विराजित हो॥ ४५॥ भक्तसमूहों का तारण करने वाली भगवती तारा पद्मासन पर विराजित हो, असंख्य रत्नों के पोत पर शक्तियों से घिरी वह अवस्थित हो॥ ४६॥ दण्डिनी की आज्ञा के बिना कहीं कुछ कोई भी पार नहीं कर सकता। इसके बाद बुद्धिमय दीवारें थीं, जो स्वच्छ चन्द्रबिम्ब की तरह चमक रही थीं॥ ४७॥ पहले कही गई सर्वशोभा-सम्पन्न वहाँ एक आनन्दवापिका है, अपनी शक्तियों से घिरी नाव पर बैठी भगवती अमृतेशी है॥ ४८॥ सुरा के आनन्द में मस्त, उसके आमोद से जिसका अन्तर भरा हो—ऐसी अमृतेशी की आज्ञा के बिना कोई एक बूँद भी नहीं पी सकता॥ ४९॥ अमृत रूपी ऐश्वर्यों से रक्षित इस वापी में कोई तैर नहीं सकता। अहंकारमय उससे श्यामली आकृति वाली॥ ५०॥ नीलमेघ की तरह सुन्दर उसके अर्न्तवापिका भी जिसका नाम विमर्शा है, जिसमें ज्ञान का रस निश्चल एवं शीतल होकर प्रवाहित है॥ ५१॥ वहाँ नौका पर बैठी महेश्वरी कुरुकुल्ला देवी हैं। उनकी आज्ञा के बिना कोई उस रस को नहीं पा सकता है॥ ५२॥ इस सरोवर का एक कतरा भी रस पीकर अज्ञानोत्पन्न समस्त ताप छूट जाते हैं और जगत् के यथार्थ तत्त्व को खुली आँखों से देख पाते हैं॥ ५३॥ इसके बाद सूर्यात्मक दीवारें प्रकाशपुंज की तरह स्थित हैं। इन दीवारों के भीतर कमल के आसन पर बैठे भगवान् सूर्य हैं॥ ५४॥ द्वादश रवियों में तथा मार्तण्डों और भैरवादि के साथ सूर्य के सदृश शरीर वाले भक्तों से स्तुत हैं॥ ५५॥ उसके बाद शशांक आवरण वाले करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से राजा सोम अवस्थित हैं, जिनकी अमृतकिरणें चारों ओर फैल रही हैं॥ ५६॥ इसके बाद अत्यन्त विचित्रित शृंगार की दीवारें हैं। ये दीवारें देखने में अत्यन्त रुचिकर हैं, कौस्तुभ नामक मणि-समूहों से निर्मित हैं॥ ५७॥ इन दीवारों के बीच में एक खाई है, जो स्वच्छ शृंगार रस से भरी है। वहाँ कौस्तुभमणि-निर्मित नौका पर शृंगार नाम वाले॥ ५८॥ रति की प्रीति से सम्मिलित स्वयं काम संस्थित है। अनेक करोड़ कन्दर्प से अत्यन्त प्रीतिगणों से भी॥ ५९॥ सुसेवित त्रिपुरा के श्रेष्ठ भक्तगण प्रसन्न होते हैं। इसके बाद महापद्म का वन है, जो पर्याप्त आमोद से भरा है॥ ६०॥ उसके थलपद्म के वन

सहस्रयोजनाऽऽयामाः काण्डा गव्यूतिपीवराः । विंशतिर्योजनानान्तु पत्राऽऽयामः प्रकीर्तितः ॥
त्रिंशद्योजनदीर्घाणि पत्राणि कलशीसुत । योजनानां पञ्चदश केसराणाञ्च दीर्घता ॥ ६३ ॥
कर्णिका योजनदशविस्ताराः सम्प्रकीर्तिताः । तत्र भृङ्गा मणिनिभाः शैलशृङ्गमिताः स्थिताः ॥
गृहं श्रीत्रिपुरादेव्यास्तदन्तरतिभासुरम् । चिन्तामणिप्रवेकाऽतिरचितं चित्रचित्रितम् ॥ ६५ ॥
चतुर्द्वारयुतं तत्र दिव्याऽऽधारसुसम्भृतम् । वह्निमूर्तिमयाऽऽधारो वर्तुलस्तत्कलायुतः ॥ ६६ ॥
योजनानां पञ्चशतं विस्तारेऽर्धं समुन्नतौ । तत्र सूर्यात्मकं पात्रं कलाद्वादशसंयुतम् ॥ ६७ ॥
योजनानां सहस्रन्तु विस्तारे सार्धमुन्नते । तत्राऽमृताऽऽसवः पूर्णः स्वाद्यो मञ्जुलसौरभः ॥ ६८ ॥
सुधांशुरूपः संयुक्तः कलाभिः परितो विधुः । तत्र पोतस्थितः खेलंस्तरङ्गेष्वासवाऽमृते ॥ ६९ ॥
श्रीचक्रस्थाः शक्तयो यास्तासां पानाय कल्पितम् ।
महापद्माऽटवीसंस्थाश्चाऽपि याः शक्तयोऽमलाः ॥ ७० ॥
मुख्यशक्तिप्रसादन्तु प्राप्य मोदन्ति सन्ततम् । तत्राऽग्नेयं महाकुण्डं चिदग्निज्वालमालितम् ॥ ७१ ॥
सहस्रयोजनाऽऽयामं तथा निम्नं त्रिमेखलम् । शतयोजनमुन्नम्रा विस्तृता मेखलाः पृथक् ॥ ७२ ॥
तत्र श्रीत्रिपुरादेव्या जनकश्चिन्मयाऽनलः । द्विसहस्रयोजनोन्नतज्वालामालयाऽऽवृतः ॥ ७३ ॥
गृहस्य पश्चिमदिशि स्थितश्चक्रात्मको रथः । नानामणिगणाऽऽकीर्णः सहस्रयोजनाऽऽयतः ॥
चतुर्गुणोन्नतो भूमिनवकेनाऽतिसुन्दरः । दशेन्द्रियहयोपेतो मनःसारथिसंयुतः ॥ ७५ ॥
आम्नायचक्रश्चाऽङ्गारो योगरश्मिर्मरुध्वजः । नभो वितानः सुमहान् सर्वलोकमयः स्थितः ॥

में डण्ठल और पत्तों से केसरिया रंग की लम्बी-लम्बी कर्णिका भी फैली हों, इसलिए तुम्हें मैं कहता हूँ॥ ६१ ॥ हजार योजन लम्बी गोमूत्र की तरह पीली इसकी शाखा हो, बीस योजन इसकी चौड़ाई होनी चाहिए॥ ६२ ॥ हे कुम्भज ऋषि! इसके पत्ते तीस योजन लम्बे हों और उसकी चौड़ाई पन्द्रह योजन हो, केसरों की भी लम्बाई इसी अनुपात में हों॥ ६३ ॥ कर्णिका दस योजन विस्तीर्ण बतलायी गयी है, उस पर पहाड़ की चोटी की आकृति के समान मणिप्रभा वाले भौंरें वहाँ बैठे हों॥ ६४॥ उसके भीतर अत्यन्त भव्य त्रिपुरा देवी का गृह हो, चिन्तामणि से चित्र-विचित्र ढंग से रचित अतिश्रेष्ठ भवन हो॥ ६५ ॥ उस भवन में चार दरवाजे हों, वहाँ दिव्य आधारस्तम्भ बने हों। वह आधारस्तम्भ अग्नि की तरह चमकता हो, गोल हो तथा अनेक कलाओं से युक्त हो॥ ६६ ॥ पाँच सौ योजन तक फैले भवन के चारों ओर ऊँची दीवार हो। वहाँ बारहों कला से युक्त सूर्यात्मक पात्र हो॥ ६७ ॥ सहस्र योजन तक फैले भवन की आधी ऊँचाई तक इसका फैलाव हो। वहाँ अमृत रूपी सुरा के सुन्दर सुगन्ध से युक्त स्वादपूर्ण रस हो॥ ६८ ॥ अमृत रूपी कलाओं से चारों ओर घिरे चन्द्रमा युक्त नाव पर अमृत-सरोवर के तरंग पर खेलती हुई॥ ६९ ॥ वहाँ श्रीचक्र पर उपस्थित शक्तियों को पीने के लिए इस सरोवर की कल्पना की गई है। महापद्म के जंगल में जो अमलशक्तियाँ भी संस्थापित हैं॥ ७० ॥ मुख्य शक्ति की कृपा पाकर ही यहाँ प्रसन्न होते हैं। यहाँ आग्नेय महाकुण्ड है, जहाँ चिति रूपी अग्नि की ज्वालामाला लहकती रहती है॥ ७१ ॥ हजार योजन लम्बे तथा तीन मेखला नीचे सौ योजन ऊँचा फैले अलग से मेखला (करधनी) जुटे हो॥ ७२ ॥ वहाँ श्रीत्रिपुरा देवी के पिता अग्निदेव दो हजार योजन ऊँची उठती ज्वालामाला से घिरे हो॥ ७३ ॥ भवन की पश्चिम दिशा में चक्रात्मक रथ खड़ा है, अनेक मणिगणों से उसका निर्माण किया है; यह रथ हजार योजन लम्बा है॥ ७४ ॥ चार गुणा ऊँची भूमि अत्यन्त सुन्दर है, दस इन्द्रियाँ उसके दस घोड़े हैं, मन ही उसका सारथि है॥ ७५ ॥ आम्नायचक्र उसका अंगार है,

चिन्तामणिगृहे तस्मिन्मध्ये श्रीचक्रनायकः । नवाऽऽवरणदेवीभिर्युतः परमशोभनः ॥ ७७ ॥
तन्मध्ये त्रिपुरा देवी पञ्चब्रह्मात्ममञ्चके । कामेश्वराऽङ्कसंस्थाना ज्योतीरूपा विराजते ॥ ७८ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीपुर-
वर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४८१ ॥

योग रश्मि है, मरु उसका ध्वज है, आकाश उसका वितान है; वह महान् रथ सर्वलोकमय है ॥ ७६ ॥ उस चिन्तामणि गृह के बीच में श्रीचक्रनायक है, नौ आवरणों वाली देवियों से युक्त वह परम सुन्दर है ॥ ७७ ॥ उसके बीच त्रिपुरा देवी पंचब्रह्मात्मक रूप में भगवान् कामेश्वर की गोद में विराजित ज्योति रूप में है ॥ ७८ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में श्रीपुर-
वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४४८१ ॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रुत्वैवमद्भुतं वृत्तं विश्वकर्माऽतिविस्मितः। पप्रच्छाऽनन्तरं वाक्यं सर्वलोकपितामहम्॥ १ ॥
पितामहाऽत्र सन्देहो भगवन् बहुधा मम। हृदि तत् परिपृच्छामि वक्तुं तन्मे त्वमर्हसि॥ २ ॥
केनेदं निर्मितं स्थानं कदा केन च हेतुना। न गतिस्तत्र चाऽन्येषां गुणजेभ्य इति श्रुतम्॥ ३ ॥
पुनस्तत्राऽमरा मर्त्या नागाद्याश्चाऽपि वर्णिताः। कथमेतत् स्थितं देव कृपां कुरु मयीश्वर॥ ४ ॥
आपृष्ट एवं लोकेशः प्राह तं विश्वशिल्पिनम्। त्वष्टः शृणु समाख्यास्ये चैतद्वृत्तं सुगोपितम्॥
पुरा वयं गुणमया विश्वशक्त्या विनिर्मिताः। ब्रह्मादयो लोकसृष्टिस्थितिसंहृतये ननु॥ ६ ॥
तदा वयं सृष्टिमुखक्रियाकृतिपरायणाः। सदा समाकुलस्वान्तैस्तोषिताऽस्माभिरम्बिका॥ ७ ॥
त्रिपुरा परमाशक्तिः केवला चितिरूपिणी। निष्कलाऽऽकाशरूपेण केवलं वाङ्मयी शिवा॥
आहाशरीरिणी वत्साः किं वः समभिवाञ्छितम्। संश्रुत्वैवं परां वाचं नत्वाऽस्माभिः समीरितम्॥
स्तुत्वा तां विविधैः स्तोत्रैर्बद्धाऽञ्जलिभिरादरात्। महादेवि वयश्चाऽस्मिन् जगत्कृत्ये निरन्तरम्॥
भवत्या विनियुक्ता वै नैषद्विन्दामहे रतिम्। त्वत्स्वरूपस्थितिं त्यक्त्वा न किञ्चिदभिरोचते॥ ११ ॥
सुधारसाऽऽस्वादनानां यथा क्षारोदसेवने। तत्कृपां कुरु देवेशि न रमामोऽत्र कर्मसु॥ १२॥
एवमुक्ता ब्रह्ममुखैस्त्रिपुरा प्राह नः पुनः। विधिमुख्याः साम्प्रतं नो भवेदेतत् कथञ्चन॥ १३॥

❋ विमला ❋

ये विस्मयजनक बातें सुनकर विश्वकर्मा ने विस्मित होकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी से पूछा॥ १॥ हे पितामह! इसमें मेरे मन में अनेक सन्देह हैं; सन्देह-निराकरण के लिए मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, कृपया आप बताये॥ २॥ इस स्थान का किसने, कब और किसलिए निर्माण किया, जहाँ अन्य देवताओं की भी गति नहीं सुना है?॥ ३॥ फिर वहाँ देवता, मनुष्य और नाग प्रभृति का वर्णन किया गया है। हे देव! ये लोग वहाँ कैसे अवस्थित हैं? हे मेरे मालिक! मुझ पर कृपा करें॥ ४॥ इस तरह पूछने पर ब्रह्मा ने उस विश्वशिल्पी से कहा—हे विश्वकर्मा! सुनो, यह अत्यन्त गोपनीय चरित मैं तुम्हें सुनाऊँगा॥ ५॥ पहले हम सभी देवगण विश्वशक्ति से विनिर्मित हुए। ब्रह्मा, विष्णु, महेश लोक सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए इसी शक्ति से निर्मित हैं॥ ६॥ तब हम सृष्टिमुख क्रिया और कृति से परायण हुए। इससे हमारा अन्तः सदैव आकुल था, हमने उस पराम्बिका को सन्तुष्ट किया॥ ७॥ वह पराशक्ति केवल ज्ञानगम्या है, वह निष्कला है, आकाशरूपा है, केवल वाङ्मयी शिवा है॥ ८॥ वह शरीर-विहीन है। उसने कहा—ओ वत्स! तुम लोग क्या चाहते हो? हमने उस पराशक्ति की आवाज ही सुनी, फिर उन्हें प्रणाम कर अपनी कामना प्रकट की॥ ९॥ विविध स्तोत्रों से मैंने उनकी स्तुति की। आदरपूर्वक बद्धांजलि होकर उनसे कहा—हे महादेवि! हम लोग इस जगत्-कृत्य में निरन्तर॥ १०॥ आपके द्वारा नियुक्त हैं, पर इस काम में हमारा मन नहीं लगता; हमें तो केवल आपके रूप और स्थिति को छोड़कर कुछ भी अच्छा नहीं लगता॥ ११॥ जैसे किसी को सुधारस चखने के बाद खारा जल पीने को कहे, उसी तरह हमारी स्थिति है। इसलिए हम पर कृपा कीजिए, सृष्टिकर्म में हमारा मन नहीं लगता॥ १२॥ ब्रह्मादि देवताओं के इस तरह पूछे जाने पर त्रिपुरा देवी ने हमें

नियतिर्मेऽतिदुर्वारा सङ्क्लृप्ता प्राङ्मयैव सा। चिन्तितुं नाऽर्हथैवं वो दास्येऽन्यदभिवाञ्छितम्॥
ततोऽस्माभिः प्रार्थिता सा त्रिपुरा लोकभावनी। यद्येवमम्ब तत्त्वञ्च गुणमूर्तिर्महेश्वरी॥ १५॥
राजराजेश्वरी भूत्वाऽखिलाऽण्डानां प्रशासने। कुरु तत्र वयं नित्यं त्वन्मूर्तेरभिषेवनात्॥ १६॥
प्राप्स्यामोऽत्र रतिं लोके त्वदाज्ञापालनादपि। इत्यस्मदीरितं श्रुत्वा प्राह सा त्रिपुरा परा॥ १७॥
अस्त्वेवं वो हितार्थाय दृश्यमूर्तिर्भवाम्यहम्। नात्राण्डेषु स्थितिं प्राप्स्ये किन्त्वशेषाऽण्डवर्तिनाम्॥
साधारणं सुधाऽम्भोधौ रत्नद्वीपं सृजाम्यहम्। तत्र मां भक्तिभावेन यजन्तु जगदीश्वराः॥ १९॥
तत्र कुण्डे समिध्याऽग्निं चिन्मयं ज्वलिते शुचौ। यथेप्सितं ध्यायत मां स्त्रीपुम्प्रकृतितः शुभाम्॥
ध्यानानुरूपा वो भूत्वा प्रशासिष्येऽण्डसन्ततिम्। तत्राखिलाण्डसंस्थानां ब्रह्मादीनां निरन्तरम्॥
दिशामि दर्शनं स्वीयं स्थूलभावस्य संस्थिता। इत्युक्त्वाऽस्मान् विधिमुखानन्तर्धानं जगाम सा॥
अथ तस्या वचनतो ब्रह्माण्डान्निर्गता वयम्। पीयूषाऽब्धिं समासाद्य रत्नद्वीपं समन्ततः॥ २३॥
विचिन्वतश्चिरेणाऽथ मणिद्वीपोऽनुसादितः। नवरत्नमयः स्वीयच्छविव्याप्तदिगन्तरः॥ २४॥
तत्र गत्वा विनिर्माय कुण्डं परमशोभनम्। प्रोक्तमानं तत्र वह्नियोजनं स्यात्कथन्त्विति॥ २५॥
चिन्तां प्राप्ता वयं तत्र नाऽग्निरस्ति न चेन्धनम्। अथ देवः शिवः कुण्डे स्वाक्ष्णोऽग्निमनुकल्पयत्॥
अनिन्धनन्तु तं दृष्ट्वा प्रशमाऽभिमुखं शुचिम्। विष्णुः स्वयं स्वचेतोंऽशैरेधांसि समकल्पयत्॥
अथ प्रज्वलिते वह्नौ विधिस्त्वं समकल्पयम्। मनःपशुं बुद्धिमाज्यमहङ्कारं हविस्तथा॥ २८॥

फिर कहा— हे विधि-प्रमुख देवगण! इस समय जो तुम कह रहे हो, वह किसी भी स्थिति में होने को नहीं है॥ १३॥ मेरा नियन्त्रण अति दुर्निवार है, इसका विधान पहले ही मैंने कर दिया है, इसलिए यह चिन्तन योग्य नहीं है; अतः इससे भिन्न आप जो चाहें, मैं दूँगी॥ १४॥ तब हमने उस लोकभाविनी त्रिपुरा की प्रार्थना की। हे माँ! यदि ऐसी बात है तो हे महेश्वरि! तुम सगुण रूप में॥ १५॥ राजराजेश्वरी बनकर अखिल ब्रह्माण्ड पर शासन करो, तब हम प्रतिदिन तुम्हारी मूर्ति की सेवा करेंगे॥ १६॥ तब इस लोक में तुम्हारी आज्ञा पालन करने में भी हमें आनन्द मिलेगा। हमारी यह बात सुनकर पराम्बिका त्रिपुरा ने कहा॥ १७॥ ठीक है, तुम्हारे हित के लिए दृष्टि रूप में आऊँगी, लेकिन केवल इस ब्रह्माण्ड में मैं नहीं रहूँगी पर अखिल ब्रह्माण्डवर्तिनी बन जाऊँगी॥ १८॥ साधारण सुधासागर में रत्नद्वीप बनाऊँगी, वहाँ ही हे जगदीश्वर! भक्तिभाव के साथ मेरी पूजा करें॥ १९॥ वहाँ कुण्ड में समिधा की अग्नि है, वह चिन्मय पवित्र और प्रज्वलित है; उसी अग्नि में तुम जैसा चाहो—स्त्री या पुरुष के शुभ रूप का ध्यान करो॥ २०॥ तुम जैसा ध्यान करोगे उसी रूप में अखिल ब्रह्माण्ड का मैं शासन करूँगी। उसी ब्रह्माण्ड में संस्थित ब्रह्मादि देवताओं को निरन्तर॥ २१॥ स्थूल रूप में अवस्थित मैं अपना दर्शन दूँगी। विधि-प्रमुख हम सबों को इतना कहकर भगवती तिरोहित हो गई॥ २२॥ भगवती की बात से हम लोग ब्रह्माण्ड से बाहर आ गये। अमृतसागर में पहुँच कर रत्नद्वीप में चारों ओर॥ २३॥ खोजते हुए बहुत देर के बाद मणिद्वीप को पा लिया। नये रत्नमय अपनी छवि से दिशाओं को व्याप्त कर रहे थे॥ २४॥ वहाँ जाकर परम सुन्दर कुण्ड का निर्माण कर कही हुई विधि के अनुसार समिधा और आग योजना स्थिर की॥ २५॥ किन्तु कष्ट तो यह था कि न वहाँ आग थी, न इन्धन। तब भगवान् शिव ने कुण्ड में अपनी आँख से निकली आग की कल्पना की॥ २६॥ लेकिन उस आग को बिना इन्धन का देखकर शिवनेत्र की वह पवित्र आग जब बुझने की ओर प्रवृत्त थी तब विष्णु ने स्वयं अपनी चेतनशक्ति को इन्धन बना दिया॥ २७॥ उस प्रज्वलित आग में विधि ने अपने मन को पशु बनाया, बुद्धि को घी और अहंकार को हवि बना डाला॥ २८॥ उस परादेवता के लिए हवन करने हेतु करणों को पात्र

करणानि च पात्राणि तद्धोतुं देवतां पराम्। अभिध्यायमहं स्वाऽन्तर्वह्नौ स्त्रीमूर्तिमीदृशीम्॥
ध्यात्वा हविर्हुतं यावत्तावत् सा परमेश्वरी। कुण्डवह्नेः समुदभूत् ध्यानरूपाऽनुसारिणी॥ ३०॥
पराशक्तिरियं तत्र ततोऽस्माभिरभिष्टुता। निर्ययौ पावकात्तस्माद्बहिस्त्रैलोक्यसुन्दरी॥ ३१॥
अथाऽवदन्मां परमा क्वाऽऽसनं मे विनिर्दिश। आदिष्ट एवं परममासनं कल्पितं मया॥ ३२॥
स्पर्शमात्राद्विशीर्णं तदासनं भूय एव तत्। कल्पितं विविधं सारं स्पर्शाच्छीर्णं बभौ क्षणात्॥ ३३॥
सर्वसामर्थ्यविहितान्यासनान्यपि तानि मे। परःशतं विशीर्णानि तदाऽहं लज्जितोऽभवम्॥
अथाऽऽविरासीन्निमिषात् सर्वदेवः सदाशिवः। तदिच्छयैव तुर्यश्च तौ तां देवीं प्रणेमतुः॥ ३५॥
तावब्रवीत् परा देवी सा कल्पयतमासनम्। दध्यौ सदाशिवः श्रुत्वा वाक्यं तस्याः क्षणादथ॥
अनेककोटिसंख्याता आययुर्गुणमूर्तयः। सदाशिवा ईश्वराश्च तेभ्यः सर्वेभ्य एव च॥ ३७॥
सारं समाकृष्य पञ्चमूर्तीश्चक्रेऽतिसुन्दरीः। सदाशिवांऽशेन तत्र सिन्दूरनिचयाऽरुणम्॥ ३८॥
फलकं कल्पयत्तस्य मूर्त्या सङ्घटितं शुभम्। ईशरुद्रहरिविधिशक्तिसङ्घचतुष्टयैः॥ ३९॥
पादांस्तन्मूर्तिघटितान्निर्ममे स सदाशिवः। अशेषपृथिवीसारसम्भृताऽऽस्तरणं ततः॥ ४०॥
हंसतूलसंहतिवत् कोमलं तस्य मूर्धनि। आस्तृतं मेरुशिखरिसमुदायसुसाधितम्॥ ४१॥
उपधानं विरचयद्देवदेवः सदाशिवः। प्रणम्य प्राह तां देवीं सिद्धमम्ब समारुह॥ ४२॥
तन्मध्ये तं गुणेशानां नमस्कृत्य सदाशिवम्। प्रोचुर्देव नौपयिकं पीठमेतद्धि मन्दिरम्॥ ४३॥
आकाशसंश्रयं तस्मान्मन्दिरं कुरु सुन्दरम्। सदाशिवोऽपि युक्तं तन्मत्वा चक्रे गृहं शुभम्॥ ४४॥

बनाकर मैंने अपने अन्तर्वह्नि को ऐसी स्त्रीमूर्ति का ध्यान करते हुए॥ २९॥ जब तक हवि की आहूति डाली इसी बीच उस त्रिपुरा कुण्ड की आग से जैसा मैंने ध्यान किया था तदनुसार प्रकट हो गई॥ ३०॥ हमने देखा—यह तो पराशक्ति ही थी। हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर वह त्रैलोक्यसुन्दरी उस आग से बाहर निकली॥ ३१॥ उस परमा शक्ति ने हमसे पूछा—मेरा आसन कहाँ है? मुझे बतलाओ। आदेश पाते ही मैंने दिव्य आसन की कल्पना की॥ ३२॥ उनके स्पर्श से ही वह आसन छिन्न-भिन्न हो गया। मैंने फिर उसी तरह के आसन की कल्पना की, हर तरह के सार से आसन की कल्पना की, पर पलक झपकते ही हर आसन उनके स्पर्श से समाप्त हो गया॥ ३३॥ मैंने अपनी सारी ताकत लगाकर सैकड़ों आसनों का निर्माण किया, पर सब-के-सब उनके स्पर्श मात्र से समाप्त होते गये। तब मैं लज्जित हो गया॥ ३४॥ तब एक पल में सर्वदेवमय सदाशिव आविर्भूत हुए। उनकी इच्छा से ही उन दोनों ने उस देवी को प्रणाम किया॥ ३५॥ उन दोनों को परादेवी ने आसन लाने को कहा। देवी की यह बात सुनकर एक क्षण में सदाशिव ने आसन दिया—ऐसा सुनकर तत्क्षण अनेक करोड़ देवगण आ पहुँचे। सदाशिव ईश्वर हैं, उनके लिए, सबों के लिए ही॥ ३६-३७॥ सार खींचकर अत्यन्त सुन्दर पंचमूर्ति का निर्माण किया गया। यह मूर्ति सिन्दूर की ढेर की तरह लाल और सदाशिव के अंश से उत्पन्न हुई॥ ३८॥ उसके फलक की जिसमें मूर्ति संघटित थी, जिस पर ईश, रुद्र, हरि, विधि, शक्ति—ये चार शक्तियाँ संघटित हुईं॥ ३९॥ उस सदाशिव ने निर्मम होकर पैर के नीचे उस मूर्ति का निर्माण किया और अशेष पृथ्वी के सार को आस्तरण बनाया॥ ४०॥ हंस-तूल को मिलाकर उसके कोमल माथे पर उस आसन को फैला दिया, मेरुशिखर समुदाय पर उसे साधित किया॥ ४१॥ उसके लिए सदाशिव ने वस्त्र का निर्माण किया और उस देवी को प्रणाम कर कहा—हे अम्ब! अब यह आसन सिद्ध है, इस पर आप विराजें॥ ४२॥ इसी बीच उन गुणेशानों को प्रणाम कर सदाशिव बोले—इस पीठ के लायक उचित यह मन्दिर नहीं है॥ ४३॥ गगनचुम्बी सुन्दर मन्दिर का निर्माण करें। सदाशिव ने भी इस कथन को

चिन्तामणिगणैः कीर्णं नानारत्नोपभूषितम् । योजनानां द्वे सहस्रे विस्तृतौ गृहराजकः ॥ ४५ ॥
चतुर्द्वारश्चतुर्वेदमय आम्नायमण्डितः । नभोमयवितानेन महताऽतिविराजितः ॥ ४६ ॥
मत्वा गृहं तदाऽऽकाशेन मनोहरमुत्तमम् । ससर्ज तस्य परितो महापद्मवनं शुभम् ॥ ४७ ॥
सम्प्रोक्तलक्षणं तेन मन्दिरं तद्व्यराजत । एवं तन्मन्दिरे रत्नसिंहासनमधीश्वरी ॥ ४८ ॥
समारुहत् सा त्रिपुरा भासयन्ती समन्ततः । रत्नसिंहासने तस्मिन् संस्थिता सा महेश्वरी ॥ ४९ ॥
असंख्यैर्विधिविष्णवीशतुर्यमूर्तिसदाशिवैः । संस्तुता बहुधा प्राह सदाशिवमधीश्वरी ॥ ५० ॥

सदाशिव ममाऽऽख्यानमनाख्यायाऽद्भुतं कुरु।
आख्याताऽहं येन लोके भवामि विदिताऽऽकृतिः ॥ ५१ ॥

एवं तया नियुक्तोऽथ देवदेवः सदाशिवः । यावत्तस्याः समाख्यानं चिन्तयामास मानसे ॥ ५२ ॥
तावद्ब्रह्मविष्णुरुद्रमुखैः सम्प्रार्थितोऽभवत् । देव नौपयिकं ह्येतद्भासते नः पराम्बिका ॥ ५३ ॥
चितिर्द्रष्टृमयी नित्या सदसद्रूपकारणम् । ध्यानाऽनुरोधवपुषा दयया दृश्यतां गता ॥ ५४ ॥
योषिद्रूपधरा देवी विना पुरुषसंश्रयम् । नाऽत्यर्थं शोभते लोकविगानादिति मन्महे ॥ ५५ ॥
न क्वचिल्लोकवितती नारी नरसमाश्रयम् । ऋते सम्भवते वल्ली तरुहीना यथा भुवि ॥ ५६ ॥
तदेतस्या जगद्धात्र्या अनुरूपं पतिं शुभम् । परं कल्पय यन्नः स्यात् सर्वेषामभिवाञ्छितम् ॥ ५७ ॥
श्रुत्वैवं गुणमूर्तीनामुक्तं देवः सदाशिवः । चिन्तयित्वा चिरं वाक्यं प्राह व्यवसिताऽन्तरः ॥ ५८ ॥
शृण्वन्तु गुणजाता मे वाक्यमेतत् समाहिताः । इयं परात्परा देवी सच्चिन्मात्रस्वरूपिणी ॥ ५९ ॥

उपयुक्त मानकर शुभसंगत मन्दिर का निर्माण किया॥४४॥ चिन्तामणियाँ वहाँ फैली थीं, अनेक रत्न से वह सुशोभित था। दो हजार योजन तक वह भव्य गृहराज विस्तृत था॥४५॥ सांगोपांग वेदमण्डित, वेदमय चार दरवाजें वाला उसका वितान आकाशमय था। वह विस्तृत और महान् था॥४६॥ महाकाश के तुल्य अतिमनोहर और उत्कृष्ट उस घर को मानकर उसके चारों ओर कल्याणकारी महापद्म की रचना करो॥४७॥ ऊपर जो लक्षण बतलाये गये हैं उसी तरह सुन्दर मन्दिर का निर्माण कर उसके बीच में संसार की स्वामिनी का रत्नसिंहासन हो॥४८॥ वह त्रिपुरा उस सिंहासन पर आसीन होकर चारों ओर से प्रतिभासित होगी॥४९॥ अनगिनत ब्रह्मा, विष्णु और ईश तुर्यमूर्ति सदाशिव से संस्तुत होकर बहुधा सदाशिव अधीश्वरी ने कहा॥५०॥ हे सदाशिव! मेरा आख्यान अद्भुत हो, वैसा करो, जिससे मेरी जानकारी लोकों में फैले और आकृति रूप में यहाँ अवस्थित हूँ—इसकी जानकारी भी लोगों को मिले॥५१॥ इस तरह देवाधिदेव सदाशिव भगवती द्वारा नियुक्त होकर मन-ही-मन उनके आख्यान का चिन्तन करने लगे॥५२॥ तब तक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र प्रमुख देवों ने इनकी प्रार्थना कर इनसे कहा—हे देव! वह पराम्बिका हमें कहाँ दीखती है, इसका कुछ उपाय करें॥५३॥ वह नित्या चितिमयी सद्-असद् रूप के कारण से, ध्यान में किये गये अनुरोध से दया कर सशरीर दृष्टिपथ में आयी॥५४॥ वह नारी रूपा भगवती बिना पुरुष का आश्रय ग्रहण किये शोभती नहीं है, यह मेरा मत है॥५५॥ संसार में नर से विहीन नारी का कोई महत्त्व नहीं देखा जाता। जैसे किसी लता को किसी वृक्ष का सहारा न मिले तो वह धरती पर लोट जाती है॥५६॥ इसलिए इस जगद्धात्री के अनुरूप इनके शुभपति की कल्पना करे, जिससे हम सबों की कामना की सम्पूर्ति हो॥५७॥ इस तरह देवताओं की प्रार्थना सुनकर सदाशिव ने बहुत देर तक सोचकर अपने मन को व्यवस्थित कर उनसे कहा॥५८॥ हे देवगण! मैंने जो इस पर सोचा है वह आप लोग समाहित मन से सुने। यह परात्परा देवी है, सत्-चित् मात्र उनका स्वरूप है॥५९॥ यह सबके सामने अकेली है, यह परम स्वतन्त्र है,

एकाऽऽसीत् सर्वपुरतः स्वातन्त्र्याऽऽत्मविधायिनी। न सन्नाऽसदभिन्नं वा विभिन्नं किमपि ह्यभूत्॥
सा स्वस्वभावविभवभरेणैवाऽवभासयत्। एतज्जगच्चक्रचित्रं स्वात्मन्यादर्शलीलया॥ ६१॥
नैतस्याः सदृशः कोऽपि कुत एवाऽधिको भवेत्। तदस्याः सर्वलोकैकमातुर्भर्ताऽत्र को भवेत्॥
न हि मेऽत्र भवेच्छक्तिः कर्तुं स्यात् खलु किञ्चन। वदत्येवं सदा पूर्वे शिवेऽस्माकं प्रपश्यत।म्॥
विदित्वाऽस्मत्समीहां सा त्रिपुरा परमेश्वरी। ईषत् स्मितं कृतवती कोटिपूर्णेन्दुभासनम्॥ ६४॥
अथाऽभवन्महाशब्दो ब्रह्माण्डौघविभेदनः। विदलन् श्रोत्रजालानि बधिरीकृतदिक्तटः॥ ६५॥
प्रजज्वाल महातेजः सर्वदिङ्मण्डलाऽदनम्। तडित्कोट्युदयाऽऽभासं सर्वचक्षुःप्रमोषणम्॥
तेन शब्देन महता तेजसा च समन्ततः। बधिराऽन्धीकृताः किं तदित्याश्चर्यं समागताः॥ ६७॥
दृष्टाऽस्माभिः क्षणेनैव ततः सा परमेश्वरी। समानसुन्दराऽङ्गस्य पर्यङ्कमणिशोभिनी॥ ६८॥
मिथुनीभूतसंस्थाना प्रतिबिम्बं श्रिता यथा। दृष्ट्वा समानपुरुषवामाऽङ्कसुविराजिताम्॥ ६९॥
प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः स्वेष्टासिद्धेर्जगद्विधे। स्वाऽङ्गसौन्दर्यलालित्यभरणेनैव परस्परम्॥ ७०॥
क्षिपन्निव तन्मिथुनं परीरम्भसुखोल्बणम्। अथाऽब्रवीन्नः परमा देवा वः सिद्धमीप्सितम्॥ ७१॥
अहं द्विधा हि सञ्जाता भवदीप्सितहेतवे। वदन्त्वावयोर्नामानि यावः ख्यातिं यतस्त्विह॥ ७२॥
श्रुत्वा सदाशिवो देवः प्रेक्षाऽस्मान्नामकर्मणि। विमूढानाह नत्वा तां देव्यस्मत्कामपूरणात्॥
कामेश्वरी त्वं देवश्च भवेत् कामेश्वरस्तथा। राजराजात्मनां नस्त्वमीशनाच्चाऽपि साम्प्रतम्॥

अपने आपकी निर्मात्री है; न यह सत् है न असत्, न उससे भिन्न और न विभिन्न हैं, पर हैं॥ ६०॥ वह भगवती अपने स्वभाव के वैभव भार से ही अवभासित है, अपनी आत्मा की आदर्श लीला से ही इस संसार-चक्र को चित्रित करती है॥ ६१॥ अतः इसकी तरह या इससे अधिक कहाँ कौन है जो सम्पूर्ण लोक की इस माता का पति बनेगा?॥ ६२॥ इस विषय में कुछ करने की हमारी कोई शक्ति नहीं है। हम लोगों को देखते ही सदाशिव ने इस तरह कहा॥ ६३॥ हम लोगों की इच्छा को जानकर वह भगवती त्रिपुरा कुछ मुस्करायी। उसकी मुस्कराहट से लगा करोड़ों पूर्ण चन्द्र एक साथ खिलखिला उठे हों॥ ६४॥ इसके बाद ब्रह्माण्ड को भेदने वाला महाशब्द सुनायी पड़ा। कानों को चीरती उस आवाज ने दिशाओं को बहरा बना डाला॥ ६५॥ उसके बाद एक महातेज प्रज्वलित हुआ, लगा कि यह सारी दिशाओं को जला डालेगा। करोड़ों बिजलियाँ एक साथ चमक उठीं, जिसने सबकी दर्शन-शक्ति ही समाप्त कर दी॥ ६६॥ फलतः उस महान् शब्द और तेज से चारों ओर के जीव-जन्तु बहरे और अन्धे हो गये। हम सब भी आश्चर्यचकित रह गये—यह क्या?॥ ६७॥ हम सबों को देखते-ही-देखते पलभर में वह परमेश्वरी अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली, मणि-निर्मित पलंग पर शोभती हुई॥ ६८॥ पति-पत्नी के रूप में उस पलंग पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब की तरह दीख पड़ी। अति सुन्दर पुरुष की बायीं ओर उन्हें विराजित देखकर॥ ६९॥ हम सब अत्यन्त प्रसन्न हुए। अपने ईष्ट की जगत्-विधान में सिद्धि मिली और वे दोनों परस्पर एक-दूसरे के अंगलालित्य में सम्बद्ध थे॥ ७०॥ वे दम्पति एक-दूसरे के सौन्दर्य को अपनी ओर खींचते आलिंगनबद्ध थे। उस परमेश्वरी ने कहा—हे देवगण! तुम्हें तुम्हारा अभीप्सित मिला॥ ७१॥ मैं ही तुम्हारी इच्छा की सिद्धि के लिए दो खण्डों में विभक्त हुई हूँ, अब हम दोनों का तुम नामकरण करो जिससे हमें संसार में ख्याति मिले॥ ७२॥ भगवती की यह बात सुनकर नाम निश्चित करने में विमूढ़ हमें देखकर सदाशिव ने हमारी कामना की पूर्ति से प्रभावित हो उन्हें प्रणाम कर कहा॥ ७३॥ हे भगवती! तुम्हारा नाम कामेश्वरी और तुम्हारे पति का नाम कामेश्वर हो। राज-राजात्मना तुम हो, हमारे ईश्वर भी उसी तरह हैं॥ ७४॥ अतः तुम राजराजेश्वरी हो और ये

राजराजेश्वरी त्वं वै राजराजेश्वरस्त्वयम् । त्वं वै त्रिपुरसुन्दरी चैष त्रिपुरसुन्दरः ॥ ७५ ॥
अथ धातृमुखाः स्तुत्वा वयं तां परमेश्वरीम् । अप्रार्थयत भूयस्तां मत्वा तत्रैकलां स्थिताम् ॥ ७६ ॥
मातस्त्वं परिवारेण स्थातुमत्राऽर्हसीश्वरि । दृष्ट्वैकलां त्वां न वयं हृष्यामोऽतितरां शिवे ॥ ७७ ॥
एवं सा प्रार्थिताऽस्माभिः स्वदेहात् क्षणमात्रतः । परां स्वसदृशीं शक्तिमसृजत् प्रतिबिम्बवत् ॥
इत्याह्वयत तां शक्तिं महात्रिपुरसुन्दरीम् । इति सृज शक्तिचक्रं ममाऽनुगुणमुत्तमम् ॥ ७९ ॥
सर्वलोकेप्सितकरं परिवारं मदंशतः । ओमित्युक्त्वा च सा देवी शक्तिचक्रं महाऽद्भुतम् ॥ ८० ॥
ससर्ज श्रीमहादेव्याः शक्त्याऽऽवरणमद्भुतम् । तावन्मध्ये महादेवी स्वयं षोडशधाऽभवत् ॥
स्वयं ततोऽतिरिक्ताऽभूद्देवी सप्तदशी तदा । एतस्मिन्नन्तरे साऽपि महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ८२ ॥
नवशक्तीः ससर्जाङ्गात् सृष्ट्वा सा प्राह ताः प्रति । पृथक् सृजेथाः स्वस्वानुरूपाः शक्तीर्मनोहराः ॥
महासुन्दर्येति चोक्ताः ससृजुस्ताः पृथक् पृथक् । एवं सृष्टपरीवारा महाश्रीत्रिपुराऽम्बिका ॥
स्थानं तासां जगच्चक्रमयं निर्माय सत्वरम् । तत्तत्स्थानस्थिताभिः सा शक्तिभिः सेविताऽभवत् ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिता-
माहात्म्यं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५६६ ॥



राजराजेश्वर हैं। तुम त्रिपुरसुन्दरी हो और ये त्रिपुरसुन्दर हैं॥७५॥ विधाता-प्रमुख देवताओं के साथ हमने उस परमेश्वरी की स्तुति कर उनसे प्रार्थना की। वहाँ उन्हें अकेला मानकर॥ ७६॥ हे मातः! तुम्हें अकेला देखकर यहाँ हम सन्तुष्ट नहीं है, अतः आपसे हमारी प्रार्थना है, आप सपरिवार यहाँ विराजें॥ ७७॥ हमसे ऐसी प्रार्थना सुनकर पलक झपकते ही अपनी देह से अपने ही तरह प्रतिबिम्ब के रूप में अनेक शक्तियों की सृष्टि कर डाली॥ ७८॥ और उस शक्ति से महात्रिपुरसुन्दरी ने कहा—मेरे ही अनुगुण उत्कृष्ट शक्तिचक्र की सृष्टि करो॥ ७९॥ सभी लोगों के हितकर मेरे अंश से ही मेरे परिवार की संरचना करो। उस देवी ने इसे स्वीकार कर महान् अद्भुत शक्तिचक्र की॥ ८०॥ रचना कर डाली। महादेवी की शक्तियों का आवरण भी अद्भुत था। उन शक्तियों के बीच में स्वयं महादेवी सोलह रूपों में विभक्त हो गयी॥ ८१॥ अपने से अतिरिक्त सत्रह और खण्डों में बँटी। इसी बीच उस महात्रिपुरसुन्दरी ने भी॥ ८२॥ अपने अंग से ही नौ शक्तियों की रचना कर उनसे कहा—तुम सब अपने-अपने अनुरूप मन को भाने वाली शक्तियों का निर्माण करो॥ ८३॥ उन नौ शक्तियों ने अलग-अलग महासुन्दरियों की सृष्टि कर डाली। इस तरह श्रीत्रिपुरसुन्दरी अम्बिका का सृष्ट परिवार प्रकट हुआ॥ ८४॥ उसके बाद शीघ्र ही उनके लायक जगत्-चक्रमय स्थानों का निर्माण कर यथास्थान स्थापित कर त्रिपुरा देवी उन शक्तियों से सेवित हुयी॥ ८५॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललिता-
माहात्म्य नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४५६६॥



अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः



श्रुत्वेत्थमद्भुतं वृत्तं विश्वकर्मा जगद्विधिः । पप्रच्छ भूयः प्रणतस्तच्छ्रुतावतिकौतुकी ॥ १ ॥
भगवन् शक्तयो देव्या सृष्टा यास्त्रिपुराम्बया । नृपसंख्या नाम तासां रूपं स्थानञ्च मे वद ॥ २ ॥
महात्रिपुरसुन्दर्या सृष्टा यास्ताः समीरय । किंरूपाः कति संख्याकास्तत्सृष्टाश्चाऽपि वर्णय ॥
स्थानञ्चाऽपि जगच्चक्रप्रतिरूपं किमात्मकम् । सृष्टं श्रीत्रिपुराशक्त्या कुत्र काः शक्तयः स्थिताः ॥
एतन्मे सर्वमाख्याहि श्रोतुं मे प्रसमीहितम् । इति पृष्टो विश्वकृता प्रीतः प्राह चतुर्मुखः ॥ ५ ॥
शृणु त्वष्टर्गुह्यतमं सावधानेन चेतसा । एवमादौ विसृष्टा सा महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ६ ॥
नवशक्तीरसृजत शक्त्यौघस्य विसर्जने । समाज्ञप्तास्तया तास्तु प्राहुस्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ७ ॥
कथं वयं सृजामोऽम्ब शक्तीस्ते समुदीरिताः । श्रुत्वेति प्राह सा भूयो महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ८ ॥
आत्मयोगं समाश्रित्य द्रुतं सृजथ मा चिरम् । इत्युक्त्वाऽऽद्या समसृजद्दशशक्तीः सुलोहिताः ॥
ताश्चाऽणिमादिसिद्धीनां प्रदा लोकेऽभवन्नथ । पाशाऽब्जाऽङ्कुशपाणयः शशिखण्डशिखण्डकाः ॥
अणिमा लघिमा चैव महिमेशित्विका ततः । वशित्वा प्राकाम्यका च भुक्तीच्छाप्राप्तयः क्रमात् ॥
सर्वकामा च सिद्धयन्ता दश देव्यः समुद्गताः । अथ ता नवशक्त्यस्तु प्राहुर्देवीं स्वमातरम् ॥ १२ ॥
नाम नः प्रदिशाऽम्बाऽऽशु ततः शक्तीः सृजामहे । श्रुत्वाऽऽह ता महाशक्तीर्महात्रिपुरसुन्दरी ॥

※ विमला ※

जगत्-विधि का यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर विश्वकर्मा ने पुनः पूछा एवं प्रणाम कर अतिकौतुकी वह कथा सुनी ॥ १ ॥ हे भगवन्! त्रिपुराम्बिका ने जिन शक्तियों की सृष्टि की उनकी नृपसंख्या, नाम रूप और स्थान कृपया मुझे कहे ॥ २ ॥ महात्रिपुरसुन्दरी ने जिन शक्तियों की सृष्टि की उनका रूप कैसा था? उनकी संख्या कितनी थी? वह कैसे सन्तुष्ट हुई? वह भी बतलायें ॥ ३ ॥ और जगत्-चक्र का स्थान और प्रतिरूप किस तरह का था? यह भी बतलायें। त्रिपुरा ने जिन शक्तियों की सृष्टि की, वे शक्तियाँ कौन है और कहाँ है? यह भी बतलायें ॥ ४ ॥ ये सब कुछ भी मुझे बतलायें, मैं सुनना चाहता हूँ। विश्वकर्मा के ऐसा पूछने पर चतुर्मुख ब्रह्मा ने कहा ॥ ५ ॥ हे विश्वकर्मा! यह कथा अत्यन्त गुह्यतम है, इसे अति सावधान चित्त होकर ही सुनो। यह सब कुछ महात्रिपुरसुन्दरी ने प्रारम्भ में सर्जन किया था ॥ ६ ॥ शक्ति-समूह के विसर्जन् के बाद उन्होंने नवशक्ति की रचना की और आदेश दिया। उनका आदेश पाकर उन नवशक्तियों ने त्रिपुरसुन्दरी से पूछा ॥ ७ ॥ हे अम्ब! आपके द्वारा बतलायी गयी आपकी शक्तियों का हम सृजन कैसे करें? यह सुनकर महात्रिपुरसुन्दरी ने फिर उनसे कहा ॥ ८ ॥ आत्मयोग का आश्रय ग्रहण कर देर मत करो, शीघ्र इनकी सृष्टि करो। यह कहकर उस शक्ति ने लोहितवर्णा दस शक्तियों की रचना आद्यशक्ति के तुल्य ही कर डाली ॥ ९ ॥ ये शक्तियाँ लोक में अणिमादि सिद्धियों की प्रदात्री बनी। इनके हाथों में पाश, पद्म और अंकुश एवं माथे पर अर्धचन्द्र विराजित थे ॥ १० ॥ क्रमशः अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्विका, वशित्वा, प्राकाम्यका, भुक्ति, इच्छाप्राप्ति, सर्वकामा और सिद्धयन्ता—ये दस देवियाँ समुद्गत हुईं और उन नवशक्तियों ने महादेवी को अपनी

योगेन सर्जनाद्यूयं योगिन्यस्तु भविष्यथ। अथाऽऽद्या प्रार्थयामास त्रिपुरेशीं प्रणम्य तु॥ १४॥
मातः स्थानं कल्पयाऽऽशु शक्तीनां समवस्थितेः। प्रार्थितैवं पराशक्तिः ससर्ज स्थानमद्भुतम्॥
चतुरस्रा वेदिकैका योजनद्वितयोन्नता। द्विशतं योजनानान्तु विस्तारेण विनिर्मिता॥ १६॥
तस्योपरि चतुर्दिक्षु योजनानां चतुष्टयम्। बहिर्विहाय तस्यान्तश्चतुर्द्वारं सुशोभनम्॥ १७॥
योजनानान्तु विंशत्या विस्तृतं सुमनोहरम्। षट्योजनसुदीर्घश्च तत्सम्बद्धा तदन्ततः॥ १८॥
योजनद्वयमुन्नम्रा चतुरस्रसुभूमिका। द्वियोजना ततोऽन्तस्तु योजनोच्चा तथा पुनः॥ १९॥
एवं भूमित्रयं तस्य चाऽन्तः षोडशयोजने। भूमिका योजनोन्नम्रा षोडशच्छदसन्निभा॥ २०॥
तदन्तर्योजनोन्नम्रा वसुपत्रसमाकृतिः। योजनानान्तु विंशत्या भूमिकाऽतिमनोहरा॥ २१॥
आदित्ययोजनाऽऽयामा तदन्तर्योजनोन्नता। भूमिका शक्रकोणाभा तदन्तश्चाऽपि तावती॥
भूमिका दशकोणाभा तस्याऽन्तः शिवयोजना। योजनोच्चा पूर्ववत्तु दशकोणसमप्रभा॥ २३॥
अन्तरे दशसंख्यातयोजनाऽऽयामतः स्थिता। वसुकोणात्मिका भूमिर्योजनोच्छ्रायशोभिनी॥
तस्याऽन्तस्त्र्यस्रभूमिस्तु रसयोजनसम्मिता। योजनोच्चा तदूर्ध्वस्था तावदुच्छ्रायशोभिनी॥
योजनाऽऽयतविस्तारा बिन्दुभूमिः सुवर्तुला। प्रकल्प्य स्थानमेवं सा वृत्तभूमौ स्वयं स्थिता॥
पञ्चब्रह्मासनाऽऽसीनकामेशोत्सङ्गशोभिनी। स्वाङ्गोद्भूताः शक्तयो याः स्वसमा नृपसंख्यकाः॥
ताः स्वभूमेरधस्त्र्यस्रभूमौ संवेशिताः क्रमात्। इन्दोः कलामयाः पक्षदिनाऽधिष्ठातृदेवताः॥
नित्याख्याः कारणेनासां नामानि च वदामि ते। आद्या कामेश्वरी नित्या द्वितीया भगमालिनी॥

माँ कहा॥ ११-१२॥ हे अम्बा! आप पहले हमारा नाम शीघ्र बतलायें, तब हम अन्य शक्तियों की सृष्टि करेगीं। महाशक्तियों की यह बात सुनकर महात्रिपुरसुन्दरी ने उनसे कहा॥ १३॥ योग से मैंने तुम्हारी सृष्टि की है, अतः तुम सब योगिनी हों। तब आद्याशक्ति ने त्रिपुरा को प्रणाम कर उनसे प्रार्थना की॥ १४॥ हे माँ! शीघ्र मेरे स्थान को बतलायें, जहाँ हम रहें। उनकी ऐसी प्रार्थना करने पर अद्भुत और सुन्दर स्थानों की पराशक्ति ने संरचना कर दी॥ १५॥ दो योजन ऊँची चतुष्कोण एक वेदिका बनी, उसका विस्तार दो सौ योजन था॥ १६॥ उसके ऊपर चारों दिशाओं में चार योजन बाहरी स्थान को छोड़कर उसके भीतर सुन्दर चार दरवाजे थे॥ १७॥ बीस योजन विस्तृत मनोहर और छः योजन लम्बा उनसे सम्बद्ध अन्त तक फैला था॥ १८॥ दो योजन ऊँची चतुरस्र भूमि वाली थी, दो योजन तक उसका विस्तार था और एक योजन उसकी ऊँचाई थी॥ १९॥ इस तरह तीन भूमि और उसका अन्त सोलह योजन में समाप्त हुआ। वह भूमिका एक योजन नीचे थी और सोलह दिव्य पत्रिकाओं की प्रभा से युक्त थी॥ २०॥ एक योजन ऊँची आठ पत्रों के समान आकृति वाली, बीस योजन लम्बी अतिमनोहर वह भूमि थी॥ २१॥ बारह योजन उसका आयाम था, उसका भीतरी भाग एक योजन ऊँचा था। वह धरती चौदह कोणों की आभा से सुशोभित थी, उसके भीतरी भाग में भी इतने ही कोण थे॥ २२॥ उस वेदिका की जमीन दस कोण वाली थी, उसके किनारे चार योजन थे और ऊँचाई एक योजन थी। पहले की तरह दस कोणों से प्रभा फूट रही थी॥ २३॥ उसका किनारा दस योजन विस्तृत था, उसमें आठ कोण थे, एक योजन ऊँची वह शोभ रही थी॥ २४॥ उसके किनारे की भूमि छः योजन थी, वह एक योजन ऊपर उठी थी। वह अनेक तरह से सुशोभित थी॥ २५॥ एक योजन लम्बी-चौड़ी बिन्दुभूमि गोलाकार थी। इस तरह की वृत्तभूमि के बीच में देवी स्वयं उपस्थित थी॥ २६॥ पञ्चब्रह्मासन पर आसीन भगवान् कामेश की गोद में शोभती, अपने अंगांश से समुद्भूत दस शक्तियाँ उनके बगल में उन्हीं की तरह शोभ रही थीं॥ २७॥ वे सभी अपनी-अपनी धरती पर

नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा ततः स्याद्वह्निवासिनी। महाविद्येश्वरी पश्चाच्छिवदूती ततः परम्॥
त्वरिता कुलसुन्दरी नित्या नीलपताकिका। विजया सर्वमङ्गला ज्वालामाला ततः परम्॥ ३१॥
चित्रेति नाम क्रमतो वामे पृष्ठे च दक्षिणे। पञ्चकक्रमयोगेन त्र्यस्रभूमौ निवेशिताः॥ ३२॥
स्वयं सप्तदशी नित्या षोडशी या पुरोदिता। सा तपोवीर्यसंयोगात् सायुज्यं समुपागता॥ ३३॥
सृष्ट्यादौ तत्र या देवीं महात्रिपुरसुन्दरी। तां बिन्दुभूम्यधिष्ठात्रीं कृत्वा स्वाग्रे निवेशयत्॥ ३४॥
योगिन्योऽपि तया सृष्टा नवसंख्याः पुरोदिताः। ताभिश्चाऽपि पृथक्कृत्यैर्नाम प्राप्तं यथाक्रमम्॥
प्रकटा च ततो गुप्ता तथा गुप्ततरा परा। सम्प्रदायाऽकुलोत्तीर्णा निर्भगा च रहस्यका॥ ३६॥
तथैवाऽतिरहस्याख्या पराऽपररहस्यका। निवेशिताः क्रमेणैता देव्या चक्रेषु तच्छृणु॥ ३७॥
चतुरस्रे नृपदले नागपत्रे ततः परम्। मनुदिग्दिङ्नागवह्निकोणेषूर्ध्वे पृथक् पृथक्॥ ३८॥
ततः सा प्रकटाऽऽख्याना योगिनी स्वविनिर्मिताः। दशशक्तीरधो भूम्यां क्रमेण विनिवेशयत्॥
पुनः सृष्ढ्वाऽष्टशक्तीस्तु ब्राह्म्यादीर्मातृकाऽऽत्मिकाः। वर्गशक्तीर्द्वितीयस्यां भूमिकायां निवेशयत्॥
ततः ससर्ज शक्तीनां दशकं प्रकटाऽभिधा। तृतीयभूमिकायां ताः क्रमेणाऽभिनिवेशयत्॥ ४१॥
अथ गुप्ताऽभिधानाऽपि दृष्ढ्वा नृपनिवेशनम्। असृजत्तावतीः शक्तीरथ गुप्ततराऽभिधा॥ ४२॥
सम्प्रदायाऽकुलोत्तीर्णा निर्भगा च पृथक् पृथक्।
स्वस्वसंस्थानसम्मित्याऽसृजच्छक्तीर्विचित्रिताः ॥ ४३॥
शक्तीर्विभावयामास रहस्याः सप्तसङ्ख्यकाः। रहस्यतरनाम्नी च शक्तिमेकां ससर्ज ह॥ ४४॥

क्रमशः संवेशित थी, पक्ष और दिन की अधिष्ठात्री देवी चाँदनी की तरह शोभ रही थी॥ २८॥ यद्यपि इनके नाम नित्य हैं फिर भी कारण-विशेष से इनके नाम तुम्हें बतलाता हूँ। पहली कामेश्वरी देवी हैं जो नित्य हैं, दूसरी भगमालिनी हैं॥ २९॥ तीसरी नित्यक्लिन्ना हैं, उसके बाद मेरुदण्डा है, उसके बाद वह्निवासिनी हैं, उसके बाद शिवदूती हैं॥ ३०॥ त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताकिका, विजया, सर्वमंगला तथा ज्वालामाला॥ ३१॥ इसके बाद चित्रा—यह क्रमशः बायें से दायें की ओर पंचक्रम योग से त्र्यस्र भूमि में निवेशित हैं॥ ३२॥ स्वयं वे नित्या सप्तदशी हैं जिन्हें पहले षोडशी कहा जाता था। वे तप और वीर्य के संयोग से सायुज्य तक पहुँची हुई हैं॥ ३३॥ इस रचना के आदि में जो महात्रिपुर-सुन्दरी हैं उन्हें बिन्दुभूमि में स्थापित कर अपने से आगे रखा॥ ३४॥ उससे निर्मित योगिनियाँ भी, जिनकी पहले नौ संख्या कही गई है, उनका भी यथाक्रम अलग नामकरण किया गया है॥ ३५॥ इस तरह प्रकट होकर भी महादेवी गुप्त से गुप्ततरा हो गयीं। साम्प्रदायिक आकुलोत्तीर्णा बनकर निर्भगा और रहस्यका बन गयीं॥ ३६॥ उसी तरह अतिरहस्या नाम वाली परा और अपररहस्यका के रूप में चक्रों पर क्रम से ये देवियाँ कैसे निवेशित हुईं, यह बतलाता हूँ, सुनो॥ ३७॥ चौकोण धरती पर नृपदल में नागपत्र पर चारों दिशाओं में चौथी और तीसरे कोण के ऊपर अलग-अलग॥ ३८॥ इसके बाद वह स्वनिर्मित योगिनियाँ जिनका आख्यान प्रकट हैं, वे दस शक्तियों के नीचे धरती पर क्रम से विनिवेशित हैं॥ ३९॥ फिर ब्राह्मी आदि मातृकारूपिणी आठ शक्तियों की सृष्टि कर द्वितीय वर्गशक्ति धरती पर स्थापित की गयी॥ ४०॥ उसके बाद प्रकट नाम वाली दस शक्तियों की रचना की गयी। ये दस शक्तियाँ तीसरी भूमि पर क्रमशः स्थापित की गयीं॥ ४१॥ अब गुप्ता नाम वाली शक्ति ने भी नृपनिवेशन देखकर उतनी ही संख्या में गुप्ततरा नामक शक्तियों का सृजन किया॥ ४२॥ सम्प्रदाय-आकुलोत्तीर्णा और निर्भगा ने अलग-अलग अपने-अपने संस्थान सम्मित्य चित्र-विचित्र शक्तियों का सृजन किया॥ ४३॥ शक्तियों के विभावन से सात संख्या वाली रहस्या देवी ने रहस्यतर नाम से एक शक्ति का सर्जन किया॥ ४४॥

अणिमाद्या अपि पृथक् ससृजुः शतशोंऽशतः। शक्तीः स्वस्वसमाकाराऽऽयुधवस्त्रविभूषणाः॥
बिन्दुचक्रेश्वरी या सा महात्रिपुरसुन्दरी। विनियुक्ता मूलदेव्या शक्तीनामभिधाऽऽकृतौ॥४६॥
चकार तत्तत्कर्माऽनुरूपं नाम पृथक् पृथक्। तृतीयभूमिकादेव्यो याः सृष्टा दशसङ्ख्यकाः॥
मुद्रातत्त्वविधानज्ञाः सर्वमुद्रात्ममूर्तयः। आहरन्ति मुदं देव्यस्तस्मान्मुद्रासमाऽऽह्वयाः॥४८॥
मुदमुत्पाद्य या लोकान् क्षोभयन्त्यतिमात्रकम्। द्रावयत्याकर्षयति वशयेन्मादयत्यपि॥४९॥
बीजयत्यङ्कुरयति चारयत्यपि खे तथा। त्रिखण्डयति योन्यात्मभावमानयतीश्वरी॥५०॥
इति मुद्रा वीर्यवत्यः ख्याताः सङ्क्षोभिणीति च। विद्राविण्याकर्षणी च ततः पश्चाद्वशङ्करी॥५१॥
उन्मादिनी महाङ्कुशा त्रिखण्डा खेचरी तथा। बीजा योनिः क्रमादेता दिक्षु कोणेष्वधोर्ध्वयोः॥
भूमिकात्रितयेऽप्येवं ब्राह्मी माहेश्वरी तथा। कौमारी वैष्णवी वाराही माहेन्द्री ततः परम्॥
चामुण्डा च महालक्ष्मी(:)एवमाद्ये स्थिता इमाः। ब्रह्मादीनां समानाङ्गाऽऽयुधाऽऽभरणवाससः॥
मुद्रास्तु लोहिताऽऽभासाः पाशमुद्राऽऽङ्कुशैर्युताः। लोहिताऽङ्कुशधारिण्यः पद्मरागसुभूषणाः॥
अथ गुप्ताऽऽख्यया सृष्टा भक्तेष्टाकर्षणात्तथा। कामाकर्षिणिकाऽऽद्या स्याद्बुद्ध्याकर्षिणिका परा॥
अहङ्काराऽऽकर्षिणी च शब्दाऽऽकर्षिणिका तथा। स्पर्शाऽऽकर्षिणिका तद्वद्रूपाऽऽकर्षिणिका ततः॥
रसाऽऽकर्षिणिका गन्धाऽऽकर्षिणी चित्तपूर्विका। आकर्षिणी धैर्यपूर्वा कर्षिणी स्मृतिपूर्विका॥
नामपूर्वाऽऽकर्षिणी च बीजा आकर्षिका परा। आत्माऽऽकर्षिणिका तद्वदमृताऽऽकर्षिणी ततः॥
शरीराऽऽकर्षिणीत्येवं षोडशच्छदशक्तयः। भाविता गुप्तयोगिन्याऽग्रपत्राद्वामतः स्थिताः॥

अपने अंश से अणिमा प्रभृति सैकड़ों शक्तियों का अलग-अलग सृजन किया। ये शक्तियाँ अपने-अपने आकार, हथियार, वस्त्र और आभूषणों से विभूषित थीं॥४५॥ जो बिन्दुचक्रेश्वरी हैं, वही महात्रिपुरसुन्दरी हैं, वही मूल देवी हैं; उन्होंने ही शक्तियों का नामकरण कर उन्हें विनियुक्त किया है॥४६॥ तीसरी भूमि की जो देवी हैं और दस संख्या में निर्मित हुई हैं, उनके कर्मानुरूप अलग-अलग नामकरण किया गया है॥४७॥ मुद्रातत्त्व के विधान को जानने वाली, सभी मुद्राएँ जिनकी मूर्ति हैं, वह प्रसन्नतापूर्वक देवियों का आहरण करती हैं, अतः उनका नाम मुद्रा रखा गया॥४८॥ प्रसन्नता उत्पन्न कर जो लोकों को अत्यन्त क्षुब्ध करती हैं, द्रावण करती हैं, आकर्षण करती हैं, वश में लाती हैं और मादन भी करती हैं॥४९॥ तथा आकाश में बीज डालती हैं, उसे अंकुराती हैं, चारण करती हैं, तीन खण्डों में बाँटती हैं, जिसे वह अन्यात्म भाव मानती हैं परमेश्वरी॥५०॥ यह मुद्रा वीर्यवती नाम से ख्यात है; संक्षोभिनी है, विद्राविणी है और आकर्षिणी है, इसके बाद वशंकरी है॥५१॥ उन्मादिनी, महांकुशा, त्रिखण्डा तथा खेचरी, बीजा और योनि—क्रमशः ये दिशाओं के कोणों में नीचे-ऊपर अवस्थित हैं॥५२॥ तीसरी भूमिका में भी इसी तरह ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही और माहेन्द्री॥५३॥ चामुण्डा और महालक्ष्मी; इस तरह ये पहली पंक्ति में अवस्थित हैं। ब्राह्मी प्रभृति समान अङ्ग वाली, समान आयुध, आभरण और वस्त्र वाली हैं॥५४॥ मुद्रा का वर्ण लाल है; पाश, मुद्रा और अंकुशों से युक्त है। वे हाथ में लाल वर्ण के अंकुश लिये हुए हैं और उनके आभूषण पद्मराग-निर्मित हैं॥५५॥ गुप्ता नाम से जिनकी सृष्टि हुई है वे भक्तों के अभिलषित को आकर्षित करती हैं तथा कामाकर्षिणिका पहले हैं, उसके बाद बुद्ध्याकर्षिणिका अवस्थित हैं॥५६॥ उसके बाद अहंकार को आकर्षित करने वाली, शब्द को आकर्षित करने वाली, स्पर्श को आकर्षित करने वाली तथा उसी तरह रूप को आकर्षित करने वाली॥५७॥ रस को आकर्षित करने वाली, गन्ध को आकर्षित करने वाली, चित्तपूर्विका को आकर्षित करने वाली, धैर्यपूर्वा को आकर्षित करने वाली तथा स्मृतिपूर्विका॥५८॥ नामपूर्वाकर्षिणी,

शुभ्राः शुभ्रांऽशुककल्पाः पूर्णतारुण्यशोभिताः । पाशदानसुधाकुम्भाऽङ्कुशाऽऽयुधपरिष्कृताः ॥
अनङ्गकुसुमाऽनङ्गमेखलाऽनङ्गपूर्विका । मदनाऽनङ्गमदनाऽऽतुराऽनङ्गाऽऽद्यरेखिका ॥
अनङ्गवेशिन्यनङ्गाऽङ्कुशाऽनङ्गाऽऽद्यमालिनी । एता गुप्ततराऽऽख्योत्था नागच्छदनिवेशनाः ॥
रक्तवर्णांऽशुककल्पा दिक्कोणक्रमतः स्थिताः । पाशं नीलोत्पलं पात्रमङ्कुशं पाणिषु स्थितम् ॥
संक्षोभिणी विद्राविणी चाऽऽकर्षिणी चाऽऽह्लादिनी । सम्मोहिनी स्तम्भिनी च जृम्भिणी च वशङ्करी ॥
रञ्जिनी चोन्मादिनी च ततश्चैवाऽर्थसाधिनी । सम्पत्तिपूरणी मन्त्रमयी द्वन्द्वक्षयङ्करी ॥ ६६ ॥
सम्प्रदायोद्भावितैता मनुकोणेषु संस्थिताः । अग्राद्वामक्रमेणैव रक्ताभांऽशुकभूषणाः ॥ ६७ ॥
पाशाऽमृतघटाऽऽदर्शाऽङ्कुशशोभिचतुर्भुजाः । सिद्धिप्रदा सम्पत्प्रदा ततः पश्चात्प्रियङ्करी ॥
मङ्गलाऽऽद्याकारिणी च ततः कामप्रदा स्मृता । दुःखाद्विमोचिनी तद्वन्मृत्युप्रशमनी ततः ॥
विघ्नान्निवारिणी चाङ्गसुन्दरी तदनन्तरम् । सौभाग्यदायिनी पङ्क्तिकोणे प्राग्वत् समास्थिताः ॥
पाशं भूषणपेटीश्चाऽङ्कुशं पाणिचतुष्टयैः । दधाना विशदाऽऽकारांऽशुकभूषणभूषिताः ॥ ७१ ॥
कुलोत्तीर्णाः समुदिताः शक्तयो यौवनाऽन्विताः । ज्ञानशक्तिरैश्वर्यप्रदा ततो ज्ञानमयी स्मृता ॥
ततो व्याधिविनाशिनी चाऽऽधाराद्यास्वरूपिका । ततः पापहराऽऽनन्दमयी रक्षास्वरूपिणी ॥
ईप्सिताद्याप्रदा चेति दशारे पूर्ववत् स्थिताः । पाशदानज्ञानटङ्ककरा रक्ताङ्गभूषणाः ॥ ७४ ॥
निगर्भाख्या भावितास्तु तरुण्यः शक्तयोऽमलाः । वशिनी मोदिनी तद्वद्विमला चाऽरुणा ततः ॥

बाद में बीजआकर्षिका, आत्माआकर्षिका उसी तरह अमृताकर्षिणी हैं॥ ५९ ॥ इसी तरह शरीराकर्षिणी सोलह शक्तियों की भावना की गयी है। इसी तरह अग्रपत्र से बायें की ओर गुप्त योगिनियाँ अवस्थित हैं॥ ६० ॥ शुभ्रा, शुभ्रांशुकल्पा, पूर्णतारुण्यशोभिता हाथों में पाश, दान, सुधाकुम्भ, अंकुश और आयुध लिये हैं॥ ६१ ॥ अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गपूर्विका, मदनानङ्गा, मदनातुरा, अनङ्गाद्यरेखिका ॥ ६२ ॥ अनङ्गवेशिनी, अनङ्गाकुशा तथा अनङ्गाद्यमालिनी; नागच्छद पर निवेश करने वाली ये शक्तियाँ गुप्ततरा नाम से ख्यात हैं॥ ६३ ॥ लाल वस्त्र धारण करने वाली, दिशाओं के कोणों में क्रमशः अवस्थित, हाथों में पाश, नीलकमल, पात्र और अंकुश धारण किये हुए॥ ६४॥ संक्षोभिणी, विद्राविणी, आकर्षिणी, आह्लादिनी, सम्मोहिनी, स्तम्भिनी, जृम्भिणी और वशङ्करी॥ ६५ ॥ रञ्जिनी, उन्मादिनी, अर्थसाधिनी, सम्पत्तिपूरिणी, मन्त्रमयी और द्वन्द्वक्षयकरी॥ ६६ ॥ सम्प्रदाय-उद्भाविता—ये सारी शक्तियाँ मनुकोणों में अवस्थित हैं। अगली पंक्ति से लेकर बायें क्रम से लाल वस्त्र वाली लाल आभूषणों से सुशोभित हैं॥ ६७ ॥ इनके पीछे प्रियङ्करी हैं जिनके चार हाथों में क्रमशः पाश, अमृतघट, आदर्श और अंकुश सुशोभित हैं। ये सिद्धिप्रदा हैं, सम्पत्ति देने वाली हैं और इनके बाद प्रियङ्करी हैं॥ ६८ ॥ मंगला, आद्याकारिणी, उसके बाद कामप्रदा कही गई है। तब दुःख दूर करने वाली उसी तरह मृत्यु को नष्ट करने वाली हैं॥ ६९ ॥ विघ्न को दूर हटाने वाली, उसके बाद अङ्गसुन्दरी है, तब सौभाग्यदायिनी है। ये पंक्तिकोण में पहले की तरह अवस्थित हैं॥ ७० ॥ ये चारों हाथ में पाश, भूषण, पेटी और अंकुश धारण किये हैं। ये विशदाकार हैं, वस्त्र और आभूषणों से विभूषित हैं॥ ७१ ॥ कुलोत्तीर्णा, समुदिता शक्तियाँ तरुणावस्था में हैं, ज्ञानशक्ति और ऐश्वर्य देने वाली हैं, उसके बाद तो ज्ञानमयी ही कही गयी हैं॥ ७२ ॥ उसके बाद व्याधिविनाशिनी और आधारादि स्वरूपिणी हैं। तत्पश्चात् पापहरा, आनन्दमयी और रक्षास्वरूपिणी हैं॥ ७३ ॥ इच्छापूर्ति करने वाली ये दस शक्तियाँ पूर्ववत् स्थित हैं। इनके हाथों में पाश, दान, ज्ञान और टंक हैं, उनका लाल अंग लाल आभूषणों से सुशोभित है॥ ७४ ॥ निगर्भा नाम वाली है, तरुणी हैं। ये पवित्र शक्तियाँ हैं, वशिनी, मोदिनी उसी तरह विमला, तब अरुणा है॥ ७५ ॥

जयिनी सर्वेश्वरी च कौलिनी चेति शक्तयः । रहस्ययोगिनीजाता पद्मरागसमप्रभाः ॥ ७६ ॥
चापदानपुस्तकेषुकरा लोहितभूषणाः । नागकोणेषु पूर्वोक्तक्रमेण सुविराजिताः ॥ ७७ ॥
शक्तिरेका चाऽतिरहस्याऽऽख्योत्थो दक्षकोणके। एवं ताः शक्तयश्चक्रे सृष्टाः प्रकृतिशक्तिभिः ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीचक्र-
देवतानिरूपणं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६४३ ॥

जयिनी, सर्वेश्वरी और कौलिनी ये शक्तियाँ हैं। ये रहस्ययोगिनियों से उत्पन्न हैं, पद्मराग के समान इनके शरीर की कान्ति है ॥ ७६ ॥ इनके हाथों में चाप, दान और पुस्तक हैं, इनके आभूषण लाल वर्ण के हैं। नागकोणों में पूर्वोक्त क्रम से ये सुविराजित हैं ॥ ७७ ॥ शक्ति एक है, पर अतिरहस्या है, दक्षकोण में अवस्थित है। उन्होंने ही प्रकृतिशक्तियों के साथ इन महाशक्तियों की रचना की है ॥ ७८ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में श्रीचक्रदेवता-
निरूपण नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४६४३ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः



श्रुत्वा त्वष्टेरितं धातुः पुनः पप्रच्छ सादरम्। पितामह श्रुतश्चैतच्छ्रीचक्रं शक्तिमण्डलम्॥ १ ॥
शक्तीनां नाम सम्पत्तिहेतुं मे पृच्छते वद। तथाऽष्टाऽऽरे त्रिकोणे च कुतः स्थानं विशक्तिकम्॥
षोडशी सा महानित्या केन सायुज्यमागमत्। एवं त्वष्टाऽनुयुक्तोऽथ प्रीतः प्राह चतुर्मुखः॥ ३ ॥
विश्वकर्तः शृणु महागुह्यमेतन्निगूहितम्। महाश्रीत्रिपुरेशान्या सृष्टास्त्रित्यास्तु षोडश॥ ४ ॥
महात्रिपुरसुन्दर्या सृष्टास्त्वन्यास्तु शक्तयः। (?) नाम तासां पृथक्स्वीयक्रिययैव निरूपितम्॥
या सा शक्तिर्महादेवी त्रिपुराऽऽख्या महत्तरा। तस्याः सदा विलसितं जगदेतच्चराऽचरम्॥ ६ ॥
ब्रह्मादिमूर्तिष्वंशेन संस्थिता सा महेश्वरी। जगच्चक्रक्रियाकाण्डं निर्वाहयति चिन्मयी॥ ७ ॥
सा खण्डैकरसाप्यम्बा चितिमात्रशरीरिणी। अनेकधाऽपि भवति स्वस्वातन्त्र्याऽवभासिनी॥
यथा सहस्ररश्मीनां पिण्डो हंसो नभोमणिः। एकोऽप्यनेकधाऽप्यास्ते यथा वा वार्निधिः स्थितः॥
तरङ्गोर्मिफेनमय एकाऽनेकात्मना तथा। दर्पणः प्रतिबिम्बानां सहस्रेण यथा स्थितः॥ १०॥
तथैषा परमा चाऽपि भेदाऽभेदमयी स्थिता। शक्तयोंऽशात्मिकास्तस्या अणिमाद्याः प्रकीर्तिताः॥
तस्याः स्वातन्त्र्यवशतः स्थूलाऽऽकारपरिग्रहः। या शक्तिर्यत्क्रियाहेतुर्नाम तस्यास्तथास्थितम्॥
एवं सृष्टाः शक्तयस्ता महामायाविमोहिताः। स्पर्धाश्चक्रुः संस्थितिषु स्थाननीचोच्चभावतः॥

✻ विमला ✻

विश्वकर्मा ने ब्रह्मा से कथित इस आख्यान को सुनकर पुनः उनसे सादर पूछा—हे पितामह! शक्तिमण्डित श्रीचक्र के सम्बन्ध में मैंने जानकारी प्राप्त की॥ १॥ शक्तियों के नाम-सम्पत्ति के हेतु मेरे पूछने पर आपने बतला दिया; अब वह आठ अरि-त्रिकोण में शक्तियों ने कहाँ स्थान ग्रहण किया है?॥ २॥ इस तरह ब्रह्मा ने विश्वकर्मा के उपयुक्त प्रश्न को सुनकर हँसते हुए कहा, क्योंकि उनका प्रश्न था—वह महानित्या षोडशी ने किस तरह सायुज्य पद प्राप्त किया?॥ ३॥ हे विश्वकर्मा! सुनो, यह अत्यन्त गुह्य है और इसे गुप्त ही रखा गया है, महात्रिपुरा ने इन त्रित्याओं की सृष्टि की है॥ ४॥ महात्रिपुरसुन्दरी ने ही अन्य शक्तियों की भी सृष्टि की है और उनके कार्य के अनुरूप ही उनके नामों का निरूपण किया है॥ ५॥ यह जो महाशक्ति है, वह त्रिपुरा के नाम से विख्यात है। यह चर-अचर संसार सदा उनका ही विलास है॥ ६॥ ब्रह्मादि त्रिमूर्तियों में अंश भाव से वही अवस्थित हैं। वह चिन्मयी हैं, जगत्-चक्र के क्रियाकाण्ड का निर्वाह भी वही करती हैं॥ ७॥ वह माता भी खण्डैकरस चितिमात्र शरीर वाली हैं, फिर भी अपनी स्वतन्त्रता के कारण अनेक रूप भी धारण करती हैं; यथा॥ ८॥ सहस्र किरणों का पिण्ड एक मात्र सूर्य हैं, वह एक होकर भी अनेक रूप में हैं; जैसे सागर स्थित हैं॥ ९॥ तरंग-ऊर्मिफेनमय एक सागर अनेक रूप में है। दर्पण एक है पर प्रतिबिम्ब हजार॥ १०॥ उसी तरह यह परमाशक्ति भी भेद और अभेद रूप में अवस्थित हैं। इनके अंश से उत्पन्न शक्तियाँ अणिमादि नाम से कही गयी हैं॥ ११॥ इनकी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति के कारण ही उन शक्तियों ने स्थूल आकार ग्रहण किया है, जो शक्ति जिस क्रिया के हेतु हैं उनका वैसा ही नामकरण किया गया है॥ १२॥ इस तरह से सन्तुष्ट वे शक्तियाँ महामाया से विमोहित हैं, ऊँच-नीच स्थान के कारण वे एक-दूसरे के साथ स्पर्धा

दृष्ट्वा तच्छक्तिचक्रेषु कश्मलं समुपस्थितम् । महादेव्याज्ञया प्राह महात्रिपुरसुन्दरी ॥ १४ ॥
शृणुध्वं शक्तयः सर्वा मम वाक्यं हि साम्प्रतम् । स्पर्धाक्रोधात्मनामत्र स्थानं देवीसमीपतः ॥ १५ ॥
दुर्लभं तत्तपोयोगात् स्थानं विन्दथ नाऽन्यथा । इत्युक्त्वाऽऽदौ स्वयञ्चक्रे तपः सुमहदद्भुतम् ॥
दृष्ट्वा तपस्यभिरतां महात्रिपुरसुन्दरीम् । अन्याः सर्वा अपि तपश्चक्रुर्नियतमानसाः ॥ १७ ॥
एवं शक्तिगणे तत्र तपस्यभिरते सति । अगात् कालो दीर्घतमस्तदा तुष्टाऽवदत् परा ॥ १८ ॥
वत्सास्तुष्टाऽस्मि तपसा स्थानं योग्यं दिशामि वः । इत्युक्त्वा स्थानमदिशन्महात्रिपुरसुन्दरी ॥
या तस्यै सर्वचक्राणामीश्वरीत्वं ददौ परा । अथ नित्याऽऽत्मशक्तीनां त्र्यस्रभूमौ निवेशनम् ॥
प्रतिपार्श्वं पञ्चकस्य चाऽथ नित्या तु षोडशी । प्रदिष्टसम्मुखस्थानाऽप्यमन्यत न तद्बहु ॥ २१ ॥
पुनरातिष्ठदत्यन्तं तपः परमदुष्करम् । एवं कामेश्वरी तद्वद्भगमालिनिकाऽपि च ॥ २२ ॥
न तत्स्थानमलं मत्वा तपश्चक्रतुरुत्तमम् । एवं तपस्यभिरते शक्तिमण्डलके शिवा ॥ २३ ॥
एकाकिनीं स्वामपश्यन्न तत् सम्यगमन्यत । तावद्विज्ञायाऽभिमतं महात्रिपुरसुन्दरी ॥ २४ ॥
त्रिपुराऽङ्गायुधेभ्यश्च दशशक्तीर्विसर्जयत् । ता विसृष्टाः स्थितेः स्थानं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥
पप्रच्छुः प्राह ता देवी तपसा स्थानमीक्षथ । इत्युक्त्वा तप एवोच्चैश्चक्रुः प्राक् शक्तिभिः सह ॥
पुनर्देवी स्वपरितो मत्वैकामवलोकयत् । अवलोकनतो जाताः शक्तयो वेदसङ्ख्यकाः ॥ २७ ॥
काञ्चनाऽऽभा पद्मधराः शुभ्रवस्त्रविभूषणाः । दृष्ट्वा शक्तिगणं सर्वं तपस्यभिरतं सदा ॥ २८ ॥
मनो दधुस्तपस्येव त्वष्टस्ता अपि संययुः । भूयो ददर्श परितो जातं शक्तिचतुष्टयम् ॥ २९ ॥

करने लगीं ॥ १३ ॥ शक्तिचक्र में इस तरह कालुष्य देखकर महादेवी की आज्ञा से त्रिपुरसुन्दरी ने कहा ॥ १४ ॥ ओ सभी शक्तियाँ! इस समय सभी मेरी बातें सुनो। महादेवी के समीप इस स्थान स्पर्धा के कारण क्रोध से ॥ १५ ॥ वह दुलर्भ स्थान तपोयोग से ही प्राप्त करो, अन्यथा नहीं। इतना कहकर वह देवी महाअद्भुत तपस्या करने लगीं ॥ १६ ॥ महात्रिपुरसुन्दरी को तपस्या में निरत देखकर दूसरी सारी शक्तियाँ भी नियत मन से तपस्या में निरत हुयीं ॥ १७ ॥ इस तरह शक्तिगण को तपस्या करते बहुत लम्बा समय बीत गया, तब सन्तुष्ट होकर पराशक्ति ने कहा ॥ १८ ॥ अरी ओ वत्सा! मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट होकर तुम्हारे योग्य तुम्हें स्थान देती हूँ। इतना कहकर महात्रिपुरसुन्दरी ने उन्हें स्थान बतलाया ॥ १९ ॥ उन सबों के लिए तुम अधीश्वरी हो, त्र्यस्र भूमि में उन नित्य आत्मशक्तियों का निवेशन किया गया ॥ २० ॥ पञ्चक के प्रतिपार्श्व में वह नित्या षोडशी सन्मुख स्थान में भी आदिष्ट हुई, उस स्थान पर बहुतों का सन्निवेश नहीं था ॥ २१ ॥ फिर उन्होंने परमदुष्कर तप ठान दिया। इस तरह कामेश्वरी और भगमालिनिका भी ॥ २२ ॥ उस स्थान को अमल नहीं मानकर उससे भी उत्कृष्ट तप करने लगी। इस तरह सम्पूर्ण शक्तिमण्डल तपस्या में निरत हो गई ॥ २३ ॥ तब महात्रिपुरसुन्दरी ने अपने को एकाकी महसूस करती हुई अपने अभिमत को जानकर ॥ २४ ॥ अपने अंग और आयुधों से दस शक्तियों का निर्माण किया। उन्होंने महात्रिपुरसुन्दरी से अपने रहने के लिए स्थान के बार में ॥ २५ ॥ पूछा। इस पर उन्होंने उन देवियों से 'तपस्या से स्थान ग्रहण करो'—कहा । यह सुनकर उन दस शक्तियों ने भी पूर्व शक्तियों की तरह तपस्या आरम्भ कर दी ॥ २६ ॥ फिर उस महादेवी ने अपने को अकेला मानकर चारों ओर देखा। उनके देखने भर से ही चार शक्तियाँ फिर उत्पन्न हुयीं ॥ २७ ॥ ये चारों शक्तियाँ सोने के समान कान्ति वाली थीं, हाथ में कमल था, सफेद वस्त्र और सफेद आभूषण थे। इन चारों ने अपनी पूर्ववर्तिनी सारी शक्तियों को तपस्या में ही निरत देखकर ॥ २८ ॥ तपस्या में ही मन रमाया, इसी से वे सन्तुष्ट हुईं। फिर उस महादेवी ने अपने चारों ओर देखा और फिर चार शक्तियाँ उत्पन्न हो गयीं ॥ २९ ॥ इनके

पाशाऽभयवरसृणिधरा रक्ताऽङ्गभूषणाः । त्रिनेत्राश्च तपस्येव रता दृष्ट्वा च पूर्वजाः ॥ ३० ॥
पुनः सृष्टास्तथाऽन्याश्च पाशपुस्तकमालिकाः । दधाना अङ्कुशश्चापि रक्तवर्णविभूषणाः ॥
पुनः सृष्टाश्शक्तयश्च तावत्यः स्फटिकप्रभाः । पाशाभयवरसृणिधराश्च तप आस्थिताः ॥ ३२ ॥
सृष्टाः पुनश्च तावत्यो रक्ताऽऽकारविभूषणाः । तपस्येव रतास्ताश्च दृष्ट्वा शक्तीः पुरः स्थिताः ॥
अथ दृष्ट्वा तपः प्रौढं प्राह तां त्रिपुरेश्वरी । नित्यां षोडशिकां वत्से वरं ब्रूह्यभिवाञ्छितम् ॥ ३४ ॥
सायुज्यमेव सा वव्रे सर्वां मत्वाऽल्पिकां स्थितिम् । प्राप्ता च परया तत्र सायुज्यं षोडशी परा ॥
या जाताः स्वाङ्गतो देव्याश्चतस्रः पञ्चधा च ताः । स्वयन्तु पञ्चमी भूत्वा तासां तुष्टा समास्थिता ॥
पञ्च पञ्चकतां तेन प्रापुस्ता नामपञ्चकम् । रत्नेश्वरीत्वमाद्यानां कामधुक्त्वं ततः परम् ॥ ३७ ॥
तथा कल्पलतेशित्वं ततः कोशेश्वरीपदम् । लक्ष्मीश्वरीत्वमन्त्यानां शक्तिवृन्दाऽऽसने स्थितिम् ॥
प्रत्येकञ्च ददौ शक्तिसहस्रेश्वरतां शिवा । रत्नाः कामदुघाः कल्पलताकोशाऽभिधायुताः ॥ ३९ ॥
लक्ष्मीसमाख्यास्ताः शक्तीस्त्वष्टर्जानीहि ताः पृथक् । पञ्चविंशतिसाहस्रसङ्ख्यास्तास्तु पृथक्पृथक् ॥
सेवमानाः स्वस्वनाथं प्रत्येकन्तु सहस्रकम् । पञ्चसाहस्रसङ्ख्याका मूलदेव्यास्तु शक्तयः ॥ ४१ ॥
सिद्धलक्ष्मीस्तत्र चाऽऽद्या राजमातङ्गिनी परा । तृतीया भुवनेशानी तुर्या वाराहिका मता ॥
रत्नेश्वर्य इमाः प्रोक्तास्ततः कामदुघाः शृणु । सुधापीठेश्वरी चाऽऽद्या सुधासूश्च ततः परा ॥
तृतीया चाऽमृतेशानी तुर्या चाऽन्नप्रपूरणी । अथ कल्पलतास्तत्र पञ्चकामा ततः परा ॥ ४४ ॥
पारिजातेश्वरी चाऽपि कुमारी च ततः परा । पञ्चबाणेश्वरी चाऽथ परंज्योतिस्ततः परा ॥ ४५ ॥

हाथों में पाश, अभय, वर और अंकुश थे, लाल अंग और भूषण थे, तीन आँखें थीं। अपनी पूर्वजा सारी शक्तियों को तपस्या में ही निरत देखकर ॥ ३० ॥ फिर अन्य चार की सृष्टि हुयी। वे भी अपने हाथों में पाश, पुस्तक, माला, अंकुश लिये रक्तवर्ण और रक्त आभूषण वाली थीं ॥ ३१ ॥ फिर उनसे संसृष्ट उसी संख्या वाली शक्तियाँ स्फटिक की तरह श्वेतवर्णा थी। उनके हाथों में पाश, अभय, वर और अंकुश थे; वे सब भी तपस्या में निरत हो गयीं ॥ ३२ ॥ फिर उसी संख्या में रक्त वर्ण और विभूषण वाली शक्तियाँ उत्पन्न हुयीं। उन्होंने भी सामने सारी शक्तियों को तपस्या में निरत देखकर ॥ ३३ ॥ उस त्रिपुरसुन्दरी से प्रौढ़ तप के बारे में पूछा। उन षोडश शक्तियों से त्रिपुरा ने पूछा—वाञ्छित वर माँगो ॥ ३४ ॥ उसने सायुज्य का ही वर माँगा, सारी शक्तियों को छोटी स्थिति में मानकर पराषोडशी ने सायुज्य को प्राप्त किया ॥ ३५ ॥ इससे पूर्व महादेवी के अंग से जो चार और पाँच महाशक्तियाँ उत्पन्न हुयीं उनके बीच स्वयं पंचमी होकर ठहर गईं ॥ ३६ ॥ पाँच खण्डों में विभक्त होने के कारण उनका नाम पञ्चक पड़ा। उसने कहा—तुम रत्नेश्वरी हो, आद्या हो, कामधुक् हो ॥ ३७ ॥ तथा कल्पलता का ईशित्व हो; उसके बाद कामेश्वरी का पद तुम्हारा है। अपने आसन पर समासीन शक्तियों के बीच अन्तिम शक्ति तुम महालक्ष्मीश्वरी हो ॥ ३८ ॥ प्रत्येक शक्ति को हजार ईश्वरत्व की शक्ति उस शिवा ने प्रदान की। रत्ना, कामदुघा, कल्पलता, कोषाभियुता ॥ ३९ ॥ तथा लक्ष्मी की तरह तुम लोग ख्यात हों। ये अष्टशक्तियों के नाम से तुम ख्यात होगीं और तुमसे अलग पच्चीस हजार संख्या वाली अलग-अलग ॥ ४० ॥ अपने-अपने नाथ की सेवा करते हुए प्रत्येक हजार खण्डों में विभक्त होगी। अतः पाँच हजार संख्या वाली मूल देवी शक्ति के रूप में हो ॥ ४१ ॥ वहाँ सिद्ध लक्ष्मी आद्या है, उसके बाद दूसरी राजमातङ्गिनी है, तीसरी शक्ति भुवनेशानी है और चौथी वाराहिका हैं ॥ ४२ ॥ ये रत्नेश्वरी के नाम से ख्यात हैं। उसके बाद कामदुघा सुनो, सुधापीठेश्वरी आद्या है, सुधांशु उसके बाद है ॥ ४३ ॥ तीसरी अमृतेशानी है, चौथी अन्नप्रपूर्णी है और पाँचवीं कल्पलता है, उसके बाद पञ्चकामा हैं ॥ ४४ ॥ फिर पारिजातेश्वरी हैं, उसके

परा निष्कलशाम्भवी चाऽजपा मातृका परा। इति कोशेश्वरीः प्रोक्ताः शृणु लक्ष्मीश्वरीस्ततः॥
लक्ष्मीश्चाऽथ महालक्ष्मीस्त्रिशक्त्याद्या ततः परा। साम्राज्यलक्ष्मीश्च रमा चेति पञ्चकदेवताः॥
एवं पञ्चकदेवीनां तपसा परितोषिता। ददौ समीपसंस्थानं बिन्दुचक्रोपरि क्रमात्॥ ४८॥
आग्नेयादिषु कोणेषु तपसस्तु प्रकर्षतः। मातङ्गिन्याश्च वाराह्या ददावतुलसम्पदम्॥ ४९॥
मन्त्रिणीत्वं सर्वलोककार्यमन्त्रणहेतुताम्। वाराह्या दण्डिनीत्वञ्च दुष्टदण्डनहेतुताम्॥ ५०॥
ततः कालान्तरे हेमहरिन्मणिसुवप्रयोः। मध्यं स्थानं ददौ देवी प्रसन्ना परिसेवनात्॥ ५१॥
एवं तपो विशेषेण तुष्टा स्थानं पुनर्ददौ। कामेश्वरी च वज्रेशी भगमालिनिका च या॥ ५२॥
ताभ्यः सभयदेवीत्वं दत्त्वा स्वाऽग्रे च पृष्ठतः। वामे च दक्षिणे पार्श्वे स्थानं देव्यभिकल्पयत्॥
उद्भाविता तु या देवी रहस्यतरनामया। सा प्राप तपसोत्कर्षाद्वज्रसालाऽन्तरे भुवि॥ ५४॥
आधिपत्यं वज्रनदीतीरे मन्दिरसंस्थितिम्। वज्ररत्नेश्वरीत्वञ्च तेन वज्रेश्वरी मता॥ ५५॥
पुनस्त्रिकोणकोणेषु स्थानं कामेश्वरीमुखाः। प्रापुस्तपस आधिक्यात्तथा कामेश्वरी पुनः॥ ५६॥
अष्टाऽरेषु द्वितीयश्च स्थानं प्राप्ता तपोबलात्। तथाऽन्या अपि शक्तीस्तु महात्रिपुरसुन्दरी॥
देव्या तया च स्थानेषु क्रमेण विनिवेशयत्। एवं नवसु चक्रेषु विभज्य विनिवेश्य च॥ ५८॥
स्वयं तत्तदधिष्ठात्री नवधा समजायत। त्रिपुरा त्रिपुरेशी च तथा त्रिपुरसुन्दरी॥ ५९॥
ततस्त्रिपुरवासिनी त्रिपुरा श्रीस्ततः परा। त्रिपुरमालिनी त्रिपुरा सिद्धा त्रिपुराऽम्बिका॥ ६०॥
नवमी च स्वयं तत्र महात्रिपुरसुन्दरी। तत्तदावरणाऽऽद्याऽग्रे स्थिता तत्सदृशाऽऽकृतिः॥ ६१॥
मूलदेव्याभिमुख्येन संस्थिताः सर्वशक्तयः। अथ ब्रह्मादिभिर्दृष्ट्वा सर्वं शक्तिगणाऽऽवृतम्॥

बाद कुमारी हैं, तत्पश्चात् पञ्चबाणेश्वरी हैं, उसके बाद परमज्योति हैं॥ ४५॥ परा, निष्फलशाम्भवी, अजपा तथा मातृका—ये कोशेश्वरी कही गयी हैं, इसके बाद लक्ष्मीश्वरी हैं। इससे आगे सुनो॥ ४६॥ लक्ष्मी, महालक्ष्मी, त्रिशक्ति; उसके बाद आद्या तब साम्राज्यलक्ष्मी और रमा ये पंचक देवता हैं॥ ४७॥ इस तरह पंचक देवियों की तपस्या से परितुष्ट बिन्दुचक्र के ऊपर क्रमशः अपने समीप स्थान दिया॥ ४८॥ आग्नेय आदि कोणों में तपस्या के उत्कर्ष से मातंगिनी और वाराही को अतुल सम्पत्ति दी॥ ४९॥ मन्त्रिणी को सर्वलोक कार्य की मन्त्रणा की हेतुता प्रदान की। वाराही और दण्डिनी को दुष्ट-दण्डन की हेतुता प्रदान की॥ ५०॥ उसके बाद कालान्तर में हेमहरित्मणि को किला के बीच अपने परिसेवन से प्रसन्न होकर देवी ने स्थान दिया॥ ५१॥ इस तरह विशेष तपस्या से सन्तुष्ट फिर कामेश्वरी, वज्रेशी, भगमालिनिका को जगह दी॥ ५२॥ इन शक्तियों को देवीत्व का पद देकर आगे-पीछे, बायें-दायें बगल में स्थान की परिकल्पना की॥ ५३॥ रहस्यतर नाम वाली जो देवी उत्पन्न हुयी थी, उसने अपने तप के उत्कर्ष के कारण वज्रकिला के भीतर अपना स्थान प्राप्त किया॥ ५४॥ वज्र नदी के किनारे मन्दिर में अवस्थित वज्ररत्नेश्वरीत्व का आधिपत्य पाकर वज्रेश्वरी कहलायी॥ ५५॥ फिर त्रिकोण के कोणों में कामेश्वरी प्रमुख देवियों को स्थान मिला। तप की अधिकता से फिर कामेश्वरी ने स्थान प्राप्त किया॥ ५६॥ अष्टारों में तपोबल से दूसरा स्थान प्राप्त किया तथा अन्य शक्तियों को भी महात्रिपुरसुन्दरी ने॥ ५७॥ क्रमशः नौ चक्रों में उन्हें बाँट कर निवेशित किया॥ ५८॥ और स्वयं उसकी अधिष्ठात्री नवधा शक्ति बन गई। त्रिपुरा, त्रिपुरेशी तथा त्रिपुरसुन्दरी॥ ५९॥ उसके बाद त्रिपुरवासिनी, त्रिपुरा तब श्रीः, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरा, सिद्धा, त्रिपुराम्बिका॥ ६०॥ और स्वयं महात्रिपुरसुन्दरी और नवमी उन आवरणादि के आगे उन्हीं के सदृश आकृति वाली उपस्थित हुईं॥ ६१॥ मूलदेवी के अभिमुख होने से सारी शक्तियाँ वहाँ अवस्थित हुयीं। सभी शक्तियों से घिरी वहाँ ब्रह्मादि देवताओं ने देखकर॥ ६२॥ उसे ठीक न मानकर

मत्वा न तत् सम्यगिति कामेशः प्रार्थितोऽभवत्। कामेश भगवन् देव त्वमपि सृज स्वांऽशतः ॥
परिवारं शिवाकारं नैतदौपयिकं यतः । मन्यामहे शक्तिगणं केवलं विषमन्त्विति ॥ ६४॥
अथ कामेश्वरो देवः स्वांऽशाच्छक्त्यंशतोऽपि च । उभयांऽशात्तदन्यस्मादसृजद्वेदसङ्ख्यकान् ॥
मित्रीशषष्ठीशौड्डीशचर्यानाथाऽभिधास्ततः । पुस्तकाऽभीतिवरचिद्दधानान् स्फटिकप्रभान् ॥
श्वेतवस्त्राऽऽकल्पयुतांस्त्रिनेत्रान् रक्तशक्तिकान् । पद्माऽऽसनसमासीनान् प्रसन्नवदनेक्षणान् ॥
तान् गुरून् शक्तिमन्त्राणामकरोच्छान्तविग्रहान्। पृथग्विद्यागुरून् यूयं सृजध्वमिति चाऽब्रवीत् ॥
अथाऽऽद्यस्तत्र दिव्याख्यान् सिद्धाख्यानपरस्तथा। तृतीयो मानवाऽऽख्यांस्तु गणानसृजत क्रमात् ॥
मुनिवेदनागसंख्यान् सर्वविद्यागुरूनथ । नाथान्नवाऽसृजत्तुर्यः कालमूर्तीन्महाप्रभान् ॥ ७० ॥
गुरुमण्डलमेवन्तु सृष्टमुग्रतरं तपः । तप्त्वा प्राप स्थानमपि त्वरिता पृष्ठभागके ॥ ७१ ॥
तत्र त्रिपङ्क्तिरूपेण मन्दिराणि क्रमेण तु । दिव्यसिद्धमानवौघगुरूणां संस्थितानि हि ॥ ७२ ॥
तत्र स्थानं प्राप्नुवन्ति त्रिपुरां परमेश्वरीम् । पूर्णोपासनयोगेनोपास्य शास्त्रोक्तमार्गतः ॥ ७३ ॥
गुरुभिर्बोधिताः पश्चात् प्रयान्ति परमं पदम् । इति ते पृष्टमाख्यातं रहस्यं परमं महत् ॥ ७४ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीचक्र-
देवतानिरूपणं सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७१७ ॥

कामेश से प्रार्थना की। हे कामेश भगवन्! तुम भी अपने अंश से रचना करो ॥ ६३ ॥ शिवस्वरूप के परिवार यह औपयिक नहीं है, हम लोग केवल शक्तिगण को ही उचित नहीं मानते हैं ॥ ६४ ॥ तब कामेश्वर देव ने अपने तथा शक्ति के अंश अर्थात् दोनों के अंश से चार की संख्या में सृष्टि की ॥ ६५ ॥ मित्रीश, षष्ठीश, औड्डीश, चर्यानाथ उनका अलग-अलग नाम पड़ा। हाथ में पुस्तक, अभय, वर, चित धारण किये स्फटिक की तरह वे थे ॥ ६६ ॥ श्वेत वस्त्र, तीन आँखें, रक्तशक्तिक पद्मासन पर बैठे, प्रसन्नवदन देखते हुए ॥ ६७ ॥ उन गुरुओं को शक्तिमन्त्र से उनके विग्रह को शान्त करते हुए अलग विद्यागुरुओं को 'तुम लोग सर्जन करो'—ऐसा कहा ॥ ६८ ॥ पहला दिव्य नामधारी, दूसरा सिद्ध, तीसरा मानव क्रम से सृजित हुए ॥ ६९ ॥ तीन, चार, पाँच संख्या वाले सर्वविद्या के गुरुनाथ की चौथी सृष्टि की। ये कालमूर्ति स्वरूप थे ॥ ७० ॥ उग्रतर तपस्या से इस तरह गुरुमण्डलों की सृष्टि की। वे तपस्या से पृष्ठ भाग में शीघ्र ही अपना स्थान ग्रहण कर लिये ॥ ७१ ॥ वहाँ तीन पंक्ति रूप से क्रमशः मन्दिर थे। उन मन्दिरों में दिव्य, सिद्ध, मानव-समूहों के गुरु स्थित हुए ॥ ७२ ॥ उस स्थान को परमेश्वरी त्रिपुरा ने प्राप्त कराया, पूर्ण उपासन योग से शास्त्रोक्त मार्ग से उपासना कर ॥ ७३ ॥ गुरुओं से प्रबोधित होकर परम पद प्राप्त करते हैं। तुमने जो पूछा वह परम रहस्य मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ७४ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में श्रीचक्रदेवता-
निरूपण नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४७१७ ॥

अथाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथ भूयश्चतुर्वक्त्रं त्वष्टा पप्रच्छ सादरम्। जगद्विधे त्वां पृच्छामि गुरवस्त्वौघरूपिणः॥ १॥
कुतः समानसङ्ख्याका नाऽभवंस्तन्ममेरय। नाम तेषाञ्च सर्वेषामथाऽग्नेः कुण्डमीरितम्॥ २॥
तत्राऽग्निश्चिन्मयः केन जातस्तदपि वर्णय। तत्र कुण्डे भवद्भिश्च स्त्रीरूपा केन हेतुना॥ ३॥
विचिन्तिता पराशक्तिर्वदैतत् कारणं विभो। न तृप्याम्यद्भुतकथां संभृण्वन्नपि भूरिशः॥ ४॥
को नु तृप्येत्पराशक्तेः स्वात्ममूर्तेः कथाऽमृतम्। पिबन्नपि चिरं दैवहतं स्थाणुमृते क्वचित्॥ ५॥
तन्मे प्रब्रूहि भगवन् श्रोतव्यं यदि मे भवेत्। श्रुत्वा विश्वकृतोक्तं तत् प्रसन्नः प्रपितामहः॥ ६॥
समाहितः शृणु कथां त्वष्टश्चित्रां पुरातनीम्। पार्वतीं सर्वतो गुप्तां प्रसन्नः प्रब्रुवे तव॥ ७॥
मित्रीशाद्यास्तु ये सृष्टा राजराजेश्वरेण ते। वाग्विद्यागुरवः सर्वे स्वच्छसंवित्तिरूपिणः॥ ८॥
पश्यन्ती मध्यमा चेति वैखरी च परा तथा। चतुर्विधा शब्दमयी पराशक्तिर्विजृम्भते॥ ९॥
तत् क्रमं ते प्रवक्ष्यामि सर्वत्रैव सुगोपितम्। त्रिपुराख्या हि या शक्तिः स्वच्छसंवेदनामयी॥ १०॥
न तत्र वागिन्द्रियाणि मनो वाऽप्यस्ति सर्वथा। सर्वास्तिसारभूताऽऽत्मरूपिणी परमेश्वरी॥ ११॥
न धर्मो धर्मवान् वाऽपि सर्वधर्मविवर्जनात्। सर्वाऽऽश्रयचितिः स्वच्छा केवला वागगोचरा॥

✲ विमला ✲

ब्रह्मदेव से विश्वकर्मा ने पुनः सादर पूछा—हे जगद्विधे! गुरुओं के समूह के सम्बन्ध में मैं आपसे पूछता हूँ॥ १॥ उनकी संख्या समान क्यों नहीं है? यह मुझे बतलायें, फिर अग्निकुण्ड से उत्पन्न उन सबों का नाम क्या है? यह भी बतलायें॥ २॥ अग्नि तो चिन्मय है, उनसे किसी की उत्पत्ति कैसे हुई? यह भी वर्णन करे और उस कुण्ड में आपने स्त्री रूप का ही ध्यान क्यों किया?॥ ३॥ हे प्रभो! पराशक्ति का चिन्तन कर आप इसका कारण भी बतलायें, क्योंकि इस तरह की अनेकों अद्भुत कथा सुनते हुए भी मैं तृप्त नहीं हूँ॥ ४॥ भला उस पराशक्ति की आत्ममूर्ति रूपी आत्मकथा सुनकर कौन तृप्त होगा? बहुत देर तक इस कथा रूपी अमृत को पीते हुए भी दैवहत ठूँठ के अतिरिक्त भला कौन तृप्त हो सका है?॥ ५॥ इसलिए हे भगवन्! यदि मेरे सुनने लायक यह बात हो तो मुझे बतलायें। विश्वकर्मा की यह बात सुनकर ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ६॥ हे विश्वकर्मा! यह विचित्र पुरानी कथा सावधान होकर सुनो। उस पार्वती को जो सब जगह गुप्त रही है, प्रसन्न होकर मैं तुम्हें सुनाता हूँ॥ ७॥ राजराजेश्वर ने मित्रीश आदि की जो सृष्टि की है, वे वाग्विद्या के गुरु हैं; सभी ज्ञान के स्वरूप हैं, पवित्र हैं॥ ८॥ पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी और परा ये चार विद्याएँ शब्दमयी स्वयं पराशक्ति हैं॥ ९॥ इनका क्रम मैं तुम्हें बतलाता हूँ, ये सर्वत्र सुगोपित हैं। त्रिपुरा जिनका नाम है, वह शक्ति स्वच्छ और संवेदनामयी हैं॥ १०॥ वहाँ वाणी, इन्द्रिय, मन—इनका प्रवेश नहीं है, सब कुछ उनमें सारभूत होकर समाहित है। वह परमेश्वरी आत्मरूपिणी हैं॥ ११॥ न धर्म है, न धर्मवान्—वहाँ सर्वधर्म विवर्जित है, क्योंकि वह सबके आश्रयभूत चितिरूपा हैं, वह स्वच्छ हैं, केवल वागोचरा हैं॥ १२॥

तस्य चैतन्यमात्मेति न ततो विद्यतेऽधिकम्। तदेव सर्वस्वातन्त्र्यमतो मायाख्यमीरितम्॥ १३॥
अतर्क्याऽपर्यनुयोज्यमाहात्म्यमखिलाऽऽश्रयम्। स्वयं स्वात्मानममलं विकल्पयति भूरिशः॥
लीलयैव सर्वजगज्जालमेष समीरितः। विकल्प एव शब्दात्मा स्थूलमध्यविभेदतः॥ १५॥
सूक्ष्मकारणभेदाभ्यां चतुर्विधमिति स्थितम्। तत्र स्थूलन्तु यद्रूपं वैखरीति प्रकीर्तितम्॥ १६॥
तत्र ध्वन्यात्मको व्यक्तो वर्णात्मा व्यक्त ईरितः। तल्लौकिकाऽलौकिकत्वाद्द्विधा सर्वत्र संस्थितः॥
तत्राऽव्यक्तः सप्तविधो नादब्रह्माङ्कुरात्मकः। षड्जर्षभौ च गान्धारमध्यपञ्चमधैवताः॥ १८॥
निषाद इति सप्तैते तन्त्रीकण्ठादिजाः स्वराः। रागाऽब्धिभूताऽग्निदभ्रनागसंख्याविभेदिनः॥
एवं भूयो भेदेन तु न सङ्ख्येया भवन्ति ते। तदेतद्देवसंस्थानं गुरवः सप्तसङ्ख्यकाः॥ २०॥
दिव्यौघास्तेन सम्प्रोक्ता मित्रीशेन प्रभाविताः। व्यक्तस्त्वलौकिको विद्यामयः कूटचतुष्टयम्॥
तदाश्रयाः सिद्धगणास्तेनैते वेदसङ्ख्यकाः। सिद्धौघगुरवः प्रोक्ताः षष्ठीशप्रतिभाविताः॥ २२॥
लौकिको मातृकाऽऽत्मा स्यादष्टकूटेश्वरीमयः। तत्संश्रया मानवाः स्युरतस्ता वसुसंख्यकाः॥
एकोनविंशतिमिता एवमोघत्रयस्थिताः। औड्डीशप्रभवा एते वसुसंख्यास्तु मानवाः॥ २४॥
शब्दः कालमयः सर्वो मात्रात्रयपराऽवधिः। ध्वनिराशिः समायुक्तो वर्णारास्यष्टकेन च॥ २५॥
तेन स्युर्नवनाथा वै चर्यानाथसमुद्भवाः। कालस्याऽवच्छेदकास्ते तुरीयपदसंश्रयाः॥ २६॥
प्रकाशोऽथ विमर्शाख्योऽथाऽऽनन्दो ज्ञानसंज्ञकः। सत्यः पूर्णः स्वभावाऽऽख्यः प्रतिभः सुभगाऽभिधः॥
इति मे नवनाथास्तु ओघानामधिनायकाः। ओघश्चतुर्विधो विद्याविभेदाद्युगभेदतः॥ २८॥

चैतन्य ही उसकी आत्मा है, उससे अधिक कहीं कुछ नहीं है। वही सर्वतन्त्र हैं, अतः उन्हें माया कहा जाता है॥ १३॥ वे अतर्क्य हैं, उनका माहात्म्य अपरिअनुयोज्य है। वह सबकी आश्रय हैं, वह अपनी अमल आत्मा को बार-बार स्वेच्छा से बदलती रहती हैं॥ १४॥ उनकी लीला से ही सम्पूर्ण जगत्-जाल संचालित है, विकल्प की शब्दात्मा है। वह स्थूल मध्य के भेद से स्थिर हैं॥ १५॥ सूक्ष्म और कारण भेद से ये चार रूप में अवस्थित हैं। उसमें जो स्थूल रूप है, वह वैखरी कहलाती है॥ १६॥ उसमें जो ध्वन्यात्मक है वह व्यक्त है, वर्णात्मा को भी व्यक्त कहा गया है। वह लौकिक और अलौकिक रूप में सब जगह मौजूद हैं॥ १७॥ उसमें अव्यक्त सात प्रकार के हैं, ये नादब्रह्म से अंकुरित हैं। ये सात षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्य, पंचम और धैवत॥ १८॥ तथा निषाद—ये वीणा के कण्ठ से उत्पन्न स्वर हैं, रागसागर से समुद्भूत हैं, अग्निद् हैं, अभ्र-नाग संख्या के रूप में विभेदित हैं॥ १९॥ फिर इनके विभेद हैं, इनकी गिनती नहीं हो सकती है; इसलिए ये देवसंस्थान गुरु सप्तसंख्यक हैं॥ २०॥ इसीलिए इन्हें दिव्य समूह कहा जाता है, मित्रीश से ये प्रभावित हैं। ये व्यक्त हैं, अलौकिक हैं, विद्यामय हैं, कूटचतुष्टय हैं॥ २१॥ उनके आश्रय में सिद्धगण हैं, इसलिए इनकी संख्या चार हैं। सिद्ध-समूह को गुरु कहा गया है, षष्ठीश से प्रतिभासित हैं॥ २२॥ ये लौकिक हैं, मातृका इनकी आत्मा हैं। ये अष्टकूटेश्वरीमय हैं, इनके आश्रय में मनुष्य हैं, अतः इनकी संख्या आठ हैं॥ २३॥ उन्नीस में ये तीनों अवस्थित हैं, इनकी उत्पत्ति औड्डीश से हुई हैं। ये मानव आठ संख्या वाले हैं॥ २४॥ शब्दकालमय हैं, सभी मात्राएँ तीन रूपों में इनमें समाहित हैं। ध्वनिसमूह से ये युक्त हैं और सभी वर्ण आठ मुँह से इनमें सम्मिलित हैं॥ २५॥ चर्यानाथ से उत्पन्न ये नौ नाथ हैं। काल के ये अवच्छेदक हैं, तुरीय पद में आश्रित हैं॥ २६॥ प्रकाश को विमर्श कहा जाता है और आनन्द को ज्ञान, सत्यपूर्ण स्वभाव है और प्रतिभा को सुभग कहा जाता है॥ २७॥ ये मेरे नौ नाथों के समूह के अधिनायक हैं। यह समूह विद्या

मिश्रितत्वाच्छक्तिमिश्रा गुरवः संव्यवस्थिताः। ओघस्तु पञ्चमोऽपि स्याद्गुरुविद्याप्रवर्तकः ॥
द्वादशैकादशरससमितास्ते चक्रवाह्यगाः। वयं दिव्यभावाः सिद्धाः कुमाराद्याश्च मानवाः ॥ ३० ॥
नृसिंहाद्या इति प्रोक्ता गुरवस्त्वोघसम्भवाः। अथाऽग्नेश्चिन्मयत्वं ते वर्णयामि क्रमाच्छृणु ॥ ३१ ॥
गुणमूर्तौ तृतीयो यो महादेवो महेश्वरः। तमःक्रियः सत्त्वमूर्तिर्विकसच्चिन्मयाऽन्तरः ॥ ३२ ॥
देहिनां देहमध्यस्थं मार्गत्रयमनामयम्। दक्षवाममध्यसंस्थं पिङ्गलेडासुषुम्णकम् ॥ ३३ ॥
इच्छाक्रियाज्ञानमयं तत्र भिन्नं द्वयं स्थितम्। बद्धं मध्यं ज्ञानमार्गं विद्वांसः प्राहुरार्यकाः ॥ ३४ ॥
चित्स्पन्दरूपिणी रुद्धा पार्श्वाभ्यामूर्ध्वनिर्गता। क्रियामिच्छां चेतयति मर्त्यांस्तेन हि चेतनाः ॥
क्रियेच्छामात्रसंयुक्ता ज्ञानमार्गस्य रोधतः। आश्रयीभूतचिन्मात्रस्योर्ध्ववाहाच्च चेतनाः ॥ ३६ ॥
तिरश्चामूर्ध्वमार्गाणां संरोधात्तिर्यगा स्थितेः। न चेतयन्ति ते भूतं भव्यश्च क्वचिदात्मनि ॥ ३७ ॥
तेनाऽचेतनतुल्यास्ते तिर्यञ्चः सर्व एव हि। एवं स्थिते महादेवो यस्त्रिनेत्रस्ततोऽधिकः ॥ ३८ ॥
अस्माकमन्तःसम्भिन्ना मध्यनाडी चिदास्पदा। तेनाऽन्तरस्मद्विज्ञानं पूर्णं समुपलक्ष्यते ॥ ३९ ॥
महादेवस्याऽन्तरे तु ज्ञानोद्रेकात्तदूर्ध्वतः। फालदेशे विनिर्भिन्ना मध्यनाडी चिदात्मिका ॥ ४० ॥
अन्तस्तमोद्रेकभावाच्चिदेवाऽग्नितया स्थिता। तस्मात्तन्नेत्रसम्भूताश्चिदग्निरिति विश्रुतः ॥ ४१ ॥
अथ तत्तेऽभिधास्यामि स्त्रीरूपा चिन्तिता यतः। शृणु लोके विश्वकर्मन् यत्सुखं तच्चिदात्मकम् ॥
अतः सुखे पशूनाञ्च प्रीतिः सर्वात्मना स्थिता। सुखावहं सुन्दरञ्च लोके प्रत्यक्षभावनात् ॥ ४३ ॥

और युगभेद से चार प्रकार का है ॥ २८ ॥ मिश्रित होने के कारण ये गुरु व्यवस्थित रूप से शक्ति-सम्मिश्रित हैं। ओघ में पाँचवाँ गुरु भी विद्या-प्रवर्तक हैं ॥ २९ ॥ ग्यारह और बारह रस से परिमित हैं, ये चक्र से बाहर जाने वाले हैं। हम सिद्ध कुमारादि मानव दिव्य भाव से इन्हें देखते हैं ॥ ३० ॥ इसी समूह से समुत्पन्न नृसिंहादि गुरु कहे गये हैं। अग्नि को चिन्मय कहा गया है, उसका वर्णन मैं क्रम से करता हूँ ॥ ३१ ॥ गुणमूर्ति में तृतीय जो महेश्वर महादेव हैं, तमस क्रिया करने वाले हैं; उनके चिन्मयात्मक अन्तर से सत्त्वमूर्ति विकसित हुई है ॥ ३२ ॥ देहधारियो की देह के बीच में तीन स्वस्थ मार्ग हैं—दायें, बायें और बीच में। इन्हें पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता है ॥ ३३ ॥ ये इच्छा, क्रिया और ज्ञानमय हैं, इनसे दो भिन्न हैं। विद्वान् लोग इन्हें बद्ध, मध्य और ज्ञानमार्ग कहते हैं ॥ ३४ ॥ चित् स्पन्दरूपिणी है, वह दोनों किनारों से रुद्ध ऊपर की ओर निकली है। क्रिया इच्छा रूपी बुद्धि में चेतना देती है, इसलिए इसे चेतना कहा जाता है ॥ ३५ ॥ क्रिया इच्छामात्र के संयोग से ज्ञानमार्ग का अवरोध करती है। चिन्मार्ग का आश्रय ग्रहण कर चेतना ऊर्ध्वबाह्य है ॥ ३६ ॥ ऊपर की राहों का टेढ़ा होने से रुकावट के कारण यह टेढ़ी स्थिति में रुकी रहती है। यह भूत, भव्य और अपनी आत्मा में चैतन्य नहीं होती है ॥ ३७ ॥ इसलिए ये अचेतन तुल्य होने के कारण सभी वक्र स्थिति में रहते हैं। इस स्थिति में महादेव जो त्रिनेत्र हैं, उनसे भी यह अधिक है ॥ ३८ ॥ हमारे अन्तःकरण से कुछ भिन्न यह मध्य नाड़ी चिदास्पदा है। इससे हमारा भीतरी विज्ञान पूर्ण उपलक्ष्य होता है ॥ ३९ ॥ इसलिए महादेव के अन्तर (चित्) में ज्ञान के आधिक्य से उसके ऊपर से ललाट के बीच में मध्य नाड़ी चिदात्मिका हैं ॥ ४० ॥ भीतर में तम के प्राचुर्य से चित् ही अग्नि रूप में अवस्थित है, इसलिए शिव की तीसरी आँख की अग्नि विख्यात है ॥ ४१ ॥ अब मैं तुमसे कहूँगा कि स्त्री के रूप में क्यों उनका चिन्तन किया गया ? तो सुनो हे विश्वकर्मा ! इस संसार में जो कुछ भी है, वह चिदात्मक है ॥ ४२ ॥ यही कारण है कि सुख में प्राणियों की प्रीति

योषिद्रूपं सुन्दरञ्च तस्माल्लोके जनैः सदा। प्रेक्ष्यते योषितां रूपं सुखसाधनभावतः ॥ ४४ ॥
अन्यच्च तेऽभिधास्यामि सा या चिद्रूपिणी परा। स्ववैभवात्मकं विश्वं स्वातन्त्र्येण प्रकाशितम् ॥
नियत्या स्वाऽऽत्मनः शक्त्या नियतं सर्वमेव हि। अभिमानो वृथा मोहादहं कर्तेति संस्थितः ॥
यदि कर्ता स्वयं स्याच्चेत् कुतोऽन्यत् प्रसमीक्ष्यते। तथाऽप्यसम्मतप्राप्तिर्भवेद्वा कथमीरय ॥
तस्मात् सृष्ट्यादिकं किञ्चित् सर्वं तस्या विजृम्भितम्। तस्माद्योषिन्मयध्यानं तयैव प्रविभावितम् ॥
सर्वं विश्वस्य वैचित्र्यं तत्स्वातन्त्र्यनिबन्धनम्। एवं स्थिता महाराज्ञी चिन्तामणिगृहे तदा ॥ ४९ ॥
महापद्मवनाऽन्तःस्थं वीक्ष्य तद्गृहराजकम्। मत्वा तदपि नो सम्यङ्महादेवः सदाशिवः ॥ ५० ॥
श्रीदेव्याज्ञां समादाय निर्ममे प्रोक्तवत्पुरम्। ब्रह्माण्डेषु स्थिता देवा दैत्या मर्त्यादयोऽपि ये ॥ ५१ ॥
उपास्य त्रिपुरेशानीं सालोक्यं मुक्तिमाययुः। ते तत्र तत्तत्स्थानेषु निवसन्ति पृथक् पृथक् ॥ ५२ ॥
इन्द्रब्रह्मादयोऽप्येवं निवसन्ति चिरं पुरे। तत्तद्वप्रान्तरभुवि स्वाम्यं प्राप्य सुनिर्मलम् ॥ ५३ ॥
तत्तत्कालप्रमाणस्य नियुतं प्रोष्य वै ततः। विशन्ति परमं भावमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ५४ ॥
तदन्तरे तु सम्प्राप्ता विधीन्द्रेन्दुमुखादयः। पूर्वं संस्थितसायुज्यं लब्ध्वा तिष्ठन्ति सर्वतः ॥ ५५ ॥
साम्प्रतं यो विधिस्तत्र विद्यते तेन संयुताः। ब्रह्माण्डान्तरसम्प्राप्ताः षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ॥ ५६ ॥
षट्शतञ्च त्रिषष्टिश्च सायुज्यं ब्रह्मणा गताः। इति ते सर्वमाख्यातं मानं श्रीपुरसंस्थितम् ॥ ५७ ॥
अत्र मेरौ प्रोक्तरीत्या पुरं रचय सुन्दरम्। यत्र श्रीपुरसाम्राज्ञी त्रिपुराम्बा भविष्यति ॥ ५८ ॥

सबमें समान रूप में पायी जाती है; प्रत्यक्ष भावना से संसार में सुन्दर वस्तु ही सुखावह होती है ॥ ४३ ॥ औरतों के सुन्दर रूप में सांसारिक लोक सदा आसक्त रहते हैं। सभी लोग सुख-साधन के भाव से औरत के रूप को देखते हैं ॥ ४४ ॥ दूसरी बात भी तुम्हें कहता हूँ; वह जो चिद्रूपिणी परा है, अपने विभव रूपी आत्मा वाली हैं, स्वतन्त्र रूप से विश्व को प्रकाशित करती हैं ॥ ४५ ॥ नियति ने अपनी आत्मशक्ति से सम्पूर्ण संसार को नियत कर रखा है; मोह के कारण 'मैं कर्त्ता हूँ'—ऐसा लोगों को व्यर्थ अभिमान होता है ॥ ४६ ॥ यदि कर्त्ता ही स्वयं हो तो दूसरे की समीक्षा की क्या आवश्यकता है? फिर भी असम्मत की प्राप्ति होती है—यह कैसे? बतलायें ॥ ४७ ॥ इसलिए सृष्टि आदि सब कुछ उसी से प्रकाशित है, अतः उसी शक्ति का स्त्री रूप में ध्यान किया जाता है ॥ ४८ ॥ विश्व की सारी विचित्रताएँ उसके स्वातन्त्र्य से निबन्धित हैं, इस स्थिति में वह महाराज्ञी चिन्तामणि गृह में अवस्थित हैं ॥ ४९ ॥ महापद्म वन के भीतर उस गृहराज को देखकर फिर भी उसे सम्यक् रूप से नहीं मानकर सदाशिव ॥ ५० ॥ श्रीदेवी की आज्ञा लेकर ऊपर कहे हुए नगर में प्रविष्ट हुए। ब्रह्माण्डों में स्थित देवता, दैत्य अथवा मनुष्य भी ॥ ५१ ॥ त्रिपुरेश्वरी की उपासना कर सालोक्य मुक्ति प्राप्त किये। वे सभी उन-उन स्थानों पर अलग-अलग निवास करते हैं ॥ ५२ ॥ इन्द्र और ब्रह्मादि देवगण भी उस नगरी में चिरकाल से वास करते हैं। उस किले के भीतर निर्मल स्वामी को पाकर ॥ ५३ ॥ उन कालों के प्रमाण से नियुत और प्रोष्य होकर वे परम अवाङ्मनसगोचर भाव को पाकर उस परम रूप को प्राप्त करते हैं ॥ ५४ ॥ इसी बीच में ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र आदि देवगण वहाँ पहुचें, पूर्वसंस्थित सायुज्य को पाकर सब ओर बैठे हैं ॥ ५५ ॥ इस समय जो ब्रह्मा है वे भी वहाँ उनके साथ हैं, विभिन्न ब्रह्माण्डों में साठ हजार संख्या में उपस्थित हैं ॥ ५६ ॥ छः सौ तिरसठ ब्रह्मा सायुज्य प्राप्त किये। श्रीपुर-संस्थित सम्पूर्ण मान मैंने तुम्हें कह सुनाया, अब इस मेरुगिरि पर बताये हुए ढंग से सुन्दर नगर की रचना करो, जहाँ श्रीपुर

वयं यत्र स्थितां नित्यं पश्यामो नेत्रसुन्दरीम्। इति धातृवचः श्रुत्वा विश्वकर्माऽतिविस्मितः ॥
निर्मातुं श्रीपुरं देव्या मेरुशृङ्गे मनो दधे। विभावयन् विधिप्रोक्तं हर्षनिर्भरिताऽन्तरः ॥ ६० ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिता-
माहात्म्ये श्रीपुरवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७७७ ॥



की साम्राज्ञी त्रिपुरा निवास करेगी ॥ ५७-५८ ॥ हम सब जहाँ उपस्थित नेत्रसुन्दरी को नित्य देखते रहेंगे। विधाता की यह बात सुनकर विश्वकर्मा ने अत्यन्त विस्मित होकर ॥ ५९ ॥ मेरुशृंग पर देवी का श्रीपुर निर्माण करने का मन बनाया। हर्ष से उसका भीतर भरा था, विधाता के द्वारा बताये गये नगर-निर्माण योजना को सोचते हुए चले ॥ ६० ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललिता-माहात्म्य
के अन्तर्गत श्रीपुर-वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४७७७ ॥



अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

एवं श्रुत्वा हयग्रीववाक्यमत्यन्तसुन्दरम् । कुम्भोद्भवः प्राह भूयस्तत्कथाश्रवणोत्सुकः ॥ १ ॥
भगवन्नश्ववदन भण्डदैत्यः समागतः । तपो विघ्नं निर्जराणां चिकीर्षन् वह्निनाऽऽवृतान् ॥
देवान्निशाम्य विमुखः प्रयातः शून्यपत्तनम् । ततः किमकरोत्तत्र तन्मे वद सुविस्तरम् ॥ ३ ॥
संश्रृण्वन् ललितेशान्याः कथां कथयतस्तव ! पुनः श्रोतुं समीहा मे वर्धतेऽतितरां ननु ॥ ४ ॥
एवं पृष्टः कुम्भजेन मुनिः प्राह हयाऽऽननः । शृणु कुम्भोद्भव कथां विचित्रां परमाऽद्भुताम् ॥
अपयाते भण्डदैत्ये देवर्षिरथ नारदः । शून्यकं प्रत्याजगाम शरदभ्रमिवाऽम्बरात् ॥ ६ ॥
तमायान्तं देवमुनिं भण्डदैत्यो विहायसि । ददर्श वृष्टमेघाभं वादयन् वल्लकीं शुभाम् ॥ ७ ॥
समुद्गम्य समानीय मुनिं दैत्यः प्रपूजयत् । सम्पूज्य विधिना प्राह कृताञ्जलिरिदं वचः ॥ ८ ॥
देवर्षे स्वागतं नूनं चिरात्तेऽहं समीप्सितः । कृपया पश्य शिष्यं ते दुर्लभं ते कृपेक्षणम् ॥ ९ ॥
ब्रूहि क्वचिन्निर्जराणां प्रक्षीणानां स्थितिं स्थिराम् । प्रायो विप्रा भीरवो हि गुरुर्मे भयमोहितः ॥
मद्बाहुवीर्यमविदं देवाऽसुरभयावहम् । देवाः शक्तिमुपासीनाः प्रसन्ना यदि सा भवेत् ॥ ११ ॥
पराजयस्ते ध्रुवं स्यात्तस्माद्विघ्नं समाचर । इत्युक्तोऽहं दैत्यगणैस्तत्राऽऽयातो जिघांसया ॥ १२ ॥
वह्निज्वालाऽवलीढांस्तान् दृष्ट्वा देवान् सवासवान् । हृष्टः प्रत्यागतः स्थानं तत्र पृच्छामि प्रस्तुतम् ॥

✲ विमला ✲

मुनि हयग्रीव से अत्यन्त सुन्दर इस कथा को सुनकर और कथा को सुनने के लिए उत्सुक कुम्भज ऋषि ने उनसे कहा॥ १॥ हे भगवन् हयग्रीव! आग से घिरे देवताओं की तपस्या में विघ्न डालने की इच्छा से भण्ड दैत्य जब वहाँ आया॥ २॥ आग से घिरे देवताओं को देखकर उनसे विमुख होकर अपने शून्य नगर को लौट गया; फिर उसके बाद वहाँ उसने क्या किया? वह विस्तारपूर्वक मुझे बतायें॥ ३॥ ललितेशानी की कथा सुनते हुए फिर उसे सुनने की मेरी इच्छा और बढ़ रही है॥ ४॥ इस तरह कुम्भज मुनि के पूछने पर हयग्रीव ने कहा—हे मुनि कुम्भज! परम विचित्र और अत्यन्त अद्भुत यह कथा तुम सुनो॥ ५॥ भण्ड दैत्य जब वहाँ से निकल गया तब देवर्षि नारद शून्य नगर में उसी तरह पहुँचे जैसे शरद् के स्वच्छ आकाश में कोई भूला-भटका बादल आ जाय॥ ६॥ भण्ड दैत्य ने आकाश में उस मुनि को आते हुए देखा। शुभ वीणा बजाते हुए मेघकान्ति की तरह वे आगे बढ़ रहे थे॥ ७॥ भण्ड आगे बढ़कर उन्हें ले आया, उनकी पूजा की, फिर उनसे हाथ जोड़कर कहा॥ ८॥ हे देवर्षे! आपका स्वागत हो, बहुत दिनों से मैं आपको देखना चाह रहा था; कृपापूर्वक इस शिष्य को देखिए, क्योंकि आपकी कृपा इस संसार में दुर्लभ है॥ ९॥ कृपया आप बतलायें कि क्षीण देवगण अभी कहाँ हैं? हे गुरुदेव! मेरे डर से डरे वे क्या कर रहे हैं? प्रायः ब्राह्मण तो डरपोक होते ही हैं॥ १०॥ देवता और असुरों के लिए भयावह मेरे बाहुबल को अनदेखी किये देवगण शक्ति की उपासना कर रहे थे, यदि वह प्रसन्न हो जाती॥ ११॥ तो मेरी पराजय तो निश्चित थी; यही जानकर मैं उन्हें मारने के लिए वहाँ पहुँचा॥ १२॥ किन्तु वह्निज्वाला ने इन्द्र के साथ उन देवताओं को निगल लिया। यह देखकर मैं प्रसन्न हुआ और लौट गया, उस स्थान पर क्या हुआ? यही मैं आपसे पूछता हूँ॥ १३॥ दावाग्नि में

कथं दावाग्निना ग्रस्ता देवा भस्मत्वमाययुः । कश्चित्तत्र विमुक्तो वा तन्मे शंस मुनीश्वर ॥ १४ ॥
पृष्ट एवं देवमुनिः प्रहस्य प्राह दैत्यपम् । दैत्येश्वरेभ्योऽसूया मे न कर्तव्या कदाचन ॥ १५ ॥
नाऽनृतं कुत्रचिद्ब्रूमो वयं सत्यैकसंश्रयाः । प्रभाषसे कथं मुग्ध इव त्वं पण्डितोऽपि सन् ॥ १६ ॥
विपरीतो ननु विधिर्यस्मात्ते बुद्धिरीदृशी । शोकस्थाने हर्षयुतो यतस्त्वं वीक्षितो मया ॥ १७ ॥
सुसमृद्धाः शत्रवस्ते महादेवीसमाश्रयात् । आविर्भूता त्वद्वधाय तोषिता शक्रमुख्यकैः ॥ १८ ॥
चिदग्निकुण्डान्निर्याता ललिता परमेश्वरी । सर्वलोकेश्वरी दिव्यरूपाऽद्भुतमहाबला ॥ १९ ॥
सर्वाऽऽयुधसमुपेता शक्तिसङ्घैः परीवृता । समेष्यति त्वां निहन्तुं किं तुष्यसि हि मूढवत् ॥ २० ॥
श्रुत्वा नारदसम्प्रोक्तं प्रहस्य आह दैत्यराट् । नूनं मया पुरैवोक्तं विप्राः प्रकृतिभीरवः ॥ २१ ॥
मुने जानासि नो मां त्वं साक्षान्मृत्योर्भयङ्करम् । विष्णुः सुरेष्वतिबली स युद्धे मे पराजितः ॥ २२ ॥
पञ्चोत्तरशताण्डानामधिपोऽहं पराक्रमी । देवासुरादिस्रष्टाऽहं लोकशस्त्राऽस्त्रसन्ततेः ॥ २३ ॥
मम वशे स्थिता ब्रह्मविष्णुमुख्यपरम्पराः । कथं भीतोऽसि स्त्रीहेतोर्निसर्गादबलाः स्त्रियः ॥
तदन्तरे भण्डदैत्यपत्न्यः सम्मोहिनीमुखाः । देवर्षिमानयामासुरवरोधे सखीगणैः ॥ २५ ॥
आगतं मुनिशार्दूलं सम्पूज्याऽऽसनमुख्यकैः । पाद्याऽर्घ्यैः सुबलिद्रव्यैः प्रणम्य प्राहुरादरात् ॥
देवर्षे त्वत्प्रसादेन धन्यास्त्वद्दर्शनेन च । वयमस्मान्निरीक्षस्व दृष्ट्या करुणया भृशम् ॥ २७ ॥
वयन्तु गुरुपत्नीभ्यः शुश्रुमाऽत्यन्तसाध्वसम् । उत्पन्ना ललिता देवी देवैः समभिपूजिता ॥ २८ ॥
भर्तुर्वधाय नो देवसौख्याय परमेश्वरी । तद्बोधयाऽसुरपतिं यथानाशं न चैष्यति ॥ २९ ॥

जलकर वे देवगण कैसे राख हुए? या उनमें से कोई बच निकला? हे मुनिवर! यह मुझे बतलायें ॥ १४ ॥ इस तरह दैत्याधिपति के ऐसा पूछने पर हँसकर नारद ने कहा—मुझे दैत्येश्वरों से कभी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए ॥ १५ ॥ मैं कहीं भी झूठ नहीं बोलता, क्योंकि मैं सत्य का आश्रयी हूँ; पण्डित होते हुए भी मूर्ख की तरह बोलते हुए तुमसे क्या कहूँ? ॥ १६ ॥ जिसका विधाता विपरीत होता है उसी की बुद्धि तुम्हारी तरह होती है, शोक की तरह खुशी मनाते मैं तुम्हें देख रहा हूँ ॥ १७ ॥ महादेवी का सहारा लेने के बाद तुम्हारे दुश्मन तुमसे अधिक ताकतवर हो गये हैं। इन्द्रादि देवताओं के द्वारा तोषित महादेवी तुम्हारे वध के लिए प्रादुर्भूत हुयी हैं ॥ १८ ॥ ज्ञानाग्निकुण्ड से ललिता परमेश्वरी प्रकट हुई है। वे सर्वलोक की ईश्वरी हैं, दिव्यरूपा हैं, अद्भुत और महाबला हैं ॥ १९ ॥ शक्तिसंघों से घिरी हर तरह के आयुधों से सम्पन्न तुम्हें मारने के लिए आ रही हैं, मूर्ख की तरह क्या खुश हो रहे हो? ॥ २० ॥ नारद की यह बात सुनकर हँसते हुए दैत्यराज ने कहा—निश्चय ही मैंने पहले ही कहा है कि ब्राह्मण स्वभाव से ही डरपोक होते हैं ॥ २१ ॥ हे मुनिवर! आप मुझे नहीं जानते, मैं तो साक्षात् मृत्यु के लिए भी भयंकर हूँ। विष्णु जैसे महाबली देवताओं को मैंने पराजित किया है ॥ २२ ॥ पाँच सौ से अधिक ब्रह्माण्डों का मैं अधिपति हूँ, पराक्रमी हूँ; देव-दानवों का मैं स्रष्टा हूँ, लोक-शस्त्रास्त्र का ज्ञाता हूँ ॥ २३ ॥ ब्रह्मा-विष्णु प्रमुख देवगण मेरे वशवर्ती हैं, क्यों एक औरत से डर रहे हो? वह तो स्वभाव से ही अबला है ॥ २४ ॥ इसी बीच भण्ड दैत्य की पत्नियाँ सम्मोहिनी प्रमुख सखीगणों के साथ राजमहल में देवर्षि को ले आयीं ॥ २५ ॥ मुनिश्रेष्ठ नारद को राजमहल में आये देख आसन, पाद्य, अर्घ्य और सुन्दर द्रव्यों से पूजा कर रानियों ने उन्हें प्रणाम किया और सादर उन्हें पूछा ॥ २६ ॥ हे देवर्षि नारद! आपने हम पर कृपा कर दर्शन दिये हैं, हम धन्य हुए। हमें अब आप अपनी करुणा दृष्टि से देखें ॥ २७ ॥ हमने गुरुपत्नियों से अत्यन्त डरावनी बातें सुनीं। उस अग्निकुण्ड से देवताओं से सुपूजित ललिता देवी उत्पन्न हुई हैं ॥ २८ ॥ वह परमेश्वरी देवताओं की रक्षा और हमारे पति की हत्या के लिए उत्पन्न हुई हैं;

शरणं त्वां प्रपन्नाःस्मो निमग्ना दुःखसागरे। उद्धराऽस्मान् दुःखसिन्धोः पाहि नः परिचारिकाः ॥
इत्युक्त्वा चरणौ स्पृष्ट्वा रुरुदुर्दैत्ययोषितः। वीक्ष्य तासां प्ररुदितं करुणाऽऽक्रान्तमानसः ॥ ३१ ॥
आनाय्य दैत्यराजं तं तत्र प्रोवाच नारदः। दैत्येश्वर मदुक्तं त्वं शृणु वाक्यं सुधासमम् ॥ ३२ ॥
मा शोचयाऽबलाश्चेमा मा नाशाय च बान्धवान्। हितवक्ता हि लोकेषु जनः परमदुर्लभः ॥
अविचार्याऽऽगमाऽपायं मधुरं यः समक्षतः। वदेत्तमभिजानीयाच्छत्रुं मित्रस्वरूपिणम् ॥ ३४ ॥
यो ब्रूयादागमाऽपायं विमृश्य परया धिया। कटुकं ह्यौषधसमं जानीयान्मित्रमेव तम् ॥ ३५ ॥
गुरुः काव्योऽत्यन्तधीरदीर्घाऽमर्शी प्रिये हितः। तदुक्तमत्यन्तपथ्यं रोगिणो भेषजं यथा ॥ ३६ ॥
गुरूक्तमपरित्यज्य सौभाग्यं परमाप्नुयात्। तदहं प्रब्रवीमि त्वां यत्तद्दैत्यपते शृणु ॥ ३७ ॥
मन्यसे यत्स्वमात्मानं सर्वेभ्यो बलवत्तरम्। तत्राऽपि शृणु वक्ष्यामि कैटभो दैत्यशेखरः ॥ ३८ ॥
यस्याऽभून्मेदसश्चेयं मेदिनी लोकधारिणी। विष्णुना निहतो युद्धेऽप्रतिमो बलपौरुषे ॥ ३९ ॥
स्त्रियं तामबलां यत्त्वं मन्यसे तत् पुरा श्रुतम्। शुम्भासुरनिशुम्भौ च महिषश्च बलोद्धतः ॥
हतोऽनयैव परया महासुरबलैर्वृतः ॥ ४० ॥
अलं ते बलदर्पेण रिपुणा स्वाऽऽत्मघातिना। न किं स्मरसि गौर्या ते युद्धे पूर्वपराभवम् ॥ ४१ ॥
गौर्यादिभिर्विशिष्टेयं ललिता परमेश्वरी। सेव्यते याऽनेककोटिगौरीप्रमुखशक्तिभिः ॥ ४२ ॥
नाऽस्याः शक्तेः पादनखसमं ब्रह्माण्डमण्डलम्। यस्य प्रसादादेव त्वं मन्यसे बलिनां वरम् ॥ ४३ ॥

यह बात आप असुरपति को समझा दें ताकि उनका भविष्य में विनाश न हो ॥ २९ ॥ हम आपकी शरणागत हैं, दुःखसागर में डूब रही हैं; हमारा इस दुःखसिन्धु से उद्धार करें। हम आपकी परिचारिका हैं, हमारी रक्षा करें ॥ ३० ॥ इतना कहकर नारदजी के चरणों का स्पर्श कर दैत्यराज की पत्नियाँ रोने लगीं। उन्हें रोते देख ऋषि का हृदय दया से भर आया ॥ ३१ ॥ दैत्यराज को उन्होंने अपने पास बुलाकर उनसे कहा—हे दैत्यराज! अमृत रूपी मेरी वाणी को सुनो ॥ ३२ ॥ इन अबलाओं को सोचो, अपने बान्धवों का विनाश मत करो। संसार में हितकर बातें बोलने वाला मनुष्य दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ आगम और अपाय पर बिना सोचे जो चिकनी-चुपड़ी बातें बोलता है उसे मित्र रूप में शत्रु मानो ॥ ३४ ॥ जो हानि और लाभ सोच कर परमबुद्धि से बोलता है उसकी कड़वी बातों को औषधि के रूप में जानकर उसे मित्रवत् स्वीकार करो ॥ ३५ ॥ गुरु शुक्राचार्य अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, दीर्घदर्शी हैं, विचारवान् हैं, प्रिय हैं, हितैषी हैं; उनकी कही हुई बातें तुम्हारे लिए उसी तरह पथ्य हैं जैसे रोगियों के लिए औषधि ॥ ३६ ॥ गुरु की बातें मानकर परम भाग्यशाली बनो। इसके बाद जो कुछ मैं कहता हूँ—हे दैत्यपति! उसे गौर से सुनो ॥ ३७ ॥ तुम जो अपने को सर्वाधिक बलवान् मानते हो, उस पर भी कैटभ नामक दैत्यराज की कथा मैं कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ३८ ॥ जिसके मांस और मेदा से बनी यह धरती मेदिनी बनकर संसार को धारण करती है। वह कैटभ अप्रतिम बलवान् एवं पुरुषार्थी था, युद्ध में विष्णु से वह मारा गया ॥ ३९ ॥ जिस स्त्री को तुम अबला मान रहे हो, उसके विषय में कहा जाता है कि पहले इसने ही शुम्भ, निशुम्भ और महिष नाम के बलोद्धत दैत्यों को ससैन्य विनष्ट कर दिया था ॥ ४० ॥ तुम्हारा बल का घमण्ड बेकार है, आत्मघाती दुश्मन के सामने यह प्रयास या बलदर्प बेकार है; क्या तुम याद नहीं करते कि आज से कुछ दिन पूर्व युद्ध में गौरी ने तुम्हें पराजित किया था? ॥ ४१ ॥ उस गौरी से कहीं अतिविशिष्ट यह ललिता परमेश्वरी हैं, जिन्हें अनेक करोड़ गौरी-प्रमुख शक्तियाँ सेवती हैं ॥ ४२ ॥ इसकी शक्ति के पैरों के नाखून के बराबर यह ब्रह्माण्ड है। इसी की कृपा से अपने को आज तुम बलवानों में श्रेष्ठ मान रहे हो ॥ ४३ ॥ वह भी उस महादेव के पीठ-पाद से समुत्पन्न हैं, इसलिए सर्वार्थ

सोऽपि तस्या महादेवः पीठपादांशसम्भवः । तदलं स्वाऽऽत्मसर्वार्थनाशनाऽभिनिवेशतः ॥
प्रपश्येमाः प्रियाः साध्वीः शोचन्तीर्दैन्यमागताः । अहं त्वां तत्र नेष्यामि पराशक्तेः पदान्तिकम् ॥
क्षामयामि च तां देवीं त्वदर्थं सर्वयत्नतः । राज्यं प्रसाधि पाताले दिवं शासतु वासवः ॥ ४६ ॥
रक्ष दैत्यपरीवारान् मा विनङ्क्षीः प्रियैः सह । न करिष्यसि मत्प्रोक्तं यदा तर्हि विनङ्क्ष्यसि ॥ ४७ ॥
दैत्येश कश्चिन्मत्प्रोक्तं श्रुतं मनसि रोचते । धिया सात्त्विकया चैतद्विमृश स्वात्मरक्षणम् ॥ ४८ ॥
श्रुत्वेत्थं नारदवचो भण्डदैत्यः प्रहस्य च । हस्तेनाऽऽदाय देवर्षिं प्रारोहत् सौधशेखरम् ॥ ४९ ॥
मेरुशृङ्गप्रतीकाशं काञ्चनं सौधशेखरे । वातायने मणिमये विवेश मृदुविष्टरे ॥ ५० ॥
सन्निवेश्याऽऽसने तत्र देवर्षिं मृदुतूलजे । देवर्षे मयि रोषं त्वं न शिष्ये कर्तुमर्हसि ॥ ५१ ॥
जानामि त्वां महाभक्तं पराशक्तेः पदाऽऽश्रयम् । यद्ब्रवीष्यखिलं तत्तेनाऽन्यथा विदितं मया ॥
जानासि सर्वं मे वृत्तं लीलयैवं ब्रवीषि माम् ॥ ५३ ॥
अहं ननु रमादेव्या दूतो माणिक्यशेखरः । कदाचित् सा तोषणाय त्रिपुराया महत्तपः ॥ ५४ ॥
चक्रेऽब्दानां त्रिनियुतं जाह्नवीतटसंश्रया । कदाचित् किन्नरी काचित्तारुण्याऽमृतपूरिता ॥ ५५ ॥
उन्मज्जन्ती निमज्जन्ती पतिता जाह्नवीजले । स्रोतोऽभिरुह्यमाना सा त्रातारं नाऽधिगच्छत ॥
दृष्ट्वा करुणयाऽऽविष्ट आप्लुतः स्वर्धुनीजले । तां पृष्ठतः समारोप्य तटमारुह्य सत्वरम् ॥ ५७ ॥
तां समावेशयं तत्र विज्वरा सा क्षणादबभौ । तदङ्गस्पर्शनाच्चाहं लावण्यस्य समीक्षणात् ॥ ५८ ॥

नाश करने की ओर लगे तुम अपने को रोको ॥ ४४ ॥ चिन्ता करती हुई दीनता को प्राप्त अपनी इन साध्वी प्रियतमा की ओर निहारो। मैं तुम्हें उस पराशक्ति के चरणों में ले जाऊँगा ॥ ४५ ॥ देखो, उस देवी से पूर्ण प्रयास के साथ तुम्हारे लिए क्षमा-याचना कर लूँगा, तुम पाताललोक में अपना राज्य बसाओ और स्वर्ग देवताओं को सौंप दो ॥ ४६ ॥ दैत्य-परिवारों की रक्षा करो; अपनी प्रिय पत्नियों के साथ अपने को विनष्ट मत करो। अगर मेरी बात तुम नहीं मानते हो तो निश्चित रूप से अपना विनाश कर लोगे ॥ ४७ ॥ हे दैत्यराज! मैंने जो कुछ भी कहा, उसे तुमने सुन लिया; अब यदि तुम्हारे मन को यह बात अच्छी लगे तो सात्त्विक बुद्धि से आत्मरक्षार्थ उस पर विचार करो ॥ ४८ ॥ नारद की यह बात सुनकर भण्ड दैत्य हँसते हुए हाथ से उन्हें पकड़कर महल की छत पर चला गया ॥ ४९ ॥ मेरु पर्वत की चोटी की तरह सोने का उसका सौधशिखर था, उसकी खिड़कियाँ मणिजटित थीं; वहाँ ही सबसे पहले इन्हें आसन पर बैठाया ॥ ५० ॥ कोमल रुई के बने आसन पर देवर्षि को बैठाकर तब उनसे कहा—हे देवर्षि! मैं तो आपका शिष्य हूँ, मुझ पर आपका यह क्रोध उचित नहीं है ॥ ५१ ॥ उस पराशक्ति में आपकी महाभक्ति है, यह भी मैं जानता हूँ; आपने जो कुछ मुझे कहा है, उसे मैंने कभी अन्यथा नहीं माना ॥ ५२ ॥ आप तो मेरी सारी बातें जानतें हैं फिर भी आपकी यह लीला है, जिससे आप मुझे ऐसा कह रहे हैं ॥ ५३ ॥ मैं महालक्ष्मी रमा का दूत माणिक्यशेखर नाम का था। एक बार रमा देवी ने भगवती त्रिपुरा को प्रसन्न करने के लिए घोर तप करना प्रारम्भ किया ॥ ५४ ॥ गंगा नदी के किनारे तीस लाख वर्ष तक उन्होंने तप किया। इसी बीच परमसुन्दरी, तरुणी अमृतमय शरीर वाली किन्नरी ॥ ५५ ॥ स्नान करते समय उछलती-कूदती गंगा-प्रवाह में जा गिरी; धारा से खिंचती अपने बचाव के लिए वहाँ किसी को नहीं पा रही थी ॥ ५६ ॥ गंगाजल में डूबती उसे देखकर मेरा दिल करुणा से भर आया, मैंने उसे अपनी पीठ का सहारा देकर किनारे ले आया ॥ ५७ ॥ किनारे पर उसे रखते ही वह एक क्षण में होश में आ गई। उसके शरीर का सौन्दर्य देखकर और उसके अंगस्पर्श से मैं ॥ ५८ ॥ काम से मोहित हो गया और उससे यह कहा—हे कल्याणि! मैंने तुम्हें मृत्युमुख से

कामेन मोहितो जातस्तामवोचमिमां गिरम्। कल्याणि त्वं रक्षिताऽसि मया मृत्योर्मुखादिव ॥
त्वदङ्गसङ्गात् कामार्तो जातोऽहं रक्ष मामिह। कृते प्रतिकृतिं कुर्याच्छक्तः सर्वात्मना स्वयम् ॥
अकुर्वन् प्रत्युपकृतिं निहन्त्यात्मानमात्मना। तन्मां कामाग्निनाऽऽविष्टमार्तं ते शरणागतम् ॥
रक्षाऽधुना स्वात्मदानान्नो चेत् प्राणान् जहाम्यहम्। श्रुत्वा मद्विपरीतोक्तिं साध्वी सा किन्नरी वचः ॥
अब्रवीदमृतस्यन्दि मधुरं गुणवत्तरम्। मा बुद्धिभ्रंशमागच्छ किन्नरीपतिदेवता ॥ ६३ ॥
तपस्यभिरतो भर्ता इतो मे क्रोशपञ्चके। आस्ते तस्य प्रिया चाऽस्मि तरुच्छायेव सङ्गता ॥ ६४ ॥
नाऽतिवर्ते पतिं क्वाऽपि शृण्वन् यदपि कारणम्। य आपद्भ्यः समुद्धर्ता यश्च बाल्ये प्रपोषकः ॥
स पिता धर्मतः शास्त्रे प्रोक्तस्तस्मात् पिता मम। त्वं ते सुता धर्मतोऽहं नैवं मां वक्तुमर्हसि ॥
पुरुषः स्वात्मनः शत्रुं मनो यच्छेदपस्थलात्। नाशयेत्तं मनः शीघ्रं मनो यस्य वशे न हि ॥ ६७ ॥
विमृश स्वच्छया बुद्ध्या धीरया लोकचेष्टितम्। स्त्रीसुखं सर्वतो ह्येकं न विशेषः पशुष्वपि ॥
तत् स्वकान्तास्वेव रतिं मनसा भर नाऽन्यतः। पतिव्रतानां क्रोधाग्निं प्राप्य मा भस्मतां व्रज ॥
इत्यादिहितवाक्यानि वदन्ती बहुधाऽप्यहम्। काममोहपरीतात्मा परामर्ष्टुमुपद्रुतः ॥ ७० ॥
सा क्रोशन्ती रमादेव्याश्चरणान्तिकमागता। वदन्ती रक्ष रक्षेति ततस्तस्यास्तु सम्मुखे ॥ ७१ ॥
परामृष्टोत्तरीये सा मया कामान्धचक्षुषा। अथ दृष्ट्वाऽनयं देवी रमा क्रुद्धा शशाप माम् ॥ ७२ ॥
नैषा देवतनुर्मूढ दुर्विनीत तवोचिता। कृत्यं तवाऽसुरं ह्येतत्ततस्त्वमसुरो भव ॥ ७३ ॥
तं शापं घोररूपन्तु श्रुत्वा कामस्य वेगतः। प्रतिबुद्धः शोकसिन्धुनिमग्नोऽभवमञ्जसा ॥ ७४ ॥

बचाया है॥ ५९॥ तुम्हारे अंग के स्पर्श से मैं कामार्त्त हो गया हूँ, अब मेरी रक्षा करो। मैंने तुम्हारे साथ जो किया उसके लिए प्रत्युपकार करने में स्वयं तुम समर्था हो॥ ६०॥ इसलिए कामाग्नि में जलता हुआ मुझ आर्त और शरणागत की आत्मा को अपनी आत्मा से मिलाकर प्रत्युपकार करते हुए उस आग को शान्त कर दो॥ ६१॥ मेरी रक्षा करो; अपना आत्मदान कर, नहीं तो इसी क्षण मैं अपने प्राणों को छोड़ दूँगा। मेरी यह विपरीत बात सुनकर उस साध्वी किन्नरी ने॥ ६२॥ गुणवत्तर और अमृत चुलाने वाली बातें कही—बुद्धिभ्रष्ट मत बनो, मुझ किन्नरी के पतिदेवता है॥ ६३॥ यहाँ से पाँच कोस पर तपस्या में निरत हैं, मैं उनकी प्रिय पत्नी उनकी छाया की तरह उनके साथ हूँ॥ ६४॥ किसी भी कारण से कोई पत्नी पति को नहीं छोड़ सकती। जो बचपन के पालक हैं, युवावस्था में विपत्तियों से समुद्धार करने वाले हैं॥ ६५॥ उन्हें शास्त्रानुसार धर्मपिता कहा गया है, इसलिए तुम मेरे पिता तुल्य हो। तुमने मेरा उद्धार किया है, अतः मैं तुम्हारी बेटी हूँ और अपनी बेटी से यह प्रस्ताव बिलकुल अनर्गल है॥ ६६॥ वह पुरुष अपने आपका दुश्मन है जिसका मन किसी गलत जगह पर लगता है। वह मन जिसके वश में नहीं है वह अपना विनाश खुद कर लेता है॥ ६७॥ पवित्र बुद्धि से सोचो, धैर्य के साथ लोकचेष्टा को समझो; नारीसुख सब जगह एक ही है, पशुओं में भी इसकी विशेषता नहीं मानी जाती है॥ ६८॥ अपनी पत्नी में ही मन को रमाओ, अन्यथा किसी पतिव्रता के क्रोध की आग में जलकर राख होने की चेष्टा मत करो॥ ६९॥ इस तरह के अनेक उचित बात बोलती हुई उस अबला के समझाने पर भी मैं काममोहित होकर उस अबला को छूने के लिए आगे बढ़ा॥ ७०॥ वह चिल्लाती बचाओ-बचाओ कहती रमादेवी के चरणों के पास पहुँच गई। उसके बाद रमादेवी के सामने ही॥ ७१॥ कामान्ध होकर मैंने उसका आँचल पकड़ कर खींच लिया। यह अन्याय देखकर रमादेवी ने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दे दिया॥ ७२॥ रे मूर्ख! तुम्हारे लिए यह देव-शरीर उचित नहीं है; रे दुर्विनीत! तुमने जो यह काम किया है वह राक्षस जैसा है, अतः तुम राक्षस योनि में जन्म लो॥ ७३॥ यह घोर शाप सुनकर मेरे काम का वेग उसी क्षण शान्त हो गया। जब होश आया तो शोकसागर में अपने

समाश्वस्ता किन्नरी सा नत्वा स्वभवनं ययौ। पुनः प्राह रमादेवी मां मग्नं शोकसागरे॥ ७५॥
धिगनार्य मत्समीपं न वस्तुं त्वमिहाऽर्हसि। शरीरं ते घोररूपं परदाराऽभिमर्शनम्॥ ७६॥
गच्छत्वदृश्यतां सद्यो भव वायुशरीरकः। एवं तया प्रशप्तोऽहं भीतो देवीश्रियं तदा॥ ७७॥
प्रसादयं बहुविधैः प्रार्थनैः सन्नतैरपि। एवं चिरेण भूयोऽपि प्रसन्नाऽभवदम्बिका॥ ७८॥
मया शापविमोक्षाय प्रार्थिता साऽऽह मां तदा। माणिक्यशेखर कृतं त्वयाऽत्यन्तविनिन्दितम्॥
नैतस्याऽपचितिं चान्यां पश्यामि स्वल्पमप्युत। नाऽन्यथा मे भवेच्छापः कृतं भोक्तव्यमेव ते॥
नष्टदेहो वायुभूतश्चिरं स्थित्वाऽसुरो भव। किन्तु तां पतितां तोये दययोद्धृतवानसि॥ ८१॥
तेन पुण्यप्रपाकेन विभवं सर्वतोऽधिकम्। प्राप्याऽनेकाऽण्डनाथत्वं भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्॥
महादेव्या हतः सङ्ख्ये प्राप्य तल्लोकसंस्थितिम्। प्राप्य तत्र चिरं कालमसुरैः प्रतिपूजितः॥ ८३॥
अन्ते तत्पदमासाद्य न भूयः सम्भविष्यसि। श्रुत्वैतद्वचनं भूयो ह्यपृच्छं लोकमातरम्॥ ८४॥
देवि का सा महादेवी निहतः स्यां यया मृधे। सा किं त्वत्तोऽधिका देवी नाऽहं जाने तवाऽधिकाम्॥
ब्रूहि सा कतमा का च तस्याः किं वा महित्वकम्। इत्यापृष्टा महादेवी प्राह श्रीलोकमातृका॥
माणिक्यशेखर शृणु सा देवी सर्वतः परा। महाचितिस्वरूपा सा यस्याः प्रकृतिधर्मतः॥ ८७॥
ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव प्रत्यण्डं गुणमूर्तयः। ईश्वरोऽपि तिरोधानकरस्त्रिगुणजेश्वरः॥ ८८॥
तत्राऽप्यनुग्रहकरः सदाशिव इतीरितः। यस्या ईक्षणलेशेनाऽनुग्रहादखिलं सृजेत्॥ ८९॥

को डूबा हुआ पाया॥ ७४॥ वह किन्नरी समाश्वस्त होकर रमादेवी को प्रणाम कर अपने घर लौट गई। शोकसागर में डूबे मुझसे रमा देवी ने कहा॥ ७५॥ अरे अनार्य! तुम्हें धिक्कार है, मेरे सामने तुम्हें ऐसा गर्हित कुकर्म नहीं करना चाहिए। दूसरे की पत्नी का सकाम भाव से तुमने स्पर्श किया, इसलिए तुम्हारी देह घोर रूप धारण करेगी॥ ७६॥ भाग मेरे सामने से, तुम्हारी देह अभी हवा की तरह विलुप्त हो जायेगी। इस तरह से उस महादेवी के शाप से मैं बुरी तरह डर गया॥ ७७॥ अत्यन्त विनत होकर अनेक प्रार्थनाओं से उन्हें खुश करना चाहा। बहुत समय तक ऐसा करने पर वह जगदम्बा प्रसन्न हुई॥ ७८॥ शाप से मुक्ति पाने के लिए जब मैंने प्रार्थना की तब उन्होंने मुझसे कहा—रे माणिक्यशेखर! तुमने अतिनिन्दित काम किया है॥ ७९॥ इसका दूसरा प्रतिकार थोड़ा भी मैं नहीं देख पा रही हूँ। मेरा शाप तो अन्यथा होगा ही नहीं, तुमने जैसा किया उसका फल तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा॥ ८०॥ तुम्हारी देह तो खत्म हो गई, वायु के रूप में बहुत दिनों तक रहकर राक्षस बनोगे, लेकिन गंगाधारा में डूबती उस किन्नरी को दयार्द्र होकर बचाया॥ ८१॥ उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारे पास सबसे अधिक विभव होगा, अनेक ब्रह्माण्ड का स्वामित्व पाकर यथेच्छित भोगों को भोगकर॥ ८२॥ महादेवी से तुम मारे जाओगे। लेकिन वहाँ लोकसंस्थिति में संख्या प्राप्त कर असुरों से पूजित होकर बहुत दिनों तक रहोगे॥ ८३॥ अन्त में उस महादेवी के चरण को पाकर फिर तुम्हारा जन्म नहीं होगा। उनकी यह बात सुनकर मैंने उस लोकमाता से फिर पूछा॥ ८४॥ हे देवि! वह कौन महादेवी है जो युद्ध में मुझे मारेगी? क्या वे आपसे भी अधिक शक्तिशालिनी है? मैं तो आपके सिवा किसी अन्य को अधिक शक्तिशाली मानता ही नहीं॥ ८५॥ बताओ वह कैसी है? क्या है? अथवा उसकी महिमा क्या है? उसके इस प्रश्न को सुनकर लोकमाता महादेवी ने उससे कहा॥ ८६॥ माणिक्यशेखर! सुनो, वह देवी सबसे बड़ी है; वह महाशक्ति चितिस्वरूपा हैं। उसी के प्रकृतिधर्म से॥ ८७॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रत्येक ब्रह्माण्ड में गुणमूर्ति के रूप में अवस्थित हैं। ईश्वर भी तिरोधानकर और त्रिगुण से उत्पन्न हैं॥ ८८॥ उन पर भी अनुग्रह करने वाले को सदाशिव कहा गया है, जिनकी कृपादृष्टि पाकर यह सम्पूर्ण सृष्टि सृजित

अनादिकालतो मायापाशितानणुसङ्ककान् । अनुग्रहान्मोचयितुं सृजत्येष महेश्वरः ॥ ९० ॥
न मुक्तिः प्रलयस्थानामणूनां शून्यभावतः । देहभावं समापन्ना सृष्टौ ज्ञातुं प्रभाविताः ॥ ९१ ॥
सोऽपि तस्या अंशभूत इति सा साररूपिणी । सर्वाऽऽत्मरूपा परमा चितिशक्तिरुदीरिता ॥ ९२ ॥
सैवाऽस्त्यत्र जगच्चित्रभिति दर्पणसम्मिता । सर्वाऽऽत्मना बृंहणेन ब्रह्मशब्देन शब्दिता ॥ ९३ ॥
न स्त्री न षण्डो न पुमांस्त्रिपुरा चिच्छरीरिणी । अवाङ्मनसगम्या सा चेत्यनिर्मुक्तचिन्मयी ॥ ९४ ॥
सा तु सप्तदशी नित्या परमेश्वरसंश्रया । द्वे कले तस्य नाथस्य कार्यता कर्तृतेति च ॥ ९५ ॥
कार्यता स्यात् षोडशधा कर्तृता चैकरूपिणी । इन्द्रियाणान्तु दशकं भूतानां पञ्चकं तथा ॥ ९६ ॥
अन्तःकरणमित्येवं कार्यता षोडशाऽऽत्मिका । कर्तृता स्यात् सप्तदशी कला नित्या महेशितुः ॥
सा षोडशाऽऽश्रयीभूता संवित् सर्वस्य कारणम् । तां हित्वा न शिवः कश्चिद्ब्रह्मा वाऽपि सदाशिवः ॥
ईश्वरः शिवविष्णू वा ब्रह्मा वा देवतागणः । नरा नार्यः प्राणिजातं जङ्गमं स्थावरं तथा ॥ ९९ ॥
प्राणवच्चाऽप्राणकं वा न किञ्चिदवशिष्यते । भूषणेषु स्वर्णमिव जलवत् सागरादिषु ॥ १०० ॥
शून्यत्वमिव चाऽऽकाशे स्पर्शवत् स्यन्दवत्परे । तेजस्युष्णं यथा रूपं जले स्पन्दो रसो यथा ॥
पृथिव्यां गन्धकाठिन्ये इव सा सर्वतः स्थिता । सा स्वाऽऽभासितलीलाऽऽत्मलोकोद्धरणहेतुना ॥
परश्रीचक्रनगरसाम्राज्ञीत्वमधिष्ठिता । जाता वयं तदङ्गेभ्यो वाक्श्रीगौरीसमाह्वयाः ॥ १०३ ॥
काली क्रोधात् समुत्पन्ना महाकालेन संयुता । वचनात्तु तथा जाता तारा भैरवसंयुता ॥ १०४ ॥
पराक्रमात् समुद्भूता दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । क्रौर्यात् प्रत्यङ्गिरोद्भूता महाशरभसंयुता ॥ १०५ ॥

हुई है॥ ८९॥ अनादि काल से मायाबन्धन में बँधे हुए अणुस्वरूप इस ब्रह्माण्ड के इस कणों को अपने अनुग्रह से मुक्त कर फिर उनकी रचना करते हैं॥ ९०॥ वह जब शून्य भाव में पहुँचती है तब अणुओं का भी प्रलय हो जाता है, किन्तु देहभाव आने पर यह सम्पूर्ण सृष्टि संचालित होती है॥ ९१॥ वह भी उन्हीं के अंश से सम्भूत है, साररूपिणी वह है, वह सर्वात्मरूपा है, परमाचितिशक्ति वह कही जाती है॥ ९२॥ वही इस संसार में सब कुछ हैं, भितिस्वरूपा संसार इन्हीं का चित्र है, दर्पण में बिम्ब की तरह यह संसार उन्हीं में भासता है। वे सर्वात्मा हैं, ब्रह्म शब्द से शब्दित हैं॥ ९३॥ वह न स्त्री है, न नपुंसक और न पुरुष; चित् अर्थात् यही उनका स्वरूप है, मन-वचन से अगम्या है। वह वाणी से नहीं कही जा सकती है, वे चिन्मयी हैं॥ ९४॥ वह सप्तदशी हैं, नित्या हैं, परमेश्वरसंश्रया हैं। परमात्मा की कार्यता और कर्तृता ये दोनों कला वही हैं॥ ९५॥ उनकी कार्यता सोलह खण्डों में विभक्त हैं और उनकी कर्तृता एक रूप में हैं। दस इन्द्रियाँ और पाँच भौतिक तत्त्व॥ ९६॥ और एक अन्तःकरण (मन) अर्थात् कुल मिलाकर ये षोडश आत्मिका हुईं और सप्तदशी कला जो नित्य है, वही एकमात्र कर्तृता है॥ ९७॥ वह सोलहों कला ज्ञान के आश्रयीभूत हैं और सबके कारण स्वरूप हैं। उन्हें छोड़कर न कोई शिव है, न कोई ब्रह्मा और न सदाशिव ही॥ ९८॥ ईश्वर, शिव, विष्णु, ब्रह्मा या सम्पूर्ण देवगण, प्राणिजगत् के नर या नारियाँ, जङ्गम या स्थावर॥ ९९॥ प्राणवान् या प्राणहीन कुछ भी इनसे अलग नहीं बचा है। आभूषणों में जैसे सोना और समुद्रों में पानी का महत्त्व है उसी तरह ये हैं॥ १००॥ आकाश में ये शून्य की तरह हैं और स्यन्द में स्पर्श की तरह हैं। जल में रूप की तरह और रस में बहाव की तरह ये हैं॥ १०१॥ पृथ्वी पर गन्ध की तरह ये हैं, सब जगह ये उपस्थित हैं। लोक-उद्धरण हेतु अपनी ही लीला के कारण सर्वत्र ही ये आभासित हैं॥ १०२॥ ये श्रीचक्र नगर की साम्राज्ञी हैं, वहाँ की अधिष्ठात्री देवता हैं। उनके अंग से ही हम सरस्वती, लक्ष्मी और गौरी त्रिदेवियाँ समुद्भूत हैं॥ १०३॥ उनके क्रोध से महाकाल के साथ काली उत्पन्न हुई। उनके वचन से भैरव के साथ तारा

शौर्याज्जाता शूलिनी च मालिनी वाक्समुद्भवा । चण्डिका चण्डशब्देन धूम्रा क्रूरेक्षणेन च ॥
एवं सर्वास्तदङ्गोत्था न हि काचित्ततः परा । तस्या लीलाऽवतारेण ललिताऽऽख्येन सङ्गरे ॥
हतस्तल्लोकवसतिं चिरं प्राप्य विमोक्ष्यसे। इत्युक्तस्तु तया पश्चात् प्रार्थनं कृतवान् पुनः ॥ १०८ ॥
एवञ्चेदम्ब भवतु किञ्चित्त्वां प्रार्थये पुनः । आसुरत्वं भवेद्योनिसम्बन्धेन विना मम ॥ १०९ ॥
पराशक्तेर्मुख्यभक्तशरीरान्मे जनिर्भवेत् । न जातु मामियं प्रज्ञा जहातु जगदम्बिके ॥ ११० ॥
प्रार्थितैवं तथैवाऽस्तु तवेत्युक्तवती रमा । तदहं भक्तमूर्धन्यात् कामाऽङ्गाज्जनिमाप्तवान् ॥
पञ्चोत्तरशताऽण्डानामाधिपत्यं चिरं कृतम् । विषयानुत्तमान् भुक्त्वा नित्यञ्च चिरकालतः ॥
निर्विण्णो विषयेभ्योऽहं काङ्क्षे तस्या वधं स्वकम् । वस्तुं तस्याः समीपेऽहं तल्लोके कृतनिश्चयः ॥
तस्याः पदाम्बुजं ध्यायन्नजस्रं परमेश्वरीम् । प्रतीक्षामि कदाऽऽगत्य वधिष्यति च मामिति ॥
पुत्रपौत्रकलत्राद्यैर्निहतस्तु तया रणे । तल्लोके निवसाम्याशु इति ते त्वरते मनः ॥ ११५ ॥
तद्गत्वाऽऽश्वास्य मे भार्यां बोधयाऽऽश्वविवेकतः । इति श्रुत्वा भण्डवचो नारदो हृष्टमानसः ॥
संश्लाघ्य भण्डदैत्येशं समाश्वास्य च तत्प्रियाम् । जगामाऽभिमतं स्थानं नारदो मुनिसत्तमः ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिता-
माहात्म्ये नारदसंवादो नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ४८९४ ॥



उत्पन्न हुई ॥ १०४ ॥ उनके पराक्रम से दुर्गति विनाश करने वाली दुर्गा उत्पन्न हुई। उनकी क्रूरता से महाशरभ के साथ प्रत्यङ्गिरा उत्पन्न हुई ॥ १०५ ॥ शौर्य से शूलिनी हुई और वाणी से मालिनी। प्रचण्ड शब्द से चण्डिका हुई और कठोर आँख से देखने पर धूम्रा उत्पन्न हुई ॥ १०६ ॥ इस तरह उनके अंश से ही सब-के-सब उत्पन्न हैं। उनसे कोई बड़ा नहीं, उन्हीं के लीलावतार से ललिता के साथ युद्ध में ॥ १०७ ॥ मर कर उनके लोक में बहुत दिनों तक निवास कर मुक्त हो जाओगे। इतना कहने के बाद उसने फिर प्रार्थना की ॥ १०८ ॥ हे अम्बे! ये सब होना है—हों, लेकिन फिर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, अगर असुरत्व मिले तो योनि सम्बन्ध बिना ही मिले ॥ १०९ ॥ उस पराशक्ति के मुख्य भक्त के शरीर से मेरा जन्म हो। हे अम्बे! मेरी यह प्रज्ञा नहीं रहे, इसे विनष्ट कर दो ॥ ११० ॥ इस तरह प्रार्थना सुनकर रमा ने उसे तथास्तु कहा। तब मैंने भक्तशिरोमणि काम के शरीर से जन्म प्राप्त किया ॥ १११ ॥ पाँच सौ ब्रह्माण्ड का स्वामित्व ग्रहण किया, बहुत दिनों तक उत्तमोत्तम भोग का उपभोग किया ॥ ११२ ॥ विषयों से मैं विरक्त हो चुका हूँ, उनके हाथ से वध की कामना करता हूँ। उनके लोक में उनके समीप रहने का मेरा दृढ़ निश्चय है ॥ ११३ ॥ उस परमेश्वरी के चरणकमलों का लगातार ध्यान करते हुए प्रतीक्षा करता हूँ कि वह ललिता कब आकर मेरा वध करेंगी ॥ ११४ ॥ पुत्र, पौत्र और पत्नी आदि सहित युद्ध में उनके हाथ से कब मारा जाऊँगा? उनके लोक में कब मेरा निवास होगा? इसके लिए मेरा जी तड़पता है ॥ ११५ ॥ इसलिए हे मुनिवर! अपने विवेक से आप मेरी पत्नियों के पास जाकर उन्हें आश्वस्त करें। भण्ड की यह बात सुनकर नारद अत्यन्त सन्तुष्ट मन से ॥ ११६ ॥ दैत्येश भण्ड की सराहना कर उसकी पत्नियों को आश्वासन देकर मुनिश्रेष्ठ नारद ने अपने अभिमत स्थान की ओर प्रस्थान किया ॥ ११७ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत नारद-संवाद नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४८९४ ॥



अथ षष्टितमोऽध्यायः

इत्युदीरितमाकर्ण्य नारदो हारितायनम्। प्रसन्नः प्राह संहृष्टः स्वाऽनुभूतनिरूपणात्॥ १॥
हारितायन साधूक्तं त्वयैतच्चिरकालजम्। मानसं बाह्यमपि च ममाऽऽसीद्यत् पुरातनम्॥ २॥
तद्यथातथनिर्देशात् स्मृतं मे प्रोक्तवत्क्रमात्। चिरकालेनाऽन्तरितमप्यद्येव तवोक्तितः॥ ३॥
भात्यन्तःकरणे सर्वं धन्यस्त्वमसि भूतले। यत्पराकृपया सर्वं विदितं बाह्यमान्तरम्॥ ४॥
तत्त्वां पृच्छामि मे ब्रूहि संशयोऽन्तश्चिरात् स्थितः। अतीतमान्तरं बाह्यं कथं ते विदितं ह्यभूत्॥
अदृष्टमश्रुतं वाऽपि कथं जानासि सुव्रत। श्रुत्वेत्थं नारदवचः प्रहस्य हारितायनः॥ ६॥
देवर्षे श्रृणु वक्ष्यामि बह्वल्पमिदमीरितम्। अत्रोपपत्तिरपरे खण्डे सम्यग्भविष्यति॥ ७॥
यथाऽनुभूतं स्मरति जन एवमहं ननु। वरेण ब्रह्मणः सर्वबाह्यं वाऽप्यान्तरं तथा॥ ८॥
त्वत्प्रसादेन जिता सा मात्रेणैवाऽनुभूतवत्। संस्मराम्यविदग्धं श्रीदेव्याः सुप्रसादतः॥ ९॥
ततो दत्तगुरुः प्राह रामायैकाग्रचेतसे। श्रृणु भार्गव तत्पश्चाद्धयाऽऽस्यः कुम्भजन्मने॥ १०॥
प्राह युद्धकथां भण्डाऽसुरदेव्योर्महाद्भुताम्। श्रृणु कुम्भोद्भव मुने होमाऽग्निजनितां शिवाम्॥
ललितां सर्वलोकैकसुन्दरीं परमेश्वरीम्। दृष्ट्वा शक्रमुखा देवाश्चिन्तयामासुरान्तरे॥ १२॥
नन्वियं तरुणी सर्वलोकसौन्दर्यमन्दिरा। लतेवाऽऽलम्बरहिता भर्तृहीना न शोभते॥ १३॥
देवचिन्तां विदित्वैवं ब्रह्माद्या गुणमूर्तयः। दध्युः कामेश्वरं यावत्तावत्सोऽपि विनिर्गतः॥ १४॥

✻ विमला ✻

यह कथन सुनकर नारद ने हारितायन से प्रसन्न होकर सन्तुष्ट मन से अपनी अनुभूति का निरूपण किया॥ १॥ हारितायन! तुमने उचित ही कहा। इस चिरकालिक कथा से मेरा भीतर-बाहर प्रसन्न हो उठा॥ २॥ वह यथातथ (जैसे के वैसे) निर्देश से वे कथाएँ क्रमशः मुझे स्मृत हैं, बहुत दिन हो जाने के बावजूद तुम्हारे कथन से उसकी स्मृति याद हो आई है॥ ३॥ तुम इस धरती पर धन्य हो जिसके हृदय में आज भी यह सब प्रकाशित है। यह उस पराशक्ति की परम कृपा है जिससे भीतर-बाहर सब कुछ विदित है॥ ४॥ वह मैं तुमसे पूछता हूँ, जो संशय मेरे हृदय में बहुत दिनों से है। भीतर-बाहर की सीमा को छोड़कर तुम सब कुछ कैसे जानते हो?॥ ५॥ हे सुव्रत! जिसे तुमने न कभी देखा और न सुना—उसे कैसे जानते हो? नारद की यह बात सुनकर हँसते हुए हारितायन ने कहा॥ ६॥ हे देवर्षि! सुनिए, आपने जो पूछा वह बहुत छोटी बात है, इसे मैं कहूँगा। इसकी उपपत्ति अगले खण्ड में ठीक ढंग से होगी॥ ७॥ जैसे मनुष्य अपनी अनुभूत वस्तु को जानता है, उसी तरह ब्रह्मा के वरदान से भीतर हो या बाहर—मैं सब कुछ॥ ८॥ तुम्हारी कृपा से ही स्मरण मात्र से अनुभूति की तरह श्रीदेवी की कृपा से सब कुछ मैं याद कर लेता हूँ॥ ९॥ उसके बाद गुरु दत्तात्रेय ने एकाग्रचित राम से कहा—हे परशुराम! सुनो। हयग्रीव ने कुम्भज ऋषि से॥ १०॥ भण्डासुर और देवी की महा अद्भुत युद्धकथा कही। हे कुम्भज ऋषि! तुम सुनो, होमकुण्ड से परम शिवा उत्पन्न हुई॥ ११॥ वह परमेश्वरी ललिता त्रिलोकसुन्दरी थी। उन्हें देखकर इन्द्रादि प्रमुख देवगण सोचने लगे॥ १२॥ यह युवती सर्वलोक-सुन्दरियों के बीच श्रेष्ठतम सुन्दर है, किन्तु आलम्ब रहित लता की तरह पतिविहीन होने के कारण शोभती नहीं है॥ १३॥ देवताओं की ऐसी चिन्ता जानकर ब्रह्मादि गुणमूर्ति देवगण जब तक

तनोस्तस्या महादेव्याः समानाऽऽकारभूषणः । दृष्ट्वाऽनुरूपं देव्यास्ते पतिरस्या वरो मतः ॥
भूयाद्विवाहः अनयोरित्याशंसनतत्पराः । तद्विज्ञाय विधिमुखाः प्रार्थ्य देवीं परात्पराम् ॥ १६ ॥
महोत्सवविधानेन विवाहं समकल्पयन् । अथ देवैः प्रार्थिता सा ललिता परमेश्वरी ॥ १७ ॥
वधाय भण्डदैत्यस्य परिवारानकल्पयत् । समस्ताऽऽवरणौघांश्च स्मरणात् समवासृजत् ॥
तदन्तरे तु देवर्षिः प्राप्तो देव्याः पदाऽन्तिकम् । प्रणम्य दण्डवद्देवीं स्तुत्वा विविधसंस्तवैः ॥ १९ ॥
कृताञ्जलिर्बभाषे तां विनीतो नतकन्धरः । देव्यहं समनुप्राप्तो भण्डदैत्यस्य सन्निधेः ॥ २० ॥
आगच्छति महासेनां विकर्षन् बलवत्तरः । तदहं प्रेषितस्तेन त्वामाहाऽसुरभूपतिः ॥ २१ ॥
अबला त्वं कस्य बलान्मया योद्धुं हि वाञ्छसि । अज्ञात्वा मद्बलं मुग्धा विनाशं मा व्रजाऽधुना ॥
भव मत्पार्श्वगा शीघ्रं त्यज ब्रह्ममुखान् सुरान् । भूयः पराजितान्मत्तो मायामात्रसमाश्रितान् ॥
मया विरुध्य कोऽप्यत्र योषिद्वा पुरुषोऽपि वा । क्वेयात् सुखं मृत्युमुखप्रविष्टमिव सर्वथा ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा युद्धसन्नाहं परमं सम्यगादिशत् । मन्येऽहं त्वं जितप्राया तेन धीरेण साम्प्रतम् ॥ २५ ॥
पृच्छामि देवि त्वां किञ्चिद्रहस्याज्ञापयाऽऽशु माम् । निशम्य नारदोक्तिं तां मन्त्रिणीं समवेक्षत ॥
विदित्वा देव्यभिप्रायमिङ्गितज्ञाऽथ मन्त्रिणी । करेणाऽऽदाय देवर्षिं रहसि प्राविशत् परा ॥
अथ तत्र समासीना प्राह तं मन्त्रनायिका । पृच्छ नारद प्रष्टव्यं यत्ते मनसि विद्यते ॥ २८ ॥
जानामि त्वां परादेव्याः पादभक्तिपरायणम् । नूनं नाऽविदितं तेऽस्ति लोके श्रीपादसंश्रयात् ॥
तथाऽपि पृच्छ तेऽभीष्टं छेद्मि संशयमाहितम् । आज्ञप्त एवं मन्त्रिण्या प्रणम्य सुरतापसः ॥ ३० ॥
प्राह बद्धाजलिपुटः प्रश्नशब्दान् सुपेशलान् । देवि भण्डासुरो दृष्टो मया सम्यक् परीक्षितः ॥

कामेश्वर महादेव का ध्यान करते, तब तक वे भी कुण्ड से बाहर निकल आये ॥ १४ ॥ देवी की देह के अनुरूप समान आकृति और आभूषण देखकर देवी के अनुरूप यह वर होगा, ऐसा माने ॥ १५ ॥ इन दोनों का विवाह होगा, ऐसा सोचते हुए विधि-प्रमुख देवगणों ने उस महादेवी की प्रार्थना कर ॥ १६ ॥ महोत्सव-विधान से उनका विवाह कराते हुए परमेश्वरी ललिता से प्रार्थना की ॥ १७ ॥ देवताओं की प्रार्थना सुनकर भण्ड दैत्य का वध करने के लिए मात्र स्मरण से देवी ने सम्पूर्ण आवरणों से सुसज्जित अपने सदृश अपने परिवार का सृजन कर लिया ॥ १८ ॥ इसी बीच देवर्षि ने देवी के चरणों में उपस्थित होकर दण्डवत् उन्हें प्रणाम कर विविध स्तोत्रों से स्तुति कर ॥ १९ ॥ विनीत भाव से नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर उनसे कहा—हे देवि! मैं भण्ड दैत्य के पास से सीधे यहाँ आ रहा हूँ ॥ २० ॥ विशाल सेना के साथ वह बलवान् खिंचते हुए इधर आ रहा है, इसीलिए उस असुरभूपति ने तुम्हें आगाह करने के लिए भेजा है ॥ २१ ॥ तुम अबला हो, किसके बल पर तुम युद्ध करना चाहती हो? मेरे बल को बिना जाने अरी मूर्खे! अपना विनाश मत करो ॥ २२ ॥ ब्रह्मादि देवताओं को छोड़कर शीघ्र ही मेरी अंकशायिनी बन जा। नहीं तो मुझसे पराजित होकर माया मात्र के आश्रय से ॥ २३ ॥ मेरे विरुद्ध कौन पुरुष या औरत है, जो मृत्युमुख में प्रवेश कर सर्वथा सुख की इच्छा करता हो? ॥ २४ ॥ यह कहकर युद्ध की उसने घोषणा कर दी है। मेरी मान्यता है, वह धीर पुरुष सम्प्रति तुम्हें लगभग जीत चुका है ॥ २५ ॥ हे देवि! मैं तुमसे पूछता हूँ, यदि इसमें कोई रहस्य है तो शीघ्र मुझे बतलाओ। नारद की यह बात सुनकर उस महादेवी ने मन्त्रिणी की ओर देखा ॥ २६ ॥ मन्त्रिणी ने देवी का इशारा समझ कर हाथ से नारद को पकड़ कर एकान्त स्थान में चली गई ॥ २७ ॥ वहाँ बैठकर उस मन्त्रनायिका ने नारद से कहा—अब पूछो नारद! तुम्हारे मन में क्या प्रष्टव्य है? ॥ २८ ॥ मैं तुम्हें जानती हूँ, तुम उस परादेवी के चरणकमलों में भक्तिपरायण हो; श्रीचरणों का सहारा लेने के कारण संसार में तुम्हारे लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है ॥ २९ ॥ फिर भी तुम जो पूछना चाहो मुझसे पूछ लो, मैं तुम्हारा सन्देह

नूनं स सर्वभक्तानामस्माकं शेखरायितः । कथं युद्धे पराभूयात् परापादैकसंश्रयः ।। ३२ ।।
अथाऽपि तेन सम्प्रोक्तमहं देव्या हतो युधि। चिरं निवस्य श्रीलोके ततो गच्छामि तत्पदम् ।। ३३ ।।
तल्लोकबाधकः कस्माद्धीनाऽऽचारोऽपि मुच्यते। वयं कस्माल्लोकगतिं विन्दामस्तद्ब्रवीहि मे ।।
पृष्टैनं श्यामला राज्ञी नारदं प्रत्युवाच ह । शृणु मे नारद वचो रहस्यमपि साम्प्रतम् ।। ३५ ।।
श्रीपादसंश्रयः क्वाऽपि हीयते न कदाचन। तस्योत्तमपदप्राप्तिः सर्वथा स्यान्न चाऽन्यथा ।। ३६ ।।
यथा बालस्याऽऽमयिनो माता पथ्यमपीच्छितम् । न यच्छति तथा पथ्यमौषधं ह्यनपेक्षितम् ।।
ददाति बलतस्त्वेवं तत्प्रपोषणतत्परा । तं भक्तशेखरं हत्वा दुष्कृतं विततं कृतम् ।। ३८ ।।
दर्शनाऽऽलापशस्त्राद्यैर्विनाऽस्य बलवत्तरम् । स्वपदं प्रापयत्याशु तथा शृणु ब्रवीम्यहम् ।। ३९ ।।
यस्तु यं प्रार्थयत्यर्थमेकान्तेन स्वचेतसा । तस्मै तत्त्रिपुरा शीघ्रं प्रयच्छति न संशयः ।। ४० ।।
प्रतिकूलमभीष्टस्य यावन्नो नाशमृच्छति । तावदेव तस्य चिरं ततः स्वेष्टमवाप्नुयात् ।। ४१ ।।
शृणु त्वं नित्यमुक्तोऽसि न ते मुक्तिः समीहिता। अज्ञस्य तत्समीहा स्यात् ज्ञस्य वै तत्कुतो भवेत् ।।
बद्धो हि मुक्तिं वाञ्छेत यथा भुक्तिं बुभुक्षितः। तृप्तः कथं भुक्तिमिच्छेत्तवाऽन्यो भोजयेत् कथम् ।।
अप्राप्तस्य प्राप्तिरिष्टा का या प्राप्तस्य सम्भवेत्। आकाशस्येव पूर्णस्य किं प्राप्तिः स्यात् कथं वद ।।
तस्मादज्ञस्य प्राप्तव्यो मुक्तिस्ते ज्ञस्य सा कथम् । श्रुत्वेत्थं नारदो मन्त्रिणीप्रोक्तं हृष्टमानसः ।।
प्रणम्य ताञ्च त्रिपुरां जीवन्मुक्तो जगाम ह । अथ सा त्रिपुरा देवी भण्डाऽसुरवधं प्रति ।। ४६ ।।

दूर कर दूँगी। मन्त्रिणी से ऐसी आज्ञा पाकर नारद ने उन्हें प्रणाम कर ।। ३० ।। हाथ जोड़कर अत्यन्त सुन्दर शब्दों में नारद ने प्रश्न किया। हे देवि! मैंने अच्छी तरह परीक्षा लेकर भण्डासुर को देखा है ।। ३१ ।। निश्चय ही भगवती त्रिपुरा के भक्तों में वह चोटी का भक्त है, फिर उस भगवती का जिसे सहारा मिला हो वह युद्ध में कैसे पराजित होगा?।। ३२ ।। फिर भी उसने मुझसे कहा—युद्ध में देवी मुझे मारेगी, बहुत दिनों तक श्रीलोक में निवास करने के बाद मैं वहाँ पहुँचूँगा ।। ३३ ।। उसका आचरण महाभ्रष्ट है जो उस लोक का बाधक है, फिर भी वह वहाँ पहुँचने की बात करता है और मुझे लोकगति कैसे मिलेगी? यह बतलाओ ।। ३४ ।। इस तरह पूछने पर उस श्यामला राज्ञी ने नारद से कहा—हे नारद! यह रहस्यमय वार्ता मुझसे सुनो ।। ३५ ।। भगवती त्रिपुरा के चरणों का सहारा जिसे है, वह कहीं किसी से कभी नहीं हारता है। उसे उत्तम पद की प्राप्ति निश्चित होती है, यह कभी व्यर्थ नहीं होता ।। ३६ ।। जैसे वीर बच्चे को माँ पथ्य की इच्छा रखने पर भी पथ्य नहीं देती, उसी तरह अनपेक्षित औषधि भी पथ्य में नहीं देती है ।। ३७ ।। बच्चे के पोषण में तत्पर माँ जैसे बलपूर्वक पथ्य देती है उसी तरह इस भक्तशेखर को मारकर उसके पापों को विनष्ट करती है ।। ३८ ।। दर्शन, बातचीत या शस्त्रादि के बिना ही इस बलवत्तर असुरेन्द्र को शीघ्र ही अपना पद प्राप्त करायेगी। सुनो, मैं बतलाती हूँ ।। ३९ ।। जो व्यक्ति एकान्त भाव से अपने हृदय से त्रिपुरा से जिस वस्तु की प्रार्थना करता है, उसे त्रिपुरा देवी शीघ्र ही वह वस्तु देती हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।। ४० ।। प्रतिकूल अभीष्ट वाले जब तक अपने नाश की इच्छा नहीं करते तब तक ही वे अपना अभीष्ट प्राप्त करते रहते हैं ।। ४१ ।। सुनो नारद! तुम तो नित्य मुक्त हो, तुम्हें मुक्ति क्यों चाहिए? अज्ञानियों को मुक्ति की इच्छा होती है, ज्ञाता को इसकी इच्छा कैसी?।। ४२ ।। बद्ध व्यक्ति मुक्ति चाहते हैं, भूखा ही भोजन चाहता है, जिसका पेट भरा है वह भोजन क्यों चाहेगा? दूसरा उसे कैसे खिलायेगा?।। ४३ ।। अप्राप्त को प्राप्ति की इच्छा कैसी? जो प्राप्ति के लिए सम्भव है, आकाश की तरह पूर्ण को प्राप्ति क्या होगी? मुझे बतलाओ ।। ४४ ।। इसलिए जो अज्ञानी के लिए मुक्ति प्राप्तव्य है, वही मुक्ति तुम्हारे जैसे ज्ञानी के लिए कैसी? मन्त्रिणी की इन बातों को सुनकर नारद प्रसन्न मन से ।। ४५ ।। उस त्रिपुरा को प्रणाम कर जीवन-मुक्त होकर

प्रार्थिता विधिविष्णवाद्यैर्निर्ययौ शक्तिसेनया। चक्रराजसमाकाररथे पर्वनवाऽऽत्मके॥ ४७॥
ऊर्ध्वोर्ध्वभूमिकाऽऽकारसदृशे समलङ्कृते। ऊर्ध्वभूमौ स्थिता युद्धसम्भारौघसुसम्भृता॥ ४८॥
अभेद्यकवचदंशिताऽतिविभीषणी। शस्त्राऽस्त्रनिचयोपेता रोषाऽरुणितलोचना॥ ४९॥
धनुर्वेदो मूर्तिधरः स्थितः पार्श्वे कृताञ्जलिः। शस्त्राण्यस्त्राणि च तथा मूर्तिमन्ति स्थितानि वै॥
अधोऽधः क्रमतः सर्वास्तथाऽऽवरणशक्तयः। देशिताश्चित्रकवचैः शस्त्राऽऽस्त्रैः सुपरिष्कृताः॥
गुर्वोघा अपि सन्नद्धाः संस्थिता युद्धकाङ्क्षिणः। तद्दक्षिणे तु मन्त्रेशी सप्तपर्वविराजिते॥ ५२॥
संस्थिता सपरीवारा सन्नद्धा युद्धकर्मणि। शुकादिश्यामलावर्गैः सेव्यमाना विनिर्ययौ॥ ५३॥
दिव्यपानाऽऽमोदमदघूर्णनेत्राऽम्बुजद्वयी। तथाविधाऽऽसङ्ख्यकोटिमातङ्गतनयाऽऽवृता॥
गानैर्वाद्यैर्नर्तनैश्च सोपहासपटूक्तिभिः। मन्त्रिणी तोषयन्त्यस्ता विलासैर्हास्यमिश्रितैः॥ ५५॥
साऽपि श्रीललिता राज्ञी मन्त्रिणी मन्त्रकोविदा। तस्या मनोऽनुकूलेषु मन्त्रेषु नियतं स्थिता॥
विशेषतो गीतवाद्यनर्मक्रीडासमुत्सुका। अथ तद्वामतो दण्डसाम्राज्ञी शूकराऽऽनना॥ ५७॥
किरिचक्रे पञ्चपर्वयुते सर्वोर्ध्वतः स्थिता। परीवृता ह्यनेकाभिर्जम्भिन्यादिस्वशक्तिभिः॥ ५८॥
क्रोधमूर्तिः क्रूरतरा क्षमापनपरप्रिया। अपराधपरान् सर्वान् दण्डयन्ती सदा स्थिता॥ ५९॥
महामहिषसिंहाभ्यां वाहनाभ्यां स्वपार्श्वयोः। स्थिताभ्यां सीरमुसलमुखशस्त्रैश्च शोभिनीम्॥
वटुकैर्योगिनीभिश्च कोटिभिः सा परीवृता। तथा श्रीललितादेश्या बाला त्रिपुरसुन्दरी॥ ६१॥
कुमारी लघुचक्राख्यस्पन्दने समवस्थिता। निजावृत्तिमहाशक्तिगणैः परिसमावृता॥ ६२॥
तस्या दक्षिणपार्श्वे तु प्राप्ता सम्पदधीश्वरी। रणकोलाहलाऽऽख्याने त्रिधा भिन्नेऽतिभीषणे॥

चले गये। वह त्रिपुरा देवी भण्डासुर के वध के लिए॥ ४६॥ ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति देवताओं की प्रार्थना करने पर शक्तिसेना के साथ पर्वनवात्मक चक्रराज की तरह रथ पर सवार॥ ४७॥ अत्यन्त उच्च भूमि के सदृश अलंकारों से अलंकृत और बहुत ऊँचाई पर युद्ध के लिए अवस्थित हुई॥ ४८॥ अभेद्य कवच धारण कर अति डरावनी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित क्रोध से आरक्त आँखों वाली॥ ४९॥ भगवती के बगल में हाथ जोड़कर धनुर्वेद मूर्त रूप में अवस्थित थे। युद्ध में प्रयुक्त होने वाले सारे आयुध जीवन्त और मूर्तिमान् हो उठे थे॥ ५०॥ नीचे-नीचे के क्रम से सारी आवरण शक्तियाँ आदेशित चित्र कवच एवं अस्त्र-शस्त्रों से सुपरिष्कृत एवं सुसज्जित थीं॥ ५१॥ गम्भीर समूह वाली ये शक्तियाँ युद्ध की आकांक्षा से उपस्थित थीं और इस सैन्य-समूह के दक्षिण में सप्तपर्व-विराजित मन्त्रेशी थी॥ ५२॥ अपने परिवार के साथ युद्ध की कामना से उपस्थित थी। शुकादि, श्यामला वर्ग इनकी परिचर्या करते हुए बाहर निकलीं॥ ५३॥ दिव्य सुरा पीकर प्रसन्नता के मद में आँखों को नचाती उसी तरह असंख्य करोड़ मातंगी सखियाँ उन्हें घेर रखी थीं॥ ५४॥ नाच-गान और वाद्य तथा उपहास करने में चतुर ये शक्तियाँ अपने विलास से मन्त्रिणी को घेर रखी थीं॥ ५५॥ वह ललिता रानी भी मन्त्रणा देने में चतुर मन्त्रिणी के मनोनुकूल मन्त्रों में नियत रूप से अवस्थित थी॥ ५६॥ खासकर दण्डसाम्राज्ञी शूकर मुख वाली उनके बायें गीत-वाद्य और नर्मक्रीड़ा के लिए समुत्सुक थीं॥ ५७॥ किरिचक्र में पंच पर्व युक्त जो सबसे ऊपर में स्थित था, वहाँ अनेक जम्भिनी शक्तियों से घिरी॥ ५८॥ क्रोध की मूर्ति अत्यन्त क्रूरतर क्षमापन में परप्रिया अपने सभी अपराधियों को दण्ड देने में सदा अवस्थित थी॥ ५९॥ महामहिष और सिंहादि वाहन उनके अगल-बगल थे, हल-मूसल आदि प्रमुख शस्त्रों से सुशोभित थीं॥ ६०॥ करोड़ों बटुकों और योगिनियों से घिरी वह बाला त्रिपुरसुन्दरी श्रीललिता नाम वाली॥ ६१॥ कुमारी लघुचक्र नामक रथ पर सवार होकर अपनी महाशक्तियों से घिरी थी॥ ६२॥ उसके दक्षिण की ओर सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी तैयार खड़ी थी। रण के कोलाहल से व्याप्त तीन खण्डों में यह विभक्त थी॥ ६३॥ विन्ध्याचल

वारणेन्द्रे विन्ध्यगिरिमहाशिखरसन्निभे । निसर्गमत्ते संरूढा महाङ्कुशविधारिणी ॥ ६४ ॥
तामन्वसंख्या मत्तेभाः कोटिकोटयतिसङ्ख्यकाः । विन्ध्योद्भवा मलयजाः प्राग्ज्योतिषसमुद्भवाः ॥
सुशिक्षिता युद्धगतिपरिज्ञाः षष्टिहायनाः । प्रचेलुः सम्पदीशित्रीपरीवारसुशक्तिभिः ॥ ६६ ॥
शस्त्राऽस्त्रसमरज्ञाभिरधिरूढाः सुवेगिनः । तस्याः श्रिता वामभागमश्वारूढा महेश्वरी ॥ ६७ ॥
अपराजितसंज्ञानमश्वरत्नं महोन्नतम् । गन्धर्वजातिजं वायुजवनं समधिष्ठिता ॥ ६८ ॥
उच्चैःश्रवपरीभाविसर्वलक्षणमण्डितः । शुक्त्यर्धशुक्तिमणिभिर्देवस्वस्तिकपद्मकैः ॥ ६९ ॥
गण्डिकादिशुभैश्चिह्नैश्चिह्नितो हेमभासुरः । सूक्ष्माऽवधानतोऽप्यस्य न विदुः खुरसङ्गतिम् ॥
अभिज्ञः स्वामिचित्तस्य परागमविधानवित् । तामन्वश्वा असंख्येयाः सिन्धुटङ्कणसम्भवाः ॥
आरदाः पार्वतीयाश्च बार्बराश्च सुतेजनाः । शोणाः श्यामाः सिताः पीताः कपिलाः पाटलास्तथा ॥
हरिता धूम्रवर्णाश्च कल्माषा नीललोहिताः । विचित्राश्चारुसर्वाङ्गा घनकेसरमण्डनाः ॥ ७३ ॥
विचित्रशिक्षागतयो नृत्यज्ञा लयसङ्गताः । विचित्रशस्त्राऽस्त्रधरशक्तिभिः समधिष्ठिताः ॥
पुरः पतन्तः परितस्तरङ्गा इव वारिधेः । दारयन्तोऽवनिमिव खुरक्षेपैर्विनिर्ययुः ॥ ७५ ॥
खुरविक्षेपसम्भूतैश्चटच्चटरवैर्युतैः । ह्रेषितस्वनसङ्घातैर्गजचीत्कारमिश्रितैः ॥ ७६ ॥
शक्तीनां सिंहनादैश्च वीराऽऽस्फोटमहास्वनैः । जयभेरीरवैर्मृण्डुमृदङ्गझल्लरीरवैः ॥ ७७ ॥
गोमुखाऽऽनकनिःसाणतालकाहलनिःस्वनैः । मिश्रितः श्रीचक्रराजरथनेमिगणोद्भवः ॥ ७८ ॥
महाध्वनिः सर्वदिशं पूरयन्निव सम्बभौ । श्रुत्वा श्रीललितादेव्या जैत्रयात्रामहास्वनम् ॥ ७९ ॥
दैत्याः साध्वसमत्यन्तं मृत्योरिव समाययुः । भण्डदैत्यः स्वात्मवधं चिराभिलषितं तया ॥ ८० ॥

के शिर पर सदृश समुन्नत विशालकाय स्वभाव से मदोन्मत्त हाथी पर सवार महांकुशधारिणी वह थी ॥ ६४ ॥ उनके पीछे-पीछे करोड़ों-करोड़ संख्या में विन्ध्याचल में उत्पन्न प्राग्ज्योतिष-समुद्भव मलयज उन्मत्त हाथी ॥ ६५ ॥ सुशिक्षित, युद्धगति से परिचित, मदस्रावी साठ साल की आयु के हाथियों पर सवार सम्पदीश्वरी अपनी असंख्य शक्तियों से घिरी चली ॥ ६६ ॥ उस महेश्वरी की बायीं ओर शस्त्र-अस्त्र और समरभूमि से परिचित अत्यन्त वेगवान् घोड़े पर सवार होकर उनके आश्रित शक्तियाँ चलीं ॥ ६७ ॥ गन्धर्वजातिज अति विशालकाय, पवन तुल्य गति वाले अपराजित नामक घोड़े पर वह सवार थी ॥ ६८ ॥ उच्चैःश्रवा के वंशधर सभी शुभ लक्षणों से सुशोभित, शुक्ति, अर्थशुक्ति और मणियों तथा देवता, स्वस्तिक और पद्मचिह्नों से सुशोभित थे ॥ ६९ ॥ गण्डिकादि शुभ चिह्नों से सुशोभित, सोने की तरह चमकते, अतिसूक्ष्म सतर्कता से भी अधिक इसके खुरों की गति नहीं जानी जा सकती थी ॥ ७० ॥ अपने स्वामी की मानसिकता से परिचित परागम-विधान से परिचित असंख्य सिन्धुतट में उत्पन्न घोड़े उनके पीछे थे ॥ ७१ ॥ कबरे, पहाड़ी, बार्बर, सुतेजस्वी, लाल, काले, सफेद, पीले, कपिल और पाटल वर्ण के ॥ ७२ ॥ हरिता, धूम्रवर्णा, कल्माषा, नीललोहिता, विचित्रा, सुन्दर सर्वाङ्ग वाली, सघन केसर लेप किये ॥ ७३ ॥ विभिन्न शिक्षा, गति, नृत्य और लय को जानने वाली, विचित्र शस्त्र और अस्त्र को धारण करने वाली शक्तियों से अधिष्ठिता ॥ ७४ ॥ जैसे समुद्र चारों ओर से समेट कर जल के तरङ्गों को आगे की ओर फेंकता है, उसी तरह अपने टापों से धरती को चीरते हुए घोड़े चल रहे थे ॥ ७५ ॥ घोड़ों की टापों से निकली खटखटाहट, उनकी हिनहिनाहट एवं हाथियों की चींगघाड़ से वातावरण व्याकुल हो उठा ॥ ७६ ॥ शक्तियों के सिंहनाद से, वीरों के ताल ठोकने की आवाज से, जय-जयकार की ध्वनि से; भेरी, तुरही और मृदङ्ग झाल की आवाज से ॥ ७७ ॥ गोमुख अर्थात् तुरही, नगाड़े, ढोल, ढाक आदि के तुमुल नाद से, श्रीचक्रराज रथ की धुरी से निकली घर-घर की मिश्रित आवाजों से ॥ ७८ ॥ चारों दिशाएँ गूंज रही थीं। श्रीललितादेवी की विजय-यात्रा सुनकर ॥ ७९ ॥ दैत्यों ने अत्यधिक डर कर देवी की शक्तिसेना को

श्रुत्वा तं निनदं ह्यारादध्यवस्यत सर्वथा। अथ दैत्यान् समालोक्य त्रस्तान् शुष्यन्मुखाम्बुजान्॥
कृपया परयाऽऽविष्ट इदं स्वान्तरचिन्तयत्। नूनं हीमे मम कृते विनश्यन्ति सबान्धवाः॥ ८२॥
लोके मृत्योर्नातिरिक्तं भयमस्ति कदाचन। मत्कृते निहतानेतान् शोचिष्यन्ति प्रियात्मजाः॥
भगिन्यो मातृमुख्याश्च हन्त वैशसमीदृशम्। तदहं पुरतो गत्वा युद्ध्वा श्रीललिताम्बया॥ ८४॥
तच्छस्त्राऽनलपूतात्मा प्रपद्येऽभिमतां गतिम्। शोचयामि कुतस्त्वेता वियोज्य स्वस्वबान्धवैः॥
तदलं घोरनिधनारोदनेन कृतेन मे। शक्तोऽरक्षन् स्वीयजनं शोकस्थानात् कथञ्चन॥ ८६॥
बन्धुघ्नः स तु विज्ञेयः पुरुषादसमो जनैः। अथैवं मयि निर्गत्य प्राप्ते देव्या निजाऽत्ययम्॥ ८७॥
बन्धूनां शोक एवाऽस्यान्मया विरहिताऽऽत्मनाम्। कथं मयि हते देवत्रासना मम बान्धवाः॥
महर्द्धिशोभना देवैः परीभूता हृतर्द्धयः। भविष्यन्ति शुचा हीना न चैतदपि सम्मतम्॥ ८९॥
प्राप्य सर्वोच्छ्रयं कश्चिदभिभूतः कथं भवेत्। नूनं मयि हते देव्या भ्रातृपुत्रादिबान्धवाः॥ ९०॥
शूरास्तु तत्क्षणे एव वीर्यक्रोधसमुच्छ्रिताः। युद्धाऽग्नौ स्वात्मशलभान् भस्मीकुर्युर्न संशयः॥
अथ ये कातराः स्वल्पवीर्यास्तेऽवनिरन्ध्रगाः। देवा इव दैन्यभाजो वियुक्ताः स्त्रीसुतादिभिः॥
शोचयन्तस्तथाऽन्योन्यं भवेयुर्वै मृताऽधिकाः। आरोदनन्तु बन्धूनां नास्तीति न कथञ्चन॥ ९३॥
तद्वृथा किं चिन्तनेन मन्ये नाऽन्यदितो वरम्। आदौ देव्या हतेष्वेषु ततोऽहमभवं हतः॥ ९४॥
अयं श्रेयान् हि मे भाति सन्त्यत्र बहुशो गुणाः। पावनं देवताशस्त्रैः प्राप्तिर्लोकोत्तमस्य च॥ ९५॥

मौत की तरह आते देखा। भण्ड दैत्य ने चिर-प्रतीक्षित इसे अपना आत्मवध माना॥ ८०॥ उस निनाद को सुनकर अपने प्रयास को निकटस्थ माना। डरे, भयभीत, मुझयि दैत्यों के मुखकमल को देखकर॥ ८१॥ मन-ही-मन उस परादेवी से आविष्ट ये सबन्धु मेरे लिए ही विनष्ट होंगे॥ ८२॥ संसार में मौत से बड़ा कोई भय नहीं होता। मेरे लिए इन्हें मरे हुए देखकर इनकी पत्नियाँ और पुत्र शोचनीय स्थिति में आ जायेंगे॥ ८३॥ आह! इनकी बहनें और माताएँ इनकी ऐसी विनाशलीलाएँ देखेंगीं। अतः इनसे आगे बढ़कर श्रीललिताम्बा से युद्ध कर॥ ८४॥ उनके शस्त्ररूपी अग्नि में पवित्रात्मा होकर अपनी इच्छित गति प्राप्त कर लूँगा। पर सोचता हूँ, किसलिए इन्हें अपने-अपने बान्धवों से वियुक्त कर॥ ८५॥ मेरे लिए किये गये ये घोर निधन या रोदन बेकार हैं। जब मैं किसी भी स्थिति में अपने लोगों को शोक से मुक्त करने में समर्थ नहीं हूँ॥ ८६॥ पुरुषार्थहीन ऐसे लोग बन्धुघ्न के रूप में जाने जाते हैं। इस तरह मुझे अब यहाँ से निकल कर देवी के हाथों अपना विनाश प्राप्त करना चाहिए॥ ८७॥ मेरी मृत्यु से मेरे बन्धुओं को शोक ही तो मिलेगा। मेरे मारे जाने पर देवताओं से उन्हें कैसे त्रास मिलेगा?॥ ८८॥ देवता अपनी महिमा से शोभित होंगे, दैत्य श्रीहत होंगे, शुचिविहीन होंगे; यह भी उचित होगा॥ ८९॥ सर्वोच्चता को प्राप्त कर किसी का पराभव कैसे हो सकता है? देवी से मेरे मारे जाने पर मेरे भाई, पुत्र या बान्धव कैसे आविर्भूत होंगे?॥ ९०॥ इन राक्षसों में जो शूरवीर होंगे, वे अपने पराक्रम और क्रोध से समुन्नत बने युद्ध रूपी आग में उसी क्षण कीड़े-मकोड़े की तरह जल मरेंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ९१॥ इनमें जो कातर हैं, कमजोर हैं, वे पाताल की ओर भागेंगे, स्त्री-पुत्र से वियुक्त होकर देवताओं की तरह दयनीय स्थिति को प्राप्त करेंगे॥ ९२॥ अधिकतर तो मर ही जायेंगे, जो बचे-खुचे रह जायेंगे वे एक-दूसरे पर शोक-प्रकट करेंगें; हमारे बन्धुओं की मौत पर कहीं कोई रोने वाला भी नहीं रह जायेगा॥ ९३॥ इस तरह का सोचना ही बेकार है, इससे अच्छा और क्या हो सकता है? देवी के हाथों पहले ये लोग मारे जायेंगे, फिर बाद में मैं मारा जाऊँगा॥ ९४॥ यह श्रेय सबसे अच्छा लगता है, इसमें अनेक तरह के शुभ-ही-शुभ हैं। देवताओं के पवित्र शस्त्र से मर कर मुझे उत्तम लोक की प्राप्ति होगी॥ ९५॥ पराजय जो आज सम्भव है, लेकिन लोक में महत्तर कीर्ति होगी;

परीभवाऽऽद्यसम्भावः कीर्तिर्लोके महत्तरा। अत्राऽपि मन्ये स्त्रीबालमुखानां न हि सम्भवम्॥
अप्रतीकार्यमेतत्तु दैवमत्र परायणम्। अथ वैतन्मया पूर्वं श्रुतमब्जासनान्मुखात्॥ ९७॥
सा परा त्रिपुरा देवी भक्तवाञ्छाप्रपूरणी। इति तन्मे परीवारं न शोषयतु सा परा॥ ९८॥
न मे चैतेनाऽहमेषां परमार्थस्वभावतः। जानानस्याऽपि मे देवी मोहमुत्पादयत्यलम्॥ ९९॥
तन्मे विचिन्तनं व्यर्थं स्वप्नसारे जगत्स्थितौ। तत्तां सर्वेन भावेन शरणं प्राप्तवानहम्॥ १००॥
तन्मां नियोजयेद्यद्वन्नियुक्तोऽस्मि न चाऽन्यथा। पाहि मां परमेशानि शरण्ये शरणागतम्॥
मोहजालप्रबन्धान्मामभ्युद्धर्तुमिहाऽर्हसि। इति प्रार्थ्य महादेवीं त्रिपुरां भण्डदानवः॥ १०२॥
निशाम्य दैन्यमापन्नान् बन्धून् स्वपरितःस्थितान्। हर्षयन्निति होवाच पराक्रमयुतं वचः॥
हे दानवा मम वचः भृणुध्वं श्रद्धया परम्। न मे मृत्युः कुतोऽप्यस्ति मृत्योर्मृत्युरहं यतः॥ १०४॥
शस्त्राणाश्च तथाऽस्त्राणां महामायाविनामपि। सचराचरलोकानां स्रष्टाऽहं वः समक्षतः॥
पञ्चोत्तरशताण्डानामीश्वरोऽहं महाबलः। तत्रेमामबलां ज्ञात्वा न शीघ्रं हन्तुमुत्सहे॥ १०६॥
युद्धनिर्भरतामस्या दृष्ट्वा निर्जित्य लीलया। स्वाऽन्तःपुरं समानीय महाऽऽनन्दमुपैम्यलम्॥

इति मदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये ललितामाहात्म्ये भण्डासुर-
विचारे षष्टितमोऽध्यायः॥ ५००१॥



इसमें भी मैं यह मानता हूँ कि स्त्री, बालक प्रमुखों के लिए यह सम्भव नहीं है॥ ९६॥ इसका कोई प्रतीकार नहीं है; यह सब भाग्याधीन है अथवा ब्रह्माजी के मुँह से पहले ही मैं यह सब सुन चुका हूँ॥ ९७॥ वह भगवती त्रिपुरा भक्तों को उसका अभिलषित देने वाली है, इसलिए मुझ अनुचर का वह देवी शोषण नहीं कर सकती॥ ९८॥ ये मेरे नहीं हैं, मैं भी इनका नहीं हूँ; यह परमार्थ स्वभाव से जानते हुए भी मुझे वह देवी बेकार ही मोह उत्पन्न कर रही है॥ ९९॥ इसलिए इनके सम्बन्ध में मेरी सोच बेकार है। संसार तो स्वप्न की तरह है, इसलिए मैं अब सर्वतोभावेन उनकी ही शरण में जाता हूँ॥ १००॥ यदि मैं अनियुक्त हूँ तो मुझे इस मार्ग में नियुक्त करें। शरण में आये हुए मुझ शरणागत की परमेश्वरी रक्षा करें॥ १०१॥ इस मोहज़ाल के बन्धन से वही परमेश्वरी मेरा उद्धार करने में समर्थ है। भगवती त्रिपुरा की ऐसी प्रार्थना कर भण्ड दानव॥ १०२॥ अपने चारों ओर दीनताग्रस्त अपने बन्धुओं को सुनाकर प्रसन्न होते हुए उन्हें पराक्रम की बातें कहने लगा॥ १०३॥ हे दानवगण! श्रद्धापूर्वक मेरी बातें सुनों। मेरी मौत कहीं भी नहीं है, क्योंकि मैं मौत की मौत हूँ॥ १०४॥ केवल महामाया को छोड़कर संसार में जितने शस्त्र और अस्त्र हैं, चर और अचर लोक हैं, सबका स्रष्टा मैं ही हूँ; यह तुम लोग देख रहे हो॥ १०५॥ पाँच सौ से अधिक ब्रह्माण्डों का महाबली स्वामी मैं ही हूँ, अतः इन्हें अबला जानकर शीघ्र मारना नहीं चाहता॥ १०६॥ जब यह मुझसे लड़ेगी तो इन्हें देखकर बड़ी आसानी से इसे जीतकर मैं अपने राजमहल में ले आऊँगा और आनन्द-भोग करूँगा॥ १०७॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत भण्डासुर-विचार नामक साठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५००१॥



अथैकषष्टितमोऽध्यायः

इत्युक्त्वा पार्श्वगं सूतं दीर्घग्रीवं महाऽसुरः। बभाषे क्रोधताम्राक्षो रथः संयुज्यतामिति॥ १॥
अथ सूतो निमेषेण सन्नद्धं स्यन्दनोत्तमम्। निवेदयद्दैत्यनाथे प्रणम्याऽतिविनीतवत्॥ २॥
आरुरोह रथश्रेष्ठं भण्डदैत्यः प्रतापनः। गृहीत्वा सशरं चापं प्रचचालाऽतिरोषितः॥ ३॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा च दैत्येशं व्रजन्तं युद्धकारणात्। दैत्या विनिर्ययुः शीघ्रं सन्नद्धाः क्रोधमूर्च्छिताः॥
पुरतः पार्श्वयोः पृष्ठे सर्वतः परिवार्य तम्। निर्ययुर्दैत्यसुभटाः सङ्घशो धृतहेतयः॥ ५॥
भण्डदैत्यसुताः सर्वे भण्डतुल्यपराक्रमाः। कुटिलाक्षोऽग्रजस्तेषाममेयबलविक्रमः॥ ६॥
स्यन्दनस्थाः सुसन्नद्धाः समरेष्वनिवर्तिनः। अक्षौहिणीशतयुता भण्डदैत्याऽग्रतो ययुः॥ ७॥
अहम्पूर्विकया युद्धे ये संस्पर्धन्ति नित्यशः। पार्श्वयोर्दैत्यराजस्य विषङ्गश्च विशुक्रकः॥ ८॥
चेलतुर्भ्रातरौ तस्य विष्णुतुल्यपराक्रमौ। रथस्थौ तौ महाचापौ क्रुधाऽरुणितलोचनौ॥ ९॥
ग्रसन्ताविव सैन्यानि परेषां ययुतुर्द्रुतम्। प्रत्येकमक्षौहिणीनां शतेन परिवारितौ॥ १०॥
उग्रकर्ममुखास्तस्य मन्त्रिणो भीमविक्रमाः। अनुजग्मुर्दैत्यपतिं शताऽक्षौहिणीसंयुताः॥ ११॥
एवं प्रचलिते दैत्यनाथे समरकारणात्। रराज राजपथ्या तु प्रावृट्कालनदी यथा॥ १२॥
कूलङ्कषा दैत्यजला रथाऽऽवर्तसमाकुला। तुरङ्गभङ्गा द्विरदग्राहा खेटककच्छपी॥ १३॥

❊ विमला ❊

इतना कहकर क्रोध से लाल-लाल आँखों वाले दैत्यराज ने अपने बगल में उपस्थित महान् दैत्य दीर्घग्रीव नामक सारथी से रथ लाने को कहा॥ १॥ सारथी ने अतिविनम्र होते हुए प्रणाम कर, पहले से तैयार रथ को एक पल में लाकर सामने खड़ा कर दिया॥ २॥ प्रतापी उस भण्ड दैत्य ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हाथ में तीर-धनुष लेकर उस श्रेष्ठ रथ पर सवार होकर प्रस्थान किया॥ ३॥ युद्ध के लिए दैत्यराज ने प्रस्थान किया है—यह देख-सुनकर क्रोधातुर तैयार दैत्यगण शीघ्र बाहर निकल आये॥ ४॥ आगे-पीछे, दायें-बायें उन्हें चारों ओर से घेरकर, हाथों में हथियार उठाये प्रबल योद्धा टुकड़ियों में बँटकर उनके साथ चल पड़े॥ ५॥ भण्डदैत्य के सभी बेटे भण्ड की तरह ही पराक्रमी थे। उनमें सबसे बड़ा निस्सीम बल और पराक्रम से युक्त कुटिलाक्ष था॥ ६॥ रथ पर सवार पूरी तैयारी के साथ रणाङ्गण से बिलकुल मुँह नहीं फेरने वाला, सैकड़ों अक्षौहिणी सेना के साथ सबसे आगे भण्ड दैत्य ने प्रस्थान किया॥ ७॥ युद्ध में पहले मुझे आगे बढ़ना है, ऐसी स्पर्धा करने वाले योद्धा विषङ्ग और विशुक्र ने दैत्यराज के अगल-बगल में प्रस्थान किया॥ ८॥ विष्णु तुल्य पराक्रमी, हाथों में विशाल धनुष लिये, रथ पर सवार क्रोध से आँखें लाल-लाल किये वे दोनों भाई चलें॥ ९॥ सौ-सौ अक्षौहिणी सेना से घिरे वे दोनों भाई शीघ्र ही दुश्मनों की सेना निगल जाने को तैयार आगे चलने लगें॥ १०॥ उनके मन्त्रीगण अत्यन्त पराक्रमी उग्रकर्म-प्रमुख सैकड़ों अक्षोहिणी सेना के साथ दैत्यपति के पीछे चलें॥ ११॥ युद्ध के लिए इस तैयारी के साथ दैत्यराज उसी तरह चलते शोभ रहे थे जैसे राजमार्ग पर वर्षा की काल नदी चलती हो॥ १२॥ किनारे को ढहाता दैत्य सैन्य जल की तरह था, रथ आवर्त की तरह घूम रहे थे, घोड़े तरंग थे, हाथी ग्राह और खेटक कछुए॥ १३॥ लहराते पताका उफनते पिण्ड की तरह थे, तलवार

उन्मीषत्फेनपिण्डाऽऽढ्या पताकालहरीयुता । खड्गदीर्घमहासर्पा तूणीमत्स्यविचित्रिता ॥
दानवाऽऽस्याऽम्भोजततिस्तन्नेत्रशफरीगणा । विचित्रच्छत्रहंसादिपतत्रिततिमालिनी ॥ १५ ॥
उच्चलत्तुरगोत्तुङ्गशिंशुमारकुलाऽऽविला । रथघोषमहाघोषा वाहिनी जलवाहिनी ॥ १६ ॥
निर्गमत्तत्पुरद्वारान्महतो रत्नगोपुरात् । कुल्यामुखाज्जलं ह्याशु केदारे प्रसृतं यथा ॥ १७ ॥
पुरद्वाराद्वाहिनी सा प्रसृताऽभूद्बहिः क्षणात् । तदन्तरे तु विजयः प्राप्य दैत्येश्वरं द्रुतम् ॥ १८ ॥
मन्त्री प्रणम्य विन्यस्य मूर्ध्न्यञ्जलिपुटं स्थितः । प्राप्याऽऽज्ञामवदत्तं सवचस्तत्कालसम्मतम् ॥
दैत्येश्वर महाराज कीर्तिस्ते सर्वतस्तता । प्रतापतपनश्चोर्ध्वे ब्रह्माण्डानि तपत्यसौ ॥ २० ॥
बलवत्तर एषोऽत्र हरिरेको विभावितः । सोऽपि त्वत्सम्मुखं प्राप्य युद्धे भूयः पराजितः ॥ २१ ॥
तत्त्वां युद्धे जयेत्कश्चिदिति मोघो हि निश्चयः । तथाऽपि मन्त्रिणा काले चाऽर्थशास्त्रप्रमाणतः ॥
विमृश्य राज्ञे वक्तव्यं हितमागमसम्मितम् । काले युक्तमनुक्त्वा तु न सुमन्त्रित्वमर्हति ॥ २३ ॥
चत्वार एव सम्प्रोक्ता उपाया दण्डशासने । तत्रैकैकोऽपि स्वे काले सम्मतो बलवत्तरः ॥ २४ ॥
अन्यकालेऽन्यमातिष्ठन्मूढदुर्मन्त्रिमन्त्रितः । नश्येदसदृशं भुक्त्वा ह्यामयीवाऽगदं नृपः ॥ २५ ॥
तत्राऽध्यवसितं प्राज्ञैर्दूतचारदृशाऽखिलम् । दृष्ट्वा युद्धं प्रकुर्वीत तेन श्रेयः समाप्नुयात् ॥ २६ ॥
तत्सम्मतौ दूतचारौ परेषु प्रेषय द्रुतम् । तावत् सेनाऽपि सन्नद्धा भविष्यत्यविशङ्किता ॥ २७ ॥
रक्षणं नगरस्याऽपि विहितं स्याद्यथाविधि । विज्ञप्तव्यमिदं काले मया ते स्वामिनः पुरः ॥ २८ ॥
विज्ञापितं तद्भवता कर्तव्यं कालसम्मितम् । निशम्य मन्त्रिवाक्यं तद्युक्तं कुशलसम्मतम् ॥ २९ ॥

महासाँप की तरह थी, तूणी चित्र-विचित्र मछलियाँ थीं॥ १४॥ दानवगण इसके जलतरंग थे, उनकी आँखें मछलियाँ थीं, उनके विचित्र छत्र हंस थे और उड़ने वाली मछलियाँ थीं॥ १५॥ नाचते घोड़े सूँस की तरह जल में उछल-कूद कर रहे थे, रथ की आवाज जल की तरंग थी और रथ जलयान थे॥ १६॥ नगरद्वार के महान् रत्न गोपुर से निकलते सैन्यदल छत की टोंटी से शीघ्र निकलते जलप्रवाह की तरह लग रहे थे॥ १७॥ नगरद्वार से निकली वह सेना बाहर की धरती में क्षणभर में फैल गई। इसी बीच विजय नामक मन्त्री दैत्येश्वर के पास पहुँच कर॥ १८॥ हाथ जोड़कर माथे से सटाते हुए प्रणत भाव से खड़ा हो गया। दैत्यराज का आदेश पाकर उसने समयोचित बात कही॥ १९॥ हे महाराज दैत्येश्वर! आपकी कीर्ति चारों ओर फैल रही हैं, आपके प्रताप रूपी सूर्य के तेज से ऊपर के ब्रह्माण्ड तप रहे हैं॥ २०॥ संसार में एक मात्र हरि ही शोभते हैं, आपके सामने उन्हें भी युद्ध में पराजय मिलती है॥ २१॥ इसलिए युद्ध में आपको कोई जीत लेगा—यह तो व्यर्थ का घमण्ड है। अतः अर्थशास्त्र के प्रमाण से अवसर आने पर मन्त्रियों से॥ २२॥ विचार कर ही आगमसम्मित हित की बातें राजा को कहनी चाहिए। अवसर आने पर जो राजा को हितकर बातें नहीं कहता, वह अच्छा मन्त्री नहीं होता॥ २३॥ उपाय, दण्ड और शासनादि इन चार में से किसी एक का भी अपने काल में उचित प्रयोग बलवत्तर होता है॥ २४॥ दूसरे काल में दूसरे उपाय का प्रयोग मूर्ख एवं दुष्ट मन्त्री कुमन्त्रणा देता है और असदृश परिणाम भोगकर विनष्ट होता है, ठीक उसी तरह जैसे रोगी बिना औषधि के विनष्ट होता है॥ २५॥ इसलिए यहाँ जो बुद्धिमानों का कार्य है, वे पहले दूताचार करते हैं; दूतों के द्वारा स्थिति का ज्ञान कर युद्ध करते हैं, तत्पश्चात् उन्हें श्रेय मिलता है॥ २६॥ अतः मेरे विचार में शीघ्र ही शत्रु के पास दूत भेजा जाय, तब तक सेना भी शंका रहित होकर तैयार हो जायेगी॥ २७॥ यथावसर इस बीच नगररक्षा का भी उपाय कर लिया जाय। इस बीच अवसरोपयुक्त स्वामी के सामने मेरा इतना ही निवेदन है॥ २८॥ मुझे श्रीमान् के चरणों में इतना ही निवेदन करना था, यही कालोपयुक्त है। मन्त्री के कुशल

समाधानाय बन्धूनामभिमन्यत मन्त्रणम् । निवेश्य सेनापतिभिः सेनां तत्र विभागशः ॥ ३० ॥
पुररक्षाविधानाय कुटिलाक्षमवासृजत् । अमित्रघ्नं मन्त्रिवर्यं प्राह भण्डमहासुरः ॥ ३१ ॥
गच्छाऽमित्रघ्न मच्छास्त्या तां ब्रूहि ललिताऽभिधाम् । नाऽहं त्वां सुन्दरीं देवीं सर्वथा संश्रयोचिताम् ॥
वाञ्छामि योद्धुं तत्कस्मान्मां योद्धुं त्वमिहागता । युद्धश्रद्धा तवेयं वै सम्मतं मम सर्वथा ॥ ३३ ॥
न बिभेमि महायुद्धे तत्त्वद्युद्धे भयं कुतः । किन्त्वहं त्वां प्रियाकारां दृष्ट्वा द्रुतं मनोभवाम् ॥ ३४ ॥
तत्सुराणां परित्यज्य पक्षं मत्संश्रया भव । साम्ना युद्धेन वाऽपि त्वां करोम्यात्मसमाश्रयाम् ॥
मद्विरोधेन ते लोके हानिरेव न संशयः । विमृश्यैतद्द्रुततरं पक्षमेकतरं भज ॥ ३६ ॥
इति तां ब्रूहि साम्ना च ज्ञात्वा तस्याः समीहितम् । बलञ्च सर्वं तत्कृत्यं ज्ञात्वा याहि द्रुतं पुनः ॥
अथ मायाविनां श्रेष्ठं विद्युन्मालिनमाह सः । विद्युन्मालिन्महाप्राज्ञ मायाविकुलनायक ॥ ३८ ॥
परैरविदितो गत्वा देव्याः सेनामशेषतः । बलञ्च व्यवसायञ्च भेदच्छिद्राणि युक्तितः ॥ ३९ ॥
विचार्य शीघ्रमायाहि त्वमत्र कुशलो ह्यसि । आज्ञप्तावितरौ दैत्यौ ययतुः शक्तिवाहिनीम् ॥
अनन्तामम्बुधिप्रख्यामविगाह्य कथञ्चन । अमित्रघ्नो महासेनां विवेशाऽब्धिं यथा प्लवः ॥ ४१ ॥
उत्खातकरवालाभिः शक्तिभिः परिरक्षिताम् । प्रविष्टमात्रं शक्त्या स गृहीतो बलवत्तरः ॥ ४२ ॥
परिचारिकया दण्डनाथायाः काञ्चनाऽऽभया । चपेटया निहत्याऽऽशु गृहीत्वा तं गलेऽसुरम् ॥
तर्जयामास वचनैः क्रोधयुक्तैर्भयङ्करैः । कस्त्वं सेनामिमां देव्या दण्डराज्ञीसुरक्षिताम् ॥ ४४ ॥

विचार और उपयुक्त तथ्य को सुनकर ॥ २९ ॥ अपने बन्धु-बान्धवों से इस विचार की स्वीकृति के लिए उसने मन्त्रणा की, सैन्यदलों को खण्डों में विभक्त कर सेनापतियों के अधीन कर दिया ॥ ३० ॥ नगर की रक्षा के लिए कुटिलाक्ष की दैत्यराज ने सृष्टि की। उसके बाद भण्ड ने मन्त्रिश्रेष्ठ अमित्रघ्न को कहा ॥ ३१ ॥ हे अमित्रघ्न! मेरे शासन से तुम जाओ और उस ललिता से कहो—तुम्हारी तरह सुन्दरी देवी के साथ मेरा संश्रय सर्वथा उचित नहीं है ॥ ३२ ॥ तुम तो मुझसे लड़ने यहाँ आ गई पर मैं तुम्हारे साथ कैसे लड़ूँ? तुम्हारी युद्ध की इच्छा सर्वथा मेरे सम्मत है ॥ ३३ ॥ मैं तो महायुद्ध से भी नहीं डरता, फिर तुम्हारे साथ युद्ध में भय कैसा? किन्तु तुम्हारे सुन्दर इस रूप को देखकर मेरा मन लुभा जाता है ॥ ३४ ॥ अतः देवताओं का पक्ष छोड़ कर मुझसे मित्रता कर लो। अथवा आर-पार की लड़ाई लड़कर तुम्हें अपना वशवर्त्तिनी बना लूँगा ॥ ३५ ॥ मेरे विरोध से संसार में तुम्हारी हानि ही होगी, इसमें कोई संशय नहीं है। इस पर ठीक से विचार कर किसी एक पक्ष का सहारा ले लो ॥ ३६ ॥ शान्तिपूर्वक उससे यह कहो और इस पर उसका विचार जानकर, उसकी सारी ताकत का ढेर लेकर, वह क्या कर रही है? इन सारी बातों का पता लगा कर शीघ्र लौट आओ ॥ ३७ ॥ इसके बाद उन्होंने मायावियों में श्रेष्ठ मायावी विद्युन्माली से कहा—हे मायाविकुलनायक महाप्रज्ञाशालि! ॥ ३८ ॥ दूसरे को कुछ भी पता न चले—इस तरह उस देवी की सारी सेना के बीच घुस कर पता करो और युक्ति से उनका बल, व्यवसाय, भेद और छिद्र का पता कर ॥ ३९ ॥ विचार कर शीघ्र लौट आओ, इस काम में तुम प्रवीण हो। आदेश पाकर दोनों दैत्य शक्तिवाहिनी की ओर प्रस्थान कर गये ॥ ४० ॥ अनन्त सागर की तरह उस सेना में डूबकी लगाकर किसी तरह अमित्रघ्न ने तैराकों की तरह उस सेना रूपी महासागर में प्रवेश किया ॥ ४१ ॥ खुली तलवार हाथ में लिये शक्तियाँ सैन्यदल के संरक्षण में संलग्न थीं। बलवान् अमित्रघ्न सेना में प्रवेश करते ही उनसे पकड़ा गया ॥ ४२ ॥ सोने की तरह कान्ति वाली परिचायिका दण्डनाथा ने उसे चपेटे से पीटकर शीघ्र उस असुर की गर्दन पकड़ कर ॥ ४३ ॥ अत्यन्त क्रुद्ध होकर

अविज्ञाप्य प्रविष्टोऽसि चाऽस्मत्प्रमुखवीक्षिताम् । आज्ञां विना दण्डराज्ञ्याः प्रविष्टो वाहिनीमिमाम् ॥
जीवन्नो यास्यसि पुनः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् । तदन्तरे तु सम्प्राप्ताः सैन्यरक्षा नियोजिताः ॥
दण्डिन्याज्ञाप्रतीक्षिण्यः शक्तयः शतशः क्षणात् । प्रबलाभिः समाकृष्टो निहतोऽभूच्छितोऽभवत् ॥
श्रुत्वा तदन्तरे दण्डनाथा दैत्यस्य सङ्गतिम् । समक्षं ह्यानयामास स्वपरीचारशक्तिभिः ॥ ४८ ॥
पृष्ट्वा तं ह्यागतं दूतं ज्ञात्वा भण्डासुरस्य हि । विज्ञाप्य मन्त्रिणी देव्याः समीपमानयत्ततः ॥ ४९ ॥
साऽपि विज्ञाप्य तं प्राप्तं ललितायाः समीपतः । नीत्वा पप्रच्छ दूतं तं कृत्यं तत्रागमस्य हि ॥
प्राह प्रणम्याऽमित्रघ्नः प्राप्तो भण्डनिदेशतः । दूतोऽहं तस्य दैत्यस्य तदुक्तं सम्ब्रवीम्यहम् ॥ ५१ ॥
आवयोर्न विरोधोऽस्ति कुतो योद्धुं समागता । युद्धाऽप्ययुद्धा वा देवि भूयास्त्वं मत्समाश्रया ॥
तत्त्वामात्मप्रियां हृद्यां योधयामि कथं वद । तद्देवान् सम्परित्यज्य भव त्वं मत्समाश्रया ॥ ५३ ॥
वक्तव्येति त्वया गत्वा ज्ञेयं सेनाबलाऽबलम् ।
इत्यहं प्रेषितस्तेन दूतवध्या[धः] विनिन्दिता[नः] ॥ ५४ ॥
शास्त्रेषु दूतस्य वधं न वदन्ति विचक्षणाः । इति मत्वा प्रविष्टोऽहं लक्षितः सर्वशक्तिभिः ॥ ५५ ॥
प्रविष्टमात्रोऽभिमतो गृहीतस्तव शक्तिभिः । आनीतस्ते समक्षश्चेत्येतत् सर्वं निरूपितम् ॥ ५६ ॥
अग्रे देव्येव शरणमयोग्यो मे वधो भवेत् । निशम्य दूतवचनं ललिताया मतं ततः ॥ ५७ ॥
विदित्वा मन्त्रिणी प्राह स्मेरमञ्जुलभाषिणी । माभैर्दैत्य व्रज सुखं हन्यसे न कदाचन ॥ ५८ ॥

डाँटते डरावनी आवाज में कहा—तुम कौन हो? जानते नहीं, यह सैन्यदल देवी दण्डराज्ञी से संरक्षित है॥ ४४॥ दण्डराज्ञी की बिना आज्ञा इस वाहिनी में प्रवेश किया है? हमारे जैसी अनेक शक्तियों से संरक्षित इस व्यूह में बिना हमसे पूछे तुमने प्रवेश किया॥ ४५॥ हम सबके जीवित रहते हुए स्वयं मृत्यु भी साक्षात् प्रवेश नहीं कर सकती। इसी बीच सैन्यरक्षा में नियुक्त शक्तियाँ वहाँ आ गयीं॥ ४६॥ एक क्षण में ही दण्डिनी की आज्ञा की प्रतीक्षा करने वाली सैकड़ों प्रबला शक्तियों से खिंचता वह निस्तेज एवं बलहीन हो गया॥ ४७॥ दण्डनाथा ने यह सुनकर कि कोई दैत्य इस व्यूह में आ गया है, अपनी परिचारिका शक्तियों से पकड़वा कर सामने उसे मँगवा लिया॥ ४८॥ उस समागत दूत से यह पूछ कर जाना कि वह भण्डासुर का दूत है। इसकी सूचना मन्त्रिणी देवी को देकर उनके पास इसे पहुँचा दिया॥ ४९॥ उसने भी ललिता देवी को उसकी सूचना देकर दूत को वहाँ पहुँचा दिया। श्रीललिता ने उसे यहाँ आने का कारण पूछा॥ ५०॥ उन्हें प्रणाम कर अमित्रघ्न ने उनसे कहा—भण्ड दैत्य की आज्ञा से मैं यहाँ पहुँचा हूँ। मैं उस दैत्यराज का दूत हूँ, उनकी कही बात ही मैं आपसे कहूँगा॥ ५१॥ हम दोनों के बीच किसी तरह का विरोध तो है नहीं, फिर मुझसे लड़ने क्यों आई? लड़कर या बिना लड़े ही हे देवि! तुम मेरी समाश्रया बनोगी॥ ५२॥ अतः तुम मेरी आत्मप्रिया और प्रेयसी हो, फिर तुम्हारे साथ युद्ध कैसे करूँ? बतलाओ। अतः अच्छा हो कि देवताओं का पक्ष छोड़कर मेरे आश्रय में आ जाओ॥ ५३॥ वहाँ जाकर उनसे तुम यही कहना, उनकी सेना का बल और अबल का पता करना—इस प्रकार उन्होंने मुझे यहाँ भेजा। मैं एक दूत हूँ और दूत का वध सर्वत्र निन्दित है॥ ५४॥ शास्त्रों में दूत का वध कहीं भी बुद्धिमान् लोग नहीं मानते हैं, यही मानकर सारी शक्तियों को देखते हुए भी मैंने इस शिविर में प्रवेश किया॥ ५५॥ प्रवेश करते ही आपकी शक्तियों ने मुझे पकड़ लिया और पकड़ कर आपके सामने ला खड़ा किया। मुझे जो कुछ कहना था, सब कुछ कह दिया॥ ५६॥ आगे आप ही हैं, मैं तो शरण के अयोग्य हूँ, अब मेरा वध ही होगा। दूत की बातें सुनकर तथा श्रीललिता का दृष्टिकोण समझकर॥ ५७॥ स्मितवदना मधुरभाषिणी वहाँ बैठी मन्त्रिणी देवी ने सब

ब्रूयास्तं भण्डदैत्येशं मयोक्तमवधार्य च। यदि ते जीवने श्रद्धा द्रुतमागत्य निर्भयः॥ ५९॥
शरणीकुरु देवेशीं त्रिलोकीं सम्परित्यज। त्रिलोकेशो भवेदिन्द्रः त्वं पाताले निवत्स्यसि॥ ६०॥
कुरु सख्यं गोत्रभिदा सपुत्रबलवाहनः। अन्यथा न विमोक्षस्ते जीवन् क्वाऽपि भविष्यति॥ ६१॥
नयैनं दण्डसाम्राज्ञि सेनां दर्शय सर्वतः। दर्शयित्वा ततः सेनाबहिरेणं विसर्जय॥ ६२॥
इत्याज्ञप्ता कोलमुखी प्रदर्श्य स्वामनीकिनीम्। व्यसर्जयत्तं दैतेयं बहिः सेनानिवेशनात्॥ ६३॥
अथ मुक्तः पुनर्जातमात्मानं सममंसत। जगाम राजसविधं भयविह्वलिताऽन्तरः॥ ६४॥
विद्युन्माली निशाम्यैनममित्रघ्नं विहिंसितम्। भीतो रात्रौ महामायः कौशिकीं तनुमाश्रितः॥
विचरन्नाकाशमार्गे सेनां सर्वां निशामयत्। गणयित्वा सर्वसेनां व्रजन्तं गगनाऽध्वनः॥ ६६॥
जग्राह काचिच्छक्तिस्तं खेचरी निशिरक्षिणी। गृहीतमात्रो मायावी प्रोड्डीय गगनोर्ध्वतः॥ ६७॥
पञ्चाशद्योजनादूर्ध्वं युयोध स तया भृशम्। चिरं युद्ध्वा शूलहतस्तया मुक्तः कथञ्चन॥ ६८॥
जगाम दैत्यनृपतिमीषत्प्राणाऽवशेषितः। पपात पुरतस्तस्य सूर्यस्योदयनं प्रति॥ ६९॥
दृष्ट्वाऽग्रपतितं दैत्यं म्रियमाणं भृशं हतम्। भण्डासुरो जपन्मन्त्रं पस्पर्शाऽङ्गेषु पाणिना॥ ७०॥
मन्त्रस्पर्शनमात्रेण जीवितश्च गतव्यथः। उत्थाय प्रणनामाऽऽशु दैत्यराजं पुरः स्थितम्॥ ७१॥
अथ पृष्टः प्राह विद्युन्माली वृत्तं स्वकं क्रमात्। महाराज त्वत्समक्षं गतोऽमित्रघ्नसंयुतम्॥ ७२॥
दृष्टवानस्मि तां सेनां प्रलयाम्बुधिसन्निभाम्। अथाऽमित्रघ्न एवाऽऽदौ प्रविवेश महाचमूम्॥

कुछ जानकर दैत्यदूत से कहा—हे दूत! मत डर, किसी भी स्थिति में तुम्हारा वध नहीं होगा॥ ५८॥ जाओ, दैत्यराज भण्ड को जो कुछ भी मैं कहती हूँ, जाकर कहो—यदि तुम्हें जीने की श्रद्धा है, तो निडर होकर शीघ्र यहाँ आकर॥ ५९॥ श्रीललिता के शरणागत बनो और तीनों लोकों के स्वामीत्व का परित्याग कर इन्द्र को सौंप दो और तुम पाताललोक में जाकर निवास करो॥ ६०॥ अपने पुत्र, बल और वाहन के साथ इन्द्र से दोस्ती करो, अन्यथा तुम्हें कहीं भी जिन्दा मैं नही छोड़ूँगी॥ ६१॥ दण्डसाम्राज्ञी! तुम इस दूत को चारों ओर घुमाकर अपना सैन्यबल दिखला दो, फिर इसे सैन्य-शिविर से बाहर लाकर छोड़ दो॥ ६२॥ महादेवी की यह आज्ञा पाकर भगवती की परिचारिका कोलमुखी ने अपनी सेना को हर ओर से दिखाकर सेना-शिविर से बाहर लाकर इस दैत्य को छोड़ दिया॥ ६३॥ वहाँ से लौटकर उसने अपना पुनर्जन्म समझा, दैत्यराज भण्ड के पास पहुँच कर भय से थर-थर काँपने लगा॥ ६४॥ उधर विद्युन्माली ने जब सुना कि अमित्रघ्न की उन्होंने हत्या नहीं की तो डरते हुए रात में उस इन्द्रजालिक कौशिकी का शरीर धारण कर लिया॥ ६५॥ आकाश मार्ग में विचरण करते हुए सारी सैन्य-टुकड़ियों का निरीक्षण किया; उन्हें एक-एक कर गिनकर आकाशमार्ग से चलते हुए॥ ६६॥ रत्रिप्रहरी किसी आकाशचारिणी ने इसे पकड़ लिया। पकड़े जाते ही यह मायावी आकाश की ऊपरी सतह की ओर उड़ चला॥ ६७॥ पचास सौ योजन ऊपर पहुँच कर उसने इस शक्ति के साथ तुमुल युद्ध किया। बहुत देर तक युद्ध कर उसके त्रिशूल से आहत होकर किसी तरह उससे मुक्त हुआ॥ ६८॥ थोड़ी-सी बची जान लेकर वह दैत्यराज के पास गया और सूर्य उदय होते ही दैत्यराज के आगे जा गिरा॥ ६९॥ पूरी मार खाये मरणासन्न दैत्य को अपने आगे गिरा देखकर भण्डासुर ने मन्त्र जपते हुए अपने हाथ से उसके अंगों का स्पर्श किया॥ ७०॥ मन्त्र-स्पर्श मात्र से ही वह जिन्दा हो उठा और शस्त्राघात की चोट से उठा दर्द भी समाप्त हो गया; उठकर सामने खड़े दैत्यराज को शीघ्र ही प्रणाम किया॥ ७१॥ उसके बाद पूछे जाने पर विद्युन्माली ने अपना सारा वृत्तान्त क्रम से सुनाते हुए कहा—हे महाराज! आपके सामने ही अमित्रघ्न के साथ मैं वहाँ गया॥ ७२॥ उनकी प्रलयकालीन उमड़ते सागर

पश्यतो मे क्षणेनैव गृहीतः शक्तिभिर्बलात्। मधुवन्मक्षिकाभिः स समाक्रान्तोऽथ शक्तिभिः॥
क्षणेन विगतप्रज्ञः समभूद्बलवानपि। अशक्तः स्पन्दितुमपि क्व युद्धं क्व पलायनम्॥ ७५॥
कथञ्चिदपि नो जीवेत् स इत्थं मम निश्चयः। तावद्भीतोऽप्यहं दूरात् पलायनपरोऽभवम्॥ ७६॥
भवदाज्ञागौरवेण न निवृत्तोऽस्मि ते भयात्। ततो दिनाऽवसानेऽहं मायाघूकत्वमास्थितः॥
उपर्युपरि सेनायाः सञ्चरंस्तां निशामयम्। सा सेना महती दृष्टा भीमा भीषणनादिनी॥ ७८॥
संवर्तकालसंक्षुब्धमहोर्मिजलधिर्यथा। दर्शनादेव सेनाया यास्यन्ति मृतिमासुराः॥ ७९॥
तत्र सर्वा महाभीमाः शक्तयो भीमविक्रमाः। अहम्पूर्विकया युद्धं कर्तुमादौ समुत्सुकाः॥ ८०॥
तत्र बाला कुमारी या ललितायाः प्रियाऽऽत्मजा। कुमारीभिः कोटिशतसंख्याभिः परिवारिता॥
शस्त्राऽस्त्रकौशलाऽभिज्ञा युद्धसन्नाहसम्भ्रमा। भण्डपुत्रान् निहन्मीति सा ब्रवीति पुनः पुनः॥
कुमार्योऽपि च ता ब्रूयुर्भण्डपुत्रसुवाहिनीम्। नाशयामः क्षणेनाऽतिगर्जन्त्यः समरोत्सुकाः॥
अथ सम्पत्करी चाश्वाऽऽरूढाख्या शक्तिनायिका।
गजानश्वानसंख्यातान्महाशक्तिभिरास्थितान् ॥ ८४॥
कर्षन्त्यौ ते बलोदग्रे बालापार्श्वद्वयाऽऽश्रिते। अथ बाला पृष्ठतस्तु महारथनिवासिनी॥ ८५॥
ललिता श्रीमहादेवी नवाऽऽवरणशक्तिभिः। अप्रमेयबलक्रौर्यशौर्ययुक्ताभिरावृता॥ ८६॥
तस्याः पार्श्वद्वये मन्त्रनाथा दण्डधराऽऽस्थिता। प्रत्येकं रथमारूढा महाऽद्भुतपराक्रमा॥ ८७॥
अनेककोटिमातङ्गकन्याभिः स्वसमाऽऽत्मभिः। चित्रवीर्याभिरभितः संवृता मन्त्रिणी स्थिता॥

की तरह सेना को देखकर मैं आ रहा हूँ, मुझसे पहले अमित्रघ्न ने उस सैन्य-समूह में प्रवेश किया था॥ ७३॥ देखते-ही-देखते पलभर में ही शक्तियों ने बलपूर्वक उसे पकड़ लिया। मधु पर जैसे मक्खियाँ टूट पड़ती हैं, उसी तरह वह बेचारा शक्तियों से आक्रान्त हो गया॥ ७४॥ एक क्षण में इतना बलवान् अमित्रघ्न बेहोश हो गया। वह हिलने में भी असमर्थ था, फिर युद्ध कैसा और भागना कैसा?॥ ७५॥ किसी भी हालत में वह जिन्दा नहीं होगा, यह मेरा निश्चय है; यह देखकर मैं डर गया, दूर से ही देखकर भागा और आपको निवेदित करने चला गया॥ ७६॥ आपका आदेश था और आपके ही भय से चाहकर भी नहीं लौट सका। दिन खत्म होने पर मैं माया का सहारा लेकर॥ ७७॥ रात में सेना के ऊपर-ऊपर घूमने लगा, अत्यन्त भयंकर डरावनी आवाज करती एक विशाल सेना को देखा॥ ७८॥ संवर्तकाल से संक्षुब्ध विशाल तरंग वाले समुद्र की तरह उस सेना को देखते ही असुरों की मृत्यु हो जायेगी॥ ७९॥ वहाँ सारी-की-सारी शक्तियाँ भयंकर पराक्रमशालिनी और डरावनी थीं; एक-पर-एक पहले हम युद्ध करेंगी इसलिए उत्सुक हो रही थी॥ ८०॥ उनमें एक बाला कुमारी थी, वह ललिता देवी की प्रिय पुत्री थी। वह करोड़ों-करोड़ संख्या वाली कुमारियों से घिरी थी॥ ८१॥ आयुध-संचालन में परम निपुण, युद्धकला में प्रवीण वह बाला कुमारी बार-बार कहती थी कि भण्ड के बेटों 'को मैं मारूँगी॥ ८२॥ कुमारी-सेना भी 'भण्डपुत्र की सेना को चुटकी में हम मसल डालेंगें' कह रही थी। वे जोर से गरज रही थी और युद्ध के लिए अत्यन्त इच्छुक हो रही थी॥ ८३॥ इन शक्तियों की नायिका घोड़े पर सवार सम्पत्करी थी। असंख्य घोड़े और हाथियों पर महाशक्तियाँ बैठी थीं॥ ८४॥ वे दोनों ओर समाश्रित बालाओं को खींच रही थीं। उस बाला के पीठ पीछे रथवाहिनी चल रही थी॥ ८५॥ ऐसी नवावरण शक्तियों से घिरी अप्रमेय बल, क्रौर्य और शौर्य से युक्त श्रीललिता देवी थी॥ ८६॥ उनके अगल-बगल मन्त्रनाथा और दण्डधरा थीं। ये दोनों ही महाअद्भुत पराक्रमशालिनी रथ पर सवार थीं॥ ८७॥ अनेक करोड़ मातंगकन्याएँ उन्हीं की तरह बलशालिनी विचित्र शक्ति से समन्वित मन्त्रिणी

वाराह्यपि महाभीमविकराऽऽकृतिनामभिः । शक्तिभिर्बटुकाद्यैश्च संयुताऽतिरुपान्विता ॥ ८९ ॥
सर्वत्र शक्तिसेनासु न मया क्वाऽपि लक्षितम् । यत्र ते वधवृत्तान्तसङ्कतिर्न हि संस्तुता ॥ ९० ॥
तत्रैकाऽप्यवरा शक्तिः सर्वमस्मद्बलं क्षणात् । नाशयेदिति मे बुद्धिर्व्यवसायं समास्थिता ॥ ९१ ॥
शतकोटिपरार्धानां कोटयर्बुदशतात्मिका । सेनैवं शक्तिनिचिता दैत्यराज वदामि ते ॥ ९२ ॥
शक्तिरन्यतमा तेषु बले वीर्ये च विक्रमे । सर्वान् दैत्यगणानस्मानतितिष्ठति सर्वथा ॥ ९३ ॥
इत्युक्त्वा दैत्यराजं तं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । विद्युन्माली समभवत्तूर्ष्णीं दैत्यसभागतः ॥ ९४ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये ललितामाहात्म्ये चारवाक्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५०९५ ॥



को घेर रखी थीं ॥ ८८ ॥ वाराही भी महाभीम स्वरूप वाली शक्तियों एवं बटुकों के साथ क्रोधातुर हो रही थी ॥ ८९ ॥ सेना में सब जगह आपका वध-वृत्तान्त गूँज रहा था। इस अनुगूँज से कोई जगह छूटी नहीं थी ॥ ९० ॥ वहाँ एक भी निम्न दर्जे की शक्ति नहीं थी। सब-की-सब हमारी सेना को पलक झपकते ही नाश कर देगी, मेरी बुद्धि में यही बात आई ॥ ९१ ॥ सैकड़ों करोड़ परार्ध, करोड़ अरब शतात्मिका सेना का ऐसा समूह है—हे दैत्यराज! मैं आपसे बतलाता हूँ ॥ ९२ ॥ बल, वीर्य और पराक्रम में ये शक्तिसेना अन्यतम हैं; हम सभी दैत्यगण उनके सामने टिक न सकेंगे ॥ ९३ ॥ इतना कहकर दैत्यराज को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए दैत्यसभा में आया विद्युन्माली चुप लगा गया ॥ ९४ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत दूत-वाक्य नामक एकसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५०९५ ॥



अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

अथ क्षणादमित्रघ्नः प्राप्तो दैत्यसभान्तरम् । भण्डासुराऽङ्घ्र्योरपतत् भयविह्वलितान्तरम्॥
आश्वस्तः प्राह सचिवैः पृष्टो वृत्तं प्रवेपितः । महाराज त्वदाज्ञप्तो गतः शक्तिमहाचमूम्॥ २ ॥
प्रविष्टः शक्तिभिस्ताभिर्गृहीतो बलवत्क्षणात् । न मे वीर्यं बलं वाऽपि बभौ शक्त्यग्रतः क्वचित्॥
रविप्रभानिमग्नस्य खद्योतस्येव सुप्रभा । क्षणेन तासां ग्रहणाद्विसंज्ञोऽभवमञ्जसा॥ ४ ॥
अथ नीतो दण्डनाथासविधं मृतवत् स्थितः । सा कुलाद्रिरिवोन्नम्रा क्रोडास्या काञ्चनप्रभा॥ ५ ॥
क्रोधाग्निमुद्गिरन्तीव सुनेत्रैर्घर्घरारवा । तादृग्विधं शक्तिगणं तस्याः क्रोधप्रदीपितम्॥ ६ ॥
दृष्ट्वाऽहमभवं भूयो श्वसितुश्चाऽपि नो विभुः । तस्या नियोगान्नीतोऽहं शक्तिभिर्मन्त्रिणीपुरः॥
सा दृष्टा मन्त्रिणी देवी तापिच्छदलसन्निभा । सौन्दर्यकुलसाराऽङ्गी पूर्णतारुण्यगर्विता॥ ८ ॥
मन्दस्मितमुखी पानमदमाद्यद्विलासिनी । गीतहास्यपरा नित्यं वीणावादननिष्ठिता॥ ९ ॥
तस्याः प्रसन्ननेत्राब्जाऽमृतवर्षाऽभिजीवितः । अन्ववेक्षमहं सर्वसौभाग्यैकसमाश्रयाम्॥ १० ॥
तयाऽनुयुक्तो निखिलमवदं तव भाषितम् । तया नीतो महाराज्ञ्याः समक्षमहमाश्वथ॥ ११ ॥
सा दृष्टा ललिता राज्ञी महाविभवसंश्रया । सन्देशं वाचयन्मह्यं यत्तत्ते मन्त्रिणीमुखात्॥ १२ ॥
वक्ष्यामि शृणु दैत्येश सावधानेन चेतसा । ब्रूयास्तं भण्डदैत्येशं जीवने यदि ते मतिः॥ १३ ॥

*** विमला ***

एक क्षण के बाद ही अमित्रघ्न ने दैत्यसभा में प्रवेश किया। भय से विह्वल मन वाला वह भण्डासुर के चरणों में आ गिरा॥ १॥ सचिवों ने जब उसे आश्वस्त कर पूछा तब उसने डर से थर-थर काँपते हुए वहाँ का वृत्तान्त निवेदित किया—हे महाराज! आपकी आज्ञा से मैंने शक्ति की महाचमू में प्रवेश किया॥ २॥ भीतर घुसते ही पलक झपकते उन शक्तियों ने मुझे पकड़ लिया। उन शक्तियों के आगे मेरा बल और पराक्रम कुछ भी नहीं चल सका॥ ३॥ जैसे सूर्य की ज्योति में जुगनू का प्रकाश विलीन हो जाता है, उसी तरह एक क्षण में उन शक्तियों के ग्रहण से मैं बेहोश हो गया॥ ४॥ दण्डनाथा ने मुर्दे की तरह उठा लिया। वह हिमालय की तरह ऊँची थी, अत्यन्त क्रूर उसका मुखमण्डल था, देह से सोने की कान्ति फूट रही थी॥ ५॥ घर्र-घर्र आवाज करती हुई अपने आँखों से क्रोधाग्नि उगलती उन्हीं की तरह शक्तिशालिनी शक्तिगण उनके क्रोध को प्रदीप्त कर रही थी॥ ६॥ उन्हें देखकर मुझे फिर साँस लेने में भी कठिनाई होने लगी, उनके आने से मुझे शक्तियाँ पकड़कर मन्त्रिणी देवी के आगे ले आईं॥ ७॥ तमालपत्र की कान्ति की तरह उस मन्त्रिणी देवी को मैंने देखा, जो सौन्दर्यकुल की हिरणी की तरह पूरी जवानी से गर्वित थी॥ ८॥ मुस्कराता चेहरा और मादक द्रव्य के साथ विलास करने वाली प्रतिक्षण वीणा बजा रही थी। उसके अमृतवर्षिणी कमलनयनों को देखते ही मैं जीवित हो उठा। वह सर्वसौभाग्य देने वाली आँखें थीं॥ ९-१०॥ आपने जो कुछ भी कहा वह मैंने उनसे कह सुनाया। उन्होंने मुझे आश्वसित करते हुए महारानी के सामने उपस्थित कर दिया॥ ११॥ महावैभवशालिनी उस ललिता रानी को मैंने वहाँ देखा। मन्त्रिणी ने मुझसे जो सन्देश सुना वह उनसे कह गई॥ १२॥ भण्डदैत्य के लिए सन्देश भी उन्होंने मन्त्रिणी से कहलवाया—दे हैत्येश! सावधान होकर मैं जो कहता हूँ,

त्रिलोकीं विसृजेन्द्राय शरणीकुरु मातरम्। निवस त्वं परीवारयुतः पातालसद्मनि॥ १४॥
इन्द्रेण सङ्गतो भूयाः पुत्राऽमात्यादिसंयुतः। अकृत्वैवं न ते मोक्षो लोकाऽन्तरगतस्य च॥ १५॥
इन्द्रशत्रुमहं त्वां तु(?) न नेष्याम्यात्मसंश्रयम्। इति त्वया तत्र गत्वा वक्तव्यो भण्डदानवः॥
तदन्तरे शक्तिरेका श्यामा तुरगसंश्रया। करालकरवालोद्यत्करा तत्र समाययौ॥ १७॥
अवरुह्य स्ववाहनात् सा प्रणम्य ललिताऽम्बिकाम्। मन्त्रनाथाश्च वृत्तान्तं बभाषे साऽनुयोजिता॥
प्रेषिता भण्डदैत्यस्य वाहिन्यां नगरेऽपि च। मद्भृत्याः शक्तयो गत्वा दृष्ट्वा सर्वे समागताः॥
ताभिर्विभावितं सर्वं सैन्यं नगरमेव च। इति वृत्तं तया प्रोक्तं सर्वमस्मत्समाश्रयम्॥ २०॥
दैत्यानां सैनिकानाञ्च मन्त्रिणामायुधस्य च। संख्यानं वाहनानाञ्च कोशानां दुर्गरक्षिणाम्॥ २१॥
पुत्राणां ते तत्सुतानां तत्सुतानाञ्च सर्वशः। न तयाऽविदितं किञ्चिन्नास्ति बाह्याऽन्तरेषु च॥

स्त्रियः सर्वाः सुविदितास्तासाञ्चापि प्रभाषितम्।
मन्त्रस्ते मन्त्रितोऽप्यत्र नाऽस्माभिर्विदितोऽपि यः॥ २३॥

तया प्रोक्तोऽथ वचनं वृत्तञ्चापि पृथक् पृथक्। चित्रं मन्ये चिरादत्र वसन्नविदितञ्च यत्॥ २४॥
तत् सर्वञ्च तया प्रोक्तं यद्यथा समवस्थितम्। यत्त्वयाऽप्यत्र नो ज्ञातं तत्त्वया कथितं ननु॥ २५॥
मन्येऽहं तद्बलं देव्या अजेयं दैत्यपुङ्गवैः। एकाऽपि शक्तिरवरा सर्वान्नो नाशयेत् क्षणात्॥ २६॥
दैत्येश्वराऽहं ते सैन्ये बलिष्वनवरो ननु। इन्द्रादयोऽपि विजिता मया भूयः समागमे॥ २७॥
सोऽहं प्रविष्टमात्रोऽपि शक्त्या सामान्यया ननु। गृहीतो लीलयैवाऽऽशु हरिणा मृगशाववत्॥
यथा बालाः क्रीडनकमाच्छिद्याऽन्यकरस्थितम्। गृह्णन्त्यहं तथा ताभिर्गृहीतो बलवानपि॥

आप उसे सुनो॥ १३॥ तीनों लोकों को इन्द्र के लिए छोड़ दो और माँ की शरण में जाओ; अपने परिवार के साथ तुम पाताललोक में जाओ। १४॥ इन्द्र से बिना मित्रता किये पुत्र-अमात्यादि के साथ लोकान्तर जाने में भी तुम्हारी मुक्ति नहीं है॥ १५॥ मैं इन्द्रशत्रु को तुम्हें अपने संश्रय में नहीं लूँगी। इतनी बात तुम वहाँ जाकर भण्ड दानव से कहना॥ १६॥ इसी बीच श्यामा नामक एक शक्ति घोड़े पर सवार हाथ में तलवार उठाये वहाँ पहुँची॥ १७॥ अपने वाहन से उतरकर ललिताम्बिका को प्रणाम कर मन्त्रनाथा से अनुयोजित होने का वृत्तान्त बतलायी॥ १८॥ भण्ड दैत्य की अक्षौहिणी सेना में और नगर में भी मेरी परिचारिका शक्तियाँ जाकर सब कुछ देखकर लौट आयी हैं॥ १९। उन्होंने सेना और नगर में जो कुछ देखा, हमारी समाश्रित शक्तियाँ लौटकर सब कुछ बतला गयीं॥ २०॥ दैत्यों की, सैनिकों की, मन्त्रियों की, कोषों की, वाहनों की, दुर्गरक्षकों की संख्या क्या है?॥ २१॥ तुम्हारे पुत्रों की, उनके बेटों की सर्वशः संख्या, भीतर-बाहर की स्थितियाँ—उनसे कुछ भी अज्ञात नहीं है॥ २२॥ सुविदित उनकी स्त्रियाँ, उनके प्रभाषित, उनके रहस्य, उनकी मन्त्रणा जिन्हें हम भी नहीं जानते हैं॥ २३॥ वह सब उस शक्ति ने उनसे कहा। उनके वचन, उनके वृत्त अलग-अलग बतलायी। मुझे आश्चर्य है, इतने दिनों तक यहाँ रहने के बावजूद मैं नहीं जानता॥ २४॥ वह सब कुछ उस शक्ति ने उसके बारे में बतलाया, जिसके बारे में तुम भी नही जानते हो; जो कुछ भी तुमने कहा, वह सब कुछ उस शक्ति ने उन्हें बतला दिया॥ २५॥ हे दैत्यपुंगव! तुम्हारे बल से वह देवी अजेय है, उनकी एक छोटी-सी शक्ति भी पलक झपकते ही तुम्हारा सर्वनाश कर देगी॥ २६॥ हे दैत्येश्वर! तुम्हारी शक्तिशाली सेना में एक छोटा व्यक्ति मैं हूँ, इन्द्रादि से भी विजित मैं आसानी से लौटता था॥ २७॥ वही मैं आज जब देवी के सैन्य-शिविर में प्रवेश किया तो प्रवेश करते ही उनकी एक सामान्य शक्ति ने बड़ी आसानी से मुझे पकड़ लिया; ठीक उसी तरह जैसे सिंह हिरण के छौने को पकड़ता है॥ २८॥ जैसे एक बच्चा

न मेऽभूत् स्पन्दितुमपि शक्तिः क्व नु विमोक्षणे। अशक्यं सर्वथा दैत्यैर्जेतुं नास्त्यत्र संशयः ॥ ३० ॥
इत्युक्त्वा विररामाऽथ दैत्यो दैत्येश्वराऽग्रतः । श्रुत्वेत्थं दैत्यवचनं भण्डः स्वाऽन्तरचिन्तयत् ॥
नूनं सा त्रिपुरेशानी कृपया मयि संश्रिते । प्रसादमकरोदद्य चिरकालाभिकाङ्क्षितम् ॥ ३२ ॥
यत्तया लोकमात्रोक्तं तदद्याऽवितथायितम् । धन्योऽहं त्रिपुरेशानीं दृष्ट्वा युद्धेऽनुभाष्य च ॥
तच्छस्त्राग्निमहाज्वालानिर्दग्धकलुषाऽङ्गकः । व्रजामि तल्लोकममुं महासुखसमाश्रयम् ॥ ३४ ॥
महापापसमुद्भूतो देहोऽयं पापसंश्रयः । दैत्यस्वभावविहितश्चिरभारायितो ननु ॥ ३५ ॥
यथाऽऽविष्टिगृहीतो हि भारं क्षिप्त्वा पलायति । तथाऽहं दुःखदं देहममुं भारं विसृज्य तु ॥ ३६ ॥
पलायिष्ये सुखस्थानं न मे खेदोऽत्र विद्यते । नूनं वर्षसहस्राणां नियुतैर्देह एष मे ॥ ३७ ॥
सम्प्राप्तोऽत्यन्तसुखितामपि मे न हि रोचते । त एव भोगास्तद्राज्यं ताः स्त्रियस्तच्च सङ्गतम् ॥
अन्वहं सेवमानस्य सर्वं वैरस्यमागतम् । निर्विण्णोऽहं दृढतरमस्मात् पर्युषितात्मनः ॥ ३९ ॥
वाञ्छामि नाशं देहस्याऽऽमयं दीर्घाऽऽमयी यथा । परन्तु मे विरहिताः शोचिष्यन्ति प्रिया इमे ॥
तथा तैरप्यहं हीनो न विन्दामि क्षणं सुखम् । आदौ वाऽनन्तरं वाऽपि दुःखदैव मृतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥
तदेतद्विषमं भाति कथं नाऽर्तिर्भवेन्मम । एवं मे त्रिपुरा देवी कृपां कुर्यादभीप्सिताम् ॥ ४२ ॥
युगपद्यदि नो हन्यात् क्षेमं मे प्रतिभाति तत् । भक्तवाञ्छासमधिकफलदा सा निसर्गतः ॥ ४३ ॥
कुतो न पूरयेदिष्टं सा निजाङ्घ्र्याश्रयस्य मे । इत्थं विचिन्त्य मनसा नमस्कृत्य पराम्बिकाम् ॥

दूसरे बच्चे के हाथ से झपटकर गेंद छीन लेता है, उसी तरह उन बलवान् शक्तियों ने मुझे झपटकर पकड़ लिया ॥ २९ ॥ उनके हाथों में हिल भी नहीं सकता था, छुड़ाने की शक्ति कहाँ? उन्हें दैत्यों के द्वारा जीतना बिलकुल असम्भव है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ यह कहकर दैत्येश्वर के आगे वह दैत्य चुप हो गया। दैत्य की ऐसी बातें सुनकर भण्ड दैत्य मन-ही-मन सोचने लगा ॥ ३१ ॥ निश्चय ही उस त्रिपुरा ने मुझ आश्रित पर कृपा की है। उनकी कृपा से आज बहुत दिनों से अभिलषित मुझे प्राप्त हुआ है ॥ ३२ ॥ उस लोकमाता ने जो कहा था वह आज सत्य सिद्ध हुआ है। मैं धन्य हूँ, आज उस त्रिपुरेशानी को देखकर आमने-सामने युद्ध में बात करूँगा ॥ ३३ ॥ उनके शस्त्ररूपी अग्नि की महाज्वाला में मेरा यह पापी शरीर जलेगा, महासुख के आश्रयभूत उनके लोक में मैं जाऊँगा ॥ ३४ ॥ महापाप से उत्पन्न हुई यह देह पापाचार में ही डूबी रही है, राक्षसी प्रवृत्ति के कारण बहुत दिनों तक धरती का भार बनी रही है ॥ ३५ ॥ जैसे किसी को जबर्दस्ती पकड़कर कोई भार लाद दे और मौका मिलते ही उसे फेंककर वह भाग जाय, उसी तरह मैं दुःख देने वाली भारस्वरूप इस देह को छोड़कर ॥ ३६ ॥ भाग जाऊँगा। यह मेरे लिए कोई सुखद स्थान नहीं है, इसके लिए मुझे कुछ भी कष्ट नहीं होगा; हजारों साल से मैं इस देह को ढोता आ रहा हूँ ॥ ३७ ॥ आह! अत्यन्त सुख भी इसके सामने मुझे अच्छा नहीं लगता। वही भोग है, वही राज्य है, वे ही स्त्रियाँ हैं, वे ही संगति हैं। ३८ ॥ उस भगवती की सेवा के सामने मुझे इन सबों से विरक्ति हो गई हैं। मैं बहुत दुःखी हूँ, उनसे अलग मेरी आत्मा पीड़ित है ॥ ३९ ॥ इस देह का मैं नाश उसी तरह चाहता हूँ जैसे लम्बे रोग से कोई रोगी मुक्ति चाहता है किन्तु मैं जब नहीं रहूँगा तब मेरी ये पत्नियाँ शोकसागर में डूब जायेगीं ॥ ४० ॥ उसी तरह मैं भी अपनी प्रिया से विहीन क्षणभर भी सुख नहीं पाऊँगा। पहले हो या अन्त में—मौत सर्वदा दुःखद ही होती है ॥ ४१ ॥ इसलिए यह विषम है, मेरे कष्ट का निवारण कैसे होगा? यदि त्रिपुरा देवी इस तरह मुझ पर कृपा करें तो मेरा अभीप्सित मुझे प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥ एक साथ यदि वह मुझे मार भी देती है तो मेरा कल्याण ही उसमें मुझे दिखायी देता है, क्योंकि वह भगवती भक्तों की कामना से अधिक

नाट्ये नट इव स्वैरं क्रोधमाहारयत् परम् । धिगस्त्वधम दैतेय कथं मम समक्षतः ॥ ४५ ॥
अप्रियां परसंश्लाघां कुर्वन्नपि न लज्जसे । परसंश्लाघनं यत्तल्लोके कापुरुषव्रतम् ॥ ४६ ॥
परन्तु बलिनं ज्ञात्वा न शूरः श्लाघते क्वचित् । बली वाऽप्यबलो वाऽपि शूरास्तत्र न बिभ्यति ॥
इत्युक्त्वा खड्गमुद्यम्य क्रुद्धः कालमहाऽहिवत् । वमन्निव नेत्रमुखात् क्रोधकाकोलपावकम् ॥
निर्ययौ नगरद्वारान्महाबिलमुखादिव । पश्यन्तु दैत्या ये भीताः तस्यामेति पराक्रमम् ॥ ४९ ॥
अद्य मां समरे प्राप्य पुनः सा न भविष्यति । वदन्तमेव दैत्येशं सूतः सरथमग्रतः ॥ ५० ॥
अभ्याजगामाऽथ सोऽपि रथमारुह्य संययौ । तं मेनिरे जनाः कालं जगत्संहरणोद्यतम् ॥ ५१ ॥
नाऽस्य क्रोधाग्निमासाद्य जगद्भूयो भविष्यति । इत्यूचुः सहसा सर्वे भीताश्चाऽसुरपुङ्गवाः ॥
निर्ययुः स्वस्वसेनाभिः सेनाऽध्यक्षाश्च मन्त्रिणः । पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च भ्रातरः सर्व एव ते ॥
भीता निःशेषतः सेनां समादाय विनिर्ययुः । अथाऽज्ञप्तो विशुक्रेण कुटिलाक्षश्च भूपतिः ॥ ५४ ॥
अक्षौहिणीपञ्चकेन चक्रे नगररक्षणम् । तन्निवेद्य विशुक्राय विकर्षन्महतीं चमूम् ॥ ५५ ॥
ययौ भण्डासुरस्याऽग्रे ग्रसन्निव ककुप्तटम् । एवं प्रचलिते दैत्यराजे निखिलसेनया ॥ ५६ ॥
अवादयंस्तु दैतेया रणभेरीः समन्ततः । पटहाऽऽनकभेरीणां वाद्यैर्दैत्यविगर्जनैः ॥ ५७ ॥
आस्फोटैर्नेमिघोषैश्च गजचीत्कारमिश्रितैः । वन्दिमागधसन्नादैर्हयह्रेषितबृंहितैः ॥ ५८ ॥
तुरङ्गखुरविक्षेपोन्मिषच्चटचटारवैः । हुङ्कृताऽऽह्वानसंरावैः संहतो हि महास्वनः ॥ ५९ ॥

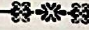
फल देने वाली है ॥ ४३ ॥ अपने चरणों के आश्रित मेरा वह अब तक अभीष्ट क्यों नहीं पूरा करती है? मन-ही-मन ऐसा सोचकर उस पराम्बिका को प्रणाम कर ॥ ४४ ॥ नाटक में अभिनेता जैसे अपना रूप बदलकर अभिनय करता है, उसी तरह क्रोध से जलते हुए उसने कहा—अरे दैत्य! तुम अधम हो, मेरे सामने तुम लौटकर कैसे आया? तुम्हें धिक्कार है ॥ ४५ ॥ दूसरों की अप्रिय श्लाघा करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? दुश्मन की बुराई करना लोक में कायरों का लक्षण है ॥ ४६ ॥ लेकिन दूसरों को बलवान् जानकर शूर पुरुष उसकी श्लाघा नहीं करते। वह बली हो या दुर्बल, वीर उससे कभी नहीं डरते ॥ ४७ ॥ यह कहकर हाथ में तलवार उठाकर क्रुद्ध होकर कालरूपी महानाग की तरह नेत्र रूपी मुख से क्रोध रूपी आग उगलते हुए की तरह ॥ ४८ ॥ नगरद्वार की ओर उसी तरह निकला जैसे महाबिल से साँप और कहा—देखो, डरे हुए वे दैत्य, उनका पराक्रम क्या है? ॥ ४९ ॥ आज रणांगन में मुझे पाकर फिर वह कभी नहीं होगी। इस तरह बोलते हुए दैत्यराज के सामने सारथी रथ लिये खड़ा हो गया ॥ ५० ॥ वह दैत्यराज भी वहाँ आया और रथ पर सवार होकर चल दिया। वहाँ उपस्थित लोगों ने संसार-संहार के लिए तैयार काल के रूप में उसे देखा ॥ ५१ ॥ डरे हुए सभी असुरपुंगवों ने अचानक कहा—इसकी क्रोधाग्नि में घिरकर संसार बच नहीं पायेगा ॥ ५२ ॥ अपनी-अपनी सेना के साथ सेनाध्यक्ष, मन्त्रीगण, बेटे, पोते, परपोते तथा भाई सभी एक साथ बाहर निकल गये ॥ ५३ ॥ डरी हुई सारी सेना को साथ लेकर बाहर निकल पड़ें। इसी बीच राजा ने विशुक्र और कुटिलाक्ष को आज्ञा दी ॥ ५४ ॥ 'पाँच अक्षौहिणी सेना नगर की रक्षा में लगी है' यह निवेदन कर विशुक्र के लिए एक बहुत बड़ी चमू को लेकर। ५५ ॥ भण्डासुर के आगे धरती किनारे को ग्रसने के लिए मानो चली हो, ऐसे सारी सेना के साथ दैत्यराज भी चल रहा था ॥ ५६ ॥ राक्षसगण चारों ओर रणभेरी बजा रहे थे। ढोल, नगाड़ें, तुरही और दैत्यों का गर्जन—एक साथ मिलकर कोलाहल करने लगे ॥ ५७ ॥ आस्फोट और नेमि के घोष गज के चींग्घाड़ के साथ मिलकर बन्दी मागध और घोड़ों की हिनहिनाहट से कोलाहलपूर्ण वातावरण हो उठा ॥ ५८ ॥ घोड़ों के टापों की खटपटाहट, हूँकार और सेना की ललकार

बभौ जगत्पटीभेदप्रगल्भ इव पूरितः । सेनास्वनं समाकर्ण्य भण्डदैत्यसमागमम् ।। ६० ।।
विदित्वा चारमुखतो निश्चित्य महदुद्यमम् । दण्डिनी त्वरिता मन्त्रनाथां प्राप्य व्यजिज्ञपत् ।।
सचिवेश्येष सम्प्राप्तो भण्डः सेनासमन्वितः । महासन्नाहसम्भारो युद्धं महदुपस्थितम् ।। ६२ ।।
विज्ञाप्य ललितादेवीं समेताशक्तिभिर्वृता । संरक्षन्ती शक्तिगणैर्महाराज्ञा अनुव्रज ।। ६३ ।।
अहं यास्ये तन्निरोद्धुं पुरतः सेनयाऽऽवृता । एष शब्दः श्रूयते वै गजवाजिसमाकुलः ।। ६४ ।।
मन्ये बाला सम्प्रवृत्ता युद्धे युद्धसमुत्सुका । सम्पन्नाथाऽश्वनाथाभ्यां युता चित्रपराक्रमा ।। ६५ ।।
एवं वदन्त्यां तस्यान्तु प्राप्ता सन्देशहारिणी । वर्धयित्वा दण्डनाथां मन्त्रिणीञ्चाऽप्यभाषत ।। ६६ ।।
देवि प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं बालाम्बया सह । दैत्यराजस्य सन्नाहो महान् युद्धसमुद्यमः ।। ६७ ।।
भ्रातृपुत्रादिसहितसर्वसेनासमावृतः । समागतः क्रूरतरो युध्यति क्रूरविक्रमः ।। ६८ ।।
इति विज्ञापनायाऽहं सम्पत्कर्या निरूपिता । किं वदामि पुनर्गत्वा तां देवीं गजवाहिनीम् ।। ६९ ।।
श्रुत्वा सन्देशहारिण्या वाक्यं श्रीदण्डनायिका । प्राह तत्कालसदृशं वाक्यं विक्रमबृंहितम् ।। ७० ।।
गच्छेभसेनानेत्रीं तां ब्रूहि श्रुत्वा मदीरितम् । अप्रमत्ततया नूनं योद्धव्यं दैत्यपुङ्गवैः ।। ७१ ।।
बाला कुमारिका नित्यं युद्धगोष्ठीसमुत्सुका । सर्वतः सा रक्षितव्या प्राप्ताऽस्म्यहमपि द्रुतम् ।।
यथा पलाय्य नो गच्छेन्मायया दैत्यपुङ्गवः । तथा संरुध्य योद्धव्यं यावन्मम समागमः ।। ७३ ।।
ततोऽहं तस्य न चिरं युद्धश्रद्धां चिरन्तनीम् । नाशयामि क्षणेनैव तमः सूर्योदये यथा ।। ७४ ।।
गच्छ शीघ्रं समादाय सन्देशं गजवाहिनीम् । आज्ञप्तैव निर्गता सा शक्तिः सन्देशहारिणी ।। ७५ ।।

मिलकर महानाद फैलाने लगे ।। ५९ ।। संसार प्रगल्भ पटीभेद से पूरित की तरह हो उठा, सेना की आवाज सुनकर तथा भण्ड दैत्य का समागम ।। ६० ।। दूत के मुख से जानकर महान् संग्राम होगा—यह समझकर दण्डिनी ने शीघ्र ही मन्त्रनाथा के पास जाकर उनसे निवेदित किया ।। ६१ ।। हे सचिवेशी ! मुझे खबर मिली है कि अपनी सेना के साथ भण्ड दैत्य आगे बढ़ रहा है, हमारे सामने महान् युद्ध उपस्थित हुआ है ।। ६२ ।। यह सूचना ललिता देवी को विज्ञापित कर शक्तिसेनाओं को साथ लेकर महारानी की रक्षा करते हुए आगे बढ़ो ।। ६३ ।। देखो, हाथी-घोड़ों की आवाज साफ सुनायी पड़ रही है। मैं सेना लेकर उन्हें रोकने के लिए आगे बढ़ रही हूँ ।। ६४ ।। युद्ध करने के लिए उत्सुक, युद्ध में सम्प्रवृत्त सम्पन्नाथा और अश्वनाथा के साथ अपना पराक्रम दिखलायेगी ।। ६५ ।। इस तरह बोलती हुई उनके पास सन्देश-हारिणी पहुँची और उन्हें प्रोत्साहित कर दण्डनाथा और मन्त्रिणी से भी कहा ।। ६६ ।। हे देवि ! बालाम्बा के साथ महायुद्ध ठन गया है, दैत्यराज की सेना महान् युद्ध के लिए तैयार है ।। ६७ ।। भाई-बेटे आदि के साथ सेना से घिरे क्रूरतम क्रूरविक्रम युद्ध करते हुए आया है ।। ६८ ।। यह जानने के लिए मैंने सम्पत्करी को निरूपित किया है, क्या बोलूँ? फिर वहाँ जाकर उस गजवाहिनी देवी को ।। ६९ ।। सन्देशहारिणी की बातें सुनकर श्रीदण्डनायिका ने समयोचित पराक्रमवर्द्धक वाक्य कहा ।। ७० ।। मैं जो कुछ कहती हूँ उसे सुनकर गजसेनानेत्री से जाकर कहो; अप्रमत्त होकर दैत्यराज के साथ युद्ध करना चाहिए ।। ७१ ।। बाला कुमारिका जो रणांगन में अपना जौहर दिखाने के लिए उतावली बनी रहती है, उसकी रक्षा चारों ओर से करनी चाहिए; मैं भी वहाँ शीघ्र ही पहुँच रही हूँ ।। ७२ ।। जैसे वह दैत्यपुंगव छलकर कहीं भाग न निकले तब तक उसे घेरकर युद्ध करो, जब तक मैं वहाँ न पहुँच जाऊँ ।। ७३ ।। बहुत दिनों से जो उसकी युद्ध की श्रद्धा है उसे मैं एक क्षण में मिटा देती हूँ, ठीक उसी तरह जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार मिट जाता है ।। ७४ ।। गजवाहिनी के लिए यह सन्देश लेकर तुम शीघ्र जाओ। आज्ञा

ततः किरिरथारूढा दण्डिनी निर्ययौ द्रुतम्। असङ्ख्यशक्तिसेनाभिर्युता क्रोधसमाकुला॥ ७६॥
निसर्गक्रोधना भूयो युद्धोपक्रमरोषिता। दिधक्षन्तीव लोकांश्च सर्वान् रोषाग्निना क्षणात्॥ ७७॥
रथनेमिमहास्वनयुतः सेनामहारवः। परेषां हृदयं भिन्दन् श्रोत्रमार्गेण संविशन्॥ ७८॥
प्रतिस्वानमहाघोषः प्रोच्चलद्भीषणाऽऽकृतिः। एवं श्रीदण्डसाम्राज्ञी जैत्रयात्रामुपाक्रमत्॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये ललितामाहात्म्ये युद्धाऽऽरम्भं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ५१७४॥



मिलते ही वह सन्देशहारिणी शक्ति बाहर निकल आयी॥ ७५॥ उसके बाद किरि-रथ पर सवार होकर दण्डिनी शीघ्र बाहर निकल आयी। उनके साथ अनगिनत शक्तिसेना थी, वे क्रोध से आकुल-व्याकुल हो रही थीं॥ ७६॥ स्वभाव से ही क्रोधी वह युद्ध के उपक्रम से और क्रोधित हो उठी। लगता था, वह अपनी क्रोधाग्नि से पलभर में समस्त लोकों को जला डालेगी॥ ७७॥ रथ की घड़घड़ाहट और सेना की घोर आवाज मिलकर कान के रास्ते भीतर घुसकर दुश्मन की छाती को छलनी बना रही थी॥ ७८॥ प्रतिध्वनि का महाघोष और दौड़ती भीषण आकृतियों को साथ लेकर दण्डसाम्राज्ञी ने विजय-यात्रा प्रारम्भ की॥ ७९॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत युद्ध-आरम्भ नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५१७४॥



अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

भण्डासुरमहासेनाकोलाहलमहाध्वनिम् । निशम्य प्रैक्षदत्यन्तयुद्धोत्सुकतया दिशम्॥ १ ॥
प्रागुदीचीं कुमारी सा ललिताया मनःप्रिया । ददर्श दैत्यसेनायाः सम्मर्दजनितं रजः ॥ २ ॥
प्रतिसञ्चरसम्भूतसांवर्तकसमूहवत् । ज्ञात्वा प्राप्तं दैत्यराजं सर्वसेनासमावृतम्॥ ३ ॥
समरोत्सुकचित्ता सा बाला त्रिपुरसुन्दरी । लघुचक्ररथाऽऽरूढा रथनेत्रीमचोदयत्॥ ४ ॥
श्रीमातुः प्रतिरोधं सा तर्कयन्त्यथ संयुगे । अदृष्ट्वैव महादेवीं मन्त्रिणीमभिसंययौ॥ ५ ॥
सेनानेत्रीश्च सेनाश्चाऽप्याकाङ्क्षन्त्यतिसत्वरम् । दैत्यसेनाऽभिमुखतो वायुवेगेन संययौ॥ ६ ॥
शरदीव महामेघ आकाशे वायुनेरितः । यथा पुरो निपतति तथा वेगाद्रथो ययौ॥ ७ ॥
बालाया युद्धयात्रां तां विषमां वीक्ष्य सत्वरम् । अश्वारूढा द्रुततरं तामनु प्रतिसंययौ॥ ८ ॥
तुरङ्गैस्तुङ्गभङ्गाभैः पयोधिरिव तच्चमूः । उपाऽद्रवज्जगज्ज्वालाप्लावनायेव सर्वतः॥ ९ ॥
सम्पत्करी च तत्पश्चाद्रणकोलाहलस्थिता । अनेककोटिमातङ्गसेनासंवलिता द्रुतम्॥ १० ॥
वेगादनुससारोच्चैर्बालारक्षणहेतवे । नोदिता शीघ्रसंयाने रथविद्याविशारदा॥ ११ ॥
बालायाः सदृशाऽकारा वाहयत् स्यन्दनं जवात् । प्रावृण्नदीव जलधिं दैत्यसेनां व्यगाहत॥ १२ ॥
सज्यं धनुर्विकर्षन्ती वर्षन्ती शरवर्षणम् । नदीवेगविभिन्नेऽब्धौ नौरिव स्यन्दनन्तु तत्॥ १३ ॥

❋ विमला ❋

भण्डासुर की महासेना के कोलाहल से महाध्वनि उत्पन्न हो रही थी, जिसे सुनकर युद्ध के लिए अत्यन्त उत्सुक दिशाओं को उन्होंने देखा॥ १॥ दैत्यसेना के मर्दन से उठी धूलिघटाओं से आच्छादित उत्तर और पूरब की ओर श्रीललिता की मनःप्रिया बालाकुमारी ने देखा॥ २॥ सांवर्तक प्रलयकालीन हवा से उठे बवण्डर की उठी उन हवाओं को देखकर उसने समझा कि दैत्यराज अपनी सेना से घिरा आ गया॥ ३॥ युद्ध के लिए उत्सुक मन वाली वह बाला त्रिपुरसुन्दरी ने छोटे चक्ररथ पर सवार हो कर रथनेत्री को प्रेरित किया॥ ४॥ श्रीमाता के प्रतिरोध को युद्ध में सोचते हुए वह महादेवी को बिना देखे ही मन्त्रिणी के साथ आगे बढ़ गई॥ ५॥ युद्ध की आकांक्षा से अतिशीघ्र ही सेना के साथ सेनानेत्री वायुवेग के साथ वहाँ जा पहुँची॥ ६॥ शरद् ऋतु के आकाश में जैसे महामेघ वायुप्रेरित होकर इधर-उधर हिलता है उसी तरह वेग के साथ दैत्यसेना के आगे उसका रथ जा पहुँचा॥ ७॥ उस बाला की इस युद्ध-यात्रा को विषम देखकर अश्वारूढ़ शक्तियाँ उनके पीछे जा लगीं॥ ८॥ तुंगभंगा की तरह तुरंगों से भरे सागर की तरह उमड़ते उस सैन्यदल की उफनती ज्वाला में सम्पूर्ण संसार को डूबा डालने के लिए वह तत्पर थी॥ ९॥ उसके पीछे सम्पत्करी रणकोलाहल के बीच खड़ी थी। अनेक करोड़ मातंग-सेना के साथ वह शीघ्र वहाँ पहुँच गई॥ १०॥ उस बाला की रक्षा के लिए वेग के साथ उसका पीछा किया। वह रथविद्याविशारद थी और रथ पर सवार थी॥ ११॥ जिस रथ पर बाला सवार थी उस रथ को शीघ्रता से चलने वाली सारथी उसी उम्र और आकृति की थी। वर्षा ऋतु की नदी से उफनते सागर की तरह दैत्यसेना का वह अवगाहन कर रही थी॥ १२॥ सजे धनुष की प्रत्यंचा को खिंचती हुई तीर बरसाती नदीवेग से छिन्न-भिन्न सागर में छोटी नदी की तरह उसका रथ लग रहा था॥ १३॥

विवेश दैत्यराजस्य शरौघदलितां चमूम् । कुटिलाक्षो दैत्यसेनामुखे कुञ्जरसंस्थितः ॥ १४॥
महत्या सेनया बालां संरुरोध महाबली । दैत्यसेनापतिः सोऽपि दृष्ट्वा बालां कुमारिकाम् ॥
सृजन्तीं शरवर्षाणि मेनेऽद्भुतपराक्रमम् । एकाकिनीं रथारूढां मृद्वङ्गीमष्टहायनाम् ॥ १६॥
अहो चित्रतमं ह्येतत् केयमेका कुमारिका । निर्भया योधयत्यस्मानिन्द्रादीनाञ्च त्रासनात् ॥
मन्येऽहं ललितामेनां निमित्तैश्चारसंस्तुतैः । लक्षये सर्वचिह्नानि किन्त्वेषा तरुणी न च ॥ १८॥
अप्येषा तस्य तनया भवेत् पूर्वं हि या श्रुता । कथं तत्तनया बाला सेनाविरहिता पुनः ॥ १९॥
एकला युद्धसन्नद्धा समागच्छेन्मृधे क्वचित् । नूनमेषैव सर्वान्नो जेष्यतीव विभाति मे ॥ २०॥
लक्षये न युधि स्थातुं सम्मुखेऽस्या भवेत् प्रभुः । विशुक्रो वा विषङ्गो वा राजा वाऽप्यहमेव वा ॥
कुतो राजकुमाराद्याः प्रत्येकं मिलिताश्च वा । अस्मत्सेनां यत्र यत्र निरीक्षति ततस्ततः ॥
शरजालेन शिथिलां करोति निमिषाऽर्धतः । कोटिशो निहता दैत्यास्त्रासिताऽस्मन्महाचमूः ॥
एते विभिन्नबाह्वङ्घ्रिहृदयक्रोडमस्तकाः । पतिताश्च मृताश्चाऽन्ये धावन्त्यन्ये महाभयात् ॥ २४॥
शोणितप्रवहां तर्तुमशक्ता भयकम्पिताः । पतितास्तत्र शतशो निमग्ना रक्तसिन्धुषु ॥ २५॥
प्राप्तैषाऽस्मच्चमूं भित्त्वा प्रविशेत् क्षणमात्रतः । रोद्धव्येयं मया यत्नाद्धिङ्मामेवंविधं स्थितम् ॥
योषिद्बाला मत्समक्षं भित्त्वा सेनां प्रवेक्ष्यति । नैतदिन्द्रेण मरुता वायुनाऽपि कृतं पुरा ॥ २७॥
विषमं भाति मे ह्येतदेषा ज्ञेयेति सर्वथा । इति निश्चित्य तां रोद्धुं महागजसमास्थितः ॥ २८॥

दैत्यराज के शरसमूह से दलित सैन्य-दल में प्रवेश कर गई। दैत्यसेना का प्रमुख हाथी पर सवार सामने कुटिलाक्ष था ॥ १४॥ उस बाला की महती सेना ने उस महाबली को आगे बढ़ने से रोक दिया। इधर दैत्यसेनापति ने बाला कुमारिका को देखकर ॥ १५॥ केवल आठ वर्ष की उम्र वाली वह कुमारी बाला कोमल अङ्ग वाली अकेली रथ पर सवार अद्भुत पराक्रमशालिनी ने बाणों की वर्षा कर डाली ॥ १६॥ यह विचित्र आश्चर्य की बात है! यह अकेली कौन है जो हमसे निडर होकर जूझ रही है? जिसके भय से इन्द्रादि देवता परेशान हैं ॥ १७॥ मैं यह मानता हूँ कि यह स्वयं ललिता है—ऐसी सूचना मुझे दूतों से मिली है। इसके शरीर के सारे चिह्नों से भी वह वैसा ही लगती है, किन्तु यह युवती तो नहीं है ॥ १८॥ फिर भी यह उसकी बेटी हो सकती है, जैसा कि मैंने पहले सुना है। अगर यह उसकी बेटी है तो सेना इसके साथ क्यों नहीं है? ॥ १९॥ यह अकेली युद्ध के लिए तैयार होकर रणाङ्गन में आ धमकी है। निश्चय ही यही हम सबों को जीतेगी, ऐसा मुझे लगता है ॥ २०॥ मुझे लगता है—युद्ध में इसके सामने कोई नहीं टिकेगा, वह विशुक्र हो या विषंग, राजा हो या स्वयं मैं ॥ २१॥ राजकुमार प्रभृति कहाँ है? वे अकेले हैं या मिले हैं? जहाँ-जहाँ हमारी सेना है वहाँ-वहाँ यह निरीक्षण कर रही है ॥ २२॥ अपने शरजाल से आधे पल में ही सबको शिथिल कर दिया है, हमारे सैन्य-दल के करोड़ों दैत्य मारे जा चुके हैं; जो बचे हैं, वे डर से थर-थर काँप रहे हैं ॥ २३॥ किसी की बाँहें कटी हैं तो किसी के पैर, किसी की छाती फटी है तो किसी की कमर कटी है, किसी की गर्दन कटी है; ऐसे अङ्ग-भङ्ग लोग कहीं गिर कर कराह रहे हैं तो कुछ मर गये हैं। जो बचे हैं वे महाभय से भागते नजर आ रहे हैं ॥ २४॥ रक्त की नदियाँ बह रही हैं। ये डरे भगेडू उसे तैरकर पार करने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं, वहीं गिरकर रक्तसागर में डूब रहे हैं ॥ २५॥ क्षणभर में हमारे सैन्य-व्यूह को चीरकर वह बीच सेना में घुस आयी है, मुझे प्रयासपूर्वक इसे रोकना चाहिए। मुझे धिक्कार है, मैं खड़ा यह सब देख रहा हूँ ॥ २६॥ यह अकेली बाला हमारे सामने ही हमारे सैन्य में व्यूह को चीरकर प्रवेश कर गई, इससे पहले ऐसा काम इन्द्र, मरुत् या वायु ने भी नहीं किया है ॥ २७॥ यह मुझे बड़ा विषम

ससार पुरतस्तस्याः शरजालान्यवाकिरत्। युयोधाऽतिबलो दैत्यः कुटिलाक्षस्तया सह॥ २९॥
बालया युद्धकुशलो मायाशस्त्राऽस्त्रकोविदः। ववर्ष शरवर्षेण बालां युद्धेऽग्रतः स्थिताम्॥ ३०॥
उद्यन्तं भास्करमिव हिमसंहतिवर्षवत्। साऽपि बालाऽरुणाऽऽभाङ्गी शरतीक्ष्णतरांऽशुभिः॥
अनयन्नाशमत्यन्तं तं वर्षं निमिषाऽर्धतः। अर्दयामास दैत्यस्य सेनां निशितसायकैः॥ ३२॥
अतिलाघवतस्तस्याः शरसन्धानमोक्षणम्। न वेद कश्चित्कुशलोऽप्यतिसूक्ष्मदृशाऽपि च॥ ३३॥
अपश्यन् शरसङ्घातधारां चापविनिर्गताम्। प्रावृड्गिरिमुखात्तोयधारामिव निरन्तराम्॥ ३४॥
विधूय तां महासेनां मुहूर्ताऽष्टममागतः। कुटिलाक्षं समासाद्य जघान निशितैः शरैः॥ ३५॥
युयोध सोऽपि बलवान् सर्वप्राणेन संयुगे। तस्य शस्त्राऽस्त्रजालानि प्रतिशस्त्राऽस्त्रवर्षतः॥
मोघं कृत्वा शरैस्तीक्ष्णैः प्राहरद्दैत्यनायकम्। एकेन तीक्ष्णभल्लेन चापं तस्याऽच्छिनज्जवात्॥
ततश्चैकेन वाहस्य गजस्य प्राहरन्मुखे। इषुणा ताडितो वक्त्रे गिरिराजसमो गजः॥ ३८॥
चीत्कुर्वन् बिभ्रत् भूमौ गताऽसुरपतत् क्षणात्। मरिष्यन्तमिभं ज्ञात्वा कुटिलाक्षो गदाधरः॥
क्रोधेनाऽभ्यद्रवद्धन्तुं बालां रथसमाश्रयाम्। ग्रसन्तमरुणं बालं राहुं द्रुतगतिं यथा॥ ४०॥
अपश्यन् विबुधाः सिद्धा नभोमण्डलसंश्रयाः। आयान्तमतिवेगेन गदाहस्तं निशाम्य सा॥ ४१॥
शरेणाऽऽकर्णपूर्णेन विव्याध हृदयाऽन्तरे। स विद्धस्तीक्ष्णबाणेन बहुशोणितमुद्गिरन्॥ ४२॥
पपात मूर्च्छितो भूमौ वज्राऽऽहतमहीध्रवत्। अथ बाला प्राह सखीं रथनेत्रीं स्मिताऽऽनना॥

प्रतीत होता है, यह सर्वथा विजयिनी होगी। ऐसा मन में निश्चय कर विशाल गज पर सवार होकर उसे रोकने के लिए॥ २८॥ उसके शरजाल को तितर-बितर करते उसके सामने बढ़ आया। यह कुटिलाक्ष अतिबली दैत्य था, बालाकुमारी के साथ इसने युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया॥ २९॥ कुमारी बाला से यह अधिक युद्ध-कुशल था, मायिक अस्त्र-शस्त्र का ज्ञाता था। उस बाला के आगे खड़ा हो बाणों की वर्षा कर डाली॥ ३०॥ उगते हुए सूर्य जैसे बरसते ओले को समाप्त कर देते हैं, उसी तरह वह बाला भी जिसके शरीर से अरुण आभा फूट रही थी, अपने तीक्ष्णतर बाणांशु से॥ ३१॥ आधे पल में ही उसके तीर की वर्षा को शान्त कर दिया और अपने तीव्र बाणों से दैत्यसेना को चबा डाला॥ ३२॥ अतिदक्षता के साथ शर का सन्धान और उसे छोड़ना अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से कुशल धनुर्धर भी नहीं देख पा रहा था॥ ३३॥ धनुष से निकले शर-समूह की धारा गिरिगह्वर के मुख से निकलती वर्षा ऋतु में निरन्तर जलधारा की तरह लोगों ने उसे देखा॥ ३४॥ सिर्फ पाँच मिनट के भीतर उसकी महासेना को रूई की तरह धुनकर फिर कुटिलाक्ष के सामने आकर तीव्र बाणों से उस पर प्रहार कर दिया॥ ३५॥ उस बलवान् कुटिलाक्ष ने अपनी सारी शक्तियों के साथ युद्ध किया। उसके अस्त्र-शस्त्र के जालों को प्रतिशस्त्र की वर्षा से॥ ३६॥ व्यर्थ कर तीक्ष्ण शर से उस दैत्य-नायक पर प्रहार किया। एक तीव्र भाले से जब तक वह सम्हले उसके धनुष को वेग के साथ काट डाला॥ ३७॥ उसके बाद दूसरे बाण से एकमात्र उसकी सवारी हाथी के मुख पर प्रहार किया। बाण मुँह पर लगते ही हिमालय की तरह विशाल वह गजराज॥ ३८॥ एक क्षण में चिंग्घाड़ते हुए नाचकर धरती पर गिरा और मर गया। 'यह हाथी अब मर गया' यह जानकर कुटिलाक्ष हाथ में गदा लेकर॥ ३९॥ रथ पर सवार उस बाला को क्रोधातुर होकर उसी तरह मारने दौड़ा जैसे बाल-अरुण को ग्रसने के लिए राहू वेग से दौड़ता है॥ ४०॥ आकाश में स्थित देवगण और सिद्धों ने देखा कि उस बाला ने वेग के साथ गदा हाथ में लिये अपनी ओर आते देखकर॥ ४१॥ कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर एक तीर से उसके हृदय को वेध डाला। तीक्ष्ण बाण लगते ही वह राक्षस लहू का वमन करते हुए॥ ४२॥ मूर्च्छित होकर उसी तरह धरती

सखि शीघ्रं नय रथं भण्डदैत्यसमीपतः। आयात्येषा पृष्ठतो मे दण्डिनी शूकरध्वजा॥४४॥
उत्कण्ठिताऽस्मि दैत्येन योद्धुं भण्डेन सङ्गरे। मामासाद्य दण्डनाथा प्रतिरोत्स्यति वै ध्रुवम्॥४५॥
यथा नाऽऽसादयेन्मां सा तथा वाहय सत्वरम्। इत्युक्त्वा रथनेत्री सा बालां प्रोचे सखी तदा॥४६॥
दैत्यसेनां मध्यतस्तु ध्वजो योऽयं महोन्नतः। दृश्यते काञ्चनमयो रथस्तस्यैष एव हि॥४७॥
इतो दूरतरे स स्यान्महद्भिर्दैत्यपुङ्गवैः। महारथिभिरत्युग्रैः संवृतो ननु दृश्यते॥४८॥
विवरन्तु न पश्यामि रथं येन नयामि तत्। शस्त्रेण सृज मार्गं त्वं वाहयामि ततो रथम्॥४९॥
इत्युक्त्वा लघुहस्ता सा बाला मार्गमकल्पयत्। शरवृष्ट्या निमेषेण दैत्यसेनासु मध्यतः॥५०॥
सायकौघप्रवाहेन भग्नसेतुरिवाऽऽबभौ। सेनामुखं महाशूरैर्दैत्यै रुद्धमपि क्षणात्॥५१॥
केचिद्भग्नरथाश्चाऽन्ये नष्टाऽश्वगजवाहनाः। असह्यां शरधारां तां प्राप्य दैत्याः प्रदुद्रुवुः॥५२॥
अपरे छिन्नबाह्वक्षिचरणोदरमस्तकाः। तथाऽन्ये शस्त्रसङ्घातपातेन तिलशः कृताः॥५३॥
ववुः शोणितवाहिन्यो भीरूणां सागरोपमाः। सुफेनिलास्तरङ्गाढ्या उष्णोदकवहा इव॥५४॥
शरजालमहामेघच्छन्नसूर्यकरा दिशः। अन्धीभूता न विदिता दैत्यैर्विद्रावतत्परैः॥५५॥
मेनिरे ते महामृत्युं प्राप्तं बालास्वरूपतः। पतन्ति सङ्घशस्तत्र दैत्यानां मस्तकान्यलम्॥५६॥
तृणराजफलानीव पक्वानि प्रौढवायुना। हा तात पुत्र सुसखे भ्रातर्मित्र हतोऽस्म्यहम्॥५७॥
इति घोषो महानासीद्दैत्यानां रणसङ्कटे। तदन्तरे मुखे भग्ने सेनायास्तस्य वेगतः॥५८॥

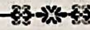
पर गिरा जैसे वज्र की चोट खाकर पहाड़ गिरता है। उसके बाद उस बाला ने स्मितानना (मुस्कराती चेहरे वाली) अपनी सखी रथनेत्री से कहा॥४३॥ हे सखि! शीघ्र मेरे रथ को भण्ड दैत्य के पास ले चल और मेरे पीछे शूकर ध्वजा वाली दण्डिनी आये।४४॥ रणाङ्गन में भण्ड दैत्य के साथ युद्ध करने के लिए मैं बड़ी उतावली हो रही हूँ, यदि दण्डनाथा आ पहुँची तो वह मुझे रोकने की कोशिश करेगी॥४५॥ वह मुझ पर आक्रमण न करे—उस तेज गति से रथ को हाँको। रथनेत्री से इतना कहकर उस बाला ने अपनी सखी से कहा॥४६॥ दैत्यसेना के बीच में ऊँचा ध्वज जो सोने की तरह लहराता दीख पड़े, उसे ही मेरा रथ समझना॥४७॥ यहाँ से बहुत बड़े-बड़े योद्धाओं से घिरे महारथियों के बीच वह भण्ड दैत्य दिखायी पड़ रहा है॥४८॥ कहीं से उसके पास रथ को ले जाने की राह नहीं दिख रही है, जिससे मैं इस रथ को वहाँ तक ले चलूँ; तुम हथियार से रास्ता बनाओ और मैं रथ वहाँ पहुँचाती हूँ॥४९॥ इतना कहकर छोटी-छोटी हाथों वाली बाला ने बाणवृष्टि से सेना के बीच पलभर में अपनी राह बना डाली॥५०॥ बाण के प्रवाह से जैसे जलप्रवाह से सेतु टूट जाता है उसी प्रकार सेना के बीच से क्षणभर में अपनी राह बना डाली॥५१॥ कुछ के रथ टूट गये तो अन्य के घोड़े-हाथी नष्ट हो गये। उस असह्य शरधारा से आकुल होकर दैत्यगण भाग खड़े हुए॥५२॥ कुछ के हाथ कटे, कुछ की आँखें फूटीं, कुछ के पैर कटे, कुछ के पेट फटे, तो कुछ की गर्दन कटी; जो बचे वे हथियारों की चोट से टुकड़े-टुकड़े हो गये॥५३॥ रक्त की नदियाँ बह चलीं, डरपोकों को वह नदी सागर की तरह लगती थी। उसमें फेन भरा था, तरंग उठ रही थी और गर्मजल की नदी की तरह वह बह रही थी॥५४॥ बाणों के जाल रूपी मेघ से दिशाओं में सूर्य की किरणें ढँक गई थीं, अन्धकार छा गया था, हाथ को हाथ नहीं दिखता था; केवल दैत्य चित्कार कर रहे थे॥५५॥ उन्होंने इस बाला स्वरूप अपनी महामौत समझा। वे सभूह के रूप में कटे सिर गिरते जा रहे थे॥५६॥ जैसे खर, फल आदि पक जाने पर तेज हवा से गिरते हैं, उसी तरहं 'हा बेटे! हा मित्र!! हे भाई!!! मैं मरा' यह कहते हुए दैत्य गिर रहे थे॥५७॥ दैत्यों के रणसंकट में महान् कोलाहल हो रहा था।

प्रवेशयद्रथवरं रथनेत्री निमेषतः । विशुक्रदैत्योऽवरजौ भण्डदैत्यस्य संयुगे ॥ ५९ ॥
दृष्ट्वा भित्त्वा स्वसेनाया मुखं बालां समागताम् । गच्छन्तीं दैत्यराजेन योद्धुमुत्सुकितां तदा ॥
ज्ञात्वा विचारयन्नूनमेषा बालाऽष्टहायना । निःसीमबलवीर्याऽऽढ्या युध्यत्यतिविचित्रितम् ॥
नैषा जेयाऽसुरैः कैश्चिद्बलवद्भिरपि क्वचित् । तथाऽपि समरे शूरैर्योद्धव्यं सर्वथा ननु ॥ ६२ ॥
एषैव नाशयेत् सर्वान् दैत्यानस्मान्न संशयः । किं करिष्यति सा देवी ललिता समरे पुनः ॥ ६३ ॥
सर्वप्राणेन योद्धव्यं दैवमत्र परायणम् । इति निश्चित्य नागेन्द्रमैरावतकुलोद्भवम् ॥ ६४ ॥
श्वेतं चतुर्दन्तयुतं रजताऽद्रिसमप्रभम् । विशुक्र आरुह्य जवात् शरान् धाराधरो यथा ॥ ६५ ॥
वर्षन् विरेजे कैलासाऽऽरूढनीलाऽम्बुदोपमः । रुरोध बालां रथगां प्रविश्य दैत्यवाहिनीम् ॥
समायान्तीं जवेनाऽऽजौ चिन्वतीं दैत्यजीवितम् । संरुध्य शरवर्षेण सिंहनादमथाऽकरोत् ॥ ६७ ॥
आह्वानेन दैत्यसेनां विद्रुतां स न्यवर्तत । दैत्या नैतत्समं युद्धे कुलजानां पलायनम् ॥ ६८ ॥
भीत्या युद्धे विद्रुतन्तु धर्मश्चाऽर्थः प्रहास्यति । आहार्य वीर्यं क्रोधश्च निवर्तध्वं समन्ततः ॥ ६९ ॥
विनिर्जिताः स्त्रिया युद्धे पलाय्य सदनं गताः । किं वक्ष्यथ गृहे स्त्रीभिः पृष्टा युद्धान्निवर्तने ॥ ७० ॥
मृतिरेव ततः श्रेयः स्त्रीकृतादपमानतः । विशुक्रवचनं श्रुत्वा परावृत्तास्ततस्तु ते ॥ ७१ ॥
आगत्य बालां त्रिपुरां परिवव्रुः समन्ततः । दैत्यसेनाभिराक्रान्ता सा बाला रथसंस्थिता ॥ ७२ ॥
परिवेषितबालार्क इव तत्र व्यराजत । अथ तां रथनेत्रीं सा सखी प्राह प्रियंवदा ॥ ७३ ॥

इसी बीच जब उसके सैन्य-व्यूह का मुख भंग हो गया तो वेग के साथ ॥ ५८ ॥ पलभर में रथनेत्री ने अपना श्रेष्ठ रथ उसमें घुसा दिया। वहाँ दैत्य का छोटा भाई विशुक्र दैत्य खड़ा था ॥ ५९ ॥ हमारी सेना के प्रमुख व्यूह को भंगकर बाला को वहाँ आते देखकर कि वह बाला दैत्यराज के साथ युद्ध करने अब जा रही हैं ॥ ६० ॥ यह जानकर उस पर विचार करते हुए कहा–यह बाला केवल आठ साल की है, पर निस्सीम बल और पराक्रम की ढेर है; अतिविचित्र ढंग से यह जूझ रही है ॥ ६१ ॥ किन्हीं भी बलवान् असुरों से कहीं भी जेय नहीं है, फिर भी युद्ध में वीरों को इनके साथ सर्वथा युद्ध करना चाहिए ॥ ६२ ॥ यही बाला सभी दैत्यों का तथा हमारा भी विनाश करेगी, फिर ललिता देवी इस युद्ध में आकर क्या करेगी ? ॥ ६३ ॥ सारी शक्ति लगाकर हमें युद्ध करना चाहिए, भाग्य ही सहारा है। इतना निश्चय कर ऐरावत कुल में उत्पन्न विशाल हाथी पर ॥ ६४ ॥ वह श्वेत वर्ण तथा चार दाँत वाले चाँदी के पर्वत के समान विशाल हाथी पर विशुक्र सवार होकर मेघ की तरह बाणों को ॥ ६५ ॥ बरसाते हुए धूलि रहित कैलाश-शिखर पर सवार घटा की तरह विशुक्र ने रथ पर सवार उस बाला को दैत्यवाहिनी में प्रवेश कर रोक दिया ॥ ६६ ॥ युद्धक्षेत्र में एक-एक दैत्य के जीवन को चुनती हुई वेग के साथ आती उस बाला को शरवर्षा से रोककर उसने सिंहनाद किया ॥ ६७ ॥ इस कुलजा से युद्ध करने में असमर्थ भागते हुए दैत्यसेना को लौटाने के लिए वह पुकारने लगा ॥ ६८ ॥ अरे! डर से युद्ध के मैदान से भागने वाले! धर्म और अर्थ की खिल्ली उड़ा रहे हो ? क्रोध और पराक्रम को इकट्ठा कर चारों ओर से लौटो ॥ ६९ ॥ एक औरत से युद्ध में हारकर भागकर घर लौट रहे हो, वहाँ जब तुम सबकी पत्नियाँ युद्ध से लौटने का कारण तुमसे पूछेगीं तो क्या जवाब दोगे ? ॥ ७० ॥ एक औरत से अपमानित होने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। विशुक्र की ललकार सुनकर वे सभी भगोड़े लौट आये ॥ ७१ ॥ लौटकर चारों ओर से बाला त्रिपुरा को घेर लिया। दैत्यसेनाओं से आक्रान्त वह बाला कुमारी रथ पर बैठी थी ॥ ७२ ॥ वह वहाँ घिरे बालसूर्य की तरह शोभ रही थी। मीठा बोलने वाली उस रथनेत्री को सखी ने कहा ॥ ७३ ॥

कुमारि मन्ये दैत्यानां सेनाभारोऽतिदुःसहः । न ते पार्ष्णिग्रहा काचिच्चक्रकोप्यधिविद्यते ॥
अग्रे सेनाभरो भूयान् मन्यसे चेदहं द्रुतम् । रथं निवर्तयाम्येषा सेनायुक्ता पुनर्द्रुतम् ॥ ७५ ॥
आगत्य चैतान् दैत्येन्द्रान् यथेच्छं योधयिष्यसि । श्रुत्वा सखीवचः प्राह प्रहस्य मृदुभाषिणी ॥ ७६ ॥
भीताऽसि किं प्रिये युद्धे नैवं शतगुणा अपि । पर्याप्ता मे दैत्यसेना युध्यन्त्यायुधि मे क्वचित् ॥
लीलयाऽहं विलम्बेन युध्यामि रणकौतुकी । मन्यसे चेदिमं पश्य क्षणं निर्दैत्यलोककम् ॥ ७८ ॥
इत्युक्ता सा पुनः प्राह सखी रथवहा तदा । देवि नास्त्येव मे भीतिः सैन्येऽपीतः शतोत्तरे ॥ ७९ ॥
तथाऽपि रथनाथाया ज्ञेयं चित्तं रणोद्यमे । शङ्के श्रीललितादेव्या यदाज्ञामन्तरा त्वया ॥ ८० ॥
युद्धे विनिर्गता चाऽस्मि एतावत् साध्वसं मम । ब्रूहि शीघ्रं रथमहं क्व नयामि रणाऽवनौ ॥ ८१ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये
बालापराक्रमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५२५५ ॥



हे कुमारि! इस सन्दर्भ में मेरी मान्यता है, दैत्यों की सेना का भार अति दुःसह्य है, तुम्हारे बगल में तुम्हारे पक्ष से लड़ने वाला सैन्यचक्र एक भी नहीं है ॥ ७४ ॥ आगे सेना का भार और अधिक बढ़ जायेगा, अतः इस रथ को शीघ्र ही लौटाती हूँ एवं सेना को साथ लेकर शीघ्र ही तुम्हें यहाँ पहुँचा रही हूँ ॥ ७५ ॥ वहाँ से लौटकर इन दैत्यों से यथेच्छ युद्ध कर लेना। सखी का वचन सुनकर उस मृदुभाषिणी ने हँसकर कहा ॥ ७६ ॥ प्रिय! लड़ाई से डर गई हो क्या? जिस दैत्यसेना को तुम देख रही हो, उससे सौ गुना अधिक सेना के साथ लड़ने के लिए अभी भी मेरे पास पर्याप्त हथियार हैं ॥ ७७ ॥ रणकौतुक वश मैं विलम्ब से इन्हें खेला रही हूँ, युद्ध कर रही हूँ; मानो और देखो, इस धरती को क्षणभर में दैत्य रहित कर देती हूँ ॥ ७८ ॥ उसकी बातें सुनकर फिर रथवाहिनी सखी ने उससे कहा–हे देवि! मुझे इससे कोई डर नहीं है, फिर भी इसकी सेना शताधिक अधिक है ॥ ७९ ॥ फिर भी रथनाथा को इसकी सूचना तो मिलनी ही चाहिए। मुझे सन्देह है, तुम जो कुछ कर रही हो, श्रीललितादेवी की आज्ञा के बिना ही ॥ ८० ॥ युद्ध के लिए निकली हूँ–इतना ही मेरे लिए क्रोध का कारण है। जल्द बतलाओ, युद्धवन में इस रथ को मैं कहाँ ले जाऊँ ॥ ८१ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के
अन्तर्गत बाला-पराक्रम नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५२५५ ॥



अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

सखीवचो निशम्याऽथ बाला संहृष्टमानसा। प्राह शीघ्रं नय रथं यत्राऽसौ गजसंश्रयः॥ १॥
स्तूयमानो बन्दिगणैर्विशुक्राख्यो महासुरः। इत्याज्ञप्ता क्षणादेव निनाय स्यन्दनोत्तमम्॥ २॥
बालाऽपि दैत्यसेनां तामपारां सागरमप्रभाम्। शरसन्ततिधाराभिश्चक्रेऽतिशिथिलां तदा॥
पुनः क्षणाद्घनीभूतां दृष्ट्वा तां दैत्यवाहिनीम्। परिवार्य निजात्मानं जिघांसन्तीं विशङ्कटाम्॥
नाशयत् कुलिशास्त्रेण भस्मशेषत्वमानयत्। हतास्तत्र महादैत्याः कुलिशाऽस्त्रेण सर्वतः॥
भस्मशेषीकृताः केचित् केचिद्धतवराऽङ्गकाः। एकबाह्वक्षिचरणपार्श्वीभूतास्तथा परे॥ ६॥
महाक्रन्दभीमरवां नष्टप्रायां चमूं निजाम्। निशाम्य प्राहिणोन्नागमैरावतकुलोद्भवम्॥ ७॥
योद्धुं विशुक्रस्तां बालां दृष्ट्वाऽद्भुतपराक्रमाम्। ववर्ष शरधाराभिर्मणिशृङ्गमिवाऽम्बुदः॥
प्रतिवर्षं ववर्षाऽथ प्रतिदैत्यं शिलीमुखैः। शरवर्षं द्वयं तत्तु तमोभूतं रणाऽवनौ॥ ९॥
तदन्तरे तु निशितशरेणाऽऽनतपर्वणा। जघानाऽऽकर्णपूर्णेन हस्ते तां रथवाहिनीम्॥ १०॥
सा गाढविद्धा बाणेन किञ्चित्कश्मलमागमत्। तद्दृष्ट्वा रोषताम्राक्षी गर्जन्तं दैत्यपुङ्गवम्॥
जघान तरसा भाले तीक्ष्णभल्लचतुष्टयैः। भल्लार्दितो गाढमूर्च्छां विशुक्रः प्राप तद्गतः॥ १२॥
पुनः क्षणेन चोत्थाय ववर्ष निशितान् शरान्। अथ बाला क्षणेनैव लघुहस्तक्रियाऽन्विता॥

✲ विमला ✲

सखी की बातें सुनकर सन्तुष्ट मन से उस बाला ने कहा–शीघ्र ही मेरा रथ वहाँ ले चल जहाँ वह गजवाहिनी खड़ी है॥ १॥ वहाँ चारण और बन्दियों से स्तूयमान शुक्र नाम का महाअसुर था। ऐसी आज्ञा मिलते ही पलभर में उत्तम रथ को लेकर चली॥ २॥ उस बाला ने भी सागर की तरह उफनती उस अपार दैत्यसेना को लगातार बाणवर्षा से शिथिल कर दिया॥ ३॥ फिर एक क्षण में ही उस दैत्यवाहिनी को सघन होते देखकर अपने आप को बचाते हुए उसकी हत्या करने लगी॥ ४॥ हाथ में फरसा उठाकर सारे-के-सारे दैत्यों का उसने नाश करते हुए राख बना डाला। फरसे से चारों ओर महादैत्य मारे गये॥ ५॥ कुछ जले, कुछ मारे गये, कुछ विकलाङ्ग बनाकर धरती को पाट दिया॥ ६॥ महाक्रन्दन शुरू हुआ, डरावनी आवाज निकलने लगी। अपने सैन्य-व्यूह को विनष्ट होते देखखर ऐरावत-कुलोद्भव अपने हाथी को आगे बढ़ने के लिए ठोकर दिया॥ ७॥ उस बाला के अद्भुत पराक्रम को देखकर विशुक्र उससे युद्ध करने के लिए बाणों की धारा वर्षाने लगा, ठीक उसी तरह जैसे मणिशृंग से मेघ का पानी बरसता हो॥ ८॥ प्रत्येक दैत्य पर उस बाला ने भी बाणों की वर्षा कर दी, फलतः दोनों ओर से बाणवर्षा के कारण रणभूमि अन्धकाराच्छन्न हो उठी॥ ९॥ इसी बीच अत्यन्त तीक्ष्ण बाण को प्रत्यञ्चा पर पूरी तरह खींचकर रथवाहिनी पर चला दिया॥ १०॥ वह रथवाहिनी गहरे घाव से घायल होकर थोड़ी देर के लिए बेहोश हो गई। यह देखकर क्रोध से लाल-लाल आँखें किये गरजते दैत्यपुङ्गव को॥ ११॥ तीक्ष्ण चार भाले से एक साथ अतिशीघ्र प्रहार कर दिया। भाला लगते ही विशुक्र पर गाढ़ी मूर्च्छा छा गई॥ १२॥ फिर एक क्षण के बाद उठकर उसने तेज बाणों की वर्षा कर दी। उस बाला ने भी अपने छोटे हाथों की कला से एक क्षण में ही॥ १३॥ उस युद्ध में उसके चाप और छत्र दोनों

द्वाभ्यां चापश्च छत्रश्च चिच्छेद युगपन्मृधे । अथैकेनाऽऽकर्णपूर्णशरेण नतपर्वणा ॥ १४ ॥
विव्याध वाहनगजमैरावतकुलोद्भवम् । इन्द्रायुधं गिरिमिव ददार स शरो गजम् ॥ १५ ॥
कुम्भप्रदेशे निर्मग्नो जघनाभ्यां विनिर्गतः । सञ्छिन्नः क्रकचेनेव महास्थाणुर्बभौ गजः ॥ १६ ॥
तादृग्विधं गजपतिं व्यसुं वीक्ष्य स दैत्यराट् । खड्गहस्तः खमुत्पत्य तां प्रहर्तुमुपद्रुतः ॥ १७ ॥
आयान्तमन्तकनिभं करवालकरोद्यतम् । लाघवेनैव सा बाला दूरादेकेन पत्रिणा ॥ १८ ॥
करवालं द्विधा चक्रे तं मूर्ध्नि त्रिभिराहनत् । विशुक्रमूर्ध्नि तन्मग्नं किञ्चिद्बाणत्रयं यदा ॥ १९ ॥
व्यराजत् तदा दैत्यस्त्रिशृङ्गो नगराडिव । गाढविद्धोऽपि धैर्येण पक्षिराडिव वेगवान् ॥ २० ॥
आदाय बालां पाणिभ्यामुच्चचाल नभोऽङ्गणम् । निशाम्य ह्रियमाणां तां रथनेत्र्यब्रवीदिदम् ॥
अलं बाले लीलया ते महाऽनर्थाऽवसानया । जहि वीर्येण दैतेयं यावद्दूरं न गच्छति ॥ २२ ॥
श्रुत्वा सखिवचो बाला मत्वा कालसमं वचः । निर्वर्त्य मुष्टिं सुदृढां पातयत्तस्य मूर्धनि ॥ २३ ॥
वज्रकल्पमुष्टिहतो भिन्नमूर्धा वमन्नसृक् । गाढमूर्च्छासमाविष्टो निपपात महीतले ॥ २४ ॥
अथ बाला रथारूढा सखीं तामभिचोदयत् । प्रिये शीघ्रं नय रथमेषोऽग्रे दैत्यनायकः ॥ २५ ॥
श्वेताऽऽतपत्रराजीभिश्चामरैरभिसेवितः । यथा नीलगिरिर्हंसैर्जलनिर्झरसंवृतः ॥ २६ ॥
आस्ते तथा राजतेयं नय तत्र रथं द्रुतम् । एषा प्राप्ता पृष्ठतो मे दण्डनाथा चमूवृता ॥ २७ ॥
श्रूयते सिंहवाहस्य गर्जतो भैरवो रवः । अवश्यं मम युद्धस्य विहतिं सा करिष्यति ॥ २८ ॥
तावद्द्रुतं योधयामि भण्डदैत्यं महाबलम् । उत्कण्ठिताऽस्मि तद्युद्धे सर्वथा नय मां द्रुतम् ॥ २९ ॥

को एक साथ काट डाला और एक बाण खींचकर ॥ १४ ॥ उसके ऐरावत-कुलोत्पन्न गजवाहन को वेध डाला। वह बाण उस हाथी को उसी तरह चीर दिया जैसे वज्र किसी पहाड़ को चीर डालता है ॥ १५ ॥ सेना के सुरक्षित भाग को चीरता हुआ वह तीर हाथी के माथे में जा चुभा। वह जैसे आरा मोटी सिल्ली को चीरता है उसी तरह हाथी के माथे को चीर डाला ॥ १६ ॥ इस तरह गजपति की यह दशा देखकर वह दैत्यराज उसे मारने के लिए दौड़ पड़ा ॥ १७ ॥ हाथ में खुली तलवार लिये यमराज की तरह उसे अपनी ओर आते देखकर उस बाला ने बड़ी आसानी और दूर से ही एक बाण से ॥ १८ ॥ उस तलवार को दो खण्डों में काट दिया और तीन बाणों से उसके ऊपर एक साथ प्रहार कर दिया। वे तीनों विशुक्र के माथे में जब जा चुभे ॥ १९ ॥ तब वह दैत्यराज तीन चोटीवाले पर्वताधिराज की तरह शोभने लगा। गाढा घायल होने के बावजूद वेगवान् गरुड़ की तरह धैर्य के साथ ॥ २० ॥ उस बाला को हाथों से पकड़कर आकाश में उड़ गया। उस बाला को अपहृत देखकर उससे रथनेत्री ने यह कहा ॥ २१ ॥ हे बाले! तुम्हारी यह लीला बेकार है, इस महाअनर्थ को मिटाने के लिए जब तक यह दैत्य दूर नहीं निकल जाय—अपने पराक्रम से इसे मार डालो ॥ २२ ॥ अपनी सखी की बात सुनकर काल के समान उसे मानकर लौटकर मुक्के से उसके माथे पर कसकर प्रहार कर दिया ॥ २३ ॥ वज्र की तरह उस मुक्के के प्रहार से उसका माथा फट गया, खून का वमन करने लगा और बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ा ॥ २४ ॥ इसके बाद उस बाला ने रथ पर सवार अपनी सखी को प्रेरित किया—हे प्रिय! हमारा रथ जल्द ही दैत्यराज के सामने ले चल ॥ २५ ॥ जैसे नीलगिरि हंसों और निर्झरों से घिरा होता है उसी तरह सफेद छत्र और श्वेत चामरों से वह दैत्य सुसेवित था ॥ २६ ॥ जहाँ इस तरह वह शोभ रहा है वहाँ शीघ्र मेरे रथ को पहुँचाओ। देखो, मेरी पीठ पीछे अपनी सेना के साथ दण्डनाथा आ रही है ॥ २७ ॥ ऐसा सुना जाता है—सिंह पर सवार घोर गर्जन सुनकर वह निश्चय ही मेरे युद्ध की स्थिति को भाँप लेगी ॥ २८ ॥ जब तक यह आवाज उसके पास पहुँचे तब तक मैं महाबली भण्ड दैत्य के साथ ही हाथ लड़ लूँगी।

श्रुत्वा तद्वदितं साऽपि सखी रथमचोदयत् । यावद्भण्डस्य पुरतस्तावद्रथवराऽऽश्रयः ॥ ३० ॥
ज्ञात्वा सर्वं विषङ्गोऽपि मत्वाऽजेयां सुराऽसुरैः । अनया युद्धमानस्य दैत्यराजस्य सर्वथा ॥ ३१ ॥
जीवतो न विमोक्षोऽस्ति विजितस्त्वनया यदि । तदा चिरार्जिता कीर्तिर्व्यर्थं हीयेत सर्वथा ॥ ३२ ॥
यदि सा ललिता राज्ञी विजेष्यति समं हि तत् । तस्मादत्र यथाशक्त्या यतितव्यं भवेन्मया ॥ ३३ ॥
इति निश्चित्य बालाया निपपाताऽग्रतो बली । आयान्तं सम्मुखं दैत्यं दृष्ट्वा रथवरस्थितम् ॥
भण्डयुद्धमहाविघ्नं मत्वा प्राह सखीं प्रति । प्रिये भण्डेन योद्धव्ये महान् विघ्नो ह्युपस्थितः ॥ ३५ ॥
पश्य मे लाघवश्चैनं वारयामि सुदूरतः । इत्युक्त्वा निशितान् बाणांश्चतुरो विससर्ज ह ॥ ३६ ॥
तैस्तस्य वाहा निहताः प्रोन्नम्रा वातरंहसः । अथैकेन ध्वजं छित्त्वा सूतमेकेन पत्रिणा ॥ ३७ ॥
निजघानाऽथ दैतेयो विषङ्गोऽत्यन्तकोपितः । मोघं सोद्योगमालक्ष्य तुरङ्गाऽन्तरसंश्रयः ॥ ३८ ॥
आदाय परिघं घोरमभिदुद्राव वेगतः । तुरगेण समायान्तं वातनुन्नाऽभ्रखण्डवत् ॥ ३९ ॥
ववर्ष सायकौघेन प्रावृडब्द इवाऽचलम् । शरवर्षमगणयन्नायान्तमाभिमुख्यतः ॥ ४० ॥
दृष्ट्वा बाला द्रुततरं शरेणैकेन कर्णिना । अकरोद्व्यसुमश्वं तं हताश्वोऽथ विषङ्गकः ॥ ४१ ॥
उद्यम्य परिघं घोरमुपायान्तं सुभीषणम् । समुद्रमिव गर्जन्तं कालान्तकयमोपमम् ॥ ४२ ॥
सुपुङ्खेन शरेणाऽऽशु जघान बलवद्धृदि । स गाढविद्धो बाणेन भ्रमन्नृणमसृग्वमन् ॥ ४३ ॥
मूर्च्छितः प्रापतद्भूमौ कृत्तपक्षमहीध्रवत् । तदद्भुतं कर्म दृष्ट्वा दैत्या देवाश्च विस्मिताः ॥ ४४ ॥

उसके साथ लड़ने के लिए मैं बड़ी उतावली हूँ, इसलिए शीघ्र मुझे वहाँ ले चल ॥ २९ ॥ कुमारी बाला की बात सुनकर उसकी सखी ने भी रथ को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया, जब तक यह श्रेष्ठ रथ उसे लेकर भण्ड दैत्य के आगे पहुँचा ॥ ३० ॥ विषंग ने भी ये सारी बातें जानकर देव-दानवों से अजेय इसे मानकर इसके साथ युद्ध करते सर्वथा दैत्यराज की ॥ ३१ ॥ जीवित मुक्ति नहीं है और यदि इसने उन्हें जीत लिया तो युग-युग से अर्जित उनकी कीर्ति सर्वथा मिट्टी में मिल जायेगी ॥ ३२ ॥ यदि वह ललिता देवी इन्हें जीत लेगी तो वह दूसरी बात होगी, क्योंकि वह इनके समान बलशालिनी है। इसलिए यथाशक्ति इन्हें रोकने का मुझे प्रयास करना चाहिए ॥ ३३ ॥ यह निश्चय कर उस बाला के आगे वह महाबली विषंग कूद पड़ा। उत्कृष्ट रथ पर बैठी उस बाला ने सामने से उस दैत्य को आते देखकर ॥ ३४ ॥ भण्ड के साथ युद्ध में इसे महाविघ्न मानकर सखी से कहा–हे प्रिय! भण्ड के साथ युद्ध करने में यह महान् विघ्न उपस्थित हुआ ॥ ३५ ॥ देखो! मैं आसानी से इसे बड़ी दूर से ही रोक देती हूँ। यह कहकर अतितीव्र चार बाणों को एक साथ छोड़ दिया ॥ ३६ ॥ इन चारों बाणों में से एक ने उसके ऊँचे उठे सारथी को मार डाला, एक ने उसकी ध्वजा काट डाली, एक ने उसके वाहन को खत्म कर डाला ॥ ३७ ॥ उस दैत्य विषंग को अत्यन्त क्रुद्ध होकर बचे एक से प्रहार किया। अपने परिश्रम को व्यर्थ जाते देख वह दूसरे घोड़े पर सवार हो गया ॥ ३८ ॥ हाथ में भयंकर गदा लेकर वेग के साथ इनकी ओर दौड़ पड़ा। हवा के झोके से जैसे बादल का टुकड़ा इधर-उधर हिलता है, उसी तरह घोड़े पर सवार उसे आते देखकर ॥ ३९ ॥ पर्वत पर जैसे वर्षा होती है, उसी तरह अपने बाण-समूहों को बरसा दिया। उस शरवृष्टि को कुछ जी में नहीं लगाते सामने से उसे आते हुए ॥ ४० ॥ देखकर बाला ने शीघ्र ही फिर एक बाण से उसके घोड़े को मार डाला। घोड़े के मर जाने पर उस विषंग ने ॥ ४१ ॥ कठोर गदा हाथ में लेकर अत्यन्त विकराल रूप से आते हुए समुद्र की तरह गरजते कालान्तक यम की तरह ॥ ४२ ॥ देखकर एक पर युक्त बाण से शीघ्र ही उस बलवान् के हृदय पर प्रहार किया। उस बाण से बुरी तरह घायल होकर, नाचकर गर्म लहू का वमन करते हुए ॥ ४३ ॥ बेहोश होकर

अहो दैत्याऽधिपो ह्येषः पुरा शक्रमुखान् सुरान्। बहुधा ह्यजयद्युद्धे विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥ ४५॥
स एष बालया नूनं लीलयैव निपातितः। सर्वान् विजेष्यत्येवैव ललिता किं करिष्यति॥ ४६॥
प्राहुरेवमथ पुनः रथनेत्री रथं नयत्। भण्डासुरसमक्षं स्वं दृष्ट्वा बाला महासुरम्॥ ४७॥
साधु प्रियं कृतं ह्यद्य चिराऽभिलषितं मम। अनेन युद्ध्वा सन्तुष्ये चिराऽभिलषितंन्त्वतः॥
इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्षाऽसुरभूपतिम्। अथ भण्डासुरो दृष्ट्वा बालां सम्मुखसङ्गताम्॥ ४९॥
जहृषे वाञ्छितं प्राप्य चिरायाऽभिमतं तदा। स काल एष सम्प्राप्तः श्रियोक्तश्चिरवाञ्छितः॥
एषा दृष्ट्वा महादेवी भक्तवाञ्छितपूरणी। नूनमेषः क्षणो मेऽद्य घोरदेहवियोजकः॥ ५१॥
अनया निहतस्त्वत्र व्रजामि समलोकताम्। एषा श्रीललिताराज्ञ्याः कुमार्यद्भुतविक्रमा॥ ५२॥
तस्या बिम्बसमुद्भूतप्रतिबिम्बवदास्थिता। मां निहन्तुं साऽपि देवी रमावचनगौरवात्॥ ५३॥
आयास्यति न सन्देहो रमोक्तं नाऽन्यथा भवेत्। भवत्वेनां पूजयामि तद्बिम्बादुत्थिताऽऽत्मिकाम्॥
कालोपपन्नविधिना शरभूतप्रसाधनैः। इत्थं विचिन्त्य सशरं जग्राह सुदृढं धनुः॥ ५५॥
जलाऽस्त्रमन्त्रितशरौ प्राक्षिपत्तस्याः पादयोः। अथाऽपरं पौष्पमन्त्रमन्त्रितं मूर्धनि क्षिपत्॥
शरौ सिषिचतुः पादौ निर्मलैः शीतलैर्जलैः। शरोऽपरो मूर्ध्नि तस्या मालावर्षमवाऽकिरत्॥
तदद्भुतं निशाम्याऽथ पप्रच्छ रथनायिका। कुमार्येतन्महच्चित्रं प्रपश्याम्यसुरेश्वरे॥ ५८॥
तेनैव विहितं किं वा जातं स्यात्तव तेजसा। त्वयि वर्षं किरन्त्यां वै शराणामाहवाऽवनौ॥ ५९॥

परकटे पहाड़ की तरह धरती पर गिर गया। उसके इस अद्भुत कर्म को देखकर दैत्य और देवता सभी विस्मित हो उठे॥ ४४॥ अहो! आश्चर्य की बात है, यह दैत्याधिपति विष्णु के तुल्य पराक्रमी पहले इन्द्रादि प्रमुख देवताओं को जीत चुका है॥ ४५॥ वह वीर बड़ी आसानी से इस बाला के द्वारा गिराया गया; यही सबको जीत लेगी तो ललिता क्या करेगी?॥ ४६॥ इसी तरह जब सब बोल रहे थे तो उस रथनेत्री ने उस रथ को भण्डासुर के सामने ला खड़ा किया। उस बाला ने उस महासुर को देखकर॥ ४७॥ बहुत ठीक! तुमने मेरा बड़ा प्रिय किया; आज चिराभिलषित इसके साथ युद्ध कर भीतर से सन्तुष्ट हो जाऊँगी॥ ४८॥ इतना कहकर उस असुरभूपति पर बाणों की झड़ी लगा दी। भण्डासुर भी इस बाला को सामने देखकर॥ ४९॥ बड़ा खुश हुआ, क्योंकि बहुत दिनों का अभिमत उसे आज प्राप्त हुआ था। लक्ष्मी के द्वारा बतलाये गये चिरवाञ्छित काल उसे आज मिला॥ ५०॥ इसे देखकर महादेवी ने भक्त की अभिलाषा को पूर्ण की है। निश्चय ही यह क्षण आज मेरे लिए इस घोर देह का वियोजक होगा॥ ५१॥ इनसे मरकर मैं इनके लोक ही पहुँच रहा हूँ। यह श्रीललिता रानी का अद्भुत पराक्रम-शालिनी कुमारिका रूप है॥ ५२॥ उन्हीं के बिम्ब से उत्पन्न प्रतिबिम्ब की तरह यह रूप है। रमादेवी के कथनानुसार यह देवी मुझे मारने के लिए॥ ५३॥ आयेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है; लक्ष्मी का कथन असत्य नहीं होगा, फिर त्रिपुरा के बिम्ब से उत्पन्न इस देवी की मैं पूजा करता हूँ॥ ५४॥ समयोचित विधि से बाणभूत प्रसाधनों से पूजता हूँ। इस तरह सोचकर सुदृढ़ धनुष को बाण के साथ उठा लिया॥ ५५॥ जलास्त्र से अभिमन्त्रित बाण उनके चरणों पर फेंका, दूसरा पौष्पमन्त्र से अभिमन्त्रित बाण सिर पर चलाया॥ ५६॥ शर से ही निर्मल शीतल जल से उनके पैरों को धो डाला, दूसरे बाण से उनके सिर पर माला की तरह फैला दिया॥ ५७॥ उसके इस अद्भुत कार्य को देखकर रथनायिका ने पूछा—हे कुमारि! यह तो बड़ी ही विचित्र स्थिति दैत्यराज में देख रही हूँ॥ ५८॥ उसने यह क्या किया? क्या तुम्हारे तेज से ऐसा हुआ? तुम पर बाण की वर्षा कर बाणों को धरती पर पाट दिया॥ ५९॥

एतस्य पूजनविधिः शरैः किमिव ते भवेत्। अहं संशययुक्ताऽस्मि तन्मे दूरीकुरु द्रुतम्॥ ६०॥
पृष्टैवं प्राह सा बाला शृणु प्रेयसि सद्वचः। पुरा श्रुतं यल्ललिताप्रोक्तमत्यन्तगूहितम्॥ ६१॥
एष लक्ष्म्या महादूतो नाम्ना माणिक्यशेखरः। शापेन दैत्यतां प्राप्तस्त्रिपुराभक्तशेखरः॥ ६२॥
एष युद्धे विनिहतः श्रीपुरं प्रतिपत्स्यति। मां मत्वा ललितापुत्रीं पूजयामास सायकैः॥ ६३॥
तमीक्ष मत्प्रतिकृतिमित्युक्त्वा शरमुत्सृजत्। स शरः पञ्चशाखात्मा पस्पर्श तस्य मूर्धनि॥ ६४॥
कराऽम्बुजं मस्तके स्वे न्यस्तं मेने महासुरः। प्रसादमकरोद्देवी चेति संहृषितोऽभवत्॥ ६५॥
तद्दृष्ट्वा विस्मिताऽत्यन्तं बालाया रथनायिका। अथाऽभवन्महायुद्धं कुमारीभण्डदैत्ययोः॥
कृतप्रतिकृतोपेतं घोरं भीरुभयावहम्। द्वन्द्वभूतमनुपमं द्वैरथ्यं शरवर्षणम्॥ ६७।
भण्डासुरोऽपि भक्त्यैवाऽद्भुतैः स्वीयपराक्रमैः। देवीं सन्तोषयामीति युयोध बलवत्तरम्॥ ६८॥
विकिरन्तौ शस्त्रगणान्मर्मप्रहरणोद्यमौ। ज्ञात्वाऽन्योन्यं शस्त्रयोगलाघवं श्लाघनापरौ॥ ६९॥
साधु शूर रणश्लाघ्य साधु देवि महाबले। इत्येवं युध्यतोस्तत्र कुमारीभण्डदैत्ययोः॥ ७०॥
प्रावर्तन्त महास्त्राणि लोकमोहकराणि वै। कुलिशाऽस्त्रं पार्वतस्य नागाऽस्त्रस्य च गारुडम्॥
आग्नेयस्य च पार्जन्यं तस्य मारुतनामकम्। तस्य सार्पं तस्य पुनर्नाकुलं तस्य चैव हि॥ ७२॥
बैडालं कुक्कुरं तद्वद्बकं वैयाघ्रमेव च। महाव्याघ्रं मृगेन्द्रञ्च तस्य शारभमस्त्रकम्॥ ७३॥
गण्डमेरुण्डमित्येवं तथा याम्यञ्च वारुणम्। कौबेरं नैर्ऋतञ्चैन्द्रं रौद्रं मोहनमेव च॥ ७४॥
पैनाकं वैष्णवं ब्राह्ममेवमस्त्रैस्तु सङ्कुलम्। युद्धमासीन्महाघोरं कुमारीभण्डदैत्ययोः॥ ७५॥

इसकी यह बाणों से पूजन-विधि कैसी लगती है? मैं तो संशययुक्त हो गयी हूँ, इसलिए मेरा सन्देह शीघ्र दूर करो॥ ६०॥ यह पूछने पर उस बाला ने कहा–हे प्रेयसी! मेरी बातें सुनो, ललिता देवी ने जो मुझे पहले कहा था वह सुनो॥ ६१॥ यह पहले माणिक्यशेखर नाम का लक्ष्मी देवी का दूत था। उन्हीं के शाप से यह दैत्य बना और त्रिपुरा का परम भक्त बना॥ ६२॥ युद्ध में मरकर यह श्रीपुर प्राप्त करेगा, मुझे इसने ललिता देवी की पुत्री मानकर मेरी पूजा की है॥ ६३॥ उस मेरी प्रतिकृति को देखो, यह कहकर अपना बाण छोड़ दिया। वह बाण पाँच शाखाओं में बँटकर उसके सिर का स्पर्श किया॥ ६४॥ जैसे उस महासुर के माथे पर अपना कर-कमल रख दिया हो। देवी का यह प्रसाद पाकर वह बड़ा हर्षित हुआ॥ ६५॥ यह देखकर बाला की रथनायिका अत्यन्त विस्मित हुई। उसके बाद कुमारी और भण्ड दैत्य का महान् युद्ध प्रारम्भ हुआ॥ ६६॥ कृत और प्रतिकृत से भरे भीरु के मन को दहलाने वाला यह घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह द्वन्द्व अनुपम था, दो रथों से शरवर्षा हो रही थी॥ ६७॥ भण्डासुर ने भी 'भक्तिपूर्वक अद्भुत अपने पराक्रम से देवी को सन्तुष्ट करता हूँ'—ऐसा सोचकर बलवत्तर युद्ध प्रारम्भ किया॥ ६८॥ ये दोनों शस्त्रों से प्रहरण कर रहे थे। ये दोनों ही एक-दूसरे के शस्त्रयोग के लाघव से परिचित होकर एक-दूसरे की प्रशंसा कर रहे थे॥ ६९॥ साधू शूर! तुम रण में प्रशंसनीय हो। वह भी कह रहा था—साधु! हे देवि! तुम महाशक्तिशालिनी हो। इस तरह लड़ते हुए कुमारी और भण्डदैत्य॥ ७०॥ एक-से-एक बढ़कर लोक को मोहित करने वाले महान् अस्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। पर्वत के लिए वज्रास्त्र और नागास्त्र के लिए गरुड़ास्त्र॥ ७१॥ आग्नेय के लिए पार्जन्य, उसका मारुत नामक सार्प अस्त्र के लिए पुनः नाकुल प्रयोग चल रहा था॥ ७२॥ बिलाड़ और कुत्ते की तरह, बक और व्याघ्र की तरह, महाव्याघ्र और मृगेन्द्र की तरह उसके लिए शारभ का प्रयोग किया जा रहा था॥ ७३॥ गण्ड और मेरुण्ड की याम्य और वारुण, कौबेर और नैर्ऋत, इन्द्र और रौद्र तथा मोहन॥ ७४॥ पैनाक और वैष्णव-ब्राह्मास्त्रों से भरे महाघोर युद्ध कुमारी और दैत्य के बीच चल

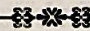
तत्र दैत्याः शक्तयश्च सहायाऽर्थं समागताः। प्रेक्षाश्चक्रुर्विचित्रेण युद्धेनाऽत्यन्तविस्मिताः ॥ ७६ ॥
एवं प्रवृत्ते समरे बालाया लाघवात्तु सः। हीयमानः समभवद्भण्डदैत्यो यदा तदा ॥ ७७ ॥
विषङ्गश्च विशुक्रश्च कुटिलाक्षश्च भूपतिः। संवृत्ता दैत्यसेनाभिः परिवार्य कुमारिकाम् ॥ ७८ ॥
युयुधुः शस्त्रसङ्घातैर्वमद्भिर्वह्निमुल्बणम्। बालाऽपि तान् लीलयैव योधयामास सर्वतः ॥ ७९ ॥
एवंविधे महायुद्धे प्रवृत्ते बालया सह। सम्प्राप्ता दण्डसम्राज्ञी जित्वा दैत्यमहाचमूम् ॥ ८० ॥
भित्त्वा सेनामहाद्रिं तं दैत्यानामतिविस्तृतम्। मुसलात्ममहावज्राऽऽयुधेन क्रूरविक्रमा ॥ ८१ ॥
आससाद महायुद्धे बालां युद्धरसोत्सुकाम्। युध्यन्तीमेकलां दैत्यैः पश्यन्ती विस्मिता तदा ॥ ८२ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
बालापराक्रमे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५३३७ ॥



रहा था ॥ ७५ ॥ वहाँ दैत्य और शक्ति की सहायता में जुटे सैन्यवर्ग इस विचित्र और विस्मयकारी युद्ध का तमाशा देख रहे थे ॥ ७६ ॥ इस तरह युद्ध में प्रवृत्त उस बाला के लाघव से वह भण्ड दैत्य जब-तब अपने को छोटा कर लेता था ॥ ७७ ॥ इधर विषंग, विशुक्र और कुटिलाक्ष भूपति दैत्यसेनाओं के साथ कुमारी परिवार के साथ ॥ ७८ ॥ शस्त्र-समूह से आग उगलते हुए की तरह युद्ध कर रहे थे। उनके साथ यह बाला भी बड़ी आसानी से चारों ओर युद्ध कर रही थी ॥ ७९ ॥ बाला के साथ इस तरह महायुद्ध में प्रवृत्त दण्डसाम्राज्ञी भी आ जुटी और दैत्य-सैन्य को जीतकर ॥ ८० ॥ दैत्यों की अतिविस्तृत महापर्वत की तरह सेना को भेद कर क्रूरविक्रमा ने मूसल और महावज्र रूपी आयुध से ॥ ८१ ॥ इस महायुद्ध में युद्धरस से उत्सुक बाला के संग आ धमकी। अकेली दैत्यों के साथ उन्हें युद्ध करते देखकर अत्यन्त विस्मित हुई ॥ ८२ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में बाला-
पराक्रम नामक चौंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५३३७ ॥



अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अथ भण्डस्य सा सेना कोलवक्त्रा पराक्रमात्। विशीर्णा पर्वत इव देवेन्द्राऽऽयुधगौरवात्॥ १ ॥
सेनायां दैत्यराजस्य वाराहीमुसलाऽऽहतेः। विशीर्णायामपश्यत् सा बालां दैत्यैः सुसङ्गताम्॥
एकलां योधयन्तीं तान्महादैत्यान् समन्ततः। समरोत्कण्ठितां भूयो दृष्ट्वा विस्मयमागमत्॥
अथ तां प्राह कोलास्या समासाद्य विशृण्वताम्। अलं बाले साहसेन युद्धेन विषमेण ते॥ ४ ॥
नैतदन्यत्र पश्यामि साहसं यत्त्वमेकला। दैत्यान्महाबलान् भीमान् संयुगे जितवत्यसि॥ ५ ॥
त्वां निशम्यैकलां दैत्यैर्युध्यमानां महेश्वरीम्। श्रीदेवीवत्सला नूनं भवेद्व्याकुलितान्तरा॥ ६ ॥
इमं क्षणं महाराज्ञीं द्रष्टुमर्हसि याहि तत्। इत्युक्त्वाऽऽज्ञापयच्छक्तिमश्वसेनाऽधिनायिकाम्॥
अश्वारूढे प्रयाह्येनां समादायाऽतिसत्वरा। महाराज्ञ्यै निवेद्यैनामागच्छ त्वरितं पुनः॥ ८ ॥
अश्वारूढैवमाज्ञप्ता समरादनिवर्तिनीम्। बालाया रथ आविश्य न्यवर्तयत तं रथम्॥ ९ ॥
अथाऽऽगत्य महाराज्ञ्यै बालां तां विनिवेदयत्। मातरेषा युद्धभुवो बलात्कारान्निवर्तिता॥
अतिसाहसचारित्राऽद्भुतवीर्यपराक्रमा। त्वदाज्ञया वयं यावदेनां युद्धान्निवर्तितुम्॥ ११ ॥
प्रयातास्तावदेषा तु दैत्यसेनामहार्णवम्। प्रविष्टा तत्र दैत्यानां कोट्यो बलवत्तराः॥ १२ ॥
निपातिता महायुद्धे भण्डदैत्या वरोद्भवौ। निर्जितौ भीमचारित्रौ तौ विशुक्रविषङ्गकौ॥ १३ ॥

※ विमला ※

भण्ड दैत्य की वह सेना कोलवक्त्रा के पराक्रम से इन्द्र के वज्र-प्रहार से जैसे पहाड़ छिन्न-भिन्न होता है, उसी तरह उसकी सेना भी छिन्न-भिन्न हो गई॥ १॥ वाराही के मूसल से आहत दैत्यराज की सेना ने जो इधर-उधर बिखर चुकी थी, उस बाला कुमारी को दैत्यों के साथ युद्ध करते देखा॥ २॥ उन महाबलि दैत्यों से चारों ओर घिरी अकेली उसे युद्ध करती, समर के लिए और अधिक उत्सुक बाला को देखकर अतिविस्मृत हुई॥ ३॥ उस वाराही ने बाला के पास जाकर कहा—हे बाले! सुनो, इस विषम युद्ध के लिए तुम्हारा साहस यथेष्ट है॥ ४॥ ऐसा कहीं दूसरी जगह नहीं देखती हूँ, जैसा साहस तुमने अकेले किया है। महाबलवान् एवं भयङ्कर दैत्यों को युद्ध में तुमने पराजित किया है॥ ५॥ तुम अकेली दैत्यों के साथ युद्ध कर रही हो, यह जानकर महेश्वरी श्रीदेवी वत्सलता के कारण भीतर से व्याकुल हो रही हैं॥ ६॥ इसी क्षण महारानी तुम्हें देखना चाहती हैं, उनके पास जाओ। इतना कहकर घुड़सवार सेना की अधिनायिका को उसने आज्ञा दी॥ ७॥ हे अश्वारूढे! शीघ्र ही इन्हें महादेवी के पास पहुँचाकर तुरन्त लौटकर आ जाओ॥ ८॥ इस तरह आदेश मिलते अश्वारूढा युद्ध से बिलकुल ही नहीं हटने वाली उस बाला को रथ पर बैठाकर उस रथ को लौटा लिया॥ ९॥ महारानी के पास पहुँचकर उस कुमारी बाला को उन्हें समर्पित करती हुई उन्होंने उनसे निवेदित किया—हे मातः! इन्हें समरभूमि से बलपूर्वक लाया गया है॥ १०॥ ये अत्यन्त साहसिक चरित्रवाली हैं, अद्भुत वीर्य और पराक्रमशीला है। आपकी आज्ञा से ही हम किसी तरह इन्हें रणाङ्गण से लौटा लाये हैं॥ ११॥ बलवत्तर करोड़ों दैत्यों के बीच उस दैत्यसेना रूपी सागर में घुस कर ये अकेली लड़ रही थी। इतना ही नहीं॥ १२॥ भण्ड दैत्य के वरद दोनों भाई विशुक्र और विषङ्ग को—जो अपने आप में भयानक

ततो भण्डं समादाय जितलोकेश्वराऽसुरम्। युद्ध्वा तेनाऽपि सुचिरं जितमायं चकार वै॥ १४॥
कथञ्चिदेषा वाराह्या विक्रम्याऽऽसादिता भवेत्। इत्युक्त्वा निर्ययौ साऽपि युद्धाय तुरगाऽऽश्रया॥
अथ बालां महाराज्ञी स्वाङ्कमानीय सत्वरम्। परिष्वज्याऽतिवात्सल्यान्मूर्ध्न्युपाजिघ्रदम्बिका॥
वत्से नैवं पुनः कार्यं क्वचित् साहसमात्रया। अनुक्त्वैव गता युद्धे नैतदौपयिकं तव॥ १७॥
अथ प्राह कुमारी सा ललितां मातरं प्रति। एषाऽरुणितनेत्रान्ता निश्वसन्ती पुनः पुनः॥ १८॥
मातश्चिरादहं युद्धक्रीडाकौतुकिताऽन्तरा। शङ्कमाना त्वया तत्र विघ्नं नैतमवेदयम्॥ १९॥
युद्धक्रीडारसभरादवितृप्तैव वारिता। तावक्या दण्डराज्ञ्याऽहं वृथैव समराङ्गणात्॥ २०॥
त्वत्तोऽतिभीतयाऽऽसाद्य मानिता रणसम्भ्रमे। अन्यथा साऽपि मद्युद्धं विमदा प्राप्य वै भवेत्॥
वदन्तीमिति तां बालां परिष्वज्य महेश्वरी। मैवं वत्से पुनर्ब्रूया इत्युक्त्वा सान्त्वयत् परा॥
अथ दण्डमहाराज्ञी किरिचक्रसमाश्रया। युयोध भण्डदैत्येन युतेन दैत्यसेनया॥ २३॥
शक्तिसेना दैत्यसेना युध्यमाना परस्परम्। क्रोधाऽऽवेशसमायुक्ता प्रविष्टाऽभूत् परस्परम्॥
दैत्या शक्तिगणान् घ्नन्ति मुसलप्रासतोमरैः। नाराचैर्भिन्दिपालैश्च खड्गशूलपरश्वधैः॥ २५॥
शक्तयोऽपि प्रहरणैर्विविधैर्दैत्यपुङ्गवान्। जघ्नुर्युद्धे महाभीमे मर्षिता बलवत्तराः॥ २६॥
तत्र शक्तिगणाहतच्छिन्नबाहूरुनासिकाः। केचिद्द्विधा कृताः शस्त्रैः केचित्तु तिलशः कृताः॥
केचिन्महाभारशस्त्रैर्निष्पिष्टाऽशेषदेहकाः। क्रन्दन्तः पुत्र मित्रेति हा भ्रातस्तात इत्यपि॥ २८॥
एवं शक्तिगणाऽस्त्राग्निभस्मशेषत्वमागताः। दैत्याः शिष्टाः सुवित्रस्ताः पलायनपरास्तदा॥

चरित्र वाले हैं—उन्हें समरभूमि में जीत लिया॥ १३॥ उसके बाद लोकेश्वरों को जीतने वाले असुरराज भयङ्कर भण्ड दैत्य के पास पहुँचकर बहुत देर तक उससे भी लड़कर जीत लिया॥ १४॥ किसी तरह वाराही ने इन्हें अपने अधिष्ठान में लाकर यहाँ उपस्थित कर दिया। इतना कहकर घोड़े पर सवार होकर वह युद्ध के लिए लौट गई॥ १५॥ उसके बाद महाराज्ञी ने उस बाला को शीघ्र पकड़कर अपनी गोद में बैठा लिया, अत्यन्त वत्सलता के कारण अम्बा ने उनका आलिंगन कर माथा सूँघा॥ १६॥ बेटी! फिर कभी तुम ऐसा साहस मत करना; मुझसे बिना कुछ कहे समरभूमि में चल देना—यह तुम्हारे योग्य काम नहीं हुआ॥ १७॥ माता ललिता से उस कुमारी ने कहा; उसकी आँखें क्रोध से लाल थीं, श्वास की गति बार-बार तेज हो रही थी॥ १८॥ माँ! बहुत दिनों से मेरे मन में युद्धक्रीड़ा का कौतूहल था, तुम नहीं जाने दोगी—इस आशंका से मैंने तुम्हारे चरणों में निवेदन नहीं किया॥ १९॥ युद्धक्रीड़ा के रस से मेरा मन तृप्त न हो सका था, तब तक तुम्हारी दण्डराज्ञी ने व्यर्थ ही मुझे समराङ्गण से रोक लिया॥ २०॥ तुम्हारे डर से ही मैंने उसकी बात मान ली, अन्यथा वह भी मेरे साथ युद्ध में हार खा जाती॥ २१॥ इस तरह बोलती उस बाला का आलिंगन कर महेश्वरी ने कहा—बेटी! ऐसा मत कहो और उसे फिर सान्त्वना देने लगी॥ २२॥ उधर दण्डमहाराज्ञी किरिचक्र पर चढ़कर सेना से घिरे भण्ड दैत्य के साथ युद्ध करने लगी॥ २३॥ क्रोध के आवेश से युक्त एक-दूसरे के साथ गुथे दैत्यसेना शक्तिसेना के साथ जूझने लगी॥ २४॥ दैत्यगण शक्तिसेना पर मूसल, लौहचक्र, गदा, धनुष, बर्छी, तलवार, त्रिशूल, फरसे से प्रहार करने लगे॥ २५॥ उधर शक्तिगण भी अनेक प्रहरणों से भयंकर दैत्यों को युद्ध में उससे भारी पड़कर मसलने और मारने लगी॥ २६॥ शक्तिसेना ने कुछ की बाँहें काट डालीं तो कुछ की नाक, कुछ को दो खण्डों में चीर दिया तो कुछ के टुकड़े-टुकड़े कर दिया॥ २७॥ कुछ ने भारी हथियारों से दबकर अपनी जान गँवा दी तो कोई पुत्र, मित्र, भाई कहकर चिल्लाने लगा॥ २८॥ इस तरह शक्तिसेना के अस्त्ररूपी आग में दैत्यसेना जलकर राख हो गई। अनुशासित

अभवन् सा युद्धभूमिरगम्याऽभवदञ्जसा । शोणितोदा ववुर्नद्यः फेनिला भीषणस्वनाः ।। ३० ।।
प्रेतगोमायुकङ्काऽऽदिशवाऽऽहारमहोत्सवाः । एवं विनिहतप्रायां दैत्यसेनामुपद्रुताम् ।। ३१ ।।
विशुक्रः स विषङ्गोऽथ निवार्याऽभ्याययौ मृधे । पुनस्तत्राऽभवद्युद्धं क्रूरं शक्तिगणैः सह ।। ३२ ।।
मायया शक्तिसेनां तां विशुक्रो मोहयत् क्षणात् । ससर्ज मायया ध्वान्तं तत्र वर्षं शिलामयम् ।।
वह्निवायुसमोपेतं तेन शक्तिमहाचमूः । वित्रासिता मूर्च्छिता चाऽप्यभवद्भीमसंरवा ।। ३४ ।।
तं दृष्ट्वाऽभ्याययौ सम्पत्करी गजसमाश्रया । विशुक्रेण महायुद्धे सङ्गताऽतिद्रुतं बभौ ।। ३५ ।।
अश्वारूढाऽपि युयुधे विषङ्गेण महाबला । वाराही भण्डदैत्येन युयोधाऽतिरुषाऽन्विता ।। ३६ ।।
रणकोलाहलाऽऽख्यानं गजमारुह्य वेगिनम् । असङ्ख्यगजसैन्येन युता सम्पत्करी परा ।। ३७ ।।
विशुक्रं योधयामास महागजसमाश्रयम् । ववर्ष शरवर्षेण विशुक्रं मायया युतम् ।। ३८ ।।
विमायाऽस्त्रेण हत्वा तन्मायामत्यन्तभीतिदाम् । प्रतिवर्षेण दैत्योऽपि ववर्ष विशिखात्मना ।।
एवं युद्ध्वा चिरं तस्य धनुश्चिच्छेद मध्यतः । सोऽप्यन्यदाददे चापं तच्चाऽप्येषा समाच्छिनत् ।।
एवं धनुः शतं छिन्नं गृहीतन्तु पुनः पुनः । अथाऽतिक्रोधसंयुक्तो विशुक्रोऽद्भुतविक्रमः ।। ४१ ।।
भल्लेन प्राहरत्तस्याः सम्पत्कर्या महाभुजे । भल्लाऽऽहतभुजात्तस्या न्यपतत्तन्महद्धनुः ।। ४२ ।।
जगर्ज पतितं दृष्ट्वा हस्ताच्चापं महत्तरम् । सम्पत्करी ततः क्रुद्धा प्राहिणोद्वाहनं गजम् ।। ४३ ।।
प्रहितस्सोऽपि करिराट् दैत्येभमनुसंययौ । तयोरभून्महद्युद्धं करिणोरगयोरिव ।। ४४ ।।

दैत्यसेना बुरी तरह डरकर भाग निकली ।। २९ ।। समरभूमि शीघ्र ही अगम्या बन गई। रक्त की फेनिल नदियाँ भीषण ध्वनि करती बहने लगीं ।। ३० ।। मृतप्राय दैत्यसेना की ओर भूत-प्रेत, गीदड़, यमराज भोज-महोत्सव मनाने के लिए दौड़ पड़ें ।। ३१ ।। विशुक्र और विषंग ने उसे रोक कर युद्ध के मैदान में आ डटें। शक्तिगण के साथ फिर उनका भयंकर युद्ध ठन गया ।। ३२ ।। अपनी माया से पलभर में विशुक्र ने शक्तिसेना को मोहित कर लिया, अपनी माया से ही उसने शिलामय सेना की रचना कर डाली ।। ३३ ।। आग और हवा की तरह शक्तिसेना के व्यूह में घुसकर तथा डरावनी आवाज से उसे मूर्च्छित और त्रासित करने लगा ।। ३४ ।। उसे देखकर हाथी पर चढ़कर उन दोनों के बीच सम्पत्करी आ गई और विशुक्र के साथ घोर युद्ध करने लगी ।। ३५ ।। उधर घोड़े पर चढ़कर महाबला विषंग के साथ महायुद्ध करने लगी। उधर वाराही अत्यन्त क्रुद्ध होकर भण्ड दैत्य के साथ युद्ध करने लगी ।। ३६ ।। रणकोलाहल सुनकर गज पर सवार अत्यन्त वेग के साथ अनगिनत गजसेना लेकर सम्पत्करी वहाँ आ धमकी ।। ३७ ।। महागज पर सवार सम्पत्करी विशुक्र के साथ युद्ध करने लगी। मायावी विशुक्र के ऊपर उन्होंने बाणों की वर्षा कर डाली ।। ३८ ।। पहले उसे मायारहित कर उसकी अत्यन्त भीषण माया की विमाया अस्त्र से हत्या कर आगे बढ़ी, किन्तु उधर दैत्य ने भी इन पर बाणों की वर्षा कर दी ।। ३९ ।। इस तरह बहुत देर तक उससे युद्ध कर उसके धनुष को बीच से ही काट डाला। वह दैत्य फिर दूसरा धनुष ले लिया, शक्ति ने भी शीघ्रता से दूसरे धनुष को भी काट डाला ।। ४० ।। इस तरह बार-बार उसने धनुष उठाया और सैकड़ों धनुष को उसने काट डाला। तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर अद्भुत विक्रमशाली विशुक्र ने ।। ४१ ।। भाला उठाकर सम्पत्करी की विशाल बाँह पर दे मारा। भाले की चोट खाकर उसके हाथ का विशाल धनुष नीचे गिर गया ।। ४२ ।। अपने विशाल हस्तचाप को गिरते देखकर सम्पत्करी ने भयंकर गर्जन किया। उसके बाद क्रुद्ध सम्पत्करी ने उसके वाहन गज पर प्रहार कर दिया ।। ४३ ।। वह गजराज भी चोट खाकर दैत्य के गज के पीछे दौड़ पड़ा। ये दोनों हाथी पर्वत की तरह विशाल थे, इनके बीच भयंकर युद्ध ठन गया ।। ४४ ।। सूँड़ों में लपेट कर माथे से टकराकर दाँतों से दाँतों को टकराकर एक मुहूर्त तक

करसंवेष्टनैः कुम्भसङ्घट्टैः पार्श्वघर्षणैः । दन्ताऽऽक्रमैर्महाशब्दैर्मुहूर्तमतिभीषणम् ॥ ४५ ॥
रणं कोलाहलश्चाऽथ बलवान् दैत्यवारणम् । आक्रम्य भूमौ वेगेन निपात्य रदनद्वयम् ॥ ४६ ॥
उदरे विनिवेश्योर्ध्वमुत्थाप्य प्राक्षिपद्रुषा । एवं निक्षिप्तमात्रस्तु चीत्कुर्वन् कुञ्जराधिपः ॥ ४७ ॥
अपतत्त्रिः परिक्रम्य व्यसुः पर्वतशृङ्गवत् । पतन्तं वाहनेभन्तमालक्ष्य स महासुरः ॥ ४८ ॥
उत्पत्याऽङ्कुशमादाय रणकोलाहलं गजम् । प्राहरत् कुम्भयोर्मध्ये सर्वप्राणेन रोषितः ॥ ४९ ॥
हतोऽङ्कुशेन बलवत् स गजो भिन्नमस्तकः । अपासरत् पञ्चधनुर्मात्रं चीत्कारभैरवः ॥ ५० ॥
विशुक्रः पुनरुत्पत्य सृणिहस्तो महागजम् । तमेव वाहनं तस्याः सम्पत्कर्या युयोध ह ॥ ५१ ॥
तस्याः करगतं चापमाच्छिद्य त्वरितं रुषा । बभञ्ज तत् द्विधा मध्ये समादायैकखण्डकम् ॥ ५२ ॥
प्राहरन्मूर्ध्नि बलवान् सम्पत्कर्याः सुवेगतः । एवं हता सा बलवदीषत्कश्मलमागता ॥ ५३ ॥
पुनर्मुष्टिं विनिर्वर्त्य वज्रसारां न्यपातयत् । मूर्ध्नि तस्य विशुक्रस्य रुषा सम्पत्करी बलात् ॥ ५४ ॥
मुष्टिपाताद्भिन्नमूर्धा वहद्रक्तोऽतिमूर्च्छितः । कृत्तपक्षः शैल इव पपात वसुधातले ॥ ५५ ॥
तावद्गजोऽपि सङ्क्रुद्धः पदाऽऽक्रान्तुं समुद्यतः । आलक्ष्य तद्भण्डसुतः युध्यमानः समीपतः ॥
मत्वा हतं पितृव्यं वै मायया तमपावहत् । एवं पराजितः सम्पन्नाथया स महासुरः ॥ ५७ ॥
तथाऽश्वारूढया युध्यद्विषङ्गो वाजिवाहनः । विविधैरस्त्रशस्त्रैश्च युध्यन्तं तं महासुरम् ॥ ५८ ॥
अश्वाऽरूढाऽश्वसंस्थाना प्राहरद्गदयोरसि । ताड़ितो गदया चेषन्मूर्च्छां प्राप्य पुनर्जवात् ॥
पदासिकां खेटकञ्च शतचन्द्रमनुत्तमम् । समादायाऽश्वसेनासु विचचाराऽन्तकोपमः ॥ ६० ॥
पट्टासिप्रान्तसञ्छिन्नास्तुरगाः शक्तयोऽपि च । छिन्नमूर्धाऽङ्गचरणाः प्रपेतुः सङ्घसङ्घशः ॥ ६१ ॥

अतिभीषण युद्ध चला ॥ ४५ ॥ रणकोलाहल के बीच बलवान् दानव के हाथी पर सीधे आक्रमण कर उसे धरती पर पटक कर उसके दोनों दाँतों को ॥ ४६ ॥ उसके पेट में घुसाकर उसे ऊपर उठाकर क्रोध से दूर फेंक दिया। बस, फेंकने मात्र से ही चीत्कार करते हुए वह कुञ्जराधिप ॥ ४७ ॥ पर्वत की चोटी की तरह तीन चक्कर लगाकर गिरा और प्राण छोड़ दिये। अपने वाहन गजराज को गिरते देखकर वह महासुर ॥ ४८ ॥ उछलकर अंकुश हाथ में लेकर रणकोलाहल करते हुए हाथी के मस्तक के बीच में क्रुद्ध होकर सारी शक्ति लगाकर प्रहार कर दिया ॥ ४९ ॥ वह बलवान् हाथी, अंकुश से जिसका माथा चीर दिया गया था, भयंकर चीत्कार करते हुए मात्र पाँच धनुष पीछे हटा ॥ ५० ॥ विशुक्र फिर उछलकर हाथ में अंकुश लेकर उसी महागज पर चढ़कर सम्पत्करी के साथ युद्ध करने लगा ॥ ५१ ॥ क्रोध के मारे उसके हाथ के चाप को छीनकर तोड़ डाला और उसी का एक टुकड़ा लेकर ॥ ५२ ॥ पूरे वेग के साथ उस बलवान् राक्षस ने सम्पत्करी के माथे पर दे मारा। चोट खाकर उस देवी ने थोड़ा अवसाद अनुभव किया ॥ ५३ ॥ फिर वज्र की तरह अपनी मुट्ठी बाँधकर सम्पत्करी ने बलपूर्वक विशुक्र के माथे पर प्रहार किया ॥ ५४ ॥ माथे पर मुक्के की चोट खाकर लहू बहाते वह मूर्च्छित हो गया, परकटे पहाड़ की तरह धरती पर जा गिरा ॥ ५५ ॥ तब तक हाथी भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर पैरों से उसे कुचल डालने के लिए तैयार हुआ। उसकी यह स्थिति देखकर भण्ड का बेटा समीप जाकर युद्ध करने लगा ॥ ५६ ॥ अपने चाचा को मरा हुआ जानकर माया से उसे अलग हटा दिया। इस तरह सम्पन्नाथा से वह महासुर पराजित हुआ ॥ ५७ ॥ अश्वारूढ़ा के साथ अश्ववाहक विषंग ने युद्ध किया। अनेक अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करते उस महासुर को ॥ ५८ ॥ अश्वारूढा ने घोड़े पर सवार उस दैत्य की छाती पर गदा से प्रहार किया। गदा से चोट खाकर थोड़ी देर के लिए मूर्च्छित होकर फिर वेग से ॥ ५९ ॥ पदासिका, खेटक और उत्कृष्ट शतचन्द्र जैसे हथियार लेकर अश्वसेना के बीच यम की तरह घूमने लगा ॥ ६० ॥ इधर

एवं शक्तीर्विनिघ्नन्तमश्वाऽऽरूढाऽतिकोपिता। बद्ध्वा पाशेन गदया साऽश्वं हन्तुं समुद्यता॥
अथ सोऽपि महादैत्यो मत्वा स्वात्मपराभवम्। अन्तर्धानं ययौ साश्वौ मायया मायिनां गुरुः॥
एवं पलायितो युद्धे विषङ्गो वाजिनाथया। दण्डनाथा च भण्डेन युयोध बलसम्भृता॥६४॥
विहत्याऽस्त्राणि चाऽस्त्रौघैः शस्त्रैः शस्त्राणि सर्वशः। पराक्रमेणाऽऽक्रमत भण्डं कोलमुखी युधि॥
खड्गयुद्धे गदायुद्धे धनुःपरशुयुध्ययोः। मुष्टियुद्धे च दैत्येशमत्यरिच्यत दण्डिनी॥६६॥
एवं पराजितः शस्त्रयुद्धेषु विमृशंस्ततः। मायां प्रादुश्चकारोच्चैर्मायिनां शेखरोऽसुरः॥६७॥
अन्धकारं महावायुं विद्युद्वर्षं महारवम्। शिलावर्षं सर्पवर्षं शववर्षञ्च पावकम्॥६८॥
सारमेयान् वृकान् व्याघ्रांस्तरक्षून् राक्षसानपि। सिंहांश्च शरभानाण्डभेरुण्डानसृजद्युधि॥६९॥
एवं तेन महामायां सृज्यमानां पुनः पुनः। प्रतिक्रियाऽस्त्रसन्धानैर्नाशयामास सर्वतः॥७०॥
अथ दण्डमहाराज्ञीशस्त्रतेजोभिरर्दितः। नभस्यन्तर्हिता भूत्वा युयोध सरथोऽसुरः॥७१॥
प्रादुश्चकाराऽश्मवर्षप्रतिभीमं महारवम्। शस्त्राऽशनिगणोपेतं शक्तिसेनाभयङ्करम्॥७२॥
तेन वर्षेण महता पीडिता शक्तिवाहिनी। भिन्नसेतूदकमिव विलुप्ताऽभूत् समन्ततः॥७३॥
दृष्ट्वा तदक्रमं दण्डराज्ञी चण्डप्रकोपना। उत्पपाताऽतिवेगेन सायुधां नभसोऽङ्गणम्॥
वर्षं पतन्तं तदाविश्य शिलामयमतिद्रुतम्। मृगयामास दैत्येशं नभस्यन्धतमोवृते॥७५॥
निजाऽङ्गकान्त्या कुर्वन्ती नभोदेशं सुभास्वरम्। अपहत्य महामायामाससाद महासुरम्॥७६॥

शक्तियों के घोड़ों के अंगों को काटना शुरू किया। कुछ के पैर कटे तो कुछ का शिर॥६१॥ इस तरह अपनी शक्तियों के विनाश को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध अश्वारूढा पाश से उन्हें बाँधकर गदा से घोड़े के साथ उन्हें मारने के लिए उद्यत हुई॥६२। अपनी पराजय मानकर घोड़े के साथ मायावियों का गुरु वह महादैत्य अपनी माया से इनकी आँखों से ओझल हो गया॥६३॥ इस तरह वाजिनाथा से युद्ध में हारकर विषंग भाग गया और इधर दण्डनाथा भी अपनी पूरी ताकत के साथ भण्ड दैत्य से लड़ने लगी॥६४॥ उसके अस्त्र-समूह को अस्त्रों से तथा शस्त्रों को शस्त्रों से विनष्ट कर युद्ध में वाराही ने पराक्रम के साथ आक्रमण कर दिया॥६५॥ तलवार-युद्ध, गदायुद्ध, धनुर्युद्ध, परशुयुद्ध और मुष्टियुद्ध में दैत्य पर दण्डिनी भारी पड़ी॥६६॥ इस तरह शस्त्र-युद्ध में पराजित दैत्यराज ने, जो मायावियों का शेखर था, कुछ सोचकर माया का प्रादुर्भाव किया॥६७॥ चारों ओर अँधेरा छा गया, तेज हवा बहने लगी, बिजलियाँ बरसने लगीं, घोर आवाज आने लगी; पत्थर, साँप, मुर्दे और आग की वर्षा होने लगी॥६८॥ कुत्ते, चीते, बाघ, भालू, राक्षस, सिंह, शरभ आदि की युद्ध में उसने रचना कर डाली॥६९॥ इस तरह बार-बार महामाया की सृष्टि कर प्रतिक्रिया में शक्तियों के द्वारा सन्धानित अस्त्रों का चारों ओर से विनाश कर दिया॥७०॥ इसके बाद दण्डमहाराज्ञी आकाश में छिप कर रथ के साथ उस महासुर के साथ शस्त्रतेज से उसे सताते हुए युद्ध करने लगी॥७१॥ अत्यन्त भयंकर आवाज करते हुए पत्थर बरसाते हुए शस्त्र और वज्रों के समूह के साथ शक्तिसेना पर वह टूट पड़ा॥७२॥ उस वर्षा से शक्तिवाहिनी अत्यन्त पीड़ित हो उठी। बाँध टूट जाने पर जैसे पानी छितरा जाता है, उसी तरह शक्तिसेना चारों ओर बिखरने लगी॥७३॥ प्रचण्ड कोप वाली दण्डराज्ञी उसका यह क्रम देखकर हथियार उठाकर आकाश में उड़ गई॥७४॥ अन्धकाराच्छन्न आकाश में बरसते पत्थरों की परवाह किये बिना अतिशीघ्रता से उस मायावी दैत्येश को खोजने लगी॥७५॥ अपने अंग की कान्ति से आकाश को प्रकाशित कर दिया, उसकी महामाया को भेदकर उस महादैत्य को खोज निकाला॥७६॥

रथसंस्थं शैलनिभं सृजन्तं शैलवर्षणम्। गदयाऽभ्याहनन्मूर्ध्नि वज्राऽऽहत इवाऽद्रिराट्॥ ७७॥
पपात मूर्च्छितो भूमौ स्रोतःकृततटो यथा। पुनः सा गदयैवाऽऽशु रथमश्वांश्च सारथिम्॥ ७८॥
विनाशयद्दण्डनाथा क्रोधेन महताऽऽवृता। तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो गदाहस्तो महासुरः॥ ७९॥
उत्पपात नभो वेगाद्योद्धुं किरिनिभाऽऽननाम्। अथाऽभवन्महायुद्धं वाराहीदैत्यराजयोः॥ ८०॥
गदाप्रहारतुमुलं वज्रपातमहारवम्। मुहूर्तमात्रं युद्ध्वैवं बलोत्सिक्तं महासुरम्॥ ८१॥
मत्वा चकर्ष सीरेण मुसलोद्यन्महाभुजा। तावन्मत्वा निजात्मानं हतं मुसलघाततः॥ ८२॥
चिन्तयद्भण्डदैत्येशः पुरा लक्ष्मीप्रभाषितम्। नूनं प्रोक्तं रमादेव्या यत् पुरा न तदन्यथा॥ ८३॥
भवेत् मुसलघातेनाऽमोघेन स्यां कथं हतः। त्रिपुरा सा महादेवी भक्तवाञ्छितपूरणी॥ ८४॥
मां हन्यात् समरे साक्षादेतन्मेऽभिमतं चिरात्। दैत्ये विचिन्तयत्येवमभवन्नाभसं वचः॥ ८५॥
दण्डनाथेनैष वध्यस्तव युद्धे कथञ्चन। अमोघो मुसलस्तेऽयं सन्निवर्तय वै द्रुतम्॥ ८६॥
श्रुत्वेत्थं नाभसवचश्चण्डिका दण्डनायिका। मोचयत्तं सीरगर्भान्मत्वा वध्यं सुरेश्वरम्॥ ८७॥
अथ सोऽन्तर्हितो दैत्यो निर्जितो दण्डनाथया। दैत्यसेनाशक्तिगणैर्गाढविद्धा पलायिता॥ ८८॥
दृष्ट्वा भग्नां दैत्यसेनां जयभेरीमवादयत्। शक्तयो विविधांश्चापि वाद्यान् जयविधौ मतान्॥
अथ द्रुतं प्रेषयित्वा जयाऽऽख्या नाथदण्डिनी। ललितायै शक्तिसेनां समवाप्याऽभितः स्थिताम्॥
क्षता हताः शक्तयो या अमृतेशी च ता द्रुतम्। अजीवयद्विरुजयत् ततो हृष्टाश्च तां चमूम्॥ ९१॥

रथ पर बैठा पर्वत की तरह वह पत्थर-वर्षा की रचना कर रहा था। देवी ने अपनी गदा उठाकर उसके सिर पर उसी तरह मारा जैसे वज्र से इन्द्र पर्वत पर प्रहार करते हैं॥ ७७॥ धरती पर मूर्च्छित होकर वह गिरा; ठीक उसी तरह जैसे नदी में उसका तट कटकर गिरता है। पुनः उसने गदा से ही रथ-घोड़े और सारथी का॥ ७८॥ विनाश कर दिया। फिर अत्यन्त क्रोध से दण्डनाथा कुछ करे—इससे पूर्व ही होश में आकर वह महासुर हाथ में गदा लेकर॥ ७९॥ वाराही से महायुद्ध करने के लिए वह आकाश में उड़ा। वहाँ वाराही और दैत्यराज का महायुद्ध हुआ॥ ८०॥ दोनों ओर से गदा-प्रहार के कारण वज्रपात के कारण घोर आवाज हुई। इस तरह एक क्षण युद्ध कर बलोन्मत्त उस महासुर को॥ ८१॥ मानकर हल से आगे खींचा। हाथ में मुसल ऊठाकर इन्हें बढ़ते देख मुसलाघात से अपने को मरा हुआ मानकर॥ ८२॥ भण्ड दैत्य सोचने लगा। उसे लक्ष्मी देवी ने जो पहले कहा था, वह कथन कभी झूठा नहीं होगा॥ ८३॥ इस अमोघ मुसलाघात से मेरी मौत कैसे होगी? वह त्रिपुरा महादेवी तो भक्त की अभिलाषा पूर्ण करने वाली हैं॥ ८४॥ मेरी अभिलाषा तो बहुत दिनों से यही है कि समर में मुझे साक्षात् त्रिपुरा देवी ही मारे। वह दैत्य इस तरह सोच ही रहा था कि आकाशवाणी हुई॥ ८५॥ हे दण्डनाथा! यह दैत्य युद्ध में किसी तरह तुमसे वध होने योग्य नहीं है, इसलिए तुम इस अमोघ मूसल को शीघ्र लौटाओ॥ ८६॥ यह आकाशवाणी सुनकर दण्डनायिका चण्डिका ने हल की पकड़ से उसे मुक्त कर दिया, यह सोचकर कि इसका उन्हीं के हाथ से वध होगा॥ ८७॥ दण्डनाथा से हारकर वह दैत्य आँख से ओझल हो गया। दैत्यसेना भी शक्तिसेना से बुरी तरह घायल होकर भाग खड़ी हुई॥ ८८॥ दैत्यसेना को भागते देखकर विजयभेरी बजने लगी। विविध शक्तियाँ विजय-वाद्य और नगाड़े आदि जय-जयकार के साथ बजाने लगीं॥ ८९॥ नाथदण्डिनी ने जया नाम की शक्ति को शीघ्र भेजकर शक्तिसेना के बीच ललिता देवी को बुला लिया॥ ९०॥ वहाँ जो शक्ति घायल या मरी थी उस पर अमृतेशी ने शीघ्र अमृत छींटकर उसे पुनर्जीवित एवं स्वस्थ बना दिया। उसके बाद सैन्यदल में खुशी व्याप्त हो गई॥ ९१॥

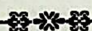
सन्नह्य स्वरथाऽऽरूढा सम्पद्देव्याऽनुसङ्गता । पुरोऽव्रजदश्वनाथा सेनया दण्डनायिका ॥ ९२ ॥
द्रष्टुं तां ललितादेवीं ययौ द्रुततरं मुदा । गजवादित्रशब्दौघैः ख्यापयन्ती स्वकं जयम् ॥ ९३ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये ललितामाहात्म्ये भण्डाऽसुरपराभवे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५४३० ॥



उन्हें साथ लेकर अपने रथ पर सवार होकर सम्पद्देवी के साथ आगे-आगे अश्वनाथा चल रही थी और सेना के साथ दण्डनायिका ॥ ९२ ॥ ललितादेवी को देखने के लिए खुशी के साथ वे आगे बढ़ रही थीं; हाथी-घोड़े की आवाज से अपनी विजय का उद्घोष कर दी थी ॥ ९३ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत भण्डासुर-पराजय नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५४३० ॥



अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

अथ गत्वा दण्डनाथा शक्तिभिर्विविधैर्युता। आसाद्य मन्त्रिणीं देवीं प्रणम्य जयमादिशत्॥ १॥
साऽपि प्रीता परिष्वङ्गं तस्यै मानेन सन्ददौ। अथ गत्वा तया सार्धं महाराज्ञीं प्रणम्य च॥ २॥
जयवृत्तं समाचख्यौ शक्तिचक्रप्रहर्षदम्। भण्डासुरोऽपि दैत्यानां सेनया नष्टशेषया॥ ३॥
ययौ बहिः खिन्नतया हृष्टश्चान्तरमीप्सितात्। शून्यकं नगरं प्राप्य जगामाऽन्तःपुरं स्वकम्॥ ४॥
ततः प्रियाः सममेत्य भण्डं सम्मोहिनीमुखाः। ब्रूयुर्नाथ किमद्य त्वां पश्यामः कृपणं यथा॥ ५॥
नारदेन पुरोक्तं यत्तदन्यथयितुं कथम्। प्राह पत्नीवचः श्रुत्वा ज्ञात्वा स्वाऽभिमतं शुभम्॥ ६॥
नारदोक्त्याऽभिविदितमाभिः सर्वात्मनेत्यथ। अभवत् प्रकटस्तासु प्रियाः शृणुत मे वचः॥ ७॥
कथमिष्टार्थलाभेषु खिन्नः स्यामतिमुग्धवत्। विदितं ते नारदोक्तेः सर्वं मे सममीप्सितम्॥ ८॥
अचिरादेव तल्लोकं प्राप्स्यामि परया हतः। किन्तु दैत्येषु स्वरूपं निगूहितुमिति स्थितिः॥ ९॥
अथ प्राहुः पुनर्दारा नाथ ब्रूमोऽभिवाञ्छितम्। यदि ते निश्चयो युद्धे हता यास्यामः तत्स्थितम्॥
इति चेद्वै त्वदेकान्ता नयाऽस्मान् सहभावतः। तत्ते मार्गः प्रविदितो वदाऽस्माकं कथं गतिः॥
भक्ता हातुमयोग्यास्ते वयं छायेव सङ्गताः। श्रुत्वा प्रोक्तं प्रियाभिस्तत् प्राह हर्षसुनिर्भरः॥ १२॥
शृणुध्वं मद्वचस्तथ्यं मयैतच्चिन्तितं पुरः। न भवेदन्यथा ह्येतत् सर्वथा कारणं ब्रुवे॥ १३॥

॥ विमला ॥

अनेक शक्तियों से युक्त दण्डनाथा ने मन्त्रिणी देवी के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर विजय की सूचना दी॥ १॥ वह भी प्रसन्न होकर उनका आलिंगन कर सम्मानित की, तब उनके साथ दण्डनाथा ने महाराज्ञी के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया॥ २॥ पहले विजय का वृत्तान्त उनसे कहा, जो शक्तिचक्र के लिए हर्षप्रद था। इधर भण्डासुर भी दैत्यसेना के विनष्ट हो जाने पर बची-खुची सेना के साथ॥ ३॥ बाहर से दुःखी पर भीतर से प्रसन्न चला। शून्य नगर पहुँचकर अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया॥ ४॥ उसके बाद भण्ड सम्मोहिनी प्रमुख अपनी प्रिया के पास पहुँचा। उसने इनसे पूछा—आज आप इतने दुःखी क्यों हैं?॥ ५॥ नारदजी ने पहले जो कुछ आपसे कहा था, वह झूठ कैसे होगा? पत्नी की बात सुनकर तथा अपना शुभ अभिमत जानकर भण्ड ने कहा॥ ६॥ नारद के कथन से परिचित पत्नियों से जो कुछ घटित होने वाला था वह तो उनके सामने प्रकट ही था, फिर भी उसने कहा—हे प्रिय! मेरी बातें सुनो॥ ७॥ इष्टार्थ लाभ में मूर्खों की तरह भला मैं दुःखी क्यों होऊँ? नारद के वचन से तुम सभी तो परिचित ही हो, सब कुछ तो मेरे मनोनुकूल ही हो रहा है॥ ८॥ शीघ्र ही देवी के हाथों मरकर मैं उन्हीं का लोक प्राप्त करूँगा, लेकिन दैत्यों के बीच में अपने इस तथ्य को छिपाना चाहता हूँ॥ ९॥ उसकी पत्नियों ने उससे पूछा—हे नाथ! हम अपना अभिवाञ्छित बोलते हैं, यदि आपका निश्चय युद्ध में मरकर उनका सामीप्य प्राप्त करने का है॥ १०॥ यह अगर सच है तो हमें भी सहगामिनी बनाकर ले चलो; वह रास्ता तुम्हें विदित है, हमारी गति क्या होगी? यह बतलाओ॥ ११॥ अपने भक्तों को छोड़ना तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हम तो छाया की तरह तुम्हारे साथ चलेंगी। प्रिया की बातें सुनकर अति प्रसन्न होकर उसने कहा॥ १२॥ मेरी बातें सुनो, तथ्य यह है कि मैंने

रमादेव्याः प्रसादेन स्मरामि प्राक् समुद्भवम्। नूनं सा मेऽब्रवीदेवं त्रिपुराऽस्मत्समाश्रया॥ १४॥
संश्रितानां सुभक्तानां वाञ्छितं सा हि सर्वथा। दिशत्यसाध्यमपि च ततो नः स्यात् समीहितम्॥
मयाऽभिवाञ्छितं यामि भवतीभिः सहेति वै। तल्लोके तद्भवेदेवं सर्वथाऽपि न संशयः॥ १६॥
अथाऽपि मे समीहाऽन्या स्वैश्च पुत्रादिभिः सह। गन्तव्यमिति तत्रापि भवेदेव तथाऽप्यहम्॥
चिन्तयाम्यक्रमेणैव भवेत्तस्याः कृपावशात्। नूनं लोके सुहृद्बन्धुवैधुर्यं जातु वैक्षणम्॥ १८॥
सोढुं न योग्यं वै यत्र त्रुटिः कल्पगणायते। एतावत् प्रार्थ्यते नूनं न भवेत् स क्षणः क्वचित्॥ १९॥
तस्माद्युष्माभिरप्येतत् प्रार्थनीयमहर्निशम्। सा साधयति भक्तानामसाध्यमपि वाञ्छितम्॥
एतदन्यैर्न विज्ञेयमित्यहं शुच्यवस्थितः। शोकं जहथ राज्ञ्योऽत्र प्राप्तोऽभ्युदय उच्छ्रितः॥ २१॥
इत्युक्त्वाऽस्तङ्गते सूर्ये विवेश महतीं सभाम्। अथाऽऽगता विशुक्राद्या भ्रातरो मन्त्रिणस्तथा॥
पुत्रा भृत्याः सभास्तारा सभामध्येऽतिभास्वरे। प्रणम्याऽसुरभूपालं विविशुः स्वस्वविष्टरे॥
विशुक्रः प्रेक्ष्य राजानं शोचन्तमिव संस्थितम्। कृताञ्जलिः प्रणम्याऽऽह वर्धयित्वाऽद्भुतं वचः॥
श्रीदेव्या भण्डदैत्येशवाञ्छितार्थसमीहया। नाशिताऽखिलदैत्यानां बुद्धिर्नीतिसमानुगा। २५॥
योऽतिबुद्धिमतां श्रेष्ठो विचारे शुक्रसम्मितः। विशुक्रः सोऽपि विमतं प्राह स्वार्थविपर्ययम्॥
अगस्त्यैतावदेवेह कृत्यं कालस्य भावितम्। भाव्यर्थस्याऽनुरोधेन बुद्धिमुन्मेषयत्यलम्॥ २७॥
महाराज लक्ष्यसे मे शोचन्निव सभास्थितः। जीवत्स्वस्मासु दैत्येषु पश्याम्येतदसाम्प्रतम्॥ २८॥

पहले ही यह सब सोच लिया था, ये बातें अन्यथा नहीं होंगी, इसका कारण मैं बतलाता हूँ॥ १३॥ रमादेवी की कृपा से अपने पूर्वजन्म को मैं याद करता हूँ। निश्चय ही उन्होंने मुझसे यह कहा था कि देवी त्रिपुरा ही हमारा शरणस्थल हैं॥ १४॥ अपने अनन्य आश्रित भक्तों को वह सर्वथा वाञ्छित फल देती है, चाहे वह असाध्य ही क्यों न हो? इसके बाद तो हमारा कल्याण ही होना है॥ १५॥ मैं अपना अभिलषित पाने के लिए तुम लोगों के साथ ही जाऊँगा, उस लोक में भी सर्वथा ऐसा ही होगा, इसमें संशय मत करो॥ १६॥ इससे भी बढ़कर मेरी इच्छा है कि मुझे अपने बेटों के साथ जाना चाहिए, वहाँ भी मैं वैसा ही रहूँ॥ १७॥ मैं सोचता हूँ—उसकी कृपा से सब कुछ इसी क्रम में हो। निश्चय ही उस लोक में मेरे मित्र और बन्धुओं को शोक न देखना पड़े॥ १८॥ जहाँ त्रुटि और कष्ट सहने योग्य न हो, इतनी ही उनसे प्रार्थना है कि वह क्षण कभी भी मेरे सामने न आये॥ १९॥ इसलिए तुम सब भी दिन-रात यही प्रार्थना करो; वह भगवती भक्तों की असाध्य इच्छा भी पूरी करती है॥ २०॥ यह दूसरे को पता न चले—इसलिए मैं शुचि रूप में अवस्थित हूँ; इसलिए रानियो! शोक छोड़ो, मुझे तो कल्याणकारी अभ्युदय प्राप्त होने वाला है॥ २१॥ यह कहकर सूर्यास्त के बाद उसने अपनी विशाल सभा में प्रवेश किया। वहाँ उस सभा में विशुक्रादि उसके भाई और मन्त्रीगण आ चुके थे॥ २२॥ पुत्र, नौकर और सभासदों के बीच वह प्रज्वलित हो रहा था। सब-के-सब असुर भूपाल को प्रणाम कर अपने-अपने आसन पर बैठ गये॥ २३॥ विशुक्र राजा को देखकर कुछ सोचते हुए बैठ गया और फिर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम कर उनकी जय-जयकार कर कुछ अद्भुत बातें कहीं॥ २४॥ हे भण्डदैत्येश! वाञ्छितार्थ सिद्धि की इच्छा से श्रीदेवी ने बुद्धि और नीति के अनुसार अखिल दैत्यों का विनाश कर दिया॥ २५॥ जो अत्यन्त बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और विचारों में शुक्र की तरह था, उस विशुक्र ने भी स्वार्थ-विपर्यय के कारण विमत ही कहा॥ २६॥ काल से प्रेरित होकर अगस्त्य ने भी ऐसा ही किया था, भावी अर्थ के अनुरोध से इसकी भी बुद्धि कुछ ऐसी ही हो गई॥ २७॥ हे महाराज! आप सभा में बैठे कुछ सोचते-से नजर आ रहे हैं, हम दैत्यों के जीवित रहने पर यह कुछ अनुचित

इत्युक्तः पुनरूचे स दैत्येशो दैत्यमण्डले। विशुक्र किं वदाम्यद्य कालस्यैवं विपर्यये॥ २९॥
योऽहं पञ्चोत्तरशतब्रह्माण्डानां प्रशासकः। यस्य युद्धे विष्णुमुखा भूयो जाताः पराङ्मुखाः॥
यस्य नाम्नाऽपि वृत्रघ्नो निद्रामप्येति नो क्वचित्। सोऽद्याऽहमबलासङ्घैर्व्यर्थयुद्धे कदर्थितः॥
किं तादृशं पृच्छसि मां शोचसीति मृतप्रभम्। काले मृतिः श्लाघ्यतमा नेदृशस्य कदर्थना॥ ३२॥
विशुक्र इति तद्वाक्यं श्रुत्वा प्राह ततो वचः। दैत्येशैवं नाऽर्हसि त्वं भाषितुं करुणं वचः॥ ३३॥
अबला योषिदित्येवं कारुण्यं नाऽऽप्नुयात्तु कः। नैसर्गिकस्ते धर्मोऽयं स्त्रीषु शस्त्रपरावृतिः॥
अलं त्वया मया वाऽपि राजपुत्रादिभिस्तथा। दैत्येष्वन्यतमोऽप्येकस्त्वयाऽऽज्ञप्तो मुहूर्ततः॥
हन्याच्छक्तिगणं सर्वमत्र पादौ स्पृशामि ते। त्वं तिष्ठाऽन्तःपुरे क्रीडन् सुरवारगणैः सह॥ ३६॥
गतोऽहं तां विजित्यैव पादौ पश्यामि ते पुनः। इत्युक्त्वा पार्श्वतः प्रैक्षत् कुटिलाक्षं चमूपतिम्॥
तावत् सोऽपि प्रणम्यैनं कृताञ्जलिरभाषत। युवराज किमेवं त्वं ब्रवीषि मयि जीवति॥ ३८॥
राज्ञा सह विषङ्गेण राजपुत्रैरुपाविश। सेनासेनाधिपैः साकं गत्वाऽहं साधयामि ताम्॥ ३९॥
अन्यथा नाऽऽगमिष्यामि सत्यं प्रतिशृणोमि ते। इत्युक्त्वा प्रणिपत्यैतान्निर्ययौ नगराद्बहिः॥
अनेकाऽक्षौहिणीसेनायुक्तः सेनाऽधिपैः सह। अथाऽऽगत्य दुर्मदाऽऽख्यो वाहिनीपो महाबलः॥
दशाऽक्षौहिणिकायुक्त उष्ट्राऽऽरोहो गदाधरः। प्राहाऽहङ्कारशैलस्थः प्रणम्याऽऽत्मचमूपतिम्॥
सेनाधीश त्वमत्रैव तिष्ठ सेनासमावृतः। अबलाविजयेनैव प्रयाणं वः सुसम्मतम्॥ ४३॥

जैसा लग रहा है॥ २८॥ यह कहने पर दैत्यमण्डल में उस दैत्येश ने फिर कहा—हे विशुक्र! क्या बोलूँ? काल का ही ऐसा विपर्यय है॥२९॥ जो मैं पाँच सौ से अधिक ब्रह्माण्ड का प्रशासक था, जिसके युद्ध में विष्णु-प्रमुख देवराज पराजित होकर भाग जाते थे॥ ३०॥ जिसका नाम सुनकर ही इन्द्रादि देवों की आँखों की नींद हराम हो जाती है; वह मैं आज कुछ अबलाओं के साथ युद्ध में इस तरह अपमानित एवं तिरस्कृत हुआ॥ ३१॥ मुझ मरे जैसे से यह क्यों पूछ रहे हो? क्या सोचते हो? इस तरह तिरस्कार की अपेक्षा यथावसर मौत को गले लगाना अधिक श्रेयस्कर होता॥ ३२॥ भण्ड की ऐसी वातें सुनकर विशुक्र ने कहा–हे दैत्येश! ऐसी दयनीय बातें आपके मुँह से शोभा नहीं देतीं॥ ३३॥ भला कौन ऐसा व्यक्ति है 'जो इन अबला या औरत से दयनीयता नहीं प्राप्त की है? औरतों पर शस्त्र-प्रहार नहीं करना तो आपका नैसर्गिक धर्म है॥ ३४॥ आप, मैं, राजपुत्रादि अथवा दैत्यों में से कोई एक ही इस काम के लिए पर्याप्त है; आपकी आज्ञा मिलते ही पलक झपकते ही॥ ३५॥ आपके चरणों की सौगन्ध, इन शक्ति-समूहों को सर्वत्र मिटा नहीं दिया तो कहना। आप अन्तःपुर में अप्सराओं के साथ आनन्द करें॥ ३६॥ मैं अभी ही चला, उन्हें जीतकर ही आपके चरणों के दर्शन करूँगा। इतना बोल कर बगल में बैठे सेनापति कुटिलाक्ष की ओर देखा॥ ३७॥ तब तक वह भी इन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—युवराज! मेरे जीते-जी आप इस तरह क्या बोल रहे हैं? ३८॥ राजा के साथ कुमार विषङ्ग और राजपुत्रादि यहीं रुके, सेना और सेनानायकों के साथ जाकर मैं अभी उन्हें जीतकर आता हूँ॥ ३९॥ अगर जीत न सका तो लौटकर अपना मुँह नहीं दिखलाऊँ, मेरी यह प्रतिज्ञा आप सब सुन लें। इतना बोलकर उन्हें प्रणाम कर नगर से बाहर निकल गया॥ ४०॥ अनेक अक्षौहिणी सेना और सेनाधिपति के साथ महाबली वाहिनीपति दुर्मद आकर॥ ४१॥ हाथ में गदा उठाये ऊँट पर सवार दश अक्षौहिणी सेना के साथ अहंकार के शिखर पर बैठा वह दैत्यसेनापति को प्रणाम कर कहा॥ ४२॥ हे सेनापति! आप अपनी सेना के साथ यहीं रुके। एक अबला पर विजय पाने के लिए मैं ही युक्तिसंगत हूँ॥ ४३॥

आनेष्यामि मुहूर्तेन बद्ध्वा तामबलाधिपान्। मुहूर्तमात्राद्यदि तां नाऽऽनेष्यामि ततस्त्वया॥
यतितव्यश्च गन्तव्यमित्युक्त्वा निर्ययौ जवात्। वादयन् जैत्रयात्राऽङ्गवादित्राणि मुहुर्मुहुः॥ ४५॥
ययौ शक्तिचमूवक्त्रं सूर्यस्योदयनं प्रति। दैत्यसेनासमारम्भकोलाहलमहारवम्॥ ४६॥
श्रुत्वा सम्पत्करी देवी चाऽश्वारूढा महाबला। गत्वा श्रीमातरं नत्वा मन्त्रिणी दण्डिनीमपि॥
विज्ञाप्य दैत्यसन्नाहमनुज्ञातेऽतिमोदिते। ययतुः शक्तिसेनाभिरसङ्ख्याभिः समायुते॥ ४८॥
तत्र सम्पत्करी देवी समारुह्य महागजम्। रणकोलाहलाऽऽख्यानं प्रालेयाऽद्रिरिवोन्नतम्॥ ४९॥
सुवर्णाभा जपाऽऽरक्तवासोरत्नविभूषणा। तारुण्याम्भोधिलहरी लावण्यौघसमुद्रिका॥ ५०॥
विकर्षन्ती मणिमयं चापमिन्द्रधनुष्प्रभम्। दैत्याम्बुधेः शोषणाय शरान् भानुकरोपमान्॥ ५१॥
किरन्ती निर्ययौ सूर्य उदयाऽद्रिगतो यथा। असङ्ख्या वारणाऽरूढा शक्तयश्चाऽपि तादृशाः॥
परिवार्य ययुर्बाणान् विकिरन्त्यः समन्ततः। प्रत्येकं तादृशी शक्तिर्गर्जने त्र्यङ्कुशग्रहा॥ ५३॥
गजग्रीवासमारूढा नयती शत्रुवाहिनीम्। कस्मिंश्चिदेका संरूढाऽनेकाश्चाऽन्येषु संस्थिताः॥
इत्यसङ्ख्येभसेनाभिः समेता सम्पदीश्वरी। ग्रसन्तीव दैत्यसेनां व्याप्य भूमिमुपाययौ॥ ५५॥
निसर्गभिन्नगण्डास्ते गजाः पर्वतसन्निभाः। दैत्यसेनां समासेदुस्ते युद्धेष्वनिवर्तिनः॥ ५६॥
अथ वादित्रनिस्वानः सेनयोरुभयोरभूत्। प्रवृत्तः शस्त्रपातोऽपि प्राणचोरमहारवः॥ ५७॥
दैत्या रथेभतुरगखरोष्ट्रमृगरोहिणः। गृध्रकाककङ्घूकभासकेक्यधिसंश्रयाः॥ ५८॥
अन्ये मार्जारनकुलसरटप्रेतवाहनाः। चण्डशूलखड्गचक्रभिन्दिपालधराः परे॥ ५९॥

उन अबलाओं की नायिका को मुहूर्त मात्र में मैं बाँध कर ले आऊँगा। पलक झपकते ही यदि मैं उन्हें न ला सका तब आप॥ ४४॥ वहाँ जाने का प्रयास करेंगे। इतना कहकर वह वेग के साथ बाहर निकल गया। विजय-यात्रा के लिए ढोल-नगाड़े बजाते वह आगे बढ़ा॥ ४५॥ सूर्य उदय होते ही दैत्यसेना शक्ति-सेना के व्यूह के सामने पहुँच गयी। दैत्यसेना के साहसिक हंगामे से उठी घोर आवाज॥ ४६॥ सुनकर महाबला, अश्वारूढा तथा सम्पत्करी देवी ने जाकर श्रीदेवी को प्रणाम कर तथा मन्त्रिणी एवं दण्डिनी को भी सूचित कर॥ ४७॥ दैत्यों के साथ युद्ध की अनुमति प्राप्त कर, परम प्रसन्न होकर अनगिनत शक्तिसेना को साथ लेकर चल पड़ी॥ ४८॥ वहाँ सम्पत्करी देवी ने हिमालय की तरह महा उन्नत हाथी पर सवार होकर युद्ध की तैयारी की घोषणा सुनी॥ ४९॥ उनकी देहकान्ति स्वर्णिम, अड़हुल फूल की तरह लाल साड़ी तथा रत्न के आभूषण पहने थी, तारुण्य रूपी सागर की लहर थी, सौन्दर्य का उफनता सागर थी॥ ५०॥ इन्द्रधनुष की कान्ति वाले मणिमय धनुष की प्रत्यञ्चा खींचती दैत्यसागर को सुखा देने के लिए सूर्यकिरणोपम बाणों को॥ ५१॥ फेंकती उदयाचल पर पहुँचे सूर्य की तरह प्रकट हुई। उनके साथ उन्हीं की तरह अनगिनत हाथियों पर सवार शक्तियाँ भी थीं॥ ५२॥ चारों ओर अपने बाणों को फेंकती हाथ में तीन मुँहवाला अंकुश लिये प्रत्येक शक्ति उन्हीं की तरह गरजती॥ ५३॥ हाथी की गर्दन पर एक महावत बनी थी और उसी की तरह उस पर अनेक सवारी गाँठ कर शत्रुसेना की ओर बढ़ रही थी॥ ५४॥ असंख्य हस्तिवाहिनी सेना के साथ शक्तिवाहिनी सम्पत्करी धरती पर व्याप्त होकर दैत्यसेना को ग्रसने लगी॥ ५५॥ रणाङ्गन से नहीं लौटने वाले, स्वभाव से जिनके गण्ड से मदजल स्रवित हो ऐसे पर्वताकार हाथी दैत्यसेना को कुचलने लगे॥ ५६॥ दोनों सेना के जुझारू बाजे बजने लगे, शस्त्राघात सहकर भी अपने प्राणों को बचाने के लिए जोड़-जोड़ से चिल्लाने लगे॥ ५७॥ दैत्यगण रथ, हाथी, घोड़े, गदहे, ऊँट और हिरन पर सवार थे। गीद्ध, कौवे, उल्लू, केकी—ये उनकी सवारियाँ थीं॥ ५८॥ कुछ दैत्य बिलाड़, नेवले, गिरगिट और प्रेत पर सवारी गाँठे थे; उनके हाथों में चण्ड, त्रिशूल, तलवार,

तोमरप्रासपरिघभुशुण्डीलगुडाऽऽयुधाः । एवंविधैर्दैत्यगणैः समेता शक्तिवाहिनी ॥ ६० ॥
युयुधे पौढसंरम्भा क्रोधसंरक्तलोचना । परस्परं क्षिपन्तस्ते वाक्यैः कटुरसोदयैः ॥ ६१ ॥
हतोऽसि तिष्ठ शौर्येण पृष्ठं स्वं न प्रदर्शय । इत्यादिबहुवाक्यानि वदन्त्यः शक्तयो रणे ॥ ६२ ॥
जघ्नुर्दैत्यांस्तेऽपि तद्वन्निजघ्नुः शक्तिवाहिनीम् । एवं प्रवृत्ते समरे प्राणद्यूते भयङ्करे ॥ ६३ ॥
च्छिन्नबाह्वङ्घ्रिमूर्धानः पाटिताऽर्धाऽर्धदेहिनः । एवंविधाः शक्तयोऽपि दैत्यहेतिभिराहताः ॥
पाटिताऽङ्गा अपि दृढं क्रोधात् सन्दष्टदच्छदाः । जघ्नुः प्रत्यर्थिनां वृन्दं शस्त्रैर्दन्तैश्च मुष्टिभिः ॥
नष्टशस्त्राः परकराच्छस्त्रमाच्छिद्य वै बलात् । अन्ये भग्नैरथाऽङ्गैश्च हेतिभिर्युयुधुर्भृशम् ॥ ६६ ॥
एवं प्रवृत्ते समरे घोरे संहृतिसन्निभे । ववुर्नद्यो लोहितौघाः सफेनिलतरङ्गिकाः ॥ ६७ ॥
शक्तिभिर्गजरोहाभिर्दैत्यसैन्यं विनाशितम् । पलायितं गाढविद्धं दशाऽक्षौहिणिशेषितम् ॥ ६८ ॥
दृष्ट्वा दुर्मद एवं स्वां भग्नां सेनां समन्ततः । उष्ट्राऽऽरूढो गदाहस्तः कालाऽन्तकयमोपमः ॥
दशतालसमुन्नम्रं करभं पिङ्गलाऽऽकृतिम् । प्राहिणोच्छक्तिसेनासु महावेगं महाबलम् ॥ ७० ॥
अथ प्रविष्टः शक्तीनां सेनासूष्ट्रोऽतिवेगवान् । सृक्किणीप्रान्तविगलन्मांसपिण्डाऽऽभजिह्वकः ॥
समुद्रमथनोदञ्चन्महाशब्दप्रतिस्वनः । फेनपिण्डानुद्गिरंश्च मूत्रयन् पृष्ठतो बहु ॥ ७२ ॥
उरसा पादविक्षेपैस्तुण्डाऽऽघातैः करिव्रजम् । नाशयन् दशनैश्चैव व्यचरच्छक्तिसैन्यके ॥ ७३ ॥
दुर्मदोऽपि गदाऽऽघातैरिभाञ्छक्तीश्च नाशयन् । शक्तिसेनाऽन्तक इव कदनं प्रकरोद्रुषा ॥ ७४ ॥

चक्र और गोफिया जैसे आयुध थे। भाले, बर्छी, लौहदण्ड, भुशुण्डी और लाठी जैसे हथियार हाथ में लिये दैत्यगण के साथ शक्तिवाहिनी थी॥ ५९-६० ॥ परस्पर कठोर वचनों का प्रहार करते हुए क्रोध से लाल आँखें किये घोर युद्ध कर रहे थे॥ ६१ ॥ मारे गये तुम, ठहरो, वीरता से लड़ो, अपनी पीठ मत दिखाओ; इस तरह की अनेक बातें बोलती युद्ध-क्षेत्र में शक्तियाँ॥ ६२॥ दैत्यों को मार रही थीं। उसी तरह वे भी शक्तिवाहिनी को मार रहे थे। इस तरह वे एक-दूसरे के प्राणहरण में लगे थे॥ ६३ ॥ कटे बाँह, पैर, सिर से आधे देह वाले योद्धाओं से धरती पट गई थी। इसी तरह दैत्यों के आयुध से आहत होकर शक्तियाँ भी परेशान हो रही थीं॥ ६४॥ अङ्गों से पटे उस शव-ढेर को मजबूत दाँतों से नोच रही थीं; हथियारों से, दाँतों से, मुक्कों से प्रत्यर्थियों को मार रही थीं॥ ६५ ॥ उनके हथियार नष्ट हो चुके थे, एक-दूसरे के हाथ से वे हथियार छीन रहे थे। कुछ के रथ टूटे, कुछ के अंग-भंग हुए फिर भी शीघ्रता से हथियार उठाकर वे युद्ध कर रहे थे॥ ६६ ॥ इस तरह प्रलयकालीन घोर समर में लगे सैनिकों के मरने से फेनिल और तरंगित लहू की नदियाँ बह चलीं॥ ६७॥ हाथी पर सवार शक्तियों ने दैत्यसेना का विनाश कर डाला। दस अक्षौहिणी सेना में जो शेष बचे थे, वे बुरी तरह घायल होकर भागने लगे॥ ६८॥ दुर्मद ने अपनी सेना को चारों ओर विनष्ट होते देखकर ऊँट पर सवार होकर हाथ में गदा लेकर साक्षात् काल की तरह॥ ६९ ॥ दस ताल ऊँचे पीली आकृति वाले हाथी पर महावेग के साथ उस अतिबली राक्षस ने शक्तिसेना पर प्रहार किया॥ ७० ॥ शक्तिसेना में अत्यन्त वेगवान् वह ऊँट प्रवेश किया, जिसके मुँह के किनारे से माँसपिण्ड गलकर गिर रहा था एवं लम्बी जीभ निकाले था॥ ७१ ॥ समुद्रमन्थन के समय जैसा शब्द उत्पन्न होता था उसी तरह बिलबिलाता यह ऊँट मुख से फेनपिण्ड उगलते और पीछे से पेशाब करते॥ ७२॥ छाती से और पैर से शक्तिसेना के हाथियों पर प्रहार करते तथा दाँत से काटते घूमने लगा॥ ७३ ॥ दुर्मद भी गदा के आघात से हाथियों और शक्तियों को विनष्ट करते अत्यन्त क्रोधित शक्तिसेना को यमराज की तरह समाप्त करने लगा॥ ७४॥

तद्दृष्ट्वा शक्तिसेनाया नाशनं सम्पदीश्वरी । रणकोलाहलं तस्य नाशाय समचोदयत् ॥ ७५ ॥
अथेभराज आसाद्य करभं दैत्यवाहनम् । अयुध्यत विषाणाऽग्रकुम्भाऽऽघातैर्मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥
सोऽपि दन्तैर्मूर्धघातैः पदक्षेपैरयुध्यत । एवं युद्धं समभवत्तुमुलं करभेभयोः ॥ ७७ ॥
अथेभराजः करभं प्रसह्याऽपातयद्भुवि । निपात्य पादेनाऽऽक्रम्याऽकरोत्तं करभं व्यसुम् ॥
मरिष्यन्तं विदित्वोष्ट्रं गदाहस्तः खमाप्लुतः । सम्भ्राम्य पातयन्मूर्ध्नि गदां वारणकुम्भयोः ॥
गदयाऽभिहतो हस्ती भिन्नमूर्धा भ्रमन्नुरः । जानुभ्यां विकलो भूमिं प्राप्तः शोणितमुद्गिरन् ॥
तावत् सम्पदधीश्याऽपि शरेणोरसि ताडितः । जहौ प्राणान् दुर्मदोऽपि द्विधोरसि विपाटितः ॥
हतं सेनाऽधिपं दृष्ट्वा विद्रुता दैत्यसैनिकाः । अदृष्ट्वा पृष्ठतो यान्तीः शक्तीर्जीवितहेतवे ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिता-
माहात्म्ये दुर्मदवधे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ५५१२ ॥



इस तरह सम्पदीश्वरी ने शक्तिसेना का विनाश देखकर और रणकोलाहल को सुनकर उसके विनाश के लिए हाथी को प्रेरित किया ॥ ७५ ॥ गजराज दैत्यवाहन करभ के पास पहुँचकर दाँत और माथे से बार-बार आघात कर युद्ध करने लगा ॥ ७६ ॥ वह भी दाँत, शिर एवं पैर के आघात से युद्ध किया। इस तरह हाथी और ऊँट का घोर युद्ध हुआ ॥ ७७ ॥ अन्ततः गजराज ने ऊँट को धरती पर पटककर अपने पैरों से कुचलकर उसका प्राणान्त कर दिया ॥ ७८ ॥ ऊँट मर गया—यह जानकर हाथ में गदा लेकर वह दैत्य आकाश में उड़ गया, गदा घुमाकर उसे हाथी के सिर पर दे मारा ॥ ७९ ॥ गदा की भयंकर चोट खाकर सिर फटा हाथी लहू का वमन करते हुए घूमकर विकल होकर घुटनों के बल बैठ गया ॥ ८० ॥ तब तक सम्पदीश्वरी देवी ने बाण से दैत्य की छाती पर प्रहार किया। दुर्मद की छाती फट गई और गिरकर उसने प्राण त्याग दिये ॥ ८१ ॥ सेनाधिपति को मरा देखकर दैत्यसैनिक रोने लगे, अपने प्राण बचाकर पीठ पीछे शक्तिसेना को बिना देखे भाग गये ॥ ८२ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत दुर्मद-वध नामक छियासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५५१२ ॥



अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः



दुर्मदं निहतं श्रुत्वा कुरण्डो दुर्मदाऽग्रजः । क्रुद्ध आज्ञां समादाय कुटिलाक्षान् महाबलः ॥ १ ॥
विंशत्यक्षौहिणीयुक्तो योद्धुमभ्याययौ जवात् । विलोक्य पुनरायान्तीं दैत्यसेनां नभोनिभाम् ॥
अश्वारूढाऽश्वसेनाभिरपाराभिरभिव्रजत् । तुरङ्गा विविधास्तुङ्गास्तरङ्गा इव रेजिरे ॥ ३ ॥
पृथग्वर्णा सङ्घशः सा सेनाऽत्यन्तं व्यराजत । फेनपिण्डनिभानश्वानारूढाः कनकप्रभाः ॥
नीलांऽशुकाः खड्गखेटधरास्तारुण्यगर्विताः । अपराः कालजीमूतनिभवाजिसमाश्रयाः ॥ ५ ॥
चन्द्रकान्तिसमाऽऽभासः शोणाऽऽभरणवाससः । धनुर्बाणधरा नीलरत्नकोटीरशोभिताः ॥
अन्या गारुत्मतनिभानश्वानारुह्य वेगिनः । कुरुविन्दसमानाङ्ग्यः पाटलांऽशुकभूषणाः ॥ ७ ॥
क्वचित् समानाऽङ्गभूषांऽशुकाऽश्वाः शक्तयो ययुः ।
एवं विचित्राऽभ्रयुतसन्ध्याऽऽकाशनिभा चमूः ॥ ८ ॥
अतिवेलाऽम्बुधिनिभा ग्रसद्दैत्यचमूं द्रुतम् । भेरीकाहलगोभृङ्गपटहाऽऽनकनिस्वनः ॥ १० ॥
तुरङ्गखुरकुद्दालतालनिस्वनमिश्रितः । हुङ्काराऽह्वानविक्षेपाऽऽस्फोटसंरावमांसलः ॥ ११ ॥
द्यावापृथिव्यन्तरालमापूर्याऽधिव्यरोचत । अथ प्रवृत्तः समरः करालोऽसुविकर्षणः ॥ १२ ॥
हेतिपातमहाशब्दबधिरीकृतदिङ्मुखः । तुरङ्गखुरविक्षेपविधुतरजसां गणः ॥ १३ ॥

❊ विमला ❊

दुर्मद का बड़ा भाई कुरण्ड दुर्मद की हत्या सुनकर वह महाबली अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और कुटिलाक्ष की आज्ञा लेकर ॥ १ ॥ बीस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर अतिशीघ्र युद्ध करने आ डटा। सामने से बादल की तरह निःसीम आकाश की तरह उमड़ती दैत्यसेना को आते देखकर ॥ २ ॥ घोड़ों पर सवार शक्ति की अश्वारोही सेना ने चारों ओर से प्रस्थान किया। उनमें अनेक घोड़े विशाल तरंग की तरह शोभ रहे थे ॥ ३ ॥ उनमें अनेक रंग के घोड़े संघबद्ध होकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। फेनपिण्ड की तरह घोड़ों पर सवार सुवर्ण कान्तिवाली शक्तियाँ ॥ ४ ॥ जिनके नीले वस्त्र थे, हाथ में तलवार और गदा उठाये यौवन से गर्वित हो रही थीं; दूसरी ओर कुछ शक्तियाँ श्यामवर्णा, अश्वारूढा प्रलयकालीन घटा की तरह उमड़ रही थीं ॥ ५ ॥ कुछ शक्तियाँ पूनम के चाँद की तरह सुन्दर लाल-लाल वस्त्र और आभूषण पहने हाथ में धनुर्बाण लिये नीले रत्नों से गुँथी चोटियों से सुशोभित थीं ॥ ६ ॥ पतले रंग के अत्यन्त वेगवान् घोड़े पर कुछ शक्तियाँ सवार होकर, जिनके अंग-प्रत्यंग लालमणि की तरह सुशोभित थे, पाटल रंग के वस्त्र और आभूषण धारण किये थीं ॥ ७ ॥ कुछ शक्तियाँ अपने शरीर-वर्ण के ही वस्त्र एवं आभूषण धारण कर उसी रंग के घोड़े पर सवार होकर युद्धक्षेत्र के लिए प्रस्थान कीं। इस तरह विचित्र बादल के साथ सान्ध्यकालीन आकाश की शोभा की तरह शोभते शक्तिसैन्य-समूह ॥ ८ ॥ प्रलयकालीन उफनते सागर की तरह शीघ्र ही दैत्यसेना-समूह को निगल जाने के लिए ढोल-नगाड़े, डम्बर, तुरही बजाते ॥ १० ॥ उछलते घोड़ों की टापों की आवाज मिले शक्तियों के हुँकार और आह्वान से विक्षुब्ध स्फुट ध्वनि से सुपुष्ट ॥ ११ ॥ धरती आकाश और अन्तराल को पाटती अत्यन्त सुशोभित हो उठी। जानलेवा विकराल समर दोनों दल के बीच प्रारम्भ हो गया ॥ १२ ॥ अस्त्राघात के महाशब्द से दिशाएँ बहरी हो गयीं।

सांवर्तकमहामेघसङ्घवत् खं समाक्रमत्। क्षणं कुहूनिशीथाऽऽभं जातं हीनाऽवलोकनम्॥ १४॥
ततो हेतिप्रपतनोच्छलच्छोणितवृष्टिभिः । रजोऽन्धकारः संशान्तः पुनरासीन्महारणः॥
परस्परं प्राणहरः शक्तिसैन्यस्य चाऽसुरैः। बलीयसीभिर्दैत्यानां शक्तिभिस्तेज आहृतम्॥ १६॥
भग्नाऽभवद्दैत्यसेना शक्तिभिर्गाढमर्दिता । छिन्नपादकरश्रोत्रकुक्षिपृष्ठा महासुराः॥ १७॥
प्रास्यशस्त्राणि परितो विधुन्वन्तः करान्मुहुः। वदन्तो हा हतास्मेति त्यक्त्वा युद्धं विदुद्रुवुः॥
निशाम्य सेनां स्वां भग्नां कुरण्डः क्रोधमूर्च्छितः। अश्वारूढो महच्चापं विकर्षन् सायकान् क्षिपन्॥
शक्तिसेनां समाविश्य नाशयत्ताः सहस्रशः। शरवर्षैः कुरण्डाऽब्दनिर्मुक्तैः शक्तिवाहिनी॥ २०॥
भग्ना सेतुरिवोन्नम्रा महाजलसमागमात्। भग्नायां शक्तिसेनायामश्वारूढां समासदत्॥ २१॥
अपराजितनामानं वाजिनं समधिष्ठिताम्। तप्तहेमनिभामच्छदुकूलाऽऽभरणोज्ज्वलाम्॥ २२॥
पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणधरां दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । दुष्टेव लिप्ताऽसि चिरं मोचयाम्यवलेपकम्॥
यन्मे त्वया हतो भ्राता तत्फलं प्राप्स्यसि द्रुतम्। त्वां निहत्य रणे पश्चान्मुक्तः स्यां भ्रातृदोषतः॥
मयि प्रदर्शयाऽऽदौ ते वीर्यं यच्चिरसम्भृतम्। एवं प्रोक्ता रोषिताऽश्वारूढां तीक्ष्णैः शरैस्त्रिभिः॥
विव्याध तत्र चैकेन वाहस्य शिर आच्छिनत्। द्वितीयेन च कोटरं पातयामास भूतले॥ २६॥
तृतीयेन तस्य वक्षो दारयामास वेगतः । हताऽश्वो भ्रष्टमुकुटो विहतो बलवद्धृदि॥ २७॥
मूर्च्छितः कृत्तमूलस्य पपातेव महासुरः । क्षणेन मूर्च्छानिर्मुक्तः प्राह तां रणमूर्धनि॥ २८॥

घोड़ों के टापों की चोट खाकर धूलिकण जमीन से आकाश में छा गये॥ १३॥ प्रलयकालीन महामेघ संघ की तरह आकाश अन्धकाराच्छन्न हो गया। पलक झपकते ही अमानिशा की तरह हाथ को हाथ नहीं सूझने लगा॥ १४॥ इसके बाद आयुध गिरने से उछलते लहू की धारा रूपी वर्षा से आकाश में व्याप्त धूलिकण कुछ शान्त हुए और फिर महायुद्ध प्रारम्भ हो गया॥ १५॥ शक्तिसेना का दैत्यों के साथ परस्पर जानलेवा युद्ध शुरू था। अत्यधिक बलवान् दैत्यसेना की शक्ति को अपने तेज से शक्तिसेना ने आहरित कर लिया॥ १६॥ शक्तियों से मसले जाने पर दैत्यसेना छिन्न-भिन्न हो गई। किसी के पैर कटे तो किसी के हाथ, किसी के कान कटे तो किसी के पेट और पीठ॥ १७॥ हाथ से चारों ओर बर्छी-भाले फेंकते हुए 'हाय मारा गया' कहते हुए युद्ध का मैदान छोड़कर दैत्य भाग निकले॥ १८॥ कुरण्ड अपनी भगोड़ी सेना को देखकर क्रोध से मूर्च्छित हो गया। होश आने पर घोड़े पर सवार होकर विशाल धनुष की प्रत्यञ्चा खिंचते हुए बाण चलाने लगा॥ १९॥ शक्तिसेना के बीच घुसकर उसने हजारों शक्तियों का विनाश कर डाला, अपनी बाणवर्षा से उसने शक्तिवाहिनी को छिन्न-भिन्न कर डाला॥ २०॥ बाँध टूटने पर ऊँची उठी महान् जलधारा से बहती भग्न शक्तिसेना में घोड़े पर सवार होकर शक्तिनायिका आ धमकी॥ २१॥ अपराजित नाम के घोड़े पर सवार तपे सोने की कान्ति वाली सफेद वस्त्र और आभरणों से उज्ज्वल चमकती॥ २२॥ हाथ में पाश, अंकुश और धनुर्बाण लिये शक्तिनायिका को देखकर कुरण्ड ने कहा—अरी दुष्टे! अपने घमण्ड में मस्त है, मैं तुम्हारा घमण्ड तोड़ता हूँ॥ २३॥ तुमने मेरे भाई की हत्या की है, उसका मजा तुम्हें चखाता हूँ। तुम्हें इसी मैदान में मारकर अपने भाई के दोष से मुक्त हो जाऊँगा॥ २४॥ सबसे पहले अपनी ताकत और पराक्रम मुझे दिखलाओ। इस तरह की बातें सुनकर शक्तिनायिका ने अतिक्रुद्ध होकर घोड़े पर सवार एक साथ तीन बाण चलाये॥ २५॥ एक बाण से घोड़े का सिर काट डाला, दूसरे बाण से उसके माथे से मुकुट को नीचे गिरा डाला॥ २६॥ और तीसरे बाण से उसकी छाती को शीघ्र ही वेध डाला। मरे घोड़े, भ्रष्ट मुकुट वह बलशाली दैत्य॥ २७॥ बेहोश होकर जड़कटे पेड़ की तरह गिरा। एक क्षण मूर्च्छित रहने के बाद फिर होश में आकर उस

रणश्लाघ्या हि साधुत्वं सम्मताऽसि रणे मम । श्रुत्वेत्याह पुनर्देवी धिक् त्वं जीवसि दैत्यक ॥
यत्नान्मया भाषितुं त्वं जीवशेषीकृतो ह्यसि । पश्येमं तं जीवहरं शरं शत्रुमदाऽपहम् ॥ ३० ॥
श्रुत्वा देवीवचो दैत्यः क्रोधाग्निज्वलिताऽऽकृतिः । देव्याश्चापं प्रचिच्छेद शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥
चिच्छेद साऽपि खड्गेन धनुर्दैत्यकरस्थितम् । अथ दैत्योऽपि खड्गेन तस्याः खड्गं द्विधाऽकरोत् ॥
पुनर्जघान तुरगं खड्गेनैवाऽतिवेगतः । खड्गप्रहारनिर्भिन्नमस्तकोऽश्वो ह्यपाक्रमत् ॥ ३३ ॥
तावद्देव्यपि संक्रुद्धा बद्ध्वा पाशेन वै दृढम् । आकृष्य प्राहरन्मूर्ध्नि सृणिना दीप्ततेजसा ॥ ३४ ॥
तेनाऽङ्कुशेन निर्भिन्नमूर्धा दैत्यो ममार ह । एवं कुरण्डं निहतं श्रुत्वा सेनाऽधिपो रुषा ॥ ३५ ॥
पार्श्वस्थान् प्रेक्ष्य सेनेशान् करङ्कप्रमुखांस्तदा । कुटिलाक्षः प्राह सेनाधीशोऽरुणितलोचनः ॥
हे हे करङ्कप्रमुखाः पञ्च यूयं स्वसेनया । युता गत्वा द्रुतं हत्वा बद्ध्वा तां वारणं द्रुतम् ॥ ३७ ॥
समानयध्वं वः शक्तिरस्ति मायामयी ननु । सर्पिण्याख्याः तया सर्वे नन्वजेयाः सुराऽसुरैः ॥ ३८ ॥
इत्याज्ञप्ताः करङ्काद्या नत्वा सेनाऽधिपेश्वरम् । विंशत्यक्षौहिणीयुताः प्रत्येकं योद्धुमाययुः ॥
करङ्को गर्द्दभरथे करभे वज्रदन्तकः । वज्रलोमा गृध्ररथे गजे काकमुखस्तथा ॥ ४० ॥
वज्रवक्त्रः खरवरे संरूढा भीमदर्शनाः । युद्धसंरम्भदैत्यानां निशम्याऽतिमहाध्वनिम् ॥ ४१ ॥
अश्वारूढा च सम्पत्तिदेवी सेनामयूयुजत् । अथ सम्मुखमासाद्य सेने ते शक्तिदैत्ययोः ॥ ४२ ॥
विचित्रवादित्ररवे हेतिसञ्चलनोज्ज्वले । चक्राते शरवर्षाणि दूरान्मेघतती इव ॥ ४३ ॥

रणनायिका से उसने कहा ॥ २८ ॥ युद्ध में तुम श्लाघ्या हो, तुम्हें इस युद्ध के मैदान में मेरा धन्यवाद। इतना सुनकर उस देवी ने फिर कहा—रे नीच दैत्य! तुम जिन्दा हो, धिक्कार है तुम्हें ॥ २९ ॥ प्रयासपूर्वक मुझसे बोलने को जिन्दा है; ठहर, मैं तुम्हें समाप्त कर देती हूँ; दुश्मन के घमण्ड को चूर कर देने वाला अपना जानलेवा इस बाण को देख ॥ ३० ॥ देवी की बात सुनकर उस दैत्य की आकृति क्रोधाग्नि से जल उठी। उसने झुके पर्व वाले बाण से देवी के धनुष को काट डाला ॥ ३१ ॥ देवी ने भी दैत्य के हाथ के धनुष को अपनी तलवार से काट डाला। फिर दैत्य ने अपनी तलवार से देवी की तलवार को दो खण्डों में काट डाला ॥ ३२ ॥ फिर उसने अत्यन्त वेग के साथ तलवार से ही देवी के घोड़े पर प्रहार किया। तलवार के प्रहार से घोड़े की गर्दन धड़ से अलग हो गई और वह तड़पकर शान्त हो गया ॥ ३३ ॥ तब तक देवी ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसे अपने मजबूत पाश में जकड़ लिया और उसे खींचकर दीप्त तेज वाले अंकुश से उसके माथे पर प्रहार किया ॥ ३४ ॥ उस अंकुश के प्रहार से उसका सिर धड़ से अलग हो गया और वह वहीं तड़पकर शान्त हो गया। इस तरह कुरण्ड का मारा जाना सुनकर दैत्यसेनापति अत्यन्त क्रुद्ध होकर ॥ ३५ ॥ नजदीक में करङ्क-प्रमुख सेनापतियों को देखकर लाल-लाल आँखों वाले सेनापति कुटिलाक्ष ने कहा ॥ ३६ ॥ अरे ओ करङ्क-प्रमुख पाँच नायक! तुम पाँचों अपनी सेना के साथ एकजुट होकर जाओ और उसे मारकर घसीट कर मेरे पास ले आओ ॥ ३७ ॥ यह शक्ति मायामयी है, तुम उसे पकड़कर लाओ, वह सर्पिणी शक्ति है, सुर-असुर सबों के लिए अजेय है ॥ ३८ ॥ करङ्क प्रमुख पाँच सेनानायकों ने सेनाधिपति से ऐसी आज्ञा पाकर उसे प्रणाम कर पाँचों बीस-बीस अक्षौहिणी सेना लेकर देवी से युद्ध करने मैदान में आ डटें ॥ ३९ ॥ करङ्क गधे के रथ पर, वज्रदन्तक हाथी या ऊँट के बच्चे पर और वज्रलोमा गीद्ध के रथ पर तथा काकमुख हाथी पर ॥ ४० ॥ वज्रमुख गधे पर सवार होकर अत्यन्त भयंकर दीख रहे थे। युद्ध के लिए तैयार दैत्यों का अति महागर्जन सुनकर ॥ ४१ ॥ घोड़े पर सवार होकर सम्पत्ति देवी अपनी शक्तिसेना को साथ लेकर दैत्य और शक्ति सेना के सामने आकर ॥ ४२ ॥ विचित्र जुझारू बाजे की आवाज और आयुध-संचालन से चमकती समरभूमि

अथ सेनाद्वयं श्लिष्टं विनिघ्नदितरेतरम् । क्रोधदष्टदच्छदाढचं भ्रुकुटीकुटिलाननम् ॥ ४४ ॥
पाटितं सितखड्गेन प्रोतं भल्लेषु प्रांशुषु । छिद्रितं शरजालेन परिघोत्पातपेषितम् ॥ ४५ ॥
शस्त्रैरुच्चावचैरेव परस्परमनाशयत् । गजवाजिमहासेना शक्तीनामतिरोषिता ॥ ४६ ॥
मुहूर्तेनैव निःशेषाश्चक्रे दैत्येन्द्रवाहिनीम् । दृष्ट्वा सेनां हतप्रायां करङ्काद्या महासुराः ॥ ४७ ॥
प्रविश्य शक्तिसेनां तां नाशयामासुरोजसा । काल्यमानां दैत्यवरैः सेनां दृष्ट्वा पराहताम् ॥ ४८ ॥
अश्वारूढा तथा सम्पत्करी दैत्यानयुध्यत । ताभ्यां भग्ना युधि तदा करङ्काद्या महासुराः ॥ ४९ ॥
निर्ममुस्तां महामायां सर्पिणीं सर्पभूषणाम् । भीमरूपां चण्डरवां विविधं सर्पमण्डलम् ॥ ५० ॥
सृजमानां शक्तिसेनानाशाय समराऽवनौ । अथ सा मुखनेत्रादिसम्भूतैः सर्पमण्डलैः ॥ ५१ ॥
नाशयामास शक्तीनां सेनामर्धमुहूर्ततः । तद्वैशसमतीवोग्रं दृष्ट्वा काश्चन शक्तयः ॥ ५२ ॥
पलायिताः समाख्यातुं दण्डराज्ञ्यै द्रुतं ययुः । प्राप्य तां कोलवदनां श्रीमातृसविधे स्थिताम् ॥
प्रणम्य मन्त्रिणीञ्चाऽपि प्रोचुर्दैत्याश्च हा भयम् । दण्डनाथे वयं याताः सम्पद्देव्या सहाऽसुरैः ॥
तत्र युद्धं समभवद्घोरं प्राणहरं परम् । दुर्मदो निहतो युद्धे सम्पदीशया कुरण्डकः ॥ ५५ ॥
नीतोऽश्वारूढया कीर्तिशेषं सेनाऽपि भूयसी । नाशिताऽस्माभिरत्युग्रा एवं दैत्या विनिर्जिताः ॥
करङ्काद्यैः पञ्चसेनानायकैर्हतपत्तिभिः । प्रवर्तिता महामाया सर्पिण्याख्या हि साम्प्रतम् ॥ ५७ ॥
नेत्राद्यक्षैः सृजन्ती साऽसङ्ख्यान् सर्पगणान्मुहुः । तैः सर्पैर्निहता दष्टा बद्धा भस्मीकृता परा ॥
शक्तिसेना मृतप्राया सञ्जाता ननु सर्वशः । देव्यौ ते शरवर्षेण सर्पान् घ्नन्त्यौ मुहुर्मुहुः ॥ ५९ ॥

में सुदूर बादल-खण्ड की तरह बाणवृष्टि करने लगी ॥ ४३ ॥ दोनों सेना आमने-सामने एक-दूसरे को मारती गुँथ गईं। क्रोध से दाँत खटखटाती एवं भौंहें ताने ॥ ४४ ॥ श्वेत तलवार, भाले और फरसे से मैदान पाट दिया। गदापात से उन्होंने शरजाल में छेद कर दिया ॥ ४५ ॥ ऊँच-नीच हथियारों से परस्पर विनाश करते हुए हाथी-घोड़े की शक्तिसेना अत्यन्त क्रुद्ध ॥ ४६ ॥ पलक झपकते ही दैत्यवाहिनी को निःशेष कर डाला। करंक आदि महादानवों ने हतप्राय अपनी सेना को देखकर। ४७ ॥ आसुरी शक्ति से शक्तिसेना के बीच घुसकर विनाश करने लगे। काले-कलूटे दैत्यों से पराहत अपनी सेना को देखकर ॥ ४८ ॥ अश्वारूढा और सम्पत्करी दैत्यों से युद्ध करने लगी। उनसे युद्ध में टूटकर मैदान में करङ्कादि महासुरों ने ॥ ४९ ॥ महामाया से सर्प से सुशोभित सर्पिणी देवी को जो भीमरूपा, घोर गर्जन करने वाली, अनेक सर्पमण्डल से घिरी थी ॥ ५० ॥ समरभूमि में शक्तिसेना के विनाश के लिए रचना कर डाली। वह सेना मुख और आँख से सर्पमण्डल को उत्पन्न कर रही थी ॥ ५१ ॥ आधे पल में शक्तिसेना का विनाश कर दिया, अपने से भी अत्यन्त उग्र उन शक्तियों को देखकर ॥ ५२ ॥ कुछ शक्तिसेना दण्डराज्ञी को यह समाचार सुनाने के लिए दौड़कर भागी। सबसे आगे उसे वाराही मिली जो माता के नजदीक बैठी थी ॥ ५३ ॥ मन्त्रिणी को प्रणाम कर उन्हें बतलाया कि दैत्यों से महाभय उपस्थित हुआ है, हम दण्डनाथा के पास जा रहे हैं ॥ ५४ ॥ वहाँ घोर जानलेवा युद्ध चल रहा है, दुर्मद और कुरण्ड को सम्पद्देवी ने युद्ध में मार गिराया है ॥ ५५ ॥ उन दोनों ने दैत्यसेना को समाप्त कर दिया है, जिन्हें मारा उनसे भी अधिक शक्तिशाली सेना फिर तैयार हो गई है। इस तरह दैत्यसेना अजेय हो रही है ॥ ५६ ॥ करङ्कादि पाँच सेनानायकों से मारे जाने पर सर्पिणी नामक महामाया का इस समय उसने प्रवर्तन किया है ॥ ५७ ॥ वह सर्पिणी नामक महामाया अपनी आँखों से लगातार असंख्य साँपों का निर्माण कर रही है। उन साँपों से मारे गये या काटे गये अथवा बाँधे गये भस्मसात किये गये ॥ ५८ ॥ शक्तिसेना चारों ओर से मृतप्राय हो रही है। वे दोनों देवियाँ शरवर्षा से बार-बार साँपों को मार रही हैं ॥ ५९ ॥ साँप वश

न सर्पवशतां याते चाऽन्याः सर्वा विहिंसिताः । इति तासां वचः श्रुत्वा क्रुद्धा कोलमुखी तदा ॥
हन्तुं दैत्यान् सुभीमेन मुसलेन विनिर्ययौ । निवार्य तां मन्त्रनाथा ज्ञात्वाऽमोघाञ्च सर्पिणीम् ॥
तद्वृत्तं तरसा गत्वा स्वयं देव्यै व्यजिज्ञपम् । अथ ध्यात्वा क्षणेनाऽम्बा जृम्भमाणा मुखाऽम्बुजम् ॥
विकाशयत्तद्वक्त्रात्तु निर्जगामाऽतिवेगतः । कनकाभा महाशक्तिर्देवीतालुसमुद्भवा ॥ ६३ ॥
सुपर्णसंस्था नकुली वाग्देवी रत्नभूषणा । तां प्रणम्य स्थितामग्रे प्राह श्रीललितेश्वरी ॥ ६४ ॥
गच्छ वत्से सर्पिणीं तां नाशयाऽऽशु स्वतेजसा । इत्युक्ता सा क्षणेनैव सम्प्राप्ताऽऽहवमण्डलम् ॥
सुपर्णपक्षवातेन सर्वे सर्पाः पलायिताः । सर्पबन्धविनिर्मुक्ताः शक्तयः प्रोत्थितास्ततः ॥ ६६ ॥
भूयः ससर्ज सर्पान् सा नाशितुं शक्तिमण्डलम् । तद्दृष्ट्वा सर्पनिवहव्याप्तं शक्तिगणं मुहुः ॥ ६७ ॥
ससर्ज नकुलान् स्वीयरोमभ्योऽतिबलान् क्षणात् । नकुलास्ते महावेगाश्चित्रवर्णाः सुरोषिताः ॥
स्तब्धरोमबालधयो वज्रदन्ता दृढाऽङ्गकाः । ते सृष्टा नकुलाः शीघ्रं तान् सर्पान् सर्वतः स्थितान् ॥
ददंशुर्वज्ररदनैः खण्डश्चक्रुर्द्विधा त्रिधा । नकुलैस्तादृशैः सर्पाः खण्डिता भक्षिता अपि ॥ ७० ॥
निःशेषिताः शक्तिसेना नाशकामा यथोत्थिताः । अथ ते नकुलाः सर्पान् विनाश्याऽपरिशेषतः ॥
ददंशुः सर्पभूषाढ्यां सर्पिणीमपि सर्वतः । सर्पिण्यान्तु प्रनष्टायां करङ्काद्या महासुराः ॥ ७२ ॥
युयुधुर्नकुला देव्या अस्त्रशस्त्रैरनेकशः । ततस्तेषाञ्च शस्त्राणि वाहनान्यपि सर्वतः ॥ ७३ ॥
प्रणाश्य युगपत्तेषां खड्गेन शिर आच्छिनत् । खड्गच्छिन्नोत्तमाङ्गास्ते निपेतुर्विगताऽसवः ॥

में नहीं आ रहे हैं और शक्तिसेना विनष्ट हो रही है। उसकी यह बात सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर कोलमुखी ने ॥ ६० ॥ दैत्यसेना को मारने के लिए हाथ में भयङ्कर गदा उठाकर वह निकल पड़ी। मन्त्रनाथा ने उस सर्पिणी शक्ति को अमोघ जानकर वाराही को रोक कर ॥ ६१ ॥ यह समाचार शीघ्र ही देवी के पास जाकर उन्होंने निवेदित किया। एक क्षण जगदम्बा ने ध्यान कर अपना मुख खोल दिया ॥ ६२ ॥ उनके खुले मुख से अत्यन्त तीव्र गति से स्वर्णवर्णाभा महाशक्ति देवी के तालु से निकल आयीं ॥ ६३ ॥ वह सुपर्णसंस्था नेवली के रूप में स्वयं वाग्देवी उन्हें प्रणाम कर सामने खड़ी हो गई। वे रत्न के आभूषणों को पहने थीं। श्रीललितेश्वरी ने उनसे कहा ॥ ६४ ॥ वत्से! जाओ और अपने तेज से उस सर्पिणी का विनाश कर डालो। इतना सुनते ही पलक झपटते ही वह सर्पमण्डल के बीच पहुँच गयी ॥ ६५ ॥ उसके सुनहले पंखों की हवा से ही सारे-के-सारे साँप भाग खडे हुए। उसके बाद साँपों के बन्धन से मुक्त होते ही सारी शक्तिसेना उठकर खड़ी हो गई ॥ ६६ ॥ उसने पुनः शक्तिसेना को विनष्ट करने के लिए साँपों की रचना कर डाली। सर्पगणों से शक्तिसमूह को पुनः घिरे देखकर ॥ ६७ ॥ उस देवी ने अपने रोमों से अत्यन्त प्रचण्ड असंख्य शक्तिशाली नेवलों की रचना क्षणभर मे कर डाली। ये नेवले रंग-बिरंगे अतिक्रुद्ध एवं वेगवान् थे ॥ ६८ ॥ इनके रोंगटे खड़े थे, दाँत वज्र की तरह थे, देहयष्टि काफी मजबूत थी। शक्तिसेना के बीच सर्वत्र व्याप्त उन सर्पों को ये नवसृजित नेवलों ने ॥ ६९ ॥ अपने वज्रदन्तों से दो-दो तीन-तीन टुकड़ों में काटना शुरू किया। इन साँपों को नेवले काटते भी थे और खाते भी थे ॥ ७० ॥ शक्तिसेना को विनष्ट करने आये थे—वे स्वयं मारे गये। वे नेवले सभी साँपों को मारकर ॥ ७१ ॥ सर्पभूषणवाली उस सर्पिणी को चारों ओर से काटने लगे। उन नेवलों से सर्पिणी का विनाश देखकर करंकादि महासुरों ने ॥ ७२ ॥ नकुल देहधारिणी देवी के साथ अनेक अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध किया। उसके बाद उनके शस्त्र एवं वाहनों को भी सब ओर से ॥ ७३ ॥ विनष्ट कर एक साथ उनके सिर को काट डाला। तलवार से गर्दन कट जाने के बाद वे धरती पर गिरकर प्राण छोड़ दिये ॥ ७४ ॥ तब तक दैत्यसेना

तावत् सेनाऽपि संशिष्टा भीता दिक्षु प्रविद्रुता। जयशब्दैर्वर्ध्यमानान्नकुलीनकुलान् हि तान्॥
साऽङ्गे संहृत्य वाराहीं मन्त्रिणीं ललितेश्वरीम्। प्रणम्य जयवृत्तान्तमाचख्यौ विधृताऽञ्जलिः॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे ललितामाहात्म्ये नकुलीपराक्रमे करङ्क-
दिवधे सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥५५८८॥



भी डरकर, घबराकर चारों ओर भाग खड़े हुए। उन दैत्यों का वध करने वाले नेवलों का जय-जयकार करती हुई॥७५॥ अपनी सेना के साथ वाराही और मन्त्रिणी ने हाथ जोड़कर ललितेश्वरी को प्रणाम कर विजय-वृत्तान्त कह सुनाया॥७६॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के
अन्तर्गत करंकादि-वध नामक सड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥५५८८॥



अथाऽष्टषष्टितमोऽध्यायः



अथ दैत्यैर्विदित्वा तान् करङ्कप्रमुखान् हतान्। कुटिलाक्षो विनिश्वस्य चिन्तामाप महत्तराम्॥
नूनमेषा महाशक्तिरविजेयेव भाति मे। दुर्मदश्च कुरण्डश्च बलिनौ निहतौ रणे॥ २॥
अस्तु तन्न विचिन्त्यं स्याज्जयस्याऽनियतस्थितेः। एते करङ्कप्रमुखाः सर्पिण्याऽमोघया युताः॥
अजेया देवदैत्यानां कथं युद्धे निपातिताः। या श्रूयते शक्तिगणनायिका ललिताऽभिधा॥ ४॥
सा स्थितैव परीवारशक्तिभिर्निहतं बलम्। अहो किं न भवेल्लोके विपरीते विधौ ननु॥ ५॥
आश्चर्यमेतन्निहता करङ्काद्याश्च योषिता। बलं क्षीणं चतुर्थांशं सैन्येशा बलिनो हताः॥ ६॥
न हता शक्तिसेनायां मुख्यैकाऽपि कथं भवेत्। प्रतिज्ञाय शक्तिजयं राज्ञेऽहं कथमद्य वै॥ ७॥
अशक्यमिति वक्ष्यामि पुनः कापुरुषो यथा। एवं चिन्तासमाक्रान्ते कुटिलाक्षे चमूपतौ॥ ८॥
आजगाम विषङ्गोऽपि विशुक्रेण प्रयोजितः। दृष्ट्वा विषङ्गं सेनेशः कुटिलाक्षः समुत्थितः॥
आसनाद्यैः पूजयित्वा निषसादाऽऽसने स्वके। अथ दृष्ट्वा विषण्णास्यं विषङ्गः सैन्यनायकम्॥
अब्रवीत्तं भण्डदैत्यप्रार्थितं या समीहति। तया भक्तेष्टदायिन्या मोहितो दैत्यपुङ्गवः॥ ११॥
कुटिलाक्ष विषीदन्तमिव पश्यामि ते मुखम्। तद्वदाऽऽशु किं निमित्तं सर्वं सर्वं करोम्यहम्॥
श्रुत्वा प्रोचे सोऽपि सर्वं दैत्यनाशं महत्तरम्। अविनाशश्च शक्तीनां महाभयमुपस्थितम्॥ १३॥

*** विमला ***

करङ्क-प्रमुख दैत्यसेनानायक मारे गये—यह जानकर कुटिलाक्ष एक गहरी साँस खींच कर चिन्ता-सागर में डूब गया॥ १॥ निश्चय ही यह महाशक्ति मुझे अविजेय प्रतीत होती है, क्योंकि युद्धभूमि में दुर्मद और कुरण्ड जैसे शक्तिशाली दैत्य मारे गये॥ २॥ जो भी हो, यह सोचने की बात नहीं है, क्योंकि जय और विजय अनियत है। ये करङ्क-प्रमुख सेनानायक अमोघ सर्पिणी के साथ॥ ३॥ जो देवता और दैत्यों के लिए अजेय थी, युद्ध में कैसे मारे गये? जो सुनते हैं, शक्तिगण की नायिका जिसका नाम ललिता है॥ ४॥ वह ज्यों-की-त्यों बैठी है, अपनी परिचारिकाओं में जो बल निहित है उसी से काम कर रही है। आश्चर्य है, संसार में विधाता जिस पर विपरीत होता है उससे ऐसा ही उलटा-पुलटा काम होता है॥ ५॥ आश्चर्य तो इस बात का होता है कि करंक आदि बलवान् सेनानायक, जिनमें सेनापति का चतुर्थांश बल होता है, वे क्षीणबल होकर एक औरत से कैसे मारे गये?॥ ६॥ शक्तिसेना की एक भी प्रमुख नायिका मारी नहीं गई, यह कैसे सम्भव हुआ? शक्ति-विजय के लिए कृतप्रतिज्ञ मैं आज कैसे॥ ७॥ कायरों की तरह कह दूँ कि शक्ति-विजय अशक्य है? इस तरह कुटिलाक्ष मन के उधेड़बुन में पड़ा था॥ ८॥ इसी बीच विशुक्र से प्रेरित विषंग भी वहाँ आ पहुँचा। विषंग को देखकर सेनाधिपति कुटिलाक्ष उठकर खड़ा हो गया॥ ९॥ आसन आदि से पूजकर फिर अपने आसन पर बैठाया। उसे दुःखी मन देखकर सेनाधिपति को विषंग ने पूछा॥ १०॥ भण्ड दैत्य से प्रार्थित जो वह चाहती थी, भक्त को अभिलषित देने वाली भगवती की माया से मोहित उसने वही कहा॥ ११॥ हे कुटिलाक्ष! तुम्हारा मुख तो मुर्झाया हुआ देख रहा हूँ, शीघ्र बतलाओ, किस कारण से तुम्हें ऐसा हुआ है? मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ॥ १२॥ यह सुनकर दैत्यविनाश के सम्बन्ध में सब कुछ उसे बतलाया

श्रुत्वा जहास दैतेयं आ मोह इति संवदन् । मोहितो मायया देव्या बभाषे बुद्धिमानिव ॥ १४ ॥
शृणु सेनापते सर्वं विदित्वैवाऽहमागतः । विना युक्त्या न जीयेत महाबलवता परः ॥ १५ ॥
जयो युक्तौ सर्वथैव स्थितः सा बुद्धिसंश्रया । मया शक्तिजयो प्रायो निश्चितः सूक्ष्मबुद्धिना ॥ १६ ॥
जहि शोकाऽन्धकारं त्वं मद्युक्तेरविसंश्रयः । अहं मन्ये हताः शक्तिगणा इत्येव युक्तितः ॥ १७ ॥
शृणु ते तत् प्रवक्ष्यामि यन्मया निश्चितं जये । कूटेनैव विजेया सा तत्क्रमं निश्चितं ब्रुवे ॥ १८ ॥
अद्यैव चरमे भागे दिनस्य दैत्यसेनया । महत्या दंशिताः सर्वे विशुक्रेणाऽपि संवृताः ॥ १९ ॥
युद्धाय पुरतो यान्तु राजपुत्रैश्च संयुताः । गन्तव्यमेव युद्धाय यथा शक्तिगणा अपि ॥ २० ॥
निःशेषेणैव युध्यन्ति ललितैकाकिका भवेत् । तावद्रात्रावन्धकारैर्दैत्यैर्बहुभिरावृतः ॥ २१ ॥
निर्गम्य पार्श्वभागेन पृष्ठदेशं समाश्रयन् । तस्या रथं समारुह्य तत्रत्या अपि काश्चन ॥ २२ ॥
शक्तीर्हत्वा ग्रहीष्यामि जीवग्राहं बलादहम् । ललितामबलां दुष्टां शक्तिसङ्घशिफात्मिकाम् ॥
न जीवग्रहणं याति चेद्धन्मि गदया भृशम् । तस्यां हतायां बद्धायामपि वा शक्तिवाहिनीम् ॥
नष्टप्रायामवेहि त्वं भवद्भिर्नाश्यतेऽपि च । या तु सा ललिता राज्ञी सुकुमारकराङ्घ्रिका ॥
न समर्था मया योद्धुं विदितं मे चिरादिदम् । एवं मया व्यवसितं बुद्ध्याऽत्यन्तप्रगल्भया ॥ २६ ॥
सखे कच्चित्तव मतं दोषभेदविवर्जितम् । श्रुत्वा विषङ्गवचनं कुटिलाक्षश्च भूपतिः ॥ २७ ॥
त्रिपुरामायया मूढो जितां तामभिमन्यत । प्रहृष्ट उत्थाय च तं द्रुतं स परिषस्वजे ॥ २८ ॥

और यह भी बतलाया कि शक्तिसेना का कुछ भी नहीं बिगड़ा, यह महाभय उपस्थित हुआ है ॥ १३ ॥ यह सुनकर वह ठठाकर हँस दिया, भगवती की माया से मोहित बुद्धिमान् की तरह उस मूर्ख ने कहना शुरू किया ॥ १४ ॥ हे सेनापति ! सुनो, सब कुछ जानकर ही मैं यहाँ आया हूँ। वह पराशक्ति महाबलवती है, बिना युक्ति के उसे जीता नहीं जा सकता ॥ १५ ॥ विजय सर्वथा युक्ति में ही रहती है और युक्ति सदा बुद्धि का सहारा लेती है। अपनी सूक्ष्म बुद्धि से शक्ति पर विजय प्राप्त कर लूँगा ॥ १६ ॥ शोक रूपी अन्धकार को तुम छोड़ो और मेरी युक्ति में विश्वास रखो। मेरी मान्यता है मेरी युक्ति से ही शक्तिगण विनष्ट होगी ॥ १७ ॥ सुनो, मैं वह युक्ति बतलाता हूँ जिससे मेरी विजय निश्चित है; कूटनीति से ही विजय होती है और उसका जो क्रम है वही बतलाता हूँ ॥ १८ ॥ आज ही दिन के चौथे भाग में सारी दैत्यसेना एक साथ विशुक्र के साथ ॥ १९ ॥ यहाँ तक कि राजकुमारों को भी साथ लेकर दैत्यसेना एक साथ विशुक्र के साथ ॥ १९ ॥ यहाँ तक कि राजकुमारों को भी साथ लेकर युद्ध के लिए आगे बढ़ें। निश्चित है कि सारी शक्तिसेना भी युद्ध के लिए बाहर निकल आयेगी ॥ २० ॥ सारी शक्तिसेना युद्ध में लगी रहेगी और उधर ललिता अकेली पड़ जायेगी। रात के अन्धेरे का लाभ उठाकर बहुत दैत्यसेना के साथ ॥ २१ ॥ बगल के किनारे से निकलकर पीछे से उसके रथ पर सवार होकर वहाँ भी यदि कोई शक्ति उसके संरक्षण में रही तो ॥ २२ ॥ उसे मारकर बलपूर्वक मैं इस शक्तिसंघ की जड़ दुष्टा अबला ललिता को जिन्दा ही पकड़ लूँगा ॥ २३ ॥ यदि वह जिन्दा मेरे साथ नहीं आयेगी तो गदा से मार दूँगा। जब वह मारी जायेगी या बँधेगी तब इस शक्तिवाहिनी को ॥ २४ ॥ नष्टप्राय ही तुम समझो, जो तुम सबों का नाश कर रही है, जो ललिता रानी है; जिसके हाथ और अँगुलियाँ बड़े कोमल हैं ॥ २५ ॥ मुझे बहुत दिन से इसका पता है, वह मेरे साथ युद्ध में नहीं टिकेगी; अपनी अत्यन्त प्रगल्भ बुद्धि से मैं यह सब काम पूरा कर लूँगा ॥ २६ ॥ सखे ! तुम्हारे इस विचार में मुझे किसी प्रकार का दोष या विभेद नहीं दीख पड़ता, विषंग की यह बात सुनकर कुटिलाक्ष भूपति ॥ २७ ॥ त्रिपुरा की माया से विमूढ़ होकर अपने को उसी क्षण विजयी मान लिया। खुशी से उठकर शीघ्र ही उसका आलिंगन

साधु दैत्यकुलश्लाघ्य वेद्मि त्वां बुद्धिमत्तमम्। काले जयवहा बुद्धिर्दुर्लभा सर्वथा ननु॥ २९॥
नैवंविधा ह्यौशनसी बुद्धिराङ्गिरसी तथा। चिरं जीव राजकार्यसाधकस्त्वं मतो मम॥ ३०॥
तत् प्रयाह्यचिरं राज्ञे निवेद्याऽऽदाय मन्त्रिणः। राजपुत्रान् विशुक्रश्चाऽऽयाहि युद्धाय सर्वथा॥
लुम्बत्येष दिवानाथो प्रयातुं सलिलाऽर्णवम्। वयं यदा शक्तिसेनां नियुध्यामस्तदा द्रुतम्॥ ३२॥
साधयिष्यसि तत्कार्यं बुद्ध्या वीर्येण संवृतः। इत्युक्ते कुटिलाक्षेऽथ विषङ्गो नगरं ययौ॥ ३३॥
तत्र राज्ञे विशुक्राय चाऽपि संवेद्य सर्वशः। मायाविमूढैर्दैत्येशैः सम्मतः संययौ द्रुतम्॥ ३४॥
राजपुत्रैर्विशुक्रेण मन्त्रिभिश्चाऽभिसंवृतः। कुटिलाक्षेण सङ्गम्य सर्वसेनासमावृतः॥ ३५॥
योद्धुमभ्याययौ तत्र यत्र शक्तिमहाचमूः। विदित्वा दैत्यराजस्य सन्नाहमतिसंवृतम्॥ ३६॥
सर्वसैन्यदैत्यवरसङ्गमं चारवक्त्रतः। मन्त्रिणी ललितादेवीं नत्वा वृत्तं व्यजिज्ञपत्॥ ३७॥
आज्ञप्ता ललितादेव्या मन्त्रिणी प्राह दण्डिनीम्। वत्से भण्डासुरस्याऽयं संरम्भो दृश्यते महान्॥
एकं दैत्येश्वरं मुक्त्वा सर्वे युद्धाय सङ्गताः। अस्माभिरपि गन्तव्यं निःशेषेण द्रुतन्तु तत्॥ ३९॥
कुरु सैन्यस्य सन्नाहं शक्तीनां प्रविशेषतः। इत्याज्ञप्ता कोलमुखी सर्वशक्तिचमूवृता॥ ४०॥
मन्त्रिण्या च समायुक्ता देवीं नत्वा ययौ मृधे। निर्गता शक्तिसेना सा गजवाजिरथाऽऽकुला॥
समुद्र इव लोकानां प्लावकः प्रतिसञ्चरे। युद्धवादित्रनिनदैर्गजवाजिरथस्वनैः॥ ४२॥
मिश्रितः सिंहनादो वै शक्तीनामभिवर्धत। तं भीमं लोकदलनं श्रुत्वा दैत्या महास्वनम्॥ ४३॥
व्यमुञ्चन् प्रतिरावं ते ततोऽतिविपुलं तदा। स घोषः सेनयोर्मिश्रो व्यरुचद्रोदसीगतः॥ ४४॥

किया और कहा॥ २८॥ साधु! दैत्यकुलपूज्य! तुम्हारी बुद्धि का मैं लोहा मानता हूँ, समय पर विजय दिलाने वाली बुद्धि का सर्वथा अभाव ही लोगों में देखा जाता है॥ २९॥ इस तरह की बुद्धि न तो शुक्राचार्य के पास है और न बृहस्पति के ही; मेरे विचार से तुम राजकार्यसाधक हो, चिरंजीव!॥ ३०॥ इसलिए शीघ्र राजा के पास जाओ, उन्हें निवेदित कर मन्त्रियों को, राजकुमारों को एवं विशुक्र को भी सर्वथा युद्ध के लिए साथ लेकर आओ॥ ३१॥ देखो, यह सूर्य भी सागर के पानी को छूने के लिए नीचे झुक गया है। हम सब जब शक्तिसेना के साथ युद्ध करते रहेंगे तब शीघ्र ही॥ ३२॥ तुम अपनी बुद्धि और पराक्रम से इस काम को पूरा कर लोगे। कुटिलाक्ष के इतना कहने पर विषंग ने नगर की ओर प्रस्थान किया॥ ३३॥ वहाँ राजा को और विशुक्र को भी सब बातें समझाकर माया से विमूढ़ बने दैत्येश की अनुमति प्राप्त कर शीघ्र प्रस्थान किया॥ ३४॥ राजकुमारों, विशुक्र और मन्त्रियों के साथ सारी सेना लेकर कुटिलाक्ष॥ ३५॥ जहाँ शक्तिसेना का व्यूह था, वहीं युद्ध करने के लिए आ पहुँचा। दैत्यराज के सैन्य-समूह को जानकर॥ ३६॥ दूत के मुँह से मन्त्रिणी देवी यह सुनकर कि सारी सेना के साथ दैत्यराज ने चढ़ाई की है, ललिता देवी के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर सारी सूचनाएँ दीं॥ ३७॥ ललितादेवी से आज्ञा प्राप्त कर मन्त्रिणी ने दण्डिनी से कहा—वत्से! भण्डासुर का यह महान् समारम्भ दीख रहा है॥ ३८॥ एक मात्र दैत्यसम्राट् भण्ड को छोड़कर सभी युद्ध के लिए निकल पड़े हैं। हमें भी सारी शक्तिसेना के साथ वहाँ जाना चाहिए॥ ३९॥ खाशकर शक्तिसेना को संगठित करो। वाराही को यह आज्ञा मिलते ही उसने सर्वशक्ति-सैन्यदल से घिरकर॥ ४०॥ मन्त्रिणी को साथ लेकर देवी को प्रणाम कर युद्धक्षेत्र में चली गयी। हाथी, घोड़े और रथ से भरी वह शक्तिसेना बाहर निकल आयी॥ ४१॥ जैसे संसार को डुबा देने के लिए समुद्र में बाढ़ आती है उसी तरह जुझारू बाजे के साथ हाथी, घोड़े और रथ की आवाज के साथ॥ ४२॥ मिली-जुली सिंहनाद की तरह शक्तिसेना का जय-जयकार करते हुए लोकदमन करने वाली उस आवाज को सुनकर दैत्यों ने घोर आवाज॥ ४३॥ करते हुए अति विपुल

भीरूणां प्राणहरणः पल्वलानां प्रशोषणः। अथाऽभवन्महायुद्धं सेनयोः शक्तिदैत्ययोः ॥ ४५॥
जघ्नुर्दैत्याः शक्तिगणं विचित्रैरायुधैः पृथक्। तथा दैत्यान् शक्तयोऽपि ममर्दुर्हेतिपातनैः ॥ ४६॥
शरप्रहारैस्तिलशः केचित्तत्र कृता रणे। केचित् कृपाणिना मध्ये पाटिताः शकलीकृताः ॥ ४७॥
केचिच्छक्तिषु भल्लेषु प्रोताः शूलेषु मध्यतः। केचिच्चक्रेण संच्छिन्नकन्धरोदरबाहवः ॥ ४८॥
पेषिताः परिघैः केचिच्छतघ्नीमुद्गरादिभिः। अमोघपाशैः परितः पाशिताः केचिदञ्जसा ॥ ४९॥
केचित् कुठारपरशुप्रमुखैर्मूर्ध्नि भेदिताः। विक्षताः केचिदुरसि तोमराऽङ्कुशसारणैः ॥ ५०॥
एवं युद्धं बभौ तत्र मुहूर्तं समभावतः। अथ शक्तिगणैर्भग्ना दैत्यसेना प्रविद्रुता ॥ ५१॥
क्रन्दमाना हताः स्मो वै हा हेति च दृढं हताः। अनुद्रुताः शक्तिगणैः शरणं प्रेप्सवोऽभितः ॥
असृग्वहा ववुस्तत्र क्रव्यादशुभदर्शनाः। तरङ्गैः कङ्कालगणान् वाहयन्त्यः समेधिताः ॥ ५३॥
केचित्तासु प्रपतिता नीता दूरं निमेषतः। एवं दैत्यप्रविद्रावं दृष्ट्वा भण्डाऽनुजस्तदा ॥ ५४॥
विशुक्रः प्राह पार्श्वस्थान् बलाहकमुखाऽसुरान्। प्रोवाचाऽऽहूय विज्ञाय तानमेयपराक्रमान् ॥
हे बलाहक पश्येमान् दैत्यान् शक्तिगणैर्हतान्। अनाथानिव युद्धेषु काल्यमानान् समन्ततः ॥
गच्छ त्वं भ्रातृभिर्युक्तो नाशय प्रत्यरीनिमान्। तपसा भवतां नेत्रे सूर्यः स्वांऽशं ददौ किल ॥ ५७॥
गत्वाऽवलोकनेनेमा भवन्तो निर्दहन्तु वै। इत्याज्ञप्तो भ्रातृयुतो ययौ शक्तीर्विहिंसुतम् ॥ ५८॥
बलाहकः कालमुखो विकर्णो विकटाऽऽननः। सूचीमुखः करालाक्षः करटश्चेति सप्त ते ॥
भ्रातरोऽतिक्रूरबला यमीक्षन्त्यतिरोषतः। स सन्तप्तोऽतितर्षेण प्रयाति निधनं द्रुतम् ॥ ६०॥

प्रतिध्वनि की। दोनों सेना की वह मिली-जुली आवाज धरती से आकाश तक व्याप्त हो गई॥ ४४॥ डरपोकों की जान लेने वाला, तालाबों को सुखाने वाला शक्ति और दैत्य सेना के बीच युद्ध ठन गया॥ ४५॥ दैत्यों ने शक्तिगण को विचित्र आयुधों से मारना शुरू किया तथा दैत्यों को शक्तियाँ भी भयंकर आघात करने लगीं॥ ४६॥ रणाङ्गण में बाण के प्रभाव से कुछ टुकड़े-टुकड़े में कट गये और कुछ तलवार से कटकर रणक्षेत्र में पट गये॥ ४७॥ कुछ शक्तियों पर भाले, बर्छी और त्रिशूलों से प्रहार किया और कुछ के चक्र से कन्धे, पेट और बाँहें कटीं॥ ४८॥ कुछ गदा से पिस गये तो कुछ शतघ्नी मुद्गर से चूर-चूर हो गये। अमोघ पाशों से कुछ को शीघ्र ही चारों ओर से बाँध लिया॥ ४९॥ कुछ के कुठार, फरसे जैसे प्रमुख अस्त्रों से शिर कटें तो कुछ की तोमर-अंकुश से छाती छिदी॥ ५०॥ इस तरह दोनों दल के समभाव से एक क्षण तक युद्ध चला, फिर शक्तिसेना से भग्न दैत्यसेना भागने लगी॥ ५१॥ रोते हुए 'हाय मरा' 'हाय बुरी तरह मारा गया' इस तरह बोलते शक्तिगण से पीछा किये जाते हुए शरण की खोज में चारों ओर भागने लगें॥ ५२॥ खून की नदियाँ बह चलीं, अशुभ दर्शन, मांसाहारी जीव वहाँ पट गये। नदियाँ अपने तरंगों के साथ कंकालों को भी बहाते ले चलीं॥ ५३॥ उनमें कुछ गिरे और पलक झपकते ही दूर खींच लिये गये। इस तरह दैत्यों का विनाश देखकर भण्डासुर के छोटे भाई॥ ५४॥ विशुक्र ने बगल में खड़े बलाहक-प्रमुख असुरों से उन्हें अमित पराकम्रशाली जानकर बुला कर कहा॥ ५५॥ हे बलाहक! शक्तिगण से मारे गये इन दैत्यों को देखो, अनाथ की तरह युद्ध में ये चारों ओर से मारे गये हैं॥ ५६॥ अपने भाइयों के साथ तुम जाओ और इन दुश्मनों का विनाश करो, क्योंकि तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने तुम्हारी आँखों में अपना अंश प्रदान किया है॥ ५७॥ जाकर तुम्हारे देखने मात्र से ये शक्तियाँ जल जायेगीं। यह आज्ञा सुनकर अपने भाइयों के साथ शक्तिसेना का विनाश करने के लिए प्रस्थान किया॥ ५८॥ बलाहक, कालमुख, विकर्ण, विकटानन, सूचीमुख, करालाक्ष और करट—ये सात॥ ५९॥ भाई जो अत्यन्त क्रूर और बलशाली थे, जिसे ये क्रोध

तैरुपास्य दिवानाथं प्राप्तमेवंविधं बलम् । एवंविधास्ते सेनायां प्रविश्य युगपत्तदा ॥ ६१ ॥
विनिघ्नन्तः शक्तिगणं ददृशुः क्रूरचक्षुषा । अथ ताः शक्तयः सर्वा दैत्यानामवलोकनात् ॥ ६२ ॥
महत्या तृषया व्याप्ताः सन्तापेनाऽखिलाऽङ्गकैः । एवमत्यन्तसन्तापतृषाभ्यां समभिप्लुतम् ॥
अवसन्नं शक्तिगणं सङ्घशः समराऽवनौ । मन्त्रिणीं दण्डिनीं त्यक्त्वा सर्वं शक्तिगणं यदा ॥ ६४ ॥
गजाऽश्ववाहनोपेतं पतितं तापहेतुतः । तन्नेत्रवीर्यं न तयोः प्रवृत्तं तन्महित्वतः ॥ ६५ ॥
निशाम्य तद्दण्डनाथा मन्त्रिण्यै संन्यवेदयत् । विचार्य मन्त्रिणी चाऽपि विदित्वा रव्यनुग्रहम् ॥
श्रीदेवीचक्ररक्षार्थं या नाऽऽयाता महायुधि । सस्मार मनसा शक्तिं तिरस्करणिकाऽभिधाम् ॥
स प्राप्ता स्मृतिमात्रेण कालाञ्जननिभे हये । समारूढा नीलवपुर्नीलांशुकविभूषणा ॥ ६८ ॥
नीलमाल्यधरा गाढध्वान्तसन्तमसाऽऽवृता । स्वसमाकारशक्तीनां कोटिभिः परिवारिता ॥
न तदिच्छां विना कोऽपि पश्येत्तां जगतीतले । आगत्य मन्त्रिणीं नत्वा प्राह किं संस्मृतेति वै ॥
पृष्टैवमुक्त्वा दैत्यानां बलं तन्नाशनाय ताम् । विसर्जयामास पुनः शक्तीनां शान्तिहेतवे ॥ ७१ ॥
अमृतेशीं सुधासिन्धुमाज्ञापयदनुद्रुतम् । आज्ञप्तैवं समारुह्याऽदृश्यवाहनमुत्तमम् ॥ ७२ ॥
तिरस्कृतिरदृश्याङ्गी तादृक्शक्तिगणावृता । नाशयामास दैत्यानां सेनां शस्त्रनिपातनैः ॥ ७३ ॥
तिरस्कृतिः ससर्जाऽस्त्रमन्धाख्यं तेन तेऽसुराः । अन्धीभूताः किञ्चिदपि ददृशुर्नो कथञ्चन ॥ ७४ ॥
तथापि युध्यमानांस्तान् बलवीर्येण सम्भृतान् । चिरं युद्धैर्विनिर्जित्य तिरस्करणिका ततः ॥ ७५ ॥
खड्गेन युगपत्तेषामाहरन्मस्तकं रुषा । हते बलाहकमुखे तिरस्करणिकां सुराः ॥ ७६ ॥

से देखते थे वह जलकर राख हो जाता था॥ ६० ॥ इन सातों भाइयों ने सूर्य की उपासना कर इस तरह की शक्ति प्राप्त की थी। वे सातों एक साथ मिलकर शक्तिसेना में प्रवेश कर गये॥ ६१ ॥ उन्होंने शक्तिगणों को क्रूर आँखों से देखा, फिर क्या था, वे सारी शक्तियाँ इन दैत्यों के देखने से॥ ६२ ॥ प्यास से व्यग्र हो उठीं और उनके सारे अंग सन्ताप से जलने लगे॥ ६३ ॥ समरभूमि में संघशः शक्तिगण अवसन्न हुई। मन्त्रिणी और दण्डिनी को छोड़कर जब सारी शक्तिसेना॥ ६४॥ हाथी-घोड़े जैसे वाहनों के साथ ताप के कारण गिरने लगी, उनके नेत्र-पराक्रम से ये सब धरती पर पट गये॥ ६५॥ दण्डिनी ने यह देखकर मन्त्रिणी से निवेदित किया। मन्त्रिणी ने भी उन पर सूर्यदिव के अनुग्रह को जानकर उस पर विचार करने के बाद॥ ६६ ॥ श्रीदेवीचक्र की रक्षा के लिए इस महायुद्ध में जो नहीं सम्मिलित हुई थी, उस 'तिरस्करणिका' नामक शक्ति का मन से ध्यान किया॥ ६७ ॥ बस, याद करते ही वह देवी काजल की तरह काले घोड़े पर सवार होकर वहाँ उपस्थित हो गई। वह नीलवर्णा थी, उसके वस्त्राभूषण भी नीले ही थे॥ ६८॥ गले में नीली माला थी, सघन अन्धकार से आच्छन्न थी। अपनी ही तरह महाबलवती करोड़ों शक्तियों से घिरी थी॥ ६९ ॥ इस संसार में उसकी इच्छा के बिना उसे कोई देख नहीं सकता। वह महाशक्ति याद करते ही वहाँ पहुँचकर मन्त्रिणी को प्रणाम कर उनसे पूछा॥ ७० ॥ इस तरह पूछने पर शक्तिसेना की शान्ति तथा दैत्यों के विनाश के लिए उस 'तिरस्करणी' को रणाङ्गन में भेज दिया॥ ७१ ॥ सुधासिन्धु की तरह उस अमृतेशी की आज्ञा मिलते ही अपने उत्कृष्ट एवं अदृश्य वाहन पर सवार होकर॥ ७२ ॥ उस अदृश्य शरीर वाली 'तिरस्करणी' ने अपनी ही तरह शक्तियों से घिरी दैत्यसेना पर शस्त्राघात कर उसे विनष्ट कर देना चाहा॥ ७३ ॥ उसने अन्ध नामक अस्त्र की रचना की। उस हथियार के प्रयोग से सारे-के-सारे दैत्य अन्धे हो गये, उनमें किसी को कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था॥ ७४॥ फिर भी वे युद्ध करते रहे, उन्हें अपने बल-पराक्रम से बहुत देर तक युद्ध कर तिस्करणी ने जीत लिया॥ ७५ ॥ उसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध होकर तिरस्करणिका ने हाथ में तलवार

अवर्षन् दिव्यकुसुमैर्वादयन्तश्च दुन्दुभीन्। जहृषुर्देवतामुख्या लोककण्टकनाशनात्॥ ७७॥
अमृतेश्यमृताऽऽसारैर्मृताः शक्तीरजीवयत्। एवं तिरस्कृतिर्जित्वा दैत्यांस्तपनलोचनान्॥ ७८॥
मन्त्रिणीं दण्डिनीं नत्वा प्रोवाच विजयं स्वकम्। आलिङ्ग्य ते कृतं कृत्यमसाध्यं सर्वथा त्वया॥
इत्यूचतुस्तुतुष्टुवतुर्मन्त्रिणीदण्डनायिके। एवं बलाहकमुखे हते सूर्योऽस्तमाययौ॥ ८०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये ललितामाहात्म्ये तिरस्करणिकायुद्धे बलाहकादिवधेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ५६६८॥



उठाकर बलाहक-प्रमुख दैत्यनायकों की एक साथ गर्दन काट डाली। उनके मारे जाने पर देवताओं ने॥ ७६॥ आकाश से तिरस्करणिका पर दिव्य फूलों की वर्षा की। उस लोककण्टक के विनाश से प्रमुख देवगण प्रसन्न होकर आकाश में नगाड़े पीटने लगे॥ ७७॥ इधर अमृतेशी ने अमृत वर्षा कर मृत शक्तियों को जीवनदान दिया। इस तरह सूर्य की आँख वाले दैत्यों को जीतकर तिरस्करणी ने॥ ७८॥ मन्त्रिणी और दण्डिनी को नमस्कार कर अपनी विजयगाथा सुनायी। इन दोनों ने कृतकृत्य होकर उन्हें आलिंगनबद्ध कर लिया और कहा देवि! तुमने असाध्य को साध्य कर दिया॥ ७९॥ इस तरह मन्त्रिणी और दण्डनायिका ने ऐसा कहकर तिरस्करिणी को सन्तुष्ट किया। उधर बलाहक-प्रमुख दैत्यों के मरणोपरान्त भगवान् सूर्य भी अस्तोन्मुख हुए॥ ८०॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत तिरस्करणिका-युद्ध में बलाहकादि वध नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५६६८॥



अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

एवं तपननेत्रेषु तिरस्कृत्याऽऽहतेष्वपि । त्रिपुरामायया मूढाः सङ्कल्पजयहर्षिताः॥ १ ॥
विशुक्रकुटिलाक्षाद्या विषङ्गमसुरैर्वृतम् । पार्ष्णिग्रहविधानाय प्रेषयित्वा विधानतः॥ २ ॥
युयुधुः शक्तिसेनाभिराहृताऽत्यन्तविक्रमाः । विशुद्धो मन्त्रिणीं दण्डराज्ञीं सेनापतिः स्वयम्॥
बालां भण्डसुताश्चाऽपि मन्त्रिणश्च तिरस्कृतिम् । उलूकजित्प्रभृतयो गजवाजिवहे तथा॥ ४ ॥
दैत्यसेनाः शक्तिसेनां योधयामास सङ्गताः । अस्तं याते सवितरि सर्वतस्तमसाऽऽवृते॥ ५ ॥
प्रवृत्तः समरोऽत्यन्तदारुणः शक्तिदैत्ययोः । मुहूर्तमात्रं सन्ध्याप्रकाशैरभवद्रणः॥ ६ ॥
ततो गाढेऽन्धतमसि प्रवृत्ते सर्वतो दिशम् । अभवद्दारुणं युद्धं शक्तिदानवसेनयोः॥॥ ७ ॥
ताराज्योतिःसमूहेन शब्देन च परस्परम् । युयुधुः शस्त्रजालैस्ते शक्तिभिर्दैत्यपुङ्गवाः॥ ८ ॥
अथाऽतिसम्मर्द्दवशात् सेनयोरज उत्थितम् । आच्छादयन्नभोभागं तारकागणसंवृतम्॥ ९ ॥
अन्धकारसमाविष्टा भूयो रोषाऽन्धतां गताः । युयुधुः शक्तिदैत्यानां गणाश्चाऽक्रमयोगतः॥
केचित्तत्राऽऽह्वयाश्चक्रुरन्येताननुसंययुः । शस्त्राण्यन्येषु युञ्जन्ति तान्यन्यान् घातयन्ति हि॥
शब्दवेधमहायुद्धमभवद्भृशदारुणम् । तत्र दैत्यैर्हता दैत्याः शक्तिभिः शक्तयस्तथा॥ १२॥
एवमत्यन्तबीभत्सं युद्धमाक्रन्दभीषणम् । केचिच्छस्त्रैर्विनिहताः परे रथविघर्षिताः॥ १३॥

---

* विमला *

इस तरह तिरस्करणी द्वारा तपन नेत्र वाले दैत्यों के मारे जाने पर भी त्रिपुरा की माया से मोहित सङ्कल्पित विजय से हर्षित॥ १॥ विशुक्र, कुटिलाक्ष आदि अगल-बगल सहायता के लिए असुरों से घिरे विषंग को विधिपूर्वक भेजकर॥ २॥ शक्तिसेना के साथ अत्यन्त पराक्रम युक्त युद्ध करने लगे। विशुक्र मन्त्रिणी के साथ और स्वयं सेनापति दण्डराज्ञी के साथ॥ ३॥ भण्ड के बेटे बालाम्बा के साथ और उलूकजित् प्रभृति हाथी-घोड़े पर सवार होकर मन्त्रिणी और तिरस्करिणी के साथ जा भिड़ें॥ ४॥ दैत्यसेना के साथ शक्तिसेना युद्ध करने लगी। इसी बीच सूर्यास्त हो जाने के कारण चारों ओर अन्धकार छा गया॥ ५॥ शक्तिसेना और दैत्यसेना के बीच अतिदारुण युद्ध शुरू हुआ। सान्ध्य वेला की धुँधलिका में यह युद्ध एक पल ही चला॥ ६॥ तब तक सघन अन्धेरा छा गया। चारों ओर हाथ को हाथ नहीं दीखता था। इस घोर अन्धकार में शक्ति और दानव के बीच दारुण युद्ध शुरू हुआ॥ ७॥ ताराज्योति-सूमह से या आवाज पहचान कर परस्पर शक्तिसेना के साथ दैत्यगण युद्ध करने लगे॥ ८॥ अत्यन्त घर्षण के कारण दोनों सेना के बीच से धूलिकण उपर उठें और ये धूलिकण आकाश के टिमटिमाते तारों के प्रकाश को भी ढक लिये॥ ९॥ इस तरह अन्धकार-समाविष्ट रणक्षेत्र में क्रोध से अन्धे बने शक्ति और दैत्य सेना अक्रम योग से लड़ते रहे॥ १०॥ वहाँ कोई किसी को बुलाता और दूसरा उसके पीछे दौड़ जाता, हथियार किसी के लिए उठाता और मरता कोई अन्य॥ ११॥ यह अतिभयंकर दारुण शब्दवेध महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। इसमें दैत्य से दैत्य और शक्ति शक्ति से मारे जा रहे थे, अपने-पराये का कोई बोध नहीं था॥ १२॥ इस तरह अत्यन्त बीभत्स आक्रन्द भीषण युद्ध प्रारम्भ था। कुछ हथियार से मरे तो कुछ रथ के चक्के में पिसकर मरे॥ १३॥ घोड़ों के खुर से टकरा कर कुछ मरे तो कुछ हाथी

अश्वैरास्फालिताश्चाऽन्ये गजाऽऽक्रामैः सुपेषिताः। एवं महत्तरे तत्र सम्मर्द्दे सति वैशसे॥ १४॥
न केऽपि संविदुः स्वीयां तथा सेनां परामपि। अन्तं मध्यमथाऽऽदिं वा सेनायाः केऽपि नो विदुः॥
निशाम्यैतन्मन्त्रनाथा मत्वा तं विषमं रणम्। ज्वालामुखीं महादेवीं सस्मार त्रिपुरांशजाम्॥ १६॥
स्मृतमात्रैव सा देवी प्रादुरासीद्रणाऽङ्गिरे। ज्वलत्पर्वतसङ्काशा ज्वालाव्याप्तदिगन्तरा॥ १७॥
तस्या अङ्गप्रभापूरैर्नाशितं निखिलं तमः। तदा दैत्याः शक्तयोऽपि युयुधुः क्रमसङ्गताः॥ १८॥
एवं पुनः क्रमाद्युद्धे प्रवृत्ते निशि कुम्भज। बाला भण्डसुतैर्युद्धं विचित्रमतनोद्भृशम्॥ १९॥
चतुर्बाहुमुखा भण्डसूनवो विष्णुविक्रमाः। त्रिंशत्संख्या एककालं युयुधुर्बालया दृढम्॥ २०॥
रथाऽऽरूढा विचित्रेषून् किरन्तः सर्वतो दिशम्। बालां समाच्छदुः शस्त्रैर्दिनेशं तुहिनैरिव॥
अथ बालाऽपि शस्त्रौघान्निजशस्त्रस्य तेजसा। नाशयामास वेगेन तमः सूर्योदयो यथा॥ २२॥
ततोऽतिद्रुतसन्धानाच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः। प्रत्येकं भण्डतनुजरथाश्वानकरोन्मृतान्॥ २३॥
रथनेत्रीस्तथैकेन धनूंष्येकेन चाऽच्छिनत्। तथैकेन पुनस्तेषां हृदि विव्याध लीलया॥ २४॥
हताऽश्वा नष्टशस्त्रास्ते विद्धा बाणेन वक्षसि। मृतप्रायाः समभवन् व्यथया गाढमूर्च्छिताः॥
उलूकजित्प्रभृतयो भण्डस्य भगिनीसुताः। ते षष्टिसङ्ख्या युद्धेषु भीमवीर्याः सुयोधिनः॥ २६॥
तैर्युयोध हयारूढा सम्पद्देवी च सायकैः। विचित्रयुद्धं तन्वाते द्रष्टृविस्मापनं परम्॥ २७॥
पृथग्युद्धं समभवत्त्रिंशत्सङ्ख्यैर्द्विधा स्थितैः। युद्ध्वा चिरं हयारूढा बद्ध्वा पाशेन तान् क्रमात्॥

के पैरों से दबकर मरे। इस तरह चारों ओर भयंकर कराह उठने लगी॥ १४॥ किसी को अपनी और पराई सेना का बोध नहीं था। सेना के आदि, अन्त और बीच का भी किसी को ज्ञान नहीं था॥ १५॥ मन्त्रनाथा ने इस भयंकर युद्ध को देखकर तथा इसे विषम मानकर त्रिपुरा के अंश से उत्पन्न महादेवी ज्वाला को याद किया॥ १६॥ याद करते ही वह देवी रणाङ्गन में प्रादुर्भूत हुई। जलते पहाड की तरह जिससे चारों ओर ज्वाला फूट रही थी॥ १७॥ उसके शरीर की प्रभा से सम्पूर्ण अन्धकार विनष्ट हो गया। तब दैत्यसेना और शक्तिसेना क्रमागत युद्ध करने लगी॥ १८॥ हे कुम्भज! उस रात में फिर क्रमागत भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। भण्ड के बेटों के साथ रोंगटे खड़ा कर देने वाला यह युद्ध था॥ १९॥ चार मुख और बाँहों वाले भण्ड के बेटे भगवान् विष्णु की तरह पराक्रमी थे। वे तीस की संख्या में थे, वे सब मिलकर अकेली बालाम्बा के साथ मजबूती से युद्ध कर रहे थे॥ २०॥ विचित्र रथ पर वे सवार होकर सारी दिशाओं को घेरकर अपने हथियारों से बालाम्बा को उसी तरह आच्छादित कर दिये जैसे कुहासे सूर्य के प्रकाश को घेर लेते हैं॥ २१॥ बालाम्बा ने भी अपने शस्त्र-समूह के तेज से इस अन्धकार को उसी तरह काट डाला जैसे सूर्योदय से रात का अन्धकार विनष्ट होता है॥ २२॥ उसके बाद चार तीव्र बाणों का एक साथ सन्धान कर बालाम्बा ने भण्ड-बेटे के रथ और घोड़ों को समाप्त कर दिया॥ २३॥ उस रथनेत्री ने फिर एक बाण से उनके धनुषों को काट डाला और दूसरे बाण से बड़ी आसानी से उनकी छाती को छलनी कर दिया॥ २४॥ जिनके घोड़े मारे गये, अस्त्र-शस्त्र विनष्ट हुए, बाण से छाती बिंध गई—ऐसे भण्डसुत मृतप्राय होकर गहरे बेहोश हो गये॥ २५॥ जहाँ तक भण्ड के भगिने उलूकजित् प्रभृति थे, जिनकी संख्या साठ थी, युद्ध में अपने पराक्रम के साथ युद्ध कर रहे थे॥ २६॥ घोड़े पर सवार सम्पद्देवी ने बाणों से उनके साथ युद्ध किया। यह विचित्र युद्ध था, आँखों को विस्मय में डालने वाला युद्ध था॥ २७॥ उधर तीस संख्या वाले उनके बेटे दो खण्डों में विभक्त होकर अलग ही युद्ध कर रहे थे। घोड़े पर सवार होकर सम्पत्तिदेवी ने क्रमशः उन्हें पाशों में जकड़ लिया॥ २८॥ और तेज धार वाली तलवार से उनकी गर्दनें काट डालीं। इधर सम्पन्नाथा ने

चिच्छेद सितधारेण शिरः खड्गेन रोषिता। सम्पन्नाथाऽपि तैर्युद्ध्वा भूयो भल्लेन तान् क्रमात्॥
हृदि विद्ध्वाऽन्तकपुरं प्रेषयामास सत्वरम्। उग्रकर्मप्रभृतयो युयुधुस्तत्र संयुगे॥ ३०॥
तिरस्करणिकादेव्या शस्त्रैरस्त्रैरनेकशः। युद्ध्वैवं मन्त्रिभिः साऽपि क्रुद्धा खड्गेन पातयत्॥
शिरः कायादुग्रकर्ममुखानामतिवेगतः। युयोध कुटिलाक्षेण दण्डनाथा रथस्थिता॥ ३२॥
परस्परं ववृषतुः शरैः स्वर्णविचित्रितैः। परस्परप्रयुक्तानि नानाशस्त्राणि चिच्छिदुः॥ ३३॥
रथस्थो भण्डसेनेशः कुटिलाक्षः प्रकोपनः। प्रसह्य कोलवदनां युयोधाऽतिसुशिक्षितः॥ ३४॥
युद्ध्वैवं कोलवदना वाजिनस्तस्य पत्रिभिः। निष्प्राणानकरोदष्टौ कर्णाऽऽकृष्टैर्धनुश्च्युतैः॥
एकेन सारथिं हत्वा निचखानाऽपरं हृदि। शरेणोरसि संविद्ध ईषत् निष्प्रज्ञतां गतः॥ ३६॥
पुनर्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो गदां प्रादाय चोत्प्लुतः। किरिचक्ररथाऽऽबद्धसिंहमूर्ध्नि प्रपातयत्॥ ३७॥
गदां सर्वाऽऽयसीं वज्रकल्पां सर्वबलेन सः। तथा जगर्ज करिणं हत्वेव हरिलोचनः॥ ३८॥
सिंहोऽपि गदया विद्धो मूर्च्छां प्राप्य निमेषतः। पुनः प्रज्ञां प्राप्य रुषा दृष्ट्वा दैत्यं पुरःस्थितम्॥
तलेन वक्षस्यहनद्धतो हरितलेन सः। पाटितोरःस्थलो रक्तधारां मुञ्चदनेकधा॥ ४०॥
पुनराप्लुत्य वाराहीरथं दितिकुलोद्भवः। परिवारशक्तिगणः कदनं कल्पयद्रुषा॥ ४१॥
एवं तं रथमारुह्य युध्यमानं महासुरम्। वाराह्या वृत्तिमुख्याया जम्भिनी शक्तिरुत्तमा॥ ४२॥
साऽयुध्यत् कुटिलाक्षेण चिरं पश्चादतीव तम्। युध्यमानं शरेणाऽऽस्ये निजघान महाबला॥
हतो गाढं शरेणाऽऽस्ये क्षणं स्तब्धोऽतिपीडया। पुनरुत्प्लुत्य गदया तां मूर्ध्नि प्राहरद्रुषा॥ ४४॥

भी उनके साथ फिर युद्ध कर उन्हें क्रमशः भाले से॥ २९॥ छाती छेदकर शीघ्र यमलोक पहुँचा दिया। उग्रकर्म प्रभृति के साथ महाशक्तियाँ अब युद्ध कर रही थीं॥ ३०॥ इधर तिरस्करिणी देवी ने भी अनेक अस्त्र-शस्त्रों से मन्त्रियों से युद्ध कर अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए तलवार चला दी॥ ३१॥ अतिवेग से चलाई गई उस तलवार से उग्रकर्म-प्रमुख दैत्यों के सिर धड़ से अलग हो गये। उधर दण्डनाथा रथ पर बैठकर कुटिलाक्ष से युद्ध करने लगी॥ ३२॥ परस्पर एक-दूसरे पर स्वर्ण-विचित्रित बाणों की वर्षा होने लगी। एक-दूसरे पर चलाये गये अनेक शस्त्र कटने लगे॥ ३३। रथ पर सवार भण्डसेना का सेनापति प्रकुपित कुटिलाक्ष वाराही को पकड़कर अत्यन्त सुशिक्षित ढंग से युद्ध करने लगा॥ ३४॥ इस तरह युद्ध करते हुए वाराही ने उसके पंखवाले आठ घोड़ों को कान तक बाण खींचकर अपने धनुष से मार डाला॥ ३५॥ एक बाण से उसके सारथी को मारकर दूसरा बाण उसके हृदय पर चला दिया, फिर तीसरे बाण से उसकी छाती को वेध कर उसे थोड़ा बेहोश कर दिया॥ ३६॥ फिर होश आने पर उसने गदा उठाकर उसे उछाल कर किरिचक्र रथ में जुते सिंह के माथे पर दे मारा॥ ३७॥ वह सम्पूर्ण गदा लोहे की बनी थी, वज्रकल्पा थी तथा उसे पूरी ताकत के साथ चलाई गयी थी। फिर वह उस सिंह की तरह गरजा जो किसी हाथी को मारा हो॥ ३८॥ इधर सिंह भी गदा से विद्ध होकर एक क्षण के लिए बेहोश हुआ, फिर होश में आकर सामने खड़े दैत्य को देखकर॥ ३९॥ पंजे से उस राक्षस की छाती पर चोट कर दिया। सिंह के पंजे से उसकी छाती फट गई और उससे बिलबला कर रक्त की धारा बह चली॥ ४०॥ फिर वह दैत्य उछलकर वाराही के रथ पर चढ़ गया और परिचारिका शक्तिगणों को क्रोध से मारने लगा॥ ४१॥ इस तरह रथ पर चढ़कर युद्ध करते उस महासुर को वाराही, वृत्ति, जम्भिनी और उत्तमा शक्ति प्रमुख मिलकर॥ ४२॥ उस कुटिलाक्ष के साथ युद्ध करती रही। फिर उस महाबला ने युद्ध करते उस दैत्य के मुख में बाण से आघात किया॥ ४३॥ मुँह पर गहरी चोट खाने के बाद एक क्षण अत्यन्त पीडा से वह स्तब्ध रहा, फिर उछलकर उसने गदा से उस महादेवी के सिर

अथ सा गाढसंविद्धा रथोपस्थे उपाविशत्। एवंविधां शक्तिगणा दृष्ट्वा हा हेति चुक्रुशुः ॥ ४५॥
तावत्तस्या धनुर्दैत्यो बभञ्जाऽऽच्छिद्य सत्वरम्। उत्थिता जम्भिनी भूयो दृष्ट्वा भग्नं निजं धनुः ॥
रुषा ज्वलन्ती महतीं गदां स्वीयां परामृशत्। अथाऽभवद्गदायुद्धं भीमं त्वाष्ट्रेन्द्रसन्निभम्॥
जम्भिनीदैत्ययोर्दृष्ट्वा विस्मिता देवदानवाः। मत्वा रथं सङ्कुचितं भूमौ ताभ्यामभूत् कृतम्॥
गदायुद्धं सुविपुलं भीरुहृत्कम्पकारकम्। परस्परगदापातप्रादुर्भूतमहारवम्॥ ४९॥
गदासङ्घट्टनोदश्चत्पावकौघप्रवर्षणम्। विचित्राऽऽक्रमणोत्प्लावचित्रसंस्थानसुन्दरम्॥ ५०॥
तत उत्प्लुत्य वेगेन हन्तुं तामभिचक्रमत्। यावत्तावत्तया मूर्ध्नि बलवद्गदया हतः॥ ५१॥
प्रस्फुटद्दृग्जुहावक्त्रादुच्छलद्रक्तधारया। वर्षंस्तां पतितो भूमौ शीर्णसर्वाऽङ्गबन्धनः॥ ५२॥
गदामालिङ्ग्य तरसा मुमोचाऽसून् लुठन् भुवि। हतं वीक्ष्य चमूनाथं दैत्या भीताः पलायिताः॥
देवताः शक्तयश्चाऽपि जहृषुः शत्रुनाशनात्। एवं दैत्यं निहत्याऽऽशु जम्भिनी दण्डनायिकाम्॥
प्रणम्य संश्रिता पार्श्वं दण्डिनी च प्रहर्षिता। ददौ तस्यै परीरम्भं प्रेम्णा तां प्रसमीक्षत॥ ५५॥
विशुक्रेण युयोधोच्चैर्मन्त्रिणी वीर्यवत्तरा। विशुक्रोऽपि महाशूरो युवराजोऽतिवीर्यवान्॥ ५६॥
विचित्रमकरोद्देव्या रणमाश्चर्यकारणम्। परस्परस्य शस्त्राणि प्रतिशस्त्रैर्विनाशयन्॥ ५७॥
अस्त्रैरस्त्राण्यपि तथा नाशयन्तौ परस्परम्। एवं चिरं नियुध्यन्तमत्यद्भुतपराक्रमम्॥ ५८॥
दृष्ट्वा मन्त्रमहाराज्ञी दर्शयन्ती स्वचातुरीम्। युगपच्छरसङ्घेन रथमश्वांश्च सारथिम्॥ ५९॥

पर प्रहार किया॥ ४४॥ इसके बाद वह गहरी चोट खाकर रथ के उपस्थ में बैठ गई। शक्तिगण उसकी यह स्थिति देख कर हा-हाकार कर उठी॥ ४५॥ तब तक शीघ्र ही उनके हाथ से धनुष छीनकर तोड़ डाला। फिर उठकर जम्भिनी ने अपने धनुष को टूटा देखकर॥ ४६॥ क्रोध से जलती अपनी गदा उठा लिया। फिर दोनों के बीच भयंकर इन्द्र और राक्षसों के समान गदायुद्ध होने लगा॥ ४७॥ जम्भिनी और दैत्य के बीच इस युद्ध को देखकर देव और दानव दोनों विस्मित थे। उन दोनों के बीच जो युद्ध हुआ उसमें रथ के लिए धरती संकुचित मानकर॥ ४८॥ भीरु हृदय को कँपाने वाला अत्यन्त विशाल गदायुद्ध प्रारम्भ हुआ। परस्पर गदापात से महाघोर आवाज निकलने लगी॥ ४९॥ गदा के संघर्ष से चिनगारियों के समूह की वर्षा हो रही थी। एक-दूसरे पर यह विचित्र आक्रमण था, जो चित्रसंस्थान की तरह अति सुन्दर था॥ ५०॥ तब उछलकर अत्यन्त वेग के साथ जब तक वह उस शक्ति पर प्रहार करना चाहा तब तक उस शक्ति ने उस दैत्य के माथे पर जबरदस्त गदा से प्रहार कर दिया॥ ५१॥ देवी की गदा से चोट खाकर उस दैत्य की आँखों से और मुँह से उछलती रक्त की धारा बहने लगी। उसके शरीर के सम्पूर्ण बन्धन ढीले पड़ गये और वह जमीन पर जा गिरा॥ ५२॥ शीघ्र गदा का आलिंगन करते हुए धरती पर लोट-पोट होते हुए अपने प्राण छोड़ दिये। अपने सेनापति को मरा देखकर भयभीत दैत्यगण भाग गये॥ ५३॥ इस शत्रु के विनाश से देवता और शक्तिगण सभी खुश हो गये। इस तरह दैत्यसेनापति को मारकर शीघ्र ही जम्भिनी दण्डनायिका के पास पहुँची॥ ५४॥ उन्हें प्रणाम कर उनके बगल में खड़ी इसे प्रसन्न दण्डिनी ने खुशी की आँखों से देखकर आलिंगन किया॥ ५५॥ उधर शक्तिशालिनी मन्त्रिणी विशुक्र के साथ घोर युद्ध कर रही थी। विशुक्र भी महाशूर अतिबलवान् और युवराज था॥ ५६॥ युद्ध में परस्पर एक-दूसरे के हथियारों को विनष्ट करते हुए उस रणक्षेत्र को विस्मयकारी और देवी को विचित्र स्थिति में ला दिया॥ ५७॥ परस्पर एक-दूसरे के अस्त्र को काटते हुए अत्यन्त पराक्रम के साथ विशुक्र युद्ध करता हुआ॥ ५८॥ उन्हें देखकर मन्त्रमहाराज्ञी ने अपनी चतुरता

धनुर्मुकुटकं केतुं चिच्छेद निमिषाऽर्धतः। एवं युद्धे परीभूतो विशुक्रो मन्युना ज्वलन्॥ ६०॥
जगृहे खेटनिस्त्रिंशौ हन्तुं देवीं मनो दधे। अथाऽऽयान्तं खड्गकरं दूरादेकेन पत्रिणा॥ ६१॥
करवालं द्विधा कृत्वा खेटमन्येन भेदयत्। छिन्नखेटकनिस्त्रिंशमायान्तं बद्धमुष्टिकम्॥ ६२॥
जघानोरसि भल्लेन निशितेन गरीयसा। भल्लाहतो विशुक्रोऽपि सफेनं रुधिरं वमन्॥ ६३॥
घूर्णितो विभ्रमन् क्रोशद्वये वेगेन पातितः। अवशः संवर्तकेन वायुनेव महागिरिः॥ ६४॥
गाढमूर्च्छामुपगतो यथा लोकान्तरात् कृती। एवं विशुक्रेऽभिहते दैत्यसेना ह्यभिद्रुता॥ ६५॥
निक्षिप्य हेतीन् सन्त्यज्य वाहनानि दिशो दश। विशुक्रं मूर्च्छितं दैत्याः समादाय पुरं ययुः॥ ६६॥
विशुक्रादिषु युध्यत्सु निःशेषशक्तिसेनया। विदित्वा ललितां चक्ररथस्थामेकलां तदा॥ ६७॥
कतिचित्परिवाराऽऽत्मशक्तिसङ्कैकसंश्रयाम्। जेतुं शक्येति संहृष्टो ययौ तत्राऽसुरो द्रुतम्॥ ६८॥
दमनाद्यैः पञ्चदशाऽक्षौहिणीपैः सुसंवृतः। अल्पसेनापरीवारः शस्त्राऽस्त्रबहुसङ्कुलः॥ ६९॥
प्रयाणे पादसङ्घातशब्दमालक्ष्य सोऽसुरः। गजारूढैर्युतो मत्तगजमारुह्य संययौ॥ ७०॥
सर्वे नीलांऽशुकधरा नीलाभरणभूषिताः। समेत्य संविदं कृत्वा पृथङ्नागैश्च सङ्घशः॥ ७१॥
ययुर्दैत्यचमूपृष्ठे योजनद्वयतः परम्। ततः केचिच्छक्तिसेनां वामतोऽन्ये च दक्षतः॥ ७२॥
परिक्रम्य ययुर्मध्ये हित्वा योजनयुग्मकम्। एवं पृथक् सङ्घशस्ते ययुर्दस्युर्यथा ततः॥ ७३॥
चक्रराजशताऽङ्गस्य क्रोशदूरे हि पृष्ठतः। मिलितास्ते सर्व एव ततो निमिषमात्रतः॥ ७४॥
समासेदुः पृष्ठभागं विषङ्गप्रमुखाऽसुराः। विद्यामयी श्रीललिता ज्ञात्वाऽप्यसुरसम्मतम्॥ ७५॥

दिखलाती हुई एक साथ बाण-समूहों से उसके रथ, घोड़े और सारथी॥ ५९॥ धनुष, मुकुट और पताके को आधे पल में काट गिराया। युद्ध में देवी से इस तरह पराजित होकर क्रोध से जलते हुए॥ ६०॥ देवी को मारने के लिए गदा और तलवार उठाकर मन बनाया। हाथ में तलवार लेकर उसे आते देख एक बाण से॥ ६१॥ तलवार को दो खण्डों में काटकर दूसरे से गदा में छेद कर दिया। कटी तलवार और फटी गदा छोड़कर मुक्का से प्रहार करने के लिए आते उसे देखकर॥ ६२॥ देवी ने भारी और तेज भाले से उसकी छाती पर प्रहार कर दिया। भाले की चोट खाते ही विशुक्र भी फेनिल खून का वमन करते हुए॥ ६३॥ घूमते-नाचते वहाँ से दो कोस की दूरी पर वेग से जा गिरा, ठीक उसी तरह जैसे प्रलयकारी वायु के वेग से अवश होकर महान् पर्वत गिरता हो॥ ६४॥ और गहरा बेहोश हो गया; जैसे लोकान्तर की ओर प्रस्थान किया हो। इस तरह आहत विशुक्र को देखकर दैत्यसेना दोड़ पड़ी॥ ६५॥ आयुधों को फेंककर, वाहनों को छोड़कर दसों दिशा से राक्षसगण दौड़ पडें और बेहोश विशुक्र को उठाकर नगर की ओर प्रस्थान किये॥ ६६॥ विशुक्र प्रभृति से युद्ध करते हुए शक्तिसेना तो समाप्त होगी—ऐसा सोचकर, ललिता रानी चक्ररथ में अकेली होगी—ऐसा जानकर॥ ६७॥ कुछ परिचारिका के सहारे अकेली उस ललिता को जीतना तो आसान होगा—यह सोचकर विषंग उस ओर दौड़ पड़ा॥ ६८॥ दमन आदि पन्द्रह अक्षौहिणी सेनाधिपति के साथ थोड़ी सेना और बहुत अधिक शस्त्रास्त्र लेकर॥ ६९॥ उसने प्रयाण किया। उसके प्रयाणकालीन पदचाप को समझकर वह असुर गजारोही सेना के साथ मत्त हाथी पर सवार होकर चला॥ ७०॥ सभी नीलवस्त्र पहनकर, नीले आभरणों से भूषित होकर संघ से नागों को अलग कर उन्हें साथ लेकर॥ ७१॥ वहाँ से दो योजन दूर दैत्यसेना के पीछे शक्तिसेना चली गई एवं कुछ शक्तिदल दायें, कुछ बायें से॥ ७२॥ घूमकर बीच में दो योजन छोड़कर चली गई। चोरों की तरह वे संघ से अलग हटकर घेरा डालीं॥ ७३॥ शताङ्ग चक्रराज के एक कोस पीछे से पल मात्र में वे सब एक साथ मिल गये॥ ७४॥ विद्यामयी श्रीललिता को जानकर भी

तत्राऽऽचख्यौ लीलयैव स्थिता ज्ञातेव तत्र सा। शक्तयो युद्धसन्देशं श्रुत्वा दूरे सुनिर्भयाः ॥ ७६॥
सुष्वपुः सर्व एवैताः स्वस्थानेषु रथोत्तमे। सुप्तशक्तिगणोपेतं प्रज्वलद्दीपसङ्कुकम् ॥ ७७॥
दीपप्रभामूर्च्छनेन समेधितमणिप्रभम्। दीपसङ्कैर्मणिगणैर्द्योतमानं समन्ततम् ॥ ७८॥
दृष्ट्वा समेत्य दैतेया दूरादेकप्रपातततः। आरोढुं रथराजन्तं समीपमभिसंययुः ॥ ७९॥
उत्खातकरवालासु सहस्रमितशक्तिषु। रथस्य परितो गुप्त्यै प्राक्रमत्सु विशेषतः ॥ ८०॥
काश्चिद्दृष्टवा दैत्यसङ्घं गजारूढं समन्ततः। कृत्वाऽऽह्वानमहाशब्दं प्रविशुर्दैत्यवाहिनीम् ॥
खड्गेन जघ्नुर्दैत्यांस्तानाक्षिपन्त्यो वचोगणैः। तदा दैत्यैः शक्तिभिश्च युद्धमासीत् सुभैरवम् ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये ललितामाहात्म्ये विषङ्गच्छल-सङ्गरं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ५७५० ॥



ये विषङ्ग प्रमुख असुर पीछे की ओर से वहाँ पहुँचें ॥ ७५॥ यह सब सुनकर आसानी से शक्तिसेना वहाँ ही युद्ध-सन्देश सुनकर तथा निर्भय होकर चक्ररथ से दूर ही ॥ ७६॥ अपनी-अपनी जगह उत्तम रथ के साथ सो रही थीं; इन सुप्त शक्तियों के साथ वहाँ दीप भी जल रहे थे ॥ ७७॥ दीपसमूह के प्रकाश के साथ चारों ओर मणिगण भी प्रोद्भासित थे ॥ ७८॥ दैत्यसेना दूर से ही एक झलक देखकर उस रथराज पर चढ़ने के लिए उसके पास पहुँची ॥ ७९॥ वहाँ हजारों शक्तियाँ तलवार उठाये गुप्त रूप से रथ की रक्षा कर रही थी ॥ ८०॥ उनमें से किसी एक ने दैत्यसंघ को चारों ओर हाथी पर सवार देखकर जोर से अन्य शक्तियों को पुकारती दैत्यवाहिनी के बीच घुस गई ॥ ८१॥ तलवार से उन्हें मारते हुए उन्हें फटकारने लगी। तब दैत्यों के साथ शक्तिसेना का भयंकर युद्ध हुआ ॥ ८२॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत विषंगछल-युद्ध नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५७५० ॥



अथ सप्ततितमोऽध्याय:



अथ शक्तिसमाह्वानं श्रुत्वाऽऽवरणशक्तयः । विज्ञाय दैत्याऽऽगमनमणिमाप्रमुखास्तदा ॥ १ ॥
स्वस्ववाहसमारूढाः शस्त्रास्त्रैरभिसंवृताः । युयुधुर्दैत्यसेनाभिः समेत्य बलवत्तरम् ॥ २ ॥
शुश्रुवुः क्रमशः सर्वाः शक्तयो रथसंस्थिताः । व्यजिज्ञपुस्तच्छ्रीदेव्यै नित्याः कामेश्वरीमुखाः ॥
तस्यांऽऽज्ञयाऽथ ता नित्या ययुर्युद्धाय दंशिताः । तत्रान्धकारे युद्धं तन्मत्वाऽत्यन्तसुदुःखदम् ॥
कामेश्वर्याज्ञया ज्वालामालिनी या चतुर्दशी । नित्या सा पर्वताऽऽकारवपुषा ज्वालयाऽऽवृता ॥
जज्वाल तज्ज्वालया हि परितो योजनाऽऽयतम् । प्रकाशितमभूत्तत्र युयुधुः शक्तयोऽसुरैः ॥
जघ्नुर्विविधशस्त्रैस्तान् दैत्यान् युद्धसमागतान् । एवं तानसुरान् युद्ध्वा निन्युर्यमपुरं द्रुतम् ॥ ७ ॥
अथ शिष्टा दैत्यगणाः पलायनपराऽभवन् । ते शक्तिभिः परिवृता नाऽलभन्निर्गमं क्वचित् ॥
हन्यमानाः शक्तिगणैर्हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः । तद्दृष्ट्वा दैत्यनिधनं दमनाद्या महासुराः ॥ ९ ॥
विकिरन्तः शरैः शक्तीर्न्यरुन्धन् सर्वतो भृशम् । उच्चावचैः शस्त्रगणैर्जघ्नुः शक्तीः समन्ततः ॥
एवं दैत्यैर्हता गाढं शक्तयोऽपि निजाऽऽयुधैः । ववृषुर्गिरिशृङ्गाणि घना घनगणा इव ॥ ११ ॥
मुहूर्तमभवद्युद्धं शक्तीनां दमनादिभिः । तावत्ते दैत्यसेनेशा दमनाद्या महाबलाः ॥ १२ ॥
चक्रुर्व्याकुलितं शक्तिगणं शस्त्राऽस्त्रवर्षणैः । नष्टवाहा नष्टशस्त्रा नष्टाऽङ्गा नष्टजीविताः ॥

*** विमला ***

इसके बाद शक्ति की पुकार सुनकर घेरा डालने वाली अणिमा-प्रमुख आवरण-शक्तियाँ दैत्यों का आगमन जानकर ॥ १ ॥ अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर तथा शस्त्रास्त्र उठाकर बलवत्तर दैत्यसेना के पास पहुँचकर युद्ध करने लगीं ॥ २ ॥ धीरे-धीरें रथ पर सवार कामेश्वरी प्रमुख सारी नित्या शक्तियाँ इन बातों से अवगत हुईं और श्रीदेवी से निवेदित किया ॥ ३ ॥ उनकी आज्ञा पाकर ये अविनाशी शक्तियाँ युद्ध के लिए निकल पड़ीं। वहाँ अन्धकार में इस युद्ध को अत्यन्त दुःखद मानकर ॥ ४ ॥ आगे बढ़ीं। फिर कामेश्वरी की ही आज्ञा से चौदह ज्वालामालिनी पर्वताकार शरीर वाली ज्वाला से घिरी वहाँ आ गयीं ॥ ५ ॥ योजनों तक फैली चारों ओर उनकी जलती ज्वाला से वह क्षेत्र प्रकाशित हो उठा और उस प्रकाश शक्ति और दैत्य युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ अनेक हथियारों से युद्ध में आये दैत्यों को उन्होंने मार डाला। उन असुरों को मारकर शीघ्र ही यमपुर भेज दिया ॥ ७ ॥ शिष्ट दैत्यगण भागने लगे। वे शक्तियों से घिरकर भागने की कहीं कोई राह नहीं खोज पा रहे थे ॥ ८ ॥ शक्तिगणों से पिटकर हाहाकार कर रहे थे। इस तरह दैत्यों का निधन देखकर दमन आदि महासुरों ने ॥ ९ ॥ अपने बाणों की वर्षा कर चारों ओर शीघ्र ही शक्ति का मार्ग रोक दिया। छोटे-बड़े हथियारों से शक्तियों की हत्या करने लगे ॥ १० ॥ पहाड़ की चोटी पर जैसे सघन बादल बरसते हैं उसी तरह दैत्यों से पिटी शक्तियाँ अपने आयुधों की वर्षा करने लगीं ॥ ११ ॥ दमनादिकों के साथ शक्तियों का यह युद्ध एक मुहूर्त तक चला, तब तक दैत्यसेना के सेनापति महाबली दमनादि ने ॥ १२ ॥ शक्तिसेना के समूह को शस्त्रास्त्र की वर्षा से व्याकुल कर दिया। कुछ के वाहन विनष्ट हुए तो कुछ के शस्त्र, कुछ के अंग कटे तो कुछ मारी गईं ॥ १३ ॥ जानलेवा दैत्य के शस्त्राघात को वे न सह सकीं। कुछ तो मूर्च्छित होकर गिरी तो कुछ

न सेहुर्दैत्यशस्त्राणां प्रपातं प्राणकर्षणम्।
मूर्च्छिताः शक्तयः काश्चित्काश्चित्प्राणान् जहुः पराः॥ १४॥
सञ्छिन्नाः खण्डशश्चाऽन्याः पातिताऽङ्ग्यो गताऽऽयुषः।
दृष्ट्वैवं निहतं शक्तिगणं कामेश्वरीमुखाः॥ १५॥
तिथिदेव्यो रथारूढाश्चुक्रुधुर्बलवत्तराः। दमनाद्यैस्तिथिमितैः सङ्गताः समसङ्ख्यकाः॥॥ १६॥
युयुधुः शस्त्रनिचयैर्बलवीर्यसुसम्भृताः। शस्त्राणि प्रतिशस्त्रैस्ता अस्त्राण्यस्त्रैर्विनाश्य तान्॥
जघ्नुर्लाघवयोगेन दैत्यान् मर्मसु सायकैः। एवं ताभिर्हन्यमाना दैत्याः क्रोधं परं ययुः॥ १८॥
चक्रुरत्यद्भुतं युद्धं वीर्यसाहससंयुतम्। वडवेव धनुर्वक्त्रादुद्गिरन्तः शराऽर्चिषः॥ १९॥
लोकान् दिधक्षन्त इव व्यराजन्त रणाऽजिरे। अथ तांस्तिथिदेव्यस्ता युद्ध्वाऽद्भुतपराक्रमान्॥
अश्वान् रथं सारथिञ्च ध्वजं छित्वा क्रमेण तान्।
भङ्क्त्वा चापं तीक्ष्णभल्लैः शिरश्चिच्छिदुरोजसा॥ २१॥
अथ तेषु प्रणष्टेषु दैत्येषु दमनाऽऽदिषु। विद्रुता दैत्यसुभटाः शिष्टा भीत्या दिशो दश॥ २२॥
विषङ्गो गजसंरूढो युयोध तिथिशक्तिभिः। बहुभिर्बलवानेको युयोधाऽतिरुषाऽन्वितः॥ २३॥
युध्यन्तमतिधैर्येण परिवार्य समन्ततः। जघ्नुः कामेश्वरिमुखा नित्या सायकवर्षणैः॥ २४॥
अथ कामेश्वरी प्राह विषङ्गं युद्धसङ्गतम्। दैत्याऽधमाऽलं युद्धेन प्राणान्तकरणेन ते॥ २५॥
शस्त्रं त्यक्त्वा पादचारो गच्छ शीघ्रं यथासुखम्। विषमं बहुभिर्युद्धमेकस्य प्रतिभाति ते॥ २६॥
श्रुत्वा कामेश्वरीवाक्यं जहासोच्चैर्महासुरः। किं कत्थसि वृथा दुष्टे हित्वा लज्जां सुदूरतः॥
अहमेकः क्षणेनैव सर्वां शक्तिं चमूमिमाम्। हत्वा वो ललितां देवीं बद्ध्वा जीवग्रहेण वै॥ २८॥

ने प्राण त्याग दिये॥ १४॥ कुछ को टुकड़े-टुकड़े में काट डाला तो अन्य के अंगों को काटकर पाट डाला। वे अपने को गतायुष मानने लगीं। इस तरह शक्तिगणों को मारे जाते कामेश्वरी प्रमुख शक्तियों ने देखकर ही॥ १५॥ तिथिदेवियों ने रथ पर सवार होकर उनके साथ बलवत्तर युद्ध प्रारम्भ किया। दमनादि सेनानायकों के साथ तिथिदेवियों का समसंख्यक युद्ध होने लगा॥ १६॥ बल-वीर्य से समन्वित शस्त्रसमूहों से वे युद्ध करने लगीं। एक-दूसरे के शस्त्र और अस्त्रों को काटते हुए शक्तियाँ उनका विनाश करने लगीं॥ १७॥ बड़ी आसानी से दैत्यों के मर्म को बाणों से बेधने लगीं। इस तरह उनसे मरते दैत्यों ने उन पर अधिक क्रोध किया॥ १८॥ बल और साहस के साथ उन्होंने अद्भुत युद्ध प्रारम्भ किया। धनुष के मुँह से शररूपी ज्योति वडवानल की तरह निकलने लगी॥ १९॥ रणाङ्गण में लोकों को जलाते हुए की तरह शोभ रही थी। वे तिथिदेवियाँ अद्भुत पराक्रमी उन दैत्यों के साथ युद्ध कर॥ २०॥ क्रमशः उन दैत्यों के घोड़े, रथ, सारथी और पताका काटकर धनुष को तोड़कर अपनी शक्ति से तीक्ष्ण भाले से उनके सिरों को काट डाला॥ २१॥ दमनादिकों में उन दैत्यों के मारे जाने पर शिष्ट और सुभट दैत्य भी डरकर दसों दिशाओं में भाग चलें॥ २२॥ विषंग अत्यन्त क्रुद्ध होकर तिथिशक्तियों के साथ लड़ने लगा। बहुतों के साथ उसने अकेला युद्ध किया॥ २३॥ कामेश्वरी प्रमुख शाश्वत शक्तियों ने अतिधैर्य के साथ युद्ध करते हुए उन पर बाणों की वर्षा कर दी॥ २४॥ विषंग को युद्ध करते देखकर कामेश्वरी ने कहा—अरे अधम दैत्य! तुम्हारा यह युद्ध तो बेकार है, क्यों जान गँवाने आ गये हो?॥ २५॥ हथियार छोड़कर जहाँ चाहों पैदल शीघ्र भाग जाओ, इतनी शक्तियों के साथ तुम्हारा अकेला युद्ध करना तो मुझे बड़ा विषम लगता है॥ २६॥ कामेश्वरी का यह वाक्य सुनकर वह महासुर जोर से ठठाकर हँसा। अरी दुष्टे! लाज छोड़कर दूर से व्यर्थ तुम क्या बोल रही हो?॥ २७॥ मैं अकेला ही एक क्षण में

नेष्याम्यत्र न सन्देहः शस्त्रं ते पुर आलभे। स्त्रीषु कारुणिकत्वं मे सर्वथा तेन वै चिरम्॥ २९॥
इत्युक्त्वा निशितैर्भल्लैः प्रत्येकं ता जघान ह। तच्छ्रुत्वा प्राह नित्याऽऽद्या एवं चेदस्तु वै रणः॥
एकैकया मया साकं समभावेन सत्वरम्। इत्युक्त्वा दैत्यराजं तं प्राह भूयो महेश्वरी॥ ३१॥
भगमालिनिमुख्या हे मद्वाक्यं शृणुताऽऽदरात्। अहमेनं योधयामि यूयमेनं हि रक्षथ॥ ३२॥
यथा पलाय्य नो गच्छेत् सावधानेन सर्वतः। इत्युक्त्वा दृढबाणेन विद्ध्वा दैत्यमुवाच ह॥ ३३॥
रे मूढ दैत्य मयि त्वं दयां त्यक्त्वा हि सर्वथा। युध्यस्व सर्ववीर्येण पश्यामि तव पौरुषम्॥ ३४॥
यदि त्वं पुरुषस्तर्हि अपलाय्य व्रजिष्यसि। अहं त्वां नैव हिंस्यामि कुर्य्यां त्वां हि पलायितम्॥
श्रुत्वा पुरुषभावेन युध्यस्व विगतत्रपः। इत्युक्त्वा निशितान् भल्लान् देहे तस्य समाक्षिपत्॥
युयुधे सोऽपि कामेश्या बलमाहार्य रोषतः। अथ कर्णान्तपूर्णेन शरेण तस्य वाहनम्॥ ३७॥
जघान कुम्भयोर्मध्ये तेन बाणेन स द्विपः। द्विधा विदलितो भूमौ पपात व्यसुरद्रिवत्॥ ३८॥
हतवाहो विषङ्गोऽपि गृहीत्वा सशरं धनुः। योद्धुमभ्याययौ क्रोधाद्भ्रुकुटीकुटिलाऽऽननः॥
अथ त्रिभिः शरैर्देवी धनुस्तूणीरमेव च। मुकुटञ्चाऽपि चिच्छेद कामेशी क्षणमात्रतः॥ ४०॥
ततः करालं विपुलमादाय करवालकम्। उपधावद्यावदसौ तावत्तीक्ष्णेषुणा पुनः॥ ४१॥
त्रिधा छित्त्वा महाखड्गं स्मितपूर्वमुवाच तम्। दैत्य शूरतमस्त्वं वै कथमेवं नियुध्यसि॥ ४२॥
शस्त्रं न खलु कस्मान्मे पातितं किञ्चिदङ्गके। किं दया ते सुमहती जातः कस्मान्निरायुधः॥ ४३॥

तुम्हारी सारी शक्तिसेना को मारकर और ललिता देवी को जिन्दा बाँधकर॥ २८॥ ले जाऊँगा, इसमें सन्देह मत कर। हथियार तुम्हारे आगे है, ऐसा करने में जो विलम्ब हो रहा है उसका कारण है—स्त्रियों के प्रति मेरी कारुणिक भावना॥ २९॥ इतना कहकर तेज भालों से प्रत्येक शक्ति पर उसने प्रहार किया, यह सुनकर उस नित्या आदिशक्ति ने कहा—यदि ऐसी बात है तो ले युद्ध॥ ३०॥ एक-एक कर मेरे साथ सम भाव से शीघ्र लड़। उस दैत्यराज को इतना कहकर फिर महेश्वरी ने कहा॥ ३१॥ हे भगमालिनी प्रमुख शक्तियाँ! ध्यान देकर मेरी बातें सुनो, मैं इनके साथ युद्ध करती हूँ और तुम लोग इसकी रक्षा करो॥ ३२॥ चारों ओर से सावधानीपूर्वक इस पर घेरा डालो ताकि यह भागकर निकल न पाये॥ ३३॥ अरे हतबुद्धि दैत्य! मुझ पर बिलकुल दया छोड़कर मेरे साथ पूरी ताकत से लड़, मैं तुम्हारे पौरुष को देखना चाहती हूँ॥ ३४॥ यदि तुम पुरुष हो तो बिना भागे ही तुम जाओगे, मैं तुम्हारी जान नहीं लूँगी, तुम्हें भागने के लिए विवश कर दूँगी॥ ३५॥ यह सुनकर पुरुष भाव के साथ लाज छोड़कर लड़ो। इतना कहकर तेज भालों से उसकी देह पर प्रहार किया॥ ३६॥ विषंग भी कामेश्वरी के साथ क्रोधपूर्वक सारे बल को इकट्ठा कर युद्ध करने लगा। फिर देवी ने कान तक प्रत्यञ्चा खींचकर बाण से उसके वाहन॥ ३७॥ हाथी के माथे के बीच में प्रहार किया। उस बाण से हाथी का सिर दो खण्डों में विभक्त हो गया और धरती पर पहाड़ की तरह गिरकर प्राण छोड़ दिया॥ ३८॥ वाहन के मरने पर विषंग ने भी धनुष-बाण उठाकर क्रोध से टेढी भ्रूकुटी कर युद्ध करने आ गया॥ ३९॥ फिर पलक झपकते ही कामेशी ने तीन बाणों से उसके धनुष, तूणी और मुकुट को काट गिराया॥ ४०॥ उसके बाद उस राक्षस ने विशाल विकराल तलवार हाथ में लेकर जब तक उन पर दौड़ता तब तक तीक्ष्ण बाण से फिर॥ ४१॥ उस तलवार को तीन खण्डों में काटकर मुस्कराती देवी ने उससे कहा—अरे दैत्य! वैसे तो तुम सबसे बड़े शूर हो, फिर इस तरह कैसे युद्ध कर रहे हो?॥ ४२॥ मेरे हथियार भला तुम्हारे अंगो को क्यों नहीं काटते? क्या तुम पर बड़ी दया हुई है? क्योंकि तुम हथियार रहित हो॥ ४३॥

कथं तां ललितां बद्ध्वाऽस्मान् जित्वा नेष्यसीरय। उपलब्धं त्वया शस्त्रं व्यर्थं विजयहेतवे॥
पलाय्य वा गच्छ मम पुरतो यदि पौरुषम्। श्रुत्वा कामेश्वरीवाक्यं कटुकं सोपहासकम्॥ ४५॥
मुष्टिमुद्यम्य तां हन्तुं प्रययौ सम्मुखे तदा। तदा त्रिभिः शरैर्भूयो विव्याधाऽतिबलेन तम्॥ ४६॥
पादहृन्मुष्टिषु तथाऽऽहतस्थानत्रयाऽऽतुरः। पदान्न चलितुं द्रष्टुं मुष्टिश्च विनिवर्तितुम्॥ ४७॥
असमर्थो लज्जितोऽथ गतोऽन्तर्धानमाशु वै। तावत् कामेश्वरी देवी शरजालैश्च सर्वतः॥ ४८॥
रुरोध मार्गं दैत्यस्य तदद्भुतमिवाऽभवत्। रुद्धोऽथ सर्वतो मार्गे मायां दैत्यो वितानयत्॥
शस्त्राऽश्मरुधिराऽहीनां पांशवङ्गारमहीभृताम्। वृष्टिश्चक्रे महाभूतान् राक्षसप्रेतसङ्घकान्॥
प्रादुश्चकार विविधां मायामतिभयावहाम्। सृष्टां सृष्टाश्च तां मायां दैत्यस्याऽस्त्रैरपाकरोत्॥
अथोन्मत्तो महामूर्तिः करालः कृष्णपिङ्गलः। सहस्रवक्त्रो नियुतहस्तपादोऽतिवेगवान्॥ ५२॥
भूत्वा जगाम तां हन्तुं व्यात्ताऽऽस्यः पावकं वमन्। दृष्ट्वा भीतं शक्तिगणं तं योजनमितोन्नतम्॥
दृष्ट्वाऽसुरस्य सा मायां निर्मायाऽस्त्रमवासृजत्। तेनास्त्रेण क्षणादेव मायाः सर्वा व्यनीनशत्॥
अथाऽप्यन्तर्हितं दैत्यं कामेशी मन्त्रपाशतः। बद्ध्वा निपातयामास स्वपुरः क्षणमात्रतः॥ ५५॥
स दैत्यः पाशसम्बद्धः पतितः पादसन्निधौ। लज्जितो नम्रवदनो मृतवन्मीलितेक्षणः॥ ५६॥
बद्धमेवं विषङ्गं तं चक्रराजरथाऽन्तिकम्। अनयध्वं शक्तिगणा नित्या साऽप्यतदा हि सा(?)॥
ययौ नित्या परिवृता श्रीदेवीपादसन्निधिम्। गत्वा रथं समारुह्य प्रणेमुर्ललिताऽम्बिकाम्॥
आचख्युर्विजयश्चाऽपि तावता मन्त्रिणीमुखाः। समाजग्मुर्विजित्याऽरीन्नत्वा प्रोचुर्जयं रणे॥

तो फिर तुम कैसे मुझे जीतकर और ललिता को बाँधकर ले जाओगे? तुम्हें जो शस्त्र उपलब्ध है वह विजय के लिए व्यर्थ है॥ ४४॥ अथवा यदि तुममें पुरुषार्थ है तो मेरे आगे से भाग लो जा! कामेश्वरी का यह कटु और उपहासात्मक वाक्य सुनकर॥ ४५॥ मुक्का बाँधकर विषंग उन्हें मारने के लिए सामने आ गया, तो फिर देवी ने उसे अत्यन्त शक्ति के साथ तीन बाणों से वेध दिया॥ ४६॥ एक बाण से पैर, दूसरे से छाती और तीसरे से मुट्ठी को वेधा। इन तीनों जगहों पर चोट खाने से वह आतुर हो उठा; पैर से वह न चल सकता था, न देख सकता था, न बाँध सकता था और न ही लौट सकता था॥ ४७॥ असमर्थ और लज्जित होकर वह आँखों से ओझल हो गया, तब तक कामेश्वरी देवी ने चारों ओर शरजाल से॥ ४८॥ दैत्य का मार्ग रोक दिया, यह एक अद्‌भुत घटना घटी। चारों ओर से घिरे दैत्य ने अपनी मायिक शक्ति से अन्य दैत्यों की रचना कर डाली॥ ४९॥ शस्त्र, पत्थर, रुधिर से हीन पशु अंग की उसने वृष्टि कर डाली। अनेक महाभूत, राक्षस और प्रेतसंघों को॥ ५०॥ अतिभयावह माया से उसने उत्पन्न कर दिया। उससे संसृष्ट माया-दैत्य को अपने शस्त्रों से इन्होंने दूर हटा दिया॥ ५१॥ इसके बाद उन्मत्त महामूर्ति, अतिकराल, काले-पीले हजार मुख वाले, दस हजार हाथ-पैर वाले अत्यन्त वेगवान्॥ ५२॥ बनकर उस देवी को मारने के लिए चला। वह मुँह खोले था और उसे आग का वमन करते देखकर शक्तिगण भयभीत हो गई। वह योजनभर ऊँचा ऊठा था॥ ५३॥ असुर की यह माया देखकर अनेक अस्त्रों की उन्होंने सृष्टि कर दी। उन अस्त्रों से पलक झपकते ही दैत्यों की सारी माया विलीन हो गई॥ ५४॥ फिर भी वह दैत्य तिरोहित ही था। कामेशी ने मन्त्रपाश से उसे बाँधकर एक क्षण में अपने आगे गिरा दिया॥ ५५॥ वह दैत्य पाश में बँधा देवी के चरण के निकट गिरा, शिर झुकाये लज्जित मरे हुए की तरह आँखें बन्द किये था॥ ५६॥ इस तरह उस विषंग को बाँधकर ही चक्रराज रथ के पास शक्तिगण ले आयी। उस नित्या शक्ति ने भी वहाँ॥ ५७॥ इन अमर शक्तियों से घिरी श्रीदेवी के पास रथ पर चढ़कर वहाँ पहुँचकर ललिता देवी को प्रणाम किया॥ ५८॥ तब तक

श्रुत्वा सा मन्त्रिणी मुख्या दैत्यानां कैतवोद्यमम्। विस्मितास्तत्र सुराश्चापि दैत्यानां शठतां प्रति॥
अथाऽऽनीतं शक्तिगणैर्बद्धं दैत्याऽनुजं तदा। निशाम्य शक्तयः प्रोचुरतिक्रोधतयाऽऽकुलाः॥
वध्यतां हन्यताञ्चेव छिद्यतां भिद्यतामिति। श्रुत्वा दण्डाधिसम्राज्ञी वधं तस्य व्यचिन्तयत्॥
अथ श्रीमातृसम्मत्या मन्त्रिणी प्रब्रवीद्वचः। वधो न युक्तो बद्धस्य मृततुल्यो हि स स्मृतः॥ ६३॥
गच्छत्वेष समाख्यातुं दैत्यराजाय स्वां दशाम्। इत्युक्त्वा मोचयामास प्राह तं मन्त्रिणी तदा॥
रे दैत्य भूयो मैवं त्वमकार्षीः शूरगर्हितम्। श्रुत्वैवं मन्त्रिणीवाक्यं लज्जितो दैत्यपुङ्गवः॥ ६५॥
नताऽऽननो ययौ शीघ्रमपश्यन् पृष्ठतः पुनः। अथ तत्र शक्तिगणं समेतं ललिताऽम्बया॥ ६६॥
परस्परं युद्धवृत्तं प्रोवाचाऽत्यद्भुतं तदा। तदा प्राह दण्डराज्ञी मन्त्रिणीं प्रतिमन्त्रणे॥ ६७॥
देवि वृत्तं महायुद्धमद्य दैत्यैः सुभीषणम्। रात्रिरल्पावशेषाऽस्ति पुनः सूर्योदयं प्रति॥ ६८॥
भवेद्युद्धमतीवोग्रं दैत्या कपटयोधिनः। तदस्माभिः पुनर्युद्धे गन्तव्यं सर्वसेनया॥ ६९॥
पुनरत्र चक्रराजरथस्तिष्ठेत चैकलः। यद्यपि श्रीमहादेव्या महिम्नो नास्ति दुर्घटम्॥ ७०॥
तथाऽप्यसाम्प्रतञ्चैतद्भाति तत्र कथं भवेत्। विमृश्य मन्त्रं बुद्ध्यैतद्युक्तं ज्ञात्वा समीकुरु॥ ७१॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य दण्डिन्या मन्त्रिणी स्वयम्। अमंसताऽथ तद्युक्तं विचार्य शुद्धया धिया॥
ललितां प्रणिपत्याऽऽह मातराचक्ष्व मे वचः। वदत्येषा वराहाऽऽस्या सूर्यस्योदयनं प्रति॥ ७३॥
पुनर्युद्धाय गन्तव्यमस्माभिः शक्तिसेनया। अक्रोशे सेनया हीने रथ एष तवाऽऽश्रयः॥ ७४॥
न शोभते ह्यनौचित्यादथ शक्तिगणोऽखिलः। नियुद्धश्रान्तिमभ्येत्य रात्रौ विश्रान्तिमेष्यति॥

मन्त्रिणी प्रमुखा अमर शक्तियों ने उन्हें विजयगाथा सुना दी। यह देवी ने भी दुश्मनों को जीतकर रण में कैसे विजय मिली—यह कह सुनाया॥ ५९॥ मन्त्रिणी प्रमुख देवियाँ दैत्यों की छल-छद्म भरी गाथा सुनकर दैत्यों की शठता के प्रति विस्मित हुयीं॥ ६०॥ शक्तिगण भण्ड के छोटे भाई विषंग को वहाँ ले आयी। उसे देखते ही शक्तियाँ अत्यन्त आकुल होकर बोलीं॥ ६१॥ मार डालो! मार डालो! काट डालो! छेद कर डालो! यह सुनकर दण्डसाम्राज्ञी उसका वध सोचने लगी॥ ६२॥ तब माता ललिता की सम्मति से मन्त्रिणी ने कहा—बाँधे हुए का वध उचित नहीं, इसे तो मृत तुल्य माना गया है॥ ६३॥ इसे जाने दो, दैत्यराज के पास पहुँचकर अपनी दयनीय दशा सुनायेगा। यह कहकर मन्त्रिणी ने उसे खोल डाला, तब मन्त्रिणी ने उससे कहा॥ ६४॥ अरे दैत्य! फिर तुम वीर पुरुषों में निन्दित यह कर्म कभी मत करना। मन्त्रिणी की बात सुनकर वह दैत्यश्रेष्ठ अतिलज्जित हुआ॥ ६५॥ पीठ पीछे मुड़कर बिना देखे सिर झुकाकर शक्तिगण समेत ललिताम्बिका से दूर भाग गया॥ ६६॥ एक-दूसरे को युद्ध की अद्भुत कथा वे शक्तियाँ कह रही थीं। तब दण्डराज्ञी ने मन्त्रिणी को विचार देते हुए कहा॥ ६७॥ हे देवि! दैत्यों के साथ अत्यन्त भयंकर महायुद्ध जो आज हुआ उसका वृत्त अब रात शेष हो रही है, पुनः सूर्योदय होने पर कहना॥ ६८॥ कपटयुद्ध करने वाले दैत्यों के साथ फिर युद्ध होगा, अतः सारी सेना के साथ युद्धक्षेत्र में ही चलना चाहिए॥ ६९॥ फिर यहाँ अकेला चक्रराज रथ ठहरा, यद्यपि श्रीमहादेवी की महिमा से कोई दुर्घट घटना नहीं होगी॥ ७०॥ फिर भी यह इस समय अनुचित लगता है, वहाँ क्या होता होगा? विचार कर मन्त्रणा समझकर युक्त जानकर जैसा उचित समझो करो॥ ७१॥ यह बात सुनकर दण्डिनी के साथ मन्त्रिणी भी खुद इस विषय पर जो उन्होंने कहा था, शुद्ध बुद्धि से विचार कर॥ ७२॥ ललिता को प्रणाम कर कहा–हे मातः! मेरी बात सुने! सूर्योदय के प्रति यह वाराही कहती है॥ ७३॥ शक्तिसेना के साथ हमें फिर युद्ध के लिए जाना चाहिए, सेनाहीन यह रथ अभी आप ही के पास है॥ ७४॥ यह मुझे अच्छा नहीं लगता और अनुचित भी है, क्योंकि सारी शक्तिसेना युद्ध करते

अद्य संवृत्तयुद्धेन कैतवेन विशङ्किताः । न स्वस्थहृदया भूयो विश्रामं नोपयन्ति वै ॥ ७६ ॥
मन्यसे यदि तत्राऽलमनुजानीहि मां पुनः । प्रवृत्तिं भावयिष्यामि शत्रूणामप्रधर्षिणीम् ॥ ७७ ॥
इति विज्ञापिता देवी प्रवृत्तौ तां समादिशत् । अथ सा तिथिर्नित्यासु या तत्राऽस्ति चतुर्दशी ॥
आज्ञापयत्तां हि सालनिर्माणे शत्रुरोधने । आज्ञामात्रेण सा देवी ज्वालामालिनिकाऽभिधा ॥
वह्निज्वालामहासालं निर्ममे सुररोधनम् । वलयीकृत्य शक्तीनां सेनां सालः समास्थितः ॥ ८० ॥
अनुल्लङ्घ्योन्नप्रमूर्तिर्बहिर्ज्वालोऽतिभीषणः । अन्तः शीतलयन् शक्तीर्बहिर्योजनदूरगम् ॥ ८१ ॥
दहन् योजनविस्तारमध्यद्वारो व्यराजत । अथैवं सालमालोक्य शक्तयो गतसाध्वसाः ॥ ८२ ॥
सुष्वपुः सौख्यतस्तत्र युद्धश्रान्ता हि शक्तयः । सहस्रसङ्ख्या रक्षार्थं मन्त्रनाथा समादिशत् ॥ ८३ ॥

एवं ज्वालासालमध्ये स्थिता श्रीललिताऽम्बिका ।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
विषङ्गपराजयो नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ५८३३ ॥

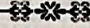


थक गई है और रात में विश्राम करना चाहती है ॥ ७५ ॥ आज के छल-छद्म भरे युद्ध से ये शक्तियाँ शंकित हैं, बिना विश्राम किये ये फिर स्वस्थ हृदय नहीं होगीं ॥ ७६ ॥ मेरी मान्यता है—यदि वह फिर मुझे अपर्याप्त मानकर कहीं आक्रमण किया तो फिर शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिए हमें प्रवृत्त होना पड़ेगा ॥ ७७ ॥ इतना देवी को विज्ञापित कर तथा उनसे आदेश पाकर ये चतुर्दशी नित्या तिथि जहाँ थीं ॥ ७८ ॥ उन्हें शत्रुओं को रोकने के लिए परकोटे बनाने की आज्ञा दी। आज्ञामात्र से ही वह देवी, जिसका नाम ज्वालामालिनिका था ॥ ७९ ॥ आग की ज्वाला का असुरों को रोकने के लिए परकोटे बना डाली। उस किले के भीतर शक्तिसेना को रखकर बाहर से उसे घेर डाला ॥ ८० ॥ यह परकोटा अति अनुल्लंघनीय, अति उच्च, अतिभीषण, बाहर-बाहर ज्वाला से घिरा था और भीतर बिलकुल ठण्ड। जहाँ शक्तिसेना थी, उससे एक योजन दूर किला बना था ॥ ८१ ॥ योजनों विस्तार जलते हुए इस किले के बीच में दरवाजा था। इस तरह के किले को देखकर शक्तिगण का क्रोध शान्त हो गया ॥ ८२ ॥ युद्ध में थकी शक्तियाँ सुख से इस किले में सो गयीं और उनकी रक्षा के लिए मन्त्रनाथा ने हजारों शक्तियों को आदेश दिया ॥ ८३ ॥ इस तरह ज्वाला फेंकते किले के बीच महारानी ललिताम्बिका थी।

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत विषंग-पराजय नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५८३३ ॥



अथैकसप्ततितमोऽध्यायः



बन्धमुक्तो विषङ्गोऽथ ययौ दैत्यचमूं प्रति। दुःखितोऽतितरां दीनो हतोत्साहोऽतिनिःश्वसन्॥
एकलो विजने क्वाऽपि निविष्टो हीनवर्चसः। तत्र शुश्राव सेनेशं कुटिलाक्षश्च मन्त्रिणः॥ २॥
हतांस्ततोऽपि दुःखाब्धौ निर्मग्नः समजायत। तावद्विशुक्रोऽभिययौ राजपुत्रसमावृतः॥ ३॥
ददर्शातिविषण्णाऽऽस्यं विषङ्गमनुजं स्थितम्। पप्रच्छ वत्स किं तेऽद्य पश्यामि मलिनं मुखम्॥
पार्ष्णियुद्धे किमासीत्ते वद मे तदशेषतः। श्रुत्वैवं भ्रातृवचनं निःश्वसन् प्राह सोऽनुजः॥ ५॥
भ्रातः किं तेऽभिवक्ष्यामि नाऽऽसीदेवं कदापि मे। जानामि दैत्यनाशाय काल एषोऽप्रदक्षिणः॥
अहोऽतिचित्रं दैत्यानां विष्णुवीर्याऽतियोधिनाम्। पराभवोऽबलासङ्घैर्मृगेशस्यैव जम्बुकैः॥
एवं दशाऽभिपन्नस्य न युक्तं जीवितं मम। तत् किं करोमि नासीन्मे मृत्युर्युद्धेषु सर्वथा॥ ८॥
अहो धन्या ये मृतास्ते कुटिलाक्षादयोऽसुराः। न तैः स्वात्मा परीभूतो दृष्टो दुःखाय कुत्रचित्॥
भर्तृपिण्डविनिर्योगं कृत्वोत्तमतमां गतिम्। ख्यातिश्च सङ्गतास्तेऽस्मिन् लोकेऽमुष्मिन्नपि ध्रुवाम्॥
धिङ्मामेवंविधं दैत्यं न जीवन्तश्च नो मृतम्। भ्रातः किं बहुनोक्तेन सारं शृणु वदामि ते॥ ११॥
दैत्यानामेष सम्प्राप्तः कालोऽत्यन्तमदक्षिणः। तस्मादहं न जीविष्ये स्त्रीभिर्युद्धे पराजितः॥ १२॥
इतो दैत्यैः समेतोऽहं प्रयातः क्षणदामुखे। पार्ष्णियुद्धे तां विजेतुं समयस्याऽनुरोधतः॥ १३॥

☸ विमला ☸

बन्धनमुक्त विषङ्ग दैत्यसेना के पास चला गया। अत्यन्त दुःखी, दीन कातर और हतोत्साह होकर गहरी साँस लेते हुए॥ १॥ अकेला जहाँ कोई प्रवेश न करे—वैसे विजन में सेनाधिपति कुटिलाक्ष और मन्त्रियों को सुनाया॥ २॥ आहत होने के बावजूद दुःखसागर में गोता खाने लगा। तब तक विशुक्र भी राजकुमारों के साथ आ गया॥ ३॥ वहाँ अपने अनुज विषंग को अत्यन्त दुःखी और मुखमलीन देखा और पूछा–हे वत्स! यह क्या? आज तुम्हारा मुख मलीन देख रहा हूँ॥ ४॥ सेना के पिछले भाग के युद्ध में तुम्हारे साथ क्या घटना घटी? वह पूरी-पूरी मुझे बताओ, बड़े भाई की यह बात सुनकर छोटे भाई ने उसाँसें लेकर कहा॥ ५॥ हे भाई! मैं आपको क्या बतलाऊँ? मेरे साथ जीवन में ऐसी घटना नहीं घटी हैं। मैं जानता हूँ कि दैत्यों के विनाश का काल यह आ गया॥ ६॥ बड़े आश्चर्य की बात है कि विष्णु जैसे पराक्रमी अतियोद्धा दैत्यों की पराजय एक अबला-समूह से हुई? लगता है गीदड़ों ने सिंह को पराजित किया हो॥ ७॥ ऐसी विपन्न दशा में मेरा जीना उचित नहीं है। युद्ध में मेरी मौत बिलकुल नहीं हुई, अब मैं जीकर ही क्या करूँ?॥ ८॥ कुटिलाक्ष प्रभृति दैत्य जो युद्ध में मारे गये, वे धन्य हैं। उनकी आत्मा इस पराजय के दुःख से कहीं दुःखी तो नहीं हुई॥ ९॥ पितृपिण्ड के विनियोग से उन्हें उत्तम गति मिली, इस संसार में भी निश्चित उन्हें ख्याति मिली॥ १०॥ पर मेरे जैसे दैत्य को धिक्कार है जो न जिन्दा है, न मरा। हे भाई! अधिक मैं क्या कहूँ? संक्षिप्त मे सुनाता हूँ॥ ११॥ दैत्यों के लिए यह समय अत्यन्त विपरीत आ पहुँचा है, इसलिए मैं स्त्रियों से हारकर जिन्दा नहीं रहूँगा॥ १२॥ इधर दैत्यों के साथ मैं क्षणदा के सामने पहुँचा। पार्ष्णियुद्ध में उसे जीतने के लिए समय के मुताबिक वहाँ पहुँचा॥ १३॥ उस रथ के पिछले भाग में हम सभी एक साथ मिलें। जब

तद्रथस्य पार्ष्णिभागे वयं सर्वे हि सङ्गताः । यावद्रथं समारुह्य तां ग्रहीतुमभीप्सवः ॥ १४॥
तावत् प्राप्ताः शक्तिगणा रथरक्षाविधौ स्थिताः । तं रथं परिवर्तन्त्यो धृतोद्वातकृपाणिकाः ॥
अस्माभिस्तर्जयन्त्यस्ता युयुधुर्बलवत्तराः । अनालोके प्रस्खलन्त्यस्तमिस्रायान्तु सर्वतः ॥ १६॥
तावत्तस्या रथश्रेष्ठान्निर्गतस्तिथिसङ्ख्यकाः । निर्ममुर्ज्वलितं शैलमन्धकारनिवारणम् ॥ १७॥
परिवव्रुः समेत्याऽस्मान् वर्षन्त्यः शरसन्ततीः । क्षणेन दमनाद्यांस्ता हत्वा मामभिसंययुः ॥ १८॥
तासु मुख्या शक्तिरेका कामेश्यद्भुतविक्रमा । द्वन्द्वे मामभिसङ्गम्य बबन्धाऽर्धनिमेषतः ॥ १९॥
न तस्यां मे विक्रमोऽभूद्वीर्यं मायाबलं तथा । बद्धो नीतः पातितोऽथ ललिताचरणान्तिके ॥ २०॥
तस्या या सचिवेशानी तमालदलसच्छविः । सौन्दर्यसारसुतनुर्मधुराऽऽलापपेशला ॥ २१॥
तयाऽहं बन्धनान्मुक्तो दयमानस्वभावया । ततो मे जीवतो नाऽर्थो हतकीर्तेर्हतौजसः ॥ २२॥
श्रुत्वैवं लपितं तस्य विशुक्रः प्राह सस्मितम् । भण्डाऽभिमतसिद्ध्यर्थं हतधीर्ललिताऽम्बया ॥
वत्स त्वं न विजानासि नीतिं युद्धजयाऽऽवहाम् । युद्धे महान्तः शूराश्च क्वचिदल्पैर्जिता ननु ॥
भवन्त्येव न तच्चित्रं फलं वा शूरसम्मतम् । गच्छन् हि पादवान् भूमौ दिवाऽपि स्खलति क्वचित् ॥
न स्खलन्ति क्वचिदपि स्थावराः किं ततो भवेत् । जयाऽजयौ युद्धविधावनिर्देश्यौ कथञ्चन ॥
परन्तु जय एवैष यः पर्यवसितो भवेत् । नाऽन्यो जयो जयः प्रोक्तस्त्वन्तरा संविभावितः ॥ २७॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं किं वदाम्यहमद्य ते । विचारो धैर्यसहितो मन्त्रयुक्तो जयावहः ॥ २८॥
विरमैवं विपर्यासाऽभावात् सर्वार्थनाशनात् । शृणु मे मन्त्रितं सद्यस्तव दुःखविनाशनम् ॥ २९॥

तक रथ पर चढ़कर मैं उसे पकड़ना ही चाह रहा था ॥ १४॥ तब तक उस रथ की रक्षा में लगी शक्तियाँ वहाँ पहुँच गयीं। उनके हाथों में खुली तलवारें थीं ॥ १५॥ वे बलवत्तर शक्तियाँ हमें डाँटती-फटकारती घोर अन्धेरे में गिरती-बजरती लड़ने लगीं ॥ १६॥ तब तक उसके श्रेष्ठ रथ से तिथिसंख्यक पर्वताकार शक्तियाँ अन्धकार को मिटाती बाहर निकलीं ॥ १७॥ बाण वर्षाती एक साथ मिलकर हमसे कहा—रुको, एक पल में दमनादि को मारकर मैं तब तुम्हें देखती हूँ ॥ १८॥ उनमें प्रमुख कामेशी नाम वाली अद्भुत पराक्रमशालिनी एक शक्ति थी, जो मुझसे द्वन्द्वयुद्ध कर आधे पल में मुझे बाँध लिया ॥ १९॥ उसके साथ मेरा बल, वीर्य, पराक्रम या मायाबल कुछ भी काम नहीं किया; मुझे बाँधकर ललिता के चरणों में ला पटका ॥ २०॥ उनका प्रधान सचिव जिसकी देहच्छवि तमाल वर्ण की थी, उसका सर्वाङ्ग अतिसुन्दर और आकर्षक था और वह अत्यधिक मृदुभाषिणी थी ॥ २१॥ अपने दयालु स्वभाव के कारण ही उसने मुझे बन्धन-मुक्त कर दिया। अब मैं सोचता हूँ, जिसके जीवन में न कोई कीर्ति हो और न तेज, भला उसके जीने का क्या अर्थ होगा? ॥ २२॥ भण्डासुर की अभिमत सिद्धि के लिए ललिताम्बा ने जिसकी बुद्धि हर ली हो—ऐसे विशुक्र ने विषंग का प्रलाप सुनकर हँसते हुए कहा ॥ २३॥ रे वत्स! युद्ध में विजय पाने की कुछ नीतियाँ होती हैं जिसे तुम नहीं जानते। कभी-कभी बहुत छोटे से भी बड़े-बड़े शूरवीर हारते हैं ॥ २४॥ शूरसम्मत फल मिले या न मिले—इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, धरती पर दिन में पाँव-पैदल चलने वाले भी कभी गिरते हैं ॥ २५॥ जो स्थावर हैं वे कभी नहीं गिरते, इससे क्या होता है? युद्ध-विधि में जय और पराजय कभी निर्दिष्ट नहीं होती ॥ २६॥ अन्तिम विजय ही विजय होती है, बीच की सम्भावित दूसरी विजय को विजय नहीं कहा जाता ॥ २७॥ आश्चर्य है—मोह की महिमा को, मैं आज तुम्हें क्या कहूँ? क्योंकि मन्त्रणा युक्त धैर्य के साथ विचार ही जयश्री देने वाला होता है ॥ २८॥ इस तरह सर्वार्थनाशक विपरीत विचार से रुको, तत्काल तुम्हारे दुःख को विनष्ट करने वाली मेरी मन्त्रणा तुम सुनो ॥ २९॥ जिस उपाय से इन्द्र-प्रमुख देवगण को जीता गया, उस

येनोपायेन विबुधाः शक्रमुख्या विनिर्जिताः। पुरा भूयो विस्मृतं ते तदहं शृणु यद्ब्रुवे॥ ३०॥
प्रत्यरिप्रत्यूहकरमाभिचारात्मकन्तु तत्। यन्त्रं शत्रुप्रतीघातं विदितं भार्गवान्मया॥ ३१॥
तदद्य रचयाम्याशु विधिदृष्टेन वर्त्मना। तत्प्रयोगाद्भवेदेवं निहतं शक्तिसैनिकम्॥ ३२॥
लिखित्वाऽहं शिलापदे तुभ्यं दास्यामि सम्प्रति। त्वं युक्त्या शक्तिसेनासु प्रक्षिप्याऽऽगच्छ सत्वरम्॥
ततस्ताः शक्तयो नष्टवीर्योद्योगास्ततो वयम्। गत्वा दैत्यचमूयुक्ता अनायासेन सत्वरम्॥ ३४॥
नाशयावः शक्तिगणं नाऽत्र संशयमाप्नुहि। उत्तिष्ठ जहि सन्तापं शोकजं वीर्यनाशनम्॥ ३५॥
श्रुत्वेत्थं भ्रातृकथितं महामायाविमोहितः। जितमित्येव निश्चित्य हर्षमाहारयत् परम्॥ ३६॥
तुष्टाव भ्रातरं भ्राता संश्लाघन् बुद्धिकौशलम्। अथैतद्दैत्यराजाय मन्त्रमावेद्य सम्मतः॥ ३७॥
निर्ममे तद्विघ्नकरं यन्त्रं दार्षदपट्टके। स्नात्वा शुचिविधानेन यन्त्रमालिख्य तद्द्रुतम्॥ ३८॥
सम्पूज्य तत्र देवीं तामासुरीं विघ्नकारिणीम्। सुरामांसोपहाराद्यैर्निवेद्य विविधैस्तदा॥ ३९॥
स्वयं दिग्वसनो भूत्वा श्मशानभसिताऽऽश्रयः। पपौ सुरां करोटीस्थां वाममार्गसमाश्रयः॥
जजाप जप्यं कैकस्या मालया दक्षदिङ्मुखः। समन्तान्नग्नयुवतीगणेन परिवारितः॥ ४१॥
एवं संसाध्य तद्यन्त्रं विषङ्गाय ददौ तदा। वत्सैतच्छक्तिसेनाया मध्येऽभिमुखभावतः॥ ४२॥
ललितारथराजस्य निक्षिप्याऽऽयाहि सत्वरम्। अमोघं विघ्नयन्त्रं तदादाय तत्र संययौ॥ ४३॥
रात्रिशेषे विषङ्गोऽथ ज्वालासालं ददर्श ह। अधृष्यं तं समालक्ष्य द्वारे शक्तिगणं तथा॥ ४४॥
न तत्समीपं गतवान् भीत्या दूरे समास्थितः। विचार्य खमवप्लुत्य सालं तमतिवर्तितुम्॥ ४५॥

पुराने उपाय को तुम भूल गये, इसलिए आज फिर मैं तुम्हें वह उपाय बतलाता हूँ, सुनो॥ ३०॥ हर दुश्मन और हर काम में विघ्न डालने वाला अभिचारात्मक होता है। इन्हें विनष्ट करने का एक यन्त्र होता है, वह यन्त्र मैंने भगवान् परशुराम से सीख लिया है॥ ३१॥ उस यन्त्र की विधिपूर्वक मार्गसम्मत रचना मैं शीघ्र करता हूँ। उसके प्रयोग से शक्तियों का सम्पूर्ण विनाश हो जायेगा॥ ३२॥ वह यन्त्र शिलापद पर लिखकर मैं तुम्हें दूँगा और तुम उस यन्त्र को शक्तिसेना के बीच युक्तिपूर्वक फेंककर शीघ्र लौट आओ॥ ३३॥ उसके बाद वे शक्तियाँ हतवीर्य और उद्योगहीन हो जायेगीं, तब वे शक्तियाँ स्वतः आनायास शीघ्र ही नष्ट हो जायेगीं॥ ३४॥ शक्तिगण का हम विनाश करेंगे, इसमें सन्देह मत करो। उठो, शौक पैदा करने वाला और पराक्रम नष्ट करने वाले इस सन्ताप को छोड़ो॥ ३५॥ भाई के इस तरह कथन को सुनकर महामाया से विमोहित होकर अपने को निश्चित विजयी मानकर विषंग परम प्रसन्न हुआ॥ ३६॥ एक भाई को दूसरा भाई सन्तुष्ट कर उसके बुद्धिकौशल की प्रशंसा करते हुए यह मन्त्रणा दैत्यराज को निवेदित कर॥ ३७॥ शक्तिसेना में विघ्न डालने के लिए शिलाफलक पर अतिपवित्र भाव से स्नान कर उस यन्त्र को शीघ्र लिखकर॥ ३८॥ उस यन्त्र पर विघ्नकारिणी आसुरी देवी की पूजा कर शराब, मांस जैसे और अन्य उपहारों का नैवेद्य चढ़ाकर॥ ३९॥ स्वयं वस्त्रविहीन होकर श्मशान की भस्म सारी देह में लगाकर खप्पर में रखी सुरा पीकर वाममार्ग का आश्रय ग्रहण कर॥ ४०॥ नग्न युवती से घिरकर दक्षिण मुँह होकर राक्षसी माला पर मन्त्र जपने लगा॥ ४१॥ इस तरह उस यन्त्र का संसाधन कर विषंग को दिया और कहा—वत्स! अभिमुख भाव से शक्तिसेना के बीच में॥ ४२॥ ललिता-रथराज पर शीघ्र इसे रखकर या फेंककर लौट आओ। यह अमोध विघ्नकारी यन्त्र है, इसे लेकर वहाँ जाओ॥ ४३॥ रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब विषंग वहाँ गया तो शक्तिसेना के चारों ओर धधकती ज्वाला के परकोटे देखे और दरवाजे पर शक्तिगण का पहरा देखकर तथा दूसरी ओर से अलंघनीय दीवार देखकर॥ ४४॥ उसके पास नहीं गया; डर से दूर ही खड़ा रहा, कुछ विचार कर आकाश में

असमर्थो बलेनाऽन्तः प्रक्षिप्य प्रययौ पुनः । मत्वा कृतार्थमात्मानमाचख्यावग्रजाय तत् ॥ ४६ ॥
विघ्नयन्त्रेण विहताः शक्तयः स्युरतो द्रुतम् । यस्मादमोघं तद्यन्त्रमापूर्य समधिष्ठितम् ॥ ४७ ॥
इति मत्वा युद्धविधावुद्योगं विदधेऽसुरः । विशुक्रः सर्वदैत्यानां सेनया भ्रातृसंयुतः ॥ ४८ ॥
राजपुत्रैश्च राज्ञा च निर्ययौ नगराद्बहिः । योषित्स्थविरबालांश्च वर्जयित्वाऽखिलासुराः ॥ ४९ ॥
रक्षणार्थं शून्यकस्य निक्षिप्याऽक्षौहिणीमिताम् । निर्ययुः सर्व एवैते दैत्या युद्धाय दंशिताः ॥ ५० ॥
आजग्मुरग्निसालस्य समीपमतिवेगतः । दृष्ट्वा प्रधृष्यन्तं सालं भेत्तुं ते मन आदधुः ॥ ५१ ॥
विशुक्रप्रमुखा दैत्या अस्त्राणि ससृजुस्ततः । वायव्यं पार्वतं चान्द्रं शैशिरं पार्थिवं तथा ॥ ५२ ॥
सामुद्रं वारुणं वार्षं पार्जन्यप्रमुखानि च । विसृष्टं सालमभितो मन्त्रसन्धानसन्धितम् ॥ ५३ ॥
संवर्ताऽग्निस्तृणमिव सालो निःशेषतां नयत् । मत्वाऽभेद्यन्तु तं सालं विशुक्रप्रमुखाऽसुराः ॥
उत्प्लुत्य यातुमन्तस्ते मन उच्चैः समादधुः । उत्प्लुत्य यावद्यो दैत्यो गन्तुमन्तः समीप्सति ॥ ५५ ॥
ततोऽधिकतरं तत्र प्राकारः समवर्धत । तदप्यशक्यं मत्वा ते प्रवेष्टुं द्वारमाययुः ॥ ५६ ॥
प्रविशन्तं ततोऽप्यग्निः क्षणाद्भस्मीकरोत्यलम् । मत्वाऽन्तर्गमनं तस्य दुर्घटं द्वारदेशगाः ॥ ५७ ॥
शस्त्राणि द्वारमार्गेण चाऽस्त्राण्यलमवासृजुः । विदित्वा दैत्यसेनायाः सन्नाहं द्वाररोधनम् ॥
दण्डराज्ञी शक्तिसेनासज्जनार्थं समादिशत् । विघ्नयन्त्रेण विहताः शक्तयः सर्वतः स्थिताः ॥
आलस्योपहताश्चाऽन्या निद्रामोहसमाकुलाः । दण्डराज्ञीसमादेशं न किञ्चिन्मानयन्ति ताः ॥
किन्नः कृत्यं युद्धविधौ दैत्यानां घातनं कुतः । न नोपराद्धं दैतेयैः कथं तैर्विग्रहो मतः ॥ ६१ ॥

उछलकर उस परकोटे को लाँघना चाहा ॥ ४५ ॥ बलपूर्वक परकोटे में घुसकर यन्त्र फेंकने में अपने को असमर्थ मानकर अपनी आत्मा को अकृतकार्य समझकर अपने बड़े भाई को सब कुछ बता दिया ॥ ४६ ॥ विघ्नयन्त्र से शक्तियों को शीघ्र विहत करना चाहिए, क्योंकि यह अमोघ यन्त्र है, इसे पूरा करना ही चाहिए ॥ ४७ ॥ यह मानकर असुरों ने उनसे युद्ध करने का ही ठान लिया। विशुक्र अपनी सारी सेना और भाई के साथ ॥ ४८ ॥ राजकुमारों और रानियों के साथ नगर से बाहर निकला। औरत, वृद्ध और बच्चों को छोड़कर सारे दैत्य ॥ ४९ ॥ शून्यनगर की रक्षा के लिए सीमित अक्षौहिणी छोड़कर सारे-के-सारे दैत्य युद्ध के लिए कवच धारण कर बाहर निकल गये ॥ ५० ॥ अग्नि-परकोटे के पास अतिवेग से पहुँचे; जलती दीवार को देखकर उन्हें तोड़ने की बात मन में आई ॥ ५१ ॥ विशुक्र प्रमुख दैत्यों ने वायव्य, पार्वत, चान्द्र, शैशिर और पार्थिव अस्त्रों की रचना कर दी ॥ ५२ ॥ सामुद्र, वारुण, वार्ष, पार्जन्य प्रमुख अस्त्रों से मन्त्र सन्धान से सन्धित परकोटे की चारों ओर छोड़ने लगे ॥ ५३ ॥ परकोटे की प्रलयकालीन आग ने इन अस्त्र-शस्त्रों को घास-फूस की तरह जला डाला। अब विशुक्र-प्रमुख दैत्यों ने इस परकोटे को अभेद्य मानकर ॥ ५४ ॥ इन्हें उछलकर भीतर जाने का मन बनाया। जितनी दूर उछलकर जो दैत्य उसमें घुसना चाहा ॥ ५५ ॥ उसकी उछाल से और अधिकतर ऊँची दीवार वह उठ गई। दीवार लाँघना अपनी ताकत से बाहर मानकर दैत्य भीतर घुसने के लिए दरवाजे पर आ गये ॥ ५६ ॥ दरवाजे पर भी प्रवेश करने वालों को वहाँ की आग ने एक क्षण में जलाकर राख कर दिया। तब इन्हें पता चला कि दरवाजे से भी भीतर घुसना इनके लिए दुर्घट है ॥ ५७ ॥ तब उसने दरवाजे की राह से घुसने वाले अस्त्र-शस्त्रों की ही रचना कर डाली। दरवाजे रोककर युद्ध के लिए तैयार दैत्यसेना को जानकर ॥ ५८ ॥ दण्डराज्ञी ने शक्तिसेना को तैयार होने का आदेश दिया। विघ्नयन्त्र से अनुष्ठित शक्तियाँ सब ओर खड़ी थीं ॥ ५९ ॥ कुछ अलसायी थीं और कुछ सोई थीं, दण्डराज्ञी के आदेश का उन पर कोई प्रभाव नहीं था ॥ ६० ॥ युद्ध में क्या करना चाहिए? दैत्यों का विनाश कैसे होगा? दैत्यों ने मेरा क्या बिगाड़ा है?

कुतो वध्या दैत्यगणा देवानामिष्टसिद्धये । दैत्येष्टसिद्धये कस्मान्न वध्या देवतागणाः ॥ ६२ ॥
प्रकृत्या कोपना दण्डराज्ञी सा मन्त्रिणी तथा। पानप्रकर्षतो मत्ता विचारः स्यात्तयोः कुतः ॥ ६३ ॥
महाराज्ञ्यपि कामेशविलासपरमा सदा । युक्ताऽयुक्तविचारेण स्वतो हीना तु सर्वदा ॥ ६४ ॥
मन्त्रिण्या मत्तया प्रोक्तं मनुते सर्वथा हितम्। बालायाः को विचारः स्यात्क्रीडाऽऽसक्ता हि सा सदा ॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं किमर्थमसुरा हताः । व्यर्थहिंसाऽपराधेन प्राप्स्यामो नाशमञ्जसा ॥ ६६ ॥
इतो निर्गत्य तीर्थेषु गत्वा विहितमागतः । दैत्यहिंसनदोषस्य कुर्मो निष्कृतिमादरात् ॥ ६७ ॥
काश्चिदाहुर्वृथा युद्धादलं नो दुःखवर्धनात्। गत्वा स्थानेषु तपसा साधयामः समीहितम् ॥ ६८ ॥
अन्या ऊचुरलं युद्धैर्दुःखदैर्देहनाशनैः । अनुरूपं पतिं प्राप्य क्रीडामोऽविरतं सुखम् ॥ ६९ ॥
वदन्त्य इत्यादि बहुपृथङ्मतसमाश्रयाः । न युध्यामो वयं व्यर्थं तवाऽऽज्ञायां न च स्थिताः ॥
क्रोधं करिष्यसि यदि युध्यामस्तर्हि वै त्वया । वृथाऽभिमानं माकार्षीर्मन्त्रिण्या मत्तया सह ॥
अस्मान् युद्धे समासाद्य विमदा शीघ्रमेष्यसि । तत्रोचुरन्याः सङ्क्रुद्धा शूकरास्ये सदा हि नः ॥
कुतः क्रुध्यसि नेत्राणि करालान्यवमुञ्चसि । व्रज शीघ्रमितो नो चेदक्षीणि विनिपातये ॥ ७३ ॥
न निर्लज्जा शूकरास्या त्वत्समा भवति क्वचित्। अन्याऽब्रवीत् खड्गकरा निपत्याऽभिमुखे ततः ॥
किं बलास्यति मे वाक्यं शृणु कोलाऽऽनने यदि । दर्पोऽस्ति चेन्मया युद्धे वीर्याद्बुद्धिं समीकुरु ॥
जीवितं हास्यसि मुधा युद्ध्वा शस्त्रहता मया । इति दृष्ट्वा शक्तिगणं दण्डिन्यत्यन्तविस्मिता ॥

उनके साथ हम क्यों युद्ध करें? ॥ ६१ ॥ देवताओं की इष्ट सिद्धि के लिए भला दैत्यों को क्यों मारें? दैत्यों की अभीष्ट सिद्धि के लिए देवताओं का ही वध क्यों न किया जाय ॥ ६२ ॥ स्वभाव से ही यह दण्डराज्ञी अत्यन्त क्रुद्धा है, वह मन्त्रिणी भी वैसी ही है। हमेशा शराब पीकर उन्मत्त बनी रहती है, इनमें विचार नाम की चीज आई कहाँ से? ॥ ६३ ॥ महारानी भी तो कामेश के साथ सतत विलास में ही डूबी रहती है। वे स्वयं ही सही और गलत का विचार करने में अक्षम हैं ॥ ६४ ॥ मन्त्रिणी जो कुछ भी उनसे कहती है, उसे ही वे अपना हितकर मानती है। बाला पर क्या कहा जाय? वह तो दिन-रात अपने खेल में ही लगी रहती है ॥ ६५ ॥ अहो! विस्मयावह मोह की महिमा है? दैत्यों की हत्या हम क्यों करें? व्यर्थ हिंसा के पाप से शीघ्र अपने आप को क्यों विनष्ट करें? ॥ ६६ ॥ यहाँ से निकलकर तीर्थाटन कर वहाँ का अनुष्ठान पूरा कर दैत्यों को मारने के पाप का आदरपूर्वक प्रायश्चित्त करूँगी ॥ ६७ ॥ कुछ ने कहा–युद्ध बेकार है, हमारा दुःखवर्धक है, किसी उत्तम स्थान में जाकर तप कर; अपना अभिलषित प्राप्त करेगी ॥ ६८ ॥ कुछ ने कहा–यह देह-विनाशक दुःखद युद्ध बेकार है। अनुरूप पति पाकर उनके साथ हम विलास सुख प्राप्त करेगीं ॥ ६९ ॥ इस तरह अलग-अलग वे इसी तरह बातें करने लगीं। हम बेकार ही बकवास नहीं करती, हम आपकी आज्ञा में नहीं हैं ॥ ७० ॥ यदि तुमने क्रोध किया तो हम तुमसे युद्ध करेगीं। ओ मन्त्रिणी! मेरे साथ अभिमान मत कर ॥ ७१ ॥ हमारे साथ युद्ध कर, तुम्हारा घमण्ड चूर-चूर हो जायेगा। वहाँ ही किसी ने वाराही से यह कहा–यह सूअर जैसे मुँहवाली तो हमसे सदैव कुढ़ी ही रहती है ॥ ७२ ॥ क्यों गुस्सा रही है? अपनी डरावनी आँखों से क्या देख रही है? यहाँ से जल्दी भाग जा, नहीं तो आँखें निकाल लूँगी ॥ ७३ ॥ अरी सूअरमुँही! तुम्हारी तरह संसार में कहीं कोई निर्लज्जा नहीं है। दूसरी हाथ में तलवार लेकर उसके सामने कूदकर बोली ॥ ७४ ॥ अरी शूकरमुखी! तुम किस खेत की मूली है? मेरी बात सुन, यदि तुममें ताकत है, अहङ्कार है तो युद्ध में मेरे साथ दो-दो हाथ हो जायँ ॥ ७५ ॥ व्यर्थ ही जिन्दा हँसती है, युद्ध कर, मेरे हथियारों का शिकार बन। शक्तिगण को इस तरह परस्पर लड़ते देख दण्डिनी अतिविस्मित हुई ॥ ७६ ॥

कुत एतदकाण्डे वै शक्तीनां बुद्धिनाशनम्। इति मत्वा द्रुतं गत्वा मन्त्रिण्यै तन्निवेदयत्॥ ७७॥
मन्त्रिण्यपि च शक्तीनां बुद्धिनाशं निशाम्य तु। विस्मिता श्रीमहाराज्ञीमासाद्य प्रणताऽब्रवीत्॥
मातरत्यद्भुतो विघ्नो नन्वस्माकमुपस्थितः। नूनं भवेत्तु दुष्टानां दैत्यानामेव चेष्टितम्॥ ७९॥
शक्तीनां बुद्धिनाशोऽत्र दृश्यतेऽतिभयङ्करः। दैत्याः सालमुखप्रान्ते सन्नद्धाः समुपस्थिताः॥
दण्डिनीं माञ्च चक्रस्थशक्तीर्हित्वा ह्यशेषतः। भिन्नस्वभावाः सम्भूताः शक्तयो रोषभाषणाः॥
द्रुतं विधेहि यत्कृत्यं नाऽर्हः कालो विलम्बने। यद्यप्यखिलदैत्याश्च तव भ्रूभङ्गमात्रतः॥ ८२॥
न भवेयुस्तथाऽप्येतन्नाऽस्माकं सम्मतं भवेत्। अस्मासु दयया मातर्द्रुतं प्रतिविधत्स्व तत्॥ ८३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये
विघ्नयन्त्रप्रयोगो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ५९१६॥



किन कारणों से इन शक्तियों का आकस्मिक बुद्धिनाश हुआ? यह सोचकर अतिशीघ्र मन्त्रिणी के पास जाकर निवेदित किया॥ ७७॥ मन्त्रिणी भी शक्तियों का अप्रत्याशित बुद्धि-विनाश सुनकर ठगी-सी रह गई। पुनः महारानी के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा॥ ७८॥ हे माँ! एक अद्भुत विघ्न हमारे सामने उपस्थित हुआ है। निश्चय ही यह भी उन दुष्ट दैत्यों का ही किया-कराया लगता है॥ ७९॥ अकस्मात् भयंकर रूप से शक्तियों का बुद्धिनाश हुआ है। दैत्यगण परकोटे के दरवाजे पर युद्ध के लिए तैयार खड़े हैं॥ ८०॥ दण्डिनी, मैं और चक्रस्थ शक्ति को छोड़कर सारी शक्तियाँ अलग अलग स्वभाव की हो गई हैं। ये शक्तियाँ काफी क्रोध में ही बातें करती हैं॥ ८१॥ शीघ्र ही ऐसी स्थिति में मेरा कर्त्तव्य निर्दिष्ट करें, यह विलम्ब का समय नहीं है। यद्यपि ये सारे दैत्य आप के भ्रूभङ्गमात्र से ही॥ ८२॥ फिर न होंगें, फिर भी यह हमारा सम्मत नहीं है। हे मातः! मुझ पर दया कर शीघ्र उसका प्रतिकार हमें बतलायें॥ ८३॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत विघ्नयन्त्र-प्रयोग नामक एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५९१६॥



अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

प्रार्थितैवं श्यामलया श्रीमाता परमेश्वरी । लीलां वितन्वती शीघ्रं संस्मितप्रेमभावतः ॥ १ ॥
कोटीन्दुकिरणाऽऽभासान् भृङ्गाराऽमृतवर्षणान् । कटाक्षान् कामेशमुखसौन्दर्याब्धावमूर्च्छयत् ॥
अथो देवी स्मिताऽऽलोककामेशमुखसङ्गतेः । गणनाथः समुदभूदिभास्योऽरुणसम्प्रभः ॥ ३ ॥
गदां शूलं शङ्खमब्जं विषाणं दक्षबाहुभिः । मातुलुङ्गं धनुश्चक्रं पाशं धान्यस्य मञ्जरीम् ॥ ४ ॥
वहन् वामकरैः शुण्डासमात्तमणिभाजनः । रक्तकौशेयवसनो दिव्यमाल्यविभूषणः ॥ ५ ॥
त्रिनेत्रश्चन्द्रचूडालो मणिकोटीरमण्डितः । शक्त्या समाश्लिष्टदेहो गलन्मदजलाऽऽविलः ॥
प्रणम्य ललितां देवीं बद्धाञ्जलिपुटोऽब्रवीत् । देवि ब्रूहि मया यत्तत्कृत्यमत्र रणोद्यमे ॥ ७ ॥
तत्ते कृपावशादेव साधयाम्यतिदुःशकम् । श्रुत्वैवं प्राह गणपं ललिताम्बा महेश्वरी ॥ ८ ॥
गच्छ वत्स दैत्यकृतमभिचारं विनाशय । एवं तया समाज्ञप्तो गणेशो धूनयन् करम् ॥ ९ ॥
विचिन्वन्नभितस्तत्र क्षणाद्यन्त्रं समासदत् । आसाद्य विघ्नयन्त्रं तच्छक्तिसङ्घस्य पश्यतः ॥ १० ॥
वज्रसारमपि क्रोधाद्बिभेद रदघाततः । निमिषात्तच्चूर्णयित्वा तिलशस्तदनन्तरम् ॥ ११ ॥
ज्वलत्सालद्वारभागान्निर्ययौ योद्धुमुत्सुकः । निविश्य दैत्यसेनां तां युयुधे दैत्यपुङ्गवैः ॥ १२ ॥
पिपेष गदया कांश्चित् कांश्चिच्छिच्छेद चक्रतः । शूलेन दारयच्चान्यान् शरैरन्यान् बिभेद च ॥

* विमला *

श्यामला की प्रार्थना सुनकर श्रीमाता परमेश्वरी ने प्रेम से मुस्कराती हुई शीघ्र ही अपनी लीला को फैलाती ॥ १ ॥ करोड़ों चन्द्रकिरणों की आभाओं को बिखेरती शृंगार रूपी अमृत को बरसाती आँखों को कामेश के मुख-सौन्दर्य रूपी सागर में डुबा दिया ॥ २ ॥ श्रीदेवी की मुस्कान का आलोक कामेश के मुखसौन्दर्य से जा मिला। फलतः लाल वर्ण वाले गजानन गणनाथ की उत्पत्ति हुई ॥ ३ ॥ गदा, शूल, शङ्ख, कमल, दाँत दायें हाथों में तथा मातुलुङ्ग, धनुष, चक्र, पाश और धान की मञ्जरी ॥ ४ ॥ बायें हाथ में लिये, मणियों से सजे सूँढ़, लाल रेशमी वस्त्र और दिव्य मालाओं से सुशोभित थे ॥ ५ ॥ तीन आँखें, सिर पर मणि-निर्मित मुकुट सुशोभित, चूड़ा में चन्द्र, शक्ति से समाश्लिष्ट देह, गण्डस्थल से चूते मदजल वाले गणेश ने ॥ ६ ॥ ललिता देवी को प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा–हे देवि! इस युद्ध में मेरा क्या काम होगा? मुझे बतलायें ॥ ७ ॥ अत्यन्त दुष्कर कार्य भी तुम्हारी कृपा से मैं पूरा कर लूँगा। गणेश की यह बात सुनकर ललिताम्बा महेश्वरी ने कहा ॥ ८ ॥ हे वत्स! तुम जाओ, दैत्यों ने जो अभिचार क्रिया की है, उसे विनष्ट कर दो। इस तरह उनकी आज्ञा पाकर गणेशजी अपनी सूँढ़ हिलाते ॥ ९ ॥ एक क्षण में ही जो यन्त्र जहाँ मिला उसे चुनते हुए विघ्नयन्त्र को पाकर शक्तिसंघ के देखते हुए ॥ १० ॥ वज्रसार की तरह उस यन्त्र को भी क्रोध से ही दाँतों की चोट से तोड़ डाला। फिर पलक झपकते ही उसे चूर कर खण्ड-खण्ड कर दिया। उसके बाद जलते परकोटे के दरवाजे से लड़ने के लिए बाहर निकल गये। दैत्यसेना के भीतर घुसकर महाबली दानवों से लड़ने लगे ॥ ११-१२ ॥ कुछ को गदा से पिस डाला तो कुछ को चक्र से काटा, कुछ को त्रिशूल से चीर दिया तो कुछ को शर से बिंध दिया ॥ १३ ॥ सचिव के रथ को दाँत से और दूसरे हजारों दैत्यों और दैत्यपतियों का फिर

अमारयद्विषाणेन दैत्यानन्यान् सहस्रशः । एवं दैत्यपतीन् भूयो गणेशः क्षयमानयत्॥ १४॥
कर्णतालमहावायुविधूता दैत्यवाहिनी । नासावायुमहावेगविकृष्टाः सङ्घशोऽसुराः॥ १५॥
अवशा विविशुः शीघ्रं शुण्डासुषिरमार्गतः । शुण्डाऽन्तर्भागसङ्घट्टान्मृताश्छिन्नाङ्गबन्धनाः॥
केचिन्मूर्च्छामनुप्राप्ता निःश्वासाद्भुवि पोथिताः ।
प्राणान् जहुस्तथाऽन्ये चाऽक्षताः श्रोत्रविलायनात्॥ १७॥
विनिर्गताः कर्णतालाऽऽस्फालिता जीवितं जहुः । एवं विनाशयन् दैत्यांस्तत्सेनायां गणेश्वरः॥
भण्डपुत्रान् समादाय गदापातैरपातयत् । विषङ्गं हृदि दन्तेन चकाराऽत्यन्तविक्षतम्॥ १९॥
विषङ्गो राजपुत्राश्च यदा मूर्च्छामुपाययुः । तदा दृष्ट्वा दैत्यगणा मत्वा प्रत्यक्षमन्तकम्॥
हा हेति भीताः समरं त्यक्त्वा दूरं पलायिताः । दृष्ट्वैवं विद्रुतं सैन्यं विशुक्रोऽतिरुषाऽन्वितः॥
आययौ रथसंस्थानो युध्यन्तं विघ्ननायकम् । अथाऽभवन्महायुद्धं विशुक्रगजवक्त्रयोः॥ २२॥
शस्त्राऽस्त्रवर्षणं घोरं परस्परजयैषणम् । अथेभवक्त्रः सङ्क्रुद्धो गदापातेन तद्रथम्॥ २३॥
साऽश्वं ससारथिं शीघ्रं चूर्णयामास संयुगे । अथ क्रुद्धो विशुक्रोऽपि गदामुद्यम्य वेगतः॥ २४॥
प्राहरत् कुम्भयोस्तस्य सर्वप्राणेन मन्युना । गदाप्रहारसम्भिन्नकुम्भदेशाद्गणेशितुः॥ २५॥
बहु सुस्राव रुधिरमथ क्रुद्धो गणाधिपः । जघान शूलेन हृदि विशुक्रस्याऽतिवेगतः॥ २६॥
शूलनिर्भिन्नहृदयो विशुक्रो मूर्च्छितोऽपतत् । एवं विशुक्रं निर्जित्य ययौ भण्डरथं प्रति॥ २७॥
दृष्ट्वाऽऽयान्तं नियुद्धाय गणेशं स्वात्मना सह । विचारयत् स्वान्तरङ्गे तमजेयं विभावयन्॥
एष योद्धुं समायाति सिन्धुरास्यो मया सह । अजेयोऽयं महावीर्यः सर्वैर्देवासुरैरपि॥ २९॥

गणेश ने क्षय कर दिया॥ १४॥ कान के हिलाने से उत्पन्न महावायु से दैत्यवाहिनी को धुन दिया और नाक की हवा के वेग से असुरों के समूह को खींच लिया॥ १५॥ अवश होकर सूँड़ के छेद की राह से शीघ्र ही भीतर घुस गये। सूँड़ की भीतरी भाग से रगड़ खाकर कुछ तो मर गये, कुछ के अंग-भंग हो गये॥ १६॥ कुछ बेहोश हो गये, कुछ निःश्वास से धरती पर गिरकर प्राणों को छोड़ दिये और कुछ बिना चोट खाये कान के छेद से॥ १७॥ निकल तो आये पर कान हिलाने की चोट से प्राण छोड़ दिये। इस तरह दैत्यसेना के बीच दैत्यों का गणेशजी ने विनाश करते हुए॥ १८॥ भण्ड के बेटों को गदा से मारा। विषंग की छाती पर दाँत की चोट से उसे क्षत-विक्षत कर दिया॥ १९॥ विषङ्ग और राजकुमार जब बेहोश हो गये तब इन्हें देखकर दैत्यगण प्रत्यक्ष यमराज मानकर॥ २०॥ हा-हाकार करते हुए डरकर मैदान छोड़कर दूर भाग गये। इस तरह अपनी सेना को भागते देखकर विशुक्र क्रोध से जल उठा॥ २१॥ फिर रथ पर बैठकर विघ्ननायक से युद्ध करने आ पहुँचा। विशुक्र और गणेश के बीच घोर युद्ध हुआ॥ २२॥ अस्त्र-शस्त्र बरसाते हुए परस्पर विजय की कामना से ये जूझ रहे थे। इसके बाद क्रुद्ध होकर गणेशजी ने गदा से उसके रथ पर प्रहार किया॥ २३॥ घोड़े-सारथी के साथ रथ युद्ध में चूर-चूर हो गया। इसके बाद विशुक्र ने भी क्रोधित होकर वेग से गदा उठा ली॥ २४॥ क्रोध में ही उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर उनके माथे पर प्रहार किया। गदा की चोट खाकर गणेशजी का सिर फट गया॥ २५॥ उससे बहुत खून निकला। फिर क्या था, गणेशजी ने क्रोधित होकर बड़े वेग से त्रिशूल उठाकर विशुक्र की छाती पर प्रहार कर दिया॥ २६॥ छाती में त्रिशूल चुभते ही विशुक्र भी बेहोश होकर गिर गया। इस तरह विशुक्र को जीतकर गणेशजी भण्डरथ की ओर चल पड़े॥ २७॥ भण्ड ने मन-ही-मन गणेशजी को अजेय मानते हुए युद्ध के लिए उन्हें आते देखकर विचार करने लगा॥ २८॥ यह गणेश मेरे साथ युद्ध करने आ रहा है, यह तो अजेय है; सभी देवता और असुरों

मम सङ्कल्प एषोऽस्ति तदा श्रीललिताऽम्बया। शस्त्रैर्हत इमं देहं त्यक्त्वा तल्लोकमाप्नुयाम्॥
तत्र विघ्नमिमं मन्ये कथं मे स्यात् समीहितम्। नूनमेष पुरा युद्धं चक्रे येन महौजसा॥ ३१॥
द्विपाऽसुरेण तं स्रक्ष्ये तेनैष समियाद्रणे। ततोऽहं तां समायास्ये योद्धुं श्रीललिताम्बिकाम्॥
इति निश्चित्य ससृजे गजदैत्यं महाद्भुतम्। पर्वताऽऽभं महाभीमं परिघोद्यत्सुपुष्करम्॥ ३३॥
अभिद्रवद्गणपतिं स दैत्यो भण्डदेशितः। आसाद्य गजदैत्यं तं युयोध गणनायकः॥ ३४॥
एवं युध्यति नागास्ये विघ्नयन्त्रस्य नाशनात्। शक्तयः प्रकृतिं प्राप्य निर्ययुर्युद्धहेतवे॥ ३५॥
आलक्ष्य युद्धसन्नाहं भण्डदैत्यस्य सर्वथा। अशेषदैत्यसेनानां मन्त्रिणी दण्डिनीयुता॥ ३६॥
मन्त्रयित्वा महाराज्ञी स्वयं युद्धाय निर्ययौ। अशेषशक्तिसेनाभिर्दंशिताभिः परिवृता॥ ३७॥
आदौ सम्पत्करी देवी रणकोलाहलाऽभिधे। समारुह्येभसेनाभिर्निर्जगामाऽतिसम्भ्रमात्॥
अथाऽपराजिताऽश्वस्था निर्ययौ परमेश्वरी। अश्वारूढाऽश्वसेनाभिरावृता युद्धसम्भ्रमात्॥ ३९॥
तन्मध्ये श्रीमहाराज्ञ्या प्रतिरुद्धा रणोत्सुका। बाला प्रणम्य ललितां प्राह मञ्जुलया गिरा॥ ४०॥
मातर्मामनुजानीहि युद्धाय कृतनिश्चयाम्। सदा युद्धविधानाय समुत्सुकितमानसाम्॥ ४१॥
त्वयाऽहं प्रतिरुद्धाऽस्मि प्रसक्तेऽपि महारणे। पादौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येषा देह्याज्ञां समराय मे॥
चिरादुत्कण्ठिता युद्धे निर्गमं नो लभाम्यहम्। आद्ये दिनेऽपि मे युद्धं नाऽऽसीन्मानसपूरणम्॥
मध्ये तया कोलमुख्या विहता युधि वै मुधा। अद्य मे पूरय स्वाऽऽशां चिराद्युद्धाय सम्भृताम्॥
इति बालावचः श्रुत्वा ललिता श्रीपराम्बिका। प्रहसन्ती मन्त्रनाथामुखं समवलोकयत्॥ ४५॥

से भी महाबली है॥ २९॥ मेरा संकल्प तो यह है कि श्रीललिताम्बा के हथियार से मैं यह देह छोड़कर उनका लोक प्राप्त करूँगा॥ ३०॥ इसे अपने काम में विघ्न माना और उसकी पूर्ति में उसे सन्देह हुआ। अत्यन्त पराक्रम के साथ उनसे पहले यह मुझसे युद्ध करने आया॥ ३१॥ यह सोचकर उसने गजासुर की रचना कर डाली। उससे यह युद्ध करेगा, तब ललिताम्बिका मुझसे युद्ध करने आयेगी॥ ३२॥ इतना निश्चय कर उसने महाद्भुत गजदैत्य की सृष्टि कर डाली। पर्वत की तरह वह विशाल था, महाभयंकर था और सूँड़ में हथियार लिये था॥ ३३॥ भण्डदैत्य के आदेश से वह गणपति की ओर दौड़ पड़ा। गजदैत्य को समीप देखकर गणेशजी उससे जूझने लगे॥ ३४॥ इस तरह विघ्नयन्त्र के विनाश से गजानन जूझ रहे हैं, उधर शक्तियाँ भी प्रकृतिस्थ होकर युद्ध के लिए बाहर निकल आईं॥ ३५॥ भण्डदैत्य को सर्वथा युद्ध के लिए तैयार देखकर उसकी सारी सेना को मन्त्रिणी दण्डिनी के साथ होकर॥ ३६॥ विचार कर महारानी स्वयं युद्ध के लिए निकल पड़ी। उनके साथ तैयार सारी शक्तिसेना उन्हें घेरकर चल रही थी॥ ३७॥ रणकोलाहल के लिए ख्यात पहले सम्पत्करी देवी हाथी पर सवार होकर अपनी सेना के साथ ससम्भ्रम बाहर निकली॥ ३८॥ इसके बाद अपराजिता देवी घोड़े पर सवार होकर निकली। उनके साथ अश्वारोही शक्तिसेना उन्हें घेरकर युद्ध करने चली॥ ३९॥ उनके बीच में युद्ध के लिए उत्सुक प्रतिरुद्ध महारानी से बाला ने प्रणाम कर बड़ी मीठी भाषा में पूछा॥ ४०॥ माँ! आप तो मुझे जानती है कि युद्ध के लिए मैं कृत निश्चय हूँ, क्योंकि युद्ध के लिए हमेशा मैं उत्सुक मन वाली हूँ॥ ४१॥ आपको मैंने महारण में जाने से रोका है, आपके चरणों पर सिर रखकर मैं प्रार्थिनी हूँ; आप पहले मुझे युद्ध करने की आज्ञा दें॥ ४२॥ बहुत काल से मैं युद्ध के लिए उत्सुक हूँ, लेकिन यह मौका मुझे नहीं मिला; पहले दिन के युद्ध में भी मेरा मन नहीं भरा॥ ४३॥ बीच में ही वाराही प्रभृति युद्ध के मैदान में आ गई। आज मेरी आशा पूरी करो, जो बहुत दिन से युद्ध के लिए मेरी लालसा बनी थी॥ ४४॥ बाला की बात सुनकर पराम्बिका ललिता ने हँसती हुई मन्त्रनाथा के मुख की ओर देखा॥ ४५॥ महादेवी

देव्याशयं विदित्वा सा कुमारीं प्राह मन्त्रिणी। कुमारि शृणु मे वाक्यं यदि त्वं योद्धुमिच्छसि॥
तत्त्वया समन्येनैव योद्धव्यं यदि मन्यसे। एकेन सह युध्यस्व दण्डिन्या च मया सह॥ ४७॥
युद्धे नौ न परित्यज्य दैत्यसेनासु चैकला। प्रवेष्टव्यं क्वचिद्वाऽपि तवाऽऽवां पक्षसंश्रये॥ ४८॥
भवावस्तद्वदत्रैव केन योद्धुं हि वाञ्छसि। श्रुत्वैवं मन्त्रिणीवाक्यं प्राह बालाऽम्बिका पुनः॥ ४९॥
युध्याम्यहं भण्डपुत्रैर्न तेष्वन्या कथञ्चन। सर्वथा बाणमेकं वा विसृजेदहमेकला॥ ५०॥
युद्ध्वा तैस्तान्निहन्म्येव न तद्वाहा रथा अपि। आयुधादीनि नाश्यानि अन्याभिर्जातु कुत्रचित्॥
श्रुत्वा बालावचो भूयो मन्त्रिणी तामुवाच ह। एकेन युद्धस्व रणे देव्यादिष्टे कथं त्वया॥ ५२॥
त्रिंशद्भिर्म्रियते युद्धं नेदमौपयिकं तव। भण्डपुत्रा महाशूरा भण्डतुल्यपराक्रमाः॥ ५३॥
भीमसंहननाः सर्वे कूटयुद्धविशारदाः। एकेन तेषु युध्यस्व येन योद्धुं समीप्सितम्॥ ५४॥
इति वाक्यं श्यामलायाः श्रुत्वा बालाऽम्बिका ततः। प्रणम्य भूयस्तैर्युद्धमयाचत कृताञ्जलिः॥
याचतीं तां समालोक्य प्रीता सा ललिताम्बिका। ददावनुज्ञा समरे आश्लिष्य प्रीतिपूर्वकम्॥
अथ प्राह पुनर्देवीं बाला श्रीत्रिपुरां तदा। मातरन्यच्छृणु वचो दण्डिन्येषा मया सह॥ ५७॥
न तिष्ठतु युद्धभुवि भूय एषा पुरा मम। व्यनाशयद्युद्धरसं यद्यागच्छेन्मया सह॥ ५८॥
पृष्ठतस्तिष्ठतु न तु विघ्नं भूयः करिष्यति। यदि युद्धे पुनर्विघ्नं करिष्यति तदा शृणु॥ ५९॥
मया पराहतां युद्धे द्रुतमेनां प्रपश्यसि। एवं वदन्ती बालां तां मत्वा रुष्टाञ्च पोत्रिणी॥ ६०॥
नत्वा तां सान्त्वयामास मृदुवाक्यैः सुपेशलैः। देवि शङ्कां त्यज मयि आगच्छामि त्वया सह॥

का मन्तव्य समझकर मन्त्रिणी ने कुमारी से कहा—हे कुमारि! यदि तुम युद्ध करना ही चाहती हो तो मेरी बात सुनो॥ ४६॥ यदि तुम किसी बराबरी वाले से ही युद्ध करना चाहती हो तो मेरे या दण्डिनी में से किसी एक के साथ ही युद्ध कर॥ ४७॥ रणाङ्गण में हम दोनों को छोड़कर अकेली दैत्यसेना में कहीं भी प्रवेश मत करना। तुम्हारे साथ हम दोनों। ४८॥ रहेगीं। इसलिए बोलो किससे युद्ध करना चाहती हो? मन्त्रिणी की ऐसी बातें सुनकर फिर बालाम्बिका ने कहा॥ ४९॥ मैं तो केवल भण्ड दैत्य के बेटों से युद्ध करना चाहती हूँ, उसे छोड़कर किसी के साथ नहीं; उसमें भी मैं अकेली किसी एक पर ही बाण चलाऊँगी॥ ५०॥ उनसे लड़कर उनका मैं विनाश करूँगी। उनके वाहक रथ और उनके आयुधों को भी विनष्ट कर दूँगी और हमारी सहयोगी शक्तियाँ दूसरी जगह चली जायें॥ ५१॥ उसकी लड़कपन भरी ये बातें सुनकर फिर मन्त्रिणी ने उससे कहा—महारानी ने अकेले तुम्हें रणक्षेत्र में युद्ध करने का आदेश कैसे दिया?॥ ५२॥ वे तीस हैं, महाबली हैं, भण्ड की ही तरह पराक्रमी हैं; उनके साथ अकेले तुम्हारा युद्ध उचित प्रतीत नहीं होता॥ ५३॥ वे सभी कूटयुद्ध में निपुण हैं, भयंकर-से-भयंकर तथा शक्तिशाली को भी मारने में प्रवीण हैं; उनमें से किसी एक के साथ जिससे तुम युद्ध करना चाहती हो—करो॥ ५४॥ भगवती श्यामला की ये बातें सुनकर बालाम्बिका ने उन्हें प्रणाम कर पुनः करबद्ध होकर उनके साथ युद्ध करने के आदेश की याचना की॥ ५५॥ इस तरह याचना करते उसे देखकर परम प्रसन्न होकर ललिताम्बिका ने प्रीतिपूर्वक उसका आलिंगन कर युद्धभूमि में जाने की आज्ञा दी॥ ५६॥ उस बाला ने देवी त्रिपुरा से फिर प्रार्थना की—माँ! मेरी दूसरी बात भी सुनो, मेरे साथ यह दण्डिनी॥ ५७॥ युद्धभूमि में नहीं रहेगी। अगर यह मेरे आगे या मेरे साथ रहेगी तो युद्धरस को भ्रष्ट कर देगी॥ ५८॥ इसलिए यह मेरे पीठ पीछे रहेगी और युद्ध में किसी तरह का विघ्न नहीं डालेगी और यदि फिर युद्ध में इसने किसी तरह का विघ्न डाला तो सुनो॥ ५९॥ रणक्षेत्र में इन्हें मैं पीछे धकेल दूँगी और स्थिति में तुम देखोगी। इस तरह उस बाला को बोलती देख उसे रुष्ट मानकर वाराही ने॥ ६०॥ उसे प्रणाम

निशामयामि ते युद्धं करोमि तव यत्प्रियम्। तवाऽऽज्ञामनुरुध्यैव पुरतः पृष्ठतोऽपि वा॥ ६२॥
स्थास्यामि न हि विघ्नं मे भविष्यति च ते युधि। इति श्रुत्वा दण्डिनीं सा मोदादाश्लिष्य सत्वरम्॥
रथमारुह्य तरसा निर्ययौ समरोत्सुका। मन्त्रिणी दण्डनाथा च स्वस्वस्यन्दनसंस्थिते॥ ६४॥
ययतुः पार्श्वयोस्तस्याः शक्तिसेनासमावृते। अथ श्रीचक्रराजाख्यरथमारुह्य सत्वरम्॥ ६५॥
युद्धाय निर्ययौ देवी वीरसन्नाहसन्नता। तत्पृष्ठतः समारुह्य तिमिरस्तोमसम्प्रभम्॥ ६६॥
तुरगं मारुतजवं निर्ययौ सा तिरस्कृतिः। विकर्षन्ती शक्तिसेनाममेयां सागरोपमाम्॥ ६७॥
अथ सेनाद्वयमुखमभूद्भीमं सुसङ्गतम्। युद्धवाद्यचित्ररवो नेमिघोषाऽतिमांसलः॥ ६८॥
वीरास्फोटैर्हुङ्कृतैश्च गजमण्डलचीत्कृतैः। हयह्रेषितसंरावैर्ववृधेऽतितरां तदा॥ ६९॥
अथ शस्त्रप्रपातोऽभूच्चटच्चटरवोद्धतैः। लोहितानां महाऽऽसारवर्षणोऽतिभयङ्करः॥ ७०॥
हतोऽसि हंस्यसे शीघ्रं तिष्ठ मा विद्रुतिं त्यज। द्रुतं वीर्यं दर्शय ते पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥ ७१॥
एवं वचांसि बहुधा श्रूयन्ते तत्र सङ्गरे। शिथिलाङ्गा शरैः केचित् केचित् परशुदारिताः॥ ७२॥
शूलेष्वन्येऽभिसम्प्रोताः परे खड्गैर्विपाटिताः। निष्पिष्टाः परिघैरन्ये चक्रैश्छिन्नगलाः परे॥
तोमरैर्भेदिताः केचिद्विक्षताः प्रासपट्टिशैः। भिन्दिपालैः शकलिता गदाभिर्भिन्नमस्तकाः॥ ७४॥
दैत्या अभूवन् समरे शक्तिभिर्गाढसंहताः। सरितः शोणितवहा ववुस्तत्र सहस्रशः॥ ७५॥
एवं शक्तिभिरत्यन्तमर्दिता दैत्यवाहिनी। पलायिता क्रन्दमाना शक्तिशस्त्राऽतिवेधिता॥ ७६॥

कर प्यार भरे कोमल वाक्यों से उसे सान्त्वना दी। हे देवि! तुम मुझ पर सन्देह छोड़ो, मैं तुम्हारे साथ ही आ रही हूँ॥ ६१॥ तुम्हारा युद्ध देखूँगी, जो तुम्हारा प्रिय होगा वही करूँगी। तुमसे आदेश पाकर ही तुमसे आगे या पीछे रहूँगी॥ ६२॥ ऐसा करने में तुम्हारे युद्ध में मुझे कोई भी विघ्न नहीं होगा। यह सुनकर शीघ्र ही प्रसन्न होकर बालाम्बा का आलिंगन किया॥ ६३॥ समरोत्सुका बाला ने शीघ्र ही रथ पर चढ़कर प्रस्थान कर दिया। इधर मन्त्रिणी और दण्डनाथा भी अपने-अपने रथ पर सवार हुई॥ ६४॥ शक्तिसेना को लेकर बालाम्बा के अगल-बगल प्रस्थान किया। इधर शीघ्र ही चक्ररथ पर सवार होकर॥ ६५॥ विनत वीर सेना-समूह के साथ युद्ध के लिए महादेवी भी निकल गई। उनकी पीठ पीछे अन्धकार-समूह से मानो समुत्पन्न काले, हवा से बात करने वाले घोड़े पर सवार होकर सागरोपम शक्तिसेना को खींचती उस तिरस्करिणी ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया॥ ६६-६७॥ दोनों सेना आमने-सामने हो गई। जुझारू बाजे बजने लगे, धनुष की सुपुष्ट आवाज से मिलकर विचित्र ध्वनि उत्पन्न होने लगी॥ ६८॥ वीरों के स्पष्ट हुंकार, हाथी के झुण्डों की चीग्घाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट; कुल मिलाकर युद्धक्षेत्र को भयावह बना दिया॥ ६९॥ खचाखच अस्त्रों के प्रहार से निकल कर लहू की वर्षा ने रणाङ्गण को अतिडरावना बना दिया॥ ७०॥ हाय मरा! तो कोई हँसता था, मैदान छोड़कर मत भाग! ठहर! तो कुछ कह रहे थे—अपना पराक्रम दिखला वर्ना मेरा पराक्रम देख॥ ७१॥ उस रणभूमि में परस्पर ऐसी आवाजें बहुधा सुनी जा रही थीं। बाणों से कुछ के अंग कटें तो फरसे से कुछ को काट दिया गया॥ ७२॥ दूसरों को त्रिशूलों से वेधा गया तो कुछ को तलवारों से काट कर धरती पर पाट दिया गया। कुछ गदा की चोट खाकर पिस गये तो कुछ की गर्दन चक्र से काट दी गयी॥ ७३॥ तोमरों से कुछ को काटा गया तो कुछ को प्रासपट्टियों से विक्षत कर दिया गया। कुछ भिन्दिपालों से टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये तो कुछ के शिर गदाओं से चूर कर दिये गये॥ ७४॥ युद्धभूमि में दैत्यगण शक्तिगण से लड़कर गम्भीर घायल हुए। खून की धारा बहने वाली हजारों नदियाँ वहाँ बह चलीं॥ ७५॥ इस तरह शक्तिसेना से कुचली दैत्यवाहिनी, जो शक्ति के अस्त्र से घायल होकर

असहन्ती शक्तिसेना सम्मर्दबलवत्तरम् । जलाशयाच्छिन्नबन्धात्तोयानीव क्षयं गता ॥ ७७ ॥
तद्दृष्ट्वा विहतां सेनां दैत्यानां भण्डसूनवः । चतुर्बाहुमुखास्त्रिंशत्सङ्ख्याश्चित्रपराक्रमाः ॥
भण्डतुल्यबलाः शस्त्रास्त्राऽभिज्ञा युद्धदुःसहाः । रथाऽऽरूढाः शक्तिसेनां जघ्नुः सायकवृष्टिभिः ॥
तैः कलितमभूच्छक्तिसैन्यं समरतापनैः । शस्त्राऽस्त्रतेजो दैत्यानामसह्यं प्राप्य सर्वतः ॥ ८० ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये सर्वसेनासमागमो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ५९९६ ॥



रोती-चिल्लाती भाग रही थी ॥ ७६ ॥ कुचलने में बलवत्तर शक्तिसेना के आक्रमण को दैत्यवाहिनी सहन न कर सकी। बाँध टूटने पर जैसे जलाशय का पानी नहीं टिकता उसी तरह दैत्यसेना विनष्ट हो गई ॥ ७७ ॥ दैत्यसेना को इस तरह विनष्ट होते देख भण्ड के पुत्रों ने जिन्हें भगवान् विष्णु की तरह चार बाँहें थीं, संख्या में तीस थे और अद्भुत पराक्रमी थे ॥ ७८ ॥ भण्ड के सदृश ही बलवान् थे, शस्त्रास्त्र संचालन में निपुण थे, युद्ध में आपत्ति को सहने वाले थे; वे शक्तिसेना पर रथारूढ होकर बाण बरसाने लगें ॥ ७९ ॥ उन समरतापनों ने शक्तिसेना को मसल डाला, चारों ओर दैत्यों के शस्त्र-अस्त्र के तेज को असह्य पाया गया ॥ ८० ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत सर्वसेना-समागम नामक इकतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५९९६ ॥



अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः



एवं युद्धकथां श्रुत्वा प्राह कुम्भभवो मुनिः। हयाऽऽनन महाश्चर्यमाख्यानं सम्यगीरितम्॥ १॥
गणनाथस्य कथितो गजाऽसुरसमागमः। युद्धं तयोः कथमभूत्तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः॥ २॥
इति पृष्टः कुम्भभवमुनिना तुरगाऽऽननः। गणनाथमहायुद्धं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ३॥
अगस्त्य शृणु वक्ष्यामि कथामत्यद्भुतां तव। गणनाथमहावीर्यसम्भृतां संयुतां रसैः॥ ४॥
भण्डसृष्टेन दैत्येन युयोध स गणेश्वरः। मुहूर्तमात्रमभवत्तयोर्युद्धं सुदुःसहम्॥ ५॥
अथ दैत्यः ससर्जाऽन्यान् दैत्यानात्मपराक्रमान्। तुल्यरूपांस्तुल्यजवांस्तुल्यसाहसविक्रमान्॥
ताननेकान् युध्यमानान् दृष्ट्वा क्रुद्धो गणेश्वरः। ससर्ज स्वात्मनस्तुल्यान् गणेशानपि कोटिशः॥
तत्रैकैकेन दैत्येन प्रत्येकं गणनायकाः। युयुधुश्चित्रशस्त्रास्त्रैस्तदद्भुतमिवाऽभवत्॥ ८॥
दैत्याः शक्तिगणाश्चापि तयोर्युद्धं महाद्भुतम्। ददृशुः प्रेक्षका भूत्वा युद्धसंरम्भविस्मृतेः॥ ९॥
अथ ते गणनाथास्तु जघ्नुर्विक्रम्य हेतिभिः। कश्चिच्छूलाहतः कश्चिच्चक्रेण शकलीकृतः॥ १०॥
कश्चिद्गदाभग्नतुण्डः कश्चिद्दन्तविदारितः। कश्चिन्निघृष्ट उरसा कश्चित्पादप्रपेषितः॥ ११॥
कश्चित् कुम्भाऽऽहतेर्भिन्नकुम्भः प्राणान् जहौ युधि। एवं ते नाशिता दैत्या दैत्यसृष्टा गजाननैः॥
अथैकलः समभवत् पुनर्गजमहासुरः। युयोध बलवांस्तत्र गणेशेनाऽतिसाहसी॥ १३॥
महागणेशोऽपि दृष्ट्वा दैत्यं पूर्ववदेकलम्। सञ्जहार गणपतीन् स्वाङ्गे निमिषमात्रतः॥ १४॥

⁕ विमला ⁕

इस तरह युद्ध की कथा सुनकर कुम्भज मुनि ने हयग्रीव मुनि से महाश्चर्यजनक वह आख्यान सुनाने को कहा॥ १॥ जिसमें गणेश और गजासुर का युद्ध बतलाया गया है। उनमें युद्ध किस प्रकार हुआ ? मुझ जिज्ञासु को कहें॥ २॥ इस तरह कुम्भज मुनि के पूछने पर हयानन ने गणेशजी का महायुद्ध वर्णन करने का उपक्रम किया॥ ३॥ हे कुम्भज! यह अत्यन्त अद्भुत कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो। यह सरस कथा श्रीगणेश के महापराक्रम से समवेत है॥ ४॥ भण्ड से निर्मित उस दैत्य के साथ गणेश ने युद्ध किया। यह अतिसुन्दर युद्ध दोनों के बीच मात्र एक मुहूर्त चला॥ ५॥ उस दैत्य ने अपने ही पराक्रम से अपने सदृश वेगवान्, साहसी एवं पराक्रमी अन्य दैत्यों की रचना कर डाली॥ ६॥ उन अनेकों को मिलकर एक साथ युद्ध करते देख कुपित गणेश ने भी अपने सदृश ही पराक्रमी अनेक गणों की रचना कर डाली॥ ७॥ वहाँ एक-एक दैत्य के साथ एक-एक गणेश रंग-बिरंगे अस्त्र-शस्त्रों के साथ जूझने लगे। यह युद्ध विस्मयावह हुआ॥ ८॥ उधर अन्य दैत्यों के साथ शक्तिसेना का विस्मयकारी युद्ध चल रहा था। इन दोनों के युद्ध की प्रचण्डता में भूलकर प्रेक्षक बने वे सब देखने लगे॥ ९॥ इधर गणनाथ ने हथियार उठाकर कुछ को मार डाला, कुछ त्रिशूल से आहत हुए और कुछ चक्र से काट डाले गये॥ १०॥ किसी की सूँड़ गदा से तोड़ डाली, किसी को दाँत से चीर डाला और किसी को छाती से रगड़ डाला तथा किसी को पैरों से कुचल डाला॥ ११॥ कोई गजमस्तक पर चोट खाकर गिरा और प्राण गवाँ दिये। इस तरह दैत्यों से सृजित गजाननों को इन्होंने नष्ट कर डाला॥ १२॥ अब वह गजमहासुर एक बार फिर अकेला हो गया। फिर वह अतिसाहसी और बलवान् गणेश से जा भिड़ा॥ १३॥ महागणेश ने भी पहले की तरह उस असुर को अकेला देखकर पलक झपकते गणपतियों को अपने

अथाऽभवन्महायुद्धं तयोर्विक्रमतोर्युधि । अनेकशस्त्राऽस्त्रगणैः सङ्कुलं सुभयङ्करम्॥ १५॥
अथ सोऽपि महादैत्यो माययाऽभून्महोन्नतः । सहस्राऽऽस्यस्तद्द्विगुणभुजश्चित्राऽऽयुधैर्वृतः ॥
क्षणे क्षणे च शस्त्राणां सहस्रं स ससर्ज ह । सृष्टं सृष्टं शस्त्रगणं नाशयद्गणनायकः॥ १७॥
दृष्ट्वा दैत्यस्य मायां तां गणेशोऽतिरुषाऽन्वितः। चिच्छेद युगपत्तस्य धृतं शस्त्रसहस्रकम्॥ १८॥
अथाऽभवद्गदायुद्धं गणेशगजदैत्ययोः । महत्या गदया नूनं निघ्नतोरितरेतरम्॥ १९॥
तदा गणेशगदया ताडिता तस्य सा गदा । शकलीभूय पतिता ततो दैत्यो निरायुधः॥ २०॥
मुष्टिमुद्यम्य गणपं हन्तुमायान्महासुरः । दृष्ट्वाऽऽयान्तं दैत्यवरं गणेशः प्राक्षिपद्गदाम्॥ २१॥
सा गदा प्राप्य तद्देहं नैषद्रुजमुदावहत् । गदाप्रतिहताऽङ्गेन पपात भुवि सा वृथा॥ २२॥
अथ चक्रं त्रिशूलञ्च परिघं शक्तिमेव च । क्षिप्तं क्षिप्तं वृथा भूमावपतद्देहसङ्गतः॥ २३॥
उपलानां वृष्टिरिव गण्डशैल इवाऽभवत् । दृष्ट्वा दैत्यं सर्वशस्त्रैरजेयं स गणाधिपः॥ २४॥
चिन्ताकुलः समभवत्तावन्मुष्ट्या जघान सः । अथाऽभवत्तयोर्मुष्टियुद्धमत्यन्तदारुणम्॥ २५॥
मुष्टिसंहननोदञ्चदग्निवर्षणसंयुतम् । तं ततो बाहुबन्धेन बद्ध्वा दैत्यं निपातयत्॥ २६॥
निपात्य पादेनाऽऽक्रम्य हृदि दन्तेन दारयत्। एवं विदारितो दैत्यो जहौ प्राणांस्तदा रणे॥ २७॥
हत्वैवमिभदैत्यं तं पुनर्भण्डासुरं प्रति । युद्धायाऽभ्याजगामाऽऽशु गणेशोऽद्भुतविक्रमः॥ २८॥
तदाऽऽयान्तं गणपतिं दृष्ट्वा भण्डमहासुरः । चिन्तयल्ललितां देवीं भीतस्तस्य पराक्रमात्॥

अंग में मिला लिया॥ १४॥ अब दोनों ही अकेले हो गये। फिर दोनों का युद्ध रोंगटें खड़ा कर देने वाला अनेक शस्त्रास्त्रों के सहारे प्रारम्भ हो गया॥ १५॥ उस महादैत्य ने भी अपने आपको महोन्नत रूप में माया के बल पर परिणत कर लिया। उसे एक हजार मुख एवं उसके दूने हाथ थे। उसके रंग-बिरंगे आयुध थे॥ १६॥ पल-पल में हजारों-हजार हथियारों की वह रचना करने लगा। एक ओर वह हथियार बनाता था और दूसरी ओर गणेश उसे मिटाते जाते थे॥ १७॥ उस दैत्य की माया देखकर गणेशजी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने उनके हजारों हथियारों को एक साथ विनष्ट कर डाला॥ १८॥ इसके बाद गणेश और गजदैत्य के बीच गदायुद्ध प्रारम्भ हो गया। वे महती गदा से एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे॥ १९॥ उसके बाद गणेश की गदा से दैत्य की गदा ताड़ित हुई। गदा की चोट से दैत्य के हाथ की गदा नीचे गिरी, अब वह दैत्य निहत्था हो गया॥ २०॥ अब वह दैत्य गणेश को मुक्के से मारने के लिए आगे बढ़ा। उस दैत्य को इस तरह आते देखकर गणेश ने उस पर गदा से प्रहार किया॥ २१॥ उस गदा की चोट से वह दैत्य अपनी देह को सम्हाल न सका, शरीर पर गदा की चोट खाकर धरती पर जा गिरा॥ २२॥ इसके बाद चक्र, त्रिशूल, परीघ जैसे हथियारों से धरती पर गिरे उस दैत्य के शरीर पर बार-बार प्रहार किया, पर इससे वह टस-से-मस नहीं हुआ॥ २३॥ जैसे कठोर पहाड़ पर ओले की वृष्टि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसी तरह इस दैत्य को हर शस्त्र से गणेश अजेय देखकर॥ २४॥ बड़े चिन्तातुर हुए। तब तक उसने मुक्के से प्रहार कर दिया, फिर इन दोनों का अत्यन्त दारुण मुक्का-मुक्की युद्ध शुरू हुआ॥ २५॥ मुक्के के प्रहार से अग्निकण की वर्षा होने लगी। तब गणेश ने उसे अपनी बाँहों में जकड़कर पटक दिया॥ २६॥ धरती पर पटककर पैर से दबाकर दाँत से उसकी छाती चीर दी। इस तरह गणेश से विदारित होकर उस दैत्य के युद्ध में प्राणपखेरू उड़ गये॥ २७॥ इस तरह गजासुर को मार कर फिर अद्भुत शक्तिशाली गणेश युद्ध के लिए शीघ्र ही भण्डासुर के सामने चले गये॥ २८॥ गणेश के पराक्रम से डरा हुआ भण्डासुर उन्हें अपनी ओर आते देख कर ललिता देवी का स्मरण करते हुए॥ २९॥ हे माँ! समर में तुम्हारे साथ लड़ते मुझे मार कर

मातस्त्वयाऽयं समरे हतो देहो विनश्यतु। इति पूरय मद्वाञ्छां प्रपन्नस्त्वत्पदाऽम्बुजम्॥ ३०॥
तद्विदित्वा भक्तवाञ्छापूरणाय महेश्वरी। सस्मार सिन्धुरमुखं चक्रराजरथस्थिता॥ ३१॥
विदित्वा संस्मृतिं देव्या आजगाम गजाननः। प्रणम्य प्राह मातः किं स्मृतो युद्धविधौ स्थितः॥
प्राह श्रुत्वा वचस्तस्य ललिता परमेश्वरी। वत्साऽलं युद्धविधिना तिष्ठ मत्पार्श्वतोऽधुना॥ ३३॥
एता युद्धोत्सुका देव्यो युध्यन्त्वसुरसेनया। इत्याज्ञप्तो गणेशानो विरराम नियुद्धतः॥ ३४॥
अथ भण्डसुतैः शक्तिसेनां दृष्ट्वाऽतिविक्षताम्। तान् सायकैः किरन्तीं सा बाला युद्धे समासदत्॥
असङ्ख्यदैत्यसेनाभिर्युता दैत्येशसूनवः। अत्यद्भुतक्रियां युद्धे बालां वव्रू रणाऽजिरे॥ ३६॥
कोटिशो दैत्यसुभटा विचित्राऽऽयुधवर्षणैः। बालां रथस्थां ववृषुर्गर्जन्तो युद्धदुर्मदाः॥ ३७॥
अथ शक्तिगणं प्राह दण्डिनी परमं वचः। शृणुध्वं शक्तयः सर्वा बालाम्बाज्ञां ब्रवीमि वः॥ ३८॥
एषा यैर्युध्यति युधि न तेषु सहसा क्वचित्। प्रयोक्तव्यं शस्त्रगणं दण्ड्या सा मेऽन्यथा भवेत्॥
प्रेक्षध्वमस्याः समरं न योद्धव्यं कथञ्चन। इति सङ्घोष्य सेनासु मन्त्रिण्या सहिता स्वयम्॥ ४०॥
पार्श्वं समाश्रितवती तस्याः समरवैभवे। अथ श्रुत्वा दण्डराज्ञ्याः शासनं मुदिता हि सा॥ ४१॥
असङ्ख्यैर्दैत्यसुभटैरेकला युयुधेऽद्भुतम्। सिद्धर्षिदेवतामुख्याः पश्यन्त्याऽऽकाशमाश्रिताः॥
युध्यन्तीं बहुभिश्चैकां कुमारीं विस्मिताऽभवन्। अथ दैत्योत्सृष्टशस्त्रवृन्दैराच्छादिताऽभवत्॥
बालसूर्योऽभ्रपटलैरिव सा सर्वतो दिशम्। दृष्ट्वाऽऽछन्नां शस्त्रगणैर्विमताः शक्तयोऽभवन्॥
ततः क्षणेनैव बाला प्रतिशस्त्राऽभिवर्षणैः। विनाश्य तां शस्त्रवृष्टिं भूयः सर्वान् जघान ह॥ ४५॥

तुम इस देह का विनाश करो, मैं तुम्हारे चरणकमलों का प्रपन्न भक्त हूँ; माँ! मेरी इच्छा पूर्ण कर॥ ३०॥ भण्डासुर के मन की इच्छा जानकर भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाली चक्रराज रथ पर बैठी ललितेश्वरी ने गणेश का स्मरण किया॥ ३१॥ देवी के स्मरण मात्र से गणेश उनके पास पहुँच गये और प्रणाम कर उनसे कहा—हे माँ! मैं तो युद्ध कर रहा था, आपने मुझे क्यों याद किया?॥ ३२॥ गणेश की बात सुनकर ललिता परमेश्वरी ने उनसे कहा— वत्स! यह युद्ध बेकार है, इस समय तुम मेरे पास रहो॥ ३३॥ ये देवियाँ युद्ध के लिए उत्सुक हैं, अब असुर-सेना के साथ ये ही युद्ध करें। देवी का आदेश पाकर गणेशजी युद्ध से विरत हुए॥ ३४॥ उधर भण्ड के बेटे शक्तिसेना को देखकर अति विचलित हुए। उन्हें लड़ाई के मैदान में उस बाला ने बाणों से मारना शुरू किया॥ ३५॥ असंख्य सेना के साथ भण्ड के बेटों ने रणाङ्गण में युद्ध में अद्भुत क्रिया करने वाली बाला से कहा॥ ३६॥ इधर रंग-बिरंगे हथियारों की वर्षा करते, गरजते, युद्धोन्मादी, दैत्यसुभटों ने रथ पर सवार बाला पर आक्रमण कर दिया॥ ३७॥ तब दण्डिनी ने शक्तिसेना से कहा—सारी शक्तियाँ! मेरी बातें सुनो, बालाम्बा से आज्ञा पाकर ही मैं तुमसे कह रही हूँ॥ ३८॥ यह जो युद्ध के मैदान में जिसके साथ जूझ रही है, वे अचानक कहीं अपने हथियारों का प्रयोग न करे, अन्यथा वह मुझसे दण्डित होगी॥ ३९॥ इस बालाम्बा का केवल युद्ध देखो, युद्ध मत करो। सेना में यह घोषणा कर मन्त्रिणी के साथ वह स्वयं॥ ४०॥ बालाम्बा की पार्श्ववर्तिनी बन गई। बाला भी दण्डराज्ञी की यह घोषणा सुनकर काफी प्रसन्न हुई॥ ४१॥ असंख्य दैत्य के वीर योद्धाओं के साथ अद्भुत तरीके से वह अकेली जूझने लगी। सिद्ध, ऋषि प्रमुख देवगण आकाश में आकर यह अद्भुत युद्ध देखने लगे॥ ४२॥ बहुतों के साथ अकेली इस कुमारी को जूझते देखकर सभी विस्मित हुए। दैत्यों के द्वारा चलाये गये हथियारों से वह ढँक गई॥ ४३॥ जैसे बालसूर्य के उदय होते ही सम्पूर्ण अभ्रपटल और सारी दिशाएँ प्रकाशित हो जाती हैं, हथियारों से आच्छन्न इस बाला को देखकर सारी शक्तियाँ विमत हो गयीं॥ ४४॥ उसके बाद एक क्षण में ही उस बाला ने अपना शस्त्र

अथ तेषामसङ्ख्यानां युगपल्लघुविक्रमा। आयुधानि वाहनानि नाशयच्चित्रविक्रमा॥ ४६॥
भूयो गृहीतमात्राणि शस्त्राण्यपि समाच्छिनत्। अथ तीक्ष्णैः शरैर्दैत्यान्नाशयत् साऽतिवेगतः॥
शराऽऽदानञ्च सन्धानं पूरणञ्च विसर्जनम्। न लक्ष्यतेऽतिनिपुणदृशा केनाऽपि सर्वथा॥ ४८॥
किन्तु तस्या धनुर्मध्याद्भूबिलाच्छलभा इव। प्रसरन्ति शरास्तीक्ष्णा दिक्ष्वन्तरविहीनतः॥ ४९॥
सङ्घशो दैत्यमूर्धानः पतन्ति तृणराजतः। फलानीव सुपक्वानि चटच्चटमहारवाः॥ ५०॥
केचिच्छिन्नकराऽङ्घ्र्यूरुवक्षःकुक्षिगलाः परे। निरन्तरतया विद्धा सहस्राक्ष इवाऽभवन्॥ ५१॥
अन्ये च खण्डिता दैत्यास्तिलशः कीर्णदेहकाः। केचिद्वक्षसि संविद्धा हृतप्राणाः स्थिरं स्थिताः॥
धृतशस्त्राः प्रदृश्यन्ते लिखिताः सुभटा इव। केचिच्छराऽऽहतेर्वेगान्नीयन्ते गतजीवनाः॥ ५३॥
युद्धकातरभावेन पलायनपरा इव। एवं तया मुहूर्तेन कोटिशो दैत्यपुङ्गवाः॥ ५४॥
गताऽसवोऽभवन् पेतुर्विक्षतास्ते शतोत्तराः। न तत्र दैत्यः शूरोऽपि कश्चित् स्वात्माऽवने विभुः॥
क्व युद्धं क्व च वा शस्त्रपातनं कर्तुमर्हति। न दैत्या युद्धमत्यन्तमेकाकिन्या विदुः क्वचित्॥ ५६॥
कोटिशः शक्तिसेनानां युद्धं जानीयुरञ्जसा। शक्तिसेना नभःसंस्था देवाद्याश्च समन्ततः॥ ५७॥
दृष्ट्वा बालाविक्रमं तमाश्चर्यं परमङ्गताः। अथैवं निघ्नतीं बालां दृष्ट्वा दैत्याश्चमूङ्गताः॥
भीताः शस्त्राणि निक्षिप्य पलायनपराऽभवन्। हा हतास्मो न चेयं वै योषिद्बाला कुमारिका॥
प्रत्यक्षमन्तकः प्राप्त एवमस्मान् विहिंसितुम्। अद्य निःशेषितं सैन्यं दैत्यानां भवति क्षणात्॥
वदन्त एवं क्रोशन्तो दुद्रुवुः सर्वतो दिशम्। शस्त्रधारासुनिचिते मार्गमप्राप्य निर्गमे॥ ६१॥

वर्षाकर उनकी शस्त्रवृष्टि को खत्म कर सबको मार डाला॥ ४५॥ उनकी असंख्य संख्या वाली सेना को एक साथ छोटा बनाकर एक साथ उनके हथियार और वाहनों को चित्रविक्रमा इस देवी ने विनष्ट कर दिया॥ ४६॥ फिर वे हथियार उठाते थे और उन्हें काट दिया जाता था। अपने तीक्ष्ण बाणों से इस कुमारी ने अत्यन्त वेग से दैत्यों का विनाश कर दिया॥ ४७॥ यह बाण लेती, सन्धान करती, प्रत्यञ्चा खींचती और छोड़ती—ये सारी क्रियाएँ इतनी शीघ्रता से होतीं कि निपुण आँख वाले भी इसे देख नहीं पाते॥ ४८॥ किन्तु उसके धनुष के बीच से धरती के बिल से निकले कीड़े-मकोड़े की तरह तीक्ष्ण बाण दिशाओं में फैल जाते थे॥ ४९॥ संघीभूत दैत्यों के सिर इस तरह कटकर गिरते थे जैसे चट्-चट् आवाज करते पेड़ से पके फल गिरते हैं॥ ५०॥ कुछ के हाथ कटें तो कुछ के पैर, कुछ की जाँघें कटीं तो कुछ की छाती। कुछ के पेट कटे तो कुछ की गर्दन। कहीं लगातार बाणों से बिंधकर सभी हजार आँखों वाले बन गये॥ ५१। कुछ दैत्य टुकड़े-टुकड़े में कट गये। कुछ की छाती बिंध गई, कुछ के प्राण उड़ गये और प्राणहीन शरीर यथावत् खड़ी रह गई॥ ५२॥ कुछ हथियार लिये सुभट चित्रलिखित की तरह दीख रहे थे, कुछ शर से आहत होकर निष्प्राण हो दौड़ लगा रहे थे॥ ५३॥ युद्धकातर होकर सभी भगोड़े की तरह लग रहे थे। इस तरह उसने एक पल में करोड़ों दैत्यवीरों को॥ ५४॥ प्राणहीन कर धरती पर पाट दिया। वहाँ कोई दैत्यवीर भी अपनी आत्मा का स्वामी नहीं रह सका॥ ५५॥ कहाँ युद्ध वा कहाँ हथियार गिरा? इसे भी कोई न जान सका। न दैत्य इसे जान सके, न अकेली बाला इसे समझ सकी॥ ५६॥ करोड़ों शक्तिसेना का युद्ध आसानी से जान लिया जाता था। शक्तिसेना आकाश में स्थित थी, देवगण चारों ओर घेरे थे॥ ५७॥ इस बाला के विक्रम को देखकर वे परम आश्चर्यचकित थे। दैत्यसेना के बीच घुसकर बाला को इस तरह मारती देखकर॥ ५८॥ डरकर हथियारों को फेंककर यह कहते हुए सब भागे–हाय! मारा गया, यह कुमारी बाला कोई औरत नहीं॥ ५९॥ हमें मारने के लिए यह प्रत्यक्ष यमराज आया है। क्षणभर में ही दैत्यसेना को यह निःशेष कर देगी॥ ६०॥ शस्त्रधारा

शरधाराशकलिताः पेतुर्दैत्यास्तु सङ्घशः । केचिच्छरैः सुसंविद्धाः पतिताः शवराशिषु ॥ ६२ ॥
भीता निविश्य स्वात्मानमरक्षन्मृत्युभीतितः । एवं तदा दैत्यसैन्यं प्रायो नष्टं पलायितम् ॥ ६३ ॥
शिष्टश्चाऽपि निशाम्याऽथ भण्डपुत्राः समाययुः । रथारूढाः सिंहवाहा महाचापधरा भृशम् ॥
क्रुद्धा एकप्रपातेन बालां वव्रुः समन्ततः । महामेघा इव श्यामा गर्जन्ती मृगराजवत् ॥ ६५ ॥
वर्षन्तः शरधाराभिर्बालां सूर्यमिवाऽम्बरे । तैरनेकैः कुमारी सा विष्णुतुल्यपराक्रमैः ॥ ६६ ॥
सङ्गता युधि दृष्टाभूल्लीलया तान् युयोध च । मन्त्रिणीदण्डिनीमुख्या दृष्ट्वा बालापराक्रमम् ॥
विस्मिताः श्रीपरादेव्यै समाचख्युर्महारणम् । देवि नूनं सा कुमारी न शेषयितुमर्हति ॥ ६८ ॥
भण्डं तद्भ्रातरौ वाऽपि पुत्रान् सेनागतानपि । लीलयैवाऽद्य निःशेषं करिष्यति न संशयः ॥
एवं युद्ध्वा क्षणं मन्दं भण्डपुत्रैः प्रतापनैः । तेषां वाहान् ध्वजं छत्रं युगपन्नाशयच्छरैः ॥ ७० ॥
तेषां सायकवृष्टिं तां विधूय प्रतिवृष्टिभिः । शरासनं क्रमात्तेषां चिच्छेद सुपतत्रिभिः ॥ ७१ ॥
अथ ते रोषिताः खड्गगदाप्रमुखमायुधम् । परामृशुर्निहन्तुं तां यावत्तावदियं द्रुतम् ॥ ७२ ॥
आत्तमात्तं प्रचिच्छेद तदद्भुतमिवाऽभवत् । एवं निरायुधा दैत्या जातास्तस्याः पराक्रमम् ॥ ७३ ॥
अत्यद्भुतं मेनिरे ते चिन्ताश्चाऽऽपुर्महत्तराम् । एवं बाला महाकालग्रस्तान् युधि निशाम्य वै ॥ ७४ ॥
विषङ्गश्च विशुक्रश्च महासैन्यपरीवृतौ । रक्षितुं तान् राजपुत्रानभ्यायायतुराशु वै ॥ ७५ ॥
मा बिभ्यताऽऽगतावाचां वदन्ताविति सा शिवा। ददृशे शस्त्रवर्षाणि कुर्वन्तौ कालमेघवत् ॥

से ढके, निकलने की राह खोजने में असमर्थ, इस तरह चीखते-चिल्लाते, कुछ बोलते चारों ओर भागने लगे ॥ ६१ ॥ झुण्ड-के-झुण्ड दैत्यों को बाणों से टुकडे-टुकड़े कर वहीं पाट दिया। उनमें कुछ बाणों से बिंधकर लाश के ढेर पर जा गिरे ॥ ६२ ॥ मौत के डर से डरे अपने आपको बचाने में असमर्थ दैत्यगण को नष्ट होते या भागते देखकर ॥ ६३ ॥ उनमें बचे-खुचे को भी बचाने के लिए भण्ड के बेटे वहाँ आ धमके। वे सिंह जुते प्रचण्ड रथ पर हाथ में विशाल धनुष उठाये थे ॥ ६४ ॥ सिंह की तरह गरजती काली सघन घटा की तरह चारों ओर से उमड़ती श्यामा शक्तियों ने कुपित बाला से कहा—इन्हें बस एक ही प्रहार की आवश्यकता है ॥ ६५ ॥ विष्णुतुल्य पराक्रमी भण्ड के पुत्र आकाश में चमकते सूर्य की तरह उस बाला पर बाण बरसाते ॥ ६६ ॥ युद्धभूमि में आ टकराये। उन्हें देखते ही बड़ी आसानी से बाला उनके साथ युद्ध करने लगी। मन्त्रिणी और दण्डिनी प्रभृति प्रमुख शक्तियों ने उस बाला के पराक्रम को देखकर ॥ ६७ ॥ अतिविस्मित हुई और श्रीदेवी के चरणों में महान् युद्ध की सूचना दी। हे देवि! निश्चय ही वह कुमारी आज कुछ शेष नहीं छोड़ेगी ॥ ६८ ॥ भण्ड, उनके भाई, बेटे और सेना को भी आज ही वह विनष्ट कर देगी। इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ इस तरह प्रतापी भण्डपुत्रों के साथ धीरे-धीरे युद्ध करते हुए एक क्षण में ही उनके वाहनों, ध्वज और छत्र को एक साथ अपने बाणों से काट रही है ॥ ७० ॥ उनकी बाणवृष्टि पर अपने बाणों की वर्षा कर उन्हें रूई की तरह धुनकर क्रमशः उनके तीर और धनुषों को बाला ने काट डाला ॥ ७१ ॥ फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर तलवार एवं गदा जैसे प्रमुख आयुधों को उठाते हुए उन्हें मारना चाह ही रहे थे कि इस बाला ने बड़ी तीव्रगति से ॥ ७२ ॥ हाथ में उठाये उनके हथियारों को पलक झपकते काट गिराया। यह दृश्य बड़ा ही विस्मयावह था। उस बाला ने पराक्रम से भण्डपुत्रों को क्षणभर में निहत्थे कर दिया ॥ ७३ ॥ इसे अद्भुत मानते हुए वे घोर चिन्ता में डूब गये। इस तरह बाला को काल रूप में इन्हें ग्रसते देखकर ॥ ७४ ॥ शीघ्र ही उन राजकुमारों की रक्षा के लिए विशाल दानवी सेना को साथ लेकर विषंग और विशुक्र रणाङ्गण में आ धमके ॥ ७५ ॥ कालमेघ की तरह बाण बरसाते उन दोनों ने उस कल्याणी को देखते ही कहा—अब

दृष्ट्वा बालाऽतिहर्षेण तां वृष्टिं शस्त्रसङ्कुलाम् । निवारयल्लीलयैव ततस्तां दैत्यवाहिनीम् ॥
क्षणेन वायव्याऽस्त्रेण महावायुर्घनानिव । नामशेषां कृतवती ततस्तावतिरोषितौ ॥ ७८ ॥
आयान्तावतिवेगेन गदाखड्गकरावुभौ । दृष्ट्वा शरैर्वाहनेभान् युद्धेऽनाशयदञ्जसा ॥ ७९ ॥
अथैकेन पृथग्वक्षोदेशे बलवदाहतौ । मूर्च्छितौ पेततुर्भूमौ वज्राऽऽहतनगाविव ॥ ८० ॥
तदन्तरे भण्डपुत्राः शस्त्रहेतोः परावृताः । तान्निवृत्तान् समालोक्य विरथानकरोत् क्षणात् ॥ ८१ ॥
पादचारान्निहत्याऽऽशु जङ्घ्योर्निशितैः शरैः । प्राह रे भण्डदायादाः शूराणां वः कथं त्विदम् ॥
दर्शनं युधि पृष्ठस्य योग्यं ब्रूत पलायताम् । श्रुत्वा कटुरसोदर्कं भाषितं तेऽतिमानिनः ॥ ८३ ॥
ब्रूयुर्मन्युज्वलन्नेत्रा निवृत्ताः सम्मुखे रणे । धिङ् मुग्धे बालिकां दृष्ट्वा दयमानस्वभावतः ॥ ८४ ॥
जीवस्यस्मान् समासाद्य मृत्युकल्पान् कथञ्चन । तत् पश्य सद्यस्त्वां कुर्मो विमदां तत् स्थिरीभव ॥
इत्युक्त्वा मुष्टिमुद्यम्य धावमानान् स्वसम्मुखे । प्रत्येकं निशितैर्भल्लैस्तच्छिरांसि चकर्त ह ॥ ८६ ॥
पक्वतालफलानीव पेतुस्तन्मस्तकान्यथ । हाहाकारः समुदभूत् दैत्यानां वाहिनीमुखे ॥ ८७ ॥
ववर्ष बालां कुसुमैः सुगन्धिभिः सुरेश्वरः । जयशब्दो महानासीच्छक्तिसेनासु सर्वतः ॥ ८८ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये भण्डपुत्रवधस्त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६०८४ ॥



मत डरो, हम दोनों अब आ गये हैं॥ ७६ ॥ उस शस्त्रसंकुल वर्षा को देखकर वह बाला परम प्रसन्नता के साथ बड़ी आसानी से उसे रोककर उस दैत्यवाहिनी को॥ ७७ ॥ जो सघन बादल की तरह सारे अवकाश को घेर रखी थी, उन पर वायव्य अस्त्र चलाकर उन्हें समाप्त कर दिया। उसके बाद वे दोनों अत्यन्त कुपित होकर॥ ७८ ॥ तलवार और गदा उठाकर इनकी ओर लपके। उन्हें आते देख बाला ने शीघ्र ही उनके वाहन हाथियों को रणभूमि में बाण से बेंधकर मार डाला॥ ७९ ॥ फिर एक ही बाण से बलपूर्वक उनकी छाती को छेद दिया। वे दोनों वज्राहत पहाड़ की तरह धरती पर ढह गये॥ ८० ॥ इसी बीच भण्ड के बेटे दूसरा हथियार लाने के लिए पीछे मुड़ें, उनकी मनसा जान कर बाला ने उन्हें बाण मारकर विरथ कर दिया॥ ८१ ॥ फिर पैदल ही उन्हें जाते देखकर उनकी जाँघों को बाणों से बेधते हुए कहा—रे भण्डपुत्र! तुम कैसे वीर हों?॥ ८२ ॥ इस तरह युद्ध के मैदान में पीठ दिखलाकर भागते तुम्हें लाज नहीं आती? बोलो। यह कड़वी बातें सुनकर अतिमानी उन्होंने। ८३ ॥ आग की तरह जलती आँखों से इन्हें देखकर कहा और रणक्षेत्र की ओर लौट गये। हे बाला! तुम्हें धिक्कार है। मैं तो तुम्हें बच्ची समझ कर तुम पर दयावश॥ ८४ ॥ तुम्हें जीने दिया है; अन्यथा साक्षात् मौत की तरह हमें पाकर तुम कैसे जीती? तो देख, अब कैसे तुम्हारा मान भंग करते हैं? ठहरो॥ ८५ ॥ इतना कहकर, मुक्के से उस पर प्रहार करने के लिए आगे उसे आते देखकर प्रत्येक की गर्दन अपने तेज भाले से काटकर उन्हें मार डाला॥ ८६ ॥ ताल के पके फल की तरह उनके सिर धड़ से कटकर गिर गये। यह देखकर दैत्यवाहिनी हा-हाकार कर उठी॥ ८७ ॥ देवताओं ने बाला पर फूल बरसाये और शक्तिसेना खुशी के मारे जय-जयकार करने लगी॥ ८८ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत भण्डपुत्रवध नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६०८४ ॥



अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

एवं हतेषु भण्डस्य पुत्रेषु समरोत्सुकाम्। बालां भूयः समालक्ष्य मन्त्रिणीदण्डनायिके॥ १॥
ऊचतुर्देवि श्रीराज्ञीं दृष्ट्वा नत्वा निवेद्य च। अनुज्ञाता पुनर्युद्धं यास्यामः कर्तुमञ्जसा॥ २॥
तावद्दैत्याः समायान्तु समराय सुदंशिताः। त्वमसाध्यं कृतवती नैतदस्मच्छकं क्वचित्॥ ३॥
इत्युक्त्वा तां समादाय गत्वा श्रीमातृसन्निधिम्। आरुह्य चक्रराजाख्यरथं नत्वा पराम्बिकाम्॥
ऊचतुर्विक्रमं युद्धे बालाया अद्भुतं महत्। विजयञ्च ततः श्रुत्वा तुष्टा श्रीललिताम्बिका॥ ५॥
आश्लिष्य बालां सुप्रीत्या पार्श्वे च सुनिवेशयत्। भण्डपुत्रान् हतान् दृष्ट्वा हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः॥
पलायिताश्च परितः शुष्यद्वक्त्रा हतप्रभाः। पुत्रनाशं निशम्याऽथ भण्डदैत्योऽतिदुःखितः॥ ७॥
पुनर्विमृश्य सद्बुध्या धैर्यमालम्ब्य सत्वरम्। अहो मे विपुलो मोहः स्मृतिभ्रंशः समुद्गतः॥ ८॥
किं शोचामि वृथैवाऽहं दैव्या मेऽभिमतं कृतम्। यथा यथा प्रार्थितं मे तत्तथैव कृतं तया॥ ९॥
नूनं मदर्थे शोचेयुरेते तस्मान्ममाऽग्रतः। यान्तु पञ्चत्वमथ वै तया दैव्या रणे हताः॥ १०॥
प्राप्नोमि तल्लोकगतिं परीवारेण संयुतः। इति मे प्राग्व्यवसितं प्रार्थिता च पराम्बिका॥ ११॥
अथ सा भक्तकामानां दोग्ध्री कामप्रपूरणम्। चक्रे तत्र महामोहो वृथा किं मामुपागतः॥ १२॥
तदलं मे विमोहेन देवि त्वां शरणागतः। तन्मेऽवशेषितं कामं पूरयाऽऽशु महेश्वरि॥ १३॥

*** विमला ***

इस तरह भण्डदैत्य के बेटों को मारकर भी और अधिक युद्ध करने के लिए बेचैन बाला को देखकर मन्त्रिणी और दण्डनायिका ने॥ १॥ बालाम्बा से कहा—हे देवि! महारानी ललिता से भेंट कर उन्हें प्रणाम कर उन्हें सारी बातें निवेदित कर उनसे पुनः आज्ञा पाकर शीघ्र ही हम सब फिर युद्ध करने जायेंगे॥ २॥ तब तक ये दैत्य अच्छे ढंग से कवच धारण कर युद्ध के लिए तैयार होकर आयें। तुमने तो असाध्य को भी साध्य कर दिखाया, हमारी शक्ति से तो यह कार्य निश्चित बाहर था॥ ३॥ इतना कहकर बालाम्बा को लेकर माता ललितेश्वरी के पास पहुँच गयीं। चक्रराज नामक रथ पर सवार होकर पराम्बिका को प्रणाम कर॥ ४॥ युद्ध में जो अद्भुत पराक्रम बाला ने दिखलाया—उसका वर्णन करते हुए इनके विजय के सम्बन्ध में भी बतलाया। यह सुनकर ललिताम्बिका सन्तुष्ट हुई॥ ५॥ बाला का आलिंगन कर उन्हें बगल में बैठा लिया। उधर भण्डपुत्रों को मारे गये देखकर हाहाकार करते चिल्लाते॥ ६॥ चारों ओर सूखे मुख, हतप्रभ दैत्यगण भाग निकलें। इधर पुत्रों का विनाश देखर भण्डदैत्य परम दुःखी हुआ॥ ७॥ पुनः सद्बुद्धि से विचार कर शीघ्र ही धैर्य धारण किया और कहा—आश्चर्य है, स्मृतिभ्रष्ट होने के कारण ही मुझे यह विशाल मोह उत्पन्न हुआ है॥ ८॥ मैं भला व्यर्थ ही क्यों सोचने लगा? देवी ने तो वही किया जो मैं चाहता था। जैसे मैंने प्रार्थना की उसी तरह उन्होंने किया॥ ९॥ निश्चय ही मेरे लिए ये सोचेंगे, अतः मेरे सामने ही मुझसे पहले युद्ध में देवी ने इन्हें समाप्त कर दिया॥ १०॥ उस लोक में मैं सपरिवार जाऊँगा, ऐसी पराम्बिका से मैंने पहले ही प्रार्थना की है॥ ११॥ वह भक्तों की कामना पूरी करने वाली कामधेनु के समान है। तब फिर बेकार ही मैं महामोह में क्यों पड़ गया?॥ १२॥ अतः मेरा यह मोह बेकार है। हे देवि! मैं तुम्हारा शरणागत हूँ, इसलिए हे माँ! मेरी जो अवशिष्ट

संहृत्य शिष्टां सेनां मे भ्रातृभ्यां सहितां ततः। मां सयोषिद्गणं शीघ्रं युद्धे शस्त्राग्निपावितम्॥ १४॥
विधाय स्वपदाम्भोजसविधं नेतुमर्हसि। कदाऽहं चन्द्रचूडालं नेत्रत्रयसुशोभनम्॥ १५॥
क्रोधारुणितनेत्रान्तसभ्रूकुटिलदर्शनम्। पश्यन् श्रीमातृवदनं दग्धस्तत्सायकाऽग्निना॥ १६॥
व्रजाम्यशोकममृतं स्थानं योगिसुदुर्लभम्। प्रार्थयन्निति तद्रूपं कोटिकन्दर्पसुन्दरम्॥ १७॥
ध्यायन् श्रीललितादेव्या निर्विकल्पोऽभवत् क्षणम्। तावत्तत्राऽऽजग्मतुस्तौ दैत्यराजस्य भ्रातरौ॥
तं ददर्शतुरत्यन्तनिश्चेष्टं स्थाणुवत्स्थितम्। अमंसतुः पुत्रशोकभराक्रान्तं सुमूर्च्छितम्॥ १९॥
समाधानवचस्तत्र प्रोचतुः कालसम्मितम्। तयोः शमपरैः शब्दैर्ध्येयान्निर्गतमानसः॥ २०॥
उन्मील्य नेत्रे पुरतो ददर्श भ्रातुरौ स्थितौ। स्वरूपगोपनार्थं स भ्रात्रोः सम्मुखतः स्थितः॥ २१॥
पुत्रान् शुशोच नितरां मनसा तौ हसंस्तदा। हा पुत्रा मां परित्यज्य पितरं दुःखसागरे॥ २२॥
मज्जन्तं दीनमत्यन्तं क्व यातास्त्यक्तसौहृदाः। मातरो वोऽतिवात्सल्यकातरा ईदृशीं दशाम्॥
श्रुत्वा कथं भवेयुस्ता विदीर्णहृदया इव। इत्यादि विलपन्तं तं दृष्ट्वा तौ भ्रातरौ तदा॥ २४॥
श्रीदेवीमायया मुग्धौ दैत्येशं प्रोचतुर्वचः। अलं दैत्येश शोकेन धैर्यवीर्याऽपहारिणा॥ २५॥
शोचन्तं त्वां समालोक्याऽसङ्ख्यातभुवनेश्वरम्। ज्वरो दहति नौ देहं करीषमिव पावकः॥ २६॥
मुहूर्तं धैर्यमालम्ब्य राजंस्त्वं सुस्थिरो भव। गत्वाऽऽवामेकपातेन तां हत्वा निशितैः शरैः॥ २७॥

पुत्रघ्नीं ललिताऽऽख्यातां मारीं दैत्येष्विवाऽऽगताम्।
जीवन्तीं वा मृतां वाऽपि बद्ध्वा नेष्याव आशु वै॥ २८॥

इच्छा है, उसे पूर्ण करो॥ १३॥ बची सेना को, भाइयों और पत्नियों के साथ युद्ध में शस्त्राग्नि से पवित्र होकर शीघ्र मुझे अपने पास बुला लो॥ १४॥ अपने चरणकमलों के पास शीघ्र हमें बुला लो। सिर पर चन्द्रमा और तीन आँखों वाली के दर्शन कब होंगे?॥ १५॥ क्रोध से लाल-लाल आँखें, टेढ़ी भौंह वाली मातृवदन को देखते, उनके बाण रूपी आग में जलकर॥ १६॥ कब मैं उस अमृतकल्प, शोक-सन्तापविहीन स्थान को, जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है, प्राप्त करूँगा? करोड़ों काम से अधिक सुन्दर उस रूप की झलक मिलेगी?॥ १७॥ श्रीललिता देवी का ध्यान करते ही क्षणभर में ही वह निर्विकल्प हो गया। इसी बीच उसके दोनों भाई भी वहीं आ गये॥ १८॥ उन्हें देखा और स्थाणु की तरह निश्चेष्ट हो गया। पुत्रशोक के भार से गिरकर बेहोश हो गया॥ १९॥ यथावसर समयोपयुक्त आश्वासन की बातें कहने लगा। उनकी बात सुनकर भण्ड का ध्यान टूट गया॥ २०॥ आँखें खुलीं तो सामने दोनों भाइयों को देखा। अपने मन की बातें छिपाने के लिए भाइयों के सामने॥ २१॥ पुत्र की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा—हाय बेटे! पिता को दुःखसागर में छोड़कर॥ २२॥ अपना सौहृद छोड़कर पिता को दीनता के सागर में डूबते छोड़कर तुम कहाँ चले गये? अपनी माताओं को इस कातर स्थिति में क्यों नहीं देखते?॥ २३॥ यह दुःखद समाचार सुनकर उसकी छाती कैसे फट जायेगी? इसी तरह उसे विलपते देखकर उन दोनों भाइओं ने॥ २४॥ श्रीदेवी की माया से विमोहित होकर कहा—दैत्यराज! धीरज और पराक्रम को विनष्ट करने वाले इस शोक से भला क्या लाभ?॥ २५॥ तुम्हें इस तरह सोचते देखकर अनगिनत राजे-महाराजे शोक रूपी ज्वर से जलते हैं। हम दोनों की यह देह कण्डे की तरह शोकाग्नि में जल रही है॥ २६॥ एक पल धैर्य रखकर राजन्! आप स्थिर तो हो जाय, अभी हम लोग वहाँ जाकर अपने तीक्ष्ण बाणों से एक ही चोट में मारकर॥ २७॥ ललिता कहलाने वाली उस पुत्रघ्नी को तथा दैत्यों पर आई महामारी की तरह उस देवी को जिन्दा या मृत बाँधकर हम शीघ्र उसे ले आते हैं॥ २८॥ इतना कहकर तीर-धनुष उठाकर रथ पर सवार हुए, अत्यन्त

इत्युक्त्वा सशरं चापमादाय स्यन्दनाऽऽश्रयौ । युद्धार्थमभ्यायतुरतिवीर्यपराक्रमौ ॥ २९ ॥
द्विशताऽक्षौहिणीसेनापरीवारौ सुदंशितौ । पृथक् शक्तिमहासेनापार्श्वभागे प्रपेततुः ॥ ३० ॥
चक्रराजरथवरदक्षपार्श्वेऽतिवेगतः । शताऽक्षौहिणीसेनाभिर्विषङ्गः प्रापदद्बली ॥ ३१ ॥
विशुक्रश्चापि वामेन तथा न्यपतदञ्जसा । तृतीये युद्धदिवसे प्रातः सूर्योदयं प्रति ॥ ३२ ॥
अकस्माच्छक्तिसेनायाः पक्षयोः पतितौ यदा । तदाभवन्महाशब्दः शक्तिसेनासु पार्श्वयोः ॥
तदा श्रुत्वा युद्धशब्दं मन्त्रिणीदण्डनायिके । अभूतां शङ्कितेऽत्यन्तमूचतुः श्रीपराम्बिकाम् ॥ ३४ ॥
देवि दैत्यशक्तिसेनासमागगमहाध्वनिः । श्रूयते भैरवतरो दैत्याः कपटयोधिनः ॥ ३५ ॥
युध्यन्त्यकाण्डे सन्नद्धा अकृत्वा संविदं पुरा । तद्याव आवामनुजानीहि शीघ्रं महेश्वरि ॥ ३६ ॥
अनुज्ञाते ततो नत्वा मन्त्रिणीदण्डनायिके । चेलतुः समरायाऽऽशु पृथक् शक्तिगणावृते ॥ ३७ ॥
देव्या दक्षिणपार्श्वस्था दण्डिनी चण्डविक्रमा । निर्ययौ श्रीचक्रराजरथदक्षिणद्वारतः ॥ ३८ ॥
किरिचक्ररथं पञ्चपर्वशोऽभिसमुन्नतम् । महासिंहयुगं पार्श्वे सैरिभाग्रं तथा पुरः ॥ ३९ ॥
योजितं भैरवो यत्र रथनेता स्वयं स्थितः । तत्पार्श्वे सिंहसंवाहरथारूढे विचेलतुः ॥ ४० ॥
स्वप्नेश्वरी तथा कालसङ्कर्षा युद्धसम्भ्रमा । बटुकैः कालिकावृन्दैर्वराहमुखशक्तिभिः ॥ ४१ ॥
असङ्ख्याभिः परिक्रान्ता निर्ययौ कदनाय सा । एवं चक्ररथद्वारादुत्तरस्माच्च मन्त्रिणी ॥ ४२ ॥
विनिर्गत्य गेयचक्ररथराजे महोन्नते । सप्तपर्वयुते वेदहरिदश्वप्रचालिते ॥ ४३ ॥
हसन्ती श्यामला तत्र रथनेत्र्यभवत् परा । शुकाद्या सारिकाद्या च श्यामला दक्षपार्श्वगा ॥ ४४ ॥
सङ्गीतसाहित्यपूर्वे श्यामले वामपार्श्वगे । लघुश्यामालिका पृष्ठे चैवमेता रथाऽऽश्रयाः ॥

वीर्य और पराक्रम के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान किया ॥ २९ ॥ बख्तर-कवच पहने दो सौ अक्षोहिणी सेना लेकर शक्ति-महासेना के बगल में पहुँच गया ॥ ३० ॥ चक्रराज रथ की दाहिनी ओर अत्यन्त वेग के साथ सौ अक्षौहिणी सेना लेकर विषंग पहुँच गया ॥ ३१ ॥ इधर विशुक्र भी अत्यन्त वेग के साथ बायीं ओर पहुँचा। युद्ध के तीसरे दिन अहले सुबह ॥ ३२ ॥ हमारी शक्तिसेना के दोनों ओर जब वे पहुँच गये तो शक्तिसेना के बगल में महान् कोलाहल प्रारम्भ हुआ ॥ ३३ ॥ तब इस महायुद्ध के शब्द को सुनकर मन्त्रिणी और दण्डनायिका सशंक हुई और श्रीपराम्बा के पास जाकर कहा ॥ ३४ ॥ हे देवि! शक्तिसेना के पास आकर प्रपंच से युद्ध करने वाले इन दैत्यों का कठोरतर महानाद सुनायी दे रहा है ॥ ३५ ॥ असमय पूरी तैयारी के साथ बिना किसी पूर्वसूचना के ये लड़ते हैं। इसलिए हे महेश्वरि! शीघ्र हम दोनों आपका इस सन्दर्भ में आदेश पाना चाहते हैं ॥ ३६ ॥ आदेश मिलते ही मन्त्रिणी और दण्डिनी ने उन्हें प्रणाम कर शीघ्र ही युद्ध के लिए प्रस्थान किया ॥ ३७ ॥ श्रीचक्रराज रथ के दाहिने दरवाजे से चण्डविक्रमा दण्डिनी देवी की दाहिनी ओर निकल गई ॥ ३८ ॥ पंचपर्व से सुशोभित अतिसमुन्नत जिसमें विशाल सिंह जुते हों, बगल में अति उग्र भैंसें खड़े हों—ऐसे किरिचक्र के आगे ॥ ३९ ॥ रथनेता भैरव जहाँ स्वयं उपस्थित थे, उनके बलग में सिंहवाही रथ पर चढ़कर उन्होंने प्रस्थान किया ॥ ४० ॥ इधर वाराही शक्ति के साथ स्वप्नेश्वरी तथा कालसङ्कर्षा युद्ध के लिए उतावली बनी बटुक और कालिका वृन्दों के साथ चलीं ॥ ४१ ॥ अनगिनत शक्तियाँ चक्ररथ द्वार से उत्तर की ओर दैत्य-दमन के लिए मन्त्रिणी भी निकल पड़ी ॥ ४२ ॥ महाविशाल सात पर्वों से युक्त रथ, जिसमें चार-चार हरे घोड़े जुते थे, उस पर सवार होकर बाहर निकली ॥ ४३ ॥ वहाँ रथनेत्री श्यामला हँसती हुई शुकादि, सारिकादि को साथ लेकर उसके दक्षिण पार्श्वगामिनी हुई ॥ ४४ ॥ संगीत और साहित्यपूर्वा श्यामला बायें की ओर, लघुश्यामलिका उस

परितो गेयचक्रात्मरथस्याऽऽशु विनिर्ययुः । मन्त्रिण्यङ्गसमुद्भूताः श्यामलाः कोटिकोटिशः ॥
रथाश्रयाः प्रचेलुर्वै युद्धसम्भारसम्भृताः । सर्वाः षोडशवार्षिक्यस्तारुण्यश्रीनिषेविताः ॥ ४७ ॥
रक्तकौशेयवसना नवरत्नविभूषणा । कटाक्षमन्दहासाभ्यां मोहयन्त्योऽखिलं जगत् ॥ ४८ ॥
कापिशायनपानोद्यन्मदघूर्णितलोचनाः । काव्याऽऽलापरसाऽभिज्ञा गीतवाद्यविनोदिताः ॥
नर्मक्रीडापराश्चाऽतिहास्यलीलापरायणाः । मन्त्रनाथा वाहिनी सा शुशुभेऽतितरां तदा ॥ ५० ॥
तापिच्छवनमालेव विकमच्चारुमञ्जरी । अथाऽभवच्छक्तिसेनादैत्यसेनासमागमः ॥ ५१ ॥
उद्वेलयोः सागरयोरिव सङ्गमनं भुवि । अथ ध्वनद्युद्धवाद्यहुङ्काराऽऽस्फोटनिस्वनः ॥ ५२ ॥
रथघोषतुरङ्गोच्चह्लेषागम्भीरमांसलः । सेनयोरुभयोस्तत्र बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ ५३ ॥
शक्तिसङ्घमहामेघनिर्मुक्तेषुप्रवर्षणैः । दैत्यसेनामुखतटं विदीर्णं शतधाऽभवत् ॥ ५४ ॥
दैत्यसेनाभिन्नमुखद्वारेण विविशुर्द्रुतम् । दैत्यसेनाह्लदं शक्तिसेनास्रोतः समन्ततः ॥ ५५ ॥
निविश्य दैत्यसेनां ताः शक्तयो बलवत्तराः । शस्त्राऽग्निभिर्दैत्यसेनावनं चक्रुर्हि भस्मसात् ॥ ५६ ॥
केचिच्छरैः सुनिचिताः केचित्परिघप्रोथिताः । अन्ये कृपाणिना च्छिन्ननिखिलाङ्गा गताऽसवः ॥
परे चक्रविकृत्ताङ्गा परशुच्छिन्नकन्धराः । इतरे शूलसूत्रेषु प्रोता मणिगणा इव ॥ ५८ ॥
अपरे शक्तिप्रमुखैर्भिन्नमूर्धोदराऽभवन् । एवं विनाश्यमानायां सेनायां शक्तिसेनया ॥ ५९ ॥
दृष्ट्वा विशुक्रो ह्यत्यन्तं रोषाग्निज्वलितेक्षणः । रथेनाऽभ्यद्रवच्छक्तिवाहिनीं शस्त्रवर्षणैः ॥
जीमूत इव वर्षासु धाराः शरमयास्ततः । शक्तिसेनाऽपि युयुधे विशुक्रे च बलीयसी ॥ ६१ ॥

रथ के पीछे चलने लगी ॥ ४५ ॥ मन्त्रिणी के शरीर से निकली करोड़-करोड़ श्यामला शक्ति गेयचक्रात्मक रथ के चारों ओर घेर कर निकल गई ॥ ४६ ॥ युद्ध-तैयारी के साथ तैयार होकर सोलह साल की तरुणि श्रीललिता की परिचारिकाएँ उस रथ को घेर कर बाहर निकल आईं ॥ ४७ ॥ लाल रेशम वस्त्र पहनी नये रत्नों की आभूषण पहने धीरे-धीरे मुस्कराती और अपने कटाक्ष से सम्पूर्ण संसार को मोहित करती हुई ॥ ४८ ॥ कोई सोयी, तो कोई पीकर उन्मत्त लाल-लाल आँखें किये काव्यालाप रस में डूबी संगीत वाद्य से आनन्दित ॥ ४९ ॥ नर्म-क्रीड़ा में निरत हास्य-लीला में अत्यन्त परायण मन्त्रनाथा की वाहिनी अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥ ५० ॥ तमाल-वन की माला की तरह विकसित सुन्दर मञ्जरी की तरह शक्तिसेना दैत्यसेना के आमने-सामने आ गई ॥ ५१ ॥ आवाज, जुझारू बाजे की आवाज एक-दूसरे के प्रति ललकार की आवाज मिलकर धरती पर उफनते दो सागरों के टकराव की तरह लग रहे थे ॥ ५२ ॥ रथ की आवाज, घोड़ों की हिनहिंनाहट गहरे सुपुष्ट युद्धध्वनि से दोनों ओर की सेना ने मिलकर दिशाओं को बहरी बना डाला ॥ ५३ ॥ महामेघ की तरह शक्तिसंघ ने अपने बाणों से दैत्यसेना के मुखतट को चीरकर सौ खण्डों में बाँट दिया ॥ ५४ ॥ भिन्नमुख दैत्यसेना दरवाजे से शीघ्र भीतर घुस गयी। दैत्यसेना सरोवर की तरह थी, जिससे भरने के लिए चारों ओर स्रोत की तरह शक्तिसेना बह चली ॥ ५५ ॥ इन बलवत्तर शक्तियों ने दैत्यसेना में प्रवेश कर शस्त्ररूपी आग से दैत्यसेना रूपी वन को भस्मसात् कर दिया ॥ ५६ ॥ कुछ शर से विद्ध हुए, कुछ गदा से चुरे, बचे-खुचे तलवार से कट-कटकर अपनी जान गँवा बैठें ॥ ५७ ॥ कुछ चक्र की चोट से विकलांग बने, कुछ फरसे की चोट कन्धे पर झेले, बचे-खुचे त्रिशूल रूपी धागे में मणिगण की तरह चुन लिये गये ॥ ५८ ॥ कुछ के शक्ति-प्रमुख से माथे कटे तो कुछ के पेट। इस तरह शक्तिसेना से दैत्यसेना का विनाश ॥ ५९ ॥ देखकर विशुक्र अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, रोष रूपी आग उसकी आँखों में जलने लगी। शस्त्र बरसाने वाली शक्तिसेना पर रथ से उतर कर वह दौड़ पड़ा ॥ ६० ॥ जीमूत की तरह बाणवृष्टि करने लगा। शक्तिसेना भी बलवान् विशुक्र के साथ जूझने

अथ पुत्रा विशुक्रस्य पितृतुल्यपराक्रमाः । जीमूतकायो देवारिः करम्भः शिखिभाषणः ।। ६२ ।।
निविश्य शक्तिसेनाऽन्तर्जघ्नुस्ता बलवत्तराः । विशुक्रात्मजसङ्क्लिन्नां निशाम्य शक्तिवाहिनीम् ।।
चतुर्दिक्षु काल्यमानां शुक्रादश्यामलामुखाः । विशुक्रपुत्रानासेदुर्वर्षन्त्य इषुसन्ततिम् ।। ६४ ।।
तत्र जीमूतकायेन युयोध शुकश्यामला । चिरं युद्ध्वा शरैस्तत्र रथं सूत शरासनम् ।। ६५ ।।
चिच्छेद निमिषार्धेन ततः प्रकुपितोऽसुरः । जघान तीक्ष्णधारेण खड्गेन रथवाहनम् ।। ६६ ।।
तस्या रथाश्वो निहतः प्रस्खलद्भिन्नमस्तकः । तावच्छुकश्यामलिका अर्धचन्द्रेषुणा जवात् ।। ६७ ।।
आपातयच्छिरो देहात् पक्वतालफलं यथा । देवारिणा शारिकाख्या सङ्गता युद्धकर्मणि ।। ६८ ।।
च्छिन्नध्वजरथाऽश्वं तं युध्यन्तं गदया दृढम् । स्वकीयगदयाऽऽप्लुत्य जघानाऽसुरमस्तके ।। ६९ ।।
भिन्नमूर्धा निपतितो देवारिर्गतजीवनः । सङ्गीतश्यामला युद्धं करम्भेण चकार ह ।। ७० ।।
युद्ध्वा चिरं तेन सह खड्गेन शिर आच्छिनत् । साहित्यश्यामला युद्ध्वा बलिनं शिखिभाषणम् ।।
शस्त्राऽस्त्रैस्तं विनिर्जित्य प्राक्षिपद्वक्षसि द्रुतम् । त्रिशूलं तेन दलितहृदयः प्राप तद्व्यसुः ।। ७२ ।।
यावत्पुत्रा नियुध्यन्ति विशुक्रस्तावदाशु वै । छन्नरूपः श्यामलाया रथपार्ष्णि समासदत् ।। ७३ ।।
तत्र चोरवदायान्तं गदाहस्तं महाबलम् । दृष्ट्वा लघुश्यामलाख्या सन्निधानं समागतम् ।। ७४ ।।
मन्त्रेश्या रथवर्यन्तमारुरुक्षन्तमञ्जसा । जघान मूर्ध्नि तरसा खड्गेनाऽतिबलीयसा ।। ७५ ।।
खड्गप्रपाततस्तस्य मुकुटं शकलीकृतम् । विशुक्रो भ्रष्टमुकुटः क्रोधारुणितलोचनः ।। ७६ ।।
गदामादाय वेगेन हन्तुं तामभिसंययौ । तावच्छरेण दैत्यस्य गदां चिच्छेद सप्तधा ।। ७७ ।।

लगी ।। ६१ ।। पिता की तरह ही पराक्रमी विशुक्र के पुत्र जीमूतकाय, देवारि, करम्भ और शिखिभाषण थे ।। ६२ ।। शक्तिसेना के भीतर घुसकर वे बलशाली शक्तिसेना को मारने लगे। विशुक्र के पुत्र शक्तिवाहिनी को देखकर अतिखिन्न हुए ।। ६३ ।। यथावसर चारों दिशाओं से शुकादि श्यामला प्रमुख शक्तियाँ अपने बाणों की वर्षा कर विशुक्र-पुत्रों को सताने लगीं ।। ६४ ।। उनमें जीमूतकाय के साथ शुकश्यामला ने युद्ध किया। बहुत देर तक उसके साथ युद्ध करने के बाद बाणों से उसके रथ, सारथी और धनुष को ।। ६५ ।। पलक झपकते ही काट डाला। उसके बाद उस दैत्य ने कुपित होकर तेज धार वाली तलवार से उसके रथ और वाहन को काट दिया ।। ६६ ।। उसके घोड़े का मस्तक कट कर गिरा और वह मर गया। इसी बीच बड़े वेग से अर्धचन्द्र वाले बाण से ।। ६७ ।। तार के पके फल की तरह धड़ से शिर को काटकर गिरा दिया। उस देवारि से सारिका युद्ध करने लगी ।। ६८ ।। ध्वज, रथ तथा घोड़े को काटकर मजबूत गदा उठाकर युद्ध करते उस असुर के माथे पर शक्ति ने अपनी गदा उठाकर प्रहार कर दिया ।। ६९ ।। सिर पर गदा की चोट खाते ही वह दैत्य गिरा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उधर संगीतश्यामला के साथ करम्भ का युद्ध चल रहा था ।। ७० ।। बहुत देर तक उसके साथ युद्ध कर तलवार से उसकी गर्दन काट डाली। साहित्यश्यामला ने बली शिखिभाषण के साथ युद्ध कर ।। ७१ ।। शस्त्र-अस्त्रों से उसे जीतकर शीघ्र ही उसकी छाती पर त्रिशूल फेंका। त्रिशूल लगते ही वह मर गया ।। ७२ ।। जब तक विशुक्र के बेटे लड़ रहे थे, तब तक छिपकर विशुक्र श्यामला के रथ के पीछे पहुँच गया ।। ७३ ।। वहाँ चोर की तरह महाबली को हाथ में गदा उठाये समीप आते देखकर लघुश्यामला ।। ७४ ।। मन्त्रेशी के रथ पर शीघ्रता से सवार होकर उस बलवान् राक्षस के सिर पर तेज तलवार से प्रहार किया ।। ७५ ।। तलवार की चोट से उसके सिर का मुकुट टुकड़े-टुकड़े में कट कर गिर गया। मुकुट-हीन होते ही विशुक्र की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं ।। ७६ ।। हाथ में गदा उठाकर वह देवी को मारने के लिए दौड़ा। इस तरह उसे आते देखकर देवी ने बाण से उसकी गदा को साथ खण्डों में विभक्त कर दिया ।। ७७ ।।

निरायुधो विशुक्रोऽपि मुष्टिना रथवाजिनाम्। तस्या जघान तावत् सा प्राहरन्मूर्ध्नि सायकैः॥
सायकैर्विदलन्मूर्धा पपात भुवि मूर्च्छितः। ईषत्प्रज्ञस्तावदेनं ग्रहीतुं लघुश्यामला॥ ७९॥
रथादवप्लुत्य शीघ्रं बाहुभ्यां तं परामृशत्। प्रतिबुद्धस्तावदसौ मत्वा स्वस्य हि बन्धनम्॥ ८०॥
मुष्टिनाऽभ्यहनद्देवीं साऽपीषत्कश्मलं ययौ। तावत् ज्ञात्वा रथस्थानाः शक्तयो रिपुमन्तिके॥
कोटिशस्तं समुत्पेतुर्वाहिनी शक्तयोऽपि च। तावन्मत्वा शक्तिगणं दुःसहं दैत्यशेखरः॥ ८२॥
उत्प्लुत्य स्वरथं प्राप्तो दैत्यसेनामुखस्थितम्। तत्र दृष्ट्वा मृतान् पुत्रान् शोकसंविग्नमानसः॥
विलप्य किञ्चिदत्यन्तरोषारुणितलोचनः। प्रज्वलन् शक्तिसेनां तां विधमच्छरवर्षणैः॥ ८४॥
दृष्ट्वा विशुक्रं शक्तीनां सेनाप्राणाऽपहारिणम्। मन्त्रिणी सायकाऽऽसारैर्धनुर्जीमूतनिःसृतैः॥
ववर्ष नीलशैलोच्चशृङ्गं पर्जन्यवद्भृशम्। तीक्ष्णसायकधाराभिर्विशुक्रोऽत्यन्तविक्षतः॥ ८६॥
देहक्षतेभ्योऽतितरामसृग्धारां मुमोच वै। नीलाद्रिर्वृष्टिधाराभिर्गैरिकारसवत्क्षणम्॥ ८७॥
मन्त्रिण्या गाढसंविद्धो रोषात् प्रज्वलिताऽऽकृतिः। विचित्रशस्त्रशलभैराच्छादयत मन्त्रिणीम्॥
विरेजे मन्त्रिणीच्छन्ना दैत्यशस्त्रमधुव्रतैः। तमालमञ्जरीवाऽतिमकरन्दसुबृंहिता॥ ८९॥
क्षणेन दैत्यशस्त्राणि निवार्य शरवर्षणैः आकर्णपूर्णभल्लेन धनुर्ज्यामाच्छिनद्द्रुतम्॥ ९०॥
यावज्ज्यामपरां चापे निवेशयितुमीहते। तावत्तीक्ष्णपृषत्केन मुष्टिदेशे जघान तम्॥ ९१॥
गाढविद्धदैत्यमुष्टेर्दैत्यस्य धनुरापतत्। पतितं धनुरादातुं यावन्नम्रो महासुरः॥ ९२॥
तावदन्येनाऽभिहनत् पत्रिणा मूर्ध्नि मन्त्रिणी। स तावदिषुणा भिन्नमूर्धा गाढसुमूर्च्छया॥ ९३॥

निरस्त्र विशुक्र ने भी जब तक मुक्के से उसके रथ और घोड़े पर प्रहार करना चाहा तब तक देवी ने उसके सिर पर तीर चला दिया॥ ७८॥ बाण लगते ही वह बेहोश होकर धरती पर गिर गया। थोड़ा होश आते ही इसे श्यामला ने पकड़ लेना चाहा॥ ७९॥ रथ से कूदकर उसने उस दैत्य को अपनी बाँहों में जकड़ लिया। तब तक पूरे होश में वह आकर अपने को किसी बन्धन में जकड़ा महसूस किया॥ ८०॥ फिर मुक्के से देवी पर प्रहार करने लगा। मुक्के की चोट खाकर देवी भी कुछ पल के लिए कसमसायी। तब तक रथारोही शक्तियाँ भी उसके पास पहुँच गयीं॥ ८१॥ करोड़ों शक्तिवाहि वहाँ पहुँचकर उत्पात मचाने लगीं। तब तक इन शक्तियों को दुःसह मानकर विशुक्र॥ ८२॥ उछल कर अपने रथ पर जा चढ़ा और दैत्यसेना के आगे आ गया। वहाँ अपने पुत्रों के मृत शरीर को देखकर शोक से आतुर हो गया॥ ८३॥ कुछ क्षण तक वह विलाप करता रहा, फिर उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उन आँखों से आग उगलते शक्तिसेना पर बाण बरसाने लगा॥ ८४॥ शक्तिसेना का विनाश करते देखकर विशुक्र पर मन्त्रिणी धनुष से मेघ की तरह बाण बरसाने लगी॥ ८५॥ नील पर्वत की चोटी पर बरसते मेघ की तरह अपने तीखे बाणों की धारा से विशुक्र को क्षत-विक्षत कर डाला॥ ८६॥ देह के घाव से बलबलाकर खून निकल रहा था। लगता था जैसे नीलगिरि पर वर्षा की धारा से फूट कर गेरू निकल रहा हो॥ ८७॥ मन्त्रिणी से गम्भीर रूप से घायल होकर क्रोध के मारे उसकी आकृति जल उठी, विचित्र शस्त्र रूपी पतंगे से उसे ढक डाला॥ ८८॥ दैत्यराज के बाण रूपी मक्खियों से घिरी मन्त्रिणी मधुवर्षिणी तमालमंजरी की तरह शोभने लगी॥ ८९॥ पलक झपकते ही अपनी बाण रूपी वर्षा से उसे रोककर शीघ्र ही कान तक खींचकर उसके धनुष की डोरी इसने काट डाली॥ ९०॥ जब तक दूसरा धनुष वह उठाना ही चाह रहा था तब तक उसकी मुट्ठी को ही देवी ने आहत कर दिया॥ ९१॥ गहरी चोट लगने के कारण दैत्य के हाथ से छूटकर चाप नीचे आ गिरा। गिरे धनुष को उठाने के लिए वह दैत्य जैसे ही झुका॥ ९२॥ तक तब मन्त्रिणी ने दूसरे बाण से उसके माथे

अपतत् स्वरथोपस्थे वज्राहत इवाऽद्रिराट्। अथ क्षणेन मन्त्रिण्या नाशितं दैत्यवाहनम्॥ ९४॥
सारथिश्छत्रमुकुटे शस्त्रसङ्घं शरैः पृथक्। तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो ददर्शाऽऽहवसाधनम्॥ ९५॥
साकल्येन विनष्टं तत् क्रुद्ध उत्प्लुत्य तां रुषा। शीर्णं रथाङ्गमादाय निहन्तुमुपसंययौ॥ ९६॥
तावद्दक्षभुजेऽत्यन्तवेगाच्छरमपातयत्। शरेणाऽभिहताद्धस्ताद्रथाङ्गं प्रापतत् क्षितौ॥ ९७॥
ततो मुष्टिं समुद्यम्य रथ आप्लुत्य सत्वरम्। मन्त्रिणीहस्तगं चापं भङ्क्तुं यावत् समाच्छिनत्॥
तावत्तीक्ष्णाऽसिना कायाच्छिरस्तस्य निपातयत्। दृष्ट्वा विशुक्रं निहतं विद्रुता दैत्यवाहिनी॥
परिशिष्टाऽतिवित्रस्ताः शस्त्राण्युत्सृज्य सर्वतः। जयशब्दं शक्तिगणाश्चक्रुर्देवमुखा अपि॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुराररहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये विशुक्रवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६१८४॥



को बिंध दिया और बाण बिंधते ही पूरी चेतना खो दिया॥ ९३॥ वह अपने ही रथ पर वज्राहत पर्वत की तरह गिरा, मौका मिलते ही क्षणभर में मन्त्रिणी ने दैत्यवाहन को विनष्ट कर दिया॥ ९४॥ सारथी, छत्र, मुकुट और हथियारों के जखीरे छितरा गये थे। होश आने पर उसने अपने युद्ध की सामग्रियों की इस दुर्दशा को देखा॥ ९५॥ एक साथ सबको विनष्ट देख क्रोध से उस देवी पर झपटा। टूटे रथ का पहिया उठाकर वह देवी को मारने दौड़ा॥ ९६॥ तब तक देवी ने बाण से उसके दाहिने हाथ पर प्रहार कर दिया। बाण की चोट लगते ही उसके हाथ से रथ का चक्का नीचे गिर गया॥ ९७॥ तब तक वह मुक्का बाँधकर देवी को मारने के लिए उनके रथ पर कूद गया और मन्त्रिणी के हाथ से धनुष छीनकर उसे तोड़ना चाहा॥ ९८॥ तब तक देवी ने तलवार उठाकर उसके शिर और धड़ को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। उसे मरते देख दैत्यसेना भाग खड़ी हुई॥ ९९॥ बचे-खुचे सैनिक हथियार फेंककर भाग गये। शक्तिसेना के साथ देवगण जय-जयकार करने लगे॥ १००॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत विशुक्र-वध नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६१८४॥



अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

विषङ्गेनाऽपि वाराही सङ्गता समरे यदा । तदा दैत्यशक्तिचम्वोरभवद्भैरवो रणः ।। १ ।।
शक्तीनां खड्गचक्राऽसिपरिघप्रासतोमरैः । बटुकानां त्रिशूलाद्यैर्दैत्या भूयोऽभिविक्षताः ।। २ ।।
तिलशः छिन्नवर्ष्माणि जहुः प्राणान् रणाऽजिरे । दृष्ट्वा दैत्यचमूं शक्तिगणैः प्रायो विनाशिताम् ।।
क्रुद्धाऽभिदुद्रुवुः शक्तिचमूं पर्वतसन्निभाः । विषङ्गपुत्राः प्रोद्दण्डविक्रमा वीर्यवत्तराः ।। ४ ।।
करालवक्त्रो विशिखो विभाण्डो विकटेक्षणः. । इन्द्रशत्रुः सुरारातिर्महाकुक्षिर्मदोद्धतः ।। ५ ।।
एतेऽष्टौ भीमबलिनो शक्तीर्जघ्नुः समन्ततः । तैर्हन्यमानां तां शक्तिवाहिनीमभिवीक्ष्य तु ।। ६ ।।
अभ्याययुस्तान्नियोद्धुं जम्भिनी स्तम्भिनी तथा । अन्धिनी मोहिनी चैव भैरवः कालकर्षिणी ।।
स्वप्नेश्वरी च बटुक इत्यष्टौ सुविभीषणाः । करालवक्त्रेण युधि जम्भिनी सङ्गताऽभवत् ।। ८ ।।
युद्ध्वा चिरं तया साकं शस्त्रास्त्रैर्दैत्यपुङ्गवः । गदयाऽभिजघानाऽऽशु वराहं शक्तिवाहनम् ।।
ताडितो जम्भिनीवाहो शूकरो भिन्नमस्तकः । ईषत् पपात पुरतो जानुभ्यामवनिङ्गतः ।। १० ।।
तावत्क्रुद्धा जम्भिनी च खड्गेन शिर आहरत् । विशिखः स्तम्भिनीं प्राप्य युयोधाऽतिबली दृढम् ।।
स्तम्भिनी हरिणाऽऽरूढा विशिखैर्विशिखं त्रिभिः । जघान तैर्मूर्ध्नि लग्नैर्विशिखोऽतिव्यराजत ।।
त्रिशृङ्ग इव दैत्येन्द्रः सुस्राव बहुशोणितम् । सोऽपि क्रुद्धोऽतिवेगेन तीक्ष्णधारेण कर्णिना ।। १३ ।।
धनुर्ज्यामाच्छिनद्भूयो विकीर्य निशितैः शरैः । तावत्क्रुद्धा स्तम्भिनी च गार्ध्रपत्रेण तेजिना ।।

*** विमला ***

विषंग के साथ समर में जब वाराही युद्ध कर रही थी, उसी समय दैत्यसेना और शक्तिसेना के बीच भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हुआ।। १।। शक्ति के कत्ते, चक्र, तलवार, गदा, प्रास और लौह दण्ड से तथा बटुकों के त्रिशूल आदि हथियारों से दैत्यगण पुनः क्षत-विक्षत होने लगे।। २।। युद्ध के मैदान में तिल-तिल देह कटाकर प्राण छोड़ते दैत्यसेना को देखकर जिसे प्रायः शक्तिसेना विनाश कर चुकी थी।। ३।। विषंग के बेटे उत्कृष्ट पराक्रमी पर्वत के समान प्रोद्दण्ड और विक्रम शक्तिसेना पर क्रुद्ध होकर दौड़े।।४।। करालवक्त्र, विशिख, विभाण्ड, विकटेक्षण, इन्द्रशत्रु, सुराराति, महाकुक्षि और मदोद्धत।। ५ ।।—ये आठ महाबलवान् बेटे चारों ओर से शक्तिसेना को मारने लगे। उनसे मारी जाती शक्तिसेना को देखकर।। ६ ।। उनसे लड़ने के लिए जम्भिनी और स्तम्भिनी आ गईं। अन्धिनी, मोहिनी, भैरव और कालकर्षिणी।। ७।। स्वप्नेश्वरी और बटुक—ये आठ अत्यन्त भयंकर थे। उधर करालवक्त्र के साथ जम्भिनी युद्ध कर रही थी।।८।। बहुत देर तक शस्त्रास्त्रों से दैत्यपुंगव ने उनके साथ युद्ध कर शक्ति के वाहन सूअर को गदा से आघात किया।। ९।। जम्भिनी का वाहन वह सूअर गदा की चोट माथे पर खाकर कुछ ही दूर आगे घुटने टेककर धरती पर गिरा।। १०।। तब तक क्रुद्ध जम्भिनी ने तलवार से उसका सिर काट डाला। इधर विशिख जो अत्यन्त बली और सुदृढ़ था, स्तम्भिनी के साथ युद्ध करने लगा।। ११।। हिरण पर सवार स्तम्भिनी ने तीन तेज बाणों से उसके माथे पर प्रहार किया। तीनों बाण उसके माथे में जा चुभे।। १२।। वह दैत्यराज तीन चोटी वाले पर्वत की तरह रक्त की धारा चुलाने लगा। वह भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अत्यन्त वेग के साथ फलकदार तीक्ष्ण बाण से।। १३।। उसके धनुष की डोरी को काट डाला। अपने तेज बाण को फैलाकर तब तक क्रुद्धा स्तम्भिनी ने अत्यन्त

तद्वाहनोष्ट्रमनयच्छित्त्वाऽन्तकपुरं प्रति । अथ तस्य क्षणेनैव निशितैर्विशिखैस्त्रिभिः ॥ १५ ॥
निषङ्गं मुकुटं चापं चिच्छेद युगपन्मृधि । स छिन्नधन्वाऽतिरुषा त्रिशूलमतिभास्वरम् ॥ १६ ॥
स्तम्भिनीं प्रतिचिक्षेप तावत् सा लघुविक्रमा । छित्त्वा त्रिशूलं भल्लेन शिरो दैत्यस्य पातयत् ॥
अन्धिन्या युयुधे तत्र विभण्डो बलगर्वितः । शस्त्रैरस्त्रैरनेकैश्च कृतप्रतिकृतैररम् ॥ १८ ॥
अन्धिनी महिषाऽऽरूढा विभण्डः खरवाहनः । चिरं युद्ध्वा तेन तत्र कर्णान्ताऽऽकृष्टपत्रिणा ॥
जघान दैत्यमुरसि तथा विद्धो विभण्डकः । पपात मूर्च्छितो गाढं छिन्नपक्ष इवाऽद्रिराट् ॥ २० ॥
अथ तद्वाहनः खरो पर्वताभोऽतिधूसरः । क्वाशब्दं भीषणं कृत्वा समुन्नम्य च बालधिम् ॥ २१ ॥
निविष्टः शक्तिसेनासु संस्तब्धाङ्गरुहो बली । काश्चित्प्रत्यक्पादघातैर्दशनैश्चाऽवधूननैः ॥ २२ ॥
अन्याः स्वगतिवेगेन खरः शक्तीर्निपातयत् । एवं शक्तीर्विनिघ्नन्तं खरं दृष्ट्वाऽन्धिनी तदा ॥ २३ ॥
शरेणाऽऽकर्णपूर्णेन जघानाऽतिरुषाऽन्विता । स विद्धस्तीक्ष्णबाणेन मूर्च्छितः प्रापतद्भुवि ॥
तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो विभण्डोऽत्यन्तरोषितः । वेगेन गदया तस्या वाहनं ताडयद्बली ॥ २५ ॥
अन्धिनीवाहमहिषस्ताडितो गदया भृशम् । विद्रुत्य मन्युज्वलितस्तं शृङ्गाभ्यां समाक्षिपत् ॥
विभाण्डो महिषाऽऽक्षिप्त आकाशं प्राप्य वेगतः । परतो योजनाद्भूमौ पपात सुविमूर्च्छितः ॥
तावदभ्याययौ तस्य वराहो रासभशेखरः । मुञ्चन् सुशीघ्रं क्वाशब्दं सघर्घरमहारवम् ॥ २८ ॥
आगत्य महिषं भूयः परावृत्य सुवेगतः । पाश्चात्यपादघातेन सन्ताड्य बलवत्तरम् ॥ २९ ॥
ददंश तं पुनः कण्ठे तावत् क्रुद्धः स सैरिभः । शृङ्गाभ्यां दारयत् कुक्षिं भूमावास्फाल्य वेगतः ॥

तेज गार्ध्रपत्र से॥ १४॥ उसके वाहन ऊँट को मारकर यमलोक भेज दिया। उसी क्षण तीव्र तीन बाणों से उसके॥ १५॥ तरकश, मुकुट और धनुष को एक साथ काट डाला। धनुष कटते ही अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त चमचमाता त्रिशूल लेकर॥ १६॥ स्तम्भिनी पर फेंका। तब तक वह थोड़ा खिसक कर बड़ी तेजी से उसके त्रिशूल को काटकर दैत्य के सिर पर भाले से प्रहार कर दिया॥ १७॥ बलगर्वित विभण्ड अन्धिनी के साथ युद्ध करने लगा। अनेक तरह के शस्त्रास्त्रों से तत्परतापूर्वक घात-प्रतिघात करने लगे॥ १८॥ अन्धिनी भैंसे पर सवार थी, विभण्ड गदहे पर सवार था। बहुत देर तक युद्ध करने के बाद उसने कान तक फलकदार बाण खींचकर॥ १९॥ विभण्ड की छाती बिंध दिया। बाण लगते ही परकटे पर्वत की तरह गहरा बेहोश होकर वह धरती पर आ गिरा॥ २०॥ अत्यन्त धूसर पहाड़ की तरह उसका वाहन गदहा—'कहाँ' यह भीषण आवाज करते हुए ऊपर की ओर रोएँदार पूँछ को उठाकर॥ २१॥ रोंगटें खड़ा कर वह बलवान् जा घुसा। कुछ को अगले पैरों से दुलत्ती झाड़कर तो कुछ को दाँतों से काट लिया॥ २२॥ कुछ शक्तियों को गदहे ने अपने वेग से गिरा दिया। इस तरह गदहे से शक्तिसेना को विनष्ट होते देखकर अन्धिनी ने॥ २३॥ अत्यन्त कुपित होकर कान तक खींचकर बाण से मारा। तीक्ष्ण बाण से विद्ध होकर वह गदहा मूर्च्छित होकर धरती पर गिरा॥ २४॥ तब तक होश में आकर विभण्ड ने अत्यन्त वेग से गदा उठाकर उसके वाहन भैंसे पर प्रहार कर दिया॥ २५॥ गदा की मजबूत चोट खाकर अन्धिनी का वाहन भैंसा क्रोध से तिलमिला कर अपने सींगों से उस पर प्रहार कर दिया॥ २६॥ भैंसे के सींग से चोट खाकर विभण्ड बड़े वेग से आकाश में उड़ा। एक योजन ऊपर उठकर धरती पर गिरा और गहरा बेहोश हो गया॥ २७॥ तब तक उसका सूअर भी वहाँ आ पहुँचा, घों-घों की आवाज करते और रेंकते गदहा भी॥ २८॥ वेग के साथ पीछे लौटकर भैंसे के पास पहुँच कर पिछली दुलत्ती मारकर उस बलवान् को पछाड़ दिया॥ २९॥ तब तक अत्यन्त क्रुद्ध भैंसे ने उसके कण्ठ को काट लिया और फिर सींगों से उसके पेट को चीर कर बड़े वेग से धरती

निर्गताऽन्त्रः खरो मृत्युं प्राप निर्याततितेक्षणः । विमूर्च्छस्तावदभ्येत्य विभाण्डोऽभिहनत् पदा ॥
महिषं तावदिषुणाऽन्धिनी दैत्यस्य मस्तकम् । अपाहरदतिक्रोधात् कृत्तमूर्द्धा ममार सः ॥ ३२ ॥
युयोध मोहिनी दैत्यं शस्त्रास्त्रैर्विकटेक्षणम् । मोहिनी गरुडारूढा गृध्रस्थो विकटेक्षणः ॥ ३३ ॥
सुपर्णगृध्रयोर्भीममासीद्युद्धं नभोऽङ्गणे । सपक्षयोः पर्वतयोरिवाऽत्यन्तविचित्रितम् ॥ ३४ ॥
तदा सुपर्णपक्षाभ्यां प्रोथितो गृध्रशेखरः । नखैस्तुण्डैर्दारिताङ्गो ममार पतितोऽवनौ ॥ ३५ ॥
विकटाक्षो हते वाहे क्रुद्धो युद्ध्वा चिरं तया । मोहिनीचक्रसंच्छिन्नगलो मृत्युमुपागतः ॥ ३६ ॥
इन्द्रशत्रुः सर्पसंस्थो भैरवेणाऽभिसङ्गतः । स्ववाहेनाऽतिभीमेन युयोधाऽत्यन्तसाहसी ॥ ३७ ॥
भैरवः कालमेघाभः स्वसमाकारभैरवैः । कोटिसङ्ख्यागणयुतैरष्टभिः सेवितोऽनिशम् ॥ ३८ ॥
सर्वे त्रिशूलदण्डाढ्यास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः । कालमेघनिभाः सर्पभूषणाः कृत्तिवाससः ॥ ३९ ॥
इन्द्रशत्रोश्चमूं भीमां दशाक्षौहिणीसम्मिताम् । निविश्य ते निमेषेण निःशेषाश्चक्रुरोजसा ॥ ४० ॥
केचिच्छूलेषु सम्प्रोताः केचिद्दण्डैर्विदारिताः । केचिन्नखैः पाटिताङ्गाः केचिन्मुष्टिभिराहताः ॥
दधुर्दैत्याऽन्त्रमालां ते भैरवाणां गणास्तदा । एवं दृष्ट्वा प्रनष्टां स्वामिन्द्रशत्रुश्चमूं रुषा ॥ ४२ ॥
गदया भैरवगणं मर्दयामास सर्वतः । एवं गणानर्द्यमानान् वीक्ष्य दैत्येन संयुगे ॥ ४३ ॥
मन्थानाद्यपराह्वाना असिताङ्गादिभैरवाः । इन्द्रशत्रुं पर्वताभं युयुधुः सर्पवाहनम् ॥ ४४ ॥
तान् योधयामास दैत्यः सर्वानेको रणाऽजिरे । वज्रसंहननं तस्य शूलैर्दण्डप्रपातनैः ॥ ४५ ॥

पर उसे पटक दिया॥ ३०॥ पेट फटते ही उसकी अँतड़ियाँ बाहर निकल आयीं और वह गदहा तड़प कर दम तोड़ दिया तथा बेहोश भैंसे के पास पहुँच कर उसे पैर से मारा॥ ३१॥ तब तक अतिक्रुद्ध होकर अन्धिनी ने बाण से दैत्य के माथे पर प्रहार किया। बाण लगते ही वहीं वह ढेर हो गया॥ ३२॥ गरुड़ पर मोहिनी और गिद्ध पर विकटेक्षण सवार होकर एक-दूसरे के साथ अनेक शस्त्रास्त्रों से युद्ध करने लगे॥ ३३॥ आकाश में पंखदार दो पहाड़ों की टकराव की तरह अत्यन्त विचित्र और भयावह युद्ध गरुड़ और गिद्ध के साथ होने लगा॥ ३४॥ तब गिद्धराज गरुड़ की पाँखों का सामना करते उसकी चोंच और चंगुल से घायल होकर धरती पर गिरा और मर गया॥ ३५॥ वाहन के मारे जाने पर विकटाक्ष अत्यन्त क्रुद्ध होकर बहुत देर तक देवी के साथ जूझता रहा और अन्त में वह मोहिनी के चक्र से गर्दन कटा मौत के मुँह में चला गया॥ ३६॥ इन्द्रशत्रु साँप पर सवार होकर भैरव के साथ जूझ रहा था। अपने भयंकर वाहन पर सवार होकर वह अत्यन्त साहसी युद्ध कर रहा था॥ ३७॥ अपनी ही तरह करोड़ों भैरवों से वे आठ भैरव दिन-रात सेवित होकर कालमेघ के सदृश थे॥ ३८॥ ये सभी भैरव चमड़े का वस्त्र पहने, साँप का आभूषण पहने, माथे पर चन्द्रमा विराजित, तीन नेत्र, त्रिशूल और दण्ड धारण किये शिव की तरह शोभ रहे थे॥ ३९॥ इन्द्रशत्रु की सेना अत्यन्त भयंकर थी, उसमें दस अक्षौहिणी सेना थी। उस चमू में प्रवेश कर ये भैरव पलभर में उसे समाप्त कर डाला॥ ४०॥ कुछ को त्रिशूल से मारा, कुछ को डण्डे से पीटकर खत्म किया, कुछ को अपने नाखूनों से चीरकर तथा कुछ को मुक्के से मारकर खत्म कर दिया॥ ४१॥ दैत्यों की अँतड़ियों की माला बनाकर भैरव-गण अपने गले में लटका लिये। इस तरह इन्द्रशत्रु ने सैन्य-समूह को विनष्ट होते देखकर अत्यन्त क्रोध से॥ ४२॥ गदा उठाकर भैरवों को घूरने लगा। दैत्य के साथ युद्ध करते अपने गणों को इस तरह पीटते देखकर॥ ४३॥ मन्थान और असितांग भैरव पर्वताकार सर्पवाहन इन्द्रशत्रु से जूझने लगे॥ ४४॥ इन सब भैरवों के साथ रणाङ्गण में अकेला वह दैत्य वज्रप्रहार, शूल और दण्ड की चोटों से बिना घबराये जूझ

अक्षतं सर्वथा यद्वद्गण्डशैलः फलैर्हतः । तं दृष्ट्वा विरुजं दैत्यं भैरवाणां भयङ्करम् ॥ ४६ ॥
युयुधे तेन समरे भैरवाणामधीश्वरः । युद्ध्वा चिरमुत्पतन्तं गदया हन्तुमम्बरम् ॥ ४७ ॥
आविध्य हृदि शूलेन भुवि तं व्यसुमाक्षिपत् । युद्ध्वा सुराऽरातिरपि कालकर्षिणिकाऽऽह्वयाम् ॥
काकसंस्थो लुलावाऽधिरूढया सुचिरं बली । तच्छक्तिगणनिःशेषीकृतदैत्यमहागणः ॥ ४९ ॥
तदङ्कुशप्रहारेण भिन्नमूर्धा ममार ह । स्वप्नेश्या युयुधे दैत्यो महाकुक्षिर्वृकाश्रयः ॥ ५० ॥
रथाधिरूढया सेना नाशिता शक्तिसङ्घकैः । चिरं योधयतस्तस्य महाकुक्षेर्बलीयसः ॥ ५१ ॥
विदार्य कुक्षिं खड्गेन नाशयद्दैत्यपुङ्गवम् । मदोद्धतोऽपि बटुकभैरवेण सुसङ्गतः ॥ ५२ ॥
बटुकैः स्वसमाकारैर्दशकोटिमितैस्तथा । महाकपालदण्डाढ्यैः सर्पभूषणसंयुतैः ॥ ५३ ॥
पञ्चहायनकैर्मत्तैर्दिग्वस्त्रैररुणेक्षणैः । तमस्तोमनिभैश्चन्द्रचूडैर्युक्तेन सर्वतः ॥ ५४ ॥
दशाक्षौहिणिकायुक्तो युयोधाऽतितरां बली । बटुकानां गणाः क्रुद्धा निविश्याऽसुरवाहिनीम् ॥
दण्डैर्निहत्य तरसा नाशं निन्युर्यथाऽऽशु नः । अथ क्रुद्धं दैत्यपतिं निपतन्तं गदाधरम् ॥ ५६ ॥
बटुकेशो जघानोच्चैर्मूर्ध्नि दण्डेन लीलया । दण्डाऽऽहत्या दलन्मूर्धा वमन् रक्तं सफेनिलम् ॥
पतित्वाऽऽशु विनिश्चेष्टो ममाराऽसुरशेखरः । एवं विषङ्गः पुत्रेषु नष्टेष्वत्यन्तदुःखितः ॥ ५८ ॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं विंशत्यक्षौहिणीयुतः । निपपातैकपातेन प्रलयाऽनिलवज्जवात् ॥ ५९ ॥
किरिचक्रोपरि तदा ध्वनद्वादित्रनिस्वनः । शस्त्रधारां विमुञ्चन् वै कुर्वन् सतिमिरा दिशः ॥ ६० ॥
जलद्वह्निमहाकूटे शलभानां गणा इव । अथ जम्भिनीमुख्याभिर्नाशिता क्षणमात्रतः ॥ ६१ ॥

रहा था ॥ ४५ ॥ फल गिरने से जैसे गण्डशैल सर्वथा अक्षत रहता है, उसी तरह भैरवों के लिए इस भयंकर दैत्य को विरुज देखकर ॥ ४६ ॥ भैरवों के अधीश्वर समर में उसके साथ युद्ध करने लगे। बहुत देर तक युद्ध करने के बाद आकाश में उछलते उस पर गदा से आघात किया ॥ ४७ ॥ त्रिशूल से उसके हृदय में आघात कर उसे मार डाला। इधर इन्द्रशत्रु भी कालकर्षिणिका के साथ युद्ध कर ॥ ४८ ॥ बहुत देर तक उस बलवान् काकपृष्ठ पर सवार धरती पर इधर-उधर भटकते बलवान् दैत्यों को शक्तिगण कुचल दिये ॥ ४९ ॥ फिर अंकुश के प्रहार से वह दैत्य गर्दन कटाकर मर गया। गीदड़ पर सवार महाकुक्षि दैत्य ने स्वप्नेशी के साथ युद्ध किया ॥ ५० ॥ बलवान् महाकुक्षि, जो रथारूढ़ शक्तिसेना के साथ युद्ध कर उन्हें विनष्ट कर रहा था, बहुत देर तक युद्ध करता रहा ॥ ५१ ॥ मदोद्धत बटुकभैरव के साथ मिलकर महादेवी ने अपनी तलवार से उसका पेट चीरकर उसे मार डाला ॥ ५२ ॥ दस करोड़ अपनी ही तरह बटुकों के साथ सर्प का जिन्हें आभूषण था तथा महाकपाल और दण्ड जिनके हाथ में था ॥ ५३ ॥ पाँच साल की उम्र के ये भैरव नंग-धड़ंग और लाल-लाल आँखों वाले, सघन अन्धकार की तरह काले, सिर पर चन्द्रमा विराजित सब ओर फैल गये ॥ ५४ ॥ दस अक्षौहिणी सेना के साथ वह महाबली भयंकर युद्ध कर रहा था। क्रुद्ध बटुकगण ने असुरवाहिनी में प्रवेश कर ॥ ५५ ॥ दण्ड से पीटकर शीघ्र उन्हें विनष्ट कर डाला। हाथ में गदा उठाये गिरते उस क्रुद्ध दैत्यपति को ॥ ५६ ॥ बड़ी आसानी से दण्ड उठाकर बटुकेश ने माथे पर प्रहार किया। दण्ड की चोट से उसका सिर फट गया और फेनिल लहू का वमन करते हुए ॥ ५७ ॥ शीघ्र गिरा और अचेत होकर वह असुरशेखर मर गया। इस तरह अपने बेटों को विनष्ट होते देख विषङ्ग अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ५८ ॥ क्रोध से जलते हुए बीस अक्षौहिणी तीव्र सेना को लेकर प्रलयकालीन अग्नि की तरह वेग के साथ रणाङ्गण में कूद पड़ा ॥ ५९ ॥ किरिचक्र पर जुझारू बाजे बजाते शस्त्रधारा छोड़ते दिशाओं को अन्धकाराच्छन्न कर दिया ॥ ६० ॥ जलते महापर्वत पर फतिंगे की तरह उन राक्षसों को जम्भिनी प्रमुख ने जिन्दा जला डाला ॥ ६१ ॥ विषंग की सेना देवी

विषङ्गसैन्यं शस्त्राग्निज्वालाभिः शलभानिव। केचित्त्रिशूलस्फुटितहृदया जीवितं जहुः ॥ ६२॥
परे दण्डविकीर्णाङ्गा अन्ये परिघप्रोथिताः। अपरे सायकैश्छिन्ना ततोऽन्ये मुष्टिदारिताः ॥ ६३॥
खड्गच्छिन्नाङ्घ्रिबाहूरुकन्धराद्या अपीतरे। केचिच्छस्त्रौघसम्पातशकलीकृतदेहकाः ॥ ६४॥
एवं विनष्टे सैन्ये स्वे विषङ्गः क्रोधमूर्च्छितः। निहत्य गदया शक्तिसेनां भित्त्वा ह्यशेषतः ॥ ६५॥
दण्डराज्ञीरथवहं महिषञ्च मृगाधिपौ। गदयैव हि सन्ताड्य रथराजं समारुहत्॥ ६६॥
आरोहन्तं रथं वेगाद्विषङ्गं वीक्ष्य सर्वतः। शक्तिसेनासु समभूद्धाहाऽऽकारमहाध्वनिः ॥ ६७॥
रथपर्वस्थिताः शक्तीरपि सम्मर्द्य वेगतः। चतुर्थपर्वाऽन्तरालं प्राविशत् सत्वरं बली ॥ ६८॥
दण्डराज्यपि तं दृष्ट्वा दैत्यमायान्तमन्तिकम्। अवरुह्य युयोधोच्चैर्मुसलेन स्वपर्वतः ॥ ६९॥
तत्राऽभवन्महायुद्धं दण्डिनीदैत्यराजयोः। शस्त्रैर्विचित्रैरस्त्रैश्च सर्वलोकभयङ्करम्॥ ७०॥
ज्ञात्वाऽजेयामस्त्रशस्त्रैर्दण्डिनीं दैत्यपुङ्गवः। मायां प्रादुश्चकारोच्चैः सर्वलोकभयावहम्॥ ७१॥
अन्धकारं पांशुवर्षमस्मवर्षं महारवम्। अग्निवर्षं वज्रवर्षं रक्ताऽमेध्यादिवर्षणम्॥ ७२॥
मुण्डवृष्टिं महाभीमामथ दैत्यमहाचमूम्। सहस्रपादबाह्वस्यमात्मानं शतधाऽपि च॥ ७३॥
तादृश्या मायया तस्य भीतास्ताः सर्वशक्तयः। भीताः शक्तीः समालोक्य दण्डिनी शरवृष्टिभिः ॥
व्यनाशयन्मायिकांस्तानथ भूयोऽपि दैत्यराट्। मायां ससर्ज महतीं ददृशुः सर्वशक्तयः ॥ ७५॥
चक्रराजरथं तत्र समायान्तं द्रुतं तथा। स्वयं वाहान्निहत्याऽऽशु रथं छित्त्वाऽप्यनेकधा॥ ७६॥
जवेन देवीं ललितां केशपाशे परामृशत्। चुक्रुशुर्मायया तस्य हा हेत्युच्चैस्तु शक्तयः ॥ ७७॥

की शस्त्राग्नि की ज्वाला में फतिंगे की तरह जलकर मरने लगी। कुछ की छाती त्रिशूल से फाड़कर उन्हें मार दिया गया॥ ६२॥ कुछ दण्डे की चोट से थुरा गये। कुछ गदाघात से मरे, कुछ बाण से कटे और कुछ मुक्के से मारे गये॥ ६३॥ तलवार से किन्हीं के बाँह, पैर, जंघा और कन्धे कटे, कुछ की देह शस्त्रौघ-सम्पात से टुकड़े-टुकड़े में कट गई॥ ६४॥ अपनी सेना को इस तरह विनष्ट होते देख विषंग क्रोध से मूर्च्छित होकर गदा से शक्तिसेना को चुन-चुनकर मारते हुए॥ ६५॥ गदा से ही दण्डराज्ञी के रथ को खींचने वाले सिंह और भैंसे को पीट कर रथराज पर ही सवार हो गया॥ ६६॥ रथ पर वेग के साथ विषङ्ग को चढ़ते देखकर शक्तिसेना में सर्वत्र हा-हाकार मच गया॥ ६७॥ रथपर्व में बैठी शक्ति को भी बड़ी तेजी से मसल कर वह बली चौथे पर्व के भीतर घुस गया॥ ६८॥ इधर दण्डराज्ञी ने भी उस दैत्य को अपने आप आते देखकर अपने विशाल मूसल से रोककर युद्ध करने लगी॥ ६९॥ सर्वलोकभयंकर विचित्र अस्त्र-शस्त्रों से दण्डिनी और दैत्यराज का महायुद्ध हुआ॥ ७०॥ दैत्यराज को जब यह बोध हो गया कि अस्त्र-शस्त्र से इस शक्ति को जीता नहीं जा सकता, तब सभी लोक को दहला देने वाली माया का सृजन किया॥ ७१॥ अन्धकार, ओले, पत्थर की वर्षा से घोर आवाज होने लगी, कहीं आग बरसती तो कहीं वज्र बरसता। लहू, मांस और हड्डी की वर्षा शुरू हो गई॥ ७२॥ कहीं मुण्ड बरसे, कहीं महाभीमा दैत्यसेना हजारों पैर, हाथ और अपने आपको को सौ टुकड़ों में बाँटकर॥ ७३॥ ऐसी माया देखकर सारी शक्तियाँ डर गयीं। अपनी डरी-सहमी शक्तियों को देखकर बाणवृष्टि से दण्डिनी ने॥ ७४॥ उस माया को विनष्ट कर दिया। दैत्यराज के द्वारा फिर भी माया से सृजित दूसरी वाहिनी को देखकर सारी शक्तियाँ॥ ७५॥ चक्रराज रथ पर उसे आते देखकर अपने वाहनों को मारकर रथ को सौ टुकड़े कर शीघ्रता के साथ ललिता के जूड़े को पकड़ना चाहा। यह उसकी माया थी, यह देखकर शक्तिसेना हा-हाकार कर उठी॥ ७६-७७॥ तब तक रथनायक श्रीभैरव

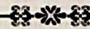
तावत् श्रीभैरवो देवीं बभाषे रथनायकः। अलं दैत्येषु ते देवि लीलया भीतिदानया॥ ७८॥
पश्य शक्तीर्भयाऽऽक्रान्ताः शोचन्तीः सर्वतः शिवे। निर्मायाऽस्त्रेण दैतेयं विमायं नाशय द्रुतम्॥
सन्ध्या समभ्येति पुरस्तस्यां माया दुरत्यया। रथनेतुर्वचः श्रुत्वा मत्वा युक्तश्च दण्डिनी॥ ८०॥
निर्मायाऽस्त्रं समुत्सृज्य मायां तस्य व्यनाशयत्। वायुनेव च नीहारो नष्टा माया च सर्वतः॥
तदा गदाधरो भूयो ददृशे सम्मुखागतम्। दृष्ट्वैव तं दण्डिनी सा क्रुद्धा खड्गेन तच्छिरः॥ ८२॥
चकर्त निमिषार्धेन वज्रेण त्वाष्ट्रकं यथा। एवं तस्मिन् विनिहते विषङ्गे भीमविक्रमे॥ ८३॥
देवदुन्दुभयो नेदुरपतत्पुष्पवर्षणम्। दिशो वितिमिरा जाताः सुप्रभश्च दिवाकरः॥ ८४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिता-
माहात्म्ये विषङ्गवधो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६२६८॥



ने देवी से कहा—यह माया से डरा है, हे देवि! इन दैत्यों से डरना बेकार है॥ ७८॥ देखिए, आपकी शक्तियाँ माया से आक्रान्त हैं। हे शिवे! ये सोच में पड़ी हैं, आप अपने अस्त्रों का स्वयं निर्माण कर पहले इसकी माया विनष्ट कर इसका विनाश कर दीजिए॥ ७९॥ शाम ढल रही है, रात होते इसकी माया को समाप्त करना कठिन होगा। रथनेता की बातों को युक्तिसंगत मानकर दण्डिनी ने॥ ८०॥ अपने अस्त्रों का सृजन कर उसकी माया को विनष्ट कर दिया। जैसे हवा कुहासे को विनष्ट कर देती है उसी तरह पलक झपकते उसकी सारी माया विनष्ट हो गई॥ ८१॥ माया हटते ही देवी ने देखा—गदा उठाये वह असुर सामने से आ रहा था। उसे इस तरह आते देखकर क्रुद्ध दण्डिनी ने तलवार उठाकर उसका सिर॥ ८२॥ काटकर आधे पल में वज्र से जैसे पर्वत की पाँखें काटी जाती हैं, उसी तरह अतिपराक्रमी विषङ्ग के मरते ही॥ ८३॥ देवता नगाड़े बजाने लगे, इन पर फूल बरसाने लगे, दिशाएँ अन्धकारविहीन हुईं और सूर्य का प्रकाश फैल गया॥ ८४॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुररहस्य-माहात्म्य खण्ड में ललितामाहात्म्य के अन्तर्गत विषंग-वध नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६२६८॥



अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

एवं विषङ्गे निहते जयशब्दो महानभूत्। मुदिताः शक्तयः सर्वास्तुष्टुवुर्दण्डनायिकाम्॥ १॥
भ्रातरौ सपरीवारौ श्रुत्वा युधि निपातितौ। शोककातरतां प्राप मोहेनेषन्महासुरः॥ २॥
विमृश्याऽथ शुचं हित्वा स्वमात्मानं हसन्निव। अहो मां किं वदामीह शोचन्तं मुक्तभावतः॥
यदर्थितं जगन्मात्रा चिरं तन्मे प्रपूरितम्। एवं सा पूरयेच्छेषमाशु नास्त्यत्र संशयः॥ ४॥
तद्व्रजामि शेषगणैः श्रीमातुर्दृष्टिगोचरम्। विलम्बेन ममाऽत्राऽलं श्रेयो विघ्नैर्हि सङ्कुलम्॥
अहो लोके सर्वथैव एकान्तेनाऽभियाचितम्। दिशत्येव पराम्बा सा भावरूपा हि कामधुक्॥
एवं स्वान्तःसमासीनां वाञ्छाऽधिकफलप्रदाम्। परमानन्दजननीं हित्वा दैवहतो जनः॥ ७॥
दुःखसाराऽल्पविषयप्रेप्सया भीमरूपया। नीयते व्यर्थमनिशं मृत्योर्भक्ष्योपसेकताम्॥ ८॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं यच्छ्रीदेवीपदाम्बुजम्। समीक्षन् कश्मलममुं विमुच्य हतदेहकम्॥ ९॥
विशोकं परमं स्थानं समुपैम्यविशङ्कितम्। इति सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः स्वान्तरस्याऽभिगुप्तये॥ १०॥
भूत्वाऽत्यन्तं क्रुद्ध इव संयोज्याऽसुरवाहिनीम्। निःशेषां तरसा युक्तस्तया युद्धाय दंशितः॥ ११॥
रथमारुह्य साहस्रसिंहवाहं महोन्नतम्। श्वेतमुक्ताऽऽतपत्रेण वीज्यमानश्च चामरैः॥ १२॥
युक्तः सेनेश्वरैः पञ्चाशत्सङ्ख्याकैर्बलोद्धतैः। नदद्वादित्रविपुलैरास्फोटाऽऽरवबृंहितैः॥ १३॥

*** विमला ***

इस तरह विषङ्ग के मरने पर एक महान् जयघोष हुआ। सभी शक्तियाँ प्रसन्न होकर रणनायिका की स्तुति करने लगीं॥ १॥ युद्ध में उनके दोनों भाई अपने परिचरों के साथ खेत आये, यह जानकर वह भण्ड मोहवश थोड़ी देर के लिए अत्यन्त कातर हो गया॥ २॥ कुछ क्षण विचार कर शोक छोड़कर अपने आप पर हँसते हुए की तरह मुक्त भाव से सोचते हुए कहा—अहो! इस पर अपने को क्या बोलूँ?॥ ३॥ मैंने जो पहले प्रार्थना की थी जगन्माता ने उसे बहुत दिनों के बाद पूरी की है, इसी तरह जो शेष बचे हैं उसे भी शीघ्र पूरा करने वाली है, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है॥ ४॥ अतः अब जो बचे-खुचे हैं उन्हें साथ लेकर श्रीमाता की आँखों के सामने ही जाता हूँ। क्योंकि देर करने से कल्याण कार्य में विघ्न ही तो टपकते हैं॥ ५॥ आश्चर्य है—संसार में जो व्यक्ति उनसे एकान्त में याचना करता है, वह पराम्बा उसे पूरा करती हैं, क्योंकि वे भावरूपा हैं, कामधेनु हैं॥ ६॥ इस तरह अपने भीतर ही बैठी वह व्यक्ति को चाह से अधिक फल देने वाली है। किन्तु भाग्य का मारा व्यक्ति ऐसी परमानन्द-दायिनी माता को छोड़कर॥ ७॥ व्यर्थ ही दिन-रात दुःख के सारभूत भीमरूपा विषयोपभोग की इच्छा से खिंच कर काल का कलेवा बन जाता है॥ ८॥ मैं तो धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, जो श्रीदेवी के चरणकमलों को देखते हुए उस गन्दी हतदेह को छोड़कर॥ ९॥ शोकरहित उस परमधाम को निःशङ्क होकर प्राप्त करूँगा। ऐसा चिन्तन कर अपने मन की बात छिपाने के लिए॥ १०॥ अत्यन्त क्रुद्ध होने का स्वांग भरकर बची-खुची सैन्य-शक्तियों को इकट्ठा कर अति शीघ्रता से सबको साथ लेकर उनके साथ युद्ध के लिए तैयार होकर॥ ११॥ हजार सिंह जिसमें जुटे हैं—ऐसे विशाल रथ पर सवार होकर, श्वेत मुक्ताजड़ित आतपत्र तथा चँवर डुलवाते॥ १२॥ बलोद्धत पचास सेनापतियों

रथनेमिनदीघोषैर्ह्रेषितप्रायमांसलैः । रथवाहनसिंहानां गर्जितैः पूरयन् जगत्॥ १४॥
निर्ययौ जैत्रयात्रार्थं चालयन्निव मेदिनीम् । अथाऽपश्यच्छक्तिसेना भण्डसेनामहार्णवम्॥ १५॥
अपरामप्रधृष्यश्च भीमं गम्भीरनिस्वनम् । तत्र मन्त्रमहाराज्ञी भण्डं युद्धाय सङ्गतम्॥ १६॥
आलक्ष्य श्रीमहाराज्ञीं नत्वा वृत्तं व्यजिज्ञपत्। देवि भण्डः स्वयं प्राप्तो योद्धुमत्यन्तसंयुतः॥ १७॥
सर्वसेनासमायुक्तः सर्वसेनाधिपैरपि । जैत्रयात्रा भवत्याश्च युक्ताऽत्र यदि मन्यसे॥ १८॥
विज्ञापितैवं मन्त्रिण्या युक्तं तच्चाप्यमंसत । अथाऽभवच्छक्तिसेना सन्नद्धा निमिषाऽर्द्धतः॥
अश्वारूढाऽश्वसेनाभिः सेनामुखमधिष्ठिताः । गजानीकस्वामिनी सा तत्पश्चात् सम्पदीश्वरी॥
ततो बाला रथाऽऽरूढा कुमारीगणसंवृता । तदनु प्रचचालाऽऽजौ चक्रराजमहारथः॥ २१॥
नवपर्वसमायुक्तो ह्यणिमाद्याभिरावृतः । मुक्ताच्छत्रमहोन्नम्रः पद्मकेतुध्वजोच्छ्रयः॥ २२॥
नवरत्नसमाकीर्ण इन्द्रियात्माऽश्वयोजितः । वाहयन्ती तं रथेन्द्रं महात्रिपुरसुन्दरी॥ २३॥
चक्रेश्वरी विवेकात्मतोदहस्ता व्यराजत । चक्रराजशताऽङ्गस्य वामदक्षिणभागयोः॥ २४॥
किरिगेयचक्ररथौ व्यराजेतां महोन्नतौ । दण्डिनीमन्त्रिणीभ्यां तौ दंशिताभ्यामधिष्ठितौ॥ २५॥
स्वस्वसेनासमायुक्तौ युद्धसम्भारसम्भृतौ । तिरस्कृतिश्चक्रराजरथपृष्ठं समाश्रिता॥ २६॥
तिमिरौघनिभाऽत्युच्चतुरङ्गममधिष्ठिता । उत्खातवेल्लदत्यन्तकरालकरवालिनी॥ २७॥
स्वसमाकारशक्त्यौघमण्डलीकृतमण्डला । एवं श्रीललितादेवी सेनया सह निर्ययौ॥ २८॥
युद्धाय कृतसन्नाहा संस्तुता विबुधेश्वरैः । मिलितं सेनयोर्वक्त्रं व्यराजत विशेषतः॥ २९॥

के साथ जुझारू बाजे बजाते ताल ठोकते॥ १३॥ रथ के पहिए से निकलने वाली सुपुष्ट घर-घर आवाज और रथ के वाहन सिंह के घोर गर्जन से संसार को भरते॥ १४॥ धरती को हिलाते हुए जैत्र यात्रा के लिए निकल पड़ा। भण्ड के सैन्यबल को सागर की तरह उफनते-उमड़ते शक्तिसेना ने देखा॥ १५॥ अतिगम्भीर, भयोत्पादक घर्षणशील घोर नाद के बीच मन्त्रमहाराज्ञी भण्ड के साथ युद्ध करने लगीं॥ १६॥ श्री महारानी को देखकर उन्हें प्रणाम कर युद्धक्षेत्र की स्थिति से उन्हें अवगत कराते हुए कहा—देवि! भण्ड स्वयं सैन्यदल के साथ युद्ध करने आया है॥ १७॥ सारी सेना के साथ, सारे सेनापतियों को साथ लेकर विजय-यात्रा पर आपके साथ लड़ने आया है। आप यदि इसे उचित समझें॥ १८॥ इस तरह मन्त्रिणी से उपयुक्त सूचना पाकर शक्तिसेना आधे पल में युद्ध के लिए तैयार हो गई॥ १९॥ सेना के अग्र भाग में अश्वारूढा शक्तिसेना चल रही थी, उसके पीछे गजारोही सेना चल रही थी, उसके पीछे सम्पदीश्वरी थीं॥ २०॥ उसके पीछे कुमारीगन के साथ रथ पर सवार होकर कुमारी बाला चलीं। उसके पीछे चक्रराज महारथ युद्धक्षेत्र की ओर चला॥ २१॥ अणिमादि से घिरे नौ पर्व वाले रथ पर सवार होकर विशाल मुक्ता-छत्र लगाये पद्मकेतु ध्वज लहराते॥ २२॥ नवरत्न जैसे, इन्द्रियात्म रूपी घोड़े जुते वह महारथ था, जिस पर महात्रिपुरसुन्दरी विराजित थीं॥ २३॥ एक रथ पर चक्रेश्वरी विवेकात्मक देह से विराजित थीं। शताङ्गचक्रराज रथ के बायें-दायें भाग में॥ २४॥ किरिगेय और विशाल चक्ररथ विराजित थे। उन दोनों रथ पर क्रमशः दण्डिनी और मन्त्रिणी युद्ध में भाग लेने के लिए तैयार बैठी थीं॥ २५॥ अपनी-अपनी सेना के साथ युद्ध-सामग्री लेकर तिरस्कृति चक्रराज रथ के पृष्ठभाग में सवार थीं॥ २६॥ अन्धकार-समूह की तरह अत्यन्त काले एवं विशाल घोड़े पर सवार, हाथ में अत्यन्त डरावनी खुली तलवार नचाती॥ २७॥ अपने ही आकार-प्रकार की शक्तियों से घिरी सेना के साथ श्रीललिता देवी बाहर निकलीं॥ २८॥ युद्ध के लिए अपने को पूरी तरह तैयार कर, देवताओं से संस्तुत, विशेषकर दोनों ओर की सेना की मिलन-भूमि पर विराजित हुईं॥ २९॥ दोनों सेनाओं के रथ, घोड़े, हाथी और

समुद्रयोरिवोद्वेलं गतयोः प्रतिसञ्चरे । सेनयोरुभयोरश्वरथेभपदचारिणाम्॥ ३०॥
पादवेगाभिसङ्गातप्रांशुपांशुसुसंहतिः । जनयद्गाढतिमिरं दार्शनैशमिव क्षणात्॥ ३१॥
सेनाभराऽऽक्रान्तमहीनिवेशात्तलसंस्थितम्। तमः स्यादुद्गतमिदं मही वा सैन्यमर्दिता॥ ३२॥
क्लेशात् प्राप्ताऽतिकृशतां भीत्या नाथमुपेयुषी । तथा रजोमहासङ्घवेगोदूर्ध्वगतिहेतुतः॥
भूम्यभावादधो वेगात् सेना यान्तीव लक्ष्यते। इत्यादि तर्कमापन्ना वैमानिकगणास्तदा॥ ३४॥
अथाऽभवन्महद्युद्धं सेनयोः शक्तिदैत्ययोः । नदत्सु युद्धवाद्येषु युक्तेष्वास्फोटगर्जनैः॥ ३५॥
शरशक्त्यृष्टिशूलाऽसिपट्टासिप्रासतोमरैः । गदाचक्रभिन्दिपालपरिघाङ्कुशयष्टिभिः॥ ३६॥
निरन्तरमभूद्व्याप्त्या प्रयुक्तैः सैन्ययुग्मकम्। हताः स्मः सर्वथाऽस्माकं शोकः पुत्रादिनाशतः॥

प्राप्तः किं जीवितेन स्याच्छत्रुभिर्निर्जिताऽऽत्मनाम्।
विक्रम्य युधि जित्वेमाः शक्तीः प्राप्स्याम आशिषम्॥३८॥

अन्यथा निहता युद्धे वसामो नन्दने वने। इति निश्चित्य ते दैत्या युयुधुर्बलवत्तरम्॥ ३९॥
शक्तयोऽप्येष दैत्यानामवधिः सर्वथा त्विमान्। हत्वा जयं परमकं प्राप्स्यामोऽद्यैव सर्वथा॥ ४०॥
इति मत्वाऽतिवेगेन युयुधुर्वीर्यवत्तराः । एवं नियुध्यमानेषु शक्तिभिर्दितिजेष्वथ॥ ४१॥
परस्परं शस्त्रहताः पेतुर्विगतजीवनाः। केचिज्जालीकृताङ्गास्तु शरजालैर्गताऽसवः॥ ४२॥
युद्धव्रतस्येव सिद्ध्या सहस्राक्षात्मतां ययुः। केषाञ्चित् खड्गघातेन शिरश्झटिति चोत्पतत्॥
राहोः शिर इवाऽऽकाशे व्यात्ताऽऽस्यं ग्रसितुं रवेः। पेषिता मुद्गराघातैश्चक्रैर्मध्ये विदारिताः॥
प्रोता दीर्घेषु भल्लेषु सङ्घशस्तत्र केचन। शरैः शिरांसि कृत्तानि गगने यान्ति वेगतः॥ ४५॥

पैदल सैनिकों के संचार से प्रतिपग दो उद्वेलित सागर की तरह वे प्रतीत हो रहे थे॥ ३०॥ पैरों के आघात से उड़ी धूलियों से चारों ओर सघन अन्धेरा छा गया, जो देखने में रात की अँधियाली जैसे लगने लगी॥ ३१॥ सेनो के भार से आक्रान्त धरती पर उनके निवेश से अथवा सेना से मर्दित धरती से ही मानो फूटकर यह अन्धकार निकल रहा हो॥ ३२॥ धूलि-महासंघ के वेग से ऊपर की ओर उठने के कारण डर कर क्लेश से मानो यह धरती अति दुबली बन गई हो॥ ३३॥ धरातल के अभाव में वेग के साथ चलने वाली सेना ऐसी लगती थी जैसे वह ऊपर नहीं अपितु नीचे की ओर जा रही है। ऐसे विमान पर चढ़े आकाशचारी गण तर्क करने लगे॥ ३४॥ शक्तिसेना और दैत्यसेना के बीच घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। जूझारू बाजे और ताल ठोकने की आवाज से॥ ३५॥ बाण, शक्ति, ऋष्टि, त्रिशूल, कत्ते, तलवार, बर्छी, भाले, नेजा, गदा, चक्र, भिन्दिपाल, परिघ, अंकुश और डण्डे से॥ ३६॥ दोनों ओर युद्ध चलने से हाहाकार मच रहा था। हाय! हम मारे गये, हमारे बेटे मरे, हमारे लिए शोक ही शोक है; ऐसा कोलाहल होने लगा॥ ३७॥ शत्रुओं से पराजित होकर अब यह जीना कैसा? युद्ध में पराक्रम से इन शक्तियों को जीतकर हम आशिष प्राप्त करेंगे॥ ३८॥ अन्यथा युद्ध में मर कर नन्दन वन में निवास करूँगा, ऐसा निश्चय कर वे दैत्य बलवत्तर युद्ध करने लगे॥ ३९॥ इधर शक्तियाँ भी इन दैत्यों को मार कर आज ही परम विजय प्राप्त कर लूँगी॥ ४०॥ ऐसा मानकर अत्यन्त वेग के साथ शक्तिसेना और दैत्यसेना के बीच दलवत्तर चलते युद्ध में॥ ४१॥ परस्पर शस्त्राघात से गिर कर मरने लगे। कुछ के शरीर बाण से छलनी-छलनी हो गये और उन्होंने लड़ते जान गँवा दीं॥ ४२॥ लड़ाई में शस्त्राघात से शरीर पर अनेक घाव लगने से कुछ तो सहस्राक्ष इन्द्र की तरह लगने लगे। कुछ के सिर तलवार से कट कर शीघ्र नीचे गिरे॥ ४३॥ राहु के सिर की तरह आकाश में फेंका गया मुण्ड ऐसा लगता था जैसे सूर्य को निगलने के लिए फैला हो। कुछ मुद्गर और चक्र के आघात से विदारित हुए॥ ४४॥ कुछ लम्बे भाले से मारे गये तो कुछ के सिर बाण से कटकर आकाश में उड़ने लगे॥ ४५॥

प्रवृद्धकाकपक्षाणि चलत्पक्षिगणा इव । विकीर्णाङ्गैश्चिता युद्धे भूमिर्विरुरुचे तदा ॥ ४६ ॥
पटे विलिखितानीव प्रतिमाङ्गान्युपक्रमे । असृग्वहा ववौ तत्र चित्रकारप्रमादतः ॥ ४७ ॥
स्खलितो ह्यालक्तक इव क्वचिच्छोषं समागता । चित्रकारेण झटिति प्रमृष्ट इव भासते ॥ ४८ ॥
शरविद्धा गतप्राणास्तस्थुः केचित् क्वचित् क्वचित् । समग्रलिखितानीव चित्राणि ददृशुर्ननु ॥
एवं मुहूर्तमात्रेण भण्डदैत्यमहाचमूः । ननाशाऽऽसाद्य शक्तीनां सेनाग्निं शलभो यथा ॥ ५० ॥
अथ सेनाऽधिपास्तस्य क्रोधारुणितलोचनाः । शक्तिसेनां शस्त्रवर्षैरर्दयामासुरुच्चकैः ॥ ५१ ॥
दृष्ट्वा सेनाधिपैः सेनामर्दितामतिविह्वलाम् । मन्त्रिणी दण्डिनी चाऽश्वारूढा सम्पदधीश्वरी ॥
परिवारशक्तियुक्ता युयुधुर्मन्युदीपिताः । ता युद्ध्वा सुचिरं दैत्यैः सेनाधीशैर्महाबलैः ॥ ५३ ॥
प्रसह्य नाशयामासुः सर्वान् सेनापतीन् हि ताः । वक्राक्षं वामनं तालं दीर्घनसं सुबाहुकम् ॥ ५४ ॥
विद्युज्जिह्वश्च समरे नाशयत्तुरगाश्रया । सम्पत्करी तालजङ्घं कुटिलाक्षं रणोद्धतम् ॥ ५५ ॥
निशठं शम्बरं क्रूरं चकार व्यसुमाहवे । जम्भिनी क्रूरवदनं स्तम्भिनी सूचिकामुखम् ॥ ५६ ॥
अन्धिनी कण्ठककरं मृगवक्त्रञ्च मोहिनी । कालकेयं भैरवोऽपि व्याघ्रास्यं कालकर्षिणी ॥ ५७ ॥
स्वप्नेशी मुण्डमूर्धानं बटुको भण्डभाषणम् । उम्लुकं करभाऽऽस्यञ्च महाकुक्षिं शिवारवम् ॥ ५८ ॥
शोणिताऽक्षं तालकेतुं तालग्रीवं महाहनुम् । गृध्रबाहुं काकमुखं दण्डिनी नाशयद्युधि ॥ ५९ ॥

शुकश्यामा शारिकाऽऽख्या सङ्गीता लघुपूर्विका ।
साहित्यश्यामला चेति निकुम्भं कुम्भमस्तकम् ॥ ६० ॥

चक्राक्षं दीर्घदंष्ट्रञ्च नाशयामासुरुल्बणम् । कटङ्कटं करञ्जाऽक्षं मुण्डं चण्डं कृकाननम् ॥ ६१ ॥

घमण्डी काकपक्ष चिड़ियों की तरह चलते हुए, अपने अंगों को फैलाये चितायुद्ध में विशेष रूप से शोभ रहे थे ॥ ४६ ॥ वे किसी पट पर विलिखित प्रतिबिम्ब का उपक्रम कर रहे हों और चित्रकार की भूल से खून बहाते की तरह बन गये ॥ ४७ ॥ वह रक्त मानो चित्र बनाते समय कहीं अलता छलक गया हो और जिसे बड़ी सावधानी से चित्रकार ने पोंछ दिया हो ॥ ४८ ॥ बाण से विद्ध होकर कहीं-कहीं कोई जान गँवाकर चित पड़े थे। सब कुछ चित्रलिखित प्रतिबिम्ब की तरह ही लग रहा था ॥ ४९ ॥ इस तरह पलभर में भण्ड दैत्य का सैन्य-समूह शक्ति-समूह के सामने आकर उसी तरह विनष्ट हो गया जैसे आग में जलकर फतिंगे ॥ ५० ॥ उसके बाद क्रोध से आँखें लाल कर भण्ड के सेनापति शक्तिसेना को बुरी तरह कुचलने लगे ॥ ५१ ॥ सेनाधिपतियों के द्वारा शक्तिसेना को मर्दित एवं विह्वल देखकर मन्त्रिणी, दण्डिनी और अश्वारूढा सम्पदधीश्वरी ने ॥ ५२ ॥ कुपित होकर शक्ति-परिवार को साथ लेकर भण्ड के महाबली सेनाधिपतियों के साथ बहुत देर तक युद्ध कर ॥ ५३ ॥ वक्राक्ष, वामन, ताल, दीर्घनस, सुबाहुक आदि सभी सेनाधिपतियों को पकड़कर विनष्ट कर डाला ॥ ५४ ॥ घोड़े पर सवार विद्युज्जिह्व को समर में मार डाला। रणोद्धत कुटिलाक्ष और तालजंघ को सम्पत्करी ने मारा ॥ ५५ ॥ युद्ध में निशठ, शम्बर और क्रूर को भी मार डाला। जम्भिनी ने क्रूरवदन को, स्तम्भिनी ने सूचिकामुख को ॥ ५६ ॥ अन्धिनी ने कण्ठकर को, मोहिनी ने मृगवक्त्र को, भैरव ने भी कालकेय को और कालकर्षिणी ने व्याघ्रास्य को ॥ ५७ ॥ स्वप्नेशी ने मुण्डमूर्धान को, वटुक ने भण्डभाषण को—इसी तरह उम्लुक, करभास्य, महाकुक्षि, शिवारव ॥ ५८ ॥ शोणिताक्ष, तालकेतु, तालग्रीव, महाहनु, गृध्रबाहु, काकमुख प्रभृति को युद्ध में दण्डिनी ने नष्ट कर दिया ॥ ५९ ॥ शुकश्यामा, सारिका, संगीता, लघुपूर्विका, साहित्यश्यामला, निकुम्भ और कुम्भमस्तक को ॥ ६० ॥ चक्राक्ष, दीर्घदंष्ट्र, उल्वण प्रभृति को शक्तिसेना ने समाप्त कर दिया। कटङ्कट, करञ्जाक्ष, मुण्ड, चण्ड, कृकानन ॥ ६१ ॥ सालसीर, द्विशृंग, शुनक, सूर्यकर्ण, वक्रकुक्षि, वाममुख, कालक,

सालसीरं द्विभृङ्गञ्च शुनकं सूर्पकर्णकम् । वक्रकुक्षिं वाममुखं कालकं कोटरं विटम् ॥ ६२ ॥
मन्त्रिणी नाशयामास बलादाक्रम्य दानवान् । एवं निःशेषतः सेनासेनपेषु हतेष्वथ ॥ ६३ ॥
भण्डो हृष्टमनाः प्राह सारथिं रथ आस्थितः । रथं प्रापय मे शीघ्रं सारथे शक्तिवाहिनीम् ॥ ६४ ॥
पश्याऽद्य मम वीर्यं त्वं विचित्रं रोमहर्षणम् । श्रुत्वा वाक्यं दैत्यपतेर्वाहयन् रथमाशु सः ॥ ६५ ॥
सन्दिहानो दैत्यपतिं पप्रच्छ प्रणतस्तदा । दैत्येश्वर त्वयाऽऽज्ञप्तः किञ्चित् प्रष्टुं समीहितम् ॥
तद्देहि प्रणताय तं सन्दिहानोऽस्मि सर्वथा । इति पृष्टेन चाज्ञप्तो प्राह दैत्येन सारथिः ॥ ६७ ॥
दैत्येश्वरैतां शक्तीनां सेनां मन्येऽपराजयाम् । विशुक्राद्या यया युद्धे हता लीलाविलासतः ॥ ६८ ॥
अथ त्वामभिपश्यामि हतभ्रातृसुतादिकम् । हृष्टाऽन्तरं शोकलेशाऽस्पृष्टं प्रव्रजितं यथा ॥ ६९ ॥
बालया सह ते युद्धे पूर्वं समभिलक्षिता । भक्तिर्देव्यामतितरां तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥ ७० ॥
एवं पराभवं दुःखहेतावतिभयङ्करे । न शोकं नाऽपि भीतिं वा लक्षये तव लेशतः ॥ ७१ ॥
इति भूयः सुपृच्छन्तं दैत्यं तं चिरसेविनम् । प्राह भण्डः स्मयन् किञ्चित् शृणु दैत्येत्युपाक्रमन् ॥
एषा या ललिता देवी सा परात्परमा शिवा । एतया निहतो युद्धे प्राप्स्याम्यत्युत्तमं फलम् ॥ ७३ ॥
तल्लोकं शोकरहितमभयं सर्वतः सुखम् । इमं लोकं सशोकं वै सभयं दुःखमात्रकम् ॥ ७४ ॥
मायया मोहितो जन्तुर्मन्यतेऽत्युत्तमं मुधा । तत्राऽप्यासुरलोको वै राजसोऽतिभयङ्करः ॥ ७५ ॥
इमं वरं यो मनुते समुग्धपशुकः स्मृतः । अहं श्रीपद्मसंस्थानादूतो माणिक्यशेखरः ॥ ७६ ॥

कोटर और विट ॥ ६२ ॥—इन दानवों को बलपूर्वक आक्रमण कर मन्त्रिणी ने इन्हें विनष्ट कर डाला। इस तरह सेनापति के मारे जाने पर समस्त सेना विनष्ट हो गई ॥ ६३ ॥ अब भण्ड ने खुश होकर रथ पर सवार सारथी से कहा—ओ सारथि! जल्द ही मेरा रथ शक्तिवाहिनी के आगे ले चल ॥ ६४ ॥ मेरा विचित्र और रोमांचकारी पराक्रम आज तुम देखो। दैत्यपति की यह बात सुनकर सारथी ने शीघ्र ही रथ को हाँकते हुए ॥ ६५ ॥ सन्दिग्ध होकर प्रणत भाव से दैत्यपति को पूछा—हे दैत्येश्वर! आपका आदेश मिलने पर आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ॥ ६६ ॥ इसलिए सर्वथा मुझ प्रणत और सन्दिग्ध को आप पूछने का आदेश दें। यह प्रश्न सुनकर दैत्येश्वर ने सारथी को पूछने की आज्ञा दी ॥ ६७ ॥ हे दैत्येश्वर! मैं इस शक्तिसेना को अपराजेय मानता हूँ, क्योंकि इन्होंने रणाङ्गण में लीला-विलास से ही विशुक्रादि जैसे परम पराक्रमी को मार डाला ॥ ६८ ॥ आपको भी मैं देखता हूँ कि आपके कई और बेटे मारे गये, फिर भी आप भीतर से प्रसन्न हैं, शोक का एक कण भी आपको नहीं छूआ है; आप संन्यासी की तरह प्रतीत होते हैं ॥ ६९ ॥ बाला के साथ युद्ध में पहले भी आप देखे गये हैं, देवी के साथ आपकी परम भक्ति देखी जाती है, इसलिए कृपा कर इसका रहस्य आप मुझे समझायें ॥ ७० ॥ इस तरह पराभव अतिभयंकर दुःख का कारण होता है, किन्तु आपको न शोक है, न भय है; आपमें यह सब कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है ॥ ७१ ॥ बहुत दिनों से सेवा करने वाले इस दैत्य का ऐसा प्रश्न किये जाने पर थोड़ा मुस्कराते हुए भण्ड ने कहा—हे दैत्य! सुनो ॥ ७२ ॥ यह जो ललिता देवी हैं, वे साक्षात् परात्परा शिवा हैं। इनके हाथों युद्ध में मर कर अति उत्तम फल प्राप्त करूँगा ॥ ७३ ॥ इनका लोक शोकरहित, अभय एवं सर्वतः सुखमय है; जबकि इस लोक में शोक, भय और दुःख मात्र का ही स्थान है ॥ ७४ ॥ माया के वशीभूत होकर साधारण जीव व्यर्थ ही इस लोक को उत्तम मानते हैं, उसमें भी यह असुरलोक तो अत्यन्त भयंकर और राजसगुण युक्त है ॥ ७५ ॥ इस वरदान को जो मानता हैं वह समुग्ध जीव कहलाता है। पहले मैं महालक्ष्मी के चरणों में माणिक्यशेखर नामक दूत था ॥ ७६ ॥

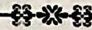
स्वकर्मपाकवशत एतां प्राप्तोऽवरां दशाम्। तथाऽपि कृपया देव्या यां स्मृतिर्नो जहाति वै ॥ ७७ ॥
एषा सर्वेश्वरी देवी ब्रह्मादिजननी परा। एतया निहता युद्धे भ्रातरो मे सुता अपि ॥ ७८ ॥
शस्त्राग्निपावितास्तस्या लोकं प्राप्ताः परात्परम्। मया सह त्वमप्याशु तल्लोकं प्राप्य भ्रातृभिः ॥
पुत्रैः समेष्यसि पुनस्ततो यास्यमृताङ्गतिम्। इति श्रुत्वा भण्डवचो विस्मितोऽभूत् स सारथिः ॥
संश्लाघ्य दैत्यराजं तं जहौ शोकं स्वहृद्गतम्। दृष्ट्वा श्रीललितामग्रे नमश्चक्रे सुभक्तितः ॥ ८१ ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भण्ड-
ललितासमागमो नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६३४९ ॥



अपने कर्मवश मैंने यह निम्न दशा प्राप्त की है, फिर भी देवी ने मुझ पर कृपा कर मेरे पूर्वजन्म की स्मृति मुझसे नहीं छीनी है ॥ ७७ ॥ यह तो सर्वेश्वरी देवी हैं, परा हैं, ब्रह्मादि की जननी हैं; इनके हाथों युद्ध में मारे जाकर मेरे भाई और बेटे भी ॥ ७८ ॥ शस्त्र रूपी आग से पवित्र होकर उस परात्पर लोक को प्राप्त किये हैं। मेरे साथ शीघ्र ही तुम भी उस लोक में पहुँच कर मेरे भाइयों से ॥ ७९ ॥ और बेटों के साथ मिलकर फिर अमृतगति को प्राप्त करोगे। भण्ड की यह बात सुनकर वह बड़ा विस्मित हुआ ॥ ८० ॥ दैत्यराज की सराहना कर अपने हृदय के शोक को हटाकर श्रीललिता देवी को आगे देखकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया ॥ ८१ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में भण्ड-
ललिता समागम नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६३४९ ॥



अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

अथ युद्धे सम्पदीशीमश्वारूढाञ्च दण्डिनीम्। मन्त्रिणीञ्च समासाद्य युद्धकौशलमुल्बणम्॥ १ ॥
प्रदर्श्य ताः सुसन्तोष्य क्रमात् प्रोवाच सङ्गरे। देव्यो वो युद्धचातुर्यविक्रमैस्तोषितोऽस्म्यहम्॥
योद्धुमुत्कण्ठितं चित्तं स्वामिन्या च इमं क्षणम्। यूयं समीक्षकाः सर्वास्तया मे युद्धकर्मणि॥ ३ ॥
ममैष लज्जितो बाहुर्युद्धे चेटीगणैः सह। तस्याः पदं विनिर्जित्य युद्धे वोऽभिजयाम्यनु॥ ४ ॥
तन्मे प्रयाचतोऽस्त्वेवं इति तस्य वचस्तदा। निशम्य देव्यो मत्वा चाऽजेयं स्वीयपराक्रमैः॥ ५ ॥
उचितञ्च महादेव्या दैत्येशस्य पराजयम्। ददुर्मार्गं नियुद्धाय महाराज्ञ्याऽसुरस्य वै॥ ६ ॥
अथ श्रीचक्रराजाख्यं रथमासाद्य सङ्गरे। समारभद्भण्डदैत्यो युद्धमत्यद्भुतं तदा॥ ७ ॥
तत्र शक्तिमहासैन्यमभूद्युद्धसमीक्षकम्। वैमानिकैर्देवगणैः सिद्धैर्ऋषिगणैस्तथा॥ ८ ॥
प्रेक्षणायाऽऽगतैः सर्वं व्याप्तमासीन्नभस्तदा। भण्ड आसाद्य ललितां पुरो दृष्ट्वाऽतिहर्षितः॥
मनसाऽभिनमश्चक्रे भक्त्या तदनुसत्वरम्। विव्याध पञ्चभिर्बाणैस्तदद्भुतमिवाऽभवत्॥ १० ॥
तत्र द्वयं सुकुसुमनिचयं पादयोः पतत्। तृतीयं कण्ठदेशेऽभून्मालिका फुल्लपाङ्कजी॥ ११ ॥
ततः परं मूर्ध्न्यपतत् पुष्पवर्षणरूपतः। अन्त्यं रत्नमयं मूर्ध्नि भूषणं मुकुटे स्थितम्॥ १२ ॥
एवं तद्विहितां पूजां दृष्ट्वा देव्यतिहर्षिता। देवादयोऽपि तद्दृष्ट्वा शङ्किताास्तत्र सर्वथा॥ १३ ॥
नारदाद्भण्डदैत्यस्य श्रुत्वा भक्ताऽग्रगण्यताम्। देवेशोऽतितरां तत्र विस्मयं समपद्यत॥ १४ ॥

❋ विमला ❋

रणाङ्गण में सम्पदीशी, अश्वारूढा, दण्डिनी और मन्त्रिणी को पाकर उनके सामने अपनी सुदृढ़ युद्धकला की दक्षता॥ १॥ उन्हें दिखलाकर, युद्धक्षेत्र में क्रमशः उन्हें सन्तुष्ट कर कहा—देवियो! आपके युद्धचातुर्य और पराक्रम से मैं काफी सन्तुष्ट हूँ॥ २॥ इस समय मेरा हृदय स्वामिनी ललिताम्बा के साथ युद्ध करने के लिए उतावला हो रहा है। मैं उनके साथ युद्ध करूँगा और आप सब उसके दर्शक होंगी॥ ३॥ तुम दासियों के साथ युद्ध करने में मेरी बाँहें लजा रही हैं। युद्ध में पहले उनके चरणों को जीतकर तत्पश्चात् तुम सबको जीत लूँगा॥ ४॥ अतः यह मेरी प्रार्थना है। दैत्यराज की ऐसी बातें सुनकर तथा उन्हें अपनी शक्तियों से अपराजेय मानकर॥ ५॥ दैत्येश की पराजय ललिता देवी के हाथों ही उचित मानकर देवियों ने महारानी के साथ ही युद्ध करने के लिए इसे राह दे दी॥ ६॥ रणाङ्गण में चक्ररथ के पास जाकर भण्ड दैत्य ने महारानी के साथ अद्भुत युद्ध प्रारम्भ कर दिया॥ ७॥ वहाँ सम्पूर्ण शक्तिसेना मूक दर्शक बन गई। विमान पर आरूढ़ देवगण, सिद्ध तथा ऋषिगण॥ ८॥ प्रभृति दर्शकों से आकाश भर गया। इधर भण्ड ललिता के सामने आकर उन्हें देखकर प्रसन्नता से झूम उठा॥ ९॥ उसके बाद शीघ्र ही भक्तिपूर्वक मन से नमन किया और पाँच बाण से वेध दिया। यह एक अद्भुत घटना हुई॥ १०॥ उन बाणों में दो बाण फूलों का ढेर बनकर दोनों चरणों पर बिखर गये और तीसरा बाण खिले कमलफूल की माला बनकर गले में लटक गया॥ ११॥ चौथा बाण फूलों की वर्षा बन कर माथे पर बरस गया और पाँचवाँ बाण रत्न बनकर शिरोभूषण मुकुट में जा टिका॥ १२॥ उसकी इस विहित पूजा को देखकर देवी परम प्रसन्न हुई। देवादि गण भी यह देखकर सर्वथा शङ्कित हुए॥ १३॥ नारद से भण्ड दैत्य की भक्तों में अग्रगण्यता सुनकर देवेन्द्र अत्यन्त विस्मयान्वित हो गये॥ १४॥

अथाऽभवन्महद्युद्धं ललिताभण्डदैत्ययोः । चित्रशस्त्राऽस्त्रनिचयव्याप्ताऽऽकाशमहोदरम्॥
भण्डदैत्योऽपि वीर्येण निजेन परमेश्वरीम् । सन्तोषयितुमुद्युक्तो युयोध परमाऽस्त्रवित्॥ १६॥
प्रणम्य मनसा देवीं सम्मुखं समुपागताम् । गूढाऽपदानवचनैरधिक्षेप्तुं प्रचक्रमे॥ १७॥
ललिते शृणु मे वाक्यं त्वं नटीव विभासि मे। मृषाऽऽचाररता नित्यं स्त्रैणं पुरुषमाश्रिता॥ १८॥
स्त्रीरूपधारिणीव त्वं स्त्रीस्वभावविवर्जिता। न स्त्रियं त्वामहं मन्ये न पुमांसमपि क्वचित्॥ १९॥
लोकविद्विष्टचारित्रा लज्जाशङ्कादिवर्जिता। न त्वं सत्कुलसम्भूता कुलहीनेव भासि मे॥ २०॥
लोकनिन्दितमार्गस्थैः पुरुषैरविवेकिभिः। अपि त्वमभिमृष्टाऽसि सर्वथेति विभासि मे॥ २१॥
अहो मे प्राक्कृतं ह्येवं यत्त्वामेवंविधामपि। अनर्हां दर्शने नूनं पश्यामि पुरतः स्थिताम्॥ २२॥
शृणु सत्येन वक्ष्यामि यद्यथाऽस्ति तथाऽस्तु तत्। मद्दृष्टिगोचरीभूता सम्प्रति त्वं कथञ्चन॥
मृषाऽऽचारञ्च मायाञ्च त्यक्त्वा मयि स्थिरीभव। आसादिता मया सद्यः पृष्ठं मे न प्रदर्शय॥ २४॥
नाऽपि मां हि समक्षस्थं वञ्चयित्वा कथञ्चन। शक्यं ह्यदृश्यतां यातुं तस्मात्त्वं सुस्थिरीभव॥ २५॥
विदित्वा मदभिप्रायमेकान्तं सुव्यवस्थितम्। दृष्ट्वा मदीयवीर्यञ्च संसाधय निजं व्रतम्॥ २६॥
श्रुत्वा निगूढवाक्यं तत् प्रसन्ना ललिताऽम्बिका। शृणु दैत्येश्वरवचो यदुक्तं ते तथैव तत्॥ २७॥
साधयामि तवाऽभीष्टं त्याजयामि मदादिकम्। न हि मे दृष्टिविषयीभूय भूयो भवेत् क्वचित्॥
युद्धश्रद्धादिसंशेषः तत् स्थिरीभव सर्वथा । इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्ष दैत्यभूपतिम्॥ २९॥
प्रतिवर्षं ववर्षाऽथ सोऽपि दैत्योऽतिवेगतः । शस्त्रप्रयोगविज्ञानसंश्लाघनपुरःसरम्॥ ३०॥

इसके बाद ललिता और भण्ड दैत्य के बीच घोर युद्ध हुआ। चित्र-विचित्र शस्त्रास्त्र-समूहों से आकाश का अन्तराल भर गया॥ १५॥ दिव्य अस्त्र के विज्ञाता भण्ड दैत्य ने भी अपने परम पुरुषार्थ से भगवती को सन्तुष्ट करने के लिए युद्ध किया॥ १६॥ सामने उपस्थित ललिता देवी को मन से प्रणाम कर अपने पवित्र इस आचरण को छिपाते हुए ऊपर से अधिक्षेप करने लगा॥ १७॥ अरी ललिते! मेरी बात सुन; तुम तो वेश्या की तरह मुझे लगती हो, बेकार के आचरण में लगी रहती हो, स्त्रैण पुरुष की आश्रिता हो॥ १८॥ स्त्री का रूप धारण करने वाली हो, पर स्त्री-स्वभाव से वर्जित हो; तुम्हें मैं न तो औरत मानता हूँ और न मर्द ही॥ १९॥ लोक-जानकारी में विशिष्ट चरित्र वाली हो। न तुम्हें लज्जा, न शंका, न कुछ; सत् कुल में तुम्हारा जन्म भी नहीं है, तुम मुझे कुलहीन लगती हो॥ २०॥ लोकनिन्दित मार्ग पर तुम चलती हो, अविवेकी पुरुषों के साथ भी सर्वथा हर्षित मुझे प्रतीत होती हो॥ २१॥ आश्चर्य! मेरा पूर्वकृत ही ऐसा है जो तुम्हारी तरह अयोग्य औरत को अपने सामने देखता हूँ॥ २२॥ सुनो, मैं सच कहता हूँ, जैसी हो उसी तरह मेरी आँखों के सामने होकर इस समय तुम किसी तरह॥ २३॥ अपने मिथ्या आचरण और माया को छोड़कर मुझमें स्थिर हो जाओ। मैं तुम्हें अभी समाप्त करता हूँ, मुझे पीठ मत दिखाना॥ २४॥ मेरे सामने आकर भी किसी तरह ठगकर तुम अदृश्य भी नहीं हो सकती हो, इसलिए स्थिर हो जाओ॥ २५॥ मेरा अभिप्राय समझकर, एकान्त में सुव्यवस्थित होकर, मेरी वीरता और पराक्रम देखकर अपना काम पूरा करो॥ २६॥ दैत्यराज का निगूढ़ वाक्य सुनकर ललिताम्बिका प्रसन्न हुईं। हे दैत्येश्वर! सुनो, तुमने जो कुछ भी कहा, वह वैसा ही है॥ २७॥ मदादिकों को छोड़कर अब मैं तुम्हारा अभीष्ट पूरा करती हूँ। मेरी आँखों के सामने अब फिर तुम कभी नहीं होओगे॥ २८॥ युद्ध के प्रति जो तुम्हारी श्रद्धा है, उसमें कुछ शेष न रह जाय, इसलिए अब तुम स्थिर हो जाओ। इतना कहकर दैत्यभूपति पर देवी ने बाणों की वर्षा कर दी॥ २९॥ वह दैत्यराज ने भी पूरे वेग के साथ शस्त्र-प्रयोग रूपी विज्ञान में पैठ रखने वाली युक्ति का प्रदर्शन करते हुए बाणों की

अभूत्तयोर्महायुद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । एवं नियुध्य सुचिरं दैत्योऽस्त्राणि ससर्ज ह ॥ ३१ ॥
आग्नेयं वारुणं सौम्यं कौबेरं पार्वतं तथा । पार्जन्यमैन्द्रं वायव्यं ब्राह्मं कौमारमेव च ॥ ३२ ॥
अस्त्राण्येवंविधान्याशु ललिता परमेश्वरी । प्रत्यस्त्रैर्नाशयामास तुहिनं दिनकृद्यथा ॥ ३३ ॥
तथा नूतनसृष्टानि प्रत्यस्त्रैर्नाशयत् क्षणात् । ससर्जाऽथ भण्डदैत्यो मधुं कैटभमेव च ॥ ३४ ॥
सोमकञ्च हिरण्याक्षं हिरण्यकशिपुं तथा । बलिमर्जुननामानं हैहयं रावणं तथा ॥ ३५ ॥
कुम्भकर्णं मुरं ग्राहं कंसं द्विविदमेव च । एवमादीन् विष्णुशत्रून् सर्वान् लोकप्रणाशनान् ॥ ३६ ॥
ते सृष्टा भण्डदैत्येन तत्स्वभावपराक्रमाः । उद्युक्ता लोकनाशार्थं तमोवृत्तिपरायणाः ॥ ३७ ॥
ललितेश्याऽपि नाशाय तेषां करनखात् पृथक् । नारायणाऽवताराणां ससर्ज दशकं तदा ॥ ३८ ॥
नाशितास्ते क्षणेनैव सृष्टैस्तैर्विष्णुमूर्तिभिः । अथ भूयोऽन्धकं मृत्युं कामं त्रिपुरमेव च ॥ ३९ ॥
महादेवरिपूनेवं निर्ममेऽसुरशेखरः । तान् दृष्ट्वा श्रीपरा देवी फालनेत्राद्विसर्जयत् ॥ ४० ॥
महादेवं देवदेवं तेन ते नाशमाययुः । अथ दैत्यमहासेनामसङ्ख्यातां भयावहाम् ॥ ४१ ॥
उद्भावयन्निमेषेण शक्तिभिर्या पुरा हता । विषङ्गश्च विशुक्रश्च चतुर्बाहुमुखाः सुताः ॥ ४२ ॥
करङ्ककुटिलाक्षाद्या नष्टां सृष्टिमजो यथा । अथ ते युयुधुः शक्तिसेनाभिरतिमर्षिताः ॥ ४३ ॥
तद्दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे भण्डसामर्थ्यमद्भुतम् । भीताश्चाऽथ किं भवेद्वै इति देवाश्च शक्तयः ॥
तदाऽभवन्महद्युद्धं भूयश्चोपक्रमं यथा । हतं हतं तत्र दैत्यो भूयो भूयः ससर्ज ह ॥ ४५ ॥
तद्दृष्ट्वाऽत्यन्तवित्रस्ताः शक्तयो देवता अपि । तदा श्रीललितादेवीं तुष्टुवुर्विधिमुख्यकाः ॥ ४६ ॥

वर्षा कर दी ॥ ३० ॥ रोंगटें खड़ा कर देने वाला उन दोनों के बीच तुमुल महायुद्ध शुरू हो गया। बहुत देर तक इस तरह का युद्ध करने के बाद दैत्यराज ने अस्त्रों की सृष्टि करना शुरू कर दी ॥ ३१ ॥ आग्नेय, वारुण, सोम, कुबेर, पार्वत, पार्जन्य, ऐन्द्र, वायव्य, ब्राह्म और कौमार ॥ ३२ ॥ इस तरह के अस्त्रों को ललिता परमेश्वरी ने शीघ्र ही प्रत्यस्त्रों से विनष्ट कर डाला; जैसे सूर्य कुहासे को फाड़ डालता है ॥ ३३ ॥ प्रत्यस्त्रों से अपने नवसृजित अस्त्रों को क्षणभर में विनष्ट होते देख दैत्यराज ने मधु-कैटभ की ही सृष्टि कर डाली ॥ ३४ ॥ सोमक, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, बलि, अर्जुन, हैहय तथा रावण ॥ ३५ ॥ कुम्भकर्ण, मुर, ग्राह, कंस, द्विविद इत्यादि जो सभी लोक के प्राणनाशक थे—विष्णु के इन सभी शत्रुओं को ॥ ३६ ॥ उन्हीं के स्वभाव और पराकम वाले दैत्यों की भण्ड दैत्य ने सृष्टि कर डाली, जो तमोवृत्तिपरायण और लोक-विनाश के लिए तत्पर थे ॥ ३७ ॥ ललितेश्वरी ने भी उनके विनाश के लिए अपने पदनख से भगवान् विष्णु के दस अवतारों की सृष्टि कर डाली ॥ ३८ ॥ विष्णु प्रभृति के संसृष्ट मूर्तियों ने क्षणभर में ही उन्हें विनष्ट कर दिया। तब उसने फिर अन्धक, मृत्यु, काम और त्रिपुर ॥ ३९ ॥ महादेव के इन दुश्मनों की सृष्टि असुर ने कर डाली। इन्हें देखकर श्रीपरादेवी ने अपनी तीसरी आँख खोलकर उससे ॥ ४० ॥ देवाधिदेव महादेव की रचना की, जिन्होंने इन सबों का विनाश कर दिया। अब दैत्य महासेना के संघ को जो महाभयावह था ॥ ४१ ॥ जिन्हें शक्तियों ने पहले मारा था, पलभर में पुनर्जीवित कर दिया। उनमें विषङ्ग, विशुक्र, चतुर्बाहुमुख बेटे ॥ ४२ ॥ करङ्क, कुटिलाक्षादि को जैसे विनष्ट सृष्टि को फिर रचते हैं, उसी तरह रच डाला। ये सभी शक्तिसेना से अत्यन्त क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे ॥ ४३ ॥ यह देखकर सब-के-सब स्तम्भित रह गये। भण्ड के अद्भुत साहस से देवता और शक्तिगण सोचने लगे, अब क्या होगा? ॥ ४४ ॥ तब घोर संग्राम शुरू हो गया और पहले की तरह उपक्रम होने लगा। एक और दैत्य मरते थे, दूसरी ओर उनकी फिर सृष्टि हो जाती थी ॥ ४५ ॥ यह देखकर देवता और शक्तिगण बहुत जोर से डर गये। तब श्रीललिता देवी की विधाता प्रमुख देवताओं ने स्तुति की ॥ ४६ ॥

मन्त्रिणी च महादेवीमुपव्रज्य प्रणम्य च। कृताञ्जलिर्मधुरया प्रार्थयामास वै गिरा॥ ४७॥
देवि दैत्यस्य विभवं मन्येऽहं सुभयावहम्। पश्य शक्तिगणं सर्वं शुष्यद्वक्त्रं समाकुलम्॥ ४८॥
युध्यन्तीनामविश्रान्त्या चाऽत्यगात् प्रहरद्वयम्। हतं हतं शक्तिगणैर्भूयः सृजति वेक्षणात्॥ ४९॥
चतुर्बाहुमुखास्तस्य सुता युधि निपातिताः। कुमार्या सप्तकृत्वस्ते भूयो युध्यन्ति सम्प्रति॥ ५०॥
विषङ्गो दशधा तद्वद्विशुक्रो नवधाऽपि च। हतः पुनः सृष्ट एव भण्डदैत्येन युध्यति॥ ५१॥
करङ्ककुटिलाक्षाद्या अप्येवं बहुधा हताः। युध्यन्त्येव पुनः सृष्टा नेतः साध्यमिदं हि नः॥ ५२॥
भीताः श्रान्ताः सर्वतश्च पश्य शक्तीर्हतप्रभाः। रक्ष सर्वं लोकमिमं नोपेक्षां कर्तुमर्हसि॥ ५३॥
इति सम्प्रार्थिता देवी स्मयित्वेषदुवाच ताम्। माभैः पश्य क्षणेनैव नाशयाम्यसुरेश्वरम्॥ ५४॥
इत्युक्त्वा कार्मुके शीघ्रं शरमेकं सुयोजयत्। तत्राऽऽवाह्य पाशुपतमस्त्रं लोकभयङ्करम्॥ ५५॥
मुमोचाऽसुरसेनायामस्त्रं तन्निमिषार्धतः। भस्मीचकार दैत्यानां सेनां सागरसम्मिताम्॥ ५६॥
भूयः शरं कार्मुके स्वे निवेशयदतिप्रभम्। तदा दिशोऽभितो ज्वालामालालीढाभवन् क्षणात्॥
चकम्पे भूः प्रक्षुभिताः सागरा भीः समाविशत्। चराचरं जगज्जालं पेतुरुल्काः सहस्रशः॥ ५८॥
भण्डासुरं मृगाद्याश्चाऽपसव्यमभिसंययुः। तावद्दृष्ट्वा विनष्टां स्वां सेनां सागरसन्निभाम्॥ ५९॥
दध्यौ श्रीललितापादपङ्कजं निश्चलाऽन्तरः। ध्येयमात्रात्मतां यावत् प्राप्तो भण्डमहासुरः॥
तावच्छ्रीललितादेवी कामेशाऽस्त्रेण योजितम्। शरं मुमोच भण्डाय स शरोऽतिभयङ्करः॥ ६१॥
प्रलयानलवत् ज्वालां मुञ्चन् विष्वङ्महाप्रभः। चराचरं जगज्जालं दहन्निव निमेषतः॥ ६२॥

तब मन्त्रिणी ने महादेवी के पास पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर बड़ी मधुर वाणी में हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की॥ ४७॥ हे देवि! इस दैत्य का विभव महाभयंकर है, यह मैं मानती हूँ। देखिए, आपकी सारी शक्तिसेना का मुँह सूख गया और भीतर से वे अकुला उठी हैं॥ ४८॥ लड़ते-लड़ते वे हारी-थकी हैं, दोपहर का समय बीत गया, शक्तिगण उसे मारते हैं और क्षणभर में वह जीवित हो जाता है॥ ४९॥ चार मुख और चार बाँहों वाले उसके बेटे को कुमारी ने सात टुकड़ों में काटकर मार डाला, वह पुनर्जीवित होकर अभी लड़ रहा है॥ ५०॥ इसी तरह दस टुकड़ों में काटकर विषङ्ग को, नौ टुकड़ों में काटकर विशुक्र को मार दिया; भण्ड दैत्य ने उसकी पुनर्रचना कर डाली और वह युद्ध कर रहा है॥ ५१॥ इसी तरह करङ्क और कुटिलाक्षादि को मारा जाता है और पुनर्जीवित होकर वे युद्ध करते हैं, अतः अब यह साध्य से बाहर हो गया है॥ ५२॥ चारों ओर हतप्रभ, डरी-थकी शक्तियों को देखिए, सर्वलोक की रक्षा कीजिए; अब इनकी अधिक उपेक्षा आप नहीं कर सकती है॥ ५३॥ इस तरह प्रार्थना करने पर थोड़ी मुस्कराती ललिता देवी ने उनसे कहा—मत डरो, देखो, एक क्षण में ही इस दैत्य को मैं मारती हूँ॥ ५४॥ इतना कहकर धनुष पर एक तीर चढ़ाया और लोकभयंकर पाशुपत अस्त्र का आवाहन कर॥ ५५॥ पलक झपकते ही उस अस्त्र को असुर-सेना पर छोड़ दिया, जो सागर की तरह उफनती असुरसेना को जलाकर राख कर दिया॥ ५६॥ उसके बाद फिर अपने धनुष पर अतिप्रभ अपना तीर चढ़ाया। धनुष पर तीर चढ़ते ही चारों ओर से दिशाएँ जल उठीं॥ ५७॥ प्रक्षुभित धरती काँपने लगी, सागर भयाक्रान्त हो अपने आप में सिमट गया। चराचर और जगज्जाल हजारों उल्काओं से घिर गये॥ ५८॥ भण्डासुर और मृगादि अपसव्य की ओर बढ़े, तब तक सागर की तरह उफनती अपनी सेना को विनष्ट होते देखकर॥ ५९॥ निश्चल मन से श्रीललिता के चरणकमलों का ध्यान किया। जब तक भण्ड महासुर अपने ध्यान में आत्मरूपता पाता॥ ६०॥ तब तक श्रीललिता देवी ने कामेश अस्त्र धनुष पर चढ़ा दिया। इस अतिभयंकर शर को भण्ड की मृत्यु के लिए छोड़ दिया॥ ६१॥ प्रलयकालीन

मुष्णंश्चक्षूंषि सर्वेषां तृणं दावानलो यथा। भण्डासुरश्च सरथं नगरं तस्य शून्यकम्॥ ६३॥
सस्त्रीस्थविरबालश्च सस्थानप्राणिमण्डलम्। भस्मशेषीकरोत्तत्र तदद्भुतमिवाऽभवत्॥ ६४॥
ब्रह्मविष्णुमुखास्तत्र भण्डं वा तस्य वाहिनीम्। नगरं वा प्रहतस्य दैत्यार्भकमपि क्वचित्॥ ६५॥
अदृष्ट्वा विस्मयं प्राप्ता जयशब्दमवाऽसृजुः। अभिजघ्नुः शक्तिगणा वादित्राणि सहस्रशः॥ ६६॥
विनेदुर्देववाद्यानि जगुर्गन्धर्वनायकाः। लास्यं चक्रुर्देववारा उर्वश्याद्याः सुहर्षिताः॥ ६७॥
स्तोत्राणि पेठुर्ऋषयो सिद्धा जेपुः परां शिवाम्। दध्युर्मुनिगणा रूपं प्रणेमुरितरे जनाः॥ ६८॥
ववृषुः पुष्पनिकरान् प्रफुल्लानतिसौरभान्। बलाहकाः सौम्यरूपा गर्जन्तोऽत्यन्तमन्थरम्॥
सुगन्धतोयबिन्दूंश्च यक्षकर्द्दममिश्रितान्। मारुताः सौगन्ध्ययुतो ववुरानन्दनस्पृशः॥ ७०॥
दिवानाथः सुप्रभोऽभून्नियतः सागरोऽपि च। सन्मनांसीव तोयानि समासन् सरिदादिषु॥ ७१॥
अभूज्जगत् पुनः सृष्टं प्रलयान्त इवोल्लसत्। निराकुलमसङ्कीर्णं तदा भण्डाऽसुरे हते॥ ७२॥
एवं दैत्यं हतं दृष्ट्वा भण्डाख्यं लोककण्टकम्। देवा महर्षयः सिद्धाः सर्वे देवीमुपाययुः॥ ७३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भण्डा-
सुरवधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६४२२॥



बहने वाली ज्वालामाला अग्नि छोड़ती अत्यन्त महाप्रभ, चराचर जगज्जाल को जलाती हुई एक क्षण में॥ ६२॥ सबकी आँखें बन्द करती हुई जैसे दावानल खर-फूँस को जला डालती है, उसी तरह भण्डासुर, उसका रथ और उसके शून्यक नगर को॥ ६३॥ उसकी सारी स्त्रियाँ, बूढ़े, बच्चे तथा वहाँ उपस्थित सारे जीव-जन्तुओं को जला कर राख कर डाला। यह एक अद्भुत बात हुई॥ ६४॥ ब्रह्मा, विष्णु प्रमुख वहाँ भण्ड और उसकी सेना, उसका नगर, यहाँ तक कि दैत्यों के छोटे बच्चे को भी कहीं॥ ६५॥ नहीं देखकर विस्मित हुए और जय-जय करने लगे। हजारों-हजार की संख्या में शक्तिगण जुझारू बाजे बजाने लगी॥ ६६॥ देवता भी विजय-वाद्य बजाने लगे, गन्धर्वनायक भी वहाँ पहुँच गये। उर्वशी प्रभृति स्वर्वेश्या प्रसन्न होकर नाचने लगीं॥ ६७॥ ऋषिगण स्तोत्र पाठ करने लगे, सिद्धगण परशिवा का जप करने लगे, मुनिगण इस रूप का ध्यान करने लगे, अन्य लोग इन्हें प्रणाम करने लगे॥ ६८॥ विकसित और सुगन्धित फूलों की वर्षा देवगण करने लगे। मेघमण्डल सौम्य रूप में आकर धीरे-धीरे गरजने लगे॥ ६९॥ सुगन्धित जल के बिन्दु, कदर्म-मिश्रित यक्ष बरसाने लगे। मरुत सुगन्धयुक्त आनन्दस्पर्शी हवा देने लगे॥ ७०॥ सूर्य प्रकाश युक्त हुए, समुद्र अपनी मर्यादा में आ गये। नदियों में सज्जनों के मन की तरह जल बहने लगा॥ ७१॥ प्रलयान्त के बाद उल्लसित और संसृष्ट संसार की तरह भण्डासुर के मरने पर सारी दुनिया प्रसन्न, निराकुल एवं असंकीर्ण बनी॥ ७२॥ इस तरह लोककण्टक भण्डासुर दैत्य को मरा देखकर देवता, महर्षि और सभी देवगण देवी के पास पहुँचे॥ ७३॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में भण्डासुर-
वध नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६४२२॥



अथाऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः

उपेत्य देवप्रमुखाः सर्वे तां ललितां पराम्। हर्षनिर्भरितस्वान्तास्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः॥ १॥
जय जय ललिताऽम्ब त्वत्पदाऽम्भोजसेवा फलमिह भजतां किं किन्न दद्यादभीष्टम्।
विबुधविटपिमुख्यान् कामदान् स्वस्वभावानपि वितरति भूयः संश्रितेभ्योऽतिशीघ्रम्॥ २॥
वयमिह विपदार्त्ता भण्डदैत्यप्रतापाऽनलजटिलकरालज्वालया दग्धपक्षाः।
अपरिमितभयाब्धौ यन्निमग्नाः समेता झटिति ननु तयैव प्रोद्धता व्योममार्गाः॥ ३॥
प्रणतजननितान्तस्वाऽन्तसन्तापहन्त्री श्रितजनदुरिताऽलिप्रौढमायानियन्त्री।
स्थिरचरनिखिलोद्यत्प्राणिनां जीवतन्त्री तव पदनलिनीयं प्रैधते लोकयन्त्री॥ ४॥
तव जननि विलासः सर्वलोकाऽवभासः कृत इह तव भूयाद्दैत्ययुद्धे प्रयासः।
भवतु सततमस्मन्मानसे नीरजस्के विशदविकचवृत्तौ वासिते वासनाभिः॥ ५॥
चिरजडमिलितानां यो विवेकैकहेतुर्भवति चरणहंसस्तावको ब्रह्मवाहः॥ ६॥
इति स्तुत्वा दण्डवत्ते प्रणता विधिमुख्यकाः। भूयो भूयोऽपि विविधैः स्तवैस्तुष्टुवुरम्बिकाम्॥
तावद्ब्रह्माण्डकोटिभ्यो ब्रह्माद्याः कारणेश्वराः। आजग्मुर्भारतीमुख्यशक्तियुक्ता घटोद्भव॥
ते पाणिसम्पुटोत्तंसाः प्रणता भक्तिनिर्भराः। समीड्य ललितामीड्यां प्राहुर्बद्धकराऽम्बुजाः॥
देवेशि भण्डदैत्यस्य वधादद्य सुरक्षितम्। ब्रह्माण्डानां शतं पञ्च एषां स ह्यधिपोऽभवत्॥ १०॥

※ विमला ※

सब देवप्रमुख उस ललितेश्वरी के पास पहुँच कर अनेक तरह के स्तोत्रों से अत्यधिक प्रसन्नचित्त से उनकी स्तुति करने लगे॥ १॥ हे ललिताम्बे! तुम्हारी विजय हो, तुम्हारे चरणकमलों की सेवा का ही यह परिणाम है। इस संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जो तुम्हें भजकर अपनी मनचाही वस्तु न प्राप्त करता हो? देवसमूह के प्रमुख गण सबको सब कुछ अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बाँटते हैं, आश्रित उन्हें भी तुम सब कुछ देने वाली हो॥ २॥ हम देवगण विपदार्त्त हैं, भण्डदैत्य के प्रताप रूपी अग्निज्वाला में हम सब झुलसे हैं, निःसीम भयसागर में डूबते हमें आकाशमार्ग से शीघ्र आकर आपने ही बचाया है॥ ३॥ प्रणतजन के एकान्त हृदय के सन्ताप को तुम्हीं दूर करने वाली हो, अपने आश्रित जनों के सारे संकट एवं प्रौढ़ माया को तुम्हीं विनष्ट करने वाली हो, सकल स्थिर एवं चर जीवों की जीवन-तन्त्री तुम्हीं हो। यह लोकयन्त्री तुम्हारे चरणकमलों की कृपा से ही वर्धिष्णु है॥ ४॥ हे जननि! तुम्हारा विलास तो सभी प्राणियों में प्रतिभासित है, फिर इस दैत्य के युद्ध में तुम्हारा प्रयास कैसा? वासनाओं से वासित हमारे हृदयकमल में सतत जो पवित्र एवं प्रफुल्लित है, हमारे अस्तित्व की रक्षा करें॥ ५॥ चिरकाल से जड़ बने हृदयों का ब्रह्मवाहक तुम्हारा चरणहंस ही विवेक का हेतु बना है॥ ६॥ इस तरह स्तुति कर ब्रह्मा-प्रमुख देवगण दण्डवत् प्रणत होकर बार-बार अनेक स्तोत्रों से अम्बा की उन्होंने स्तुति की॥ ७॥ हे कुम्भज! तब तक करोड़ों ब्रह्माण्ड के कारणेश्वर ब्रह्मादि प्रमुख देवगण भारती आदि प्रमुख शक्तियों के साथ आ पहुँचे॥ ८॥ वे दोनों हाथ जोड़े भक्तिनिर्भर भाव से प्रणत होकर, पूज्या ललिता देवी की स्तुति कर विनत भाव से निवेदित किये॥ ९॥ हे देवेशि! इन पाँच सौ ब्रह्माण्डों के

प्रोक्तेष्वण्डेषु शक्राद्या बद्धाः केचित् पलायिताः । लोकाऽधिपत्यं सर्वत्र दैत्यैरेव चकार सः ॥
प्रवर्तिता दैत्यवेदा दैत्ययज्ञाश्च सर्वतः । न क्वचिद्दैवयज्ञो वा ब्रह्मयज्ञोऽपि शङ्करि ॥ १२ ॥
प्रवृत्तोऽभूद्ब्राह्मणादौ भण्डे राज्यं प्रशासति । तदद्य निहते दैत्ये त्वया युधि महेश्वरि ॥ १३ ॥
पलायिता दैत्यगणा लोकपालाश्च संस्थिताः । स्वस्वाऽधिकारकृत्येषु जातं सर्वं निराकुलम् ॥
एवं वदत्सु देवेषु तत्राऽऽगत्य च विश्वकृत् । देवीं विधिमुखांश्चाऽपि प्रणम्य रचिताऽञ्जलिः ॥
पितामहाऽहमाज्ञप्तस्त्वया यन्मेरुमूर्धनि । देव्याः श्रीपुरनिर्माणे तत्तथा रचितं मया ॥ १६ ॥
द्रष्टुमर्हसि तच्छीघ्रं देव्या देवैश्च संयुतः । एवं त्वष्ट्रा प्रार्थितोऽजो देव्यै वृत्तं व्यजिज्ञपत् ॥ १७ ॥
प्रार्थिता देवदेवेशैर्ललिता परमेश्वरी । शक्तिसेना देवगणैर्युता तत्र ययौ द्रुतम् ॥ १८ ॥
ददृशुस्तत्पुरं चारुतरं त्वष्टृविनिर्मितम् । महाश्रीपुरराजस्य प्रतिबिम्बमिवाऽर्पितम् ॥ १९ ॥
विस्मिताः सर्व एवैते देवाः शक्तिगणास्तथा । अथ तत्र निवसने देवाः श्रीललिताम्बिकाम् ॥
प्रार्थयामासुरत्यन्तं प्रणताः सर्वभावतः । तत्सम्मतिं समादाय बुद्धीशप्रमुखास्तदा ॥ २१ ॥
राज्याऽभिषेकसामग्रीं कल्पयामासुरुत्तमाम् । प्रकल्प्य सर्वसम्भारान् शुभलग्नमुहूर्तके ॥ २२ ॥
ब्रह्मा मुनिगणोपेत आभिषेचनिकं विधिम् । चकाराऽऽगमदृष्टेन मार्गेणोत्तमकल्पतः ॥ २३ ॥
वृन्दारका देवगणा मारुतो वसवोऽग्नयः । गन्धर्वा देवदूताश्च दिक्पाला यक्षगुह्यकाः ॥ २४ ॥
यातुधानाः किम्पुरुषाः किन्नरा उरगा अपि । विद्याधाः सिद्धमुनय ऋषयः पितरोऽसुराः ॥ २५ ॥
ब्रह्मरुद्रहरीणाञ्च कोटयोऽण्डान्तरस्थिताः । सदाशिवेश्वरौ चाऽपि श्रीकण्ठोऽनन्त एव च ॥

अधिपति भण्ड दैत्य के मारे जाने के बाद आज ये ब्रह्माण्ड सुरक्षित हैं ॥ १० ॥ पूर्व कथित ब्रह्माण्डों में इन्द्रादि देवगणों को बाँध दिया गया तथा उनमें से कुछ भाग निकले। हर जगह लोकाधिपत्य उस दैत्य ने अपने हाथों में रखा था ॥ ११ ॥ हे शङ्करि! सब जगह इस भण्ड ने इस दैत्य-वेद एवं दैत्य-यज्ञ का प्रवर्त्तन किया। कहीं भी देवयज्ञ या ब्रह्मयज्ञ का नामोनिशान नहीं रहा ॥ १२ ॥ भण्ड-प्रशासित राज्यों में ब्राह्मणादि की प्रवृत्ति निषिद्ध थी। उस दैत्य को युद्ध में हे महेश्वरि! आज आपने मार गिराया ॥ १३ ॥ दैत्यगण भाग गये, लोकपाल प्रभृति अपनी जगह स्थिर हुए। अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में सब-के-सब निराकुल हैं ॥ १४ ॥ इस तरह बोलते देवताओं के सामने विश्वकर्मा पहुँच कर दोनों हाथ जोड़कर महादेवी और देवताओं को प्रणाम कर ॥ १५ ॥ हे पितामह! मेरुशिखर पर देवी के श्रीपुर-निर्माण के हेतु आपने मुझे जैसी आज्ञा दी थी उसका निर्माण मैंने उसी तरह कर दिया है ॥ १६ ॥ देवी और देवताओं के साथ चलकर शीघ्र आप उस नगर को देख लें। विश्वकर्मा की ऐसी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने पूर्ण वृत्तान्त से श्रीदेवी को अवगत कराया ॥ १७ ॥ देवदेवेश की प्रार्थना सुनकर श्रीललिता देवी शक्तिसेना एवं देवगणों के साथ वहाँ देखने विश्वकर्मा के साथ गई ॥ १८ ॥ महाश्रीपुर राज्य का मानो प्रतिबिम्ब हो, ऐसा विश्वकर्मा-निर्मित उस नगर को सबों ने देखा ॥ १९ ॥ श्रीललिताम्बिका का वहाँ निवास करने हेतु विश्वकर्मा-निर्मित उस नगर को देखकर देवता और शक्तिगण बड़े विस्मित हुए ॥ २० ॥ सर्वभाव से प्रणत होकर ब्रह्मादि देवताओं ने उनसे प्रार्थना की तथा उनकी सम्मति प्राप्त कर ॥ २१ ॥ उनके राज्याभिषेक के लिए उत्कृष्ट सामग्रियों की रचना कर सारी सामग्रियाँ शुभ लग्न में जुटाकर ॥ २२ ॥ स्वयं ब्रह्मा ने मुनिगणों के साथ आगम मार्ग से विशुद्धदृष्ट्या अभिषेक के लिए तैयारी कर ली ॥ २३ ॥ सारे देवगण, मारुत, वसुगण, अग्नि, गन्धर्व, देवदूत, दिक्पाल, यक्ष एवं गुह्यक ॥ २४ ॥ राक्षस, किम्पुरुष, किन्नर, सर्प भी, विद्याधर, सिद्ध, मुनि, ऋषि, पितर एवं असुर ॥ २५ ॥ दूसरे-दूसरे ब्रह्माण्डों में अवस्थित करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र, सदाशिव, ईश्वर, श्रीकण्ठ एवं अनन्त भी ॥ २६ ॥ श्रीललितारानी के राज्याभिषेक

सङ्गतास्तत्र ललितामहाराज्याऽभिषेचने । परिचेरुस्तत्र देवीं ललिताऽम्बां समन्ततः ॥ २७॥
ब्रह्माणीकमलागौरीकोटयो भक्तिभावनाः । उपचारैः पृथग्भूतैः पूजयामासुरादरात् ॥ २८॥
एवं कृतस्वस्त्ययनां मङ्गलाचारसंश्रयाम् । नदत्सु शुभवाद्येषु मूर्च्छयत्सु सुमूर्च्छनाम् ॥ २९॥
अवरोहाऽऽरोहगतिलयश्रुतिसमीरणैः । गन्धर्वेषु प्रनृत्यत्सु देववेश्यासु सर्वतः ॥ ३०॥
जपत्सु मुनिवृन्देषु ऋषिषु प्रपठत्सु च । स्तुवत्सु विविधेषूच्चैः प्रेक्षत्सु प्राणिषूद्यमैः ॥ ३१॥
विधिरारोहयद्देवीं महासिंहासने शुभे । अथ मन्त्रप्रपूताऽम्भिर्नवरत्नविचित्रितैः ॥ ३२॥
कलशैः सम्भृतैश्चाऽपि नदीसागरसम्भवैः । अभ्यषिञ्चल्लोकधाता वशिष्ठप्रमुखैर्वृतः ॥ ३३॥
अभिषिच्य महादेवीमनर्घ्याऽऽमरणोज्ज्वलाम् । विचित्रदिव्यवसनां श्रीचक्राऽधिविराजिताम् ॥
पञ्चब्रह्मकारमञ्चशोभिनीं ललिताम्बिकाम् । पूजयामासुरमरा विविधैः सुसमर्हणैः ॥ ३५॥
विधिविष्णुमहेशाद्याः पृथग्भक्तिसमाहिताः । स्तुत्वा विचित्रस्तवनैः प्रणेमुर्भुवि दण्डवत् ॥ ३६॥
एवं श्रीललिता देवी तत्र श्रीपुरशेखरे । सिंहासनेऽभिषिक्ता सा महाश्रीपुरवत्तदा ॥ ३७॥
मन्त्रिणीप्रमुखानां स्वस्थानानि प्रदिशत् पृथक् । एवं घटोद्भव मुने मेरुशृङ्गे महोन्नते ॥ ३८॥
समास्ते श्रीपुरे ब्रह्ममुखशासनतत्परा । देवशिल्पिस्वचातुर्यसर्वसारविनिर्मितम् ॥ ३९॥
नगरं श्रीमहादेव्या भूषणं छत्रपादुके । प्रार्थिता विधिमुख्यैः सा स्वीकृत्य करुणावशात् ॥ ४०॥
चिदानन्दघनाऽपीत्थमास्ते लीलावपुर्धरा । इति श्रुत्वा हयग्रीवात् कथां परमपावनीम् ॥ ४१॥
अगस्त्यः सन्तुष्टमनाः पप्रच्छाऽतिविशङ्कितः । हयग्रीव दयासिन्धो मेरावस्मिन् त्वयोदितम् ॥

में सम्मिलित हुए और सब-के-सब ललिता माता की परिचर्या में सम्मिलित हुए॥ २७॥ भक्तिभावना से परिपूर्ण करोड़ों ब्रह्माणी, कमला और गौरी ने अलग-अलग आदरपूर्वक उपचारों से उनकी पूजा की॥ २८॥ इस तरह मंगलाचार युक्त स्वस्त्ययन कर शुभ बाजे बजाते, विभिन्न सुन्दर शुभद स्वरों से वातावरण को अनुगूंजित करने लगे॥ २९॥ हर ओर देववेश्याएँ और गन्धर्वगण आरोह, अवरोह, गति, लय के साथ नृत्य करने लगे॥ ३०॥ मुनिगण जप कर रहे थे, ऋषिगण पाठ कर रहे थे, देवगण ऊँची आवाज में स्तुति कर रहे थे। प्राणीगण ये कार्य देख रहे थे॥ ३१॥ मन्त्रपूत जल से अभिसिंचित, नवरत्न-जटित शुभ सिंहासन पर विधि ने महादेवी को विराजित किया॥ ३२॥ वशिष्ठ प्रमुख ऋषियों से घिरे पवित्र नदियाँ एवं सागर-जल से भरे कलशजल से ब्रह्माजी ने देवी का अभिषेक किया॥ ३३॥ अभिसिंचन के साथ महादेवी को वेशकीमती उज्ज्वल आभूषणों एवं विचित्र दिव्य वस्त्र पहनाकर श्रीचक्र पर विराजित कर दिये॥ ३४॥ पञ्च ब्रह्मकार मञ्च पर शोभती ललिताम्बा की पूजा देवताओं ने अनेक महत्त्वपूर्ण उपकरणों से की॥ ३५॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि देवगण भक्तिभाव से समन्वित होकर चित्र-विचित्र अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर अलग-अलग धरती पर दण्डवत् होकर प्रणाम किये॥ ३६॥ वहाँ श्रीपुर के शिखर पर श्रीललिता देवी उसी तरह अभिषिक्त हुईं जैसे वह महाश्रीपुर में हुई थी॥ ३७॥ महोन्नत मेरुशृंग पर इस तरह हे कुम्भज मुनि! मन्त्रिणी प्रमुख शक्तियाँ अपने-अपने निर्दिष्ट स्थानों पर विराजित हुईं॥ ३८॥ सम्पूर्ण सौन्दर्य का सार खींचकर देव विश्वकर्मा द्वारा निर्मित श्रीपुर में ब्रह्ममुखशासनतत्परा शक्तियाँ विराजित हुईं॥ ३९॥ नगर, भूषण, छत्र और पादुका ब्रह्मा प्रमुख देवताओं से प्रार्थित होकर दयावश ही उन्हें स्वीकार किया॥ ४०॥ चिदानन्दस्वरूपा होने पर भी लीलाशरीर धारण कर यहाँ विराजित हुईं। यह परम पवित्र कथा हयग्रीव से सुन कर॥ ४१॥ कुम्भज ऋषि ने अतिसन्तुष्ट होकर विशङ्कित भाव से हयग्रीव मुनि से पूछा—हे दयालो! इस मेरुशिखर पर तो आप उदित होते हैं॥ ४२॥

नगरं श्रीमहादेव्यास्तन्मे चित्रं विभाति वै। न मे ह्यविदितं स्थानं ब्रह्माण्डान्तर्भवेत् क्वचित्॥
तत्राऽपि मेरावज्ञातं मया न स्यात् क्वचित् स्थलम्। मेरुर्भुवनचित्रस्य भित्तिवत्परिकल्पितः॥
सन्त्यूर्द्ध्वं सप्तभुवनान्यधः सप्ततलानि वै। मेरुमूर्ध्नि ब्रह्मविष्णुशिवधामानि सन्ति वै॥ ४५॥
तत्र मे नाऽस्त्यविदितो देशोऽपि द्व्यङ्गुलात्मकः। तत् कथं वर्णितं तत्र श्रीपुरं मे समीरय॥ ४६॥
इति पृष्टः कुम्भजेन हयास्यः प्राह हर्षितः। शृणु कुम्भज वक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ ४७॥
न हि तद्भवनं सर्वैर्द्रष्टुं शक्यं कथञ्चन। ये तु श्रीत्रिपुरां शक्तिं विधिना समुपासते॥ ४८॥
तेषां प्राप्यं दृश्यमपि नाऽन्येषां तु कदाचन। तत्ते माहात्म्यसंश्रुत्या भक्तिर्हृदि समुद्गता॥ ४९॥
प्राप्तायां तु पराभक्तौ नाऽप्राप्यं तस्य विद्यते। प्राप्ते रत्नाकरे यद्वद्भवेन्नो रत्नवाञ्छिता॥ ५०॥
तदियं ते सती भार्या लोपामुद्रा परा प्रिया। तस्या दीक्षां समादाय चोपास्य विधिवत्पराम्॥ ५१॥
सिद्धस्तद् द्रक्ष्यसि पुरं नान्यथा तु कदाचन। एतत्ते कुम्भज प्रोक्तं ललिताया महाद्भुतम्॥ ५२॥
विभवं शृण्वतां पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्। कलौ मलीमसहृदां जनानां दुर्धियामिदम्॥ ५३॥
माहात्म्यं त्रिपुरेशान्यास्त्यक्त्वा नाऽन्यत्परायणम्। वैदिकैः कर्मभिर्भूयो निराशीर्भिः कृतैर्भवेत्॥
उपासनेषु श्रद्धाऽन्यदेवताविषया ततः। विष्णौ शिवे शक्तिषु च सर्वान्ते परिपाकतः॥ ५५॥
त्रिपुरामूर्तिसेवायां श्रद्धा भवति शाश्वती। एतदाराधनेनैव विदित्वा स्वाऽऽत्मरूपिणीम्॥ ५६॥
चिदानन्दाऽद्वयमयीं सर्वलोकमहेश्वरीम्। अभिव्यक्तपरैश्वर्यो न पुनर्भवमृच्छति॥ ५७॥
एवं स्वात्मपदप्राप्तौ सोपानं प्रथमन्त्विदम्। श्रवणं श्रीपराशक्तिमाहात्म्यविभवोन्नतेः॥ ५८॥

यहीं तो श्रीमहादेवी का भी नगर बसा है। यह मुझे विचित्र जैसा लगता है, ब्रह्माण्डान्तर में ऐसी कोई जगह नहीं है जिसे मैं नहीं जानता॥ ४३॥ फिर भी इस मेरु पर्वत पर ऐसी तो कोई जगह नहीं है जो मुझे ज्ञात नहीं है। यह मेरुभुवन तो भितिचित्र की तरह परिकल्पित है॥ ४४॥ इसके ऊपर सात भुवन हैं और नीचे सात तल हैं। मेरुशिखर पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव के धाम हैं॥ ४५॥ वहाँ की दो अँगुल की भूमि भी मुझसे अविदित नहीं है। तो फिर श्रीपुर का वहाँ वर्णन जो किया गया है, वह कैसे? कृपया मुझे बतला दें॥ ४६॥ कुम्भज के इस प्रश्न को सुनकर हयानन ने प्रसन्न होकर कहा—हे कुम्भज! यह उत्तम रहस्य बतलाता हूँ, सुनो॥ ४७॥ उस भवन या नगर को सब देखने में समर्थ नहीं हैं। जो व्यक्ति त्रिपुरा शक्ति की विधिवत् उपासना करते हैं॥ ४८॥ वही इस दृश्य को देख पाता है, दूसरा नहीं। उनका यह माहात्म्य सुनकर उनके हृदय में भी भक्ति उद्गत हुई॥ ४९॥ जिसने उस पराशक्ति की भक्ति प्राप्त कर ली है, उसके लिए संसार में कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं है। जिसे रत्न का खजाना हाथ लग जाय, उसे किसी रत्न की इच्छा कैसी?॥ ५०॥ अतः तुम्हारी यह सती भार्या लोपामुद्रा पराप्रिया है। उससे दीक्षा ग्रहण कर विधिवत् पराशक्ति की उपासना कर॥ ५१॥ सिद्ध होकर ही उस पुर के दर्शन कर सकोगे, अन्यथा बिलकुल ही नहीं। हे कुम्भज! ललिता की इतनी ही अद्भुत लीला तुम्हें सुना दी॥ ५२॥ पुरुषों के पापों को विनष्ट करने वाला यह विभव सुनो। कलियुग में मलिन हृदय वाले लोग जिनकी दुष्ट बुद्धि है, वे यह॥ ५३॥ त्रिपुरेशानी का माहात्म्य छोड़कर अन्य देवपरायण होते हैं; वैदिक कर्मों के अनुष्ठान कर निराश ही होते हैं॥ ५४॥ उपासनाओं में अन्य देवता-विषयक श्रद्धा उत्पन्न होती है। उसके बाद विष्णु में, शिव में, शक्ति में और सबसे अन्त में परिपाक के क्रम से॥ ५५॥ त्रिपुरा मूर्ति की सेवा में शाश्वती श्रद्धा होती है। अपनी आत्मस्वरूपा इन्हें जानकर इन्हीं की उपासना से॥ ५६॥ चित् और आनन्द रूपा सर्वलोकमहेश्वरी, परैश्वर्यमयी को जो जान लेता है, उसका फिर पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ५७॥ इस तरह पहली सीढ़ी स्वात्म पद की प्राप्ति

तस्मादादौ सर्वथैव श्रोतव्यं श्रेय इच्छता । एतत् पापप्रशमनं सर्वाभीष्टफलावहम् ॥ ५९ ॥
भक्तिमुत्पाद्य तरसा मोचयेत् परमाद्भयात् । इत्युक्त्वा कुम्भजमुनिपूजितोऽश्वाननो भृशम् ॥
आपृच्छ्य निरगात् स्वीयामभीष्टां दिशमीश्वरः । इति ते कथिता राम ललितायाः कथा शुभा ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तात्रेयपरशुरामसंवादे ललितामाहात्म्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६४८३ ॥



में यही है—श्रीपराशक्ति के उत्कृष्ट वैभव इस माहात्म्य का श्रवण करना ॥ ५८ ॥ इसलिए श्रेय की इच्छा रखने वाले को सर्वथा सर्वप्रथम इसे ही सुनना चाहिए। इससे पाप का प्रशमन होता है तथा अभीष्ट फल मिलता है ॥ ५९ ॥ यह हृदय में भक्ति उत्पन्न करती है तथा हर तरह के भय से मुक्ति दिलाती है। इतना कहने के बाद कुम्भज मुनि ने हयानन की पूजा की ॥ ६० ॥ इतना पूछ कर उनसे अपना अभीष्ट स्पष्ट किया। हे परशुराम! ललिता की शुभ कथा मैंने तुम्हें सुना दी है ॥ ६१ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में दत्तात्रेय-परशुराम संवाद के अन्तर्गत ललितामाहात्म्य नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६४८३ ॥



अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

एवं श्रीललितादेव्या माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम् । जमदग्निसुतः श्रुत्वा हर्षाऽमृतनिषेचितः ॥ १ ॥
भक्तिवारिधिनिर्मग्नो रोमाञ्चोदयपीवरः । निरन्तरप्रवर्द्धर्षनेत्रवारिपरिप्लुतः ॥ २ ॥
विसंज्ञ इव सम्भूतः क्षणमासवमत्तवत् । बभाषे गद्गदश्रुत्या भूयो विरचिताऽञ्जलिः ॥ ३ ॥
भगवन्नहमत्यन्तं पावितो भवताऽधुना । पराकथातीर्थवारिधारानिवहसेचनैः ॥ ४ ॥
उद्धृतो दययाऽपारसंसारजलधेर्ननु । नमस्ते श्रीगुरो नाथ दुःखध्वान्तदिनाधिप ॥ ५ ॥
नमस्ये तं मुनिं शान्तं संवर्तमकुतोभयम् । यो मे मार्गं निरदिशदन्धस्य भ्रमतो यथा ॥ ६ ॥
अद्य यावदहं लोके व्यर्थं कालमुपावहम् । शून्यकूपे भेक इव न स्वार्थमविदं क्वचित् ॥ ७ ॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं भवच्चरणसंश्रयात् । मोक्षलक्ष्मीमभिप्रेप्सुरभवं सर्वथा ननु ॥ ८ ॥
भगवन्मे संशयोऽत्र महान्हृदि समाहितः । तत् पृच्छामि भवन्तं यद्वक्तुं तन्मे समर्हसि ॥ ९ ॥
जानाम्यनुग्रहोऽत्यन्तं मयि ते करुणानिधे । नाऽवक्तव्यं मयि भवेच्छिष्ये कारुणिकस्य ते ॥
कथं कुम्भोद्भवमुनिः सर्वशास्त्रविशारदः । नोपासीत्तां पराशक्तिं सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥ ११ ॥
येनाऽदृश्यमभून्मेरौ श्रीदेव्या नगरोत्तमम् । रुतो वा वेदनिरते न हि स्यात्तस्य दर्शनम् ॥ १२ ॥
भूयः कथं तेन दृष्टं तत्पुरं तद्ब्रवीहि मे । इत्यापृष्टो जामदग्न्यं प्राह दत्तगुरुर्मुनिः ॥ १३ ॥

✻ विमला ✻

सर्वाधिक ललिता देवी का माहात्म्य सुनकर परशुराम हर्षरूपी अमृतरस में भींग गये ॥ १ ॥ भक्तिसागर में गोते खाने लगे, खुशी के मारे रोमाञ्च हो गया, निरन्तर आँखों से पानी बहने लगा ॥ २ ॥ शराबी की तरह मदमस्त हो गये। उन्होंने एक क्षण तन-मन की सुधि भुला दी। फिर हाथ जोड़कर अश्रुपूरित कण्ठ से गद्गद होकर कहा ॥ ३ ॥ हे भगवन्! पराकथा रूपी तीर्थजल की धारा से सिंचित कर इस समय मुझे आपने परम पवित्र बना डाला ॥ ४ ॥ आपने मुझ पर दया कर अपार संसारसागर से उद्धार कर दिया। हे नाथ! दुःखरूपी अन्धकार को मिटाने वाले आप सूर्य हैं। हे गुरुदेव! आपको मेरा प्रणाम है ॥ ५ ॥ भयरहित उस शान्त भयशून्य मुनि संवर्त को भी मेरा प्रणाम, जिन्होंने मुझ भटकते अन्धे को सही राह दिखलायी है ॥ ६ ॥ आज तक संसार में मैं बेकार ही समय गँवाता रहा। सूखे शून्य कुँए में मेढक की तरह मैं अपने स्वार्थ तक को भी नहीं पहचान पाया ॥ ७ ॥ आज मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, आपके ही चरणों का सहारा पाकर मैं निहाल हो गया। आज मैं सर्वथा मोक्षलक्ष्मी को पाने के लिए अग्रसर हुआ हूँ ॥ ८ ॥ हे भगवन्! मेरे हृदय में एक महान् सन्देह उत्पन्न हुआ है, अतः आपसे मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। यदि आप मुझे सुनने योग्य समझते हो तो मैं पूँछू ॥ ९ ॥ हे करुणानिधे! मैं जानता हूँ कि मुझ पर आपका विशेष अनुग्रह है। आप दयालु हैं, मुझ शिष्य के लिए आपके पास कुछ भी अकथनीय नहीं है ॥ १० ॥ सर्वलोकमहेश्वरी उस पराशक्ति की उपासना किये बिना ही कुम्भज ऋषि सर्वशास्त्रविशारद कैसे बने ? ॥ ११ ॥ किस प्रकार से श्रीदेवी का उत्तम नगर मेरु पर्वत पर अदृश्य हुआ ? फिर वेदनिरत व्यक्ति को उनके दर्शन नहीं मिलते ॥ १२ ॥ फिर वे दृष्टिपथ में कैसे आते हैं ? वह कृपया मुझे बतलायें। परशुराम का प्रश्न सुनकर गुरु दत्तात्रेय ने उनसे कहा ॥ १३ ॥ हे परशुराम!

शृणु राम प्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् । न ह्यत्र केवलं शास्त्रं प्रयोजकमुपेयते ॥ १४ ॥
जनानां प्राक्समभ्यस्तवासनावासितात्मनाम् । वासनानां शतं चित्ते सञ्चितं प्राणिनां पृथक् ॥
प्राप्योद्बोधं प्रसरति सत्सङ्गस्तस्य बोधकः । यावद्यत्सङ्गमाप्नोति तावत् तत् स्यान्न चाऽन्यथा ॥
हयग्रीवं समागम्य त्रिपुरावैभवश्रुतेः । सञ्जातत्रिपुराभक्तिः पत्न्या दीक्षां समाददे ॥ १७ ॥
यावद्दीक्षां न विन्देत त्रिपुरोपासकोऽपि सन् । न तावन्मोक्षसौधस्य सोपानाऽऽरोहणक्षमः ॥
विनोपनयनं यद्वद्द्विजानां सर्वकर्मसु । न योग्यता तथाऽत्रापि विना दीक्षां भृगूद्वह ॥ १९ ॥
अप्राप्य सद्गुरोर्दीक्षामज्ञात्वा गुरुपद्धतिम् । स्वबुद्धया तु कृतं कर्म विधिना च समन्वितम् ॥ २० ॥
तथाऽपि साधकं शीघ्रं नाशयत्येव सर्वथा । सेवितारं यथा हन्ति चाऽपक्वन्तु रसायनम् ॥ २१ ॥
मन्त्रं मन्त्रविधानञ्च स्वबुध्यैव गुरुं विना । यः समासादयेत् स हि देवताद्रोहमाप्नुयात् ॥ २२ ॥
नेह लोकः परो वाऽपि विद्यते देवताद्रुहाम् । अज्ञो द्रोहकृतं दोषं नाशयेन्मानवः कथम् ॥ २३ ॥
लोकदृष्टन्याय एष आज्ञाभङ्गकरं नरम् । योजयन्त्येव भूपाला महादण्डैः पृथग्विधैः ॥ २४ ॥
नोपेक्षन्ते सर्वथैव नरमाज्ञाऽपकारिणम् । वेदवादैरेव न हि भवेदत्राऽधिकारिता ॥ २५ ॥
उपासनाऽधिकारार्थं द्विजानां वैदिकक्रमः । पुरुषार्थो वेदविधौ सर्वथा न हि विद्यते ॥ २६ ॥
यदि वेदविदां पुंसां मृषाफलाऽनुसन्धिनाम् । अणुमात्राऽऽत्मभूतानां पुरुषार्थोऽभिमानिनाम् ॥
पुरुषार्थः परः स्याच्चेत् स्थाणूनां न कुतो भवेत् । वैदिका ह्यचलम्मन्याः फलं धूमसमुद्भवम् ॥
क्व दृष्टं चलभूतेन ह्यचलं फलसम्मतम् । मितेषु दुःखभूतेषु फलेषु सुखबुद्धयः ॥ २९ ॥

सुनो, यह उत्तम रहस्य मैं तुम्हें बतलाता हूँ। इस विषय में केवल शास्त्र ही प्रयोजक नहीं होता है ॥ १४ ॥ वासना से वासित लोगों का हृदय पहले से ही सैकड़ों वासनाओं से भरा रहता है। प्राणियों के हृदय में ये वासनाएँ सञ्चित रहती हैं ॥ १५ ॥ उद्बोधन पाकर ही वह प्रसरित होता है और सत्सङ्ग उसका बोधक है। जिसे जैसी संगति मिलती है वह वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥ हयग्रीव के पास पहुँच कर त्रिपुरा का वैभव कुम्भज मुनि ने सुना, इससे उसके हृदय में त्रिपुरा के प्रति भक्ति जगी, फिर उसने पत्नी से दीक्षा ली ॥ १७ ॥ त्रिपुरा के उपासक होने के बावजूद जब तक दीक्षा ग्रहण नहीं करता तब तक मोक्षरूपी प्रासाद पर चढ़ने की सीढ़ी नहीं मिलती ॥ १८ ॥ बिना उपनयन के द्विज-समाज को सब तरह के कर्म करने का अधिकार नहीं होता; उसी तरह बिना दीक्षा के हे परशुराम! त्रिपुरोपासना का कोई महत्त्व नहीं होता ॥ १९ ॥ बिना सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त किये, बिना गुरुपद्धति को जाने उचित ढंग से अपनी बुद्धि के द्वारा किया गया कर्म ॥ २० ॥ साधक को सर्वथा विनाश कर देता है; ठीक उसी तरह जैसे अपक्व रसायन खाने से खाने वालों का ॥ २१ ॥ गुरु के बिना अपनी बुद्धि से जो मन्त्र या मन्त्र-विधान का प्रयोग करता है, वह देवताओं का द्रोह पाता है ॥ २२ ॥ इहलोक और परलोक में कहीं भी कोई भी देवद्रोही नहीं है। फिर अज्ञानतावश द्रोहकृत दोष मनुष्य को क्यों नहीं विनष्ट करते? ॥ २३ ॥ लोकदृष्ट न्याय के अनुसार राजाज्ञा भङ्ग करने वाले व्यक्ति को राजा अलग ढंग से महादण्ड देता है ॥ २४ ॥ आज्ञा नहीं मानने वाले व्यक्ति को वह बिलकुल माफ नहीं करती। केवल वेदाध्ययन से ही इसका अधिकार नहीं मिल जाता ॥ २५ ॥ देवी की उपासना के अधिकार हेतु द्विजों के वैदिक क्रम में या वेद के विधान में सर्वथा ऐसा पुरुषार्थ कहीं नहीं है ॥ २६ ॥ वेदज्ञ व्यक्ति निरर्थक ही इसके फल का अनुसन्धान करते हैं। ऐसे लोगों को अणु मात्र भी यदि आत्मानुभूति उन्हें मिलती है, तो व्यर्थ ही पुरुषार्थाभिमान करते हैं ॥ २७ ॥ पुरुषार्थ अगर भिन्न होता तो फिर पोलों का भी पुरुषार्थ क्यों न होता? धुएँ से उत्पन्न फल की तरह वैदिक इसे भी अचल मानते हैं ॥ २८ ॥ जो

फलस्वरूपाऽनभिज्ञा ह्यफले फलशंसिनः। प्रवर्तितो गुणमयो वेदो धात्रा जगत्कृतिः॥ ३०॥
जगद्यात्राप्रवृद्ध्यर्थं सुराणामभितृप्तये। मर्तुकामस्य विषवत् कामिनां कामनामयः॥ ३१॥
परश्च भागः सङ्गूढो वेदे यस्तं विदुर्न ते। धात्रैव गोपनात्तस्य गुप्तभावेषु मोहिताः॥ ३२॥
नयन्ति तमन्यथैव व्यासो नारायणः स्वयम्। जीवेषु दयया सम्यक् चित्ताऽऽरोहोपयोग्यया॥
तमुपबृंहयद् भूयो परमार्थैकसाधनम्। अतोऽत्र त्यक्तकामानामधिकारो विधीयते॥ ३४॥
सन्न्यासिनोऽपि चिच्छक्तेरुपासनमभीप्सितम्। अज्ञानान्मोहतो वाऽपि विद्योपास्तिं त्यजेत्तु यः॥
स विशेदन्धतामिस्रं न तस्याऽस्ति पुनर्गतिः। सन्न्यासिना तु त्यक्तव्यं सर्वं बन्धात्मना स्थितम्॥
इदं मोक्षात्मकं राम श्रीविद्योपासनन्तु यत्। न त्यक्तुं समुचितं ब्राह्मण्यमिव वै यतेः॥ ३७॥
महापराधस्त्यागो वै स्यादुपास्तेर्भयावहः। तामिस्रमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकमवीचिकम्॥ ३८॥
प्रपद्यन्ते हि ते भूयो ह्यपराधपरा जनाः। दण्डराज्ञ्या समाज्ञप्ताः शक्तयोऽतिविभीषणाः॥ ३९॥
सङ्कर्षिणी कर्षिणी च कालसङ्कर्षिणी तथा। उपास्तिमार्गसरुजानपराधपरान् जनान्॥ ४०॥
योजयन्त्युक्तदुःखेषु स्थानेषु परमातृकाः। उपासनपरो मर्त्यः कैवल्यं पदमश्नुते॥ ४१॥
कर्मिणस्तान्त्रिकस्याऽपि या भवेद्गतिरुत्तमा। वैदिकोपासकस्यैषा सर्वथा न हि विद्यते॥ ४२॥
यतो हि वैदिकं कर्म सर्वथा हि बहिर्मुखम्। अनीश्वरं पौरुषं स्यादतः पशुफलोचितम्॥ ४३॥
तान्त्रिकन्त्वैश्वरं कर्म ज्ञानोपासनमिश्रितम्। मोचयत्याशु संसिद्ध्या श्रद्धाभक्तिसुबृंहितम्॥
यथोक्तकर्मणा चित्तशुद्धिमासाद्य विद्यया। प्राप्यतेऽत्रैव शिवता प्रबुद्धैः पौरुषेण हि॥ ४५॥

चंचल है उससे अचल फल उत्पन्न होते किसने देखा है? परिमित दुःख-समूह रूपी फलों में सुखबुद्धि कैसी?॥ २९॥ फल के असली स्वरूप से अनभिज्ञ जो फल नहीं उसे ही फल मानते हैं। विधाता की जगत्कृति की तरह गुणमय यह वेद भी जुड़ा है॥ ३०॥ संसार-यात्रा बढ़ाने के लिए, देवताओं की तृप्ति के लिए, मरण चाहने वाले कामियों की जहरी इच्छा की तरह॥ ३१॥ इसका दूसरा भाग वेद में गुप्त रूप से निहित है, जिसे वे नहीं जानते हैं। विधाता ने ही इसे गुप्त भाव से गोपनीय बना रखा है॥ ३२॥ जीवों पर दया कर मन में ठीक ढंग से समझ में आने योग्य स्वयं नारायण व्यास ने इसे बना दिया है॥ ३३॥ परमार्थैकसाधनभूत इस तथ्य को फिर आगे बढ़ाया है। अतः कामनाशून्य व्यक्ति को ही इसमें प्रवेश का अधिकार है॥ ३४॥ संन्यासीगण भी इस चित् शक्ति की उपासना की कामना करते हैं। अज्ञान से या मोहवश जो श्रीविद्या की उपासना नहीं करते॥ ३५॥ वह घोर अन्धकार में गिरता है। उसकी कोई दूसरी गति नहीं है। संन्यासियों को तो हर बन्धन ही तोड़ देना चाहिए॥ ३६॥ हे राम! श्रीविद्या की उपासना मोक्षात्मक है। संन्यासियों के लिए यह ब्राह्मण्य है, अतः इसका त्याग उचित नहीं है॥ ३७॥ इसका त्याग महान् अपराध है, अत्यधिक भयावह है; ऐसे लोग अन्धकाराच्छन्न कुम्भीपाक नरक में गिरते हैं॥ ३८॥ ऐसे अपराधीगण दण्डराज्ञी के आदेश से अतिभीषण शक्तियों के हाथ में सौंप दिये जाते हैं॥ ३९॥ सङ्कर्षिणी, कर्षिणी तथा कालसङ्कर्षिणी अपराधी जनों को सरुज मार्गों पर घसीटती हैं॥ ४०॥ परमातृका उक्त दुःखद रास्तों पर उन्हें घसीटती हैं, किन्तु ठीक इसके विपरीत उपासनातत्पर व्यक्ति कैवल्य पद प्राप्त करते हैं॥ ४१॥ तान्त्रिक अनुष्ठान करने वाले व्यक्ति को जो उत्तम गति मिलती है, वह गति वैदिकोपासक के लिए सर्वथा दुर्लभ है॥ ४२॥ क्योंकि वैदिक कर्म सर्वथा बहिर्मुख है, अनीश्वर एवं पौरुष है। अतः इसे पशुफलोचित ही कहा गया है॥ ४३॥ तान्त्रिक अनुष्ठान ईश्वरीय है, इस कर्म में ज्ञान की उपासना मिली है। श्रद्धाभक्तिसमन्वित सिद्धि इसमें शीघ्र ही मिलती है॥ ४४॥ प्रबुद्ध पौरुष के साथ यथोक्त कर्म से चित्तशुद्धि प्राप्त कर श्रीविद्या से यहीं शिवता

अबुधा अपि मुच्यन्ते कर्म कृत्वा यथाक्रमात्। नाऽधिकारो विना दीक्षां कर्मणि ज्ञानसाधने॥
दीक्षावन्तस्तु देहान्ते प्राप्य लोकं परात्परम्। सदाशिवेन ते सम्यक् प्रबुद्धाः शिवरूपिणः॥ ४७॥
कर्मिणोऽप्यप्रबुद्धा ये ते भवन्ति भृगूद्वह। तस्मान्न वेदशास्त्राद्यैः शुष्कैः सद्गतिराप्यते॥ ४८॥
विना श्रीत्रिपुरासेवां प्रवृत्तिर्वा कथं सती। न साधनं फलं वाऽपि प्रवृत्तिर्वाऽपि भार्गव॥ ४९॥
विना श्रीत्रिपुरेशान्याः कृपया सम्भविष्यति। आराध्य शिवविष्ण्वादीनपि यत् प्राप्यते फलम्॥
तच्चाऽपि तस्याः कृपया भवतीति विनिश्चयः। पूजनं सर्वदेवानां पराशक्तेः प्रपूजनम्॥ ५१॥
शक्तिं विना न पूजाया ग्रहणं सम्भवेत् क्वचित्। तस्मात् पूजा तु शक्तेः स्यात् सर्वत्र विहिता जनैः॥
फलप्रदानशक्तिन्तु विचार्याऽऽदौ विचक्षणाः। पूजयन्ति पृथक् देवं फलं विन्दन्ति तत्तथा॥ ५३॥
लोकेऽप्यशक्तः कुत्राऽपि न पूज्यः स्यात्तु भार्गव। आश्रयत्वाच्छिवमृते शक्तिर्नैव तु विद्यते॥
इति चेन्निजसत्तात्मशक्तिहीनः शिवस्तथा। प्रकाशशक्तिहीनो वै रविः कुत्र कदा भवेत्॥ ५५॥
यथा तथा चितिं शक्तिमृते स्याद्वै शिवः कथम्। चितिशक्त्या परित्यक्तं तृणं वाऽपि कथं भवेत्॥
सत्यां चिति ह्यस्मि सर्वमन्यथा न हि किञ्चन। यदस्ति तच्चितिरिति जानीहि भृगुनन्दन॥ ५७॥
एतच्छाक्तं हि विज्ञानं मत्तोऽन्यन्न हि विद्यते। एवं बुद्ध्या तु यत् किञ्चित् तृणञ्च त्रिपुरात्मकम्॥
संज्ञायामेव लोकेऽस्मिन् विवदन्ति मनीषिणः। तस्मात्त्यजाऽत्र सन्देहमेतत्सर्वत्र वै समम्॥
वाङ्निरुक्त्यै प्रवृत्ता वै विशेषाऽऽलम्बनं गता। निर्विशेषन्तु तद्रूपमखण्डैकचिदात्मकम्॥ ६०॥
विशेषज्ञो भवेद्यावत्तावन्न स्याद्धि तत्परः। वेदा विशेषबहुला गूहयन्त्यविशेषकम्॥ ६१॥

प्राप्त कर लेगा॥ ४५॥ अबुध व्यक्ति भी कर्म कर यथाक्रम से इस कर्म के साधन में बिना दीक्षा का अधिकार नहीं पाते हैं॥ ४६॥ दीक्षाप्राप्त व्यक्ति मरने के बाद परात्पर लोक प्राप्त कर सदाशिव के साथ शिवस्वरूप में ही प्रबुद्ध होते हैं॥ ४७॥ हे परशुराम! तान्त्रिक अनुष्ठाता अबुद्ध होकर भी प्रबुद्ध बन जाते हैं। अतः शुष्क वेदशाखा से सद्गति कदापि नहीं मिलती॥ ४८॥ हे भार्गव! बिना त्रिपुरा की सेवा से मनुष्य की उस दिशा में प्रवृत्ति ही नहीं होती। न तो उसे साधन का फल मिलता है और न उधर प्रवृत्ति ही होती है॥ ४९॥ शिव एवं विष्णु प्रभृति की आराधना कर जो फल लोग पाते हैं, वह भी भगवती त्रिपुरा की कृपा के बिना सम्भव नहीं है॥ ५०॥ वह भी उसी की कृपा से होती है, यह निश्चित है। सभी देवताओं का पूजन उसी पराशक्ति की पूजा है॥ ५१॥ शक्ति की पूजा के बिना कोई अन्य पूजा ग्राह्य नहीं होती। अतः सर्वत्र लोगों में शक्ति की पूजा ही विहित है॥ ५२॥ अतः विलक्षण व्यक्ति सर्वप्रथम शक्तिपूजा कर ही अन्य देवताओं की पूजा कर उसका फल पाते हैं॥ ५३॥ लोकव्यवहार में भी हे परशुराम! शक्तिहीन को कोई नहीं पूजता, उसी तरह शक्तिविहीन शिव भी मृत होता है॥ ५४॥ ऐसी स्थिति में शिव भी आत्मशक्तिहीन होने पर अपनी सत्ता ही खो देता है। प्रकाशशक्तिविहीन कहीं कोई सूर्य होता है?॥ ५५॥ इसो तरह जैसे-तैसे शक्तिविहीन शिव कैसे? चित् शक्ति के बिना क्या घास-फूस का अस्तित्व भी सम्भव है?॥ ५६॥ चितिशक्ति के कारण ही हमारा अस्तित्व सुरक्षित है, अन्यथा कुछ भी नहीं है। हे भृगुनन्दन! जो कुछ भी है, चितिशक्ति के कारण ही जानो॥ ५७॥ यही शक्ति-विज्ञान है। मुझसे अलग और कुछ नहीं है–इस बुद्धि से जो कुछ भी है, यहाँ तक कि तृण भी, उन्हें त्रिपुरात्मक ही मानो॥ ५८॥ इस संसार में नाम के कारण ही मनीषीगण विवाद करते हैं। इसलिए यहाँ सन्देह छोड़ दो, सबको समान दृष्टि से ही देखो॥ ५९॥ वाणी और व्युत्पत्ति के लिए लोग विशेष आश्रय का सहारा लेते हैं। वह तो सदा ही निर्विशेष है, उसका रूप अखण्ड है, एकमात्र चिदात्मक है॥ ६०॥ जब तक मनुष्य विशेषज्ञ होगा तब तक उसमें तत्परता नहीं

अतोऽगस्त्यस्तत्पुरं तु नाऽपश्यद्वैदिकोऽपि सन्। वेदार्थः परमो यस्तु त्रिपुरैव हि सा भवेत्॥ ६२॥
अतस्त्रैपुरसंसिद्धौ साधनं वेद उच्यते। वेदार्थस्यैव व्यसनं पुराणं व्यास ऊचिवान्॥ ६३॥
वेदो ह्यागमभागः स्यात् शब्दराशिस्तथाऽऽगमः। तस्या मूर्त्तिरतः सर्वं प्रवृत्तं तस्य संश्रयात्॥
त्रैवर्णिकाऽधिकारेण वेदरूपः प्रवर्तते। दयया परमेशानः सर्वानुद्धर्तुमिच्छया॥ ६५॥
वेद आगमसंज्ञानं विभावयदनुत्तमम्। आगमः परमेशस्य विमर्श इति निश्चयः॥ ६६॥
क्रमेण ब्रह्ममुख्यानां मुखादुद्भावयत्तु तम्। अपारो ह्यागमाऽम्भोधिः सर्वलोकेषु सङ्गतः॥ ६७॥
कालेन मन्दधिषणान् कृपणानभिलक्ष्य तु। ऋषिभिस्तमागमाब्धिं मथित्वा प्राज्यया धिया॥
सारसंग्रहरूपात्मतन्त्राऽमृतमनुत्तमम्। देशभेदविभेदेन पृथगेव विभावितम्॥ ६९॥
तत्र द्विजानां वेदोक्तकर्मभिः संस्कृतात्मनाम्। श्रौतकर्ममुखेनैव तान्त्रिके ह्यधिकारिता॥ ७०॥
शूद्रादीनान्तु कैवल्याद्भवेत्तन्त्राधिकारिता। वेद एव हि तन्त्रं स्यात्तन्त्रं वेदः प्रकीर्तितम्॥ ७१॥
नाऽनयोर्विद्यते भेदो लेशांशेनाऽपि कुत्रचित्। तथा हि वेदभागेषु तन्त्रभागः प्रदृश्यते॥ ७२॥
यत्र मन्त्रयन्त्रपूजाविधानं सुस्फुटं स्थितम्। एवंविधो वेदभागो यतस्तन्मूर्ध्नि संस्थितः॥ ७३॥
तन्त्रसङ्केतसंयुक्तस्ततस्तन्त्रं समुत्तमम्। तन्त्रेष्वपि वेदभागा मन्त्रब्राह्मणभेदिताः॥ ७४॥
दृश्यन्ते कर्मविधिषु तस्मात्तन्त्रं समुत्तमम्। एवं पुराणादिषु च तन्त्रभागः प्रदृश्यते॥ ७५॥
तथा तन्त्रेषु सर्गादिलक्षणोंऽशः प्रदृश्यते। स पुराणप्रभागः स्यादेवं जानीहि भार्गव॥ ७६॥
तस्माच्छ्रीत्रिपुराख्यायाः सहजाऽऽमर्शसम्भवः। आगमाब्धिस्ततो वेदांस्तन्त्राणि च विभावय॥

होगी। वेद विशेष-बहुल हैं, अतः अविशेष को वे छिपाये हैं॥ ६१॥ अतः कुम्भज मुनि वैदिक होकर भी उस श्रीपुर को नहीं देख पाते हैं। वेदों का जो परम अर्थ है, वह तो त्रिपुरा ही हैं॥ ६२॥ अतः त्रिपुरा के संसाधन को वेद कहा जाता है। अतः वेद के अर्थ का ही व्यसन व्यासजी ने पुराण के रूप में वर्णित किया है॥ ६३॥ वेद आगम का एक भाग है और आगम शब्दों का समूह है। अतः उसकी मूर्ति में आश्रय ग्रहण कर सब कुछ प्रवृत्त है॥ ६४॥ परमेश्वर ने कृपा कर सभी लोगों के उद्धार की इच्छा से त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के अधिकार के लिए वेदस्वरूप का प्रतिष्ठापन किया॥ ६५॥ वेद और आगम जिसे कहते हो उस पर सोचो। आगम निश्चित रूप से परमेश्वर का विमर्श है॥ ६६॥ ब्रह्मादि प्रमुख के मुख से निकले इन्हें मानो। आगम एक अपार सागर है, जो सर्वलोक में जुड़े हैं॥ ६७॥ कालक्रम से मन्दबुद्धि एवं कृपण व्यक्ति को देखकर ऋषियों ने उस आगमसागर को अपनी प्रखर बुद्धि से मथ कर॥ ६८॥ उनके साथ संग्रह रूप उत्कृष्ट तन्त्रशास्त्र रूपी अमृत को देशभेद एवं उसके विभेद से अलग ही इसकी विभावना की है॥ ६९॥ वहाँ भी द्विजों के लिए वेदोक्त कर्म से अपने को सुसंस्कृत बनाकर ही श्रौतकर्म मुख से ही तन्त्रशास्त्र की अधिकारिता कही गई है॥ ७०॥ शूद्रादिकों के लिए कैवल्य से ही उसे तन्त्रशाला की अधिकारिता मिलती है। वे ही तन्त्र है और तन्त्र को ही वेद कहा जाता है॥ ७१॥ उन दोनों में कहीं कोई भेद नहीं है, थोड़ा भी अन्तर नहीं है। वेद के ही खण्ड में तन्त्रखण्ड भी सुरक्षित है॥ ७२॥ जहाँ मन्त्र, यन्त्र और पूजा विधान है वेद का यही खण्ड सर्वश्रेष्ठ है॥ ७३॥ तन्त्र का जहाँ संकेत है उसके बाद ही उत्कृष्ट तन्त्र का विधान है। तन्त्रों में भी जो वेद का भाग है उसमें मन्त्र और ब्राह्मण के भेद से वे अवस्थित हैं॥ ७४॥ ये कर्म विधियों में दृश्य हैं, अतः तन्त्र सबमें उत्कृष्ट है। इसी तरह पुराणों में भी तन्त्रभाग देखे जाते हैं॥ ७५॥ उसी तरह तन्त्रों में सर्गादि लक्षणों का अंश दीख पड़ता है, वह पुराण का ही एक प्रभाग है। हे भार्गव! इसे इसी तरह जानो॥ ७६॥ अतः सहज विचारसम्भव त्रिपुरा ही है। उसके बाद आगम रूपी सागर को वेद

नियतिर्या हि तच्छक्तिस्तया सर्वं व्यवस्थितम्। अतोऽगस्त्यस्तन्त्रदीक्षारहितो वैदिकोऽपि सन्॥
नाऽपश्यत्तत्पुरं तत्र मेरौ नियतियन्त्रितः। अथ श्रुत्वा महादेव्या माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम्॥ ७९॥
भक्तियुक्तः प्राप्य दीक्षां तान्त्रिकीं क्रमसंयुताम्। पत्न्या उपास्य त्रिपुरां तत्र श्रीनाथमण्डले॥
स्थानं प्राप्य प्रियायुक्तः परमानन्दनिर्भरः। एवं तेन समाक्रान्तं दृष्टश्च स्थानमुत्तमम्॥ ८१॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे आगमस्वरूप-
निर्णयो नामैकोनाऽशीतितमोऽध्यायः॥ ६५६४॥



और तन्त्र के रूप में ही सोचो॥ ७७॥ जो नियति है, वही शक्ति है, उसी से सब कुछ व्यवस्थित है। अतः कुम्भज मुनि ने वेदज्ञ होकर भी दीक्षारहित होने के कारण ही॥ ७८॥ नियति से यन्त्रित होकर मेरु पर्वत की चोटी पर अवस्थित श्रीपुर को नहीं देखा। महादेवी के सर्वतोधिक माहात्म्य सुनकर॥ ७९॥ भक्तियुक्त तान्त्रिकी दीक्षा क्रमयुक्त अपनी पत्नी से प्राप्त कर श्रीनाथमण्डल में त्रिपुरा की उपासना कर॥ ८०॥ पत्नी के साथ स्थान प्राप्त कर परमानन्द को प्राप्त किया। इस तरह उससे समाक्रान्त होकर श्रीपुर को उन्होंने देखा॥ ८१॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में आगमस्वरूप-
निर्णय नामक उनासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६५६४॥



अथाऽशीतितमोऽध्यायः

एवं श्रुत्वा कथां रामो दत्तात्रेयनिरूपिताम्। भूयः प्राह प्रसन्नात्मा प्रणम्य रचिताऽञ्जलिः॥ १॥
भगवन्नाथ यत्प्रोक्तं श्रुतं तदमृतोपमम्। अभवं मुक्तसन्देहः किञ्चित् पृच्छामि वै पुनः॥ २॥
एवं दीक्षां समासाद्य त्रिपुराऽऽराधनोद्यतः। कुर्वन्नित्यक्रियां केन विशेषेण हि कर्मणा॥ ३॥
शीघ्रं महाफलं प्रेयाद्राजा चाऽकिञ्चनोऽपि च। तन्मे समाचक्ष्व गुरो कृपया मयि सेवके॥ ४॥
इति दत्तगुरुः पृष्टः प्राह तद्भक्तिहर्षितः। शृणु राम महागुह्यं त्रिपुराप्रीतिकारकम्॥ ५॥
शिवो यथाऽभिषेकेन प्रणामैर्दिनकृद्यथा। नैवेद्यैस्तु गणेशानोऽलङ्काराद्धरिरेव च॥ ६॥
पूजनेन विशेषैस्तु विधिना प्रीयते तथा। पराशक्तिर्महेशानी तत्र सर्वोत्तमं शृणु॥ ७॥
प्रासादमुन्नतं चित्रं निर्माय निजशक्तितः। तत्र श्रीचक्रराजं वा मूर्तिं वाऽपि सुलक्षणाम्॥ ८॥
संस्थाप्य विधिना तत्र स्वयं वाऽन्येन वाऽन्वहम्। पूजयेत् पञ्चकालं वा चतुस्त्रिद्व्येककालकम्॥
उषः प्रातर्मध्यदिने प्रदोषे चाऽर्धयामके। नित्यं वा द्वित्र्येककालं पञ्चकालञ्च पर्वसु॥ १०॥
उत्सवोऽपि प्रकर्तव्यो महापर्वसु सर्वथा। रथेन वाहनैर्यानैरुत्सवप्रतिमां बहिः॥ ११॥
परिक्राम्याऽऽगमोक्तेन नृत्यमङ्गलगायनैः। एवं यः कुरुते लोके स वसेच्छ्रीपुराऽन्तरे॥ १२॥
नीलवप्राऽन्तरालेषु सर्वभोगोपसम्भृतः। असमर्थोऽन्यविहिते स्थापयेच्चक्रनायकम्॥ १३॥

*** विमला ***

इस तरह दत्तात्रेय से कथा सुनकर परशुराम ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम कर प्रसन्न होते हुए अञ्जलिबद्ध होकर पुनः पूछा॥ १॥ हे भगवन्! हे नाथ! आपने जो अमृतोपम कथा सुनायी, उसे मैंने सुन ली है। मेरा सारा सन्देह अब समाप्त हो गया, फिर भी मैं आपसे कुछ पूछना चाहूँगा॥ २॥ इस तरह दीक्षा प्राप्त कर त्रिपुरा की आराधना में तत्पर, नित्य क्रिया करते हुए किस विशेष कर्म से॥ ३॥ राजा हो या रंक महाफल प्राप्त करे, वह भी अतिशीघ्र ही; हे गुरुदेव! मुझ शिष्य पर दया कर बतलायें॥ ४॥ उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर प्रश्न का जवाब देते हुए गुरु दत्तात्रेय ने कहा—हे राम! त्रिपुरा-प्रीतिकर यह महागोपनीय विषय है॥ ५॥ जैसे शिव अभिषेक से, सूर्य प्रणाम से, गणेशजी नैवेद्य से, विष्णु अलङ्कार से॥ ६॥ विशेष विधि से पूजा करने पर प्रसन्न होते हैं, उसी तरह पराशक्ति महेश्वरी परम प्रसन्न कैसे होती हैं वह सुनो॥ ७॥ अपनी शक्ति के अनुसार उनका उत्तम चित्र बनाकर, वहाँ सुलक्षणा मूर्ति का चक्रराज को॥ ८॥ स्थापित कर विधिपूर्वक स्वयं अथवा किसी दूसरे के द्वारा प्रतिदिन पाँच बार या बार-बार या कम-से-कम एक बार अवश्य पूजा करनी चाहिए॥ ९॥ उषःकाल, प्रातःकाल, दोपहर, दिन में, प्रदोष वेला में एवं मध्य रात्रि में प्रतिदिन दो, एक या पाँच बार प्रत्येक पर्व के अवसर पर॥ १०॥ उत्सव काल में या महापर्व के अवसर पर भी प्रतिमा को रथ, वाहन एवं यान के साथ बाहर निकाले॥ ११॥ आगम में बतलायी गई विधि से नृत्य और मङ्गलगान के साथ परिक्रमा कर जो पूजा करते हैं वे निश्चित रूप से श्रीपुर में निवास करते हैं॥ १२॥ नीले प्राचीरों के भीतर हर तरह की भोग-सामग्रियों से भरपूर चक्रनायक की स्थापना करें। असमर्थ व्यक्ति अन्य विधि से स्थापित करें॥ १३॥ चक्रस्थापन की तरह

चक्रस्थापनतुल्यं नो विद्यते त्रिपुराप्रियम् । न तस्य पुनरावृत्तिः सायुज्यं विन्दते क्रमात् ॥ १४ ॥
श्रीचक्रस्थापनादेव फलानन्त्यं समीरितम् । यत्र स्यात् स्थावरं यन्त्रं निवसंस्तत्समीपतः ॥ १५ ॥
उपासको हेममये वप्रे निवसति ध्रुवम् । उपासकस्तु जानीयात्तत्क्षेत्रं सर्वतोऽधिकम् ॥ १६ ॥
तत्राप्यशक्तो विभवानुरोधाच्छुभपर्वसु । पूजयेत् स्थावरं चक्रं मूर्तिं वा भक्तिपूर्वकम् ॥ १७ ॥
चरयन्त्रादिपूजायाः स्थिरयन्त्रादिपूजनम् । फलं समावहेल्लक्षगुणं राम न संशयः ॥ १८ ॥
यन्त्रे सावृतिमम्बान्तु विधानेन प्रपूजयेत् । तत्तत्स्थाने भावयन् वै महाफलसमाप्तये ॥ १९ ॥
यथा सूर्यस्य किरणाः सर्वतः समवस्थिताः । सूर्याऽऽत्मभूतास्तस्यांऽशाः सर्वलोकप्रसादकाः ॥
शीताऽन्धकाररोगादिनाशकाः प्राणिनस्तथा । त्रिपुरायाः पराशक्तेः परिवाराख्यदेवताः ॥ २१ ॥
लोकवाञ्छार्थदानाय नियुक्तास्तु तयैव ताः । तस्यांऽशभूताः सर्वा वै तस्मात् पूज्या यथाविधि ॥
किरणानां पिण्डमयो यथा सूर्यो नभःस्थितः । तथैवाऽऽवृतिशक्तीनामैक्यात्मा त्रिपुरा मता ॥
बिन्दुचक्रे समासीना देवदेवमहेश्वरी । अशक्तः पूजयेद्भक्त्या यथामति यथाक्रमम् ॥ २४ ॥
परिवारपिण्डमयीं सामान्यैर्द्रव्यवैभवैः । यथाकथञ्चिद्वा पूज्या स्थावरे परमेश्वरी ॥ २५ ॥
यस्तु प्राप्य स्थावरन्तु चक्राद्यं न प्रपूजयेत् । तमात्मघ्नं विजानीयात् सर्वलोकविनिन्दितम् ॥ २६ ॥
अशक्तो गन्धकुसुमफलाऽक्षतजलैस्तथा । दक्षिणाताम्बूलदीपप्रणामपरिवर्तनैः ॥ २७ ॥
सर्वैरेकद्वयादिभिर्वा शक्त्या तां तत्र पूजयेत् । सहस्राद्यैर्नामभिस्तु यश्चक्रादौ प्रपूजयेत् ॥ २८ ॥

कोई दूसरी वस्तु त्रिपुरा के लिए प्रिय नहीं है। संसार में उसका पुनरागमन नहीं होता है। क्रम से उसे सायुज्य मिल जाता है॥ १४॥ श्रीचक्र की स्थापना का अनन्त फल कहा गया है। जहाँ यह स्थावर यन्त्र स्थापित है, उसके पास ही उसका निवास होता है॥ १५॥ निश्चित रूप से त्रिपुरा का उपासक स्वर्णमय दुर्ग में निवास करता है। वही इस क्षेत्र के बारे में सर्वाधिक जानकारी भी रखता है॥ १६॥ इसमें भी अशक्त व्यक्ति को अपने विभव के अनुसार शुभ पर्व के अवसर पर स्थावर चक्र की अथवा देवी की मूर्ति की पूजा करनी चाहिए॥ १७॥ चर यन्त्रादि की पूजा की अपेक्षा स्थिर यन्त्रादि की पूजा लाख गुना अधिक फल देने वाली होती है। हे राम! उसमें संशय नहीं है॥ १८॥ यन्त्र में सावृति जगदम्बा की विधानपूर्वक पूजा कर, उसी यन्त्र में भगवती की भावना कर कोई व्यक्ति महान् फल प्राप्त करता है॥ १९॥ जैसे सूर्य की किरणें हर जगह समान रूप से अवस्थित रहती हैं, उसी तरह सूर्यात्मभूत भगवती का अंश सर्वलोक के लिए प्रसादक हैं॥ २०॥ पराशक्ति त्रिपुरा के पारिवारिक देवगण प्राणियों के शीत, अन्धकार एवं रोगादि के विनाशक हैं॥ २१॥ लोगों को अभिलषित वस्तु प्रदान करने के लिए उन्हीं के द्वारा ये शक्तियाँ नियुक्त हैं। ये सब उन्हीं के अंश से समुद्भूत हैं; अतः यथाविधि से भी पूजनीया हैं॥ २२॥ किरणों के पिण्डमय सूर्य जैसे आकाश में अवस्थित हैं, ठीक उसी तरह प्रत्यावर्तन शक्तियों का ऐक्यात्मा भगवती त्रिपुरा को कहा गया है॥ २३॥ वह देवदेव महेश्वरी बिन्दुचक्र पर समासीन हैं। जो व्यक्ति अशक्त है, वह अपनी बुद्धि और अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक यथाक्रम पूजा करे॥ २४॥ परिवार-पिण्डमयी स्थावर यन्त्र रूपी परमेश्वरी सामान्य द्रव्य एवं विभव से यथाशक्ति पूज्या है॥ २५॥ स्थावर चक्रादि को पाकर भी जो उसकी पूजा नहीं करता उसे सर्वलोक-विनिन्दित आत्मघाती मानना चाहिए॥ २६॥ अशक्त व्यक्ति गन्ध, फल, फूल, अक्षत, जल, ताम्बूल, दीप, दक्षिणा और प्रणाम से पूजा करे॥ २७॥ सब उपकरण इकट्ठा कर अपनी शक्ति से वहाँ उनकी पूजा करें तथा उनके सहस्र नामों से चक्रादि पर उनकी पूजा करें॥ २८॥ इनकी थोड़ी भी पूजा कर नर हो या नारी—सब

सकृत् सम्पूज्य च नरो नारी वा सर्वपातकैः। मुच्यते नाऽस्ति सन्देह इत्याह भगवान् शिवः॥
अथ लक्षप्रपूजादिविधानं शृणु वच्मि ते। विशेषपर्वसु तथा शुक्रवारेऽपि वाऽऽरभेत्॥ ३०॥
सङ्कल्प्य पूज्य गणपं स्वस्तिं विप्रैर्हि वाचयेत्। ततः सम्पूज्य विधिना चाऽऽवृत्यन्तं महेश्वरीम्॥
पूजयेत् सावृतिं देवीमुपचारैस्तु पञ्चभिः। तत्र पुष्पोपचारस्य स्थाने पूजां समाचरेत्॥ ३२॥
सहस्राद्यैर्नामभिस्तु ततो धूपादिपूजनम्। समापयेद्यथावत्तु प्रत्यहञ्चैवमर्चयेत्॥ ३३॥
समसंख्याविधानेन प्रत्यहं पूजयेत् क्रमात्। एकजातीयकैः पुष्पैर्यत्रैव पूजयेत् पराम्॥ ३४॥
स्वयं वा पुत्रपत्न्याद्यैर्ब्राह्मणद्वारतोऽपि वा। अन्ते तु सर्वतोभद्रे नवयोनिसमायुते॥ ३५॥
कलशं सुप्रतिष्ठाप्य सौवर्णादिसमुद्भवम्। अलङ्कृतं सूत्रवस्त्रैर्मध्ये तण्डुलपुञ्जके॥ ३६॥
अलङ्कृतं धूपितञ्च निधाय मनुमुच्चरन्। तमष्टगन्धतोयेन पूरयेत् पञ्चरत्नकम्॥ ३७॥
निक्षिप्य तस्मिन् तद्वत् क्रमादाच्छाद्य पञ्चपल्लवैः। सतण्डुलं फलं पूर्णं पात्रञ्चाऽपि मुखे न्यसेत्॥
तत्र प्रतिकृतिं देव्याः सर्वाऽवयवशोभिताम्। विन्यस्य तस्यामावाह्य पूजनन्तु समाचरेत्॥ ३९॥
तत्राऽऽदौ सर्वतोभद्रदेवताः क्रमतो यजेत्। दशदिक्षु च दिक्पालान् शृङ्खलासु चतुर्षु च॥ ४०॥
धर्मादीन्मध्यभवने श्वेतेऽधर्मादिकान् यजेत्। रक्ताऽर्धभवने पूर्वात् प्रादक्षिण्येन पूजयेत्॥ ४१॥
असिताङ्गादिमिथुनं मेखलासु गुणत्रयम्। एवं सम्पूज्य कलशे पीठपूजनपूर्वकम्॥ ४२॥
विधिनाऽऽवाह्य त्रिपुरां पूजयेदुपचारकैः। तत्तत्पुष्पादिकं स्वर्णभवं वा रजतोद्भवम्॥ ४३॥
माषाद्वा कर्षतो वाऽपि कुर्यादन्यूनमुत्तमम्। तदर्धं पादमपि वा कृत्वा तन्नवसङ्ख्यकम्॥ ४४॥

पापों से मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए; यह भगवान् शिव का कथन है॥ २९॥ अब लक्षपूजादि का विधान मैं बताता हूँ, सुनो। विशेष पर्व के अवसर पर तथा शुक्रवार के दिन पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए॥ ३०॥ सर्वप्रथम सङ्कल्प लेकर गणेश की पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराये। उसके बाद आवृत्यन्त महेश्वरी की सविधि पूजा कर॥ ३१॥ पञ्चोपचार से सावृति देवी को पूजे। उसके बाद उस स्थान पर पुष्पोपचार से पूजा प्रारम्भ करे॥ ३२॥ सहस्रादि नामों से पूजकर धूपादि से पूजन करे। फिर यथावत् पूजन प्रतिदिन करे॥ ३३॥ समसंख्यक विधान से क्रमशः प्रतिदिन पूजन करे। एकजातीय फूलों से उस पराशक्ति की पूजा करनी चाहिए॥ ३४॥ स्वयं अथवा पुत्र अथवा पत्नी या ब्राह्मणों से पूजा कराये। अन्त में नवयोनि-समायुक्त सर्वतोभद्र में॥ ३५॥ सुवर्ण प्रभृति से निर्मित कलश की अच्छी तरह स्थापना कर उसे सूती वस्त्र और चावल की ढेर के बीच अलंकृत कर॥ ३६॥ उस अलंकृत एवं धूपित कलश को मन्त्रोपचार करते हुए अष्टगन्धयुक्त जल भरकर पञ्चरत्न॥ ३७॥ उसमें डाल दे। फिर उसी तरह क्रमशः पञ्चपल्लवों से उसे आच्छादित कर चावल के साथ फल और पूर्णपात्र कलश के मुख पर रखे॥ ३८॥ सभी अवयवों से सुशोभित भगवती का चित्र वहाँ रखकर, उनका आवाहन कर पूजन प्रारम्भ करे॥ ३९॥ फिर वहाँ क्रमशः सर्वतोभद्र के देवताओं की पूजा करे। फिर दशों दिशाओं में दश दिक्पालों की पूजा करे। फिर चारों शृङ्खलाओं में॥ ४०॥ धर्मादि को, घर के बीच श्वेत अधर्म आदि को पूजे। रक्तार्ध भवन में पूरब से दाहिने की ओर प्रदक्षिणा कर उनकी पूजा करे॥ ४१॥ असिताङ्गादि मिथुन को त्रिगुणात्मक मेखला में पूजा कर कलशपीठ का पूजनपूर्वक॥ ४२॥ विधिपूर्वक श्रीत्रिपुरा का आवाहन कर विविध उपचारों से पूजा करे। सोने या चाँदी के निर्मित पुष्प से॥ ४३॥ उड़द की या चाँदी या सोने की सोलह माशे के वजन की अन्यून उत्तम मूर्ति बनवाकर या उसके आधे पाद की नौ मूर्तियाँ बनवाकर॥ ४४॥ वशिनी प्रभृति शक्तियों की सोपचार नाम के साथ

पूजयेदुपचारेषु नामभिर्वशिनीमुखैः । मध्ये च त्रिपुरां रात्रौ पूजयेच्चक्रनायकम्॥४५॥
कलशस्य पश्चिमतः सर्वतोभद्रमण्डले । स्वयं वा पूजयेदाचार्येण वा क्रमवेदिना॥४६॥
पूजयित्वा यथाशास्त्रं कुमारीं बटुकं तथा। गुरुं सुवासिनीश्चाऽपि ब्राह्मणादीनपि क्रमात्॥४७॥
उद्वासरहितां पूजां समाप्याऽखिलसंवृतः । कथाभिर्गायनैर्नृत्यैः कुर्याज्जागरणं निशि॥४८॥
परेद्युः कृतकृत्योऽथ पूजयेच्चक्रनायकम्। पूजाङ्गहोमतः पश्चादग्निं संसाध्य शास्त्रतः॥४९॥
यथावत्तत्र जुहुयात्तत्तत्पुष्पैः सहस्रकम्। पूजां समाप्य चोद्वास्य कलशं वस्त्रसंयुतम्॥५०॥
दक्षिणाप्रतिमायुक्तं सुवासिन्यै निवेदयेत्। ब्राह्मणानां षोडशकं सुवासिन्यष्टकं तथा॥५१॥
बटुकांश्च कुमारींश्च वित्तशाठ्यादिवर्जितः। भोजयेद्भक्ष्यभोज्याद्यैर्दक्षिणाद्यैश्च तोषयेत्॥५२॥
एवं पूजनमात्रेण सर्वपापैर्विमुच्यते । प्रसन्ना त्रिपुरेशानी वाञ्छितार्थप्रदा भवेत्॥५३॥
सर्वसौभाग्यसंयुक्तो वंशपुत्रैर्युतस्तथा । पितॄन् प्रोद्धरते सर्वानन्ते मोक्षं समश्नुते॥५४॥
राज्यप्राप्तिस्तु कमलैः करवीरैर्महच्छ्रियम्। जपापुष्पैः सन्ततिं वै जातीपुष्पैर्गृहादिकम्॥५५॥
योनिपुष्पैर्वंशवृद्धिं बकुलैः सौमनस्यताम्। किंशुकै रोगनिहतिं कुटजैः शत्रुनाशनम्॥५६॥
एवमन्यैः सुगन्धाढ्यैः पुष्पैः पत्रैश्च भार्गव। पूजयित्वा विधानेन महाफलमवाप्नुयात्॥५७॥
फलैर्धान्यैरर्चयेच्च प्रोक्तमार्गानुसारतः । लक्षवर्तिप्रदीपैर्वा पूजयेत्त्रिपुराऽम्बिकाम्॥५८॥
समर्थस्तत्र वर्तिभ्यां दीपानेव प्रकल्पयेत्। दशकेन शतेनाऽपि सहस्रेणाऽपि वा तथा॥५९॥
पञ्चाशद्दशसाहस्रैः सहस्रशतमेव वा । एकैकश्च घृताऽऽपूर्णमर्पयेदेकनामभिः॥६०॥

पूजा करे। उनके बीच में चक्रनायक त्रिपुरा की पूजा रात में करे॥४५॥ कलश के पश्चिम सर्वतोभद्र मण्डल में स्वयं पूजा करे या क्रम के जानकार किसी आचार्य से॥४६॥ पूजा करवाकर शास्त्रानुसार कुमारी एवं बटुकों को, गुरु को, सुवासिनी एवं ब्राह्मणादिकों को क्रम से॥४७॥ बलिदान-विहीन सब तरह से परिपूर्ण पूजा समाप्त कर कथा सुनते, गीते गाते, नाचते रात में जागरण करे॥४८॥ दूसरे दिन कृतकृत्य होते हुए चक्रनायक की पूजा करनी चाहिए। पूजाङ्ग होम के पश्चात् शास्त्रविधि से अग्नि का संसाधन कर॥४९॥ वहाँ यथावत् सहस्र फूलों से हवन करे। पूजा समाप्त कर वस्त्रयुक्त कलश को बाहर निकाल कर॥५०॥ प्रतिमा के साथ दक्षिणा सुवासिनी को प्रदान करे। सोलह ब्राह्मणों तथा आठ सुवासिनी को॥५१॥ बटुक और कुमारी को वित्तशाठ्यादि से रहित होकर सुन्दर एव रुचिकर भोजन देकर तथा उन्हें दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे॥५२॥ इस तरह पूजन मात्र से ही सभी पापों से छुटकारा पा जाता है, उस पर त्रिपुरा प्रसन्न होती हैं और अभिलषित वस्तु प्रदान करती हैं॥५३॥ ऐसा व्यक्ति सभी सौभाग्य से युक्त होता है। उसकी वंशवृद्धि होती है, पुत्र होते हैं, पितरों का उद्धार करता है और अन्त में उसे मोक्ष मिलता है॥५४॥ कमल से पूजने पर राज्य की प्राप्ति होती है। करवीर से पूजने पर महालक्ष्मी मिलती है। अड़हुल से सन्तति, चमेली पुष्प से गृहादि प्राप्त होते हैं॥५५॥ योगिपुष्प से वंशवृद्धि, मौलसिरी पुष्प से सन्तुष्टि होती है, पलाश या टेसू के फूल से पूजने पर रोग विनष्ट होता है। कुटज फूल से शत्रु का नाश होता है॥५६॥ हे परशुराम! इस तरह अन्य पुष्पों और पत्रों से जो सुगन्धित हो, उनसे विधिपूर्वक पूजा करने पर लोगों को महान् फल की प्राप्ति होती है॥५७॥ इसी तरह फल और धान्य से पूर्वोक्त मार्ग के अनुसार एक लाख बत्ती या दीप जलाकर भगवती त्रिपुरा अम्बिका की पूजा करनी चाहिए॥५८॥ जो समर्थ हैं, वे पूर्वोक्त ढंग से दीप या बत्ती जलायें, अन्यथा दस, सौ या हजार से भी पूजा करें॥५९॥ पचास, दस हजार, हजार या सौ से भी

सहस्रनामभिर्देव्याः शतनामभिरेव वा । दशाऽऽवर्तनकैर्वाऽपि चैकावर्तनकेन वा ॥ ६१ ॥
तथा पञ्चशताऽऽवृत्त्या दीपं देव्यै समर्पयत् । अन्ते स्वर्णेन रौप्येन नवकं वर्त्तियुग्मकम् ॥ ६२ ॥
कृत्वा ताम्रमये दीपे घृतवर्तिसमुज्ज्वले । निवेदयेत्तु कलशे पायसेन हुनेत्तथा ॥ ६३ ॥
श्रीसूक्तेनाऽभिषेकं वै कुर्याच्छ्रीचक्रनायके । आवृत्तीनां लक्षकेन सहस्रेण शतेन वा ॥ ६४ ॥
स्वयं वा ब्राह्मणैर्वाऽपि क्षीरैरिक्षुरसैर्घृतैः । मधुभिर्वा फलरसैर्दधिभिर्वा सुगन्धिभिः ॥ ६५ ॥
तोयैस्तीर्थोद्भवैर्वाऽपि राम पूर्वोक्तवर्त्मना । अन्ते दशांऽशतो वह्नौ पायसेन हुनेत् क्रमात् ॥ ६६ ॥
प्रत्यृचं श्रीसूक्तकस्य पूर्ववत्तु समापयेत् । रुद्राभिषकतो वाऽपि महाफलमुदीरितम् ॥ ६७ ॥
एवं भार्गव सम्प्रोक्तं धनिनां शुभसाधनम् । अधनैस्तु शरीरेण कर्तव्यं शुभसाधनम् ॥ ६८ ॥
समर्थस्तीर्थयात्रान्तु कृत्वा श्रेयः समावहेत् । अथ वा देवतास्थाने परिचर्या समाचरेत् ॥ ६९ ॥
उपास्तितत्परान् वाऽपि सेवेत विगतस्पृहः । अतिमूढस्य चैतावदेव कृत्यमुदीरितम् ॥ ७० ॥
मेधावी प्रजपात्पाठात् कथादीनां प्रवाचनात् । देवताशास्त्रपठनात् पाठनाच्छ्रेय आप्नुयात् ॥
योग्येषु देवतोपास्तिशास्त्रं यः सम्यगीरयेत् । स देहान्ते वैद्रुमे तु प्राकारे निवसेच्चिरम् ॥ ७२ ॥
चित्राणि यो लिखेद्देव्याः प्रासादेषु सुभक्तितः । निवसेद्वासन्तवप्रे चिरमानन्दिताऽन्तरः ॥ ७३ ॥
सम्मार्ज्य शीततोयैश्च सेचयेत् यश्च मन्दिरम् । अभिषिञ्चेत्तथा शीततोयैरपि सुवासितैः ॥ ७४ ॥
निवसेच्चान्द्रवप्रान्तः स सन्तापविवर्जितः । यस्तु रात्रौ दीपिकाभिः प्रकाशयति मन्दिरम् ॥ ७५ ॥

एक-एक घी से भरे दीप एक-एक देवी के नाम से अर्पित करें॥ ६० ॥ देवी के सहस्र नाम से अथवा शतनाम से अथवा दशावर्तन से या एकार्वतन से॥ ६१ ॥ तथा पाँच सौ आवृति से देवी के लिए दीप समर्पित करे। सबसे अन्त में सोने या चाँदी की बत्ती के साथ नौ दिये॥ ६२॥ बनाकर ताँबे के दीप में घी की बत्ती जलाकर कलश पर समर्पित करे तथा पायस से हवन करे॥ ६३॥ श्रीचक्रनायक का श्रीसूक्त से अभिषेक करे। एक लाख, एक हजार या एक सौ आवृत्ति उस मन्त्र की करे॥ ६४॥ स्वयं या ब्राह्मणों के द्वारा दूध से, ईख के रस से, घी से, मधु से अथवा फल के रस से, दही से अथवा सुगन्धित॥ ६५॥ तीर्थजल से हे परशुराम! पूर्वोक्त विधि से अभिषेक करे। अन्त में अभिषेक का दशांश भाग खीर से क्रमशः हवन करें॥ ६६ ॥ पहले की तरह श्रीसूक्त की प्रतिऋचा से इसे समाप्त करे अथवा रुद्राभिषेक से इसे समाप्त कर महाफल की प्राप्ति करे॥ ६७ ॥ हे भार्गव! यह शुभ साधन धनवानों के लिए कहा गया है, पर जो गरीब हैं, उन्हें यह शुभसाधन शारीरिक श्रम से प्राप्त करना चाहिए॥ ६८ ॥ जो व्यक्ति समर्थ है, वह इसके बाद तीर्थयात्रा कर श्रेय प्राप्त करे अथवा किसी देवमन्दिर में यह परिचर्या सम्पन्न करे॥ ६९ ॥ अपनी सारी अभिलाषाओं को छोड़कर उस पराशक्ति की उपासना करे। जो अति अज्ञानी हैं, उनके लिए भी इतना भर ही कृत्य कहा गया है॥ ७० ॥ किन्तु जो मेधावी हैं, वे जप से, पाठ से, कथादि से, प्रवचन से, देवता सम्बन्धी शास्त्र के पढ़ने से या पाठन से श्रेय प्राप्त करते हैं॥ ७१ ॥ शास्त्र का उचित ज्ञानपूर्वक जो सुयोग्य व्यक्ति देवता की उपासना करता है, वह मृत्यु के बाद बहुत दिनों तक मूँगे के भवन में निवास करता है॥ ७२॥ सुन्दर भक्ति के साथ अपने भवन में जो भगवती का चित्र खींचता है, वह वासन्ती दुर्ग में बहुत काल पर्यन्त अतिप्रसन्न होकर निवास करता है॥ ७३ ॥ शीतल जल से सम्मार्जित कर जो मन्दिर का सिंचन करता है तथा सुगन्धित शीतल जल से मन्दिर को धो-पोंछ कर साफ करता है॥ ७४॥ वह हर तरह के सन्ताप से रहित होकर चन्द्र-दुर्ग में निवास करता है। रात में जो मन्दिर में दीप जलाता है॥ ७५ ॥ वह यथाभिलषित

निवसेत्सूर्यवप्रान्तः प्राप्य भोगान् यथेप्सितान्। एवमत्र यथा यो यः सेवां कुर्यात्तु मन्दिरे॥७६॥
स देहान्ते श्रीपुरे तु स्थानं प्राप्नोति तादृशम्। उपासकेभ्यो दानानि कृत्वाऽपि स्थानमाप्नुयात्॥
यः पुस्तकं देवतायां दद्याद्योग्याय भक्तितः। स सिद्धवप्रवसतिं प्राप्नुयात् सुसुखावहाम्॥७८॥
यस्तु पूजोपकरणं प्रदद्यात् साधकोत्तमे। स वसेद्दिक्पतीनां हि वप्रे सौख्यमवाप्नुयात्॥७९॥
एवं यद्यत् प्रदद्याद्वै भक्त्योपासनसत्तमे। तत्तत्तुल्यनिवसतिं प्राप्नुयान्नाऽत्र संशयः॥८०॥
अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि दानानामुत्तमं परम्। श्रीचक्रराजदानन्तु महाफलविधायकम्॥८१॥
सुपर्वणि समभ्यर्च्य चक्रराजं यथाविधि। पूजान्ते त्रिपुरापूजापरं विप्रं सुलक्षणम्॥८२॥
सपत्नीकं समभ्यर्च्य विशेषद्रव्यसाधनैः। वस्त्रैराभरणैः शक्त्या गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥८३॥
सपीठं सोपकरणं साधनद्रव्यसंयुतम्। सामान्याऽर्घोदकं हस्ते विप्रस्य समवासृजेत्॥८४॥
ततो विप्रस्तु तां पूजामुद्वासप्रमुखाश्चरेत्। भाजयेदावृतिमितान् ब्राह्मणान् सुविधानतः॥८५॥
सुवासिनीर्भोजयेत्तु नित्याषोडशनामभिः। यथाशक्त्या वाऽपि विप्रान् भोजयेत्तु प्रयत्नतः॥
अथ वा भोजयेन्नित्या नामभिस्तु सुवासिनीः। षोडश ब्राह्मणांश्चापि द्वादशाऽऽराध्य भोजयेत्॥
एवं दद्याद्यस्तु दानं चक्रराजस्य भक्तितः। तस्य प्रीता महादेवी स्वसायुज्यं प्रयच्छति॥८८॥
सर्वतीर्थेषु स स्नातः तेन सर्वं व्रतं कृतम्। सर्वं दानं तेन दत्तं तेन यज्ञास्तथा कृताः॥८९॥
तपस्तेन सुतप्तं वै पठिता निखिलागमाः। त्रिपुराऽपि च तत्कर्मसदृशं नाऽस्ति वै फलम्॥९०॥
इति मत्वा स्वसायुज्यं तस्मै शीघ्रं प्रयच्छति। यतः सर्वजगद्रूपप्रतिमं राम चक्रकम्॥९१॥

वस्तुओं को प्राप्त कर सूर्यदुर्ग में निवास करते हैं। इसी तरह जो जैसी सेवा मन्दिर में करता है॥७६॥ उसे मरणोपरान्त श्रीपुर में वैसी ही जगह मिलती है। जो भगवती के उपासकों को दान देता है, वह भी उत्तम स्थान प्राप्त करता है॥७७॥ जो किसी सुयोग्य व्यक्ति को भक्तिपूर्वक देवता सम्बन्धी पुस्तक देता है, वह अतिसुखावह सिद्धदुर्ग में निवास पाता है॥७८॥ जो व्यक्ति उत्तम साधक को पूजा का उपकरण देता है, वह दिक्पतियों के दुर्ग में सुखपूर्वक निवास प्राप्त करता है॥७९॥ भगवती की उपासना में लगे सत्पुरुषों को भक्तिपूर्वक जो कोई जो कुछ भी देता है, उसी के अनुसार मरणोपरान्त उसे निवास मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है॥८०॥ अब मैं तुम्हें दानों में सर्वोत्कृष्ट दान बतलाता हूँ। श्रीचक्रराज का दान महाफल-विधायक है॥८१॥ सुन्दर पर्व के अवसर पर यथाविधि चक्रराज की पूजा कर पूजा के अन्त में भगवती त्रिपुरा का पूजन कर सुलक्षण ब्राह्मण को॥८२॥ सपत्नीक विशेष द्रव्य साधन के साथ पूज कर वस्त्र, आभरण, गन्ध-पुष्पादि से क्रमशः यथाशक्ति पूजा करे॥८३॥ सपीठ, सोपकरण साधन द्रव्य से युक्त सामान्य अर्घोदक विप्र के हाथ में उत्सर्जित करे॥८४॥ उसके बाद वह ब्राह्मण भी उस पूजा का समापन करे। फिर जितनी आवृत्तियाँ पूजित हुईं हैं, उसी संख्या के ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन करायें॥८५॥ फिर नित्य सोलह शक्तियों के नाम पर सोलह सुवासिनियों को भोजन कराये अथवा प्रयासपूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणों का भोजन कराये॥८६॥ अथवा उस नित्या शक्ति के नाम पर सोलह सुवासिनी और बारह ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें भोजन कराये॥८७॥ इस तरह जो भक्तिपूर्वक चक्रराज का दान करता है, उस पर वह महादेवी त्रिपुरा अत्यन्त प्रसन्न होकर अपना सायुज्य प्रदान करती हैं॥८८॥ ऐसा व्यक्ति सभी तीर्थों में स्नान का एवं सभी व्रतों का फल प्राप्त करता है। सब तरह के दान एवं सब तरह के यज्ञ का फल उसे अनायास मिलता है॥८९॥ हर तरह के कठोर तप का फल उसे मिलता है, हर तरह के आगम पाठ का फल उसे मिलता है। उस कर्म के सदृश कोई फल नहीं है। त्रिपुरा भी॥९०॥ इसे मानकर अतिशीघ्र उसे अपना सायुज्य प्रदान

अतस्तेन जगद्दत्तं न दत्तं किं कथं भवेत्। यदि कामनया कुर्याद्यं यं काममभीप्सति॥ ९२॥
तं तं प्राप्नोति सहसा मोक्षश्चाऽन्ते समाप्नुयात्। एवन्तु स्थावरं यन्त्रमग्रे हारसमन्वितम्॥ ९३॥
महादानयुतश्चाऽपि दद्याद्विप्राय यः पुमान्। तस्य पुण्यमनन्तोऽपि न शक्तः कथने क्वचित्॥
मूर्तिं वाऽपि नार्मदं वा शिवनाममथाऽपि वा। शालिग्रामं कुण्डलिनीमेव दद्यात्तु भक्तितः॥ ९५॥
श्रीपुरे तु चिरं स्थित्वा मुच्येद्देहाऽवसानके। मन्दिरं चक्रराजादेर्जीर्णं कुर्यान्नवन्तु यः॥ ९६॥
तत्पुण्यं स्याच्छतगुणं नवमन्दिरनिर्मितेः। पूजां वाऽपि चिरोच्छिन्नां प्रवर्तयति यः पुनः॥ ९७॥
धनभूमिप्रदानेन तस्याऽपि शतधा फलम्। सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु वक्ष्यामि भार्गव॥ ९८॥
यस्तु भक्तेषु योग्येषु सम्प्रदायं समादिशेत्। धनमानाद्यपेक्षः सन् क्रमदीक्षादिरीतितः॥ ९९॥
तस्याऽनन्तफलं राम कस्तद्वर्णयितुं क्षमः। यथेच्छं निवसेन्नाथमण्डलेऽन्ते विमुच्यते॥ १००॥
यस्तु योग्यं सम्प्रदायं प्रार्थयन्तमुपासने। कामान्मोहात् प्रमादाद्वा वैराग्याद्वा निषेधति॥ १०१॥
यश्च द्रव्यादिलोभेनाऽनर्हे शास्त्रं प्रयोजयेत्। तयोर्न विद्यते लोकः प्राप्स्यतो ह्यधमाङ्गतिम्॥
तस्माद्यः सम्प्रदायं वै भक्तानां न निरूपयेत्। विद्यालोभयुतो मौर्ख्यात् सोऽपि यात्यधमां गतिम्॥
तस्मात् स्वशिष्यमन्यं वा युक्तं भक्तिसमन्वितम्। सम्प्रदायं विजिज्ञासुं न निषिध्येत् कथञ्चन॥
एतन्महाफलं राम नैतत्तुल्यन्तु किञ्चन। अन्यद्दानमनात्माख्यमपि बन्धकरं भवेत्॥ १०५॥
एतदात्मप्रदानं वै यद्विद्याया निरूपणम्। यत्फलस्य न चान्तोऽस्ति तत्फलं स्यादनन्तकम्॥

करती हैं। अतः हे परशुराम! यह श्रीचक्र संसार के रूप की प्रतिमा है॥ ९१॥ अतः जिसने भी इसका दान किया उसने क्या नहीं दान किया? यदि उसने कामना से ऐसा किया है, जिस-जिस काम की अभिलाषा से उसने ऐसा किया है॥ ९२॥ वे उसकी सारी कामनाएँ सहसा पूरी होगीं और अन्त में उसकी मुक्ति होगी। इस तरह अग्रहार युक्त स्थावर यन्त्र को॥ ९३॥ जो पुरुष ब्राह्मण के लिए महादान देता है, उसके अनन्त पुण्यफल का वर्णन कोई नहीं कर सकता॥ ९४॥ श्रीत्रिपुरा की मूर्ति, नर्मदेश्वर महादेव, शिवनाम, शालिग्राम शिला अथवा कुण्डलिनी भक्तिपूर्वक जो देता है॥ ९५॥ वह बहुत समय तक श्रीपुर में निवास कर यह देह छोड़ता है। चक्रराजादि के जीर्ण मन्दिर का जो नवीनीकरण करता है॥ ९६॥ नये मन्दिर निर्माण की अपेक्षा सौ गुना अधिक पुण्यफल उसे मिलता है। बहुत दिन से छूटी पूजा को जो पुनः प्रवर्त्तित करता है॥ ९७॥ धन, भूमि व दान से सौ गुना अधिक उसे फल मिलता है। फिर सर्वाधिक गुह्यतम विषय हे परशुराम! मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो॥ ९८॥ जो सुयोग्य भक्तों को सम्प्रदाय का ज्ञान देता है, धन-मानादि की प्रत्याशा रखते हुए साम्प्रदायिक रीति से क्रमदीक्षा देता है॥ ९९॥ हे परशुराम! उसका अनन्त फल उसे मिलता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है? यथेच्छ नाथमण्डल में निवास करने के बाद अन्त में मुक्ति पाता है॥ १००॥ जो किसी योग्य व्यक्ति को सम्प्रदाय की प्रार्थना करते हुए उपासना करने में काम, मोह, प्रमाद या वैराग्य से निषेध करता है॥ १०१॥ और जो द्रव्यादि के प्रलोभन से अयोग्य व्यक्ति को शास्त्रज्ञान देता है, उसके लिए कोई लोक नहीं है; वह तो अधम गति प्राप्त करता है॥ १०२॥ अतः भक्तों को जो सम्प्रदाय का ज्ञान नहीं देता, विद्या के लोभ से मूर्खतावश ऐसा नहीं करता, वह भी अधम गति प्राप्त करता है॥ १०३॥ अतः भक्तिपरायण अपना शिष्य हो या पराये का, सम्प्रदाय के जिज्ञासुओं को जानकारी प्राप्त करने में कभी नहीं रोकना चाहिए॥ १०४॥ हे राम! यह महाफलदायी है, इसके तुल्य दूसरा कुछ भी नहीं है। अत्यन्त दान अनात्मा कहलाता है तथा बन्धन डालने वाला होता है॥ १०५॥ इस विद्या का निरूपण

यस्त्वशक्तो बुद्धिमान्द्याद्विद्यावाने विशेषतः । विद्यालिखितदानेन चाऽपि तत्फलमाप्नुयात्॥
इदमत्यन्तसंगुप्तं प्रीत्या तव निरूपितम् । एवं महाफलप्राप्तिस्त्रिपुरोपासनाविधौ॥ १०८॥
एष भार्गव ते प्रोक्तस्त्रिपुराया रहस्यके। माहात्म्यवैभवो यस्य श्रवणाद्भक्तिमान् भवेत्॥ १०९॥
देवर्षे संश्रुतं कच्चित् सावधानेन चेतसा। एष माहात्म्यखण्डो वै त्रिपुराया रहस्यके॥ ११०॥
यः शृणोति स सर्वेभ्यः पापेभ्यः प्रविमुच्यते । परमं साधनं ह्येतदात्मबन्धविमुक्तये॥ १११॥
यतो भक्तिर्हि मोक्षस्य जनयित्री निगद्यते। सा माहात्म्यश्रुतिमृते यतो न भवति क्वचित्॥ ११२॥
तस्मात् पराख्यसौधस्य सोपानं प्रथमं ननु। माहात्म्यश्रवणं लोके मोक्षद्वारमिदं स्मृतम्॥ ११३॥
महिमानमसंश्रुत्य कथं भक्तिर्भवेदिह । भक्त्या विना परं श्रेयः कथं स्याद्देवता परा॥ ११४॥
मोक्षस्य साधनं सर्वं विना भक्त्या न किञ्चन। यथा तरुण्याः सौन्दर्यं विनसं सर्वथा तथा॥ ११५॥

भुवं विना यथा बीजं नाऽङ्कुरं प्रतिरोहयेत्।
तथा भक्तिं विना ज्ञानं फलं न जनयेत् क्वचित्॥ ११६॥
अभक्तस्य न कर्मास्ति नोपास्तिर्नो विवेकिता।
तस्माद्भक्तिविहीनस्य न काचित् स्याद् धृतिः क्वचित्॥ ११७॥

माहात्म्यसंश्रुतिस्तस्या मूलं यस्माच्च नारद । तस्मादेतं संभृणुयात् खण्डं माहात्म्यसंज्ञितम्॥
शृण्वतां पठताञ्चाऽपि महापापप्रणाशनम्। पठितव्यं नित्यमेतदध्यायं श्लोकमेव वा॥ ११९॥
प्रसादं त्रिपुराशक्तेर्वाञ्छता सर्वथा शुभम् । एतदायुष्यजननं सौमङ्गल्यविवर्धनम्॥ १२०॥

आत्मप्रदान करने वाला है, जिसके फल का कोई अन्त नहीं है। यह अनन्त फलदायी है॥ १०६॥ जो बुद्धिमान् विद्यादान में विशेष रूप से अशक्त है, वह लिखित विद्यादान से भी वही फल प्राप्त करता है॥ १०७॥ यह अत्यन्त गुप्त विषय है, केवल तुम्हारे प्रेम के कारण ही इसे मैंने व्यक्त किया है। त्रिपुरा की उपासना-विधि जानने से महाफल की प्राप्ति होती है॥ १०८॥ हे भार्गव! यह त्रिपुरा के रहस्य की महिमा का वैभव है, जिसे सुनने से व्यक्ति भक्तिमान् होता है॥ १०९॥ हे देवर्षे! यह त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्ड को जो कोई भी सावधान मन से सुनता है, वह पुण्यवान् है॥ ११०॥ इसे जो सुनता है वह सब तरह के पाप से मुक्त हो जाता है। आत्मबन्धन की मुक्ति का यह परम साधन है॥ १११॥ क्योंकि मुक्ति की जननी भक्ति को कहा गया है। क्योंकि इस माहात्म्य के श्रवण से कहीं किसी की अचानक मौत नहीं होती॥ ११२॥ अतः उस पराख्य प्रासाद तक पहुँचने की यह पहली सीढ़ी है। इस माहात्म्य का श्रवण संसार में मोक्षद्वार कहा गया है॥ ११३॥ बिना महिमा सुने इस संसार में भक्ति कैसे होगी? और बिना भक्ति के परम श्रेय या फिर वह परा देवता कैसे मिलेंगे?॥ ११४॥ मोक्ष के सभी साधन बिना भक्ति के किस काम के? यह तो ठीक उसी तरह है जैसे किसी तरुणी का नाक के बिना सौन्दर्य हो॥ ११५॥ धरती जैसे बीज के बिना अंकुर नहीं देती, उसी तरह भक्ति के बिना ज्ञान फलदायी नहीं होता॥ ११६॥ जो भक्तिविहीन व्यक्ति है, उसके लिए न कोई कर्म है, न उपासना है और न विवेकिता ही। अतः भक्तिविहीन व्यक्ति को कहीं भी धैर्य नाम की कोई वस्तु नहीं होती॥ ११७॥ हे नारद! माहात्म्य-श्रवण ही भक्ति का मूल है। अतः इस माहात्म्य खण्ड का श्रवण अवश्य करना चाहिए॥ ११८॥ इसे सुनकर या पढ़कर महापाप का विनाश होता है। प्रतिदिन इसके एक अध्याय का या कम-से-कम एक श्लोक का पाठ अवश्य करना चाहिए॥ ११९॥ सर्वथा शुभ चाहने वाले या भगवती त्रिपुरा की कृपा चाहने वाले को इसका पाठ या श्रवण करना चाहिए। इससे आयु और सौमङ्गल्य

अधनो धनवान् भूयादपुत्रा पुत्रिणी भवेत्। यद्यत्समीहितं तत्तत्प्राप्यतेऽस्य हि संश्रुतेः ॥ १२१ ॥
विद्याप्रदं विलिखितं पूजितं प्रेप्सितप्रदम्। विचारितं ज्ञानभक्तिवैराग्यादिप्रदं नृणाम् ॥ १२२ ॥
सर्वाऽऽगमाब्धिमथनाद्यद्भक्त्यमृतमाप्य तु। अमृताः शिवमुख्याः स्युः सा माता त्रिपुरैव ह्रीम् ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे उपासकमुख्यधर्मनिरूपणं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ६६८७ ॥

त्रिपुराम्बार्पितमस्तु। ॐ तत् सत् ॥

समाप्तमिदं त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डम्।

की वृद्धि होती है ॥ १२० ॥ गरीब धनी होता है, बन्ध्या पुत्रवती होती है। इसे सुनने से मनुष्य जो कुछ चाहता है वह वस्तु उसे मिलती है ॥ १२१ ॥ यह विद्याप्रद है, इसे लिखकर पूजा करने पर अभीप्सित वस्तु उसे मिलती है। मनुष्य को यह विचार ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य देने वाला है ॥ १२२ ॥ सभी आगम रूपी समुद्र का मन्थन कर भक्तिरूपी अमृत पाकर जिसके कारण शिव-प्रमुख देवगण अमर बने, वह भगवती त्रिपुरा 'ह्रीं' काररूपिणी हैं ॥ १२३ ॥

इस प्रकार इतिहासों में उत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड में उपासकमुख्यधर्मनिरूपण नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६६८७ ॥

त्रिपुरारहस्यव्याख्येयमकारि सुधियां मुदे।
मिश्रजगदीशचन्द्रेण खिष्ट्रे वस्वङ्कागङ्कभूः ॥

✻ श्रीत्रिपुराम्बार्पितमस्तु ✻

'ॐ तत्सत्'

त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य खण्ड समाप्त।